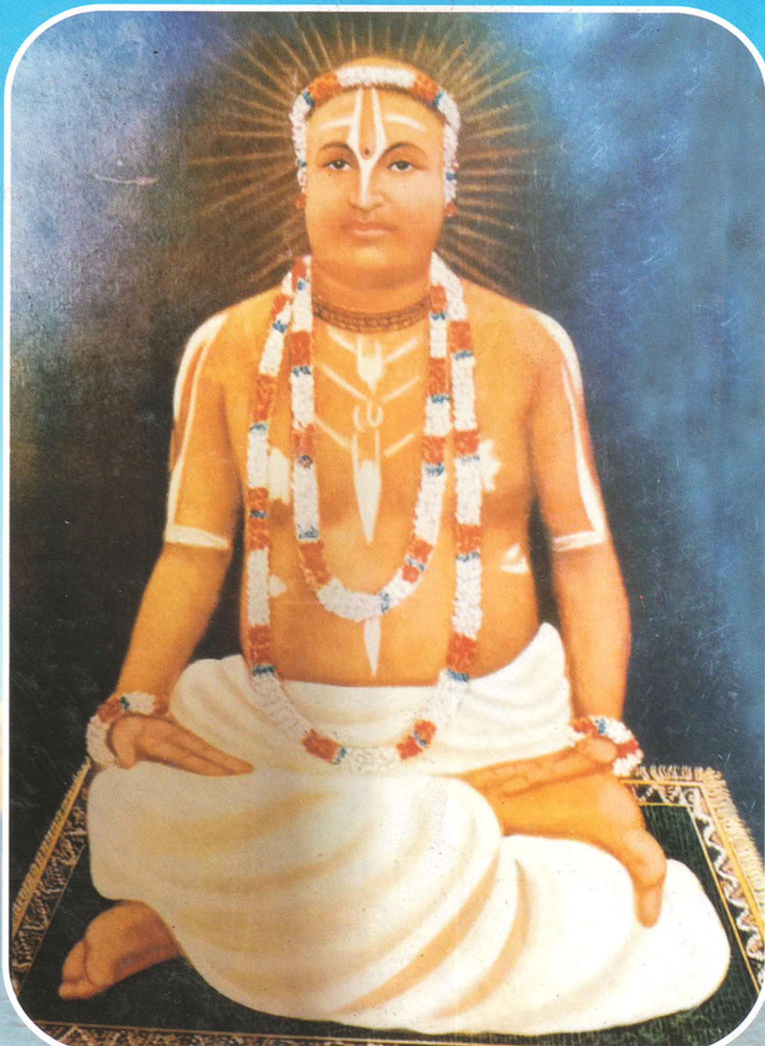
चरित सुधा



सम्पादक

श्रीरामदास बाबाजी

❋ श्रीश्रीराधारमणो जयति ❋

भज निताइ गौर राधेश्याम। जप हरे कृष्ण हरे राम।।

चरित-सुधा

श्रीश्रीमद्
राधारमणचरणदासदेव बाबाजी महाशय
(बड़े बाबा)
का
जीवन चरित्र

मूल बंगला सम्पादक-प्रकाशक
श्रीरामदास बाबाजी

प्रकाशक :

गोपेश कपूर
403, अंगद अपार्टमेन्ट, जी. डी. मिश्रा पथ,
रोड नम्बर 2, न्यू पी. पी. कॉलोनी
पटना-800013, बिहार (इण्डिया)

●

प्रकाशन तिथि :

प्रथम संस्करण : सन् 1969
द्वितीय संस्करण : सन् 1990
तृतीय संस्करण : सन् 1996
चतुर्थ संस्करण : सन् 2008
पंचम संस्करण : सन् 2017

●

अनुवादक :

श्रीअवधबिहारी लाल कपूर, एम. ए., डी. फिल.
श्रीब्रजगोपालदास अग्रवाल, एम.ए.

●

प्राप्ति स्थान :

श्री राधारमण निवास ट्रस्ट, श्रीगौरांग आश्रम
आई. ओ. पी. कॉलेज के सामने,
रमणरेती, वृन्दावन (मथुरा)
दूरभाष : 0565-2540616, 9997107724

●

मुद्रण-संयोजन :

चित्रलेखा, श्रीहरिनाम प्रेस
बागबुन्देला, लोई बाजार, वृन्दावन
दूरभाष : 7500987654

●

मूल्य : तीन सौ रुपये

दो शब्द

यदि संसाररूपी मरुभूमि की मृग-मरीचिकाओं के पीछे भटकते-भटकते आपका साहस छूट गया है, शरीर झुलस गया है, और कण्ठ जुड़ गया है, तो चिन्ता न करें; क्योंकि अब आप एक ऐसे स्थान पर आ लगे हैं, जहाँ हरे-भरे वृक्ष और लताओं के बीच चरित-सुधा का निर्झर निरन्तर प्रवाहित होता हुआ कल-कल शब्द से आपको आमन्त्रित कर रहा है अपने शीतल, सुमधुर सुधारस से आपके तन-मन और प्राण को प्लावित कर एक अपूर्व सुख और शान्ति के सागर में निमग्न कर देने के लिए।

श्रीश्रीराधारमण चरणदासदेव के इस पुण्य चरित्र को पढ़कर आपको एक ऐसी ही अनुभूति होगी, लगेगा कि जैसे इस दिव्यातिदिव्य मधुरातिमधुर चरित्र के रूप में श्रीकृष्ण की आह्लादिनी शक्ति, प्रेमस्वरूपिणी श्रीराधारानी ने अपने सुकोमल हाथों से प्रेम-सुधारस उड़ेल दिया हो कलिहत त्रिताप-तप्त जीवों का ताप दूरकर उन्हें चिरकाल के लिए प्रेमानन्द में निमज्जित कर देने को और आप अंजली भर-भर उस प्रेम-सुधा का पानकर अपने तप्त आत्मा को शीतल कर रहे हों। ऐसा रसमय और सुखमय है यह चरित्र।

या आपको लगेगा कि जैसे इस पुण्य चरित्र के रूप में हरिनाम का करुणा-वारिधि स्वभावत: उथल पड़ा हो निर्बल, निरालम्ब, निराश्रय, निर्बोध कलि-हत जीवों का उद्धार करने के लिए। ऐसा हरिनाममय, हरिनाम से बाहर-भीतर ओतप्रोत है यह चरित्र।

हरिनाम ने मानो मायाबद्ध मोहान्ध जीवों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए इस चरित्र के माध्यम से अपनी अनन्त शक्ति का विभिन्न रूप से परिचय दिया है—पापी-तापी पाषण्डी जीवों के वज्र से भी अधिक कठोर हृदय को द्रवीभूत कर उसमें निर्मल भगवत् प्रेम का बीजारोपण किया है, मनुष्यों का तो कहना ही क्या, पशुओं तक को भक्ति-पथ का पथिक बनाकर उनकी पशु देह में ही तदनुरूप आचरण और भाव आदि का विकास किया है; तरु-लताओं को अश्रु, कम्प, पुलकादि सात्विक भावों से विभूषित कर संकीर्तन की ताल के साथ नृत्य कराया है; यहाँ तक कि बिना हरिनाम का आश्रय लिए मनुष्य देह को त्यागकर जाने वाले जीव के मृत शरीर को श्मशान पर जाते हुए रोककर उससे हरिनाम कहलाया है। ऐसा रहस्यमय कौतुकमय और चित्ताकर्षक है यह चरित्र। इसलिए यदि संसार-सागर की उत्ताल तरंगें निर्दयतापूर्वक आपके सुख और शान्ति से खेल रही हैं और आप उसमें डूब-डूबकर उतराते हुए भी पास में खड़ी हरिनाम की नौका का सहारा न लेकर मगरमच्छों का सहारा ले रहे हैं, केवल अपने अज्ञान और अविश्वास के कारण, तो श्रीराधारमण चरणदासदेव के इस चरित्र का अवलोकन करें। निश्चय ही हरिनाम की अनन्त शक्ति में आपका अटूट विश्वास जन्मेगा और आप हरिनाम की नौका पर आरूढ़ होकर निर्विघ्न संसार-सागर के पार उस दिव्य स्थल पर पहुँच जायेंगे, जो राधा-कृष्ण चरणारविन्द के मधुर मकरन्द, उनके मधुर रूप लावण्य और उनकी मधुर से भी मधुर परम उज्ज्वल दिव्य और नित्य नवीन लीलाओं से निरन्तर व्याप्त है।

श्रीश्रीराधारमण चरणदासदेव अधिकांश श्रीजगन्नाथपुरी में रहते थे और उड़ीसावासियों पर उनकी विशेष कृपा थी। उड़ीसावासी भी उन्हें 'महाप्रभु' कहकर पुकारते थे। आज भी उड़ीसा में दो महाप्रभु प्रसिद्ध हैं—श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु और महाप्रभु श्रीराधारमण चरणदास देव, और घर-घर इन दोनों महाप्रभुओं की सेवा पूजा होती है। बंगाल में श्रीराधारमण चरणदासदेव 'बड़े बाबाजी महाशय' के नाम से विशेष रूप से परिचित हैं और उनकी अलौकिक लीला कथाओं का सर्वत्र प्रचार है।

बड़े बाबाजी महाशय का यह नाम उनके विशाल शरीर का परिचायक उतना नहीं था, जितना उनके विशाल हृदय का, जो परमोज्ज्वल, शुद्धातिशुद्ध भगवत्-प्रेम का महा-आश्रयस्वरूप था, जो प्रेम-तरंगों से इतना तरंगायित

और उद्वेलित रहता कि उससे प्रेम-रस उच्छलित होकर सदा बरसा करता उनके असाधारण अश्रु-प्रवाह के रूप में, उनके 'कृष्णकर्णामृत' के समान स्वत: स्फुरित, मार्मिक नये-नये पद-पदावलियों के रूप में उनकी अलौकिक विश्व मनोहारी नृत्यभंगी के रूप में और उनके आजानुलम्बित, प्रेम विकम्पित भुजदण्डों के उस अपूर्व, अप्राकृत प्रेमालिंगन के रूप में, जिसे वे पात्र कुपात्र सभी को सम्मुख होते ही प्रदान कर सदा के लिए कृत-कृत्य कर देते।

यह ग्रन्थ बंगला के 'चरित सुधा' नामक ग्रन्थ का अनुवाद है। मूल ग्रन्थ पर लेखक का नाम नहीं है, पर इसकी प्रधान लेखिका थीं बाबाजी महाशय की कृपापात्री परम भक्तिमती, परम सिद्धा श्रीललितादासी और इसका प्रकाशन बाबाजी महाशय के प्रधान शिष्य सिद्ध श्रीरामदास बाबाजी महाराज के द्वारा सन् 1930 ईस्वी में हुआ था। तब से बंगला में इसके कितने ही संस्करण निकल चुके हैं। प्रथम हिन्दी संस्करण में मूल ग्रन्थ के कुछ अंश छोड़ दिये थे। इस संस्करण में उन्हें जोड़ दिया गया है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में बहुत बड़ा हाथ है एक ऐश्वर्यशाली और भक्तिभाव-सम्पन्न परम उदार व्यक्ति का, जिनका नाम अव्यक्त रखने के लिए हम बाध्य हैं, पर जो अपने स्वाभाविक दैन्य नि:स्वार्थ प्रेम निर्मल भक्तिभाव और धर्म ग्रन्थों के प्रकाशन और प्रचार में विशेष रुचि रखने के कारण सर्वथा वन्दनीय हैं। हम हृदय से उनके ऋणी हैं। उनके बहुमूल्य सहयोग के बिना इस बड़े ग्रन्थ का प्रकाशन शायद सम्भव ही न होता। भगवान् उनके भक्तिभाव में निरन्तर वृद्धि करें।

हम हृदय से आभारी हैं, राजकीय कालेज, चूरू (राजस्थान) के प्रोफेसर ब्रजगोपाल दास के भी, जिन्होंने ग्रन्थ के अनुवाद में अन्त तक हमारा हाथ बँटाकर ग्रन्थ की सेवा की है।

श्रीराधारमण मार्ग, श्रीधाम वृन्दावन — विनीत

अवधबिहारीलाल कपूर

❋❋❋

चतुर्थ संस्करण का निवेदन

'चरितसुधा' का प्रथम हिन्दी संस्करण 1969-70 में प्रकाशित हुआ था—मूल बंगला ग्रन्थ की तरह छह अलग-अलग खण्डों में। यह सोचकर कि अखण्ड संस्करण कहीं अधिक सुविधाजनक रहेगा, ग्रन्थ का दूसरा संस्करण 1990 में बड़े आकार में एक ही जिल्द में प्रकाशित किया गया।

सन् 1996 में जब तृतीय संस्करण तैयार हुआ, तो उसमें दूसरे संस्करण के 'दो शब्द' यथावत् रहे। भूल से यह वाक्य भी मुद्रित हो गया—"हिन्दी में इसका यह दूसरा संस्करण हैं।" पाठकों ने इस ओर ध्यान आकर्षित किया। अब यह वाक्य निकाल दिया है।

यह ग्रन्थ बहुत समय से अनुपलब्ध था। श्रीगुरु-वैष्णवों की कृपा से आज नवीन संस्करण प्रस्तुत है, यह बड़े हर्ष और सन्तोष का विषय है। इसमें हमें 'श्रीराधारमण निवास' के महन्त पूज्य बाबा श्रीदीनहरिदास और अन्यान्य भक्तजनों से जो सहयोग मिला है, उसके लिए हम उनके परम आभारी हैं।

रथयात्रा — **गोपेश कपूर**

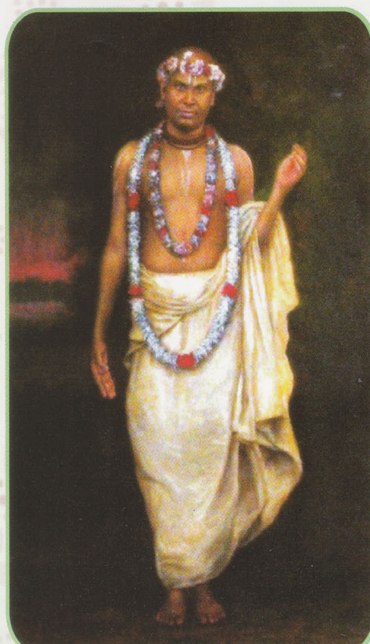
04.07.08



श्रीश्री राधारमणचरणदास देव



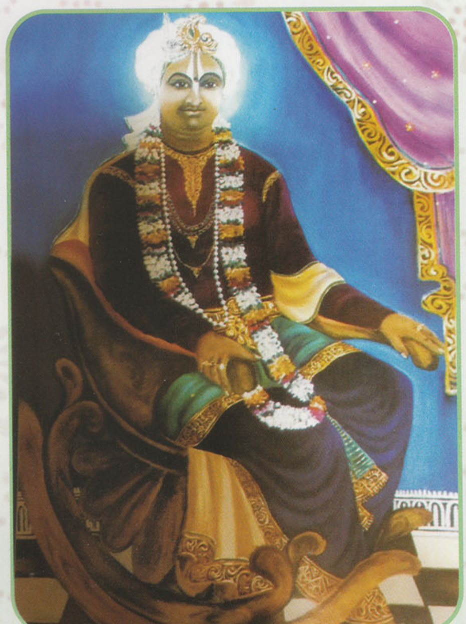
श्रीश्री राधारमणचरणदास देव



श्रीश्री राधारमणचरणदास देव



श्रीश्री राधारमणचरणदास देव



श्रीश्री राधारमणचरणदास देव



श्रीश्री राधारमणचरणदास देव



भूमिका

श्रीमन्नवद्वीप-नवप्रदीपः प्रभाव-पाषण्ड-गजैक सिंहः।
स्वनामसंख्याजप सूत्रधारी चैतन्यचन्द्रो भगवान्मुरारिः।।

भक्त महाजनों का चरितानुशीलन और आस्वादन भक्तिमार्गावलम्बी साधकों के लिए कितना शुभ और पुण्यकर है भक्त ही जानते हैं। विशेष रूप से भक्तिधर्म प्रचारक महात्माओं के पुण्य चरित्र का अध्ययन और उनकी अलौकिक लीला कथाओं का रसास्वादन आत्मशुद्धि का मुख्य साधन है—ऐसा शास्त्र और महाजनों का मत है। श्रीमद्भागवत और अन्यान्य शास्त्रों ने भगवद् भक्तों की पुण्य कथा को भी ईश कथा की संज्ञा[1] दी है और कहा है कि जीव के लिए अन्त समय इन्हीं कथाओं का कहना और सुनना हितकर है। सूत जी जब राजा परीक्षित् द्वारा कलिनिग्रह की कथा कहने लगे तब शौनक ऋषि बोले—''हे महाभाग! यदि इस कथा में नारायण के चरणकमल-पीयूषपायी साधुगणों का कोई प्रसंग हो तभी कृपा कर इसका वर्णन करें, क्योंकि ऐसे समय असदालाप से कोई लाभ नहीं। श्रीगौरांग-लीला के व्यासावतार श्रीवृन्दावनदास ठाकुर ने लिखा है—

कृष्ण भजिवारे जार आछे अभिलाष।
शे भजूक कृष्णेर मंगल निज दास।। **(चै.भा. म. 2/55)**

अर्थात् कृष्ण का भजन करने की इच्छा है तो उनके मंगलमय दासों का भजन करो, विशेष रूप से ऐसे साधु महाजनों का जिन्होंने भगवत् प्रेरणा से कलिहत जीवों के प्रति कृपाकर और युगधर्म भगवन्नाम का प्रचार कर असंख्य पतित जीवों का संसार रूपी रौरव से उद्धार किया है। उनके पुण्य चरित्र को सुनने से मलिन हृदय निर्मल होता है, भगवच्चरणों में रतिमति होती है और बिना किसी साधन के सब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

इस ग्रन्थ का विषय है श्रीश्रीनित्यानन्द प्रभु के विशेष कृपापात्र भक्तचूड़ामणि सिद्ध श्रीचरणदास बाबाजी महाशय का पुण्य चरित्र। उनका चरित्र अत्यन्त रहस्यमय और भावपूर्ण है। परम दयालु श्रीनिताइचाँद की कृपा से उन्होंने पात्र कुपात्र का विचार किये बिना जनसाधारण में प्रेम का प्रचार कर जीवों का महा उपकार किया है। उन्होंने स्वरचित नवभावपूर्ण पद पदावलियों के द्वारा बंगदेश और उड़ीसा में जो संकीर्तन की नयी तरंग उठाई थी, उसके घात प्रतिघात से आज भी वैष्णवों का हृदय स्पन्दित होता है। उनके अनुगत और कृपापात्र निजजन आज भी श्रीगुरुकृपा-बल से असाध्य साधन कर रहे हैं। उनके दर्शन मात्र से हृदय आनन्द से नाच उठता है। उनके मधुर कण्ठ से नाम कीर्तन श्रवण कर सर्वांग पुलकित हो उठता है। इन वैष्णव रत्नों से जिनका परिचय हुआ है, वे ही जानते हैं कि ये क्या वस्तु हैं, गुरु भक्ति का क्या बल है और गुरु-कृपा का क्या प्रभाव है। सिद्ध चरणदास बाबाजी महाशय के एक-एक शिष्य ध्रुव और प्रह्लाद हैं। महाजनगण लिख गये हैं कि श्रीगौरांगचरणाश्रित भक्तवृन्द देवताओं से भी श्रेष्ठ हैं क्योंकि गौरभक्तगण श्रीगौरांग के गुप्त और अमूल्य प्रेमधन के धनी हैं और देवगण नश्वर भोगैश्वर्य सुख के धनी हैं। गौरभक्त प्रेमानन्द में विभोर रहते हैं और देवगण ऐश्वर्यमद में चूर रहते हैं। परम पूज्यपाद प्रबोधानन्द सरस्वती ठाकुर ने लिखा है—

भ्रान्तं यत्र मुनीश्वरैवपि पुरा यस्मिन् क्षमामंडले
कस्यापि प्रविवेश नैव धिषणा यद्वेद नो वा शुकः।
यच्च क्वापि कृपामयेन च निजेऽप्युद्घाटितं शीरिणा
तस्मिन्नुज्ज्वल भक्तिवर्त्मनि सुखं खेलन्ति गौरप्रियाः।।

श्रीचैतन्यचन्द्रामृत 24 (पुरीदास महाशय संस्करण)

---

1. **अवतारानुचरितं हरेश्चास्यानुवर्तिनाम्।**
सतामीश कथाः प्रोक्ता नानाख्यानोपबृंहिताः।। भा. 2.10.51

अर्थात् जिस मधुर भक्तिपथ पर व्यास आदि मुनिगण भ्रान्त हो गये हैं, जिसमें पहले पृथ्वी-तलपर किसी की भी बुद्धि ने प्रवेश नहीं किया, जिससे शुकदेव भी अवगत न थे और जिसे कृपामय श्रीकृष्ण भगवान् ने अपने भक्तों को भी नहीं बताया, उस भक्तिपथ पर आज गौरभक्तवृन्द परमानन्दपूर्वक क्रीड़ा कर रहे हैं।

श्रीचरणदास बाबाजी महाशय गौरभक्तों में चूड़ामणि थे। वे अपने अनुगत शिष्यों को अपनी शक्तिदान कर भक्तिबल से बली कर गये हैं। इसलिए वे भी गौरभक्त चूड़ामणि हो गये हैं।

पाँच वर्ष पहले जब मुझे दूसरी बार श्रीवृन्दावनधाम में वास करने का सौभाग्य हुआ, तब केशीघाट पर सिद्ध चरणदास बाबाजी महाशय की वयो-ज्येष्ठा वैमात्रेय भगिनी परम वैष्णवी माधवी दासी से मेरा परिचय हुआ। उन्हीं के मुख से बाबाजी महाशय की अद्भुत बाल्य लीला कथा श्रवण कर उनके प्रति मेरा मन पहले आकृष्ट हुआ। हमलोग प्रायः सगोष्ठी उनके पास बैठकर उनकी पुण्यलीला कथा सुनकर आत्मशोधन किया करते थे। उसी समय मेरे मन में वासना जागी कि बाबाजी महाशय की लीला-कथा धारावाहिक रूप में यदि कोई लिपिबद्ध करदे, तो जगत् का बड़ा उपकार हो। तब से मेरे मन में यह चिन्ता बराबर बनी रहती। मैं यह भलीभाँति जानता था कि मुझसे यह कार्य नहीं हो सकता, क्योंकि बाबाजी महाशय को हमारे प्राकृत चक्षुओं के अन्तराल में वास करते बहुत दिन हो गये थे और मैं उनके जीवन चरित्र से बिलकुल परिचित न था। इस कार्य के लिए किसके पास जाऊँ और किससे कहूँ यह चिन्ता मेरे मन में प्रबल हो उठी।

कुछ दिन बाद गत वर्ष के अग्रहायण मास में मैं छुट्टी लेकर अपने घर नवद्वीपधाम गया हुआ था। उस समय सौभाग्य क्रम से बाबाजी महाशय की परम कृपापात्री उनके श्रीश्रीराधारमण के बगीचे के मठ की अधिकारिणी श्रीधाम नवद्वीप वासिनी गुरु-सेवा परायणा, गौरांगगतप्राण, परम भक्तिमती श्रीललितादासी से मेरा परिचय हुआ। बाबाजी महाशय के उपयुक्त शिष्य और उनके विशेष कृपापात्र, संकीर्तन निपुण परम प्रेमिक भक्तप्रवर रामदास बाबाजी महाशय भी उस समय वहाँ उपस्थित थे। कथा प्रसंग में चरणदास बाबाजी महाशय की चर्चा होने लगी। तब मैंने अपना मनोभाव प्रकट किया। उन लोगों ने बड़े आग्रह के साथ मेरा प्रस्ताव स्वीकार किया। बाबाजी महाशय के अनुगत उनके संगी साथी जिन्होंने अपने नेत्रों से उनकी पुण्य लीला देखी है, अब भी वर्तमान हैं। ललितादासी ने मुझसे आग्रह किया कि उनसे अपनी भाषा में बाबाजी महाशय की लीला कथा लिख भेजने का अनुरोध करूँ और कहा उन कथाओं का संग्रह हो जाने पर बाबाजी महाशय की पुण्यलीला-चरित्र-माला को ग्रन्थित करने का सम्पूर्ण भार आपके ऊपर रहा। मैंने वैष्णवादेश समादर पूर्वक शिरोधार्य किया। हृदय में आशा जागी कि श्रीगौरांगप्रभु मेरी मनोवाञ्छा पूर्ण करेंगे और मैंने मन ही मन उनके चरण कमलों में कोटिशः प्रणाम किया।

इसी बीच अपने कार्य के उपलक्ष्य में मुझे अजमेर जाना पड़ा। वहाँ जाकर सांसारिक विषयों में तल्लीन हो गया। परमार्थ विषय की चिन्ता करने का अवसर न रहा। अशान्त रूप से दिन बिता रहा था। उसी समय ललितादासी प्रेषित सिद्ध चरणदास बाबाजी महाशय के जीवन चरित्र सम्बन्धी एक-एक कर तीन हस्तलिपियाँ डाक द्वारा मुझे मिलीं। मैंने जहाँ तहाँ उनकी भाषा को अपनी रुचि के अनुसार सुधार कर उन्हें एक-एक कर लौटा दिया। इस पुण्य चरित्र-ग्रन्थ के प्रणयन में प्रधान उद्योगी परमगुरु भक्तिपरायण श्रीललितादासी के पत्र से ज्ञात हुआ कि वे, उनके गुरुभाई भक्तप्रवर रामदास बाबाजी महाशय और चरणदास बाबाजी महाशय के अनुगत अन्यान्य भक्त मेरे संशोधन को बहुत मनोनुकूल जानकर अति सन्तुष्ट हैं। यह जानकर मैंने अपने को सौभाग्यशाली समझा।

इस ग्रन्थ के पाठ से भक्त और अभक्त, बहिरंग और अन्तरंग सभी उपकृत होंगे। अभक्त भक्त होंगे और बहिरंग अन्तरंग। ग्रन्थ का प्रथम खण्ड ही अभी प्रकाशित हुआ है। मैं पहले लिख चुका हूँ कि बाबाजी महाशय का पुण्य चरित बहुत रहस्यपूर्ण है। अगले खण्डों में इस भक्ति रहस्य का क्रमशः उद्घाटन होगा। अभी तक वह

रहस्य उनके अपने अनुगत भक्तों में ही सीमित रहा है। अब परमदयालु निताइचाँद के आदेश से सर्वसाधारण में इसका प्रचार होगा। श्रीश्रीनित्यानन्द प्रभु ने बाबाजी महाशय को अपनी शक्ति प्रदान की थी। इस अलौकिक नित्यानन्द शक्ति के बल से ही वे पूर्ण रूप से युगधर्म नाम और प्रेम का प्रचार करने में समर्थ हुए थे।

(भज) निताइ गौर राधेश्याम।

(जप) हरे कृष्ण हरे राम।।

इस मधुर नाम कीर्तन की रचना चरणदास बाबाजी महाशय ने की थी और उन्होंने ही इसका प्रचार किया था। उनके अनुगत शिष्यगण इसका उन्मत्त भाव से कीर्तन करते-करते कीर्तनानन्द में किस प्रकार डूब जाते हैं इसे जिन्होंने एक बार देखा है वे ही जान सकते हैं। इस कीर्तन गीत में नित्यानन्द शक्ति पूर्ण रूप से निहित है और यह नाम-मन्त्र भजन शक्ति देने वाला है।

बाबाजी महाशय ने बहुत से पदों की रचना की है। वे कीर्तन के साथ ही साथ पदों की रचना करते जाते थे। यह शक्ति साधारण पदकर्ताओं में देखने में नहीं आती। नित्यानन्द की कृपा से उन्हें यह असाधारण शक्ति प्राप्त थी। उनके पदों का पाठ करने से ऐसा लगता है कि जैसे वे प्राचीन महाजनों की रचनाएँ हैं।

एक और बात कहकर इस भूमिका को समाप्त करूँगा। श्रीश्रीगौरांग महाप्रभु सर्वअवतार-सार और युगधर्म प्रचारक हैं। मृदंग-करताल के साथ मधुर हरिनाम कीर्तन के वे प्रवर्तक हैं। अन्नगत प्राण, अल्पायु, दुर्बल, कलिहत जीवों का एकमात्र अवलम्ब, मंगलमय श्रीमन्महाप्रभु-प्रचारित वह हरिनाम कीर्तन जीवों के दुर्भाग्य से लुप्त प्राय: होता जा रहा था। उसी समय सिद्ध चरणदास बाबाजी महाशय निताइचाँद की कृपाशक्ति से उस युगोचित हरिनाम संकीर्तन का फिर से प्रचार कर, स्वयं वैष्णव धर्म याजन कर और उसका प्रचार कर जगद्वासियों को शिक्षा प्रदान कर गये हैं। उनकी पुण्य चरित-सुधा का पानकर संसार-ताप-दग्ध नर-नारी देव-दुर्लभ प्रेम धन के धनी होकर परम शान्ति लाभ करें, यही भगवच्चरणों में मेरी आन्तरिक प्रार्थना है। इति,

प्रसिद्ध पदकर्ता **द्विज बलराम दास**
ठाकुरवंशीय कुलांगार श्रीवैष्णव-
कृपाप्रार्थी जीवाधम
श्रीहरिदास गोस्वामी

अजमेर (राजपूताना)
18, कार्तिक,
गौरांगाब्द 433

❋❋❋

क्रम

❋ ❋ ❋

उत्सर्ग-पत्र

* श्रील श्रीयुक्त नवद्वीप दादा *

माया जाले पड़ि, भूलिया आछिनु, संसार सागर माझे।
केशे धरि बले, आनिले तुलिया, करुणावारिधि तुमि।।
पुनः कृपा करि, श्रीगुरु चरण, कराइल दरशन।
छिल ना शकति, साधन करिया पाइते अमूल्यनिधि।।
परम रतन, भाव-विभूषने भूषिता करिया पुनः।
संपिले से पदे, जनमेर मत, मोहेन अधम जने।।
निशिदिशि कत, उपदेशामृत, संचित करिया हिया।
बुझाइया दिले, स्थावर जंगम गुरुर प्रकाश बलि।।
चिरदिन तरे, कृतज्ञतापाशे, बाँधा तुया श्रीचरणे।
कि धने तुषिब, भाबि दिवानिशि, कि दिये करिब सुखी।।
जे ते मते लिखि, तोमार प्रभुर अमिय चरित-सुधा।
श्रीकर-कमले, करिनु अर्पन, करि करपुटाञ्जलि।।
करिया ग्रहण, नवद्वीप दादा! आस्वादिया हओ सुखी।
एइ निवेदन, क्षमो अपराध, चरणे प्रणति तव।।

श्रीचरणाश्रिता : काचित्

❋ श्रीश्रीगुरवे नमः ❋

वन्दना

वन्देऽहं श्रीगुरोः श्रीयुतपदकमलं श्रीगुरून् वैष्णवांश्च
श्रीरूपं साग्रजातं सहगणरघुनाथान्वितं तं सजीवम्।
साद्वैतं सावधूतं परिजनसहितं कृष्णचैतन्यदेवं
श्रीराधाकृष्णपादान् सहगणललितान् श्रीविशाखान्वितांश्च।।

देव गजानन, विघ्न-विनाशन,
निवेदन करि पाय।
देवी सरस्वती, विशुद्धा भारती,
स्फूर्ति कर रसनाय।।
करुणा सागर, देव महेश्वर,
दयामयि भगवति।
शंकरी शंकर, करुणा वितर,
श्रीचरणे सदा नति।।
परान रतन, श्रीराधारमण,
निवेदन करि पाय।
जत लीलाखेला, तुँहु आचरिला,
जेन मोर स्मृति हय।।
दादा नवद्वीप, भकति अधिप,
कि आर बलिब आमि।
मोर मनःकथा, हृदयेरि व्यथा,
तुहुँ जान अन्तर्यामी।।
लीलार पाथार, तोमार दादार,
लीलागुण केबा जाने।
बड़ साध चिते, एक कना छुँते,
ताइ करि निवेदने।।
नाहि भाषाबोध, अतीव अबोध,
हृदय कठिन अति।
बालिकार कथा, शुनिया कि दादा,
हइबेक तव प्रीति।।
नाचिते ना जानि, तबु नाचाइछ,
करुणावारिधि तुमि।
लिखिते ना जानि, तबु लिखाइछ,
कि आर बलिब आमि।।
फलाफल किवा, गुणागुण जत,
इथे नाहिं मोर दाय।
जथाजथ जाहा, लिखाइओ ताहा,
एइ निवेदन पाय।।

जन्म

यशोहर जिले के नड़ाइल परगने में चित्रा नदी के पश्चिमी तीर पर महिषखोला नाम का एक गाँव है। उसकी प्राकृतिक शोभा देखकर लगता है मानो लक्ष्मी देवी स्वयं मूर्तिमती हो विराजमान है। अनेक जातियों के लोग वहाँ रहते हैं, पर दक्षिणराढ़ी कुलीन कायस्थों की बस्ती अधिक है। उनमें घोष वंश के लोग ही प्रतिष्ठित जमींदार है। ग्रामवासी सभी उन्हें 'बाबू' कहकर पुकारते हैं और उनके अनुगत हैं। शरद एवं बसन्त ऋतु में गाँव की शोभा और भी रमणीक हो जाती है। नदी के किनारे की सम्पूर्ण भूमि धान के खेतों से लहलहाने लगती है। उस समय की प्राकृतिक शोभा देख चित्तवृत्ति सहज ही किसी अनिर्वचनीय अप्राकृत राज्य में प्रवेश कर जाती है।

इसी गाँव में श्रीयुक्त मोहनचन्द्र घोष महाशय रहते थे। उस समय की प्रथा के अनुसार कुलीन व्यक्ति कई-कई विवाह किया करते थे। केवल अर्थ-लाभ अथवा भोग की कामना से ही ऐसा किया जाता रहा हो सो नहीं, दूसरों की कुलरक्षा के निमित्त भी कुलीन घरों के लोग ऐसा किया करते थे। बाबू मोहनचन्द्र घोष महाशय को भी इसी कारण एक-एक कर चार विवाह करने पड़े थे। पहली बार जोका ग्रामनिवासी पद्मचरण राय महाशय की कन्या से, दूसरी बार वनग्राम निवासी श्रीयुक्त रामतनु नाग चौधुरी महाशय की कन्या श्रीमती कनकसुन्दरी दासी से, तीसरी बार घोड़ाखाली निवासी श्रीयुक्त गौरचन्द्र सरकार महाशय की कन्या श्रीमती मुक्तासुन्दरी दासी से और चौथी बार वजीरपुर की एक कन्या से। मोहनचन्द्र घोष महाशय की प्रथम पत्नी से कोई सन्तान नहीं हुई। दूसरी पत्नी कनकसुन्दरी से चार पुत्र और एक कन्या, तीसरी मुक्तासुन्दरी से मोक्षदा सुन्दरी नाम की एक कन्या और चौथी से कुंजबिहारी नाम के एक पुत्र का जन्म हुआ।

घोष महाशय की द्वितीय पत्नी कनकसुन्दरी स्वभाव से देवी थीं। क्रोध उन्हें छूकर भी नहीं गया था। सदा घूँघट काढ़े रहती और अत्यन्त मृदु शब्दों में बातचीत करतीं। अन्तिम समय तक कभी उनके मुख से ऊँचे स्वर में कोई बोल नहीं सुनायी दिया। बराबरवाली स्त्रियों से भी वे मुख उठाकर बात न करतीं। जैसे इस युगकी थीं ही नहीं। स्वामी में उनकी अचल भक्ति थी। उनसे कुछ कहना होता तो उनके सामने हाथ जोड़कर निवेदन करतीं। दीन-दुखियों के लिए उनका हाथ खुला रहता। भिखारी के आते ही जो कुछ भी हाथ पड़ जाता उसे देकर अपने को कृतार्थ मानतीं पड़ोसी बालक- बालिकाएँ तो जैसे उनके प्राण थे। खाने-पीने के उत्तम पदार्थ उन्हें बुला-बुलाकर खिलातीं। उन्हीं से सदा आलाप करतीं।

अठारह वर्ष की अवस्था में कनकसुन्दरी देवी के पुत्र हुआ। उसके अन्नप्राशन संस्कार में घोष महाशय ने यथेष्ट धन व्यय किया। पुत्र का नाम रखा लालचाँद। चार वर्ष पीछे दूसरा पुत्र हुआ। उसका नाम विपिनबिहारी रखा। फिर तीन वर्ष पश्चात् बंगाब्द 1260 चैत्र मास की 29वीं तिथि संक्रान्ति शुक्ला त्रयोदशी शुभ वृहस्पतिवार के दिन उषा काल में तृतीय पुत्र का जन्म हुआ। घोष परिवार ने परम आनन्द के साथ पुत्र का जातक संस्कार मनाया।

चैत्र की 28वीं तिथि बुधवार संध्या साढ़े चार बजे आकाश में एक छोटा सा मेघ दिखायी दिया। देखते-देखते उसने बड़ा आकार धारण कर लिया। चारों ओर अन्धकार छा गया। दिन-रात का निर्णय करना कठिन हो गया। भयानक वृष्टि आरम्भ हो गयी। बहुत से वृक्ष गिर पड़े। सूतिकागृह के ऊपर सुपारी का पेड़ था। अकस्मात् उसके ऊपर बिजली गिरी और वह भस्म हो गया। आश्चर्य की बात कि वृक्ष के नीचे के सूतिकागृह अथवा उसके आस-पास के किसी वृक्ष या जीव की कोई हानि नहीं हुई। दूसरे दिन प्रातः वज्रपात की बात सुन बहुत-से ग्रामवासी वहाँ गये। देखा कि उसी वृक्ष के नीचेवाले सूतिकागृह में मोहन बाबू के एक सुन्दर पुत्र ने जन्म लिया है। यह देख सब अवाक् रह गये और आपस में कहने लगे, "यह बालक निश्चय ही कोई महापुरुष है, क्योंकि बहुत दिनों से इस देश में वृष्टि नहीं हुई थी, लोग जल के अभाव से बड़ा कष्ट पा रहे थे। कृषक लोग कृषि-कर्म बन्द कर हा-हा कर रहे थे। बालक ने जन्म लेने से पहले

ही जगत् को शीतल कर दिया। और देखो! कैसे आश्चर्य की बात है, वज्रपात से सुपारी का पेड़ भस्म हो गया पर सूतिकागृह का कोई अनिष्ट नहीं हुआ। यह केवल ईश्वर की कृपा है। जान पड़ता है कि इस वृक्ष पर किसी उपदेवता का अधिष्ठान था। इन्द्रदेव ने उसका विनाश कर बालक का मंगल किया। ईश्वर करे बालक चिरंजीवी हो।"

धीर-धीरे बहुत लोग इकट्ठे हो गये। उषा काल में जन्म होने के कारण कोई कहता पुत्र का जन्म रात्रि में हुआ और कोई कहता पहले दिन वज्रपात के समय हुआ। बालक ने भूमिष्ठ हो मातृस्तन पान नहीं किया। धातृ माता बालक के मुख में मातृस्तन देने की चेष्टा कर हार गयी। स्तन स्पर्श होते ही वह चीख मारकर रोने लगता। दो दिन तक उसके पेट में कुछ नहीं पहुँचा। सब लोग बहुत चिन्तित हुए। तीसरे दिन थोड़ा सा गाय का दूध गरम कर बड़ी कठिनाई से उसके मुख में डाला गया। इसी प्रकार छह दिन निकल गये। कितने ही ओझा और वैद्यों ने नवजात शिशु की इस व्याधि से प्रतिकार की चेष्टा की, पर कुछ न हुआ। बालक के जीवन की आशा जाती रही। सातवें दिन गाँव के ही एक हरि-भक्त; श्रीयुक्त रजनीकान्त भट्टाचार्य महाशय आये और बोले—"मेरा विश्वास है कि यह बालक परम भक्त है। हरि की पूजा कर उनका प्रसाद मुख में देने से निश्चय ही मातृ-स्तन पान करेगा।" मोहन बाबू और अन्य सभी लोगों ने ब्राह्मण के वाक्यों में विश्वास कर श्रीहरि-पूजा का आयोजन किया। भट्टाचार्य महाशय ने भक्तिपूर्वक दयामय भगवान् श्रीहरि की पूजा कर प्रसाद और चरणामृत बालक के मुख में दिया और चरणामृत मातृस्तन में लगवा दिया। बालक ने प्रसाद और चरणामृत ग्रहण कर लिया। तब भाग्यवती जननी ने जैसे ही पुत्र को गोद में ले स्तन मुख में दिया उसने परमानन्द पूर्वक स्तन-पान कर आत्मीय जनों को सुखी किया।

ग्रह-गणना और नामकरण

श्रीयुत मोहन बाबू ने ग्रहाचार्य द्वारा पुत्र की जन्म-कुण्डली बनवायी। प्रथम पुत्र लालचाँद और मध्यम पुत्र विपिनबिहारी की जन्मकुण्डली बनाकर ग्रहाचार्य को सन्तोष नहीं हुआ था, क्योंकि उन दोनों की आयु कम थी। इस बार कुण्डली बनाकर आचार्य ठाकुर को अपूर्व सन्तोष हुआ। वे मोहन बाबू से बोले—"आपका यह पुत्र बड़ा विद्वान्, दानी और भक्त होगा। इससे आपका वंश उज्ज्वल होगा। आप इसे साधारण बालक न जानें। लग्न में वृहस्पति का अधिष्ठान होने से यह निश्चय ही पण्डित और वक्ता होगा।"

सातवें मास में बालक का अन्नप्राशन और नामकरण संस्कार हुआ। देशाचार के अनुसार अन्नप्राशन के समय एक थाल में कुछ मिठाई, कई खिलौने, एक चण्डी (श्रीदुर्गा सप्तशती) और एक स्वर्णमुद्रा बालक की प्रवृत्ति-परीक्षा के लिए उसके सामने रखे गये। बालक ने हँसते-हँसते चण्डी को बायें हाथ से उठाकर छाती से लगा लिया, फिर मिष्ठान्न उठा-उठाकर उपस्थित महिलाओं को देने लगा। महिलायें कहने लगीं—"यह बालक परम भक्त और दाता-शिरोमणि होगा और मुक्त हस्त से लोगों को अन्न दान करेगा।" बालक का नाम रखा गया 'राइचरण'। दो वर्ष पीछे मोहन बाबू के एक और पुत्र का जन्म हुआ जिसका नाम रखा गया राखालदास। उसके भी दो वर्ष पीछे वसन्तकुमारी नाम की एक कन्या का जन्म हुआ।

पिता और भ्राता का स्वर्गवास

राइचरण जब पाँच वर्ष के थे उनके पिता मोहन बाबू आत्मीय जनों को शोक-सागर में निमग्न कर परलोक सिधार गये। उस समय उनके बड़े पुत्र की आयु केवल बारह वर्ष की थी। यथासमय पितृदेव की अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न हुई। बाबू मोहनचन्द्र घोष महाशय के एक कनिष्ठ सहोदर भ्राता ईश्वरचन्द्र घोष थे। वे तथा अन्य कुटुम्बी पितृहीन बालकों के अभिभावक होकर उनका पालन-पोषण करने लगे।

बालक राइचरण के पितृ-वियोग के दो वर्ष पीछे उनके मध्यम भ्राता विपिनबिहारी का दस वर्ष की अवस्था में और उसके दो वर्ष के भीतर ही उनके सबसे बड़े भाई लालचाँद का सोलह वर्ष की अवस्था में और सबसे छोटे भाई राखालदास का सात वर्ष की अवस्था में देहावसान हो गया।

पतिहीना एवं पुत्रशोकार्ता देवी कनकसुन्दरी का अपार स्नेह सम्पूर्ण रूप से राइचरण पर केन्द्रित हो गया। कोमलहृदया देवी कनकसुन्दरी की नयन-पुतली-रूप दो ही सन्तानें रह गयीं, नौ वर्ष के बालक राइचरण और पाँच वर्ष की बालिका बसन्तकुमारी। वे एक मुहूर्त को भी राइचरण को आँखों से ओझल न कर पातीं। राइचरण यदि कहीं चले जाते तो पागल की तरह इधर-उधर देखा करती।

छात्रावस्था

राइचरण नड़ाइल हाई स्कूल में पढ़ने लगे। संरक्षक न होने के कारण उन्हें गृह-कार्यों की देखभाल भी करनी पड़ती। उनकी प्रखर बुद्धि देख सब लोग आश्चर्यान्वित होते और उनके मधुर और सरल व्यवहार को देख मुग्ध होते। अत्यन्त चंचल होते हुए भी कक्षा में उनका स्थान प्रथम रहता।

बारह-तेरह वर्ष के बालक राइचरण उद्धत शिरोमणि होकर भी सदैव परहित में रत रहते। एक दिन स्कूल से आते समय एक विद्यार्थी को बिना छाते के देख अपना छाता उसे देकर स्वयं धूप में घर लौट आये। एक दिन किसी व्यक्ति को वस्त्र के अभाव में जाड़े में कष्ट पाते देख उसे अत्यन्त आग्रह के साथ अपने मूल्यवान गरम कपड़े दे सरदी में काँपते-काँपते घर लौटे। माँ से डरकर कहा, "माँ, मेरी अलवान कोई ले गया।"

माँ कनकसुन्दरी बड़ी सरल थीं। अधीर होकर कहने लगीं, "हाय! हाय! इस दुखिया के धन, अन्धी के नयन राइचरण के साथ ऐसी शत्रुता किसने की। माँ जगदम्बे! मेरा तो एकमात्र सहारा यही है, संसार में मेरा और कोई नहीं है, यही मेरे अंचल की निधि है। इसके ऊपर दया करो और इसके सम्मुख ही मुझे उठा लो। मुझे अब जीवित रहने की इच्छा नहीं" फिर क्षण भर में कहने लगीं? "नहीं नहीं, माँ! मैं यदि अभी चली गयी तो मेरा जीवन सर्वस्व राइचरण किसका मुख देखकर जियेगा? इस संसार में मेरा और कोई नहीं है, वैसे ही इसका भी कोई नहीं है। मेरा राइचरण कुछ और बड़ा हो जाय तब मुझे लेना माँ।"

राइचरण के साथी बालक ने हँस कर कहा, "नहीं माँ, राइचरण झूठ बोल रहा है। कल स्कूल से लौटते समय एक गरीब आदमी को ठण्ड में दु:खी देख अपना वस्त्र दे आया है।" तब देवी कनकसुन्दरी हँसकर बोलीं, "अच्छा, गरीब को दे आया। बहुत अच्छा किया, माँ जगदम्बा तुझे और देगी।" माता और पुत्र के इस व्यवहार को देख सभी अवाक् रह गये। जैसी दयामयी माँ, वैसा ही दानशील बेटा।

एक दिन राइचरण ने देखा कि एक बुड्ढा बाजार से लौटते समय ज्वराक्रान्त हो गया है। दाल-चावल आदि जो खरीदकर लाया है, उसे नहीं ले जा पा रहा और रास्ते में बैठा-बैठा रो रहा है। उसका बोझ उठाकर उन्होंने अपने सिर पर रख लिया और पकड़कर घर ले जाने लगे। वह भय और संकोच से कहने लगा, "बाबूजी, आप मेरा बोझा अपने सिरपर न रखें, मैं धोबी हूँ।" राइचरण ने उत्तर दिया, "तुम कोई भी हो, चलो तुम्हें घर पहुँचा दूँ।"

उसे पहुँचाकर घर लौटने में देर हुई, इसलिए स्नेहमयी माँ रोने लगीं। कुछ देर पीछे जब वे घर पहुँचे, माँ आनन्दाश्रु सहित उनका हाथ पकड़ पड़ोसियों के घर जा-जाकर कहने लगीं, "देखो, मेरा राइचरण आ गया।" माँ कनकसुन्दरी इतनी सरल थीं कि जब राइचरण कुछ रुपया/पैसा लाकर देते तो वह चिन्ता में डूब जातीं और कहने लगतीं, "अरे, मेरा राइचरण इतने रुपये लाया है, मैं इन्हें कहाँ रखूँ? इतने रुपयों का क्या करूँगी?" फिर कहतीं, "मेरा राइचरण राजा होगा; हाथी, घोड़ा, पालकी में बैठा करेगा।"

राइचरण बाल्यकाल से ही बड़े संगीत-प्रेमी थे। जहाँ कहीं गान होता था वहाँ अवश्य जाते। भिखारी वैष्णवों का गान उन्हें बहुत अच्छा लगता। पर किसी जवान भिखारी को देखते तो कहते, "बाबा, ऐसा अमूल्य जन्म क्यों व्यर्थ गँवाते हो? दूसरों का उपकार करो, मनुष्य जीवन सफल होगा। नौकरी भी करोगे तो दस आदमियों का प्रतिपालन कर सकोगे। दूसरों के मुखापेक्षी हो पेट के लिए द्वार-द्वार भिक्षा माँगने का क्या काम है?"

बालक होते हुए भी वे बड़ों की तरह सबको उपदेश किया करते। दूसरों की अनिष्ट-कामना तो कभी उनके मनमें उदय हुई ही नहीं। सदा प्राणि-मात्र के हित में रत रहते। किसी धर्म अथवा सम्प्रदाय के प्रति उनका कोई द्वेष-भाव न था। किसी की निन्दा कभी स्वप्न में भी न करते। जब पन्द्रह वर्ष के हुए तो देवी कनकसुन्दरी उनके विवाह के लिए उत्कण्ठित रहने लगीं। उन्हें मालूम हुआ तो माँ को सान्त्वना देते हुए बोले, "माँ, बसन्त विवाह योग्य हो गयी है। पहले उसके विवाह का उद्योग किया जाय, फिर देखा जायगा।"

इस पर माँ और कुछ न कह सकीं। बसन्तकुमारी की आयु बारह वर्ष से ऊपर हो गयी तब वे चिन्तित रहने लगीं।

यशोहर जिले के अन्तर्गत शिंगा निवासी श्रीयुक्त बाबू रजनीकान्त वसु महाशय के साथ बसन्तकुमारी का शुभ विवाह निश्चित हुआ। सन्तान के विवाह का सुख माँ कनकसुन्दरी को जीवन में प्रथम बार प्राप्त हुआ। चार पुत्रों की जननी होते हुए भी पुत्र-विवाह का आनन्द अनुभव करने का सौभाग्य उन्हें अभी तक नहीं हुआ था, क्योंकि उनके तीन पुत्र छोटी उम्र में ही चल बसे थे।

पुत्र-शोक-सन्तप्ता माँ कनकसुन्दरी आज कन्या के विवाहोत्सव में परमानन्दित हो सबको सादर सम्भाषण द्वारा सन्तुष्ट कर रही हैं। कह रही हैं, "तुम्हारा ही घर है, तुमलोग देख-भाल करो और खाओ-पियो। मैं तो पागल हूँ, कुछ करती हूँ, कुछ भूल जाती हूँ। राइचरण तुम्हारा बालक है, उसका और कोई नहीं है, तुम लोग उसका हाथ बटाओ और मैं देखकर नेत्र सफल करूँ। आज यदि मेरा लालचाँद (ज्येष्ठ पुत्र) होता तो मुझे कोई चिन्ता न होती।" इतना कहते-कहते रोने लगतीं। उस समय पड़ोसिनें उनका हाथ पकड़कर सान्त्वना देतीं और कहतीं, "हाय! आज तो तुम्हारे आनन्द का दिन है, आज आँसू कैसे? इससे अमंगल होगा। तुम्हारा राइचरण बना रहे, उसीसे सौ पुत्र होंगे।"

बहन के विवाह में राइचरण बाबू ने खूब खर्च किया। काका ईश्वरचन्द्र घोष तथा कुटुम्बी नीलमाधव घोष आदि के परामर्श से बड़े सुचारु रूप से विवाह कार्य सम्पन्न हो गया। बसन्तकुमारी को विदा करते समय माँ रोते-रोते अधीर हो गयीं और कहने लगीं, "आज मेरा घर सूना हो गया। राइचरण तो पागल है, एक घड़ी भी घर में नहीं रहता। मैं बसन्त को लेकर शान्ति से रह रही थी। बसन्त हमारे घर में मानो लक्ष्मी थी। मुझे कोई काम करने नहीं देती थी। अब मुझे कौन देखेगा और कौन राइचरण को स्कूल जाने से पहले रसोई बनाकर देगा।" उपस्थित महिलाएँ कहने लगीं, "थोड़े दिनों में राइचरण का विवाह हो जाएगा, घर में बहू आ जायगी। चिन्ता क्या है, बेटी घर में रखने की वस्तु तो है नहीं दूसरे का धन दूसरे को दे देने में ही मंगल है।"

राइचरण बाबू की ननसाल वनग्राम में थी। वे कभी-कभी अपनी सौतेली माँ के पितृगृह घोड़ाखाली जाया करते थे। उनकी एक सौतेली बहन मोक्षदासुन्दरी अपनी ननसाल घोड़ाखाली में रहती थी। वह विधवा और गरीब थी। राइचरण बाबू ने उसे अपने घर बुला लिया और घर का सारा भार उसे सौंप दिया। वह माँ कनकसुन्दरी देवी का दाहिना हाथ बन गयी।

विवाह

देखते-देखते दो वर्ष बीत गये। राइचरण बाबू ऊँचे कुल के लड़के थे। इसलिए अनेक स्थानों से उनकी मँगनी आने लगी। इतनी कम अवस्था में विवाह करने का उनका विचार न था, पर दुखिया माँ का कष्ट-निवारण करने हेतु उन्हें विवाह के लिए बाध्य होना पड़ा।

जयपाशा गाँव के श्रीयुक्त मंगलचन्द्र दत्त महाशय की कन्या स्वर्णमयी मानो साक्षात् स्वर्णमयी लक्ष्मी थीं। उनके रूप और गुणों को देख प्रतीत होता जैसे किसी देवबाला ने शापित हो मृत्युलोक में जनम लिया हो। उन्हीं के साथ राइचरण बाबू का विवाह सम्बन्ध निश्चित हुआ। दोनों ओर से विवाह की तैयारी होने लगीं। आज माँ कनकसुन्दरी के हृदय में आनन्द नहीं समाता। जिसे देखती हैं उसीको निमन्त्रण देती हैं। घर का भार देवी मोक्षदासुन्दरी के ऊपर है। वह गृहकार्य

सम्भालने में विशेष निपुण है। उसीने विवाह सम्बन्धी सम्पूर्ण सामग्री का संग्रह कर लिया है।

विवाह का दिन आ गया। एक दिन पहले बड़े समारोह के साथ बारात लड़की के घर जा पहुँची। दत्त महाशय ने भी बड़े समारोह एवं सम्मान के साथ कन्यादान सम्पन्न किया। यथासमय वर और वधु महिषखोला आ गये। देशाचार के अनुसार दोनों को घर में ले जाया गया। आनन्दमयी कनकसुन्दरी पुत्र और पुत्रवधु को गोद में बिठा सुखसागर में तैरने लगीं। वे पुत्र का मुख देखतीं और फिर वधु का, और कहतीं "आहा! इस स्वर्ण-प्रतिमा को मैं कहाँ रखूँ? यह मेरे हृदय की मणि और नेत्रों का आनन्द है। मुझे यह आशा न थी कि मेरे भाग्य में इतना सुख होगा। माँ जगदम्बा ने करुणा करके यह निधि दी है। यह बनी रहे। मेरी साध पूरी हुई। अब मेरा राइचरण कुशल से रहे।"

घर में कोई उत्सव होता तो राइचरण बाबू अन्नदान अवश्य करते। इसी को सबसे बड़ा दान मानते और कहा करते एक आदमी को पेट-भर नाना प्रकार के पदार्थ भोजन कराने से जो आनन्द होता है, वह उसे एक हजार रुपया देने से भी नहीं होता। उन्होंने विवाह के उपलक्ष्य में तीन-चार दिन तक स्थानीय लोगों को, बाहर से आये आत्मीय तथा कुटुम्बी जनों को बड़े आदर के साथ विविध प्रकार के उत्तम पदार्थों से परिपूर्ण भोजन कराया। दु:खी कंगाल आकण्ठ भोजन कर आपस में कहने लगे, "हम अनेक स्थानों पर खाते फिरते हैं, परन्तु इस बाबू के यहाँ जितना आदर मिलता है उतना और कहीं नहीं मिलता।"

यथा समय विवाहोत्सव पूर्ण हो गया। देवी स्वर्णमयी गृहलक्ष्मी बन गयीं। उनके आते ही घर की उन्नति होने लगी। वे अत्यन्त मृदुभाषिणी थीं। उन्होंने अपने स्वभाव से आत्मीयजनों तथा पड़ोस की स्त्रियों को मुग्ध कर दिया। बात-बात में उनका ही दृष्टान्त दिया जाने लगा। सासें पुत्रवधुओं को शिक्षा देते समय देवी स्वर्णमयी के चरित्र की चर्चा करने लगीं। थोड़े ही समय में वे सर्व-साधारण की प्रिय बन गयीं। राइचरण बाबू का घर जैसे स्वर्ग हो गया। देवी कनकसुन्दरी के आनन्द की सीमा न रही।

मातृदेवी का परलोक गमन

सुख का समय शीघ्र व्यतीत हो जाता है। बुढ़ापे के कारण देवी कनकसुन्दरी का शरीर जीर्ण होने लगा। वे प्राय: कहा करतीं, "माँ जगदम्बे, मेरे मन की सभी कामनाएँ पूरी हो गयीं; अब मुझे अपने चरणों में स्थान दो।" एक दिन अपने प्राणाधिक राइचरण को बुलाकर कहने लगीं, "बेटा, अब पहले की तरह खेल-कूद में रहने से काम न चलेगा, कुछ घर की देखभाल भी किया करो। और बेटा, अब मैं अधिक नहीं जिऊँगी। अन्तिम समय मुझे छोड़कर कहीं न जाना। उस समय मेरे मुख में गंगा-जल डालना और हरिनाम सुनाना।" राइचरण कुछ चिन्तित हुए और माँ को सान्त्वना देने लगे।

अनेक कारणों से राइचरण के पढ़ने-लिखने में बाधा पड़ने लगी। घर की चिन्ता ही उसमें प्रधान कारण थी। वे कभी-कभी अकेले बैठकर विचार करते और कभी अपने साथियों से कहते, "ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान् मुझे और अधिक पढ़ने नहीं देंगे। माताजी का शरीर क्षीण होता जा रहा है, अच्छे-अच्छे वैद्यों को दिखा चुका, पर कोई लाभ नहीं होता।"

कुछ ही दिन बाद देवी कनकसुन्दरी ने पुत्र और पुत्रवधु के मुखचन्द्र देखते-देखते और 'हरे राम नारायण ब्रह्म' कहते-कहते शरीर छोड़ दिया। मातृशोक से राइचरण और देवी स्वर्णमयी अधीर हो गये। राइचरण बाबू ने जाति एवं कुटुम्ब के लोगों के साथ मातृदेवी की अन्त्येष्टि क्रिया की। श्राद्ध कार्य भी बड़े समारोह के साथ किया। तीन-चार दिन तक बहुत से लोगों को आदरपूर्वक भोजन कराया। धीरे-धीरे एक वर्ष बीत गया। पिण्डदान श्राद्ध भी विधिवत् पूरा हुआ।

पुत्र लाभ, द्वितीय पत्नी का स्वर्गवास

शुभ समय में देवी स्वर्णमयी के पुत्र हुआ। पुत्र का रूप देख सब मुग्ध हो गये। राइचरण बाबू ने यथासमय उसका अन्नप्राशन संस्कार किया। इसी समय कुछ सज्जनों के अनुरोध से उन्होंने दक्षिणबाड़ी पदुमदी ग्रामनिवासी श्रीयुक्त कृष्णचरण दत्त महाशय की कन्या से विवाह किया। विवाह के दो वर्ष पीछे इस पत्नी का

देहान्त हो गया। धीरे-धीरे पुत्र की आयु पाँच वर्ष की हुई। उसके क्रिया-कलाप एवं बुद्धि-कौशल को देख राइचरण बाबू कहा करते, "यह बचेगा नहीं।"

बहन इस बात को सुन उन्हें फटकारते हुए कहतीं, "देख राइचरण, तू ऐसी अमंगलपूर्ण बात मुख से न निकाला कर।" छह वर्ष भी पूरे न होने पाये कि वह पुत्ररत्न माता-पिता और आत्मीय जनों को शोक-सागर में छोड़कर चल दिया। पुत्रशोक से माँ स्वर्णमयी और मोक्षदासुन्दरी का हृदय व्यथित हो गया। स्वर्णमयी को मालूम हो गया कि उनके और सन्तान होने की सम्भावना नहीं है। इसलिए स्वामी का एक और विवाह कराने के लिए वे बड़ी व्यग्र हुईं। किन्तु जब राइचरण किसी प्रकार सहमत न हुए तो बड़ी दु:खी हुईं। उन दिनों राइचरण बाबू के मुख से प्राय: यह पद सुनने में आता—

"आर हरिनाम बल्बि कबे?
भाविते शुनिते रे मन दिने-दिने दिन फुराबे।।
पद्मपत्रेर वारि जेमन तेमनि जीवेर जीवन।
ढलिया पड़िबे जखन, अमनि अंग अवश हबे।।
देहेर बाती एइ दुइ नयन, जाते कर दिक् दरशन।
प्रबल हइले काल पवन, ज्वाला बाति निबे जाबे।।
जदि बलो बन्धुजने नाम शुनाबे शेइ निदाने।
शुनते पाबिने पाबिने, अमनि कर्ण बधिर हबे।।"

—रे मन, और कब हरिनाम लेगा? सोच विचार करते-करते एक-एक कर दिन बीत जायेंगे। कमल के पत्ते पर पानी-जैसा यह जीवन ढलकर जब गिर पड़ेगा, शरीर बेकार हो जायेगा। देह की बत्तियों के समान ये दो नयन जिनसे तू देखता है, कालरूपी पवन के प्रबल होते ही इनकी लौ बुझ जायगी। यदि तू कहे कि बन्धु-बान्धव तुझे उस समय हरिनाम सुनायेंगे, तो जान ले कि तू सुन न पायेगा, तेरे कान बहरे हो जायेंगे।

तीसरा विवाह

राइचरण बाबू की आयु इस समय पच्चीस वर्ष के लगभग थी। मोक्षदा बीच-बीच में अपनी ननसाल घोड़ाखाली जाया करती थीं। उनके साथ उन्हें भी कभी-कभी वहाँ जाना पड़ता। इस गाँव के श्रीयुक्त बदनचन्द्र सरकार महाशय के कोई पुत्र न था, केवल तीन कन्याएँ थीं। उनका स्वभाव बड़ा सरल था। यथेष्ट सम्पत्ति होते हुए भी उन्हें उसमें कोई आसक्ति न थी। उनकी पत्नी शशिमुखी देवी कभी उनके अनासक्त रहने का कारण पूछतीं तो वे कहते, "कौन खायगा? किसी प्रकार हमारा समय पूरा हो जाय। तीनों बेटियों का विवाह कर मैं निश्चिन्त हो जाऊँ।" सरकार महाशय ने अपनी बड़ी कन्या का विवाह राइचरण बाबू के चाचा श्रीयुक्त ईश्वरचन्द्र घोष महाशय के बेटे बसन्तकुमार के साथ कर दिया। सरकार महाशय की हार्दिक इच्छा थी कि एक कन्या राइचरण बाबू को देकर उन्हें पूरी जमींदारी का मालिक बना दें। वे राइचरण बाबू से पुत्रवत् स्नेह करते थे। परन्तु अभी तक अपने मन का भाव उनके सामने प्रकाशित करने का साहस न कर सके थे। एक दिन बात ही बात में सरकार महाशय ने मोक्षदासुन्दरी के सामने यह प्रस्ताव रखा तो उन्होंने कोई उत्तर न दिया। देवी स्वर्णमयी से जब उन्होंने इसकी चर्चा की तो वे बड़ी प्रसन्न हुईं। उन्होंने पतिदेव से विशेष अनुरोध कर उनकी अनुमति ले ली और सरकार महाशय की द्वितीय कन्या श्रीमती त्रैलोक्यतारिणी के साथ उनका विवाह करा दिया।

सरकार महाशय ने राइचरण बाबू से कहा, "बेटा, मेरे पुत्र नहीं है, तुम्हीं मेरे पुत्र हो, मेरी सम्पूर्ण सम्पत्ति तुम्हारी है। तुम्हीं इसकी देखभाल करो। मैं आज से निश्चिन्त हो गया।" राइचरण बाबू भी ससुर की सम्पत्ति को अपनी समझ उसकी देख-भाल करने लगे।

मन्त्र-ग्रहण तथा घोड़ाखाली-वास

इन्हीं दिनों राइचरण बाबू ने खुलना जिले के अन्तर्गत मूलधर ग्राम-निवासी श्रीयुक्त योगेन्द्रनाथ भट्टाचार्य महाशय से दीक्षामन्त्र ग्रहण किया। महिषखोला से घोड़ाखाली जाने-आने में बड़ी असुविधा होती थी। इसलिए वे घोड़ाखाली में ही रहने लगे। वहाँ के कृषक इनके सरल व्यवहार से इतने सन्तुष्ट हुए कि जिस जमींदारी पर बहुत दिनों से जमींदारी का दखल नहीं हो रहा था उस पर भी स्वेच्छा से दखल देने लगे; यहाँ तक कि उनके घर फसल कट कर आती अथवा गाय बियाती तो अग्रभाग उन्हें देकर ही स्वयं उसका भोग करते।

गाँव में बहुत-सी जमीन बंजर पड़ी थी। राइचरण बाबू ने दस-पन्द्रह घर बूनो (संथाल लोगों) को बाहर से बुलाकर वहाँ बसा दिया। उनके द्वारा जंगल कटवाकर जमीन आबाद कर दी। छह सात महीने तक अपने खजाने से प्राय: अस्सी-नब्बे आदमियों के भोजनादि की व्यवस्था करते रहे और तीन वर्ष तक उस जमीन का कोई लगान नहीं लिया।

इस प्रकार उन्होंने समस्त बंजरभूमि को आबादकर जमींदारी की आमदानी बढ़ा दी।

जमींदारी कार्य में उनकी इस प्रकार की निपुणता देख हुगली जिले के श्रीरामपुरनिवासी जमींदार श्रीआशुतोष गोस्वामी महाशय ने विशेष अनुरोध के साथ उन्हें मामुदपुर की सदर कचहरी में नायबी पदपर नियुक्त कर दिया।

देवी त्रैलोक्यतारिणी के प्रथम गर्भ से एक कन्या का जन्म हुआ। कन्या को परम रूपवती देख सब लोग उसे 'फेणी' कह कर पुकारने लगे। भगवदिच्छा से चार-पाँच मास पीछे ही कन्या का देहान्त हो गया। उसके बाद देवी त्रैलोक्यतारिणी ने एक पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम हुआ फणिभूषण। पर विधाता का विधान कौन मेट सकता है। छ: सात महीने पीछे फणिभूषण का भी देहान्त हो गया।

राइचरण बाबू बड़े संगीत प्रेमी थे। घर रहते चाहे कचहरी में, सदैव संगीतरसानन्द में मग्न रहते। पर युवक, वैरागी, अथवा वैष्णवी को देख उन पर कटाक्ष करते। उनके रहते उस मुहल्ले में वैरागी वैष्णवी नहीं जाते थे। सबकी धारणा थी कि वे वैष्णव-द्वेषी हैं। पर उनके घर और कचहरी में प्राय: हरिसंकीर्तन हुआ करता था। वे हरिनाम संकीर्तन के बड़े प्रेमी थे। बालकपन से ही उन्हें किसी धर्म, सम्प्रदाय अथवा देवता से द्वेष करते नहीं देखा गया था। फिर यह वैष्णवद्वेष क्या और क्यों था, यह विचार का विषय है।

राइचरण बाबू ही क्यों, अनेक शिक्षित लोग भी वैष्णव नाम सुनते ही नाक-भौं सिकोड़ लेते हैं। 'वैष्णव' अथवा 'वैरागी' शब्द के प्रकृत अर्थ का लोप हो गया है। 'वैष्णव' का अर्थ चरित्रहीन दुराचारी और दकियानूसी समझा जाता है। यह बड़े दु:ख का विषय है कि गेरुआ वस्त्र धारण किये, माथे पर सिन्दूर का टीका लगाये, हाथ में त्रिशूल लिये, भैरव वेश में भैरवी साथ लेकर भ्रमण करने वाले एवं मद्य मांसादि सेवन करने वाले का लोग उतना अनादर नहीं करते, जितना छिन्न बहिर्वासधारी, मस्तक पर गोपीचन्दन अथवा गंगारज का तिलक लगाये, गले में तुलसी की माला धारण किये, दीनभाव से द्वार-द्वार पर भिक्षा माँगने वाले एवं मद्यमांसादि और स्त्री-संग से दूर रहने वाले व्यक्ति का करते हैं। इसका क्या कारण है?

चार सौ से अधिक वर्ष हुए प्रबल प्रतापी महाराज चक्रवर्ती कलिराज के शासन में जगत् को भक्ति-हीन, विष्णु-वैष्णव-द्वेषी, धर्मानुरागविहीन, हिंसा-द्वेषपूर्ण, बाह्याडम्बर-परायण देख परमदयालु पतितपावन श्रीभगवान् का चित्त दु:खी हुआ। अत: पूर्ण-पूर्णतम व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र ने निज सुखैश्वर्य परित्याग कर जीवों को प्रकृत एवं विशुद्ध भजन-मार्ग दिखाने के लिए श्रीधाम नवद्वीप में श्रीगौरांगरूप में अवतार लिया। श्रीगौरांग महाप्रभु ने निज-आचरित विशुद्ध भजन-पथ को पण्डित, ज्ञानी, मूर्ख, नीच, शूद्र आदि जनसाधारण को हृदयंगम कराने के लिए परम पण्डित श्रीसनातन गोस्वामी, श्रीरूपगोस्वामी, श्रीलोकनाथ गोस्वामी, श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी, श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी, श्रीजीव गोस्वामी, श्रीरघुनाथदास गोस्वामी प्रभृति अपने नित्य पार्षदगण को एवं अपने अभिन्न कलेवर श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु और निज जन श्रीहरिदास ठाकुर, श्रीनरहरि सरकार ठाकुर, श्रीगोविन्ददास एवं श्रीराय रामानन्द आदि को नियुक्त किया। उन्होंने ग्रन्थों की रचना, नाम संकीर्तन, लीला-रस-कीर्तन तथा निज आचरण और साधन-भजन द्वारा महाप्रभु के प्रकृत मनोगत भाव का जगत् में प्रचार करना आरम्भ किया। कलिपावनावतार श्रीगौरांगदेव की इच्छा से और कलिहत जीवों के दुर्भाग्य से थोड़े ही समय में वे सब अन्तर्धान हो गये।

अवसर पाकर पराजित कलिराज अपनी सेना सहित वैष्णव महात्माओं का कपटवेश धारण कर

जगह-जगह धर्म प्रचार के बहाने उपधर्मों का प्रचार कर अपनी इन्द्रियवृत्ति चरितार्थ करने लगे और श्रीमन्महाप्रभु के प्रकृत धर्मावलम्बीगण दुर्बल हो गये। पाप की प्रबलता के साथ अधर्म की अग्नि प्रबल रूप से प्रज्वलित होने लगी। विशेषत: अनभिज्ञ, मूर्ख, नीच और स्त्रियों में धर्मध्वजी भाव इस प्रकार प्रवेश करने लगा कि जगत् में सत् के स्थान पर असत्, धर्म के स्थान पर अधर्म और सतीत्व के स्थान पर व्यभिचार ने अधिकार जमा लिया। यह उप-धर्म भाव इतना प्रबल हो गया कि श्रीमन्महाप्रभु द्वारा प्रचारित काम-क्रोध-हिंसा-द्वेषादिरहित विशुद्ध धर्म-पथ भी लोगों की दृष्टि में कंटकपथ-सा प्रतीत होने लगा। उपधर्म-परायण लोगों जैसी वेशभूषा और हाव-भावादि देख विशुद्ध वैष्णवजनों को भी लोग अवज्ञा की दृष्टि से देखने लगे।

चरित्र के ऊपर राइचरण बाबू का विशेष लक्ष्य था। वे कहा करते थे कि चरित्रवान पुरुष धर्मादि आचरण-रहित होने पर भी लोक-पूज्य हैं, पर दुश्चरित्र व्यक्ति चाहे कितने भी धर्मपरायण क्यों न हों, त्याज्य हैं।

एक दिन वे मामुदपुर की कचहरी में कामकाज में लगे थे। खबर मिली कि उनके श्वशुर महाशय बहुत बीमार हैं। घर जाकर उन्हें देखते ही उन्होंने जान लिया कि इस बार उनकी जीवन रक्षा कठिन है। इस कारण उन्हें कई दिन वहीं ठहरना पड़ा। इसी बीच श्वशुर महाशय का देहान्त हो गया। उन्होंने उनके श्राद्धादि में खूब खर्च किया। श्वशुर महाशय के सामने वे सांसारिक कार्यों में अधिक मन नहीं लगाते थे। पर उनके बाद उन्हें बाध्य होकर इस ओर झुकना पड़ा। जमींदारी के कार्य में भी दिनोंदिन उनका सम्मान बढ़ने लगा।

देश-हितैषिता

परोपकार तो राइचरण बाबू का जन्म-सहचर था। परदु:ख में दु:खी होना उनका स्वभाव था। एक बार पौष मास में कचहरी से घोड़ाखाली आकर वे गाँव की तरफ घूमने गये। देखा कि जल के अभाव से लोग बड़े दु:खी हैं। प्रजा के दु:ख से उनके प्राण व्यथित हो गये। उसी समय एक प्रधान ग्रामवासी को बुलाकर कहने लगे, "देखो, एक तालाब खुदवाना होगा। मैं तो इस समय यहाँ ठहर नहीं सकूँगा। तुम्हारे ऊपर ही इस कार्य का सम्पूर्ण भार रहा। जो खर्च लगेगा, मैं दूँगा। तालाब ऐसा होना चाहिए कि गाँव के लोगों का जल-कष्ट दूर हो जाय।" उनके कहने की देर थी। एक अत्यन्त मनोहर तालाब तैयार हो गया। लोगों का जल-कष्ट दूर हो गया। तालाब के चारों ओर केले के वृक्ष और समय-समय के साग-सब्जी लगा दिये गये। प्रजा यथासम्भव उनका फल-भोग करने लगी।

गाँव के अधिकांश बालक बिना पढ़े रह जाते थे। राइचरण बाबू ने उनके माता-पिता से इसका कारण पूछा तो उन्होंने कहा, "बाबूजी, क्या करें? गाँव में कोई विद्यालय नहीं है, दूसरे गाँव में रखकर बच्चों को पढ़ाने की हम लोगों की सामर्थ्य नहीं है।" राइचरण बाबू ने अत्यन्त दु:खी होकर कहा, "आप लोगों ने अब तक क्यों नहीं कहा।" शीघ्र उन्होंने अपने निवासस्थान के बाहर के हिस्से में पाठशाला के लिए एक बड़ी इमारत बनवा नि:शुल्क पाठशाला स्थापित कर दी।

राइचरण बाबू ने अपने गाँव में ही ऐसे कार्य किये हों सो नहीं। जहाँ वे नौकरी करते थे वहाँ भी जलाशय-प्रतिष्ठा और विद्यालय-स्थापन आदि द्वारा जन-कल्याण के कार्य में सदा तत्पर रहते थे। रास, दोल, झूलनादि पर्वों के उपलक्ष में गाँव के ब्राह्मण, कायस्थ एवं अन्य लोगों को अत्यन्त आदरपूर्वक नाना प्रकार के भोजन कराया करते थे। बाहर के परिचित लोग उधर से गुजरते समय सदा उनके यहाँ आया करते थे। वे उन्हें आदरपूर्वक ठहराकर भोजनादि द्वारा परितृप्त करते थे, यदि कोई कहता "बाबूजी, इस प्रकार आपके यहाँ बार-बार आकर खाने में हमें बड़ी लज्जा आती है", तो वे कहते, "मैं बाजार से अन्न खरीदकर तो खाता नहीं, जमींदारी के धान का भात खाता हूँ। घर में धान भरा है, उसका हिसाब क्या? आपके संकोच का कोई कारण नहीं। यह तो हमारे परम सौभाग्य की बात है।" उनका इस प्रकार का उदार स्वभाव देख सभी परम सन्तुष्ट रहते। पास के किसी गाँव में किसी

सत्कार्य का उद्योग होता तो वहाँ के लोग उन्हें सबसे पहले लिवा ले जाते और उनके ही मतानुसार कार्य कर परमानन्द का अनुभव करते।

पदोन्नति और उदासीनता

श्रीआशुतोष गोस्वामी महाशय राइचरण बाबू से विशेष प्रेम करते थे। कोई कार्य उनसे परामर्श किये बिना नहीं करते थे। जमींदार महाशय ने उनके बुद्धि–कौशल, निरपेक्ष भाव और कार्य–दक्षता को देख उन्हें उन्नति देकर साँताल परगने का सुपरिन्टेंडेंट बना दिया। जमींदारी का काम सुचारु रूप से चलने लगा। पर अब न जाने क्यों राइचरण बाबू का मन उदास और संसार से विरक्त रहने लगा। प्रभु बन कर लोगों पर शासन करने की इच्छा न रही। जमींदारी का कार्य बड़ी उलझन का होता है, उसे एकदम छोड़ देना भी कठिन होता है। संसार–बन्धन काटना उनके लिए उतना कठिन न था, जितना जमींदारी से छुटकारा पाना। उन्होंने मन ही मन कुछ निश्चय कर लिया।

इसी समय उनके दीक्षागुरु श्रीयुक्त योगेन्द्रनाथ भट्टाचार्य महाशय आ पहुँचे। राइचरण बाबू ने उनका यथोचित सत्कार किया। गुरु शिष्य एकान्त में बैठ वार्तालाप करने लगे। शिष्य ने कहा, "गुरुदेव! कृपाकर मेरा हाथ देखिये।"

भट्टाचार्य महाशय ज्योतिष में बड़े पारंगत थे। वे सहर्ष शिष्य की हस्तरेखाएँ देखने लगे। देखते–देखते पूछा—"तुम्हारी जन्म–कुण्डली है?" शिष्य ने उत्तर दिया, "है प्रभु!" गुरुदेव ने जन्मकुण्डली मँगा हाथ से मिलाकर देखी और बोले, "बेटा राइचरण! तुम अधिक दिन गृहस्थ न रहोगे, शीघ्र गृहत्याग करोगे। सन्तान केवल एक कन्या रहेगी। शेष जीवन में तुम्हारी बड़ी उन्नत अवस्था होगी। अधिक क्या कहूँ? एक दिन ऐसा आयेगा कि बहुत–से लोग तुम्हारी पूजा करेंगे।"

राइचरण बाबू ने कहा, "गुरुदेव, इसी को आप उन्नत अवस्था कहते हैं? लोगों के पूजा करने से मुझे क्या लाभ होगा? आप आशीर्वाद कीजिये कि मैं सबसे छोटा हो सकूँ।" गुरुदेव ने उत्तर दिया, "बेटा! तुम्हारे शेष जीवन की उन्नति का वर्णन मैं भाषा द्वारा नहीं कर सकता। तुम्हारी हस्तरेखा और जन्मकुण्डली का फल विचार कर मैं अपने को धन्य मानता हूँ। और अधिक तुमसे क्या कहूँ?"

राइचरण–गुरुदेव, पुरश्चरण की विधि लिख दीजिये। गुरुदेव–बेटा, मैं तुम्हारे लिए सब कुछ कर सकता हूँ। तुम जो कहते हो, किये देता हूँ, पर देखो, मुझे भूल न जाना।

राइचरण–प्रभो! आप यह क्या कहते हैं? मैं किसी भी अवस्था में क्यों न रहूँ, आपकी कृपा का ही आश्रय लेकर रहूँगा। आप आशीर्वाद कीजिए कि मेरी मनोकामना पूर्ण हो।

नौकरी से उदासीनता

भट्टाचार्य महाशय ने पुरश्चरण की विधि लिख दी। कुछ दिन बाद राइचरण बाबू को साँतर कचहरी जाना पड़ा। इधर देवी त्रैलोक्यतारिणी के गर्भ से एक कन्या का जन्म हुआ। राइचरण बाबूकी उस समय की मानसिक स्थिति के अनुसार उसका नाम हरिदासी रखा गया।

इधर आशुबाबू की जमींदारी की पोयाइल कचहरी के इलाके में धान की खेती के कारण प्रजा में विद्रोह खड़ा हो गया। किसी कर्मचारी को उन पर शासन करने में समर्थ न जान आशु बाबू राइचरण बाबू से इस इलाके को काबू में लाने के लिए बार–बार अनुरोध करने लगे। उन्होंने उत्तर दिया, "मुझे नौकरी से छुट्टी दीजिये, मारकाट के बीच पड़ने की मेरी इच्छा नहीं है।" यह कह कर वे घोड़ाखाली चले गये।

आशु बाबू ने बड़े आग्रह से पत्र लिखा, "आपसे मैं और कुछ न कहूँगा। मेरा विशेष अनुरोध है कि आप एक बार आकर मुझसे मिलें।" राइचरण बाबू ने कोई उत्तर न दिया। आशु बाबू ने फिर इसी प्रकार का पत्र भेजा। उसके उत्तर में उन्होंने लिखा—"मुझे कामकाज करना अब अच्छा नहीं लगता। आप कृपा कर नौकरी से छुट्टी दें। फिर किसी समय आपके चरण–दर्शन करूँगा। इस समय मुझे क्षमा करें।"

आशु बाबू ने इस विपद के समय राइचरण बाबू को छोड़ना नहीं चाहा, क्योंकि उन्हें छोड़ और कोई

ऐसा व्यक्ति नहीं था, जो इस विपत्ति से उनकी रक्षा कर सकता। इसीलिए उन्हें लिवा लाने के लिए उन्होंने आदमियों के साथ एक घोड़ा भेजा। गाँव के लोग उनसे कहने लगे—"देखिये, इतने बड़े धनी-मानी व्यक्ति और ब्राह्मण के इतने बड़े आग्रह की अवहेलना करना उचित नहीं। आपका एक बार जाना ही ठीक है।"

राइचरण बाबू क्या करते? इच्छा न होते हुए भी चले गये। उनके पहुँचते ही आशु बाबू विशेष अनुरोध के साथ कहने लगे, "आपके बिना यह कार्य सिद्ध न होगा जितने भी आदमियों की और धन की आवश्यकता हो लेकर प्रजा के विद्रोह का दमन कर दखल करा दीजिये।"

आशु बाबू के अनुरोध से बाध्य हो उन्हें यह दुरूह कार्य स्वीकार करना पड़ा। उन्होंने आशु बाबू को समझा कर कहा, "देखिये, दो सौ कबूलियतों की लिखापढ़ी हो चुकी है, अब और अधिक अत्याचार करना उचित नहीं। मेरा विश्वास है कि इस कार्य का फल अच्छा न होगा।" पर आशु बाबू ने उनकी बात न मानी। इसलिए उन्हें पोयाइल कचहरी जाना पड़ा।

वहाँ पहुँचकर वे प्रजा के साथ नाना प्रकार से आनन्दभोग करने लगे। एक की जगह दस खर्च करने लगे। लोगों को खिलाना-पिलाना छोड़ और कोई काम ही न करते। यहाँ तक कि अपने घर से पैसा मंगवाकर अपना खर्च चलाते। वे सोचते थे कि किसी प्रकार आशु बाबू से छुटकारा मिल जाय। पर आशु बाबू इतने पर भी उन्हें छोड़ने को तैयार न थे।

तब उन्हें बाध्य होकर विद्रोही प्रजा का कच्चा धान कटवाने के लिए आदमी भेजने पड़े। ये लोग जब धान काटकर ला रहे थे, विद्रोहियों के आठ-नौ सौ आदमियों का एक दल वहाँ आया और लड़ाई के लिए उद्यत हुआ। एक कर्मचारी ने आकर कहा, "आपके पास केवल चार सौ आदमी हैं, विपक्षियों के आठ-नौ सौ हैं, तुरन्त कुछ व्यवस्था कीजिये।"

राइचरण बाबू झगड़े की जगह जाने को तैयार न थे। पर फिर सोचा कि धान कटवाकर प्रजा की हानि की गयी है। अब यदि लूट हो गयी तो जमींदार का अनिष्ट और अपमान भी होगा। बहुत सोच-विचार कर वे मौके पर गये और खाली बन्दूक चटकाने लगे। बन्दूक का शब्द सुन विद्रोही डरकर भाग गये।

धान जब कचहरी में लाया गया तो वे उसे देख रो-रोकर कहने लगे, "कैसा गर्हित कार्य हुआ। धान अच्छी तरह पका भी नहीं। कितने गरीब आदमियों की कष्ट की कमाई थी, कितने भूखे लोगों का पेट भरता इससे। यह सब नष्ट हो गया। लड़ाई होती तो आदमियों की जान भी जाती। ऐसा घृणित कार्य अब कभी न होगा।"

गृह-त्याग

दोपहर का समय है। घर में रसोई हो चुकी है। सब पदार्थ ज्यों-के-त्यों रखे हैं। राइचरण बाबू ने उनका स्पर्श भी नहीं किया। उनके हृदय में अनुताप की अग्नि धक-धक कर रही है। उसके ऊपर अनुराग का प्रबल पवन बह रहा है। संसार-रूपी शुष्क तृण अब कितनी देर ठहर सकेगा? वह क्षण-भर में जलकर राख हो गया। राइचरण बाबू को देश-काल की सुधि न रही। वे जिधर देखते हैं उधर ही शून्य जान पड़ता है। संसार एक विषम विषाद की छाया मात्र प्रतीत होता है। इसे छोड़ कहाँ जाना है, कुछ ठीक नहीं। किसी वस्तु की ओर लक्ष्य नहीं। केवल धर्मानुराग उनके उद्भ्रान्त मन को कहीं ले जाने को उद्यत है। बस वे बाहर निकल पड़े उस ज्ञानशून्य अवस्था में।

वह दिन बिना आहार के बीता। दूसरे दिन थोड़ा दूध लिया। अविश्रान्त भाव से तीन दिन पैदल चलकर गड़ई नदी के नयापाड़ा घाट पर पहुँचे। घाट का मल्लाह द्वारिक पाटनी उन्हें देखकर बोला, "बाबू जी, आपके मुख की ओर देख मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आप किसी से कहे-सुने बिना यहाँ से जा रहे हैं। आप यहाँ विश्राम करें, मैं पार न करूँगा। लोग मुझे दोष देंगे। जब से आप इस देश में आये, हम लोग बड़े सुखी हैं। आप चले जायेंगे तो हमारा भाग्य सो जायेगा। देश में अन्धकार हो जायेगा।" कहते-कहते द्वारिक रोने लगा।

राइचरण बाबू मीठे वाक्यों से समझा-बुझाकर अपने ओढ़ने का बहुमूल्य दुशाला उसे देते हुए बोले, "बेटा, मैं शीघ्र ही वापस आऊँगा, तू मुझे जल्दी पार

कर दे।" द्वारिक ने बिना कुछ कहे मन्त्रमुग्धवत् उनकी आज्ञा का पालन किया। नदी पार कर वे सोचने लगे, किधर जाऊँ। सोचा, पहले भवानीपुर में माँ काली के दर्शन करूँ और माँ जैसा आदेश करें वैसा करूँ।

यह निश्चय कर भवानीपुर की ओर चल पड़े। वहाँ माँ के दर्शन कर बहुत आनन्दित हुए। काली माता के सेवकों से उस पवित्र स्थान का वृत्तान्त पूछा। उन्होंने कहा, "यह नाटोर के राजा रामकृष्ण रायबहादुर का उपासना–स्थान है। उन्होंने यहीं उपासना कर सिद्धि–लाभ की थी। इस समय यह स्थान छोटी तरफ के राजा की देख–रेख में है। यहाँ अतिथि–सेवा होती है। माँ काली पंचमुण्डी आसन पर विराजमान हैं। सेवा में किसी प्रकार की त्रुटि हो जाने पर माँ अब भी उसका समाधान करती हैं। यह सुन राइचरण उस स्थान को पुरश्चरण के लिए उपयुक्त समझ कुछ दिन यहाँ ठहर गये।

पुरश्चरण

राइचरण बाबू का व्यवहार और धर्मानुराग देख भवानीपुर के लोग मुग्ध हो गये। उनकी प्रकृति, बुद्धि–वृत्ति और बातचीत से काली मन्दिर के कर्मचारी समझ गये कि वे किसी बड़े घर के व्यक्ति हैं इसीलिए उनका विशेष सम्मान करने लगे। धीरे–धीरे सूर्य–ग्रहण का समय निकट आया। उन्होंने कर्मचारियों से कहा, "मेरी बड़ी इच्छा है कि माँ के पास बैठकर मन्त्र–पुरश्चरण करूँ।" यह सुन सब एक स्वर से बोले, "इसमें हमें कोई आपत्ति नहीं। पर पंचमुण्डी सिद्ध आसन पर बैठने में बड़ी विपदाओं की आशंका है। बहुत-से साधु-संन्यासी इस आसन का सफलता–पूर्वक प्रयोग करने में असमर्थ रहे हैं।" वे बोले, "मुझे इस सिद्धासन पर बैठने की इच्छा नहीं है। माँ के निकट किसी भी स्थान पर बैठ जाऊँगा।" कर्मचारियों ने कहा, "आपकी जिस स्थान पर बैठने की इच्छा हो बैठें, हम लोग सब व्यवस्था कर देंगे।"

सूर्य–ग्रहण के दिन राइचरण बाबू स्नान कर भीगे कपड़ों से एक आसन पर बैठ मन्त्र पुरश्चरण करने लगे। पूर्णग्रास सूर्यग्रहण के समय पुरश्चरण सुचारु रूप से चलने लगा। लोगों ने देखा कि वे एकाएक मूर्च्छित होकर गिर पड़े हैं। उनके नेत्र चढ़े हैं, हाथ पर हाथ रखा है, मुख से शब्द नहीं निकल रहा, पर हृदय आनन्द से पूरित है। शरीर कभी पुलकित और कभी कम्पित हो रहा है।

थोड़ी देर में सूर्यदेव ग्रहमुक्त हो अपनी प्रखर किरणों का विस्तार करने लगे। उनका तेज सबको असह्य लगने लगा। उस समय राइचरण बाबू के शरीर से अत्यधिक पसीना निकल रहा था। यह देख सब लोग अवाक् रह गये। कोई कहता, "इनके शरीर का रक्त जल होकर निकल रहा है लगता है कि ये अब बचेंगे नहीं।" कोई कहता, "इनका शरीर बहुत स्थूल है, शरीर में मांस नहीं है, केवल जल ही जल है, वही निकल रहा है। शरीर का रंग एकदम काला हो गया है।"

थोड़ी देर में एक ब्राह्मण दूध लेकर आया और उसमें कपड़ा भिगोकर बूँद–बूँद उनके मुख में टपकाने लगा। बीस मिनट में जब दूध गले से नीचे उतरा तो उन्हें कुछ होश आया, उठने की सामर्थ्य न थी। तीन–चार आदमी पकड़ कर उन्हें ब्राह्मण के घर ले गये।

ब्राह्मण, ब्राह्मणी और उनकी कन्या उनकी सेवा करने लगे। दो दिन बाद जब वे कुछ स्वस्थ हुए तो ब्राह्मण ने कहा, "बेटा, तुम्हारे शरीर की अवस्था ठीक नहीं है। जब तक स्वस्थ न हो जाओ, तुम्हारा कहीं जाना उचित नहीं।" उन्होंने कहा, "बाबा, मैं क्या करूँ? माँ का जैसा आदेश हुआ है, वैसा ही करना होगा।"

ब्राह्मण ने पूछा, "बेटा, माँ का क्या आदेश हुआ है, क्या मैं जान सकता हूँ?" उन्होंने उत्तर दिया, "आप मेरे पिता के समान हैं, आपसे कहने में कोई आपत्ति नहीं। कुछ दिन पहले मैंने स्वप्न में देखा था कि माँ मुझसे कह रही हैं, 'तू अब घर में मत रह। भवानीपुर में मेरे पास बैठकर पुरश्चरण कर, तेरी मनोकामना पूरी होगी।' निद्रा–भंग होने पर मैं यह निश्चय न कर सका कि कौन सा भवानीपुर। तो मुझे बड़ी चिन्ता हुई। परन्तु गृह–त्याग करने की चिन्ता में डूब गया। इसी बीच गुरुदेव आ पहुँचे। उनसे पुरश्चरण की विधि मालूम कर ली। उन्होंने मेरा हाथ देखकर कहा, 'तुम्हें और अधिक संसार भोग नहीं करना होगा।' मैं माँ की

कृपा की प्रतीक्षा करने लगा। धीरे-धीरे करुणामयी माँ ने कृपा कर मेरा संसार-बन्धन काट दिया। घर से बाहर निकल कर सोचने लगा, कौन से भवानीपुर चलूँ-कलकत्ता भवानीपुर या बगुड़ा भवानीपुर? विचार करते-करते मन इधर ही खिंचा। यहाँ आकर माँ के दर्शन कर बड़ी शान्ति मिली। कई दिन से माँ ने अपने मन्दिर में ही रखा है। परसों सूर्यग्रहण के उपलक्ष्य में पुरश्चरण करते हुए"— इतना कहते-कहते उनका कण्ठ भर आया।

ब्राह्मण ने कहा,—"कहो बेटा, संकोच न करो। मुझसे कहने से तुम्हारा इष्ट छोड़ अनिष्ट नहीं होगा।" वे कहने लगे, "जप संख्या पूर्ण होने से कुछ पहले दयामयी माँ (कहते-कहते बालक की तरह रो पड़े; फिर चित्त स्थिर पर गद्‌गद कण्ठ से कहने लगे) मेरे मस्तक पर हाथ रख कहने लगीं, 'जा, तेरी सब साध पूरी हुई। सरयू तीर पर तुझे मनोमत गुरु मिलेंगे। उनसे तुझे अभीष्ट वस्तु प्राप्त होगी'। मैंने रोते-रोते कहा, 'माँ, उन्हें कैसे पहचानूँगा?' तब दयामयी माँ ने कहा, 'मैंने उनसे भी कह दिया है, वे तेरी बाट देख रहे हैं। उनकी आजानुलम्बित भुजाएँ हैं, आकर्ण विस्तृत नेत्र, गौरवर्ण का चार हाथ का शरीर है, नाम है—योगेन्द्रनाथ गोस्वामी। पहले खड़दह में रहते थे। गृहस्थाश्रम त्याग करने पर शंकरारण्य पुरी कहलाने लगे। वे बड़े विरक्त संन्यासी हैं। उन्होंने केवल एक शिष्य किया और प्रतिज्ञा की कि अब शिष्य न करेंगे। परन्तु मैंने तेरे लिए आदेश कर दिया है। उन्हें सामान्य मनुष्य न समझना। वे साक्षात् नित्यानन्द-अवतार हैं।' यह कहकर माँ अन्तर्धान हो गयीं। बस, मैं इतना ही जानता हूँ। उसके बाद यहाँ किस तरह आया सो माँ ही जानती हैं। आप वृद्ध ब्राह्मण हैं, गुरु तुल्य हैं, आशीर्वाद दीजिए, जिससे माँ ब्रह्ममयी के आदेश का पालन कर सकूँ।" ब्राह्मण ने राइचरण बाबू को प्रेमालिंगन किया। वह दिन इसी प्रकार आनन्द में बीत गया।

अयोध्यागमन और सिद्धगुरु लाभ

दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही राइचरण बाबू वहाँ से चल दिये। प्रगाढ़ अनुराग के कारण अत्यन्त कष्टकर मार्ग भी सुखकर प्रतीत होने लगा। दिन-रात चलकर यथा समय अयोध्या पहुँचे। मन में तरह-तरह के विचार उठ रहे थे—"वे इस अधम को पहचान सकेंगे? क्या वे मेरे ऊपर कृपा करेंगे? माँ ने तो कहा कि वे प्रतिज्ञा कर चुके हैं एक से अधिक शिष्य न करेंगे। क्या वे मेरे लिए अपनी प्रतिज्ञा भंग करेंगे? माँ जगदम्बा ने जिनकी इतनी प्रशंसा की है वे सामान्य साधु तो होंगे नहीं। क्या वे कृपा कर मुझे स्पर्श करेंगे?"

इसी प्रकार की चिन्ता करते-करते सरयूतीर पर पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही देखा कि माँ जगदम्बा द्वारा वर्णित वही महापुरुष सरयू स्नान कर एक कमण्डलु हाथ में लिये वन में प्रवेश कर रहे हैं। राइचरण बाबू को देखते ही मुस्कराते हुए बोले, "बेटा, मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था, आओ।" राइचरण बाबू झट महापुरुष के चरणों में गिर पड़े। महापुरुष ने भी कृपा-परवश हो उनके मस्तक पर चरण अर्पण किया और पकड़कर उन्हें अपने आश्रम ले गये।

आश्रम सरयू नदी के किनारे न होते हुए भी उससे अधिक दूर न था। स्थान निर्जन था। चारों ओर कई बड़े-बड़े वृक्ष थे, मध्य में एक कुटी, कुटी के सम्मुख तुलसी का थामला और एक ओर फूलों के छोटे-छोटे पौधे। आश्रम अपनी पवित्रता और रमणीकता में विष्णुक्षेत्र नैमिषारण्य-जैसा प्रतीत होता था। देखते ही मन मुग्ध हो जाता था। महापुरुष के आश्रम में पहुँचते ही एक शिष्य ने कमण्डलु में जल लाकर उनके चरण धो दिये। उन्होंने कुटी में प्रवेश किया और शिष्य ने कुटी के सामने आवरण कर दिया।

तब राइचरण बाबू ने सेवक महात्मा को प्रणाम किया। उन्होंने भी प्रतिनमस्कार किया और उन्हें ले जाकर पास ही एक वृक्ष के नीचे बैठ गये। सेवक कहने लगे, "कई दिन हुए, प्रभु ने आपकी चर्चा करते हुए आपकी शारीरिक अस्वस्थता की बात कही थी। इस समय आप स्वस्थ तो हैं?" राइचरण बाबू ने कहा, "जी हाँ, आपकी कृपा से शरीर स्वस्थ है। प्रभु ने मेरे सम्बन्ध में क्या कहा था?"

सेवक ने कहा, "गत सूर्यग्रहण के दिन प्रभु ध्यान-मग्न थे। ग्रहण के बाद बोले, 'आहा! कितना

भाग्यवान् है। कितना भाग्यवान्!" मैंने पूछा, "प्रभु, किसके भाग्य की प्रशंसा कर रहे हैं?" प्रभु ने किंचित् हँसते हुए कहा, "एक व्यक्ति ग्रहण में पुरश्चरण कर रहा था। उसकी इष्टदेवी माँ महामाया ने प्रसन्न होकर उसे दर्शन दिये और इस अधम के पास आने की आज्ञा दी। मेरे ऊपर भी अनुग्रह-निग्रह किया"। मैंने पूछा, "प्रभो, अनुग्रह-निग्रह क्या? मैं नहीं समझा।" प्रभु बोले, "क्या करूँ? मैंने प्रतिज्ञा की थी और शिष्य न करूँगा। माँ ने अनुग्रह-पूर्वक दर्शन देकर मुझे कृतार्थ किया, पर प्रतिज्ञा भंग करने का आदेश दिया। हाय-हाय! करुणामयी माँ जिस पर कृपा करती हैं, उसके लिए कितनी व्याकुल होती हैं। माँ योगमाया जिसके अनुकूल होती हैं, उसके सौभाग्य की सीमा नहीं रहती। इस सौभाग्यशाली व्यक्ति के द्वारा जगत् का बड़ा कल्याण होगा। इसीको कहते हैं, योगमाया के कृपाबल से लीला में प्रवेश।" मैंने पूछा, "प्रभो! वे भाग्यवान् व्यक्ति यहाँ कब आयेंगे?" प्रभु ने उत्तर दिया, "थोड़े ही दिनों में।"

यह बात सुन राइचरण बाबू प्रेमानन्द में आत्मविस्मृत हो अश्रु गद्गद कंठ से कहने लगे, "आहा! प्रभु कैसे पतितपावन हैं! मेरे जैसे पतित-पामर को केश पकड़ कर यहाँ ले आये। धन्य करुणा! बन्धुवर! आप आशीर्वाद कीजिये, जिससे प्रभु के चरणों में आश्रय पा सकूँ।" इसी तरह वार्तालाप में डेढ़ घण्टा बीत गया।

तदुपरान्त शिष्य व्यस्त भाव से कुटी के पास गये। थोड़ी देर में प्रभु ने कुटी में से जलद-गम्भीर स्वर से राइचरण बाबू को स्नान करके आने का आदेश किया। सुनते ही राइचरण बाबू आनन्दमग्न हो सरयू स्नान कर आये। तब प्रभु ने शिष्य को आदेश किया, "उसके तिलक कर दो।" शिष्य ने उन्हें द्वादश तिलक से विभूषित किया। तब महापुरुष ने कहा, "माला का क्या प्रबन्ध होगा?" शिष्य ने उत्तर दिया, "प्रभो! आपकी दी हुई आपके गले की तीन लड़ी कण्ठीमाला मेरे पास हैं।" प्रभु ने कुछ विस्मित होकर कहा, "आहा! योगमाया का कैसा योगायोग है। निताइचाँद ने इस कीटानुकीट को निमित्त बनाकर इसके ऊपर कैसी कृपा की है। अब मुझे करना ही क्या है? अच्छा, वही माला इसके गले में पहना दो।" शिष्य ने प्रफुल्लित हो वही कण्ठी राइचरण बाबू के गले में पहना दी।

गुरुदेव प्रेमानन्द में विभोर बैठे हैं। मुंदे हुए नेत्रों से अविरत अश्रु-वर्षा हो रही है। राइचरण बाबू भी रोते-रोते अधीर हो रहे हैं। कैसा अपूर्व दृश्य है। लीलामय की कैसी लीला है। पशु-पक्षी, तरु-लता, सभी मानो प्रेमानन्द में विभोर हैं। राइचरण बाबू रोते-रोते महापुरुष के चरणों पर गिर पड़े। उस आर्तनाद और क्रन्दनध्वनि को सुन मनुष्य की कौन कहे, पाषाण भी द्रवित होने लगे।

महापुरुष ने राइचरण बाबू को अपने सम्मुख बैठाकर प्रेम-मग्न हो कान में मन्त्र प्रदान किया। मन्त्र का एक-एक अक्षर कान में प्रवेश करते ही शत-शत मूर्ति धारण कर पुलकावली-रूप में बाहर निकल रहा है। क्षण-क्षण में ऐसा अद्भुत कम्प होता है कि महापुरुष का उन्हें सम्भालना कठिन हो रहा है। मन्त्र प्रदान कर गुरुदेव शिष्य को हृदय से लगा रो-रोकर व्याकुल हो रहे हैं। अपूर्व दृश्य है। गुरु-शिष्य परस्पर आलिंगन कर एक-दूसरे के नयन-जल से अभिषिक्त हो रहे हैं। दोनों के कलेवर कम्पित हो रहे हैं। दोनों कह रहे हैं, "आहा! आज मैं धन्य हुआ।"

गुरुदेव ने शिष्य को धीरे-धीरे अपने वक्षस्थल से अलग किया। शिष्य का शरीर काष्ठवत् निश्चल एवं निस्पन्द था। दूसरे शिष्य उच्च कण्ठ से "हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे" गान कर रहे थे और प्रेमाश्रु से उनका वक्षस्थल भीग रहा था। बहुत देर बाद नवीन शिष्य को बाह्य ज्ञान हुआ। तब गुरुदेव अपनी अमृतमयी वाणी से उन्हें उपदेश करने लगे।

श्रीगुरुदेव का उपदेश

गुरुदेव-बेटा, शान्त हो, प्राप्त वस्तु हृदय में धारण करो। एकाग्र मन से निताइचाँद को पुकारो।

शिष्य-प्रभो! अब तक सुखभोग में समय नष्ट करता रहा। निताइचाँद की कृपा कैसे प्राप्त करूँ? आपने कृपा कर चरणों में स्थान दिया है तो पथ-प्रदर्शन

करने की कृपा भी करें, जिससे इस अन्धे का कल्याण हो।

गुरुदेव—निन्दाशून्य हृदय तथा नम्र भाव से मनुष्य, पशु-पक्षी, कीट-पतंग, स्थावर-जंगम सबकी वन्दना करना। जगत् में दृश्यादृश्य जितने पदार्थ हैं, सबको कृष्ण का प्रकाश समझना। अपने को तृण से भी नीच और जीव-मात्र को ऊँचा समझ सबका सम्मान करना। जीवों पर दया, नाम में रुचि और वैष्णव-सेवा को ही प्रधान धर्म समझना।

शिष्य—प्रभो! एक सन्देह है, आज्ञा हो तो कहूँ।

गुरुदेव—बेटा, हृदय खोल कर कहो।

शिष्य—आपने आदेश किया कि जगत् की सभी वस्तुओं से अपने को हीन मानना और यह भी कहा कि जीव-मात्र पर दया करना। अपने को सबसे हीन मानकर सब पर दया कैसे की जा सकती है?

गुरुदेव—बड़ा सुन्दर प्रश्न है। सुनो, दया शब्द का जो साधारण अर्थ है, उसके अनुसार उत्तम हुए बिना दया नहीं बनती। परन्तु इस सम्बन्ध में जो महाप्रभु का वाक्य है, उसका यह उद्देश्य नहीं है, क्योंकि—

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः।।

एवम्—

जीवे दया नामे रुचि वैष्णव-सेवन,
इहा बड़ धर्म नाइ सुनो सनातन।

—ये दोनों ही वाक्य श्रीमन्महाप्रभु के श्रीमुख से निःसृत हैं। एक ही मुख से भिन्नार्थ सूचक दो बातें सम्भव नहीं। जीव पर दया करने से महाप्रभु का आशय अर्थादि दान अथवा राजा के निग्रह-अनुग्रह से नहीं है, दूसरे के दुःख से कातर हो उसके लिए भगवान् से प्रार्थना करने से है। पिता-माता अथवा गुरुदेव के पीड़ित या विपद्ग्रस्त होने पर सन्तान अथवा शिष्य उनके आरोग्य लाभ के लिए भगवान् से जो प्रार्थना करते हैं, उससे क्या सन्तान अथवा शिष्य में बड़प्पन का भाव आ जाता है? तुम्हें यदि कोई उत्तम वस्तु दे और तुम उसे थोड़ा-थोड़ा अपने गुरुजनों को बाँट दो, तो क्या उससे उनके गुरुत्व की हानि होती है और तुम्हारे अन्दर गुरुत्व का संचार होता है? निताइचाँद कृपाकर यदि तुम्हें नाम, सदुपदेश अथवा मन्त्र प्रदान करें और तुम वही औरों को प्रदान करो, तो क्या उससे तुम्हें दातृत्व अभिमान उत्पन्न होगा? 'दान' शब्द का अर्थ है—अपना अधिकार मिटाकर दूसरे का स्थापित करना। मेरे विचार से इसे 'दान' न कहकर 'ग्रहण' कहना उचित है। 'दया करना' न कह कर 'दया ग्रहण करना' कहना ठीक है, क्योंकि यदि कोई विषयी व्यक्ति विषय-ताप से तापित हो तुम्हारे पास आता है, तुम उसके दुःख में दुःखी हो भगवान् से प्रार्थना करते हो या सदुपदेश करते हो, इस भगवत् प्रार्थना अथवा भगवदालोचना का प्रवर्तक अथवा गुरु क्या वह विषयी व्यक्ति नहीं हुआ? वह यदि तुम्हारे पास न आता, तो क्या तुम इस प्रकार सदालाप करते और भगवान् का नाम लेते? दया की क्रिया शारीरिक नहीं, मानसिक है। मान लो कि एक व्यक्ति तुम्हारे पास मन्त्र ग्रहण करने आया है। तुमने उसे मन्त्र प्रदान किया और उसने उसी क्षण अपने मन-प्राण तुम्हें अर्पण कर दिये। तुम उसके उपास्य हो गये। अब तुम्हारा उसके प्रति क्या भाव होगा?

शिष्य—उसे शिष्य मानना होगा और अपने को उसका मन्त्र प्रदाता गुरु।

गुरुदेव—यह भूल होगी। तुम्हें अपनी आन्तरिक अवस्था का अनुसन्धान करके देखना होगा कि तुम शिष्य की धारणा के समान अधिकारी हो या नहीं। मन्त्र-प्रदान से वह तुम्हारा शिक्षा गुरु होगा, ऐसा मानना होगा। गुरु-निष्ठा, गुरु-वाक्य में दृढ़ विश्वास, गुरु में सर्वेश्वर बुद्धि और गुरु सेवा की शिक्षा देने के लिए ही निताइचाँद शिष्यरूप धारण कर तुम्हारे पास आये हैं, ऐसा समझना होगा। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति तुम्हें साधु जान भक्ति करता है, तो तुम्हें स्मरण रखना चाहिए कि 'मैं तो साधु महात्मा को देख पहले ही उनके दोष अनुसन्धान करने लगता हूँ और यह व्यक्ति मेरे जैसे घोर अविश्वासी पाषंडी को भी साधु मानता है। अतएव यही व्यक्ति सच्चा अदोषदर्शी है, यही सच्चा साधु है, यही मेरा शिक्षा गुरु है।' इसी प्रकार पशु-पक्षी, कीट-पतंगादि के भी गुण अनुसन्धान कर उनकी अपेक्षा

अपने को हीन मानना होगा। इसीलिए शास्त्र कहते हैं, **'तथापि गुरुर धर्म गौरववर्जित।'** इस प्रकार की विचारशक्ति के कारण ही तो मनुष्य सब प्राणियों में श्रेष्ठ है। इस ज्ञान से रहित वह पशु के समान है।

शिष्य—प्रभो, मैं कृतार्थ हुआ। पर एक सन्देह और रहा। 'वैष्णव-सेवा' का भाव मैं अच्छी तरह नहीं समझा। वैष्णव-सेवा में तो धनादि की आवश्यकता होती है। तो क्या गृह त्यागी को वैष्णव-सेवा के लिए भिक्षा द्वारा अर्थादि संचय करना चाहिए?

गुरुदेव—बेटा, जो जिस अवस्था में है, उसे उसी अवस्था में वैष्णव-सेवा करनी चाहिए। मान लो कि एक भिखारी वैष्णव भिक्षा-लब्ध अन्न भगवान् को भोग लगाकर प्रसाद पाने बैठे हैं। उसी समय एक क्षुधार्त वैष्णव आ पहुँचे। उस समय आधा भोजन भूखे को देकर आधा स्वयं ग्रहण करना उचित है। फिर भी यदि कोई आ जाये तो उस आधे में से आधा उसे देकर अवशिष्ट स्वयं पाने की विधि है। आश्रम-त्यागी को अनायास प्राप्त द्रव्य द्वारा ही वैष्णव सेवा करनी चाहिए। यदि कुछ भी न हो तो मीठे वाक्य, शीतल जल तथा तृणादि के आसन द्वारा ही सेवा करनी चाहिए—

तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सुनृता।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन।।

फिर सेवा शब्द का अर्थ भोजन कराना ही नहीं है। रोगी की शुश्रूषा, प्यासे को जल-दान, अन्धे को पथ-प्रदर्शन, मृत व्यक्ति का देह संस्कार, तापित का ताप-निवारण, अज्ञानी को ज्ञान-दान आदिक सत्कार्य भी सेवा के अन्तर्गत हैं।

शिष्य—मेरा सन्देह दूर हुआ। और क्या कर्तव्य है कृपा कर आदेश कीजिये।

गुरुदेव—शास्त्र, श्रीमूर्ति, नाम, मन्त्र, गुरु और वैष्णव को एक वस्तु जानो। भगवान् को निवेदित वस्तु को महाप्रसाद मानकर ग्रहण करो। महाप्रसाद स्पर्शदोष से नष्ट नहीं होता, ऐसा मानो। मन, वचन और कर्म से किसी प्राणी को उद्वेग न दो। सतर्क भाव से निरपेक्ष होकर भक्ति साधन करने का प्रयत्न करो। परापेक्षी रहते धर्म का ठीक-ठीक साधन नहीं हो सकता, यह याद रखो। जो कुछ मिल जाय उसीमें सन्तुष्ट रहो। मर्कट वैराग्य कर लोगों को धोखा देने की चेष्टा न करो। नाम-संकीर्तन ही एक मात्र अवलम्बनीय है। **कलिकाल में उच्च संकीर्तन-यज्ञ द्वारा ही कृष्णाराधना शास्त्रानुमोदित मार्ग है,** यह याद रखो।

इसी प्रकार का प्रसंग चलता रहा। इधर महापुरुष के सेवक कुछ चावल, आटा आदि भिक्षा कर लाये और रसोई का आयोजन करने लगे। महापुरुष मध्याह्न स्नान को निकले। राइचरण बाबू भी पूर्वोक्त सेवक के आदेशानुसार सेवाकार्य में सहयोग देने लगे। तीसरे पहर भोग-राग तैयार हो गया। महापुरुष ने आकर इष्टदेव को भोग निवेदन किया। कुछ समय बाद महापुरुष ने एक पेड़ के नीचे कुशासन पर बैठकर प्रसाद पाया। प्रसाद ग्रहण कर उन्होंने कुटी में प्रवेश किया। तत्पश्चात् दोनों शिष्यों ने परमानन्दपूर्वक प्रसाद पाया और स्थानादि लीप-पोंछकर गुरुदेव के निकट उपस्थित हुए।

महापुरुष ने श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत पाठ करने का आदेश किया। पूर्वोक्त सेवक ने विधिवत् श्रीग्रन्थ पाठ करना आरम्भ किया। श्रीचैतन्यचरितामृत पाठारम्भ होते ही महापुरुष के नेत्रों से अश्रुधार बहने लगी। हरिनाम की माला उनके हाथ में चल रही थी और अश्रुधार वक्षस्थल को सिंचित कर रही थी। सन्ध्याकाल उपस्थित देख सेवक ने ग्रन्थ पाठ बन्द कर दिया। तत्पश्चात् आरति-कीर्तन और आरति-कीर्तन के पश्चात् नाम-संकीर्तन हुआ।

महापुरुष की कुल सम्पत्ति थी—एक जोड़ा छोटी करताल, एक लोटा, दो कम्बल, दो काठ के कमण्डलु, डोर, कौपीन, बहिर्वास, एक प्रति 'मनः शिक्षा', एक नरोत्तम ठाकुर महाशय की 'प्रार्थना', एक 'प्रेमभक्ति चन्द्रिका' और 'श्रीचैतन्य-चरितामृत'।

कीर्तनादि में एक पहर रात्रि बीत गयी। कीर्तन समाप्त कर महापुरुष माला लेकर जप करने बैठ गये।

नव-भावोदय

तपोवन में भजनानन्दी साधु सोते बहुत कम हैं। अपने-अपने ध्यान जपादि में लीन रहते हैं। नवागत

शिष्य को भी आज नींद नहीं आ रही। उन्हें सभी कुछ नूतन, सभी मधुर, सभी प्रेममय प्रतीत हो रहा है। वृक्ष, लता, पशु, पक्षी जिस पर भी दृष्टि पड़ती है, वही मानो उनका मन हरण किये ले रहा है। कभी वे 'जय नित्यानन्द राम, जय गौर गुणधाम', कहकर नृत्य करते हैं, कभी आश्रम की पवित्र रज में लोट-पोट हो मानो चिरकाल की विषय-विषधर के दंशन की ज्वाला शान्त कर परम शान्तिसागर में तैरने लगते हैं। प्रेमानन्द में आत्मविस्मृत हो वे प्राणियों में ईश्वर दर्शन कर रहे हैं। प्रेममय श्रीगुरुदेव ने नवीन शिष्य को प्रेममदिरा इतनी पिला दी है कि वे उन्मत्त हो गये हैं। उन्हें दिन-रात का ज्ञान नहीं रहा। प्रेम में विभोर हो वे दृष्टि-पथ-गत स्थावर-जंगम मात्र को आलिंगन कर रहे हैं। कैसा मधुर दृश्य है और कैसा मधुर प्रेममय भाव! आज धीर, गम्भीर राइचरण बाबू प्रेम में पागल हो कभी हँसते, कभी रोते, कभी नृत्य करते और कभी अचैतन्य अवस्था में गिर पड़ते हैं। इसी प्रकार समस्त रात्रि बीत गयी। ब्रह्ममुहूर्त में महापुरुष सरयू स्नान कर आश्रम में आये। शिष्य ने पाद प्रक्षालन किया और गुरुदेव ने कुटी में प्रवेश किया। शिष्य कुटी के द्वार पर आवरण लगा स्नान आदि करने चले गये।

इसी बीच नवीन शिष्य स्नानादि कर आश्रम में आये। देखा कि गुरुदेव कुटी में ध्यान मग्न हैं। इस समय उनसे कुछ पूछने का अवकाश न देख वे चुपचाप एक वृक्ष के नीचे बैठ गुरुदत्त मन्त्र का जप करने लगे। कुछ देर बाद प्रथम शिष्य के आने पर उनसे पूछा, "दादा? मेरा तिलक होगा क्या?" सेवक ने कहा, "क्यों, आप स्वयं न कर सकेंगे?"

नवीन शिष्य ने कहा, "कर तो सकूँगा, पर करूँ किस चीज से?" प्रथम शिष्य ने अपनी तिलक-रज और दर्पणादि ला दिये। अपने हाथ से द्वादश तिलक धारण कर राइचरण बाबू दर्पण में अपना स्वरूप देख भाव में डूब गये। आनन्दाश्रु उनके वक्षस्थल को सिंचित करने लगे।

यथासमय कुटीर द्वार खुला। दोनों शिष्यों ने गुरुदेव को साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। श्रीगुरुदेव ने पाठ करने का आदेश किया। प्रथम शिष्य ने पहले नरोत्तम ठाकुर महाशय की 'प्रार्थना' फिर 'प्रेम-भक्तिचन्द्रिका' और फिर 'मन:शिक्षा' का पाठ किया। गुरु-शिष्य दोनों प्रेमानन्द में विभोर हो गये। दोनों का कण्ठ भर आया और नेत्रों से अश्रुधार बहने लगी। बीच-बीच में पाठ बन्द हो जाता। नवीन शिष्य कुछ दूर बैठ पाठ सुन रहे थे और फूट-फूट कर रो रहे थे। नेत्रों के जल से उनका वक्षस्थल सिंचित हो रहा था।

श्रीगुरुदेव का आदेश

पाठ समाप्त होने पर गुरुदेव बोले, "देखो बेटा, तुम्हें अधिक दिन यहाँ ठहने की आवश्यकता नहीं है। प्राप्त वस्तु को हृदय में धारण कर तुम्हें नगर-नगर और ग्राम-ग्राम में संकीर्तन करते हुए भ्रमण करना होगा।"

शिष्य—प्रभो, मेरी बड़ी इच्छा है कि समीप रहकर चरण सेवा करूँ।

गुरुदेव—बेटा, सेवा का अर्थ है सुख देना। मेरे पास रहकर मेरी सेवा करने से मैं जितना सुखी होऊँगा, जगत् में नाम प्रचार कर निताइचाँद का आदेश पालन करने से उससे कहीं अधिक सुखी होऊँगा। यदि इस अधम को तुम गुरु मान चुके हो तो गुरु-आज्ञा पालन करना ही तुम्हारा प्रधान कर्तव्य है। इस विषय में और कोई आपत्ति न कर और निताइचाँद का आदेशपालन कर मुझे कृतार्थ करो।

शिष्य—प्रभो, मैं तो सब प्रकार से अनभिज्ञ हूँ। अत: जैसा आदेश करेंगे मुझे वैसा ही करना होगा।

गुरुदेव—कल जिस प्रकार उपदेश किया है उसी प्रकार आचरण करना। किसी प्रकार का बन्धन अथवा वृत्ति ग्रहण न करना। विषयी के अन्न से जीविका निर्वाह न करना। भगवान् को निवेदन किये बिना कोई वस्तु ग्रहण न करना। सदैव सत्संग में रहना।

शिष्य—बाबा, सत्-असत्संग कैसे पहचानूँगा?

गुरुदेव—जगत् के सम्पूर्ण पदार्थों को सत् जानकर केवल अपने आप को असत् मानना। फिर भी संग करना हो तो स्वजातीय साधु का संग करना। अर्थात् जो निज गुरुपदिष्ट मार्ग के अनुयायी, विशुद्ध सदाचारी हों, वे गृहस्थ हों चाहे विरक्त, उन्हीं का संग करना।

इस प्रकार का संग न मिले तो सद्-ग्रन्थ पाठ, नाम और श्रीमूर्त्ति का संग करना।

शिष्य—कौन-कौन से ग्रन्थों का विशेष रूप से अवलम्बन करना चाहिये।

गुरुदेव—आदिपुरुष गोविन्द ने आदि कवि ब्रह्मा के हृदय में प्रेरणा कर वेदों की रचना की। क्रम से उपनिषद्, षड्दर्शन, अष्टादशपुराण, तन्त्र, संहिता, उपपुराणादि के रूप में उनका विस्तार हुआ। परन्तु ब्रह्मा ने देखा कि शास्त्रविधि का अत्यन्त विस्तार हो गया है। कलिहत जीव के लिए उसका मर्म समझना और पालन करना अत्यन्त कठिन होगा। इसलिए उन्होंने कृपा कर सम्पूर्ण शास्त्र-तत्व चार श्लोकों में प्रकाशित कर देवर्षि नारद को इसी चतु:श्लोकी श्रीमद्भागवत का अध्ययन कराया। देवर्षि नारद ने कृपाकर इन सर्व-शास्त्र-सार चार श्लोकों को सरल भाषा में सौ श्लोकों में वर्णन कर व्यासदेव को उपदेश किया। व्यासदेव ने नारदोक्त सौ श्लोंको से ही अठारह सहस्त्र श्लोकों के श्रीमद्भागवत ग्रन्थ की रचना की। पूज्यपाद श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी ने उसी परम उपादेय ग्रन्थराज श्रीमद्भागवत का मन्थन कर श्रीश्रीचैतन्य-चरितामृत ग्रन्थ का प्रणयन किया। अतएव साधन-क्षेत्र में सर्वशास्त्र-सार श्रीचैतन्यचरितामृत का ही आश्रय लेना सर्व श्रेष्ठ है।

परन्तु सर्वसाधारण को वैष्णवीय उपासनातत्व संक्षेप में समझाने के लिए नरोत्तमदास ठाकुर महाशय की 'प्रार्थना' और 'प्रेमभक्तिचन्द्रिका' इन दो श्रीग्रन्थों का आविर्भाव हुआ है। हमारे-जैसे दुर्बल, अन्नगतप्राण, अल्पायु, और विषयवासनायुक्त कलयुगी जीव के पास असंख्य शास्त्रग्रन्थ पढ़ने सुनने का समय नहीं है। अतएव सर्व-शास्त्र-सार 'श्रीचैतन्यचरितामृत', 'प्रेम-भक्ति-चन्द्रिका' 'प्रार्थना' एवं श्रीप्रेमानन्ददास ठाकुर की 'मन:शिक्षा' का पाठ करना।

शिष्य—प्रभो, पाठ करते-करते ग्रन्थ के किसी अंश का ठीक अर्थ अथवा मर्म समझ में न आये तो क्या करूँ? भिन्न-भिन्न लोग शास्त्रों का भिन्न-भिन्न अर्थ करते हैं। कौन-सा अर्थ ठीक है, यह कैसे जानूँ?

गुरुदेव—श्रीग्रन्थ पाठ करने से पहले ग्रन्थ के प्रतिपाद्य श्रीमन्महाप्रभु के श्रीचरण और ग्रन्थकर्ता को भक्तिपूर्वक स्मरण कर श्रीग्रन्थ-पाठ आरम्भ करना। श्रीमन्महाप्रभु स्वयं तुम्हारे हृदय में उदित होकर और शास्त्रार्थ समझाकर सब संशय दूर करेंगे।

इस प्रकार उपदेश देकर महापुरुष संध्याकृत्य करने चले गये। दूसरे शिष्य भिक्षा के लिए तैयार हुए। राइचरण बाबू उनसे बोले, "दादा, आपकी अनुमति हो तो मैं भी आपके साथ चलूँ, मेरी बड़ी इच्छा है।'' वे स्नेहपूर्वक बोले, ''नहीं भाई, तुम आश्रम में रहो, बड़ी धूप है, तुम्हें कष्ट होगा।"

नवीन शिष्य का हृदय इस समय नवानुरागपूर्ण था। उन्होंने जाने के लिए विशेष आग्रह किया। दोनों साथ-साथ नाम करते हुए भिक्षा को चल दिये। आवश्यकतानुकूल भिक्षा संग्रह होते ही आश्रम लौट पड़े। लौटते समय जब किसी ने भिक्षा देने को कहा तो बोले, "बाबा, आज आवश्यकतानुसार भिक्षा हो चुकी है, फिर किसी दिन लेंगे।"

आश्रम में आकर दोनों भोग का उद्योग करने लगे। तीसरे पहर ठाकुर का भोग तैयार हो गया। गुरुदेव ने ठाकुर को भोग लगाकर प्रसाद ग्रहण किया। दोनों शिष्य उनका अधरामृत पाकर कृतार्थ हुए। स्नानादि के पश्चात् पूर्ववत् गुरुदेव के आदेश से पाठ आरम्भ किया। सायंकाल तक पाठ हुआ। तत्पश्चात् आरति-कीर्तन और नाम-कीर्तन में एक पहर से अधिक रात्रि बीत गयी। महापुरुष माला-जप करने बैठ गये।

राइचरण बाबू के मालाजप के विषय में पूछने पर महापुरुष ने कहा, "तुम नवद्वीपधाम जाओ, समयानुसार श्रीमन्महाप्रभु तुम्हारे लिए जप की माला का प्रबन्ध कर देंगे। बाजार से माला खरीदने की आवश्यकता नहीं। जब कोई अपरिचित ही तुम्हें माला लाकर दे तो जप करना। उच्च स्वर से कीर्तन करना, जप से भी अधिक फल होगा।

जपतो हरिनामानि यत्फलं भुवि विश्रुतम्।
उच्चैः संकीर्तनादेव तस्माच्छतगुणं भवेत्।।

(भृगुसंहिता)

इस सम्बन्ध में बहुत-से शास्त्र-प्रमाण हैं। आचरण करने से प्रत्यक्ष अनुभव कर सकोगे।" इस प्रकार प्रसंग में रात बड़े आनन्द में बीत गयी।

तीर्थ-पर्यटन

ब्राह्म मुहूर्त में श्रीगुरुदेव ने नवीन शिष्य को आदेश दिया, "बेटा, सरयू स्नान कर अयोध्या के सब ठाकुरों का दर्शन करना और किसी मन्दिर में महाप्रसाद ग्रहण कर काशी, गया, मथुरा, वृन्दावन आदि तीर्थ भ्रमण करने चले जाना। फिर श्रीधाम नवद्वीप जाना। कुछ दिन वहाँ रहकर नीलाचल (पुरीधाम) जाना। निताइचाँद इस कार्य में तुम्हारी सहायता करेंगे। प्रभु की इच्छा होगी तो मुझसे फिर मिलोगे।"

नवीन शिष्य ने रोते-रोते गुरुदेव के चरणों में प्रणाम किया। गुरुदेव ने यथोचित आशीर्वाद कर उन्हें आलिंगन किया और अपनी शक्ति का उनमें संचार किया। तब राइचरण बाबू ने प्रेमोन्मत्त हो ज्येष्ठ गुरुभाई को दण्डवत् प्रणाम किया। उन्होंने भी प्रेमालिंगनपूर्वक 'गुरु आज्ञा सर्वथा पालनीय है' कहते हुए उन्हें विदा किया।

श्रीगुरुदेव के आदेश के अनुसार राइचरण बाबू अयोध्या के ठाकुर दर्शन करने गये। अकस्मात् उन्हें देखकर एक व्यक्ति बोला, "बाबा, यहाँ प्रसाद पाकर जाना।" राइचरण बाबू ने विस्मित हो मन ही मन कहा—"कृपामय गुरुदेव की कृपा की बलिहारी। उन्होंने मुझे मन्दिर में प्रसाद पाने का आदेश किया और साथ ही इनके हृदय में प्रेरणा की, धन्य करुणा!"

मन्दिर में प्रसाद पाकर राइचरण बाबू उन्मत्त की भाँति तीर्थ-भ्रमण को चल दिये। मार्ग में कोई आग्रह कर खाने को देता तो खा लेते। पर क्या खाते और क्या देखते-सुनते, इसकी कोई सुधि न रहती। नेत्र प्रेमानुराग के कारण लाल और डबडबाये रहते। उनका सुन्दर आनन्दमय मुखकमल देख ऐसा लगता कि वे इस राज्य में नहीं हैं। बातचीत सभी असंलग्न होती। मन का भाव मन में रहता और बाह्य-ज्ञान-रहित अवस्था में अनवरत चलते जाते।

अनेक तीर्थ भ्रमण कर श्रीवृन्दावन धाम पहुँचे। इस प्रेमधाम में आकर चित्त कुछ स्थिर हआ। यहाँ "श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत" 'मन:शिक्षा' और 'भक्तितत्वसार' ग्रन्थों का संग्रह किया और प्रतिदिन नियमपूर्वक इनका पाठ करने लगे। कुछ दिन व्यतीत होने पर अकस्मात् एक दिन श्रीधाम नवद्वीप के लिए इनके प्राण व्याकुल हो उठे और ये उस ओर चल पड़े। मार्ग में एक-एक दिन एक-एक युग के समान प्रतीत होने लगा। भगवदाकर्षण में अद्‌भुत शक्ति है। अनुराग की अधिकारता से दूर देश भी निकट हो जाता है। राइचरण बाबू अति शीघ्र श्रीधाम जा पहुँचे।

श्रीधाम नवद्वीप में राजेन बाबू

श्रीगुरुदेव ने राइचरण बाबू के हृदय में कौन-सा भाव भर दिया है, कौन-सी सुधा उड़ेल दी है, वे ही जानते हैं। आज श्रीधाम नवद्वीप पहुँच श्रीवास अंगन के घाट पर गंगास्नान कर तथा श्रीगौरांगलीला-स्थली दर्शन कर उनके मन में भाव-समुद्र की शत-शत तरंगें उठ रही हैं। वे प्रेमानन्द में विभोर गंगा-तीर पर बैठे थे। उसी समय जगदानन्ददास नामक एक बाबाजी आग्रह-पूर्वक उन्हें श्रीवास-अंगन के मुहल्ले में मणीपुर रोड पर अवस्थित अपने घर ले गये और एक छोटे कमरे में उनके रहने की व्यवस्था कर दी।

राइचरण बाबू गुरुदेव की कृपा से इस समय अत्यन्त स्थिर और गम्भीर हैं। किसी के साथ बातचीत नहीं करते। तीन बार गंगास्नान करते हैं और तीसरे पहर अपने हाथ से हविष्यान्न पका ठाकुर को भोग लगा कर पाते हैं। प्रेमानन्द में विभोर होकर दिन-रात नामकीर्तन करते हैं। श्रीगौरांगसुन्दर की नित्य-लीला-स्थली श्रीधाम नवद्वीप की नित्य नव-नव शोभा दर्शन कर भावावेश में रुदन करते हैं।

जगदानन्ददास बाबाजी महाशय ने एक दिन उनसे पूछा, "बेटा, नाम क्या है?" उन्होंने हाथ जोड़कर उत्तर दिया, "बाबा, आपके दासानुदास का नाम राइचरणदास है।" उदारचेता बाबाजी महाशय उस समय कुछ अन्यमनस्क थे। उन्होंने राइचरण की जगह 'राजेन' समझा। उसी समय से वे राइचरण बाबू को 'राजेन

बाबू' कहकर पुकारने लगे। राइचरण बाबू ने सोचा, ''आहा! माँ योगमाया का कैसा अपूर्व योगायोग है। सूर्यग्रहण उपलक्ष से देह की अवस्था में कुछ परिवर्तन हो जाने के कारण वैसे ही पूर्वपरिचित लोग इस समय मुझे पहचान नहीं पाते। दैवक्रम से इस प्रकार नाम बदल जाने से और भी न पहचान सकेंगे। माँ योगमाया की कृपा से और श्रीश्रीगुरुदेव के आग्रह से जो कुछ भी होता है मंगल के लिए होता है।" इसी समय राइचरण बाबू श्रीधाम नवद्वीप में 'राजेन बाबू' नाम से प्रसिद्ध हो गये। हम भी आगे उन्हें 'राजेन बाबू' ही कहेंगे।

राजेन बाबू की स्थिति में सम्पूर्ण परिवर्तन हो गया है। वे प्राय: कमरे के भीतर ही रहते है। प्रसाद पाकर एक बार गंगा किनारे जाते हैं, और हाथ-मुख धोकर आ जाते हैं। उनका कमरा बहुत छोटा है। पास में सामान भी बहुत कम है। श्रीग्रन्थरूपी भगवान् साथ हैं। जैसे ही श्रीग्रन्थ सम्मुख रख पाठ आरम्भ करते हैं, अनुरागभरे रक्त-वर्ण नेत्रों से प्रेमाश्रु बहने लगते हैं। श्रीग्रन्थ का एक-एक पद पढ़ते हैं और प्रेमाश्रुओं से वक्ष-स्थल भीग जाता है। कमरा रास्ते पर होने के कारण आते-जाते लोगों में से बहुत-से ठिठककर देखने लगते हैं। कोई कहता है, ''आहा! इनका शरीर ही मानो प्रेम से गढ़ा है। कंठस्वर भी कैसा मधुर है, रूप कैसा सुन्दर है। मालूम होता है किसी बड़े घर के लड़के हैं। बाप-भाई से लड़कर आ गये हैं।" कोई कहता है, "ऐसा लगता है कि इनकी स्त्री मर गयी है। इसलिए इतना वैराग्य है।"

इसी प्रकार लोग अपने-अपने भाव के अनुसार इनकी आलोचना करते हैं। पर ये प्रेमानन्द में विभोर है। कभी जी भरकर हँसते हैं, कभी बालक की तरह उच्चस्वर से रोते हैं। कौन क्या कहता है, इसका कोई ज्ञान नहीं। किसी दूसरी ओर लक्ष्य ही नहीं। इसी प्रकार दिन बीत रहे हैं। इस समय की इनकी अवस्था विचित्र है। मुख की ओर देखने से जान पड़ता है कि हर समय विचार मग्न हैं, मानो खोयी हुई किसी प्राणप्रिय वस्तु को हृदय में ढूँढ़ रहे हैं। नेत्र प्रेम से सजल और रक्तवर्ण हैं। कुछ कहना चाहते हैं, पर अपनी व्यथा का व्यथी न पाकर भीतर का भाव भीतर ही दबा जाते हैं। इस प्रकार की एक अकथनीय व्याधि से पीड़ित हो नवद्वीप में रह रहे हैं।

नवद्वीप बाबू से मिलन

इन्हीं दिनों इनके वासस्थान के निकट श्रीनृसिंहदेव के अखाड़े में एक युवक अपने देश के कुछ लोगों के साथ सपत्नीक श्रीधाम नवद्वीप दर्शन के लिए आकर ठहरे। नाम था श्रीनवद्वीपदास। श्रीधाम में आने के दो-तीन दिन बाद एक वैष्णवी ने इनसे कहा, "बेटा इस घर में एक बाबू आये हैं, वे किसी से बातचीत नहीं करते और न किसी के घर जाते हैं। हर समय ग्रन्थ पाठ करते रहते हैं और अश्रु बहाते रहते हैं। तुम यदि उनसे मिलना चाहो तो चलो।"

नवद्वीपदास नवयुवक और अनुरागी भक्त थे। उन्होंने कहा, "माँ, अनुग्रहपूर्वक एक बार उन्हें दिखाकर मुझे सदा के लिए कृतकृत्य कर दीजिए। उन महापुरुष के दर्शन के लिए मेरा मन बड़ा व्याकुल हो रहा है, शीघ्र चलिये।" वैष्णवी उन्हें राजेन बाबू के कमरे पर ले गयी।

नवद्वीपदास वहाँ पहुँचते ही आनन्द में विह्वल हो गये। नवानुराग में डूबे उस महापुरुष से आँखें चार होते ही दोनों चिरपरिचित बन्धुओं की तरह प्रेमानन्द में आत्महारा होकर रोदन करने लगे। उनके हृदय में आनन्द समा नहीं रहा था। नेत्रों से प्रेमाश्रुधारा निरन्तर बह रही थी। चुम्बकाकृष्ट जैसे दोनों प्रगाढ़ प्रेमालिंगन में बंध गये। प्रेमानन्द में उन्मत्त हो भूमि पर लोटने लगे। थोड़ी देर में 'जय निताइ!' कहकर खड़े हुए और वेग से नृत्य करते-करते और ताली बजा-बजाकर—

भज गौरांग कह गौरांग, लह गौरांगेर नाम रे।
जे जन गौरांग भजे, से हय आमार प्राण रे।।

—कीर्तन करते-करते लथपथ वेश में श्रीमहाप्रभु के मन्दिर की ओर चल पड़े। दोपहर पीछे परिक्रमा कर परिश्रान्त हो धूल-धूसरित अंग से दोनों घर लौट आये। स्नान कर राजेन बाबू ने अपने हाथ से रसोई पकाई और ठाकुर को भोग लगाकर नवद्वीप बाबू सहित प्रसाद ग्रहण किया। तत्पश्चात् दोनों ग्रन्थ पढ़ने बैठ गये।

पाठ आरम्भ होते ही दोनों के हृदय में प्रेमतरंग उठने लगी, अश्रु कम्प पुलक होने लगे। श्रीश्रीचैतन्य-चरितामृत के एक-एक पयार के पाठ के साथ कभी एक-दूसरे के मुख की ओर देख प्रेमानन्द में रो-रोकर व्याकुल होते और कभी हँसते-हँसते एक दूसरे के ऊपर ढुलक जाते। हँसी और क्रन्दन के इस अपूर्व सम्मेलन में दोनों एक प्राण दो देह हो रहे थे। कैसा अपूर्व मिलन था, कैसा शुभ दर्शन! एक दिन के परिचय में ही चिरजीवन के लिए एक-दूसरे से बँध गये थे।

एक दिन प्रातःकाल अकस्मात् नवद्वीप बाबू एक जोड़ा बहुमूल्य जूता, सोने के बटन सहित सुन्दर कुरता और काले किनारे की बहुत अच्छी धोती लेकर आये और हँसते-हँसते राजेन बाबू से बोले, "दादा, आज आपको एक बार बाबू वेष में देखने की मेरी बड़ी इच्छा है। आपको ये चीजें अंगीकार करनी होंगी।" न जाने क्या विचार कर महावैरागी राजेनबाबू ने वह प्रीति का उपहार हाथ में लिया और न जाने किसकी भोग-लालसा मिटाने के लिए डबडबाते नेत्र मूँदकर किसी को समर्पण कर स्वयं धारण किया।

कल जिसे लोगों ने रास्ते में लोट-पोट होते धूल-धूसरित देखा था, आज वही बड़े बाबू बने हैं। वेश बनाने से क्या होता है, भस्माच्छादित अग्नि की तरह अनुराग का प्राण किसी आवरण को नहीं मानता, प्रेम का स्रोत किसी बाँध से नहीं रुकता। श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन करते ही दोनों अद्भुत नृत्य करने लगे। ताली बजाकर नाम-कीर्तन करते-करते विभोर हो भूमि पर लोटने लगे। लोग देखकर अवाक्! कुछ देर बाद दोनों स्थिर हो अपने निवास स्थान को लौट आये।

एक रात नवद्वीप बाबू अपनी स्त्री से बोले, "तुम संगी-साथियों को लेकर देश को जाओ, मैं अब घर नहीं जाऊँगा।" उनके मुख से अकस्मात् ऐसी बात सुन, आश्चर्यचकित होकर वे कहने लगीं, 'आपकी इतनी बड़ी नौकरी है, इतनी जिम्मेदारी है, किसी से आप कह सुनकर नहीं आये हैं, यह आप क्या कर रहे हैं?" सबने मिलकर नवद्वीप बाबू से विशेष आग्रह किया। तब इच्छा न होते हुए भी लाचार हो राजेन बाबू से एक सप्ताह के लिए विदा लेकर देश को चले गये। परन्तु मन-प्राण राजेन बाबू के पास ही पड़े रहे। विदा के समय वह करुण दृश्य किसी ने नहीं देखा, क्योंकि नवद्वीप बाबू ने यह विषम कार्य गुप्त रूप से ही समाधान किया।

श्रीश्रीमहाप्रभु-दर्शन

नवद्वीप बाबू को विदा कर राजेन बाबू फिर पूर्ववत् गम्भीर हो गये। उनका मुख मलिन और हृदय दुःखी था। मानो कोई मूल्यवान वस्तु किसी ने उनसे छीन ली हो। एक दिन बीता, दो दिन बीते। तीसरे दिन जामा-जूता पहन श्रीश्रीमहाप्रभु के दर्शन को गये। वहाँ कीर्तन हो रहा था। राजेन बाबू कीर्तन सुनने बैठे।

थोड़ी देर में उठकर वहाँ आये, जहाँ जूते रखे थे और फिर जाकर कीर्तन में बैठ गये। एक बार और ऐसे ही किया, पर तीसरी बार धैर्य खो बैठे। सामने एक युवक को देखकर बोले, "भाई, यह जूता तुम पहन लो।" युवक ने विस्मित हो कहा "क्या? मैं आपका जूता क्यों पहन लूँ?" पर बारबार अनुरोध करने पर उसने जूता पहन लिया। तब उन्होंने सोने के बटनों सहित कुरता भी शरीर से उतार कर बड़े आग्रह के साथ उसे पहना दिया और बोले, "आह! अब शान्ति मिली। हाय प्रभो! विषय-विष कितना तीव्र है, कितना दुःखदायी है। अब तक यह जूता-जामारूपी विषय-विष मुझे उद्वेग दे रहा था। दयामय प्रभो, तुमने मेरा उद्वेग दूर कर दिया। धन्य तुम्हारी करुणा!" फिर प्रसन्न हो निश्चिन्त भाव से कीर्तन सुनने बैठ गये।

बहुत देर तक निरुद्वेग हो कीर्तनानन्द भोग करते रहे। कीर्तन के पश्चात् नंगे बदन और नंगे पैर घर लौट आये। प्रफुल्ल चित्त से स्नानादि कर ठाकुर को भोग लगाकर प्रसाद पाया। तत्पश्चात् नियमानुसार ग्रन्थ पाठ करने बैठ गये।

इधर नवद्वीप बाबू अपनी नौकरी से स्तीफा दे पूर्व प्रतिज्ञानुसार सातवें दिन नवद्वीप आकर राजेन बाबू से मिले। राजेन बाबू खोई निधि पाकर आनन्द में रो पड़े। दोनों के मन में फिर पूर्ववत् आनन्द का स्रोत बढ़ने लगा। दोनों ही प्रेमानन्द में मग्न हो गये।

दो-एक दिन पीछे दो और अनुरागी युवक उनके साथ आ मिले। एक गौर वर्ण, नाम कृष्णगोविन्द, दूसरा श्याम वर्ण, नाम रासमोहन। भेक के बाद रासमोहन का नाम राधाचरणदास हुआ। राधाकुण्ड में शरीर छोड़ा।

राजेन बाबू बड़े ही सख्यभावप्रिय थे मधुमय भ्रातृभाव मानो उनका सहजात था। जहाँ-कहीं जिस-किसी से भी मिलते, उसे 'दादा' या भाई कहकर पुकारते। यदि कोई गुरुबुद्धि से भी उनके दर्शन करने जाता, तो वह उनसे दादा के अतिरिक्त और कोई सम्बन्ध स्थापित न कर पाता। इसलिए नवद्वीप बाबू और नवागत दोनों युवकों के वे सहज में दादा (बड़े भाई) बन गये। उन्हें 'दादा' कह कर उन लोगों को जितना सुख होता, उतना और किसी सम्बोधन से न होता। राजेन बाबू भी उन्हें भाई कहते-कहते आत्महारा हो जाते।

एक दिन प्रातःकाल सब मिलकर एक नया गीत गाते ठाकुर-दर्शन को निकले। गीत राजेन बाबू की अपनी रचना थी। पद रचना की उनमें अपूर्व शक्ति थी। तत्काल पद बनाकर गाने लगते थे। कागज-कलम की भी आवश्यकता नहीं होती थी। उनका स्वरचित गीत इस प्रकार था—

निताइ गौरांग, निताइ गौरांग,
निताइ गौरांग गदाधर।
जय शची नन्दन, जग जीव तारण,
(कलि) कलुष नाशन अवतार।।
जय हाड़ाइ नन्दन, पद्मावती जीवन,
(कर) प्रेम परम रतन परचार।
जय श्रीसीतानाथ, श्रीअच्युत तात,
(निताई) गौर आनि कर प्रेमे हुँहुंकार।।
जय माधवाचार्य नन्दन, रत्नावती जीवन,
(जीवे) दास्य सेवा दिये कर अंगीकार।
जय श्रीवासादि भक्तगण, करु नाम संकीर्तन,
पूर्व राग गाओ स्वरूप दामोदर।।
गौरीदास आदि करि, खंडवासी नरहरि,
हरिदास चरण तरी देओ एइबार।
जीवेर लागिये, संन्यास करिये,
राधाभाव कैले गोरा अंगीकार।।
जीवेर लागिये, नीलाचले बसिये,
(राधा) प्रेम करल गोरा परचार।
स्थावर जंगम आदि, हरिबले निरवधि,
गोरा कैला लीला एकि चमत्कार।।
बालक वृद्ध पुरुष नारी, भज निताइ गौरहरि,
(भव) पारे जेते चरन तरी कर सार।
दीनहीन दासे बले, रेखो निताइ चरण तले,
भजन विहीन जने कर पार।।

यही अमूल्य पदरत्न-कीर्तन करते-करते चले जा रहे थे। चारों ओर लोगों की भीड़ थी। सभी भाव में विभोर थे। राजेन बाबू को बाह्यज्ञान न था। पद के एक-एक नवीन चरण की स्फूर्ति होती थी, और साथ-साथ आनन्द-सिन्धु उमड़कर पतितपामर पर्यन्त को बहा ले जाता था। नवद्वीप में आज बहुत दिनों बाद अपूर्व प्रेमानन्द का स्रोत उमड़ पड़ा था। मृदंगादि कुछ साथ नहीं थे, तथापि ब्रह्माण्डभेदी नामब्रह्म मानो मूर्तिमान रूप से प्रकट हो रहा था। नाम की मधुर ध्वनि से दसों दिशाएँ प्रतिध्वनित हो रही थीं। रास्ते के दोनों ओर बाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी चित्रलिखित की तरह कीर्तन सुन रहे थे और विस्मित हो परस्पर कह रहे थे, "अहा! ये भक्त कौन हैं? इनकी चाल-ढाल, भावभंगी सभी अपूर्व है। उज्ज्वल गौरवर्ण न होते हुए भी इनका मुख अत्यन्त सुन्दर और माधुर्यमय है। जो एक बार उनकी ओर देख लेता है मन्त्र-मुग्ध की भाँति सदैव के लिए इन चरणों में मन-प्राण अर्पण कर देता है। धन्य है इनका जन्म। धन्य इनकी प्रेमभक्ति। ये वास्तविक ही महापुरुष हैं।"

श्रीश्रीनीलाचल-यात्रा

इस प्रकार नवद्वीप में कीर्तनानन्द में कुछ दिन व्यतीत कर एक दिन राजेन बाबू अपने मर्मी साथियों के साथ कीर्तन करते-करते गंगाजी के किनारे-किनारे दक्षिण की ओर चल दिये। कहाँ जा रहे हैं, कुछ पता नहीं। नवद्वीपदास आदि तो मुखापेक्षी हैं ही। प्रेमोन्मत्त दादा ताल के साथ नाचते-नाचते आगे जा रहे हैं, और ये लोग मन्त्रमुग्ध की भाँति उनके पीछे-पीछे चले जा रहे हैं। जाते-जाते ये गुप्तिपाड़ा पार कर सातगाछिया ग्राम में पहुँचे। अविराम कीर्तन चल रहा था। गगन-भेदी

नाम की मधुर ध्वनि उठ रही थी। गाँव के बाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष मन्त्रमुग्ध की तरह दिग्विदिक्-ज्ञान-शून्य हो इन चारों अद्भुतमूर्ति वैष्णवों की ओर दौड़े चले आ रहे थे। इनकी प्रेममय मूर्ति दर्शन कर गाँववासी सब विमोहित हो टकटकी लगा इनकी ओर देख रहे थे। उसी समय शान्तिपुर के गोस्वामियों की बहन के वंशज श्रीपाद कुंजलाल गोस्वामी महाशय आकर उपस्थित हुए। एक कीर्तन मण्डली भी आ गयी। सब कीर्तन में सम्मिलित हो गये। आनन्द की सीमा न रही। कीर्तनानन्द में डूबकर सभी उन्मत्त हो गये। थोड़ी देर में श्रीपाद विपिनविहारी गोस्वामी अपने शिष्यों के साथ आये और अत्यन्त आग्रह के साथ इन लोगों को अपने श्रीमदनगोपाल जी के मन्दिर में ले गये। वहाँ बहुत देर तक कीर्तन करने के पश्चात् गंगा-स्नान और नित्य-कर्म से निवृत्त हो सबने मदनगोपाल जी का महाप्रसाद ग्रहण किया। इसी प्रकार कई दिन तक कीर्तनानन्द से उस गाँव के नर-नारियों का चित्त मुग्ध कर राजेन बाबू अपने सहचरों के साथ श्रीपाट कालना दर्शन को चल दिये।

श्रीपाट कालना में श्रीश्रीनिताइ-गौरांग की दोनों मूर्तियाँ बड़ी चित्ताकर्षक हैं। राजेन बाबू मूर्तियों के दर्शन कर प्रेमानन्द में विभोर हो बालक की तरह उच्चस्वर से क्रन्दन करने लगे। नेत्रों से प्रेम-नदी प्रवाहित होने लगी। उनके साथी भी प्रेमोन्मत्त हो क्रन्दन करने लगे। इस अपूर्व दृश्य को देख सभी परमानन्दित हुए। राजेन बाबू ने कुछ देर में प्रकृतिस्थ हो गद्गद् कण्ठ से स्वरचित पदावली का कीर्तन आरम्भ किया। पदावली सुन उपस्थित ग्रामवासी भक्त कोई यह न समझ सके कि यह किसी प्राचीन महापुरुष की रचना है अथवा इनकी अपनी। कीर्तन सुन सभी प्रेम में विभोर हो गये। राजेन बाबू और उनके प्रेमिक सहचरगण निताइ-गौरांग के मुखारविन्द की ओर देखते। प्रेमाश्रु वर्षण करते-करते आत्महारा हो नृत्य कर रहे थे। उसी समय अकस्मात् गाँव का एक चार-पाँच वर्ष का बालक कीर्तन के बीच नाचते-नाचते मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा। कुछ देर बाद वह राजेन बाबू तथा उनके साथियों को लक्ष्य कर कहने लगा, "तुम लोग और विलम्ब न कर नीलाचल की ओर यात्रा करो।"

बालक की बात सुनकर सभी अवाक् रह गये।

दूसरे दिन नाम-ब्रह्म (सिद्ध भगवानदास द्वारा प्रतिष्ठित) आदि दर्शन कर कीर्तन करते-करते चारों पैदल नीलाचल चल दिये। चारों के पास एक चादर, एक धोती और हाथ में एक जोड़ा करताल है। स्नान के समय चादर पहन कर धोती सुखा लेते हैं। यदि किसी की धोती फट जाती है, तो दूसरे अपनी में से आधी फाड़कर उसे दे देते हैं। जहाँ संध्या हो जाती वहीं रात्रि-विश्राम कर लेते हैं। गाँव हो चाहे वन, जब दादा की विश्राम करने की इच्छा होती है, तभी सबका विश्राम होता है। आहारादि का भी यही नियम है।

चलते-चलते कुछ दिन बाद श्रीश्रीसाक्षीगोपाल के मन्दिर में पहुँचे। वहाँ राजेन बाबू श्रीश्रीसाक्षीगोपाल का पूर्व वृत्तान्त, छोटे विप्र और बड़े विप्र का मधुमय चरित्र स्वरचित पदों में कीर्तन करने लगे। "ऐसा कीर्तन तो कभी भी नहीं सुना।" मन्दिर श्रोताओं से ठसाठस भर गया। लोग आपस में कहने लगे, "ये लोग कौन हैं, कहाँ से आये हैं? इनमें यह दीर्घाकार बाबाजी वास्तव में कोई महापुरुष हैं। इनकी आजानुलम्बित भुजाएँ, सुगठित देह और सुन्दर सहास्यमुख देखकर लगता है कि ये इस जगत् के नहीं हैं। बाकी लोग शायद इन बड़े बाबाजी के चेले हैं।" राजेनबाबू यहीं से **बड़े बाबाजी** के नाम से प्रसिद्ध होने लगे। हम भी इन्हें आगे इसी नाम से पुकारेंगे।

कीर्तन समाप्त होने पर प्रसाद आने लगा। बड़े बाबाजी महाशय आनन्दपूर्वक लोगों को देने लगे। सबको देने के बाद जो कुछ बचा, उसका इन चारों ने परमानन्द पूर्वक सेवन किया। श्रीश्रीसाक्षीगोपाल के मन्दिर में आनन्द का स्रोत प्रवाहित होने लगा। प्रसाद पाते ही सब कीर्तनानन्द में मग्न हो गये।

सिद्धमन्त्र-प्राप्ति

कीर्तनानन्द में रात्रि अधिक हो गयी। ठाकुर जी के शयन के बाद सब लोग मन्दिर के बाहर जाकर सो गये। गहरी रात्रि थी। चारों दिशाएँ निस्तब्ध। अकस्मात् बड़े बाबाजी उच्च स्वर से रो पड़े। नवद्वीप दादा और दूसरे दोनों साथियों के बहुत प्रकार से सान्त्वना देने पर

कुछ स्थिर हुए। रोने का कारण पूछने पर गद्‌गद् कण्ठ से कहने लगे, "भाई, क्या कहूँ? मैं सो रहा था, या जग रहा था, मुझे पता नहीं। अकस्मात् देखता हूँ कि आजानुलम्बित भुज आकर्णविस्तृतनयन, अतिदीर्घाकार काश्मीरी गौरवर्ण और कांचनकान्तिधारी दो महापुरुष आकर मेरे सिरहाने बैठ गये। उनमें से एक बोले, 'ध्यान से सुनो, मैं तुम्हें एक मन्त्र देता हूँ। इसकी यत्नपूर्वक आराधना करना और श्रद्धापूर्वक जो कोई माँगे उसे बिना विचारे प्रदान करना।' इतना कह बाईस अक्षर का गौर-मन्त्र मेरे कान में प्रदान कर अन्तर्धान हो गये। उसी समय मेरी निद्रा भंग हो गयी। हाय रे! ऐसे अमूल्य रत्नों को पाकर भाग्य-दोष से मैं उनका कुछ सत्कार न कर सका। नयन भर दर्शन भी न कर सका।" इतना कह वे फिर बालक की तरह क्रन्दन करने लगे। किसी प्रकार रात्रि बीती। प्रातःकाल देखा कि बड़े बाबाजी महाशय की आँखों के जल से मुख और वक्षस्थल सिंचित हो रहा है, मुख से निकल रही है केवल 'हा निताइ, जय निताइ!' की ध्वनि उनकी ऐसी अवस्था देख साथी बड़े चिन्तित हुए और नाना प्रकार से उन्हें सान्त्वना देने लगे। वे प्रेमोन्मत्त अवस्था में उनसे गले मिल-मिलकर रोने लगे।

बड़े बाबाजी महाशय के कुछ स्थिर होने पर सबने आनन्द से कीर्तन करते हुए श्रीक्षेत्र की ओर प्रस्थान किया। 'हा निताइ, जय निताइ' कहकर कीर्तन और क्रन्दन करते ये लोग चले जा रहे थे। जो कोई इन्हें देखता था, आनन्द में विभोर हो जाता था। जितना नीलाचल के निकट होते जाते थे, उतना ही आनन्द और बढ़ता जाता था। चलते-चलते श्रीश्रीजगन्नाथ क्षेत्र में प्रवेश किया। इन चारों प्रेमोन्मत्त वैष्णवों को देख नीलाचलवासी आनन्द में विभोर हो कहने लगे, "ये कौन है, कहाँ से आ रहे हैं, कहाँ जा रहे हैं?" पर ये किसी ओर न देख प्रेमानन्द में मत्त श्रीश्रीजगन्नाथदेव के श्रीमन्दिर की ओर चले जा रहे थे।

श्रीश्रीजगन्नाथ-दर्शन

थोड़ी देर में ये सिंहद्वार पहुँच गये। गरुड़-स्तम्भ के पास जा बड़े बाबाजी महाशय ने श्रीनीलाचलनाथ को प्रेम से साष्टांग दण्डवत्-प्रणाम किया। फिर मन्दिर के भीतर प्रवेश कर श्रीजगन्नाथदेव की अपूर्व मूर्ति के दर्शन किये। दर्शन करते ही प्रेमानन्द में उन्मत्त हो नृत्य -कीर्तन करने लगे। श्रीमन्दिर में आनन्द की तरंग उठने लगी। अति सुन्दर पद-पदावलियों का निर्झर बहने लगा। बड़े बाबाजी महाशय का आजानुलम्बित-भुजा-युक्त विशाल शरीर सात्विक विकारों से विभूषित होने लगा। श्रीमन्महाप्रभु के बाद ऐसा भावावेश, ऐसा मधुर कीर्तन और ऐसा अद्‌भुत प्रेममय नृत्य शायद कभी किसी ने न देखा था, न सुना था। श्रीजगन्नाथदेव के पण्डा और पुजारी मन्त्रमुग्ध की भाँति खड़े हैं। स्त्री-पुरुष बालक-वृद्ध-युवा उस प्राणोन्मत्तकारी नृत्य को देख अपने को स्थिर नहीं रख पा रहे। जो एक बार इन कीर्तनरणवीरों के दर्शन कर लेता है, वह चुम्बकाकृष्ट लोहे की भाँति इन्हें छोड़ नहीं सकता। आज जगमोहन (मन्दिर के सामने मण्डप) अनोखा रूप धारण कर साक्षात् जगमोहन बन गया है। आनन्द में उन्मत्त हो कोई किसी के ऊपर गिर रहा है, कोई रोकर व्याकुल हो रहा है, कोई हँस-हँस कर पागल हो रहा है, कोई प्रेमानन्द में बड़े बाबाजी महाशय के चरण पकड़ रहा है, और कोई कीर्तन रज में लोट रहा है। श्रीमन्दिर में एक अपूर्व दृश्य है।

धीरे-धीरे तीसरा पहर हो गया। माधव पशु-पालक नामक जगन्नाथदेव के शृंगारी पण्डा ने प्रसादी माला लाकर बाबाजी महाशय के गले में डाल दी। उसी समय जगन्नाथदेव की राजभोग-सेवा होने लगी। भीतर के द्वार बन्द हो गये और कीर्तन का भी विराम हो गया। तब सब लोग उस दीर्घाकार कीर्तनश्रान्त महापुरुष की सेवा शुश्रूषा करने लगे। एक गौरवर्ण वृद्ध बाबाजी उनके निकट आकर बैठ गये। भक्तगण नाना प्रकार के मिष्ठान्न महाप्रसाद लाकर देने लगे। महाप्रसाद वितरण करने की व्यवस्था कौन करे? सभी प्रेमोन्मत्त हैं। तब वृद्ध बाबाजी महाशय बोले, "बलराम, तुम्हीं प्रसाद की व्यवस्था करो।" बलराम पट्टनायक नामक भक्त ने सब प्रसाद एकत्रित किया, नवागत चारों वैष्णव और उपस्थित भक्तों को यथायोग्य स्थान पर यत्नपूर्वक परिवेशन करने लगे। सभी लोग जगमोहन

में पत्थर के ऊपर प्रसाद रखकर पाने लगे। सबसे पहले वृद्ध बाबाजी महाशय ने एक ग्रास महाप्रसाद हाथ में ले जैसे ही बड़े बाबाजी महाशय के मुख में दिया, चारों ओर से 'हरि बोल, हरि बोल', की ध्वनि होने लगी।

कैसा अपूर्व दृश्य है! सब लोग एक-एक ग्रास बड़े बाबाजी महाशय के मुख में देने का प्रयत्न कर रहे हैं। सभी प्रेमानन्द में मत्त हैं। कोई खाते-खाते दूसरे के मुख में दे रहा है और कोई दूसरे के मुख से निकाल कर खा रहा है। गृहस्थ लोग घर की बात भूल गये हैं। राजकर्मचारी राजकाज भूल गये हैं। सभी मानो आत्महारा और बाह्यज्ञानशून्य हैं।

उपस्थित भक्तों में से बलराम बाबू, कुंजबिहारी राय, गोपालप्रसाद दत्त, अर्जुन साँतरा, गणेश महान्ति, गोपालचन्द्र पट्टनायक, भुवनचन्द्र साऊ, गोपीमोहन साऊ प्रभृति आठ-दस लोग बड़े बाबाजी महाशय के पुरीवास के समय उनके विशेष अन्तरंग थे। उनके भाग्य की सराहना कौन कर सकता है।

गम्भीरा-गमन

पूर्वकथित वृद्ध बाबाजी का नाम था श्रीरामकृष्णदास। बड़े बाबाजी महाशय ने वृद्ध बाबाजी से पूछा, "बाबा, यहाँ से गम्भीरा कितनी दूर है?" उपस्थित लोगों ने उत्तर दिया, "पास ही है, चलिये न।"

बड़े बाबाजी-आप लोगों को कष्ट होगा।

वृद्ध बाबाजी-जिस क्षण हम लोगों ने आपके दर्शन किये, उसी क्षण से हमारे शारीरिक और मानसिक सब प्रकार के कष्ट दूर हो गये। अब तो हमारे आनन्द के दिन आ गये हैं। बड़े बाबाजी महाशय लज्जा से सिर झुकाकर कुछ हँसे और कीर्तन करने लगे-

"कोथा हे गौरांगचाँद देखा दाओ मोरे।
गौड़ हइते आसियाछि देखिते तोमारे।।
बहु दिन देखि नाइ ओ चाँदवदन।
देखा दिये प्राण राखो हे शचीनन्दन।।
नित्यानन्द संगे लइया बिहरिछ जथा।
के हेन बान्धव आछे लय जाय तथा।।
एइ त गम्भीरा हेथा थाक सर्वक्षण।
स्वरूप रामानन्द लइया रस आस्वादन।।"

—हे गौरांग महाप्रभु! कहाँ हो, दर्शन दो, गौड़ देश से आया हूँ तुम्हारे दर्शन को। बहुत दिनों से नहीं देखा तुम्हारा चाँदवदन! दर्शन देकर प्राण रखो, शचीनन्दन। नित्यानन्द को साथ ले जहाँ विहार कर रहे हो, वहाँ मुझे ले जाय, ऐसा बन्धु कौन है? यही तो है वह गम्भीरा जहाँ तुम रहते हो प्रतिक्षण और स्वरूप रामानन्द को ले करते हो रस आस्वादन।

इसी प्रकार स्वरचित पदावली गाते-गाते बहुत से लोगों के साथ बड़े बाबाजी महाशय ने गम्भीरा में प्रवेश किया। गम्भीरा के अधिकारी श्रीहरिभजनदास बाबाजी ने उन्हें श्रीमन्महाप्रभु की व्यवहार की हुई कंथा दिखायी। उसके दर्शन और स्पर्श से बड़े बाबाजी महाशय प्रेमानन्द में विभोर हो नेत्रों में जल भरकर भावगद्गद् कण्ठ से कहने लगे, "हा प्रभु गौरांगदेव! इस दास पर कृपा करो। अपने दासानुदासों का दास बनाकर इस अधम को अपने श्रीचरणों में स्थान दो।" यह कहते-कहते मूर्छित हो भूमि पर गिर पड़े। साथियों की शुश्रूषा से कुछ देर में चैतन्य लाभकर श्रीवासुदेव सार्वभौम भट्टाचार्य महाशय का भवन और सिद्धबकुल मठ आदिक स्थानों के दर्शन किये। अब कहाँ जायेंगे, कहाँ ठहरेंगे, इसका कोई निश्चय नहीं। श्रीरामकृष्णदास बाबाजी महाशय ने पूछा "आपके ठहरने का स्थान निश्चित हो गया क्या?" बड़े बाबाजी महाशय ने उत्तर दिया, "उसके लिए आप चिन्ता न करें। कृपामय प्रभु कृपाकर जहाँ रखेंगे वहीं रह जाएँगे।"

बलराम बाबू ने कहा, "इस समय हमारे ठाकुर-मन्दिर चलने में आप लोगों को कोई आपत्ति तो नहीं है?" बड़े बाबाजी महाशय ने कहा "भाई, यदि तुम लोगों को कोई कष्ट न हो, तो हमें कोई आपत्ति नहीं।" इसी समय पूर्वोक्त गणेश पट्टनायक ने कहा, "दादा, हमारे दोंलमण्डल साही वाले मकान के बाहर के कमरे में ठहरें तो कैसा? मेरे विचार से इसमें आप लोगों को विशेष सुविधा रहेगी, क्योंकि वह स्थान जगन्नाथदेव के मन्दिर के बहुत निकट है।" बड़े बाबाजी महाशय बड़ी समस्या में पड़ गये। बलराम की बात मानें अथवा

गणेश की। उन्होंने निर्णय रामकृष्णदास बाबा महाशय के ऊपर छोड़ दिया। अन्त में गणेश पट्टनायक के मकान पर ठहरना निश्चित हो गया। इस पर बलराम बाबू ने कहा, "कम से कम आज तो हमारे ठाकुर मन्दिर में महाप्रसाद की व्यवस्था हो जाय।" इससे सब लोग सहमत हो गये। बड़े बाबाजी महाशय ने कहा, "हमारे लिए तुम लोगों को बड़ा कष्ट उठाना पड़ेगा।" बलराम बाबू ने हँसते-हँसते कहा, "यदि कष्ट होता तो हम कहते ही क्यों? आज हमारा परम सौभाग्य है। चलिये बड़ी देर हो चुकी है, इस समय विश्राम कीजिये। कल फिर दर्शनादि कीजियेगा।"

सब लोग प्रसन्नचित्त नामकीर्तन करते हुए बलराम बाबू के घर चल दिये। उनके घर से लगे उनके भाई के ठाकुर मन्दिर में रात्रि के समय प्रसाद की व्यवस्था हुई। वहीं सन्ध्या-आरति-कीर्तन हुआ। पुरीधाम में यह बात फैल चुकी थी कि गौड़देश से चार बाबाजी आये हैं, जो अपूर्व कीर्तन करते हैं। बहुत-से लोग इनके दर्शन करने आ रहे थे। जो एकबार दर्शन कर लेता था, वह जैसे इनके हाथ बिक जाता था।

आरति-कीर्तन के बाद महाप्रसाद ग्रहण कर बड़े बाबाजी महाशय ने अपने सहचर गणेश पट्टनायक के घर जाकर विश्राम किया। प्रातःकाल उठ नरेन्द्र सरोवर में स्नान किया और नित्यनियम पूरा कर नाम-कीर्तन करते हुए श्रीजगन्नाथदेव के दर्शन को चल दिये। लगता था जैसे नाम-कीर्तन छोड़ इन लोगों का और कुछ काम ही नहीं।

बलराम बाबू ने आकर आग्रह पूर्वक कहा, "आज हमारे ठाकुर मन्दिर में प्रसाद की व्यवस्था होनी चाहिये।" बड़े बाबाजी महाशय बोले, "हम लोगों के लिए किसी प्रकार की व्यवस्था की आवश्यकता नहीं। कृपामय प्रभु यथा समय जैसा करेंगे वैसा ही होगा।" यह कहकर उन्होंने प्रेमानन्द में नृत्य करते हुए दल सहित श्रीजगन्नाथदेव के श्रीमन्दिर में प्रवेश किया। पूर्ववत् जगमोहन में कीर्तन आरम्भ हुआ। पण्डा लोगों ने प्रसादी माला, चरण-तुलसी और चन्दन लाकर सबको दिये। धीरे-धीरे कीर्तन खूब जम गया और लोगों की भीड़ भी खूब हो गयी। सब प्रेमानन्द में विभोर बड़े बाबाजी महाशय को घेर कर मण्डली बनाकर नृत्य कर रहे थे। उस समय की बड़े बाबाजी महाशय की अनिर्वचनीय आकर्षण-शक्ति का वर्णन नहीं किया जा सकता। बहुत देर कीर्तन के पश्चात् भक्तों को परिश्रम से थके जान उन्होंने कीर्तन समाप्त किया। बलराम बाबू ने यथायोग्य भाव से सबको बैठाकर महाप्रसाद वितरण किया।

समुद्रस्नान और चटक पर्वत दर्शन

महाप्रसाद पाकर सब की इच्छा हुई कि कीर्तन करते-करते समुद्र-स्नान को चलें। इसलिए सब प्रेमानन्द में कीर्तन करते हुए समुद्र की ओर चल दिये। कुछ दूर चलकर बड़े बाबाजी महाशय एक बहुत ऊँचा बालूका पर्वत देख प्रेमावेश में मूर्छित हो गिर पड़े। भक्तगण के उपचार करने पर कुछ प्रकृतिस्थ हुए। पर प्रेमानन्द में विभोर उसी पर्वत के ऊपर वटवृक्ष के नीचे बैठ गये और अत्यन्त मृदु स्वर से रोते-रोते अन्तरंग साथियों से कहने लगे, "दूर से इस बटवृक्ष के नीचे स्वरूप दामोदर के साथ अपने प्राण-प्रिय श्रीगौरांगदेव को देखा, पर पास जाकर देखा तो कहीं कुछ नहीं। हमारे प्राणगौरांग इस वन में श्रीवृन्दावन दर्शन करते थे। इस वटवृक्ष को वंशीवट समझते थे और इस पर्वत को गिरि गोवर्धन। वे पूर्वलीला स्मरणकर स्वरूप के गले लग अनेक प्रकार से विलाप करते थे। इतना कह उन्होंने एक भक्त से श्रीचैतन्यचरितामृत से चटक-पर्वत -दर्शन और महाप्रभु के प्रलाप का प्रसंग पाठ करने को कहा। प्रेमिक भक्त ने तुरन्त ही 'गोवर्धन हइते इहाँ मोरे के आनिल' इत्यादि अंश पाठ कर उन्हें सन्तुष्ट किया। कुछ देर में वे नृत्य करते हुए समुद्रतीर की ओर चल दिये। समुद्र की तरंगें देख-प्रेमोन्मत्त भाव में भक्तों से कहने लगे, "पहले ये समुद्र तीर्थराज थे। श्रीमन्महाप्रभु के श्रीचरणस्पर्श से महामहातीर्थराज हो गये हैं। इन पर प्रभु की पदरज पड़ी है। इसीलिए तीर्थराज तरंगों के रूप में प्रेमानन्द में तीरपर लोटपोट हो रहे हैं। ये तीर्थराज जिस पर कृपा करेंगे उसे अनायास ही श्रीगौरांगधन प्राप्त होगा।" यह कहते-कहते वे बालू के ऊपर प्रेमानन्द में लोटने लगे। समुद्र-दर्शन से उनके हृदय का प्रेमसमुद्र उमड़ पड़ा। वे प्रेमावेश में आत्महारा

हो गये। कुछ देर में प्रकृतिस्थ हो सब साथियों के साथ समुद्रस्नान किया। उनके समुद्रस्नान के सम्बन्ध में एक भक्त ने लिखा है—

'पुलकाश्रु भरे तीरे देय गड़ागड़ि।
आनन्दे करये स्नान बलि गौरहरि।।
तरंगेर माझे सब जाय साँतारिया।
केहबा काहार पाये धरये डुबिया।।
केह कारे काँधे करि नाचे उभराय।
केहबा काहारे धरि दूरे लञा जाय।।
एहेन आनन्दे सबे करये सिनान।
सबेइ विभोर नाइ भेदाभेद ज्ञान।।
एइ मत कतक्षण आनन्दे मातिया।
तीरे उठिलेन जलकेलि समापिया।।
श्रीअंग मुछिया शुष्क वस्त्र परिधान।
सबे मेलि तीर्थराजे करिला प्रणाम।।'

—प्रेमाश्रु और पुलकादि से विभूषित हो सब तीर पर लोट-पोट हो रहे थे। आनन्दपूर्वक 'गौर हरि' की ध्वनि के साथ स्नान कर रहे थे। तैरकर समुद्र की तरंगों के बीच प्रवेश कर रहे थे। कोई डुबकी लगाकर किसी के पैर पकड़ रहा था, कोई किसी के कन्धे पर चढ़ आनन्द-विभोर हो नृत्य कर रहा था, कोई किसीको पकड़कर दूर ले जा रहा था। इस प्रकार सब आनन्दपूर्वक स्नान कर रहे थे। सब विभोर और भेदा-भेद-ज्ञानरहित हो रहे थे। कुछ देर इस प्रकार आनन्द में मत्त रहकर जलकेलि समाप्त कर सब तीर पर आये। शरीर पोंछकर और सूखे कपड़े पहन सबने मिलकर तीर्थराज को प्रणाम किया।

समुद्र स्नान कर सब लोग श्रीहरिदास ठाकुर के समाधि मन्दिर को चल दिये। पूज्यपाद श्रीहरिदास ठाकुर के समाधि मन्दिर के दर्शन करते ही बड़े बाबाजी महाशय उच्चस्वर से नाम-संकीर्तन करते-करते प्रेमानन्द में मूर्छित हो गिर पड़े। श्रीमन्महाप्रभु ने अपने हाथ से हरिदास ठाकुर का बालूका समाधि मन्दिर बनाया था और स्वयं भिक्षा कर महासमारोह के साथ उनका विरहोत्सव सम्पन्न किया था। इसी भाव से विभावित हो प्रेमावेश में वे अचैतन्य हो गये। साथियों ने उनके मन का भाव समझ उच्च स्वर से हरिनाम संकीर्तन कर किसी प्रकार उन्हें प्रकृतिस्थ किया। तब सब लोग श्रीश्रीजगन्नाथदेव के श्रीमन्दिर की बाहरी परिक्रमा करते हुए वासस्थान को लौट आये।

नारायणछाता में महाप्रसाद ग्रहण

इसी प्रकार नये-नये भावों से विभावित हो ये लोग श्रीधाम में विचरण करते। एक दिन सिंहद्वार पर कीर्तन कर रहे थे, उसी समय गौरचरण चक्रवर्ती नामक एक युवक आकर कीर्तन में योगदान करने लगा। इसी प्रकार नये-नये अनुरागी भक्तों से इनका दल बढ़ने लगा। एक दिन नारायण छाता में महोत्सव हो रहा था। बड़े बाबाजी महाशय दलबल सहित नाम-कीर्तन करते हुए बड़े रास्ते से जा रहे थे। भगवानदास महन्त बाबाजी महाशय ने इन्हें प्रसाद पाने के लिए पुकारा। ये प्रसन्न हो महन्तजी को प्रणाम कर रास्ते में खड़े हो गये। अपनी वेश-भूषा और व्यवहार से ये लोग कंगले मालूम होते। कंगलों का स्थान सदा सड़क पर हुआ करता है। इसलिए इन्हें और कोई स्थान न मिला और ये सड़क पर बैठ गये। कुछ देर बाद महन्त जी ने एक फटी पत्तल लाकर बड़े बाबाजी महाशय को दी। एक तो रास्ते की धूल, उस पर फटी पत्तल। प्रसाद पायें तो कैसे? निरुपाय हो इनके प्रिय साथी नवद्वीपदास ने अपना बहिर्वास खोल कर बिछा दिया और उस पर फटी पत्तल रख दी। महन्त जी इन्हें प्रसाद देने आये तो बोले, "तुम, लोगों ने पेट की ज्वाला के कारण कंगले बन कर वैष्णव धर्म का सर्वनाश किया।" बड़े बाबाजी महाशय के तीनों साथियों को फटी पत्तलें भी नहीं मिली थीं। उन्होंने हँसते हुए महन्त जी से कहा, "बाबा, हम लोग वैष्णव नहीं हैं, वैष्णव बनने की आशा भी नहीं करते। आशीर्वाद कीजिये कि आप-जैसे वैष्णवों के दासानुदास बन सकें। यदि इन तीनों को भी प्रसाद देना चाहें तो कृपा कर इसी पत्तल पर दे दीजिये। मैं बाँट दूँगा और जो कुछ बचेगा उसे स्वयं ग्रहण कर कृतार्थ होऊँगा।" महन्तजी पहले कुछ रुष्ट हुए थे, पर बड़े बाबाजी महाशय के मधुमय वचनों से उनका हृदय पिघल गया। उन्होंने लज्जित हो बहुत-सा प्रसाद बड़े बाबाजी महाशय की पत्तल पर रख दिया। उन्होंने सब प्रसाद मिलाकर उसके गोले बना लिये। तीनों

साथियों को एक-एक गोला दे स्वयं भी एक गोला ले लिया। ये लोग जो कुछ मिल जाता उसी से सन्तुष्ट रहा करते। इसलिए जो मिला उसे पाकर परमानन्दित हुए।

जगन्नाथवल्लभ में वास

बड़े बाबाजी महाशय सगण नीलाचल में आनन्दपूर्वक विहार कर रहे थे। श्रीक्षेत्र (पुरीधाम) कीर्तन-तरंगायित हो रहा था। एक दिन नरेन्द्र सरोवर में स्नानादि प्रातःकृत्य कर कीर्तन करते हुए श्रीजगन्नाथ जी के मन्दिर को जा रहे थे। रास्ते में देखा कि जगन्नाथवल्लभ मठ में से चाँदी के छत्र, चँवर, आसा, सोटा आदि बाहर निकल रहे हैं, और उनके पीछे एक संन्यासी चाँदी के खड़ाऊँ पहने आ रहे हैं। पास के एक व्यक्ति से संन्यासी का परिचय पूछने पर उत्तर मिला, "इन महापुरुष का नाम है भूतनाथ स्वामी। आजकल जगन्नाथवल्लभ का कार्य इन्हीं की देखरेख में चल रहा है।" बड़े बाबाजी महाशय ने ससम्भ्रम साथियों सहित संन्यासी ठाकुर को दण्डवत् प्रणाम किया। संन्यासी ठाकुर ने भी हाथ उठाकर 'नारायण' कहकर आशीर्वाद दिया। ये लोग एक और होकर कीर्तन करते हुए श्रीश्रीजगन्नाथ दर्शन को चल दिये। कुछ दूर निकल जाने पर स्वामी जी ने आदमी भेजकर इन्हें बुलवाया। यद्यपि ये देव-दर्शन को जा रहे थे, और लौटने की इच्छा न थी, पर इस डर से कि कहीं लोग अभिमानी समझ कर वैष्णव सम्प्रदाय पर कटाक्ष न करने लगें, लौटे और पूर्ववत् स्वामी जी को दण्डवत् प्रणाम किया। इस बार स्वामी जी का भाव कुछ और था। उन्होंने पहले की तरह हाथ उठाकर आशीर्वाद न कर 'नमोनारायण' कहकर प्रतिनमस्कार किया और हिन्दी भाषा में बोले, "महात्मन्, आप कहाँ रहते हैं?"

बड़े बाबाजी—बाबा, हमारे रहने का कोई निर्दिष्ट स्थान नहीं है। इस समय कुछ दिनों से गणेश महान्ति की बैठक में रह रहे हैं।

स्वामी जी—आप तो महात्मा हैं। आपके दर्शन कर मेरा चित्त प्रसन्न है। मुझे ऐसा लगता है कि आप जगन्नाथ मिश्र के पुत्र कृष्णचैतन्य के अन्तरंग संगी हैं। आपने ठीक उनका जैसा भाव अपने में उतार लिया है। पर जो भी हो, आप वैष्णव हैं। गृहस्थ के घर में रहना आपके लिए ठीक नहीं। हमारे जगन्नाथवल्लभ में एक कोठरी लेकर आनन्द से रहिये और कीर्तन कीजिये।

बड़े बाबाजी 'महात्मन् आपका आदेश शिरोधार्य' कह फिर कीर्तन करते हुए श्रीमन्दिर को चल दिये। दो दिन निकल गये। तीसरे दिन ये लोग गणेश से कहकर स्वामी जी के आदेशानुसार जगन्नाथवल्लभ में एक कोठरी में वास करने लगे। भूतनाथ स्वामी को बड़ा आनन्द हुआ। वे इनसे बड़े प्रसन्न हुए। उसी दिन से 'उदर-झोला करपात्र' की तरह जहाँ-कहीं प्रसाद पा लेते और जगन्नाथवल्लभ में आकर विश्राम कर लेते।

कृष्णानन्ददास से मिलन

एक दिन एक जटा-जूट धारी बंगाली साधु का बड़े बाबाजी महाशय के साथ मिलन हुआ। साधु ने पूछा, "तुम लोग किस सम्प्रदाय के हो?"

बड़े बाबाजी—हम लोग गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के हैं।

साधु—गौड़ीय शब्द का क्या अर्थ है?

बड़े बाबाजी—गौड़देशवासी। किन्तु मैं उसे गौड़ीय न कहकर गौरीय कहता हूँ, क्योंकि यह सम्प्रदाय गौर सम्बन्धी है। यह मेरे अपने मन की बात है।

साधु—गौर कौन?

बड़े बाबाजी—गौर पूर्ण पूर्णतम, साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन हैं। कलियुग के प्रच्छन्न अवतार हैं।

साधु—इनके जन्मादिक हैं क्या?

बड़े बाबाजी—हैं क्यों नहीं! श्रीधाम नवद्वीप में श्रीश्रीशचीदेवी के गर्भ से वैदिक श्रेणी पवित्र ब्राह्मणकुल में श्रीगौरांगदेव ने जन्म ग्रहण किया। उनके पिता का नाम था श्रीश्रीजगन्नाथ मिश्र ठाकुर।

साधु—महाशय, आप यदि असन्तुष्ट न हों तो मैं कुछ कहूँ।

बड़े बाबाजी—महाशय, निःसंकोच कहिये। हम लोग नित्यानन्ददास हैं। हमें किसी से असन्तुष्ट होने का अधिकार नहीं। आप स्वच्छन्द होकर कहिये।

साधु—महाशय, जो पूर्णपूर्णतम भगवान् हैं, उनके जन्मादिक सम्भव हैं क्या?

बड़े बाबाजी—भगवान् जीवों के लिए अनेक प्रकार के रूप धारण कर धर्म का संस्थापन और अधर्म का विनाश करते हैं। वे लीलामय हैं। जब उनकी लीला करने की इच्छा होती है, स्वयं मानव रूप से अवतीर्ण हो लीला प्रकाश करते हैं, जैसे श्रीरामचन्द्र, श्रीकृष्णचन्द्र, श्रीगौरचन्द्र इत्यादि।

साधु—केवल मुख से कहने से तो कोई इन बातों का विश्वास करेगा नहीं। आप यदि कोई शास्त्रीय प्रमाण दिखा सकें तो ठीक है।

बड़े बाबाजी—महाशय, इस विषय में शास्त्रीय प्रमाण तो बहुत हैं, पर शास्त्रीय प्रमाण की आवश्यकता तो तब होती है, जब प्रत्यक्ष प्रमाण न हो। निताइ-गौर का भुवनमोहन सर्व-चित्ताकर्षक अपरूप रूप देख यदि उन्हें कोई प्राकृत मनुष्य समझे तब तो शास्त्र-युक्ति परोक्ष प्रमाण है। जिनका स्वरूप दर्शन करते ही बड़े-बड़े पाषण्डियों के भी मन-प्राण उनके चरणों में आकृष्ट हो जायें और जिनकी अद्भुत लीला-कथा सुन हृदय विमुग्ध हो जाये, उनके रसमय विग्रह पूर्णपूर्णतम भगवान् होने में क्या सन्देह है?

साधु—यदि कोई लम्पट पुरुष किसी सुन्दरी युवती को देख आकर्षित हो, तो क्या उसे आप ईश्वर कहेंगे?

बड़े बाबाजी—नहीं, क्योंकि सुन्दरी युवती को अपनी इन्द्रियवृत्ति चरितार्थ करने की साधिका मानकर ही लम्पट पुरुष उससे प्रेम करता है और उसकी ओर आकर्षित होता है। यदि किसी कारण उसकी वह सुन्दर मूर्ति कुरूप हो जाय, तो क्या वह उससे फिर भी वैसा ही प्रेम करेगा?

साधु—नहीं। वह तो केवल रूप-लोलुप कामुक पुरुष है। रूप और यौवन का अभाव होते ही आकर्षण भी न रहेगा, यह निश्चित है।

बड़े बाबाजी—तब आप ही विचार कीजिये कि काम और प्रेम में कितना भेद है। काम रूप-लालसा संभूत है, रूप के अभाव में काम नहीं रहता। प्रेम निर्मल, निर्हेतुक है और रूप-गुण के सापेक्ष नहीं है। प्रेम के तो पात्र का भी अभाव हो जाय तो प्रेम का ह्रास नहीं होता, बल्कि उसकी वृद्धि होती है। विरह में ही प्रेम का ज्वलन्त विकास दीख पड़ता है।

श्रीगौरांग प्रभु के पूर्णपूर्णतम साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन होने के अनेक प्रमाण हैं। कुछ सुनिये, वासुदेव सार्वभौम ने कहा है—

कालान्नष्टं भक्तियोगं निजं यः
प्रादुष्कर्त्तुं कृष्णचैतन्यनामा।
आविर्भूतस्तस्य पादारविन्दे
गाढ़ं गाढ़ं लीयतां चित्तभृंगः।।

—कलियुग के प्रभाव से अपने भक्तियोग को नष्टप्राय देख उसे प्रकाशित करने के लिए कृष्णचैतन्य नाम धारण कर जो अवतीर्ण हुए उनके पादपद्म में हमारा मन मधुकर लीन हो।'' विष्णु सहस्रनाम स्तोत्र में कहा है—

सुवर्णवर्णो हेमांगो वरांगश्चन्दनांगदी।
संन्यासकृच्छमः शान्तो निष्ठाशान्तिपरायणः।।

विष्णुसहस्रनाम ९८

—हे प्रभो! तुम सुवर्णवर्णधारी गौरांग, सुन्दरकान्ति-युक्त, चन्दनवलयादिभूषित, संन्यासी, भगवन्निष्ठ, सुशील एवं निवृत्ति और शान्तिपरायण हो।

विश्वसार तंत्र के उत्तर खण्ड में, एकादश पटल में—

गंगाया दक्षिणे भागे नवद्वीपे मनोरमे,
कलिपापविनाशाय शचीगर्भे सनातनि।
जनिष्यति प्रिये मिश्रपुरन्दरगृहे स्वयम्,
फाल्गुने पौर्णमास्याञ्च निशायां गौरविग्रहः।।

—हे प्रिये, कलिकलुषविनाश के निमत्त गंगा के दक्षिण तीरवर्त्ती अति मनोरम नवद्वीप ग्राम में फाल्गुनी पूर्णिमा निशि में मिश्रपुरन्दर के घर शचीदेवी के गर्भ से स्वयं भगवान् गौर रूप में अवतीर्ण होंगे।

अनन्तसंहिता में देवादिदेव महादेव पार्वती से कहते हैं—

''वृन्दावने सदा कृष्णमानन्दसदने मुदा।
वामे च राधिका देवी स्थित्वा रमयते प्रिये।।
नवद्वीपे च स कृष्ण आदाय हृदये स्वयं।
गजेन्द्रगमनां राधां सदा रमयते मुदा।।

ललिताद्याश्च याः सख्यः श्रीराधाकृष्णयोः शिवे।
सेवन्ते निजरूपेण वृन्दारण्ये च तौ सदा।।
नवद्वीपे तु ताः सख्यो भक्तरूपधराः प्रिये।
एकांगं श्रीगौरहरिं सेवन्ते सततं मुदा।।
य एव राधिकाकृष्णः स एव गौरविग्रहः।
यच्च वृन्दावनं देवि नवद्वीपञ्च तत् शुभम्।।
वृन्दावने नवद्वीपे भेदबुद्धिश्च यो नरः।
तथैव राधिकाकृष्णे श्रीगौरांगेपरात्मनि।।
मच्छुलपातनिर्भिन्नदेहः सोऽपि नराधमः।
पच्यते नरके घोरे यावदाहूतसंप्लवम्।।

—हे प्रिये! परमानन्दमय श्रीवृन्दावनधाम में महाभावस्वरूपिणी श्रीराधिकादेवी जिन श्रीकृष्णचन्द्र के बार्यी ओर रहकर सुख भोग करती हैं, वे कृष्णचन्द्र ही नवद्वीप में गजेन्द्र-गामिनी राधिका को हृदय में धारण कर परमानन्द भोग करेंगे। जो सखीगण श्रीवृन्दावन में राधाकृष्ण की सेवा करती हैं, वही भक्तरूप धारण कर राधाकृष्ण-मिलित-तनु गौरांगदेव की सेवा करेंगी। जो राधा-कृष्ण हैं, वे ही गौरांग हैं। जो वृन्दावन है वही नवद्वीप है। जो सखी मंजरी हैं, वे ही गौर भक्तगण हैं। इसमें जो भेदबुद्धि करेगा, वह नराधम हमारे शूलाघात से प्राण त्यागकर महाप्रलय काल पर्यन्त घोर नरक में वास करेगा।

श्रीमद्भागवत में नन्द महाराज के प्रति गर्ग मुनि का वाक्य है—

आसन् वर्णास्त्रयोह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनुम्।
शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः।।

(भा. 10/8/13)

—हे नन्द महाराज! तुम्हारा ये पुत्र प्रत्येक युग में शरीर धारण करता है, कभी शुक्ल वर्ण का, कभी रक्त वर्ण का, इस समय कृष्ण वर्ण हुआ है। कलियुग में पीत वर्ण धारण करेगा।

कपिल तन्त्र में—

जम्बूद्वीपे कलौ घोरे मायापुरे द्विजालये।
जनित्वा पार्षदैः सार्द्धं कीर्तनं प्रकटिष्यति।।

—घोर कलियुग में भगवान् जम्बूद्वीप के अन्तर्गत मायापुर नामक स्थान में विशुद्ध ब्राह्मण वंश में जन्म लेकर पार्षद सहित नाम-संकीर्तन प्रकट करेंगे।

कुलार्णव तन्त्र में हर पार्वती संवाद में—

"ततःकाले च संप्राप्ते कलौ कोऽपि महानिधिः।
हरिनामप्रकाशाय गंगातीरे जनिष्यति।।"

—घोर कलि के प्रभाव से धर्म की क्षीणता और अधर्म का प्रादुर्भाव देख धर्म संस्थापन की इच्छा से प्राकृत इन्द्रिय के अगोचर साक्षात् भगवान् कालोचित हरि-नाम प्रकाश करने के लिए गंगा तीर पर जन्म ग्रहण करेंगे।

अनन्तसंहिता में—

गौरी श्रीराधिका देवी हरिः कृष्णः प्रकीर्त्तितः।
एकत्वाच्च तयोः साक्षादिति गौरहरिं विदुः।।

—'गौरी' शब्द से राधिका का, 'हरि' शब्द से कृष्ण का बोध होता है। अतएव गौरहरि कहने से राधाकृष्ण-मिलित तनु के अतिरिक्त और कुछ बोध नहीं होता।

साधनोल्लास तन्त्र में—

शचीसुतच्छलात् कृष्णः कलाववतरिष्यति, या काली सैव तारा स्यात् या तारा त्रिपुरा हि सा। त्रिपुरा या महादेवी सैव राधा न संशयः, या राधा सैव कृष्णः स्यात् यः कृष्णः स शचीसुतः।।

—श्रीकृष्णचन्द्र कलिकाल में शचीसुत रूप में अवतीर्ण होंगे। जो काली हैं वही तारा है, जो तारा हैं वही त्रिपुरा हैं। इस प्रकार महादेवी त्रिपुरा ही श्रीराधिका हैं। जो राधिका हैं वही कृष्ण हैं, जो कृष्ण हैं वे ही गौरांगदेव हैं। इसमें किंचित् मात्र सन्देह नहीं।

कृष्णयामल में—

गौरांगो नादगम्भीरः स्वनामामृतलालसः।
दयालुः कीर्तनग्राही भविष्यति शचीसुतः।।

—"पूर्णपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण कलियुग में तप्तकांचन-कान्ति, जलद-गम्भीर, मधुर-भाषी, निजनामामृतास्वादनलोलुप, परम दयालु, संकीर्तन-परायण, शचीसुत रूप से अवतीर्ण होंगे।"

ब्रह्मयामल में—

"कलौ पूर्णानन्दस्त्रिभुवनविजयी गौरसुतनुर्नवद्वीपे जातः सुरधुनिसमीपे नरहरिः। ददत् पापिभ्यः

संस्तुतमतिर्हरेर्नाम सुकृतं, तरित्वा पापाब्धिं भुवि विजयते श्रीगौरचन्द्राभिधः।।"

—कलिकाल में सच्चिदानन्दमय, त्रिभुवन विजयी, कांचन-कान्ति-श्रीगौरचन्द्र नामक नरनारायण सुरधुनि तीरवर्ती नवद्वीप धाम में अवतीर्ण होकर पापियों को हरिनामरूप सुकृतदान द्वारा पाप-सागर से उद्धार कर जगत् में जययुक्त होंगे।

"वन्दे गौरावतारं कलिमलमथनं श्रीनवद्वीपवासं कण्ठे मालां दधानं श्रुतियुगविलसत् स्वर्णसंसक्तगण्डम्। केयूरांगदविव्यरत्नघटितं बाहुद्वये बिभ्रतं भक्तेभ्यो ददतं मलापहरणं नमामि सर्वं हरेः।।"

—जिनकी अंगद-वलयादिभूषित आजानुलम्बित दोनों भुजाएँ हैं, जो कंठ में सुगन्धी माला धारण किये हैं, जिनके दोनों कर्णों में सुवर्ण कुण्डल विभूषित हैं, जिनके गण्डस्थल में किंचित् लालिमा झलक रही है, जो भक्तगण के बहुजन्मार्जित पाप-पुंज-हारी मंगलमय हरिनाम-वितरणकारी, कलि-कलुषहारी, नवद्वीप-विहारी श्रीगौरहरि हैं, उनकी वन्दना करता हूँ।

वायुपुराण में भगवदुक्ति—

कलौ संकीर्तनारम्भे भविष्यामि शचीसुतः।
स्वर्नदीतीरमास्थाय नवद्वीपे जनाश्रये।
तत्र द्विजकुलश्रेष्ठे शुद्धसत्वे द्विजालये।।

—मैं कलियुग में युगोचित नाम संकीर्तन के प्रचार के निमित्त बहुजन समाकीर्ण गंगातीरवर्ती नवद्वीपधाम में विशुद्ध ब्राह्मण कुल में शचीदेवी के पुत्र रूप में अवतीर्ण होऊँगा।

जैमिनिभारत में—

कलौ कृष्णावतारोऽपि गूढ़ः संन्यासरूपधृक्।

—कलियुग में कृष्णावतार से भी गूढ़ संन्यासीरूप में प्रच्छन्न अवतार होगा।

सौरपुराण में—

"सुपूजितः सदा गौरः कृष्णो वा वेदविद् द्विजः।"

—श्रीकृष्णचन्द्र ही वैदिक ब्राह्मण होकर गौरांगरूप से सदैव जगत् में पूजित होंगे।

छान्दोग्य उपनिषद् में—

अत्र ब्रह्मपुरं नाम पुण्डरीकं यदुच्यते।
तदेवाष्टदलं पद्मसन्निभं परमद्भुतम्।।
तन्मध्ये दहरं साक्षात् मायापुर इतीर्यते।
तत्र वेश्म भगवतश्चैतन्यस्य परात्मनः।।

—यहाँ जिसको ब्रह्ममण्डल कहा गया है, उसी अष्टदलपद्म सदृश परमधाम के मध्य में मायापुर नामक स्थान परमात्मा भगवान् श्रीचैतन्यदेव का आविर्भाव स्थान है।

चैतन्य उपनिषद् में महादेव कहते हैं—

रहस्यं ते वदिष्यामि 'जाह्नवीतीरे नवद्वीपे गोलोकाख्ये धाम्नि गोविन्दो द्विभुजो गौरः सर्वात्मा महापुरुषः महात्मा महायोगी त्रिगुणातीतः सत्वरूपो भक्तिं लोके काश्यतीति।

—हे देवि, मैं तुम से परम रहस्य कहता हूँ। गोलोकधाम में जो गोविन्द हैं, वे ही गंगातीर पर नवद्वीप धाम में द्विभुज, सर्वान्तर्यामी महात्मा, त्रिगुणातीत, सत्वस्वरूप गौररूप से जगत् में भक्ति वितरण करेंगे।

उर्द्धाम्नाय संहिता में—

सन्धौ कृष्णो विभुः पश्चाद्देवक्यां वसुदेवतः।
कलौ पुरन्दरात् शच्यां गौररूपो विभुः स्मृतः।।

—जो द्वापरयुग में वसुदेव देवकी के घर भगवान् कृष्ण रूप में अवतीर्ण हुए हैं, वे ही कलियुग की प्रथम सन्ध्या में मिश्र पुरन्दर से शचीदेवी के गर्भ से भगवान् गौरांग रूप में अवतीर्ण होंगे।

ब्रह्मपुराण में—

कलेः प्रथमसन्ध्यायां लक्ष्मीकान्तो भविष्यति।
दारुब्रह्मसमीपस्थः संन्यासी गौर विग्रहः।।

—लक्ष्मीकान्त भगवान् कलियुग की प्रथम सन्ध्या में गौरवर्ण संन्यासी रूप धारण कर दारुब्रह्म समीपस्थ होंगे।

पद्मपुराण में—

कलेः प्रथमसन्ध्यायां गौरांगोऽसौ महीतले।
भागीरथ्यास्तटे भूयो भविष्यति सनातनः।।

—यही सनातन श्रीकृष्ण कलियुग की प्रथम सन्ध्या में भागीरथी तीर पर श्रीगौरांगरूप से फिर अवतीर्ण होंगे।

गरुड़पुराण में—

"शुद्धो गौरः सुदीर्घांगो गंगातीरसमुद्भवः।
दयालुः कीर्तनग्राही भविष्यामि कलौ युगे।।"

—मैं कलियुग में शुद्ध गौरवर्ण सुदीर्घ अंगधारी, दयालु और कीर्तनग्राही रूप में गंगातीर पर प्रकट होऊँगा।

जैमिनिभारत में—

भक्तियोगप्रकाशाय लोकस्यानुग्रहाय च।
संन्यासाश्रममाश्रित्य कृष्णचैतन्यरूपधृक्।।

—मैं मनुष्यों पर अनुग्रह कर भक्तियोग का प्रकाश करने के निमित्त संन्यास आश्रम ग्रहण कर कृष्णचैतन्य रूप धारण करूँगा।

शिवपुराण में—

'दिविजा भुवि जायध्वं जायध्वं भक्तरूपिणः।
कलौ संकीर्तनारम्भे भविष्यामि शचीसुतः।।'

—हे देवगण, तुम लोग कलियुग में भक्तरूप धारण कर जन्म ग्रहण करो। मैं भी संकीर्तन प्रवर्तन करने हेतु शचीनन्दनरूप से अवतार लूँगा।

श्रीमद्भागवत में—

कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं सांगोपांगास्त्रपार्षदम्।
यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः।।

—जो भीतर कृष्ण वर्ण, बाहर अकृष्ण (गौर) कान्तिधारी अथवा सुवर्णवर्ण हैं, उनकी अंग-उपांग एवं पार्षद सहित सुमेधागण संकीर्तन यज्ञ द्वारा उपासना करेंगे।

नृसिंहपुराण में—

सत्ये दैत्यकुलादिनाशसमये स्फुर्ज्जन्नरकेशरी त्रेतायां दशकंधरं परिभवन् रामाभिनामाकृतिः। गोपालं परिपालयन् व्रजपुरे भारं हरन् द्वापरे गौरांगः प्रियकीर्तनः कलियुगे चैतन्यनामा हरिः।।

—जो हरि सत्ययुग में दैत्यकुलाधिपति हिरण्यकशिपु का नाश करने के लिए नरसिंहरूप से प्रकट हुए, त्रेता युग में दशस्कन्ध रावण का पराभव करने के निमित्त रामरूप से अवतीर्ण हुए, जिन्होंने द्वापर में पृथ्वी का भार हरण करते हुए ब्रजपुर में गोपकुल का पालन किया, वे ही कलियुग में गौरांग-रूप से कीर्तनप्रिय होकर चैतन्यनामधारी होंगे।

इसी प्रकार के और बहुत-से शास्त्र प्रमाणों से श्रीगौरांगदेव का पूर्ण पूर्णतमत्त्व सिद्ध होता है। मैं कितने प्रमाण बताऊँ?

तीन दिन तक इसी प्रकार इन महात्मा के साथ विचार-विमर्श होता रहा। तब उनके मन में श्रीगौरांग अवतार में दृढ़ विश्वास उत्पन्न हुआ। वे बड़े बाबाजी महाशय के चरणों में गिरकर रोते-रोते कहने लगे, "गुरुदेव, मैंने अब तक वृथा समय नष्ट किया। मैं घोर नास्तिक और पाखण्डि हूँ। आपके दर्शन कर पवित्र हुआ। अब मेरे ऊपर कृपा कीजिये, जिससे मेरा और अधिक समय नष्ट न हो और मैं दयालु निताइगौर का दासानुदास हो सकूँ। मेरी और कोई कामना नहीं है।"

बड़े बाबाजी महाशय ने प्रेमार्द्रहृदय से साधु को प्रेमालिंगन दानकर कृतार्थ किया और मधुर वाणी से कहने लगे, "भाई, कलिकाल धन्य है। कलिहत जीवों का परम सौभाग्य है। कलिपावनावतार परमदयाल श्रीगौरसुन्दर तुम्हारे ऊपर अवश्य ही कृपा करेंगे। कोई भय नहीं, हमारे निताइचाँद तो अदोषदर्शी हैं। वे बिना विचारे प्रेमधन दान करते हैं। उनके चरणों का आश्रय लो तुम्हारा सब दुःख दूर होगा और तुम शान्ति लाभ करोगे।" बड़े बाबाजी महाशय के इन करुणापूर्ण, आशाप्रद, मधुर वचनों को सुन साधु के हृदय में अनुताप की अग्नि धक-धक कर जल उठी। वे उन्मत्त की तरह 'हा निताइ, जय निताइ' कहकर उच्चस्वर से क्रन्दन करने लगे। उनके धैर्य का बाँध टूट गया। बड़े कष्ट से समस्त रात्रि जागते हुए व्यतीत की। बीच-बीच में 'हा निताइ जय निताइ' कहकर लम्बी साँस लेते रहे। प्रभात होते ही उन्होंने मस्तक मुण्डन कराया और स्नान किया। मन्त्र ग्रहण करने के लिए अत्यन्त आग्रह करने पर बड़े बाबाजी महाशय ने उनकी हार्दिक आर्ति देख निताइचाँद के आदेश का स्मरण कर उनके कान में मन्त्र प्रदान किया। साधु का नाम था कृष्णानन्ददास। वे बड़े बाबाजी महाशय के आदेश से पूज्यपाद प्रेमानन्द भारती महाशय के साथ अमेरिका गये, पर मार्ग में ही उनका शरीर छूट गया।

श्रीश्रीमहाप्रभु-पादपद्म-चिह्न

धीरे-धीरे बड़े बाबाजी महाशय के ऊपर शिक्षित समाज की दृष्टि पड़ने लगी। तत्कालीन स्थानीय मुंसिफ बाबू किशोरी मोहन सेन, डिप्टी मजिस्ट्रेट बाबू जगतचन्द्र राय आदि कितने ही सम्मानित व्यक्ति उनकी ओर विशेष रूप से आकर्षित हुए। वे एक दिन भी उन्हें देखे बिना चैन से नहीं रह सकते थे।

श्रीश्रीजगन्नाथदेव के जगमोहन में गरुड़-स्तम्भ के पीछे श्रीगौरांगदेव के पाद-पद्म-चिह्न थे। उत्सवों के समय भीड़ होने पर इस भव-विरंचि वांछित परमधन के ऊपर पैर रखकर लोग आते जाते थे। बड़े बाबाजी महाशय ने पुरी के राजा से कह कर इस पादपद्म-चिह्नित पत्थर को श्रीजगन्नाथदेव के मन्दिर के उत्तरी दरवाजे के पास एक छोटा सा मन्दिर बनवाकर उसमें स्थापित करा दिया।

एक दस-ग्यारह वर्ष के ब्राह्मण बालक को उसके बड़े भाई ने नरेन्द्र सरोवर के निकटवर्ती एक पंचायती रामानन्दी मठ का महन्त बना दिया था। भगवत् इच्छा से महन्त बालक ने जिस समय से बड़े बाबाजी महाशय के दर्शन किये, उसी समय से वह उनके प्रेम में मुग्ध हो गया और उनके आनन्दमय संग-सुख की अभिलाषा से दिन-रात श्रीश्रीजगन्नाथदेव से प्रार्थना करने लगा। बालक का नाम था शीतलदास। उसकी दीनता और आर्ति देख पाषाण का हृदय भी पिघल जाता था। श्रीश्रीजगन्नाथदेव ने भक्त बालक पर प्रसन्न हो उसका विषय-बन्धन काटने की इच्छा की।

एक दिन कुछ रामानन्दी बाबाजी आये और शीतलदास तथा उसके बड़े भाई को मठ से निकाल दिया। मुकदमा चलने लगा। बालक श्रीश्रीजगन्नाथदेव के श्रीचरणों में यही प्रार्थना करता रहा कि मुकदमें में उसकी हार हो, जिससे विषयभोग से उसकी निवृत्ति हो जाय। बड़े बाबाजी महाशय के प्रिय सहचर किशोरी बाबू मुंसिफ की कचहरी में मुकदमा था। उन्होंने मन में निश्चय कर रखा था कि मुकदमे में बालक की जीत हो, क्योंकि शहीदत उसके अनुकूल थी। बहस खत्म हो गई। केवल तजबीज बाकी थीं। मुंसिफ परम भक्त थे। वे जब किसी मुकदमे की तजबीज लिखने बैठते, दस-पन्द्रह मिनट आँखें बन्द कर श्रीश्रीजगन्नाथदेव के चरणों का ध्यान करते और उनकी प्रेरणा के अनुसार फैसला लिखते। मुकदमे में भी उन्होंने ऐसा ही किया। फैसला लिख दिया। पढ़कर देखा तो उसे अपने मन के भाव के विपरीत पाया। बालक मुकदमा हार गया। इससे वे बड़े लज्जित हुए।

वे कचहरी से मलिन-मुख लौट कर बड़े बाबाजी महाशय के पास आये। उनका मुख देखते ही मालूम होता था कि वे बड़े दु:खी हैं। बड़े बाबाजी महाशय ने पूछा, "किशोरी, तुम्हारा मुख आज मलिन क्यों है? क्या कोई दु:ख है?" किशोरी बाबू ने कहा, "नहीं बाबा, विशेष तो कोई दु:ख की बात नहीं, पर आज एक कार्य मेरी धारणा के विपरीत हो गया। मैंने शुरू से ही निश्चय कर रखा था कि इस मुकदमे में बालक की जीत हो। परन्तु श्रीश्रीजगन्नाथदेव से प्रार्थना कर जब तजबीज लिखी तो देखा कि उसकी हार हो गयी। मैं सोचता हूँ कि शायद मैंने अन्याय किया।" बड़े बाबाजी महाशय ने कहा, "भाई, जगन्नाथ की कृपा से ठीक ही निर्णय हुआ है, क्योंकि यह बालक मुकदमे के पहले से ही नियमपूर्वक श्रीजगन्नाथदेव से प्रार्थना किया करता था—हे प्रभो, मुझे इस मठकी महन्ताई से कोई प्रयोजन नहीं; मैं चाहता हूँ कि निर्विघ्न और स्वच्छन्द होकर इन बाबाजी लोगों के साथ रहूँ। भक्तवत्सल जगन्नाथदेव ने उसकी सुनली। इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं।"

उधर शीतलदास को घर ले जाने के लिए उसके पिता, माता, भाई और आत्मीय स्वजन विशेष चेष्टा करने लगे। उसका भाई जब उसे पकड़ने लगा, तो वह चीख मारकर बड़े बाबाजी महाशय के पास आया और माता-पिता को लक्ष्य कर कहने लगा, "देखिये, आप लोगों ने तो मुझे महन्त बना दिया था। यदि मैं महन्त रहता तो क्या आप मुझे घर ले जाते? अब मैं आपका नहीं हूँ। आप लोग मेरे गुरुजन हैं, आपकी ही कृपा से मेरा संसार-बन्धन कटा है। अब आशीर्वाद दीजिये कि मैं निर्विघ्न इन लोगों के साथ रहकर भजन कर सकूँ।" बालक इस प्रकार के प्रबोध वाक्यों द्वारा माता-पिता को समझाने लगा। उसके मुख से ऐसी वैराग्यपूर्ण बातें सुनकर सब लोग विस्मित हो गये।

लाचार हो बालक के माता-पिता ने उसका हाथ पकड़कर बड़े बाबाजी महाशय के चरणों में उसे समर्पित किया और दु:खी हृदय से अपने घर चले गये। बालक के मन में आज आनन्द की सीमा न रही। आज से उसकी सारी चिन्ता दूर हो गई। बड़े बाबाजी महाशय ने श्रीमन्महाप्रभु के पादपद्म की सेवा में उसे नियुक्त कर दिया। एक महिला ने श्रीगौरांग सेवा के लिए कुछ मिष्ठान्न का बन्धान कर दिया। इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु के पादपद्म की सेवा विधिपूर्वक चलने लगी।

एक दिन बड़े बाबाजी महाशय ने पूर्वोक्त गौर-चरण चक्रवर्ती को नारायण छाता के कर्ता बाबाजी महाशय से भेक लेने का आदेश किया। गौरचरण ने कुछ आपत्ति की, पर उन्हें लाचार होकर बड़े बाबाजी महाशय का आदेश पालन करना पड़ा। उनका भेक का नाम हुआ गोविन्ददास। इस प्रकार भगवद् प्रेरणा से बड़े बाबाजी महाशय के पास एक-एककर बहुत-से पार्षद एकत्र होने लगे।

श्रीश्रीजगन्नाथदेव की स्नानयात्रा

आज श्रीश्रीजगन्नाथदेव की स्नानयात्रा उत्सव के उपलक्ष्य में प्रात:काल से ही बड़ी-बड़ी तैयारियाँ हो रही हैं। स्नानवेदी के ऊपर तरह-तरह के चन्द्रातप लगाये गये हैं। बड़े बाबाजी महाशय सहचरों सहित खोल और करताल के साथ मधुर कीर्तन कर रहे हैं। बहुत-से बोल एकत्र हो गये हैं। सभी आनन्द में उन्मत्त हैं। श्रीजगन्नाथदेव स्नानवेदी पर आकर विराजमान हैं। पण्डा लोगों ने उन्हें स्नान कराना आरम्भ कर दिया है। कैसा मधुर दृश्य और कैसी मनोहारिणी शोभा है। चारों ओर नाना प्रकार के बाजे बज रहे हैं। जयध्वनि, शंखध्वनि, और हुलुध्वनि से दसों दिशाएँ मुखरित हो रही हैं। बड़े बाबाजी महाशय ने श्रीजगन्नाथदेव का मुखचन्द्र दर्शन कर भावावेष में पदकीर्तन आरम्भ किया—

"नाचेरे गौरसंगहरि भक्तगण साथ।
सिनान मण्डपे हेरि श्रीलजगन्नाथ।।
पूरवेर भावे नाचे श्रीशचीनन्दन।
जगन्नाथे देखे जेन व्रजेन्द्र-नन्दन।।
वृन्दावन माझे जेन देवी पौर्णमासी।
अभिषेक करिछेन परम हरषि।।
स्वरूपेरे बले गोरा हासिया हासिया।
हेर गो ललिता तोमार पराण बंधुया।।
भावेर तरंगे गोरा अधीर हइल।
मातिया राधार भावे नाचिते लागिल।।
केह नाचे केह गाय विभोर हइया।
भूमे गड़ि जाय केह प्रेमाविष्ट हइया।।

—श्रीगौरांगहरि भक्तगण सहित नाच रहे हैं। स्नान-मण्डप में श्रीजगन्नाथ को देख पूर्व के भाव से श्रीशचीनन्दन नृत्य कर रहे हैं। जगन्नाथ को ऐसे देख रहे हैं जैसे व्रजेन्द्रनन्दन हों और उन्हें वृन्दावन में देवी पौर्णमासी आनन्द-पूर्वक नहला रही हों। गौरांग महाप्रभु स्वरूप से हँस हँसकर कह रहे हैं, 'हे ललिते! अपने प्राण-प्यारे को देख।' भाव की तरंग में महाप्रभु अधीर हो गये हैं। राधा के भाव में मत्त हो नाचने लगे हैं। अन्य लोग भी कोई विभोर होकर नाच रहे हैं, कोई प्रेमाविष्ट हो भूमि पर लोट-पोट हो रहे हैं।

कीर्तन सुनकर सभी आनन्दसागर में निमग्न हैं। बड़े बाबाजी महाशय के मुख से कीर्तन-पवन ऐसे वेग से बह रहा है कि न तो उसे कोई कण्ठस्थ कर सकता है और न लिख सकता है।

धीरे-धीरे समय अधिक हो गया है। प्रेमानन्द में सब सुधबुध खो बैठे हैं। सभी दादा के मुखापेक्षी हैं। श्रीश्रीजगन्नाथदेव के मुखारविन्द के दर्शन कर बड़े बाबाजी महाशय की आँखों के जल से मुख और वक्षस्थल सिंचित हो रहा है। वे जोर-जोर से क्रन्दन कर रहे हैं और श्रीश्रीजगन्नाथदेव को लक्ष्यकर न जाने क्या-क्या कह रहे हैं। कभी अभिमान, कभी दीनता और कभी आक्षेपभरे नाना भाव के गीत गा रहे हैं। इन पदों का भाव कैसा अपूर्व है। दर्शकवृन्द किसे देखें? जगन्नाथदेव को, अथवा बड़े बाबाजी महाशय को? दोनों समानरूप से चित्ताकर्षक हैं। दोनों समान भाव से सब के मन-प्राण हर रहे हैं। थोड़ी देर में भक्तों के आग्रह से कीर्तन समाप्त हुआ। महाप्रसाद आया और स्नानवेदी के ऊपर ही पंगत होने लगी। कैसा आनन्द है! हमारे आनन्दघन लीलामय प्रभु जब जो लीला

करते हैं, उसी में आनन्द का स्रोत बहने बहने लगता है। कोई किसी के मुख में प्रसाद दे रहा है, कोई किसी के मुख से निकाल कर खा रहा है। सभी बाल्यभाव में मग्न हैं। चंचलता की पराकाष्ठा है। किसी के मन में किसी प्रकार का विकार नहीं है। पिता-पुत्र एक साथ आनन्द मना रहे हैं। जाति-भेद का प्रश्न नहीं है। सभी के मन निर्विकार हैं।

यथा समय जगन्नाथदेव ने श्रीमन्दिर में प्रवेश किया। आज से जगन्नाथदेव के मणिकोठे का द्वार बन्द हो गया। दर्शन भी बन्द हो गये। इसी दर्शनाभाव का नाम है 'अनवसर'।

आलालनाथ-यात्रा

श्रीश्रीजगन्नाथदेव के अनवसर के समय सभी के मन खिन्न थे। सभी नीलाचलनाथ के विरह में दुःखी थे। साधु वैष्णवों ने व्याकुल हो श्रीधाम छोड़ अन्यत्र जाने का निश्चय किया। श्रीश्रीमन्महाप्रभु इस समय आलालनाथ जाया करते थे। अत: भक्तवृन्द ने भी इसीका अनुकरण किया। बहुत से लोगों ने एकत्र हो खोल-करताल के साथ कीर्तन करते हुए आलालनाथ को प्रस्थान किया। इस कार्य के प्रधान समाधानकर्ता थे अर्जुन साँतरा, क्योंकि उनका घर आलालनाथ जाने के रास्ते में था। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि इन लागों को शिउड़ी के महावीर जी के दर्शन करा और एक रात्रि अपने घर रख आलालनाथ ले चलें। बड़े बाबाजी महाशय के सामने जब यह प्रस्ताव रखा गया तो वे सहमत हो गये। थोड़ा-सा घूमकर शिउड़ी के महावीर जी के दर्शन करने गये। दर्शन कर उसी दिन अर्जुन साँतरा के घर पहुँचे। वहाँ कीर्तनानन्द में रात्रि व्यतीत हुई। दूसरे दिन सबेरे ही आलालनाथ को चल दिये। बड़े बाबाजी महाशय ने कीर्तन आरम्भ किया—

जगन्नाथेर अदर्शने गौरांग श्रीहरि।
चलिलेन आलालनाथ क्षेत्र परिहरि।।
भक्तगण सबे चले गौरांगेर संगे।
डुबिलेन गोराचाँद भावेर तरंगे।।
भावनिधि गोरार मने कत भाव उठे।
कभु धीरे जाय कभु द्रुतगति छुटे।।
चरणे चरण प्रभु नेचे नेचे चले।
दुबाहु तुलिया केवल 'हरिबोल' बले।।

—जगन्नाथजी के दर्शन के अभाव में श्रीगौरांग जगन्नाथ क्षेत्र छोड़कर आलालनाथ को चल दिये। भक्तगण भी सब उनके साथ चले। गौरांग भाव-तरंग में डूब गये। भावनिधि श्रीगौरांग के मन में न जाने कितने भाव उठ रहे हैं। कभी वे धीरे-धीरे चल रहे हैं, कभी तेजी से। चरणपर चरण रख नाचते चले जा रहे हैं। दोनों बाँहें उठाकर केवल 'हरिबोल' बोल रहे हैं।

इस प्रकार के सुमधुर पद गाते हुए सब लोगों ने आलालनाथ मन्दिर में प्रवेश किया। कीर्तन की ध्वनि सुन गाँववासी सब एकत्र हो गये। श्रीमन्दिर के सामने कुछ देर उद्दाम नृत्य और कीर्तन कर सबने विश्राम किया। किसी महाभाग्यवान व्यक्ति ने उस दिन आलालनाथ के विशेष भोग की व्यवस्था कर रखी थी। यहाँ का प्रसिद्ध भोग है खीर। ऐसी सुन्दर खीर का शायद और किसी ठाकुर को भोग नहीं लगता। यहाँ ठाकुर को गरम-गरम खीर का भोग लगाने का नियम है। जिन्होंने आज भोग लगाया, उनकी इच्छा थी कि सबको भली प्रकार खीर-प्रसाद का सेवन कराये। सब प्रबन्ध हो चुका। ठाकुर के भोग के पीछे सब लोग प्रसाद पाने बैठे। शुभ कार्य में बहुत विघ्न हुआ करते हैं। जैसी गरम-गरम खीर का ठाकुर को भोग लगाया गया, वैसी ही गरम-गरम भक्तों की पत्तलों पर परोसी गयी। यह बात मानो इन्द्रदेव सहन न कर सके। भारी वर्षा होने लगी। वैष्णवगण पत्तलों पर छतरी लगा गरम-गरम खीर पाने लगे। कोई-कोई वर्षा के जल से प्रसाद ठण्डा कर पाने लगे। अपूर्व आनन्द था। ऊपर और नीचे जल ही जल हो रहा था। वैष्णवगण परमानन्दपूर्वक प्रसाद पा रहे थे और मुख से 'गौर हरि बोल' की ध्वनि करते जा रहे थे। जैसे-तैसे महाप्रसाद पाकर लोग प्रेमानन्द में नृत्य करने लगे। जो भीगने के डर से ठाकुर के जगमोहन आदिक स्थानों में चले गये थे, वे भी उस अतुल आनन्द स्रोत में बहकर नीचे आगये और नृत्य कीर्तनानन्द में भाग लेने लगे। सभी एक रस में मग्न थे। वर्षा बन्द हो गयी। ठाकुर के आँगन में कीच हो गयी, पर वह थोड़ी देर में पैरों से

पुछ-पुछकर साफ हो गयी। कीर्तन में थके हुए वैष्णवों के शरीर से पसीना बहने लगा। सूखे हुए कपड़े फिर से भीग गये। अब सबके मुख से केवल एक ही शब्द निकल रहा था 'गौरहरि बोल'। किसीको देहानुसन्धान नहीं था। सन्ध्या होने पर एक भक्त ने आकर कहा, "आरति हबे, चलन्तु दर्शन करिबा हेबे।" प्रेमोन्मत्त वैष्णवों ने भक्त की भाषा को पूरा नहीं समझा, केवल इतना ही समझा कि आरती होगी। ये लोग उस समय जिस अवस्था में थे, उसी में ठाकुर के सम्मुख जाकर खड़े हो गये। इनके वस्त्र और शरीर कीच में सने थे। उपस्थित लोग इन्हें देखकर चकित हो गये। सब की दृष्टि इनकी ओर आकर्षित हुई। कोई कहने लगा, 'ये लोग पागल हो गये हैं', किसी ने कहा, 'ऐसा महापुरुष और कभी नहीं देखा।'

बड़े बाबाजी महाशय को अब सब पहचान गये थे। वे जहाँ-कहीं जाते, लोग उन्हें 'बड़े बाबाजी महाप्रभु' कहकर सम्बोधन करते। आरति समाप्त होने पर उन्होंने आरति-कीर्तन आरम्भ किया। डेढ़ पहर तक कीर्तन करने के पश्चात् सबने विश्राम किया। किसी भक्त ने ठाकुर के भोग के लिए 'काकरा पिठा' का प्रबन्ध कर रखा था। भोग के पीछे सबने महाप्रसाद पाकर वहीं परमानन्द में रात्रि व्यतीत की और सबेरे प्रभाती कीर्तन किया।

नगरकीर्तन और महोत्सव

सूर्योदय होते ही बड़े बाबाजी महाशय बहुत से लोगों के साथ नगर कीर्तन को निकले हैं। सभी परमानन्द में उन्मत्त हैं। गन्तव्य स्थान का कोई निश्चय नहीं। एक गाँव से दूसरे गाँव को जा रहे हैं। ग्रामवासी छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष, मन्त्रमुग्ध की भाँति संकीर्तन के साथ चले जा रहे हैं। सबके मुख से निकल रही है केवल एक ही ध्वनि 'गौरहरि बोल।' बालक नंगे-नंगे आगे और पीछे नाचते जा रहे हैं। उनके आनन्द की सीमा नहीं है। माता-पिता साथ होते हुए भी उन्हें रोक नहीं पा रहे। वे प्रेमानन्द में फूले संकीर्तन के साथ चले जा रहे हैं। अपूर्व दृश्य।

धीरे-धीरे दोपहर हो गयी। गाँव के एक सज्जन ने आकर बड़े बाबाजी महाशय के एक साथी से धीरे से कहा, "समय अधिक हो चुका है, आज आप लोग हमारे इस भागवतगृह में विश्राम कर हमें कृतार्थ करें।"

बड़े बाबाजी महाशय से पूछा तो उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक सम्मति दे दी। थके हुए भागवतगृह में विश्राम करने लगे। इधर भोग का सामान आने लगा। श्रीक्षेत्रवासी दो-तीन ब्राह्मण रसोइये मिलकर रसोई करने लगे। एक सौ पाँच तोले के सेरवाली तोल के हिसाब से डेढ़ मन चावल की रसोई हुई। सब लोग स्नानादि के पश्चात् बैठकर 'जय जय नित्यानन्दाद्वैत गौरांग' पद कीर्तन करने लगे। न जाने कहाँ-कहाँ से लोग एकत्र होकर आने लगे। ग्रामवासी छोटे-बड़े सभी आनन्द में आत्महारा हो आपस के वैरभाव, द्वेष-हिंसा और छोटे-बड़े की बात को भूल भागवतगृह की ओर बढ़े चले आ रहे थे। धीरे-धीरे लगभग चार सौ आदमी एकत्र हो गये और कीर्तन में योग देने लगे।

यथासमय कीर्तन समाप्त हुआ। साथ ही ठाकुर का भोग भी पूरा हुआ। बड़े बाबाजी महाशय ने कहा, "भाइयो, हम लोग विदेशी हैं। आपके गाँव में आकर आपके ही घरों से दाल चावल की भिक्षा की रसोई का आपके ही ठाकुर को भोग लगाया है। आपको महाप्रसाद पाने में कोई आपत्ति तो नहीं है? देखिये, भगवन्निवेदित महाप्रसाद स्पर्श दोष से नष्ट नहीं होता। 'स्पर्श दोषे महाप्रसाद नष्ट नाहि हय। नष्ट दोष घटाइले नरक निश्चय।।' अर्थात् स्पर्शदोषसे महाप्रसाद नष्ट नहीं होता, उसे नष्ट मानने से निश्चय ही नरक मिलता है। शास्त्र में यह भी कहा है—

शुष्कं पर्युशितं वापि नीतं वा दूरदेशतः।
प्राप्तमात्रेण भोक्तव्यं नात्र काल विचारणा।।

—महाप्रसाद शुष्क हों अथवा बासी, अथवा दूर से लाया गया हो, प्राप्त होते ही पा लेना कर्तव्य है। इसमें समय का भी विचार नहीं करना चाहिये।

एक स्थानीय सज्जन ने बड़े बाबाजी महाशय के उपदेश को सब लोगों को समझाया और उनकी बड़ी प्रशंसा की। उसे सुन उपस्थित लोग एक स्वर से बोल उठे, "महाप्रभु, आजि आम्भ मानस्कर भाग्य थिला जे एहि देशरे आपन आसि विजय कले, आपनस्कर प्रसाद

पाइले आझे तरि जिवा।" तब बड़े बाबाजी महाशय ने सब को एक साथ एक पंगत में बैठाने का आदेश किया। किसी-किसीने आपत्ति की 'आप नहीं बैठेंगे तो हम भी नहीं बैठेंगे'। परन्तु यह आपत्ति न चली। उन्होंने हाथ पकड़-पकड़ और अनुनय विनय कर सब को बिठा दिया। फिर रसोइयों से कहा, "देखो भाई, कोई चिन्ता न करना, हृदय खोलकर परोसना। परम दयाल निताइचाँद कोई अभाव न होने देंगे।" सबने 'हरि बोल' कहकर जयध्वनि की। आश्चर्य की बात, सबने खूब पेटभर महाप्रसाद पाया। उसके बाद प्रायः सौ स्त्रियाँ आ पहुँचीं। उनको भी प्रसाद दिया गया। अन्त में परिवेषक और बड़े बाबाजी महाशय प्रसाद पाने बैठे। उस समय एक पहर रात्रि बीत चुकी थी। इस महोत्सव को देख सब चकित रह गये और आपस में काना-कानी करने लगे, "देख, केत्ते चाउल रान्धि केत्ते लोक खुवाइले। ए बाबाजी महाप्रभु सामान्य नुहे, निश्चय ए जने महापुरुष।"

वह रात्रि उस गाँव में ही बीती। दूसरे दिन प्रातः काल सब लोग कीर्तन करते-करते चल दिये। गन्तव्य स्थान का कुछ निश्चय नहीं। किधर जा रहे हैं, कुछ पता नहीं। एक गाँव के बाद दूसरे गाँव को कीर्तनानन्द में बहाते हुए पाँच छह दिन इसी प्रकार भ्रमण करते रहे। फिर श्रीक्षेत्र लौटने की बात याद आयी।

श्रीक्षेत्र की याद आते ही बड़े बाबाजी महाशय ने बलराम बाबू से पूछा, "यहाँ से पुरीधाम कितनी दूर है?" बलराम बाबू ने उत्तर दिया, "पुरीधाम यहाँ से ग्यारह-बारह कोस उत्तर-पूर्व में है।" बड़े बाबाजी महाशय ने और कुछ न कहा। बड़े सबेरे उठकर संकीर्तनानन्द में उन्मत्त हो श्रीधाम पुरी की तरफ चल दिये। तीन-चार कोस निकल गये। तब एक गाँव के बहुत-से भक्तों ने वहाँ ठहर जाने का अनुरोध किया। उन्होंने उस दिन उनका आतिथ्य स्वीकार किया। द्वादशी के दिन दोपहर के समय पुरी में समुद्र तीर पर जा पहुँचे। परमानन्दपूर्वक समुद्र स्नान कर कीर्तन करते हए श्रीश्रीजगन्नाथदेव के श्रीमन्दिर की तरफ जा रहे थे, उसी समय गंगा-माता मठ के पुजारी जी आये और बहुत आग्रह कर उन्हें महाप्रसाद पाने के लिए मठ में ले गये। वहाँ परमानन्दपूर्वक महाप्रसाद पाया। फिर कीर्तन करते-करते श्रीश्रीजगन्नाथवल्लभ मठ में आकर विश्राम किया।

श्रीश्रीजगन्नाथदेव का नवयौवन-दर्शन

देखते-देखते अमावस्या आ गयी। आज श्रीश्री जगन्नाथदेव का नवयौवन दर्शनोत्सव है। श्रीमन्दिर खचाखच भरा है। भीड़ के बीच में होकर बड़े बाबाजी महाशय "जय जय नीलाचलचन्द्र जगन्नाथ। कृपा करि कर प्रभु शुभ दृष्टिपात।।" गाते हुए और उद्दण्ड नृत्य करते हुए श्रीश्रीजगन्नाथदेव के सम्मुख पहुँचे और साष्टांग प्रणाम किया। थोड़ी देर में श्रीमन्दिर का द्वार खुला। बड़े बाबाजी महाशय ने बहुत दिन पीछे श्रीश्रीजगन्नाथदेव का मुखारविन्द दर्शन कर प्रेमानन्द में विभोर हो कीर्तन प्रारम्भ किया—

बहुदिन परे आज देखिया श्रीमुख।
खण्डिल हृदय-व्यथा पराणेर दुःख।।
देख न चाहिया किबा रूपेर माधुरी।
चाँदमुख देखे सबे आपना पासरि।।

—बहुत दिन पीछे आज श्रीमुख के दर्शन कर हृदय की व्यथा और प्राणों का दुःख दूर हुआ। अब जी भर के रूपमाधुरी के दर्शन करो और मुखचन्द्र के दर्शन कर सब अपने-तन-मन की सुध भूल जाओ।

कीर्तनानन्द में सभी आत्महारा हैं। स्त्री-पुरुष सभी ताली बजा-बजाकर नाच रहे हैं। किसी को किसी प्रकार का संकोच नहीं है। सभी प्रेमानन्द में विभोर हैं। थोड़ी देर बाद कीर्तन समाप्त हुआ।

गुण्डिचा-मार्जन

आज फिर सिद्धबकुल मठ में प्रसाद पाने के लिए निमन्त्रण है। बड़े बाबाजी महाशय यह कीर्तन करते हुए पधारे, 'निताइ एनेछे नाम, हरि बोल, हरि बोल।' सिद्धबहुल मठ के अधिकारी कृष्णदास बाबाजी महाशय ने बड़े सम्मान के साथ उनका स्वागत किया और नाना प्रकार के प्रसाद पवाकर परितृप्त किया। पंगत में बातचीत होते-होते श्रीमन्महाप्रभु की गुण्डिचामार्जन लीला की बात उठी। किसी वैष्णव ने

कहा, "गुण्डिचा-मार्जन लीला की बात ग्रन्थ में है, पर उसका आचरण कभी नहीं देखा। श्रीमन्महाप्रभु की उस लीला का अनुकरण करना तो भक्त मात्र का कर्तव्य है।" यह सुन गम्भीरा के श्रीहरिभजनदास बाबाजी महाशय ने कहा, "पहले यह लीला इसी प्रकार आचरित होती थी। कई कारणों से गंगामाता मठ के कीर्तन के ऊपर वादविवाद हो गया। तब से वे लोग इस उत्सव में भाग नहीं लेते। केवल गम्भीरा का कीर्तन नियमरक्षा के लिए नाम मात्र को हुआ करता है। इसी कारण कोई लीलानुभव नहीं होता। काल के प्रभाव से लीला लुप्त-सी हो गयी है।" तब बड़े बाबाजी महाशय ने कहा, "इस अपूर्व उत्सव के पुनरुद्धार के लिए आप सब लोगों को विशेष रूप से यत्न करना चाहिये, क्योंकि इस अपूर्व गुण्डिचा-मार्जन सेवा को श्रीगौरांग महाप्रभु ने राजा से माँगकर लिया था।" यह सुनकर सिद्धबकुल मठ के अधिकारी ने बड़े बाबाजी महाशय से कहा, "आप यदि कुछ चेष्टा करें तो हमारा विश्वास है कि श्रीमन्महाप्रभु की इस लुप्त-प्राय: अनुपम लीला-सेवा का पुनरुद्धार हो सकता है।" बड़े बाबाजी महाशय ने कहा, "बाबा, मैं अवश्य ही प्राणप्रण से चेष्टा करूँगा। आप सबका आशीर्वाद और परमदयाल निताइचाँद की कृपा चाहिये।" यह कहकर पंगत में ही वैष्णव मण्डली से हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे, "आप लोग कृपा कर कल दोपहर के समय सिंहद्वार पर हमारे कीर्तन में योगदान करें तो मैं कृतार्थ होऊँ। यह आप लोगों का ही कार्य है। आप लोग जिस रास्ते हमें ले चलेंगे हम उसी पर चलेंगे।" सब लोग कहने लगे, "यह तो हम लोगों के बड़े सौभाग्य की बात है। श्रीगौरांग महाप्रभु स्वयं आचरण कर जो सेवाकार्य दिखा गये हैं, उसका आचरण करना हमारा परम कर्तव्य है।" तब सिद्धबकुल मठ के महन्त परमानन्ददास बाबाजी महाशय और अधिकारी कृष्णदास बाबाजी महाशय स्वयं बोल उठे, "इस महान शुभ कार्य में हम लोग भी अवश्य भाग लेंगे।"

बातचीत होते-होते पंगत समाप्त हुई। बड़े बाबाजी महाशय दलसहित गंगामाता मठ गये, बिहारी पुजारी और महन्त माधवदास बाबाजी महाशय से गुण्डिचा-मार्जन के सम्बन्ध में बातचीत की। वे लोग भी उत्साह से बोले, "यह तो उत्तम बात है, आप थोड़ी चेष्टा कीजिये, उसीसे सब हो जायगा। हम लोग अवश्य ही योगदान करेंगे।" तब बड़े बाबाजी महाशय ने बलराम बाबू से कहा, "देखो बलाइ, जैसे भी हो सौ नयी कलसियाँ और झाडू संग्रह करो।" बलराम बाबू बड़े बाबाजी महाशय के आदेश को शिरोधार्य कर हँसते-हँसते बोले, "कुछ महाप्रसाद का प्रबन्ध कर लिया जाय तो कैसा?" बड़े बाबाजी महाशय ने हँसकर उत्तर दिया, "तब तो कहना क्या, हमलोग तो केवल महाप्रसाद ही जानते हैं। प्रभु यदि कृपा कर हमें इतना प्रसाद न देते तो क्या हमारे जैसे लोग उनका भजन करते?" सब लोग उच्चस्वर से हँस पड़े। फिर सब नाम-संकीर्तन करते हुए श्रीश्रीजगन्नाथवल्लभ मठ को चल दिये। सुचतुर बलराम बाबू ने इसी बीच झाडू और कलसियों का प्रबन्ध कर लिया।

बलराम बड़े बाबाजी महाशय के परिकरों में ऐसे ही थे, जैसे महाप्रभु के परिकरो में वाणीनाथ। वे भी पट्टनायक थे और ये भी। इतना ही अन्तर था कि श्रीमन्महाप्रभु वाणीनाथ को कोई आज्ञा नहीं देते थे, परन्तु ये महापुरुष आवश्यकतानुसार बलराम को आदेश दिया करते थे। ये बलराम के अतिरिक्त और किसी से कोई काम नहीं लेते थे। बलराम भी इनकी आज्ञा पालन में सदैव तत्पर रहते थे। गृह, धन, स्त्री, पुत्र, परिजन सब देकर भी इन महापुरुष को प्रसन्न रखने में बलराम बाबू कुण्ठित नहीं होते थे। महापुरुष भी इन पर खूब प्रसन्न रहते थे। महीने में प्राय: पन्द्रह दिन बलराम बाबू का कचहरी जाना नहीं होता था। फिर भी कोई अभाव नहीं रहता था।

जेइ जन भजे मोरे अनन्य हइया।
तारे भिक्षा देइ मुञि माथाय बहिया।।

—जो मेरा अनन्य भाव से भजन करता है उसके लिए मैं अपने सिर पर ढोकर भिक्षा ला देता हूँ।

इस महावाक्य की सार्थकता का लोगों ने बलराम बाबू में प्रत्यक्ष अनुभव किया।

अगले दिन सब ने नरेन्द्र सरोवर पर प्रात:कृत्य समाधान कर और कीर्तन के साथ श्रीश्रीजगन्नाथदेव

के श्रीमन्दिर की परिक्रमा कर उसमें प्रवेश किया। वहाँ नियमित कीर्तन कर बल्लभभोग का थोड़ा-थोड़ा प्रसाद लिया और फिर श्रीमन्दिर के दक्षिण दरवाजे पर लालाबाबू के सत्र में गये। सत्र के मैनेजर प्यारेमोहन बाबू इन लोगों से बड़ा स्नेह करते थे। उन्होंने बड़े सम्मान के साथ इन्हें आसन दिये और सेवक दीनबन्धुदास को प्रसाद लाने की आज्ञा की। सेवक परम भक्त और मैनेजर बाबू से भी अधिक उत्साही था। वह शीघ्र तरह-तरह के मिष्टान्न और पाखाल प्रसाद ले आया। महाप्रसाद पाकर सब लोग गम्भीरा की कीर्तन मण्डली साथ ले जगन्नाथवल्लभ में गये। वहाँ जाकर देखा कि लोग झाड़ू, कलसी, खोल, करतालादि लिये इनकी बाट देख रहे हैं। इन्हें देखते ही वे हरि-ध्वनि करने लगे। इसी बीच श्रीपाद रघुनाथदेव गोस्वामी प्रभु और श्रीपाद हरिदेव गोस्वामी प्रभु भी आ पहुँचे। सब आनन्द में मत्त हो गये। बड़े बाबाजी महाशय ने निताइचाँद की करुणा की जय देकर कीर्तन प्रारम्भ किया—

"भावावेशे महाप्रभु भक्तगण संगे।
नाचिते नाचिते चले अति मनोरंगे।।
काल आसिबेन प्राणबँधु निकुंज मन्दिर।
स्थान उपस्करिबारे चल गो सत्वर।।
नाना जाति फूल तुल कुंज सजाइब।
सुगन्धि कुसुम हार बंधु गले दिब।।
कुसुम तलपे बन्धु शुतिबेन सुखे।
बासित ताम्बुल लेइदिब चाँदमुखे।।
सुचामर धरि केह करिबे बीजन।
केह बा करिबे मृदु पाद-संवाहन।।
चुया चन्दन गन्ध दिब चारिभिते।
रसमय बधु केलि करिबे निभृते।।

—भावावेश में महाप्रभु भक्तों के साथ नाचते-नाचते द्रुत गति से चले जा रहे हैं और कह रहे हैं, 'कल प्राणबन्धु निकुंज मन्दिर में पधारेंगे। चलो, जल्दी चलें कुंज को साफ करने। नाना प्रकार के फूल तोड़कर कुंज सजायेंगे। सुगन्धित फूलमाला बन्धु के गले में पहनायेंगे। फूलों की सेज पर बन्धु सुख से सोयेंगे। हम सुगन्धित पान मुखचन्द्र में देंगे। कोई सुन्दर चँवर ढुलायेगा, कोई कोमल चरणों की सेवा करेगा, चारों ओर चन्दन की गन्ध बिखेर देंगे। रसमय बन्धु एकान्त में केलि करेंगे।

मधुर कण्ठ की मधुर ध्वनि से चारों दिशाएँ प्रतिध्वनित होने लगीं। थोड़ी देर में सबने प्रेमावेश में श्रीश्रीगुण्डिचा मन्दिर में प्रवेश किया। श्रीश्रीनित्यानन्द-सन्तान राजगुरु श्रीपाद रघुनाथदेव गोस्वामी प्रभु और श्रीपाद हरिदेव गोस्वामी प्रभु रत्नवेदी के ऊपर झाड़ू देने लगे। अन्यान्य सैकड़ों भक्तों ने क्षणभर में मन्दिर में नीचे ऊपर सब साफ कर दिया। जहाँ उनका हाथ नहीं पहुँचा, वहाँ एक दूसरे के कन्धे पर चढ़कर सफाई की। थोड़ी देर में बड़े बाबाजी महाशय ने 'जल-जल' की आवाज दी। कूएँ से जल निकालना आरम्भ हो गया। कोई-कोई इन्द्रद्युम्न सरोवर से सिर पर कलसी रखकर जल लाने लगे।

सभी आनन्दसागर में निमग्न थे। गुण्डिचा मन्दिर आनन्दकानन हो रहा था। एकाएक रघुनाथदेव गोस्वामी प्रभु भावाविष्ट हो रत्नदेवी के ऊपर से कूदकर नीचे आये और नाचते-नाचते कहने लगे, "यह देखो, हमारे निताइ-गौर दोनों भाई नाच-गाच कर श्रीमन्दिर मार्जन कर रहे हैं। हाय! कैसी अपरूप शोभा है?" उनके यह कहते ही बड़े बाबाजी महाशय के मन में एक अनिर्वचनीय भाव का उदय हुआ। उन्होंने आवेश में पद उठाया—

ऐ जे आमार निताइ गौर नाचे मनोरंगे।
श्रीअद्वैत गदाधर नाचे संगे संगे।।

गोस्वामी प्रभु अचैतन्य अवस्था में भूमि पर पड़े हैं। सभी भाव में उन्मत्त हैं। छोटे-बड़े का भेद भूलकर कोई किसी के सिर पर जल डाल रहा है, कोई भाव में विभोर हो किसी के चरणों में गिर अजस्र अश्रुपात कर रहा है। एक सौ कलसियों की जगह कई सौ कलसियाँ मौजूद हैं। जल भीतर से बाहर सिंहद्वार होता हुआ रास्ते में बह रहा है। उपस्थित भक्तवृन्द इस अपूर्व उत्सवानन्द का सुख भोग रहे हैं। ऐसा लगता है कि साक्षात् निताइचाँद बड़े बाबाजी के रूप में लीला कर रहे हैं। इसी से इतना आनन्द आ रहा है। जिस लीला को श्रीमन्महाप्रभु ने प्रकट किया था, जिसका शास्त्रों

में वर्णन है, उसीका आज चारसौ से कुछ अधिक वर्ष पीछे इन महापुरुष की कृपा से हम भोग कर रहे हैं। कोई प्रेमानन्द में रोकर अधीर हो रहा है, कोई जहाँ-जहाँ बड़े बाबाजी महाशय जल की कलसी लिये नाचते-नाचते जा रहे हैं, वहाँ लोट-लोट कर अपने को धन्य मान रहा है। बड़े बाबाजी महाशय की गुण्डिचा-मन्दिर-मार्जन-लीला के आनन्द का वर्णन सामान्य लेखनी से नहीं हो सकता। जिन भाग्यवानों ने उनके साथ रहकर उस लीला का दर्शन किया है, वही उसकी माधुरी का अनुभव कर सके हैं। उनकी अद्‌भुत कृपा शक्ति के प्रभाव से गुण्डिचा-मार्जन-लीला का आनन्द आज भी उपलब्ध है। यदि कोई उनके पदाश्रित भक्तवृन्द के साथ जा इस लीलाको देखे, तो वह मुक्त कण्ठ से स्वीकार करेगा कि हमारी सामान्य लेखनी से उस आनन्द का शतांश भी प्रकाशित नहीं हुआ।

सबने मिलकर प्रेमानन्द में रत्नवेदी और मणिकोठे को धो डाला। कोई-कोई टूटी हुई कलसी के खपरों से जल फेंक कर मन्दिर की दीवारऔर छत धोने लगे। इस प्रकार भक्तवृन्द ने जगमोहन, बाहर का चबूतरा, भोग-मण्डप और रसोई-घर आदि मन्दिर के सब भागों को धोकर अपनी-अपनी मनोवृत्ति की भाँति स्वच्छ और निर्मल कर दिया। अन्त में सब मिलकर जलकेलि की इच्छा से इन्द्रद्युम्न सरोवर पर पहुँचे। एक-एक कर सब जल में कूद पड़े। सब का बालकों का-सा चंचल स्वभाव हो गया। कोई किसी को बलपूर्वक खींच कर गहरे जल में ले जाने लगा। कोई किसी को कन्धे पर उठा जल में नाचने लगा। बड़े बाबाजी महाशय तैरने में निपुण थे। बिना हाथों की सहायता के खड़े-खड़े पैरों से तैरते हुए बहुत दूर तक चले गये। मालूम होता था कि जल पर पैदल चले जा रहे हैं। फिर चित्त होकर जल के ऊपर तैरने लगे। लगता था कि काठ की मूर्ति तैर रही है।

इस समय एक व्यक्ति ने एक दस-ग्यारह वर्ष के बालक को उठाकर उनके वक्ष पर बैठा दिया। उसे देख एक भक्त भावावेश में कहने लगे, "देखो, देखो, ठीक अनन्तशय्या बन गयी।" इसी प्रकार जलकेलि होने लगी। भक्तवृन्द के आनन्द की सीमा न रही। आनन्द के प्रधान स्रोत थे रघुनाथदेव गोस्वामी प्रभु और बड़े बाबाजी महाशय। इनका परस्पर परम सख्यभाव था। दोनों एक-दूसरे के बड़े भाई के सदृश थे। परस्पर मिलन होते ही दोनों आत्मविस्मृत हो जाते थे। परस्पर खींचातानी और हाथापाई होने लगती थी। उस समय दोनों श्रीनित्यानन्द-अद्वैतभाव से विभावित हो जाते थे।

जलकेलि समाप्त होते ही महाप्रसाद का उद्योग होने लगा। पीठा पाना और मिष्ठान्न प्रसाद सब इकट्ठा कर मिला दिये गये। अनुमान से कहीं अधिक लोगों की संख्या हो गयी। पत्तलें कम पड़ गयीं। तब कोई कपड़े पर, कोई किसी दूसरे की पत्तल पर और कोई पंगत के बाद प्रसादी पत्तल पर महाप्रसाद पाने लगे। डेढ़ पहर रात्रि व्यतीत होने पर प्रसाद पाने की लीला पूरी हुई। तब सब लोग उच्च कण्ठ से बड़े बाबाजी महाशय को प्राणभर धन्यवाद देने लगे। समारोह के साथ श्रीश्रीगुण्डिचामार्जन उत्सव पूराकर सब कीर्तन करते-करते आनन्दपूर्वक अपने-अपने वासस्थान को चल दिये।

रथयात्रा-उत्सव

कल रथयात्रा-उत्सव है। सब के मन में आनन्द का स्रोत बह रहा है। नाना प्रकार के भाव उदय हो रहे हैं। सबेरे श्रीश्रीजगन्नाथदेव रथ पर बैठेंगे, जी भरकर उनका श्रीमुख दर्शन करेंगे, इस उत्कण्ठा में मानो रात्रि बीत गयी। जल्दी-जल्दी नरेन्द्र सरोवर पर प्रातःकृत्य समाप्त कर सब लोग श्रीश्रीजगन्नाथदेव की 'पहण्डी विजय' देखने श्रीमन्दिर की ओर चल दिये। इधर सेवकगण ठाकुर को खिचड़ी भोग लगाकर और बहुमूल्य रेशमी वस्त्रों द्वारा श्रीश्रीबलभद्र, श्रीश्रीसुभद्रा और श्रीश्रीजगन्नाथ के श्रीअंगों को यत्न-पूर्वक सजाकर एक-एक कर ले जाने लगे। बड़े बाबाजी महाशय दलबल सहित उपस्थित थे। श्रीश्रीजगन्नाथदेव को देख वे भावगद्‌गद् कण्ठ से कीर्तन करने लगे—

आसिछेन जगन्नाथ हेलिया दुलिया।
नाचे रे गौरांग आमार हेमकिरनिया।।
स्वरूप रामानन्द दोहे रहे दुइ पाशे।
मातल गौरांग चांद राधाभावावेशे।।

—जगन्नाथ झूमते-झूमते आ रहे हैं। हमारे गौरांग, जिनके शरीर से हेमवर्ण की किरणें निकल रहीं हैं, नाच रहे हैं। स्वरूप रामानन्द दोनों ओर बगल में हैं। श्रीश्रीगौरांग राधा-भाव में मत्त हैं।

श्रीश्रीजगन्नाथदेव मत्त होकर हँसते-हँसते एक गद्दे से उछल कर दूसरे पर जा रहे थे। साथ-साथ गद्दा फटने का शब्द हो रहा था और रुई ऊपर को उड़ रही थी। यह देख बड़े बाबाजी महाशय प्रेमानन्द में मत्त हो 'हरिबोल' कहकर नाच रहे थे। उपस्थित भक्तवृन्द को लगता था जैसे गद्दा नहीं फट रहा, बड़ेबाबाजी महाशय के हृदय से आनन्द उत्स छूटकर दर्शकवृन्द के हृदयक्षेत्र को प्लावित कर रहा है। धीरे-धीरे श्रीश्रीजगबन्धु ने रथ पर आरोहण किया। रथ चालकों ने आकर रथ के रस्से उठाये। यात्रिगण ने गगनभेदी 'हरिबोल' ध्वनि, शंखध्वनि और मंगलमय उलुध्वनि से जगत् को मत्त कर दिया। पण्डों के 'झाँकर झाँइ' नामक झाँझों के शब्द के कारण लोगों को कान बन्द करने पड़े। कीर्तन मण्डलियों के मृदंग और करतालों की ध्वनि से दसों दिशाएँ प्रतिध्वनित होने लगीं। बड़े बाबाजी महाराज का वही जगन्मनोहारी मधुर कीर्तन आरम्भ हुआ। उन्हें न पदकर्ता की आवश्यकता थी, न ग्रन्थ देखकर पद पढ़ने की। संगीगण उनके मुख की ओर देख रहे थे। रथ गड़-गड़ कर चलने लगा। वे अब तक अनिमेष नयनों से श्रीश्रीजगन्नाथदेव का मुखचन्द्र दर्शन कर रहे थे। एकाएक न जाने क्या देख गद्गद् कण्ठ से स्वरचित पद गाने लगे—

"रथेर आगे नाचे गौर राधाभावावेश।
आनन्दे भकतगण नाचे चारि पाशे।।
निताइ अद्वैत गदाधर श्रीवासादि।
विभोर हइया भावे नाचे निरवधि।।
स्वरूप रामराय नाचे गोविन्द मुकुन्द।
वासुदेव घोष, वक्रेश्वर, शिवानन्द।।
गौड़देशवासी जत भक्त अगणन।
गोरा संगे नाचे भावे हइया मगन।।
जगन्नाथे चाहि गोरा कत कि ना बले।
मुख बुक भासि जाय नयनेर जले।।
पूर्वे जेन कुरुक्षेत्रे सब गोपीगण।
कृष्णेर दर्शन पाञा आनन्दित मन।।
जगन्नाथ देखि प्रभुर से भाव उठिल।
राधाभावे कृष्ण ठाञि कहिते लागिल।।
शुन हे परान बन्धु मोर निवेदन।
वृन्दावने चल जाइ कमललोचन।।
शेइ तुमि शेइ आमि शे नवसंगम।
तथापि आमार मन हरे वृन्दावन।।
इँहा लोकारण्य हाथी घोड़ा रथध्वनि।
ताँहा पुष्पवन भृंग पिक नाद शुनि।।
इँहा नव नटवर मुरलीवदन।।
व्रजे तोमा संगे शेइ सुख आस्वादन।
शे सुख समुद्रेर इँहा नाहि एक कण।।
आमा लञा पुनः लीला कर वृन्दावने।
तबे मोर मन साध हय त पूरणे।।

—रथ के आगे श्रीगौरांग राधाभावावेश में नाच रहे हैं, भक्तगण आनन्दपूर्वक चारों ओर नाच रहे हैं। निताइ, अद्वैत, गदाधर और श्रीवासादि भाव में विभोर हो निरन्तर नृत्य कर रहे हैं। स्वरूप, रामानन्द राय, गोविन्द, मुकुन्द, वासुदेव घोष, वक्रेश्वर, शिवानन्द और जितने भी गौड़वासी भक्त हैं, जिनकी गणना नहीं हो सकती, गौरांग महाप्रभु के साथ भाव में मग्न हो नृत्य कर रहे हैं। जगन्नाथ को देख महाप्रभु न जाने कितना कुछ कह रहे हैं। उनका मुख और वक्षस्थल नेत्रों के जल से भीग रहे हैं। जैसे पहले कुरुक्षेत्र में सब गोपियों का मन कृष्ण के दर्शन कर आनन्दित हुआ था, वैसे ही जगन्नाथ को देख प्रभु के मन में आज भाव उठा। वे राधाभाव में कृष्ण से कहने लगे, 'सुनो, हे प्राणबन्धु, मेरा निवेदन। चलो चलें वृन्दावन, हे कमल लोचन। वही तुम हो, वही मैं, वही नया मिलन। फिर भी मेरे मन को है भाता वृन्दावन। यहाँ तो है लोगों की भीड़, हाथी-घोड़े और रथों की ध्वनि; वहाँ है पुष्पवन, भौंरों और कोयलों का नाद यहाँ है तुम्हारा राजवेश और साथ हैं मित्र और अन्य पात्र। वहाँ हो नवनटवर मुरलीधारी गोपाल! वहाँ तुम्हारे साथ जिस सुख का आस्वादन होता है, उस सुखसमुद्र का नहीं यहाँ, एक भी कण। फिर करो लीला वृन्दावन में मेरे साथ, तब तो हो पूरी मेरी साध, हे वंशीवदन।"

गाते-गाते नृत्य आरम्भ किया। थोड़ी देर में श्रीमन्महाप्रभु का श्रीजगन्नाथ दर्शन कर राधाभावावेश में प्रलाप कीर्तन करने लगे—

अन्येर जे अन्य मन, आमार मन वृन्दावन,
मने वने एक करि जानि।
ताहाँ तोमार पदद्वय, कराह जदि उदय,
तबे तोमार पूर्ण कृपा मानि।।
प्राणनाथ! शुन मोर सत्य निवेदन।
व्रज आमार सदन, ताहाँ तोमार संगम,
ना पाइले ना रहे जीवन।।
पूर्वे उद्धव द्वारे, एबे साक्षात् आमारे,
जोग-ज्ञानेर कहिले उपाय।
तुमि विदग्ध कृपामय, जान आमार हृदय,
मोरे ऐछे कहिते ना जुयाय।।
चित्त काढ़ि तोमा हैते, विषये चाहि लागाइते,
जत्न करि नारि काढ़िबारे।
तारे ज्ञानशिक्षा कर, लोक हासाइया मार,
स्थानास्थान ना कर विचार।।
नहे गोपी जोगेश्वर, तोमार पदकमल,
ध्यान करि पाइबे सन्तोष।
तोमार वाक्य परिपाटी, तार मध्ये कुटिनाटि,
शुनि गोपीर बाढ़े आर रोष।।
देह स्मृति नाहि जार, संसार कूप काहाँ तार,
ताहा हैते ना चाहे उद्धार।
विरह-समुद्र जले, काम तिमिंगिले गिले,
गोपीगणे लेह तार पार।।
वृन्दावन, गोवर्धन, जमुना पुलिन वन,
शेइ कुंजे रासादिक लीला।
सेइ ब्रजे ब्रजजन, माता पिता बन्धु गण,
बड़ चित्र केमने पाशरिला?।।
विदग्ध, मृदु सद्गुण, सुशील स्निग्ध करुण,
ताहे तोमाय नाहि दोषाभास।
तबे जे तोमार मन, नाहि स्मरे ब्रजजन,
से आमार दुर्दैव विलास।।
ना गणि आपन दुःख, देखि ब्रजेश्वरी मुख,
ब्रजजनेर हृदय बिदरे।
किबा मान ब्रजवासी, किबा जियाओ ब्रजे आसि,
केन जियाओ दुःख सहिबारे।।
तोमार जे अन्य-वेश, अन्य-संग अन्य-देश,
ब्रज जने कभु नाहि भाय।
ब्रजभूमि छाड़िते नारे, तोमा ना देखिले मरे,
ब्रजजनेर कि हबे उपाय।।
तुमि ब्रजेर जीवन, तुमि ब्रजेर प्राणधन,
तुमि ब्रजेर सकल सम्पद!
कृपार्द्र तोमार मन, आसिजियाओ ब्रजजन,
ब्रजे उदय कराह निज-पद।।

(चै.च. 2/13/130-140)

—औरों का मन है अन्य प्रकार का, मेरा तो मन ही है वृन्दावन। मन और वन को एक मानती हूँ मैं। उस मन में यदि अपने चरणकमलों को उदय कराओ, तो जानूँ तुम्हारी पूर्ण कृपा। सुनो हे प्राणनाथ! सुनो मेरा सत्य निवेदन। वृन्दावन ही है मेरा घर। वहाँ यदि तुम्हारा न मिलेगा संग, तो प्राण न रह सकेंगे। पहले उद्धव द्वारा और अब अपने आप, तुमने हमें योग और ज्ञान का उपाय बताया, सो हे कृपामय, तुम तो बड़े चतुर हो, क्या हृदय का हाल नहीं जानते? मेरे साथ ऐसा करना उचित नहीं। तुमसे चित्त हटाकर विषयों में लगाना चाहती हूँ, पर प्रयत्न करने पर भी हटा नहीं पाती। ऐसे चित्त को ज्ञान-शिक्षा देकर लोक में हँसी कराते हो, पात्र कुपात्र का भी विचार नहीं करते। गोपियाँ योगेश्वर नहीं जो तुम्हारे चरणों का ध्यान करके ही सुखी हो लें। तुम्हारे कपट-पूर्ण वाक्यों को सुन उनका रोष और भी बढ़ता है। जिसे देह की ही स्मृति नहीं, उसके लिए संसारकूप कैसा, और उससे उद्धार चाहने की बात भी कैसी? विरह-समुद्र में कामरूपी मगर हमें निगले जा रहे हैं। पार करदो न उस समुद्र से। भूल गये क्या वृन्दावन, गोवर्धन, जमुना-पुलिन वन-निकुंज, कुंजों में रासादिक लीला ब्रजवासी, माता-पिता और मित्रगण? कैसी विचित्र बात है। तुम विदग्ध, मृदु, सुशील, स्निग्ध, करुण और सद्गुणसम्पन्न हो। तुम्हारे इन गुणों में कोई कमी या दोषाभास नहीं। पर तुम्हें फिर भी ब्रजजनों की याद नहीं आती, यह हमारा दुर्दैव है। हमें अपने दुःख की चिन्ता नहीं। पर व्रजेश्वरी का मुख देख हमारा हृदय फटा जाता है। ब्रजवासियों को मार डालो, या ब्रज में आकर उनके प्राणों की रक्षा करो। क्यों जीवित

रखते हो उन्हें यह दु:ख झेलने के लिए? तुम्हारा दूसरी प्रकार का राजसी वेश, दूसरा वेश और दूसरे साथी, ब्रजवासियों को अच्छे नहीं लगते। वे ब्रजभूमि छोड़ नहीं सकते, तुम्हें देखे बिना जीवित भी नहीं रह सकते। उनका क्या होगा उपाय? तुम ही हो ब्रज के जीवन और प्राणधन, ब्रज की सब सम्पत्ति। तुम्हारा मन कृपा से भरा है। आकर जिलादो न ब्रजजनों को-ब्रज में उदय होने दो अपने चरण कमल।

"स्वरूपेरे धरि, कहे धीरि-धीरि,
शुनगो मरमी सखी।
रथेरे चढ़िया, आसिछे बँधुया,
अरुण कमल आँखि।।
हाँसिया बाँशीया, मु-खानि चाहिया,
कत ना उठिछे मने।
मल्लिका मालती, फूले माला गाँथि,
साजाइब सजतने।।
अति निरजने, बसिया दुजने,
हृदय ढालिया दिब।
अति संगोपने, परश रतने,
हियार माझारे थाब।।
शुनगो ललिता, मरमेर कथा,
कहिनु तोमार ठाञि।
ए तिन भुवने, प्राण बँधु बिने,
आर केह मोर नाइ।।

—स्वरूप को पकड़ श्रीगौरांग धीरे-धीरे कहते हैं, 'सुन मेरे हृदय का मर्म जानने वाली सखी। रथ पर चढ़ प्राणबन्धु आ रहे हैं। उनके अरुण कमल के समान नेत्र, और हँसोड़ा वंशीयुक्त मुख देख मेरे मन में न जाने क्या-क्या भाव उठ रहे हैं। हम दोनों मल्लिका, मालती आदि फूलों की माला गूंथ कर और निर्जन में उन्हें बैठाकर यत्नपूर्वक सजायेंगे। उनपर अपने प्राण न्यौछावर करेंगे और हृदय के भीतर अति संगोपन में उस पारसमणि को रखेंगे। सुन ललिते, अपनी मर्मकथा तुझसे कह दी। इन तीनों भुवनों में प्राणबन्धु बिना मेरा और कोई नहीं।

गाते-गाते गौरलीला मानो पुन: प्रकट हो गयी है। नेत्रों के जल से वक्षस्थल सिंचित हो रहा है। हाथ के इंगित और नयन भंगों से प्राणबन्धु से क्या-क्या कह रहे हैं, एकमात्र रसमय भावनिधि श्रीगौरसुन्दर जानते हैं या वे जो कह रहे हैं। संगीगन 'ए तिन भुवने, प्राणबन्धु बिने, आर केह मोर नाइ' इतना ही पद गा रहे हैं, और महापुरुष मधुर नृत्य कर रहे हैं। उनका विशाल शरीर नृत्य के समय बहुत छोटा प्रतीत हो रहा है। वे चरण पर चरण रख श्रीगौरांग के नित्य पार्षदरूप में गोपी-भाव से उनके पीछे-पीछे नाच रहे हैं। इस अद्‌भुत नृत्य-भंगी और अभूतपूर्व भावतरंग को जो एक बार देख लेता है, वह चित्रपुतली की तरह उनकी ओर देखता रह जाता है। जगन्नाथदेव भी मानो यह मधुर नृत्य देखते हुए धीरे-धीरे चल रहे हैं।

चलते-चलते उनका रथ बालभोग के लिए रुक गया। बड़े बाबाजी महाशय न जाने क्यों निस्तब्ध होकर खड़े हो गये। उनका उस समय का भाव देख प्रतीत होता था कि कोई प्राण-प्रिय वस्तु खो बैठे हैं और उसे अत्यन्त उत्कण्ठा से खोज रहे हैं। क्षण भर में ही उनका धैर्य टूट गया। दोनों गण्ड-स्थलों पर कालिमा छा गयी और नयनों से प्रेमधार बहने लगी। गद्‌गद् कण्ठ से कुछ बोलना चाहा, परन्तु कण्ठ रुक गया। केवल 'गो-गो' कर मूर्च्छित हो भूमि पर गिर पड़े। अष्टसात्विक विकार मानो अवसर देख रहे थे। समय पाते ही एक साथ आक्रमण कर बैठे। अश्रुजल से रज कीचमय हो गयी। विशाल देह के कम्पन से पासवाले भी कम्पित होने लगे। धूलधूसरित स्वेद-युक्त शरीर में पुलकावली ने पके कटहल के फल की शोभा धारण करली। श्रीअंग कभी फूल उठता, कभी बहुत क्षीण हो जाता। कभी हाथ पैर लोहे के समान कड़े हो जाते, कभी ढीले पड़ जाते और संधियाँ शिथिल हो जातीं। 'गो गो' शब्द के साथ मुख से झाग निकलने लगते। उत्कट विरह की उत्कण्ठा में भूमि पर मुख घिसने को उद्यत होते ही भक्तगण पकड़ कर रोक लेते। इस दशा में कुछ समय व्यतीत हुआ। बहुत सन्तर्पण से अर्धबाह्यदशा प्राप्त हुई। समीपस्थ प्रिय सहचर नवद्वीपदास के गले में बाँह डालकर धीरे-धीरे मधुर स्वर से कहने लगे:—

"के मोर मरमी बटे कारे कब दुःख।
ना हेरि गौरांग चाँद बिदरये बुक।।
काहाँ स्वरूप राम राय काहाँ नित्यानन्द।
काहाँ श्रीवास गदाधर श्रीअद्वैत चन्द्र।।
काहाँ रूप सनातन मुरारि मुकुन्द।
काहाँ हरिदास काहाँ सेन शिवानन्द।।
एइ ना रथेर आगे लये भक्त गण।
भावावेशे गोरा कत करिल नर्तन।।
सेइ जगन्नाथ सेइ रथेर साजनी।
कोथा लुकाइल मोर गोरा गुणमणि।।
अनले पशिमु किंवा भखिमु गरले।
गौरांग विरहे प्राण त्यजिमु सलिले।।
रसभरे गोरा चाँददेखिनु नाचिते।
हाराइनु हारानिधि देखिते देखिते।।
केन बा आछये प्राण कि सुख लागिया।
कि दिया गढ़ल विधि पाषाण करिया।।"

—कौन है मेरा मरमी, किससे कहूँ यह दुःख? गौरांगचाँद को बिना देखे मेरी छाती फटी जाती है। कहाँ हैं स्वरूप, रामराय और नित्यानन्द? कहाँ हैं श्रीवास, गदाधर और अद्वैत चन्द्र? कहाँ है रूप, सनातन, मुरारि और मुकुन्द? कहाँ हैं हरिदास और शिवानन्द? हाय, इसी रथ के आगेभक्तों को लेकर, भावावेश में कितना नृत्य किया था गोरा ने। ये वही जगन्नाथ हैं और वही सजा हुआ रथ, पर गुणमणि गोरा कहाँ छिप गये हैं? उनके विरह में मैं अग्नि में कूद पड़ूँगा, विष खाकर मर जाऊँगा या पानी में डूबकर प्राण दे दूँगा। अभी-अभी तो उस रसमय चाँद को नृत्य करते देखा और देखते-देखते खो बैठा उसे। अब मेरे प्राण कौन-से सुख की अपेक्षा कर रहे हैं? हाय, विधि ने इन्हें कौन सी चीज से गढ़ा है पत्थर जैसा?

फिर नीलाचलवासी भक्तगणों को लक्ष्य कर कहने लगे—

"ओगो नीलाचलवासी करि निवेदन।
एक बार देखाओ मोर पराणरतन।।
एबार पाइले देखा गोरा द्विजमणि।
हियार माझारे राखि जुड़ाव पराणि।।
काहाँ करो काहाँ जाऊँ कहत आमारे।
ना हेरि गौरांगचाँदे पराण बिदरे।।"

—हे नीलाचलवासियो, तुमसे निवेदन करता हूँ। एक बार मुझे अपने प्राण रत्न को दिखादो। एक बार द्विजमणि गोराचाँद को देख उन्हें अपने हृदय में रख, प्राणों को शीतल कर लूँ। कहाँ जाऊँ और क्या करूँ, तुम्हीं बताओ मुझे, गोराचाँद को देखे बिना मेरे प्राण विदीर्ण हो रहे हैं।

गाते-रोते वे व्याकुल हो गये। उस समय भावकुशल नवद्वीपदास के मन में एक भाव उदय हुआ। वे गाने लगे—

"ऐजे नाचिछे गोरा, भक्तगण साथे।
चलगो देखिब मोरा रथेर पश्चाते।।"

—वह देखो, गोरा नाच रहे हैं भक्तों के साथ, चलो हम लोग रथ के पीछे जाकर देखें।

यह सुन बड़े बाबाजी महाशय ने प्रेमानन्द में अधीर हो नवद्वीप को छाती से लगाकर दृढ़ प्रेमालिंगन किया और रोते-रोते कहने लगे, भाइ रे—

कि धन आमार आछे किबा दिब तोरे।
गोरा विनिमये आज किनिलि आमारे।।

—कौन-सा धन है जो तुझे दे डालूँ। गौरांग के बदले आज तूने मुझे खरीद लिया।

यह कहते हुए शीघ्रता से रथ के पीछे गये। क्या देखा, वे ही जानें। प्रेमानन्द में दोनों भुजाएँ उठाकर नाचते-नाचते रथ की परिक्रमा करते हुए जैसे ही सम्मुख आकर खड़े हुए रथ चलने लगा। उन्होंने पूर्ववत् कीर्तन आरम्भ किया—

"आवेशे गौरांगहरि स्वरूपेरे बले।
कत ना रूपेर छटा देखगो सकले।।
आसिछेन प्राण बन्धु रथेते चढ़िया।
देख ना चाहिया रूप देख ना चाहिया।।
कालिया वरणखानि चन्दनेते माखा।
नटवर नागर त्रिभंगिम बाँका।।
अरुण कमल आँखि ढुलि ढुलि चले।
हेरिया मोहन रूप पराण उछले।।"

—आवेश में गौरांग-हरि स्वरूप से कहते हैं, कैसी है उनके रूप की छटा, देखो, सब देखो! प्राण

बन्धु आ रहे हैं रथ पर। देखो न आँख खोलकर उनका . रूप। देखो, काले वर्ण पर चन्दन लगा, नटवर नागर का त्रिभंगमय बाँका रूप, और अरुण कमल के समान नेत्र ढल-ढल करते देख प्राण उछल-उछल रहे हैं।

इसी प्रकार की कितनी पद-पदावलियों का गान होने लगा। किसकी सामर्थ थी जो उन्हें लिपिबद्ध करता। दर्शकवृन्द श्रीश्रीजगन्नाथदेव का श्रीमुखदर्शन और फिर बड़े बाबाजी महाशय के प्रेम में ढल-ढल मुख को देख ताली बजा-बजाकर आनन्द से नृत्य कर रहे थे। कोई-कोई प्रेमविह्वल हो हाथ जोड़ प्रार्थना कर रहे थे—"महाप्रभु, पतितपावन, दयामय, घोर पातकी हूँ मैं, कृपाकटाक्ष करो प्रभो, तुम्हारे बिना मेरी गति नहीं।" रथ-यात्रा उत्सव के आनन्द का वर्णन करना कठिन है। सामान्य लेखनी की क्या सामर्थ्य जो इस अपार आनन्द राशि का शतांश भी वर्णन कर सके।

श्रीश्रीजगबन्धु आनन्द में हिलते-डुलते जा रहे थे। धीरे-धीरे सन्ध्या हो गयी। सब लोग थक गये। भक्तवत्सल जगबन्धु ने मानों इसीलिए उस दिन बलगण्डी के निकट विश्राम किया। भक्तगण भी अपने -अपने स्थान को चले गये। पर बाबाजी महाशय का नियम था कि जितने दिन श्रीश्रीजगन्नाथदेव रास्ते में ठहरते उतने दिन आप भी उनके साथ रास्ते में ही विश्राम करते और जो कुछ ठाकुर को भोग लगता वही महाप्रसाद ग्रहण करते। इसलिए श्रीश्रीजगन्नाथदेव की नियमित सेवा आरम्भ होने पर बहुत-से यात्री चले गये, पर बड़े बाबाजी महाशय उनकी सन्ध्या आरति दर्शन कर रास्ते के सहारे एक चबूतरे पर बैठ गये। और भी कितने भक्त उनके पास आकर बैठ गये और नाना प्रकार के प्रश्न करने लगे। पोस्ट आफिस के हैडक्लर्क गोपाल प्रसाद दत्त ने पूछा, "बाबाजी महाशय, 'पहण्डी विजय' शब्द का अर्थ क्या है?" उन्होंने उत्तर दिया, "बाबा, अच्छा प्रश्न किया है, यह बात तो तुम लोगों को ही मुझे बतानी चाहिए, क्योंकि यह शब्द उड़िया भाषा का है। हम लोगों में यह स्वाभाविक दोष है कि हम किसी विषय पर विशेष रूप से विचार नहीं करते। थोड़ा विचार कर देखो तो हमारे नित्य व्यवहार की वस्तुओं से भी बहुत-सा उपदेश मिलता है। 'पहण्ड' शब्द का अर्थ है 'पैर', पहण्डी विजय का अर्थ हो सकता है 'पैदल चलकर जाना।' लोगों ने देखा तो है कि पहण्डी विजय के समय श्रीश्रीजगन्नाथदेव उछल-उछल कर चलते हैं। तुमने शायद समझा होगा कि यह एक लीला मात्र है, परन्तु ऐसा नहीं। आनन्दमय विग्रह आनन्द में झूमते-झूमते कुछ लम्बे-लम्बे डग रखते चलते हैं। इसीलिए ऐसा दीख पड़ता है।" यह सुनकर सब लोग एक स्वर से कहने लगे, "यही बात है, 'पहण्ड' शब्द का अर्थ चलती भाषा में 'पैर' ही है।"

इसी प्रकार के प्रसंगों में कुछ समय व्यतीत हुआ। अधिक रात हुई देख भक्तगण अपने-अपने स्थान को चले गये। बड़े बाबाजी महाशय ने साथियों से कहा, "जो लोग वासस्थान को जाना चाहो चले जाओ, मैं आज नहीं जाऊँगा।" पर कोई भी वासस्थान को नहीं गया। सब रास्ते में रथ का रस्सा सिरहाने लगाकर आनन्द से सो गये। प्रातःकाल होते ही नरेन्द्र सरोवर पर जाकर स्नानादि किया और नित्यनियम से निवृत्त हो रथ के सम्मुख आ गये। इसी समय परमानन्ददास बाबाजी नामक एक वैष्णव ने इन लोगों से अपने मठ में महाप्रसाद पाने के लिए अनुरोध करते हुए कहा, "हमारे यहाँ थोड़ा महाप्रसाद पाकर जाइये न, अभी रथ चलने में देर है।" ये वैष्णव के वचन की अवहेलना न कर सके और उनके मठ में जा भाँति-भाँति के महाप्रसाद पाकर थोड़ी देर तक वहीं विश्राम किया। जगन्नाथदेव की झाँझ बजते ही रथ के सम्मुख उपस्थित हो गये। जगन्नाथदेव का रथ चलना आरम्भ हुआ। उसके साथ ही आरम्भ हुआ बड़े बाबाजी महाशय का प्रेम में विभोर हो पूर्ववत् कीर्तन।

भक्तगण कीर्तनानन्द में मत्त नृत्य कर रहे थे। जगन्नाथदेव ने मानो उनका परिश्रम देख रथ रोक दिया। इसी प्रकार यात्रा करते-करते चौथे दिन श्रीजगबन्धु ने गुण्डिचा मन्दिर में प्रवेश किया।

गुण्डिचा मन्दिर में जगन्नाथदेव

आजकल बड़े बाबाजी महाशय के मन में आनन्द नहीं समा रहा, मानो वृन्दावनचन्द्र को वृन्दावन में पाकर जी खोलकर हृदय की बातें कह शान्ति लाभ

कर रहे हैं। इसी प्रकार अविच्छिन्न आनन्द में दिन बीतने लगे। एक दिन उनके मन में एक नवीन भाव उदय हुआ। श्रीश्रीजगन्नाथदेव के मुखारविन्द की ओर देख दोनों नेत्रों से झर-झर अश्रुधार बहाते हुए भावावेश में मृदु मन्द स्वर से गाने लगे—

स्वरूप रामानन्दे गोरा संगेते लइया।
भावावेशे जगन्नाथे कहेन डाकिया।।
आमि तोमार ना देखिले मरि।
तुमि आमाय चाहनाक फिरि।।
आहीरिणी हाम गोयालिनी।
तुहुँ रसमय गुण मणि।।
नयन कमलदल जनु।
शिरीष कुसुम जिनि तनु।।
भुरुजुग कामेर कामान।
कोटि चाँद जिनिया बयान।।
आँखिठारे मजाइले प्राण।
सदा मन करे आनचान।।
अबला सरला कुलबाला।
घरे परे कि विषय ज्वाला।।
मोहे करि बाउलीर धारा।
बँधु तुहुँ उदासीन पारा।।
कि आर बलिब बँधु कि आर बलिब।
मनेर मरम कथा काहारे कहिब।।
आपन जनारे बँधु करियाछि पर।
घर कैनु कानन कानन कैनु घर।।
राति कैनु दिवस दिवस कैनु राति।
पाइब बलिया बँधु तोमार पिरीति।।
शैल सम दोंह कुल ठेलिनु चरणे।
सतीर धरम किछु ना गणिनु मने।।
एतेकेओ बँधु जदि तोमा नाहि पाऊँ।
श्यामकुण्डे झाँप दिया प्राण त्यजिबाऊँ।।
अबला सरला मोरे रूपे भुलाइया।
आँखिठारे आनियाछ घर छोड़इया।।
एबे पर हेन मोरे करिछ अन्तरे।
त्यजिब पराण, वध लागुक तोमारे।।

—स्वरूप रामानन्द को साथ ले गौरांग भावावेश में जगन्नाथदेव से पुकार कर कह रहे हैं, 'तुम्हें देखे बिना प्राण जा रहे हैं, तुम मुझे मुड़ कर देख भी नहीं रहे। हम हैं अहीरणी, ग्वालिनी, तुम रसमय गुणमणि। तुम्हारे नयन कमलदल के समान है, शिरीष पुष्प के समान शरीर। दोनों भौंहें कामदेव की कमान के सदृश हैं, और कोटि चन्द्रमाओं सदृश मुखारविन्द! नेत्रों से तुमने मेरे प्राण भेद दिये हैं, जिससे मन सदा बेचैन रहता है। अबला, सरला, कुलवती बालाएँ-हम घर के भीतर-बाहर विषम ज्वाला से पीड़ित रहती हैं। मुझे बावली बनाकर, हे बन्धु, तुम उदासीन हो रहे हो! और क्या कहूँ बन्धु, मन की मरम कहानी किससे कहूँ? हे बन्धु, अपनों को पराया कर चुकी हूँ, घर को कानन और कानन को घर बना चुकी हूँ। रात को दिन और दिन को रात कर चुकी हूँ। तुम्हारी प्रीति प्राप्त करने के लिए शैल के समान दोनों कुलों को तुम्हारे चरणों में ठेल दूँ। सती धर्म को भी कुछ नहीं गिना है तुम्हारे आगे। इतने पर भी, हे बन्धु! यदि तुम्हें न पाऊँगी, तो श्याम-कुण्ड में डूबकर प्राण गँवा दूँगी। मुझ सरला अबला को अपने रूप से भुला, नेत्रों से बहका, घर छुड़ा यहाँ ले आये हो और अब पराये की भाँति दूर कर रहे हो। मैं अब प्राण त्याग कर ही रहूँगी, तुम्हें हत्या लगे तो लगे!"

इस प्रकार आक्षेप अनुराग से उद्वेलित हो उनका विशाल शरीर आँधी के मारे कदली वृक्ष की भाँति एकदम भूमि पर गिर पड़ा। किसी की सामर्थ्य न थी जो उन्हें पकड़ कर स्थिर करता। उनकी हृदय विदारक आर्ति, और उनके करुण रोदन, प्रबल अश्रुधार और विरह-व्याकुल-भाव को देख बड़े-बड़े पाषण्डियों का भी हृदय पिघल गया। लोगों की भारी भीड़ लग गयी। चारों ओर मशालें जल रही थीं। वे जगमोहन के एक सिरे से दूसरे सिरे तक भूमि पर लोट-पोट हो रहे थे। कोई उपाय न देख लोग उन्हें पकड़ कर जगमोहन से बाहर ले गये। इससे स्थिर होना तो दूर रहा, उनकी उत्कण्ठा और बढ़ गयी। वे चीख-चीख कर रोते हुए, पृथ्वी पर लुढ़क गये। ऐसा प्रतीत होता था कि उनके हाथ पैर शरीर के अन्दर घुस गये हों। कुछ देर इसी अवस्था में रहने के पश्चात् वे अचैतन्य हो गये। सारा शरीर ढीला पड़ गया। हाथ पैरों की सन्धियाँ शिथिल

हो गयीं। बड़े ध्यान से देखे बिना यह नहीं जान पड़ता था कि श्वास चल रहा है। उनकी ऐसी अवस्था देख साथी प्राय: सभी अधीर हो गये और कहने लगे, "हाय! क्या करें? किस प्रकार दादा को स्थिर करें?"

इसी समय अकस्मात एक गेरुआ बसनधारी, आकर्ण विस्तृत-नयन, उज्ज्वल श्यामवर्ण और मध्यम आकार के अत्यन्त तेजस्वी साधु इन्हें आश्वासन देते हुए बोले, "बाबा, भय मत करो। मनुष्य शरीर में ऐसा अपूर्व सात्विक भाव बहुत कम देखने में आता है। हमने श्रीचैतन्यचरितामृत ग्रन्थ में पढ़ा है कि श्रीमन्महाप्रभु को ऐसा भाव हुआ करता था। इन महात्मा के शरीर में जिस भाव का विकास हुआ है, उसे 'प्रलयोत्थ सुदीप्त सात्त्विक भाव' कहते हैं। तुम लोगों में से कोई यदि गाना जानता हो तो मैं जो बताऊँ उस भाव का पद गाये। महात्मा शीघ्र चैतन्य लाभ करेंगे।" यह सुन बड़े बाबाजी महाशय के अभिन्न हृदय नवद्वीप दादा तुरन्त बोले, "महाशय! हम लोग गाना तो नहीं जानते, परन्तु आप जो भाव बतायेंगे उसे कम से कम मुख से कहकर ही प्रकाश करने की चेष्टा करेंगे।" साधु ने कहा, "देखो, जो गीत अभी गाया गया था, उसमें श्रीकृष्ण के प्रति श्रीमती के आक्षेप-अनुराग का भाव था। उसी भावावेश में इनकी ऐसी अवस्था हुई है। इसलिए यदि श्रीकृष्ण द्वारा श्रीमती को सान्त्वनासूचक कोई पद गा सको तो इन्हें शीघ्र चैतन्य हो जाय।" साधु की बात सुन नवद्वीप दादा ने आँखें बन्द कर थोड़ी देर विचार किया और फिर गाने लगे—

"अकारणे केन एत अनुयोग,
शुन राधे विनोदिनी।
तुमिगो आमार पराणपुतली,
तोमा बिनु नाहि जानि।।
कतेक रमणी, बरजनगरे काहार करिब नाम।
निशिदिन मुञि शयने स्वपने जपिये तोमार नाम।।
उठगो किशोरी, मान परिहरि, शपति आमार लागे।
हेन दशा देखि, पराण बिदरे, कहिनु तोमार आगे।।

—सुनो, राधे विनोदिनी! अकारण क्यों कर रही हो इतना आक्षेप? तुम हो मेरे प्राणों की पुतली, तुम्हें छोड़ मैं कुछ नहीं जानता। व्रज में न जाने कितनी रमणियाँ हैं, पर मैं तो रात दिन सोते जागते तुम्हारा ही नाम जपता हूँ। उठो, हे किशोरी, छोड़ दो मान, तुम्हें मेरी सौगन्ध; मैं सत्य कहता हूँ। तुम्हारी ऐसी दशा देख मेरे प्राण विदीर्ण हो रहे हैं।

गीत सुनते ही बड़े बाबाजी महाशय चौंक पड़े। उनके शरीर में अश्रु, कम्प, पुलकादि, सात्विक विकार एक साथ प्रकाशित होने लगे। यह देख सब लोग आश्वस्त हुए और साधु को धन्यवाद देने लगे। इसी पद का बार-बार गान होता रहा। थोड़ी देर में भाव संवरण हुआ और वे उठकर बैठ गये। सब लोग प्रेमानन्द में 'गौरहरि बोल' की उच्चध्वनि करने लगे। साथीगण देखने लगे कि उनके धूलधूसरित अंग में कोई चोट तो नहीं लगी है। थोड़ी देर में रामकृष्णदास बाबाजी महाशय बोले, "जगन्नाथ के भोग का समय हो चुका है, चलो थोड़ी देर एकान्त में चलकर बैठें।" बड़े बाबाजी महाशय साथियों सहित श्रीमन्दिर के पीछे एक वृक्ष के नीचे जाकर बैठ गये। आगन्तुक लोग उनके चारों ओर बैठ गये। कुछ देर में पूर्वोक्त गोपाल बाबू कहने लगे, "मैंने विचार किया था कि एक बात आपसे पूछूँगा, परन्तु आप बहुत क्लान्त हैं, इसलिए साहस नहीं हो रहा है।"

बड़े बाबाजी—कहो कहो।

गोपाल—बाबाजी, आपके श्रीमुख से जब भी कीर्तन सुनते हैं गौरांग के राधाभाव का सुनते हैं। क्या अन्य कोई भाव हम लोग नहीं रख सकते?

बड़े बाबाजी—हमारे श्रीगौरांग भावनिधि हैं। ऐसा कोई भाव नहीं, जो गौरांग के श्रीअंग में न हो। परन्तु उनके अवतार लेने का प्रधान उद्देश्य ही है राधाभावास्वादन। राधाभाव के आस्वादन के लिए ही उन्होंने संन्यास ग्रहण किया है। श्रीराधा का भाव और कान्ति लेकर ही गौरांग अवतार हुआ है। अतएव जो उनका इस भाव से भजन करेंगे वे ही अन्तरंग होंगे। और देखो, श्रीगौरांग प्रभु के तो बहुत से साथी थे। पर स्वरूप और रामानन्द इतने प्रिय क्यों थे? बात यह है कि स्वरूप सदैव ललिता के भाव में और रायरामानन्द विशाखा के भाव में विभावित रहते थे। श्रीमन्महाप्रभु के मन में जिस समय जो भाव उदय होता था, उसकी ये दोनों पुष्टि करते थे। ये दोनों प्रभु को राधारानी के

अतिरिक्त और कुछ जानते ही न थे। इसी कारण प्रभु भी इन दोनों के साथ रसास्वादन कर सुखी होते थे। जो व्यक्ति जो वस्तु चाहता है उसे उसकी जगह अन्य वस्तु देने से वह सन्तुष्ट नहीं होता। तुम प्यासे हो, पीने का जल चाहते हो, उस समय यदि तुम्हें कोई दूध दे तो तुम्हें सन्तोष नहीं होगा। विशेषकर गोपीभाव ही हम लोगों का एक मात्र साधन है। जो मधुर भाव से राधागोविन्द की उपासना करेंगे, वे श्रीगौरांग को राधारानी मानकर और स्वयं उनकी किंकरी गोपी होकर उपासना करेंगे, तभी तो लीला में प्रवेश कर सकेंगे। इसीलिए वैष्णव-सिद्धान्त है—

"भावनिधि श्रीगौरांग भावेर शावल्य।
सब भाव हैते राधाभावेर प्राबल्य।।
सब भाव हइते गोरार राधाभाव सार।
राधिकार भावे हय सुख पारावार।।
गोपीभाव निज देहे अंगीकार करि।
गुरु आनुगत्ये चिन्तो गौरांग श्रीहरि।।
गौरांग श्रीराधारानी श्रीगुरुमंजरी।
ताँर दासी भाव सदा अंगीकार करि।।
एइ भावे गौरलीला करिले भावन।
हेथाय गौरांग पाबे व्रजे कृष्ण धन।।
काहारओ कोनो भाव निन्दा ना करिबे।
निन्दाशून्य नम्र भावे गौरांग भजिबे।।"

—भावनिधि श्रीगौरांग में सब भावों का मिश्रण है, पर सब भावों से अधिक राधा-भाव की प्रबलता है। सब भावों का सार है गौरांगप्रभु का राधाभाव। राधाभाव में सुख की चरम सीमा है। इसलिए गोपीभाव अंगीकार कर श्रीगुरु के आनुगत्य में गौरहरि का चिन्तन करो। गौरांग हैं राधारानी और गुरुदेव मंजरी। उनकी दासी का भाव सदा अंगीकार कर गौरलीला की भावना करने से यहाँ गौरांग-धन पाओगे और व्रज में श्रीकृष्णधन। **किसी के किसी भाव की निन्दा न करो।** निन्दाशून्य हो नम्र भाव से श्रीगौरांग को भजो।

बड़े बाबाजी महाशय का उपदेश सुन गोपाल बाबू का सन्देह जाता रहा। वे बड़े आनन्द के साथ कहने लगे, "आज मेरा बड़ा शुभ दिन है, जो कलिहत, मायामुग्ध बहिर्मुख जीव होते हुए भी मैंने अति निगूढ़ तत्व को जाना। अब आप बहुत थक गये हैं, रात्रि भी अधिक हो चुकी है, चलिये घर चलें।" बड़े बाबाजी महाशय ने कहा, "तुम लोग जाओ, आज हम यहीं रहेंगे।" धीरे-धीरे अधिकांश लोग विदा हो गये, केवल उनके अन्तरंग साथी रह गये। किसी भक्त ने महाप्रसाद लाकर दिया। उसे पा सबने उसी जगह रात्रि व्यतीत की। नियमानुसार बड़े सबेरे आकर इन्द्रद्युम्न सरोवर पर नित्य नियम से निवृत्त हुए और मन्दिर में जाकर जगन्नाथदेव की मंगल आरति के दर्शन किये। जगन्नाथदेव का सेवाकार्य रीतिमत चलता रहा। दोपहर के समय 'सकाल धूप' समाप्त हुई। उसी समय एक ने आकर सम्मानपूर्वक कहा, "बाबा, कुछ महाप्रसाद ग्रहण कीजिये।" यह सुनकर बड़े बाबाजी प्रेमावेश में नेत्रों में जल भरकर कहने लगे, "देखो भाई, हम लोग भजन साधन नहीं करते, फिर भी परम दयालु प्रभु कितना खाने-पहनने को दे रहे हैं। यदि भजन परायण होते तो जाने क्या होता। हाय कठोर प्राण! हाय रे कठोर मन! दयामय भगवान् की इतनी दया, इतनी करुणा देखकर भी तू नहीं पिघलता और तुझे भक्ति में विश्वास नहीं होता। हमारी मानवदेह को धिक्कार है। हमारे ज्ञानगर्व को धिक्कार है। केवल लोगों को भुलाने के लिए वैष्णव बनकर हम उदरपूर्ति की आशा में देश-देश भ्रमण करते रहे।" इसी प्रकार आर्तिपूर्ण वचन कहते हुए वे उस भक्त के साथ जाकर श्रीमन्दिर में पीछे पंगत में बैठ गये। कुछ देर बाद प्रेमानन्द में ध्वनि करने लगे, "साधु सावधान! फेर करो अवधान!"

"भ्रमिते भ्रमिते कोटि कोटि कल्प।
दैवात् ब्राह्मण वैष्णव सेवा घटे जदि अल्प।।
तबे जीवेर कर्म-बन्ध छुटि कृष्ण पर हय।
सालोक्यादि चारि मुक्ति अंगुलि न छोंय।।
तार पर प्रेमभक्ति क्रमे गोपिकार भाव।
तार पर महाभाव श्रीराधार स्वभाव।।
सर्वोपरि तत्त्व निताइ गौरांग स्वरूप।
रसराज महाभाव दुहूँ एकरूप।।
जाहा देखि राय रामानन्द मुरछित।
ताहा एक श्वपच वैष्णवसेवाय लभ्य।।"

—कोटि-कोटि कल्प भ्रमण करते-करते दैवात् यदि कुछ ब्राह्मण-वैष्णवों की सेवा बन जाय तो जीव

कर्म-बन्धन से छूट कृपापरायण हो जाता है। तब वह सालोक्यादि चार प्रकार की मुक्ति को उंगुली से भी नहीं छूता, क्योंकि कृष्णप्रेम उन सबसे ऊपर है और उससे भी ऊपर है गोपीभाव। गोपीभाव के ऊपर है महाभाव, जो श्रीराधारानी का स्वभाव है। सबसे ऊपर है निताइ गौरांग स्वरूप, जिसमें रसराज कृष्ण और महाभावमयी राधा दोनों एक स्वरूप हैं। जिस स्वरूप को देख राय रामानन्द मूर्च्छित हुए थे, वह स्वरूप एक चाण्डाल को भी वैष्णव-सेवा द्वारा सुलभ है।

नाना प्रकार की ध्वनि करते हुए प्रेमानन्द में विभोर हो सबने महाप्रसाद पाया। फिर सिंहद्वार के बाहर एक बड़े वृक्ष के नीचे बैठकर विश्राम करने लगे।

श्रीश्रीजगन्नाथदेव का विवरण

सन्ध्या समय इसी वृक्ष के नीचे एक-एक कर बहुत से भक्त बड़े बाबाजी महाशय के पास आये, जिनमें चौबीस परगना निवासी रमणीमोहन चट्टोपाध्याय नामक एक-वृद्ध ब्राह्मण भी थे। उन्होंने अत्यन्त व्याकुल भाव से पूछा, "बाबा, जगन्नाथदेव की ऐसी मूर्ति कैसे हुई, यह जानने की मेरे मन में बड़ी अभिलाषा है। मुझे विश्वास है कि आपके मुख से इस विषय को सुनकर मेरा सन्देह दूर हो जायगा।" बड़े बाबाजी महाशय ने उत्तर दिया, "आप वृद्ध ब्राह्मण हैं, हमारे पिता के समान हैं। मैं तो मूर्ख हूँ, केवल लाभ पूजा और प्रतिष्ठा के लिए साधु हुआ हूँ। मेरी बात सुनकर क्या आप सन्तुष्ट होंगे?" ब्राह्मण ने कहा, "बाबा, तुम हमारी सन्तान के समान हो, यह बात ठीक है। परन्तु कल तुम्हारे शरीर में जिस महाभाव का विकार देखा, वह किसी साधारण मनुष्य में होना सम्भव नहीं। तुम्हारे मुख से श्रीगौरांग-तत्त्व सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। अब श्रीजगन्नाथदेव का तत्त्व सुना कर मेरी मनोवांछा पूरी करो।" बड़े बाबाजी महाशय ब्राह्मण को प्रणाम कर कहने लगे—

"एक दिन द्वारका में श्रीकृष्णचन्द्र रुक्मिणी, सत्यभामा आदि सोलह पटरानियों के बीच रात्रि में शयन कर रहे थे।" स्वप्न की अवस्था में वे एकाएक लम्बी साँस लेकर 'हा राधे, हा राधे'! कहकर रोने लगे। रोना बन्द न होता देख रुक्मिणीदेवी ने प्राण-वल्लभ को चरण पकड़ कर जगाया। श्रीकृष्ण ने निद्रा भंग होने पर लज्जित हो बड़ी सावधानी से भाव संगोपन किया। पटरानियों ने इस प्रकार रोने का कारण पूछा, तो बोले 'मुझे कुछ भी पता नहीं,' और सो गये। इसका ठीक रहस्य जानने के लिए पटरानियाँ व्यग्र हो उठीं। आपस में कहने लगीं, 'देखो, हम सोलह हजार महिषी हैं। कुल, शील, रूप और गुण में कोई कम नहीं। फिर भी हमारे प्राणवल्लभ अन्य रमणी के लिए व्याकुल रहते हैं, यह बड़े विस्मय की बात है। हाय! स्वप्न में भी जिस रमणी के लिए वे इतने व्याकुल होते हैं, वह कैसी रूपवान और गुणवान होगी।' तब रुक्मिणीदेवी ने कहा, 'सुना है कि वृन्दावन में राधा नाम की एक गोपकन्या है, जिसके प्रति प्रभु बहुत आकर्षित थे। उसे अभी तक भूल नहीं सके हैं।' सत्यभामा ने कहा, 'जो भी हो, गोपकन्या ही तो है। उस पर इतने आसक्त क्यों? मेरी समझ में रोहिणी माँ से पूछा जाय, तो सब ठीक मालूम हो जायगा, क्योंकि वें वृन्दावन में थीं और उस समय की सब घटनाएँ जानती हैं।' प्रस्ताव से सब सहमत हो गयीं। प्रातःकाल श्रीकृष्णचन्द्र प्रातःकृत्य समाधान कर राजसभा में पधारे और यथासमय अन्तःपुर में स्नानादि कर भोजन करने बैठे। उद्धवादि सखावृन्द के साथ भोजन कर और थोड़ी देर विश्राम कर राजसभा में चले गये। उसी समय पटरानियों ने रोहिणी माँ को रात की घटना सुनायी और व्रज का सारा वृत्तान्त जानने के लिए उत्सुकता प्रकट की। रोहिणी माँ कहने लगीं, बेटियो, मैं व्रजलीला की सब घटनाएँ जानती हूँ, परन्तु माँ होकर बेटे की गुप्त लीलाओं का रहस्य कैसे कहूँ? यदि राम (बलराम) और कृष्ण में से किसी ने सुन लिया तो लज्जा की सीमा न रहेगी। तब पटरानी कहने लगी, 'माँ, जैसे भी हो व्रज-लीला की कथा तो सुनानी ही पड़ेगी।' रोहिणीदेवी कहने लगीं, 'तब एक उपाय करो, सुभद्रा द्वार पर खड़ी रहे, किसी को भीतर न आने दे। तब मैं बिना संकोच व्रजलीला कहूँगी।'

सुभद्रा से बोलीं, 'देखो सुभद्रे! कृष्ण बलराम आयें तो उन्हें भीतर मत आने देना।' माँ की आज्ञा

पालन करने के लिए सुभद्रा द्वार पर खड़ी हो गयीं। पटरानियाँ माँ को चारों ओर से घेर कर बैठ गयीं और उन्होंने अत्यन्त मधुर व्रजलीला का वर्णन आरम्भ किया।

"इधर राजसभा में रामकृष्ण दोनों भाई बेचैन होने लगे। सभा में बैठना असम्भव हो गया और वे उत्कण्ठित हो अन्तःपुर की ओर चल दिये। देखा कि सुभद्रा द्वार पर खड़ी हैं। पूछा, 'यहाँ क्यों खड़ी हो सुभद्रे? भीतर जाने दो।' सुभद्रा ने उत्तर दिया, 'माँ रोहिणी ने तुम लोगों को भीतर जाने के लिए मना किया है। इस समय तुम भीतर न जा सकोगे।' इसलिए दोनों भाई दरवाजे से महिषियों के साथ माँ का कथोपकथन सुनने लगे। रासलीला का प्रसंग आया तो दोनों के श्रीअंग में अद्‌भुत प्रेमविकार होने लगा। दोनों प्रेमानन्द में अधीर हो गये। नयनजल से दोनों के वक्षस्थल भीग गये। सुभद्रा की भी यही दशा हो गयी। जब राधा का प्रेमवैचित्र्य वर्णन करने लगीं तब बलराम बहुत विकल हो गये। प्रेमविकार के कारण उनके हाथ-पैर सिकुड़ने लगे। जब राधा के साथ श्रीकृष्ण के विलास का वर्णन होने लगा तो श्रीकृष्ण की भी वैसी ही दशा होने लगी। उनके हाथ-पैर सिकुड़ने लगे। सुभद्रा तो एकदम निश्चल हो गयीं। हाथ-पैर न जाने कहाँ समा गये। तीनों अचल होकर खड़े रह गये। सुदर्शन गलकर लम्बे आकार के हो गये।"

"उसी समय स्वच्छन्दगति देवर्षि नारद भगवान् के दर्शन करने द्वारका पहुँचे। राजसभा में मालूम हुआ कि रामकृष्ण दोनों भाई अन्तःपुर गये हैं। अन्तःपुर के फाटक पर जो देखा उसे देख चकित रह गये। ऐसा दृश्य उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था।" चुपचाप खड़े होकर विचार करने लगे कि इसका क्या कारण हो सकता है। कुछ देर पीछे जब माँ रोहिणी ने श्रीराधिका की विरह-दशा का वर्णन आरम्भ किया तो सबके शरीर फिर ज्यों के त्यों हो गये। देवर्षि नारद नाना प्रकार से स्तुति करने लगे। श्रीभगवान् नारद की स्तुति से प्रसन्न होकर बोले, "नारद आज बड़े आनन्द का दिन है। बोलो, तुम क्या वर माँगते हो?" नारद ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया, "प्रभो, वरदान की बात तो पीछे होगी। पहले मेरे मन का सन्देह दूर कीजिये। मैंने आप चारों की जो यह अपूर्व भावविभोर अवस्था देखी है, वह क्या है।" श्री भगवान् मुस्कराकर बोले, "देखो नारद, माँ रोहिणी पटरानियों को व्रजलीला की कथा सुना रही थीं। मधुर व्रजलीला में ऐसी अद्‌भुत आकर्षण शक्ति है कि जहाँ कहीं जिस किसी प्रकार इस अपूर्व लीला का वर्णन होता है, वहाँ हमें जाना पड़ता है। उसी शक्ति ने हमें राजसभा से अन्तःपुर की ओर खींच लिया। यहाँ आकर देखा कि माँ रोहिणीदेवी ने बहन सुभद्रा को फाटक पर खड़ा कर रखा है, हम लोगों को अन्तःपुर में प्रवेश करने की आज्ञा नहीं है। माता जी के निषेध के कारण रासलीला वर्णन के स्थान पर न जा सके, दरवाजे पर खड़े रहकर ही उस रसमयी लीला को सुनने लगे। उसे सुनते-सुनते ऐसी अवस्था हो गयी। यह भी पता नहीं चला कि तुम कब आ गये।"

"नारदजी ने कहा—प्रभो, मुझे और किसी वर की इच्छा नहीं है। मुझे यह वर दीजिये कि आप चारों का यह अनोखा रूप एक साथ पृथ्वी पर प्रकट हो और जनसाधारण उसके दर्शन किया करें। भगवान् श्रीकृष्ण मुस्कराकर बोले, तथास्तु। इस सम्बन्ध में मैं दो और व्यक्तियों से प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। राजा इन्द्रद्युम्न ने बहुत दिनों तक कठिन तपस्या की थी, तब ब्रह्मा की प्रार्थना के अनुसार मैंने उसे वर दिया था कि मैं नीलाचल में दारुब्रह्म मूर्ति के रूप में अवतार लूँगा। विमलादेवी की तपस्या से प्रसन्न हो जनसाधारण को महाप्रसाद वितरण करने के लिए भी मैं वचनबद्ध हूँ। अतएव नीलाचल में हम दारुमूर्ति धारण कर प्रकट होंगे, इस प्रकार तुम्हारी मनोवांछा भी पूरी होगी। नारद जी ने आनन्दित हो भगवान् को प्रणाम किया और वीणा बजाते हरिगुण गाते चल दिये। राम-कृष्ण दोनों भाई भी इस विचार से कि रोहिणी माता लज्जित न हों, एक तरफ हो गये। वही चारों मूर्ति जगन्नाथ, बलराम, सुभद्रा और सुदर्शन रूप से यहाँ विराजमान हैं।"

वृद्ध ब्राह्मण बड़े बाबाजी महाशय के मुख से यह मधुर कथा सुनकर बड़े आनन्दित हुए और कहने लगे, "बाबा मेरा एक सन्देह और है। व्रजलीला की कथा सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण बलराम और सुभद्रा का तो

ऐसा रूप हो गया, माँ रोहिणी और पटरानियों के रूप में कोई परिवर्तन नहीं हुआ, इसका क्या कारण है?"

बाबाजी महाशय ने हँस कर कहा, "इसका एकमात्र कारण है अभिमान। अभिमान रहते मधुर व्रजलीला पूर्ण रूप से हृदय में उदय नहीं होती। अभिमान लीलास्फूर्ति में बाधक है। माँ रोहिणी का मातृवात्सल्य अभिमान है। वात्सल्य प्रेम के सामने मधुर प्रेम लज्जित होकर दूर रहता है। पटरानियों को अपनी जाति, कुल शील और रूप का अभिमान है। वे प्राय: कहा करती हैं कि व्रज की गोपियाँ वैश्य जाति की, वनचारिणी और ग्वालिनें हैं, उनमें भाव और प्रेम कहाँ? इसी अभिमान के कारण मधुर व्रजलीला की रसमयी कथा सुनकर भी उनके हृदय में प्रेम और भाव का विकास नहीं हुआ।"

तब वृद्ध ब्राह्मण प्रेमगद्‌गद कण्ठ से कहने लगे, "मेरा बहुत दिनों का सन्देह दूर हुआ, मुझे बड़ा ही आनन्द हुआ।" यह कहकर उन्होंने प्रेम से बाबाजी महाशय को आलिंगन किया और उनके सिरपर हाथ रख आशीर्वाद देने लगे, "बाबा, मैं निष्कपट भाव से तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि तुम जगत् के जीवों का उद्धार करो, अत्यन्त गूढ़ लीला की बात भी मनुष्यों को सहज में समझा सको।"

बाबाजी महाशय ने उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। सब लोग प्रेमानन्द में हरिध्वनि करने लगे। सन्ध्या आरति का समय जान सबने श्रीश्रीजगन्नाथदेव के मन्दिर में प्रवेश किया।

श्रीश्रीजगन्नाथदेव की पुनर्यात्रा

सन्ध्या आरति समाप्त हो चुकी थी। एक पण्डे ने कहा 'कल श्रीश्रीजगन्नाथदेव अपने मन्दिर में पधारेंगे।' यह सुनते ही बड़े बाबाजी महाशय के मन में भावी विरह का भाव नाच उठा और उन्होंने उसी भाव का कीर्तन आरम्भ किया—

"आवेशेर भरे, धरि स्वरूपेरे,
कहिछे गौरांग राय।
शुनगो सजनी, प्रभाता रजनी,
हइले कि हबे हाय।।
बरज छाड़िया, निठुर हइया,
जाइबे निठुर हरि।
केमन करिया, हृदय बाँधिया,
रहिब धैरज धरि।।
निदारुण विधि, एकि तोर विधि,
दिया निधि दुखिनीरे।
साध ना पुरिते, हृदय हइते,
लगया जाइबि दूरे।।
अनले पशिया, किबा विष खइया,
त्यजिब ए पाप प्राण।
बंधुया बिहने, एइ वृन्दावने,
ना रुचिबे अन्नपान।।"

—आवेश भरे, स्वरूप को पकड़, गौरांग राय कहने लगे 'सुन हे सजनी, रजनी बीतते ही होगा प्रभात। हाय, फिर क्या होगा? निठुर हो, व्रज छोड़ चले जायेंगे निठुर हरि। कैसे तब हृदय बाँधकर धीरज धारण कर रह सकेंगी हम? निर्दय विधि, कैसा है यह तेरा विधान! दु:खियों को देकर निधि उनकी साध पूरी हुए बिना ही उसे ले जायगा दूर हृदय से। हम अग्नि में कूद पड़ेंगी या विष खाकर तज देंगी पापी प्राण। हे सखी, कल प्रात:काल से, इस वृन्दावन में हमें अन्न-जल भी न रुचेगा।

इसी प्रकार के विलापपूर्ण गीत गाते-गाते रात हो गयी। भक्तगण अपने-अपने स्थान को चले गये। बड़े बाबाजी महाशय बड़े खिन्न दीख रहे थे। किसी प्रकार उन्होंने अपने भाव को छिपाकर भक्तों की इच्छानुसार श्रीमन्दिर के पास के एक बगीचे में रात बितायी। प्रात:काल होते ही नित्य-नियम समाप्त कर श्रीमन्दिर में गये। देखा कि श्रीश्रीजगन्नाथदेव ने एक अपूर्व लीला कर रखी है। वे रत्नवेदी छोड़कर जगमोहन में विराज रहे हैं। असंख्य महिलाएँ जी भरकर उन्हें आलिंगन कर रही हैं। कोई-कोई प्रेम में विभोर हो प्रणयरोष में अपने कंगनों से उनके श्रीअंगों में प्रहार कर रही हैं। बड़े बाबाजी महाशय चकित होकर यह अपूर्व लीला रहस्य दर्शन कर रहे थे। सहसा उनका धीरज टूट गया। उन्होंने झपटकर जगन्नाथदेव को अपनी बाँहों से जकड़ लिया। उनके पुलकित अंग के कम्पन

से भगवान् की मूर्ति भी काँपने लगी। उनके नेत्रों से अविरल अश्रुधार बहने लगी। वे प्रेमावेश में गद्‌गद कण्ठ से कहने लगे, "हे प्रिय, विरहविधुरा सरला व्रजगोपियों को चिरकाल विरह सागर में डुबाने के लिए आज तुम इतनी प्रेम की वर्षा क्यों कर रहे हो? तुम जानेसमझे शठ हो। आज चाहे कितनी प्रीति और प्रणय विह्वलता दिखाओ, लौट कर आने की आशा बँधाओ, पर जो आघात तुम प्रेम में पगली अबला सरला व्रजगोपियों के कोमल हृदय पर कर चुके हो, उसके कारण तुम्हें कोई निठुर छोड़कर और कुछ न कहेगा, कपटी छोड़कर और कुछ न समझेगा।" इतना कह वे प्रेम में व्याकुल हो रोने लगे। धीरे-धीरे समय अधिक हो गया। पण्डों ने जगन्नाथदेवकी कमर और वक्षःस्थल को रेशमी डोरियों से बाँधा और पूर्ववत पहण्डी-विजय कराने लगे। आज उतनी भीड़ नहीं है, बहुत से यात्री चले गये हैं। थोड़े-से नीलाचलवासी ही मौजूद हैं। इसलिए आनन्द भी उतना नहीं है। बलराम, सुभद्रा और सुदर्शन के साथ जगन्नाथदेव रथपर चढ़ गये। बड़े बाबाजी महाशय अपने दल सहित रथ के पहिये के पास खड़े प्रेम में फूट-फूटकर रो रहे थे। रथ खींचना आरम्भ हुआ। दो रथ कुछ दूर चले गये। तब जगन्नाथदेव का रथ चलना आरम्भ हुआ। बाबाजी महाशय ने रोते हुए उच्च स्वर से कीर्तन आरम्भ किया—

"राधाभावे गोराचाँदेर व्याकुल अन्तर।
रथ धरि काँदे शोके हइया फाँपर।।
क्षणेक दाँड़ाओ बन्धु क्षणेक दाँड़ाओ,
दुखिनीर पाने नाथ फिरिया ताकाओ।।
निश्चय मरिब बन्धु, निश्चय मरिब।
ए हेन निलाज प्राण केमने धरिब।।
बढ़ निदारुण बिधि बढ़ निदारुण।
रसमय पिया मोर कैल अकरुण।।
त्यजिया पराण बँधु त्यजिया पराण।
विरह बेयाधि हते पाब परित्राण।।
कि दोषे त्यजिले बँधु कि दोषे त्याजिले।
एहेन पिरीति पिया केमने भुलिले।।
दिने आँधियार बँधु दिने आँधियार।
साधेर बरज हइल शोकेर आगार।।"

—राधाभाव में श्रीगौरांग का हृदय व्याकुल है। वे रथ पकड़ कर रो रहे हैं और शोकाकुल होकर कह रहे हैं, "एक क्षण रुको बन्धु, एक क्षण दुखिनी की ओर देखो फिर कर। मैं निश्चय ही मर जाऊँगी बन्धु, निश्चय ही। निर्लज्ज प्राण ऐसे कैसे रखूँगी? बड़ा ही कठोर है विधि जिसने मेरे रसमय प्रियतम को इतना निर्दय बनाया है। हे बन्धु! अब मैं प्राण तज कर ही विरह व्याधि से छुटकारा पाऊँगी। हे बन्धु! किस दोष के कारण मुझे त्यागा तुमने? ऐसी प्रीति प्रियतम, क्यों कर भुला दी? बन्धु! अब तो दिन में अंधियारा हो रहा है, जिस व्रज से लगी थी सुख की साध वह शोक का आगार हो रहा है।"

पद गाते-गाते वे अधीर हो गये। उनका उस समय का भाव जो देखता वही रोकर अधीर हो जाता। धीरे-धीरे श्रीश्रीजगन्नाथदेव का रथ आँखों से ओझल हो गया। तब वे हताश होकर रुद्ध कण्ठ से, 'हाय निष्ठुर!' कहकर मूर्छित हो धरती पर गिर पड़े। सात्विक विकार मानो अवसर देख रहे थे, सब अंगों में प्रकाशित होने लगे। साथियों के सन्तर्पण से बड़ी देर में होश में आये।

नीलाचलवास के समय बाबाजी महाशय का नियम था श्रीश्रीजगन्नाथ दर्शन, श्रीश्रीटोटा गोपीनाथ दर्शन, श्रीहरिदास ठाकुर-समाधि दर्शन और समुद्र स्नानादि। जिस किसी कार्य के लिए जाना श्रीमन्महाप्रभु को आगे कर उनका अनुगमन करना। कभी कोई इसका कारण पूछता तो कहते, "देखो! नीलाचल में हमारे आने का उद्देश्य ही महाप्रभु दर्शन और उनकी मधुर लीला का आस्वादन है। उन्होंने जिस-जिस स्थान पर जो-जो लीलाएँ कीं, उन स्थानों के दर्शन कर उन लीलाओं को हृदय में धारण कर उनकी आलोचना करने से श्रीमन्महाप्रभु और उनकी ह्लादिनी शक्ति की कृपा से साधक आनन्द सागर में डूब सकता है अन्यथा लीलारस-सिन्धु का एक बिन्दु भी स्पर्श नहीं कर सकता।"

इसी प्रकार दिन बीतने लगे। बड़े बाबाजी महाशय और उनके अनुगत साथियों का काम था केवल नाम-संकीर्तन, श्रीश्रीजगन्नाथ दर्शन, श्रीश्रीगौरांग प्रभु

का गुणगान और उनकी लीला का अनुशीलन। उन्हें भोजन की चिन्ता न थी। जैसा भी महाप्रसाद मिल जाता, उसे ग्रहण कर समुद्र-स्नान करने चले जाते। उसके बाद यदि कहीं से महाप्रसाद के लिए निमन्त्रण आता तो वहाँ जाते, नहीं तो लालाबाबू आदि के क्षेत्र में जाकर महाप्रसाद पा लेते।

हम पहले ही कह चुके हैं कि लालाबाबू और चिन्तामणि आदि के क्षेत्र के मैनेजर श्रीप्यारीमोहनदास महाशय बड़े बाबाजी महाशय के प्रति विशेष भक्तिभाव रखते थे। बड़े बाबाजी महाशय और उनके साथी जब कभी क्षेत्र में महाप्रसाद पाने जाते, वे अपनी तरफ से नाना प्रकार के प्रसाद मँगवाकर पृथक् भाव से उनकी सेवा करते। महाप्रसाद पाने के समय ये लोग जाति विचार नहीं करते थे। यह वैष्णव है, वह गृहस्थ, यह पंगत में बैठने योग्य है, वह नहीं इत्यादि भेदभाव ये बिलकुल पसन्द नहीं करते थे और कहा करते थे, "तुलसीपत्र द्वारा जो कुछ भी कृष्ण को अर्पण हो गया, उसे महाप्रसाद जानकर ग्रहण करना चाहिये। महाप्रसाद कभी स्पर्श दोष से नष्ट नहीं होता। दोष लगाने से अकल्याण होता है।" यह नियम शास्त्रानुमोदित है, तथापि अनेक वैष्णव इसे नहीं मानते। इसी कारण बहुत लोग बड़े बाबाजी महाशय के ऊपर कटाक्ष करते थे। वे कहा करते थे, "इन लोगों का भजन साधन, दीनता, नाम-संकीर्तन और चरित्रादि सभी सराहनीय है, केवल यही एक दोष है कि गृहस्थ और वैष्णव एक साथ बैठकर प्रसाद पा लेते हैं।"

उपरोक्त प्यारीबाबू के भाई जगदीश बाबू हिन्दू धर्म में निष्ठा रखते। वे भी इस विषय में कभी-कभी बड़े बाबाजी महाशय से प्रश्न किया करते। वे सरल रूप से यही उत्तर देते "भाई, हम लोग वैष्णव नहीं, केवल पेट के लिए मारे-मारे फिरते हैं।" वैष्णवोचित दीनता और निरभिमानता उनके चिरभूषण थे। कभी किसी बात में उद्दण्डता दिखाना अथवा व्यवहार में किसी को मानसिक दु:ख देना उनके स्वभाव के विरुद्ध था। कभी कोई कुछ कहता तो वे हाथ जोड़कर नम्रता से उत्तर देते, "आप आशीर्वाद कीजिए कि आपकी आज्ञा का पालन करने में समर्थ हो सकूँ।"

श्रीवासुदेव महाराज

एक दिन श्रीश्रीजगन्नाथदेव के श्रीमन्दिर में कीर्तन समाप्त होते ही आचारी सम्प्रदाय के सिद्ध श्रीवासुदेव रामानुजदास ने आकर कहा "महात्मन्, आज हमारे यहाँ महाप्रसाद दर्शन करना होगा।" इन लोगों ने उन्हें दण्डवत् प्रणाम कर निमन्त्रण स्वीकार किया। उन्होंने भी 'दासोऽस्मि' कह प्रतिदण्डवत् किया और बारह भइया महावीर के मन्दिर में चले गये। ये महापुरुष प्राय: उसी जगह रहा करते थे। ये लोग समुद्र स्नान कर यथासमय वहाँ पहुँच गये। और भी बहुत से वैष्णवों को निमन्त्रण था। श्रीवासुदेव महाराज ने इन लोगों के लिए अलग स्थान कर रखा था। वहाँ बाबाजी महाशय और कृष्णगोविन्द को एक साथ बिठाकर उन्हें अपने हाथ से तरह-तरह का महाप्रसाद परसने लगे और कहने लगे, "इन दोनों को देख मेरे मन में राम-लक्ष्मण का उद्दीपन होता है। देखो वैष्णवगण! ये महात्मा साधारण नहीं हैं। ये निश्चय ही भगवत्पार्षद हैं। ऐसा प्रेम भाव हमने और किसी में कभी नहीं देखा।" उनकी इस प्रकार की धारणा सदैव बनी रही। महाप्रसाद पाकर सबने उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया और अपने वासस्थान को चले आये।

श्रीश्रीजगन्नाथदेव की नित नयी लीलाएँ होने लगीं, और बड़े बाबाजी महाशय में भी नये-नये भावों का उद्दीपन होने लगा। जन्माष्टमी, पद्मवेष, बालधूप, नटवरवेष, रघुनाथवेष, होली आदिक उत्सवों के उपलक्ष्य में नीलाचलवासी नित्यनूतन संकीर्तन-तरंगों में बहने लगे। संकीर्तन यज्ञ में श्रीगौरांग महाप्रभु का आविर्भाव मानो प्रत्यक्ष अनुभव होने लगा।

चन्दनयात्रा

आज अक्षय तृतीया है। पुरीवासी छोटे-बड़े स्त्री-पुरुष सभी फूल, चन्दन और माला लिए आनन्द में मत्त श्रीश्रीजगन्नाथ दर्शन को चले जा रहे हैं। आज चन्दन यात्रा का उत्सव आरम्भ हुआ है। मदनमोहन चन्दन सरोवर में जलकेलि करेंगे। बड़े बाबाजी महाशय अपने दल सहित कीर्तन करते हुए श्रीमन्दिर में जाकर देखते हैं कि मदनमोहन का शृंगार हो रहा है। थोड़ी देर में श्री

श्रीराधामदनमोहन सजधज कर डोले पर विराजमान हुए। देवदासियाँ नाचती हुई आगे-आगे चलने लगीं। चारों ओर से संकीर्तन की ध्वनि उठी। बड़े बाबाजी महाशय भाव में झूमते-झूमते साथ-साथ चलने लगे। सिंहद्वार से पार होते ही वे भाव में मत्त हो गाने लगे—

"गोपीभावे विभावित शचीर नन्दन।
संगीगण संगे करेन कीर्तन नर्तन।।
आहा मरि कि आनन्द हेरि चारि पाशे।
मातियाछे नरनारी प्रेमेर आवेशे।।
मदनमोहन मोर राधिकार संगे।
नौकाकेलि करिबारे चलिलेन रंगे।।
गोपीगण दोंहाकारे लइया चलिल।
दोलार उपरि देख कत शोभा हइल।।
आध कांचन कान्ति आध चिकणकाला।
आध गले गजमोति आध वनमाला।।
चन्दने चर्चित अंग भुवनमोहन।
ललित त्रिभंग बाँका मुरलीवदन।।

—गोपीभाव में विभावित शचीनन्दन संगीगण के साथ कीर्तन कर रहे हैं, और कह रहे हैं, बलिहारी! कैसा आनन्द देख रही हूँ। चारों ओर नर-नारी प्रेम के आवेश में मत्त हैं। मदनमोहन हमारी राधिका के साथ नौकाकेलि करने जा रहे हैं। सानन्द गोपियाँ उन दोनों को लेकर जा रही हैं। देख, कैसी शोभा है रथ के ऊपर। आधे में कंचन कान्ति, आधे में कालिमा चिकनी। आधे गले में गजमोती आधे में वनमाला। चन्दन से विभूषित अंग, भुवनमोहन रूप, सुन्दर त्रिभंग ठाम सुन्दर मुरलीयुक्त वदन।"

बड़े बाबाजी महाशय प्रेमावेश में यह पद गाते-गाते अपने दल सहित नरेन्द्र सरोवर के किनारे जा पहुँचे। मदनमोहन डोले से उतर कर एक सुसज्जित नौका पर विराजमान हो गये। ये लोग भी कीर्तन करते हुए नरेन्द्र सरोवर के किनारे चक्कर लगाने लगे। भीड़ का कोई ठिकाना नहीं। पर ये लोग कीर्तन में मत्त हैं। जो कोई इन्हें देखता है उसे लगता है जैसे इनके आगे-आगे कोई नाचते जा रहे हैं और ये उनके पीछे प्रेमावेश में नाचते हुए उन्हें लक्ष्य कर गा रहे हैं। थोड़े देर में बड़े बाबाजी महाशय गाने लगे—

"नीलाचल हइल जेन मधुर वृन्दावन।
नरेन्द्र हइल आज कालिन्दीर सम।।
भावावेशे गोराचाँद लये भक्तगण।
नरेन्द्रेर चारिपाशे करिछेन कीर्तन।।
हेलेदुले नेचे जाय उलसित मने।
नरेन्द्र हइल जेन जमुना पुलिने।।
सर्व अंगे माखियाछे सुगन्धि चन्दन।
प्रति अंगे शोभे नाना फूल आभरण।।
कत क्षण नृत्य करि गोरा नटवर।
आरम्भिला जलकेलि लये सहचर।।"

—नीलाचल मानों मधुर वृन्दावन हो और नरेन्द्र (सरोवर) कालिन्दी। इस भावावेश में गोराचाँद भक्तगणों को ले सरोवर के चारों ओर कीर्तन कर रहे हैं। उल्लास भरे मन से झूम-झूम कर नाचते जा रहे हैं जैसे नरेन्द्र सरोवर जमुना पुलिन हो। उनके अंग-अंग में सुगन्धित चन्दन लगा है और नानारूप फूलों के आभरण से सर्वांग सुसज्जित है। कुछ देर नृत्य कर उन्होंने सहचरों के साथ जलकेलि आरम्भ कर दी।

बड़े बाबाजी महाशय के विशाल शरीर में चन्दन लगा है। कीर्तन के परिश्रम से पसीने के साथ चन्दन गल-गलकर बह रहा है। कोई-कोई भक्त उनके शरीर से चन्दन ले रहे हैं और कोई फिर उनके चन्दन लगा रहे हैं। वे इस समय पहचाने नहीं जा रहे हैं। शरीर में एक-एक अंगुल चन्दन जम गया है। फूलों की मालाएँ गले में समा नहीं रही है। वे भाव में विभोर हो कीर्तन रंग में मत्त हो रहे हैं। जैसे ही 'आरंभिला जलकेलि लये सहचर' पद की स्फूर्ति हुई वे जल में कूद पड़े। चारों ओर से अन्य लोग भी जल में उतरने लगे। अपूर्व आनन्द। जल में ही नृत्य और कीर्तन होने लगा। लोग तैर-तैरकर सरोवर के बीच मन्दिर के पास जाकर नाना प्रकार की जलक्रीड़ा करने लगे। गगनभेदी 'हरिबोल' की ध्वनि से जल थल कम्पित हो रहे थे।

धीरे-धीरे रात हो गयी। मदनमोहन नौका विहार कर जलमध्यस्थ विलास मन्दिर में विराजमान हो गये। उनके नाना प्रकार के भोग का प्रबन्ध होने लगा। प्रभु के साथ उनके दासों का तो नित्य निकट सम्बन्ध है ही। जैसे ही मदनमोहन का भोग लगकर चुका,

महाप्रसाद आ पहुँचा । एक रसिक भक्त बोले,— "बाबाजी महाशय, प्राप्तमात्रेण भोक्तव्यं नात्र काल विचारणा।" सब लोग हँस पड़े। बलराम बाबू भक्तों को बैठाने का प्रबन्ध करने लगे। सरोवर के किनारे से विलास मन्दिर को जाने के पुल पर ही सब बैठ गये। भक्त तरह-तरह का महाप्रसाद लाकर परसने लगे। सबने महाप्रसाद से खूब परितृप्त हो कुछ विश्राम किया। अधिक रात होने पर श्रीश्रीराधामदनमोहन ने फिर जगन्नाथदेव के मन्दिर की ओर प्रस्थान किया। उस समय इतनी भीड़ नहीं थी। परन्तु बड़े बाबाजी महाशय का दल भरपूर था, क्योंकि घोर पाषण्डी भी जो एक बार उनके पास बैठ जाता था अथवा उनके श्रीमुख से दो बात सुन लेता था, वह उन्हें छोड़कर नहीं जा सकता था। थोड़ी देर में संकीर्तन आरम्भ हुआ—

'जमुनाय जलकेलि करि मनोरंगे।
निकुंज मन्दिरे सबे चले रंगे भंगे।।
चारिदिके गोपीगण प्रेमेते विभोर।
माझे माझे नेचे जाय जुगलकिशोर।।
नवजलधर कानु वामेते किशोरी।
नवीन जलदे जनु थिर बिजुरी।।

—जमुना में आनन्दपूर्वक जल-केलि कर और वहाँ का आनन्द भंग कर सब निकुञ्ज मन्दिर को चले। चारों ओर प्रेम में विभोर गोपियाँ थीं, बीच में जुगलकिशोर नाचते जा रहे थे। कृष्ण लगते थे जैसे नवजलधर (बादल) और उनके बायें किशोरी जी ऐसी लगती थीं जैसे नवीन बादल में बिजली स्थिर रूप से विराज रही हो।

यह संकीर्तन करते-करते सब लोग सिंहद्वार पर पहुँचे। श्रीश्रीराधामदनमोहन के भीतर प्रवेश करते ही बड़े बाबाजी महाशय ने गोपीभाव में विभावित हो प्रेमावेश में मधुर स्वर से कीर्तन प्रारम्भ किया—

"अमनि थाकुक जुगल।
श्यामेर कोले दिलाम राइ, आनन्देर आर सीमा नाइ।।
चल विशाखा (आपन-आपन) कुंजे जाइ।
जा जाने ता करुक राइ।।"

—ऐसे ही रहो दोनों। श्याम की गोद में दे दी राधा। आनन्द की सीमा न रही। चलो विशाखा चलें अपने-अपने कुञ्ज। अब राजा जाने सो करे।

यह पद गाते-गाते सब लोग श्रीजगन्नाथवल्लभ मठ में आये और विश्राम करने लगे। इसी प्रकार इक्कीस दिन तक चन्दन-यात्रा के उपलक्ष्य में पुरीधाम में आनन्दोत्सव होता रहा।

दूसरी स्नान-यात्रा

देखते-देखते साल बीत गया। फिर श्रीजगन्नाथदेव की स्नानयात्रा का उत्सव आया। इस बार यात्रियों की संख्या और भी अधिक थी। बड़े रास्ते में और स्नानवेदी के चारों ओर तिल रखने की भी जगह न थी। शंख-घण्टा-मृदंगादि की ध्वनि, जय-ध्वनि, उलुध्वनि और हरिध्वनि से दसों दिशाएँ प्रतिध्वनित होने लगीं। पण्डों ने श्रीश्रीबलराम, सुभद्रा, सुदर्शन और जगन्नाथदेव की यथारीति पहण्डी विजय करायी। स्नानवेदी के ऊपर चारों मूर्ति विराजमान हुईं। श्रीश्रीजगन्नाथदेव की नित्य नयी लीलाएँ होने लगीं। बड़े बाबाजी महाशय भी नित्यनूतन भाव के नृत्य-कीर्तन कर नये-नये लीला-रस का आस्वादन करने लगे।

गौरांगचाँद आवेश में जगन्नाथदेव की स्नानयात्रा का महोत्सव देख रहे हैं, इस भाव के एक अपूर्व कीर्तन से आज बड़े बाबाजी महाशय ने सबके मन में श्रीगौरांगलीला की पूर्वस्मृति जगा दी है। उनकी कृपा से जगद्वासी श्रीगौरांगलीलारस में मग्न हो रहे हैं। भक्तों के आनन्द की सीमा नहीं है। बड़े बाबाजी महाशय भी आनन्द सागर में मग्न हैं।

श्रीश्रीजगन्नाथदेव की स्नानलीला समाप्त होने पर पण्डों ने उन्हें गणेशवेश धारण कराया। समय अधिक हो चुका था, अतः भक्तों के अनुरोध से बड़े बाबाजी महाशय 'कुइलबैकुण्ठ' नामक स्थान में जाकर बैठ गये। खिचड़ी महाप्रसाद आया और सब महाप्रसाद पाने लगे। उसी समय कृष्णानन्ददास ने प्रश्न किया—"जगन्नाथदेव का आज ऐसा वेश क्यों है?" बड़े बाबाजी महाशय ने उत्तर दिया, इसका बड़ा सुन्दर इतिहास है। जगन्नाथदेव के भक्तवांछाकल्पतरु होने का यह उज्ज्वल दृष्टान्त है।

"कर्णाटक देश में गणपति भट्ट नामक एक भक्त ब्राह्मण थे। उन्होंने शास्त्रों का बहुत अध्ययन किया

था।" वे सोचा करते थे कि 'ब्रह्म निराकार और इन्द्रियों से अगोचर है। यदि साकार रूप में कहीं मिल जाता तो मैं भवबन्धन से छूट जाता।' एक दिन उन्होंने ब्रह्मपुराण में देखा कि नीलाचल में श्रीभगवान् दारुब्रह्म रूप में साक्षात् विराजमान हैं। अब उनके आनन्द की सीमा न रही। वे स्त्री पुत्रादि त्याग नीलाचल चल दिये। दूसरे दिन वे श्रीधाम पुरी के निकट 'तुलसीचौरा' नामक स्थान पर पहुँचे। थके होने के कारण एक पेड़ के नीचे बैठ गये। उसी समय यात्रियों के दल के दल जगन्नाथ दर्शन कर लौट रहे थे। उन्होंने विस्मित होकर पूछा, "तुम लोग कहाँ से आ रहे हो?" यात्रियों का उत्तर सुनकर वे दु:खित हुए और कहने लगे, 'हाय मैंने वृथा ही इतना कष्ट उठाया। जगन्नाथ ब्रह्म नहीं हैं। वे ब्रह्म होते तो लोग उनके दर्शन कर लौटते ही क्यों।' अन्तर्यामी जगन्नाथदेव ने एक वृद्ध ब्राह्मण के वेश में भट्टजी के पास जाकर उनकी विलापोक्ति सुनी और कहने लगे, "ब्राह्मण तुम इतने दु:खी क्यों होते हो? जगन्नाथदेव वांछाकल्पतरु हैं। उनसे जो कोई जो कुछ मांगता है वही देते हैं। जो उनसे मुक्ति मांगते हैं उन्हें संसार में नहीं भेजते। तुम नि:सन्देह दारुब्रह्म दर्शन कर कृतार्थ हो जाओगे।" यह सुनकर भट्टजी ने जाकर श्रीश्रीजगन्नाथ देव के दर्शन किये। परन्तु उन्हें शान्ति न मिली। भट्ट जी गाणपत्य सम्प्रदाय के थे। उनकी धारणा थी कि केवल गणेश ही ब्रह्म हैं। अत: जब उन्हें दारुब्रह्म में गणेश मूर्ति के दर्शन न हुए तब वे अतृप्त मन से लौट गये। उनके कुछ दूर जाते ही दयामय जगबन्धु ने एक पण्डे को आदेश किया 'मेरा परमभक्त गणपति भट्ट नामक एक ब्राह्मण मेरे गजानन रूप के दर्शन न पाकर दु:खी मन से लौटा जा रहा है। उसे ले आओ। वह मेरा गजानन रूप दर्शन कर चिरशान्ति लाभ करे।' भाग्यवान पण्डा भक्तवाँछाकल्पतरु का आदेश पाकर, 'ओ भक्तश्रेष्ठ गणपति भट्ट, ओ भक्तराज गणपति भट्ट' पुकार-पुकार कर उन्हें खोजने लगा। जब वे मिल गये तो सब बात उनसे खोलकर कह दी। भट्टजी ने आनन्दित मन से लौटकर बड़े रास्ते से ही स्नानवेदी के ऊपर प्रभु का गजानन रूप दर्शन किया और प्रेमानन्द में नाना प्रकार से स्तुति करने लगे।

"श्रीश्रीजगबन्धु प्रभु ने भी प्रसन्न हो उनसे वर माँगने को कहा", तो भट्टजी हाथ जोड़कर बोले, "प्रभो, मैं और कोई वर नहीं माँगता। मेरी तो यही प्रार्थना है कि आपने कृपाकर मेरे जैसे दीनहीन अधम जीव को जिस रूप में दर्शन दिये हैं, उस गणेश वेश को स्नानपूर्णिमा के दिन आप प्रतिवर्ष धारण किया करें। आप अपने भक्तवाँछाकल्पतरु नाम की महिमा प्रकाशित करने के लिए मुझे यही वरदान देकर कृतार्थ करें।" जगन्नाथदेव ने हँसते-हँसते कहा 'तथास्तु'। आनन्द में अधीर हो विप्रभक्त ने उस गजवदनरूप को देखते-देखते पूर्ण समाधि प्राप्त की। सबने देखा कि भक्तराज के शरीर से एक अपूर्व तेज निकल कर जगन्नाथदेव के श्रीअंग में समा गया और उसका मृत शरीर पड़ा रह गया। छोटे बड़े सभी विस्मित हो गये। तभी से श्रीश्रीजगन्नाथदेव के इस गणेशवेष के धारण करने की प्रथा चली आ रही है।

बड़े बाबाजी महाशय से यह कथा सुनकर सब बड़े आनन्दित हुए। सबने महाप्रसाद पा अपने-अपने स्थान को प्रस्थान किया।

दूसरी बार नवयौवन दर्शन

अनवरतकाल के पन्द्रह दिन पीछे आज प्रभु के श्रीमुख का दर्शन होगा। सबके मन में अपार आनन्द है। असंख्य लोग श्रीमन्दिर की तरफ दौड़े चले जा रहे हैं। जगबन्धु का श्रीमुख दर्शन करने को सभी के मन-प्राण व्याकुल हैं। यथा समय मन्दिर का दरवाजा खुला। 'जय जगन्नाथ, जय नीलाचलनाथ' की ध्वनि से दिशाएँ कम्पित होने लगीं। लोग पूर्ववत् कीर्तनानन्द और नर्तनानन्द में मग्न हो एक अपूर्व भावतरंग में तैरने लगे। बड़े बाबाजी महाशय ने प्रेमानन्द में नृत्य करते हुए पद उठाया—

"बहु दिन परे, बँधुआ पाइया,
जुड़ाइल ए हृदय।
दण्डे शत युग, पलके प्रलय,
एते कि पराण रय।।
अबला सरला, गोप गोयालिनी,
हाम मुगधिनी नारी।

अति सुचतुर, रसिक नागर,
तुहुँ से मुरलीधारी।।
जाति कुल शील, नाशिले सकलि,
कुटिल कटाक्ष बाणे।
अब काहे नाथ, हओ निरदय,
वधते नारीर प्राणे।।"

बहुत दिन बाद तुम्हें पाकर प्रीतम, मेरा हृदय शीतल हुआ है! तुम्हारे बिना एक-एक घड़ी में सौ-सौ युग बीतते थे, पलक में प्रलय होती थी। ऐसे में क्या प्राण रह सकते थे? हम हैं सरल अबलाएँ, गोपिकाएँ, सहज में ही मुग्ध हो जाने वाली, तुम अति चतुर रसिक नागर-वही मुरलीधारी, जाति, कुल, शील, सब कुछ हर लिया तुमने अपने कुटिल कटाक्ष रूपी तीखे बाणों से। अब क्यों निर्दय होकर नाथ! हम नारियों के हरते प्राण?

इसी प्रकार की श्रीमन्महाप्रभु की राधाभाव की उक्तियों का नाना प्रकार के हाव-भावों द्वारा निजकृत पदों में कीर्तन और अभिनय करते हुए बड़े बाबाजी महाशय मधुर नृत्य करने लगे। आज पन्द्रह दिन पीछे जगन्मोहन श्रीश्रीजगबन्धु के श्रीमुखदर्शन और बड़े बाबाजी महाशय के भुवनमोहन कीर्तन तथा नर्तन से लोग आनन्द सागर में निमग्न होने लगे। सन्ध्या समय कीर्तन समाप्त होने पर दर्शकगण अपने-अपने स्थान को चले गये। कई लोगों ने आग्रह के साथ बड़े बाबाजी महाशय से कहा, "कल गुण्डिचामार्जन के लिए चलेंगे न?" उन्होंने विनीत भाव से उत्तर दिया, "आप लोगों की कृपा होगी तो अवश्य चलेंगे।" इतना कहकर दलबल सहित कीर्तन करते हुए जगन्नाथवल्लभ मठ लौटे और वहाँ विश्राम किया।

दूसरी बार रथयात्रा

आज जगन्नाथदेव की रथयात्रा है। यात्रियों की बड़ी भीड़ है। बड़े बाबाजी महाशय अपने साथियों सहित कीर्तन करते हुए मन्दिर में पधारे। धीरे-धीरे कीर्तन के आनन्द में सब लोग मत्त हो गये। दोपहर तक कीर्तन होता रहा, पर जगबन्धु के दर्शन नहीं हुए, मानो वे बाहर निकलना नहीं चाहते और लक्ष्मीदेवी की अनुमति की बाट देख रहे हैं। देर होते देख पुरवासी कुछ भक्तों ने बड़े बाबाजी महाशय से कहा, "देखिये, आज निश्चय नहीं कि श्रीश्रीजगन्नाथदेव कब बाहर पधारेंगे, इसलिए आप लोग प्रसाद पा आइये।" यह सुनकर बड़े बाबाजी महाशय अपने साथियों सहित लालाबाबू के क्षेत्र में महाप्रसाद पाने के लिए चल दिये।

क्षेत्र श्रीश्रीजगन्नाथदेव के श्रीमन्दिर के दक्षिण दरवाजे के पास ही है। श्रीमन्दिर में घण्टा आदि बजते ही क्षेत्र में सुनायी देता है। बड़े बाबाजी महाशय के साथ बलराम बाबू आदि बीस पच्चीस गृहस्थ भी हैं। एक बंगाली बाबू ने बलराम बाबू से पूछा, "ऐसा सुनने में आता है कि जगन्नाथदेव के जितने सेवक पण्डा हैं, उनके वेतन स्वरूप उन्हें मिष्ठान्न प्रसाद मिलने का प्रबन्ध पहले से चला आ रहा है और रथ खींचने वालों को जागीरें मिली हुई हैं। आजकल तो जमीन और वस्तुओं के मूल्य पहले की अपेक्षा बहुत अधिक हो गये हैं, फिर भी अपार सम्पत्तिशाली श्रीजगन्नाथ की सेवा की ऐसी विश्रृंखलता क्यों है?" बलराम बाबू ने कहा, "देखिये, इस ओर राजा की विशेष दृष्टि नहीं है, कर्मचारी लोग देवकार्य में शिथिल हैं। इसीलिए जगन्नाथदेव की सेवा की ऐसी विशृंखलता हो रही है। बड़े दु:ख की बात है कि आज कई महीनों से श्रीश्रीजगन्नाथदेव का शयन नहीं हुआ। किसी दिन श्रृंगार हो जाता है, तो किसी दिन होता ही नहीं। इसीलिए हम लोगों के मन में बड़ा दु:ख रहता है।" यह सुन प्यारेमोहन बाबू ने बड़े बाबाजी महाशय से कहा, "अच्छा, जगन्नाथदेव तो नित्य, चिन्मय और सर्वशक्तिमान हैं। फिर वे क्यों इतना कष्ट भोग रहे हैं?" बड़े बाबाजी महाशय ने मुस्कराकर कहा, 'सुनिये—

"सर्वैश्वर्यमय पूर्णपूर्णतम श्रीभगवान् ने प्रबल पराक्रमशाली कलिराज को युगोचित अधिकार दिया। भगवान् के दिए हुए अधिकार के मद में मत्त होकर कलिराज वृषरूपी धर्म और गोरूपी पृथ्वी को सताने लगे। यह देख भक्तप्रवर परीक्षित् महाराज शस्त्र लेकर कलि को दण्ड देने को तैयार हुए। श्रीभगवान् ने सोचा कि अभिमानी और स्वतन्त्र कलिराज को इस प्रकार

दण्ड दिया जाना आवश्यक है। अत: वे परीक्षित् महाराज के ऊपर असन्तुष्ट नहीं हुए। शीघ्र ही कलिराज पराजित हो गये और हाथ जोड़कर परीक्षित् महाराज से अपने रहने का स्थान मांगने लगे। उन्होंने दयाकर कलिराज के रहने के लिए पाँच स्थान बता दिए, जो इस प्रकार हैं—"

गणिकाशुण्डिकागारं अक्षक्रीड़ाञ्च योषितः।
काञ्चनानि ददौ पञ्च स्थानानि वासहेतवे।।

अर्थात् वेश्यालय, मदिरालय, द्यूत क्रीड़ा, स्त्री और सुवर्ण, ये पाँच स्थान कलि के वास करने को दिये गये। तब कलिराज ने विचारा कि जगत् में स्वधर्मपरायण भगवद्भक्त ही मेरे प्रधान शत्रु हैं। इसलिए सबसे पहले ऐसी चेष्टा करनी चाहिए कि वे हाथ में आ जायें। तब उन्होंने अपने परिकर काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, ईर्ष्या, द्वेष, हिंसा, अधर्म, अविचार, अज्ञान आदि को आदेश दिया कि तुम सब गुप्त रूप से जाकर पहले काशी, गया, मथुरा, द्वारका, श्रीक्षेत्र (पुरीधाम), अयोध्या, मिथिला, नवद्वीप, वृन्दावन आदि तीर्थस्थानों पर अधिकार जमाओ। सावधान रहना कि कहीं प्रबल पराक्रमी भक्त लोग तुम्हें पहचान न पायें, क्योंकि वे ही तुम्हारे परम शत्रु हैं। यह आदेश पाकर कलिराज के परिकरगण अपनी-अपनी सेना और अस्त्र-शस्त्र लेकर तीर्थों में गये और अत्यन्त गुप्त रूप से सेवक, वैष्णव, साधु, संन्यासी, ब्राह्मण और राजाओं के अन्त:करण पर अधिकार जमाने लगे। सेवक के अन्त:करण पर अधिकार करना और भगवान् के अन्त:करण पर अधिकार करना एक ही बात है, क्योंकि भक्त और भगवान् में कोई भेद नहीं है। पूर्णपूर्णतम श्रीभगवान् व्रजेन्द्रनन्दन ने कलि के दोष मिटाने के लिए कोई अस्त्र-शस्त्र धारण नहीं किये। पर उन्होंने परम करुण निताइ-गौर रूप में श्रीधाम नवद्वीप में अवतार लेकर नाम और प्रेम के प्रवाह में जगत् को बहा दिया। यह देख कलिराज अपना अधिकार छिन जाने की आशंका से कपट-भक्तवेश धारण कर श्रीश्रीगौरांगदेव के श्रीचरणों में कातर प्रार्थना करने लगे। करुणामय श्रीगौरांगदेव ने आदेश किया, "कलिराज, डरो मत, तुम्हारा अधिकार नष्ट नहीं होगा, इस युग में तुम्हारी तरह कपट-भक्त-रूप धारण कर बहुत लोग नाना प्रकार के उपधर्मों का प्रचार कर तुम्हारे दल को बढ़ाते रहेंगे।" इस बात का वर्णन 'महाप्रकाश' नामक ग्रन्थ में किया गया है। इच्छामय श्रीभगवान् अपने सेवा-सुख के लिए कभी किसी का अधिकार नष्ट करने की इच्छा नहीं करते। आप देखेंगे कि थोड़े समय में श्रीगौरांगदेव राजा के हृदय में प्रवेशकर राजकर्मचारियों द्वारा ही सेवा की इस सारी विशृंखलता को दूर कर सुन्दर प्रबन्ध कर देंगे।

यह बात होते-होते श्रीजगन्नाथदेव के श्रीमन्दिर में घण्टा घड़ियाल बज उठे। सब लोग शीघ्रतापूर्वक श्रीमन्दिर में पहुँचे। देखा कि बलदेव का 'पहण्डीविजय' आरम्भ हो गया है। धीरे-धीरे बलदेव, जगन्नाथदेव, सुभद्रादेवी और सुदर्शन रथों पर विराजमान हो गये। उस दिन रथ आगे नहीं चला। बड़े बाबाजी महाशय ने दु:खी होकर अपने साथियों से कहा, "तुम लोग वासस्थान को जाओ। मैं आज नहीं जाऊँगा।" यह सुन कुछ लोग चले गये और कुछ उनके साथ रह गये।

सबेरा होते ही सब नरेन्द्र सरोवर पर नित्य-नियम से निवृत्त हो जगन्नाथवल्लभ मठ में होते हुए श्रीमन्दिर में जा पहुँचे। धीरे-धीरे और भी बहुत से लोग जमा हो गये। सूर्योदय के प्राय: चार घड़ी पीछे रथ खींचना प्रारम्भ हुआ। बलभद्रदेव और सुभद्रादेवी के रथों को बलगण्डी के समीप पहुँचाकर जगन्नाथदेव का रथ खींचा जाने लगा। नृत्य-कीर्तन पहले की तरह चलने लगा। छठे दिन जगन्नाथदेव गुण्डिचा मन्दिर पहुँचे और अष्टमी के दिन श्रीमन्दिर में प्रवेश किया। गुण्डिचा मन्दिर में केवल एक दिन रहकर फिर रथ पर सवार हुए। फिर पहले की तरह नृत्य-कीर्तनादि होने लगे। परन्तु बड़े बाबाजी महाशय इस बार उदासीन रहे। उनके हृदय में भारी दु:ख था। वे केवल 'हाय-हाय' करते और कहते, "हे प्रभो, कब तुम्हारी सेवा की ठीक व्यवस्था देख हृदय शीतल होगा? एक दिन को भी तुम्हारा अन्न-भोग बन्द नहीं होता था, छप्पन भोग लगाकर भी तुम्हारे सेवकों के मन तृप्त नहीं होते थे। वहीं तुम आज अपने मन्दिर के सोने के शय्यासन को

छोड़ राजभोग की जगह लाई, च्योणा और फलमूल खाकर रथ के ऊपर सड़क पर बड़े कष्ट से समय काट रहे हो। यह दु:ख असह्य हो रहा है। हे दीनबन्धो, हे पतित-पावन, तुम्हारी दया को धन्य है कि आज तुम पतित, पाषण्डी, नीच, अस्पृश्य जीवों को दर्शन देकर कृतार्थ करने की इच्छा से अपने सुख और वैभव को त्याग इतना कष्ट सह रहे हो। परन्तु भक्त का प्राण तो यह सहन नहीं कर सकता। तुम दयामय हो, जीव के लिए सब कुछ कर सकते हो, तुम्हें सभी शोभा देता है। परन्तु यह सब देख तुम्हारे भक्तों के प्राण कैसे बचेंगे। प्रभो, शीघ्र कुछ उपाय करो।" इतना कह वे व्याकुल होने लगे। जगन्नाथदेव की सेवा की विश्रृंखलता के कारण बड़े बाबाजी महाशय के हृदय की व्याकुलता और आर्ति देख सभी के हृदय पिघल गये।

कृष्णगोविन्द की विदा और गौड़देश यात्रा

रथयात्रा के पीछे बड़े बाबाजी महाशय ऐसे गम्भीर हो गये कि किसी को उनके मुख की ओर देखने का साहस भी नहीं होता था। उनका ऐसा गम्भीर मुख पहले कभी किसी ने नहीं देखा था। एक दिन उन्होंने अपने अन्तरंग साथी कृष्णगोविन्द को बुलाकर कहा, "तुम शीघ्र श्रीधाम वृन्दावन को पैदल चले जाओ। यथासमय फिर मिलना होगा।" यह कठोर आदेश सुनते ही कृष्णगोविन्द उनके चरणों में गिर पड़े। किसी को आदेश का कारण मालूम न था। सब दु:खी होकर रोने लगे। परन्तु महापुरुष का वही गम्भीर भाव था।

वज्रादपि कठोराणि मृदुनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमर्हति।।

—महापुरुषों का चित्त वज्र से भी कठोर और कुसुम से भी कोमल होता है, कोई उन्हें यथार्थ रूप से जान नहीं सकता।

बड़े बाबाजी महाशय की ठीक वैसी ही अवस्था थी। प्राण से भी प्रिय भक्त के आँसुओं से उनका हृदय पिघला नहीं।

थोड़ी देर बाद कृष्णगोविन्ददास बड़े बाबाजी महाशय की चरणरज मस्तक पर धारण कर रोते-रोते वृन्दावन चल दिये। दूसरे लोगों ने कृष्णगोविन्द से कहा, "तुम ठहरो, हम बाबाजी महाशय से प्रार्थना करते हैं कि तुम्हें अपने साथ ही रखें।" कृष्णगोविन्द ने उत्तर दिया, "दादा की आज्ञा सर्वथा पालनीय है, दादा जिस बात में सुखी हैं उसी में मैं भी सुखी हूँ।" ऐसा आदर्श प्रेम, ऐसी स्वाभाविक प्रीति संसार में बहुत कम देखने में आती है। जैसे दादा, वैसे उनके छोटे भाई। 'योग्यं योग्येन योजयेत्।' कृष्णगोविन्ददास के जाते ही बड़े बाबाजी महाशय उपस्थित भक्तों के सामने उनके गुणों का बारबार वर्णन करने लगे।

कुछ दिन पीछे बड़े बाबाजी महाशय ने पुरवासी भक्तों से विदा लेकर गौड़ देश के लिए पैदल यात्रा आरम्भ की। केवल चार पाँच व्यक्तियों को साथ लिया। गोविन्ददास, कृष्णानन्ददास, शीतलदास आदिक चार पाँच लोगों को नित्य जगन्नाथदेव के श्रीमन्दिर में कीर्तन और श्रीमन्महाप्रभु के पादपद्म की सेवा के लिए श्रीक्षेत्र में रखा। पहले ही कहा जा चुका है कि यह सब लोग नि:स्वार्थ प्रेमी और अनासक्त भाव के भावुक हैं, यद्यपि सभी बड़े बाबाजी महाशय के साथ रहने को लालायित रहते हैं। उन्होंने जब उन्हें पास बुलाकर स्नेहपूर्ण शब्दों में कहा, "भाई, तुम लोग कुछ समय यहीं रहो। मैं शीघ्र ही लौटकर आ जाऊँगा", तो किसी ने आपत्ति न की। चलते समय उन्होंने एक एक को दृढ़ प्रेमालिंगन से कृतार्थ किया। उस समय का करुण दृश्य देख सब रोने लगे। जगन्नाथदेव के श्रीचरणों में दण्डवत् प्रणाम कर उन्होंने नेत्रों में जल भरकर उनसे विदा ली। मार्ग में साक्षीगोपाल दर्शन कर एक रात वहाँ ठहरे। दूसरे दिन कीर्तन करते-करते श्रीभुवनेश्वर की यात्रा की।

भुवनेश्वर के मार्ग में रामबेहरा

साक्षीगोपाल से भुवनेश्वर कोई ग्यारह बारह कोस दूर है। पाँच छह कोस चलकर इन लोगों को एक बड़े ही गरीब आदमी के आग्रह पर उसके यहाँ ठहरना पड़ा। उसका नाम था रामचन्द्र बेहरा। वह जाति का ग्वाला था। उसका इकलौता लड़का मर चुका था। परिवार में एक विधवा पुत्रवधू और पुत्रशोकवती स्त्री

के अतिरिक्त और कोई न था। उन सबका हृदय आज आनन्द से भरपूर था। परन्तु उनकी सांसारिक अवस्था बड़ी ही शोचनीय थी। दोनों समय भरपेट अन्न नहीं मिलता था। बड़े कष्ट से दिन बीतते थे। उन्हें देखते ही बड़े बाबाजी महाशय का हृदय पिघल गया, नेत्रों में जल भर आया और वे न मालूम क्या विचारने लगे।

रामचन्द्र ने स्त्री से पूछा, "घर में कुछ है? आज मेरे कैसे भाग्य हैं कि ऐसे महापुरुष घर पधारे हैं। यदि इन्हें खाने को न दे सका तो निश्चय ही नदी में डूबकर मर जाऊँगा।" बुद्धिमती पतिव्रता स्त्री ने अपने स्वामी के ऐसे दु:खभरे वचन सुनकर गद्‌गद कण्ठ से कहा, "चिन्ता न करो, तुम इनकी रसोई के लिए स्थान ठीक करो, मैं थोड़ा घूम आऊँ। प्रभु की इच्छा से इन महापुरुष की कृपा से सब ठीक हो जाएगा।" यह कहकर भक्तिमती बेहरा पत्नी घर से निकली। पर घटना बड़े बाबाजी महाशय से छिपी न रही। उन्होंने रामचन्द्र को बुलवाकर कहा, "बाबा, हमारे भोजनादि के लिए तुम्हें विशेष कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं। मुझे तुम्हारा मुख देखकर ही मालूम हो गया कि आज तुम्हारे घर में अन्न नहीं है। तुम्हारी भक्तिमती स्त्री शायद पड़ौसी के घर से हमारे लिए भोजन का सामान लेने गयी है। अपनी स्त्री को बुला लो, उधार लेकर कोई सामान लाने की आवश्यकता नहीं। श्रीगौरविश्वम्भर यदि कृपा करेंगे तो तुम्हारे घर बैठे ही आज तुम्हारे गाँव के बहुत-से लोग तुम्हारे यहाँ आनन्दपूर्वक महाप्रसाद पायेंगे।" इतना कह वे चुप हो गये।

रामचन्द्र ने कहा, "महाप्रभु! मैं तो जाति का ग्वाला हूँ, अत्यन्त मूर्ख और भक्तिहीन हूँ। कौन विश्वम्भर और कौन जगन्नाथ हैं, मैं नहीं जानता। आपके दर्शन कर मेरे मन में अकस्मात् यह भाव उदय हुआ कि आज मेरा कर्मबन्धन टूट गया। अब मेरा कर्तव्य निर्दिष्ट कर मुझे दीक्षा देने की कृपा कीजिये।"

सरलप्राण रामचन्द्र के आर्तिभरे आत्मसमर्पण की बात सुन सबके हृदय पिघल गये। नवद्वीपदास ने रोते हुए कहा, "हा निताइ! ऐसे सरल विश्वासी प्राणी के ऊपर क्या आपकी कृपा न होगी?" निताइचाँद का नाम लेते ही सबके हृदय में मानो एक अनिर्वचनीय शक्ति का संचार हो गया। सब 'हा निताइ, जय निताइ' कह राते हुए वेगपूर्वक नृत्य करने लगे। रामचन्द्र ने इस प्रकार का प्रेमनृत्य पहली बार देखा था। वह हाथ जोड़कर एक तरफ खड़ा आँसू बहा रहा था।

रामचन्द्र के घर में आज क्या हल्लागुल्ला हो रहा है—यह देखने के लिए गाँव के स्त्री पुरुष एक-एक कर आने लगे। थोड़ी ही देर में रामचन्द्र की भक्तिमती स्त्री कुछ चावल, दाल तीन चार बैंगन और थोड़ी-सी भिण्डी लेकर प्रसन्न मुद्रा में लौटी। वह अपने स्वामी की उस समय की अवस्था और इन महापुरुषों का भाव देखकर चकित हो गयी। अपनी विधवा पुत्रवधू से बोली, "इनकी रसोई का प्रबन्ध हो गया है?" प्रत्रवधू ने उत्तर दिया, "महाप्रभु ने मना कर दिया है।" यह सुन रामचन्द्र की पत्नी ने दाल, चावल रख दिये और अपने स्वामी के पास जाकर उसी की तरह हाथ जोड़ कर खड़ी हो गयी।

बड़े बाबाजी महाशय ने प्रेम में उन्मत्त हो नृत्य करते हुए रामचन्द्र को आलिंगन किया और उसके कान में मन्त्र प्रदान किया। मन्त्र पाते ही वह काँपता हुआ एकदम उनके चरणों में गिर पड़ा। उस समय गाँव के कोई चालीस पचास लोग जमा हो चुके थे। रामचन्द्र बेहरा की अवस्था देख सब विस्मित हो गये। गाँव में नगण्य, घोर नास्तिक और पाषण्डी रामचन्द्र बेहरा का शरीर आज अश्रु, कम्प, पुलकादि सात्विक भावों से भूषित हो रहा था। लोग देखकर भी विश्वास नहीं कर पा रहे थे। आज उसका नया जन्म हो गया। उसकी दीनता भरी प्रार्थना करने पर बड़े बाबाजी महाशय ने उसकी पत्नी और पुत्रवधू को भी मन्त्र प्रदान कर कृतार्थ किया। तब तीनों उच्च कण्ठ से रोने लगे। उनके मुख से बार-बार यही निकल रहा था, "हे महाप्रभु, हमारी क्या गति होगी?"

बड़े बाबाजी महाशय ने रामचन्द्र को प्रेमपूर्वक आलिंगन किया और उसकी पत्नी और पुत्र-वधू को चरण-रज दे स्नेह से गद्‌गद हो उनसे कहने लगे, "शान्त हो, अभय हो! नाम का आश्रय लो। कलियुग में नाम छोड़कर और कोई गति नहीं है। महाप्रभु का वाक्य है—"

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।

(वृहन्नारदीय 38/126)

हर्षे प्रभु कहे-शुन स्वरूप रामराय।
नाम संकीर्तन कलौ परम उपाय।।
संकीर्तन-यज्ञे करे कृष्ण आराधन।
सेइ से सुमेधा पाय कृष्णेर चरण।।

(चै.च. 3/7/8)

यह सुन रामचन्द्र ने रोते हुए कहा, "मैं तो घोर पतित पाषण्डी हूँ, मेरे पापों की सीमा नहीं। इन पापों का प्रायश्चित्त क्या इस जन्म में हो सकेगा?" बड़े बाबाजी महाशय ने रामचन्द्र को आश्वासन देते हुए कहा, "बेटा, कोई चिन्ता नहीं।"

एकबार कृष्णनामे जत पाप हरे।
पातकीर साध्य नाइ तत पाप करे।।

नाम लेने में शुचि, अशुचि अथवा देश, काल और पात्र का कोई विचार नहीं है। श्रद्धा से उपहार से, कुभाव से अथवा व्यंग्य रूप से भी यदि कोई भगवान् का नाम उच्चारण करे, तो उसे भी सर्वसिद्धि लाभ होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं। सतयुग में ध्यान धारणा से, त्रेता में यज्ञों से, द्वापर में सेवापूजा से जो फल मिलता था, उससे अधिक कलियुग में केवल नाम संकीर्तन से सहज में मिलता है। यह शास्त्र का वाक्य है। इसीलिए श्रीनरोत्तमदास ठाकुर महाशय ने कहा है—

धन्य धन्य कलियुग सर्वयुगसार।
हरिनाम संकीर्तन जाहाते प्रचार।।

यह सुनकर राम बेहरा ने और कुछ नहीं कहा। परन्तु उसका मुख देखकर मालूम होता था कि उसके मन में कुछ सन्देह रह गया है। उसी समय एक वृद्ध ब्राह्मण ने बड़े बाबाजी महाशय से पूछा, "आपने नाम में जो इतनी शक्ति बतलायी है, वह कौन-सा नाम है।" बड़े बाबाजी महाशय ने उत्तर दिया, "बाबा, प्रभु तो भक्तवांछाकल्पतरु हैं। वे नामी हैं, अर्थात् जितने नाम हो सकते हैं उन सबके मूल हैं। अपनी-अपनी श्रद्धा, भक्ति, अनुराग और रुचि के अनुसार श्रीभगवान् के जिस नाम और जिस रूप में भी साधक की प्रीति होती है, सर्वान्तर्यामी भावग्राही भगवान् उसी नाम और रूप से उसके ऊपर कृपा करते हैं।"

ब्राह्मण ने फिर पूछा, "शास्त्रों के अनुसार इन नामों में क्या कोई प्रधान भी है?" बड़े बाबाजी महाशय ने कहा, "है क्यों नहीं, शास्त्र कहते हैं कि तीन बार सहस्रनाम पाठ करने से जो फल होता है, वही एक बार कृष्ण नाम लेने से होता है। तीन बार कृष्ण नाम लेने से जो फल होता है, वही कृष्ण-मनमोहिनी, वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा-नाम के एक बार लेने से होता है, और तीन बार श्रीराधा नाम लेने से जो फल होता है वही श्रीराधागोविन्द युगलनाम के एक बार लेने में होता है। परन्तु इन सब नामों में अपराध का विचार है और इसीलिए इनके द्वारा प्रेमरूपी फल की प्राप्ति न्यूनाधिक होती है। किन्तु कलिपावनावतार परम दयाल **निताइ-गौरांग-नाम में अपराध का विचार नहीं है।** किसी निताइ-गौरांग नाम लेने से पुलक, अश्रु, कम्प आदि सात्विक विकार होने लगते हैं और साधक परमानन्दरस में निमग्न होकर ब्रह्मानन्द को भी तुच्छ समझने लगता है। पूज्यपाद श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी ने श्रीचैतन्यचरितामृत में इस सिद्धान्त की सुन्दर मीमांसा की है—"

अद्यापिह देख-'चैतन्य' नाम जेइ लय।
कृष्णप्रेमे पुलकाश्रु-विह्वल से हय।।
'नित्यानन्द' बलिते हय कृष्णप्रेमोदय।
आउलाय सर्वअंग अश्रु-गंगा बय।।
चैतन्ये नित्यानन्दे नाहि ए सब विचार।
नाम लैते प्रेम देन, बहे अश्रुधार।।

(चै.च. आ. 8/22, 23, 31)

बड़े बाबाजी महाशय के मुख से निताइगौरांग नाम की महिमा सुन ब्राह्मण प्रेमानन्द में विभोर हो कहने लगा, "महाराज! मैं बहुत दिनों से अनेक साधुओं का संग करता आया हूँ, पर इतनी सरल भाषा में ठीक-ठीक नामतत्व किसी के मुख से नहीं सुना। आज हमारा यह छोटा-सा गाँव धन्य हो गया। इस पाषण्डी बेहरा के चौदह पुरखों का उद्धार हो गया।" यह सुनते ही वृद्ध ब्राह्मण के चरण पकड़ रामबेहरा रोते हुए कहने लगा, "गोसाई महाप्रभु, अब तक मैं

बिना समझे ब्राह्मण वैष्णवों की निन्दा और दूसरों से द्रोह करता रहा। आप मेरे अपराध क्षमा कर आशीर्वाद दीजिये कि आज से गुरु-वैष्णव-ब्राह्मणों के चरण-कमलों में मेरी अचल भक्ति हो।"

इसी समय गाँव के एक भक्त ने आकर बड़े बाबाजी से कहा, 'महाप्रभु, हमारे घर चलकर रसोई बना ठाकुर को भोग लगाकर प्रसाद पाने की कृपा कीजिये।' इसी प्रकार तीन चार और व्यक्तियों ने अनुरोध किया। महापुरुष ने थोड़ा विचार कर कहा, "देखो बाबा, मैं पहले से ही इस गरीब की झोंपड़ी में आकर उतरा हूँ। ठाकुर के भोग का प्रबन्ध यहीं होना चाहिये। मेरी इच्छा दूसरी जगह जाने की नहीं है। फिर तुम सभी जब हम लोगों को अपने-अपने घर ले जाने का आग्रह करते हो, तो मैं किसकी मानूँ और किसकी न मानकर उसका मन दुखाऊँ? हम आज यहीं ठहरेंगे। तुम दु:ख न मानना।" यह सुनकर पूर्वोक्त वृद्ध ब्राह्मण ने उन लोगों से कहा, "देखो, तुम सब मिलकर थोड़ा-थोड़ा सामान लाओ और यहीं भोग का प्रबन्ध करो।" इस बात को सबने मान लिया और आनन्द से हरिध्वनि करने लगे।

रामचन्द्र बेहरा परिवार सहित बड़े बाबाजी महाशय के श्रीचरणों में सदैव के लिए आत्मसमर्पण कर धन्य हुआ। आज दरिद्र ग्वाले के घर महामहोत्सव होने लगा। गाँव के लोग अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार चावल, दाल, सागादि लेकर रामचन्द्र के घर आने लगे। प्राय: चालीस लोगों के भोजन योग्य सामान जमा हो गया। बाबाजी महाशय के साथी रसोई का प्रबन्ध करने लगे। थोड़ी ही देर में ठाकुर का भोग-राग तैयार हो गया। श्रीनिताइगौरांग का भोग लगने के बाद बड़े बाबाजी ने कहा, "बाबा, तुम सब प्रसाद पाने बैठो।" यह सुनकर सब एकस्वर से बोल उठे, "महाप्रभु, पहले आप पा लीजिये, हम सब तो आपका अधरामृत पायेंगे।"

बड़े बाबाजी महाशय ने और कोई आपत्ति न की और अपने सहचरों के साथ प्रसाद पाने बैठ गये। छोटे, बड़े, स्त्री, पुरुष सभी की दृष्टि महापुरुष पर जा रही थी, सब टकटकी लगा उनके अंग प्रत्यंग की शोभा निहार रहे थे। आज मानो उनके मन आनन्द में मत्त हो रहे थे।

थोड़ी देर में जब ये प्रसाद पा चुके तो सुचतुर नवद्वीपदास ने और सब लोगों को आदरपूर्वक बैठा दिया। सब बिना किसी भेदभाव के एक साथ प्रसाद पाने बैठ गये। जाति, कुल, मान, मर्यादा अथवा स्थानास्थान की बात किसी के मन में न उठी। ब्राह्मण और ग्वाला एक साथ प्रसाद पाने बैठ गये। कौन जाने कि यह वस्तु शक्ति का प्रभाव था, अथवा भक्ति का, अथवा इन महापुरुष की मोहनी शक्ति का। परोसना आरम्भ होते ही सब एक मन हो गये। एक-एक पत्तल पर प्रसाद रखा जा रहा था और 'जय निताइ' की गगनभेदी ध्वनि हो रही थी। सबकी आन्तरिक इच्छा थी कि बड़े बाबाजी महाशय का अधरामृत मिले। नवद्वीपदास ने बड़े बाबाजी महाशय का अधरामृत एक साथ मिलाकर सबको थोड़ा-थोड़ा दिया और सब परम आनन्द में महाप्रसाद पाने लगे।

चालीस जनों के प्रसाद से प्राय: सवा सौ लोगों का पेट भर गया। यह देख सब चकित रह गये और आपस में कानाफूसी करने लगे, "यह महापुरुष सामान्य मनुष्य नहीं हैं। मनुष्य में ऐसा प्रेम और ऐसी अलौकिक शक्ति होना असम्भव है।"

इस प्रकार बड़े आनन्द से महोत्सव पूरा हुआ। इन लोगों ने उस दिन रात में वहीं विश्राम किया। दूसरे दिन गाँव के लोग एकत्र होकर इनसे दो-एक दिन और ठहरने के लिए आग्रह करने लगे। उसी समय रामचन्द्र बेहरा सपरिवार आकर बड़े बाबाजी महाशय के चरणों में गिरकर पूछने लगा कि "हम लोगों को अब किस प्रकार रहना चाहिये और कैसा आहार करना चाहिये?"

उन्होंने कृपाकर कहा, "किसी की निन्दा न करते हुए श्रीभगवान् का नाम लेना। अपनी सामर्थ्य के अनुसार यथायोग्य अतिथि की सेवा करना। भोजन की प्रत्येक वस्तु पर तुलसी पत्र छोड़कर भगवान् को निवेदन कर प्रसाद पाना। मन, वचन और कर्म से हिंसा, द्वेष का त्याग करना। चराचर, पशु, पक्षी, कीटपतंग आदि दृश्यादृश्य सम्पूर्ण पदार्थों से अपने

को नीचा मान जगद्गुरु श्रीनित्यानन्द का दास-भाव स्वीकार कर दीनभाव से जीवन व्यतीत करना। प्रभु जिस समय जिस प्रकार रखें, उसी में सन्तुष्ट रहना।"

बड़े बाबाजी महाशय ने रामचन्द्र को लक्ष्यकर गाँव के लोगों को यह सदुपदेश दिया और नामकीर्तन करते हुए वहाँ से चल दिये। गाँव के बहुत-से लोग बहुत दूर तक उनके साथ गये, तब उन्होंने उन लोगों को नाना प्रकार के मधुर वचनों से समझाकर लौटने को कहा। वे लोग भी मानो अपने मन को बड़े बाबाजी महाशय के साथ भेज केवल शून्य शरीर लेकर घर लौट आये।

महापुरुष के सत्संग में वे लोग एक दिन के लिए मानो देह, गेह, पुत्र, परिजनादि सब भूलकर आनन्दमय राज्य में वास कर रहे थे। अब वे उनके विरह में अत्यन्त दु:खी थे। रामबेहरा के मन में सुख का लेश भी न रहा। उसके मुख से गुरुदेव की बात छोड़ दूसरी बात ही नहीं निकलती थी। सब लोग उनके साथियों के मधुर व्यवहार और प्रेमभाव की चर्चा कर रहे थे। रामचन्द्र कुटुम्ब सहित परम दुर्लभ प्रेमधन पाकर नया जन्म ले चुका था। जो लोग रामचन्द्र को पहले अवज्ञा की दृष्टि से देखा करते थे, वह एक-एककर उसके घर आने लगे और उसे देखकर आश्चर्य करने लगे। अब रामचन्द्र पहला रामचन्द्र न रहा। परम निष्ठावान और भक्तिमान रामचन्द्र को देख सब लोग अपना सौभाग्य मानते थे और महापुरुष की जय बोलते थे।

रामचन्द्र और उसकी पत्नी तथा पुत्रवधू गुरुवाक्य में दृढ़ विश्वास रख परमानन्दपूर्वक भजन करने लगे। माँसाहार एकदम त्याग दिया। तुलसी पत्र डालकर ठाकुर को निवेदन किये बिना वे कोई वस्तु ग्रहण नहीं करते थे। एक दिन गाँव के एक ब्राह्मण सज्जन ने पूछा, "राम, पहले तो तुम्हारी अवस्था बड़ी खराब थी, सदैव अन्न की चिन्ता से दु:खी रहते थे, पर आजकल बड़े आनन्द में हो। बताओ आजकल तुम्हारा काम कैसे चल रहा है?" राम ने उत्तर दिया, "क्या कहूँ, जिस दिन से परम करुणामय समर्थ श्रीगुरुदेव ने इस अधम की कुटी में पधारकर कृपा की है, उसी दिन से हमारा इस संसार का परमार्थ का सब प्रकार का दु:ख दूर हो गया है। शायद आप विश्वास नहीं करेंगे कि आजकल प्राय: प्रति दिन ही श्रीगुरुदेव की कृपा से इस अधम की कुटी में दो एक अतिथि पधारते रहते हैं।"

रामचन्द्र बेहरा की कुटिया वास्तव में आनन्दभवन बन गयी। श्रीगुरुदेव की अपार कृपा के बल से सभी कुछ सम्भव है। रामचन्द्र ग्वाला होते हुए भी आज श्रीगुरु की कृपा के बल से बड़ा प्रभावशाली हो गया है। अब गाँव के सभी लोग उसके यहाँ आया जाया करते हैं। यहाँ तक कि किसी के यहाँ कोई गृहकलह हो जाता है तो वह कहने लगता है, "अब घर अच्छा नहीं लगता, राम बेहरा की कुटी में जाकर मन शान्त कर आऊँ।" जिस रामचन्द्र का कोई नाम भी नहीं लेता था और भूल से भी जिसके घर कोई नहीं जाता था, आज सभी के मुख पर उसका नाम रहता है। उसकी पर्णकुटी आज शान्ति-निकेतन बन गयी है। धन्य गुरु भक्ति! धन्य रामचन्द्र!

भुवनेश्वर दर्शन

बड़े बाबाजी महाशय अपने परिकरों सहित 'आबार बल हरिनाम, आबार बल' कीर्तन करते हुए प्रेमानन्द में नाचते-नाचते दोपहर के समय एकाम्र-कानन पहुँचे। श्रीभुवनेश्वर दर्शन और प्रणामादि कर श्रीमन्दिर के बाहर जाकर देखा कि सिंहद्वार के पास तीन वैष्णव और कुछ ब्राह्मण बैठे हुए बातचीत कर रहे हैं। इन्हें देखते ही एक बाबाजी ने कहा, "यह देखो, बड़े बाबाजी महाशय आ गये, इन महापुरुष से पूछने पर सब सन्देह दूर हो जायेगा।" यह सुन उन ब्राह्मण और वैष्णवों ने बड़े आग्रह के साथ इन लोगों को वहाँ बैठा लिया।

बड़े बाबाजी महाशय ने विनयपूर्वक वैष्णवों का परिचय पूछा। उनमें एक बंगाली बाबाजी थे। उन्होंने कहा, "मैं बंगाली हूँ और गौड़ीय सम्प्रदाय तथा श्रीअद्वैत परिवार का हूँ। मेरा नाम है माधवदास। ये दोनों उड़ीयावासी हैं। गंगा-मातामठ के शिष्य हैं, इनका नाम है दीनबन्धुदास। महाराज, ये लोग उड़िया हैं। इन्हें किसी प्रकार का शास्त्रज्ञान नहीं है। वृथा ही

मूर्खों की तरह तर्क-वितर्क कर मुझे परेशान कर रहे हैं। आप ही बतलाइये, कोई वैष्णव क्या कभी शिव का प्रसाद ले सकता है? नरोत्तम ठाकुर ने लिखा है—"

ना करिबे अन्य देवेर निन्दन वन्दन।
ना करिबे अन्य देवेर प्रसाद भक्षण।।

सच्चिदानन्दविग्रह पूर्णपूर्णतम भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन अंशी हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदिक देवदेवियाँ उनके अंशकलास्वरूप हैं।

'एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान स्वयम्।'

शिवपुराण में भी लिखा है, 'अग्राह्यं शिवनिर्माल्यम्।' ये लोग कहते हैं कि भुवनेश्वर का प्रसाद शाक्त, शैव, वैष्णव सभी पाते हैं। यह बात ठीक है कि नहीं, आप इसका ठीक-ठीक समाधान कर सबका सन्देह दूर कीजिये।

बड़े बाबाजी महाशय ने बड़ी नम्रता के साथ उत्तर दिया, "महाशय, मैं तो मूर्ख हूँ, न मुझे शास्त्रज्ञान है और न मुझमें विचारशक्ति है! सुना है कि भुवनेश्वर को गोपालमन्त्र से भोग लगाया जाता है। परन्तु यह बात सत्य है या नहीं, यह तो पण्डालोग ही कह सकते हैं।"

पण्डागण अब तक चुप थे। बड़े बाबाजी महाशय की बात सुनकर आनन्द से बोल उठे, "हाँ जी, यह बात तो सत्य है। यहाँ पर जगन्नाथदेव के श्रीमुख के आदेशानुसार गोपालमन्त्र से ही भुवनेश्वरदेव को भोग लगाया जाता है।"

यह सुनकर माधवदास बाबाजी ने कहा, "तब तो हम लोगों के प्रसाद पाने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती। यह बात पहले किसी ने नहीं बतायी।" बड़े बाबाजी महाशय ने मुस्कराते हुए कहा, "खैर, इस समय तो हम लोगों के प्रसाद पाने का प्रबन्ध हो ही गया।" माधवदास बाबाजी ने इन लोगों से स्नानादि से निवृत्त होने का अनुरोध किया तो बड़े बाबाजी महाशय ने फिर विनीत भाव से कहा- "अच्छा, स्नानादि के बाद इस विषय की फिर यथाशक्ति आलोचना करेंगे।" यह कहकर स्नानादि के लिए चल दिये।

इन लोगों के नित्य नियम से निवृत्त होते ही एक पण्डा ब्राह्मण ने आकर कहा, "तुम लोग प्रसाद पाओ तो हमारे साथ श्रीमन्दिर में चलो।" इन लोगों ने कहा, "हम लोग तो कंगाल हैं, हमारे पास पैसा नहीं है।" इसके उत्तर में पण्डा ने हँसकर कहा, "कंगालों के ठाकुर आशुतोष ने तुम लोगों के प्रसाद का प्रबन्ध कर रखा है। नहीं तो इस समय एक वृद्ध सधवा महिला कहाँ से आती? कैसे आश्चर्य की बात है कि उन्होंने आते ही हमारे हाथ में रुपये देकर कहा कि देखो, कुछ निष्किञ्चन वैष्णव श्रीमन्दिर के दरवाजे पर बैठे हैं, इन रुपयों से तुम उन्हें अच्छी तरह भोजन कराओ, मुझसे खड़ा नहीं रहा जाता। यह कहकर वह बिजली की तरह अन्तर्धान हो गयी। बाबा, क्या कहूँ, मैं अधम भजनहीन हूँ, उस समय कुछ समझ नहीं सका जब माँ अन्तर्धान हो गयी तब मुझे चेत हुआ और समझ में आया कि ये तो साधारण स्त्री नहीं थीं, साक्षात् माँ अन्नपूर्णा थी। मैं बड़ा अभागा हूँ, उनके दर्शन पाकर भी पहचान न सका। हाय रे दुर्भाग्य! हमारे जीवन को धिक्कार है। बाबा, तुम्हारा भजनबल धन्य है, तुम्हारा मनुष्य जन्म धन्य है और तुम्हारा सौभाग्य धन्य है। नहीं तो माँ अन्नपूर्णा तुम्हारे लिए इतना कष्ट क्यों करतीं?"

ब्राह्मण के मुख से यह बात सुनकर बड़े बाबाजी महाशय का सारा शरीर पुलकित हो गया और अश्रुजल से वक्षस्थल भीगने लगा। वे गद्गद कण्ठ से बोले, "बाबा, माँ हमारी बड़ी दयामयी हैं। वे तो सदैव ही अपनी अधम सन्तान के लिए व्याकुल रहती हैं। परन्तु हम उनकी दया को याद नहीं करते। शीघ्र चलिये, माँ का कृपादत्त महाप्रसाद पाकर जीवन सफल करें।" इतना कह वे अपने साथियों सहित श्रीमन्दिर में गये और परम आनन्द से महाप्रसाद पाकर बिन्दु सरोवर के किनारे जाकर बैठ गये। धीरे-धीरे आठ-दस ब्राह्मण और दस-पन्द्रह दूसरे लोग भी वहाँ आ गये। उस समय फिर वही प्रसंग छिड़ गया। बड़े बाबाजी महाशय ने माधवदास बाबाजी महाशय से पूछा, "बाबाजी महाशय, आप अपने प्रश्न के उत्तर में शास्त्र प्रमाण सुनना चाहते हैं या युक्ति सुनना चाहते हैं?"

माधवदास—मैं शास्त्रप्रमाण और युक्ति सिद्धान्त दोनों ही चाहता हूँ। दोनों प्रकार से मीमांसा कीजिये।

बड़े बाबाजी—अच्छा, आप शिव को क्या मानते हैं?

माधवदास—मैं उन्हें ईश्वर मानता हूँ।

बड़े बाबाजी—जगन्नाथदेव को क्या मानते हैं?

माधवदास—जगदीश्वर-वैकुण्ठनाथ-नारायण।

बड़े बाबाजी—तब विचार कीजिये कि ईश्वर और जगदीश्वर में अर्थात् अंश अंशी में कभी भेद हो सकता है? फिर उनका प्रसाद पाने में क्या आपत्ति है?

यह बात सुनकर हरिदेव मिश्र नामक एक ब्राह्मण कहने लगे, "महाशय, बहुत दिन पूर्व जब एक बार इसी जगह इसी बात पर विचार हुआ था, तब वैष्णवस्मृति हरिभक्तिविलास से बहुत-से प्रमाण संग्रह किये गये थे। उनमें से दो-एक मुझे याद हैं। हरिभक्ति विलास के चौदहवें विलास में श्लोक संख्या 65 इस प्रकार है"—

मदभक्तः शंकरद्वेषी मद्वेषी शंकरप्रियः।
उभौ तौ नरकं यातौ यावच्चन्द्रदिवाकरौ।।

हयशीर्ष में यह श्लोक है—

यः शिवः सोऽहमेवेह योऽहं स भगवान् शिवः।
नावयोरन्तरं किञ्चिदाकाशानिलयोरिव।। इत्यादि

(ह.भ.वि. 14/66 हयशीर्ष पंचरात्र वचन)

बड़े बाबाजी—अन्यत्र कहा गया है, 'वैष्णवानां यथा शम्भुः'। जब शिव वैष्णवाग्रगण्य हैं तो उनके बारे में हम लोगों को और अधिक विचार करने का क्या अधिकार है? चाण्डाल भी वैष्णव हो तो उसका उच्छिष्ट देवताओं को दुर्लभ होता है, फिर वैष्णव शिरोमणि महादेव के ऊपर हम लोग इतना कटाक्ष क्यों करते हैं?

माधवदास—श्रीशंकरदेव भगवत् प्रसाद पायें तो कोई आपत्ति नहीं, परन्तु जब वे अनिवेदित वस्तु ग्रहण करें तो क्या किया जाय?

बड़े बाबाजी—यह बात किसी प्रकार भी युक्तिसंगत नहीं है, क्योंकि जो वैष्णव हैं, वे कभी अनिवेदित वस्तु ग्रहण नहीं कर सकते—यह बात ध्रुव सत्य है। यदि वह आपकी और हमारी तरह तुलसीपत्र छोड़कर जाहिरा तौर पर भोग नहीं लगाते तो इससे यह नहीं समझना चाहिये कि वैष्णवाग्रगण्य देवदेव महादेव भगवत् अनिवेदित वस्तु ग्रहण किया करते हैं। चैतन्यचरितामृत के अन्त्यखण्ड के सोलहवें परिच्छेद में कालिदास और झडू ठाकुर के प्रसंग पर विचार कीजिये। यदि ऐसा न होता तो झडू ठाकुर का उच्छिष्ट खाकर कालिदास को प्रेम का उदय कैसे होता? भगवान् के अधरामृत के बिना जीव के हृदय में प्रेम का संचार हो नहीं सकता। 'अग्राह्यं शिव निर्म्माल्यम्' जो आपने कहा, इसे वैष्णव ही नहीं, शैव तक मानते हैं। इसका कारण यह है कि शंकरदेव ने शंकराचार्य रूप से अवतार लेकर वेदान्त सूत्र के भाष्य में नित्य चिन्मयस्वरूप श्रीभगवान् के आकार को क्षण-भंगुर कहकर उसकी व्याख्या की थी। यद्यपि शंकरदेव ने यह कार्य भगवान् की इस आज्ञा के अनुसार किया था कि "जनान् मद्विमुखान् कुरू" तथापि इससे उन्होंने अपने को अपराधी मानकर जिस मुख से विष्णु निन्दा की थी, उसी ऊर्ध्वमुख को शाप दिया था कि 'जो कोई मेरे उर्ध्वमुख का प्रसाद ग्रहण करेगा, वह मेरा भजन करते हुए भी पाषण्डी होगा।' किसी वाक्य का केवल एक अंश ग्रहण करना उचित नहीं। मेरा विश्वास है कि जब तक देव-देवी तो क्या, पशुपक्षी कीटपतंग आदि के प्रति भी द्वेषभाव रहेगा, तब तक सनातन धर्म का पालन नहीं हो सकेगा।

हम लोगों में यह एक बड़ा दोष है कि हम उड़ीसावासियों में अश्रद्धा रखते हैं और विचार कर नहीं देखते कि ये लोग हमसे किस प्रकार हीन हैं। यदि वे हीन ही होते तो श्रीजगन्नाथदेव सब देशों को छोड़ उड़ीसा में ही क्यों प्रकट होते? श्रीभगवान् किसी व्यक्ति के अथवा किसी वस्तु के वशीभूत नहीं हैं। वे तो स्वतन्त्र हैं। वे धन के वश नहीं, क्योंकि वे लक्ष्मीपति हैं, वे विद्या के वश नहीं, क्योंकि स्वयं सरस्वतीपति हैं। वे रूप के वशीभूत नहीं, क्योंकि स्वयं मदनमोहन हैं। वे गुण के वशीभूत नहीं, क्योंकि त्रिगुणाधीश उनके दास हैं और वे गुणातीत एवं गुणमय हैं। वे ज्ञान के भी

वशीभूत नहीं, क्योंकि वे ज्ञानातीत सच्चिदानन्दमय हैं। फिर वे किसके वशीभूत है? '**भक्तिप्रियो माधवः।**' वे केवल प्रेमभक्ति के वशीभूत हैं। उन्होंने स्वयं ही कहा है, '**अहं भक्त पराधीनः।**' बछड़ा जैसे गाय के पीछे-पीछे दौड़ता रहता है, वे भी वैसे ही भक्त के साथ रहते हैं। भक्त जो कुछ श्रद्धा से उन्हें अर्पण करता है, वे प्रीतिसहित उसे ग्रहण करते हैं। मनुष्य जाति सब जीवों में श्रेष्ठ क्यों है? केवल भक्ति के बल से। उड़ीसा-वासियों में भक्तिबल अधिक है। उन्होंने भक्तिबल से ही भगवान् को वशीभूत कर अपने देश में रखा है। हमें उन लोगों का सम्मान करना चाहिये, क्योंकि वे भक्तिबल में हम लोगों से अधिक हैं।

और एक बात पर विचार कीजिये। जिस वस्तु के ऊपर हम लोगों को इतना गर्व है, जिनके कृपाकटाक्ष से हम लोग निकृष्ट होते हुए भी आज जगत्पूज्य बने हुए हैं, जिनके आविर्भाव मात्र से ही लुप्त प्रायः सनातन वैष्णव धर्म फिर से जीवित होकर संसार में सबसे ऊँचा स्थान प्राप्त कर चुका है, वही परम करुणामय, मंगलस्वरूप, सर्वावतारसार, पूर्णपूर्णतम, नदियाविहारी श्रीगौरांग महाप्रभु चौबीस वर्ष इसी उड़ीसा देश में विराजमान रहे। उनकी नीलाचल-लीला मधुरातिमधुर है। लीलामय श्रीगौरांगसुन्दर ने नीलाचल में रहते हुए ही त्रिजगत् को प्रेमभक्ति की धारा में प्रवाहित किया था।

थोड़ा शान्त हो विचार कर देखिये कि हमारा हृदय कितना अभिमान से भरा है। अभिमानी का हृदय सदा ही अशान्तिपूर्ण रहता है और उसका संग दुःखदायी होता है। इसी से विदित होता है कि सुखमय गौरांगचाँद हम लोगों को परित्याग कर नीलाचल में आकर विराजमान हुए थे। अभिमान ही अनर्थों का मूल है। यदि हम लोग जगत् के सभी प्राणियों को अपने से श्रेष्ठ मानकर प्रीति की दृष्टि से देख सकते और अपने को हीन मान सकते और यदि हम लोग अपने घर के ठाकुर को भक्ति के बन्धन में बाँध सकते, तो क्या हमारे रसमय गौरांग सुन्दर ऐसे सुखमय सुरधुनितीर, सोने के नवद्वीप को त्याग, मस्तक मुड़ा, डोर-कोपीन धारण कर, इस खारे समुद्र के किनारे बालुकामय भूमि में आकर वास करते? कभी नहीं। फिर हम क्यों इतना अभिमान करते हैं? हमारे जीवन को धिक्कार है। हमारी इस अभिमानभरी बुद्धि को भी धिक्कार है।

यदि हम लोगों में थोड़ी-सी बुद्धि हो तो अब भी सावधान हो जाना चाहिये। भाग्यवान उड़ीसावासियों की हमें वन्दना करनी चाहिये। यह मैं कोई पक्षपात की बात नहीं कर रहा हूँ। मैंने इस उड़ीसा देश के अनेक गाँवों में घूमकर देखा है कि यहाँ के बालक, वृद्ध, पुरुष और स्त्रियों में जैसा धर्मभाव और जैसी श्रीजगन्नाथदेव में निष्ठा है, वैसी बंगाली भद्रसमाज में भी नहीं है। —आज मैंने आप लोगों का बड़ा समय नष्ट किया, क्षमा कीजियेगा।

इतना कह उन्होंने दण्डवत् प्रणाम किया। पण्डा, पुजारी आदि उपस्थित लोगों ने प्रतिनमस्कार किया। तब माधवदासबाबाजी अत्यन्त विनीत भाव से कहने लगे, "बाबाजी महाशय, आज आपके श्रीमुख से उपदेशपूर्ण तत्वमीमांसा सुन मेरा भ्रम मिट गया। आज मैं धन्य हो गया।" इस पर और सब लोग कहने लगे, "यहाँ हम लोग बहुत-से साधु-संन्यासी वैष्णव और ब्राह्मणों के दर्शन और उनका सत्संग करते रहते हैं, परन्तु अब तक हमारे भाग्य में आप-जैसे गुणग्राही और तत्वज्ञ महात्मा के दर्शन नहीं हुए। लोगों की बड़ी इच्छा है कि आप कुछ दिन भुवनेश्वर ठहरकर हमें कृतार्थ करें।"

बड़े बाबाजी महाशय ने नम्रतापूर्वक कहा, "यह तो हमारे लिए बड़े सौभाग्य की बात है। परन्तु ऐसा विदित होता है कि इस समय प्रभु की इच्छा नहीं कि हम अधिक दिन यहाँ ठहरें। यदि ऐसा नहीं होता तो गौड़देश जाने के लिए हमारे मन में इतनी उत्कण्ठा न होती।"

इसी प्रकार की बातचीत में संध्या हो गयी। सब लोग श्रीभुवनेश्वर के सम्मुख पहुँचे। संध्या आरति होने लगी। ये लोग एक स्वर से 'गौर हरि बोल' की गगनभेदी ध्वनि करने लगे, जिससे दर्शक मत्त हो गये। उपस्थित पण्डागण और दर्शकवृन्द कहने लगे, "हम लोगों ने ऐसे आनन्द का कभी अनुभव नहीं किया।"

खण्डगिरि दर्शन

श्रीभुवनेश्वर से तीन मील दूर बड़े बाबाजी महाशय सपरिकर खण्डगिरि पहुँचे। वहाँ एक अपूर्व आनन्द का अनुभव कर प्रत्येक गुफा के द्वार पर खड़े हो हाथ जोड़कर साश्रु, गद्गद् कण्ठ से प्रार्थना और आत्म-निवेदन करने लगे, "हे महापुरुषगण! एक बार हमारे ऊपर कृपा दृष्टि कर आशीर्वाद दीजिये, जिससे निर्विघ्न रूप से श्रीश्रीगुरुवाक्य पालन करते हुए आत्मसुख रहित हो जगत् के जीवों के कल्याण के लिए आत्मसमर्पण कर सकें, हृदय में निष्काम भाव जगा सकें और विशुद्ध प्रेमभक्ति प्राप्त कर सकें।" उनकी उस आर्तिपूर्ण प्रार्थना और आत्मनिवेदन को सुन पाषाण का हृदय भी पिघल जाता। उस करुण विलाप को जिसने सुना वह जीवन भर उसे भूल न सका।

इसी प्रकार भ्रमण करते-करते वे उस स्थान पर पहुँचे जहाँ देवदेवियों की खण्डित मूर्तियाँ रखी हैं। वहाँ पहुँचते ही उनके हृदय में एक नवीन भाव का उदय हुआ। आँखों से आंसुओं की वर्षा होने लगी। विषधर साँप के काटे हुए की तरह बहुत दु:खी हो छाती पर हाथ रखकर जोर-जोर से रो-रोकर कहने लगे, "हाय मर गया, प्राण जा रहे हैं, अब सहन नहीं होता।" कहते-कहते धरती पर गिर पड़े। फिर भी हृदय शान्त न हुआ तो दोनों हाथों से जोर-जोर से छाती पीटने लगे। साथियों ने हाथ पकड़ लिये, फिर भी उस ऊँची-नीची पहाड़ी भूमि पर सिर कूटने लगे। किस प्रकार उन्हें स्वस्थ किया जाय, इस चिन्ता से साथी व्याकुल हो उठे। वहाँ कोई ऐसा व्यक्ति न था जो इस विपद में उनकी सहायता कर सकता। उनके पास केवल एक ही उपाय था। वे हा निताइ, जय निताइ, गौर हरिबोल' की ध्वनि करने लगे। इससे स्थिर होना तो दूर रहा, वे और भी अधीर हो गये। यह देख सब अत्यन्त दु:खी हुए, सबकी आँखों में आँसू आ गये और वे 'हाय-हाय' कर चीत्कार करने लगे। भक्त लोग अपने श्रीगुरुदेव के शरीर में किसी प्रकार का सात्विक विकार अथवा ऐश्वर्य का विकास देख आनन्दित होते हैं। पर ये लोग चाहते थे कि हमारे प्राणों के प्राण सर्वस्वधन दादा ऐश्वर्यादि भाव रहित हो, साधारण मनुष्य की तरह रहा करें। इसी से आज इनके मुख मलिन हो रहे हैं और आँखों से निरन्तर अश्रुधारा बह रही है। इनकी इस समय की अवस्था देख ऐसा लग रहा है कि इनके प्राण शरीर से पृथक् हो तप्त पहाड़ीभूमि में लोट-पोट हो रहे हैं।

मानो इन लोगों की ऐसी व्याकुलता देखकर ही सफेद दाढ़ी और केशों वाले बड़े आकार के एक महापुरुष वहाँ आकर उपस्थित हुए और बोले, "क्या हुआ? तुम लोग इतने दु:खी क्यों हो?" इन्होंने उत्तर दिया, "बाबा, हमारे सर्वस्वधन इस लोक और परलोक के एकमात्र सहायक इन खण्डित मूर्तियों को देख मर्माहत हो गिर पड़े हैं। बाबा, हम लोग बिल्कुल असहाय हैं। हमारी विद्या, बुद्धि, ज्ञान, भक्ति सब कुछ ये ही हैं। आपके चरणों में यही प्रार्थना है कि दयाकर हमारे प्राणप्रिय दादा को स्वस्थ कर दीजिये।" वृद्ध महापुरुष ने मुस्कराते हुए कहा, "कोई भय नहीं, तुम लोग शान्त हो, मैं देखता हूँ।"

यह कहकर आँसुओं से भीगे हुए, धूल-धूसरित, पुलकादि सात्विक विकारों से युक्त, शोक सन्तप्त बाबाजी महाशय के शरीर पर अपना कर-कमल फिराकर कहने लगे, "बाबा, इतने अधीर क्यों हो? तुम तो बड़े सुबोध और तत्वज्ञानी हो। तुम्हारे-जैसे ज्ञानवान भक्त के लिए सामान्य कारण से इतना विचलित होना उचित नहीं। उठो शान्त हो। हमें बताओ तुम इतना मानसिक कष्ट क्यों पा रहे हो?"

मधुर कण्ठ स्वर सुन और नवीन हाथ का स्पर्श पा बड़े बाबाजी महाशय चकित होकर उठ बैठे और दोनों हाथों से आँखें पोंछते हुए अभ्यागत वृद्ध महापुरुष को प्रणाम किया, परन्तु भाव के आवेग के कारण कुछ बोल न सके। महापुरुष ने फिर पूछा, "बाबा, तुम्हारे इतने दु:खी होने का क्या कारण है? क्या तुम इन खण्डित मूर्तियों को देखकर यह समझ रहे हो, कि महामहिमामय देवदेवियों की वास्तव में ही ऐसी अवस्था हो गई है?"

बड़े बाबाजी महाशय ने हाथ जोड़ कर कातर स्वर से कहा, "बाबा, वास्तव में ही मैं ऐसा समझ रहा

हूँ, क्योंकि भगवान् के स्वरूप में अंग-अंगी भेद नहीं है और भेद मानने से अपराध होता है, ऐसा सुना गया है।"

महापुरुष ने मुस्कराकर कहा, "शास्त्र प्रमाण तो पीछे बताऊँगा। तुम युक्ति पसन्द करते हो, इसलिए पहले युक्ति द्वारा ही समझो। कल्पना करो कि एक चतुर्भुज नारायण मूर्ति के दोनों चरण खण्डित हो गये। यदि ग्रह दोष के कारण ऐसा हुआ माना जाये तो क्या नारायण की भगवत्ता की हानि नहीं होती? और यदि किसी देवदेवी की मूर्ति बिल्कुल नष्ट हो जाय, तो क्या उसे मरा हुआ मानोगे? देवदेवी की मृत्यु मानली जाय तो उनका अमरत्व ही कहाँ रहा? वेद के कर्मकाण्ड में और वैष्णव स्मृति हरिभक्ति-विलास में कहा है कि श्रीमूर्ति में प्राणप्रतिष्ठा और आह्वानादि करने चाहिये। इसी से विदित होता है कि जब तक श्रीमूर्ति में देवता का अधिष्ठान आरोप करके सेवा-पूजा नहीं की जाती, तब तक उस देव मूर्ति के देवत्व का विचार करना ही वृथा है। एक दृष्टान्त के द्वारा यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। तुम और एक अन्य व्यक्ति एक दुकान से कुछ मैदा, सूजी, घी, चीनी खरीदने जाते हो। दुकानदार ने जो मैदा, घी आदि तुम्हें दिया, वही दूसरे व्यक्ति को दिया। घर आकर तुमने उससे पूड़ी और मोहनभोग तैयार किया। उस व्यक्ति ने भी ऐसा ही किया। तुम्हारी रसोई का ठाकुर को भोग लगाया गया। वह महाप्रसाद स्पर्श-दोष से दूषित नहीं होता। यहाँ तक कि कुत्ते का जूठा होने पर भी वह ग्रहण किया जायगा, क्योंकि महाप्रसाद अपवित्र नहीं होता। परन्तु उस व्यक्ति ने, जो पूड़ी मोहनभोग बनाया है, उसे यदि कुत्ता छू जाय, तो क्या तुम उसे खा सकोगे?"

बड़े बाबाजी महाशय बड़ा मन लगाकर महापुरुष के मुख से तत्वकथा सुनते रहे और उनके अन्तिम प्रश्न के उत्तर में बोले, "कभी नहीं।"

महापुरुष-क्यों, तुम्हारे पूड़ी मोहनभोग और उस व्यक्ति के पूड़ी मोहनभोग के रंग रूप में कोई भेद है क्या?

बाबाजी—नहीं, सो तो कुछ नहीं।

महापुरुष—जब आकार में एक हैं तो क्रिया भिन्न क्यों?

बाबाजी—हमारे पूड़ी मोहनभोग का श्रीभगवान् को भोग लगा है, इसलिए उसमें उनके अधरामृत का संचार हो गया है और उस व्यक्ति के पूड़ी मोहनभोग, का भगवान् को भोग नहीं लगा है, इसलिए वह प्राकृत वस्तु है। उसमें स्पर्श दोष क्यों नहीं लगेगा?

महापुरुष—इसी से समझना चाहिये कि सेवा-पूजा द्वारा श्रीमूर्ति में नित्यत्व स्थापित होने से वह नित्य सत्यपूर्ण चिन्मय वस्तु हो जाती है। मान लो कि किसी देवता की एक मूर्ति की एक स्थान में बड़े आदर से सेवा-पूजा होती है, उनका भोगराग, आरति, शयनादि सभी विधि-पूर्वक होता है। सेवक लोग उनकी स्तुति, वन्दना भी करते हैं। उस मूर्ति की सेवापूजा में गड़बड़ होने से फलाफल भी अनुभव होता है। दूसरी ओर उसकी एक प्रतिमूर्ति को किसी ने रास्ते में फेंक दिया है। अनेक लोग उसके ऊपर पैर रखकर निकलते हैं यहाँ तक कि गाड़ी भी उसके ऊपर होकर निकल जाती है। जो सेवापूजा की गड़बड़ी होने पर सेवक को दण्ड दे सकती है, वह राहगीरों अथवा गाड़ी वालों को कुछ नहीं कह सकती? अतएव सेवित मूर्ति में और बिक्री के लिए दुकान में रखी हुई अथवा घर में खिलौने के रूप में रखी हुई मूर्ति में बड़ा भेद है। श्रीमूर्ति सेवा के अनुसार फल देने में समर्थ होती है, वह सेवक का सर्वस्व-धन है। बाजार में बिकने वाली अथवा घर में रखी हुई देवमूर्ति की सदा ही दुर्दशा होती है। उसे देखकर मन में दुःख मानने से कैसे काम चलेगा? ये जो अंग-भंग मूर्तियाँ देखते हो, यह भी वैसी ही हैं। इनमें देवत्व नहीं है, इसलिए इन्हें देखकर दुःख मानने की कोई आवश्यकता नहीं।

बड़े बाबाजी महाशय ने धीर भाव से उत्तर दिया, "बाबा, आपने जो बात कही, उसे खण्डन करने की शक्ति मुझमें नहीं। मैं शास्त्रज्ञान से रहित हूँ, परन्तु आपकी इस बात से मेरा मन सन्तुष्ट नहीं हुआ। किसी भगवत्-विग्रह का चित्र अथवा मूर्ति देखते ही ऐसा प्रतीत होता है कि उसमें देव-देवी का साक्षात् अधिष्ठान है। आरोपित देवत्व में श्रीविग्रह-सेवक के फलाफल

का तारतम्य हो सकता है। पर भगवान् का अस्तित्व या नास्तिक तो भगवद्भक्त के आरोप पर निर्भर नहीं करता। भक्तमाल में लिखा है कि मांस बेचने वाले के तराजू में रहने वाली शालग्राम-शिला को ले जाकर ब्राह्मण ने उसकी पूजा की। फिर भी ब्राह्मण को आदेश मिला कि 'मुझे फिर मांस विक्रेता के पास पहुँचा दो।' इससे समझना चाहिये कि उन्हें उसी जगह सुख था, और ब्राह्मण के घर में पूजा होते हुए भी वे दु:खी थे। वह मांस बेचने वाला उन्हें शालग्राम रूप में नहीं जानता था। इसी से विदित है कि वस्तु शक्ति कभी ज्ञान और बुद्धि की अपेक्षा नहीं रखती। जाने-अनजाने अमृत के पेट में पहुँचते ही अमरत्व प्राप्त होता है, वैसे ही किसी प्रकार भी हो, देवदेवी और गुरु वैष्णव के चित्र अथवा श्रीमूर्ति के दर्शन होते ही उनका सान्निध्य लाभ होता है। दर्शन करने वालों के अनुभव में जो असमानता पायी जाती है उसका कारण केवल इच्छामय की इच्छा छोड़ और कुछ नहीं कहा जा सकता। द्वारका-लीला समाप्त करते समय श्रीकृष्ण का अन्तर्धान इस बात का उज्ज्वल दृष्टान्त है।"

बड़े बाबाजी महाशय की सारगर्भित और भक्ति मूलक तत्वकथा सुन महापुरुष अत्यन्त आनन्दित हुए। उनकी सारी युक्तियाँ भक्त के भक्तिप्रवाह में बह गयीं। उन्होंने प्रेमानन्द में अधीर हो बाबाजी महाशय को प्रेमालिंगन किया। कुछ देर पीछे आँखों में जल भरकर गद्गद कण्ठ से कहने लगे, "बाबा, तुम्हारा ऐसा अपूर्व भक्तिभाव देख और तुम्हारे मुख से भक्ति तत्व की सुन्दर मीमांसा सुन मुझे अकथनीय आनन्द हुआ। मैं हृदय से आशीर्वाद देता हूँ कि तुम दीर्घायु लाभ करो और इसी प्रकार विशुद्ध भक्तितत्व की आलोचना और श्रीमन्महाप्रभु के मतानुसार निर्मल भगवदुपासना के प्रचार द्वारा जगतवासी स्त्री-पुरुषों को नाना प्रकार के कल्पित उपधर्मों से बचाओ। यह दुरूह कार्य तुम्हारे ही द्वारा सिद्ध होगा। निताइचाँद ने तुम्हें पूर्ण शक्ति प्रदान की है। उनकी कृपा से तुम जगविजयी होगे। श्रीमन्महाप्रभु ने जिस कार्य में तुम्हें लगाया है, उसे पूरा करने में विलम्ब न करो। भगवान् तुम्हारी सहायता करेंगे, किसी प्रकार की चिन्ता न करना।" इतना कह महापुरुष द्रुतगति से चले गये। चलते समय बाबाजी महाशय से श्रीगुरुदेव के दर्शन के लिए सरयू तीर पर जाने को कह गये।

महापुरुष के चले जाने पर बाबाजी महाशय और उनके साथी उसी प्रसंग पर बहुत देर तक आलोचना करते रहे। फिर वहाँ से थोड़ी दूर जाकर देखा कि एक भक्त कुछ चिड़ा-चिरवा फलमूलादि भोजन की सामग्री लिये उनकी बाट देख रहा है। इन लोगों को देखते ही वह बड़े आग्रह के साथ फलमूलादि ग्रहण करने के लिए विशेष अनुरोध करने लगा। इन्होंने उसकी सामग्री लेकर ठाकुर को भोग लगाया और थोड़ा-थोड़ा प्रसाद पा लिया। फिर थोड़ी देर वहाँ विश्राम कर कीर्तन करते हुए उत्तर की ओर प्रस्थान किया।

जाजपुर में विरजा-दर्शन

बाबाजी महाशय और उनके साथी प्रेमानन्द में दिग्विदिग्ज्ञानशून्य अवस्था में चले जा रहे हैं। रास्ता चलने का भी कोई परिणाम निश्चित नहीं है। किसी दिन आठ या दस कोस चल कर, तो किसी दिन चार-पाँच कोस चलकर विश्राम करने लगते हैं। जिस दिन जिस गाँव में जा पहुँचते हैं, उस दिन वहाँ आनन्द का हाट लग जाता है। महामहोत्सव का तो कहना ही नहीं। गाँववाले इनका साथ पाकर आनन्द सागर में बहने लगते हैं। एक दिन चलते-चलते दोपहर पहले विरजा क्षेत्र में जा पहुँचे। बड़े बाबाजी महाशय विरजा देवी के सामने खड़े होकर अनेक प्रकार से स्तुति और छोटे बच्चे की तरह हठविनय करने लगे। फिर सप्तकुण्ड, यम की सात भगिनी आदि तीर्थ और देवदेवियों के दर्शन कर एक पेड़ के नीचे बैठ गये। थोड़ी देर बाद बोले, " बहुत दिनों से मुष्टि भिक्षा नहीं की। आज सब मिलकर भिक्षा करने चलें।" यह सुन सब लोग आनन्दित हुए। नवद्वीपदास ने कहा, "मैं किसी को साथ लेकर भिक्षा को जाता हूँ, आप लोग यहीं रहें, क्योंकि समय अधिक हो चुका है।" उनकी बात कौन सुने? बाबाजी महाशय ने कहा, "मैं तो जाऊँगा ही, और कोई जाय चाहे न जाय।" यह कह वे नाम-कीर्तन करते हुए चल दिये। और सब लोग भी

उनके साथ हो लिये। बड़े बाबाजी महाशय की भिक्षा का नियम था कि नाम-कीर्तन करते-करते गाँव में होकर चले जाते थे। न किसी से कुछ माँगते थे और न किसी के दरवाजे पर अधिक देर रुकते थे। इसी प्रकार वे एक-एक घर के सामने एक-एक क्षण रुकते हुए चले जा रहे थे। आगे बढ़ते समय उस स्थान की रज उठाकर लेते जाते थे। इनका ऐसा नियम देख गाँव के लोग चकित रह गये, और दल के दल उनके साथ हो लिये। कोई-कोई कीर्तन में भी योगदान करने लगे। इसी प्रकार दो पहर बीत गये। इस देश में इस प्रकार भिक्षा करने की रीति न थी। इसीलिए किसी की समझ में नहीं आ रहा था कि ये ऐसा क्यों कर रहे हैं। प्राय: तीस-चालीस घर पार कर गये। कहीं से एक चुटकी भिक्षा न मिली।

इनका मुख देखकर ही मानो निताइचाँद का हृदय पिघल गया। परीक्षा पूरी हुई। एक बुढ़िया ने अपने अमरूद के पेड़ से सात-आठ अमरूद लाकर इनके सामने रख दिये। बड़े बाबाजी महाशय ने मुस्कराते हुए फलों को अपनी झोली में रख लिया। लोग समझ गये कि ये भिक्षा करने आये हैं। फिर तो कोई चावल, कोई दाल, कोई चिउड़ा आदि जिसके घर में जो था, लाकर इनकी झोली में डालने लगे। तीन-चार घर चलते-चलते ही झोली भर गई। तब ये तालाब के किनारे पेड़ के नीचे झोली रखकर बैठ गये। नवद्वीप दास के उद्योग से बहुत शीघ्र रसोई होने लगी। बड़े बाबाजी महाशय के आदेश के अनुसार जो कुछ मिला था, सबकी रसोई बनायी जाने लगी। चावल, दाल, साग तैयार किये गये और सब मिलाकर एक जगह खिचड़ी भी बनायी गयी। ठाकुर को भोग लगने तक गाँव के बहुत से बालक जमा हो गये। पेड़ के नीचे आनन्द का हाट लग गया। सबने प्रसाद पाया और कुछ देर विश्राम किया। संध्या के समय इसी गाँव के एक आदमी ने आकर कहा, "बाबा आज रात हमारे भागवत घर में ठहरें तो अच्छा हो। इस पेड़ के नीचे आपको बड़ा कष्ट होगा।" इससे सब सहमत हुए और संध्या के पीछे एक बार फिर विरजादेवी के दर्शन कर रात में उस भागवत घर में विश्राम किया। दूसरे दिन सुबह वहाँ से चल दिए।

मद्यप-उद्धार

एक दिन बड़े बाबाजी महाशय और उनके साथी चलते-चलते थककर दो पहर से कुछ पहले एक गाँव के पास रास्ते के सहारे एक बड़े बट के नीचे विश्राम कर रहे थे। उसी समय एक बाबू आये और तरज-गरजकर पूछने लगे, "तुम लोग कहाँ रहते हो?" बाबाजी महाशय ने धीरे से कहा, "बाबा, हम लोगों का घर-बार नहीं है।"

बाबू—तो क्या तुम लोग पेड़ पर रहते हो?

बाबाजी—इसका भी कुछ ठीक नहीं।

बाबू—तो क्या चोर हो?

बाबाजी—श्रीमान्‌जी, चोर तो नहीं, पर चोर के साथी जरूर हैं।

बाबू—तब तुम लोगों का थाने में चालान कराया जाएगा।

बाबाजी—श्रीमान्‌जी, चालान तो हम भी कराना चाहते हैं, पर सबसे बड़े हाकिम के यहाँ चालान कराना ही ठीक होगा, क्योंकि वहाँ से कहीं अपील न हो सकेगी।

सब लोग हँस पड़े। बाबू ने भी और कुछ नहीं कहा और इनके पास आकर बैठ गये। बाबाजी महाशय के साथियों ने पूछा, "आप कहाँ जा रहे हैं?" बाबू ने उत्तर दिया, "यहाँ से दस-ग्यारह कोस बालेश्वर।" बाबू की बात-चीत और हाव-भाव से सब लोग समझ गये कि वे नशे में चूर हैं। फिर भी उनके साथ बातचीत करते रहे।

इसी बीच एक भक्त ने आकर बड़े आग्रह से कहा, "बाबा, आप कृपा कर आदेश करें तो कुछ भोग का प्रबन्ध करूँ।" बाबाजी महाशय ने नम्रता के साथ कहा, "बाबा, तुम्हारी इच्छा है तो कर सकते हो, हमें आपत्ति नहीं।" भक्त प्रसन्न हो कुछ चावल, दाल और साग ले आया। बाबाजी महाशय के प्रिय अनुचर परम चतुर नवद्वीपदास तुरन्त रसोई की तैयारी में लग गये। बाबाजी महाशय उस बाबू से बातचीत करते रहे। धीरे-धीरे बाबू का नशा उतरने लगा। वे समझ गये कि ये लोग निष्किञ्चन वैष्णव हैं और बाबाजी महाशय

से प्रश्न करने लगे। वे भी मुस्कराते हुए उत्तर देने लगे।

बाबू—आप लोग कहाँ जाएँगे?

बाबाजी—भगवान् जानें।

बाबू—भगवान् कौन?

बाबाजी—वे नित्य शुद्ध, चिन्मयवपु जगदीश्वर हैं। उनके कटाक्ष मात्र से जगत् की सृष्टि, स्थिति और प्रलय होती है।

बाबू—अणु, परमाणु आदि के संयोग-वियोग से जगत् की सृष्टि-स्थिति-प्रलय तो आप ही आप होती है। चन्द्र-सूर्य, तारागण आदि अपने स्वाभाविक नियम के आधीन रहकर क्रियाशील रहते हैं। हमें जब जिस वस्तु की आवश्यकता होती है हम अपनी बुद्धि और कार्यकुशलता से संग्रह कर लेते हैं। इन बातों के लिए ईश्वर मानने की क्या आवश्यकता है? जीव-सृष्टि माता-पिता के संयोग से होती है। यदि माता-पिता के बिना ही हो जाती तब भी ईश्वर को मान लिया जाता।

बाबाजी—मेरा विश्वास है कि जगत् का कोई भी कार्य ईश्वर शक्ति के बिना नहीं हो सकता। आपने कहा कि माता-पिता के संयोग से जीव की सृष्टि होती है। यदि यह सत्य है तो किसी के बहुत चेष्टा करने पर भी सन्तान क्यों नहीं होती?

बाबू—स्वाभाविक नियम का अर्थ है द्रव्यगुण और द्रव्यगुण का ही दूसरा नाम है वस्तु शक्ति। वस्तु शक्ति से सब कार्य होते हैं। जब किसी के सन्तान नहीं होती तो समझना चाहिये कि स्वामी अथवा स्त्री के शरीर में वस्तु शक्ति का अभाव है।

बाबाजी—उस वस्तु का संयोग और वियोगकर्ता भी कोई है। हम देखते हैं कि किसी के सन्तान करने की अनेक चेष्टा करने पर भी सन्तान नहीं होती और किसी के सन्तान रोकने की बहुत चेष्टा करने पर भी सन्तान नहीं रुकती। पर इसे जाने दीजिये, विचारकर देखिये कि अपने शरीर के सम्बन्ध में क्या आपका कोई कर्तापन है? आप बालक थे, तब किसी वैज्ञानिक क्रिया अथवा औषधि द्वारा एकदम जवान हो सकते थे क्या? आपके दाँत नहीं थे तब क्या किसी उपाय से दाँत निकाल सकते थे? जब दाँत निकल रहे थे तब क्या किसी प्रकार उन्हें रोक सकते थे? क्या आप सुन्दर काले बालों को समयानुसार सफेद होने से और मोती-जैसे सुन्दर दाँतों को गिरने से रोक सकते हैं? हम कैसे अकृतज्ञ और भ्रमान्ध हैं। विद्वान और बुद्धिमान होते हुए भी जिनकी अपार करुणा से जगत् में आकर आनन्द से जीवन व्यतीत करते हैं उन्हीं सर्वनियन्ता परम दयाल परमेश्वर पर सबसे पहले आघात करने को उद्यत होते हैं। मेरी बात से दु:खी न होइए। अच्छा बताइये, मातृगर्भ में आपको बचाने के लिए किसने अमृतनाड़ी पकड़ाई थी? जन्म लेते ही मातृस्तन में रक्त को दूध में किसने बदला था? विद्याबल अथवा बुद्धिकौशल से ऐसा किया जा सकता था क्या?

बाबू—आपने जो कहा वह सत्य है, पर अप्रत्यक्ष पर आसानी से विश्वास नहीं होता। आपकी बातों से मेरे मन में कुछ परिवर्तन हुआ है, पर उन पर पूरा-पूरा विश्वास नहीं जमा।

बाबाजी—बाबा, यह उल्टी बात है। हम बहुत सी अप्रत्यक्ष बातों का विश्वास कर लिया करते हैं। पर जगत् की दृश्यादृश्य प्रत्येक वस्तु में प्रत्यक्ष रूप से विराजमान भगवान् की चिन्मय शक्ति को देखकर भी उनकी सत्ता को स्वीकार नहीं करना चाहते। अच्छा बताइये, आपके पितामह प्रपितामह आदि इस जगत् में वर्तमान थे या नहीं, इस बात को आपने कैसे जाना? आपने वशिष्ठ अथवा कश्यप आदि ऋषियों के वंश में जन्म लिया है, इसका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण है या यह सब परम्परागत संस्कारों के कारण अन्धविश्वास है?

बाबू ने कुछ व्याकुल होकर कहा, "अच्छा, मान लिया कि ईश्वर है, पर बताइये कि जीव और ईश्वर में क्या भेद है?"

बाबाजी—भगवान् पूर्णतम हैं, जीव उनका अंश विशेष है। वह चालक हैं, जीव चाल्य है। वे सच्चिदानन्दमय पूर्ण-ब्रह्मसनातन हैं, जीव उस सच्चिदानन्द का कण है। वे मायातीत हैं, जीव मायामुग्ध है। वे सूत्रधार हैं, जीव पुतली है। वे प्रभु हैं, जीव उनका नित्य दास है। उनकी कृपाकटाक्ष के बिना जीव कुछ भी नहीं कर सकता। वह वृथा ही अपने

अभिमान का शिकार बन ईश्वर की सत्ता का लोप करना चाहता है।

कुतर्कपरायण, नास्तिक, दुराचारी बाबूजी को, जो अभिमान के ऊँचे मंच पर सवार थे, ऐसा लगा जैसे उन्हें एकाएक धक्का देकर नीचे गिरा दिया गया हो। वे रोते-रोते बाबाजी महाशय के चरणों में गिर पड़े और धूल में लोटने लगे। बाबाजी महाशय ने उन्हें उठाकर हृदय से लगाया और स्नेह से कहने लगे, "बाबा, शान्त हो, चिन्ता न करो, परम दयाल पतितपावन निताइचाँद बिना माँगे घर-घर प्रेमधन वितरण कर रहे हैं। उनके श्रीचरणों का आश्रय लो। सब अभाव और अशान्ति दूर होगी, सदैव के लिए प्रेमानन्द सागर में निमग्न हो जाओगे।"

बाबू ने हाथ जोड़कर कहा, "प्रभो, आपने कृपाकर मुझे घोर नरककुण्ड से उठा लिया। मैंने कभी-कोई सुकर्म नहीं किया। मैं नराधम पाषण्डी और दुराचारी हूँ। करुणामय! मैं कुछ कहना नहीं जानता। अब मैं आपके श्रीचरणों को न छोड़ूँगा। आपने मुझे घोर मद्यप असच्चरित्र और प्रपंचक जानते हुए भी निज गुण से कृपाकर अपने पवित्र चरणों को स्पर्श करने का अधिकार दिया है, यही मेरा परम सौभाग्य है। आपकी कृपा से अब मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि यह दास जीवन भर के लिए आपके श्रीचरणों में बिक गया। इस जीवाधम को पाषण्डी जानकर अपने चरणों से कभी दूर न कीजियेगा, यही मेरी एकमात्र प्रार्थना है।"

इतना कह बाबू ने बाबाजी महाशय को साष्टांग प्रणाम किया और दोनों चरण पकड़कर कातर भाव से कहने लगे "प्रभो! मैं घोर नारकी महापापी और दुराचारी हूँ। मेरी क्या गति होगी?" बाबू की उस समय की अवस्था देख उपस्थित लोग आपस में कहने लगे, "कैसे आश्चर्य की बात है! जिस मद्यप के अत्याचार से गाँव वाले हों चाहे रास्ता चलने वाले, सभी भयभीत रहते थे और जिसके कारण यदि कोई साधु दैवयोग से उधर आ जाता तो उसकी बड़ी दुर्दशा हुआ करती थी, आज उसी अत्याचारी की ऐसी अवस्था! बड़े आश्चर्य का विषय है। महत्कृपा की कैसी अपूर्व शक्ति है। इन महापुरुष का आकार देख और इनकी बातें सुन हमें विश्वास होता है कि ये साधारण साधु नहीं हैं; असाधारण शक्तिशाली सिद्ध पुरुष हैं!" सबने उनके चरणें में दण्डवत् प्रणाम किया। उन्होंने भी प्रतिनमस्कार किया।

इसी समय नवद्वीपदास ने आकर कहा, "दादा, भोग तैयार है, समय अधिक हो चुका है, प्रसाद पाना चाहिये।" बाबाजी महाशय ने बाबू से पूछा, "आपके भोजन का क्या प्रबन्ध होना चाहिये? मेरे साथियों की जाति का तो कुछ ठीक नहीं है, पर ठाकुर जी का भोग अवश्य लग चुका है। अब जैसी आपकी रुचि हो।" बाबू ने कातर स्वर से कहा, "कृपामय, क्या अब भी मैं आपकी कृपा के योग्य नहीं? अब भी मुझे अपने श्रीचरणों से दूर हटाना चाहते हैं? फिर से विद्या और कुल के अभिमान रूपी बन्धन में बाँधकर दुस्तर मोहगर्त में डालना चाहते हैं? दयामय प्रभो इस अधम पतित के ऊपर कृपादृष्टि कीजिये। आज मेरा परम सौभाग्य है कि आपके कृपापात्र इन सिद्ध महापुरुषों के हाथ से भगवत्-अधरामृत पाऊँगा। अब तक मोहमद में मत्त रहकर न जाने कितने कुकर्मी लोगों का झूठा खाता रहा। आज निवृत्ति मार्ग का एकमात्र अवलम्बन, मानवजीवन का एकमात्र भरोसा, भगवत्-अधरामृत पाकर यह जीवाधम कृतार्थ हो सके ऐसी कृपा कीजिये।" यह कहकर बाबू फिर से बाबाजी महाशय के चरण पकड़ कर रोने लगे। कृपामय बाबाजी महाशय का कोमल हृदय एकदम पिघल गया। तुरन्त उनका हाथ पकड़कर ले गये और अपने सामने एक पत्तल डलवाकर बैठा दिया। बाबू महाप्रसाद पाते जाते थे और फूट-फूटकर रोते जाते थे। भगवत्-अधरामृत पाकर आज उनका नया जन्म हो गया। प्रसाद पाकर सब लोग उसी वृक्ष के नीचे विश्राम करने लगे। जिस भक्त ने भिक्षा का प्रबन्ध किया था, उसने बचा हुआ महाप्रसाद और सब लोगों में बाँट स्वयं भी कुछ पा लिया। उस दिन इन लोगों को वहीं ठहराने के लिए एक दुकानदार ने रात को अपने कमरे में विश्राम करने का बड़ा आग्रह किया। दयालु बाबाजी महाशय उसके घर चल दिये। नवजीवन-प्राप्त अनुरागी बाबू इनका सुखमय साथ छोड़कर न जा सके। इनके साथ ही रह गये। संध्या होने पर नवद्वीपदास ने दुकानदार से पूछा, "तुम्हारे यहाँ

खोल है क्या?" उसने कहा 'खोल तो नहीं, पखावज है, आज्ञा हो तो लाऊँ। पखावज मँगाया गया और आरति-कीर्तन होने लगा। धीरे-धीरे बाजार के लोग आने लगे। उस छोटे-से कमरे में भीड़ होने लगी। सब लोग बाहर आकर बैठ गये। आरति-कीर्तन पूरा होने पर सब लोग 'निताइ एनेछे नाम, हरिबोल हरिबोल', यह नाम कीर्तन करते हुए उद्दण्ड नृत्य करने लगे।

चाँदनी रात थी। मधुर पवन के झोंकों से वृक्षलता झूम रही थी, मानों वह भी कीर्तनानन्द में नाच रही हो। छोटे-बड़े दुकानदार वहाँ आकर प्रेमरंग में तैर रहे थे। प्राय: आधी रात तक उच्च नामकीर्तन होता रहा। हरीलूट के बताशों की वर्षा होने लगी। जो भी आता, वही बताशे लुटाकर दोनों हाथ उठाकर नाचने लगता। कोई-कोई कीर्तन की जगह धूल में लोटने लगते। उपस्थित भक्त-अभक्त सभी प्रेमोन्मत्त महापुरुष का नृत्य-कीर्तन और भावावेश देख विस्मित और मुग्ध हो गये। सब उनकी जय-जयकार करने लगे। कीर्तन के बाद कुछ विश्राम कर लेने पर दुकानदार ने जलपान का प्रबन्ध करने की अनुमति माँगी तो नवद्वीपदास ने कहा, "बाबा, दुकान की कोई चीज हमारे ठाकुर को भोग नहीं लगेगी और इस समय प्रसाद पाने की कोई आवश्यकता भी नहीं है।" दुकानदार ने दीन भाव से कहा, "बाबा, हमारी दुकान में देशी चीनी की मिठाई है। आप कृपाकर ठाकुर को भोग लगाकर कुछ प्रसाद पा लें, तो मैं और मेरा परिवार कृतार्थ हो।"

उनकी भक्तिपूर्ण प्रार्थना पर इन लोगों ने ठाकुर को भोग लगाकर थोड़ा-थोड़ा प्रसाद पाया और बाकी सब लोगों में बाँटने को कहा। सभी थोड़ा-थोड़ा प्रसाद लेकर अपने-अपने घर चले गये। इन लोगों ने रात में वहीं विश्राम किया। सबेरा होते ही जब ये नित्य कर्म से निवृत्त हुए, उस दुकानदार और वहाँ के भक्तों ने आकर दो एक दिन और ठहरने का अनुरोध किया। ये लोग मधुर वाक्यों से उन्हें समझा-बुझाकर 'गौर हरिबोल' कीर्तन करते हुए वहाँ से चल दिये। गाँव के भक्त लोग साथ-साथ चलने लगे। बाबाजी महाशय ने उन्हें अपने मधुर वचनों से लौट जाने को विवश किया और स्वयं नृत्य करते हुए बालेश्वर की तरफ चल दिये। पर बाबू, जिनका नाम रामधन गंगोपाध्याय था, उनके साथ ही थे। उनका विद्याकुल-अभिमान चूर्ण हो गया था और वे दीन भाव से इनके साथ जा रहे थे।

रेमुना में गोपीनाथ दर्शन

सात कोस चलकर इन्हें एक छोटे से गाँव में ठहरना पड़ा। गाँववालों के उत्साह से उस दिन वहाँ एक छोटा-सा उत्सव भी हो गया। गाँव के सभी छोटे बड़ों ने आनन्द में मत्त हो इस उत्सव में भाग लिया। सन्ध्या के पीछे बड़े बाबाजी महाशय ने आरति-कीर्तन आरम्भ किया और उनके साथी प्रेमानन्द में उन्मत्त हो उद्दण्ड नृत्य करने लगे। गाँववासी भी इस नवीन कीर्तनानन्द में मग्न हो अपने को धन्य मानने लगे।

दूसरे दिन सवेरे वहाँ से चलकर ये लोग दोपहर से पहले रेमुना में गोपीनाथ जी के श्रीमन्दिर में जा पहुँचे। उस समय तक ठाकुर का भोग नहीं लगा था। इन लोगों ने कीर्तन प्रारम्भ कर दिया। धीरे-धीरे लोग जमा होने लगे। सभी मानो किसी नवीन भाव से विभावित थे। नये-नये भावों का कीर्तन और नृत्य देख, नये-नये भावों का उद्दीपन करने वाली पदावली सुन सब लोग मोहित हो गये और नये आनन्द का अनुभव करने लगे। थोड़ी देर में ये लोग कीर्तन समाप्त कर बैठ गये। उसी समय श्रीगोपीनाथ जी के एक वृद्ध सेवक ने आकर इनसे महाप्रसाद पाने का अनुरोध किया। बड़े बाबाजी महाशय ने बड़ी कृतज्ञता के साथ प्रसन्न हो निमन्त्रण स्वीकार किया और स्नान के पश्चात् गोपीनाथ जी का महाप्रसाद पा थोड़ी देर विश्राम किया। तीसरे पहर वहाँ बहुत-से लोग आ गये और बड़े बाबाजी महाशय उनके साथ नाना प्रकार की भक्तिमूलक कथावार्ता करने लगे।

धीरे-धीरे संध्या हो गयी। सब लोग आरती दर्शन को गये। आरती के बाद महाशय आनन्द में मत्त हो श्रीमन्दिर के आँगन में आरती-कीर्तन करने लगे। बड़ी भीड़ हो गयी, कीर्तन जम गया। बाबाजी महाशय पद गाने लगे। रूप, अभिसार, मिलन और निवेदन के सभी पद आपके स्वरचित थे। उन्हें सुन कोई यह नहीं कह सकता कि वह पूर्व महाजन-कृत पद नहीं हैं।

कुछ देर बाद एक अपूर्व तरंग उठी। बाबाजी महाशय ने पद उठाया—

"रसपुष्टि हेतु सखी दुदल हइल।
केह'राधे जय' केह'श्याम जय' दिल।।
ललिता विशाखा दोंहे दुइ दलपति।
दुँहु गुण गावत सखीर संहति।।"

—रस की पुष्टि के लिए सखियों के दो दल हो गये। एक दल राधा की जय और एक श्याम की जय बोलने लगा। ललिता और विशाखा दोनों दलों की दलपति बनकर सखियों के साथ राधाकृष्ण का गुणगान करने लगीं।

पीछे टेक पकड़ी-'श्याम जय जय राधे राधे'। उनके प्रिय नर्मसहचर नवद्वीपदास प्रतिपक्षी हो गाने लगे—'राइ जय जय राधे राधे।' उपस्थित भक्तगण प्राय: सभी नवद्वीपदास के पक्ष में हो गये। थोड़े से ही लोग बाबाजी महाशय की तरफ रह गये। सभी एक नवीन भाव में उन्मत्त थे, एक नवीन आनन्द-सागर में तैर रहे थे। दोनों दल आनन्द में एक दूसरे को हराने के लिए कटिबद्ध हो उद्दण्ड नृत्य कर रहे थे। छोटे बड़े का भेद न था। दोनों में जीतने की होड़ बढ़ती गयी। एकाएक श्रीराधारानी का पक्ष लेने वाली ललिता के आनुगत्य का अभिमान रहने वाले प्रेमिकप्रवर नवद्वीपदास अपने पदों में राधारानी की प्रधानता का वर्णन करने लगे:—

शुनगो विशाखा, राइ रसवती, वृन्दावन पटरानी।

बाबाजी महाशय ने प्रेमोन्मत्त भाव से उत्तर दिया:—

श्याम रूप लागि दिवस रजनी
भिखारिनी मोरा जानी।

नवद्वीप— श्याम सोहागिनी, राधिका रंगिनी,
रमणी मुकुटमणि।

बाबाजी— श्याम-सुनागर, नव नटवर,
रसिकेन्द्र चूढ़ामणि।

नवद्वीप— सर्वगुणयुता, वृषभानुसुता,
राइ रासरासेश्वरी।

बाबाजी— शोनगो ललिता, रास थाके कोथा,
बिने श्याम वंशीधारी[1]।

नवद्वीप— नाइ कि स्मरण, से दिनेर कथा,
मानिनी जबहुँ धनि[2]।
चरणे पड़िया, कत न साधिल,
तारे श्याम गुणमनि।।

बाबाजी— शोनगो ललिता, कि लाजेर कथा,
रमणी हइया निज[3]।
अकारण माने, कत कांदाइल,
रसिक नागरराजे।।

नवद्वीप— रमणी समाजे, आबीर कुंकुम,
पाशा जलकेलि आदि[4]।
से सब समरे, नागर शेखरे,
हारि गेओ निरवधि।।

बाबाजी— शुनगो सजनि, हाम भाल जानि,
एकेला नागरराय[5]।
शतेक रमणी राइयेर संगिनी
कि आर पौरुष तार।।

नवद्वीप— बरज रमणीगण शिरोमणि,
श्याम-कण्ठ हेममणि।
श्याम जलधरे, नव सौदामिनी,
महाभाव स्वरूपिणी[6]।।

इसी प्रकार राधाकृष्ण का प्रेम-रस-कलह चलने लगा। कोई हार मानने को तैयार नहीं। डेढ़ पहर रात बीत गयी। परन्तु कोई भी इस प्रेम कीर्तन को न छोड़ना चाहे। तब बाबाजी महाशय ने दोनों की समता सूचक पद उठाया—

"कानन देवती, आसि वृन्दा तथि, बले सहचरी गणे।
सम राइ कानु, केह नहे ऊनु, दुनुदुनु रूपे गुणे।।
वृन्दादेवी वाणी, शूनिया तखनि, सकले एकत्र हइल।
जय राधा राधा-रमण बलिया, प्रेमे उनमत भेल।।"

1- सुन री ललिता, रास कैसे होगा, जब वंशीधारी श्याम ही न होंगे। 2- नहीं स्मरण क्या उस दिन की बात, जब राधा ने मान किया था? चरणों में पड़कर तब, कितना मनाया था तुम्हारे गुणमणि श्याम ने। 3- सुन री ललिता कैसी लाज की बात है कि राधा ने स्वयं ही बिना किसी कारण मान करके रसिकशेखर कृष्ण को इतना रुलाया था। 4- रमणियों के साथ अबीर गुलाल, पासा और जलकेलि आदि इन सब युद्धों में नागरशेखर कृष्ण सदा ही हारे हैं। 5- सुन री सजनी, हम अच्छी तरह जानती हैं कि अकेले श्रीकृष्ण के आगे राधा की सौ-सौ सखियाँ, भला क्या पौरुष है। 6- व्रजरमणी-शिरोमणि राधा श्याम-कण्ठ की हेममणि, श्याम-मेघ में नवसौदामिनी हैं।

—वनदेवी वृन्दा वहाँ आईं और सहचरियों से बोलीं, 'समान हैं राधा और कृष्ण। कोई नहीं कम दोनों में, रूप में और गुण में। वृन्दादेवी की वाणी सुन सब युवतियाँ एकत्र हो 'जय राधा राधा-रमण की' बोल बोल कर उन्मत्त हो गयीं।

अब दोनों दल एक हो गये। सब मिलकर 'जय राधा राधा-रमण' गाने लगे और वेगपूर्वक नृत्यकीर्तन करते हुए भाव-तरंगों में डूब गये। उस आनन्द उस प्रेमविह्वल भाव और उस अपूर्व दृश्य का वर्णन नहीं किया जा सकता।

धीरे-धीरे कीर्तन तरंग शान्त होने लगी। दर्शकवृन्द स्थिर हो गये। कीर्तन-वीरगण बैठकर दम लेने लगे। उसी समय एक सेवक ने आकर कहा, "बाबाजी महाशय, आप यदि कृपा कर कुछ दिन श्रीगोपीनाथ जी के मन्दिर में ठहरें तो हम कृतार्थ हो जायँ। हम श्रीमूर्ति-सेवा तो करते हैं, परन्तु श्रीगोपीनाथ जी का वास्तविक तत्व नहीं जानते। आपके दर्शन कर और मधुर कीर्तन सुन हमें पूर्ण विश्वास हो गया है कि आप महापुरुष और भगवत्लीला-तत्वज्ञ हैं। कृपाकर कुछ दिन यहीं ठहर कर हमें गोपीनाथ जी का लीलातत्व समझा दीजिये।"

बड़े बाबाजी महाशय ने नम्रतापूर्वक कहा, "बाबा, यह तो हमारे बड़े सौभाग्य की बात है। आप लोग श्रीगोपीनाथ जी के चरणकमलों में अपना मनोभाव निवेदन कीजिये। उनकी इच्छा होगी तो आपकी वासना पूरी होगी। इस समय गौड़देश होते हुए श्रीगुरुदेव के चरण दर्शन करने की अभिलाषा से सरयूतीर पर जाने को हमारा मन बड़ा ही उत्कण्ठित हो रहा है। यदि प्रभु की कृपा होगी और आप लोग इस दास को आकर्षित करेंगे तो शीघ्र ही फिर गोपीनाथ जी के दर्शन कर और आप लोगों का सत्संग पाकर जीवन सार्थक करूँगा। आप बड़े हैं, उच्चकुल के हैं और भगवत्सेवा परायण हैं। आशीर्वाद दीजिये कि निताइचाँद का दासानुदास होकर आपका आदेश पालन कर सकूँ।"

इस पर पूर्वोक्त वृद्ध बाबाजी कहने लगे, "बाबा, गोपीनाथ जी ने भक्त के लिए खीर चोरी की थी, वही खीर महाप्रसाद थोड़ा-सा लीजिए।" बाबाजी प्रसन्न हो बोले, "यह तो आप लोगों की बड़ी कृपा है।" उन्होंने हाथ मुँह धो सबके साथ गोपीनाथ जी की खीर तथा अन्य महाप्रसाद पाया और रात में वहीं विश्राम किया।

मयूरभञ्ज-गमन

सबेरा होते ही बड़े बाबाजी महाशय नित्य-नियम कर सबसे विदा ले चलने को तैयार हुए। उसी समय एक भक्त ने आकर कहा, "मयूरभञ्ज एक बड़ा सुन्दर स्थान है। वहाँ श्रीजगन्नाथदेव की सेवा बड़ी अच्छी तरह होती है और राजा के चचेरे भाई वृन्दावन भञ्ज बड़े अनुरागी भक्त हैं। आप यदि वहाँ पधारें तो बड़ा सुख पायेंगे।"

यह सुन बड़े बाबाजी महाशय ने कहा, "प्रभु किधर ले जायेंगे, वे ही जानें। मालूम होता है कि वे आपके द्वारा अपनी इच्छा प्रकट कर रहे हैं। अतएव उनकी इच्छा पूर्ण होने दीजिये।"

यह कह साथियों को ले मयूरभञ्ज जाने को तैयार हुए। वे भक्त भी उनके साथ चल दिये। उसी समय नवजीवन प्राप्त पूर्वोक्त रामधन गंगोली आकर बाबाजी महाशय के चरणों में गिर पड़े। बाबाजी महाशय ने उन्हें उठा छाती से लगाकर कृतार्थ किया। रामधन बाबू कुछ कहना चाहते थे, परन्तु कहने का साहस नहीं होता था। बड़े बाबाजी महाशय ने कहा "बाबा, विशुद्ध भाव से जीवन व्यतीत करो, परम दयाल निताइचाँद शीघ्र कृपा करेंगे।"

यह सुनकर गंगोली महाशय का धैर्य भंग हो गया और वे रोते हुए कहने लगे, "बाबा! जब आपने एकबार नरक से उठा लिया है, तो ऐसा उपाय कीजिये जिससे फिर पतन न हो। मैं बड़ा पापी हूँ। बड़े भाग्य से आपके श्रीचरण दर्शन का सुयोग मिला है। अब मैं आपके चरण नहीं छोड़ूँगा, आप भी मुझे त्याग न करें। मैं आपका अनुगत दास हूँ। मुझे आशा है कि आपको कर्णधार के रूप में पाकर इस भव-समुद्र को पार कर लूँगा। इसलिए इसी शुभ क्षण में मुझे मन्त्र प्रदान कर कृतार्थ कीजिए।" कहते-कहते बाबाजी महाशय के चरणों में गिर पड़े। उन्होंने भाव में भर उन्हें प्रेमालिंगन किया और उनके कान में मन्त्र प्रदान किया। मन्त्र

पाते ही परम सौभाग्यवान रामधन बाबू के शरीर में अश्रु, पुलकादि सात्विक विकार प्रकाशित होने लगे। यह देख उपस्थित लोग स्तम्भित रह गये।

उसी दिन से रामधन बाबू मानो सतोगुण की मूर्ति बन गये। मद्य-मांस तो दूर रहा, मादक वस्तु का स्पर्श भी छोड़ दिया। एक समय थोड़े-से चावल ठाकुर को भोग लगाकर प्रसाद पाने लगे। उनका यह आश्चर्यजनक परिवर्तन देख सब लोग उन्हें धर्म की मूर्ति मान उनका सम्मान करने लगे। महत् की कृपा से सब कुछ सम्भव है। बड़े बाबाजी महाशय की कृपा से वे मद्यप ब्राह्मण ऋषितुल्य हो गये।

बड़े बाबाजी महाशय उनका उद्धार कर 'बोल श्रीनित्यानन्द' बोलकर नाचते-नाचते साथियों सहित वहाँ से चल दिए। वे प्रेमोन्मत्त अवस्था में दिग्विदिग्-ज्ञान-शून्य होकर चले जा रहे थे। मयूरभञ्ज ले जाने वाले भक्त भी साथ थे। बड़े बाबाजी महाशय को दूसरे रास्ते से चलते देख वे बोले, "बाबा यदि मयूरभञ्ज ही चलना है तो उस रास्ते से न जाकर इधर से चलिये।" सब लोग उनके बताये हुए रास्ते पर चलने लगे। कुछ दूर चलकर बड़े बाबाजी महाशय ने साथियों से कहा, "देखो, आज दस-बारह कोस रास्ता चलकर ही साँस लेनी है।" यह कहकर वे कीर्तन रंग में नाचते-नाचते चलने लगे।

कोई साढ़े तीन कोस जाने पर किसी भक्त ने आकर बड़े विनीत भाव से कहा, "बाबा! मैं अत्यन्त निर्धन हूँ, आज मेरी इस पर्णकुटी पर आतिथ्य स्वीकार कीजिये। मैं जो कुछ भिक्षा कर लाया हूँ, उसीका अपने ठाकुर को भोग लगाइये।" साथी लोग मन ही मन कहने लगे, "अब मालूम पड़ेगा कि किसका बल अधिक है।" बड़े बाबाजी महाशय ने पूछा, "तुम भिक्षा करके क्या लाए हो?" भक्त ने उत्तर दिया, "थोड़े-से चावल और उर्द की दाल रखे हैं। अब फिर भिक्षा को जाऊँगा, प्रभु जो कुछ दे दें। इसके अतिरिक्त घर में बैंगन, केला और भिण्डी भी हैं। मैंने चार दिन पहले स्वप्न देखा था कि महापुरुष कीर्तन करते हुए कुछ भक्तों के साथ मेरे घर आये हैं और कुछ खाने को माँग रहे हैं। मैं कह रहा हूँ कि मैं तो अपने परिवार का ही पोषण नहीं कर सकता, तुम्हें कहाँ से खिलाऊँ? इस पर महापुरुष कह रहे हैं कि हमारे निताइचाँद भिक्षा के चावल बहुत पसन्द करते हैं। तुझे भिक्षा में जो मिलेगा, वही हमारे ठाकुर के लिए यथेष्ट होगा। इस पर मैं भिक्षा को चला गया हूँ। आप ही वे महापुरुष हैं। आज पकड़ में आ गये हैं, अब कहाँ जाएँगे?"

यह कहकर भक्त बड़े बाबाजी महाशय के चरण पकड़ कर रोने लगा। ये भी भक्त का अनुरोध न टाल सके। भक्त के लिए भगवान् ने भी अपनी प्रतिज्ञा भंग की है। फिर उनके परिकर क्यों नहीं करेंगे? बड़े बाबाजी महाशय भक्ति के बन्धन में बँधकर उस दिन वहीं ठहर गये। साथी लोग उनके मुख की ओर देखकर हँसने लगे।

नवद्वीपदास प्रधान रसोइये के रूप में रसोई करने लगे। भक्त भिक्षा को गया और थोड़ी दूर जाकर जैसे ही एक गृहस्थ के घर से थोड़ी-सी मूँग की दाल मिली, दौड़कर लौट आया और कहने लगा, "बाबा, ये मूँग की दाल बनानी होगी।" रसोई करते-करते प्रायः एक बज गया। ठाकुर को भोग लगाकर सब महाप्रसाद पाने बैठे और महाप्रसाद में एक अपूर्व स्वाद का अनुभव कर चकित रह गये। उनके आनन्द की सीमा न रही। उस दिन उसे अनुरागी भक्त ने इन्हें जाने न दिया।

दूसरे दिन सबेरे वहाँ से चलकर ये सात दिन में मयूरभञ्ज पहुँचे। उनके पहुँचते ही शहर में यह बात फैल गई कि गौड़ देश से एक महापुरुष आये हैं, वे बड़े प्रेमी भक्त और प्रसिद्ध कीर्तनिया हैं। राजा रामचन्द्र भञ्ज के चचेरे भाई वृन्दावन भञ्ज ने जैसे ही सुना, वे बड़े आदरपूर्वक इन्हें जगन्नाथदेव के श्रीमन्दिर में ले गये और बड़े यत्नपूर्वक स्वयं उपस्थित रहकर इनके महाप्रसाद की और ठहरने की सुन्दर व्यवस्था कर दी। महाप्रसाद पाकर सबने विश्राम किया। सन्ध्या-आरती के समय मन्दिर में आरती दर्शन करने गये। आरती के पश्चात् ये आरती-कीर्तन करने लगे।

धीरे-धीरे वृन्दावन बाबू और बड़े-बड़े राज-कर्मचारी वहाँ आ पहुँचे। सभी की कीर्तन सुनने की इच्छा थी। पर वे लोग उड़ीसावासी थे, इसलिए मन में विचार करने लगे कि कीर्तन जाने कैसा होगा। हमारी

समझ में आयगा या नहीं। उनके मन का भाव जानकर बड़े बाबाजी महाशय ने नाम कीर्तन आरम्भ किया। 'निताइ एनेछे नाम हरिबोल हरिबोल'। सभी नामगान से आकर्षित होने लगे। बड़े बाबाजी महाशय इसी नाम के साथ निताइचाँद के गुण गाने लगे। सब लोग आनन्द में विभोर हो गये। छोटे-बड़े सभी नाम-कीर्तन करते हुए उद्दण्ड नृत्य करने लगे। डेढ़ पहर रात्रि व्यतीत होने पर महासंकीर्तन यज्ञ पूर्ण हुआ। सब लोग बैठकर अनेक प्रकार से भगवत्-तत्व आलोचना करने लगे। इधर जगन्नाथदेव का भोग लग गया। श्रोतागण परम आनन्दित हो अपने-अपने स्थान को चले गये। वृन्दावन बाबू ने इन लोगों को अनेक प्रकार के मिष्ठान्न महाप्रसाद सेवन कराये। प्रसाद पाकर बाबाजी महाशय और उनके साथी विश्राम करने लगे।

दूसरे दिन प्रात:काल इन दोनों ने ठाकुर की मंगला-आरती का दर्शन किया और नित्य नियम से निवृत्त हो चलने को तैयार हुए। उसी समय वृन्दावन बाबू ने आकर उस दिन वहीं ठहरने का अनुरोध किया। ये उनके अनुरोध को टाल न सके। वह दिन वृन्दावन बाबू के साथ भक्तितत्व आलोचना में और कीर्तनानन्द में व्यतीत हुआ। वृन्दावन बाबू का मन इनकी तरफ बड़ा ही आकर्षित हुआ। वे इन लोगों को छोड़ना नहीं चाहते थे। उनकी इच्छा थी कि ये कुछ दिन और मयूरभञ्ज ठहरें। परन्तु उनकी यह इच्छा पूरी न हुई, क्योंकि बड़े बाबाजी महाशय श्रीगुरुदेव के श्रीचरण दर्शन करने के लिए बड़े उत्कण्ठित थे। दूसरे दिन सबेरे कीर्तन करते हुए जाने लगे। उसी समय वृन्दावन बाबू ने आकर बड़े विनीत भाव से इन लोगों को कुछ राह खर्च देने का बड़ा आग्रह किया। परन्तु बड़े बाबाजी महाशय ने उनसे क्षमा मांगी और प्रसन्न चित्त वहाँ से चल दिये।

कुछ दूर जाकर देखा कि एक नवयुवक एक दुमंजिले घर के खुले बरामदे में कुर्सी पर बड़े गर्व से दोनों पैर लटकाये बैठा है। बड़े बाबाजी महाशय कीर्तन करते हुए जब उस घर के पास होकर जाने लगे तो वह धन-यौवन-मदोन्मत्त युवक इन लोगों को अवज्ञा की दृष्टि से देख दोनों पैरों को और अधिक लटकाकर हिलाने लगा। परन्तु इन लोगों ने कोई ध्यान न दिया और कीर्तन करते हुए निकल गये। उस युवक के इस वैष्णव द्वेषी भाव को मानो दर्पहारी निताइचाँद सहन न कर सके। एकाएक कुर्सी उलट गयी और युवक नीचे गिर पड़ा। तब तो वहाँ बड़ा कोलाहल मच गया।

युवक नीलगिरि का राजकुमार था। चारों ओर बात फैल गयी कि नीलगिरि का राजकुमार दुमंजिले से गिर पड़ा। वृन्दावन बाबू ने भी सुना। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि राजकुमार धूलधूसरित हो रास्ते में बैठा है और चारों ओर लोगों की भीड़ लगी है। वृन्दावन बाबू के पूछने पर उसने कहा, "मैं इस बरामदे में कुर्सी पर बैठा था। कुछ वैष्णव इस रास्ते से 'गौर हरिबोल' बोलते नाचते-नाचते निकल गये। उन्हें देख और उनका कीर्तन सुन मेरा मन चंचल हो उठा और मस्तिष्क घूमने लगा। एकाएक मेरी कुर्सी को किसी ने उलट दिया। मैं नीचे गिर पड़ा। गिरते समय जो 'गौर हरिबोल' की ध्वनि मेरे कानों में पड़ी थी वही मेरे मुख से निकल गयी। इस अपूर्व शब्द के उच्चारण होते ही देखा कि उस कीर्तन-दल के दीर्घाकार पुरुष ने दोनों हाथ पसारकर मुझे पकड़ लिया और पृथ्वी पर लिटा दिया। उनका स्पर्श पाते ही मेरा शरीर रोमांचित हो गया। मुझे न कोई कष्ट हुआ और न शरीर में कोई चोट लगी। अब एक बार उस नाम कीर्तनकारी साधुमण्डली को देखने की बड़ी इच्छा हो रही है।" इस अपूर्व घटना को सुनकर वृन्दावन बाबू ने चार पाँच आदमियों को शीघ्र ही भेजा और कहा, "तुम उन महापुरुष से मेरे अनेक दण्डवत प्रणाम कह सविनय निवेदन करना कि एक बार फिर दर्शन देकर मुझे कृतार्थ करें।"

इधर ये लोग कीर्तन-रंग में मत्त हो नाचते-नाचते बहुत दूर निकल गये थे। कुछ लोग तीव्र गति से दौड़ते-दौड़ते बाबाजी महाशय के पास पहुँचे। बाबाजी महाशय ने पूछा, "क्या बात है?" उनमें-से एक ने हाँफते-हाँफते कहा, "बाबा! छोटे साहब वृन्दावन बाबू ने आपको अनेक बार दण्डवत प्रणाम कहा है और एक बार फिर दर्शन देने की प्रार्थना की है। आपको कृपा कर अवश्य ही चलना पड़ेगा।" बड़े बाबाजी महाशय ने उन्हें आश्वासन दिया और मधुर स्वर से

पूछा, "बाबा क्या बात है, उन्होंने फिर क्यों बुलाया है?" तब उस आदमी ने उत्तर दिया, "नीलगिरि के राजाबाबू दुमंजिले से गिर पड़े हैं। वे एक बार आपके दर्शन करना चाहते हैं, इसीलिए वृन्दावन बाबू ने हम लोगों को भेजा है।" इतने में और भी दो भद्र कर्मचारी दौड़ते हुए आये और कहने लगे, "छोटे साहब ने विलम्ब देखकर हम लोगों को भेजा है। हमारे राजासाहब भी उसी रास्ते में बैठे आपकी बाट देख रहे हैं।" बड़े बाबाजी महाशय सहास्य-वदन कीर्तन और नृत्य करते हुए वहाँ जा पहुँचे। इन्हें दूर से देख ऐश्वर्यमदमत्त उस नीलगिरि के राजकुमार ने आगे बढ़कर साष्टांग प्रणाम किया। और सबने भी इन्हें प्रणाम कर बैठने को आसन दिया। बड़े बाबाजी महाशय और उनके साथियों का नियम था कि जो कोई भी उन्हें प्रणाम करता, उसे प्रतिप्रणाम करते। उसीके अनुसार ये लोग सबको प्रतिदण्डवत कर विनीत भाव से बैठ गये। राजकुमार हाथ जोड़कर खड़े थे। उन्हें बाबाजी महाशय ने हाथ पकड़कर पास बैठा लिया। तब वृन्दावन बाबू ने सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाकर कहा, "बाबा, मेरा विश्वास है कि इस नवीन राजकुमार से कोई अपराध आपके प्रति हो गया था, इसीलिए प्रभु ने इसे दण्ड दिया। पर आप लोग तो क्षमाशील, परमदयाल वैष्णव हैं। आप लोगों की कृपा से राजकुमार की जान बच गयी।"

बड़े बाबाजी महाशय ने कहा, "निताइ निताइ! ऐसी बात कहकर हम लोगों का तिरस्कार न कीजिये, क्योंकि हम जिनके दासानुदास हैं, वे प्रेमदाता निताइचाँद स्वयं मार खाकर भी प्रेमदान करते रहे हैं, किसी का अपराध लेना जानते ही नहीं। निताइचाँद के प्रेमराज्य में अपराध नाम की कोई वस्तु ही नहीं है। आप लोग ऐसी बात कभी न करें। वे यदि जीव का अपराध लेंगे तो उसका उद्धार कौन करेगा? वे तो अपराधी को आदरपूर्वक हृदय से लगाकर उसे प्रेमदान करते हैं।" ऐसा कहते-कहते बड़े बाबाजी महाशय के नेत्रों से अश्रु-वर्षा होने लगी। तब सब लोग स्वर से कहने लगे, "ठीक है, ठीक है, हम लोगों से भूल हुई।"

इस बीच राजकुमार के नेत्रों से निरन्तर अश्रुधार बहती रही। बड़े बाबाजी महाशय ने उन्हें प्रेमालिंगन कर आश्वासन दिया। राजकुमार अपराधी की तरह नीचा मुँह किये बैठे रहे। कैसा अपूर्व दृश्य था और कैसा मधुमय मिलन।

साधु संग साधु संग सर्वशास्त्रे कय।
लवमात्र साधुसंगे सर्वसिद्धि हय।।

थोड़ी देर पहले जो व्यक्ति परम उद्दण्ड, ऐश्वर्य मदमत्त और अभिमानपूर्ण था, वह महत् की कृपा से अब धूल-धूसरित, अभिमानशून्य, और दीनता की मूर्ति हो रहा था। जो वैष्णव को देखते ही नाक भौं सिकोड़ता था, वह बड़े बाबाजी महाशय के उपदेशपूर्ण वचन सुन और उनके चरणों में लोट-पोटकर अपने को कृतार्थ मान रहा था। यही है साधुसंग और महत् की कृपा का प्रभाव!

उस दिन सबके अनुरोध से बड़े बाबाजी महाशय को रुकना पड़ा। इससे सबको बड़ा आनन्द हुआ। भक्तप्रवर वृन्दावन बाबू ने कहा, "बाबा, हमारे जगन्नाथ आपको छोड़ना नहीं चाहते। जाने के लिए चेष्टा करने से क्या होगा?" बड़े बाबाजी महाशय ने कहा, "बाबा, हमारी इच्छा से कुछ नहीं होगा, इच्छामय प्रभु जब जिस भाव से नचाएँगे, हमें वैसे ही नाचना होगा।" आप जगन्नाथदेव से प्रार्थना कीजिये कि वे कृपाकर फिर आकर्षण करें और अपने पास रखें। वह दिन इसी प्रकार भक्तिप्रसंग में परमानन्दपूर्वक व्यतीत हो गया। दूसरे दिन चलते समय वृन्दावन बाबू ने कहा, "बाबा, हमारे राजाबाबू का विशेष अनुरोध है कि आप कृपाकर एक कम्बल ग्रहण करें।" बड़े बाबाजी महाशय ने हाथ जोड़कर कहा, "बाबा, शायद आप लोग समझते होंगे कि वैराग्य के कारण मैं कुछ नहीं लेता, परन्तु यह बात नहीं है। मुझे लोभ बहुत है। केवल इसी कारण कोई वस्तु नहीं लेता कि वहन नहीं कर सकूँगा।" इसी प्रकार के विनयपूर्ण वचनों से सबको सन्तुष्ट कर वे चल दिये।

उनकी विदा के समय वृन्दावन बाबू आदि के मुख से विदित होता था कि मानो किसी चिरपरिचित परमोपकारी बन्धु से बिछोह हो रहा है। मयूरभञ्जवासी छोटे बड़े सभी इन वैरागियों की अद्‌भुत प्रेमभक्ति की आलोचना करने लगे। कोई कहता था कि बड़े बाबाजी

महाशय निश्चय ही सिद्ध महापुरुष हैं। कोई कहता था कि यह सब लोग श्रीगौरांग महाप्रभु के विशेष अन्तरंग भक्त हैं और कोई कहता था कि हमारा विश्वास है कि ये साक्षात् नित्यानन्द प्रभु ही हैं।

गोपीवल्लभपुर आगम, गोविन्ददेव और श्यामानन्द प्रभु की पुण्य कथा

बड़े बाबाजी महाशय सदलबल कीर्तन करते हुए दाँतन पहुँचे। वहाँ एक रात ठहर कर चल दिये। श्रीमन्महाप्रभु के आदेश से श्रीनित्यानन्द प्रभु ने नीलाचल से गौड़देश आगमन किया था—उसी भाव से विभावित हो बड़े बाबाजी महाशय बहुत से लोगों को साथ ले गौड़ देश जा रहे थे। धीरे-धीरे वे गोपीवल्लभपुर पहुँचे। वहाँ गोविन्ददेव के दर्शन स्तुति आदि कर विश्राम करने लगे। एक सज्जन ने आकर पूछा, "आप लोग कहाँ रहते हैं?" बड़े बाबाजी महाशय ने उत्तर दिया, "बाबा, हम लोगों का एक निश्चित स्थान नहीं है। प्रभु जिस दिन जहाँ रखते हैं, वहीं रहते हैं। इस समय गौड़ देश जाने के लिए प्रभु का आदेश हुआ है। एक बार श्यामानन्दप्रभु के स्थापित श्रीराधागोविन्द जी के दर्शन की बड़ी इच्छा हुई। इसीलिए मालूम होता है कि राधारानी कृपा कर यहाँ खींच लायी हैं।"

इसी समय एक वृद्ध भक्त आये और गद्गद कण्ठ से बोले, "प्रभु वांछाकल्पतरु हैं, उन्होंने मेरी वांछा पूर्ण कर दी। आज हमारे शिक्षा गुरु का अप्रकट दिवस है। मैं सोच रहा था कि डेढ़ पहर दिन चढ़ गया, अभी तक एक भी वैष्णव नहीं पधारे। गोविन्द जी क्या मेरी आशा पूरी न करेंगे? वांछा-कल्पतरु गुरुदेव की कृपा से कोई वासना अपूर्ण नहीं रहती।" यह कहते हुए साष्टांग दण्डवत् प्रणाम कर हाथ जोड़ कर इन लोगों से निवेदन करने लगे, "बाबा, समय अधिक हो गया है, आप लोग स्नानादिक कीजिये।"

उसके करुण वचन सुन बड़े बाबाजी महाशय विस्मित हो कहने लगे, "बाबा, स्नान तो अवश्य ही करेंगे। प्रभु की बड़ी कृपा है। हम लोगों के सौभाग्य की सीमा नहीं है। नवद्वीप! चलो।"

स्नानादि कर लौटे तब तक गोविन्द जी का भोग हो गया। वृद्ध भक्त ने उस दिन ठाकुर जी के भोग का विशेष प्रबन्ध किया था। उसने सबसे पहले इन लोगों के प्रसाद पाने की व्यवस्था की। ये भी परम आनन्द से प्रसाद पाकर विश्राम करने लगे।

दोपहर पीछे बहुत-से लोग आने लगे। यह देख बड़े बाबाजी महाशय वहाँ से उठकर एक पेड़ के नीचे जा बैठे। वन में जिस प्रकार फूल खिलने पर उसकी सुगन्धि से आकर्षित हो भ्रमर आप ही उड़े चले जाते हैं, वैसे ही आज बड़े बाबाजी महाशय की अपूर्व प्रेमभक्ति और यश सौरभ से आकर्षित हो भक्त-भ्रमर उस पेड़ के नीचे इकट्ठे होने लगे। इन्होंने प्रतिष्ठा के भय से निर्जन स्थान का आश्रय लिया था, परन्तु वहाँ भी न बच सके।

"प्रतिष्ठार स्वभाव एइ जगते विदित।
जे ना वाञ्छे तार हय विधाता-निर्मित।।"

—प्रतिष्ठा का स्वभाव जगत् में सब जानते हैं। जो इसे नहीं चाहता उसे विधाता देते हैं।

बड़े बाबा प्रेमानन्द में विभोर हो उठे थे। जो भी आता था, उसे आदरपूर्वक बिठा रहे थे। सब उनके मुखारविन्द की ओर देख रहे थे। एक भक्त ने प्रश्न किया, "बाबा, यहाँ के गोविन्ददेव का विवरण और श्रीश्यामानन्द प्रभु की पुण्य चरित-कथा एक बार आपके श्रीमुख से सुनने की हम लोगों की बड़ी इच्छा है। यह प्रश्न मैंने बहुत लोगों से किया है, परन्तु किसी ने उचित उत्तर नहीं दिया। आप कृपा कर हमारी वासना पूर्ण करें, जिससे हम कृतार्थ हों।" बड़े बाबाजी महाशय ने प्रसन्न होकर कहा, "बाबा, यह तो बड़ी अच्छी बात है। भक्त-चरित्र श्रवण और कीर्तन ही आत्मशोधन का एकमात्र उपाय है। श्रीश्यामानन्द प्रभु की गुरु-निष्ठा और गुरु वचनों में विश्वास जगत् में अतुलनीय है।"

"श्रीश्यामानन्द प्रभु का जन्म एक उत्तम गोपकुल में हुआ था। उनका जन्म-स्थान धारेन्दा बहादुरपुर था और उनके पिता का नाम श्रीकृष्ण मण्डल था। उनके पिता ने गाँव छोड़ दण्डेश्वर जाकर वास किया। श्यामानन्द प्रभु के कई बड़े भाई और बहन छोटी आयु में ही मर चुके थे। इसलिए उनके माता पिता और

गाँववासी उन्हें 'दु:खी' कह कर पुकारा करते थे। उन दिनों संस्कृत शिक्षा ही मुख्य थी। 'दु:खी' ने बाल्यकाल से ही पढ़ने में मन लगाया। उनकी तीक्ष्ण और असाधारण मेधाशक्ति देख उनके पिता ने उन्हें व्याकरण पढ़ने बैठा दिया। अल्पकाल में ही वे व्याकरण में विशेष पारंगत हो गये। उनकी बचपन से ही संसार में आसक्ति न थी। यह बात उनके माता–पिता को अच्छी नहीं लगती थी। वे दिन रात निताइ गौरांग के गुणगान में मत्त रहते थे। यद्यपि पढ़ने में उनका विशेष ध्यान था, वे हर समय अपने मन में अशान्ति बोध किया करते थे। यह बात वे किसी से खोलकर नहीं करते थे। परन्तु उनके माता–पिता उनका भाव देख बड़े चिन्तित रहते थे।"

"एक दिन उनके पिता ने उनसे पूछा, "तुम्हारा मन हर समय ऐसा क्यों रहता है?" उन्होंने सिर झुकाकर कहा, "बाबा, मेरी इच्छा है कि दीक्षा ग्रहण करूँ, क्योंकि अदीक्षित जीवन पशुजीवन के समान है। अदीक्षित व्यक्ति के हाथ का अन्नजल भी ग्रहण करने योग्य नहीं होता। अदीक्षित अवस्था में मृत्यु होने से अपमृत्यु होती है। सबेरे उठकर अदीक्षित व्यक्ति का मुख देखने से सारा दिन निष्फल होता है। ऐसा व्यक्ति यात्रा के समय सामने आ जाय तो कार्यसिद्धि नहीं होती। इसीलिए मेरा मन दु:खी रहता है।" इतना कह 'दु:खी' पिता के चरणों में गिरकर रोने लगे।

पिता ने पुत्र को उठाकर छाती से लगाया और आश्वासन दिया, "बेटा, इसमें हमें कोई आपत्ति नहीं है, यह तो बड़े सौभाग्य की बात है। जिस किसी से तुम्हें मन्त्र ग्रहण करने की इच्छा हो कर सकते हो। तुमने जो कहा है, सभी सत्य है। अदीक्षित जीवन निश्चय ही पशुजीवनतुल्य और घृणित हैं" यह सुन 'दु:खी' ने आनन्दित हो कहा, "अम्बिका नगरवासी श्रीगौरीदास पण्डित के प्रिय शिष्य श्रीहृदयचैतन्यदेव को मैंने मन में गुरु रूप में स्वीकार किया है। यदि आप कृपा कर अनुमति दें तो एक बाद श्रीपाट अम्बिका कालना जा और श्रीगुरुचरण दर्शन कर अपनी अभिलाषा पूर्ण करूँ।"

"अम्बिका नगर बहुत दूर था। इसलिए माँ ने कुछ आपत्ति की।" पर नवानुरागी 'दु:खी' ने कहा, "भय की कोई बात नहीं माँ, गंगा स्नान को जाने वाले यात्रियों के साथ चला जाऊँगा। हर समय यहाँ से लोग आते जाते रहते हैं।" यह कहकर माता की चरण–रज मस्तक पर धारणकर 'दु:खी' वहाँ से चल दिये। कुछ दिनों में श्रीपाट अम्बिका कालना पहुँच श्रीहृदयचैतन्य ठाकुर के चरणों में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। उन्होंने नाम पूछा तो कहा, "मेरा नाम 'दु:खी' है और वास्तव में मैं दु:खी हूँ।" यह सुनकर हृदयचैतन्य ठाकुर ने कहा, "आज से तुम्हारा नाम हुआ 'दु:खी कृष्णदास'।" उसी दिन से गुरु–आज्ञानुसार उनका नाम 'दु:खी कृष्णदास' पड़ गया। उनकी कातर प्रार्थना पर शुभ दिन देख गुरुदेव ने दीखा दी। दु:खी कृष्णदास गुरुसेवा को ही सर्वोत्तम भजन साधन मानकर दिनरात गुरुसेवा करने लगे। दीखा के कुछ ही दिन बाद वे गुरुदेव तथा अन्य लोगों का चित्त आकर्षित करने लगे। गुरुदेव भी अपनी सन्तान की तरह उनसे स्नेह करने लगे। एक दिन उन्होंने 'दु:खी' को श्रीमन्महाप्रभु की सेवा के लिए गंगाजल लाने का आदेश दिया। उसी दिन से आश्रम में जितना गंगाजल लगता वे स्वयं ले आते।

"एक दिन दु:खी कृष्णदास ने गुरुदेव को दण्डवत किया।" गुरुदेव ने मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। उन्होंने देखा कि इनके मस्तक में घाव हो रहा है। उन्होंने विस्मित हो पूछा, "बेटा, कृष्णदास, तुम्हारे मस्तक में क्या हो गया है?" उन्होंने संकोच से कहा, "बाबा कुछ नहीं, आपकी कृपा से शीघ्र ठीक हो जायगा।" गुरुदेव ने जान लिया कि गंगाजल ढोते–ढोते उनके प्रिय शिष्य के सिर में घाव हो गया है, फिर भी सेवानिष्ठा के कारण उसने यह काम बन्द नहीं किया है। इससे गुरुदेव अत्यन्त सुखी हुए और उन्हें प्रेमालिंगन कर कृतार्थ करते हुए बोले, "बेटा, तुम वृन्दावन जाकर श्रीजीव गोस्वामीपाद के निकट भक्तिग्रन्थों का अध्ययन करो।" पहले उन्होंने गुरुसेवा छोड़कर वृन्दावन जाने में कुछ आपत्ति की, पर गुरुदेव ने कहा, "बेटा! सेवा का अर्थ है सुख देना। तुम्हारे वृन्दावन जाने से मुझे सुख होगा, इसलिए तुम्हारा वृन्दावन जाना ही उचित है।"

"गुरुआज्ञा शिरोधार्य कर गुरुभक्त दु:खी कृष्णदास श्रीधाम नवद्वीप दर्शन करते हुए वृन्दावन चल दिये। वृन्दावन पहुँचकर वे श्रीजीव गोस्वामीपाद, श्रीनिवास आचार्य प्रभु और श्रीनरोत्तम ठाकुर महाशय आदि से मिले। हृदयचैतन्य ठाकुर ने अपने प्रिय शिष्य को भक्ति-शास्त्र की शिक्षा देने के लिए श्रीपाद जीवगोस्वामी को एक पत्र लिख दिया था। दु:खी कृष्णदास ने वह पत्र गोस्वामी जी के हाथ में दिया। पत्र पढ़कर गोस्वामी जी परम आनन्दित हुए और बड़े यत्न से उन्हें भक्तिशास्त्र का उपदेश देने लगे। दु:खी कृष्णदास ने थोड़े ही समय में भक्ति-शास्त्र में विशेष अधिकार प्राप्त कर लिया। सेवा ही भक्तिशास्त्र का सार सिद्धान्त है—ऐसा जानकर श्रीनिकुंजमन्दिर में नित्य झाड़ू लगाने लगे। उनके मन में निकुंजविहारिनी राधारानी के श्रीचरण दर्शन की उत्कण्ठा दिनोंदिन बढ़ने लगी। यह विश्वास कर कि सखी-मंजरी परिवृत श्रीश्रीराधामाधव के नित्यनिकुंजविहार का मुझे एक दिन अवश्य ही दर्शन होगा, वे खूब मन लगाकर निकुंजसेवा करने लगे।"

"विश्वासे मिलये वस्तु तर्के बहु दूर" महाजन वाक्य सार्थक हुआ। एक दिन प्रात:काल अँधेरे में उन्होंने निकुंज-मन्दिर के बाहर झाड़ू देते हुए देखा कि रास्ते के सहारे एक स्वर्ण नूपुर शोभा पा रहा है। यह देख वे प्रेमानन्द में अधीर हो गये। अश्रु, कम्प पुलकादि होने लगे। उन्होंने भक्तिपूर्वक उस अपूर्व अप्राकृत स्वर्ण नूपुर को उठा लिया और लगे कभी उसे मस्तक पर रखने कभी हृदय से लगा प्रेमाश्रु बहाने। उस अपूर्व नुपुर को सूँघ-सूँघ प्रेम में अधीर हो रोते-रोते कहने लगे, "हाय हाय! दयामयी की कैसी अपार करुणा है। वृन्दावनविलासिनी करुणामयी राधे! इस अधम पर ऐसी ही करुणा है तो एक बार दर्शन देकर कृतार्थ करो न करुणेश्वरी!" और कातर भाव से रो-रोकर निकुंजेश्वरी राधारानी को पुकारने लगे।

"इधर श्रीराधिका जी ने निकुंजवन से थोड़ी ही दूर चलकर ललिता जी से कहा, "अरी सखी, मेर्‌यौ नुपुर कहूँ गिर पर्‌यौ है, तू ढूँढ़ कै ला।" ललिता जी तत्काल ग्यारह वर्ष की परम रूपवती बालिका का वेश धारण कर अपनी प्यारी सखी का नूपुर खोजते-खोजते निकुंज मन्दिर के बाहर आयीं और दु:खी कृष्णदास को देख पूछने लगीं, "अरे भैया, एक सोने को नूपुर तोए पायो ऐका?" दु:खी कृष्णदास ने आँसू बहाते हुए ललिता जी की ओर देखते हुए कहा, "हाँ, वह नूपुर तुम्हारा है क्या?"

ललिता जी—मेर्‌यौ नाय, मेरी बहन कौ ऐ।

दु:खी कृष्णदास—तो तुम्हारी बहन क्यों नहीं आयीं?

ललिता जी—मेरी बहन राजा की छोरी ऐ, बासों नांई आय सके।

दु:खी—उनके बिना आये मैं कैसे जानूँ कि नूपुर उन्हीं का है। तुम झूठ बोलकर ले जा सकती हो। इसलिए जिनका नूपुर है उन्हें लिवा लाओ। उनके दूसरे नूपुरों से मिलाकर मैं उनके चरण में पहना दूँगा।

ललिता—तेरी सौ मैं झूठ नाँय कहूँ। बो बड़े घर की बऊ है। बाकी सास गारी देंगी। तू मेरे हाथ में दै दै।

"दु:खी कृष्णदास ने जब उनकी बात न मानी तो उन्होंने समझ लिया कि यह निश्चय ही प्यारी जी का कृपापात्र है। नूपुर खोने के बहाने ही वे इस पर कृपा करना चाहती हैं। ऐसा विचार कर वे गयीं और अपनी समवयस्का बालिका के वेश में प्यारी जी को लेकर आ गयीं। प्यारी जी ने दु:खी कृष्णदास से नूपुर माँगा। उन्होंने पूछा, "तुम लोग रात में इस निर्जन स्थान में क्यों आयीं थीं?" प्यारी जी ने मुस्कराते हुए कहा, "बहुत कहा कहें जितो मेरौ निकुंज मन्दिर ऐ, तू तो सब समझ गयौ। अब हठ मत करै, भोर है जायगी, नूपुर दै दै।" दु:खी कृष्णदास ने प्यारी जी के हाथ में नूपुर दे दिया और कहा "करुणामयी, जब इस अधम पर इतनी कृपा है, तब एक बार निज स्वरूप से दर्शन देकर कृतार्थ करो।" यह कहते-कहते व्याकुल होकर रोने लगे। प्यारी जी ने हँसते हुए कहा, "तू इन आँखिन ते का मेरौ स्वरूप देख सकैगो?" तब ललिताजी ने कृपापरवश हो कहा, "अरी प्यारी, जब कृपा है गयी तौ थोड़ी शक्ति भी दै देओ।" प्यारीजी ने 'जो तेरी राजी' कहकर विद्युल्लता के समान निज स्वरूप दिखाया और कहा

"तुम्हारी गुरुपादपद्म-निष्ठा गुरुवाक्य में दृढ़ विश्वास और एकनिष्ठ सेवा के फलस्वरूप हमारो या नूपुरचिह्नित तिलक तेरे मस्तकपै वर्तमान रहै। जगत्वासी देखैं और समझैं कि गुरु-कृपाते कहा नहीं है सके।" यह कह कर प्यारीजी ने धूल-धूसरित नूपुर अपने हाथ से दुःखी कृष्णदास के मस्तक से स्पर्श कर दिया। वृन्दावन-विलासिनी प्यारीजी के श्रीअंग स्पर्श से दुःखी कृष्णदास प्रेमानन्द में अचेत हो गिर पड़े और श्रीमती अपनी सहेलियों सहित अन्तर्धान हो गयीं।

"कुछ दिन बाद जब दुःखी कृष्णदास को चेतना हुई तो रोते-रोते श्रीजीव गोस्वामी के पास पहुँचे और सम्पूर्ण घटना कह सुनायी। गोस्वामीपाद ने कहा, "जब तुम राधिका जी की कृपा पा चुके तो निश्चय ही श्यामसुन्दर के प्रिय पात्र हो। अतएव आज से तुम्हारा नाम होगा 'श्यामानन्ददास' और तुम्हारा तिलक होगा श्रीमती का कृपादत्त नूपुर आकार।" दुःखी कृष्णदास ने भक्तिपूर्वक गोस्वामीपाद को प्रणाम किया और निकुंज-सेवा के काम पर चले गये।

"थोड़े ही दिनों में श्यामानन्द की यह बात वृन्दावन में फैल गयी।" उनका तिलक-परिवर्तन और श्रीजीव गोस्वामी का आनुगत्य सभी ने देखा। किसी व्यक्ति ने अम्बिका जाकर श्रीहृदयचैतन्य प्रभु से कहा, "दुःखी कृष्णदास ने आपको त्यागकर दूसरे गुरु कर लिये हैं और उनका नाम और तिलक भी बदल गये हैं।" यह सुन हृदयचैतन्य प्रभु ने विस्मित हो श्रीजीव गोस्वामीपाद को एक पत्र लिखा और उसमें अपने मन का भाव प्रकाशित न करते हुए केवल इतना ही लिखा कि दुःखी कृष्णदास को एकबार अम्बिका भेज दीजिये। पत्र पाकर गोस्वामीजी ने श्यामानन्द को अम्बिका जाने का आदेश किया। श्यामानन्द गोस्वामीजी तथा वृन्दावनवासी वैष्णवों से विदा लेकर श्रीगुरुचरण-दर्शन की अभिलाषा से अम्बिका चल दिये।

"यथासमय वहाँ पहुँचकर उन्होंने श्रीगुरुदेव के चरणों में प्रणाम किया।" गुरुदेव ने पूछा, "तुम्हें ऐसा तिलक किसने दिया?" श्यामानन्द ने हाथ जोड़कर कहा, "प्रभु आपने ही दिया है।"

गुरुदेव—तुम्हारा नाम किसने बदला?

श्यामानन्द—प्रभो आपने ही बदला है। इस जगत् में आपके सिवा मेरे ऊपर इतनी कृपा और कौन कर सकता है।

"श्यामानन्द ने यथार्थ बात कही, क्योंकि वे तो गुरु छोड़ और किसी को जानते ही न थे। परन्तु गुरुदेव ने क्रोधित हो कहा, "यह चालाकी की बातें मैं नहीं सुनना चाहता। मैंने सब सुन रखा है। तू मुझे धोखा दे रहा है। यदि मैंने ही तेरा नाम और तिलक बदला है तो मैं ही तुझे आज्ञा देता हूँ कि इस तिलक को छोड़कर पहले जैसा तिलक लगा और यह नाम भी त्याग दे।" श्यामानन्द ने हाथ जोड़कर निवेदन किया, "प्रभो, आपने ही कृपा कर दिया है और आप ही पौंछ दीजिये।"

"हृदयचैतन्य ठाकुर अपने अंगोछे से राधारानी के नूपुर चिह्न को पोंछने लगे, परन्तु तिलक और भी चमकने लगा। जब बहुत चेष्टा करने पर भी नहीं पुंछा तो थोड़ी देर नीरव रहकर ध्यान करने लगे और जान गये कि भगवद्कृपा और श्यामानन्द की गुरु-भक्ति के बल से ही यह सब हुआ है। तब वे श्यामानन्द को प्रेमालिंगन कर और नेत्रों में जल भर गद्गद कण्ठ से कहने लगे, 'बेटा श्यामानन्द, तेरी गुरु-भक्ति और सेवानिष्ठा वास्तव में निष्कपट है। आज मैं तुझसे शिक्षा पाकर धन्य हुआ।'

"शिष्य से सारा वृतान्त सुनकर गुरुदेव परम प्रसन्न हुए और गुरु शिष्य दोनों ही प्रेमावेश में अचेत हो गिर पड़े। कुछ देर बाद चेत होने पर व्याकुल हो रोने लगे। हृदयचैतन्य ठाकुर ने शिष्य पर कृपाकर उन्हें श्रीवृन्दावन से लायी हुई श्रीराधागोविन्द की मूर्ति की सेवा में नियुक्त कर दिया। श्यामानन्द प्रभु श्रीविग्रह सेवा करने लगे। वही सेवा आजतक चली आ रही है।"

बड़े बाबाजी के मुख से श्रीगोविन्ददेव और श्यामानन्द प्रभु की पुण्य कथा सुन भक्त बहुत आनन्दित हुए। थोड़ी देर में श्रीराधागोविन्द जी की आरती होने लगी। बड़े बाबाजी महाशय अपने दल सहित आरती दर्शन कर नाम-कीर्तन करने लगे। कीर्तन प्रायः डेढ़ पहर हुआ। तत्पश्चात् ठाकुर को भोग और सब लोग प्रसाद पाकर विश्राम करने लगे।

दूसरे दिन प्रात:काल जब ये लोग चलने को हुए, गाँववालों ने एक दिन और ठहरने के लिए बड़ा अनुरोध किया। बड़े बाबाजी महाशय ने मधुर वचनों से उन्हें सन्तुष्ट कर उनसे विदा ली।

ये मेदनीपुर होते हुये कलकत्ता पहुँचे। बड़े बाबाजी महाशय जगन्नाथ घाट पर बैठ कर विश्राम करने लगे और अपने साथियों से बोले, "तुम लोग यहाँ थोड़ी देर ठहरो, मैं स्नान कर लूँ। पीछे तुम लोग स्नान कर लेना।" उन्होंने भक्तिपूर्वक जल स्पर्श किया और हाथ जोड़कर गंगामाता से प्रार्थना करने लगे, "कृपामयी माँ जाह्नवी, पतितपावनी गंगे, बहुत दिन तक तुमने अपनी अधम सन्तान को चरण दर्शन से वंचित रखा। आज तुम्हारी स्नेहमयी गोद में आकर परम शान्ति अनुभव कर रहा हूँ। ऐसी कृपा करना कि अन्तिम समय तुम्हारी ही गोद में स्थान पाऊँ।" गंगा स्नान कर वे बाहर निकले और उनके साथी स्नान करने लगे। इधर स्वेच्छामय स्वतन्त्र पुरुष बड़े बाबाजी महाशय ने मन ही मन न जाने क्या विचारा, वे साथियों को गंगा माँ की गोद में छोड़ एक गाड़ी कर कहीं चल दिये।

साथी जब स्नान कर तीर पर आये तो देखा कि उनके जीवन धन दादा वहाँ नहीं है। वे परम उद्विग्न हो चारों ओर देखने लगे। आस-पास कहीं नहीं दीखे तो एक आदमी को घाट पर छोड़ उनकी खोज में दूर-दूर निकल गये। पर वे कहीं न मिले। सब लोग खिन्न हो लौट आये और किंकर्तव्यविमूढ़ हो घाट पर बैठ गये। सब अत्यन्त चिन्तित थे। सबकी आँखें डबडबा रही थीं, सब मणिहार सर्पकी तरह इधर-उधर देख रहे थे। उसी समय एक सज्जन ने आकर कहा, "वे किसी अनिर्दिष्ट स्थान पर गये हैं। यथासमय नवद्वीप धाम में आप लोगों से मिलेंगे, यह उन्होंने मुझसे कहला भेजा है।" यह संवाद पाते ही सब लोग कुछ स्थिर हुए। इसी सज्जन ने इन लोगों के ठाकुर के भोग का प्रबन्ध कर दिया। इन्होंने रसोई कर ठाकुर को भोग लगाकर प्रसाद पाया और उसी दिन कोई नवद्वीप और कोई अन्य स्थान को चले गये। इस समय से श्रीधाम नवद्वीप पहुँचने तक का वृत्तान्त बाबाजी महाशय के हस्तलिखित खाते में जैसा मिला है, वह यहाँ उद्धृत है—

तत्व मीमांसा

नि:संग भ्रमण करते-करते सोचने लगा कैसे शान्ति लाभ की जाय। सोचा कि विवेक और दृढ़ विश्वास द्वारा स्थायी वस्तु हृदय में धारण कर लक्ष्य की प्राप्ति हेतु आदर्श पथ का अवलम्बन करने से ही जीव को चिर शान्ति मिल सकती है। मनुष्य को अपनी भूत, भविष्यत् और वर्तमान अवस्थाओं पर विचार करने पर कभी शोक, कभी दु:ख कभी आनन्द होता है। मैं अपने मन के भाव प्रकाशित करूँ तो लोग मुझे पागल कहेंगे। पर कुछ भी क्यों न हो, यह अद्भुत रहस्य गोपन नहीं रखा जा सकता। इसलिए मैं सभ्य समाज में पागल बनने को तैयार हूँ। सभ्य लोग अपने मनोविनोद के लिए भी प्राय: पागल के साथ बातचीत कर लिया करते हैं।

मैंने अपने आप से प्रश्न किया,—"तुम कौन हो, कहाँ से आये हो? क्षण-क्षण में तुम्हारे में परिवर्तन क्यों होता है? कभी तुम आनन्द में मत्त हो जाते हो, कभी बड़े दु:खी होकर हाहाकार करने लगते हो, कभी दूसरे के दु:ख में दु:खी होते हो, और कभी स्वयं दूसरे को दु:ख देने को तैयार होते हो, कभी भूख से व्याकुल हो जाते हो, कभी भोजन में अनिच्छा प्रकट करते हो, कभी सोते हो, कभी जागते हो, कभी रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द के पीछे पागल होते हो और उन्हें न पाकर दु:ख से अधीर हो उठते हो, कभी इन सभी वस्तुओं को पाकर भी त्याग देते हो, कभी प्राप्त वस्तु का त्याग करते हो और कभी अभाव की पूर्ति के लिए व्याकुल हुए फिरते हो। कभी तुम मोह में पड़कर त्रिताप ज्वाला सहन करते हो और कभी त्रिताप में तप्त हो शान्त होने की आशा में भटकते हो, अपने चरित्र को देख अपने आप विस्मित होते हो। कभी अपने आप को प्रभु मान अभिमान से मत्त हो उठते हो, कभी किसी की आज्ञा की प्रतीक्षा करते हुए अपने दासत्व का परिचय देते हो। क्षण-क्षण में नाना प्रकार की भाव तरंगों में डूबते उतराते रहते हो—तुम कौन हो? तुम्हें विशेष रूप से जानने के लिए मैं उत्कण्ठित हूँ।"

विचार करते-करते मैंने एक गाँव में प्रवेश किया। वहाँ एक गर्भवती स्त्री प्रसव वेदना से छटपटा रही थी। उसका दु:ख देखकर खड़ा हो गया। नवजात

शिशु भूमिष्ठ होते ही रोने लगा। माता ने उसके मुख में स्तन दिया और वह शान्त हो गया।

यह देख मैंने अनुमान किया कि जीव को जब तक अपनी अभीष्ट वस्तु नहीं मिलती, उसका चित्त शान्त नहीं होता और समझा कि माता-पिता से जीव का जन्म होता है और उनके अनुरूप उसके आकार, स्वभाव आदि होते हैं। क्रमशः इच्छा, अहंकार, सम्बन्ध, स्वभाव, ज्ञान, भक्ति, श्रद्धा, व्याकुलता, चेष्टा, चिन्ता, आग्रह, लालसा, उद्वेग ईर्ष्यादि नाना प्रकार के भावों से उसका हृदय परिपूर्ण हो जाता है। पर जिस-जिस वस्तु से उसका भीतर बाहर भर जाता है, वह सीमाबद्ध है, अतएव व्याप्य है और उसकी क्रिया से विदित होता है कि कोई व्यापक वस्तु इसी प्रकार व्याप्त होकर वर्तमान है। इसका गूढ़ रहस्य जानने के लिए बहुत चेष्टा करने लगा। जिस किसी को आगे पाता उसी से पूछने लगता।

एक दिन एक वैज्ञानिक से भेंट हुई। मेरे प्रश्न करने पर उन्होंने कहा, "जगत् की सभी वस्तुएँ स्वभाव से उत्पन्न होती हैं, अर्थात् जगत् स्वभाव का ही विस्तार है। सभी वस्तुओं की उत्पत्ति और उनका लय आप ही आप होता रहता है। उनका कोई नियन्ता नहीं है।"

यह सुनकर मन में सन्तोष न हुआ। तब एक मायावादी संन्यासी मिले। उन्होंने कहा, "बाबा, तुम, मैं और दृश्यादृश्य सम्पूर्ण पदार्थ ब्रह्म से भिन्न और कुछ नहीं है। 'सर्व खल्विदं ब्रह्म, नेह नानास्ति किंचन'। ब्रह्म निराकार निर्गुण, चिदानन्दमय, ज्ञानस्वरूप और सर्वव्यापक है। वह अपनी इच्छा से घटपटादि उपाधि ग्रहण कर जीवन प्राप्त करता है। ज्ञान उदय होने पर उसकी उपाधि नष्ट हो जाती है, उस व्यापक ब्रह्म में लीन हो जाता है। इसी को निर्वाण मुक्ति कहते हैं। जीव मात्र व्याप्त रूप में व्यापक ब्रह्म है। आध्यात्मिक आदि त्रिताप से तप्त हो जीव पूर्वावस्था प्राप्ति के लिए वेदान्त की आलोचना और 'तत्वमसि', 'अहं ब्रह्मास्मि', 'प्रज्ञानं ब्रह्म' आदि महावाक्यों का चिन्तन करते-करते 'एकमेवाद्वितीयम्' का ज्ञान प्राप्त कर ब्रह्मस्वरूप हो जाता है।"

मायावादी साधु का उपदेश बुरा न था, पर उससे भी मेरा हृदय शीतल न हुआ, बल्कि जो मैंने समझ रखा था, उसमें भी उथल-पुथल होने लगी। बड़ी चिन्ता में पड़ गया। उसी समय एक अध्यात्मवादी योगी के दर्शन हुए। योगीराज बोले—"तुम जिस वस्तु को चाहते हो, वह बाहर ढूँढ़ने से नहीं मिलती। पातंजल आदि योगशास्त्र के अनुसार योग साधन द्वारा इन्द्रिय-वृत्ति निरोध होने पर कुण्डलिनी जाग्रत होती है। तब षटचक्र भेदकर जीवात्मा को नाभिपद्म से सहस्त्रार में ले जाकर परमात्मा के साथ उसका योग कराया जाता है। इसी का नाम समाधि है। योगशास्त्र के अनुसार परमात्मा कृष्ण और जीवात्मा राधा है। इसी प्रकार प्रत्येक जीव के शरीर में राधा-कृष्ण प्रकृति और पुरुष रूप में कार्य करते हैं।"

इन महात्मा की बात मुझे अच्छी लगी और मैंने इनकी बतायी हुई प्रणाली से साधन करने की चेष्टा भी की। परन्तु मन की अभिलाषा पूरी न हुई। हृदय की व्याकुलता और बढ़ गयी, पागल की तरह इधर-उधर दौड़ता हुआ सरयू किनारे पहुँचा और उत्कण्ठित चित्त से श्रीश्रीगुरुदेव के चरणों का ध्यान करने लगा और प्राण खोलकर उन्हें पुकारने लगा, "हे करुणामय प्रभो, तुम अन्तर्यामी हो। यदि वास्तव में मेरा भजनतत्व जानने का समय आ गया हो तो एक बार इस दास को दर्शन देकर कृतार्थ करो।" आँखें खोलीं तो देखा कि तप्तकंचन देह, आजानुलम्बित भुज, अति दीर्घाकार, अश्रु-जल-सिक्त वदन-कमल, परम आनन्दमय मूर्ति, अभीष्टदेव सामने खड़े हैं। उन्हें देखते ही आनन्द से अधीर हो उनके चरणों में गिर पड़ा।

उन्होंने कृपापरवश हो चंचल चित्त इस जीवाधम को उठाकर आलिंगन कर धन्य और पवित्र किया। उनके साथ भजनकुटी पर जाकर अपनी मानसिक चंचलता की बात निवेदन की और यथार्थ तत्व जानने के लिए अपनी अभिलाषा प्रकट की। मरुभूमि सदृश शुष्क हृदय को देख उनके श्रीमुखचन्द्र से उपदेशामृत की वर्षा होने लगी, "बेटा, तुम्हारे जन्म के साथ जो स्वरूप, स्वभाव, ज्ञान इत्यादि तुम्हें प्राप्त हुए थे, वे सीमाबद्ध हाते हुए भी बड़े आनन्ददायक हो सकते थे, पर जैसे-जैसे तुम बड़े हुए विक्षिप्त शक्ति का संचार होने लगा, जिसने थोड़े ही समय में तुम्हारे ऊपर ऐसा

अधिकार जमा लिया कि तुम एक मुहूर्त के लिए भी शान्त न रह सके। तुम्हारे स्वभावसिद्ध ज्ञान को अविद्या और माया रूप मेघ ने ढक लिया। इस अज्ञान को दूर करने के दो उपाय हैं। एक भगवत् कृपा और दूसरा सद्गुरु के उपदेशानुसार साधन। भगवत्-कृपा निरपेक्ष है। उससे आप ही आप सब वस्तुओं का ज्ञान उदय होता है। लक्ष्य वस्तु को स्थायी रूप से हृदय में धारण करने की शक्ति प्राप्त होती है।"

"साधन द्वारा अज्ञान और अविद्या को पराजित करने के लिए विद्या की आवश्यकता है। विद्या चार प्रकार की है—अर्थकारी, यशस्करी, वादकरी और सुतत्व-बोधिनी। प्रथम प्रकार की विद्या यह कि पाठशाला ले जाकर अध्यापक से कहा जाय, 'पण्डित जी, बालक नौकरी कर अपना पेट भर सके, आप कृपा कर इस योग्य इसे बना दीजिये।' ऐसा लक्ष्य रखकर जो विद्या प्राप्त की जाती है, उसे अर्थकारी विद्या कहते हैं। परीक्षा-काल में दूसरे प्रखर बुद्धि वाले छात्रों से हल पूछ लेना, अथवा परीक्षक को गुप्त रूप से कुछ धनादि दे देना, अथवा पुस्तक के उन-उन अंशों को अच्छी तरह से तैयार कर लेना जहाँ से प्रश्न पूछे जाने की सम्भावना हो—ऐसे साधनों का प्रयोग कर परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाना यशस्करी विद्या के अन्तर्गत है। इसमें विद्या प्राप्त करने का लक्ष्य होता है यश की चाहना—दूसरे लोग कहें कि अमुक बच्चे ने बी.ए. पास किया है, अमुक ने एम.ए.। न्याय, सांख्य, पातञ्जल आदि तर्कशास्त्र अथवा धर्मशास्त्र पढ़ने वाला सबसे पहले अध्यापक के निर्देशन में कूट तर्क का अभ्यास करता है, फिर विरोधी पक्ष को परास्त करता है। कुछ व्यक्ति दूसरों के आगे अपने को ज्ञानी और उच्च साधक प्रदर्शित करने के लिए अपने मिथ्या तर्क से अन्य लोगों को परास्त करते हैं—इससे जो यश प्राप्त होता है, उसकी कामना लेकर जो विद्या अर्जित की जाती है उसे वादकरी विद्या कहते हैं।

"इस त्रिविध विद्या से अविद्या का नाश होना तो दूर रहा वह और बढ़ जाती है। इसी कारण उक्त विद्याएँ अविद्या ही मानी जाती हैं।"

"चौथी विद्या सुतत्वबोधिनी है। यथार्थ तत्व-ज्ञान पाने के लिए इसका अभ्यास किया जाता है। इसी की शक्ति से अज्ञान का निराकरण होता है और विशुद्ध तत्वज्ञान की प्राप्ति होती है।"

"तत्वज्ञान द्वारा इष्ट वस्तु का निश्चय होता है, जिसके फलस्वरूप निर्दिष्ट वस्तु को पाने की लालसा उत्पन्न होती है। लालसा बढ़ने पर ऐसे लोगों को अपना आदर्श बनाना चाहिये, जो उस वस्तु को पा चुके हों। इस प्रकार उनका अनुगमन कर योग्यता प्राप्त करना ही निर्दिष्ट वस्तु को पाने का एकमात्र साधन है। तुम जैसे अस्थिर-चित्त होते हो उससे मेरा विश्वास है कि अविद्या ने तुम्हें सम्यक् रूप से अपने अधिकार में ले लिया है। मैं और भी स्पष्ट करता हूँ, मन स्थिर कर सुनो।"

'विद्याध्ययन में पहले वर्ण-ज्ञान, वर्णों के पारस्परिक मेल से शब्द-ज्ञान और फिर शब्द से उसकी प्रतिपाद्य वस्तु का ज्ञान होता है। वस्तुओं में बहुत-सी दृश्य और बहुत-सी अनुमेय होती हैं। सभी वस्तुएँ दो भागों में विभक्त हैं—स्थावर और जंगमात्मक दृश्यादृश्य सभी वस्तुएँ एकमात्र भगवान् में स्थित हैं। भगवान् ने कहा—"मयि सर्वमिदं प्रोक्तं सूत्रे मणिगणा इव" अर्थात् धागे में पिरोयी गयी मणियों की भाँति सभी वस्तुएँ मेरे में स्थित हैं। अतएव ब्रह्मवादियों का ब्रह्म पूर्ण-पूर्णतम भगवान् की अंग कान्ति है और योगियों का परमात्मा उनका अंश है।

"पूर्ण-पूर्णतम भगवान् श्रीहरि का एक नाम 'कृष्ण' है। श्रीकृष्ण का स्वरूप साधारण देहधारियों-जैसा नहीं है। वे नित्य चिन्मय हैं; पूर्णैश्वर्य, पूर्ण-माधुर्य तथा रसविग्रह हैं। वे स्वेच्छामय स्वतन्त्र पुरुष हैं। स्वेच्छा से अपने को नाना रूपों में प्रकाशित कर वे जगजीवों को अपना परिचय स्वयं देते रहते हैं। उन्हीं की अंगकान्ति को मायावादी 'निराकार ब्रह्म' कहकर तत्वमस्यादि के सहारे मोक्ष प्राप्त करते हैं। उन्हीं के अंशांश को नश्वर शरीर में खोजते हुए योगी लोग सदा नानास्थान भ्रमण करते रहते हैं। वही प्रकृति और पुरुष दो भागों में विभक्त हो नाना प्रकार के खेल को वैज्ञानिक प्रकृति की क्रिया समझ निरीश्वरवादी हो गये हैं। कोई -कोई देवी-देवताओं को ही ईश्वर-ईश्वरी मान उनकी

उपासना कर स्वर्गादि सुखभोग की कामना में दिन बिताते हैं। वे यह नहीं जानते, जानना ही नहीं चाहते कि इच्छामय श्रीभगवान् ने स्वेच्छा से त्रिगुणात्मक सृष्टि रचकर ब्रह्मा, विष्णु और शिव को एक-एक गुण का अधिष्ठाता नियुक्त कर दिया है। भगवान् की इच्छा से ब्रह्मा रजोगुण द्वारा सृष्टि करते हैं, विष्णु सत्वगुण द्वारा पालन करते हैं और देवादिदेव महादेव तमोगुण द्वारा संहार करते हैं। इच्छा और अहंकार के अभाव में कोई भी कार्य पूरा होना असम्भव जानकर श्रीभगवान् ने अपनी इच्छा और अपने अभिमान से त्रिगुणाधीश्वर ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव को ईश्वर पद पर रखा है, और इच्छा तथा अहंकार- शक्ति देकर अपनी माया-शक्ति द्वारा सभी को मोहित कर रखा है। इस प्रकार वे गुणत्रय द्वारा राजकार्य- संचालन करते हैं। पूर्ण-पूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण आत्मारामरूप में प्रत्यक्ष देह में वास करते हुए अपनी शक्ति द्वारा अपना तत्व, अपना व्यापकत्व और अपना लीलारहस्य स्वयं अनुभव कराते हैं। मायामुग्ध जीव इस रहस्य को न समझ सकने के कारण अपने-अपने अहंकार, इच्छा स्वरूप एवं भाव में उन्मत्त हो सुख-दु:ख, धर्माधर्म, स्वर्ग-नरक, सृष्टा-सृष्टि आदि नाना प्रकार की वासनाओं का भोग करते आते हैं। चौरासी लाख योनियों के पीछे मनुष्य देह पाकर जीव को अनुभव करने की शक्ति मिलती है। ज्ञान मिश्रित भक्ति, वैधी भक्ति, विशुद्ध भक्ति, राग भक्ति यह सब भक्ति के विविध रूप हैं। भक्तजन भी भिन्न-भिन्न भाव अपने हृदय में पुष्ट करते हैं। उन भावों को हृदय में रख और अपने प्रकृत स्वरूप को पहचान कर साधन करने से सिद्धावस्था प्राप्त होती है, और जीव की पुनरावृत्ति का अन्त हो जाता है। यह सब सुविधाएँ मनुष्य जन्म के अतिरिक्त और किसी जन्म में नहीं मिलतीं।"

"इन सब बातों से निश्चय होता है कि जीव की कोई स्वतन्त्र शक्ति नहीं है। श्रीकृष्ण ही एकमात्र प्रभु हैं। वे सच्चिदानन्दमय विग्रह, सर्वकारण-कारण और सर्वनियन्ता हैं। वे व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही कलियुग में श्रीकृष्णचैतन्य रूप में अवतीर्ण हुए। उन्होंने अयाचितभाव से आपामर जनसाधारण के बीच चिर-अनर्पित प्रेमधन वितरण करने के लिए अभिन्नहृदय श्रीबलराम को श्रीनित्यानन्द रूप में अवतीर्ण कराया और उन पर प्रेम-वितरण का भार सौंपा। श्रीधाम गोलोक में श्रीकृष्ण की मधुर लीला नित्य स्थित है। उसी गोलोक-लीला का आस्वादन यहाँ श्रीवृन्दावन धाम में परकीयभाव से और भी अधिक माधुर्य के साथ किया जाता है, और वही श्रीवृन्दावन-विहारी अपने पार्षदों के साथ श्रीधाम-नवद्वीप में अवतीर्ण हुए हैं। उक्त तीनों धामों में यह नित्यलीला एक साथ पूर्णरूप से चलती रहती है। यह सब योगमाया के प्रभाव से होता है।"

"जीव कृष्ण का नित्य दास है। वह यह बात भूलकर अविद्या और माया के वशीभूत हो अहंकार और इच्छा शक्ति के प्रभाव से स्वयं को कर्ता मान बैठता है। वह कभी अपने सत्कर्मफल से स्वर्ग-मोक्षादि भोगता है, कभी असत्कर्म-फल के कारण नाना दु:ख और नरक-यन्त्रणा भोगता है, और इस प्रकार विभिन्न योनियों में आता-जाता रहता है। सुख-दु:ख, जन्म-मृत्यु, त्रितापादि से मुक्त होने के लिए तथा नित्य पूर्णानन्दरस भोग करने के लिए वेद-शास्त्रों में बहुत-सी साधन-प्रणालियों का वर्णन किया गया है। प्रधान साधन तीन हैं—ज्ञान, योग और भक्ति, जिनके विषय क्रमश: ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् हैं। इन तीनों में किसी प्रकार का असामञ्जस्य नहीं है। स्वेच्छा से इच्छामय भगवान् जगजीवों के दृष्टिगत होकर मानव-जन्म की श्रेष्ठता समझाने के लिए रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श के आकर बन श्रीवृन्दावन में लीला-प्रकाश करते हैं, और परिपूर्ण भाव से भगवत् प्राप्ति का साधन निश्चित करने के लिए जगजीवों से सम्बन्ध स्थापित करते हैं। नागपत्नियों के साथ भगवान्-रूप में, रक्तक पत्रक के साथ प्रभु-रूप में, श्रीदामादि के साथ सखा रूप में, नन्द-यशोदा के साथ पुत्र-रूप में और श्रीराधा आदि गोपियों के साथ कान्त रूप में लीला-रस आस्वादन करते हैं। यही मधुर श्रीवृन्दावन-लीला वैवस्वत मन्वन्तर के द्वापर युग में जनसाधारण के आगे प्रकट हुई थी।"

"यह लीला जगत् में प्रकट और अप्रकट दो रूप से होती रहती है। जैसे चन्द्र-सूर्य कभी उदय होते हैं, कभी अप्रकट। इन दोनों प्रकार की लीलाओं में प्रवेश पाने के लिए साधन की आवश्यकता है। जीव अनादिकाल से बहिर्मुख है। उसे भजन-साधन में असमर्थ देख दयामय श्रीहरि ने कृपापूर्वक अपनी ह्लादिनी शक्ति महाभावस्वरूप श्रीमती राधिका की अंग-कान्ति द्वारा अपना स्वरूप छिपाया, और भक्तवेश धारण कर अधन्य कलियुग को धन्य करने के लिए और कलिराज के दुर्जय शासन से जीवगण को मुक्त करने के लिए सांगोपांग पार्षदगण के साथ पृथ्वी पर अवतार लिया। इतना ही नहीं, मृदंग-करताल के साथ श्रीहरिसंकीर्तन प्रचार कर कलि-कवलित जीवों को अभय दान करते हुए श्रीवृन्दावन-लीला का आस्वादन कराने के लिए उपयुक्त भाव और प्रेम का वितरण किया। आज भी यदि संकीर्तन यज्ञ का अनुष्ठान कर उन्हें आह्वान किया जाय, अर्थात् व्याकुल हृदय से होकर उन्हें पुकारा जाय, तो वे घर-घर में और देह-देह में भावावेश रूप में प्रकट हो अज्ञ जीवों में गूढ़ातिगूढ़ लीला-रस का संचार कर देते हैं।"

"वेद और श्रीमद्भागवतादि भक्तिशास्त्रों का अध्ययन कर तत्व ग्रहण करना जीव के लिए दुष्कर है। इसलिए देश-काल-पात्र के अनुसार पूर्व-पूर्व महाजनगण द्वारा प्रदर्शित और आचरित मार्ग का अनुसरण करना ही सहज साधन है, और यही एकमात्र उपाय है। कलियुग में हम सभी कलिहत-मायामुग्ध अधर्मपरायण जीव हैं। हमारा वास भारतवर्ष में है। हमारे लिए सर्वशास्त्र-सम्मत युगोचित उपासना ही हितकर है। भुवन-पावन सर्वमंगलमय श्रीहरिनाम ही युगधर्म है, जिसका प्रचार श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु ने किया है। महापतित जगाइ-माधाइ का उद्धार इसका ज्वलन्त दृष्टान्त है। इस घोर कलियुग में ऐसे परमकरुण पतित-पावन श्रीगौरांग महाप्रभु का चरण-स्मरण छोड़ हम-जैसे महापापी जीवों के उद्धार का दूसरा उपाय नहीं है।"

"युगोचित साधन श्रीहरिनाम का आश्रय ले, और श्रीनित्यानन्दप्रभु का दासानुदास बन, और श्रीश्री गौरांगदेव का पादपद्माश्रय लेकर श्रीवृन्दावन-रासलीला में प्रवेश करना ही जीव का एकमात्र कर्तव्य है। यही उसे चिरशान्ति दे सकता है। वेदमन्थन से श्रीमद्भागवत, और श्रीभागवत-मन्थन से श्रीश्री चैतन्यचरितामृत की उत्पत्ति हुई है। श्रीश्री चैतन्यचरितामृत में (मध्य खण्ड, आठवाँ अध्याय; श्रीरामानन्दराय और प्रभु की वार्ता) इष्ट वस्तु का वर्णन इस प्रकार है—नन्दनन्दन श्रीकृष्ण को परिपूर्ण रूप से श्रीमती राधिका ने प्राप्त किया है, ललितादि सखियों ने श्रीश्रीराधाकृष्ण को प्राप्त किया है, श्रीरूप, रति तथा अनंगादि मंजरियों ने श्रीश्रीराधाकृष्ण और ललितादि सखियों को प्राप्त किया है। यह मंजरियाँ पूर्णरूप से श्रीश्रीराधाकृष्ण को प्राप्त कर निरन्तर उनकी सेवा में नियुक्त रहती हैं, अतएव मंजरीगण को प्राप्त करना ही सर्वश्रेष्ठ है। निराकार ब्रह्म की उपासना कर जो मुक्ति मिलती है, उसकी अपेक्षा सच्चिदानन्द-ब्रह्म-सनातन की रसमय श्रीवृन्दावन-लीला में प्रिय-नर्म-मंजरी-रूप से नियुक्त रहना अधिक मंगलमय है। यह मंजरीभाव मुक्ति की चरमसीमा, ज्ञान की अवधि तथा भक्ति की पराकाष्ठा है।"

"जीव अपने स्वरूप, स्वभाव, भाव, इच्छा तथा अहंकार द्वारा आबद्ध रहने के कारण मिथ्या पुरुषाभिमान कर बैठता है। यह सभी वस्तुएँ जीव की अपनी नहीं हैं, किसी की दी हुई हैं। दी हुई वस्तु के कारण हम अपने व्यवहार-दोष से इतना कष्ट पाते हैं। उससे छुटकारा पाने के लिए हमें चाहिये कि उसकी वस्तु उसी को अर्पित कर दें। श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु के श्रीचरणों का आश्रय ले हृदय में आनन्दप्रद भाव स्थाई करते हुए मन ही मन यह संकल्प करें कि अब से श्रीनिताइचाँद जो करायेंगे, वही करेंगे। कर्मों के पीछे इच्छा-अहंकार आदि बने रहते हैं, तो त्रिताप भोगने पड़ते हैं। जब त्रिताप दूर करने की वास्तविक शक्ति जीव में नहीं है तो उस सत्य को स्वीकार कर तदनुसार आचरण करना ही उचित है। श्रीश्रीनित्यानन्दप्रभु के श्रीचरणों में अहंकार, इच्छा आदि समर्पण कर, उनके साथ प्रभु और दास का सम्बन्ध स्थापित कर, उनकी आज्ञानुसार आचरण करने से श्रीगौरांगचरण की प्राप्ति होती है।

उनके श्रीचरणों को प्राप्त कर हमें उनसे प्रार्थना करनी चाहिये—हे प्रभो, लीलामय श्रीगौरांगचाँद! मुझे श्रीश्रीराधाकृष्ण की श्रीवृन्दावन-लीला में सखियों के आनुगत्य में नर्ममंजरी के उपयुक्त शरीर प्रदान कीजिये।"

"इस प्रणाली से साधना करते-करते जीव के भाव, स्वभाव, इच्छा और अहंकार सम्यक् रूप से परिवर्तित हो जाते हैं, और सदा व्रजलीलारस भोगने की इच्छा रहती है। मैं श्रीमती राधिका की दासी हूँ—इस अहंकार को हृदय में भरकर श्रीश्रीराधाकृष्ण-लीला में अपना मंजरी-भाव स्थायी करने से उसका स्वभाव मंजरी स्वभाव में बदल जाता है। पुरुषदेह रहते हुए भी उसे भाव, स्वभाव, इच्छा और अहंकार के प्रभाव से अष्टकालीन श्रीश्रीराधाकृष्ण-नित्यलीला में प्रवेश मिल जाता है, और स्थूल देह के भीतर स्थित स्वरूप, स्वभाव, भाव अहंकार, इच्छा आदि में किसी भी कार्य को स्वतन्त्ररूप से करने की शक्ति नहीं रह जाती। वासना-कामना आदि सभी वृत्तियाँ श्रीश्री राधाकृष्ण-पादपद्मों में लग जाती हैं। उन्हें सदैव श्रीश्रीराधा-कृष्ण-लीला-कथा सुनने की लालसा रहती है। लीला-गुण चिन्तन कर वह सदा मुग्ध रहता है। लीला-रसकीर्तन में उसका मन प्रेमोन्मत्त रहता है। वह चक्षु द्वारा राधाकृष्ण का रूप दर्शन, कर्ण द्वारा लीला-गुण-श्रवण, नासिका द्वारा गात्रगन्ध आघ्राण, रसना द्वारा लीला-रस-कीर्तन और उनका अधरामृत ग्रहण, हस्त द्वारा हरि-मन्दिर मार्जनादि, पद द्वारा राधाकृष्ण-लीला-स्थल गमनागमन और सर्वांग द्वारा उनके दास-दासियों को दण्डवत-प्रणाम करता है। इस प्रकार भजन प्रणाली तीन प्रकार की हुई—कायिक, वाचिक, और मानसिक।"

श्रीगुरुदेव की बातें पूरी होते ही मैंने अति व्याकुल हो उनके श्रीचरण पकड़ कर कहा, "प्रभो, अब मैं समझा कि श्रीगौरांगदेव को छोड़कर हमारी किसी प्रकार गति नहीं है। श्रीनिताइ-चरणाश्रय और कृपा के बिना श्रीगौरांग-प्राप्ति नहीं हो सकती। किस प्रकार श्रीनिताइचाँद की कृपा प्राप्त की जाय, कृपाकर आदेश कीजिये।" यह सुनकर परमकरुण श्रीगुरुदेव प्रसन्न मन से कहने लगे—

"ब्राह्मण आचण्डाल कुक्कुरान्त करि।
दण्डवत करिबेक बहुमान्य करि।।
एइ से वैष्णवधर्म सबारे प्रणति।
सेइ धर्मध्वजी जार इथे नाहि मति।।
प्राणिमात्रे कोन मते उद्वेग ना दिबे।
काय-मनो-वाक्ये सबाय सन्तोष राखिबे।।
सर्वोत्तम आपना के हीन करि माने।
कृष्ण कृपा करिबेन दृढ़ करि जाने।।
निन्दा-शून्य नम्र-भावे सबारे स्तवन।
अभ्यागत आहूत व्यक्तिर चरण वन्दन।।
सर्व वैष्णवेरे भजे अभेद करिया।
अनायासे कृष्ण पाय से जाय तरिया।।
एकाले जे वैष्णवेरे छोट बड़ बले।
निश्चिन्त थाकूक से जानिबे काले काले।।
सबाकारे उद्धारिबेन गौरांगसुन्दर।
व्यतिरिक्त वैष्णवनिन्दुक दुराचार।।
गर्हित आचरण जदि करेन महाअधिकारी।
निन्दार आछुक दाय हासिलेओ मरि।।
कृष्णेर प्रकाश हय त्रिविध प्रकार।
शास्त्र, श्रीमूर्ति आर भक्त-कलेवर।।
इहाते विचारबुद्धि कभू ना राखिबे।
अविचारे निज भक्ति जाजन करिबे।।
श्रीमूर्तिते निवेदित जे किछु हइबे।
महाप्रसाद ज्ञाने ताहा ग्रहण करिबे।।
कृष्णे निवेदन वस्तु प्रपञ्च देखिले।
अक्षय नरके गति हय काले काले।।
स्पर्शदोषे कृष्ण-प्रसाद नष्ट नाहि हय।
नष्टदोष घटाइले निजे नष्ट हय।।
जगत कृष्णेर प्रकाश स्थावर जंगम।
एइ तत्व जानि ताहे मजाइबे मन।।
कृष्णस्मृति बिना अन्य भाव निरूपन।
विफल हइबे काम नरके गमन।।
गुरुरूपे कृष्ण-कृपा तत्वेर अवधि।
तत्व निरूपण हले छाड़ वेदविधि।।
भक्त-पदरज आर भक्त-पदजल।
भक्तभुक्त अवशेष साधनेर बल।।
दीनातिदीन हआ करे नाम संकीर्तन।

अचिराते मिले तारे कृष्ण प्रेमधन।।
ए सब ना जाने जे जन करे कृष्णभक्ति।
कृष्ण कृपा दूरे थाक नाहि तार गति।।
ए सब करिले याजन अनर्थ नाश हय।
पापमुक्त हये नित्य वृन्दावने जाय।।
नित्यानन्द प्रभु करेन हृदये बसति।
निरन्तर झुरे भावि जुगल-पिरीति।।"

—ब्राह्मण से लेकर चण्डाल और कुत्ते तक को दण्डवत करना, बहुत बड़ा मान्य जानकर सबको दण्डवत प्रणति करना ही वैष्णव धर्म है। जिसकी इसमें मति नहीं, वह धर्म का झण्डा भर लिये फिरता है। प्राणी मात्र को किसी प्रकार का उद्वेग न देना, काय-मनो-वाक्य से सबको सन्तुष्ट रखना। जो सर्वोत्तम होते हुए भी अपने को हीन मानता है, उस पर कृष्ण कृपा करेंगे यह निश्चय जानना। निन्दाशून्य हो नम्रभाव से सबका स्तवन करने वाला, अभ्यागत और आये हुए व्यक्ति की चरणवन्दना करने वाला, सब वैष्णवों को समान रूप से भजने वाला कृष्ण को अनायास प्राप्त कर तर जाता है। अभी जो वैष्णवों को छोटा-बड़ा कहता है वह निश्चय ही समय आने पर जान लेगा कि कोई छोटा-बड़ा नहीं है, क्योंकि गौरांगसुन्दर एक दिन सबका उद्धार करेंगे, केवल उन्हें छोड़कर जो वैष्णव-निन्दा करते हैं। यदि कोई महान अधिकारी गर्हित आचरण करें, तो उनकी निन्दा करना तो दूर रहा, जो उन पर हँसता भी है वह मारा जाता है। कृष्ण तीन प्रकार से प्रकाशित होते हैं—शास्त्र, श्रीमूर्ति और भक्त-रूप से। इनमें विचारबुद्धि कभी न रखना। बिना विचारे अपनी भक्ति का याजन करना। श्रीमूर्ति को जो कुछ भी निवेदित हो, उसे महाप्रसाद जानकर ग्रहण करना। कृष्ण-निवेदित वस्तुओं में प्रपञ्चबुद्धि रखने से समयान्तर में अक्षय नरक में जाना पड़ता है। स्पर्शदोष से कृष्ण-प्रसाद नष्ट नहीं होता। उसमें नष्टदोष घटाने से अपना ही नाश होता है। स्थावर जंगम सहित सारा जगत् कृष्ण का प्रकाश है, इस तत्व को जानकर मन को तदनुरूप बना लेना। कृष्ण स्मृति के अतिरिक्त स्थावर जंगम में अन्य किसी भाव का निरूपण करने से कार्य निष्फल होगा और नरक में जाना पड़ेगा। गुरु-रूप में कृष्ण कृपा करते हैं—यह अन्तिम तत्व है, इस तत्व को जानकर वेद-विधि की भी परवाह न करना। भक्तों की चरणधूलि, उनका चरणोदक और उनकी जूठन ही साधन का बल है। दीन से भी दीन होकर जो नामसंकीर्तन करता है, उसे शीघ्र कृष्ण प्रेमधन की प्राप्ति होती है। जो यह नहीं जानता और कृष्णभक्ति करता है, उसे कृष्णकृपा होना तो दूर रहा, उसकी गति भी नहीं होती। इसका याजन करने से अनर्थ का नाश होता है और जीव पापमुक्त हो नित्यधाम वृन्दावन को प्राप्त करता है। नित्यानन्द प्रभु उसके हृदय में वास करते हैं, और वह राधा-कृष्ण-प्रेम की भावना कर निरन्तर प्रेमाश्रु बहाता रहता है।

"भाई, और अधिक क्या कहूँ? जो कुछ सुना है, उसी को हृदय में रख निरपेक्ष भाव से साधना करते रहो। लोकापेक्षा करने से यथार्थ तत्व की प्राप्ति नहीं होती।"

मैं और धैर्य न रख सका। उनके पैरों में गिरकर रोते-रोते बोला, "प्रभो इस दास को और वंचित न कीजिये। श्रीचरणों में स्थान देकर सेवा करने दीजिये।" उन्होंने कृपापूर्वक मेरे मस्तक पर अपने श्रीचरण रखकर कहा, "भाई सेवा करने का अर्थ है सुख देना, इसलिए तुम वही करो जिससे मुझे सुख मिले। आज देशभर में अनेक उपधर्मों के हो जाने से महाप्रभु का विशुद्ध मत लुप्त प्रायः हो गया है। तुम यदि एक भी जीव को सुमार्ग पर ला सको, तो निश्चय समझो, मुझे सेवा की अपेक्षा करोड़गुना अधिक सुख मिलेगा। श्रीनिताइचाँद ने मुझ अधम को अपने वंश में जन्म दिया, पर मेरे द्वारा उनका आदेश-पालन न हो सका। तुम यदि मेरे होकर स्वयं प्रेमधर्म का आचरण कर जगत् को शिक्षा दे सको, और बिना किसी भेद विचार के श्रीहरिनाम-प्रेम वितरण कर जीवों का उद्धार कर सको, तो मैं ही नहीं, परमदयाल निताइचाँद भी तुमसे चिरकाल के लिए बँध जायेंगे। मैं दिनरात उनके श्रीचरणों में निवेदन करता हूँ, तुम्हें अपनी अलौकिक शक्ति प्रदान करें।"

इतना कह श्रीगुरुदेव ने मुझे प्रेमालिंगन किया और अधरामृत प्रदान किया। तीन दिन पास रख, भाँति-भाँति के सदुपदेशों द्वारा कृतार्थ कर मुझे बंगदेश

जाने का आदेश किया। श्रीगुरु आज्ञा शिरोधार्य कर उनके श्रीचरणों में दण्डवत् प्रणाम कर मैंने पूछा, "प्रभु फिर कब इस दास को आपके श्रीचरण-दर्शन होंगे?" उन्होंने कुछ हँसकर कहा, "तुम मुझे जब स्मरण करोगे, तभी देख सकोगे।" श्रीगुरु-मुख की आश्वासवाणी सुनकर मुझे बड़ी शान्ति मिली। श्रीचरणों से विदा लेकर मैंने जौनपुर में गोमती नदी में स्नान किया। वहाँ से नैमिषारण्य गया। वहाँ एक महापुरुष के साथ मिलन हुआ। उन्होंने कृपाकर मुझे एक दिन अपने पास रखा और एक अपूर्व वस्तु खाने के लिए देकर कहा, "इसे खाकर तुम्हें तीन दिन तक क्षुधा नहीं लगेगी, और अनाहार से शरीर भी दुर्बल न होगा।" सचमुच उस अपूर्व वस्तु को खाकर तीन दिन तक मुझे ऐसा लगता रहा कि अभी पेट भरकर भोजन किया हो।

नैमिषारण्य से मैं काशी आया। वहाँ मणिकर्णिका घाट पर स्नान कर श्रीविश्वेश्वर एवं अन्नपूर्णादेवी के श्रीचरण दर्शन किये। एक दिन वहाँ रहकर सीधे श्रीधाम वृन्दावन गया। वहाँ आठ दिन रहकर श्रीविग्रहादि के दर्शन किये,और श्रीधाम नवद्वीप की यात्रा आरम्भ की।*

शिक्षागुरु-प्राप्ति

आज नवद्वीप में फिर नूतन आनन्द है। जिस किसी के साथ बड़े बाबाजी महाशय का मिलना होता है, वही प्रसन्न हो उनका कुशलक्षेम पूछता है। वे भी सहास्यवदन यथायोग्य सादर-सम्भाषण कर सबको तृप्त करते हैं।

इसी समय एक वैष्णव आकर उनकी ओर बार-बार देखने लगे, पहचान न पाकर अन्त में परिचय पूछने के लिए बाध्य हुए। बड़े बाबाजी महाशय के उत्तर में पूर्व-परिचय का कोई आभास न पा कुछ विस्मित हुए। तब बड़े बाबाजी महाशय ने पूछा, "महाशय आपका नाम क्या है?"

बाबाजी—मेरा नाम माधवदास है।

बड़े बाबाजी—आपने संन्यास कब लिया?

माधव—पाँच-छह मास पूर्व।

बड़े बाबाजी—आपका गुरु-स्थान कहाँ है?

माधव—यहीं बड़ालबाड़ी के सामने। आइये न, मेरे गुरुस्थान के दर्शन कीजिये।

दोनों ने बड़ाल-बाड़ी के आगे एक कच्चे घर में प्रवेश कर देखा कि 85-86 वर्ष के गौरवर्ण खर्वाकृति वैष्णव बैठे माला जप रहे हैं। माधवदास बोले, "ये ही मेरे शिक्षा-गुरु हैं, इनका नाम श्रीपाद गौरहरिदास महन्त है।"

दोनों ने वृद्ध बाबाजी महाशय को प्रणाम किया। क्रमशः दो-चार दिन बीत गये। एक दिन प्रसंगवश दोनों का पूर्व परिचय प्रकाश में आया। मालूम हुआ दोनों एक दूसरे के सम्बन्धी हैं। माधवदास जी का पूरा नाम था मथुरानाथ सेन। उनके आग्रह से बड़े बाबाजी महाशय को वहाँ ठहरना पड़ा।

वृद्ध गौरहरिदास जी के वासस्थान के आगे खाली जगह में नाना प्रकार की साग-सब्जियाँ उगी थीं। समय-समय पर वे उसमें काम करते थे। एक दिन उन्हें वहाँ काम करते देख बड़े बाबाजी ने कुछ कटाक्ष करते हुए कहा, "बाबाजी महाशय, यदि यही सब काम करने पड़े, तो घर छोड़ने से क्या लाभ?"

वृद्ध बाबाजी—भाइ, वह है माया का दासत्व, और यह है परमपुरुष भगवान् का कार्य।

बड़े बाबाजी—वह सब मन को समझाने की बात है। जंजीर लोहे की हो या सोने की, बन्धन यातना दोनों में समान है।

वृद्ध बाबाजी महाशय को कुछ मनोक्षोभ हुआ, पर वे और कुछ न कह पूर्ववत् कार्य करने लगे। बड़े बाबाजी ने भी वहाँ से प्रस्थान किया। कुछ दूर पहुँचे ही थे कि उनके हृदय में प्रकृत तत्व का उदय हुआ। वे मन ही मन सोचने लगे—"हाय, मैंने अभिमानवश वृद्ध बाबाजी महाशय के प्रति अपराध किया है। निन्दाशून्य हो नम्रतापूर्वक सभी को सम्मान देना-इस उपदेश का पालन कहाँ हुआ? मेरा निताइ-दास कहकर अपना परिचय देना ही भूल है। मैं तो अब भी घोर अभिमानी हूँ। इसी से पता लगता है, मेरी इन्द्रियाँ अभी भी प्रबल

* बड़े बाबाजी महाशय की हस्तलिखित बही में यहाँ तक ही मिलता है।

बनी हैं। फिर क्या लोक-भुलावे के लिए ही मैंने घर छोड़ा है? छोड़ा ही कहाँ? सभी तो पूर्ववत् है। अब क्या उपाय हो सकता है?" अकस्मात् स्मरण आया—

भूमौ स्खलितपादानां भूमिरेवावलम्बनम्।
त्वयि जातापराधानां त्वमेव शरणं प्रभो।।

वे आगे न जा सके। वृद्ध बाबाजी महाशय के पास लौट आये, और उनके चरण पकड़कर रोते हुए बोले, "बाबा, मैं आपकी अबोध सन्तान हूँ। मैंने यथार्थ तत्व न समझकर अभिमानवश आपसे न जाने क्या-क्या कह दिया। मेरा अपराध क्षमा करना होगा।"

उन्होंने विनय-वाक्यों से वृद्ध बाबाजी महाशय को शान्त अवश्य कर दिया, पर उनका मन सन्तुष्ट न हुआ। अन्त में उन्होंने माधवदास से परामर्श कर वृद्ध बाबाजी से ही भेक (संन्यास) लेना निश्चित किया। वृद्ध बाबाजी ने इस कार्य के लिए चैत्र संक्रान्ति स्थिर की।

आज मास की चौदहवीं तिथि है, सोलह दिन और बाकी हैं। बड़े बाबाजी अपना सभी सामान इस अखाड़े में ले आये। सोलहवीं तारीख को प्रातःकाल नवद्वीपदास आ पहुँचे। देखते ही दोनों एक दूसरे से लिपटकर रोते-रोते व्याकुल हो गये। स्थिर होने पर बहुत दिनों का संचित दु:ख-सुख एक दूसरे से कहने लगे।

क्रमशः रासमोहन भी वहाँ आ पहुँचे। महामाया देवी सभी की ठीक-ठीक परीक्षा लेती हैं। रासमोहन अपनी माँ के कुछ स्वर्ण-अलंकार और दो सौ रुपये लाये थे। वे सब बाबाजी महाशय को देकर बोले, "आपकी जो इच्छा हो कीजिये।" वे विषम समस्या में पड़ गये। एक बार सोचा कि वैष्णव-सेवा कर दी जाय। फिर मन में आया-नहीं, माया की वस्तु से वैष्णव-सेवा करने की आवश्यकता नहीं। बोल उठे, "भाई, तुम्हारा गुरु-स्थान कहाँ है?" रासमोहन ने उत्तर दिया, "श्रीपाट भरतपुर।" बड़े बाबाजी महाशय दूसरे दिन प्रातः रासमोहन को साथ ले भरतपुर पहुँचे। वहाँ सब अलंकार रासमोहन की गुरुमाता को पहना दिये, और दो सौ रुपयों से ब्राह्मण वैष्णव दीन-दु:खी लोगों को महाप्रसाद सेवन करा नवद्वीप लौट आये। निश्चित दिन से तीन दिन पूर्व पूछने पर वृद्ध बाबाजी महाशय ने भेक के लिए आवश्यक सामग्री गिना दी। प्रभु की अपार करुणा। किसी से कुछ कहना न पड़ा। स्वयं ही लोग एक-एक सामग्री लाने लगे। सभी के मन में एक अभिनव आनन्द की तरंग उठ रही थी। बिना किसी परिश्रम के वैष्णव-सेवा की सभी वस्तुएँ संग्रहीत हो गयीं।

भेक के दिन प्रातः वैष्णव-पुजारी लोग रसोई का प्रबन्ध करने लगे। डेढ़ प्रहर के समय बड़े बाबाजी महाशय ने वृद्ध बाबाजी महाशय से कहा, "बाबा, मैंने कुछ दिन पूर्व स्वप्न में एक मन्त्र प्राप्त किया था। यदि उचित समझें तो वही मन्त्र मुझे दे दें।" उन्होंने स्वप्नलब्ध मन्त्र वृद्ध बाबाजी को सुनाया। उन्होंने आनन्दपूर्वक वही मन्त्र उनके कान में कह दिया और डोर-कौपीन देकर भिक्षा करने का आदेश किया। नवअनुरागी नवीन संन्यासी जब नाम करते-करते भिक्षा के लिए बाहर निकले, तो किसमें शक्ति थी कि अपनी आँखों के जल को रोक सकता। दीर्घाकार मण्डित मस्तक महापुरुष अविराम गति से अश्रुजल बहाते चले जा रहे थे। जिस किसी को आगे देखते, उसी से हाथ जोड़कर कहते, "आप लोग मुझ पर कृपा कीजिये, जिससे मैं अभिमान शून्य हो निताइदास का दास बन सकूँ। मैंने जाने-अनजाने जो कुछ अपराध किया है, उसे क्षमा कर मेरा मायाबन्धन दूर कीजिये। मैं वैष्णव-अपराधी हूँ। आप लोगों की कृपा के अतिरिक्त मेरी और गति नहीं है।" इस प्रकार भावावेश में जाने क्या-क्या कहते। वह दृश्य देख और उनकी बातें सुन घोर पाषण्डी भी अपने को स्थिर नहीं रखा पा रहे थे। वहाँ जितने व्यक्ति थे, सभी की आँखें सजल हो रही थीं।

इस प्रकार कुछ समय भिक्षा की। लौटकर भिक्षालब्ध वस्तु श्रीगुरुदेव को अर्पित कर उनके श्रीचरणों में साष्टांग प्रणाम किया। गुरुदेव ने उन्हें उठाकर आलिंगन-दान किया। गुरुदेव रोने लगे। उनका स्पर्श पा वे भी रोते-रोते व्याकुल हो गये। यह देख वहाँ उपस्थित लोग अश्रु-वर्षण कर उठे। चारों ओर क्रन्दन-रव होने लगा। क्षणभर पीछे गुरुदेव उच्च हास्य कर बैठे। लीलामय की अपूर्व लीला! हास्य तरंग भी चरम सीमा तक पहुँच गयी। क्रमशः सब स्थिर हुए।

यथासमय महोत्सव-कार्य विराट् रूप में सम्पन्न हो गया। गुरुदेव ने उनका (बड़े बाबा का) नाम रखा—श्रीराधारमणचरणदास। पर वे स्वयं 'यादवदास' कहकर पुकारते थे। उनका अपूर्व वात्सल्य था। यादव कहते ही अचेत हो जाते थे। वे उनसे सन्तानवत् स्नेह करते थे।

चैतन्यदास से मिलन

कई दिन बीत गये। एक दिन बड़े बाबाजी ने महाप्रभु मन्दिर में देखा कि कोई बीस वर्ष का अति सुन्दर गौरवर्ण युवक महाप्रभु को लक्ष्यकर फूट-फूट कर रोते हुए कह रहा है, "हे गौर! मुझे बाल्यकाल से ही क्या तुमने अंगीकार नहीं किया? क्या तुमने मृत्यु-मुख से मुझे नहीं बचाया? क्या तुम संसार-नरककुण्ड से मुझे नहीं खींच लाये? मैं तो जीवनभर के लिए तुम्हारे चरणों में बिक गया हूँ। अब कुछ व्यवस्था क्यों नहीं करते? हे प्रभो, कृपाकर मुझे ऐसा सत्संग प्रदान कीजिये जिसके सहारे मैं सदाचार के साथ जीवन यापन करता हुआ आपके श्रीचरण पा सकूँ। पर कहाँ? मुझसे स्वप्न में जिस शुभ संग की बात कही थी, जिन महापुरुष का दर्शन कराया था—वे कहाँ हैं? मैं बहुत खोज चुका, पर वे नहीं मिले। तो क्या मुझे फिर उस माया कूप में फेंकेंगे?"

इतना कह आँखें पोंछते-पोंछते जैसे ही मुख फिराया, उसने देखा कि एक सुदीर्घाकार महापुरुष पीछे की ओर खड़े हैं। देखते ही बालक कुछ स्तम्भित हुआ, और महापुरुष को नीचे से ऊपर तक देखने लगा। क्षणभर बाद उसे अधीर होकर अपने पैरों में गिरा देख महापुरुष ने झट से उठाकर हृदय से लगा लिया। बालक रोते-रोते कहने लगे, "बाबा, मैं कल रात शान्तिपुर के निकट एक वृक्ष के नीचे लेटा व्याकुल हो महाप्रभु से निवेदन कर रहा था कि प्रभो मैं तो बच्चा हूँ, एक बार जब मेरे केश पकड़ कर ले आये हो, तो मेरी कोई व्यवस्था कर दो। सुना है गुरु-प्राप्ति के बिना आप नहीं मिलते। मैं भला-बुरा कुछ नहीं समझता। क्या आप स्वयं मेरी सहायता नहीं करेंगे? यही सब सोचते-विचारते मुझे नींद आ गयी। रात्रि के अन्त में स्वप्न देखा। यही गौरांग प्रभु मेरे पास आकर कह रहे हैं—"तुझे चिन्ता किस बात की है? कल मेरे दर्शन के लिए आयेगा। तेरे गुरु मिल जायेंगे और उसी समय तेरी दीक्षा हो जायगी। तेरे गुरु 'राजेन बाबू' के नाम से नवद्वीप में प्रसिद्ध हैं।" यह कह महाप्रभु ने उनका आकार-प्रकार बताया। आपको देख लगता है कि आप ही वे महापुरुष हैं, अतः अब और विलम्ब न कर मेरा पशु-जीवन से उद्धार कीजिये।"

बाबाजी ने कहा, "तुम्हारा नाम क्या चैतन्यदास है? तुम्हारा घर काछाड़ जिले में है? तुम्हारे ऊपर महाप्रभु की अत्यन्त कृपा है।" यह कह उन्होंने उसके कान में मन्त्र-उच्चारण किया। इन चैतन्यदास द्वारा ही गोपीभाव से श्रीश्रीराधाकृष्ण उपासना का प्रकाश हुआ। उसी दिन से चैतन्यदास बाबाजी महाशय के साथ रहने लगे। क्रमशः राधाविनोददास, किशोरी गोपालदास आदि भी आकर इनके साथ रहने लगे।

कुत्तों का महोत्सव

एक दिन बाबाजी महाशय शिष्यों के साथ कीर्तन करते हुए महाप्रभु-बाड़ी गये। बहुत देर तक वहाँ कीर्तन करने के पश्चात् जब लौटे तो एक कुतिया उनके साथ हो-ली। सब लोग जगह-जगह रुककर कीर्तन करते चले जा रहे थे। जब सब आगे बढ़ जाते तो कुतिया उस स्थान की रज में इधर से उधर लोटती-पोटती। उसे प्रत्येक स्थान पर ऐसा करते देख उसके प्रति सभी के मन में भक्ति जाग्रत हुई। कुतिया ने इन लोगों का साथ न छोड़ा। तभी से सब उसे 'भक्ति माँ' कहकर पुकारने लगे। उसकी प्रकृति देख ऐसा लगता कि वह मूर्तिमती भक्ति देवी हो। ठाकुर को भोग लगाये बिना कोई वस्तु उसे दी जाती तो ग्रहण न करती। कभी किसी ने उसे अन्य कुत्तों के साथ झगड़ते नहीं देखा। अन्य वैष्णवों को जिस प्रकार खाने के लिए दिया जाता है, उसे भी उसी प्रकार पत्तल रखी जाती। कुछ दिनों पीछे उसका शरीर अस्वस्थ हुआ। कायमनोवाक्य से सब उसकी सेवा करने लगे।

वह क्रमशः दुर्बल होती गयी। एक दिन उसका अन्तिम काल आया जान सब लोग मृदंग-करताल से

उसके चारों ओर कीर्तन करने लगे। इस प्रकार हरिनाम सुनते-सुनते उसने शरीर छोड़ दिया। सब कीर्तन करते-करते मातृहीन बालकों की भाँति फूट-फूट कर रोने लगे। भक्तिमाँ का चिन्मय शरीर पतितपावनी जाह्नवी देवी को अर्पित किया गया। चौथे दिन उसका चिड़ा महोत्सव मनाया गया। बाबाजी महाशय के मन में तीव्र वासना जागी कि भक्तिमाँ के महोत्सवोपलक्ष में कुछ वैष्णव सेवा की जाय। सब तैयारी होने लगी। चौदहवें दिन बड़े अखाड़े के वैष्णवों को निमन्त्रण भेजा गया।

दोपहर के समय बाबाजी महाशय के मन में एक अद्भुत विचार आया। शिष्यों से बोले, "देखो, भक्तिमाँ के कुछ स्वजातीय वैष्णवों को आमन्त्रित न करना अच्छा नहीं लगता। तुम में से कोई नवद्वीप के मुहल्ले-मुहल्ले में घूमकर उन्हें निमन्त्रण दे आये।" उनके मुख से यह विस्मयजनक प्रस्ताव सुन सब अवाक् रह गये। पर सुदृढ़ विश्वासी और गुरु-वाक्य में पूरी निष्ठा रखने वाले नवद्वीपदास बोले, "मुझे बताइये, कैसे क्या कहना होगा।" बाबाजी महाशय बोले, "कुत्ता हो या कुतिया, उसे देखते ही अपने गले में वस्त्र लपेट और साष्टांग प्रणाम कर कहना, हमारी भक्तिमाँ शरीर छोड़ गयी हैं, कल उनका महोत्सव है। आप सभी कृपाकर सपरिवार बड़ालघाट के पास हमारे परम गुरुदेव के आश्रम में पधारकर दोपहर को महाप्रसाद ग्रहण करें।"

नवद्वीपदास बाबाजी महाशय के चरण पकड़ रोने लगे। उन्होंने बायें हाथ से पीठ पर थप्पड़ मारकर उठाया। नवद्वीपदास ने मत्तहाथी की भाँति झूमते हुए वहाँ से प्रस्थान किया। दूर से जो भी उन्हें देखता, सोचने लगता कि ये कोई पागल हैं या शराबी। पर पास आने पर जान लेता कि ये कोई महाशक्तिसम्पन्न ज्योतिर्मय महापुरुष हैं। ऐसा प्रतीत होता कि वे इस संसार में नहीं हैं। जैसे ही किसी कुत्ते को देखते उसे दण्डवत् प्रणाम कर अश्रु बहाते हुए कहते—"गुरुदेव ने आप लोगों को निमन्त्रण देने भेजा है। कल हमारी भक्तिमाँ का महोत्सव है, आप कृपापूर्वक सबान्धव हमारे परम गुरुदेव के आश्रम में पधार कर महाप्रसाद ग्रहण करें। अन्य स्वजातीयजन जो मिलें, उन्हें भी यह निमन्त्रण देकर हम लोगों को सदैव के लिए अनुग्रहीत करें।" इस प्रकार मुहल्ले-मुहल्ले घूमकर एक प्रहर रात्रि बीतने पर वे आश्रम लौटे।

पहले से ही बड़े बाबाजी महाशय ने कान्थाधारी अखाड़े में साथियों के ठहरने की व्यवस्था कर रखी थी। वे स्वयं कभी गुरुदेव के आश्रम में और कभी साथियों के पास रहते थे। नवद्वीपदास यथायथ वृत्तान्त बाबाजी महाशय को सुना सबके साथ अखाड़े चले गये। दूसरे दिन प्रात: वैष्णव-पुजारियों ने रसोई आरम्भ की। दोपहर के समय वैष्णवों को बुलाया गया। दो-चार को आता देख एक व्यक्ति ने कहा, "आप लोग वैष्णव हैं, कुत्तों के महोत्सव में जाना आपको शोभा नहीं देता।" धीरे-धीरे और लोगों में भी यह बात फैल गयी। सबने उत्सव में न जाने का निश्चय कर लिया। बुलावे पर बुलावा जाने पर भी वैष्णवों को न आते देख एक पुजारी को लेकर बाबाजी महाशय स्वयं बड़े अखाड़े पहुँचे। बड़े अखाड़े के महन्त ने स्पष्ट कह दिया, "देखो बाबा, कुत्तों का महोत्सव होगा, यह हमें पता नहीं था। इस उत्सव में जाने से हमारा अपमान होगा। आप अन्य लोगों को भोजन करा दीजिये, हमारा जाना नहीं होगा।" अनेक अनुनय-विनय करने पर भी जब बाबाजी महाशय उन लोगों को न मना सके, तो यह समझकर कि लीलामय निताइचाँद अवश्य कोई खेल दिखाना चाहते हैं, सानन्द आश्रम लौट गये।

यह बात चारों ओर फैल गई। जगबन्धु चट्टोपाध्याय नामक एक नवद्वीपवासी भद्रपुरुष बड़ालबाड़ी में रहते थे। उन्होंने यह सब सुनकर कहा, "मैं महन्त पर इस क्षति के लिये दावा करूँगा।" बाबाजी महाशय ने उनसे सविनय कहा, भाई, मंगलमय प्रभु की जो इच्छा है, वही होगा, किसी प्रतिवाद की आवश्यकता नहीं। इधर जो कोई आता उसे प्रसाद दिया जाता। बाबाजी महाशय ने नवद्वीपदास से कहा, "क्यों रे, भक्तिमाँ के स्वजातीय वैष्णव अभी तक नहीं आये?" बाबाजी महाशय के नये साथी सोचने लगे, "बाबाजी महाशय की यह कैसी लीला है। क्या यह कभी सम्भव हो सकता है? पशु दो-एक सांकेतिक बातें समझ लेते हैं पर क्या कुत्ते निमन्त्रण में आ सकते हैं? यूँ तो काम-काज के घर में दो-चार कुत्ते आ ही जाते हैं। वैसे ही यहाँ भी आजायेंगे।"

पर जो उनकी अलौकिक शक्ति से परिचित थे कहने लगे, "बाबाजी महाशय के मन में जब ऐसी बात उठी है, तब निश्चय ही समझना चाहिये कि श्वान-वैष्णव उत्सव में पधारेंगे।"

इसी समय राधेश्याम बाबा (रामलाल मित्र) आ पहुँचे। बाबाजी महाशय के दण्डवत् प्रणाम करते ही वे कहने लगे, "भाई, मैं तो तेरे एक-एक काण्ड से परेशान हो गया। न जाने कहाँ से कुत्तों के महोत्सव की सृष्टि कर डाली। मैं सोचता था, चलो और कुछ न सही, वैष्णव सेवा तो होगी ही, पर वह भी न हुई। एक गोलमाल खड़ा हो गया। कुत्तों के निमन्त्रण की कैसी अनोखी बात सोची। मैं कहता हूँ कि इन सब करिश्मों की क्या जरूरत है? जिस काम को कभी किसी ने नहीं किया, जिसके करने से दूसरों की दृष्टि में हास्यास्पद बनने के सिवा और कुछ नहीं मिलता, उसे करने से क्या लाभ? ठीक है कि तेरी दृष्टि में निन्दा-स्तुति समान हैं, पर भाई तेरे बारे में कुछ भी विपरीत सुनता हूँ तो मेरे हृदय में व्यथा होती है।" बाबाजी महाशय ने हाथ जोड़ कर कहा, "बाबा मुझे पता नहीं। आपके यह पागल बालक कुछ करना चाहते हैं, कुछ कर बैठते हैं। उनकी बातों पर ध्यान न दें।" राधेश्याम बाबा कुछ क्रोध कर बोले, "ऐसे अबूझ बालकों को पास रखने की ही क्या आवश्यकता है। अब कुत्तों के न आने पर लोग तेरे मुँह में धूल झोंकेंगे कि नहीं?" बाबाजी महाशय ने कुछ क्षुब्ध होकर कहा, "क्यों बाबा! आप लोग ही तो कहते हैं कि प्रभु घट-घट में निवास करते हैं? क्या वे कुत्तों के हृदय में नहीं रहते? प्रह्लाद पत्थर के खम्भे से नरसिंह मूर्ति प्रकट कर सकते हैं, तो क्या सचेतन जंगम शरीर से यह सामान्य कार्य नहीं हो सकता? हमारा अविश्वास ही सर्वनाश का मूल है। मैं निश्चय के साथ कहता हूँ, यदि निताइचाँद सर्वत्र विराजमान हैं, तो थोड़ी देर में इन कुत्तों द्वारा रंगिया निताइ जगद्वासियों को एक अपूर्व लीला दिखायेंगे।"

दिन ढलने को था। एक-एक कर कुत्ते आने लगे। उन्हें देखते ही बाबाजी महाशय ने साष्टांग प्रणाम किया और बड़ालबाड़ी के आगे उनके बैठने की व्यवस्था की। कुत्तों की संख्या क्रमशः बढ़ने लगी। दर्शकों की संख्या भी बढ़ती गयी। सब चकित थे। कुत्तों के दल के दल आने लगे। सब एक-एक बैठते जा रहे हैं। किसी के मुख से शब्द नहीं हो रहा है। वैसे दो कुत्ते मिलते ही लड़ने लगते हैं, पर आज एक नई बात दीख रही है। धीरे-धीरे पचास-साठ कुत्ते आ गये। रास्ते के दोनों ओर दर्शक खड़े होकर यह लीला देखने लगे। सजल नयन बाबाजी महाशय ने कण्ठ से वस्त्र बाँधकर नम्रता पूर्वक उपस्थित कुत्तों से कहा, "आज्ञा हो तो पत्तलें डाली जाँय। जो लोग पीछे आयेंगे, उनकी व्यवस्था पीछे हो जायगी।"

सभी कुत्ते मुख उठाकर उनकी ओर देखने लगे। न जाने अव्यक्त भाषा में उन्होंने क्या कहा, उसे वही समझ सके। उन्होंने पत्तलें डलवाईं और एक बड़े पात्र में दाल-साग, चावल, दही, खीर आदि एक साथ मिलाकर परोसने की आज्ञा दी। गगनभेदी 'हरि-हरि' की ध्वनि और प्राणों को मत्त कर देनेवाली उलुध्वनि चारों ओर सुनायी पड़ने लगी। सब देखकर अवाक्! पत्तलों पर महाप्रसाद परोसा गया। पर किसी भी कुत्ते ने मुख से स्पर्श नहीं किया। जब सब पत्तलों पर परिवेशन हो गया, बाबाजी महाशय ने साश्रुनयन और गद्‌गद्‌कण्ठ से हाथ जोड़कर कहा, "अब कृपा कर आरम्भ करें।" इतना कहना था कि काले रंग का एक कुत्ता एक-एक कर सभी पत्तों का प्रसाद सूँघ गया, तब सबने प्रसाद पाना आरम्भ कर दिया। हरिध्वनि और उलुध्वनि से मानो आकाश कम्पित होने लगा।

चार व्यक्ति परिवेशन-कार्य पर नियुक्त थे। वे जिस पत्तल को रिक्त देखते, उस पर महाप्रसाद परोस देते। जो भी नया कुत्ता आता, उसे नई पत्तल दी जाती। दर्शकों की भीड़ लग गयी। जो कोलाहल हो रहा था, वह दर्शकों और अन्य लोगों के कारण था। कुत्तों का एक शब्द भी नहीं हो रहा था। बाबाजी महाशय के नवागत साथी यह काण्ड देख अपनी संकुचित विवेक बुद्धि को धिक्कारते हुए और नेत्रों से जल बहाते हुए आत्मविभोर हो नाचने लगे। मानव की क्षुद्रबद्धि के परे इस अति आश्चर्यजनक घटना को देख उपस्थित दर्शकवृन्द की जो अवस्था हुई, उसे कौन कहे?

हम किसकी जय बोलें? भक्तिमाँ की अथवा उनके प्रिय पुत्र बाबाजी महाशय की, उपस्थित श्वानवेशधारी महापुरुषों की अथवा गुरुवाक्यैकनिष्ठ दृढ़विश्वासी नवद्वीपदास की, लीलामय निताइचाँद की अथवा उपस्थित दर्शक भक्तजनों की। हमारी समझ से भक्तवृन्द की ही जय बोलना उचित है, क्योंकि ऐश्वर्य का विकास तो चाहे जहाँ हो सकता है, पर उसके दर्शन सभी के भाग्य में नहीं होते। कोई-कोई उच्च स्वर से कहने लगे—'धन्य बाबाजी महाशय! धन्य उनकी शक्ति'! ऐसी अद्‌भुत लीला देखना तो दूर रहा, कभी सुनी भी नहीं। ऐसी शक्ति क्या मनुष्य में सम्भव है? कोई-कोई कुत्तों की पंगत के आगे साष्टांग प्रणाम कर उनसे भक्ति-दान की प्रार्थना करने लगे। परिवेशक लोग एक-एक कुत्ते से महाप्रसाद को पूछ रहे थे। जो भोजन कर चुके थे, वह दूसरी ओर घूमकर बैठ गये थे। उनकी पत्तल पर प्रसाद रखा जाता था तो और भी मुड़कर अनिच्छा प्रकट कर देते थे। क्रमशः प्रत्येक को कुल्हड़ में जल परसा गया। सबने स्वेच्छापूर्वक जलपान किया।

पंगत पूरी हो जाने पर बाबाजी महाशय ने एक व्यक्ति को अधरामृत इकट्ठा करने की आज्ञा दी। इधर नवद्वीपदास एक पात्र में जल भर सबका चरणामृत लेने लगे। श्वान-वेशधारी वैष्णवजन चित्रपुत्तलिकावत् बैठे रहे। बाबाजी महाशय ने पूर्ववत् दण्डवत् प्रणाम कर हाथ जोड़कर कहा, "यदि आप लोगों की उदरपूर्ति हो गयी हो, तो इस सेवक की त्रुटियाँ क्षमा कर अपने-अपने स्थान को पधारें।" फिर चारों ओर हरिध्वनि उलुध्वनि होने लगी। उपस्थित दर्शक मण्डली में से प्रत्येक ने बहुत आग्रह के साथ उस अधरामृत और चरणामृत को ग्रहण किया।

सन्ध्यादेवी भी मानो उस मनोहारिणी आश्चर्यपूर्ण लीला को देखने की इच्छा से सदल-बल आकर अपना अधिकार-विस्तार करने लगीं। बाबाजी महाशय अब स्थिर न रह सके। आनन्द से अधीर हो सभी प्रसादी पत्तलों पर इधर से उधर लोटने लगे। फिर न जाने कहाँ सब पत्तलें अदृश्य हो गयीं, किसी को पता न चला। पंगत स्थान भी किसी को धोना न पड़ा। भक्तजनों ने इधर से उधर लोट-पोट कर अपने अंगों से ही स्थान परिष्कृत कर दिया। बहुत से महात्मा, जो प्रसाद पाना चाहते थे पर लोकाचार से डरते थे, सन्ध्याकालीन अँधेरे का सहारा ले महाप्रसाद सेवन करने लगे। कुछ लोग अपने उत्तरीय और वस्त्राञ्चल द्वारा महाप्रसाद ढककर घर ले जाने लगे।

राधेश्याम बाबा ने रोते-रोते बाबाजी महाशय को आलिंगन कर कहा, "भाई, निताईचाँद पर तुझे इतना दृढ़ विश्वास है, मैं नहीं जानता था। तेरी शक्ति धन्य है। चारों ओर तेरी इस शक्ति की प्रशंसा सुन मुझे कितना सुख मिला है। आशीर्वाद देता हूँ कि तेरा सुयश दिन-प्रतिदिन बढ़ता रहे।" कहते-कहते उनका शरीर पुलकित हो गया, और नेत्रों से जल बहने लगा। बाबाजी महाशय ने साथियों-सहित उनको प्रणाम किया। उन्होंने भी आशीर्वाद देकर और किंचित् वैष्णव अधरामृत लेकर प्रस्थान किया। बचा हुआ अधरामृत एकत्रित कर भक्तिमाँ को अर्पित किया गया। भक्तिमाँ का अवशिष्ट प्रसाद सबने बड़े प्रेम से ग्रहण किया।

आनन्द का समय शीघ्र बीत जाता है। देखते-देखते डेढ़ प्रहर रात बीत गयी। बाबाजी महाशय साथियों सहित गंगा-स्नान कर लौटे। उन्होंने जैसे ही एक कमरे में प्रवेश किया, चैतन्यदास ने एक दूसरे कमरे में-से पुकारकर कहा, "गुरुदेव! ठाकुर-भोग का एक परोसा बच रहा है, इसे किसी ने नहीं देखा। इतनी रात हो गयी है, अब कोई भूखा भी नहीं है। इस महाप्रसाद का क्या होगा?" बाबाजी महाशय ने कहा, "गंगास्नान करते समय मेरे मन में आया कि कहीं कोई निमन्त्रित महात्मा रह गये हों और वह रात्रि में आ जायँ, तो उनकी सेवा कैसे होगी? जब निताइचाँद ने प्रसाद बचाकर रखा है, तो निश्चय ही कोई महात्मा नहीं आ पाये हैं। महाप्रसाद को इसी प्रकार रहने दो।"

कुछ देर बाद जैसे ही बाबाजी महाशय कमरे से बाहर जाने को हुए, उन्होंने देखा कि एक लाल रंग का कुत्ता कमरे के आगे सो रहा है। उन्हें देखते ही वह चौंककर उठा और उनके मुख की ओर एकटक देखने लगा। उन्होंने चैतन्यदास से पुकार कर कहा, "देखो ये एक महात्मा आये न! उस परोसे की सारी सामग्री एक

साथ मिलाकर एक पत्तल पर इन्हें दो।" चैतन्यदास ने आज्ञानुसार कार्य किया। नवद्वीपदास उस कुत्ते को देखते ही विस्मय के साथ उठे, "आश्चर्य! सबसे पहले यही मुझे मिले थे। यह न जाने इतनी देर से क्यों आये हैं।" बाबाजी महाशय ने पूछा, "तुमने क्या कहकर इन्हें निमन्त्रण किया था?" नवद्वीपदास ने उत्तर दिया, "मैंने कहा था कल भक्तिमाँ का महोत्सव होगा, आप सबान्धव बड़ालबाड़ी के आगे हमारे परम गुरुदेव के आश्रम में पधारकर महाप्रसाद ग्रहण करें, और स्वजातीय जो भी मिलें उन्हें यह निमन्त्रण देकर हमें अनुगृहीत करें।" बाबाजी महाशय बोले, "तब तो ठीक ही हुआ। जब निमन्त्रण का भार इन्हें दे रखा था, तो यह साध्यानुसार सभी को खोजते हुए आये हैं। यह कार्य करते-करते विलम्ब हो गया है। हमें भ्रम होते हुए भी अन्तर्यामी निताइचाँद ने पहले से व्यवस्था कर रखी है। धन्य उनकी करुणा।"

यह श्वान-वेशधारी महापुरुष जब परितृप्त हो चले गये, इन लोगों ने उनका भी अधरामृत लेकर विश्राम किया।

दशहरे पर कालीबाबू से मिलन

आज गंगातट पर बड़ी भीड़ है। पूर्वबंग-निवासी यात्रियों की चहल-पहल तथा उलुध्वनि और बाउल सम्प्रदायी वैष्णवों के गान से दिशाएँ गूँज उठी हैं। बाबाजी महाशय भी अपने दल के साथ कीर्तन लेकर निकले हैं। वे एक और ही प्रकार का नया पद गा रहे हैं—

जय जय श्रीचैतन्य।
जय जय शब्द हल नदे पुरे,
जय गौरांग नाम बले घरे-घरे।
केह गंगातीरे केह गंगानीरे,
सघने बलिछे श्रीचैतन्य।।
अधन्य कलिरे धन्य करिबारे,
निताइ-चैतन्य नदीया नगरे।
प्रेमेर हिल्लोले भासाले सकले,
(बसि नीलाचले भासाले सकले)।
(आज) प्रेमे परिपूर्ण सबार हृदय।।
जय गौरांग बले जाबो व्रजपुरे,
नदेर चाँद आमाय निबेन केशे धरे।
अधम चरणेरे रेखो नाको दूरे,
प्राण सँपिलाम ए रांगा पाय।।

—चैतन्यदेव की जय हो, जय हो! नवद्वीप भर में जय-जय का रव गूँज गया। कोई गंगा-तीर पर, कोई गंगाजल में खड़े हो 'श्रीचैतन्य' नाम जोर-जोर से उच्चारण करने लगे। श्रीश्रीनिताइ-चैतन्य दोनों प्रभुओं ने नदीया में जन्म लेकर (और फिर नीलाचल में बैठकर) इस अधन्य कलियुग को धन्य करने के लिए सभी को प्रेम-तरंग में डुबो दिया। सभी का हृदय प्रेम से परिपूर्ण है। मैं गौरांगदेव की जय बोलता हुआ व्रज को जाऊँगा, नवद्वीपचन्द्र गौरांग मेरे केश पकड़ कर ले जायेंगे। गौर, मैंने आपके श्रीचरणों में प्राण सौंप दिये हैं, कृपा कर इस अधम को अपने से दूर न कीजिये।

बहुत देर तक कीर्तनानन्द-भोग करने के बाद कीर्तन समाप्त किया और सभी ने प्रेमपूर्वक नाचते-नाचते गंगा में अवगाहन किया। स्नान कर जैसे ही किनारे पर आये, एक गौरवर्ण महापुरुष इन लोगों के आगे आकर उपस्थित हुए। आगन्तुक महापुरुष के मस्तक पर बड़े-बड़े केश थे, शरीर पर गेरुआ वस्त्र, आँखें झल-झल कर रही थीं। उनका नाम प्रेमानन्द भारती था। देखते ही उन्होंने और बाबाजी महाशय ने परस्पर प्रेमालिंगन किया, दोनों कीर्तनानन्द में नृत्य करते-करते साथियों सहित आश्रम को लौट आये।

रात्रि के अन्तिम प्रहर में बाबाजी महाशय ने नवद्वीपदास और चैतन्यदास को हरिनाम करते-करते नगर-भ्रमण कर लौट आने की आज्ञा दी। वे दोनों 'भज गौरांग कह गौरांग लह गौरांगेर नाम रे' पद गाते-गाते जैसे ही चारिचड़ा (चौरीचौरा) मुहल्ले में पहुँचे, एक गौरवर्ण दीर्घाकार ब्राह्मण ने अपने घर से निकल कर पूछा, "तुम कहाँ रहते हो? तुम्हारे साथ और कौन है?" नवद्वीपदास ने कहा, "हमारे साथ और दो-एक गुरुभाई हैं, हम सब श्रीगुरुदेव के साथ अधिकांश समय कान्धाधारी अखाड़े में रहते हैं।" इतना कह पूर्ववत् नाम करते हुए चल दिये। जितनी देर ये लोग दिखाई देते रहे और हरिनाम की ध्वनि सुनायी पड़ती

रही, गौरवर्ण बाबू मन्त्रमुग्धवत् उस ओर देखते रहे। जब उनका दिखायी देना बन्द हो गया, बाबू घर के भीतर चले गये।

ये व्रजलाल बन्द्योपाध्याय के मध्यम पुत्र कालीदास बन्द्योपाध्याय थे, जो कृष्णनगर में मुख्त्यारी करते थे। कोई छह दण्ड के समय उन्होंने अपने किसी परिचित सज्जन से कहा, "देखो अनुकूल! नवद्वीप में एक नये महात्मा आये हैं, चलो, उन्हें खोजें।" दोनों ने कान्धाधारी अखाड़े होकर गंगा के किनारे-किनारे बहुत देर तक खोज की, पर किसी साधु का पता न पाकर लौट आये।

दूसरी बार दोपहर के बाद जब कालीदास अकेले साधु की खोज में निकले, तो उक्त अखाड़े में पहुँचते ही देखा कि एक महापुरुष बैठे हैं। कालीबाबू को देखते ही महापुरुष उठे और उन्हें आलिंगन कर बैठने को आसन दिया।

कालीबाबू कहने लगे, "गतरात्रि मैंने स्वप्न देखा कि श्रीवास-अंगन में महासंकीर्तन हो रहा है। और उसके बीच एक महापुरुष नृत्य कर रहे हैं। आहा, कैसी अपूर्व नृत्यभंगी थी। उन महापुरुष के अंग-प्रत्यंग से आग की चिनगारियों की भाँति तेज प्रस्फुटित हो रहा था। उपस्थित दर्शकवृन्द आत्म-विस्मृत हो आनन्द में डूब रहे थे। सभी महापुरुष की ओर एकटक देख रहे थे। मैं बहुत बारीकी से देख रहा हूँ कि उन महापुरुष में और आप में कोई अन्तर नहीं है। मैं दृढ़ विश्वास के साथ कहता हूँ कि आप ही वे महापुरुष थे।"

बाबाजी महाशय ने झट कहा, "जय निताइ, जय निताइ! भाई, मैं महापुरुष नहीं हूँ, कापुरुष हो सकता हूँ। पर इसमें सन्देह नहीं कि निताइचाँद की अपार करुणा आप पर है, तभी तो उन्होंने श्रीवास-अंगन में श्रीगौरांगदेव का भुवनमोहन नृत्य दिखाया। भाई, पर्वत का भार चींटी के ऊपर क्यों रखते हो।" इस प्रकार की कथा-वार्ता में बहुत समय बीत गया।

रात को बाबाजी महाशय ने कीर्तन आरम्भ किया। सभी उन्मत्त थे। नवागत कालीबाबू भी प्रेम विभोर हो चित्रपुत्तलिकावत् मनोमुग्धकर कीर्तन-पदावली श्रवण कर रहे थे, और कीर्तन के साथ-साथ अद्‌भुत नृत्य-दर्शन कर रहे थे। "मैं कहाँ हूँ? स्वर्ग में या मृत्युलोक में, वृन्दावन में या वैकुण्ठ में—कुछ भी तो निश्चय नहीं कर पाता। यह आनन्द लौकिक नहीं हो सकता—यह ध्रुव सत्य है। यह निश्चय ही अप्राकृत चिन्मय आनन्द है।"

कालीबाबू यह कहते-कहते बार-बार प्रेमावेश में बाह्यज्ञानशून्य हो गिर पड़ते थे। उनकी तत्कालीन अवस्था लेखनी द्वारा व्यक्त करना असम्भव है। जिन्होंने उसका अनुभव किया है, वही समझ सकते हैं कि उस दिन वे किस अनिर्वचनीय आनन्द में मग्न थे। उसी दिन से वे बाबाजी महाशय के छोटे भाई बन गये। उन्हें सख्य रस प्रिय था। इस रस में मानो उनका जन्मसिद्ध अधिकार था। इसलिए उनके व्यवहार में सख्यरस की प्रधानता रहती थी। उनके व्यवहार को देख कभी-कभी लोगों को भ्रम हो जाता था कि वे नास्तिक हैं। पर जब वे थोड़े समय भी उनका सत्संग कर लेते थे तो समझ लेते थे कि वे कितने ऊँचे अधिकारी हैं।

इस प्रकार पूरी रात बीत गयी, किसी को समय का ज्ञान न रहा। प्रभात हुआ देख सभी अवाक् रह गये। क्रमशः धर्मदास राय, कालीनाथ चट्टोपाध्याय, गोपीकृष्ण चन्द्र, श्रीनाथ गोस्वामी आदि अनेक स्थानीय भद्र लोग बाबाजी महाशय की ओर आकृष्ट होने लगे। पर बाबाजी महाशय नवद्वीपवासी भद्रपुरुषों के लिए अब भी वही राजेन बाबू बने रहे।

भारती-सम्वाद

एक दिन पूर्वोक्त प्रेमानन्द भारती बाबाजी महाशय के पास आकर बोले, "देखो भाई, तुम लोगों का वास्तविक धर्म क्या है—मैं नहीं जान सका। मेरे कुछ प्रश्न हैं, उनका उत्तर देना होगा।" बाबाजी महाशय ने कहा, "हम लोग 'हरेकृष्ण-निताइगौर' कह भीख मांगकर खाते हैं, धर्मकर्म की बात क्या जानें? फिर भी आप कहिये, आपके मुख से कुछ सुनकर कृतार्थ होंगे।" भारती महाशय ने कहा, "पहला प्रश्न है, 'वैष्णव' शब्द से किस वस्तु का बोध होता है, और इसका यथार्थ अर्थ क्या है? शास्त्रीय और युक्तिपूर्ण सिद्धान्तों द्वारा समझाओ।"

बाबाजी महाशय—जो लोग विष्णु की उपासना करते हैं, वे ही 'वैष्णव' शब्द के अन्तर्गत हैं। इसलिए राम, नृसिंह, वामन, अनन्त आदि जो विष्णु के अवतार हैं, उनके उपासकों को भी 'वैष्णव' कहा जाता है। श्रीमन्महाप्रभु ने बसु-रामानन्दशिक्षा में वैष्णव, वैष्णवतर और वैष्णवतम तीन प्रकार के वैष्णव बताये हैं—

'अतएव जाँर मुखे एक कृष्ण नाम।
शेइतो वैष्णव ताँरे करिबे सम्मान।।
कृष्णनाम निरन्तर जाँहार बदने।
सेइ से वैष्णव भज ताँहार चरणे।।
जाँहार दर्शने मुखे आइसे कृष्णनाम।
ताँहारे जानिओ तुमि वैष्णवप्रधान।।'

—जिसके मुख पर एक बार भी कृष्णनाम आता है, वही वैष्णव है। उसका सम्मान करना चाहिये। जिसके मुख पर कृष्णनाम निरन्तर रहता है, वह वैष्णवतर है, उसके चरणों की वन्दना करनी चाहिये। जिसको देखते ही हमारे मुख से कृष्णनाम निकले, उसे वैष्णव-प्रधान समझना चाहिए।

अर्थात् किसी प्रकार के वैष्णव चिह्नादि से भूषित न होने पर भी ऐसे व्यक्ति को जिसे किसी के प्रति द्वेषभाव नहीं, जो जीवमात्र के हित में रत है और जिसकी सत्य की ओर निष्ठा है, वैष्णव मान लेना चाहिये। वैष्णवता के लिये किसी विशेष प्रकार के वस्त्रों की, विशेष वेषभूषा की अथवा गृहत्यागी की आवश्यकता नहीं। इसके उज्ज्वल दृष्टान्त हमारे आगे हैं—महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में साठ हजार ऋषि, अनन्त कोटि देवता, और स्वयं यज्ञेश्वर श्रीकृष्ण उपस्थित थे, फिर भी वैष्णव-सेवा के अभाव में यज्ञ-पूर्ति न हो सकी। मोची रामदास की जब सेवा हो गयी, तभी यज्ञ पूर्ण हुआ, तभी स्वर्ग में शंख-नाद हुआ। वे जाति के मोची ही तो थे; आश्रम-त्यागी नहीं। झाडू ठाकुर जाति के भूमिमाली थे और पत्नी के साथ संसाराश्रम में रहते थे, फिर भी शास्त्रों में उन्हें वैष्णव-अग्रगण्य कहा है। संसार में ऐसे अनेक वैष्णव हैं, जो प्रतिष्ठा के भय से अपने को गुप्त रखकर स्वधर्म-पालन करते हैं। यही नहीं, बहुत-से महात्माओं को तो पागलों की भाँति व्यवहार करते देखा जाता है। स्पष्ट है कि किसी के बाह्य व्यवहार से उसकी वैष्णवता अथवा अवैष्णवता का पता नहीं चलता।

भारती—ठीक। वैष्णव शब्द की व्याख्या तो समझ गया। अब वैष्णव-धर्म के लक्षण और बता दीजिये।

बाबाजी—वैष्णव धर्म के लक्षण बताना मुझ-जैसे क्षुद्र जीव के लिए बड़ा कठिन है। पर आपकी कृपाशक्ति से हृदय में जो स्फूर्ति हो रही है, उसी का दिग्दर्शन कराता हूँ—

"ब्राह्मण आचण्डाल कुक्कुरान्त करि।
दण्डवत करिबेक बहुमान्य करि।।
एइ से वैष्णव धर्म सबारे प्रणति।
सेइ धर्मध्वजी जार इथे नाहि मति।।
उत्तम हइया वैष्णव हबे निरभिमान।
जीवे सम्मान दिबे जानि कृष्ण-अधिष्ठान।।
सर्वदेव पूजिबे ना हबे तत्पर।
सबार निकट मेगे लबे इष्टभक्ति-वर।।

—ब्राह्मण ही नहीं, चाण्डाल और कुत्ते तक को यथेष्ट सम्मान के साथ प्रणाम करना चाहिये। सबके प्रति विनम्रता का आचरण करना ही वैष्णवधर्म है। जिसका मत इससे भिन्न है वह धर्मध्वजी है। वैष्णव को, दूसरों से श्रेष्ठ होते हुए भी, अभिमान-शून्य होना चाहिये और यह समझकर कि जीवमात्र में श्रीकृष्ण का वास है सभी का सम्मान करना चाहिये। श्रद्धा सभी देवी-देवताओं के प्रति रखनी चाहिये, पर सबसे अपने ही इष्टदेव में रतिमति होने का वर माँगना चाहिये। सबमें तत्परता नहीं होनी चाहिये। अर्थात् स्वयं को स्थावर-जंगम, पशु-पक्षी, तृणलता से भी गिरा हुआ मानना चाहिये।"

भारती—यह बात मेरी समझ में नहीं आयी। जब भगवान् ने मानव जाति को सृष्टि में सर्वश्रेष्ठ बनाया है, तब मानव अपने को पशुपक्षी से हीन कैसे मान सकता है? मान भी ले, तो यह एक प्रतारणा ही होगी।

बाबाजी—मैं कहता हूँ कि मानव जाति सबसे निकृष्ट है। इस विषय में एक कहानी सुनिये—

एक साधु योगबल से सभी वस्तुओं का अभिप्राय समझ लेते थे। एक दिन वे राजघराने में अतिथि थे। राजा की माँ का श्राद्ध था, भाँति-भाँति के खाद्य पदार्थ

बने थे। वे दूसरे दिन मल त्यागने गये। शौच के बाद दुर्गन्ध के कारण नाक पर कपड़ा रख कर जैसे ही चलने को हुए, मल साधु से कहने लगा, "अरे साधु! एक बार सोचकर तो देख, घृणा का पात्र मैं हूँ या तू! परसों मैं दुकान पर घी, मैदा, सूजी, चीनी आदि के रूप में था। राजा ने उपयुक्त मूल्य में मुझे दुकान से लेकर सुयोग्य ब्राह्मण द्वारा गंगाजल और अग्नि के सहयोग से पूड़ी कचौरी और मोहनभोग के रूप में परिणत कर भगवान् को अर्पण किया। मेरा नश्वरत्व दूर हुआ, मुझे चिन्मयत्व प्राप्त हुआ। कुत्ता भी मुझे स्पर्श कर लेता तो मेरी पवित्रता नष्ट न होती। इसके बाद तुम्हें सत्पात्र समझकर राजा ने मुझे तुम्हें अर्पित किया। तुम्हारे संग-दोष से आज मेरी ऐसी अवस्था हुई है कि तुम मेरा परित्याग कर स्नान न कर लेने तक अपने को अपवित्र समझते हो। अब जो मुझे साफ करेगा, उस तक को तुम स्पर्श नहीं करोगे। तुम्हीं बताओ कि तुम घृणित हो, या मैं? महाराज यदि मुझे गाय को अर्पण करते, तो आज मेरा सारांश दूध के रूप में और असार अंश गोबर–गोमूत्र के रूप में परिणत हो देवताओं तक के काम आता। यदि पशु–पक्षियों को भी मैं अर्पित होता तो इतना अपवित्र न होता।" यह सुनकर साधु को ज्ञान हुआ। उसने मल को दण्डवत् कर कहा, "तुम्हारी बातें बिल्कुल सत्य हैं। यदि संसार में यथार्थ घृणा का पात्र कोई है, तो वह मनुष्य है।"

अब आप विचार कर देखिये कि हाथी, घोड़ा, सुअर, मोर, तोता आदि पशु–पक्षियों की मृत देह से कितने लाभ होते हैं। मनुष्य का शरीर जितना बढ़ता है, उतना ही अस्वस्थ होता है। जिस स्थान पर उसकी अन्तिम क्रिया होती है, उसे श्मशान कहते हैं। विज्ञान के अनुसार भी उस स्थान की वायु (गैस) दूषित मानी जाती है। माता–पिता अथवा किसी परिचित व्यक्ति की मृत्यु होने पर उनसे सम्बन्ध रखने वाले लोग एक निश्चित समय तक अपवित्र माने जाते हैं, पर गाय आदि पशुओं की मृत्यु से कोई अपवित्र नहीं होता।

यह तो रही जंगम (चर) शरीरों की बात। सोचिये, तिनके आदि से मनुष्य का कितना भला होता है। वृक्ष जीवितावस्था में पत्र–पुष्प फल–छाया आदि के रूप में संसार का पर्याप्त उपकार करते हैं; सूखने पर चारपाई, कुर्सी, मेज, सिंहासन के रूप में हमें कितना सुख देते हैं। उनका अवशिष्ट भाग ईंधन के रूप में रसोई के लिए कितना काम आता है। जलकर भी वह कोयले के रूप में अलंकारादि के निर्माण में सहायता देते हैं। अब सोचिये, यह बड़े हैं कि हम?

भारती—यह सब तो शारीरिक क्रियाएँ हैं। मनुष्य तो मानसिक वृत्ति की उच्चता के कारण पशु–पक्षियों से श्रेष्ठ माना जाता है।

बाबाजी—वह कैसे? आप ज्योतिष–शास्त्र आदि अनेक विषयों का अध्ययन करके भी जो ज्ञान प्राप्त नहीं कर पाते, उसे पशु–पक्षी अनायास प्राप्त कर लेते हैं। कल्पना कीजिये, आपने किसी स्थान में गुप्तरूप से अनेक प्रकार के आवरणों के बीच कोई मीठा पदार्थ रख दिया है। चींटी बिना किसी शास्त्र आदि का सहारा लिए ठीक उसी स्थान पर जा पहुँचती है। एक चींटी कहीं कोई खाद्य वस्तु देखते ही दौड़कर अपने जातीय भाई–बन्धुओं को बुला लाती है; सभी उस वस्तु का भोग करते हैं, और उसमें से अपने–अपने घर ले जाते हैं। हमारी अति उच्च मानव जाति ऐसी है कि यदि किसी को कहीं कोई वस्तु पड़ी मिल जाय, तो पहले वह चारों ओर देखेगा कि कहीं कोई दूसरा देख तो नहीं रहा है। इसके बाद वह उस वस्तु को बहुत सावधानी से ले जाकर ऐसा छिपा देगा कि भाई और माता–पिता तक न जान सकें। पिता की मृत्यु के बाद भाई–भाई सम्पत्ति के कारण झगड़ा करते हैं। मैं नहीं मानता कि एकता जैसी कोई वस्तु मानव जाति के भीतर है। छिद्र देखते ही प्रतारणा। इसलिए महाप्रभु ने मनुष्यों को तृण से भी हीन बनने के लिए कहा है। सृष्टिकर्ता की अन्तिम रचना यह मानव–जाति है। कुशल चित्रकार भाँति–भाँति के जीव–जन्तु, वृक्ष, लता–पत्र, फल–फूल बड़ी सुन्दरता से अंकित करता है। उसके बाद जो रंग बचे रहते हैं, उन सबको मिलाकर एक और ही प्रकार की बड़ी विचित्र मूर्ति बना लेता है। ठीक इसी प्रकार, सृष्टिकर्ता ने पहले बड़े कौशल और मनोयोग के साथ पशु–पक्षी–कीट पतंग आदि विभिन्न पदार्थों की रचना की। अन्त में जो कुछ बचा,

उससे मानव जाति की सृष्टि की। जूट मिल में 1, 2 और 3 नं. की जूट की बड़ी कदर होती है। 4 नं. की जूट बहुत पतली और गन्दी होती है। कोई उसे पसन्द नहीं करता। पर कुशल कारीगर उसे रँगकर जब एक तम्बू तैयार कर लेता है तो उसकी कदर होने लगती है। यदि 1 नं. जूट की कीमत दस रुपये होती है, तो उस कैनवेस के तम्बू की साठ रुपये होती है। उसके भीतर क्या है—इसकी कोई चिन्ता नहीं करता। मोमजामा आदि के विषय में भी यही बात है। सृष्टिकर्ता ने भी मानव-जाति को मोमजामे—जैसा ऊपर से चिकना और चमकदार बनाया है। आप भले ही अनुसन्धान कर देखें। एक-एक पक्षी को लें, एक-एक लता-पता को देखें—भगवान् की रचना का जितना कौशल, जितना कला-कार्य उनमें परिलक्षित होगा, उसके शतांश का एक अंश भी मानव-शरीर में होगा अथवा नहीं, मुझे सन्देह है। आप कहते हैं मानव जाति धर्म में सर्वश्रेष्ठ है। बताइये, कैसे? शास्त्रों में निर्देश है कि निषिद्ध दिनों में स्त्री के साथ सहवास नहीं करना चाहिये। मनुष्य क्या इस निर्देश के अनुसार जीवन यापन करता है? मानव-जाति के भीतर जितना व्यभिचार देखने में आता है, उतना और किसी में नहीं। सिंह, हाथी, गाय, बैल, हिरन, पक्षी आदि में नर-मादा निर्दिष्टकाल के अतिरिक्त सदैव निर्विकार मन से सहवास करते हैं। मनुष्यों में भी यह बात देखने में आती है क्या? मानव अपनी श्रेष्ठता के अभिमान में ही बड़ा है। इसके अतिरिक्त उसकी श्रेष्ठता और क्या है? तभी परमदयाल महाप्रभु ने उपदेश किया है—'यदि यथार्थतः मानव कहलाना चाहते हो, यदि श्रेष्ठ बनना चाहते हो, तो अपने को सभी पदार्थों से हीन समझो, अभिमान-मंच से नीचे उतरो, दूसरे जीवों की हिंसा कर स्वदेह-पुष्टि की वासना छोड़ो, कृष्ण शीघ्र कृपा करेंगे।' यथार्थ वैष्णव धर्म यह नहीं तो और क्या है?

भारती—अच्छा, माला-तिलक आदि धारण करने की क्या आवश्यकता है? भजन साधन तो मन से होता है, फिर बाह्याडम्बर क्यों?

बाबाजी—हम स्थूल जगत् में रहते हैं। केवल सूक्ष्म वस्तुओं से हमारे दिन-प्रति-दिन के कार्य नहीं चल सकते। हम केवल महत्पुरुषों की दुहाई देकर महत् बनना चाहते हैं। हम कहते हैं कि श्रीसनातन गोस्वामी से प्रभु ने नमक माँगा था, उन्होंने नहीं दिया। हम फिर इतना बाह्याडम्बर क्यों करें? श्रीसनातन गोस्वामी जंगल से शाक-भाजी लाकर बिना नमक डाले पकाते थे और उसी का ठाकुर को भोग लगाते थे। हम भाँति-भाँति की सेवा क्यों करें। क्यों न हम भगवत्-सेवा मन-ही-मन करलें? ठीक है। पर हमारा सिर दुखता है तो थोड़ा ठण्डा तेल लगाये बिना काम नहीं चलता। तीन बार स्नान किये बिना हमें नींद नहीं आती। रोटी हमें हजम नहीं होती। बाध्य होकर इधर-उधर से कुछ जवाकुसुम-तेल, पुराने चावल, मूँग की दाल, दूध आदि का प्रबन्ध करना पड़ता है। स्मरण-मनन करने से हमारा काम नहीं चलता। यही बार-बार याद आता है कि 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'। अपने सम्बन्ध में हम श्रीसनातन गोस्वामी और श्रीरघुनाथदास गोस्वामी को भूल जाते हैं। न श्रीसनातन गोस्वामी की तरह बिना नमक का साग खाते हैं, न उनकी तरह केवल चार दण्ड सोते हैं, न एक रात एक पेड़ के नीचे काटकर दूसरी रात दूसरे पेड़ के नीचे बिताते हैं, और न रघुनाथदास गोस्वामी की तरह नित्य एक चुल्लू मठे का ठाकुर को भोग लगा केवल उतने से अपना निर्वाह करते हैं। हम कृष्ण की रासलीला का तो अनुकरण करना चाहते हैं, पर उनकी गोवर्धन-धारण लीला से मुँह फेर लेना चाहते हैं। ऐसा करने से कहीं काम चल सकता है? इसीलिए मैं कहता हूँ कि जितने दिन हम स्थूल जगत् में रहें उतने दिन स्थूल के साथ मिलकर यथा सम्भव सूक्ष्म भाव को धारण करें। जीव कृष्ण का नित्यदास है। दासपने की पहचान हैं यह माला-तिलक आदि। वेश सदैव अपने देश और प्रभु का परिचायक होता है। जिस प्रकार हम वेश देखकर जान लेते हैं कि अमुक व्यक्ति काबुली है, अमुक ईसाई, और अमुक चीनी, उसी प्रकार वेश से पता चलता है कि अमुक व्यक्ति भगवद्दास है। कोई किसी साहब से मिलने जाता है, तो बिना हैट-कोट आदि पहने नहीं जाता, क्योंकि साहब चाहे कुछ न कहें, उनका अरदली उसे जैसे-तैसे वेश में भीतर न घुसने देगा। इसी प्रकार

भगवद्दास को भगवान् की सभा के अनुकूल वेश आदि रखने पड़ते हैं। उपयुक्त वेषभूषा न रहने पर प्रभु भले ही कुछ न कहें, पर उनके परिकर कृपा नहीं करते। फिर वेशभूषा और मन में कितना सम्बन्ध है, यह इस बात से स्पष्ट है कि जब गंगा-स्नान कर, शुद्ध वस्त्र धारण कर माला-जप करते हुए ठाकुर-दर्शन को जाते हैं, तो हमारे मन की कैसी स्थिति होती है, और जब साहब लोगों की पोशाक पहन, हाथ में बैंत ले, जूते पहन और मुख में सिगरेट दबा बाजार घूमने जाते हैं, तब कैसी स्थिति होती है?

भारती—वैष्णवों में नाम के बारे में इतना झगड़ा क्यों है?

बाबाजी—नाम का झगड़ा? मैं नहीं समझा।

भारती—यही कि कोई जय श्यामसुन्दर कहता है, कोई जय कन्हैयालाल, कोई जय मदनगोपाल, कोई जय राधारमण, कोई जय गोविन्द। प्रत्येक व्यक्ति किसी एक नाम से ही आकृष्ट होता है और रात-दिन उसी का जप करता है, ऐसा क्यों?

बाबाजी—यह नाम का झगड़ा नहीं है। इसे निष्ठा कहते हैं। दूसरे नाम के प्रति द्वेष-भाव रखने से झगड़ा होता है, पर निष्ठा द्वेष-भाव रहित होती है। निन्दा-शून्य हो हम जिस-जिस नाम में भी निष्ठा कर लें उसी की शक्ति से लक्ष्य-वस्तु मिलेगी। मूर्ख लोग 'विष्णाय' कहकर भगवान् को प्रणाम करते हैं, और पण्डित 'विष्णवे' कहकर। पर प्रभु तो भावग्राही हैं, शब्द, अर्थ, अथवा व्याकरणग्राही नहीं। जिसके भीतर भाव की प्रबलता होगी, उसकी वस्तु वे सादर ग्रहण करेंगे। भगवान् के यहाँ जाति-कुल-विद्या का आदर नहीं होता। वे भाव के ठाकुर हैं, भाव से ही तुष्ट होते हैं। साधक रामप्रसाद ने भावना के साथ माँ को गालियाँ देकर और जो मुख पर आया कहकर जो वस्तु प्राप्त की, उसका कणमात्र भी हमलोग चारों वेद, अठारह पुराण पढ़कर और तदनुसार युग-युगान्तर माँ की उपासना कर पा सकेंगे, इसमें भी सन्देह है। इसलिए भावभरी गाली भी मधुर होती है और भावहीन स्तुति भी अरुचिकर होती है।

भारती—अच्छा, भगवान् ही तो गुरु हैं। वही हमें सत्पथ पर चलाते हैं। फिर पृथक् गुरु बनाने की क्या आवश्यकता है? मनुष्य को गुरु बनाने से ही तो संसार में अनेक उपधर्मों का प्रचार हो रहा है।

बाबाजी—आपने जो कहा सो ठीक है। शास्त्र भी भगवान् को गुरु बताते हैं। पर आप ही की बात से दो वस्तुएँ सिद्ध होती हैं—भगवान् और गुरु। जब तक इन दोनों की स्थापना नहीं होती उनमें तत्वत: अभिन्नत्व स्थापित नहीं होता। मान लीजिए कि राम और श्याम अभिन्न हैं, पर जब तक राम-श्याम दो नहीं हैं, तब तक ये कहना कि श्याम अभिन्न है कोई अर्थ नहीं रखता। भगवान् ने कहा है—

"आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित्।
न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत सर्वदेवमयो गुरुः।।"

श्रीसनातन गोस्वामीपाद ने श्लोक को इस प्रकार स्पष्ट किया है—

"जीवेर विस्तार लागि नन्दसुत हरि,
भुवने प्रकाश होन गुरुरूप धरि।
महिमाय गुरु-कृष्ण एक करि जान,
गुरु-आज्ञा हृदे सब सत्य करि मान।
सत्यज्ञाने गुरुवाक्ये जाहार विश्वास,
अवश्य ताहार हय व्रजभूमे बास।
जार प्रति गुरुदेव हन परसन्न,
कोन विघ्ने सेई नाहि हय अवसन्न।
कृष्ण रुष्ट होले गुरु राखिबारे पारे,
गुरु रुष्ट होले कृष्ण राखिबारे नारे।
गुरु माता, गुरु पिता, गुरु हन पति,
गुरु बिना ए-संसारे नाहि आर गति।
गुरु के मनुष्य ज्ञान ना करो कखन,
गुरुनिन्दा कभू कर्णे ना करो श्रवण।
गुरु-निन्दुकेर मुख कभू ना हेरिबे,
जथा हय गुरु-निन्दा तथा ना जाइबे।
गुरुर विक्रिया जदि देखह कखन,
तथापि अवज्ञा नाहि करो कदाचन।

—जीवोद्धार-हेतु नन्दसुत हरि गुरुरूप धारण कर विश्व में प्रकट होते हैं। महिमा में गुरु और कृष्ण दोनों एक हैं। गुरु-आज्ञा को सत्य मानना चाहिये। जो

गुरु-वचनों में दृढ़ विश्वास रखता है, उसे अवश्य ही व्रजभूमि प्राप्त होती है। गुरुदेव जिस पर प्रसन्न हैं, उसे कोई विघ्न नहीं घेरते। कृष्ण के रूठने पर गुरु रक्षा कर सकते हैं, पर गुरु के रुष्ट होने पर कृष्ण रक्षा नहीं कर सकते। गुरु माता-पिता-पति सब हैं, उनके बिना संसार में कहीं भी गति नहीं। गुरु को मनुष्य मत समझो। उनकी निन्दा कानों से न सुनो। उनकी निन्दा करने वाले का मुख कभी मत देखो। जहाँ उनकी निन्दा हो, वहाँ मत जाओ। यदि कभी गुरु को कोई बुरा आचरण करते भी पाओ, तो उनकी अवहेलना मत करो।" गुरु सर्वशक्तिमान और वांछाकल्पतरु हैं। शिष्य जो चाहता है, गुरु उसकी पूर्ति करते हैं। गुरुदेव गाभी स्वरूप हैं, शिष्य वत्स रूप। वह जितना दूध झपटकर पी लेता है, उतना उसे मिल जाता है। संसार में जितने भी दृश्यादृश्य पदार्थ हैं, सभी में श्रीगुरु का प्रकाश है।

भारती—तो क्या चोर, लम्पट, दस्यु और शराबी गुरु का अनुसरण किया जा सकता है?

बाबाजी—सारा जगत् गुरु का प्रकाश है, पर प्रकाशरूप गुरु दो प्रकार के हैं—अनुकूल और प्रतिकूल। गुरुदेव आचार्य रूप में, वैष्णव रूप में, और साधु रूप में जो कुछ आचरण करते हैं, उसी का अनुसरण करने के लिए अपने शिष्य से कहते हैं। शिष्य कभी मन में सोचने लगता है यदि ऐसा न करूँ तो क्या होगा। अन्तर्यामी गुरुदेव उसके मन की बात जानकर सोचते हैं कि यह मूर्ख जीव है, शास्त्रों की बात इसकी समझ में न आयगी, इसे प्रत्यक्ष दिखाना चाहिये। ऐसा सोचकर वे चोर, दस्यु, लम्पट के रूप में प्रतिकूल गुरु-स्वरूप में हमारे आगे उपस्थित होकर शिक्षा देते हैं—सावधान! चोरी मत करना, चोरी की तो मेरी तरह दण्ड पाओगे। अब आप सोचिये कि गुरुदेव हम लोगों के लिए कितना कष्ट उठाते हैं, हम लोगों को उचित शिक्षा देने के लिए कुत्सित आचरण करते हैं और उसका कठोर से कठोर दण्ड भी भोगते हैं। जो ऐसे परम दयाल गुरु को नहीं भजता, उसकी क्या गति होगी? गुरु बनाने की आवश्यकता क्या है?—इसके उत्तर में मुझे यह कहना है कि अप्राकृत राज्य की बात तो दूर रही, हमारे स्वाभाविक आचार-व्यवहार भी बिना गुरु के नहीं चल सकते। जन्म लेते ही यदि गुरुदेव धात्री रूप में माता के स्तनपान की शिक्षा न देते, तो निश्चय ही हम अनाहार के कारण मर जाते। फिर, यदि वे माता-पिता के रूप में हमें सांसारिक गति-विधियों के विषय में शिक्षा न देते, तो क्या होता? क्षण-क्षण पर यदि वे भिन्न-भिन्न रूप धारण कर हमें शिक्षा न देते, हमारी रक्षा न करते, तो हम वह शक्ति कैसे पाते, जिसके सहारे ज्ञान-विज्ञान में इतनी उन्नति कर आज हम अपनी बुद्धिमत्ता के गर्व में इतने चूर हैं कि उनकी अखण्ड सत्ता तक को मिटाने की चेष्टा कर रहे हैं। मेरी दृढ़ धारणा है कि यदि कोई अपनी विचार शक्ति के प्रभाव से ईश्वरत्व को लुप्त करना चाहे तो किसी हद तक कर भी सकता है, पर गुरुसत्ता को लोप करना अथवा गुरु की अप्रयोजनीयता सोचना कभी सम्भव नहीं।

भारती—गुरु को आत्मसमर्पण करने का ठीक अर्थ क्या है?

बाबाजी—समर्पण का अर्थ है कायमनोवाक्य से उनका हो जाना। यदि कोई अपनी चेष्टाएँ बिलकुल छोड़ दे और वे जैसी प्रेरणा करें उसी के अनुसार कार्य करता रहे, तो मंगलमय प्रभु उसका मंगल छोड़ अमंगल तो कर ही नहीं सकते। और यदि अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए हम कभी उनकी मानें, कभी न मानें, तो उनकी प्रेरणा भी आंशिक रूप से ही कार्य करेगी। दृष्टान्त सुनो—एक पाषण्डी था, किसी साधु की कृपा से उसकी मति बदल गयी। उसने साधु से कहा, 'कृपा कर मुझे ऐसी शिक्षा दीजिये कि मैं बिना किसी प्रयास के सदाचार-पूर्वक संसार में निर्वाह कर सकूँ।' साधु ने कहा, 'देखो, सारा संसार श्रीगुरु का प्रकाश है, और श्रीगुरु मंगलमय हैं, बस इतनी बात हृदय में धारण करो, कोई विपत्ति न आयगी।' शिष्य ने साधु-वाक्य में दृढ़ विश्वास कर प्रस्थान किया। कुछ दिन बाद उसके मन में आया कि गुरुदेव ने जो कहा है, उसकी परीक्षा की जाय। ऐसा सोच कर वह एक रास्ते के बीच जाकर खड़ा हो गया। उसी समय एक हाथी उस रास्ते पर जा रहा था। ऊपर से महावत ने चीखकर

कहा—'हट जाओ, हट जाओ, यह पागल हाथी है, मार देगा।' शिष्य ने सोचा-हाथी तो गुरु का प्रकाश है, फिर भय की क्या बात है? गुरु मंगलमय हैं, वे कभी अमंगल न करेंगे। मैं हटूँ क्यों? हाथी ने निकट पहुँच शिष्य को अपनी सूँड़ में लपेट कर दूर फैंक दिया। उसके बहुत चोट आयी। वह मन ही मन साधु पर कुपित हुआ। सोचने लगा, साधु होकर इतना झूठ! चलूँ देखूँ यह कैसा साधु है। साधु के पास जाकर उसने कहा, "आपने मुझे धोखा दिया। जगत् गुरु का प्रकाश है, गुरु मंगलमय है, मुझे इस बात का कुछ भी प्रमाण नहीं मिला।" साधु ने सभी घटना सुनकर अट्टहास करते हुए कहा, "अच्छा, हाथी के साथ और कोई भी था?" शिष्य ने उत्तर दिया, "हाँ, ऊपर महावत था, उसने चीत्कार किया 'पागल हाथी मार देगा, हट जाओ।' मैं हटता क्यों? हाथी क्या मंगलमय गुरु का प्रकाश नहीं था?" साधु ने कहा, 'तुम क्या यह कहना चाहते हो कि हाथी ही गुरु का प्रकाश था, हाथी का रखवाला नहीं? भाई जिस बात को माना जाय, उसे पूरी तरह न मानने से विपद तो आयगी ही आयगी। जैसे ही गुरु का प्रकाश हाथी आया, गुरु के प्रकाश महावत ने निषेध किया। गुरु के प्रकाश महावत के कहने पर एक ओर हो जाना था। अपना बुद्धि-बल भी रखो और गुरु-वाक्य का भी पालन करना चाहो-ऐसा नहीं हो सकता। समर्पण का अर्थ है 'बिक जाना'। हम बाजार से आलू बैंगन आदि खरीदकर लाते हैं। उनका जैसे चाहें प्रयोग कर सकते हैं। आलू, बैंगन किसी प्रकार की आपत्ति नहीं करते। इसी प्रकार वह व्यक्ति भी जिसने अपने को समर्पित कर दिया है, कोई आपत्ति नहीं करता।*

भारती—भाई, तुम्हारे मुख से इन सब विषयों की सुन्दर समीक्षा सुन मुझे बड़ा आनन्द होता है। तुम्हें इतना बोलना पड़ रहा है, कोई कष्ट तो नहीं होता?

बाबाजी—दादा, आप यह क्या कहते हैं। आप सूत्रधार हैं, मैं काठ की पुतली। मेरे लिए तो यह दिन बड़ा शुभ है। आप पूछ नहीं रहे, इस प्रकार मुझे शिक्षा दे रहे हैं।

भारती—मैं शिक्षा देने आया हूँ या लेने, यह मेरा मन ही जानता है। खैर, एक बात और; नरोत्तम ठाकुर महाशय की 'प्रार्थना' में आता है **गुरुरूपा सखीर बामे, त्रिभंग हइया ठामे, चामरेर बातास करिब।**

इस वाक्य से लगता है कि गुरु और कृष्ण एक वस्तु हैं। इसका समन्वय आप कैसे करेंगे?

बाबाजी—इसीलिए तो मैंने पहले कहा कि गुरु सर्वशक्तिमान कल्पतरु हैं। उनसे जो वस्तु माँगी जायेगी, वही देंगे। ऐसी कोई वस्तु नहीं, जिसे वे न दे सकें। वैष्णव उन्हें कृष्ण और विष्णु कहते हैं, शैव शिव कहते हैं—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरोः परतरं नास्ति तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

अन्यत्र—

गुरुराधा गुरुः कृष्णो गुरुः शंकरशंकरी।
न गुरोरधिकं किञ्चित् सर्वदेवमयो गुरुः।।

* शंका हो सकती है कि गुरु अपनी स्वार्थ-सिद्धि या विषय-वासना तृप्ति के लिए शिष्य के आत्म-समर्पण का दुरुपयोग कर उसे पापाचरणों में प्रवृत्त करे तो भी क्या शिष्य आलू-बैंगन जैसा ही व्यवहार करता रहे? वास्तव में गुरु के ऐसा करने का प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि जो ऐसा करता है वह गुरु कहलाने के योग्य ही नहीं। शिष्य को अपनी विषय-वासना तृप्ति के लिए पापाचरण में नियुक्त करना तो बहुत बड़ी बात है, यदि गुरु शिष्य सेवा-परिचर्या और यश-लाभ की वासना रखे तो भी वह गुरु-पद-वाच्य नहीं, ऐसा विष्णुस्मृतिका वाक्य है—

परिचर्या-यशोलिप्सुः शिष्याद् गुरुर्न हि।

गुरु-शिष्य का सम्बन्ध है केवल परमार्थ-विषय को लेकर। गुरु वही है जो शिष्य को अन्धकार से उजाले में ले जाता है—

गु-शब्दस्त्वन्धकारः स्यात्, रु-शब्दस्तन्निरोधकः,
अन्धकार निरोधत्वात्, गुरु इत्यभिधीयते।।

पर जो किसी प्रकार के लोभ-लालच के कारण दीक्षा देता है वह गुरु ही नहीं। उसका तो अध:पतन हो चुका है—

स्नेहाद्वा लोभतो वापि यो गृह्णीयाद् दीक्षया।
तस्मिन् गुरो सशिष्ये तद्देवताशाप आपतेत्।।

(ह.भ.वि. 2/5, विष्णुयामलवचन)

शास्त्रों में इस प्रकार अनेक प्रमाण मिलते हैं, मैं और कितने बताऊँ? सीधी बात यह है कि शिष्य को जब जिस स्वरूप की आवश्यकता होती है, गुरुदेव वह स्वरूप धारण कर लेते हैं। राधा, कृष्ण, सखी, मंजरी, निताइ, गौर, शिव, दुर्गा, गणेश, सूर्य आदि, गुरुदेव सभी कुछ हो सकते हैं।

भारती—मान लीजिये, गुरु-परमगुरु आदि एक साथ एक स्थान पर उपस्थित हैं। शिष्य सबसे पहले किसे प्रणाम और किसका पूजन करें?

बाबाजी—सबसे पहले गुरु को प्रणाम करे और गुरु का पूजन करें। गुरु के पास बैठे अन्य देवताओं तक की पूजा गुरु-पूजा से पहले करना मना है। पहले श्रीगुरु-चरणों में प्रणाम करना चाहिये, फिर यदि वे आदेश करें तो परमगुरु-परापरगुरु आदि को प्रणाम कर अन्य देवताओं की पूजा करनी चाहिये।

भारती—विधिभक्ति किसे कहते हैं, और वह कितने प्रकार की है?

बाबाजी—शास्त्रमत से भगवद्भजन को ही विधि भक्ति कहते हैं। यह चौंसठ अंगों और नौ प्रकारों (श्रवण-कीर्तन आदि) में विभक्त है।

भारती—रागभक्ति क्या है, कितने प्रकार की है?

बाबाजी—शास्त्रमत की अपेक्षा न कर लोभवश जो कृष्ण भजन किया जाता है, उसी का नाम रागभक्ति है। यह दो भागों में बाँटी जाती है—वैधी रागभक्ति, और रागी रागभक्ति। रागभक्ति को सम्बन्धभक्ति और प्रेमभक्ति भी कहते हैं। बिना किसी सम्बन्ध को लिए यह भक्ति सम्भव नहीं। मेरे प्रभु, मेरे सखा, मेरा पुत्र, मेरे पति-रागभक्ति की धारा इन चार रूपों में प्रवाहित होती है। राग की विधि (वैधी रागभक्ति) द्वारका और मथुरा में मिलती है। इसमें ऐश्वर्य और माधुर्य दोनों मिश्रित हैं। पर राग की रागभक्ति अर्थात् अहैतुकी भक्ति व्रजभूमि के अतिरिक्त और कहीं नहीं मिलती। गोस्वामीजन इसे प्रेमभक्ति कहते आये हैं। इसमें ऐश्वर्य की गन्ध भी नहीं है। रागभक्ति का मूल ही लोभ है। लोभी व्यक्ति किसी न किसी प्रकार से लोभनीय वस्तु को पाने की चेष्टा करता है। रागभक्ति के प्रकार बताना सरल नहीं, फिर भी थोड़ा-बहुत वर्णन शास्त्रों में मिलता है। श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अंगसम्मार्जन, दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर, आत्म-निवेदन, ताड़न, भर्त्सना, स्नेह, मान, प्रणय, विप्रलम्भ, उत्कण्ठा, अभिसार, छल, चातुर्य, नृत्य, गीत, वाद्य, क्रीड़ा-कौशल और सेवा—यह पच्चीस प्रकार रागभक्ति के देखने में आते हैं। इनके अतिरिक्त और भी बहुत से प्रकार-भेद हैं, उनकी गणना करना कठिन है।

भारती—द्वारका, मथुरा एवं वृन्दावन में पार्थक्य क्या है?

बाबाजी—द्वारका में सम्बन्धभक्ति अवश्य है, पर वह स्वकीया है। वह विधि लेकर चलती है। सत्यभामा आदि महिषियाँ सोचती हैं, स्वामी ही परम देवता हैं, स्वामी के अनादर से नरक भोगना पड़ता है। वे इस प्रकार शास्त्रमत को ध्यान में रख श्रद्धापूर्वक श्रीकृष्ण-भक्ति करती हैं। इसी प्रकार वसुदेव-देवकी आदि वात्सल्य और उद्धव आदि सख्य भक्ति करते हैं। द्वारका की सम्बन्धभक्ति ऐश्वर्य मिश्रित है। मथुरा में कुब्जा आदि की भक्ति यद्यपि परकीया रस को लेकर है, तथापि वह सकाम है और ऐश्वर्य मिश्रित भी। व्रज की भक्ति निष्काम, ऐश्वर्यहीन और अहैतुकी है। श्रीकृष्ण-सुख के अतिरिक्त इस भक्ति का और कोई उद्देश्य नहीं। व्रजवासी कृष्ण-सुख के लिए स्वर्ग-मोक्ष आदि के भोग को तृणवत् त्यागने में और नरक आदि की यन्त्रणा को सुगन्धित शिरीषकुसुमवत् स्वीकार करने में हिचकते नहीं।

एक दृष्टान्त है। एक दिन नारद श्रीकृष्ण-दर्शन के लिए द्वारका पहुँचे। देखा कि श्रीकृष्ण महिषियों के बीच विभिन्न क्रीड़ाओं में मग्न हैं। उनके मन में श्रीकृष्ण की भगवत्ता पर कुछ सन्देह उत्पन्न हो गया। अन्तर्यामी ने उनके मन की बात जानकर अपना ऐश्वर्य-प्रकाश किया। नारद ने देखा श्रीकृष्ण एक ही समय सोलह हजार महिषियों के साथ पृथक्-पृथक् विराजमान हैं और भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में क्रीड़ा कर रहे हैं। नारद को चैतन्य लाभ हुआ। उन्होंने मन ही मन श्रीकृष्ण को प्रणाम कर अपने अपराध के लिए क्षमा-याचना की। उन्होंने निश्चय किया कि द्वारकावासियों-जैसे अनन्य भक्त और कोई नहीं।

श्रीकृष्ण ने सोचा, नारद की इस भूल को ठीक किये बिना काम नहीं चलेगा। एकाएक उन्हें भयानक ज्वर हो आया। वे बड़े व्याकुल हो बार-बार कहने लगे, "आह! सहन नहीं होता! प्राण जाने को हैं!! आज सूर्यास्त के बाद मैं नहीं बचूँगा!!!" यह देख सब भयभीत हो गये। चिकित्सकों को बुला-बुलाकर भाँति-भाँति की चिकित्सा करायी गयी, पर वे किसी प्रकार भी स्वस्थ न हुए।

नारद के पूछने पर श्रीकृष्ण ने अपने रोग की औषधि स्वयं बताते हुए कहा, "यदि मेरी कोई प्रेयसी सहर्ष अपनी पदरज और चरणामृत दे सके, तो मैं तुरन्त स्वस्थ हो जाऊँगा।" सुन कर नारद बोले, "यह क्या बड़ी बात है। जो महिषियाँ आपके लिए अपने प्राण तक दे सकती हैं, वे क्या चरणामृत नहीं दे सकतीं?"

नारद जी ने एक-एक कर रुक्मिणी, सत्यभामा आदि सभी से औषधि के रूप में उनकी पदधूलि और चरणामृत की प्रार्थना की। सभी विस्मित होकर बोलीं, "देवर्षि, यह कैसी बात! वे हमारे स्वामी हैं, परम गुरु हैं। उन्हें अपना चरणामृत दे हम नरक में जायें? यह कभी नहीं हो सकता।" नारद ने कहा, "श्रीकृष्ण बहुत व्याकुल हैं और कह रहे हैं कि सूर्यास्त के पीछे उनके प्राण न बचेंगे।" उनके बहुत कहने-सुनने का भी उन पर कोई प्रभाव न पड़ा। वे अत्यन्त दु:खी हो मथुरा पहुँचे। वहाँ भी उनका प्रस्ताव किसी ने स्वीकार न किया।

अकस्मात् उनके मन में आया कि वृन्दावन में भी तो श्रीकृष्ण की बहुत-सी प्रेयसियाँ हैं, एक बार वहाँ जाकर देखूँ। फिर सोचा कि जब यह प्रधान प्रेयसियाँ ही चरणामृत देने को तैयार नहीं तो वे गोपजाति की ऐसा क्यों करेंगी, पर चलूँ, सन्देह मिटा आऊँ। वृन्दावन पहुँच कर देखा कि सभी व्रजवासी मृतप्राय: हैं। गायें मुख उठाये खड़ी हैं। उनके बच्चे अपनी माताओं का स्तनपान नहीं कर बैठे हैं। पक्षी पके फलों में चोंचें लगाये स्थिर भाव से बैठे हैं। यह सब देख नारद अवाक् रह गये। गोपियों के पास पहुँचकर वे पूरी बात कह भी न पाये थे कि वे बोल उठीं, "कृष्ण इतना कष्ट पा रहे हैं। यदि वे हमारी चरण-रज और चरणामृत से स्वस्थ हो जायँ, तो हम अभी देने को प्रस्तुत हैं।" नारद ने कहा, "उन्हें अपना चरणामृत देकर तुम्हें अपराध के कारण नरक में जाना होगा, इसका तुम्हें भय नहीं?" गोपियों ने उत्तर दिया, "कृष्ण-सुख के कारण हमें नरक भी मिले, तो वह स्वर्ग-सुख की अपेक्षा श्रेष्ठ है। कृष्ण-सुख के बिना स्वर्ग-सुख भी नरक है।" नारद मन ही मन उनकी सराहना करने लगे—

"धन्य धन्य व्रजवासी! धन्य व्रजधाम।
कृष्ण-सुख लागि जादेर धर्म-अर्थ-काम।।
कृष्णप्रीते सर्वत्याग आर काँहो नाइ।
अतएव कृष्ण प्रेमेर अवधि हेथाइ।।"

गोपियों का चरणामृत और उनकी चरण-धूलि ले नारद द्वारका लौट आये। उस सामग्री के स्पर्श-मात्र से सब यन्त्रणा दूर हो गयी। श्रीकृष्ण ने स्वस्थ होने पर नारद से पूछा, "नारद, यह दोनों वस्तुएँ कहाँ से लाये?"

नारद—प्रभो, व्रज से।

कृष्ण—व्रजवासियों का मनोभाव कैसा लगा?

नारद—प्रभो, मैं अपराधी हूँ। मैंने व्रजवासियों को हेय समझा था और द्वारकावासियों को श्रेष्ठ। अब सब कुछ जान गया—

"व्रजेर विशुद्ध प्रेम, लक्षबान जेन हेम,
अन्यत्र नाहिक तार स्थिति।
अधिक रहुक दूरे, समान बलिये जारे,
सेहो नहे हेन मोर मति।।
की आर बलिब प्रभु, हेन शुनि नइ कभू,
नरक बलिया नाहि डरे।
तोमार सुखेर तरे, धर्माधर्म तुच्छ करे,
प्राण दिते पारे अकातरे।।
प्रेमभक्ति बले जाहा, व्रजेते देखिनु ताहा,
धन्य धन्य धन्य व्रजजन।
बन्दों दुइ कर जुड़ि, पुन: पुन: भूमे पड़ि,
व्रजवासीगणेर चरन।।"

—व्रज का विशुद्ध प्रेम लाखों बार तपाये गये सोने जैसा है, जो व्रजभूमि के अतिरिक्त और कहीं नहीं है। उससे श्रेष्ठ की तो बात ही जाने दें, उसके समान भी नहीं हैं। ऐसा मेरा मत है। प्रभु, और क्या कहूँ, ऐसा तो कभी सुना भी नहीं। व्रजवासी नरक से

भी नहीं डरते। वे आपके सुख के लिए धर्म-अधर्म की भी चिन्ता नहीं करते और अपने प्राण भी सहर्ष दे सकते हैं। प्रेमभक्ति नाम की यदि कोई वस्तु है तो वह मैंने व्रज में देखी। व्रजवासी धन्य हैं, मैं बार-बार पृथ्वी पर लेटकर दोनों हाथ जोड़कर उनके चरणों की वन्दना करता हूँ।

श्रीकृष्ण प्रसन्न हो व्रजवासियों का गुण-गान करने लगे। नारद एवं अन्यान्य द्वारकावासी यह सुनकर लज्जित हुए। देखिये, व्रजवासियों की कैसी सुन्दर निष्काम अवस्था है।

भारती—मैं निष्काम शब्द का अर्थ नहीं समझा। वेद कहते हैं—'कामाद्गोप्य:' और श्रीमती राधिका को निष्काम प्रेम की दृष्टि से सर्वप्रधान माना जाता है। एक रात जब कृष्ण अन्य नायिका के साथ रह गये और संकेतकुञ्ज में न आ सके, तो दूसरे दिन प्रात: श्रीमती भारी मान करके बैठीं और श्रीकृष्ण की उपेक्षा तक करने लगीं। क्या काम-वासना के बिना ऐसी अवस्था हो सकती है? कहा जाता है कि गोपियों में आत्म-सुख की कोई अभिलाषा नहीं। पर शास्त्रों में गोपियों के नित्य नवीन वेश, नित्य नवीन अलंकार, नाना सुगन्धित द्रव्य, अंग-सम्मार्जन, केश-विन्यास आदि अनेक विषयों का वर्णन है। यह आत्मसुख नहीं तो क्या है?

बाबाजी—निष्काम-सकाम की बात पीछे करेंगे, पहले 'काम' शब्द को समझ लें। काम शब्द के उच्चारण मात्र से हम सिहर उठते हैं, क्योंकि हमारे लिए 'काम' का अर्थ है—इन्द्रिय वृत्ति को चरितार्थ करना। इसीलिए पिता कन्या के आगे, स्त्री पर पुरुष के आगे, बड़ा भाई छोटे भाई के आगे और गुरु शिष्य के आगे काम शब्द उच्चारण करने में भी संकोच करते हैं। 'काम' का यह प्रचलित अर्थ कैसे हुआ, इसकी खोज कोई नहीं करता। 'अभिधान' में कहा गया है—'**कामोऽभिलाष-स्तृषश्च।**' अन्यत्र कहा है—'**कामस्तु कामना स्मृत:।**' अर्थात् 'काम' शब्द का अर्थ आशा अथवा तृष्णा है। इसी अर्थ में श्रुति कहती है—'**कामाद्गोप्य:**' क्योंकि गोपियों ने श्रीकृष्ण -प्राप्ति की कामना लेकर कात्यायनी-व्रत किया था। कात्यायनी देवी के प्रसन्न होने पर उन्हें श्रीकृष्ण-प्राप्ति हुई थी।

अब 'निष्काम' शब्द को लीजिये। इसका अर्थ है—**निर्विद्यते कामो यस्मात् अर्थात् पूर्णकामी।** इस काम द्वारा गोपियों ने मदनमोहन श्रीकृष्ण को भी क्रीतदास की भाँति आबद्ध कर रखा है।

पर गोस्वामी लोगों को, जो धर्म प्रवर्तक थे, यह भय हुआ कि कहीं मनुष्य भविष्य में 'काम' शब्द का प्रचलित अर्थ लेकर निष्कलंक श्रीकृष्णभजन में कलंक न लगायें। इसी भय से उन्होंने 'काम' शब्द की व्याख्या इस प्रकार स्पष्ट कर दी—

"आत्मेन्द्रियप्रीति इच्छा तारे बलि काम।
कृष्णेन्द्रियप्रीति-वांछा धरे प्रेम नाम।।"

(चै.च.आ. 4/165)

—अपनी इन्द्रियों को सन्तुष्ट करने की इच्छा ही 'काम' है, और श्रीकृष्ण की इन्द्रियों को सन्तुष्ट करने की अभिलाषा 'प्रेम' है।

अनेक स्थलों पर 'काम' शब्द का प्रयोग कर उन्होंने तुरन्त बाद में कहा है—

सहजे गोपीर प्रेम नहे प्राकृत काम।
कामक्रीड़ा साम्ये तार कहि काम नाम।।

—गोपियों का सहज प्रेम प्राकृत काम नहीं है। कामक्रीड़ा के सदृश होने के कारण उसे काम कहते हैं।

इस दृष्टि से गोपी-प्रेम काम-गन्धहीन है।

काम घोर अन्धकार। प्रेम निर्मल भास्कर।।

जो लोग श्रीकृष्णलीला के सम्बन्ध में 'काम' का अर्थ 'प्राकृत काम' करते हैं, उनसे मैं पूछता हूँ कि क्या कोई कामी पुरुष शतकोटि रमणियों को एकसाथ लेकर अपनी कामचेष्टा सफल कर सकता है? इससे भी आश्चर्य की बात यह है कि—

शतकोटि गोपीते नहे काम निर्वापण।
इहातेइ अनुमानि श्रीराधिकार गुण।।

(चै.च.म. 8/116)

—शतकोटि गोपियों से भी कृष्ण के काम की निवृत्ति नहीं होती, इसी से राधा के गुण का अनुमान होता है।

गोपियाँ रूप-गुण, कुल-शील किसी भी बात में श्रीमती से कम नहीं, पर काम-गन्धरहित होने के कारण उनका स्वभाव कितना मधुर है—

"सखीर स्वभाव एक अकथ्य-कथन,
कृष्ण सह निज लीलाय नाहि सखीर मन।
कृष्णसह राधिकार लीला जे कराय,
निज केलि हैते ताहे कोटि सुख पाय।।"

(चै.च.म. 8/207-208)

—गोपियों का स्वभाव अवर्णनीय है। वे कृष्ण के साथ स्वयं क्रीड़ा-विलास नहीं करना चाहतीं। उन्हें जितना सुख कृष्ण के साथ स्वयं केलि करने में मिलता है, उससे करोड़ गुना सुख कृष्ण के साथ राधिका का विलास कराने में मिलता है।

प्रेम में कामगन्ध होती तो क्या कोई कामिनी अन्य रमणी से मिलने वाले प्रियतम को देख कभी सुखी हो सकती? उसके दुःख की तो सीमा ही न रहती। यह तो हुई गोपियों की बात, अब श्रीमती क्या कहती हैं वह सुनिये—

"आमि कृष्णपद दासी, तिंहो रससुख-राशि,
आलिंगिया करे आत्मसात्।
किवा ना देन दरशन, जारे मोर तनुमन,
तबू तिंहो मोर प्राणनाथ।।
सखि हे शुन मोर मनेर निश्चय।
किबा अनुराग करे, किबा दुख दिया मारे,
मोर प्राणेश कृष्ण अन्य नय।।
छाड़ि अन्य नारीगन, मोर वश तनुमन,
मोर सौभाग्य प्रकट करिया।
ता सबारे देन पीड़ा, आमा सने करे क्रीड़ा,
सेइ नारीगने देखाइया।।
किंवा तिंहो लम्पट, शठ धृष्ट सुकपट,
अन्य नारीगन करि साथ।
मोरे दिते मनःपीड़ा, मोर आगे करे क्रीड़ा,
तबू तिंहो मोर प्राणनाथ।।
ना गणि आपन दुःख, सबे वांछि ताँर सुख,
ताँर सुखे आमार तात्पर्य।
मोरे जदि दिले दुःख, ताँर हय महासुख,
सेइ दुःख मोर सुखवर्य।।
जे नारीके वांछे कृष्ण, तार रूपे सतृष्ण,
तारे ना पाइया हय दुःखी।
मुइँ तार पाये पड़ि, लञा जाउँ हाते धरि,
क्रीड़ा कराइया करों सुखी।।"

(चै.च.अ. 20/48-53)

—मैं हूँ कृष्ण-चरण-दासी और वे हैं रस-सुख-राशि। वे मुझे आलिंगन कर आत्म-विभोर कर देते हैं। वे भले ही मुझे दर्शन न दें, भले ही विरह में मेरा तन-मन जलाते रहें, फिर भी वे मेरे प्राणनाथ हैं। हे सखि, मेरा निश्चय क्या है सुन। वे चाहे मुझसे प्रेम करें, चाहे दुःख दे-देकर प्राण लें, प्राणेश कृष्ण को छोड़ मेरा और कोई नहीं। वे चाहे अन्य रमणियों को छोड़ पूर्णरूपेण मेरे वश में रहें, उन्हें दिखाकर मेरे साथ क्रीड़ा करें, उन्हें पीड़ा पहुँचाने को और मुझे दिखाने को कि मैं कितनी सौभाग्यवती हूँ। चाहे लम्पट, शठ, धृष्ट, सुकपटी की तरह मुझे दुःखी करने को मेरे आगे अन्य रमणियों के साथ क्रीड़ा-विलास करें, हर प्रकार से वे मेरे प्राणनाथ हैं। मैं अपने दुःख की चिन्ता नहीं करती, मुझे तो उन्हीं के सुख से काम है। सबसे मैं उन्हीं के सुख की कामना करती हूँ। यदि मुझे दुःख देकर उन्हें महासुख होता है, तो मैं अपने उस दुःख को भी श्रेष्ठ सुख समझती हूँ। वे जिस रमणी की कामना करते हैं, जिसके रूप के प्यासे रहते हैं और जिसे न पाकर दुःखी होते हैं, मैं उसके पैरों में पड़ उसका हाथ पकड़कर ले आती हूँ और उनके साथ क्रीड़ा कर सुखी होती हूँ।

यदि प्रेम में काम-गन्ध हो, तो क्या प्रधान नायिका के मुख से ऐसे वाक्य कभी निकल सकते हैं?

आपकी दूसरी शंका है कि अन्य रमणी के साथ श्रीकृष्ण के सम्मेलन के कारण श्रीमती ने मान क्यों किया? वास्तव में मान का कारण अन्य कान्ता से सम्मेलन नहीं। श्रीमती ने मान की अवस्था में कुछ सखियों से कहा—"सखि, जो रमणी कृष्ण-सुख की चिन्ता न कर आत्मसुख में भूली रहती है और शिरीषकुसुमवत् सुकोमल कृष्णांग में अपने नखों और आभूषणों से आघात कर दुःखी नहीं होती, उसे कृष्ण-प्रेयसियों की गणना में रखना उचित नहीं। यदि रसिक

शिरोमणि नागरराज किसी योग्य नायिका के साथ केलि -विलास करें, तो मुझे बिन्दु मात्र दु:ख नहीं। सखि, उस समय प्राणनाथ के जिस-जिस अंग पर मेरी दृष्टि पड़ी, उसी से उस पाषाणी कामकुहकिनी के कठोर व्यवहार का परिचय पा मेरा हृदय विदीर्ण होने लगा। तभी मैंने उससे कहा—जा शठ, मेरी दृष्टि से ओझल हो जा।"

अब बताइये, यह मान कृष्ण-सुख का परिचायक है, अथवा स्वकाम-वासना का? गोपियों के वस्त्राभूषण, सुगन्धित द्रव्य, उनका अंगमार्जन, केश-विन्यास-यह सब भी आत्म-सुखार्थ नहीं। यह भी श्रीकृष्ण-सुखार्थ ही हैं। यदि क्रीड़ा-विलास के बीच गोपियों के वस्त्र-भूषण स्थानच्युत हो जाते हैं, तो श्रीकृष्ण अपने हाथों से उन्हें ठीक कर देते हैं। गोपियाँ श्रीकृष्ण को सुखी रखने और उनकी सौन्दर्य पिपासा को शान्त रखने के लिए ही सुसज्जित रहती हैं। श्रीचैतन्यचरितामृत में वर्णन है—

"तबे जे देखिये गोपीर निज देहे प्रीत।
सेहोत' कृष्णेर लागि, जानिह निश्चित।।
एइ देह कैलूँ आमि कृष्णे समर्पण।
ताँर धन ताँर इहा सम्भोग साधन।।
ए देह-दर्शन-स्पर्शे कृष्ण सन्तोषण।
एइ लागि करेन देहेर मार्जन भूषण।।
आमार दर्शने कृष्ण पाइल एत सुख।
एइ सुखे गोपीर प्रफुल्ल अंग मुख।।
गोपी शोभा देखि कृष्णेर शोभा बाड़े जत।
कृष्ण-शोभा देखि गोपीर शोभा बाड़े तत।।
एइ मत परस्पर पड़े हुड़ाहुड़ि।
परस्पर बाड़े, केह मुख नाहि मुड़ि।।
किन्तु कृष्णेर सुख हय गोपीर रूप-गुणे।
ताँर सुखे सुखवृद्धि हय गोपीगणे।।
अतएव सेइ सुख कृष्णसुख पोषे।
एइ हेतु गोपी प्रेमे नाहि काम दोषे।।"

(चै.च.आ. 4/81-183,191-195)

—गोपियों में स्वदेह के प्रति जो प्रीति देखने में आती है, वह भी कृष्ण के लिए ही है, यह निश्चय जानो। वे सोचती हैं कि हमने यह देह कृष्ण को समर्पित कर दिया है, यह उनका धन है, उनके उपभोग का साधन है। उनके शरीर का स्पर्श कर कृष्ण को सन्तोष होता है, इसीलिए वे अंग-मार्जन करती हैं और आभूषण धारण करती हैं। हमें देख कृष्ण इतने सुखी होते हैं—यह सोच गोपियों का सर्वांग खिल उठता है। गोपियों का सौन्दर्य देख कृष्ण की शोभा जितनी बढ़ जाती है, गोपियों की उतनी ही कृष्ण के सौन्दर्य को देख बढ़ जाती है। इस स्पर्धा में दोनों एक दूसरे से आगे रहना चाहते हैं। कोई भी मुख नहीं मोड़ता। गोपियों के रूप-गुण से कृष्ण को सुख होता है और कृष्ण के सुख से गोपियों को सुख होता है, इसीलिए गोपी प्रेम में काम-दोष नहीं है।

भारती—मुझे आज जो आनन्द हुआ उसे कैसे व्यक्त करूँ? श्रीचैतन्यचरितामृत में यह सभी स्थल मैंने अनेक बार पढ़े हैं, पर उनका ऐसा सुन्दर अर्थ कभी नहीं समझ पाया। एक बात और बताइये। भक्तिमार्गी मुक्ति को इतना तुच्छ क्यों समझते हैं?

बाबाजी—भगवान् ने स्वयं कहा है—

"सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति बिना मत्सेवनं जनाः।।"

(भा. 3/29/13)

सालोक्य का अर्थ है 'समानलोक में', अर्थात् एक क्षेत्र में वास। मनुष्य भगवद्राज्य में रहने के लिए कठोर तपस्या कर जो सुख प्राप्त करता है, उससे करोड़गुना सुख भगवत्-कृपाप्राप्त या साधारण साधनपरायण भगवद्दासदासी को अनायास मिल जाता है। 'सार्ष्टि' का अर्थ है 'समान ऐश्वर्य', 'सामीप्य का अर्थ है 'निकट में वास', 'सारूप्य' का अर्थ है समानरूप, जैसे द्विभुज-चतुर्भुज आदि। यदि किसी सुख का आस्वादन न हो तो ऐश्वर्य से, समानरूप से और पास रहने से भी क्या लाभ? 'एकत्व' का अर्थ है निर्वाण, अर्थात् प्रभु के साथ मिल जाना। अब आप सोचके देखिये कि इन पाँच प्रकार की मुक्तियों से क्या सुख मिल सकता है? इसीलिए सुचतुर भगवद्भक्त अतिशय कष्टसाध्य मुक्ति को हेय समझते हैं। भगवान् स्वयं पंचविधा मुक्ति देना चाहें, तो भी वे भगवत्सेवा को छोड़ उसे ग्रहण नहीं करते।

भारती—उच्च स्वर से हरिनाम करने की क्या आवश्यकता है? तन्त्रादि में तो जप की ही प्रशंसा की गयी है—'जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्न संशयः।'

बाबाजी—महाप्रभु ने कलियुग में संकीर्तनयज्ञ द्वारा श्रीकृष्ण-आराधना का विधान किया है—

"हर्षे प्रभु कहेन-शुन स्वरूप रामराय,
नाम संकीर्तन-कलौ परम उपाय।
संकीर्तनयज्ञे कलौ कृष्ण आराधन,
सेइ से सुमेधा पाय कृष्णेर चरन।।"

(चै.च.अं. 20/8,9)

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।

(वृहन्नारदीय 38/126)

—अर्थात् कलियुग में नामसंकीर्तन परम साधन है; जो संकीर्तन यज्ञ द्वारा श्रीकृष्ण-आराधना करते हैं वे सुमेधा हैं और उन्हें श्रीकृष्ण-चरण की प्राप्ति होती है। कलियुग में हरिनाम को छोड़ और किसी भी उपाय से गति नहीं है।

एक व्यक्ति अपने उपार्जित धन से पड़ोसी, दु:खी-दरिद्र एवं आत्मीय-स्वजनों का पोषण करता है, और जो कुछ शेष रहता है, उसे स्वयं उपभोग करता है। दूसरा उपार्जित धन से आत्मीय-स्वजनों का और अपना पोषण करता है। तीसरा केवल अपना ही पोषण करता है। इन तीनों में श्रेष्ठ कौन है?

भारती—इस बात को कौन नहीं समझता? जो दस जनों का पोषण करता है, वही श्रेष्ठ है।

बाबाजी—तो इस प्रकार मन-ही-मन जप करने से हम स्वयं कृतार्थ होते हैं। घर में बैठकर धीरे-धीरे हरिनाम करने से हम और हमारी गोष्ठी कृतार्थ होते हैं। उच्च स्वर से नाम-संकीर्तन करने से मनुष्यों की कौन कहे पशु-पक्षी, कीट-पतंग, स्थावर-जंगम तक नाम की ध्वनि से कृतार्थ हो प्रेमभक्ति लाभ करते हैं। इसीलिए महाप्रभु ने कहा है—

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं
श्रेयः कैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम्।
आनन्दाम्बुधिवर्द्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम्।।

(पद्यावली 22; चै.च.अं. 20/12)

संकीर्तन हैते पाप-संसार नाशन
चित्तशुद्धि सर्वभक्ति-साधन उद्गम।
कृष्णप्रेमोद्गम प्रेमामृत-आस्वादन
कृष्णप्राप्ति सेवामृत-समुद्रे मज्जन।।

(चै.च.अं. 20/13,14)

अतएव कलियुग में नामकीर्तन के अतिरिक्त और गति नहीं। कलियुग में योग, यज्ञ, व्रत, होम, जप, ध्यान किसी से कुछ नहीं होता। इसी से 'हरेर्नाम' श्लोक में तीन बार सत्य-त्रेता-द्वापर युगोचित सभी साधन प्रणालियों का निषेध किया है।

भारती महाशय आनन्दविभोर हो नृत्य करने लगे। और सब लोग भी मृदंग-करताल के साथ कीर्तन करने लगे। इस समय से प्रेमानन्द भारती महाशय बाबाजी महाशय के दादा और यह उनके छोटे भाई बन गये। दोनों साथ रहकर कीर्तानानन्द में दिन व्यतीत करने लगे।

कृष्णनगर में नगरकीर्तन

श्रीमन्महाप्रभु की नित्यविहार भूमि श्रीधाम नवद्वीप में पूज्यपाद बाबाजी महाशय अपने गुरुदेव के आश्रम में नित्य नूतन भक्तों सहित संकीर्तन कर संकीर्तनानन्द की एक अपूर्व बाढ़ में बड़े-बूढ़े, स्त्री-पुरुष सभी को न जाने किस ओर बहाये लिये जा रहे थे।

उसी समय एक दिन देवेन्द्रनाथ चक्रवर्ती* आकर बाबाजी महाशय से बोले—"दादा! चलिये एक बार कृष्णनगर देख आयें।" बाबाजी महाशय खुश होकर बोले—"अच्छा, चलो कल ही चलें।" साथियों का भी यही मत हुआ। दूसरे दिन प्रातःकृत्य से निवृत्त हो बाबाजी महाशय सब भक्तों को साथ ले आश्रम से निकले। गंगापार होते ही 'आबार बल हरिनाम आबार

* ज्ञात हो कि देवेन्द्र बाबू नवद्वीप में 'जय निताइ' नाम से विख्यात थे। पहले से ही बाबाजी महाशय के साथ इनका भ्रातृ भाव था। पहले ये सिलहट जिला स्कूल के हेडमास्टर थे।

बल' गाते हुए प्रेमानन्द में विभोर हो नाचते-नाचते कृष्णनगर की ओर चल पड़े। साथी सभी सुधबुध खोकर पीछे-पीछे चले जा रहे थे। बालक, वृद्ध, स्त्री और पुरुषों का तो कहना ही क्या, घोर पाखण्डी लोग भी उन्हें देख मन्त्रमुग्ध-से हो रहे थे।

नौ बजे के लगभग सब लोग गोयाड़ी पहुँचे। स्थानीय पुलिस इन्सपेक्टर हीरालाल सिंह कहीं जा रहे थे। कीर्तन-ध्वनि सुनकर इधर आये और भक्तिपूर्वक सबको प्रणाम कर बोले—"आप लोगों का कहाँ से और कैसे आना हुआ?" देवेन्द्र बाबू बोले, "हम श्रीधाम नवद्वीप से कृष्णनगर दर्शन करने आये हैं।"

हीरालाल बाबू—आप लोगों का कहीं ठहरने का प्रबन्ध है?

देवेन्द्र बाबू—ना बाबा। हमने अभी कुछ ठीक नहीं किया है। यदि निताइचाँद ने व्यवस्था कर रखी है तो हम नहीं जानते।

हीरालाल बाबू—मेरा एक अनुरोध है। आप अभी शहर न जायें। खड़े नदी के तट पर श्रीकण्ठ बाबू के बगीचे में विश्राम कर वहाँ प्रसादादि पाकर शहर जायें तो अच्छा है।

देवेन्द्र बाबू ने हीरालाल बाबू का प्रस्ताव स्वीकार किया और द्रुतवेग से कीर्तन मण्डली के सामने जाकर उसे बगीचे की ओर मोड़ दिया। आज मानो दादा भाई के अनुगत हैं। भाई का जिधर इंगित होता है दादा उसी ओर नाचते-नाचते चले जाते हैं।श्रीकण्ठ बाबू के बगीचे में पहुँच कर बाबाजी महाशय ने कुछ देर उद्दण्ड कीर्तन किया। इधर हीरालाल बाबू ने बीस-पच्चीस भक्तों के लिए दाल, चावल इत्यादि भोग की सामग्री लाकर उपस्थित की। बाबाजी महाशय के आदेश से रसोई बनना आरम्भ हुआ। हीरालाल बाबू इस आनन्दमय संग को छोड़ एक पग भी वहाँ से हटना नहीं चाहते थे। किन्तु क्या करें। सरकारी कार्य को एक घण्टे के लिए जाना ही पड़ा। पर इनके प्रसाद पाने के समय से पूर्व ही वहाँ आकर उपस्थित हो गये।

नवद्वीप से एक महापुरुष संकीर्तन लेकर आये हैं—यह खबर क्रमशः सारे शहर में फैल गयी। धीरे-धीरे भक्त-जैसे एक दो बाबू आने लगे। स्थानीय सबरजिस्ट्रार-बाबू जोगेशचन्द्र सान्याल भी एक बार आकर दर्शन कर गये। आप एक धर्मनिष्ठ शाक्त ब्राह्मण थे। वैरागी वैष्णवों के प्रति आपकी विशेष श्रद्धा न थी। पर आप गुणवान व्यक्तियों के सदा पक्षपाती थे।

आहारादि के पश्चात् कुछ देर विश्राम कर चार बजे के लगभग बाबाजी महाशय दलबल सहित कीर्तन करते-करते कॉलेज के निकट पहुँचे। इधर कॉलेज की भी छुट्टी हुई। कॉलेज के प्रोफेसर अधर बाबू और कॉलेजियेट स्कूल के शिक्षक व्रजलाल बाबू आकर कीर्तन में सम्मिलित हुए। यह देख कॉलेज के बहुत-से विद्यार्थी भी कीर्तन के साथ हो लिए। बाबाजी महाशय कीर्तन करने लगे—

"निताई गौरांग बल, जनम पेयेछ भाल,
कलियुगे आर गति नाइ।
जे दिल ए शब्द ज्ञान, कर ताँर गुणगान,
ए विद्या शिख ना केन भाइ।।
चौरासी लक्ष जोनि, कत ना भ्रमिले तुमि,
कृमि कीट नाना देह धरि।
बहु सुकृतिर फले, भारते जनम मिले,
नरदेह अंगीकार करि।।
शत सन्धि जर जर, पेये एइ कलेवर,
एत गर्व करिछ कि आशे।
त्रयात्मिका व्याधि जत, बेड़िया आछये कत,
कि जानि कखन केबा नाशे।।
जे देह आपन ज्ञाने, जत्न कर रात्रि दिने,
वसन भूषन कत वेशे।
परमात्मा भगवान् जबे हबे अन्तर्धान,
भस्म विट् कृमि अवशेषे।।
पाये पड़ि छाड़ भ्रम, किछु नाहि परिश्रम,
हरि हरि बल अविराम।
कह लक्ष कथा आन, ताहे न आलिस ज्ञान,
कि भार कि बोझा कृष्णनाम।।
कर जुड़ि भिक्षा चाइ, हरि हरि बल भाइ,
सुखे तोर जाबे परिनाम।

ना लागिबे टाका कड़ि, ना छाड़िये घर बाड़ि,
मुखे मात्र बल हरिनाम।।

—तुम्हें अच्छा मनुष्य जन्म मिला है। इसलिए 'निताइ गौरांग' बोलो। कलियुग में और किसी प्रकार गति नहीं है। जिन्होंने तुम्हें शब्द-ज्ञान दिया है, उनका ही गुण-गान क्यों न करो? यह गुण-गान करने की विद्या ही क्यों न सीखो? चौरासी लाख योनियों में कीड़े-मकोड़े आदि का देह धारण कर न जाने कितना भ्रमण किया है तुमने। बहुत सुकृति के फलस्वरूप अब तुम्हें नरदेह प्राप्त हुआ है और भारतवर्ष में तुम्हारा जन्म हुआ है। पर न जाने किस आशा को लेकर तुम सैकड़ों जोड़ और थेगलियाँ लगे इस शरीर का गर्व करते हो। कर्मफलजनित कितनी व्याधियाँ इसको घेरे हुए हैं। न जाने कब उनके कारण इसका नाश हो जायगा। जिस देह को तुम अपना जानकर रात-दिन बड़े यत्न से तरह तरह के वस्त्राभूषणों से सुसज्जित करके रखते हो, उसमें से जब परमात्मा अन्तर्धान हो जायेंगे, तब केवल राख, मल और कृमि अवशेष रह जायेंगे। इसलिए मैं तुम्हारे पैरों पड़ कहता हूँ कि इस भ्रम-जाल को छोड़ अविराम हरिनाम उच्चारण करो। सुख पाओगे। तुम्हें न पैसा खर्चना है, न घर छोड़ना है।" इस प्रकार बहुत-सी पद पदावली गाने लगे।

शहर का कृष्णनगर नाम आज सार्थक हो रहा है। दुकानदार दुकान छोड़ 'हरिबोल' कहकर नाच रहे हैं। ऑफिस के बाबू लोग, ऑफिस की पोशाक पहने धूल में लोट-पोट हो रहे हैं। कुली सिर पर बोझा रखे आनन्द में विभोर हो झूम-झूम कर नृत्य कर रहे हैं। बाबाजी महाशय प्रेम-गद्गद कण्ठ से केवल इतना कहते हैं **'आबार बल हरिनाम, आबार बल। एइ हरेकृष्ण नाम आबार बल।। (मधु-माखा) (नाम नामी एक आत्मा) (नामेर वर्णे-वर्णे सुधा माखा) नाम लइते प्रेम हबे (भाई तोदेर पाये पड़ि) आबार बल।'**

बार-बार हरिध्वनि हो रही है और बाबाजी महाशय का शरीर पुलकावलि से विभूषित हो रहा है। भाव में विभोर होकर बार-बार भूमि पर गिरने लगते हैं और पाँच-सात लोग मिलकर किसी प्रकार उन्हें संभाल पाते हैं। इस अवस्था में जब कम्प होता है, तब सभी लोग हवा के झकोरों से हिलते हुए केले के पत्तों की तरह काँपने लगते हैं और अश्रुधार रोके नहीं रुकती। सब आत्महारा हो रहे हैं। किसी का खोल बजाते-बजाते हाथ फट गया है, उसे होश नहीं। करताल बजाते बजाते किसी के हाथ का चमड़ा निकल गया है, उसे पता नहीं। किसी के हाथ से करताल गिर गया है, वह हाथ से ताली बजा-बजा कर नृत्य कर रहा है। दूसरा उसी करताल को उठाकर बजा रहा है और कीर्तन कर रहा है। संध्यादेवी भी मानो इस सर्वचित्ताकर्षक कीर्तन को सुन कर विमुग्ध हो सदलबल धीरे-धीरे आकर उपस्थित हुई। चारों ओर से कोई लालटेन, कोई लैम्प लेकर आने लगे। इस प्रकार बहुत समय तक कीर्तन करने के पश्चात् अपनी इच्छा न होते हुए भी भक्तगणों को थका जान बाबाजी महाशय ने रात्रि आठ बजे के लगभग कीर्तन समाप्त किया।

श्रीकण्ठ बाबू का बगीचा आज जनता से ठसा-ठस भरा है। सभी के मुख से हरिबोल की ध्वनि निकल रही है। सब लोग अलग-अलग दल बनाकर 'हरिबोल' बोलते-बोलते बगीचे में आ-जा रहे हैं। कभी भी जिसके मुख से हरिनाम सुनायी नहीं पड़ता था वह भी मानो एक प्रकार के नशे में डूबकर उद्दण्ड नृत्य कर रहा है और हाथ से ताली बजा-बजाकर 'हरिबोल' बोल रहा है। रात कोई ग्यारह बजे सबको होश हुआ और अपने-अपने घर की सुध आयी। अधर बाबू जोगेश बाबू आदि ने कहा, "कल शनिवार है, कीर्तन थोड़ा आगे ही क्यों न निकालो?" बाबाजी महाशय ने इसका अनुमोदन किया। सब लोग परमानन्दित हो अपने-अपने घर चले गये। रात्रि में इन लोगों के भोजनादि की व्यवस्था हीरालाल बाबू ने ही की।

प्रभात होते ही जोगेश बाबू ने आकर विनीत भाव से बाबाजी महाशय से पूछा—"आपके साथियों के आहारादि की व्यवस्था क्या है?"

बाबाजी—बाबा! हम भिखारी हैं, हमारे लिए व्यवस्था का क्या प्रश्न? प्रभु जिस समय जो दे देते हैं वही पा लेते हैं।

जोगेश बाबू—यह बात तो बाबा सभी के लिए समान रूप से लागू है। प्रभु के दिये बगैर क्या किसी

को कुछ मिलता है? फिर भी प्रत्येक मनुष्य का अपना अलग नियम है, जैसे, 'मैं अमुक व्यक्ति के हाथ का या अमुक प्रकार का भोजन नहीं करूँगा।'

बाबाजी—आप लोगों में विधवा स्त्रियों का जिस प्रकार आहार होता है, हमारा भी उसी प्रकार होता है। परन्तु विधवा स्त्रियों में कोई-कोई अनिवेदित वस्तु का आहार कर लेती हैं, जो हम नहीं करते।

जोगेश बाबू—अच्छा, नारायण का प्रसाद क्या आप लोग ग्रहण कर लेते हैं?

बाबाजी—बाबा! नारायण ही तो हमारे देवता हैं। ऐसा कौन पाखण्डी है जो नारायण का प्रसाद न ग्रहण करता हो?

जोगेश बाबू—मेरी माँ और विधवा बहन हैं। यदि आपकी अनुमति हो तो उनके द्वारा भोजन पकवाकर नारायण का भोग लगाऊँ और आज आप सब मेरे घर ही प्रसाद पायें।

बाबाजी—अच्छा, निताइ की इच्छा से ऐसा ही होगा?

जोगेश बाबू अति प्रसन्न हो घर गये और माँ से बोले, "माँ, नवद्वीप से एक महापुरुष आये हैं। आज हमारे घर भोजन करेंगे। उनके साथ बारह-चौदह साधु भी हैं। अति पवित्र भाव से नारायण का भोग लगाकर उन्हें प्रसाद देना होगा।"

जोगेश बाबू की बहन बोलीं, "मैंने कल रात्रि एक स्वप्न देखा था। खूब दीर्घाकार एक साधु आकर मुझसे कह रहे हैं, 'बहिन बड़ी भूख लगी है, कुछ खाने को दो।' मैं आनन्द विभोर हो गयी और उनके बैठने के लिए आसन लगा दिया। बस इतने में मेरी नींद टूट गयी। जो हो, हम लोग बहुत पवित्रता से नारायण का भोग लगायेंगे।"

जोगेश बाबू ने यथासम्भव भोजन का आयोजन कर दिया और दफ्तर चले गये। किन्तु उनका मन इन महापुरुषों के चरणों में लगा रहा। दफ्तर का कार्य करते समय बराबर इनकी मूर्ति उनके सामने नृत्य करती रही।

प्रायः बारह बजे जोगेश बाबू के यहाँ से एक व्यक्ति बाबाजी महाशय को लिवाने गया। बाबाजी महाशय भक्त मण्डली सहित कीर्तन करते-करते जोगेश बाबू के यहाँ आकर उपस्थित हुए। कुछ देर नाम करने के पश्चात् जोगेश बाबू की बहन को सम्बोधन कर बोले—"दीदी बड़ी भूख लगी है, कुछ खाने को दो। माँ कहाँ हैं?" यह सुनकर जोगेश बाबू की बहन अति विस्मित भाव से माँ के निकट जाकर बोलीं, "माँ, मैंने कल रात को जो स्वप्न देखा था, वह बिल्कुल ठीक हुआ। ठीक इन्हीं के समान एक साधु ने कल रात ठीक इसी भाव से मुझसे खाने को माँगा था। यह अवश्य ही कोई महापुरुष हैं।"

माँ बोलीं, "जोगेश ने भी यही बात कही थी। इनका आकार-प्रकार भाव-भंगिमा आदि देखकर हृदय को यही बोध होता है कि ये कोई महात्मा हैं। इनके दर्शन मात्र से भक्ति का उदय होता है।" यह कहकर माँ ने सब लोगों से बैठक में विश्राम करने की प्रार्थना की।

थोड़ी देर में ठाकुर जी का भोग लग जाने पर सबको प्रसाद पाने के लिए बिठा दिया। माँ और बहन दोनों प्रसाद परोसने लगीं। माँ बोलीं, "बाबा, मन में किसी प्रकार का सन्देह न करना। मैंने जल तक का नारायण को भोग लगाया है। नारायण के प्रसाद के अतिरिक्त और कुछ भी आप लोगों को न परसूँगी।" बाबाजी महाशय बोले, "माँ, भगवत्-अनिवेदित वस्तु ग्रहण करने से अपराध होता है, भगवदपराधी का कभी मंगल नहीं होता है। फिर सन्तान का जिससे अमंगल हो ऐसा क्या कभी माँ कर सकती है?"

इस प्रकार कथोपकथन के साथ सब लोग प्रसाद पाने लगे। इसी समय जोगेश बाबू ऑफिस से आ गये, माँ और बहन के मुख से सारा वृत्तान्त सुन बड़े सुखी हुए।

जब सब लोग प्रसाद पा चुके जोगेश बाबू बोले, "आज बगीची न जाकर यहीं विश्राम करें तो अच्छा हो, यहाँ से नगर कीर्तन निकालने में भी विशेष सुविधा होगी।" बाबाजी महाशय बोले, "जिसमें आप लोगों को सुविधा हो वैसा ही करें।"

जोगेश बाबू बहुत प्रसन्न हुए और बैठक में सबके विश्राम का प्रबन्ध कर स्वयं प्रसाद पाने लगे। कुछ समय विश्राम करने के पश्चात् कोई साढ़े तीन बजे सबलोग कीर्तन निकालने के उद्योग में लग गये। किसी को निमन्त्रित करने की आवश्यकता न पड़ी। बहुत-से लोग जोगेश बाबू के घर आकर एकत्र होने लगे। बाबाजी महाशय ने कीर्तन आरम्भ किया—

प्रकट अप्रकट लीलार दुइत विधान।
प्रकट लीलाय करेन प्रभु निजे नृत्य गान।।
अप्रकटे नाम रूपे साक्षात् भगवान्।
कीर्तनविहारी रूपे सदा वर्तमान।।
(प्रभुर) दक्षिणे श्रीनित्यानन्द बामे गदाधर।
सम्मुखेते नृत्यावेशे कुबेर-कुमार।।
गदाधरेर बामे श्रीवास आर नरहरि।
चौषट्टि महान्त द्वादश गोपाल संगे करि।।
सबाकार आगे निताइ दुबाहु तुलिया[1]।
हरेकृष्ण हरिनाम जान बिलाइया।।
मुखे 'आबार बल हरिनाम आबार बल'।

(आमार प्रेमदाता निताइ बले)
(निताइ जारे देखे तारे बले)
(आमि बिना मूले बिकाइब)

अक्रोध परमानन्द नित्यानन्द राय।
अभिमानशून्य निताइ नगरे बेड़ाय।।
अधम चण्डाल जनार घरे-घरे गिये।
ब्रह्मार दुर्लभ प्रेम दिछेन जाचिये।।
जे ना लय तारे बले दन्ते तृण धरि।
आमारे किनिया[2] लह भज गौरहरि।।
एत बलि नित्यानन्द भूमे गड़ि जाय।
सोनार पर्वत जेनो धूलाते लोटाय।।
एहेन दयाल प्रभु जेबा ना भजिल।
मानव-जनम सेइ हेलाय[3] हाराइल[4]।।
गोरा-प्रेमे गरगर निताइ रंगिया।
हरि बले चले जाय ढुलिया ढुलिया[5]।।
अरुण कमल जिनि नयनजुगल।
गोरा गोरा गोरा बलि झुरे[6] अविरल।।

करुणासागर मोर प्रभु नित्यानन्द।
भज भज भज भाई पाइबे आनन्द।।
सुखे बा दुःखेते किम्बा जथा तथा थाक।
दिनान्ते निशान्ते किबा निताइ बोले डाक।।
निताइ, निताइ, निताइ, निताइ बल भाइ।
निताइ गौरांग बिने आर गति नाइ।।

और भी अनेक प्रकार के पदों का कीर्तन होने लगा। अगणित लोग इकट्ठे हो गये। कौन कहाँ गिर रहा है, कौन किसे पकड़ रहा है, किसी को सुध नहीं। कोई भूमि में लोट रहा है, कोई बाबाजी महाशय के चरण पकड़ उच्च स्वर से रोदन कर रहा है, कोई प्रेमोन्मत्त भाव से उद्दण्ड नृत्य कर रहा है। बाबाजी महाशय के शरीर में अष्टसात्विक विकारों का पूर्ण रूप से विकास हो रहा है। निरन्तर पुलक, अश्रु और कम्प हो रहा है।

जो कोई भी उस सुमधुर नृत्य-भंगि, अविरल अश्रु विसर्जन और भाव-भूषणविभूषित विशाल शरीर को एक बार देख लेता है, वह एक अनिर्वचनीय आनन्द रस में निमग्न हो जाता है। कृष्णनगर आज नदीया नगर की भाँति जान पड़ता है। बालक-वृद्ध, नर-नारी, धनी और भिखारी सभी के मुख से 'निताइ, निताइ, निताइ, निताइ, निताइ बल भाई' की ध्वनि उठ रही है। जोगेश बाबू, अधर बाबू, रामगोपाल बाबू, अम्बिका बाबू, अश्विनी बाबू, हरिहर बाबू इत्यादि सभी नंगे बदन, नंगे पैर, धूल में सने, अश्रु विसर्जन करते और हाथ से ताली बजाते हुए नृत्य कर रहे हैं।

बाबाजी महाशय बिलकुल संज्ञाहीन हैं। क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, जिसे भी सामने पाते हैं उसे अपनी विशाल भुजाओं में भरकर 'निताइ' कहकर मानो निताइचाँद के श्रीचरणों में समर्पण कर देते हैं। यह भी मन्त्रमुग्धवत् 'निताइ, निताइ, निताइ, निताइ, निताइ, निताइ, बोल भाई' गाकर नाचने लगता है।

इस प्रकार रात्रि कोई नौ बजे सब लोग जोगेश बाबू के घर लौटे और कीर्तन समाप्त कर कुछ देर विश्राम किया। जोगेश बाबू की माँ और बहन ने पहले

1. उठाकर, 2. खरीद लो, 3. वृथा, 4. खोया, 5. झूमते हुए, 6. अश्रु बहाते हैं।

से ही नाना प्रकार के द्रव्य नारायण को भोग लगाकर तैयार कर रखे थे। सब बड़े आनन्द से प्रसाद पाकर हरिनाम करते–करते श्रीकण्ठ बाबू के बगीचे लौट आये।

श्रीकण्ठ बाबू की बगीची में

श्रीकण्ठ बाबू बगीची में परमानन्दपूर्वक दिन व्यतीत होने लगे। एक दिन कालीदास बन्द्योपाध्याय और नवद्वीपदास बगीचे के एक छोटे कमरे में हाथ से ताली बजा–बजाकर 'निताइ–गौरांग बिने आर गति नाइ' पद का कीर्तन कर रहे थे। क्रमशः एक–एक कर आठ–दस व्यक्ति वहाँ आकर कीर्तन में योग देने लगे। जब कीर्तन अच्छी तरह जम गया, तब सब लोग वहाँ जा उपस्थित हुए, जहाँ बड़े बाबाजी महाशय बहुत–से लोगों के साथ बैठे थे। बाबाजी महाशय और अन्य सभी लोग झट उठकर उनके साथ कीर्तन करने लगे। बहुत देर तक उद्दण्ड कीर्तन करने के पश्चात् बाबाजी महाशय ने पद उठाया—

**"निताइ मोदेर जीवनधन निताइ मोदेर जाति।
निताइ बिहने मोदेर आर नाहिं गति।।
संसार सुखेर मुखे तुले दिए छाइ।
नगरे मांगिया खाब गाइये निताइ।।
जे देशे निताइ नाइ से देशे ना जाब।
निताइ बैमुखीर मुख कभु ना हेरिब।।
काँधेर पैता जेमन ना छाड़े ब्राह्मन।
तेमति निताइ मोदेर सरबस धन।।
गंगा जार पद जल हर शिरे धरे।
हेन निताइ न भजिये दुःख पेये मरे।।
ताइ बलि भज भाइ गौरांग निताइ।
कलिभव एड़ते आर गति नाईं।।**

—निताइ हमारे जीवनधन और जाति–पाँति सब कुछ हैं। निताइ बिना हमारी गति नहीं। हम संसार सुख के मुख में राख झोंककर नगर–नगर, द्वार–द्वार माँगकर खायेंगे और 'निताइ, निताइ' गाते जायेंगे। जिस देश में निताइ नहीं, वहाँ कभी न जायेंगे। जिनके चरणों का जल शिवजी सिर पर धारण करते हैं ऐसे निताइ को न भजकर लोग वृथा दुःख से मरते हैं। इसलिए मैं कहता हूँ निताइ–गौर का भजन करो। कलिकाल में भवसागर से पार होने का और कोई उपाय नहीं।"

सब लोग कीर्तनानन्द में मतवाले हो रहे थे। कालीदास बाबू और बाबाजी महाशय एक दूसरे के गले में हाथ डालकर मधुर नृत्य कर रहे थे। अधर बाबू के गुरुदेव जो नैष्ठिक ब्राह्मण थे और गुरुगीरी जिनका पेशा था एक ओर खड़े कीर्तन सुन रहे थे और नेत्रों के जल से उनके मुख और वक्षःस्थल भीग रहे थे। एकाएक वे उच्च स्वर से रोदन करने लगे। किसी का वश नहीं था कि उन्हें स्थिर कर सकता। उन गेरुआ–वस्त्र–धारी, रुद्राक्ष–माला–विभूषित, सिन्दूर–तिलक शोभित, अतिदीर्घ, स्थूल–काय, शाक्त की आर्ति और उनका रज में लोट–पोट होते हुए उच्च स्वर से रोदन देख सब लोग विस्मयाविष्ट हो गये।

कीर्तन इतनी तन्मयता से हो रहा था कि किसी का किसी को स्थिर करने का प्रश्न ही नहीं उठता था। थोड़ी देर में कीर्तन समाप्त हुआ। परन्तु ब्राह्मण का रोना अभी बन्द नहीं। बाबाजी महाशय के इंगित से काली बाबू उनका सिर अपनी गोद में लेकर बैठ गये। थोड़ी देर में जब वे कुछ स्वस्थ हुए तो भरे कण्ठ से कहने लगे, "बाबा! मैं घोर अपराधी हूँ। निताइ–गौर भजने वाले लोगों पर मेरी प्रीति तो दूर रही, उन पर मेरी श्रद्धा भी न थी। आज आप दोनों के नृत्य के समय मैंने एक अपूर्व दर्शन किये। मैंने देखा कि जैसे ठीक निताइ–गौर दोनों भाई भाव में विभोर हो नृत्य कर रहे हैं। उनके दर्शनमात्र से मेरा कठिन हृदय द्रवित हो गया और चक्षु झुलस गये। मैं और अधिक न देख सका और मुझे नेत्र बन्द कर लेने पड़े। थोड़ी देर में आँखें खोलीं तो देखा कि वह अपरूप रूप नहीं है। यह क्या हुआ? आप लोग मेरे ऊपर कृपा करें।"

इतना कह वे और अधिक व्याकुल होकर रोने लगे। काली बाबू ने बहुत प्रकार से सान्त्वना वाक्यों से आश्वस्त कर उन्हें बिठाया। तब बाबाजी महाशय उन्हें दृढ़ आलिंगन कर अश्रु–गद्‌गद कण्ठ से कहने लगे "बाबा, आप माँ के विशेष कृपापात्र हैं। तभी अवतारों के सार निताइ–गौरांग देव के दर्शन आपको हुए हैं। नाम–नामी अभिन्न हैं। नाम रूप में वे साक्षात् वर्तमान है।"

ब्राह्मण—बाबा! नाम तो बहुत दिनों से सुन रहा हूँ। पर आज पर्यन्त कभी मेरा हृदय द्रवित नहीं हुआ। आपको जब से देखा है मेरे प्राण जैसे किसी एक अपूर्व भाव से विभाजित हो रहे हैं। जिन लोगों को मैंने आज तक अवज्ञा से देखा है आज अवनत मस्तक से उनकी पद-धूलि धारण करने की इच्छा हो रही है। उसे मैं नाम का प्रभाव कहूँ या आपकी शक्ति का?

बाबाजी महाशय—नाम सर्वशक्तिमान है। नाम के लिए असाध्य कुछ भी नहीं। भगवान् स्वयं भी जिस कार्य को नहीं कर सकते, वह नाम द्वारा अनायास सम्पन्न होता है। प्रमाण रूप में देखिये—त्रेता युग में रामचन्द्र सीताजी का उद्धार करने के लिए पुल बांधकर लंका गये थे, परन्तु हनुमान उन्हीं रामचन्द्र का नाम लेकर एक छलांग में समुद्र पार हो गये थे। द्वारका में सत्यभामा देवी ने उमाव्रत के उपलक्ष्य में देवर्षि नारद को कृष्ण के बराबर सोना तोलकर देने का संकल्प किया। उन्होंने तराजू के एक पलड़े पर कृष्ण को बिठाया और दूसरे पर बहुत-सा सोना रखने लगीं। पर वे जितना भी सोना रखतीं सोने वाला पलड़ा दूसरे पलड़े से ऊँचा ही रहा आता। यह देख वे बहुत संकट में पड़ गयीं। उन्होंने रुक्मिणीदेवी से परामर्श किया। रुक्मिणीदेवी ने तराजू पर से सारा सोना हटा दिया और उसकी जगह नामांकित एक तुलसी-पत्र रख दिया। तुलसी-पत्र के रखते ही वह पलड़ा झुक गया। इसीलिए कहता हूँ कि नाम की अपार महिमा है। नाम वृक्षादि स्थावर पदार्थों को भी नचा सकता है, मनुष्यों का तो कहना ही क्या।

इस प्रकार तत्वालोचना होते-होते मध्याह्न हो गया। सब लोग अपने-अपने घर गये। इन लोगों ने भी प्रसाद पाकर विश्राम किया। आगन्तुक दु:खी कंगाली लोगों को भी महाप्रसाद दिया गया। डेढ़ महीने तक इसी तरह नित्य चार-पाँच सौ व्यक्ति प्रसाद पाते रहे। कहाँ से नित्य प्रात:काल इतने लोगों के प्रसाद की सामग्री जुट जाती यह प्रभु ही जानें। पर बाबाजी महाशय जितने दिन कृष्णनगर में रहे दूसरे दिन के लिए कुछ भी संग्रह न करते, यहाँ तक कि जिस हंड़िया में रसोई पकती उसे भी फिकवा देते।

इस अलौकिक व्यापार को देख बहुत लोग बाबाजी महाशय की ओर आकृष्ट होने लगे। भाग्यवान श्रीकण्ठ बाबू का निवासस्थान आनन्द-कानन बन गया। आबाल-वृद्ध-वनिता, यहाँ तक कि घोर पाखण्डी लोग भी बाबाजी महाशय की महिमा गाने लगे। महात्मा लोग प्रतिष्ठा से डरते हैं। शायद इसी कारण अब बाबाजी महाशय कृष्णनगर में नहीं रहना चाहते थे।

एक दिन प्रात:काल वे चिन्ता में बैठे थे। उसी समय देवेन बाबू ने आकर पूछा, "दादा, आज इतने चिन्तित क्यों हैं?" वे बोले, "ना भाई, कोई विशेष बात नहीं, पर कृष्णनगर आये बहुत दिन हो गये, यही सोच रहा हूँ।" इसी समय जोगेश बाबू आकर बोले, "कल रविवार है। बहुत लोगों की इच्छा है कि आपके मुख से कुछ तत्वमीमांसा सुन शंका समाधान करें। यदि आपकी अनुमति हो तो सबको सूचित कर दूँ।"

अधर बाबू बोले, "देखिये, बहुत भीड़ होने से असुविधा होती है। ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये जिससे अनधिकारी लोग न आ सकें।" बाबाजी महाशय बोले, "भाई, मैं तो पहले ही कह चुका हूँ, जिसमें तुम्हारी सुविधा हो वैसा करो। मेरी सम्मति की कोई आवश्यकता नहीं।" तब जोगेश बाबू ने प्रसन्नतापूर्वक विशिष्ट लोगों को दूसरे दिन प्रात:काल वहाँ एकत्र होने को कहला भेजा।

रविवार को प्रात:काल जोगेश बाबू, अधर बाबू इत्यादि आठ-दस लोग बाबाजी महाशय के पास उपस्थित हुए और नाना प्रकार की तत्त्वसम्बन्धी बातें पूछने लगे। जोगेश बाबू बोले, "यथार्थ भगवत् स्वरूप क्या है? और दूसरे स्वरूपों के साथ उसका क्या सम्बन्ध है?"

बाबाजी महाशय—भगवत् स्वरूप सच्चिदानन्द मय है। भगवान् कौन हैं? इस प्रश्न को लेकर वेद, तन्त्र, पुराण, इतिहास, भागवत प्रभृति में बहुत विचार किया गया है। निर्धारित हुआ है कि श्रीकृष्ण ही स्वयं भगवान् हैं। श्रीमद्भागवत में कहा है—

एते चांशकला: पुंस: कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।

(भा० 1/4/28)

ब्रह्मसंहिता में—

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम्।।
यस्यैकनिश्वसितकालमथावलम्ब्य
जीवन्ति लोमविलजा जगदण्डनाथाः।
विष्णुर्महान् स इह यस्य कलाविशेषो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।

(ब्रह्मसंहिता 5/1/48)

अन्यत्र—

यदद्वैतं ब्रह्मोपनिषदि तदप्यस्य तनुभा
य आत्मान्तर्यामिपुरुष इति सोऽस्यांशविभवः।
षडैश्वर्यैः पूर्णो य इह भगवान् स स्वयमयं
न चैतन्यात् कृष्णाज्जगति परतत्वं परमिह।।

(चै.च.आ. 1/3)

यही कृष्ण विभिन्न स्थानों पर क्रिया और संगादि के भेद से पूर्ण, पूर्णतर और पूर्णतम रूपों में प्रकट होते हैं। वे श्रीधाम द्वारका में पूर्ण, मथुरा में पूर्णतर और श्रीवृन्दावन में पूर्णतम रूप से विराजमान हैं। इसलिए मैं श्रीकृष्णचन्द्र के पूर्णतम स्वरूप श्रीवृन्दावन विहारी का वर्णन करता हूँ।

श्रीचैतन्यचरितामृत में लिखा है—

सच्चिदानन्द तनु व्रजेन्द्रनन्दन।
सर्वैश्वर्य सर्वशक्ति सर्वरसपूर्ण।।
पुरुष जोषित किम्वा स्थावर-जंगम।
सर्वचित्ताकर्षक साक्षात् मन्मथ मदन।।

'सत्' शब्द का अर्थ है सन्धिनी अर्थात् सत्ता, 'चित् का अर्थ है संवित, अर्थात् ज्ञान और 'आनन्द' का अर्थ है ह्लादिनी, अर्थात् आह्लादकारी वृत्तिविशेष। इस सच्चिदानन्दमय विग्रह को ही भगवान् कहते हैं। यह स्वरूप से है नव-कैशोर नटवर, गोपवेश, वेणुकर, नवजलधर, श्यामकान्ति, पीताम्बरधारी और अखिल-रसामृतमूर्ति। अन्यान्य देवदेवीगण से इसका अंशांशी सम्बन्ध है, अर्थात् कोई इसकी चिद्विभूति है, कोई अंश, और कोई कलाविलास स्वरूप।

जोगेश—माया से श्रीकृष्ण का क्या सम्बन्ध है?

बाबाजी—माया कृष्णदासी अर्थात् श्रीकृष्ण की आज्ञापरा कार्यकारिणी अघटन-घटनपटीयसी शक्ति विशेष है।

जोगेश—जीव के साथ कृष्ण का क्या सम्बन्ध है?

बाबाजी—जीव है कृष्ण का नित्यदास।

जोगेश—जीव कृष्णदास है और माया भी कृष्णदासी है। फिर माया जीवों को बाँधकर इतना कष्ट क्यों देती है, और जीव के ऊपर उसका क्या अधिकार है?

बाबाजी—अच्छा देखो, तुम हो सबरजिस्ट्रार, सरकार के नौकर। यह हीरालाल बाबू हैं, पुलिस इन्सपेक्टर। यह भी सरकारी नौकर हैं। यदि तुम कानून के विरुद्ध कोई काम करो तो राजकर्मचारी होने के कारण क्या हीरालाल बाबू तुम्हें छोड़ देंगे? इसी प्रकार माया और जीव दोनों भगवत्दास हैं। जीव जब भगवदाज्ञा के विरुद्ध कोई काम करता है, तभी माया उसके हाथ पाँव बाँधकर नाना रूप से दण्ड देती है?

जोगेश—जीव ऐसा कौन-सा बड़ा अपराध करता है, जिसके कारण माया उसे इतना कष्ट देती है?

बाबाजी—जीव कौन-सा अपराध करता है, क्या बताऊँ? वह अभिमान में मत्त होकर प्रभु तक को भूल जाता है, और स्वयं प्रभु बन बैठता है। विचार करके देखो, प्राकृत राज्य में राजा के प्रति यदि कोई अवज्ञा सूचक शब्द भी कहता है, तो उसे कितना दण्ड दिया जाता है।

इसलिए यदि जीव जगत् के हर्ता-कर्ता-विधाता की अवज्ञा करे, तो उसे उचित दण्ड मिलना चाहिये या नहीं? श्रीचरितामृत में लिखा है—

'कृष्ण नित्यदास' जीव ताहा भूलि गेल।
एइ दोषे माया तारे गलाय बाँधिल।।
कभु स्वर्गे उठाय, कभु नरके डुबाय।
दंड्य जने राजा जेन नदी ते चुबाय।।

(चै.म. 22/24, 20/118)

जोगेश—इस प्रकार का दासत्व संसार-त्यागी साधुओं के लिए सम्भव है, किन्तु संसारी व्यक्ति यदि

कर्तृत्वाभिमान न करें तो उनका संसार कैसे चले? यदि सभी प्रभु के दास हैं यह मान लिया जाय तो अपने नौकर को काम-बिगाड़ने पर हम दण्ड कैसे दे सकते हैं, और दण्ड दिये बगैर काम भी कैसे चल सकता है?

बाबाजी—तुम्हारे पास कचहरी में जो चपरासी, अरदली और अन्यान्य नौकर-चाकर रहते हैं, उनमें से जब कोई अन्यायाचरण करता है, तब क्या तुम उसे दण्ड नहीं देते? और वह क्या तुम्हें अपना स्वामी नहीं मानता?

जोगेश—हाँ अवश्य मानता है, और अन्याय कार्य करने पर उसे दण्ड भी देना पड़ता है?

बाबाजी—अब विचार करो कि सरकारी कचहरी में तुम दोनों ही नौकर हो, पर फिर भी स्वामीरूप से चपरासी को दण्ड देना होता है। कचहरी के कर्मचारियों को जिस प्रकार ध्यान रखना पड़ता है कि सरकारी नियमों के अनुकूल कार्य न करने से दण्ड भोगना होगा, उसी प्रकार भगवत् संसार में रह कर हमें यह ध्यान रखना होगा कि भगवान् की आज्ञा के विरुद्ध कार्य करने से दण्ड के भागी होंगे। यह स्पष्ट है कि अभिमान ही दुःख की जड़ है। अभिमान और स्वेच्छाचारिता छोड़ कर जिस कार्य में भगवान् ने हमें नियुक्त किया उसे यदि प्राण देकर करते रहें तो संसार में चाहे कितना ही लिप्त क्यों न हो जायँ, माया कदापि हमारे ऊपर शासन नहीं कर सकती।

अम्बिका बाबू—प्रभु, मेरा एक प्रश्न है। यदि आज्ञा करें तो कहूँ?

बाबाजी—देखिये, मेरे सम्मुख कोई भी प्रश्न करने में आप संकोच न करें, क्योंकि मैं कोई पण्डित या महापुरुष तो हूँ नहीं। प्रभु मेरे हृदय में उदय होकर जो स्फूर्ति कराते हैं, वही आप से कह देता हूँ। इससे यदि आपको तृप्ति होती है तो मैं भगवत्-कौशल देखकर अपने को धन्य मानता हूँ।

अम्बिका बाबू—एक वैष्णव ने मुझसे कहा था कि जगत् में एकमात्र कृष्ण ही पुरुष हैं और सब प्रकृति। यह बात मेरी समझ में नहीं आयी, क्योंकि भगवान् ने ही तो पुरुष और प्रकृति—इन दो भागों में हमारी सृष्टि की है।

बाबाजी—अच्छा, आप लोग पण्डित हैं। यह बताइये कि प्रकृति और पुरुष का धातु-प्रत्ययगत अर्थ क्या हो सकता है?

अम्बिका बाबू—प्रकृति शब्द का धातुप्रत्ययगत अर्थ है प्रकृष्ट रूप से कार्यकारिणी शक्तिविशेष और पुरुष शब्द का अर्थ है जो पुर में वास अथवा शयन करते हैं और 'पुर' शब्द के देह, मन, बुद्धि इत्यादि और भी अनेक प्रकार के अर्थ हैं।

बाबाजी—बहुत ठीक, अब समझ लीजिये कि जो देह, मन, बुद्धि इत्यादि में वास या शयन करते हैं, अर्थात् जो निष्क्रिय, निर्लिप्त, निर्गुण और साक्षीस्वरूप हैं, उन्हीं को पुरुष कहते हैं। और प्रकृति कहते हैं उस प्रकृष्ट रूप से कार्य करने वाली शक्ति को, जो एक क्षण भी कार्य किये बिना नहीं रह सकती। पुरुष शब्दवाच्य परमात्मा स्थावर-जंगम, कीटपतंग, मनुष्य, पशु-पक्षी इत्यादि सब देहों में समभाव से वर्तमान हैं। इस प्रकार पुरुष शब्द का अर्थ तत्वतः अंशांशीरूप से सभी प्राणियों से है। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है—

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन् पुरुषः परः।।

(गी0 13/22)

पुरुष शब्द के इसी अर्थ के अनुसार वेदान्त शास्त्र में 'अहं ब्रह्मास्मि' वाक्य का प्रयोग हुआ है। 'प्रकृति' शब्द का अर्थ भगवान् की उस प्रधान शक्ति से है, जिससे दृश्यादृश्य, चेतन-अचेतन जगत् की सृष्टि हुई है।

इसी कारण हम प्राकृत जगत् के प्राकृत जीव हैं। हममें से जो पुरुषपने का अभिमान करते हैं, उनसे मैं पूछता हूँ कि क्या हम क्षणमात्र को भी पुरुष की भाँति निष्क्रिय, निर्लिप्त और निर्गुण भाव से रह सकते हैं? हमारे हाथ पैर बँधे रहने पर भी हमारा मन देशदेशान्तर की यात्रा करता रहता है। इसीलिए गीता में भगवान् ने कहा है—

'न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्'

(गी0 3/5)

इसीलिए शास्त्र में ब्रह्मा और शंकर से लेकर कीट-कीटाणु तक सभी जीवों को प्रकृति कहा है और 'पुरुष' शब्द का प्रयोग केवल भगवान् के लिए किया है।

भगवान् ने निज मुख से कहा है—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनोबुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्।।
सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्त्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद् योनिरहं बीजप्रदः पिता।।

यदि कहो कि 'पुरुष' और 'प्रकृति' शब्दों का व्यावहारिक अर्थ इस प्रकार नहीं है, तो व्यवहार की बात दूसरी है। व्यावहारिक अर्थ केवल व्यवहार के लिए होता है। उसका तत्त्व से कोई सम्बन्ध नहीं होता। व्यवहार में यदि 'पुरुष' शब्द का प्रयोग अनादिकाल से स्त्री के लिए होता रहता और 'स्त्री' शब्द का प्रयोग पुरुष के लिए होता रहता, तो आज हमारे उसी प्रकार के संस्कार होते और हम उन्हीं अर्थों में इन शब्दों का प्रयोग करते। देखिये, हमारे देश में पिता को बाबा और पितामह को ठाकुरदादा कहते हैं और वृन्दावन में पिता को दादा और पितामह को बाबा कहते हैं। उड़ीसा में माँ को 'बौ' कहते हैं और हमारे यहाँ पुत्रवधु को 'बौ' कहते हैं। इसी प्रकार उड़ीसा में ब्राह्मणगण पिता को 'नना' कहते हैं और दूसरी जाति के लोग बड़े भाई को 'नना' कहते हैं। व्यावहारिक अर्थ के इस पार्थक्य का क्या तात्विक दृष्टि से कोई मूल्य हो सकता है? 'पुरुष' शब्द का वास्तविक अर्थ है विषय या आश्रयी और 'प्रकृति' का अर्थ है आश्रय। सबका मूल आश्रयी एक है। आश्रय अनेक हैं। देखिये व्यावहारिक दृष्टि से भी यही बात सिद्ध होती है। यदि आप किसी छोटे-से संसार के स्वयं कर्ताधर्ता हैं तो आप उसे कहते हैं अपनी सृष्टि, अपना संसार या अपनी प्रकृति और आप कहलाते हैं उसके पालनकर्ता, स्वामी या आश्रयदाता (आश्रयी) और आपके जमींदार या राजा इसी प्रकार से आपके सम्बन्ध में आश्रयी होते हैं और आप उनके सम्बन्ध में प्रकृति। यह क्रम उसी प्रकार चलता रहता है जिस प्रकार पुत्र और पिता का क्रम चलता रहता है और जैसे अन्त में सबका एक आदि-पिता होता है और सब उसके पुत्र होते हैं, उसी प्रकार एक 'आदि-पुरुष' और सब उसकी 'प्रकृति' हैं। वह आदि-पुरुष हैं श्रीगोविन्द।

पुरुष और प्रकृति की यह आलोचना सुन कर जोगेश बाबू आदि सब बहुत सन्तुष्ट हुए। बाबाजी महाशय के स्नानादि का समय हो आया। इसलिए सबने दण्डवत् प्रणामपूर्वक उनसे घर जाने की आज्ञा ली।

नगरकीर्तन और हरिलूट

तीसरे पहर फिर जोगेश बाबू, अधर बाबू प्रभृति बाबाजी महाशय के पास आये और उनसे नगर-कीर्तन में चलने का अनुरोध किया। बाबाजी महाशय सबको लेकर नगर-कीर्तन को निकले। इससे पहले कृष्णनगर में इस प्रकार का नगर-कीर्तन बहुत कम हुआ करता था। इसलिए जब कभी खोल करताल की ध्वनि सुन पड़ती, आबाल-वृद्ध-वनिता सभी अपना-अपना काम छोड़ कीर्तन में सहयोग देने लगते। आज भी ऐसा ही हुआ। नगरवासी सभी प्रेमोन्मत्त हो एक स्वर से गा रहे हैं 'आबार बल हरिनाम आबार बल' और एक-दूसरे से कह रहे हैं, "अहा! आजका कीर्तन कितना सुन्दर है। ऐसा आनन्द तो और कभी नहीं मिला। आज नाम की ध्वनि कितनी मधुर लग रही है, प्रतिक्षण नूतन-सी प्रतीत हो रही है। आज की नृत्य-भंगि कितनी मधुर है। भाव तरंग भी कितनी मधुर है और कितनी मधुर है अभिनव पद-स्फूर्ति। सुनते ही मन और प्राण मानो किसी अप्राकृत जगत् में विलीन हो जाते हैं।"

जिस-जिस मार्ग से होकर कीर्तनमण्डल जा रहा है उसी के आबाल-वृद्ध-वनिता के हृदय को भेदकर एक नवीन सुनिर्मल भाव का संचार कर रहा है। कोई नहीं जानता कि आज संकीर्तन के नेता बाबाजी महाशय अपने प्राणधन निताइ-गौर को लेकर कौन-सी लीला करना चाहते हैं।

धीरे-धीरे कीर्तन शहर के एक हिस्से में पहुँचा। शान्तिपुरवासी भुवनमोहन नामक भक्त मन में कुछ विचार कर अपने साथियों से कहने लगे, "यह कीर्तन

मण्डली यदि मेरे घर आकर मेरी मनोकामना पूर्ण करे तो समझूँगा कि ये बाबाजी अन्तर्दृष्टिसम्पन्न कोई महापुरुष हैं।"

भुवनमोहन बाबू के यह कहने की देर थी कि कीर्तनमण्डली देखते-देखते उनकी गली में जा पहुँची। भुवनमोहन बाबू ने कुछ आगे बढ़कर कीर्तनसमूह को दण्डवत की। वैसे ही बाबाजी महाशय ने उन्हें आलिंगन किया और प्रसन्न भाव से नाचते-नाचते उनके घर में प्रवेश किया। भुवन बाबू के घर में एक छोटा-सा तुलसी का थामला था। उसके चारों ओर नाच-नाचकर उच्च स्वर से कीर्तन होने लगा। कीर्तनकारी भक्तों के आनन्द की सीमा न रही। वे कभी तो उन्मत्त भाव से कीर्तन करते-करते भूमि पर लोटने लगते और कभी 'हरिबोल-हरिबोल' कहकर उद्दण्ड नृत्य करने लगते। सभी आनन्द में विह्वल हैं। किसी को बाह्यस्मृति नहीं। भक्तों की भीड़ बढ़ती जा रही है। घर में तिल भर भी जगह नहीं रही। कितने ही लोग घर के बाहर खड़े होकर कीर्तन सुन रहे हैं।

एक भावोन्मत्त व्यक्ति एकाएक 'माँ माँ' कहकर रोते हुए संकीर्तन के बीच में प्रवेश कर नृत्य करने लगा। उसकी भावगति देख सब लोग आश्चर्यान्वित हो गये और थोड़ी देर में उसे घेरकर कीर्तन करने लगे। किन्तु बाबाजी महाशय स्थिर भाव से एक ओर खड़े थे। धीरे-धीरे जैसे कीर्तन का वेग बढ़ता जा रहा था यह व्यक्ति और उच्च स्वर से 'माँ माँ' पुकार रहा था। थोड़ी देर में वह वाताहत केले के वृक्ष की भाँति भूमि पर गिर गया और लोट-पोट करता हुआ बाबाजी महाशय के निकट पहुँच उनके चरण पकड़ कर अचेत हो गया। अचेत अवस्था में वह बाबाजी महाशय के दाहिने पैर की वृद्धांगुली जोर-जोर से चूसने लगा। उसके मुख की कोरों से ठीक स्तनदुग्ध के समान दुग्ध-धारा बहने लगी। न जाने यह दाता की इच्छा का फल था या भोक्ता की। उस संज्ञाहीन व्यक्ति का मुख पुलकित था। उसके मुख को देख जान पड़ता था कि वह परमानन्द उपभोग कर रहा है। उस समय बाबाजी महाशय के नेत्र रक्तवर्ण और अर्धमुद्रित थे। सब देखकर अवाक्! जब उस भावाविष्ट व्यक्ति को चेत हुआ, वह उठकर कहने लगा, "अहो, आज मैं धन्य हुआ। युगयुगान्तर तक तपस्या करने पर भी जो वस्तु लाभ नहीं होती आज इन महापुरुष की कृपा से मुझे अनायास प्राप्त हुई। बाल्यकाल में माँ के स्तन का दुग्ध पीकर भी वह आस्वादन और परितृप्ति प्राप्त न कर सका जो आज हुई। इनकी कैसी अपूर्व करुणा है। कैसी अलौकिक शक्ति है। सब लोग प्रत्यक्ष रूप से दुग्धधारा देख और उसके मुख से यह शब्द सुनकर विस्मय सागर में डूब गये।"

भुवन बाबू की इच्छा थी कि कीर्तन समाप्त कर सब थोड़ा विश्राम करें, परन्तु उनके मन का भाव था कि वे कुछ न कहें और महापुरुष अपनी इच्छानुसार जो करें वही हो। कीर्तन समाप्त कर बाबाजी महाशय 'गौर हरि बोल' ध्वनि लगा रहे थे। उसी समय भुवनमोहन बाबू एक शालपत्र के दोने में सवापाँच आने के बताशे लाकर बाबाजी महाशय से बोले, "बाबा, हरि-लूट* भी तो देनी होगी।"

तब बाबाजी महाशय ने मृदु-मुस्कान के साथ दोना भुवन बाबू के हाथ से ले लिया और गाने लगे—

"आयरे तोरा लुट्बि के आय।
आमार दयाल निताइ अमिया बिलाय।।
श्रीगौरांग सुधार आधार रे,
निताइचाँद ताँर अंग आधा रे।
चाँदे चाँदे मिशे दुटि चाँद,
एसे उदय हल नदीयाय।
परम दयाल गौरांग निताइ,
एमन दयाल आर तो देखि नाइ।।
(जीवेर) द्वारे द्वारे काँदिये काँदिये,
हरिबोले धूलाते लुटाय।
(निताइ) माथाय लये प्रेमेर गागरी,
डेके बले बल गौर हरि।

* बंगाल में ऐसी प्रथा है कि कीर्तन समाप्त होने पर हरिध्वनि के साथ कुछ मिष्ठान्न लुटाया जाता है, जिसे 'हरि लूट' (हरिर-लुट) कहते हैं। भक्तगण बड़े प्रेम से लूट-लूटकर इसे महाप्रसाद मानकर पाते हैं। ऐसा माना जाता है कि हरि-ध्वनि के साथ लुटाये जाने से यह महाप्रसाद में परिणत हो जाता है।

(आबार) गोरा गोरा बले ढुलिये ढुलिये,
जतइ ढाले तत बेड़े जाय।।"

—आओ लूटो, हमारे दयालु श्रीनित्यानन्द अमृत लुटा रहे हैं। श्रीगौरांग प्रेमरूपी सुधा के आधार हैं, श्रीनिताइ उनके आधे अंग हैं। दोनों चन्द्रमा के समान सुन्दर, हृदय को शीतल करने वाले हैं। दोनों चन्द्रमा एक साथ नदीया में उदय हुए हैं। अहा! कैसे दयालु हैं दोनों। ऐसे दयालु प्रभु और क्या कभी देखे हैं? द्वार-द्वार पर जाकर रो-रोकर हरिनाम लेते और धूल में लोटते हैं। निताइ प्रभु सिर पर प्रेम की गगरी रखे पुकार-पुकार कर कह रहे हैं 'बोलो गौर हरि' और 'गोरा गोरा' कहकर प्रेमामृत ढुलका रहे हैं। जितना ढुलकाते हैं, उतना ही बढ़ता जाता है वह अपूर्व, अलौकिक प्रेम रस।

सब गान के साथ-साथ नृत्य कर रहे हैं। बाबाजी महाशय के बायें हाथ में बताशों का दोना है। वे दाहिना हाथ ऊपर उठा कर नृत्य कर रहे हैं और कभी-कभी उसी हाथ से 'गौर हरिबोल' पुकारकर बताशे लुटाते जाते हैं। सभी हरि-लूट के बताशे उठा-उठाकर खा रहे हैं। बाबाजी महाशय चारों ओर घूम-घूमकर बताशे लुटा रहे हैं। जो लोग बाहर खड़े कीर्तन सुन रहे हैं, वे भीतर आकर हरिलूट के बताशे लूटने के लिए विशेष रूप से व्यग्र हो रहे हैं। यह देख करुणामय बाबाजी महाशय प्रधान द्वार के पास जाकर मार्ग में बताशे लुटाने लगे।

सब परितृप्त और परमानन्दित हो रहे हैं। 'लूट' शब्द मानो मूर्तिमान हो गया है। छोटे बड़े का कोई भेद नहीं। कोई किसी के हाथ से बताशे छीन रहा है, कोई भूमिपर गिरने से पहले ही उन्हें लपक रहा है। कोई आँचल फैलाकर बताशे लेने की चेष्टा कर रहा है; कोई उदारतावश लूट कर दूसरों को बताशे दे रहा है, और कोई प्रेमावेश में दूसरों के मुख में बताशे ठूँसे दे रहा है। परन्तु बाबाजी महाशय किसी ओर ध्यान न देकर अर्धमुद्रित नेत्रों से केवल बताशे लुटाते जा रहे हैं। इस प्रकार बताशे लुटाते-लुटाते प्राय: एक घण्टा हो गया, परन्तु शालपत्र का दोना पहले की भाँति परिपूर्ण! यह देख सब अवाक्! सब कर दूसरे से समालोचना कर रहे हैं। बाबाजी महाशय को अपने प्रतिष्ठा का भय हो आया। उन्होंने दोना एक ओर फेंक दिया।

भुवन बाबू आत्महारा हो बाबाजी महाशय के चरण पकड़ कर रोते-रोते बोले, "आज मैं धन्य हुआ। मैं कभी स्वप्न में भी आशा नहीं करता था कि मेरे जैसे पाखण्डी के घर ऐसा अनिर्वचनीय आनन्द होगा। आप करुणामय हैं। आपकी करुणा से आज इस अधम जीव ने एक नया जीवन लाभ किया।"

बाबाजी महाशय ने हँसते हुए कहा, "सब कुछ परम दयालु निताइचाँद का खेल है" और पूर्ववत् नाम करते-करते मण्डली सहित मार्ग पर अग्रसर हुए। धीरे-धीरे संध्या हो गयी। भीड़ का कुछ ठिकाना न रहा। नगरवासी अपनी इच्छा से हाथों में लालटेन ले कीर्तन में योग देने लगे। संकीर्तन जिस मार्ग से गया था उसे छोड़ और नये-नये मार्गों से होकर वापस आ रहा था। ठीक किस रास्ते से जाना है, कोई नहीं जानता था। किसी को इस बात की चिन्ता भी न थी। किन्तु बाबाजी महाशय सुपरिचित व्यक्ति के समान आगे-आगे नृत्य करते जा रहे थे। इस प्रकार थोड़ी देर में सब घर लौट आये। कुछ देर वहाँ कीर्तन करने के पश्चात् कीर्तन समाप्त किया।

कृष्णनगर में पदचिह्न

एक दिन सन्ध्या समय नाना प्रकार के कथोपकथन के पश्चात् जोगेश बाबू ने बाबाजी महाशय से कहा, "दादा! माँ की इच्छा है कि कल मेरे यहाँ आप लोग प्रसाद पायें और सन्ध्या पीछे कीर्तन करें।" बाबाजी महाशय बोले, "अच्छी बात है।" जोगेश बाबू प्रसन्न हो घर लौट आये और माँ से सारा हाल कह सुनाया।

दूसरे दिन ग्यारह बजे के लगभग बाबाजी महाशय स्नानादिक समाप्त कर नाम-कीर्तन करते-करते जोगेश बाबू के घर पहुँचे, और उनकी वात्सल्यमयी माँ के अनुरोध से कुछ समय विश्राम कर प्रसाद पाने बैठे। जोगेश बाबू की बहन बोलीं, "दादा, सभी लोग आपको महापुरुष कहते हैं। पर हमें तो आज तक आपने कोई अलौकिक घटना नहीं दिखाई।"

बाबाजी—दीदी! मैं एक साधारण मनुष्य हूँ। मेरे अन्दर अलौकिकता कहाँ? यदि तुम्हें कुछ देखने की इच्छा है तो परम दयालु लीलामय निताइ-गौरांग से प्रार्थना करो। वे चाहें तो सभी कुछ दिखा सकते हैं।

जोगेश बाबू की माँ—तुम महापुरुष हो या देवता, मुझे तुमसे कुछ ऐसा स्नेह हो गया है कि मेरा तुम्हारे प्रति वही भाव रहता है जो जोगेश के प्रति है।

बाबाजी—माँ! यह भाव बड़ा मधुर है। मैं भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि मेरे प्रति आपका यह भाव चिरदिन रहे।

इस प्रकार कथोपकथन के साथ सबने आनन्दपूर्वक प्रसाद पाकर विश्राम किया। तीसरे पहर चार बजे के लगभग बहुत-से लोग आने लगे। उसी समय नवीनचन्द्र मुखोपाध्याय के पुत्र गोकुलगोपाल मुखोपाध्याय ने आकर दण्डवत् प्रणाम किया। और अधीर हो रोने लगे। बाबाजी महाशय बोले, "स्थिर होकर नाम करो भाई। नाम की अपार महिमा है। कलियुग में नाम छोड़कर और किसी प्रकार गति नहीं है। नाम के आभासमात्र से मुक्ति होती है।"

एक बार हरिनामे जत पाप हरे।
पातकीर साध्य नाइ तत पाप करे।।

गोकुल बाबू बोले, "क्या भगवान् के नामों में किसी प्रकार का तारतम्य भी है?"

बाबाजी—बाबा! एक व्यक्ति के यदि दस नाम हों तो कोई भी नाम लेकर पुकारो वह उत्तर देता है। इसी प्रकार भगवान् के हरि, राम, कृष्ण, गोपाल, गोविन्द, मुकुन्द इत्यादि नाम हैं। रुचि के अनुसार तुम्हें जो नाम भी अच्छा लगे उसे पुकारने से वे अवश्य कृपा करेंगे। परन्तु रसनिष्ठ व्यक्ति के लिए नाम का तारतम्य है।

गोकुल—वह कैसे?

बाबाजी—व्रजरस के उपासकों को द्वारकानाथ, रुक्मणीवल्लभ, यादवेन्द्रचूड़ामणि, वैकुण्ठनायक इत्यादि नामों से शान्ति नहीं मिलती और व्रजरस के उपासकों में भी विशेष रस के उपासकों को विशेष प्रकार के नामों में रुचि होती है, जैसे, सखागण 'भाई कन्हैया' 'भाई गोपाल' इत्यादि नामों से सुख प्राप्त करते हैं, और गोपिकाओं को गोपीनाथ, गोपीवल्लभ, व्रजेन्द्रनन्दन, वनमाली, श्यामसुन्दर इत्यादि नाम छोड़कर दूसरे नाम अच्छे नहीं लगते। गोपियों में भी जो श्रीमती राधिका के आश्रित हैं वे राधारमण, राधावल्लभ, मदनमोहन प्रभृति नामों से आकृष्ट होती हैं। कितनी ही विपदा आने पर भी वे इन नामों को छोड़ दूसरा नाम नहीं लेतीं। नाम में रुचि के अनुसार रस का परिचय मिलता है। किन्तु जो नाम व रस आपको प्रिय न हों उनके प्रति द्वेषभाव रखना उचित नहीं। जिसका जो भाव है उसके लिए वही सर्वोत्तम है। निन्दाशून्य हृदय और नम्रभाव से किसी एक नाम और रस में निष्ठा रख उपासना करनी चाहिये।

गोकुल—बहुत-से वैष्णव काली, दुर्गा, शिव प्रभृति का नाम नहीं जपते। ऐसा क्यों?

बाबाजी—केवल इतने से ही वैष्णवता का परिचय नहीं मिल जाता। जो कृष्ण उपासना करना चाहते हैं उन्हें सबसे पहले शिव और शक्ति की उपासना करनी चाहिये। गोपियों ने कात्यायनी व्रत कर कृष्ण को प्राप्त किया था। महादेव श्रीवृन्दावन में गोपेश्वर नाम धारण कर वास करते हैं। उनकी करुणा न हो तो किसी प्रकार कृष्णप्राप्ति व व्रजरस प्राप्ति नहीं हो सकती। शास्त्र में कहा है—

"सर्वदेव पूजिबे ना हबे तत्पर।
सबार निकट मेगे लबे इष्टभक्ति वर।।"

—पूजा सब देवताओं की करो, पर तत्पर न हो। सबसे इष्ट-भक्ति की प्रार्थना करो।

'तत्पर' शब्द से तात्पर्य है कृष्ण-कामना छोड़ अन्य कामनाओं के वशीभूत हो उन कामनाओं की पूर्ति करने वाले देवी-देवताओं को सर्वेश्वर व सर्वेश्वरी मान उनकी सेवा करना। इसलिए शास्त्र का कहना है कि सब देवताओं की सेवा-पूजा करनी चाहिये, परन्तु उन्हें सर्वेसर्वा मानकर उनके द्वारा अपनी कामना पूर्ति कराने हेतु नहीं, बल्कि कृष्ण-भक्ति प्राप्त करने के हेतु; और उनसे यही प्रार्थना करनी चाहिये।

यह तो हुई शास्त्र की बात। युक्ति से भी देखो, माता-पिता नाना प्रकार से कन्या का लालन-पालन

कर उपयुक्त पात्र को उसे समर्पण कर देते हैं। परन्तु क्या कन्या माता-पिता की अवज्ञा करने लगती है? या उन्हें भूल जाती है? शिव और शक्ति हैं हमारे पिता और माता। उनकी कृपा से हमें कृष्ण प्राप्ति होती है। और उनकी अवज्ञा करने से कृष्ण को खो देने में भी देर नहीं लगती।

इस प्रकार कथोपकथन करते सन्ध्या हो गयी। इधर जोगेश बाबू ने बैठक से कुर्सी मेज आदि हटा गंगाजल से उसे स्वच्छ कर धूपबत्ती इत्यादि से सुगन्धित और सुसज्जित किया।

धीरे-धीरे भक्तगण एकत्र होने लगे। बाबाजी महाशय ने साथियों सहित खोल-करतालादि ले उस कमरे में प्रवेश किया और आरति-कीर्तन के पश्चात् पद-कीर्तन आरम्भ किया।

गौरांगचाँदेर मने कि भाव उठिल।।
मंडली बंधन छाँड़े नृत्य आरम्भिल।।
सुमधुर गान करे 'मुरारि मुकुन्द'।
मृदंग मन्दिरा बाजे परम आनन्द।।
नाटुआ ठमके नाचे गौरांगसुन्दर।
चारिदिके नाचे जत प्रिय सहचर।।
दक्षिणे निताइ नाचे बामे गदाधर।
सम्मुखे करये नृत्य अद्वैत ईश्वर।।
गदाधरेर बामे नाचे श्रीवास नरहरि।
चौषट्टि महान्तगण नाचे घुरि घुरि[1]।।
रामाइ नन्दाइ नाचे द्वादश गोपाल।
सबेइ विभोर भावे नाहिक सझाल[2]।
श्रीवासमन्दिर भेल[3] महारासस्थली।।
भक्तमंडली भेल गोपिकामंडली।।
सबेइ गायेन हरे कृष्ण हरे राम।
भुवन मंगल गोरा नाचये सुठाम।।

सब मतवाले हो उद्दण्ड नृत्य के साथ गाने लगे 'भुवन मंगल नाम, हरे कृष्ण, हरे राम।' बाबाजी महाशय प्रेम में विह्वल हो गये और गद्गद् कण्ठ से गाने लगे—

निताइ गौरांग नाचे जेन[4] राधाश्याम।
सबेइ गायेन हरे कृष्ण हरे राम।।
एहेन[5] गौरांग पेते[6] जदि थाके[7] आश।
एकान्त भावे ते हओ नित्यानन्ददास।।
मुखेओ जे जन बले मुञि[8] नित्यानन्ददास।
शेइ[9] शे देखिबे गोरार स्वरूप प्रकाश।।
गोपीगणेर जेइ प्रेम कहे भागवते।
एकला नित्यानन्द हैते पाइबे जगते।।
नित्यानन्द प्रेमदाता गौरांग परमधन।
रासविलासे पाबे श्रीराधारमण।।
हरे कृष्ण हरे राम नाम तरी[10] आरोहणे[11]।
संसार-सागर पार चलो वृन्दावने।।
निताइ रंगिया मोर निताइ रंगिया।
भावे मातोयारा[12] सब संगेर संगिया।।
एइ जे आमार निताइ नाचे भावेते विभोर।
आचंडाल जारे पाय धरे देय कोल[13]।।

गाते-गाते बाबाजी महाशय बेसुध हो गये। दोनों नेत्रों से मानो श्रावण की वर्षा होने लगे। पुलक के कारण शरीर मानो साम्हर के वृक्ष के समान हो गया। थोड़ी देर में हवा के झोंके से गिरे कदली वृक्ष के समान कम्पित हो भूमि पर गिर पड़े। भक्तगण चारों ओर घूम-घूम कर नृत्य करने लगे और उनके श्रीअंग में भावसन्धि, भावशावल्य इत्यादि देख आश्चर्यान्वित हो गये। कभी शरीर स्तम्भित हो जाता और ऐसा लगता कि प्राणशून्य है और कभी हास्य, रोदन, कम्प और पुलक होने लगते।

यह देख भक्त कहने लगे, "मनुष्य देह में ऐसे अद्भुत भाव-विकार हमने कभी सुने भी नहीं। किसी को संकीर्तन में मूर्छित होते देख हम उसकी हंसी उड़ाते थे और कहते थे कि यह ढोंग कर रहा है। पर आज इनकी अवस्था देख हम विस्मय में पड़ गये हैं।" बाबाजी महाशय को घेर कर बहुत समय तक भक्तों के कीर्तन करने के पश्चात् जब उन्हें अर्धबाह्य दशा प्राप्त हुई, वे गद्गद कण्ठ से गाने लगे, 'भज निताइ गौर, पाबे राधेश्याम। जप हरे कृष्ण हरे राम।' भक्तगण भी बाबाजी महाशय के सुर में सुर मिलाकर उच्च कण्ठ से गाने लगे।

---

1. घूम घूमकर, 2. संभाल, 3. हुआ, 4. जैसे, 5. ऐसे, 6. पाने की, 7. हो, 8. मैं, 9. वह, 10. नौका, 11. चढ़कर, 12. मतवाला, 13. आलिंगन करते हैं।

रात्रि प्राय: दस बजे के समय किसी को भी देह स्मृति न रही। एक दल के लोग कहते 'भज निताइ गौर पाबे राधेश्याम' तो दूसरे कहते 'जप हरे कृष्ण हरे राम।' दोनों मानो एक दूसरे को परास्त करने के लिए प्राण खोलकर कीर्तन कर रहे थे और प्रेम में विह्वल हो उद्दण्ड नृत्य कर रहे थे।

बाबाजी महाशय एक दीवार के सहारे खड़े थे। उनके अर्धमुद्रित नेत्रों से अश्रुधार बह रही थी। शरीर पुलकायमान था और मुख पर अलौकिक मृदु मुसकान। वे दाहिने हाथ की तर्जनी अंगुली उठा, न जाने क्या देख-देख भाव में विभोर हो झूम रहे थे। साथ ही घर के भीतर जितने भक्त थे सब एक अपूर्व अलौकिक सुघ्राण का अनुभव कर मतवाले हो रहे थे और विस्मित हो देख रहे थे कि यह सुघ्राण कहाँ से आ रही है।

इसी प्रकार की और भी अलौकिक घटनाएँ होने लगीं, जिन्हें देख लोगों का मन कुछ बाह्यानुसन्धान में लग गया। रात को प्राय: बारह बजे अन्तर्यामी बाबाजी महाशय ने भक्तों को थका जान मानो अपनी बहिर्विस्तृत शक्तियों को कुछ संकुचित कर अन्तरनिविष्ट किया। पर कीर्तन समाप्त होने पर भी वे पूर्ववत् दीवार के सहारे भावाविष्ट अवस्था में खड़े रहे। एक भक्त ने उन्हें दण्डवत् प्रणाम करते समय देखा कि आँसू और पसीने का जल मिलकर चरणों तक बहता हुआ नीचे गिर रहा है। दो तीन भक्त पंखे से हवा करने लगे। थोड़ी देर में कुछ बाह्यदशा को प्राप्त होने पर वे कमरे से बाहर आकर बैठ गये।

इधर एक भक्त ने आकर देखा कि बाबाजी महाशय जिस स्थान पर खड़े थे, वहाँ दो चिह्न ठीक उनके चरणचिह्नों के अनुरूप पड़े हैं और उनमें कुछ पसीने का जल संचित है। कौतूहलवश उसने एक कपड़े से उस चिह्न को मिटाना चाहा, परन्तु वह किसी प्रकार न मिटा, अपितु और उज्ज्वल होता गया।

धीरे-धीरे इस घटना का सब भक्तों को पता चला और इसे लेकर विशेष आन्दोलन होने लगा। जोगेश बाबू बार-बार अन्दर जाकर दूसरे लोगों को उस पद-चिह्न के दर्शन कराते और फिर बाबाजी महाशय के पास आकर बैठ जाते। उनसे बहुत कुछ कहने की इच्छा करते, परन्तु हृदय का भाव हृदय में ही रह जाता। कुछ कह न पाते। एकदम से अम्बिका बाबू कमरे से बाहर निकलकर बाबाजी महाशय से बोले, "देखिये! आप जिस स्थान पर खड़े कीर्तन कर रहे थे, वहाँ फर्श के ऊपर ठीक आपके पदचिह्न के समान दो चिह्न पड़ गये हैं। इसका क्या तात्पर्य हो सकता है?" बाबाजी महाशय ने प्रतिष्ठा के भय से उन्हें डाँट-डपटकर किसी प्रकार समझा देना चाहा, परन्तु इस शिक्षित समाज में बाबाजी महाशय का यह प्रयत्न हाथ से सूर्य को ढकने के प्रयत्न के समान निष्फल रहा। स्वप्रकाश वस्तु निरपेक्ष भाव से प्रकाशित होने लगी।

उस रात्रि जोगेश बाबू ने भोजन की विशेष रूप से व्यवस्था की थी। इसलिए प्रसाद सेवन करने का कार्य बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुआ। भक्तगण पदचिह्नों की बात करते-करते आनन्दपूर्वक अपने-अपने घर चले गये। बाबाजी महाशय ने उस रात्रि भक्त-मण्डली सहित वहीं विश्राम किया।

प्रभात होते-होते जोगेश बाबू के घर उन पद-चिह्नों का दर्शन करने बहुत-से लोग आने लगे। सारे नगर में पद-चिह्नों की चर्चा होने लगी। कोई-कोई कहते, "नवद्वीप के ये बाबाजी अवश्य कोई महापुरुष हैं। विलायती मिट्टी के बने फर्श पर इस प्रकार का पद-चिह्न पड़ जाना क्या कोई साधारण बात है? और एक आश्चर्य की बात यह है कि जोगेश बाबू के बैठकखाने में जाते ही उन बाबाजी महाशय के दर्शन मात्र से कोई कैसा भी पाषण्डी क्यों न हो, उसका भी हृदय द्रवीभूत हो जाता है।" परन्तु काल के विचित्र प्रभाव से कोई-कोई इस घटना को प्रत्यक्ष देखकर भी बाबाजी महाशय पर विश्वास न करते और कहते, "यह बाबाजी तो ठीक ही जान पड़ते हैं, परन्तु इनके द्वारा साधारण लोगों का उपकार न होकर अपकार होने की सम्भावना है; क्योंकि जिस प्रकार कालेज के छात्र पढ़ना लिखना छोड़ इनके पीछे मतवाले हो रहे हैं, उससे आसार कुछ अच्छे नहीं दीखते। नवीन बाबू के पुत्र गोकुल बाबू तो कभी घर पर भी रहते हैं या नहीं, इसमें सन्देह है।" कोई कहते, "हाँ, इसमें बच्चों को फुसलाने का एक विशेष गुण

दीखता है। वे बच्चों को भगा ले जाने वाला बाबाजी जान पड़ता है।"

बाबाजी महाशय प्रात: उठकर खोल करताल के साथ 'निताइ गौरांग, निताइ गौरांग, निताइ गौरांग गदाधर। जय शचीनन्दन जगजीव तारन, कलिकलुष नाशन अवतार।।' का कीर्तन करते–करते नवद्वीप जाने के उद्देश्य से स्नान करने के लिए खड़े नदी की ओर चल दिये। एक तो प्रात:काल के समय मन वैसे ही निर्मल रहता है, दूसरे सुमधुर कण्ठ से मधुमय नाम–संकीर्तन सुन जनसाधारण के प्राण स्वाभाविक रूप से उन्मत्त हो उठे। धीरे–धीरे बहुत–से लोग आकर कीर्तन में योगदान करने लगे और कीर्तन का प्रवाह इतना बढ़ गया कि बाबाजी महाशय उस दिन नवद्वीप न जा सके। कदाचित् निताइचाँद को और भी कुछ लीला दिखानी थी।

जोगेश बाबू और अन्यान्य राज्यकर्मचारी भी राज्यकार्य भूलकर कीर्तन में सम्मिलित हो गये। किसी को कार्यालय जाने की सुधि ही न रही। यह किसकी मोहिनी शक्ति थी? नाम की या नाम कीर्तनकारी महापुरुष की? यदि कहो कि नाम की तो नाम तो नित्य ही होता है, परन्तु इस प्रकार की आत्म–विस्मृति देखने में नहीं आती। इसमें सन्देह नहीं कि नाम सर्वशक्तिमान है, परन्तु जिस प्रकार काँच जितना स्वच्छ और शक्तिशाली हो उतना ही प्रकाश फेंकता है, उसी प्रकार आधार जितना ऊँचा होता है, उतनी ही नाम की शक्ति उसके द्वारा प्रकाशित होती है।

पद–चिह्न की घटना के सम्बन्ध में पाठकों के हृदय में स्वाभाविक रूप से अनेक प्रकार के विचार उदय हो सकते हैं। बहुत लोग तो इसे कल्पना ही समझेंगे, परन्तु जिन लोगों ने बाबाजी महाशय की शक्ति का तनिक भी अनुभव किया है, उनके लिए यह एक अति सामान्य घटना है। इस घटना को केवल तेइस–चौबीस वर्ष हुए हैं और आज भी बहुत से भक्त हैं, जिन्हें इसका प्रत्यक्ष हुआ है। बारह वर्ष तक यह चिह्न स्पष्ट था, परन्तु हमारे दुर्भाग्य के कारण, या इच्छामय की अपनी इच्छा के कारण, नाना प्रकार के अनाचारों के कारण इन महापुरुष के अप्रकट होने के दो तीन वर्ष पीछे ही यह धीरे–धीरे विलीन हो गया; क्योंकि जोगेशबाबू की बदली हो जाने के बाद वह मकान किराये पर उठा दिया गया और सभी तरह के अनधिकारी लोग उसमें रहने लगे। उनके लिए इस अप्राकृत चिह्न की मर्यादा की रक्षा करना कठिन था। इसलिए चिह्न धीरे–धीरे अन्तर्हित हो गया। बाबाजी महाशय के कुछ शिष्यों ने उस चिह्न को कपड़े से ढककर उसे लोगों के पैरों के नीचे आने से रोकने का प्रयत्न किया और उसे किसी प्रकार फर्श तोड़कर वहाँ से हटाना भी चाहा। उनका यह प्रयत्न असफल रहा, परन्तु किसी–किसी ने रंग से कपड़े पर उसकी छाप लेकर रख छोड़ी है।

बाबाजी महाशय ने जोगेश बाबू की ओर दृष्टिपात कर पूछा, "तुम्हारा दफ्तर है न? समय बहुत हो गया है।" जोगेश बाबू बोले, "आप ही जानें प्रभु।" बाबाजी महाशय ने हँसकर और नाना प्रकार से प्रबोधन कर किसी प्रकार उन्हें विदा किया और स्वयं घर लौटकर स्नानादि कर विश्राम किया।

जोगेश बाबू की एक अपूर्व दशा हो रही है। वे नाममात्र को ऑफिस जाते हैं। साथियों से बात करते समय कुछ का कुछ कह जाते हैं और फिर नम्रता पूर्वक कहते हैं, "भाई मेरी बात का ख्याल न करना।" सोते–जागते केवल 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' नाम का जप स्वत: होता रहता है।

कृष्णनगर में प्राय: डेढ़ महीने से केवल बाबाजी महाशय के सुमधुर कीर्तन, सुललित अनोखी नृत्यभंगि, अपूर्व भाव–तरंग, सुमिष्ट व्यवहार और मृदु वचनों की समालोचना हो रही है। जहाँ भी दो व्यक्ति एकत्र होते हैं केवल यही चर्चा करते हैं। आज से चर्चा का एक और भी विषय हो गया है। नित्य जोगेश बाबू के घर बहुत–से लोग पदचिह्न के दर्शन करने आते हैं। एक दिन देवेन्द्र बाबू बोले, "दादा, सचमुच बैठकखाने में पक्के फर्श पर आपके पदचिह्न पड़ गये हैं।" बाबाजी महाशय बोले, "भाई यह सब निताइचाँद का खेल है। वही जानें, इस विषय में किसी व्यक्ति विशेष को लक्ष्य करना ठीक नहीं।"

दिग्नगर यात्रा

बाबाजी महाशय देवेन्द्र बाबू से बोले "देखो भाई, कृष्णनगर में बहुत दिन हो गये, यहाँ और ठहरना ठीक नहीं।" देवेन्द्र बोले "यहाँ के लोगों की जो अवस्था हो रही है, उसे देख ऐसा जान पड़ता है कि इन्हें बताकर यहाँ से शीघ्र चलना कठिन होगा। चलिये, आज दिग्नगर चलें।" बाबाजी महाशय देवेन्द्र बाबू का प्रस्ताव स्वीकार कर उसी क्षण 'भज निताइ गौर राधेश्याम। जप हरे कृष्ण हरे राम' कीर्तन करते-करते बाहर निकले। जोगेश बाबू और अन्यान्य भक्तों ने जब अपने-अपने कार्यालयों से लौटकर देखा कि बाबाजी महाशय कीर्तन लेकर बाहर निकले हैं तो सब समझे कि वे नगरकीर्तन को जा रहे हैं। परन्तु जब कीर्तन धीरे-धीरे पश्चिम की ओर जाने लगा, तब सभी निराश होकर चित्रवत् खड़े रह गये। कई लोग बहुत दूर तक कीर्तन के साथ चलते रहे। परन्तु बाबाजी महाशय ने बहुत प्रकार से समझा-बुझाकर उन्हें विदा किया और आप दिग्नगर की ओर चल दिये। महापुरुषों का हृदय कुसुम से भी अधिक कोमल और वज्र से भी अधिक कठोर होता है। कृष्णनगरवासी नर-नारियों को आशा थी कि अभी कुछ दिन और वे उस अननुभूतपूर्व चिन्मय आनन्द का उपभोग करेंगे। परन्तु प्रभु की इच्छा से उनकी वह आशा पूर्ण न हो सकी। कृष्णनगर आज निरानन्दमय है। जो परमानन्दित हृदय से नित्य की भाँति बाबाजी महाशय के दर्शन करने गये थे, वे दु:खी होकर अपने-अपने घर लौट आये। बाबाजी महाशय सदलबल कीर्तन करते-करते दिग्नगर ग्राम में पहुँचे।

सुमधुर संकीर्तन ध्वनि सुन सातगाछिया-निवासी श्रीयुत् विपिनविहारी गोस्वामी महाशय के भांजे श्रीयुत् राधिकाप्रसाद चक्रवर्ती महाशय बाहर निकले, बाबाजी महाशय और देवेन बाबू के दर्शन मात्र से आनन्दित हो विशेष आग्रहपूर्वक संकीर्तन-मण्डली को अपने घर ले गये। ग्रामवासी अनेक लोग आकर इकट्ठा होने लगे। श्रीयुत् राधिकाप्रसाद चक्रवर्ती का घर आज आनन्द-भवन में परिणत हो गया। रात्रि प्राय: नौ बजे कीर्तन समाप्त कर सब विश्राम करने लगे। राधिका प्रसाद चक्रवर्ती ने जब बाबाजी महाशय से प्रसादादि की व्यवस्था के सम्बन्ध में पूछा तो बाबाजी महाशय बोले, "इस सम्बन्ध में देवेन दादा जो कुछ कहेंगे वही होगा।" देवेन्द्र बाबू राधिका चक्रवर्ती के साथ परामर्श कर रहे थे, उसी समय श्रीयुत् पूर्णचन्द्र गोस्वामी महाशय बोले, "मेरी इच्छा है कि मैं रसोई बनाकर निताइ का भोग लगाऊँ।" यह सुन राधिका चक्रवर्ती प्रसन्न हो भोग की सामग्री इकट्ठा करने लगे।

इधर कई सज्जन नाना रूप से परस्पर कथोपकथन कर रहे थे। एक बोले, "बड़े दु:ख की बात है, मुसलमानों ने हमारे उस प्राचीन वट वृक्ष की एक ओर की सारी डालें काट दी हैं। न जाने कब से हम उस वृक्ष की देवता के समान पूजा करते आये हैं।" परन्तु वे हमारे भाव का तनिक भी आदर न कर कहते हैं, "हिन्दुओं के देवता तो सभी जगह हैं। एक देवता दिखाओ तो जानें।" बाबाजी महाशय बोले, "क्या बात है भाई?" यह सुनकर एक सज्जन बोले, "हमारे दिग्नगर के सरकारी मार्ग की एक ओर प्रकाण्ड वट-वृक्ष है। उसे हम जन्म से ही इसी प्रकार देख रहे हैं। मुसलमानों ने ताजिया निकालने के समय उसकी डालें काट दीं।"

बाबाजी—यहाँ पर मुसलमानों के कोई मौलवी हैं?

सज्जन—नहीं प्रभु, यहाँ कोई मौलवी नहीं है। खोसचाँद नाम का एक फकीर है, जो बड़ा दुष्ट है। पर हाराधन मण्डल नाम का एक प्रधान मुसलमान है, जो इन लोगों से कुछ सभ्य है। सब लोग उसकी बात मानते हैं।

बाबाजी—आप लोग मंगलमय प्रभु से प्रार्थना कीजिये। वही इसका प्रतिविधान करेंगे। युग-युगान्तर से ऐसा होता आया है।

बातचीत करते-करते रात अधिक हो गयी और सबने प्रसाद पाकर विश्राम किया।

संकीर्तन में कल्पतरु-नृत्य

बाबाजी महाशय अगले दिन अति शीघ्र प्रात: कृत्य समापन कर 'भज निताइ गौर राधेश्याम जप हरेकृष्ण हरे राम।' कीर्तन करते-करते गाँव में निकल

लिये हैं। नाम-कीर्तन की यह नवीन धुन सुन धीरे-धीरे बहुत-से ग्रामवासी एकत्र हो गये हैं। पर बाबाजी महाशय का किसी ओर लक्ष्य नहीं। वे अर्धमुद्रित नेत्रों से नाचते-नाचते और कीर्तन करते चले जा रहे हैं। थोड़ी देर में पूर्वोक्त वटवृक्ष के निकट जा पहुँचे, और उसकी परिक्रमा तथा दण्डवत् प्रणाम कर मुसलमानों की बस्ती की ओर चल दिये।

कोई-कोई ग्रामवासी बोले, "ये कीर्तन लेकर मुसलमानों के मुहल्ले में जा रहे हैं। न जाने आज क्या होगा।" कोई बोले, "ये अपरिचित हैं, किन्तु देवेन्द्र चक्रवर्ती तो अपरिचित नहीं, वे जानते हैं कि मुसलमानों के मुहल्ले में कीर्तन ले जाने से अपमानित होना होगा।" एक ने कहा, "चलो हम उन्हें उस ओर जाने से मना करें।" दूसरे ने कहा, "जाने भी दो न, देखें क्या होता है?" पर कौन किसकी सुनता है।

बाबाजी महाशय एक परिचित व्यक्ति की भाँति कीर्तन करते-करते ठीक हाराधन मण्डल के घर पहुँच गये। हाराधन घर में ही था। अकस्मात् घर में बहुत-से लोगों को देख किंकर्तव्यविमूढ़ भाव से बाहर आया। कीर्तन मण्डली शिक्षित सैनिकों के समान उसे घेरकर कीर्तन करने लगी। सब प्रेम में उन्मत्त और बाह्यस्मृति-रहित हो कीर्तन कर रहे थे। एकाएक बाबाजी महाशय ने हाराधन को लक्ष्य कर कहा, 'बोल निताइ गौर राधेश्याम।'

हाराधन—बोल निताइ गौर राधेश्याम।

बाबाजी—बोल बेटा, हरे कृष्ण हरे राम।

हाराधन—बोल बेटा, हरे कृष्ण हरे राम।

बाबाजी—बोल बेटा, निताइ गौर राधेश्याम।

हाराधन—बोल बेटा, निताइ गौर राधेश्याम।

इस प्रकार प्रायः पन्द्रह मिनट तक जिस स्वर में जो शब्द बाबाजी महाशय कहते, हाराधन भी मन्त्रमुग्ध की भाँति उसी स्वर में वही शब्द दोहराता रहा। हाराधन के शरीर पर श्रमबिन्दु झलक रहे थे, नेत्रों से अश्रुधार निरन्तर बह रही थी। उसके दाहिने हाथ में रंग-बिरंगी स्फटिक की जपमाला थी और पैरों में खड़ाऊँ। इसी अवस्था में वह दोनों हाथ उठा कर नृत्य करने लगा। तब बाबाजी महाशय ने आनन्द में नृत्य करते-करते अधीर भाव से उसे आलिंगन किया। उसी समय वह अचेत हो भूमि पर गिर पड़ा। बाबाजी महाशय ने उसके मस्तक को अपनी गोद में रख कान में मन्त्र प्रदान किया। मन्त्र देते ही उसका शरीर कम्पित हो उठा। वह भूमि पर लोट-पोट होने लगा। फिर उठकर धूलिधूसरित देह से नृत्य करने लगा।

उसके परिवार के लोग यह देख अवाक्! उपस्थित ग्रामवासी बीच-बीच में 'हरिबोल' की ध्वनि लगाते हुए सतृष्ण नेत्रों से इस अद्भुत व्यापार को देख विस्मय-सागर में निमग्न। थोड़ी देर में हाराधन के पैर की खड़ाऊँ निकल गयी। हाथ की माला गिर पड़ी। वह संज्ञाहीन अवस्था में बाबाजी महाशय की ओर टकटकी लगा न जाने क्या कह कर नृत्य करने लगा।

बाबाजी महाशय धीरे-धीरे प्रेमानन्द में नाचते हुए पूर्वोक्त वट-वृक्ष की ओर चल दिये। संगी-साथी सब नाम करते-करते उनके पीछे हो लिये। हाराधन भी चुम्बकाकृष्ट लोहे के समान आत्महारा हो उनके पीछे-पीछे चलने लगा। मानो वह बहुत दिन के खोये हुए धन को प्राप्त कर आज अपने को ही खो बैठा। कुल मर्यादा, स्त्री-पुत्रादि की ममता, साम्प्रदायिकता इत्यादि उसके हृदय से दूर हो गये।

वटवृक्ष के नीचे पहुँचते ही सब लोग नाम करते-करते उसकी परिक्रमा देने लगे। थोड़ी देर में देखते हैं कि वृक्ष की जिस-जिस डाल के नीचे कीर्तन मण्डली जाती है, वह कीर्तन की ताल के साथ पत्तों सहित हिलने लगती है और उससे छोटे-छोटे जल-बिन्दु टपकने लगते हैं। दर्शकों ने पहले तो समझा किसी पशु-पक्षी के कारण ऐसा होता है। परन्तु यह भ्रम देर तक न टिक सका, क्योंकि यह प्रत्यक्ष था कि ये लोग कीर्तन करते-करते जिस डाल के नीचे जाते थे, उसी डाल की यह अवस्था होती थी। हिन्दू या मुसलमान, जो भी वहाँ उपस्थित थे, आश्चर्य से उस घटना को देख रहे थे, दूसरों को दिखा रहे थे और मुग्ध होकर बाबाजी महाशय की अलौकिक शक्ति की प्रशंसा कर रहे थे।

धीरे-धीरे हिन्दू-मुसलमान, बालक-वृद्ध, नर-नारी सभी 'भज निताइ गौर राधेश्याम। जप हरे कृष्ण

हरे राम।' कीर्तन करते-करते वृक्षराज की परिक्रमा करने लगे। वह वृक्ष मानो आज कल्पवृक्ष में परिणत हो गया। उसके पत्ते-पत्ते में आनन्द का संचार हो गया। नाम-कीर्तन के प्रभाव से उसमें अश्रु, कम्प और नृत्य आदि उत्तरोत्तर बढ़ते गये।

विद्युत की भाँति नगर के कोने-कोने में शोर हो गया कि कहीं से एक महापुरुष आये हैं, जिनके कीर्तन के प्रभाव से वटवृक्ष नृत्य कर रहा है। चारों ओर से भाग-भाग कर लोग इस दृश्य को देखने आने लगे। कोई स्नान करते जाते समय हाथ में अंगोछा लिये, कोई स्नान करते-करते भीगे वस्त्र पहने, कोई पानी का कलसा सिर पर रखे भागा चला आ रहा है। रास्ते में जिसे भी देखता है उससे पूछता है—"अरे भाई! क्या सचमुच पेड़ नाच रहा है? कीर्तन अब भी हो रहा है? हाराधन क्या कर रहा है? क्या और भी मुसलमान वहाँ हैं?" इन प्रश्नों का उत्तर सुन वह और भी तेजी से वृक्ष की ओर भागने लगता है।

देखते-देखते वृक्ष के नीचे इतनी भीड़ लग गयी कि तिल रखने का स्थान न रहा। एकाएक बाबाजी महाशय कीर्तन-मण्डली से निकल वृक्ष के तने में एक सन्धिस्थल के पास जाकर खड़े हो गये, जो दोनों ओर से वृक्ष की लटकती हुई जटाओं से घिरा होने के कारण एक सुन्दर गुफा या मन्दिर-जैसा लगता था। बाबाजी महाशय ज्यों ही दोनों हाथ ऊपर कर उसके अन्दर खड़े हुए, चारों ओर से हरिध्वनि और जयध्वनि होने लगी। कीर्तन करने वाले और भी उच्च स्वर से कीर्तन करने लगे। वृक्षराज भी मानो हर्ष में भर और अधिक नृत्य करने लगे। दर्शकगण सतृष्ण नेत्रों से बार-बार वृक्षराज और उसके तने में खड़े महापुरुष के दर्शन कर अधीर होने लगे। ऐसा लगता था कि वृक्षराज मूर्तिमान साधुरूप से दो डालों के रूप में अपने दोनों हाथ निकाल कर इन महापुरुष को अपनी गोद में ले प्रेमानन्द में विभोर हो उद्दण्ड नृत्य कर रहे हैं।

ग्यारह बजे के लगभग बाबाजी महाशय कीर्तन करते-करते वृक्ष के नीचे से चल दिये। उस समय हाराधन रोते-रोते बोला, "मेरी क्या गति होगी? मैं अब घर में न रहूँगा। कृपाकर मुझे अपने साथ ले चलिये। मेरे लिए दूसरा कोई उपाय नहीं है।"

बाबाजी—देखो भाई, परम दयालु निताइचाँद ने तुम्हारे ऊपर कृपा की है। यदि तुम इस वृक्ष के प्रति और अत्याचार न करो तो तुम्हारे लिए कुछ भी भय नहीं। आज से इस वृक्ष का नाम 'कल्पतरु' हुआ। इसके पास आकर जो कोई भक्तिपूर्वक जिस वस्तु के लिए प्रार्थना करेगा, वह उसे अनायास प्राप्त होगी। तुम प्रतिज्ञा करो कि अब कभी इसके ऊपर आघात नहीं करोगे।

हाराधन—मैं आपके पैर छूकर शपथ लेता हूँ। मेरा तो कहना ही क्या, मेरी वंशावली में-से जो कोई इस पर आघात करेगा उसका वंश न रहेगा।

बाबाजी—मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। करुणामय निताइचाँद तुम्हारे ऊपर कृपा करें। मैं तुमसे अपना धर्म छोड़ने के लिए नहीं कहता। पर तुम किसी का अनिष्ट न करना, किसी भी धर्म के प्रति द्वेष व हिंसा का भाव न रखना। किसी भी प्राणी को उद्वेग न देना और गोवध न करना। और याद रखना कि तुम्हारे या किसी और के ऊपर कोई विपत्ति आये तो इस कल्पतरु की जड़ में दूध और गंगाजल देने से तथा इसके नीचे घी का दीपक जलाने से दूर हो जायगी। अब घर जाओ। मैं जब तक इस ग्राम में रहूँ, इसी स्थान पर आकर मिला करो।

इतना कह बाबाजी महाशय ने हाराधन को आलिंगन किया और 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' कीर्तन करते-करते ग्राम में प्रवेश किया।

ग्राम में जहाँ भी दो आदमी जुटते हैं, वटवृक्ष के नाचने की चर्चा करते हैं। कोई कहता है "बाबाजी कोई भौतिक मन्त्र जानते हैं, जिससे भूत आकर पेड़ नचाने लगता है।" कोई कहता है, "भाई इस पेड़ पर बहुत-से बन्दर रहते हैं। कीर्तन सुनकर वह भागने लगते हैं। तभी इसकी डालें हिलती हैं।" कोई कहता है, "ऐसा लगता है कि उस मण्डली का कोई आदमी पेड़ पर छिप कर बैठ जाता है और यह करतूत करता

है।" यह सुनकर दूसरा बोल उठता है, "यह बिल्कुल असम्भव है। यदि ऐसा होता तो हम सब लोग वहाँ उपस्थित थे। क्या हमारी आँखें बन्द थीं?" दूसरा कोई गर्व से कहता है, "क्या रखा है इन बातों में, यदि नाम करने से पेड़ नाचने लगता तो असम्भव ही क्या रह जाता? फिर वहाँ समझदार व्यक्ति ही कितने थे? सब अन्धविश्वासी ही तो थे। यदि हमें कोई साक्षात् दिखला सके तो हम जानें।" इस प्रकार तरह-तरह की समालोचना होने लगी। भिन्नरुचिर्हि लोकः।

धीरे-धीरे यह बातें बाबाजी महाशय के कान तक पहुँची। उनका स्वभाव था कि किसी के कितनी ही निन्दा करने पर अथवा अपशब्द पर भी दुःखित न होते। परन्तु साधु, शास्त्र, गुरु, वैष्णव, नाम व श्रीमूर्ति की तनिक भी निन्दा सुनते तो जैसे भी हो निन्दक व्यक्ति के हृदय में प्रकृत तत्त्व की उपलब्धि कराने की चेष्टा करते। आज नाम की शक्ति का अपमान होते देख उनका हृदय पीड़ित हो उठा और उपस्थित सज्जनों को लक्ष्य कर बोले, "देखिये, नाम सर्वशक्तिमान है, सामान्य पेड़-पत्थर नचाना तो साधारण बात है। इस सम्बन्ध में यदि किसी को कोई सन्देह हो तो कीर्तन के साथ चले, उसका सन्देह दूर होगा।"

दूसरे दिन प्रातःकाल बाबाजी महाशय ने कीर्तन आरम्भ किया, तो कीर्तन की ध्वनि सुनते ही अनेक लोग उपस्थित होने लगे। संकीर्तन मण्डली नगर भ्रमण करते हुए करीब साढ़े नौ बजे जैसे ही कल्पतरु के नीचे पहुँची, उसके ऊपरवाली शाखा पूर्ववत् कीर्तन की ताल के साथ नाचने लगी। समालोचकगण विशेष रूप से अनुसन्धान करने पर भी जब पेड़ के नाचने का कोई कारण स्थिर न कर सके तो बाबाजी महाशय से बोले, "देखिये, यदि कोई इस पेड़ पर चढ़कर परीक्षा करना चाहे तो आपको कुछ आपत्ति तो नहीं होगी?" उन्होंने उत्तर दिया "आपत्ति तो कुछ भी नहीं। पर ब्राह्मण छोड़कर और कोई न चढ़े तो अच्छा है।"

तब दस बारह वर्ष के दो ब्राह्मण बालकों को पेड़ पर चढ़ाकर उनसे कहा गया, "देखो, अच्छी प्रकार देख-भालकर बताओ कि पेड़ पर कोई पक्षी, बानर इत्यादि तो नहीं है।" जब कुछ भी न दीख पड़ा तो सबने एक मत होकर स्वीकार किया कि केवल नाम की शक्ति के अतिरिक्त और कोई कारण नहीं हो सकता। एक व्यक्ति ने कहा, "नाम तो सभी करते हैं, पर मैंने आजतक ऐसी आश्चर्यजनक घटना नहीं देखी। मुझे विश्वास होता है कि ये निश्चय ही कोई महापुरुष हैं। हम लोग कीर्तन लेकर मुसलमानों के मुहल्ले में जाने से कितना भय खाते हैं। परन्तु उस दिन हाराधन मण्डल की दशा देखी? देखो, इस समय भी वह नाम करते-करते और नेत्रों से अश्रु बहाते इधर चला आ रहा है।" दर्शकगण सभी वृक्षराज का नृत्य, बाबाजी महाशय का प्रेमोन्मत्त भाव और हाराधन मण्डल की दशा देख मुग्ध हो गये।

इस प्रकार बहुत समय तक कीर्तन कर कोई बारह बजे बाबाजी महाशय ने कीर्तन के साथ ग्राम में प्रवेश किया।

नित्य सात दिन तक इसी तरह वटवृक्ष के नीचे कीर्तन होता रहा और वृक्षराज भी परमानन्द से कीर्तन करते रहे।

एक दिन राधिका चक्रवर्ती ने बाबाजी महाशय से पूछा, "प्रभु, वटवृक्ष तो और भी बहुत हैं और उनके नीचे कीर्तन भी होता है, परन्तु इस प्रकार की अद्भुत घटना तो और कहीं सुनने में नहीं आती। इस वटवृक्ष में क्या विशेषता हैं? यह जानने की मेरी बड़ी इच्छा है।"

बाबाजी—ये एक महापुरुष हैं, जो किसी कारण वृक्ष योनि प्राप्त कर बहुत दिनों से यहाँ वास कर रहे हैं। नाम-कीर्तन सुनकर प्रेमानन्द से नृत्य करते हैं। जो इनके प्रति आन्तरिक श्रद्धा-भक्ति का भाव रखेगा, उसे अवश्य प्रेमभक्ति लाभ होगी और जो विपत्ति के समय इन्हें दूध गंगा-जल चढ़ायेगा, उसे वांछित फल की प्राप्ति होगी।

राधिका—वृक्षों में ज्ञान व दर्शन श्रवणादि शक्ति होती है?

बाबाजी—होती क्यों नहीं? यदि न होतीं तो पृथ्वी से रस खींचकर कैसे अपनी पुष्टि करते और वृद्धि प्राप्त करते? श्रुति में लिखा है '**वृक्षः पश्यति स्वादयति च**'। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि यदि

एक वृक्ष से दस-पन्द्रह हाथ दूर कोई लता उग आये तो उसकी गति वृक्ष की ओर ही होती है और चेष्टा करने पर भी उसकी गति को नहीं रोका जा सकता। इससे स्पष्ट है कि उसके अन्दर जीवनी शक्ति है। इसलिए हमारे पूर्वजनों ने बेलपत्र, तुलसीपत्र इत्यादि तोड़ने के समय क्षमा-प्रार्थनायुक्त मन्त्रों के उच्चारण का उपदेश किया है और बिना कारण किसी वृक्ष के शाखा पल्लवादि तोड़ने का विरोध किया है। शास्त्रों में ऐसा भी उल्लेख है कि भगवान् या भगवद्भक्तों के प्रति अपराध हो जाने के कारण किसी-किसी को वृक्षयोनि मिली है और कर्म समाप्त होने पर फिर नरदेह की प्राप्ति हुई है। जैसे नलकुबेर और मणिग्रीव दो भाई नारद के अभिशाप से अर्जुनवृक्ष के रूप में वृन्दावन में और राजा रन्तिदेव गुरु वशिष्ठदेव के कोप के कारण शालवृक्ष के रूप में चित्रकूट पर्वत पर वास करते थे।

राधिका—किन-किन कारणों से जंगम जीव स्थावरत्व को प्राप्त होता है?

बाबाजी—इसके अनेक कारण हैं। उदाहरण रूप से यदि कोई भागवतशास्त्र, श्रीगुरुदेव, ब्राह्मण, साधु, वैष्णव, श्रीमूर्ति, नाम, महाप्रसाद, चरणामृत, चरणतुलसी, अतिथि एवं आरत्रिकादि को उपस्थित देख अभ्युत्थान, अभिवन्दन, प्रणाम, अभ्यर्थना, और अनुगमन न कर स्थिर भाव से खड़ा रहे, तो वृक्षत्व, बैठा रहे तो पाषाणत्व, और सोता रहे तो अजगरत्व को प्राप्त होता है। हम अज्ञानवश यह नहीं जानते कि कौन किस देह से स्थावरत्व को प्राप्त हुआ है। इस कारण सभी को भक्ति के नेत्रों से देखना हमारा कर्त्तव्य है।

इस प्रकार पन्द्रह-सोलह दिवस पर्यन्त कीर्तनानन्द में और नानाविध कथोपकथन में व्यतीत हुए।

शान्तिपुर-गमन

एक दिन प्रातःकाल बाबाजी महाशय प्रातःकृत्य समापन कर साथियों सहित प्रभाती सुर में 'भज निताइ गौर राधेश्याम। जप हरे कृष्ण हरे राम।।' नाम गाते हुए चल पड़े। बहुत-से ग्रामवासी आकर और भी कुछ दिन दिग्नगर रहने के लिए विशेष अनुरोध करने लगे। उन्होंने विनयपूर्वक सबसे विदा माँगी और शान्तिपुर की ओर चल दिये। कोई नौ बजे के लगभग शान्तिपुर के दक्षिणी भाग में श्रीअद्वैतप्रभु के आराधना-स्थल 'बाबला' नामक स्थान में जा पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही अद्वैतप्रभु की उपासना की स्मृति जाग उठी और वे उच्च स्वर से रोदन करते-करते मूर्छित हो भूमि पर गिर पड़े। एकदम से उनकी ऐसी अवस्था देख साथी लोग उन्हें पकड़कर व्याकुल भाव से जोर-जोर से कीर्तन करने लगे। कुछ देर में उन्हें अर्धबाह्य अवस्था प्राप्त हुई और वे बैठकर नाम में आखर देने लगे—

भज निताइ गौर राधेश्याम। (भज जीव अविराम) (गदाइ श्रीवास प्राणाराम) (श्रीअद्वैत गुणधाम) (गौर आना ठाकुर आमार)

यह गाते-गाते एकाएक कूदकर खड़े हो गये और फिर गाने लगे—

जय जय अद्भुत, सो पहुँ[1] अद्वैत,
सुरधुनि सन्निधाने।
आँखि मूदि रहे, प्रेमे नदी बहे,
बसन तितिल[2] घामे[3]।।
निज पँहु मने, घन गरजने,
उठे जोड़े-जोड़े लम्फ[4]।
डाके[5] बाहु तुलि[6], काँदे[7] फुलि फुलि[8],
देहे विपरीत[9] कम्प।।
अद्वैत हुंकारे, सुरधुनि तीरे,
आइला नागरराज।
ताँहार पिरिते, आइला तुरिते,
उदय नदीया माझ[10]।।
जय सीतानाथ, करल[11] बेकत[12],
नन्देर नन्दन हरि।
कहे वृन्दावन, अद्वैत चरण,
हियार माझारे धरि[13]।।

(सीतानाथेर जय दाओ भाइ) (परम दयाल पतितपावन) (निताइ गौर आना ठाकुर[14]) इत्यादि।

1. प्रभु, 2. भीगा, 3. पसीने में, 4. कूदना, 5. पुकारते हैं, 6. उठाकर, 7. रोते हैं, 8. फूट-फूटकर, 9. अद्भुत, 10. में, 11. किया, 12. व्यक्त, 13. हृदय में धारणकर, 14. महाप्रभु गौरांग को लाने वाले ठाकुर।

अश्रु-कम्प पुलकादि सात्विक विकारों ने पूर्ण रूप से बाबाजी महाशय के शरीर पर अधिकार जमा लिया। उपस्थित भक्तवृन्द भाव में विभोर हो कीर्तन सुन रहे हैं। बीच-बीच में बाबाजी महाशय की नाम धुन और प्रेमहुंकार सुन उन्हें बोध होने लगता है कि फिर से शान्तिपुर में श्रीअद्वैतचन्द्र प्रकट हुए हैं, फिर से जीवों की दुर्दशा देख सीतानाथ श्रीअद्वैत प्रभु के प्राण रो उठे हैं। फिर से वह शुभ दिन आ गया है, फिर से निताइ गौर ने अपने करुणा-कटाक्ष से सबके हृदयक्षेत्र को सींचकर प्रेमोन्मत्त किया है, नहीं तो यह प्रेम की बाढ़ और कहाँ से आती।

बालक, वृद्ध, नर-नारी सभी अनिर्वचनीय आनन्द सागर में निमग्न हैं। इस प्रकार बहुत समय तक कीर्तन कर बाबाजी महाशय प्रेमाविष्ट दशा में भूमि पर लोट-पोट होने लगे। एक जटाधारी साधु उस स्थान का पुजारी था। उसी ने उस दिन सबके प्रसाद की व्यवस्था की। प्रसाद पाकर सबने विश्राम किया।

सुन्दरानन्ददास से मिलन

सन्ध्या से कुछ पूर्व एक जटाधारी, विभूतिभूषित, गौरवर्ण, सुदीर्घकाय गेरुआवस्त्रधारी संन्यासी ने आकर बाबाजी महाशय से पूछा, "आप लोग बंगाली हैं?"

बाबाजी—हाँ महाराज!

साधु—आप हिन्दी भाषा नहीं समझते।

बाबाजी—जी, हम बंगला छोड़ दूसरी भाषा नहीं जानते। (साधु बंगला में इनके साथ कथोपकथन करने लगा।)

साधु—आपका कौन-सा सम्प्रदाय है?

बाबाजी—हम लोग गौड़ीय वैष्णव अर्थात् श्रीश्रीगौरांगदेव के मतावलम्बी हैं।

साधु—चैतन्यदेव तो गेरुआवस्त्रधारी, शिखा-सूत्र-माला-तिलकादि चिह्न-रहित भारती सम्प्रदायभुक्त दशनामी संन्यासी थे। उनके मतावलम्बी होकर आप लोग माला, तिलक, शिखा एवं शुभ्र वसत्र क्यों धारण करते हैं?

बाबाजी—श्रीगौरांगदेव हैं पूर्ण-पूर्णतम भगवान्। उनकी आज्ञा पालन करना हमारा कर्तव्य है, उनके आचरण का अनुकरण करना नहीं। शास्त्र में कहा है 'ईश्वराणां वचः सत्यं तथैवाचरणं क्वचित्।' महाजनगण भी अपनी आज्ञानुकूल कार्य करने को कहा करते हैं, अपने आचरण के अनुकूल करने को नहीं। हाँ, यदि कोई ईश्वर के सदृश आचरण कर सके तो ठीक है। किन्तु पहले पूतना, अघासुर, बकासुर प्रभृति असुर-वध, कालिय-दमन एवं गोवर्द्धनधारण करने की शक्ति रखे, तभी रासविहारी बन सकता है। महाप्रभु का अनुकरण करने वाला व्यक्ति यदि जगाइ-मधाइ, प्रकाशानन्द सरस्वती, वासुदेव सार्वभौम प्रभृति का उद्धार, काजी-दलन, महाप्रकाश, षड्भुजदर्शनादि आचरण कर सके तो उसका माला-तिलक-सूत्रत्याग और गेरुआ धारण करना भी शोभा दे सकता है।

महाप्रभु का महावाक्य है—

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः।।

जो हृदय से इसका पालन करते हुए उनका अनुकरण कर सकते हैं, वे भले ही करें। परन्तु जब हम जगाइ-मधाइ-उद्धार व तृणादपि प्रभृति श्रीमन्महाप्रभु द्वारा आचरित कोई भी कार्य करने के लिए समर्थ नहीं, तब उनके आदेशानुसार श्रीसनातन गोस्वामी ने जो सादे वस्त्र-माला-तिलक और शिखा धारण करने, मस्तक मुण्डन करने, भगवान् को अर्पण की हुई सात्विक वस्तु ग्रहण करने, एवं अनिवेदित वस्तु, स्त्रीसंग, तत्संगीसंग, आमिष और परचर्चादि वर्जन करने का विधान किया है, उस विधान के अनुसार महाप्रभु के मतावलम्बी वैष्णवों का चलना ही सब प्रकार से कर्तव्य है।

साधु—अच्छा, कलियुग में तो एकमात्र कल्कि अवतार का ही शास्त्रों में उल्लेख है। आप लोग चैतन्यदेव को अवतार किस प्रकार कहते हैं? और 'गौरांगो भगवद्भक्तो न च पूर्णो न चांशकः' प्रमाण के अनुसार भी चैतन्यदेव केवल एक भगवद्भक्त ही थे। इसलिए आप लोग यदि उनकी भक्ति करें तो कोई आपत्ति नहीं, परन्तु उन्हें भगवान् कहना तो बड़ा आपत्तिजनक है।

बाबाजी—श्रीगौरांगदेव की शास्त्र-निर्दिष्ट अवतारों में गणना नहीं है, यह हम स्वीकार करते हैं। वे स्वेच्छामय, लीलाविग्रह और पूर्ण-पूर्णतम हैं। इसलिए वे अवतार नहीं, अवतारी हैं। जिस समय उनकी लीला करने की इच्छा होती है, उसी समय लीला के उपयोगी अपने नित्यपरिकरगण के साथ अवतीर्ण होते हैं। उन्होंने स्वयं कहा है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।

इस प्रकार के भगवद्वाक्य अवतार विषयक हैं, क्योंकि संहार, धर्मसंस्थापन एवं अधर्मविनाशादि कार्यों के लिए भगवान् के स्वयं अवतीर्ण होने की आवश्यकता नहीं। इसलिए उन्होंने अपने मुख से ही कहा है—

जुग प्रवर्तन हय अंशकला हइते।
आमा बिनु केह नारे व्रजप्रेम दिते।।

(चै.च.आ. 3/26)

इससे स्पष्ट है कि स्वयंरूप भगवान् के आविर्भाव के लिए किसी शास्त्र प्रमाणरूपी कारण की आवश्यकता नहीं। स्वेच्छामय स्वतन्त्र भगवान् साधारण कलिकाल-पीड़ित अधर्मी जीवों को अपनी प्रेम-सम्पत्ति प्रदान करने के हेतु विशुद्ध आश्रयजातीय भावकान्ति अंगीकार कर श्रीनवद्वीपधाम में अवतीर्ण हुए हैं। इसीलिए शास्त्रों में गौरांगदेव को कलियुग के प्रच्छन्न अवतार कहकर निर्दिष्ट किया है।

साधु—गौरांगदेव पूर्ण-पूर्णतम भगवान् हैं, इसका क्या प्रमाण है?

बाबाजी—प्रथम प्रमाण यह है कि स्वयं भगवान् के अतिरिक्त और किसी का प्रेम वितरण करने का अधिकार नहीं। शास्त्र में कहा है—

"सन्त्यवतारा बहवः पंकजनाभस्य सर्वतोभद्राः।
कृष्णादन्यः को वा लतास्वपि प्रेमदो भवति।।"

(ल.भा.पू. 303)

—यद्यपि स्वयं भगवान् के सर्वमंगलमय अनेकों अवतार हैं, तथापि श्रीकृष्ण के अतिरिक्त और कोई लता-पताओं तक को प्रेम वितरण करने की सामर्थ्य नहीं रखता।

दूसरा प्रमाण है श्रीगौरांगदेव का पात्र-कुपात्र का विचार न कर निरपेक्ष भाव से प्रेमदान करना। शिव ब्रह्मादि को भी जो व्रजप्रेमरूपी अमूल्य निधि साधन द्वारा दुष्प्राप्य है, उसे बालक, वृद्ध, पुरुष, नारी, म्लेच्छ और यवन तक को पाप-ताप और अपराध का विचार न कर बिना मांगे लुटा-लुटाकर देने की क्षमता स्वयं भगवान् में ही है। जैसे प्राकृत राज्य में कोई राजा अपनी स्वतन्त्र इच्छा से कारागार में जाकर दण्ड भोगने के कालाकाल का विचार न कर सब कैदियों को मुक्त कर सकता है, पर उसका कोई कर्मचारी ऐसा नहीं कर सकता, उसी प्रकार स्वयं भगवान् के अतिरिक्त और कोई अवतारादि भगवन्नियम उल्लंघनपूर्वक व्रजप्रेम वितरण करने की सामर्थ्य नहीं रखता।

साधु—यह तो युक्ति की बात हुई। क्या इस सम्बन्ध में कोई शास्त्र प्रमाण भी है।

बाबाजी—अवश्य हैं। ऐसा कोई इतिहास, पुराण, तन्त्रादि नहीं, जिसमें श्रीगौरांगदेव की भगवत्ता प्रतिपन्न न हुई हो। मैं आपके सामने कुछ प्रमाण रखता हूँ।

विश्वसारतन्त्र उत्तरखण्ड ग्यारहवें पटल में—

गंगाया दक्षिणे भागे नवद्वीपे मनोरमे।
कलिपापविनाशाय शचीगर्भे सनातनि।।
जनिष्यते प्रिये मिश्रपुरन्दरगृहे स्वयम्।
फाल्गुने पौर्णमास्याञ्च निशायां गौरविग्रहः।।

श्रीमद्भागवत 10/8/13 में है—

आसन् वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनुम्।
शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः।।

अनन्त संहिता में—

वृन्दावने सदा कृष्णमानन्दसदने मुदा।
वामे च राधिकादेवी स्थित्वा रमयते प्रिये।।
नवद्वीपे च स कृष्ण आदाय हृदये स्वयम्।
गजेन्द्रगमनां राधां सदा रमयते मुदा।।
ललिताद्याश्च याः सख्यः श्रीराधाकृष्णयोः शिवे।
सेवन्ते निजरूपेण वृन्दारण्ये च तौ सदा।।

नवद्वीपे तु ताः सख्यो भक्तरूपधराः प्रिये।
एकांगं श्रीगौरहरिं सेवन्ते सततं मुदा।।
य एव राधिका कृष्णः स एव गौरविग्रहः।
यच्च वृन्दावनं देवी नवद्वीपञ्च तत्शुभम्।।
वृन्दावने नवद्वीपे भेदबुद्धिश्च यो नरः।
तथैव राधिकाकृष्णे श्रीगौरांगे परात्मनि।।
मच्छुलपातनिर्भिन्नदेहः सोऽपि नराधमः।
पच्यते नरके घोरे यावदाहूतसंप्लवम्।।

इस प्रकार और भी बहुत-से प्रमाणों द्वारा बाबाजी महाशय ने श्रीगौरांगदेव के पूर्ण-पूर्णतमत्व को सिद्ध किया। तब संन्यासी महाराज बोले, "मेरे हृदय में बहुत दिनों से जो सन्देह था आपकी कृपा से दूर हुआ। परन्तु मेरी एक-दो शंकायें और भी हैं। यदि आज्ञा हो तो कहूँ।"

बाबाजी—भाई, तुम्हारे प्रश्नों से मैं परमानन्दित होता हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो नि:संकोच पूछ सकते हो।

साधु—श्रीगौरांगदेव ने स्वयं हरिनाम संकीर्तन किया और दूसरों को भी हरिनाम करने का उपदेश किया। फिर महाप्रभु के सम्प्रदाय के वैष्णव निताइ-गौर नाम का कीर्तन क्यों करते हैं? इससे क्या महाप्रभु की आज्ञा उल्लंघन करने का अपराध नहीं होगा?

बाबाजी—बड़ा सुन्दर प्रश्न है। श्रीगौरांगदेव के श्रीमुख का आदेश है—

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः।।

(पद्यावली 32)

अर्थात्—

उत्तम हइया आपनाके माने तृणाधम।
दुइ प्रकारे सहिष्णुता करे वृक्षसम।।
वृक्ष जेन काटिलेओ किछु ना बलय।
शुकाइया मैले[1] कारो पानी ना माँगय।।
जेइ जे मागये, तारे देय आपन धन।
घर्म[2] वृष्टि सहि, आनेर[3] करये पोषण।।
उत्तम हञा हबे निरभिमान।
जीवे सम्मान दिबे जानि कृष्ण-अधिष्ठान।।

एइ मत हञा जेइ कृष्ण नाम लय।
श्रीकृष्ण चरणे तार प्रेम उपजय।।

हम हैं कलहित जीव, हमारे लिए इस प्रकार महाप्रभु का आदेश पालन कर हरिनाम करना नितान्त असम्भव है। इसलिए श्रीचैतन्यचरितामृतकार ने कहा है—

एक कृष्णनामे करे सर्वपाप नाश।
प्रेमेर कारण भक्ति करेन प्रकाश।।
प्रेमेर उदये हय प्रेमेर विकार।
स्वेद-कम्प-पुलकादि गद्गदाश्रुधार।।
अनायासे भवक्षय, कृष्णेर सेवन।
एक कृष्णनामेर फले पाइ एत धन।।
हेन कृष्णनाम यदि लय बहुबार।
तभु यदि प्रेम नहे, नहे अश्रुधार।।
तबे जानि, अपराध आछये प्रचुर।
कृष्णनाम-बीज ताहे ना करे अंकुर।।
चैतन्य-नित्यानन्दे नाहि ए सब विचार।
नाम लैते प्रेम देन, बहे अश्रुधार।।

(चै.च.आ. 8/26-31)

प्रेम ही जीव की एकमात्र वाञ्छित वस्तु है। यह प्रेमधन श्रीनिताइगौर का नाम लेने से सहज ही प्राप्त होता है। इसलिए हमारे मत से नामापराध, सेवापराध और वैष्णवापराधादि वर्जनपूर्वक, तृणादपि श्लोक का पालन करते हुए बहुप्रयाससाध्य हरिनाम संकीर्तन करने की अपेक्षा निताइ-गौरांग नाम का कीर्तन करना ही कलिकाल में जीवों के लिए अधिक उपयोगी है। देखिये, यदि हमें कोई थोड़ा-सा अर्थादि दान करता है तो हम उसके प्रति चिरजीवन कृतज्ञतापाश में बंध जाते हैं और संवाद-पत्रों में नानाप्रकार से दाता का गुणगान करते हुए उसके नाम का कीर्तन करते हैं। किन्तु जो चिर अनर्पित शिवब्रह्मादि को भी दुष्प्राप्य और श्रीमती राधिका की अमूल्य निधि प्रेमधन को जनसाधारण में लुटाने के लिए श्रीराधिका की भावकान्ति अंगीकार कर मृत्युलोक में घर-घर घूमे हैं और जिन्होंने बिना माँगे जीवों को पुकार-पुकार कर विनय और आग्रह-पूर्वक उस निधि का वितरण किया है, उनके

1. सूखकर गिर पड़ता है, 2. धूप, 3. दूसरे का।

प्रति जिस-किसी रूप में जितनी भी कृतज्ञता प्रकट करें, जितना भी उनका गुणगान और नामकीर्तन करें, उतना क्या थोड़ा नहीं है? हमारे विचार से तो जीव में यदि थोड़ा भी कर्तव्यज्ञान है तो अहर्निश निताइ-गौरांग का नाम लेना ही उसके लिए सब प्रकार से उचित है।

साधु—तो गौरांगदेव का नाम भले ही करें, निताइ का नाम क्यों करते हैं?

बाबाजी—श्रीगौरांग श्रीनित्यानन्द हैं विषय-आश्रय तत्व। श्रीनित्यानन्द का नाम करने से श्रीगौरांग महाप्रभु की प्राप्ति होती है, जैसे—'कृष्णेर गाने भाई, राधिका चरण पाइ, राधा नाम गाने कृष्णचन्द्र' उसी प्रकार 'गौरांग पाइते जदि थाके अभिलाष। एकान्त भावेते हओ नित्यानन्ददास।' श्रीगौरांगदेव ने निजमुख से कहा है—

जनम धरिया हेलाय श्रद्धाय जे लय निताइएर नाम।
आमि बिकाइ तारे देखाइ जुगल राधाश्याम।।
मुखेओ जे जन बले मुइ नित्यानन्ददास।
निश्चय देखिबे आमार स्वरूप प्रकाश।।
गोपीगणेर जेइ प्रेम कहे भागवते।
एकला नित्यानन्द हइते पाइबे जगते।।

साधु—अच्छा, निताइ का नाम लेने से और उनका चरणाश्रय करने से गौरांग की प्राप्ति होती है, तो गौरांग का नाम लेने की क्या आवश्यकता है?

बाबाजी—निताइ का चरणाश्रय करने के लिए गौरांग नाम की आवश्यकता है। निताइ ने निजमुख से कहा है—

दिन गेले हा गौरांग बले एकबार।
से जन आमार हय आमि हइ तार।।
भज गौरांग कह गौरांग लह गौरांगेर नाम।
जे जन गौरांग भजे शेइ आमार प्राण।। इत्यादि।

इस प्रकार बहुत समय तक साधु के साथ तत्वालोचना हुई। शान्तिपुर-निवासी प्रभु सनातन और अन्यान्य भक्तगण जो वहाँ उपस्थित थे बाबाजी महाशय के मुख से अति सरल भाषा में निताइ-गौरांग तत्व की व्याख्या सुन परमानन्दित हुए। संन्यासी महाराज अति व्याकुल भाव से बाबाजी महाशय के चरणों में गिर कर रोते हुए बोले, "मैं इतने दिनों से अभिमान में मत्त हो और साधु का ढोंग बना जगत् को ठगता रहा। आज आपकी कृपा से मेरा अभिमान मिट गया, मेरे ज्ञानचक्षु खुल गये, मेरे सारे संशय दूर हो गये और मुझे एक नया जीवन प्राप्त हुआ। आज मैं समझ गया कि अपने ही परमदयाल प्रेमदाता निताइ-गौरांग को भूलकर मनुष्य-जीवन के अमूल्य समय को मैंने वृथा नष्ट किया। अब आप मेरे ऊपर कृपा करें। मैं आपके चरणों में आत्मसमर्पण करता हूँ। जिस उपाय से मेरा चित्त स्थिर होकर निताइ-गौरांग के चरणों में आसक्त हो आप कृपाकर वही कीजिये।"

बाबाजी महाशय ने प्रेमार्द्र हृदय से साधु को आलिंगन किया और गद्गद कण्ठ से कहने लगे, "बाबा! धन्य कलियुग। कोई चिन्ता नहीं, हमारे प्रभु अदोष-दर्शी हैं। वे पाप, ताप, अपराधादि नहीं देखते। व्याकुल प्राण से उन्हीं को पुकारो। शान्तिमय शान्ति विधान करेंगे।"

इसी समय आरति का घण्टा बजा। सब लोग ठाकुर जी के सम्मुख जाकर आरति-कीर्तन करने लगे। रात्रि दस बजे आरति-कीर्तन समाप्त कर सबने विश्राम किया। संन्यासी भी वहीं रहे। ये वही संन्यासी पुजारी थे, जिन्होंने बाबाजी महाशय के प्रसाद की व्यवस्था की थी। ये बंगाली साधु थे और इनका नाम सुन्दरानन्द था। दूसरे दिन प्रातःकृत्य समापनपूर्वक नाम करते-करते जब बाबाजी महाशय वहाँ से चलने लगे सुन्दरानन्द सिर मुड़ाये और सादे कपड़े पहने रोते-रोते आये और बाबाजी महाशय के चरण पकड़कर बोले, "गुरुदेव! कृपा कर मन्त्र देकर मेरा उद्धार कीजिये। मैं साधु का वेश बनाकर घूमा करता था। मैंने किसी से दीक्षा नहीं ली थी और न इसकी आवश्यकता ही समझी थी। आज आपकी कृपा से मेरे हृदय का अज्ञानांधकार दूर हो गया है और मैं समझ गया हूँ कि अदीक्षित जीवन पशु-जीवन के समान है। इसलिए आप दीक्षा देकर मेरा पशुत्व दूर करने की कृपा करें।" बाबाजी महाशय ने संन्यासी की व्याकुलता देख आलिंगनपूर्वक उनके कान में मन्त्र प्रदान किया। संगीगण प्रेमानन्द से नृत्य करने लगे।

गुप्तिपाड़ा में वृन्दावनचन्द्र दर्शन

कुछ देर पीछे बाबाजी महाशय सदल कीर्तन करते-करते गुप्तिपाड़ा घाट पर पहुँचे। इन्हें देखते ही घाट का मल्लाह दण्डवत् प्रणाम कर हाथ जोड़कर बोला, "प्रभो! यदि उस पार जाने की इच्छा हो तो इस अधम की नौका पर चलिये।"

बाबाजी—बाबा हमारे पास पैसे नहीं है।

मल्लाह—आपके पास आशीर्वाद तो है प्रभु! अधम के प्रति थोड़ी कृपा होनी चाहिये, फिर पैसों-की क्या कमी है।

सब आनन्दित हो उसकी नौका पर चढ़ गये। मल्लाह ने पूछा, "आप लोग क्या वृन्दावनचन्द्र के मन्दिर जायेंगे?"

बाबा—हाँ बाबा! वृन्दावनचन्द्र के दर्शन करने की बड़ी तीव्र इच्छा है।

मल्लाह—वहाँ नौका से जाने में ही सुविधा होगी, चलिये मैं लिये चलता हूँ।

बाबाजी—बाबा तुम्हें कष्ट होगा। ठहरो हम पैदल चले जायेंगे।

मल्लाह—प्रभु, रोज तो पैसे के लिए नाव चलाता ही हूँ। आज परमार्थ के लिए सही।

मल्लाह ने थोड़ी ही देर में ठीक ठाकुर जी के सामने वाले घाट पर ले जाकर नाव लगा दी। बाबाजी महाशय सबके साथ कीर्तन करते-करते वृन्दावनचन्द्र के सामने उपस्थित हुए और उनके मुखचन्द्र का दर्शन कर प्रेमानन्द में नृत्य करते हुए गाने लगे—

श्रीराधारमण, रमणी मनमोहन,
वृन्दावन वनदेवा।
अभिनव रास, रसिकवर नागर,
नागरीगणकृत सेवा।।
व्रजपति दम्पति[1], हृदय आनन्दन[2],
नन्दन नव घनश्याम।
नन्दीश्वरपुर, पुरट[3] पटाम्बर,
रामानुज गुणधाम।।
श्रीदाम सुदाम, सुबल सखा सुन्दर,
चन्द्रक चारु अवतंस।
गोवर्द्धनधर, धरणी सुधाकर,
मुखरित मोहन वंश।।
कालीय दमन, गमन जिति कुञ्जर[4],
कुञ्ज-रचित-रतिरंग।
गोविन्ददास, हृदय मणिमन्दिरे,
अविचल मुरति त्रिभंग।।

★ ★ ★ ★ ★

मधुर-मधुर, रूप मनोहर,
नागरी नागरराज।
मधुर-मधुर, वदन सुन्दर,
मधुर-मधुर साज।।
नव नटवर, श्यामल सुन्दर,
नटिनी रंगिनी राधा।
नव जलधर, जनु सौदामिनी,
नयने नयने बाँधा।।
सुन्दर अधरे, मोहन मुरली,
राधे-राधे बलि बाजे।
राइर अधरे[5], मृदु मृदु हासी,
किबा सुमधुर माझे[6]।।
श्याम-गले दोले[7], वनफुल हार,
राइ-गले गजमोति।
आध वरण, कषित काञ्चन,
आध नीलमणि ज्योति।।
श्याम-शिरे सोहे, मयूर मुकुट,
राइ-शिरे दोले वेणी।
रसेर हिल्लोले, सुमधुर दोले,
शिखि कोरे जनु फणी।।
श्याम कटितटे, सुपीत बसन,
राइ नीलाम्बरी साजे।
रातुल[8] चरणे, सोनार नूपुर,
रुनुर झुनुर बाजे।।
श्याम करे सोहे, कनक बलया[9],
राइ करे निल चूड़ी।

1. नन्द-यशोदा, 2. आनन्द देनेवाला, 3. सुनहरा, 4. हाथी को भी पराजित करने वाली चाल। 5. राधा के अधरों पर। 6. बीच में। 7. झूल रहा है। 8. रक्तवर्ण। 9. कड़ा।

भ्रमरा भ्रमरी, गाय शुकसारी,
नाचे मयूरा मयूरी।।
ललिता विशाखा, चित्रा इन्दुरेखा,
चम्पकलतिका धनी।
सुदेवी श्रीरूप, मञ्जरी अनूप,
सेवये समय जानि।।
रंगदेवी आर, तुंगविद्यासार,
श्रीरति संगिनी सने[1]।
सेवे मनोरंगे, ललित त्रिभंगे,
परम आनन्द मने।।

भक्तगण सभी उद्दण्ड नृत्य कर रहे हैं। पूर्वोक्त गोकुल बाबू भी इन्द्र के समान ऐश्वर्य और अप्सरा के समान स्त्री को त्याग कर तभी से बाबाजी महाशय के साथ हैं। वे भी आनन्द में विभोर हो नृत्य कर रहे हैं। थोड़ी देर में वृन्दावनचन्द्र के पुजारी ने प्रसादी माला लाकर बाबाजी महाशय के गले में डाली। माला डालते ही कीर्तनानन्द का श्रोत इतने वेग से बहने लगा कि जो कोई भी उसके निकट आता वह उसकी तरंग में बहकर प्रेमानन्द सागर में निमग्न हो जाता।

कीर्तन समाप्त हो गया तो उपस्थित सेवाइतगणों ने आकर वृन्दावनचन्द्र का महाप्रसाद पाने के लिए अनुरोध किया। सबने स्नानादिक के पश्चात् महाप्रसाद सेवन कर कुछ देर विश्राम किया। चार बजे बाबाजी महाशय ने सातगाछिया जाने की प्रबल इच्छा प्रकट की, परन्तु बहुत लोगों के अनुरोध से एक रात गुप्तिपाड़ा में रहने के लिए स्वीकृति देने को बाध्य होना पड़ा। धीरे-धीरे बहुत-से लोग आकर उनसे तरह-तरह के प्रश्न करने लगे।

एक भक्त ने पूछा—"प्रभु इस मायामोहाच्छन्न दुःखमय संसार में रहकर किस प्रकार भगवान् को प्राप्त कर सकते हैं?"

बाबाजी—बाबा, संसार केवल दुःखमय ही नहीं है। इसमें सुख-दुःख दोनों ही हैं। व्यवहार-दोष से कभी सुखमय और कभी दुःखमय प्रतीत होता है।

भक्त—संसारी लोग जिसे सुख कहते हैं, वह तो क्षणिक होता है। इसलिए उसे सुख न कहकर दुःख ही कहना ठीक जान पड़ता है।

बाबाजी—बाबा, गृहस्थ आश्रम शिक्षा-क्षेत्र है। इससे ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और भिक्षु इन तीनों आश्रमों का पालन होता है। इसीलिए शास्त्रों ने इसे दूसरे आश्रमों के पिता-माता के समान कहा है। शास्त्रानुमोदित पंथानुसार व्यवहार करने से इस आश्रम में भगवान् को प्राप्त करना जितना सहज है उतना और आश्रमों में नहीं। ध्रुव, प्रहलाद, अम्बरीष, मीराबाई, करमाबाई इत्यादि सभी तो गृहस्थ थे। उन्हें क्या भगवत् प्राप्ति नहीं हुई? शुक नारदादि भी उस गृहस्थ आश्रम की लालसा रखते हैं, जिसमें रहकर व्रजगोपिकाओं ने श्रीकृष्ण को प्राप्त किया था। हाँ, इतना अवश्य है कि केवल गृहस्थ आश्रम भगवत् प्राप्ति का साधन नहीं है। भगवत्-प्राप्ति में बाधक या साधक तो अपना आचरण होता है।

भक्त—गृहस्थ आश्रम में विधिपूर्वक रहने के क्या नियम हैं?

बाबाजी—माता-पिता की सेवा, अतिथि सत्कार, परोपकार, सत्य-प्रतिपालन, दृढ़-प्रतिज्ञा, इष्ट-निष्ठा, देवता ब्राह्मण और वैष्णवों की सेवा, निर्हेतुक दान, सन्तोष, विषयों में अनासक्ति, सुख-दुःख में भगवत्कृपा का अनुभव करना, भगवद्दास-दासी समझ स्त्री-पुत्र आदि का प्रतिपालन करना इत्यादि को शास्त्रकारों ने गृहस्थों के लिए मुख्य कर्तव्य बताया है। गृहस्थ को अपनी सम्पत्ति के चार भाग कर उनमें से एक देवता, ब्राह्मण और अतिथि की सेवा के लिए, दो सांसारिक व्यय, निर्वाह और संचय के लिए और बाकी अपने लिए रखना चाहिये। इस बाकी अंश को संचय के लिए न रखकर केवल तीर्थ-पर्यटन, परोपकार, निर्हेतुक दान प्रभृति निज परमार्थ के लिए व्यय करना चाहिये। केवल अर्थ के ही चार भाग करने हों सो नहीं, व्यावहारिक जगत् की प्रत्येक वस्तु के इसी प्रकार भाग करने चाहिये। दिनरात में जो आठ प्रहर होते हैं, उन्हें चार भागों में बाँटकर दो भाग, अर्थात् चार प्रहर सांसारिक कार्य में, दो प्रहर सत्संग-परोपकार इत्यादि में, और बाकी दो प्रहर अपने परमार्थ साधन में लगाने चाहिये। इसके विरुद्ध आचरण करने

1. साथ।

से हम भगवन्नियमों का उल्लंघन कर अपराध के भागी होंगे और नाना प्रकार के दु:ख भोग करेंगे। विचार कर देखो कि हमारे जीवन में कितना भ्रम है। हम सबेरे से सन्ध्या तक संसार के निमित्त कितना परिश्रम करते हैं। इसके पश्चात् रात्रि के प्रथमार्ध को, जो परोपकारादि के लिए निर्दिष्ट है, हम परनिन्दा, परचर्चा और नाच–गाने आमोद–प्रमोद में व्यतीत करते हैं। हमारे पास इतना भी समय नहीं रहता कि किसी के घर आग लग जाय तो यथाशक्ति उसकी सहायता कर सकें। यदि कोई अनुरोध भी करे तो हम विरक्ति के साथ कह देते हैं "भाई सबेरे से सन्ध्या तक तो बैल की तरह जुटा रहा। अब कहीं जाने की सामर्थ्य कहाँ।" किन्तु इसी समय कोई मित्र आकर कहे, चलो थोड़ा टहल आयें, तो झट छड़ी हाथ में लेकर प्रसन्नतापूर्वक उसके साथ घूमने को तैयार हो जाते हैं। रात्रि के शेषार्ध को, जो भगवान् ने शान्तिपूर्वक परमार्थ साधन के लिए बनाया है, हम चोरी, डकैती, लाम्पट्य और क्रीड़ा–कौतुक में गवाँ देते हैं। यदि किसी प्रकार का सुयोग न मिले तो निद्रा में ही समय काट देते हैं, क्योंकि यह तो हमारा अपना समय है। इसके लिए किसी को क्या आपत्ति हो सकती है? कितने आश्चर्य की बात है कि बारह घण्टे स्त्री–पुत्रादि के लिए लगातार परिश्रम करते हैं और दस मिनट का भी अवकाश नहीं चाहते। यदि कोई धर्म की बात कहना चाहे, तो उसके लिए भी हमारे पास समय नहीं रहता, यहाँ तक कि सन्ध्या–पूजादि के लिए भी हमारे पास समय नहीं। परमार्थ के लिए परम करुणामय भगवान् के चरणारविन्द में मन लगाने का जो समय है, उसे व्यर्थ व्यय करने में हमें तनिक भी संकोच नहीं होता। अपने सुख के लिए दूसरे का सर्वस्व लूटने के लिए तैयार रहते हैं। अपनी देह की पुष्टि के लिए दूसरे के प्राण ले लेने में भी आनन्द का अनुभव करते हैं। अपने पुरुष–देह के क्षणमात्र के इन्द्रिय–सुख के लिए पर स्त्री का सतीत्व लूटने में अथवा अपनी स्त्री देह की इन्द्रिय–परितृप्ति के लिए जिस किसी भी उपाय से निष्किञ्चन परमयोगी महापुरुष की परमार्थ सम्पत्ति लूटने में हमारा हृदय तनिक भी कुण्ठित नहीं होता। ऐसे व्यक्ति के लिए संसार सुखमय कैसे हो सकता है? बाबा! सुख और दु:ख गृही–उदासी, धनी–दरिद्र, पण्डित–मूर्ख, कुलीन–अकुलीन, स्त्री–पुरुष व बालक–वृद्ध का विचार नहीं करते। सभी के ऊपर इनका समान अधिकार है। सुख–दु:ख मानसिक वृत्तियाँ हैं। गृहस्थ या उदासी चाहे कोई भी आश्रम क्यों न हो आश्रमोचित कर्तव्य–पालन करने से ही सुख मिलता है। चिर–दरिद्र सुदामा विप्र, विदुर, श्रीवास और केला बेचने वाले श्रीधर के सुख का कभी क्षय नहीं हुआ। उनके आनन्द की दिन–प्रतिदिन वृद्धि होती रही, और दुर्योधन, कंस, शिशुपाल इत्यादि का सुख क्षण–स्थायी रहा। सारांश यह है कि अपने को भगवत् दास मानकर और यह समझकर कि हम उनकी आज्ञा पालन करने ही संसार में आये हैं और आज्ञा पालन कर चले जायेंगे, फलाफल के भागी वही होंगे, जीवन व्यतीत करें, तो सुख–दु:ख की कोई सम्भावना नहीं रहती। इस प्रकार के अनासक्त संसारी व्यक्ति प्रात:काल उठकर भगवान् से प्रार्थना करते हैं—

लोकेश चैतन्यमयाधिदेव
श्रीनाथ विश्वम्भर दीनबन्धो।
प्रात: समुत्थाय तव प्रियार्थं
संसारयात्रामनुवर्तयिष्ये।।

और सोते समय निजकृत कर्मों का फलाफल भगवच्चरणों में अर्पित कर देते हैं—

"यानि कानि च कर्माणि ज्ञानाज्ञानकृतानि वै।
तानि तान्येव सर्वाणि तुभ्यमेव समर्पये।।
तवास्मीति तु विज्ञाय मत्कृतं यत् शुभाशुभम्।
गृहाण सुमुखो भूत्वा प्रसीद परमेश्वर।।"

—हे प्रभो! मैंने प्रात:काल से आपके सन्तोष के हेतु संसार यात्रा की। मैं अपने ज्ञान–अज्ञानकृत अच्छे–बुरे सभी कर्म तुम्हें अर्पित करता हूँ। मैं जब तुम्हारा ही हूँ तो मेरे द्वारा किये हुए कर्मों के फलाफल के भोक्ता भी तुम्ही हो, इसलिए मेरे ऊपर प्रसन्न हो।

तब भक्त बाबाजी महाशय के चरणों में गिरकर रोते–रोते बोले, "बाबा! मैं नितान्त आत्म–सुख–परायण, मायामुग्ध कलिकाल का जीव हूँ। साधन द्वारा इस प्रकार का अनासक्त भाव प्राप्त करना मेरे लिए असम्भव है। एकमात्र आपके समान महापुरुष की कृपा के

अतिरिक्त मेरे लिए दूसरा कोई उपाय नहीं। इसलिए इस अधम दास पर कृपा करें, जिससे किसी जन्म में अनासक्त भाव से संसार कर सकूँ।" बाबाजी महाशय ने कृपापरवश हो भक्त को आलिंगन कर कृतार्थ किया।

सन्ध्या समय वृन्दावनचन्द्र की आरति आरम्भ हुई। बाबाजी महाशय भक्तों के साथ खोल-करताल लेकर आरति-कीर्तन करने लगे। कुछ देर में रूपाभिसार और मिलन-कीर्तन करने के पश्चात् 'भज निताई गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' नाम करते-करते उद्दण्ड नृत्य करने लगे। उपस्थित भक्तगण एक अनिर्वचनीय अभिनव आनन्द में विभोर हो गये। रात्रि कोई दस बजे कीर्तन समाप्त कर और श्रीवृन्दावनचन्द्र का प्रसाद ग्रहण कर सबने वहीं विश्राम किया।

सातगाछिया में शारदीय दुर्गापूजा

दूसरे दिन प्रात:काल बाबाजी महाशय 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' कीर्तन करते-करते भक्त-मण्डली सहित सातगाछिया की ओर चल दिये। पूर्वोक्त श्रीपाद विपिनविहारी गोस्वामी प्रभु भी इनके साथ थे। बाबाजी महाशय आगे-आगे नृत्य करते जा रहे थे। धीरे-धीरे श्रीमदनगोपाल जी के मन्दिर में जा पहुँचे और श्रीमूर्ति दर्शन कर प्रेमानन्द में विभोर हो उद्दण्ड नृत्य करने लगे। श्रीमदनगोपाल जी के सेवाइत बाबाजी महाशय को पाकर जिस अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव कर रहे थे, उसे भाषा में व्यक्त नहीं किया जा सकता। श्रीमदनगोपाल जी की सेवा में अनेक हिस्सेदार हैं। उस दिन श्रीपाद कुंजविहारी गोस्वामी प्रभु की सेवा की बारी थी। श्रीमदनगोपाल जी के मन्दिर में अभिनव कीर्तनानन्द और दूसरी ओर भोगराग का विराट् आयोजन। ग्रामवासी सभी आनन्द में मतवाले थे और तरह-तरह के शाक, सब्जी, कन्द-मूल-फलादि लाकर श्रीमदनगोपाल जी के मन्दिर में उपस्थित कर रहे थे।

कुछ देर कीर्तन करने के पश्चात् सब विश्राम करने लगे। इसी समय श्रीपाद विपिनविहारी गोस्वामी प्रभु आकर बोले, "समय अधिक हो गया है, श्रीमदनगोपाल जी का भोग भी हो गया है। अब कृपाकर स्नानादि कर प्रसाद पाने चलिये।" बाबाजी महाशय ने भक्तगण सहित प्रसाद पा विश्राम किया।

आज से नित्य इस ग्राम में इसी प्रकार महोत्सव होने लगा और ग्रामवासियों का उत्साह क्रमश: बढ़ने लगा। एक दिन श्रीपाद कुञ्जविहारी गोस्वामी प्रभु बाबाजी महाशय से बोले, "प्रभु, आपके आने से श्रीमदनगोपाल जी भी नित्य नाना प्रकार की उपादेय वस्तु भोग कर रहे हैं। इसलिए और कुछ दिन यहाँ रहकर हमारा लौकिक और पारमार्थिक दोनों प्रकार का सुख वर्धन करने की कृपा करें।"

बाबाजी बोले, "देखो कुञ्ज! सुखमय भगवान् ही जीवों के एकमात्र सुखदाता हैं। वे जीवों के सुख के लिए सर्वदा व्यस्त रहते हैं। यद्यपि जीव उन्हें नहीं भजते, वे सदा जीव को भजा करते हैं। फिर यदि जीव अनन्य भाव से उनका भजन करे तब तो कहना ही क्या?" उन्होंने स्वयं कहा है—

जेइ जन भजे मोरे अनन्य हइया।
तारे भिक्षा देइ मुञि माथाय बहिया*।।

आज शारदीय दुर्गापूजा का अधिवास है, ग्राम-वासी सब अपूर्व आनन्द में उन्मत्त हो रहे हैं। इस ग्राम में प्रचलित प्रथा के अनुसार ब्राह्मणों को छोड़ और किसी जाति वाले के यहाँ पूजा के उपलक्ष में बलि नहीं होती। इसलिए बाबाजी महाशय प्रसन्नतापूर्वक कुञ्ज बाबू से बोले, "देखो, कल हम लोगों को योगमाया देवी की पूजा के दर्शन कराने होंगे।" कुञ्जविहारी गोस्वामी विनीत भाव से बोले, "जो आज्ञा, पर प्रात: स्नानादि कर बाहर निकलना अच्छा होगा, क्योंकि वापस आने में समय अधिक हो जायेगा।"

दूसरे दिन प्रात:काल बाबाजी महाशय भक्त-मण्डली के साथ गंगा-स्नान करने गये। बाबाजी महाशय का एक स्वाभाविक नियम था कि किसी भी स्नान को जाते समय नाम करते जाते। इसलिए वे स्नान करने के पश्चात् 'भज निताइ गौर राधेश्याम। गौरीशंकर सीताराम' का कीर्तन करते-करते एक मकान

* अपने माथे पर ढोकर।

में पहुँचे। वहाँ परिकर सहित दशभुज-माँ के दर्शन कर साष्टांग प्रणामपूर्वक हाथ जोड़कर प्रेम-गद्गद कण्ठ से गाने लगे—

योगमाया योगेश्वरी जगत्पालिका।
जगवासी जीव तव बालक बालिका।।
भक्तिदायिनी माँ गो भवानी शंकरी।
सन्ताने भक्ति दे गो करुणा वितरि।।
विशुद्ध भकति प्रेम जीवे बुझाइते।
जोगमाया रूपे अवतीर्ण अवनीते।।
वृन्दावने अप्राकृत लीला करिबारे[1]।
पौर्णमासी रूपे थाकि[2] बरज नगरे।।
गोपी सह गोपीनाथे परकीय भावे।
लीला कराइले तुमि आपन प्रभावे।।
कात्यायनी रूपे पूजि तोमार चरण।
गोपीगण पाइलेन श्रीनन्दनन्दन।।
तव कृपा बिने हेन[3] काहार[4] शकति।
लभिते[5] पारये[6] व्रजेर विशुद्धा भकति।।
ताइ कर जुड़ि मागो करि ए प्रार्थना।
कृष्ण भक्ति बिना जेन ना करि कामना।।
गोपिकार आनुगत्ये गोपीदेह पेये।
भजिब राधिकानाथे व्रजे जनमिये।।
अनंगानन्ददा कुंजे ललितार जुथे।
श्रीराधारमण सेबि राधिका सहिते।।
एइ से प्रार्थना मागो तोमार चरणे।
पूर्ण कर पौर्णमासी निज दयागुणे।।

गाने के साथ अश्रुधार निरन्तर बह रही है। क्षण-क्षण पर कम्प, पुलक और कण्ठरोध हो रहा है। शैव, शाक्त, गाणपत्य, सौर, वैष्णव, बालक, वृद्ध, युवा, स्त्री, पुरुष सब इस अभूतपूर्व प्राणभेदी कीर्तन को सुन मतवाले हो रहे हैं। किसी को बाह्य स्मृति नहीं। जो भी वहाँ आता है, वही प्रेम में विह्वल होकर नृत्य करने लगता है। छोटे-बड़े का कोई विचार नहीं। जाति, कुल और विद्याभिमानी अनेक ब्राह्मण भी नेत्रों से अश्रु बहाते हुए आत्महारा हो भूमि पर लोट-पोट हो रहे हैं।

बहुत समय तक इसी प्रकार कीर्तन कर बाबाजी महाशय- **कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि। कृष्णभक्तिप्रदे देवि योगमाये नमोऽस्तुते।'** कह साष्टांग दण्डवत् कर दूसरी ओर चले। इस प्रकार प्रत्येक घर जा-जाकर योगमाया के दर्शन और प्रणाम, वन्दना, कीर्तन, स्तवादि कर बारह बजे के लगभग श्रीमदनगोपाल जी के मन्दिर में लौट प्रसादादि सेवन कर विश्राम किया। यथासमय आरति-कीर्तनादि में वह रात्रि व्यतीत हुई। दूसरे दिन प्रातःकाल फिर पूर्ववत् गंगा-स्नानादि कर माँ के दर्शन के लिए निकले।

आज महाष्टमी है। ब्राह्मणों के मोहल्ले में बड़ी धूमधाम है। बलि पर बलि चढ़ रही है। रक्तारक्ति हो रही है। सुनकर बाबाजी महाशय काँप उठे और 'ओह! कैसा भीषण व्यापार है। कैसी निष्ठुरता है।' कहकर रोते हुए बोले "हा निताइ! कब इनकी चित्त शुद्धि होगी हाय! हाय! माँ के सम्मुख इतना अत्याचार! माँ किस प्रकार इस हत्याकाण्ड को सहन करती हैं, समझ में नहीं आता। इस हिंसा वृत्ति के प्रवर्तक एक बार विचार कर नहीं देखते कि उन्होंने धर्म के नाम पर वंशपरम्परा से यह कितनी भीषण, अमानुषिक और लोमहर्षक प्रथा चला रखी है।"

गिरीशचन्द्र मुखोपाध्याय नामक एक सज्जन बाबाजी महाशय की व्याकुलता देख बोले, "महाशय! इस समय आपकी अवस्था देख मन में होता है जैसे यह हिंसा बहुत बड़ा पाप है। परन्तु बात यह है कि पूर्वाचार्यगण जो रीत चला गये हैं, उसका पालन न करने से जगत् में निन्दा होती है। यदि वेद तन्त्रादि की बात कहें तो इनमें वैधी हिंसा की व्यवस्था भी है। जैसे—"

'अश्वमेधेन यजेत।' 'वायव्यां श्वेतछागलमालभेत।'

तन्त्र में कहा है—

'यज्ञार्थे पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयम्भुवा।
अतस्त्वां घातयिष्यामि तस्माद् यज्ञे वधोऽवधः।।

(इत्यादि)

अन्यत्र कहा है—'अहिंसा परमो धर्म्मः।' वास्तव में मर्म क्या है, यह बात समझ में नहीं आती। यदि आप शास्त्र और युक्ति द्वारा समझाने की कृपा करें तो अच्छा।

1. करने को। 2. रहकर। 3. ऐसी। 4. किसकी। 5. पा। 6. सके।

बाबाजी—बाबा! वेद के दो विभाग हैं। एक कर्मकाण्ड, दूसरा ज्ञानकाण्ड। कर्मकाण्ड के भी प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग दो प्रकार हैं। 'अश्वमेधेन यजेत' इत्यादि प्रमाण प्रवृत्ति मार्ग से सम्बन्ध रखते हैं और 'अहिंसा परमो धर्मः, मा हिंसी सर्वभूतानि, अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ सर्ववैरत्यागः' इत्यादि निवृत्ति मार्ग से। प्रवृत्तिमार्ग सकाम और स्वर्गादि भोग-साधक है। निर्दिष्ट काल तक भोग भोग लेने के पश्चात फिर पहले की स्थिति प्राप्त कराता है। निवृत्तिमार्ग निष्काम और मुक्ति व भक्तिपथ का साधक होने के कारण अखण्ड, अव्यय और नित्य सुख देने वाला है। 'स्वल्पमप्यस्य धर्म्मस्य त्रायते महतो भवात्, (महतो भवात् कालभयात् इति यावत्) शक्ति उपासना तन्त्रोक्त एवं आचारगत है। आचार तीन प्रकार का है। यथा—पश्वाचार, दिव्याचार एवं वीराचार।

पश्वाचार—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं स्वयमेवाहरेत् पशुः।
न शूद्रदर्शनं कुर्यात् मनसा न स्त्रियं स्मरेत्।।

दिव्याचार—

दिव्यश्च देवताप्रायः शुद्धान्तःकरणः सदा।
द्वन्द्वातागे वीतरागः सर्वभूतसमः क्षमी।।

वीराचार—

वीरसाधनकर्म्माणि पंचतत्वोदितानि च।
मद्यं मांसं तथा मत्स्यं मुद्रामैथुनमेव च।
एतानि पंचतत्वानि त्वया प्रोक्तानि शंकर।

इस कलिकाल के जीव हैं। स्वभाव से ही द्वेष, हिंसा और पाप की ओर हमारी प्रवृत्ति है। इसके ऊपर यदि हिंसा कार्य में शास्त्र का अवलम्बन प्राप्त हो तो हमारी दुरवस्था की सीमा ही न रहेगी। इसीलिए महानिर्वाणतन्त्र में वीराचार के सम्बन्ध में पार्वती जी ने कहा है—

कलिजा मानवा लुब्धाः शिश्नोदरपरायणाः।
लोभात् तत्र पतिश्यन्ति न करिष्यन्ति साधनम्।।
इन्द्रियाणां सुखार्थाय पीत्वा च बहुलं मधु।
भविष्यन्ति मदोन्मत्ता हिताहित विवर्जिताः।।
न करिष्यन्ति ते मत्ताः पापा योनिविचारणम्।।
अतिपानादिदोषेण रोगिणो बहवः क्षितौ।
शक्तिहीना बुद्धिहीना भूत्वा च विकलेन्द्रियाः।।
ह्रदे गर्ते प्रान्तरे च प्रासादात् पर्वतादपि।
पतिष्यन्ति मरिष्यन्ति मनुजा मदविह्वलाः।।
केचिद्विवादयिष्यन्ति गुरुभिः स्वजनैरपि।
केचिन्मौना मृतप्राया अपरे बहुजल्पकाः।।
अकार्यकारिणः क्रूरा धर्ममार्गविलोपकाः।
हिताय यानि कर्माणि कथितानि त्वया प्रभो।।
मन्ये तानि महादेव विपरीतानि मानवे।।
के वा योगं करिष्यन्ति न्यासजातानि केऽपि वा।
स्तोत्रपाठं यन्त्रलिप्तं पुरश्चर्यां जगत्पते।।
युगधर्मप्रभावेन स्वभावेन कलौ नराः।
भविष्यन्त्यतिदुर्वृत्ताः सर्वथा पापकारिणः।।

तो विचार कर देखें, यदि प्रवृत्तिमार्गोक्त कौलाचारमत्त के अनुसार महामाया की उपासना करने से पापवृत्ति की ही वृद्धि हुई, तो यह मनुष्य जीवन की उन्नति का साधन हुआ या अवनति का। तभी इस तन्त्र के उपसंहार में शंकरदेव ने कहा है—

अतो बहुविधं कर्म कथितं साधनान्वितम्।
प्रवृत्तयेऽल्पबोधानां दुश्चेष्टितनिवृत्तये।।
यतो हि कर्म द्विविधं शुभञ्चाशुभमेव च।
अशुभात् कर्मणो यान्ति प्राणिनस्तीव्रयातनाम्।।
कर्मणोऽपि शुभाछेवि फलेष्वासक्तचेतसः।
प्रयान्त्यायान्त्यमुत्रेह कर्मशृंखलयन्त्रिताः।।
यावन्न क्षीयते कर्म शुभं वाशुभमेव वा।
तावन्न जायते मोक्षो नृणां कल्पशतैरपि।।

इसीलिए आचार्यों ने कहा है, 'यदि मनुष्य-जीवन की उन्नति चाहते हो, यदि इन्द्रियों को पाप पथ से हटाकर सत्पथ पर लगाना चाहते हो, यदि कलि के बन्धन से छूटकर भक्तिपथ के पथिक बनना चाहते हो, तो एकमात्र निवृत्ति मार्ग का अवलम्बन करो। इसलिए पश्वाचार के अनुसार महामाया की पूजा करना ही हमारा कर्तव्य है।' शास्त्र में कहा है, 'अतस्तां कालिकां भद्रां पशुभावेन पूजयेत्।'

गिरीश—प्रभु, प्रवृत्तिमार्ग से ही तो मनुष्य निवृत्तिमार्ग को पहुँचता है, क्योंकि भोग-विलास से इन्द्रियवृत्ति की ह्रासता और वासना की निवृत्ति होती

है, लालसा का विनाश होता है और विशुद्ध सात्विक भावना का उदय होता है।

बाबाजी—बाबा! कोटि-कोटि युगों तक भोग करने से भी वासना की निवृत्ति नहीं होती। भगवान् ने कहा है—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते।।

(भा. 9/19/14)

सत्य, त्रेता और द्वापर युग में अश्वमेध-गोमेधादि यज्ञों का जो विधान था, उसके द्वारा ऋषिगण वृद्ध और जरातुर गाय घोड़ों इत्यादि का वध कर यज्ञ के अन्त में फिर उन्हें पुनर्जीवित कर नवयौवन सम्पन्न कर दिया करते थे। कलियुग के ब्राह्मण ऐसा नहीं कर सकते, इसलिए शास्त्रों में विधान है—

अश्वमेधं गवालम्भं सन्यासं पलपैतृकम्।
देवरेण सुतोत्पत्तिः कलौ पञ्च विवर्जयेत्।।

अन्यान्य युगों में केवल यज्ञ के लिए ही पशुवध किया जाता था। परन्तु आजकल उस यज्ञ की जगह केवल इन्द्रिय यज्ञ होता है, अर्थात् केवल इन्द्रिय तृप्ति के लिए ही बेचारे निर्दोष पशुओं का वध किया जाता है। कितना वीभत्स व्यापार है।

स्वप्राणान् यः परप्राणैः प्रपुष्णात्यघृणः खलः।
स याति नरकं घोरं यावदाहूतसंप्लवम्।।

अच्छा मैं पूछता हूँ कि माँ जगदम्बा के सम्मुख उनकी उन अबोध और निरीह सन्तानों का निर्दयता से वध क्यों होता है? क्या वे केवल मनुष्यों की ही माता और पालयत्री हैं? मानव ही क्या अशेष दोषों से दूषित होने पर भी उनकी क्षमा के पात्र हैं? क्या केवल मानवों के लिए ही वे पृथ्वी पर अवतीर्ण हुई हैं? हाय हाय! हमारी कितनी भयानक स्वार्थपरता है। देखो, किसी के सन्तान नहीं होती तो वह माँ के सामने कहता है 'माँ जगदम्बे! यदि मेरे सन्तान हो जाय तो तुम्हें उदयास्त बलि प्रदान करूँगा।' कोई एक सौ आठ, कोई एक लाख बकरों की बलि की प्रतिज्ञा करता है। कोई इस बात का विचार नहीं करता कि माँ जगदम्बा केवल मनुष्यों की ही माँ नहीं हैं, वे प्राणिमात्र की माँ हैं। हम अत्यन्त कठोरता से जिन जीवों का वध करते हैं, वह भी जगदम्बा की ही सन्तान हैं। हमें भी एक दिन इस कर्म के फल के कारण इसी प्रकार की देह प्राप्त कर इन्हीं जीवों के हाथ अपने प्राण देने होंगे। श्रीमद्भागवत में कहा है—

ये त्वनेवंविदोऽसन्तः स्तब्धाः सदभिमानिनः।
पशून्द्रुह्यन्ति विस्रब्धाः प्रेत्यखादन्ति ते च तान्।।

(भा. 11/5/14)

देवीपुराण में भी कहा है—सुरथ राजा ने एक लाख बलि देकर माँ जगदम्बा की पूजा की थी। उन्होंने मृत्यु के समय देखा कि एक लाख खड्गधारी पुरुष उनकी ओर दृष्टि लगाये खड़े हैं। उस समय राजा ने भयभीत होकर काँपते-काँपते पूछा, 'आप लोग कौन हैं? और मेरी ओर आपकी तीक्ष्ण दृष्टि क्यों है?' वे बोले, 'क्या हमें तुम भूल गये? तुमने राज अहंकरी में मत्त होकर निर्दयता से माँ के सामने एक लाख पशुओं की बलि दी थी। हम वे ही एक लाख प्राणी हैं। तुम्हें एक लाख जन्म तक पशुदेह धारण करनी होगी और हम लोग एक-एक कर आगे-पीछे तुम्हारा वध करेंगे।' यह सुनकर सुरथ राजा के नेत्रों में जल आ गया। वे काँपते-काँपते शुष्क कण्ठ से कहने लगे 'हा प्रभो! मैंने अज्ञानवश जो अपराध किये हैं, उनके लिए मुझे क्षमा कीजिये और ऐसी मति प्रदान कीजिये कि अब संसार में जन्म लेकर कभी इस प्रकार का पापाचरण न करूँ।'

इस प्रकार बहुत प्रार्थना स्तुति करने पर भगवान् ने सन्तुष्ट हो वर दिया कि तुमने बहुत दान पुण्य किया है, इसलिए उस सुकृति के प्रभाव से तुम्हें एक लाख जन्म न ग्रहण करने होंगे। एक जन्म में ही यह एक लाख प्राणी तुम्हारे ऊपर खड्गाघात करेंगे। ओह! कितनी भयानक कष्टप्रद मृत्यु! इन सब शास्त्रों को देख-सुनकर भी हमारे प्राणों को भय नहीं लगता।

गिरीश—माँ आद्याशक्ति, त्रिजगदाधिष्ठात्री, त्रिजगन्माता और जीवमात्र की पालयत्री हैं, इसे कौन नहीं स्वीकार करेगा? फिर भी माँ ने महिषासुर इत्यादि का वध किया था। इस कारण सम्भव है कि जिन प्राणियों का उसी प्रकार का रूप है उनका वध करने से माँ को सन्तोष होता है।

बाबाजी—ठीक! यह युक्ति अच्छी है। माँ ने महिषरूपधारी किसी असुर का विनाश किया था, इसलिए महिषरूपधारी सब प्राणियों का वध करने से माँ को सन्तोष होगा। इससे सिद्ध होता है कि जिन-जिन शक्लों के राक्षसों का विनाश किया गया है, उन्हीं शक्लों के प्राणियों का वध करने से माँ को सुख होगा। माँ ने तो शुम्भ, निशुम्भ, धूम्रलोचन, रक्तबीज प्रभृति मानव देहधारी असुरों का वध किया था, तब पशुबलि की भाँति नरबलि भी होनी चाहिये और दूसरे अवतारों में अघ, बक, धेनुक, वृष, वत्स, सम्बर प्रभृति असुरों का विनाश किया, इसलिए तत्ततरूप-विशिष्ट प्राणियों का भी वध होना चाहिये। परन्तु इन सबकी बलि क्यों नहीं चढ़ायी जाती? कैसी अनोखी युक्ति है। कोई पाप करे और कोई उसका फल भोग। किसी युग में कोई महिषासुर हुआ था, इसलिए उसकी जाति के सब निरपराध प्राणियों का वध किया जाय, इस युक्ति के अनुसार राक्षस-वंश-ध्वंसकारी रामचन्द्र के विभीषण का और हिरण्यकशिपु विनाशी नृसिंहदेव के प्रह्लाद का भी वध उचित था। और एक बात पूछता हूँ। आप लोगों को बलि शब्द का यह वध करने का अर्थ कहाँ से मिला? अभिदान है—'बलिः पूजोपहारः स्यात्।' जिस प्रकार धर्म, सूर्य और शिव के नाम पर बैलों को उत्सर्ग कर छोड़ दिया जाता है, उसी प्रकार उपहार-रूप से भेड़, भैंस इत्यादि को भी माँ को उत्सर्ग कर छोड़ देना उचित है। श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध के पंचम अध्याय में चमस योगेन्द्र ने कहा है—

यद् घ्राण भक्षो विहितः सुराया-
स्तथा पशोरालभनं न हिंसा।
एवं व्यवायः प्रजया न रत्यै
इमं विशुद्धं न विदुः स्वधर्मम्।।

सारांश यह कि किसी भी शास्त्र-युक्ति से हिंसा-जनित अपराधों का खण्डन नहीं किया जा सकता। लोग बिना विचारे ही हिंसादि घृणित कार्य करते हैं। पर हम जितना सोच-विचार कर विषय कार्य करते हैं, उससे सौगुना विचार करने की आवश्यकता है उपासनादि विषयों के सम्बन्ध में।

गिरीश बाबू और अन्यान्य सभी लोग बाबाजी महाशय की सदुपदेशपूर्ण बातें सुनकर परमानन्दित हुए। जिनके घर बलि नहीं होती थी उन्हें अब इसका कुछ दु:ख न रहा और वह समझ गये कि बलि न देना ही श्रेयस्कर है। बाबाजी महाशय और कई मन्दिरों में माँ के दर्शन कर श्रीमदनगोपाल जी के मन्दिर लौट आये और महाप्रसाद पाकर उस दिन भी पूर्ववत् कीर्तनानन्द में वहीं रात्रि व्यतीत की।

कालना में श्रीश्रीनिताइगौर दर्शन

बाबाजी महाशय दूसरे दिन प्रातः कृत्य समापनपूर्वक सातगाछिया-निवासी भक्तवृन्द से विदा लेकर कालना की ओर चले। सातगाछिया के बहुत-से लोग बहुत दूर तक संकीर्तन के साथ-साथ गये। किसी का मन इस आनन्दमय मधुर संग को छोड़कर घर लौटने को नहीं चाहता था। परन्तु लौटे बिना भी नहीं बनता था। इसलिए मन को छोड़ केवल देह लेकर घर लौटे। संकीर्तन ध्वनि ने जैसे ही कालना ग्राम को स्पर्श किया, कालना निवासी सब भागे आये और कीर्तन में योगदान करने लगे। आनन्द की सीमा न रही। ये लोग कहाँ जा रहे हैं, किसके घर ठहरेंगे कुछ ठीक नहीं। बाबाजी महाशय चरण पर चरण रख त्रिभंग कलेवर से नाचते-नाचते आगे जा रहे हैं। इस प्रकार की सुन्दर नृत्य-भंगि कभी किसी ने नहीं देखी थी। बहुत ऊँचा-नीचा पहाड़ी मार्ग होने पर भी इनके चरणों की केवल दो-तीन उँगलियाँ पृथ्वी को स्पर्श करती हैं। फिर भी नृत्य के समय आप इतने वेग से गमन कर रहे हैं कि भक्तों को इनका अनुसरण करना कठिन हो रहा है। इस नृत्यभंगि का भाषा में वर्णन करना असम्भव है। जिन्होंने प्रत्यक्ष देखा है वे ही जानते हैं।

बाबाजी महाशय कभी किसी शहर व ग्राम में किसी परिचित व्यक्ति को साथ नहीं लेते थे और न किसी से मार्ग के विषय में पूछताछ ही करते थे। यह उनका सदा का नियम था। कीर्तन के साथ नाचते-नाचते अति सुपरिचित व्यक्ति की भाँति ठीक गन्तव्य स्थान तक पहुँच जाते थे। कोइ पूछता, 'यह स्थानं क्या आपका परिचित है?' तो कहते 'मैं नहीं जानता तो क्या,

निताइचाँद तो जानते हैं। नाम और नामी अभिन्न हैं। नामरूप में निताइचाँद हमारे साथ चलते हैं। अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड में हमारे निताइ का राज्य है। निताइचाँद का अपरिचित स्थान क्या कहीं है? ग्राम, शहर, पर्वत, गुफा किसी भी स्थान से जिसकी जहाँ भी जाने की इच्छा हो एक मात्र नाम का आश्रय लेकर जाने से वह ठीक गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाता है। यदि नाम का सहारा लेकर प्राकृत राज्य में ही गमनागमन नहीं किया जा सके तो नाम अप्राकृत, नित्य-चिन्मय धाम में पहुँच सकेगा, इस पर विश्वास कैसे किया जा सकता है? इस सम्बन्ध में तुम्हें कोई भ्रम न होना चाहिये। इस जगत् में और पर-जगत् में ऐसा कोई कार्य नहीं, जो एकमात्र नाम के सहारे न हो सकता हो'। बाबाजी महाशय नाम करते-करते धीरे-धीरे चले जा रहे हैं। उसी समय सात आठ वर्ष का एक बालक आकर हँसते-हँसते कहता है, 'आप लोग कीर्तन लेकर मेरे साथ आइये। मैं आपको महाप्रभु जी के मन्दिर ले चलूँगा।'

अकस्मात् आये इस बालक की भावभंगि देख प्रायः सभी लोग कुछ विस्मित हुए, पर धूल-धूसरित अंग की नृत्यभंगि और उसके सुहास्यपूर्ण मुखारविन्द और टूटी-फूटी भाषा ने सबको मोह लिया। महाप्रभु के मन्दिर के समीप जाकर वह बोला 'वह महाप्रभु जी का मन्दिर दीख रहा है' और कीर्तन करने लगा। इस समय और भी कई बालक आकर कीर्तन में नृत्य करने लगे। बालक-बालक सब एक साथ मिल गये। इस खेल को निताइचाँद और उनके कुछ अन्तरंग भक्तों के अतिरिक्त और कोई न समझ सका।

महाप्रभु के मन्दिर में पहुँच कर ये लोग प्रायः दो घण्टे तक कीर्तन और उद्दण्ड नृत्य करते रहे। धीरे-धीरे ग्यारह बज गये। एक गोस्वामी प्रभु आकर बोले, 'आप लोग स्नान-ध्यान कर यहीं महाप्रसाद सेवन करें, यह सुनकर बाबाजी महाशय ने महाप्रभु की दया का अनुभव किया और उनका आनन्द और भी बढ़ गया। सबने गंगास्नानादि के पश्चात् परमानन्द से महाप्रसाद ग्रहण कर वहाँ विश्राम किया।

नाम-ब्रह्म के मन्दिर में नियमसेवा

तीसरे पहर चार-साढ़े चार बजे बाबाजी महाशय भक्तों सहित दर्शन करने निकले। बहुत-से स्थानों के दर्शन कर जैसे ही नाम-ब्रह्म[1] दर्शन करने पहुँचे, भगवानदास बाबाजी महाशय के प्रधान शिष्य विष्णुदास बाबाजी ने आकर इन्हें 'भ्रातुष्पुत्र' कह कर आलिंगन किया। बाबाजी महाशय ने सगण उन्हें दण्डवत् प्रणाम कर नाम-ब्रह्म के दर्शन किये और फिर सिद्ध भगवानदास बाबाजी महाशय की समाधि के दर्शन के लिए व्याकुल हो रोदन करने लगे। उनकी आर्ति, स्नेहमयी याचना, और पाँच वर्ष के बालक की भाँति रोना देख आगन्तुक, दर्शकगण अवाक् रह गये। उस समय की उनकी अवस्था देख कौन न समझता कि सिद्ध भगवानदास बाबाजी से उनका साक्षात् कथोपकथन हो रहा है। कुछ देर बाद विष्णुदास बाबाजी महाशय ने अपने सुमधुर सान्त्वना वाक्यों द्वारा समझा-बुझाकर उन्हें आलिंगनपूर्वक अपने पास बैठाया और नानाविध इष्टालाप करने लगे।

बाबाजी महाशय विष्णुदास बाबाजी महाशय के भ्रातुष्पुत्र कैसे हुए, यह जानने के लिए पाठकगण स्वाभाविक रूप से उत्कण्ठित होंगे। श्रीभगवानदास बाबाजी महाशय, श्रीचैतन्यदास बाबाजी महाशय और श्रीजगन्नाथदास बाबाजी महाशय[2] ये तीन महापुरुष एक ही समय तीन भिन्न-भिन्न भावों से साधना करते-करते भाव-सिद्ध हुए थे। श्रीजगन्नाथदास बाबाजी महाशय बड़े विधिनिष्ठ थे। देहान्तकाल पर्यन्त आपके साधन में किसी दिन आह्निक, पूजा, व्रत और नियम निष्ठा का किसी प्रकार व्यतिक्रम नहीं हुआ। श्रीचैतन्यदास बाबाजी महाशय का भाव ठीक इसके विपरीत था। वे सदा भाव में विभोर रहा करते थे। विधि की गन्ध भी उन्हें स्पर्श नहीं करती थी। श्रीगौरांगदेव उनके पति और वे उनकी पत्नी—यह भाव अनुक्षण उनके हृदय में रहता था। वे सर्वदा कहा करते '**भजन हल सारा, आमार साधन हल सारा। नदेर चाँदेर कान्ता आमि, कान्त आमार गोरा**'। कभी-कभी भावावेश में श्रीगौरांगदेव की श्रीमूर्ति के

1. सिद्ध भगवानदास बाबाजी महाशय की स्थापित सेवा। 2. बाबाजी महाशय के शिक्षा परमगुरु।

बाईं ओर जाकर खड़े हो जाते। कोई यदि अपने को गौरदासी व गौरांगदेव को प्राणवल्लभ कहता तो प्रणय रोष में भर गौरांगदेव और गौरदासी को बहुत कुछ बुरा-भला कहते। श्रीभगवानदास बाबाजी महाशय एकमात्र नामनिष्ठ थे। वे सर्वदा नाम जप किया करते थे। नाम करते-करते उनकी अनामिका उँगली माला से घिसकर पतली हो गयी थी। वे परम वैष्णवसेवी और वैष्णवाधरामृतनिष्ठ थे। उनकी कुटी के द्वार पर एक चौभच्चा था, जिसमें वैष्णवोच्छिष्ट, पत्तलादि फेंके जाते थे। शृगाल और कुत्ते भी उसमें-से प्रसादादि खाते थे। वे प्रातःकाल उठकर अलक्षित भाव से जब तक इस चौभच्चे से कुछ अधरामृत ग्रहण न कर लेते तब तक और कोई भी कार्य न करते।

ये तीन महापुरुष भिन्न-भिन्न भाव से भजन करते हुए भी परस्पर एक आत्म भाव रखते थे। एक दूसरे के मनोभाव को जानकर परम आनन्दित होते थे। उनमें परस्पर इतनी प्रीति थी कि एक दूसरे के लिए प्राण तक देने को तैयार रहते थे। कभी एक दूसरे के भाव और भजन को लेकर टीका-टिप्पणी नहीं करते थे। इसी को कहते हैं अप्राकृत भाव। परस्पर भ्रातृभाव होने के कारण वे एक दूसरे को 'दादा' कहा करते थे। इसी सम्बन्ध से विष्णुदास बाबाजी महाशय बाबाजी महाशय को भ्रातुष्पुत्र कहा करते थे। कैसा मधुर सम्बन्ध था। हम यदि इनके स्थान पर होते तो एक दूसरे को परास्त कर अपने भजनपथ पर लाने के लिए कितनी समालोचना और कितना कुतर्क करते और शास्त्र प्रमाण दिखाकर अपने-अपने मार्ग को सर्वश्रेष्ठ, महाप्रभु अनुमोदित और गोस्वामीगण-सम्मत सिद्ध करने की चेष्टा करते। हम जन-साधारण के निकट अपना पाण्डित्य स्थापित करने के लिए कितनी परचर्चा और परनिन्दा करते हैं। परन्तु इस बात का विचार नहीं करते कि परचर्चा, परनिन्दालब्ध पद-प्रतिष्ठारूप चण्डालिनी जिस हृदय को स्पर्श कर लेती है, उस हृदय में फिर भक्तिदेवी के लिए स्थान नहीं रहता। न हम यही समझते हैं कि किसी की साधनप्रणाली को लेकर वाद-विवाद करना मूर्खता है और गोस्वामियों के मत के विरुद्ध है। अब इस समालोचना पर अधिक समय नष्ट न कर केवल इतना कह देना पर्याप्त होगा कि हम सबका यह याद रखना कर्तव्य है—

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति,
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्यादृजु-कुटिल-नानापथजुषां,
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।।

(महिमा स्तोत्र ७)

धीरे-धीरे सन्ध्या हो आयी। विष्णुदास बाबाजी महाशय बाबाजी महाशय से बोले, "देखो, कल दशमी है। परसों से नियम-सेवा प्रारम्भ होगी। एक मास तक यहाँ से कहीं जाना नहीं।" बाबाजी महाशय ने कहा, "आप लोगों की कृपा और निताइचाँद की इच्छा जैसी होगी, वैसा ही करना होगा। मेरी तो पूरी इच्छा यही है कि आप लोगों के चरणों में पड़ा रहूँ।"

दूसरे दिन प्रभात में बाबाजी महाशय ने बहुत देर तक प्रभाती सुर में 'निताइ गौर राधेश्याम, हरे कृष्ण हरे राम' का कीर्तन किया और सिद्ध बाबाजी महाशय की समाधि के सामने जाकर बैठ गये। त्रिसन्ध्या कीर्तन करना उनका स्वाभाविक नियम था। अपनी भक्तमण्डली को उनका आदेश था कि लीला-कीर्तन चाहे न हो, त्रिसन्ध्या कीर्तन अवश्य होना चाहिये। विष्णुदास बाबाजी किसी वैष्णव को देख उससे उपासना प्रणाली सम्बन्धी प्रश्न अवश्य करते थे, किन्तु वे प्रकृत तत्वजिज्ञासु थे। जब कोई उन्हें यथार्थ तत्व समझा देता तो बहुत सन्तुष्ट होते। उन्होंने बाबाजी महाशय से पूछा 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' यह नाम तुझे कहाँ से मिला? नाम तो बड़ा सुन्दर है, पर आधुनिक है। पूर्व-पूर्व महाजनों की कृपा से हमें किसी प्रकार का अभाव तो है नहीं, फिर इस नये नाम को चलाने की क्या आवश्यकता?'

बाबाजी—बाबा, आप तो मेरे गुरुजनों में से हैं। यदि अपराध ग्रहण न करें तो मैं हृदय खोल कर कहूँ।

विष्णुदास—भाई मेरा स्वभाव उस तरह का नहीं है। मेरे साथ कोई कितना भी वादानुवाद करे, परन्तु शास्त्र युक्ति से यथार्थ तत्व समझा दे तो मुझे किसी प्रकार का असन्तोष नहीं होता। फिर तुम्हारे मेरे बीच

तो पिता-पुत्र का सम्बन्ध है। इसलिए अपराध की कोई सम्भावना नहीं।

बाबाजी—आपने कहा, 'निताइ गौर राधेश्याम, हरे कृष्ण हरे राम' आधुनिक है। निताइ, गौर, राधे, श्याम, हरे, कृष्ण, हरे, राम, इन आठ नामों में कौन सा नया है मुझे समझाने की कृपा करें तो उसी नाम को निकाल दूँ।

विष्णुदास—(कुछ विचार कर) नाम तो कोई नया नहीं, पर नाम का क्रम नया है।

बाबाजी—क्रम नया है—यह मैं ठीक से नहीं समझा।

विष्णुदास—नये क्रम के माने यह कि श्रीगौरांगदेव पूर्ण-पूर्णतम हैं, निताइ उनके स्वरूप प्रकाश और अद्वैताचार्य उनके अंशावतार हैं। श्रीगौरांगदेव महाप्रभु और निताइ व अद्वैत प्रभु हैं। अत: आगे महाप्रभु का नाम न लेकर प्रभु का नाम लेना ठीक नहीं लगता। 'गौर निताइ, राधेश्याम' कहना उचित होता।

बाबाजी—यदि अंशाशी भाव से परिवर्तन करना है तो कृष्ण भी तो पूर्णपूर्णतम हैं और महाभाव स्वरूपिणी राधारानी उनकी शक्ति हैं। इसलिए 'गौर निताइ श्याम राधे, कृष्ण हरे, राम हरे' इस प्रकार रखना ठीक होगा।

विष्णुदास—भाई! विषय-आश्रय तत्व के अनुसार श्रीमती राधारानी आश्रय और श्रीकृष्ण विषय हैं। आश्रय के आनुगत्य के बिना विषय की प्राप्ति नहीं होती।

बाबाजी—ठीक! व्रज में व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र एक मात्र विषय, अर्थात् प्राप्य वस्तु हैं। रक्तक-पत्रक दास्य भाव से, सुबल-मधुमंगल सख्यभाव से, नन्द-यशोदा वात्सल्य भाव से और गोपीगण मधुर भाव से उनके आश्रय हैं। जो जिस रस के उपासक हैं, वह उसी रस के आश्रय के आनुगत्य में उपासना कर उसी भावयुक्त विषय को अनायास प्राप्त करते हैं। इसीलिए आगे राधानाम न लेकर कृष्ण नाम लेना भूल है। अब बताइये शचीनन्दन गौरचन्द्र का किस प्रणाली से भजन करना चाहिये? किसके आनुगत्य में भजन करने से गौरांग प्राप्ति हो सकती है?

विष्णुदास—राधाशक्ति गदाधर पण्डित गोस्वामी आश्रय और गौरांगदेव विषय हैं। अतएव गदाधर पण्डित के आश्रय में भजन करने से सहज में गौरांगदेव की प्राप्ति हो सकती है।

बाबाजी—अच्छा, गुरुप्रणाली का क्या तात्पर्य है और उपासना मार्ग में इसकी आवश्यकता क्यों है?

विष्णुदास—महाप्रभु की अनेक शाखाएँ हैं। जो व्यक्ति जिस शाखा का अनुगत है, उस शाखा की परम्परा-श्रेणी का नाम ही उसकी गुरुप्रणाली है। जिस प्रकार किसी ऊँचे स्थान पर जाने के लिए सीढ़ी की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार अखिल-रसामृतमूर्ति श्रीगौरांगचन्द्र के निकट जाने के लिए गुरु, परमगुरु, परमेष्ठीगुरु प्रभृति का आश्रय लेने की आवश्यकता होती है। इसे भी आश्रय कहा जा सकता है।

बाबाजी—कहा जा सकता है नहीं, कहना ही होगा। श्रीगौरांगदेव को प्राप्त करने के लिए किसी एक प्रणाली अर्थात् उनके किसी अन्तरंग जन का आश्रय ग्रहण करना आवश्यक है। इसलिए निताइ, गदाधर व अद्वैताचार्य इत्यादि का आश्रय न लेकर किसी अन्य प्रकार से गौरांगलाभ करना सम्भव नहीं। इसी से निताइ नाम आगे रखने का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। श्रीगौरांगदेव भावनिधि और सभी प्रकार के रसों के आकर-स्वरूप हैं और उनके गणों में सब प्रकार के रसों के पात्र वर्तमान हैं। जो व्यक्ति जिस रस से उनको प्राप्त करने की इच्छा करते हैं, उसे तदनुकूल भाव से उसी रस के पात्र का आश्रय लेना चाहिये। सबको केवल निताइ, गदाधर व अद्वैत का भाव तो रुचिकर होगा नहीं। 'जार जेइ भाव सेइ सर्वोत्तम।' इसी को कहते हैं प्रणाली, सीढ़ी व आश्रय। व्रज और नवद्वीप दोनों क्षेत्रों में एक ही बात है। व्रज में जिस प्रकार 'व्रजवासीर कोनओ एक भाव लइया भजे। भाव योग्य देह पाइया कृष्ण पाय व्रजे' नवद्वीप में भी उसी प्रकार 'गौर गणेर आनुगत्ये भजे जेइ जन। अनायासे पाय सेइ गौरांगचरण'।

विष्णुदास—इससे यह सिद्ध हुआ है कि यह नाम सार्वजनीन नहीं है। एकमात्र नित्यानन्द परिवार के लिए ही इसका विधान किया गया है।

बाबाजी—जिस प्रकार गौरांगदेव भाव-निधि है, उसी प्रकार निताइचाँद सब भावों के आश्रय स्वरूप हैं। श्रीगौरांग जिस प्रकार सभी रसों के आकर हैं, निताइचाँद उसी प्रकार सभी रसों के गुरु हैं। इसलिए कोई किसी भाव या रस का उपासक क्यों न हो, एकमात्र निताइ का आश्रय लेने से उस भाव से गौरांगदेव को प्राप्त करेगा—

निताइ नागर, रसेर सागर, सकल रसेर गुरु।
जे जाहा चाय, से ताहा पाय, वाञ्छाकल्पतरु।।

अन्यत्र—

अन्तरे निताइ, बाहिरे निताइ, निताइ जगतमय।
नागर निताइ, नागरी निताइ, निताइ कथा से कय।।
साधन निताइ, भजन निताइ, निताइ नयन-तारा।
दशदिक्मय, निताइ सुन्दर, निताइ भुवन भरा।।
राधार माधुरी, अनंगमंजरी, निताइ नितु[1] से सेवे।
कोटि शशिधर, बदन सुन्दर, सखा सखी बलदेवे।।
राधार भगिनी श्याम सोहागिनी, सब सखीगण प्राण।
जाहार लावणी, मंडप साजनी, श्रीमणिमंदिरनाम।।
निताइ सुन्दरे, योगपीठे धरे, रत्न सिंहासन सेजे।
वसन निताइ, भूषन निताइ, बिलसे सखिर माझे।।
कि कहिब आर, निताइ सबार, आँखि मुख सर्वअंग।
निताइ निताइ, निताइ निताइ, निताइ नूतन रंग।।
निताइ बलिया दुबाहु तुलिया चलिब बरज पुरे।
दास वृन्दावन, करे निवेदन, निताइ ना छेड़े[2] मोरे।।

अब पर्यायक्रम से इस नाम का अर्थ सुनिये—'भज निताइ गौर', अर्थात् यदि तुम मनुष्य जीवन सफल करना चाहते हो, तब निताइ का आश्रय लेकर गौर को भजो, अर्थात् सेवा करो। निताइ हैं प्रेम-दाता, यदि प्रेमधन ही न होगा तो गौरांग की सेवा किस से होगी? गौरांग तो प्रेम के भूखे हैं। वे धन, मान, कुल और मर्यादा के भूखे नहीं हैं। धन-मान-कुलाभिमानी के लिए तो वे सुदुर्लभ ही हैं। इसीलिए महाजनों ने कहा है—

गौरांग पाइते जदि थाके अभिलाष।
एकान्त भावेते हओ नित्यानन्द-दास।।
मुखेओ जे जन बले मुञि नित्यानन्द-दास।
निश्चय देखिबे गोरार स्वरूप प्रकाश।।

महाप्रभु ने निजमुख से भी कहा है—

जन्म धरिया हेलाय श्रद्धाय जे लय निताइएर नाम।
आमि बिकाइ, तारे देखाइ जुगल राधाश्याम।।

इसलिए सोते समय या उठते समय जो एक बार निताइ कहकर पुकारेगा, उसे ही गौरांगदेव की प्राप्ति होगी। गौर को पाकर फिर राधागोविन्द की प्राप्ति के लिए कोई और भजन-साधन न करने से भी निज-निज हृदय के भाव के अनुसार गौर ही राधा-श्याम से मिला देंगे।

विष्णुदास—महाप्रभु ने 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।।' इस महामन्त्र का जप करने के लिए कलि के जीवों को आदेश किया था। क्या तुम कहना चाहते हो कि उस हरेकृष्ण नाम को परित्याग कर 'निताइ गौर राधेश्याम' नाम का ही जप करना चाहिये?

बाबाजी—'निताइ गौर राधेश्याम, हरे कृष्ण हरे राम।' नाम में हरेकृष्ण नाम परित्याग करने की कोई बात ही नहीं, वरं जपने की व्यवस्था ही दी हुई है। गुरुदेव कहतें हैं 'भज निताइ गौर राधेश्याम। जप हरे कृष्ण हरे राम।।' अर्थात् निताइ गौर का भजन करना है तो हरे कृष्ण महामन्त्र का जप करो। इससे निताइ गौर की प्राप्ति होगी, और निताइ गौर की कृपा से अनायास राधागोविन्द की प्राप्ति होगी। गुरुदेव ने इस भजन प्रणाली के अनुसार ही इस नाम की रचना की है।

नित्यानन्द प्रेमदाता गौरांग परमधन।
रासविलासे पाबे श्रीराधारमण।।
हरे कृष्ण हरे राम नाम तरी आरोहणे।
संसार सागर पार चल वृन्दावने।।

यह देखकर कि किसी प्रकार का भजन-साधन करने व विधि-नियम पालन करने की हमारी सामर्थ्य नहीं है, गुरुदेव ने आदेश किया है, "तुझे और कुछ भी करना न होगा। इस नाम का कीर्तन करते हुए देश

1. नित्य, 2. छोड़ें।

विदेश भ्रमण कर। नाम के निकट देश, काल, पात्र, शुचि अशुचि का विचार नहीं है। श्रद्धा से व अश्रद्धा से एक बार भी उच्चारण करने से सर्वसिद्धि आप ही होगी, नाम से कुछ मांगने की भी आवश्यकता नहीं। नाम जैसे प्रयोजन का बोध करेंगे वैसी ही व्यवस्था करेंगे।" गुरुदेव ने और भी कहा है, "तुम बहुत जन्मों से संसारी लोगों के निकट अनेक प्रकार से ऋणी हो। तुम्हारे पास ऐसा कोई परमार्थधन तो संचित है नहीं, जिसके द्वारा अपने ऋण का परिशोध कर सको। अतएव कोई ग्रहण करे या न करे, अयाचित भाव से इस अमूल्य धन को सर्वसाधारण में निष्काम भाव से बिना विचारे वितरण करते चलो। तुम सारे ऋणों से मुक्त हो जाओगे, इसमें सन्देह नहीं।" इसीलिए गुरुदेव की आज्ञा शिरोधार्य कर इस नाम के अवलम्बन से देश-देश में भ्रमण करता फिरता हूँ। मैं किसी का उपदेष्टा व शिक्षक नहीं हूँ।

विष्णुदास बाबाजी महाशय अब तक नीरव रहकर इनकी गुरुनिष्ठा एवं गुरु-चरणों में आत्म-निर्भरता की बात सुनकर नेत्रों से आँसुओं की नदी बहा रहे थे। अब उनसे न रहा गया और एकाएक उच्च स्वर से रोते-रोते बाबाजी महाशय को आलिंगन कर कहने लगे, "बाबा! मैंने अज्ञान से तुम्हारे और नाम के ऊपर कटाक्ष किया है। मैं घोर अपराधी हूँ। मेरी क्या गति होगी?" बाबाजी महाशय ने कहा, "बाबा! मैं आपकी सन्तान हूँ। यह तो मेरी शिक्षा है। आप इस सम्बन्ध में कुछ चिन्ता न करें।" यह कहकर आनन्द से 'भज निताइ गौर राधेश्याम। जप हरे कृष्ण हरे राम।।' नाम कीर्तन करते-करते नृत्य करने लगे। कुछ समय कीर्तन कर सब नाम करते-करते गंगास्नान के लिए गये। स्नानादि शेष कर और महाप्रसाद ग्रहण कर सबने विश्राम किया।

तीसरे पहर कोई साढ़े चार बजे सब मिलकर कीर्तन करते-करते महामाया के विजया-दर्शन करने गये। आज गंगातट पर कैसा कोलाहल है। माँ आनन्दमयी चिरदिन जगवासी जन-साधारण को आनन्द सागर में निमग्न कर मानो स्वयं परमानन्दित हो शंकरजटा निवासिनी, द्रवमयी जाह्नवीदेवी को आलिंगन कर रही हैं। हरिध्वनि, उलुध्वनि, शंख, घंटा, ढोल और शहनाई की ध्वनि से दसों दिशाएँ गूँज उठी हैं। आज माँ को आनन्दित देख सन्तान के, और सन्तान को आनन्दित देख माँ के आनन्द की सीमा नहीं है। माँ ने जैसे ही भागीरथी को प्रेमालिंगन किया, वैसे ही उनकी सन्तान आबाल-वृद्ध ने द्वेष-भाव रहित हो प्रेमानन्दोत्फुल्लित चित्त से एक-दूसरे को आलिंगन किया। बाबाजी महाशय रात प्रायः दस बजे तक गंगातट पर कीर्तन कर नामानन्द में मग्न हो कीर्तन करते-करते नाम-ब्रह्म मन्दिर लौटे और महाप्रसाद सेवन कर विश्राम किया।

प्रभात होते-होते सब गंगा स्नान कर लौटे। आज एकादशी है। अष्टप्रहर नामकीर्तन होगा। प्रभाती सुर में 'निताइ गौर राधेश्याम' नाम आरम्भ हुआ। 'निताइ गौर राधेश्याम' नाम मानो कल्पतरु है। जिस समय जिस सुर और रागनी में गाया जाय, उसी में परमानन्द की प्राप्ति होती है। पद-पदावली भी नाम के साथ सहज में जुड़कर उसे और भी सुमधुर बना देती है। दिन जैसे-जैसे चढ़ता गया कीर्तनानन्द की भी वृद्धि होती गयी। चारों ओर खबर फैल गयी—'नवद्वीप से एक साधु आये हैं। उनका अपूर्व प्रेम है, अपूर्व कीर्तन और अपूर्व शक्ति है। वे नाम से पेड़ नचा देते हैं और पत्थर गला देते हैं, इत्यादि।

धीरे-धीरे बहुत लोग एकत्र हो गये हैं। 'निताइ गौर राधेश्याम' सरल नाम बालक-वृद्ध सभी उच्चारण कर समान रूप से आनन्द उपभोग कर रहे हैं। किसी-किसी समय बोध होता है कि सिद्ध बाबाजी महाशय प्रकट होकर नाम में योग दे रहे हैं। सब अक्लान्त भाव से प्रेमानन्द में मतवाले होकर क्षुधा-तृष्णा भूलकर नामानन्द में नृत्य कर रहे हैं। बालक कीर्तन में इतने लवलीन हैं कि उनके माता-पिता बहुत प्रयत्न करके भी उन्हें घर नहीं ले जा पा रहे हैं। धीरे-धीरे नाम इतना मधुर लगने लगा कि सारी रात बीत गयी, फिर भी किसी की नाम छोड़ने की इच्छा न हुई। इसी प्रकार रात-दिन कथा-कीर्तन और तत्वालोचना में बाबाजी महाशय और उनके साथियों को एक महीने पाँच दिन नाम-ब्रह्म के मन्दिर में कैसे बीत गये, किसी को पता न चला।

गुरप यात्रा

एक दिन प्रातःकाल स्नानाह्निकादि समापनपूर्वक बाबाजी महाशय ने विष्णुदास बाबाजी महाशय से स्थानान्तर जाने के लिए विदा की प्रार्थना की। विष्णुदास बाबाजी उन्हें आलिंगन कर अश्रुभरे नेत्रों से कहने लगे, "बाबा! मैंने इतने दिन तुम्हारे साथ जिस सुख का अनुभव किया है, उसे व्यक्त करने की मुझमें सामर्थ्य नहीं। मेरी बड़ी इच्छा है कि और भी कुछ दिन तुम्हारे साथ इस आनन्द का उपभोग करूँ। इच्छांमय की क्या इच्छा वही जानें।"

बाबाजी—बाबा! मेरी भी यही वासना है। पर न जाने किस उद्देश्य से निताइचाँद ने मानसिक वृत्ति कुछ चंचल कर रखी है। इसलिए कुछ दिन घूम फिरकर यदि प्रभु ने चाहा तो फिर यहाँ आकर एक साथ आनन्द करेंगे।

इतना कह वे विष्णुदास बाबाजी महाशय को दण्डवत् प्रणाम कर सिद्ध बाबाजी महाशय की समाधि के निकट गये और उन्हें साष्टांग दण्डवत् कर कीर्तन करते-करते समाधि स्थल से बाहर निकल गये।

कहाँ किस ओर जा रहे हैं कुछ ठीक नहीं। स्वच्छन्द गति से नाचते-नाचते, कीर्तन करते बढ़ते चले जा रहे हैं। जिस ग्राम में जिस दिन विशेष आग्रह के साथ रहने को कहा जाता है, उस दिन उसी ग्राम में रह कर कीर्तनानन्द में समय व्यतीत करते हैं। इस प्रकार बहुत से स्थानों में भ्रमणकर एक दिन दस बजे के निकट गुरप नामक एक ग्राम में पहुँचे। किसी से भी कुछ परिचय न था, तथापि आपके व्यवहार से जान पड़ता था न जाने कब का परिचित स्थान है। कीर्तन करते-करते किसी ठाकुर मन्दिर के निकट होकर जा रहे थे, उसी समय एक गोस्वामी-सन्तान मन्दिर से निकले और संकीर्तन को दण्डवत्-प्रणाम कर इन लोगों को भीतर ले गये।

मन्दिर में श्रीराधा-गोविन्द की युगल मूर्ति विराजमान हैं। विग्रह का नाम है श्रीराधावल्लभ जी। सब लोग दर्शन कर दुगने उत्साह से कीर्तन करने लगे। राधावल्लभ जी के मन्दिर में अकस्मात् खोल-करताल के साथ कीर्तन ध्वनि सुन ग्रामवासी स्त्री-पुरुष बहुत-से लोग आ गये। नूतन नृत्य और कीर्तन देख सब अवाक्। बाबाजी महाशय श्रीराधागोविन्द को लक्ष्य कर नानारूप पदावली कीर्तन कर रहे थे और नृत्य कर रहे थे। धीरे-धीरे समय अधिक हुआ देख, कीर्तन समाप्त किया। पूर्वोक्त गोस्वामी प्रभु के आग्रह से स्नानादि कर सबने श्रीश्रीराधावल्लभ जी का प्रसाद ग्रहण कर कुछ विश्राम किया।

अपराह्न में फिर बहुत-से लोग एकत्र होने लगे। गोस्वामी प्रभु और अन्यान्य लोगों की इच्छा थी कि ये लोग श्रीश्रीराधावल्लभ जी के मन्दिर में अवस्थान करें। एक व्यक्ति ने जब बाबाजी महाशय के निकट यह अभिप्राय प्रकाश किया तो वे बोले, "बाबा! न जाने निताइचाँद किस लीला के उद्देश्य से यहाँ लाये हैं। आप लोग निताइचाँद से प्रार्थना करें। यदि उनकी इच्छा हो तो दास को क्या आपत्ति हो सकती है?"

इस प्रकार नानाविध कथोपकथन करते-करते सन्ध्या हो आयी। श्रीश्रीराधागोविन्द जी की आरति का समय हुआ और इन्होंने आरति-कीर्तन आरम्भ किया। क्रम से रूप, अभिसार और मिलन कीर्तन कर कीर्तन समाप्त किया। उस रात्रि किसी ने प्रसाद न पाया और मन्दिर में शयन किया। दूसरे दिन प्रभात में प्रभाती कीर्तन समाप्त कर जब उस स्थान से चलने को हो रहे थे, उसी समय नवद्वीपदास ने कहा, "दादा! चैतन्य को भयानक ज्वर हुआ है।" बाबाजी महाशय मृदु हँसी के साथ बोले, "बलिहारी लीलामय निताइचाँद का खेल!" पूर्वोक्त गोस्वामी प्रभु आकर बोले, "देखिये! ऐसे पीड़ित व्यक्ति को साथ ले दूसरी जगह जाना असम्भव है। निश्चय ही श्रीश्रीराधावल्लभ जी की इच्छा है कि आप कुछ दिन यहाँ रहें।"

'अच्छा, इच्छामय की इच्छा ही पूर्ण हो' कहकर बाबाजी महाशय श्रीश्रीराधावल्लभ जी के सम्मुख बैठ गये। यथासमय स्नानादि मध्याह्न कीर्तन समापनपूर्वक सबने श्रीश्रीराधावल्लभ जी का प्रसाद पाया और थोड़ी देर विश्राम करने के लिए लेट गये। प्रभु की इच्छा वे ही जानें, एक-एककर प्रायः सभी साथी ज्वराक्रान्त

हो गये। अब शीघ्र स्थानान्तर जाने की कोई सम्भावना ही न रही।

नवद्वीपदास का पुनर्जीवन

एक दिन अपराह्न में ज्योतिषशास्त्र में विशेष पारदर्शी एक पण्डित आकर विशेष आग्रह के साथ सबका हाथ देखने लगे। कई लोगों का हाथ देखने के बाद नवद्वीपदास का हाथ देखते ही चौंककर उनके मुख की ओर एकटक देखने लगे। पण्डित महाशय की भावगति देख सब विस्मित हो गये और यह समझकर कि उनके हाथ में कोई शुभ या अशुभ विशेष बात अवश्य है, उसे जानने के लिए उत्कण्ठित हो गये। बाबाजी महाशय ने पूछा, "क्या बात है पण्डित जी, क्या देखा उसके हाथ में?"

पण्डित—आपसे एकान्त में कहूँगा।

बाबाजी—क्यों, एकान्त का क्या प्रयोजन है? जगत् में शुभ अशुभ दोनों एक साथ मिले हुए हैं। यह एक स्वाभाविक नियम है। मेरी समझ में तो जिसकी बात हो उसके सामने ही कहना उचित है। संकोच करने का कोई कारण नहीं। आप स्पष्ट कहिये।

पण्डित—क्या कहूँ? अपनी विद्याबुद्धि और धारण से जहाँ तक समझ सका, बालक की आयु करीब-करीब समाप्त हो रही है। यदि किसी प्रकार इसका प्रतिकार हो सकता तो मैं कहता। किन्तु इसका भोगकाल बिल्कुल समाप्त है। इसीलिए मैं कहने में संकोच कर रहा था।

नवद्वीप कुछ हँसते-हँसते बोले, "यह तो मैं पहले से ही जानता हूँ। जिन पण्डित जी ने मेरी जन्म कुण्डली बनाई थी, वे एक बहुदर्शी ज्योतिर्विद् पण्डित थे। उन्होंने 1303 (बंगला) के पौष मास के प्रथमांश में मेरी मृत्यु निर्धारित की थी। इतना ही नहीं, कौन-सी व्याधि से मृत्यु होगी, यह भी बता दिया था।"

पण्डित—मैं जहाँ तक समझता हूँ ज्वर और खाँसी से आपकी मृत्यु होनी चाहिये।

नवद्वीप—ठीक। उन्होंने भी यही कहा था। इसमें दु:ख की क्या बात है? मेरे लिए तो आज परमानन्द का दिन है। यदि ऐसे सत्संग में रहकर देह-त्याग हो तो इससे अधिक सौभाग्य की बात और क्या हो सकती है?

पर साथियों के तो नवद्वीप प्राण थे। इसलिए सब बहुत चिन्तित हो उठे। विभिन्न देशीय दो पण्डितों की बात परस्पर मिल जाने से अविश्वास की भी कोई बात न रही। बाबाजी महाशय बिलकुल उदासीन थे। कोई नवद्वीप के विषय में पूछता तो कहते, "मैं क्या जानूँ? निताइचाँद की इच्छा होगी वही होगा। वृथा आन्दोलन करने की आवश्यकता नहीं। नाम करो, मंगलमय जिस समय जो करते हैं, मंगलमय होता है।"

देखते-देखते नवद्वीप अति कातर हो गये। ज्वर और खाँसी क्रमश: बढ़ने लगे। सभी की धारणा दृढ़ हो गयी कि वे अब नहीं बचेंगे। एक दिन अवस्था बहुत शोचनीय हो गयी। बोलने की भी शक्ति न रही। बाबाजी महाशय के आदेशानुसार सब उन्हें घेरकर नाम-कीर्तन करने लगे। नवद्वीप ने बाबाजी महाशय से कर जोड़कर विदा माँगी। बाबाजी महाशय के आरक्त नयन छल-छल कर रहे थे और वे बार-बार 'जय निताइ, जय निताइ' कह हुँकार रहे थे। कोई दस बजे नवद्वीप की नाड़ी छूट गयी। चक्षु श्वेतवर्ण और स्पन्दनहीन हो गये। संगीगण रोते-रोते गद्‌गद कण्ठ से कीर्तन कर रहे थे। एकाएक बाबाजी महाशय गोकुल और विधु से बोले, "उसे लेकर बाहर आओ।" सबने हताश हो उन्हें बाहर लाकर बिठा दिया। उनकी आँखें ऊपर चढ़ रही थीं, सिर लटका पड़ रहा था। बाबाजी महाशय ने उन्हें छाती से लगाकर खड़ा किया। उनका शरीर काँप रहा था। कहीं गिर न पड़ें, इस भय से गोकुल उनके पीछे खड़ा था। नवद्वीप का सिर इनके बाँयें कन्धे पर था। संगीगण आत्महारा हो नामकीर्तन कर रहे थे। कीर्तन की ध्वनि जिसके भी कान में पड़ी, वही व्याकुल भाव से आकर कीर्तन में सहयोग देने लगा। देखते-देखते नवद्वीप के मुद्रित नेत्र उन्मीलित हो गये। धीरे-धीरे बाबाजी महाशय के कन्धे से सिर उठाकर चारों ओर देखने लगे। तब बाबाजी महाशय उन्हें छाती से अलग कर भाव में झूमते-झूमते 'बोल श्रीनित्यानन्द, बोल श्रीनित्यानन्द' कह नृत्य करने लगे।

आगन्तुक दर्शकवृन्द इस अलौकिक व्यापार को देख विस्मय सागर में निमग्न हैं। संगीगण भावोन्मत्त हैं। सभी के मुख से 'बोल श्रीनित्यानन्द' की धुन निकल रही है। उसी समय बाबाजी महाशय ने और एक बार नवद्वीप को आलिंगन कर छोड़ दिया। छोड़ते ही नवद्वीप आनन्दपूर्वक नृत्य करने लगे। अब सबके आनन्द की सीमा न रही। इस प्रकार कुछ देर कीर्तन करने के पश्चात् बाबाजी महाशय नवद्वीप से बोले, "जाओ रज में लोट-पोट करो। निताइचाँद ने इस यात्रा में तुम्हारी रक्षा की।" नवद्वीप हँसकर बोले, "तुम्हारी इच्छा, तुम जिला भी सकते हो, मार भी सकते हो" इतना कह वे रज में लोटते-लोटते बाबाजी महाशय के चरणों में दण्डवत प्रणाम कर बैठ गये। बाबाजी महाशय और अन्यान्य लोग भी दण्डवत प्रणाम कर कीर्तन स्थल पर बैठ गये।

गोकुल ने पूछा—"प्रभु, परमायु समाप्त हो जाने पर भी किसी को बचाया जा सकता है?"

बाबाजी—घर में जब खाने को नहीं रहता तब क्या लोग उधार लेकर काम नहीं चलाते?

गोकुल—पैसे कौड़ी का तो उधार चलता है। पर क्या आयु भी उधार ली जा सकती है?

बाबाजी—निताइचाँद की इच्छा से असम्भव भी सम्भव हो सकता है। सामान्य परमायु की तो बात ही क्या, काठ की पुतली भी बोल सकती है।

बाबाजी महाशय का ज्वर

नाना प्रकार कथावार्ता के पश्चात् सबने स्नानादि से निवृत्त हो प्रसाद ग्रहण कर विश्राम किया। उसी रात बाबाजी महाशय को अकस्मात् भयानक ज्वर हुआ। तीन दिन तक समान रूप से ज्वर रहा। पर बाबाजी महाशय ने न तो औषधि का सेवन किया और न उपवास। एक दिन कविराज, जो पहले से ही सब लोगों की देखभाल कर रहे थे, बाबाजी महाशय से विनयपूर्वक बोले, "देखिये, यदि आप लंघन न करेंगे, तो सहज में ज्वर न जायेगा। यह वातश्लेष्मा ज्वर है, किसी ठण्डी वस्तु का व्यवहार न कीजियेगा।"

बाबाजी—तो क्या पथ्य करना होगा?

कविराज—सामान्य मिश्री के साथ थोड़ी बार्ली या अदरक के साथ कुछ खील खा लेना ठीक होगा। दो महालक्ष्मीविलास और एक ज्वरचिन्तामणि वटी दिये जा रहा हूँ। अभी ज्वरचिन्तामणि अदरक और पान के रस और शहद के साथ ले लें, दो घण्टे बाद तुलसी के पत्ते के रस और शहद में महालक्ष्मीविलास लें। शाम को इसी प्रकार फिर लक्ष्मीविलास लें। यदि रात्रि में ज्वर बढ़े तो मुझे खबर कर दें।

बाबाजी महाशय ने 'जो आज्ञा' कह कविराज महाशय को प्रणाम किया। उन्होंने भी प्रतिप्रणाम कर प्रस्थान किया। श्रीश्रीराधावल्लभ जी के गोस्वामी सेवकगण बाबाजी महाशय के शरीर की अवस्था देख और कविराज की बात सुन बहुत चिन्तित हुए। कविराज महाशय के चले जाने पर गोकुल ने बाबाजी महाशय से पूछा, 'औषधि तैयार करूँ?'

बाबाजी—यह तीनों गोलियाँ एक साथ पुड़िया में मेरे सिरहाने रख दो।

गोकुल ने ऐसा ही किया। बाबाजी महाशय के ज्वर का संवाद पाकर उनके शिष्य कलकत्ता निवासी योगेन्द्र नाथ मित्र महाशय नाना प्रकार के फल, अचार, मुरब्बा और पुराना घी इत्यादि लेकर उस दिन कोई बारह बजे वहाँ आकर उपस्थित हुए। एक गोस्वामी जी ने बाबाजी महाशय से कहा, "बाबा, इन फलमूल, अचार, मुरब्बे इत्यादि का श्रीराधावल्लभ का भोग अभी न लगेगा। दो चार दिन बाद जब आप कुछ ठीक हो लेंगे तभी भोग लगाया जायेगा।" बाबाजी महाशय ने भी एक भले आदमी की तरह कहा, "ना बाबा! इस समय क्या इन सब चीजों का भोग दिया जा सकता है?"

यथासमय श्रीराधावल्लभ जी के भोग के पश्चात् बाबाजी महाशय गोकुल से बोले, "थोड़ा सा महाप्रसाद ले आ।" गोकुल ने पहले तो कुछ आपत्ति की, किन्तु बाबाजी महाशय का विशेष आग्रह देख कुछ महाप्रसाद ले आया। बाबाजी महाशय ने प्रसाद पाकर शयन किया। तीसरे पहर गोकुल को आदेश किया, "योगेन जितने प्रकार के फल लाया है सबका थोड़ा-थोड़ा रोज रात में निकुंज भोग लगाना।"

गोकुल उनके आदेशानुसार निकुंज भोग लगाने लगा। बाबाजी महाशय भी नित्य रात्रि को निकुंज भोग का प्रसाद पाने लगे। इस प्रकार दो दिन बीते। तीसरे दिन छाती में अत्यन्त वेदना होने लगी और ज्वर भी अधिक हो गया। यह देख सब बहुत चिन्तित हुए। पुराना घी और आक के पत्ते का सेंक देकर फ्लैनेल की पट्टी सीने पर बाँध दी गयी। किसी अच्छे डाक्टर द्वारा चिकित्सा कराने की बात होने लगी। बाबाजी महाशय बोले, "अच्छा, कल जैसा भी होगा बन्दोबस्त किया जायेगा।" धीरे-धीरे रात हो गयी। बाबाजी महाशय साथियों से बोले, "केवल एक आदमी मेरे पास रहे और सब अलग जाकर सो जाओ।" यह कहकर उन्होंने शयन किया। रात बारह बजे के करीब बोले—'कोई है?' उत्तर में गोकुल ने कहा—'जी, मैं हूँ'।

बाबाजी—देख गोकुल, ऊपर अचार की दो हाँड़ियाँ हैं, इन्हें उतार तो।

गोकुल ने हाँड़ियाँ उतार कर देखा कि एक में आम और नीबू का अचार है, दूसरी में आम का मुरब्बा। गोकुल ने कहा—"प्रभु, अभी आपका स्वास्थ्य तो ठीक है नहीं।"

बाबाजी—मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है तो क्या? निताइचाँद की खाने की इच्छा हुई है। तू उनका भोग लगा।

यह कहकर सीने से फ्लैनेल की पट्टी खोलकर फेंक दी और अपने हाथ से अचार निकाल एक थाली में सजा दिया। गोकुल किंकर्तव्यविमूढ़ हो कुछ देर सोचता रहा। पर उसे भोग लगाना ही पड़ा। भोग के पश्चात् वह सब अचार, सात आठ नीबू एवं अन्यान्य फलमूल प्रसाद बाबाजी महाशय ने खूब प्रेम से पाया। इससे पूर्व शायद किसी ने उन्हें इतना सारा प्रसाद एक साथ पाते कभी नहीं देखा था।

दूसरे दिन सबेरे सब बहुत चिन्तित। सबने यही स्थिर किया कि कल की अवस्था देखते डाक्टर को बुलाना अत्यन्त आवश्यक है। परन्तु जब बाबाजी महाशय के पास गये तो कुछ और ही व्यापार देखा। वे बोले, "देखो आज मैं स्नान करूँगा। मेरा शरीर बहुत स्वस्थ है।" यह सुनकर सब अवाक्! कविराज महाशय आकर नाड़ी देखकर बोले, "कल नाड़ी में बहुत कफ था। परन्तु आज बिल्कुल विपरीत बात है। आज इतनी वायु बढ़ी हुई है कि फल-मूल आदि का व्यवहार न करने से काम न चलेगा। आप अच्छी तरह स्नान कर सकते हैं, इसमें कोई आपत्ति नहीं।"

गोकुल अभी तक चुप था। परन्तु अब उससे न रहा गया। उसने कहा, "कविराज महाशय, नाड़ी की गति कैसी है, मैं कुछ भी नहीं समझ सका। जो निमोनियाँ का रोगी रात बारह बजे के बाद सात-आठ नीबू, आधी हँड़िया आम, कागजी नीबू और बेर का अचार, आधी हँड़िया आम का मुरब्बा और अन्यान्य ठण्डे फल खाये, उसकी नाड़ी में दूसरे दिन वायु की वृद्धि!"

यह सुनकर सभी बहुत विस्मयान्वित हुए। कविराज महाशय बाबाजी महाशय को दण्डवत् प्रणाम कर बोले, "बाबा, मेरा अपराध क्षमा कीजिये। आप जीवों का भवरोग दूर कर सकते हैं, यह तो सामान्य देह-रोग ही है। आपकी चिकित्सा कर मैंने बड़ी धृष्टता की। मैं आपकी सन्तान हूँ, मेरे प्रति कृपा दृष्टि रखिये।"

बाबाजी महाशय कविराज महाशय को गोद में भरते हुए बोले, "भाई! निताइचाँद से कहो। मैं तो काठ की पुतली हूँ। वे जिस समय जिस प्रकार नचाने की इच्छा करते हैं, उसी प्रकार नाचना पड़ता है।"

कविराज—बाबा! मैं तो इतना समझता नहीं। इसलिए किसी अलौकिक घटना को देख विस्मय होता ही है।

इस प्रकार नानारूप कथोपकथन में कुछ समय व्यतीत हुआ। बाबाजी महाशय ने नियमानुसार स्नानादि कर प्रसाद ग्रहण किया और सन्ध्या समय ग्रामवासियों के अनुरोध से नगर कीर्तन किया।

श्रीश्रीनिताइ के मन्दिर में कीर्तन

इस प्रकार आठ-दस दिन व्यतीत हुए। एक दिन प्रभात में स्नानादि प्रातःकृत्य समापन-पूर्वक बाबाजी महाशय नगर कीर्तन को निकले। प्राणों को मत्त कर देनेवाली गगनभेदी संकीर्तन-ध्वनि सुन चारों ओर से स्त्री-पुरुष बाल-वृद्ध-वनिता भाग-भाग कर आने लगे। कुछ दूर जाकर सामने एक मन्दिर दीख पड़ा।

बाबाजी महाशय ने उसमें प्रवेश कर देखा कि श्रीनिताइ का विशाल श्रीविग्रह विराजमान है। उनके गले में एक आपादविलम्बित केलि-कदम्ब की माला शोभायमान है।

बाबाजी महाशय निताइचाँद का अपरूप सौन्दर्यपूर्ण माधुर्यमय मुखचन्द्र दर्शनकर प्रेमानन्द में विभोर हो कीर्तन करने लगे। संगीगण आत्महारा भाव से उद्दण्ड नृत्य करने लगे। आगन्तुक दर्शकवृन्द इस नूतन नृत्य और कीर्तन को देख विस्मित भाव से खड़े रह गये। बाबाजी महाशय निताइचाँद को लक्ष्य कर एकाएक बोल उठे, "निताइचाँद! इस माला पर मुझे बहुत लोभ हो रहा है। मेरे मन में वासना है कि तुम्हारी प्रसादी माला गले में डाल तुम्हारे सामने प्राणभर नृत्य करूँ।" इतना कहते ही श्रीनिताइचाँद के गले की माला टूटकर चरणों पर आ पड़ी। उपस्थित दर्शकों ने विशेष रूप से लक्ष्य कर देखा कि मन्दिर के भीतर कोई नहीं है। सब अत्यन्त विस्मित भाव से हरिध्वनि करने लगे। सेवक ने उत्साह सहित माला लाकर जैसे ही बाबाजी महाशय के गले में डाली, चारों ओर से गगनभेदी 'हरि-बोल' ध्वनि उठने लगी। संगीगण दूने उत्साह से उद्दण्ड नृत्य करने लगे। तब बाबाजी महाशय ने भावावेश में झूमते-झूमते गाना आरम्भ किया—

निताइ गुणमणि आमार निताइ गुणमणि।
आनिया[1] प्रेमेर वन्या[2] भासाल[3] अवनी।।
प्रेमवन्या लइया निताइ आइला गौड़ देशे।
डुबिल भकतगण दीनहीन भासे।।
दीनहीन पतित पामर नाहि बाछे।
ब्रह्मार दुर्लभ प्रेम सबाकारे जाचे।।
जे ना लय तारे बले दन्ते तृण धरि।
आमारे किनिया लह भज गौरहरि[4]।।
एत बलि नित्यानन्द भूमे गड़ि जाय।
सोनार पर्वत जेन धूलाते लोटाय।।
निताइ रंगिया मोर प्रेम कल्पतरु।
कांगालेर ठाकुर निताइ जगतेर गुरु।।

गाते-गाते उद्दण्ड नृत्य करने लगे। निताइ की दी हुई माला भी साथ-साथ नाचने लगी। प्राय: एक घण्टे तक इसी प्रकार नृत्य और कीर्तन होता रहा। किन्तु आश्चर्य की बात यह है कि इतनी बड़ी और भारी माला इतनी हिलने-डुलने पर भी ठीक वैसे ही रही। उपस्थित दर्शकगण इस घटना को देख परस्पर कहने लगे, "बाबाजी कोई साधारण व्यक्ति नहीं, निश्चय ही कोई महापुरुष हैं। एक बार कहते ही निताइ के गले की माला टूटकर गिर पड़ी। और देखो, नृत्य करते समय ये हाथ, डेढ़हाथ पृथ्वी से ऊपर उठ जाते हैं। माला भी इनके साथ जैसे उद्दण्ड नृत्य कर रही है। केलिकदम्ब की इतनी भारी माला यदि किसी दूसरे के गले में होती तो ऐसी अवस्था में अब तक उसके आठ टुकड़े हो गये होते।"

बहुत-सी स्त्रियाँ एक ओर खड़ी कीर्तन सुन रही थीं। उनमें से एक सोलह-सत्रह वर्ष की लड़की एक-टक बाबाजी महाशय की ओर देख रही थी। नेत्रों के जल से उसके मुख और वक्षस्थल सराबोर हो रहे थे। धीरे-धीरे कीर्तन की ताल के साथ सिर हिलाते और हाथ से ताली बजाकर 'हा निताइ, प्राण निताइ' कहते-कहते कीर्तन मण्डली के बीच नाचने लगी। ऐसा लगता था जैसे वह इस राज्य में नहीं है। उसकी आँखें ऊपर चढ़ रही हैं, केश बिखर रहे हैं, सिर खुला है, किन्तु उसे कुछ भी बाह्यज्ञान नहीं। उसे देख सभी स्त्री-पुरुष विस्मित और स्तम्भित! विस्मय का विशेष कारण भी है, क्योंकि यह लड़की बहुत सुशीला, मृदु-स्वभावा और लज्जाशीला है। इसके ससुर और देवर प्रभृति भी कभी इसकी ऊँची बोली नहीं सुन पाते और न इसका मुख स्पष्ट रूप से देख पाते हैं। वही लड़की आज सैकड़ों परिचित, अपरिचित, युवा, वृद्ध, छोटे, बड़े लोगों के बीच उच्च कण्ठ से 'हा निताइ प्राण निताइ!' कह रोते-रोते नृत्य कर रही है।

लड़की से सम्बन्धित कुछ स्त्रियाँ यह देखकर क्रुद्ध हो रही हैं और कह रही हैं, "घर जाने पर आज इसे पता चलेगा।" कोई-कोई कह रही हैं "आजकल की लड़कियाँ, बाबा! इनके साहस की बलाई जायँ। हम तो बूढ़ी हो चलीं, तब भी किसी अपरिचित पुरुष के सामने जाने का या उससे बात करने का साहस नहीं

1. लाकर। 2. बाढ़। 3. डुबा दी। 4. मुझे खरीद लो गौरहरि भजकर।

रखतीं।" दूसरी स्त्रियाँ न जाने कितनी प्रकार से लड़की का मजाक बनाकर ठट्ठा कर रही हैं।

इस अलौकिक घटना को देख कोई तो रंगिया निताइचाँद की लीला का, कोई नाम की शक्ति का और कोई महापुरुष का प्रभाव समझ आश्चर्यान्वित है और कोई विरुद्ध भाव से निन्दा और कटाक्ष कर रहा है। एक ब्राह्मण गोदी में चार-पाँच वर्ष के शिशु को लिए पहले से सब कुछ देख रहा है। अब उससे न रहा गया और तर्जन-गर्जन करते हुए कहने लगा, "वैरागी वैष्णवों को कार्य-अकार्य और खाद्य-अखाद्य का कुछ भी ज्ञान नहीं होता। यह लड़की यदि मेरी कोई होती तो इसके इस प्रेम के लिए उपयुक्त दण्ड का विधान करता।"

इस प्रकार की निन्दा-प्रशंसा व दोषगुणयुक्त समालोचना तटस्थ व्यक्तियों के बीच ही चल रही है। बाबाजी महाशय और उनके साथियों को तो बाह्यज्ञान है ही नहीं। वे भाव में विभोर और प्रेम में मत्त हो उद्दण्ड नृत्य-कीर्तन कर रहे हैं। इसी समय अकस्मात् पूर्वोक्त ब्राह्मण का बालक पिता की गोदी से उतर कीर्तन मण्डली के बीच जाकर नृत्य करने लगा। तब बाबाजी महाशय एक ओर खड़े हो निताइचाँद का खेल देखने लगे। बालक थोड़ी देर में नाचते-नाचते मूर्छित हो गिर पड़ा। ब्राह्मण अभी तक किंकर्तव्यविमूढ़ भाव से पुत्र का नृत्य देख विस्मय सागर में निमग्न था। अकस्मात् उसकी अचैतन्य अवस्था देख अधीर हो उठा और अति त्रस्तभाव से उसे गोद में लेकर रोते-रोते विनयपूर्वक बाबाजी महाशय से कहने लगा, "बाबा, मेरे बच्चे को बचा लीजिये। मैंने आपको न पहचान कर आपकी बहुत निन्दा की। उसी अपराध के कारण मुझे यह दण्ड मिला। अब मैं समझ गया कि आप कोई सामान्य मनुष्य नहीं हैं।"

बाबाजी महाशय ब्राह्मण की कातरोक्ति सुन नाना-रूप मीठे वाक्यों द्वारा उसे समझाकर कहने लगे—"बाबा! भय की क्या बात है? नाम करो, तुम्हारा बच्चा अभी ठीक हो जायेगा। इसे कोई सामान्य बालक मत समझना। किसी महापुरुष ने तुम्हारे यहाँ पुत्र रूप में जन्म लिया है। नहीं तो पाँच वर्ष के बालक को कीर्तन में इस प्रकार का भावावेश कैसे हो सकता है? चिन्ता की कोई बात नहीं। प्राणभर भगवान् को पुकारो।"

ब्राह्मण—बाबा! भगवान् को कैसे पुकारा जाता है, मैं तो यह भी नहीं जानता। कृपाकर बता दीजिये।

बाबाजी—बाबा! धन्य कलिकाल। एकमात्र नाम लेकर पुकारने से ही सर्वसिद्धि हो जाती है। महाप्रभु ने कहा है,—

खाइते शुइते जथा तथा नाम लय।
काल-देश-नियम नाई सर्वसिद्धि हय।।

ब्राह्मण-भगवान् के अनेक नाम, रूप और अवतार हैं। किस नाम से पुकारने से इस विपत्ति से शीघ्र परित्राण हो सकता है? कृपाकर उपदेश कीजिये।

बाबाजी—बाबा, कलिपावनावतार परमदयाल निताइ-गौर ही कलिहत जीवों के एक मात्र उद्धारकर्ता हैं। अतएव प्राण भरकर निताइ-गौर नाम करने से केवल विपद से परित्राण ही नहीं, सर्वाभीष्ट की पूर्ति हो सकती है।

इतना कह स्वयं 'निताइ गौर राधेश्याम, हरे कृष्ण हरे राम' नाम गाने लगे। साथी साथ-साथ गाने लगे। तब वह लड़की अचैतन्य होकर गिर पड़ी। ब्राह्मण पुत्र को गोद में लिये नाम कर रहा था, पर उसे किसी प्रकार धैर्य नहीं बँध रहा था। अश्रुधार से उसका मुख और वक्षस्थल भीग रहा था। 'हा निताइ' कह वह उच्च स्वर से रो रहा था।

ब्राह्मण की कातरता देख बाबाजी महाशय ने उसकी गोद से बच्चे को लेकर जैसे ही कान में नाम देते हुए उसे छाती से लगाया, वैसे ही वह चैतन्य लाभकर उनकी गोद से उतर पड़ा और पिता से कहने लगा, "देखो, तुमसे घोर अपराध हुआ है। तुम विष्णु-वैष्णवद्वेषी और नामापराधी हो। इन लोगों को सामान्य मनुष्य न समझना। इनमें से एक-एक व्यक्ति असाधारण शक्ति धारण करता है। विशेषत: तुमने जिनके ऊपर कटाक्ष किया है, वे कोई ऐसे-वैसे मनुष्य नहीं हैं। आज तुम्हारा ही नहीं, इस देश का परम सौभाग्य है, जो इन महात्मा के चरण-दर्शन हुए हैं। इनका यथार्थ तत्व मैं तुमसे और क्या कहूँ। व्रज-लीला-रस आस्वादन

करने के लिए श्रीगोविन्द राधाभावकान्ति अंगीकार कर गौरांगरूप से कलिकाल में अवतीर्ण हुए थे। उसी लीलारस का आस्वादन करना जीवों को सिखाने के लिए श्रीबलराम अनंगमंजरी के साथ एक ही देह में श्रीनित्यानन्दरूप से अवतीर्ण हुए थे। दोनों की लीला दोनों सम्यकरूप से आस्वादन न कर सकने के कारण इस समय वही दोनों (निताइ-गौरांग) मिलकर इनके एक ही देह में भक्तभाव अंगीकार कर जगत् में विहार कर रहे हैं।" कहते-कहते बालक फिर अचैतन्य हो गया। बाबाजी महाशय फिर बालक को आलिंगन कर उसे उच्च-स्वर से हरिनाम सुनाने लगे। वह थोड़ी देर में चैतन्य लाभकर सोकर उठे की भाँति काँपता और डरता हुआ पिता की गोद में जा बैठा।

लड़की का अश्रुपुलकादि सात्विक भाव-परिव्याप्त देह निश्चल निस्पन्द हो धरती पर पड़ा है। कभी उसके कुछ-कुछ विकम्पित ओठों पर अभाव और अभिमान-जनित करुण रोदन की कालिमा-रेखा दीख पड़ती है और कभी ऐसा लगता है कि मिलन के सुखोच्छ्वास से विकसित कपोलों और अधरों से मृदुमधुर हँसी की छटा निकलकर दर्शकों के हृदयकमल को विकसित कर रही है। कैसा अपूर्व प्रेम का विकास। कैसी अपरूप माधुरी! प्रेमरूपी पुष्प देश-काल, गुण-गौरव, वेश-वयस, जाति-विद्या, कुल-मान, स्त्री-पुरुष और समय-असमय का विचार नहीं करता। विशुद्ध हृदय कानन में प्रेममय के प्रसंगस्वरूप वसन्त समागम के होते ही विकसित होकर अपनी सुगन्ध चारों ओर फैलाने लगता है।

थोड़ी देर में जैसे ही बाबाजी महाशय ने बालिका के कान में मन्त्र देकर 'जय नित्यानन्द राम' कहते हुए जोर से हुँकारा, वह चकित-सी आँख मलते हुए चारों तरफ देखने लगी। उसके स्वभाव, लज्जा, भय, मान, कुल-मर्यादा आदि ने फिर से उसे घेर लिया। वह संभलकर उठी और सिर ढकते हुए धीरे-धीरे साथ की स्त्रियों में जा मिली। क्रमशः सबने अपने-अपने घर को प्रस्थान किया।

आज जहाँ भी गाँव के दो व्यक्ति एकत्र होते हैं केवल उस बालिका और शिशु की ही चर्चा करते हैं। बालक की घटना से तो जैसे सभी की आँखें खुल गयीं और गुरपवासी बहुत-से लागों की बाबाजी महाशय के प्रति प्रगाढ़ भक्ति जन्मी। उस दिन निताइ के मन्दिर में इनके महाप्रसाद की व्यवस्था हुई। इसी प्रकार और भी कई दिन गुरप गाँव में व्यतीत हुए।

नवद्वीप-प्रत्यागमन

एक दिन प्रभात में जब बाबाजी महाशय ने सबसे नवद्वीप लौटने के लिए विदा प्रार्थना की, तो सभी ने और कुछ दिन गुरप गाँव में रहने के लिए विशेष रूप से अनुरोध किया। किन्तु श्रीधाम का आकर्षण इतना प्रबल हो उठा कि कोई उन्हें रोक न सका। दूसरे दिन तड़के ही वे सदल-बल नवद्वीप धाम की ओर चल दिये। नवद्वीप से जिस मार्ग से आये थे, उससे न लौटकर दूसरे मार्ग से लौटे और माघ मास की पंचमी को रविवार के दिन अपराह्न में नवद्वीप पहुँचे। साथियों में प्रायः सभी का शरीर कृश और दुर्बल था। किन्तु मानसिक अवस्था नव-नवायमान थी। श्रीधाम में प्रवेश करते ही सबके हृदय में दुगना उत्साह बढ़ गया गया। प्रातःकाल और सन्ध्या नगर-कीर्तन में और अवशिष्ट समय पाठ और नाम-संकीर्तनानन्द में व्यतीत होने लगा।

अवधूत ज्ञानानन्द स्वामी से मिलन*

श्रीयुत गौरहरिदास बाबाजी महाशय के शिष्य श्रीयुत राधारमणचरणदास बाबाजी महाशय जब श्रीधाम नवद्वीप में रहते तो प्रायः 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' नाम कीर्तन करते-करते गली-गली घूमा करते। नवद्वीपवासी अनेक लोग उनके साथ-साथ जाते। बाबाजी महाशय अति दीर्घाकार, चतुर्हस्त-परिमित देहधारी, परम प्रेमिक और अदोष-दर्शी थे। यदि कभी कोई उनके सामने परनिन्दा या परचर्चा करता तो वे सुमधुर वाक्यों द्वारा उसे प्रबोध कराते हुए कहते, "भाई! सदा अपने दोषों को ध्यान में रक्खो। तुम्हें भगवान् ने दूसरों के लिए विचारक बनाकर

* यहाँ श्रीधाम नवद्वीप निवासी महात्मा श्रीनाथ गोस्वामी का लेख ज्यों का त्यों उद्धृत किया है।

तो भेजा नहीं है।" वे बिना विचारे आबाल-वृद्ध-युवक सबको प्रेम से आलिंगन करते। उनके प्रेममय आलिंगन और अमृतमय संग सुख का जो एक बार अनुभव कर लेता, वह सदा के लिये उनके हाथों बिक जाता। उनका आनन्दमय वदन-चन्द्र उसे कभी न भूलता। नवद्वीपवासी अनेक लोग उनसे आकृष्ट हो सर्वदा उनके पास आया-जाया करते। बालक और बालिकाएँ तो उनके प्रेम-बन्धन में इस प्रकार बँधे रहते कि उनके बाहर निकलते ही वे माता-पिता के शासन की भी परवाह न कर भागकर आते और प्रेमानन्द में नृत्य-कीर्तन करते-करते उनके साथ-साथ चलते।

उस समय महात्मा अवधूत श्रीज्ञानानन्द स्वामी जी महाराज नवद्वीप में आमपुलिया पाड़े में रहते थे। कालीदास बन्दोपाध्याय, देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, धर्मदास राय, देवेन्द्रनाथ चक्रवर्ती और मैं महाराज जी के शिष्य थे। किन्तु हमें बाबाजी महाशय के सत्संग और कीर्तन में इतना आनन्द होता कि हम अधिकांश समय उन्हीं के साथ व्यतीत करते। उन्होंने जब हम लोगों से स्वामी जी के भावावेश इत्यादि की बात सुनी तो इनसे मिलने के लिए बड़ा आग्रह प्रकाश किया। एक दिन अकस्मात् क्या देखते हैं कि रात्रि नौ बजे के लगभग बाबाजी महाशय नाम-कीर्तन करते-करते स्वामी जी जिस कमरे में बैठे थे, उसमें जाकर उद्दण्ड नृत्य-कीर्तन कर रहे हैं। सभी कीतन में उन्मत्त हो बाह्यस्मृति खो बैठे हैं। स्वामी जी और बाबाजी महाशय मदोन्मत्त हो सिंह की भाँति हुँकार-गर्जन कर रहे हैं। हम सब लोग देख-सुनकर अवाक्! न जाने किसकी शक्ति के प्रभाव से उपस्थित भिन्न-भिन्न प्रकृति के लोग सभी प्रेम में विभोर हो रहे हैं। सभी आनन्द में मत्त होकर नाम करते-करते और ताली बजा-बजाकर नृत्य कर रहे हैं। कालीदास बाबू, हरेन बाबू, प्रियबाबू, चक्रपाणि प्रभृति विशेष रूप से मत्त हैं। सभी के नेत्रों से अश्रुओं की धार निरन्तर बह रही है, सभी के अंग-प्रत्यंग पुलकित हैं। किसी को किसी की सुध नहीं। बाबाजी महाशय और स्वामी जी महाराज दोनों ही भावाविष्ट और सात्विक भाव-भूषण-विभूषित हैं। दोनों के अंग कभी इस प्रकार कम्पायमान हो पड़ते हैं और कभी दोनों ऐसा उच्च हास्य करने लगते हैं कि सब स्तम्भित हो जाते हैं। दोनों एक दूसरे की अश्रुधार से अभिषिक्त हो रहे हैं। दोनों के नेत्र अर्धमुद्रित हैं। किन्तु क्रियाएँ दोनों की समान हैं।

थोड़ी देर में दोनों एक दूसरे के हाथ पकड़ मत्त हाथी की भाँति घर से बाहर निकल आये। हम लोग भी सब बाहर आ गये। एकाएक स्वामी जी अचेत हो गये। भूमि पर गिरने के भय से देवेन्द्र बाबू, धर्मदास बाबू और कई लोगों ने उन्हें पकड़ रखा। बाबाजी महाशय की भी अवस्था इसी प्रकार हो गयी। स्वामी जी के गले में बाबाजी महाशय का दाहिना हाथ था और बाबाजी महाशय के गले में स्वामी जी का बाँया हाथ। दोनों देह निश्चल और निस्पन्द थे, जैसे भक्तमण्डली परिवेष्टित काठ की पुतलियाँ खड़ी हों। अपूर्व शोभा! ऐसा लगता मानो निताइ-गौर मूर्तिमान हो अन्तरंग भक्त-मण्डली सहित संकीर्तनान्द में विभोर हैं। धन्य वह शुभ मुहूर्त! धन्य वह रात्रि! धन्य दोनों महात्माओं के संगी साथी! धन्य वह दर्शक मण्डली! धन्य मैं! कहाँ तो मुझ-जैसा अविश्वासी और पाषण्डी और कहाँ यह अपूर्व शुभ सम्मिलन! धन्य महापुरुषों के सत्संग का माहात्म्य।

एकदम अर्धबाह्य अवस्था प्राप्त कर स्वामी जी बाबाजी महाशय को अपनी गोद में लेकर बैठे और अपना दाहिना हाथ उनके शरीर पर फेरते हुए बोले, "भाई चरणदास! तुम पूर्ण नित्यानन्द शक्ति हो। तुम सर्वप्रथम दक्षिण देश में जाकर घोर पतित, पाषण्डी, नास्तिक, कुतर्कनिष्ठ और उपधर्मपरायण जीवों को विशुद्ध प्रेमभक्ति प्रदान कर उनका उद्धार करो। तुम्हारे बिना जीवों के उद्धार का और कोई उपाय नहीं।" विनय और दैन्य की मूर्ति, तृणादपिनीचाभिमानी बाबाजी महाशय साश्रुनयन और प्रेमगद्गद कण्ठ से बोले, "दादा, आप शक्ति संचार कीजिये। आपके कृपा-कटाक्ष से काठ की पुतली भी नृत्य कर सकती है, जीव-उद्धार तो साधारण बात है। आप आशीर्वाद दीजिये कि मायामुग्ध, त्रितापतापित जीव नामरस में विभोर हों और प्रेमरूपी वर्षा से तराबोर हो जायँ। म्लेच्छ, यवन, पशु, पक्षी पर्यन्त प्रेमानन्दपूर्ण हृदय से 'हा निताइ गौरांग'

कहकर व्याकुल हो रोदन करें। यह देख मेरे मन की साध मिटे और मेरा जीवन धन्य हो।"

यह कहते-कहते बाबाजी महाशय का कण्ठ रुँध गया और दोनों एक दूसरे को हृदय से लगाकर रोने लगे। दोनों का रोना किसी प्रकार नहीं थमा। अति गम्भीर दोनों महापुरुष आज भाव में अधीर हो उठे। इस महाभावसागर के अन्तस्तल में प्रवेश करना हमारे समान क्षुद्र जीव के लिए दुस्साध्य है।

थोड़ी देर में दोनों कुछ स्थिर हुए। उसी समय हमारी बड़ी भुआजी* ने एक थाल घर की बनी गरम-गरम जलेबियों का स्वामी जी के हाथों में लाकर दिया। स्वामी जी एक-एक जलेबी उठाते, उसमें से आधी आप खाकर आधी बाबाजी महाशय के मुख में देते, फिर दूसरी बाबाजी महाशय के मुख में देकर शेष आप खा लेते और खाते-खाते खाई-खिलाई भक्तों को देकर कहते "ले रे, कौन खायेगा यह जलेबी ?"

महापुरुष सर्वदा आनन्दमय होते हैं। चाहे किसी अवस्था में हों आनन्द उनका चिरसाथी और प्राण होता है। देखते-देखते दोनों सम्बन्ध-राज्य में प्रवेश कर गये। अब दैन्यभाव नहीं। अब दोनों एक दूसरे की मंगलकामना कर आशीर्वाद देने लगे। स्वामी जी बाबाजी महाशय के मस्तक पर हाथ रख कहने लगे "तुम दीर्घजीवन लाभ कर जगत् का अशेष कल्याण करो, यह मेरा आशीर्वाद है।" बाबाजी महाशय अपनी चरणरज स्वामी जी के वक्षस्थल पर मलते हुए बोले, "मैं आशीर्वाद करता हूँ कि तुम कुछ दिन जगत् में रहकर जीवों का उपकार करो।"

रात्रि कोई दो बजे के समय सब अपने-अपने घर गये। उस दिन के भाव, प्रेम और आनन्द का वर्णन करना मेरे समान अज्ञ जीव के लिए नितान्त असम्भव है। फिर भी जो कुछ मैं प्राकृत नेत्रों से देख सका उसका आभास मात्र यहाँ प्रकाश किया है।

शिव-रात्रि**

आज शिवचतुर्दशी है। चारों ओर खूब धूम-धाम है। बालकगण पुष्प, बेलपत्र इत्यादि संग्रह करने के लिए भागदौड़ कर रहे हैं। हाट, बाजार, घाट और मन्दिर सभी जगह पुष्प, बेलपत्र और फूलों की छड़ियाँ बिक रही हैं। सबका मुख शुष्क परन्तु आनन्दमय हो रहा है। आज सभी नाना प्रकार के उपहारों से भोलानाथ को मुग्ध करने की चेष्टा कर रहे हैं। सभी उपवास-क्लिष्ट देह द्वारा आशुतोष के सन्तोष-विधान के लिए व्यस्त हैं।

देखते-देखते अपराह्न हो गया। बाबाजी महाशय सदलबल भुवन-मंगल नाम 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' कीर्तन करते-करते पोड़ामाँ-तला जा उपस्थित हुए। वहाँ माँ को दण्डवत् प्रणाम कर और रो-धोकर अपनी स्नेहभरी याचना कर मानो पिता के निकट जाने की आज्ञा प्राप्त कर चरण पर चरण रख नाचते-नाचते बुड़ोशिवताल की ओर चल पड़े। मार्ग में डेढ़ घण्टे तक व्रजनाथ विद्यारत्न के यहाँ हरिसभा में कीर्तन कर साढ़े चार बजे के करीब बूढ़ेशिव मन्दिर के निकट पहुँच नाम-कीर्तन करने लगे। इसी समय श्रीताराप्रशन्न चूड़ामणि, उमेशचन्द्र स्मृतिरत्न, माधवचन्द्र चौधुरी प्रभृति कई ब्राह्मण पण्डित वहाँ आकर उपस्थित हुए। वे कुछ कटाक्ष-भाव से बोले—"बाबाजी ! आज शिवरात्रि है। कुछ महादेव बाबा का नामकीर्तन करो न।" बाबाजी महाशय कर जोड़कर बोले 'जो आज्ञा बाबा' और '**भज निताइ गौर राधेश्याम। गौरीशंकर सीताराम**' यह धुया धर नाना प्रकार के पद गाने लगे। उन सबको याद रखने की किसमें सामर्थ्य थी ? दो-चार पंक्तियाँ जो याद रहीं वे इस प्रकार हैं—

जय शिवशंकर त्रिजगत-गुरु।
करुणा वितर हर वाञ्छा कल्पतरु।।
वैष्णवाग्रगण्य तुमि भुवने विदित।
वैष्णवी-मायाते जेन ना हइ मोहित।।
ज्ञानदाता बलि तोमाय बले सर्वजन।
आत्मतत्वज्ञान मोरे कर वितरण।।
नारी मात्रे मातृसम ज्ञान कर दान।
परदुःख देखि जेन आपन समान।।
स्थावर जंगम जीवे गुरु करि मानि।
निज देहे हीन ज्ञान देहो शूलपाणि।।

* स्वामी जी महाराज की ज्येष्ठ गुरु भगिनि। ** श्रीनाथ गोस्वामी से प्राप्त घटना।

कृष्ण प्रभु मुञि दास एइ ज्ञान देह।
गुरुवाक्ये कभु जेन ना हय सन्देह।।
काम क्रोध आदि रिपु नाशि गंगाधर।
भक्ति विश्वास ज्ञान सन्ताने वितर।।

शाक्त, शैव, वैष्णव जितने भी लोग वहाँ थे, सब बाबाजी महाशय का कीर्तन सुन स्तम्भित हो गये। सब प्रेम-समुद्र में डूब गये। ताराप्रसन्न चूड़ामणि प्रभृति, जो बाबाजी महाशय को कुछ अवज्ञा की दृष्टि से देख रहे थे, अपनी संकीर्ण बुद्धि को धिक्कारने लगे। किन्तु बाबाजी महाशय जैसे इस राज्य में ही न थे। चित्रपट में शिवजी के नेत्र देखकर मैं समझा करता था कि इस प्रकार नेत्रों को रखना मनुष्य के लिए दु:साध्य है। आज मेरा यह भ्रम दूर हो गया। बाबाजी महाशय शिवनेत्रवत् अर्द्धनिमीलित नेत्रों से बायें पैर पर दाहिना पैर रखे और दाहिना हाथ ऊपर उठाये वक्र भाव से पैरों के अंगूठों पर तेजपुंजपरिपूर्ण अपने विशाल देह का भार रखे नाचते-नाचते 'शिवराम, शिवराम' कह इस प्रकार हुँकार रहे थे कि सभी को लगता था जैसे शिवजी उनके देह में आविर्भूत हो नृत्य कर रहे हैं। उनका पुलकावलि-विभूषित देह ऐसा लगता कि शिमूल का वृक्ष नृत्य कर रहा हो। बीच-बीच में हुँकार कर इस प्रकार काँपने लगते कि देखकर भय होता। प्राय: चार घण्टे इसी प्रकार निकल गये। हमें ऐसा लगा कि अभी आधा या पौन घण्टा ही हुआ है। अब रज में लोट-पोटकर 'निताइ गौर राधेश्याम। गौरीशंकर सीताराम।।' गाते-गाते गंगातीर की ओर जा ही रहे थे कि ताराप्रसन्न चूड़ामणि, उमेशचन्द्र स्मृतिरत्न प्रभृति उन्हें आलिंगन कर कहने लगे, "बाबा! आज हम लोग धन्य हुए। आपके अन्दर प्रभु ने इतनी शक्ति दे रखी है यह न जानकर हम लोग पहले आपको अवज्ञा की दृष्टि से देख रहे थे। इसके लिए हम ईश्वर से क्षमा प्रार्थना करते हैं। आप हमारे ऊपर असन्तुष्ट न हों।" बाबाजी महाशय कर जोड़कर अति विनीत भाव से बोले, "भाई, मैं नितान्त अयोग्य हूँ। आपलोग आशीर्वाद कीजिये कि आपके पादपद्मों में मेरी मति बनी रहे। मैं तो काठ की पुतली के समान हूँ। आप लोग जिस समय जिस प्रकार नचाना चाहते हैं उसी प्रकार नाचता हूँ शास्त्रादि का ज्ञान तो मुझे कुछ है नहीं।"

चूड़ामणि—बाबा! हमें विश्वास है कि आप ही को प्रकृत शास्त्रज्ञान हुआ है। जब आपके अन्दर किसी प्रकार की भेदबुद्धि नहीं है तो निश्चय ही ईश्वर साक्षात्कार होगा या हो चुका है। आज के वैष्णव सम्प्रदायों में तो हम देखते हैं कि काली, दुर्गा, शिवादि का तो कोई नाम भी नहीं लेता।

बाबाजी—बाबा! किसी देवता से द्वेष करना तो दूर की बात है, हमारे गौरांग महाप्रभु के मतानुसार जिस हृदय में किसी से भी ईर्षा, द्वेष, हिंसा, परनिन्दा और परचर्चा के भाव का स्पर्श मात्र भी है, उस हृदय में भक्ति व प्रेम का उदय होना तो दूर, भक्तिदेवी उसके नाम से ही भयभीत होकर भाग जाती हैं। श्रीमन्महाप्रभु ने वैष्णव धर्म के लक्षण बतलाते हुए कहा है—

ब्राह्मण आचंडाल कुक्कुरान्त करि।
दंडवत करिबेक बहुमान्य करि।।
एइ से वैष्णव धर्म सबारे प्रणति।
सेइ धर्म-ध्वजी जार इथे नाहि मति।।
सर्वदेव पूजिबे ना हबे तत्पर।
सबार निकट मेगे लबे इष्ट भक्तिवर।।

केवल वैष्णव धर्म ही नहीं धर्मपदवाच्य पदार्थ मात्र को कभी किसी प्रकार का दोष स्पर्श नहीं कर सकता। जिस प्रकार अन्धकार में आलोक को स्पर्श करने की सामर्थ्य नहीं, उसी प्रकार नित्य सत्य धर्म वस्तु में अनित्य और असत्य दोषों का लगना कदापि सम्भव नहीं। फिर भी जो व्यतिक्रम देखने में आता है वह व्यक्तिगत है, धर्मगत नहीं।

थोड़ी देर में सबने अपने-अपने स्थान को प्रस्थान किया और बाबाजी महाशय भी नाम करते-करते आश्रम लौट गये।

सूर्यग्रहण के उपलक्ष में महासंकीर्तन*

आज सूर्यग्रहण है। असंख्य यात्री ग्रहणोपलक्ष में गंगास्नान करने और धामदर्शन करने नवद्वीप आये हैं।

* यह घटना नवद्वीप निवासी श्रीयुतकालीदास बन्द्योपाध्याय, मुख्त्यार द्वारा लिखकर भेजी हुई ज्यों की त्यों उद्धृत की गयी है।

कोई काँच पर स्याही मलकर, कोई काले पत्थर पर जल डालकर और कोई-कोई दूरबीन की सहायता से सूर्यदेव के दर्शन कर रहे हैं। सभी बड़ी उत्कण्ठा से ग्रहण की प्रतीक्षा कर रहे हैं। बालक, वृद्ध, युवा, स्त्री, पुरुष सभी व्यस्त हैं। कोई ग्रहण के समय दान करने के उद्देश्य से नानाविध द्रव्य लेकर गंगातट की ओर जा रहे हैं। कोई होम करने के उद्देश्य से सदुपयोगी वस्तु संग्रह कर रहे हैं। ब्राह्मणगण नाना स्थानों में घूम-घूमकर यजमान संग्रह कर रहे हैं। कीर्तनियागण ग्रहण की प्रतीक्षा में खोल-करताल ले गंगा किनारे बैठे हैं। भिखारी घाट के दोनों ओर कपड़ा फैलाकर बैठे हैं। दूकानदार दान के लिए उपयोगी वस्तुएँ दूकानों पर सजाकर बैठें हैं। जिसके पास कुछ भी नहीं है, वह भी आज ब्राह्मण व माँ गंगा को कुछ न कुछ अर्पण करने के लिए व्यस्त हो रहा है।

इसी समय घूमते-घूमते आमपुलिया पाड़े के अवधूत ज्ञानानन्द स्वामी जी महाराज के आश्रम में जाकर देखता हूँ कि लोग स्वामी जी को गंगा तट पर ले जाने के लिए बड़ी चेष्टा कर रहे हैं। परन्तु स्वामी जी कह रहे हैं, "तुम लोग जाओ, मैं आश्रम में ही रहूँगा।" महापुरुष के हृदय के गूढ़ भाव को कौन समझ सकता है? मुझे देखते ही वे लोग बोल उठे, "दादा, यदि ग्रहण के समय गोस्वामी जी को गंगातट पर ले चलते तो बड़ा ही आनन्द होता। स्वामी जी किसी प्रकार तैयार नहीं हो रहे हैं। हमारा विश्वास है कि आप चेष्टा करें तो शायद चलने को तैयार हो जायँ।" यह सुन मैंने बड़े उत्साह से स्वामी जी से कहा, "देखिये, आपके गंगातट की ओर थोड़ा हो आने से यदि इतने लोगों को सुख मिले तो आपको क्या आपत्ति होनी चाहिये? चलिये, आपको चलना होगा।" यह कहकर मैंने जैसे ही चलने के लिए उनका हाथ पकड़ा, वे ठीक बालक की भाँति हमारे साथ चलने लगे। उपस्थित भक्तवृन्द परमानन्दित हो हरिध्वनि कर गंगातट की ओर चल दिये। थोड़ी देर में हमलोग स्टीमर घाट पर आ पहुँचे। उस समय के स्टीमर-स्टेशन-मास्टर स्वामी जी के शिष्य थे। स्वामी जी को देखते ही उन्होंने विशेष आग्रहपूर्वक उन्हें स्टेशन के भीतर एक कमरे में कुर्सी पर बिठा दिया। मैं भी उनके पास एक कुर्सी पर बैठ गया। मैंने 'हरिबोल हरिबोल भाइ रे। हरिनाम बिना जीवेर आर गति नाई रे।।' यह पद हाथ से ताली बजाते हुए धीरे-धीरे गाना आरम्भ किया। दूसरे साथी कमरे के बाहर बैठे थे। वे भी पदकीर्तन में सहयोग देने लगे। इसी समय एक भक्त बोल उठे "ग्रहण लग गया।" सुनते ही स्वामी जी और मैं बाहर आये। मैं एक नीम के पेड़ से पीठ लगाकर खड़ा था। मैंने देखा कि राजेन दादा* गंगातट के रास्ते पर धीरे-धीरे हमारी ओर चले आ रहे हैं। निकट आने पर मैंने पूछा, "क्या बात है? आज कीर्तन छोड़कर अकेले किधर जा रहे हैं?"

राजेन दादा—हाँ भाई, न जाने क्यों आज कुछ अच्छा नहीं लग रहा। इसलिए अकेला घूम रहा हूँ।

मैं—तब कीर्तन यहीं क्यों नहीं करते, स्वामी जी भी यहाँ उपस्थित हैं।

राजेन दादा—निताइचाँद किस प्रकार नचायेंगे वे ही जानें।

यह कहकर पूर्ववत् सीधे श्मशान घाट की ओर जाने लगे। थोड़ी देर में लौट आये। हमारा पूर्वोक्त पदकीर्तन चल रहा था। वे उसी पद को लेकर कीर्तन करने लगे। वे पहले गाते, हम सब पीछे दुहराते। धीरे-धीरे फूस के ढेर में प्रविष्ट चिंगारी की भाँति नाम का विस्तार होने लगा। इसी समय उत्तर दिशा से दस-बारह भक्त खोल-करताल के साथ 'निताइ बोल, गौर बोल, हरि बोल भाई रे। निताइ चैतन्य बिने आर गति नाई रे।।' गाते-गाते चले आ रहे थे। हमारे निकट पहुँचते ही चुम्बकाकृष्ट लोहे के समान हमारी कीर्तन-मण्डली में प्रविष्ट हो नाम-कीर्तन करने लगे। धीरे-धीरे और भी जितनी कीर्तन-मण्डलियाँ आती गयीं, सब हमारी मण्डली में प्रवेश करती गयीं। मैं उसी नीम के पेड़ के सहारे खड़ा यह रहस्य देख रहा था। स्वामी जी और राजेन दादा दोनों उस महासंकीर्तन के केन्द्रस्थल में प्रेमावेश में नृत्य कर रहे थे। भक्तों की भीड़ का कुछ ठिकाना न था। कितने खोल-करताल

* इन्हें इनके गुरुदेव यादवदास, जनसाधारण चरणदास और मोहल्लेवाले राजेन बाबू कहते।

वहाँ थे, इसकी गणना करना भी कठिन था। एक साथ सहस्रों कण्ठों से निःसृत हरिध्वनि मानो पृथ्वी को कम्पित करने लगी। रमणियों की उलुध्वनि, भक्तों की प्राणभेदी जय-ध्वनि, और खोल-करताल की ध्वनि से ब्रह्माण्ड गूँज उठा। सभी प्रेमानन्द में विभोर हो आत्मविस्मृत भाव से दोनों महापुरुषों को घेर कर उद्दण्ड नृत्य और कीर्तन कर रहे थे। सबके अंग में रज लिपट रही थी। दूर से किसी को भी पहचानना कठिन था। मैं पूर्ववत् चित्र की भाँति खड़ा एकटक महासंकीर्तन के दर्शन कर रहा था। आश्चर्य की बात यह थी कि शत सहस्र मस्तकों के बीच राजेन बाबू का मस्तक प्रायः एक बालिश्त ऊपर शोभायमान हो रहा था और सूर्यदेव जितना अधिक ग्रह ग्रस्त हो रहे थे, उनके देह से उतना ही तेज पुंज विकसित हो रहा था। क्षण-क्षण में उनका मुख ऐसा लाल हो जाता कि उन्हें दूर से पहचानना भी कठिन होता।

पाँच-सात व्यक्ति एक साथ अचैतन्य हो भूमि पर गिर पड़ते। अन्यान्य लोग उन्हें उठाकर एक ओर ले जाते। बहुमूल्य वसन-भूषण से सुसज्जित कृष्णनगर निवासिनी परमासुन्दरी स्त्रियाँ भाव-विगलित नेत्रों से अश्रु विसर्जन करते-करते अपने आँचलों से भावभरे अचैतन्य भक्तों के आँसू पोंछकर हवा कर रही थीं। कोई-कोई अपने बहुमूल्य वस्त्रों से भावाविष्ट व्यक्तियों के धूलि-धूसरित देह मार्जन कर रही थीं और कोई उनके चरण पकड़ व्याकुल भाव से रोदन कर रही थीं। कैसा पवित्र भाव था। अपने-पराये, ऊँच-नीच, ब्राह्मण-चण्डाल, स्त्री-पुरुष आदि का कुछ भेद न था। सब सुपवित्र नाम-सागर में डूबकर पवित्र हो गये थे। सबका हृदय एक अप्राकृत भाव से इतना कोमल हो रहा था कि उसे देख प्रतीत होता मानो महाभावरूपिणी कोमल-हृदया करुणामयी वृषभानुनन्दिनी कायव्यूह रूप से प्रति देह में अवस्थान कर रही हैं।

मैंने न जाने कितनी बार नवद्वीप में सूर्यग्रहण का दर्शन किया था, अनेक महात्माओं का कीर्तन भी सुना था। किन्तु ऐसा लगता था कि राजेन दादा के समान तन्मयता, आकर्षण और आत्म-विस्मृति न तो कहीं किसी ने देखी होगी और न कोई देख सकेगा। मैंने अपने जीवन में नामसंकीर्तन में इतने लोग और इतने खोल-करताल एक साथ कभी नहीं देखे थे। दूसरी आश्चर्य की बात यह थी कि ग्रहण का अवस्थितिकाल चार घण्टे का था। इतनी देर तक नाम-संकीर्तन एक भाव से चल रहा था, फिर भी किसी को क्लान्ति का बोध नहीं हो रहा था। साधारणतया कुछ समय कीर्तन के पश्चात् उद्यम अपने आप ही कम होने लगता है, परन्तु इस समय उद्यम की वृद्धि होती जा रही थी। अपनी दशा देख कर भी मैं विस्मित हो रहा था। एक साथ चार घण्टे स्थिरचित्त से खड़े रहना मेरे लिए असम्भव था।

सूर्यदेव पूर्ण ग्रस्त हो गये, पर नामरूप सूर्य के आलोक से दशों दिशाएँ उद्भासित हो उठीं। सूर्यदेव के पूर्णग्रस्त हो जाने पर आकाश में श्रीहीन तारों को देख मुझे ऐसा लगा कि राजेन्द्र-मुखचन्द्र-बिगलित नाम- सुधापान से परितृप्त शत-सहस्र भक्त-रूप नक्षत्रों की उज्ज्वलता देख वे अपने-अपने भाग्य को धिक्कार रहे हैं। निर्दिष्ट समय के बीतने पर सूर्यदेव धीरे-धीरे जैसे ही पूर्वावस्था को प्राप्त हुए, स्वामी जी महाशय और राजेन दादा दोनों प्रेमविह्वल भाव से वात्सल्यमयी माँ जाह्नवी देवी की गोद में झट से जा कूदे। और सब ने ऐसा ही किया। माँ भी मानो अभी तक सतृष्णनयनों से स्थिर हो अपनी सन्तान का भावभरा नृत्य देख रही थीं। वे परिश्रान्त सन्तान को वक्ष में धारण कर प्रेमानन्द के कारण उत्तालतरंगों से परिपूर्ण हो गयीं। प्रेमोन्मत्त सन्तान माँ की गोद में जाकर भी स्थिर न हो सकी। जल में एक नवीन प्रकार का कीर्तन और नृत्य होने लगा। एक व्यक्ति को बीच में कर दस बारह व्यक्ति हाथ से हाथ पकड़ उसे घेर कर नृत्य कीर्तन करने लगे। इस प्रकार सैकड़ों मण्डलियाँ अलग-अलग कीर्तन करने लगीं। थोड़ी देर बाद सबको होश आया और अपने-अपने संसार की स्मृति जागी। दुकानदार को दुकान की, गृहस्थ को घर-द्वार-स्त्री-पुत्रादि की और यात्रियों को अपने पैसे-कौड़ी वस्त्रादि की। सबने गंगा माँ को दण्डवत कर अपने-अपने घर को प्रस्थान किया। स्वामी जी और हम सब गीले वस्त्रों में ही घर लौटे। अपने जीवन में मैंने इस प्रकार के आनन्द का कभी उपभोग नहीं किया।

रामदास से मिलन

अपराह्न का समय है। बाबाजी महाशय गोविन्ददास महन्त (नवद्वीप में पालगोविन्द नाम से विख्यात) के अखाड़े में बैठे हैं। साथ में नवद्वीप दादा और दो एक साथी हैं। महन्त के साथ नानारूप कृष्णकथा-प्रसंग हो रहा है। इसी समय चौदह-पन्द्रह वर्ष का एक उज्ज्वल श्यामवर्ण बालक आया। उसे दूर से ही देख सब उसकी ओर आकृष्ट होने लगे। नवद्वीप दादा ने उठकर बालक को आलिंगन किया और बाबाजी महाशय के निकट ले आये। बाबाजी महाशय ने बालक का परिचय पूछा तो नवद्वीप दादा बोले, "इसका नाम रामदास है। यह फरीदपुर निवासी महात्मा जगद्बन्धु भट्टाचार्य के अनुगत है। इस समय हरिसभा में है। बालक बड़ा अनुरागी है। नामकीर्तन के सम्बन्ध में इस पर निताइचाँद की विशेष कृपा है। इसके मधुर कण्ठ से भाव और प्रेमभरा नाम-कीर्तन सुन पत्थर का हृदय पिघल जाता है, घोर पाषण्डी का हृदय भी थोड़े समय के लिए 'हा! निताइ गौरांग' पुकार कर व्याकुल हो उठता है।" यह सुन बाबाजी महाशय ने राम को आलिंगन कर अपने पास बिठाया। बालक रामदास अभिनव, अप्राकृत, सुशीतल वक्ष के संस्पर्श से विस्मित हो अपने हृदय में नानारूप समालोचना करते हुए बाबाजी महाशय को बार-बार सिर से पैर तक देखने लगा।

कुछ देर में बाबाजी महाशय रामदास की पीठ पर हाथ रखकर बोले, "चल भाई, चलें।" सबने महन्त को दण्डवत कर प्रस्थान किया। चौराहे पर आकर बाबाजी महाशय बोले, "भाई राम! कुछ कीर्तन करो तो।" राम ने प्रारम्भ किया 'हरिबोल रे भाई, गदाधर गौरांग बसु जाह्नवा निताइ। बसु जाह्नवा निताइ, सीता अद्वैत गोसाईं।।' इत्यादि। एक तो बालक का मधुमय कण्ठ, उस पर भी उसकी अनुराग भरी तान। जो कोई भी सुनता है, उतनी देर के लिए प्राकृत राज्य को भूल प्रेमानन्द सागर में डूब जाता है। रामदास प्रेमानन्द में विभोर हो आगे-आगे गा रहा है। बाबाजी महाशय और अन्यान्य सब उसी पद को दोहरा रहे हैं। बीच-बीच में उसे भावभरे आखरों की स्फूर्ति हो रही है; उसे सुन बाबाजी महाशय कम्पित कलेवर से 'हा निताइ' कहकर उच्च स्वर से हुँकार उठते हैं, जिससे सबका हृदय प्रेमानन्द से परिप्लुत हो जाता है।

क्रमशः संकीर्तनानन्द में विभोर होकर नृत्य करते-करते सब हरिसभा में जाकर उपस्थित हुए। नाम के प्रबल श्रोत से धुले हुए हृदयक्षेत्र में नवनटवर हेमकिरणियाँ गौरसुन्दर की मूर्ति ने प्रतिबिम्बित हो सबको आत्महारा कर दिया। किसी को बाह्यस्मृति न रही। सब प्रेमानन्द में विभोर थे। धीरे-धीरे अनेकों भक्त एकत्र होकर खोल-करताल के साथ कीर्तन में योग देने लगे।

बहुत देर पश्चात् कीर्तन समाप्त हुआ। बाबाजी महाशय महाप्रभु को दण्डवत् प्रणाम कर चलने लगे। प्रेम की मूर्ति और सरल हृदय के बालक रामदास ने ज्यों ही बाबाजी महाशय को दण्डवत् प्रणाम किया, इन्होंने प्रेमार्द्र हृदय से उसे आलिंगन कर कहा, "भाई! आज तूने बहुत सुख पहुँचाया। निताइचाँद तेरे प्रेमधन की दिनोदिन वृद्धि करें। तेरे द्वारा जगत् के लोग सुखी हों। भाई, जितने दिन नवद्वीप में रहे मुझसे आकर मिलता रह।" विनय और दैन्य की मूर्ति रामदास ने अवनत मस्तक हो हाथ जोड़कर कहा, "दादा! मैं बालक हूँ। आप ऐसी कृपा कीजिये कि निताइ-गौर के चरणों में मेरी अचल भक्ति हो।" यह कहकर उसने फिर बाबाजी महाशय को दण्डवत् प्रणाम किया। बाबाजी महाशय ने अपने सहस सुमधुर वाक्यों से राम को विदाकर अपने स्थान को प्रस्थान किया।

जन्मतिथि और होलीलीला*

आज फाल्गुनी पूर्णिमा है। बालक-वृद्ध, पुरुष और स्त्री सब आनन्द में विभोर हैं। सब प्रफुल्लित हृदय से अपने-अपने कार्य में व्यस्त हैं। बालक-बालिकागण रंग और गुलाल लेकर एक-दूसरे पर छोड़ रहे हैं। व्यवसायीगण अपने-अपने व्यवसाय में, यात्रीगण ठाकुर दर्शन में, शाक्त-ब्राह्मणगण ठाकुर जी के दोलयात्रा उत्सव में और वैष्णवगण अपने प्राणों के

* पूज्यपाद काली बाबू से प्राप्त घटना

प्राण आनन्दमय श्रीगौरांगदेव के आविर्भाव उत्सव में उन्मत्त हैं। नानादेशों के असंख्य यात्री एकत्र हैं। आबाल-वृद्ध-वनिता सब हाथ में अबीर लेकर अति व्यस्त भाव से श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन करने जा रहे हैं। महाप्रभु के द्वार अत्यन्त भीड़ है। भीतर कीर्तनिया लोग गान कर रहे हैं। राजेन दादा नामानन्द में विभोर नाम-कीर्तन के साथ नगर भ्रमण करते-करते बारह बजे सदल-बल आश्रम पहुँच गये हैं। सबके अंग में अबीर और रज परिव्याप्त है। राजेन दादा के नेत्र कुछ रक्त वर्ण के हो रहे हैं और भावाश्रुओं से डबडबा रहे हैं। देखने से बोध होता है कि वे इस राज्य में नहीं हैं। कभी-कभी कहने लगते हैं—"आहा! आज हमारे प्राण गौरांग की आविर्भाव तिथि है। पतितपावन परमदयाल श्रीनिताइ-गौरांगदेव की कृपा से कलिकाल-कवलित, अधर्मपरायण, निन्दक, पाखण्डी लोगों का भी सहज में उद्धार हो रहा है। केवल मेरे-जैसे ढोंगी के ही उद्धार का कोई उपाय नहीं दीख रहा। मैं परवंचक, प्रतिष्ठा-लोलुप और देव-द्विज-गुरु-वैष्णव-द्वेषी हूँ। हे प्रभु! कब मेरी चित्तशुद्धि होगी? कब मैं आपामर साधारण लोगों के चरणों में लोटूँगा? कब दीनातिदीन होकर निताइ-दासानुदास के रूप में जगत् में परिचित हो सकूँगा?" इतना कह अविरल अश्रुविसर्जन करते-करते फूट-फूटकर रोने लगे।

अपराह्न में राजेन दादा और एक बार गंगा स्नान कर आये। आश्रम में महाप्रभु के अभिषेक का आयोजन होने लगा। गुरुदेव ने कहा, "बाबा यादव! आज और कहीं कीर्तन करने न जाकर आश्रम में ही कीर्तन कर मुझे सुखी करना।" राजेन दादा बोले, "जो आज्ञा बाबा" और नवद्वीपदास से कीर्तन का आयोजन करने को कहा।

ठीक सन्ध्या समय महाप्रभु का अभिषेक आरम्भ हुआ। राजेन दादा ने जन्मोत्सव-कीर्तन आरम्भ किया। महाजनों के पदों का कीर्तन करने के पश्चात् अन्त में यह पद प्रारम्भ किया—

वदने बल जय जय शचीर कुमार।
गौर आमार निगम-निगूढ़ अवतार।।

गाते-गाते उद्दण्ड नृत्य करने लगे। रात्रि प्राय: नौ बजे कीर्तन समाप्त कर पंचामृत और कुछ फलमूल प्रसाद पाकर नाम-कीर्तन करते-करते बाहर निकले। कहाँ जायेंगे, कौन जाने। पर संगीगण जानते थे कि बिना किसी विशेष आकर्षण के बाबाजी महाशय इस प्रकार कहीं नहीं जाते। इसलिए वे छाया की भाँति नाम करते-करते उनके पीछे हो लिए।

इस ओर आमपुलिया पाड़े के पूज्यपाद ज्ञानानन्द स्वामी जी महाराज के आश्रम में होली के उपलक्ष्य में चार-पाँच सेर अबीर मंगाया गया है और पच्चीस-तीस व्यक्तियों के लिए पूरी-कचौड़ी बनायी जा रही है। आश्रमवासी कोई नहीं जानते कि और कौन-से लोग आश्रम में आकर उत्सव में सम्मिलित होंगे। स्वामी जी एक कमरे के बीच में बैठे धीरे-धीरे कई भक्तों के साथ होली-कीर्तन कर रहे हैं। आश्रम का सदर दरवाजा बन्द है। एकाएक बाहर नाम-कीर्तन-ध्वनि सुनायी पड़ी। स्वामी जी की आज्ञा से एक भक्त ने दरवाजा खोला। राजेन दादा ने सदल-बल आश्रम में प्रवेश किया और मदमत्त सिंह की भाँति हुँकार के साथ नाम-कीतन करते-करते स्वामी जी के कमरे में आकर उपस्थित हुए। मत्तसिंह की गर्जन सुन जिस प्रकार दूसरा सिंह भी गरज उठता है, उसी प्रकार बाबाजी महाशय की हुँकार सुन स्वामी जी भी उसी प्रकार गरजने लगे। उस समय की भक्तगणों की अवस्था का सहज में अनुमान किया जा सकता है। दोनों महात्माओं के चरणों के नीचे पृथ्वी थर-थर काँप रही है। स्थान अति संकीर्ण है। दोनों महात्माओं को किसी प्रकार आघात न हो, इस उद्देश्य से भक्तगण चारों ओर से उन्हें घेरकर उनकी रक्षा कर रहे हैं और नाम-कीर्तन कर रहे हैं। थोड़ी देर में भक्तगण परस्पर परामर्श कर बड़ी चतुराई से दोनों नृत्यकारी महापुरुषों को लेकर बाहर आँगन में आये।

यह दोनों महापुरुष बाह्य दृष्टि से विभिन्न पथ और विभिन्न मतावलम्बी थे, परन्तु परस्पर एक दूसरे से इतना प्रेम करते थे कि कोई यह नहीं समझता था कि वे एक ही मत के नहीं हैं। उनके शिष्यों की भी यही धारणा थी कि स्वामी जी और राजेन बाबू भाई-भाई हैं, यद्यपि एक महात्मा के शिष्य गेरुआ-वस्त्रधारी, शिखासूत्रविहीन और मुण्डित मस्तक थे और दूसरे के

सफेद डोरकौपीन बहिर्वास और शिखाकण्ठीधारी। एक शाक्त संन्यासी थे, दूसरे वैष्णव, तथापि परस्पर द्वेषभाव रहित होकर एक दूसरे को देखते ही दण्डवत् प्रणाम और प्रेमालिंगन करते थे और दोनों दलों के भक्त दोनों महात्माओं के प्रति एक सी गुरुबुद्धि रखते थे।

आँगन से बाहर आते ही सब ने प्रेमपूर्वक अबीर गुलाल से होली खेली। सब लाल-लाल दीखने लगे। राजेन दादा ने वासन्ती सुर में पद आरम्भ किया—

रसवति खेलत नागर संगे।
मारत कुंकुम श्यामरअंगे।।

—रसवती श्रीराधे नागर कृष्ण के साथ होली खेलते हुए उन पर कुंकुम फेंक रही हैं।

आँखिजुग अरुणित मेलिते ना पारे।
हारिनु हारिनु श्याम बले बारे बारे।।

—कृष्ण की दोनों आँखें कुंकुम से लाल हो गयी हैं। वे उन्हें खोल नहीं पा रहे हैं। 'मैं हारा, मैं हारा' बार-बार कह रहे हैं।

खेलाते हारिया श्याम पलाइते चाय।
चौदिके सहचरी पथ नाहिं पाय।।

—खेल में हार कर श्याम भागना चाह रहे हैं। पर चारों ओर सखियाँ हैं, भाग नहीं पा रहे हैं।

हारुया हारुया बलि देइ करतारी।
लइल पागड़ी केह, केहबा बाँशरी।।

—'हारा, हारा' कह सब ताली बजा रही हैं। कोई पगड़ी छीन रही है, कोई बाँसुरी।

हासिया कहये तब रसवती राइ।
आइस हे हारुया पुनः फागुया खेलाइ।।

—तब रसवती राधा हँसकर कहती हैं—'हे हारुया! (हारे खिलाड़ी) आओ एकबार फिर खेलें।'

विशाखा बलये तुया संगिनी-समाज।
कैसे खेलब एका नागरराज।।

—विशाखा राधा से कहती हैं—"राधे, तुम्हारे साथ तो सखियों का पूरा समाज है। श्याम अकेले तुम्हारे साथ कैसे खेल सकते हैं?"

धनी कहे सयुथे विशाखा हउक तुया।
ललिता आमार आइस खेलिहे फागुया।।

—राधा कहती हैं, "अच्छा विशाखा, तुम अपने यूथ की सखियों के साथ कृष्ण की ओर हो जाओ और ललिता, तुम अपने यूथ की सखियों के साथ मेरी ओर आ जाओ, तब खेलें फाग।"

लालहि लाल भेल रसिक शेखर।
पुनहुँ खेलत दुहुँ नागरी नागर।।

—खेल में रसिकशेखर कृष्ण का सर्वांग श्याम से लाल हो गया है, फिर भी नागर-नागरी दोनों खेले ही जा रहे हैं।

लाल कोकिलाकुल लाल शुकसारी।
लाल भ्रमरागण मयूरा मयूरी।

—फाग के रंग से कोकिलें, शुक-शारिकायें, भौंरे और मोर-मोरनियाँ सब लाल हो गये हैं।

लालहि तरुलता लालहि फूल।
लाल मधु पिवत लाल अलिकुल।।
(सब लालहि लाल रे)

—तरु-लता-फूल आदि भी सब लाल हो गये हैं, यहाँ तक कि लाल-लाल भौंरे लाल फूलों का लाल मधु पी रहे हैं।

गाते-गाते सब अपूर्व भाव से नृत्य करने लगे। एकाएक नवद्वीपदास के हृदय में ललिता सखी का आवेश हुआ। वे 'धनी कहे सयूथे विशाखा हउक तुया' पद का अवलम्बन कर गाने लगे—

आमरि कि लाजेर कथा शोन् विशाखा धनि।
नितुइ नितुइ खेलाय हारे नागर शिरोमणि।।

हाय, हाय! विशाखे, तुम्हारा श्याम रोज-रोज ही खेल में हारता है।

राजेन दादा का स्वभाव था कि रस की पुष्टि के लिए यदि कोई किसी पक्ष का अवलम्बन करता तो वे उसके प्रतिपक्षी बन जाते। इसलिए वे विशाखा के पक्ष का अवलम्बन कर गाने लगे—

नांइ कि मने ओ ललिते सेइ से दिनेर कथा।
कुसुम चुरि कि झकमारि हयेछिल तथा।।

—उस दिन की बात भूल गई ललिता, जब फूलों की चोरी में राधा को झक मारनी पड़ी थी।

ललिता—

दिबानिशि राइयेर लागि पागलपारा श्याम।
गोठे माठे बाँशरीते जपे राधानाम।।

—अपने श्याम को देख, दिन रात राधा के पीछे पागल रहकर, गोष्ठ में हो चाहे मैदान में, बाँसुरी में 'राधा राधा' जपा करता है।

विशाखा—

भाटेर मुखे नाम शुने के काँदे दिबानिशि।
शयने स्वपने मने भावे कालो शशि।।

—अच्छा बता, भाट के मुख से कृष्ण का नाम सुन कौन दिन-रात रोता है? कौन शयन में और स्वप्न में कालाचाँद का ध्यान किया करता है?

ललिता—**राइ देखिते कदम तलाय के करेछे थाना।**

—बता, राधा को देखने के लिए कौन कदमतले खड़ा रहता है?

विशाखा— **से जे राइके देखा दिबार तरे करे आनागोना।**

—वह तो राधा को दर्शन देने उधर आया-जाया करते हैं।

ललिता—**पाशाखेलाय कुण्डतीरे के हारिल बल।**

—बता, कुण्ड के तीर पर पाशा खेलते में कौन हार गया था?

विशाखा—**एका नागर पेये सबाइ करेछिल छल।।**

—वह तो तुमने नागर को अकेले पाकर उसके साथ छल किया था।

ललिता—**नांइकि मने मानेर दिने के धरिल पाय।**

—और क्या तुझे याद नहीं, मान के दिन किसने पैर पकड़े थे?

विशाखा—**अधीर हये तारपरे के दूतीरे पाठाय।।**

—उसके बाद किसने अधीर होकर कृष्ण के पास दूती को भेजा था?

ललिता—**राजकुमार के नारीर द्वारे करिल कोटाली।**

—वह तो नारी के द्वारा राजकुमार पर शासन करवाया था।

विशाखा—**राजकुमारीर मुक्ता चुरि सब कि पाशरिलि।।**

—और राजकुमारी ने जो मोतियों को चोरी की थी, वह सब भूल गयी?

ललिता— **(बल) राजार नन्दन बने बने के धेनु चराय।**

—अच्छा बता, कौन राजकुमार होकर वन-वन गायें चराता है (राधा से मिलने के लिए)?

विशाखा— **(बल) राजनन्दिनी कोन रमणी दधि बिके जाय।।**

—बता, राजकुमारी होकर कौन (कृष्ण-मिलन के लिए) दही बेचने जाती है?

ललिता—**नारीर बेशे जावक लये के परालो पाय।**

—नारी के वेश में किसने (आकर) पाँव में जावक लगाया था (राधा के)?

विशाखा—**राजार मेये काहार तरे कानने बेड़ाय।।**

—राजकुमारी होकर राधा किसके लिए वन-वन घूमा करती है?

ललिता—**सेजे बाला गेंथे माला के दिल गलाय।**

—बाला सजकर किसने माला गूँथकर (राधा को) पहनायी थी?

विशाखा—**पररमणी परेर घरे के राँधिते जाय।**

—दूसरे की रमणी कौन दूसरे की रसोई पका आती है?

ललिता—**रासेश्वरी पदतले के लिखित नाम।**

—(हमारी) रासेश्वरी के पदतले किसने लिखा था (अपना) नाम?

विशाखा—**(ह्यांगो) बाँशी शुने चित्रपटे के संपिल प्राण।।**

—बाँसुरी सुनकर किसने चित्रपट को सौंप दिये थे प्राण?

ललिता—

मिछे गरब करिस ना गो ओ विशाखा सखी।
श्याम मनोमोहिनी राइ सुधामुखी।।

—झूठा गर्व न कर री विशाखा सखी, राधा है श्याम-मनमोहनी सुधामुखी।

विशाखा—

शोन् ललिता मरम कथा दुँहु राइ कानू।
रूपे गुणे कुले माने केह नहे ऊनू।।
श्यामेर बामे श्यामसोहागी देखते केमन भालो।
मेघेर कोले सौदामिनी जगत् करे आलो।।
राइयेर गुणे श्यामेर आदर श्यामेर गुणे राइ।
छाड़ाछाड़ि श्यामगोरीर किबा आदर भाइ।।
(आय गो सखी) श्याम सने एकासने बसाइया राइ।
प्राण खुले सबे मिले दुहुँ गुण गाइ।।
कालोर कोले किबा शोभा कनकवरणी।
नवजलधरे जेन थिर सौदामिनी।।

—ललिता, अब विवाद छोड़कर सुन मर्म की बात। राधा-कृष्ण कोई रूप, गुण, कुल और मान में कम नहीं। श्याम के बायें सुहागवती राधा लगती है जैसे मेघ की गोद में दामिनी जगत् को प्रकाशित करती है। राधा के गुणों से है श्याम की शोभा, श्याम के गुणों से राधा की। एक को छोड़ दूसरे का आदर कहाँ है? आओ सखी, श्याम के साथ राधा को एक आसन पर बिठाकर दोनों का गुणगान करें। अब देखो, काले श्याम की गोद में कनकवर्णी राधा लगती है जैसे नये बादल में बिजली स्थिर होकर रह गयी है।

गाते-गाते सब प्रेमानन्द में नाचने लगे। नवद्वीपदास में शक्तिसंचार देख मैं अवाक् रह गया। मैं नहीं जानता था कि नवद्वीप राजेन दादा के इतने कृपापात्र हैं। कुछ देर इस प्रकार उद्दण्ड नृत्य और कीर्तन होता रहा। कीर्तन समाप्त होने पर सब रज में लोटने लगे। केवल चार-पाँच सेर अबीर उत्सव के लिए मंगाया गया था। पर कोई ढाई मन अबीर खर्च हो गया। महापुरुषों की सभी लीला अद्भुत है।

स्वामी जी नवद्वीप दादा को हृदय से लगाकर आनन्द से आत्महारा हो रहे थे। कुछ देर पीछे स्थिरता प्राप्त कर उन्होंने राजेन दादा और सब भक्तों से प्रसाद पाने का अनुरोध किया। सब एक साथ प्रसाद पाने लगे। प्राय: चालीस-पचास व्यक्तियों के लिए कचौरी-पूड़ी तैयार कर ठाकुर जी का भोग लगाया गया था। परन्तु साठ-सत्तर व्यक्ति एक साथ प्रसाद पाने बैठे। हम पच्चीस-तीस व्यक्ति बाकी रहे। हम लोगों ने भी खूब पेट भर प्रसाद सेवन किया। फिर भी चालीस-पचास आदमियों के लिए प्रसाद शेष रहा। महात्माओं के कटाक्ष से असम्भव भी सम्भव हो जाता है। यह तो एक साधारण-सी बात है।

प्रसाद पाने के पश्चात् राजेन दादा सदल-बल कीर्तन करते-करते गुरुदेव के आश्रम चले गये। आनन्द की पैंठ जैसे उठ गयी। स्वामी जी और अन्यान्य सब राजेन दादा की अमानुषिक शक्ति की चर्चा करने लगे। स्वामी जी बोले, "नाम कीर्तन के आरम्भ होते ही राजेन बाबू के देह में निताइ-गौर दोनों भाई खेलने लगते हैं। उनका अपना बिन्दुमात्र भी अस्तित्व नहीं रहता। यह मैंने प्रत्यक्ष देखा है। यदि ऐसा न होता तो कुछेक व्यक्तियों को लेकर ऐसा कीर्तनानन्द क्या कभी सम्भव हो सकता था?" कुछ देर इस प्रकार की समालोचना होती रही। उसके बाद सब अपने-अपने घर को गये। स्वामी जी भी विश्राम करने लगे।

गोकुल और नवद्वीपदास की विदा

आज प्रात: बाबाजी महाशय बहुत गम्भीर होकर बैठे हैं। जिनके मुख पर सदा हँसी छाई रहती, जिनकी चेष्टा सदा आनन्दमय होती, जिनका भाव सदा रसमय होता, जिनका आबाल-वृद्ध-वनिता सबके साथ समान व्यवहार होता, जो अपने शिष्यों के संग भी गुरुभाव न रखते, जो दूसरों का मुख मलिन देख व्यथित हो पड़ते, आज वही परम गम्भीर और मौन हैं। भक्तों के हृदय में आतंक मच रहा है—न जाने आज किसको क्या कठोर आदेश होने वाला है।

आठ बजे। बाबाजी महाशय एकाएक से गम्भीर स्वर से पुकार उठे। 'गोकुल!'

गोकुल—आज्ञा बाबा।

बाबाजी—इधर आ तो।

गोकुल ने निकट जाकर बाबाजी महाशय को प्रणाम किया। बाबाजी महाशय बोले—'बैठ, तुझसे जो कहूँ सुन।' गोकुल 'जो आज्ञा' कह हाथ जोड़कर बाबाजी महाशय के सम्मुख बैठ गया।

बाबाजी—देखो तुम्हारी माँ, स्त्री और छोटा भाई तुम्हारे कारण बहुत व्याकुल हो रहे हैं। तुम्हें एक बार जाना चाहिये। बहुत दिन तो हमारे साथ रहे। फिर जब इच्छा हो चले आना। जब तुमने संसार आश्रम में प्रवेश किया है तो उसे देखना भी तुम्हारा कर्तव्य है। तुमने विवाह न किया होता और तुम्हारी माँ न होती, तब दूसरी बात थी। सती, साध्वी, पतिव्रता, ब्राह्मण कन्या का अभिसम्पात तुम्हें और हमें सबको भोगना होगा।

गोकुल पर जैसे वज्राघात हुआ हो, वह मौन है, नीचे सिर किये अति व्याकुल भाव से रो रहा है। कभी-कभी कातर नेत्रों से नवद्वीप दादा की ओर देख लेता है। नवद्वीप दादा गोकुल के ही नहीं, सभी आश्रमनिवासियों के प्राण हैं—सब के हृदय का भाव जानते हैं और सबकी ओर से वही बाबाजी महाशय से जो कुछ कहना सुनना होता है कहते हैं। आज मानो गोकुल भी कातर नेत्रों से नवद्वीप दादा को इंगित कर रहा है—'दादा! मेरे मन का संकल्प तुम अच्छी तरह जानते हो, इसलिए तुम्हीं मेरी ओर से बाबाजी महाशय से कुछ कहो।'

थोड़ी देर पीछे नवद्वीप दादा ने धीरे-धीरे बाबाजी महाशय से कहा, "वह स्वयं आपसे कुछ नहीं कह सकता। मुझसे अपने मन का भाव प्रकट कर चुका है। वह घर न जायेगा और न संसार करेगा।"

बाबाजी—मैं समझता हूँ कि तुम ही इसके परामर्शदाता हो।

नवद्वीप—परामर्श देकर यदि लोगों का संसार-बन्धन मोचन कर सकता तो जगत् में माया का अधिकार ही क्यों रहने देता? वेद, वेदान्त पुराण, इतिहास, तन्त्र, सांख्य, पातंजल प्रभृति बहुत-से शास्त्र और प्रचारकगण उच्च कण्ठ से संसार की नश्वरता, दुःखमयता इत्यादि का प्रचार करते हैं, किन्तु कितने लोग मन लगाकर सुनते हैं, कितने संसार त्याग करते हैं? परन्तु कोई-कोई बाल्यकाल ही से संसार में अनासक्त होते हैं। इन्द्र के समान ऐश्वर्य्य, अप्सरा के समान स्त्री और माता-पिता सहस्र चेष्टा करने पर भी उन्हें संसार से बाँध रखने में समर्थ नहीं होते। युक्ति और परामर्श से कहीं संसार त्याग होता है? इसकी जब संसार करने की इच्छा नहीं है तो इसके प्रति ऐसा कठोर आदेश करने का क्या प्रयोजन है?

बाबाजी महाशय बोले, "तुम्हारी जब इसके साथ इतनी प्रीति है तो मेरी समझ से तुम्हारा भी इसके साथ जाना उचित होगा। उस सम्बन्ध में और प्रतिवाद न कर तुम दोनों घर चले जाओ। निताइचाँद की इच्छा से समयान्तर में फिर मिलना होगा।" इतना कह बाबाजी महाशय स्थानान्तर चले गये।

वज्रादपि कठोराणि मृदुनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि कोनु विज्ञातुमर्हति।।

किसकी साध्य जो आज्ञा उल्लंघन कर सके? जो गोकुल दादा और नवद्वीप दादा बाबाजी महाशय की छाया के समान उनके अनुगत हैं, जो स्वप्न में भी इनका संग छोड़ने की कल्पना नहीं कर सकते, वे आज अवनत-मस्तक हो इस वज्र से भी कठिन आज्ञा का पालन करने को तत्पर हैं। जिस आनन्दमय संग के त्याग करने के विचार मात्र से हृदय काँप उठता है और शरीर के रोंगटे खड़े हो जाते हैं, आज केवल बाबाजी महाशय के सुख के हेतु, उसी संग का अकातर भाव से परित्याग कर रहे हैं! गोकुल दादा मन ही मन अपने को धिक्कार रहे हैं—'हाय हाय! मुझ अभागे के कारण क्या दादा को भी बाबाजी महाशय का संग छोड़ना होगा?' फिर विचारते हैं—'निश्चय ही मंगलमय गुरुदेव मेरी रक्षा के लिए ही दादा को मेरे साथ भेज रहे हैं।'

नवद्वीप दादा के हृदय में एकसाथ हर्ष, विषाद, विस्मय, कर्तव्य, चिन्ता, विरहादि का संचार हो रहा है और मुख पर एक अनिर्वचनीय भाव प्रस्फुटित हो रहा है। कुछ देर विचार कर वे बोले—"भाई गोकुल! अब देर क्यों करते हो? मैं समझता हूँ कि हम अब जितनी देर इस स्थान पर रहेंगे उतनी देर दादा को कष्ट होगा। इसलिए चलो और विलम्ब न कर शीघ्र इस स्थान को परित्याग करें।" यह विचार कर दोनों 'निताइ गौर राधेश्याम। हरे कृष्ण हरे राम।' नाम करते-करते बाहर

निकले। संगीगण रोते-रोते कुछ दूर दादा के पीछे-पीछे गये। किन्तु इंगित द्वारा दादा के निषेध करने पर सब वापस लौट आये।

बाबाजी महाशय ने स्नानादि कर महाप्रसाद ग्रहणपूर्वक विश्राम किया। उधर नवद्वीप दादा और गोकुल दादा खेयाघाट जाकर नाव पर बैठे। जब नाव गंगा के मध्य में पहुँची नवद्वीप दादा गोकुल से बोले—"देख भाई गोकुल! दादा ने हमें घर जाने का आदेश किया है। किन्तु हमारा घर कहाँ है? जब हमें सब लोग पुरी के बाबाजी कह कर पुकारते हैं तो पुरी ही तो हमारा घर है। अतएव दादा ने पुरी जाने के लिए ही आदेश किया है।" गोकुल बोल उठा—"ठीक, दादा! मेरे मन में भी यही बात आयी थी। चलिये, हमलोग और कहीं न जाकर सीधे पुरी धाम चलें।" इतने में नौका गंगापार पहुँची। दोनों उतरकर नाम करते-करते पैदल ही पुरी की ओर चल दिये।

इधर नवद्वीप दादा के विरह में बाबाजी महाशय के साथी बहुत कातर हो उठे। सबके मुख मलिन हैं, सबके प्राण रो रहे हैं। सब लम्बी सांस ले-लेकर केवल 'हा निताइ' पुकार रहे हैं। नवद्वीप दादा से प्रथम बार ये लोग विलग हुए हैं। इसलिए इनका विरह और भी असहनीय हो रहा है। कोई-कोई कह रहे हैं—'हाय! इससे तो यही अच्छा होता कि गुरुदेव हमें दादा के साथ जाने का आदेश करते।' किसी को शंका हो सकती है कि इन्होंने सभी ने तो बाबाजी महाशय के चरणों में आत्मसमर्पण कर रखा है। बाबाजी महाशय ही तो सबके गुरु हैं, तब उनके साथ रहते हुए भी इनकी ऐसी अवस्था क्यों हो रही है? इस सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि नवद्वीपदास इनके आश्रय और बाबाजी महाशय विषय हैं। अर्थात् बाबाजी महाशय के संग से जिस आनन्द और माधुर्य का विकास होता है, उसका नवद्वीप दादा के द्वारा ये उपभोग करते हैं। इसलिए यद्यपि ये लोग प्रेमानन्दमय बाबाजी महाशय के साथ हैं और कीर्तनादि पूर्ववत् ही चल रहा है, तथापि उपभोग के यन्त्र के अभाव के कारण इनका ठीक-ठीक उपभोग नहीं हो रहा है। अतः आज नवद्वीप दादा का विरह इन्हें असह्य हो रहा है।

कलकत्ता गमन

देखते-देखते आधा वैशाख बीत गया। एक दिन प्रातःकाल बाबाजी महाशय गुरुदेव के श्रीचरणों में दण्डवत् प्रणाम कर बोले "बाबा! पुरीधाम जाने के लिए मन में बड़ी उत्सुकता हो रही है। यदि आज्ञा हो तो एक बार जगन्नाथ जी के दर्शन कर मनोवासना पूर्ण करूँ।" वृद्ध बाबाजी महाशय तो जैसे भोलानाथ ही थे। वे बोले—"अच्छा भाई! जिससे तुम्हें सुख हो वही करो। पर बूढ़े बाप को बिलकुल भूल न जाना। कभी-कभी मिलते अवश्य रहना।" इतना कह बाबाजी महाशय को स्नेहपूर्वक आलिंगन कर रोने लगे। अहा! कितना वात्सल्य! गुरुदेव शिष्य के सुख में सुखी और शिष्य भी सदा गुरुदेव के सुख के लिए व्यस्त! यही तो है अप्राकृत निःस्वार्थ प्रेम। बाबाजी महाशय ने नानारूप सान्त्वना-वाक्यों द्वारा गुरुदेव को स्थिर किया। गुरुदेव ने भी प्रसन्नतापूर्वक शिष्य के मस्तक पर श्रीचरण रख आशीर्वाद दे उन्हें विदा किया। ये दस-बारह संगीसाथियों को ले नाम करते-करते गंगा पार कर कृष्ण नगर स्टेशन की ओर चल दिये।

कृष्णनगर स्टेशन के पास एक तालाब के किनारे एक पेड़ के नीचे बैठे कीर्तन कर रहे थे, उसी समय एक सज्जन ने आकर पूछा, "आप कहाँ जायेंगे?"

बाबाजी—बाबा! निताइचाँद की प्रेरणा से कलकत्ते जाने की वासना उदय हुई है। अब जैसी उनकी इच्छा।

सज्जन—बाबा! बारह बजकर चौबीस मिनट पर गाड़ी आती है। अभी नौ बजे हैं। गाड़ी में बहुत देर है। आप लोगों के आहारादि की कुछ व्यवस्था है?

बाबाजी—बाबा हम तो कुछ जानते नहीं। निताइचाँद ने क्या व्यवस्था की है वे ही जानें।

सज्जन—यदि आज्ञा हो तो मैं कुछ व्यवस्था करूँ। मैं भी कलकत्ते जा रहा हूँ। आहारादि कर हम लोग एक साथ ही चलेंगे।

बाबाजी—निताइचाँद की जैसी इच्छा। मैं और क्या कहूँ?

वे सज्जन बाबाजी महाशय के विधुभूषन नामक एक भक्त को साथ ले निकट के बाजार से दाल,

चावल, तरकारी इत्यादि भोग की सामग्री सिर पर रखकर ले आये। बाबाजी महाशय के चतुर साथियों ने साढ़े ग्यारह बजे के पहले ही भोजन तैयार कर ठाकुर जी को भोग लगा दिया। बाबाजी महाशय ने तालाब में स्नानकर महाप्रसाद ग्रहण किया। तत्पश्चात् साथियों ने बाबाजी महाशय का अधरामृत ग्रहण कर परमानन्द से महाप्रसाद सेवन किया। बारह बजे सब स्टेशन पहुँच गये।

साथी परस्पर कहने लगे, "स्टेशन तो आ गये। टिकट का क्या होगा? पास में धेला भी नहीं।" किन्तु बाबाजी महाशय पूर्वोक्त बाबू एवं कई और सज्जनों के साथ निश्चिन्त और प्रफुल्लित भाव से कथा-प्रसंग में तल्लीन हैं। उसी समय टिकट की घंटी बजी। बाबू लोग अपना-अपना टिकट लेने चले गये। एक सज्जन ने पूछा "बाबा! आपका टिकट नहीं लिया गया क्या?" बाबाजी महाशय ने अति प्रशान्त भाव से उत्तर दिया, "बाबा! मैं तो कुछ जानता नहीं। निताइ जानते हैं।" वह समझा कि शायद 'निताइ' नाम का इनका कोई साथी टिकट लेने गया है।

इसी समय पृथ्वी को कम्पित करती हुई मदमत्त दिग्गज के समान फुत्कार करती गाड़ी स्टेशन पर आ पहुँची। छोटे-बड़े सभी जल्दी-जल्दी गाड़ी पर उतराचढ़ी करने लगे। एक चपरासी आकर कह गया, "बाबा, जल्दी चढ़ो गाड़ी अभी छोड़ देगा।" संगीगण बाबाजी महाशय को लक्ष्यकर कुछ व्यस्त भाव से बोले, "बाबा गाड़ी छूट जायेगी।"

बाबाजी—तुम्हारे पास यदि कुछ हो तो टिकट लेकर गाड़ी पर बैठ सकते हो। मेरे पास जब टिकिट होगा तब मैं चला जाऊँगा, नहीं दस दिन यहीं रहूँगा। मेरे कोई लड़के-लड़की का विवाह तो कलकत्ते में हो नहीं रहा। निताइचाँद को आवश्यकता होगी तो ले जायेंगे, नहीं उनकी जो इच्छा होगी करेंगे। भिखारी होकर यदि इतना व्यस्त होंगे तो कैसे काम चलेगा?

यह सुनकर सब चुप बैठे रहे। यात्री लोग सब गाड़ी पर बैठ चुके। उसी समय स्टेशन मास्टर ने आकर पूछा , "बाबा! आप लोग कहाँ जायेंगे?"

बाबाजी—मैं नहीं जानता बाबा।

स्टेशन मास्टर—तब कौन जानता है?

बाबाजी—निताइचाँद जानते हैं।

स्टेशन मास्टर—क्यों, आप लोगों के पास पैसा कौड़ी नहीं है क्या?

बाबाजी—ना बाबा! विशेष प्रयोजन भी नहीं है।

यह सुनकर स्टेशन मास्टर कुछ व्यस्त-सा दीखने लगा। बाबाजी महाशय बोले, "बाबा, विशेष व्यस्त होने की कोई बात नहीं। मंगलमय निताइचाँद की जो इच्छा होगी वही होगा।"

स्टेशन मास्टर—गाड़ी छूटने का समय हो गया है।

बाबाजी—होने दो! इच्छामय की इच्छा। आज नहीं तो कल सही। कल नहीं तो दस दिन बाद।

स्टेशन मास्टर बाबाजी महाशय की भावभंगी और कथा-वार्ता से विस्मित होकर आपाद मस्तक उनका निरीक्षण करने लगा। न जाने उसके मन में क्या आया, एक बार बाबाजी महाशय के साथियों की ओर देख चला गया और दो मिनिट में हाथ में टिकिट लिये बाबाजी महाशय के पास आया और बड़े यत्न से इन सबको गाड़ी पर बैठा गया। बाबाजी महाशय गाड़ी पर बैठते ही खोल-करताल के साथ नाम करने लगे। गाड़ी भी मानो नाम की ताल के साथ आनन्दपूर्वक नाचते-नाचते चल दी। दृढ़ विश्वासी के साथ भगवान् सदा बंधे रहते हैं। "विश्वासे मिलये वस्तु तर्के बहुदूर!" भगवान् ने स्वयं कहा है—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।

(गीता 9/22)

इन दो महावाक्यों का दृष्टान्त बाबाजी महाशय के जीवन की प्रत्येक घटना में मिलता है। अपराह्न पाँच बजे के करीब गाड़ी स्यालदह स्टेशन पहुँची और बाबाजी महाशय सदलबल गाड़ी से उतर स्टेशन के बाहर आये।

मुकुन्द घोष के घर अवस्थान

आज कलकत्ते में बड़ी हलचल मच रही है। चारों ओर महासंकीर्तन की रोल उठ रही है। गगनभेदी

हरिध्वनि से आकाशमण्डल गूंज रहा है। न जाने क्या व्यापार है, यह विचारते हुए बाबाजी महाशय विस्मित भाव से एक ओर खड़े हैं। इसी समय साहब वेशधारी एक बंगाली बाबू ने कहा, "तुम सब हरिनाम संकीर्तन करो।"

बाबाजी—क्यों बाबा, आज चारों ओर हरिनाम संकीर्तन क्यों हो रहा है?

बाबू—क्यों, तुम्हें मालूम नहीं कि कलकत्ते में भयानक प्लेग के प्रादुर्भाव से नित्य अनेक लोग मौत के घाट उतर रहे हैं। इसलिए राजकीय आदेशानुसार सर्वत्र हरिनाम संकीर्तन की व्यवस्था हुई है।

सुनते ही बाबाजी महाशय का शरीर अश्रु, कम्प, पुलकादि सात्विक भूषणों से विभूषित हो गया। प्रेमगद्गद् कण्ठ से 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' नाम-कीर्तन आरम्भ किया। बार-बार नाम की हुँकार से पृथ्वी मानो काँपने लगी। लोगों की संख्या धीरे-धीरे बढ़ने लगी। आज परस्पर द्वेषभावरहित होकर हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सब प्राणों के भय से उच्च स्वर से भगवान् को पुकार रहे हैं। सर्वत्र ही समभाव है। बिना राजकीय पास कीर्तन मण्डली को कहीं भी जाने की स्वतन्त्रता है। मसजिद के निकट जाकर भी हरिनाम संकीर्तन करने का निषेध नहीं है। संकीर्तन-दल क्रमशः स्यालदह स्टेशन से उत्तर की ओर बढ़ने लगा है। चारों ओर मनुष्यों की भीड़ के कारण रास्ता चलना भी कठिन हो रहा है। जिस-जिस रास्ते से होकर संकीर्तन-दल जाता है उसी से मानो नाम का श्रोत बहता जाता है। दुकानदार, खरीददार सब अपना-अपना काम छोड़ अतिशय व्यग्र भाव से आकर संकीर्तन के सम्मुख दण्डवत प्रणाम कर रहे हैं। कलकत्ते की सामयिक अवस्था देख बाबाजी महाशय आनन्द से अधीर हो रहे हैं। बालक-वृद्ध, युवा सब एकटक इनकी ओर देख रहे हैं। इनका गगनभेदी कण्ठ-स्वर, अश्रु-कम्प-पुलकादि सात्विक भूषणों से विभूषित विशाल देह, और चरणों पर चरण रखे सुमधुर नृत्य जो एकबार देख लेता है, वह सब काम-काज छोड़ प्रेमविह्वल भाव से नाचते-नाचते इनके साथ हो लेता है।

धीरे-धीरे संकीर्तन मण्डल दर्जीपाड़े से होकर दीवान पाड़े के बाजार में पहुँचा। एक दूकान से एक भक्त ने उठकर संकीर्तन को साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। बाबाजी महाशय ने उन्हें उठाकर प्रेम से आलिंगन किया। वे बोले, "बाबा! आज इस अधम की कुटी पर पदार्पण करना होगा।" बाबाजी महाशय ने कहा, "निताइचाँद की जैसी इच्छा!" और उनके साथ उनके घर की ओर चल दिये। भक्त का नाम था मुकुन्दचन्द्र घोष। वे जाति के ग्वाले थे। स्वामी-स्त्री दोनों परम भक्त थे। बाजार में उनकी मिष्ठान्न की दुकान थी। किसी अच्छी वस्तु के प्रस्तुत होने पर घोष महाशय पहले पास के मन्दिर और उपस्थित ब्राह्मण, वैष्णवादि को थोड़ी-थोड़ी देकर पीछे अपने घर के ठाकुर को भोग लगाते थे। उनकी पत्नी मानों ठीक माँ यशोदा के समान थीं। पड़ोस के बालक-बालिका तो मानों उनके प्राण थे। वे प्रायः दुकान से नाना प्रकार की मिठाइयाँ मंगा ठाकुरजी को भोग लगा बालकों में वितरण कर आनन्द का अनुभव करती थीं। स्नेहमयी घोषपत्नी आज बहुत-से पुत्रों की माँ हो गयीं। बाबाजी महाशय घोष महाशय के घर पहुँचते ही बोले, "माँ, बड़ी भूख लगी है, कुछ खाने को दो।" माँ भी आनन्द से आत्महारा हो वात्सल्यभाव से खीर, छेना प्रभृति नानाविध मिष्ठान्न-प्रसाद सबको खिलाने लगीं। घोष महाशय एक ओर खड़े यह अप्राकृत स्नेहमय व्यापार देख रोते-रोते अधीर हो रहे थे। इस प्रकार वात्सल्यमयी घोष-पत्नी द्वारा प्रदत्त मिष्ठान्न प्रसाद पाकर सब परमानन्दित हुए। इधर भोगराग की व्यवस्था होने लगी। यथासमय ठाकुर के भोग के पश्चात् सबने प्रसाद पाकर विश्राम किया।

प्लेग के उपलक्ष में नगर-संकीर्तन

प्रातःकाल बाबाजी महाशय को प्रातःकृत्यादि समापनपूर्वक नगर-कीर्तन की तैयारी करते देख घोष महाशय की स्त्री बोलीं, "बाबा! कल रात आप लोगों की प्रसाद-सेवा ठीक से न हो सकी। अब यदि नगरकीर्तन को जायेंगे तो लौटने में बहुत विलम्ब होगा और सबको बड़ा कष्ट होगा। मैं शीघ्र रसोई का प्रबन्ध किये देती हूँ। आप लोग स्नानादि कर प्रसाद पा नगर

कीर्तन को जाँये तो मुझे बहुत आनन्द होगा और आप लोगों का शरीर भी स्वस्थ रहेगा।" बाबाजी महाशय सम्मति-प्रदानपूर्वक दो व्यक्तियों को रसोई बनाने के लिए छोड़कर नाम करते-करते गंगास्नान करने चले गये। घोष महाशय ने बाजार में घोषणा कर दी कि शाम चार बजे नगरकीर्तन आरम्भ होगा। इधर इन लोगों ने स्नानाह्निक समापनपूर्वक महाप्रसाद ग्रहण कर थोड़ा विश्राम किया।

चार बजने से पहले ही बहुत-से लोग घोष महाशय के घर आकर एकत्र होने लगे। बाबाजी महाशय हाथ-मुख धो आँगन में आकर खड़े हो गये। आगन्तुक लोग कीर्तन सुनना तो दूर रहा, बाबाजी महाशय की प्रेममयी सौम्य मूर्ति देखकर ही मुग्ध हो गये। इनके साथ एक खोल और दस जोड़ी करताल थे। मोहल्ले से एक भक्त एक खोल और ले आये। इस प्रकार थोड़ी देर में एक-एक कर न जाने कितने खोल करताल आ गये।

बाबाजी महाशय 'प्रकट अप्रकट लीलार दुइ त विधान' इत्यादि पद-कीर्तन द्वारा नगरकीर्तन की वन्दना कर 'आबार बोलो हरिनाम आबार बोलो' गाते हुए बाहर निकले। गगनभेदी कीर्तन-ध्वनि से आकाश मण्डल गूंज उठा। चारों ओर से जितने कीर्तन के दल आ रहे थे सब धीरे-धीरे इसी में आकर मिलने लगे। नामध्वनि, खोल-करताल-ध्वनि, हरिध्वनि, उलुध्वनि प्रभृति से दिग्मण्डल विकम्पित होने लगा। बाबाजी महाशय मदमत्त मतंग की भाँति झूमते-झूमते आगे जा रहे थे। इनके आघूर्णित और कुछ रक्तवर्ण नेत्रों से अविरल अश्रु विसर्जन हो रहा था। अंग-प्रत्यंग प्रेमानन्द से परिपूर्ण होकर फूल रहे थे। सर्वांग में पुलक परिव्याप्त था। क्षण-क्षण पर हवा के वेग से कम्पित केले के पत्ते-जैसा शरीर में कम्प हो रहा था। देखकर लोग विस्मयाविष्ट हो रहे थे। भावावेश में नाचते-नाचते जिसे देखते थे, उसी से आलिंगनपूर्वक कहते थे "हरिबोल-हरिबोल। आमार प्रेमदाता निताइ बोले हरिबोल हरिबोल। (नामे सकल व्याधि दूरे जाबे) (ओ भाई मिछे मायाय भूलो नारे) (ओ भाई कखन की हय? बला जाय ना) (स्त्री पुत्र संगे जाबे ना) (एक बार भेदाभेद भूले गिये) (ओ भाई जातिर गरब क' दिन रबे) (जम तो जाति बाछबे ना रे) (प्लेग तो हाकिम मानबे ना रे) (काल तो बयस देखबे ना रे) (बालक वृद्ध बाछबे ना रे) (किछुई संगे जाबे ना रे) (नाम मात्र पथेर सम्बल) एक बार गौरहरि बोल, हरिबोल, हरिबोल, बोलो भाई" इत्यादि।

कभी-कभी बाबाजी महाशय इस प्रकार से उद्दण्ड नृत्य करने लगते कि विभिन्न धर्मावलम्बी व्यक्तिगण भी उसे देख विस्मय-सागर में निमग्न हो जाते। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई जिसे भी स्पर्श मात्र कर लेते वही हाथ से ताली बजा-बजाकर नाचते-नाचते उच्च स्वर से 'हरिबोल हरिबोल' कहने लगता। बाग बाजार के मोड़ के चौरस्ते पर रुक कर बहुत देर तक कीर्तन होने लगा। कई वकील कचहरी से घर जाते समय एक ओर खड़े कीर्तन सुन रहे थे। उनमें से एक बोले, "देखो, कीर्तन तो बहुत सुना है, परन्तु ऐसा कीर्तन और भाव तो किसी ने न देखा होगा न सुना होगा, ये तो 'हरिबोल, हरिबोल' कहकर अपने प्रत्येक शब्द से जैसे सबके हृदय में विद्युत संचार कर रहे हैं। भाव-भंगी और आकार प्रकार से ये कोई साधारण पुरुष नहीं मालूम होते।" दूसरे वकीलों ने इस बात का पूर्णरूप से समर्थन किया। अधिक देर कर उन्हें इस प्रकार की चर्चा करने का अवकाश न मिला। एकाएक धूलि-धूसरित दीर्घाकार बाबाजी ने जैसे ही झूमते-झूमते बहुमूल्य वस्त्रधारी एक-एक वकील को आकर आलिंगन किया, वे पद मर्यादा का ध्यान न कर हरिबोल कहकर नाचने लगे। उस स्थान पर कई अँगरेज भी विस्मितभाव से ये सब देख रहे थे। एक बोला, "मुझे लगता है यह आदमी साधारण नहीं है। परमपिता परमात्मा इस विपत्ति के समय इसकी प्रार्थना जरूर सुनेंगे, क्योंकि यह सच्चे हृदय से प्रार्थना कर रहा है। आपत्ति से बचने के लिए इस तरह की भगवद्शरणागति जरूरी है। ये लोग दूसरों का दुःख अपना दुःख समझकर हृदय से प्रार्थना कर रहे हैं कि ईश्वर उन्हें प्लेग के मुख से बचाये। ईसा मसीह का कहना है कि मनुष्यों को दूसरों के कल्याण के लिए अपने प्राणों की भी बलि दे देनी चाहिये। यदि यह आदमी कलकत्ते में कुछ दिन और रह गया, तो प्लेग अवश्य ही चला

जायगा।" दूसरा उच्च स्वर से इस बात का समर्थन करते हुए बोला, "हाँ, यह आदमी अवश्य ही बहुत प्रभावशाली है। ईश्वर इसकी पुकार जरूर सुनेगा।"

इस प्रकार कीर्तन करते-करते रात कोई दस बजे घोष महाशय के घर लौट आये। इस समय भी साथ में अनेक लोग थे। मानो उन्हें घर की स्मृति ही नहीं रही थी। कैसा अपूर्व आकर्षण था! कैसी मोहनीशक्ति! दुकानदार को दुकान की चिन्ता नहीं। गृहस्थ को स्त्री-पुत्रादि की सुध नहीं। वकीलों को अपने मुवक्किल-मुकदमे की चिन्ता नहीं, यहाँ तक कि रोज मजूरी कर पेट पालने वाले मजदूरों को अपनी मजदूरी की चिन्ता नहीं, लीलामय निताइचाँद की थी यह एक अपूर्व लीला।

प्लेग के अवसर पर कलकत्ते में जो कीर्तनानन्द हुआ उसका उल्लेख करना मेरे जैसे क्षुद्र जीव के लिए असम्भव है। जिन्होंने अपनी आँखों से देखा है वे ही जानते हैं। इस प्रकार प्राय: एक मास तक मुकुन्द घोष महाशय के यहाँ रह कर बाबाजी महाशय प्रति दिन सन्ध्या समय नगर-कीर्तन को जाने लगे। आनन्द की भी उत्तरोत्तर वृद्धि होती गयी।

एक दिन किसी से कुछ कहे सुने बिना प्रसाद पाकर दो-ढाई बजे 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' नाम करते-करते कलुटोला में शोभारामवसाक लेन पर 26 नम्बर के मकान पर जा उपस्थित हुए।

पुलिन बाबू से मिलन*

बंगाब्द 1303 साल, ज्येष्ठ मास, वृहस्पतिवार के दिन अपराह्न में एक संकीर्तन दल ने 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम।' नाम कीर्तन करते-करते मेरे घर प्रवेश किया। तारीख कौनसी थी मुझे ठीक याद नहीं। वार इसलिए याद है कि प्रति वृहस्पतिवार को मेरे यहाँ श्रीमद्भागवत पाठ होता था। पाठक श्रीनीलकान्त गोस्वामी प्रभुपाद और कई श्रोता नीचे बैठक में, जहाँ पाठ हुआ करता था, उपस्थित थे। संकीर्तन की ध्वनि सुनते ही हम सब आँगन में आकर खड़े हो गये। इसी समय कलकत्ते में पहली बार प्लेग का प्रादुर्भाव हुआ। मोहल्ले-मोहल्ले में कीर्तन का समारोह था। हमारे मोहल्ले में भी चार-पाँच कीर्तन मण्डलियाँ बनी थीं, जिनमें से कोई-कोई नित्य सन्ध्या समय कीर्तन करती मोहल्ले में भ्रमण किया करती थीं। हमने पहले समझा कि उन्हीं में से कोई कीर्तन मण्डली आयी है। किन्तु आँगन में आकर देखा कि कई अपरिचित बाबाजी कीर्तन कर रहे हैं।

उस समय मेरी वैष्णव साधुओं पर तनिक भी श्रद्धा न थी। मेरी धारणा थी कि संसार में जितने अकर्मण्य, कर्त्तव्यविमुख, लक्ष्यशून्य और चरित्रहीन लोग होते हैं, वे ही साधु का वेश बनाकर अपनी इन्द्रियों की तृप्ति के लिए श्रद्धालु मनुष्यों को ठगते फिरते हैं। किन्तु मेरे बड़े भाई का भाव ठीक इसके विपरीत था। उनकी साधु, संन्यासी, ब्राह्मण और वैष्णवों के प्रति प्रगाढ़ भक्ति थी। हमलोग जाति के सुवर्णवणिक थे। बंगदेश के सभी सुवर्णवणिकों को श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु की अहैतुकी कृपा के प्रभाव से वंश परम्परा से कृष्णमन्त्र की दीक्षा है। हमारा परिवार श्रीनित्यानन्द का परिवार है। मेरे बड़े भाई उस परिवार के प्रकृत धर्म का ठीक-ठीक पालन करते थे और सदा ब्राह्मण-वैष्णवों की सेवा में अनुरक्त रहते थे। परन्तु मुझे भाईसाहब का ये भाव अच्छा न लगता। मैं समझता था कि यह उनकी एक बड़ी भूल है। प्रकृत अभावग्रस्त पति-पुत्रहीना असहाय विधवा स्त्रियाँ या मातृ-पितृ-हीन बालकबालिकाओं की सहायता न कर सबल, सुस्थकाय, आत्मसुखरत बाबाजी लोगों के लिए अर्थ व्यय करना उसका अपव्यय करना और मानव समाज का महान अनिष्ट करना है। यौवन के मद और अँगरेजी शिक्षा के प्रभाव से इस प्रकार के संस्कारों ने मुझे अच्छी तरह जकड़ रखा था। किन्तु इन भिखारियों ने आज मेरा अहंकार चूर्ण कर दिया। ये आनन्द में विभोर हो एकाग्र मन से 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' नाम का कीर्तन कर रहे थे। मेरे हृदय में साधुओं का गाना-बजाना सुन कर एक असहनीय वेदना हुआ करती थी। परन्तु इनके कीर्तन से आज

* इस घटना के सम्बन्ध में बाबू पुलिनविहारी मलिक महाशय का लेख ही यहाँ उद्धृत है।

मुझे एक अनिर्वचनीय सुख का बोध हो रहा था। यद्यपि मैं 'निताइ गौर राधेश्याम' नाम का कुछ भी अर्थ नहीं समझता था, तथापि न जाने क्यों यह नाम मेरे हृदय को खींच रहा था।

और उनका वह नृत्य! न जाने वह कैसा अलौकिक नृत्य था। मैंने अभी तक कभी बाबा लोगों के नृत्य से आनन्द का अनुभव नहीं किया था। वैसे उनका नृत्य प्राय: देखता, पर उसी भावना की पूर्ति के लिए, जिसकी पूर्ति के लिए लोग बन्दर का नाच देखते हैं।

किन्तु इनके नृत्य से मेरा मन आज न जाने क्यों एक दूसरे ही प्रकार से प्रभावित हो रहा था। मैं स्तम्भित भाव से खड़ा होकर देख रहा था कि कई बाबाजी एक दीर्घाकार बाबाजी को घेर कर उच्च स्वर से नाम करते-करते मण्डलाकार में नृत्य कर रहे हैं। ऐसा बोध होता था कि मध्यस्थित दीर्घाकार बाबाजी ही इस संकीर्तनदल के नेता हैं, क्योंकि वे जो गाते थे उसी का सब अनुसरण करते थे। संगीगण के गाने के साथ-साथ वे चरण पर चरण रख मधुर भाव से नृत्य कर रहे थे। उस नृत्य की अलौकिक माधुरी क्या भाषा में व्यक्त की जा सकती है? मैंने बहुत-से नृत्य देखे हैं। कलकत्ते में ऐसा कोई बड़ा नर्तक व नर्तकी नहीं जिसका नृत्य मैंने न देखा हो। इसके अतिरिक्त काशी, दिल्ली, अमृतसर, ढाका इत्यादि स्थानों में बड़े-बड़े सुविख्यात कलाकारों के नृत्य भी मैंने देखे हैं। परन्तु कभी मेरे मन और प्राण इस प्रकार से आकर्षित नहीं हुए। यदि सामान्य दृष्टि से उस नृत्य का वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाय तो उसमें कोई विशेषता मिलेगी या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता। परन्तु इतना निश्चय है कि जिसने एक बार उस नृत्य को देखा है वह कदापि उसे भूल नहीं सकता। वह नृत्य मानो एक सजीव और बोलता हुआ नृत्य था, एक ऐसे भाव को व्यक्त करता था, जो भाषा व इंगित से प्रकट नहीं किया जा सकता। वह मानो मन को प्राकृत राज्य से खींच अप्राकृत शान्तिमय राज्य के पूर्णचन्द्रमा की शीतल किरणों से परिव्याप्त एक परमानन्दमय निकुञ्ज की याद दिलाता था।

प्राय: एक घण्टे तक संकीर्तन और नृत्य करने के बाद संकीर्तनकारी बाबाजी हमारे अनुरोध से बैठक में आये और श्रीनीलकान्त गोस्वामी महाशय को दण्डवत् प्रणाम कर बैठ गये। जब और सब लोग भी यथायोग्य अपने-अपने स्थान पर बैठ गये, गोस्वामी जी ने संकीर्तन मण्डली के प्रधान बाबाजी से पूछा, "आप लोगों का निवास स्थान कहाँ है?"

बाबाजी—बाबा! हम भिखारी हैं। हमारे रहने का कोई निर्दिष्ट स्थान नहीं। फिर भी हमारा अधिकतर समय श्रीधाम पुरी में व्यतीत होता है।

गोस्वामी जी—आपका नाम?

बाबाजी—इस दास को लोग राधारमण चरणदास कहते हैं।

गोस्वामी जी—(संगीगण को लक्ष्यकर) ये लोग क्या आपके साथ ही रहते हैं?

बाबाजी—जी हाँ, इस समय मेरे ही साथ हैं।

गोस्वामी जी—श्रीधामपुरी में कहाँ रहते हैं?

बाबाजी—ऐसा कोई निर्दिष्ट स्थान नहीं। निताइचाँद जिस दिन जिस स्थान पर रखते हैं,उस दिन उस स्थान पर रहना होता है।

तब गोस्वामी जी ने मेरे बड़े भाई से कहा, "बाबा, कुञ्ज! तुम्हें वैष्णव सेवा से बहुत प्रेम है। आज तुम्हारे यहाँ एक परम वैष्णव ने आकर कृपा की है। इनकी कायमनोवाक्य से सेवा करना।" इसके पश्चात् श्रीमद्भागवत पाठ आरम्भ हुआ। पाठ समाप्त होने पर उस दिन मेरे भाई के आग्रह से संकीर्तन मण्डली हमारे यहाँ ही ठहर गयी। बाबाजी महाशय के सभी कार्य मुझे अति सुन्दर प्रतीत होने लगे। उनकी बातचीत में साम्प्रदायिकता की छाया या किसी प्रकार की संकीर्णता न थी। उनकी प्रत्येक बात सरल सुयुक्तिपूर्ण और मर्मस्पर्शी थी। उनकी प्रत्येक युक्ति और प्रत्येक तत्व-निर्णय में एक अनोखा मधुर भाव निहित था वे प्रत्येक प्रश्न का उत्तर हँस कर देते थे। विरक्ति उन्हें छूकर नहीं गयी थी। मैंने बहुत-से साधु वैष्णवों के दर्शन किये हैं। परन्तु ऐसी सौम्य और आनन्दमय मूर्ति, ऐसा सरलतापूर्ण व्यवहार, ऐसा मधुर भाव कहीं नहीं देखा।

क्रमश: बहुत-से लोग बाबाजी महाशय के दर्शन करने आने लगे और नाना प्रकार के प्रश्न करने लगे।

प्रसंगवश श्रीश्रीजगन्नाथदेव की मूर्ति के सम्बन्ध में सब अपना-अपना मत प्रकाश करने लगे। कोई राजेन्द्रलाल मित्र महाशय की गवेषणा के अनुसार श्रीजगन्नाथदेव की श्रीमूर्ति को बौद्ध मूर्ति कहकर श्रीजगन्नाथमंगल ग्रन्थ का इतिहास बताने लगे और कोई उसे प्रणव स्वरूप बताकर अपना अभिमत प्रकाश करने लगे। इस प्रकार जब सब अपनी-अपनी धारणा के अनुसार श्रीजगन्नाथदेव के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट कर चुके, तब सबने बाबाजी महाशय से अपना मत प्रकाश करने की प्रार्थना की। बाबाजी महाशय बोले—"श्रीश्रीजगन्नाथदेव के सम्बन्ध में आप लोगों ने जो कुछ भी कहा है, वह सभी सत्य है।" यह सुन एक सज्जन बोले, "यह कैसे हो सकता है प्रभु? क्या परस्पर विरोधीमत भी कभी एक साथ सत्य हो सकते हैं?"

बाबाजी—हाँ हो सकते हैं। प्राकृत जगत् की वस्तु में ही विरुद्ध धर्म नहीं हो सकते। परन्तु भगवान् में सभी कुछ सम्भव है। श्रीश्रीजगन्नाथदेव के सम्बन्ध में आप लोगों ने जो कुछ भी कहा है वह विरोधयुक्त होने पर भी सब सत्य हो सकता है।

दूसरे सज्जन ने कहा, "बाबा! जगन्नाथदेव की मूर्ति का हस्तपदविहीन और चक्राकार नेत्रयुक्त अद्‌भुत स्वरूप क्यों है? यह भगवान् का कौन-सा स्वरूप है?"

बाबाजी—श्रीजगन्नाथमंगल ग्रन्थ में राजा इन्द्रद्युम्न का नीलगिरि-गमन, नीलमाधव-विग्रह का अन्तर्धान होना और ब्रह्मा के आदेश से जगन्नाथ, बलराम, सुभद्रा, सुदर्शन-इन चार मूर्तियों के निर्माण इत्यादि विषयों का विस्तार से वर्णन है। किन्तु श्रीविग्रह के हस्तपदादि के इस प्रकार के होने का कारण किसी ग्रन्थ में है या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता। फिर भी इस सम्बन्ध में महात्माओं के मुख से जो कुछ सुना है, उससे यदि आपकी तृप्ति हो सके तो कह सकता हूँ।

सब—हाँ, वही कहिये।

बाबाजी—श्रीकृष्णचन्द्र की द्वारका लीला के समय एक दिन जब महिषियाँ नाना प्रकार कथोपकथन कर रही थीं, एक बोलीं—"अरे! ठाकुर जी ने अपनी वृन्दावनलीला में न जाने कौन-से अपूर्व आनन्द का उपभोग किया है, जिसके कारण द्वारका में इतने सुख, ऐश्वर्य और सोलह हजार रूप-गुण-कुल-गौरवसम्पन्ना महिषियों के होते हुए भी वे गाँव में रहने वाली वनचारिणी गोपियों की याद नहीं भूलते। प्रति रात्रि निद्रितावस्था में 'राधे-राधे' पुकार कर रोने लगते हैं।" सबने एक स्वर से कहा, "हाँ रानी, ठीक कहती हो, इसमें अवश्य कोई रहस्य है।" इतना कह सब किस प्रकार ठाकुर जी की वृन्दावन-लीला पूर्णरूप से जानी जाय, इस सम्बन्ध में आलोचना करने लगीं। उस समय सत्यभामा बोली, "हमें पता लगाना चाहिये कि द्वारका में कोई ऐसा है, जो वृन्दावन में ठाकुर जी के साथ रहा हो और जिसने उनकी समस्त वृन्दावन-लीला देखी हो।" रुक्मिणीदेवी बोलीं, "एक मात्र रोहिणी जी के अतिरिक्त और कोई ऐसा नहीं है।" यह सुन सब रोहिणी जी के निकट जाकर वृन्दावन-लीला सुनाने के लिए अनुरोध करने लगीं। रोहिणी देवी बोलीं, "मैं माँ होकर किस प्रकार पुत्र की मधुर लीला का वर्णन कर सकती हूँ? यदि राम-कृष्ण या और कोई सुन लेगा, तो मेरे लिए कितनी लज्जा की बात होगी। यदि तुम कोई ऐसा स्थान निर्दिष्ट कर सको, जहाँ कोई और न आ सके तो मैं तुम्हारी मनोकामना पूर्ण कर सकती हूँ।"

महिषीगण—क्यों, हमारे अन्तःपुर में और कौन आ सकता है?

माँ—राम-कृष्ण आ सकते हैं। वृन्दावन लीला में इस प्रकार की एक आकर्षण शक्ति है कि जहाँ भी उसकी कथा होती है, वहीं राम और कृष्ण खिंच कर स्वतः चले आते हैं।

सबने तय किया कि जब तक माँ वृन्दावन-लीला वर्णन करें सुभद्रादेवी अन्तःपुर के द्वार पर रहें और किसी को अन्तःपुर में न आने दें। सुभद्रादेवी को द्वार पर नियुक्त कर माँ रोहिणी धीरे-धीरे वृन्दावन लीला का वर्णन करने लगीं। लीला का वर्णन करते-करते माँ रोहिणी और महिषियाँ इतनी तन्मय हो गयीं कि किसी को अपनी सुध न रही। क्रमशः रोहिणी देवी का कण्ठस्वर ऊँचा होकर सुभद्रा देवी को द्वार पर सुनाई पड़ने लगा। अमृतमय लीला तरंग के कान में पड़ते ही सुभद्रा देवी की देह-स्मृति लोप होने लगी।

उसी समय वृन्दावन-लीला की आकर्षणी-शक्ति से आकृष्ट हो राम-कृष्ण राजसभा से अन्त:पुर के द्वार पर आ पहुँचे और सुभद्रा देवी को प्रेमानन्द में विह्वल, भावविभोर और आत्मविस्मृत अवस्था में देख विस्मित होकर इस अपूर्व भाव का कारण जानने के लिए व्याकुल हो उठे। साथ ही रोहिणी माँ की वृन्दावनलीलारस में पगी अमृतमय वाणी ने दोनों के कर्ण कुहर में प्रवेश किया और वे निश्चल-निस्पन्द भाव से सुभद्रा देवी के दोनों ओर खड़े रहकर वृन्दावन-लीला श्रवण करने लगे। प्रेममय लीला के प्रेमश्रोत ने दोनों के आत्मज्ञान को आच्छादित कर लिया। आनन्द-लहरी में गोते खाते-खाते दोनों के हाथ-पाँव संकुचित और नेत्र विस्तृत होने लगे और श्रीकृष्ण के हाथ का सुदर्शन चक्र गलकर लम्बाकार हो गया।

इसी समय स्वच्छन्दगति नारद श्रीकृष्ण दर्शन हेतु द्वारकापुरी पधारे। राजसभा में राम-कृष्ण को न देख जब उद्धव से उनके बारे में पूछा, तब उद्धवजी बोले, "अभी-अभी महाराज अन्त:पुर गये हैं।" नारद ने शीघ्रतापूर्वक अन्त:पुर की ओर प्रस्थान किया और वहाँ द्वार पर जाकर देखा कि बीच में सुभद्रा, उनके दाहिनी ओर बलराम, बायीं ओर कृष्ण और सुदर्शनचक्र मूर्ति की तरह स्थिर भाव से अवस्थित हैं। कैसी अपरूप शोभा है! सबके नेत्रों से अविरल अश्रुधार बह रही है। हस्तपद संकुचित हैं, नेत्र चक्राकार और सुदर्शनचक्र दीर्घाकृति हो रहे हैं। प्रेमविगलित आनन्दमय चारों मूर्तियों के दर्शन कर नारद विस्मयान्वित अवस्था में कर जोड़े कुछ दूर खड़े हो गये और उनकी पूर्वावस्था प्राप्ति की प्रतीक्षा करने लगे। कुछ देर में अन्त:पुर में माँ रोहिणी की कहानी समाप्त हुई और धीरे-धीरे श्रीकृष्ण, बलदेव, सुभद्रा और सुदर्शन अपनी-अपनी पूर्वावस्था को प्राप्त हुए।

भगवान् श्रीकृष्ण सहसा देवर्षि नारद को देख कुछ लज्जित भाव से बोले, "देवर्षि! मंगल तो है? आप कब पधारे?"

नारद—मुझे जो कुछ भी कहना है पीछे कहुँगा। पहले मेरी कौतूहल निवृत्ति करने की कृपा कीजिये।

भगवान्—कौन-सा कौतूहल?

नारद—भगवन्! आज मैंने आपकी जो अवस्था देखी उसका क्या कारण है?

भगवान्—नारद! तीनों लोक में ऐसी कौन-सी बात है जिसे तुम नहीं जानते। फिर भी यदि तुम्हें कौतूहल है तो सुनो। आज अन्त:पुर में माँ रोहिणीदेवी रसमय वृन्दावन-लीला-विलास का वर्णन कर रही थीं और उनके आदेश से बहन सुभद्रा द्वार-रक्षा कर रही थीं। माँ रोहिणी के आदेश से अन्त:पुर में प्रवेश न कर सकने के कारण हम द्वार पर खड़े वृन्दावन-लीला-कथा श्रवण कर रहे थे। तब भाव-तरंग के कारण हमारी ऐसी अवस्था हो गयी।

यह सुन नारद प्रेमानन्द में विभोर हो वृन्दावन-लीला और व्रजवासियों को धन्यवाद देने लगे। भगवान् ने प्रसन्न हो नारद से कहा, "नारद! आज बड़े आनन्द का दिन है। इसलिए तुम मनचाहे वर की प्रार्थना कर सकते हो।"

नारद—प्रभो! यदि इस दास के प्रति कृपाकर वर प्रदान करने की अभिलाषा है, तो यह वर प्रदान कीजिये कि प्रेम से विगलित यह रसमय चतुर्धा मूर्ति जगत् में प्रकाशित हो और वृन्दावन-लीला-विलास, भाव और प्रेम की सर्वोत्कर्षता का आपामर साधारण जीवों में प्रचार हो।

भगवान्—तथास्तु! पहले ही महामाया की तपस्या से प्रसन्न हो मैंने सर्वसाधारण में महाप्रसाद वितरण करने का वचन दे रखा है और राजा इन्द्रद्युम्न की साधना के कारण नीलाद्रि में प्रकट होने की बात भी मैंने स्वीकार कर ली है। इसलिए मैं तुम तीनों की प्रार्थना पूर्ण करने के लिए समुद्र के उपकूलवर्ती नीलगिरि पर दारुब्रह्म के रूप में अवतीर्ण होऊँगा।

वही प्रेममय चतुर्धा मूर्ति पुरीधाम में जगन्नाथ, बलराम, सुभद्रा और सुदर्शन रूप में वर्तमान हैं।

श्रीयुत बाबाजी महाशय के मुख से यह सुन्दर मनोमुग्धकारी विवरण श्रवणकर सबको बड़ा आनन्द हुआ। आहारादि के पश्चात् श्रीयुत् बाबाजी महाशय और उनके साथियों ने विश्राम किया। मैं उस रात उनके पास ही रहा। दूसरे दिन प्रभात में बाबाजी महाशय

अपनी मण्डली के साथ बैठे थे। मैं उनके आहारादि की व्यवस्था में कुछ व्यस्त था। किन्तु बीच-बीच में अवसर पाकर उनके निकट बैठ जाता था। धीरे-धीरे बहुत-से लोग आने लगे। बाबाजी महाशय सबके साथ समभाव रख आनन्दपूर्वक हँस-हँसकर बात कर रहे थे। किसी के कुछ तत्व-सम्बन्धी प्रश्न करने पर बड़ी सरल भाषा में उसका उत्तर देते थे। किसी के साथ कोई विषय लेकर तर्क करना जैसे उनके स्वभाव के विरुद्ध था। कोई कुछ भी कहता उन्हें विरक्ति तो होती ही नहीं थी। मानो सन्तोष की साक्षात् मूर्ति थे। एक सज्जन ने पूछा, "महाशय! भगवान् को किस प्रकार पाया जा सकता है?"

बाबाजी—भगवान् को चाहने से ही उनकी प्राप्ति होती है।

सज्जन—क्या केवल चाहने मात्र से भगवान् मिल सकते हैं?

बाबाजी—अवश्य मिल सकते हैं। भगवान् स्वयं हमारे बनने के लिए व्याकुल रहते हैं। परन्तु हम वास्तव में उन्हें चाहते हैं।

सज्जन—आपके कहने का अर्थ है कि हम भगवान् को नहीं चाहते?

बाबाजी—नहीं। मेरा आशय है कि हम वास्तविक रूप से भगवान् को नहीं चाहते। संसार के सामान्य अर्थ के लिए हम जितना कष्ट उठाते हैं, अपने पुत्र-कन्यादि की किसी प्रकार की व्याधि को दूर करने के लिए जितना परिश्रम करते हैं, एक-एक वासना की तृप्ति के लिए जितनी चित्त की एकाग्रता और कष्ट-सहिष्णुता का परिचय देते हैं, भगवत्-प्राप्ति के लिए उसकी सहस्रांश भी एकाग्रता और व्याकुलता हमारे अन्दर है क्या? हम सब अपने-अपने सुख के लिए लालायित रहते हैं। यदि किसी अंश में भगवान् को चाहते भी हैं तो वह भी अपने सुख के लिए।

सज्जन—मानव जीवन की प्राप्ति का विषय क्या सुख के अतिरिक्त कुछ और हो सकता है?

बाबाजी—मानव जीवन की प्राप्ति का विषय है आनन्द, सुख नहीं।

सज्जन—आनन्द और सुख में पार्थक्य क्या है?

बाबाजी—सुख मायाकल्पित है, आनन्द नित्य और सत्य है। सुख अपने लिए और आनन्द दूसरों के लिए व्याकुल रहता है। आनन्द अपने आपको दूसरों पर न्यौछावर कर देना चाहता है। सुख प्रभु बनना चाहता है, आनन्द दासानुदास बनने के लिए लालायित रहता है। सुख को सदा कुछ खो देने का भय रहता है, आनन्द अपना सर्वस्व भी अकुंठित भाव से वितरण कर तृप्ति लाभ करता है। सुख धूल और मिट्टी से सदा संकुचित होता है, बाधा विघ्नों से अपनी रक्षा करने के लिए अतिव्यस्त रहता है, आनन्द धूल में लोट-पोटकर, संसार की सभी बाधाओं और विपत्तियों को चूर्ण-विचूर्ण कर आनन्द में परिणत करता है। सुख सुधा के लिए लालायित रहता है, आनन्द दु:खरूपी विष कण्ठ में धारण कर सदा शिव की भाँति आनन्द में निमग्न रहता है। सारांश यह है कि सुख स्वार्थपर है, और आनन्द नि:स्वार्थ।

सज्जन—आनन्द प्राप्त करने का उपाय क्या है?

बाबाजी—भगवन्नाम संकीर्तन ही आनन्द और भगवत्-प्राप्ति का उपाय है। यह मेरा अपना मत नहीं है। सनातन आर्य शास्त्रों ने उच्च कण्ठ से यही घोषणा की है—

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्।।

इत्यादि। (भा. 12/3/52)

सज्जन—किसी-किसी शास्त्र में अवश्य ऐसा लिखा है, किन्तु शास्त्र अनन्त हैं और पथ और भी अनन्त हैं। नामसंकीर्तन भी उनमें एक पथ हो सकता है।

बाबाजी—ऐसी बात नहीं। शास्त्रों में स्पष्ट कहा है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।

(वृहन्नारदीय 38/126)

सज्जन—आपका आशय है कलिकाल में याग, यज्ञ, योग, तपस्यादि का कुछ भी फल नहीं होता?

बाबाजी—मेरा ही आशय नहीं, आर्यशास्त्र सभी स्पष्ट अक्षरों में यही कहते हैं। जैसे—

ध्यानाद् दानात् जपात् योगाद् यत्फलं भुवि विश्रुतं।
कीर्तनादेव कृष्णस्य तत् फलं जायते ध्रुवम्।।

देखिये, पथ कोई भी हेय नहीं। सरल अन्तःकरण और व्याकुल भाव से चाहे जिस पथ का अवलम्बन किया जाय उसी से मनोरथ-सिद्धि होती है। सरलता और व्याकुलता की ही विशेष रूप से आवश्यकता है। हमें यह भी देखना चाहिये कि पूर्वाचार्यों ने जो नाम-संकीर्तन की व्यवस्था की है वह देश-काल-पात्र के हिसाब से ठीक है या नहीं। योगादि के लिए जैसी दीर्घायु होनी चाहिये, वैसी आजकल नहीं होती। इसके अतिरिक्त योगादि के कठोर नियम संयमादि का पालन करने के लिए जैसे शरीर की आवश्यकता होती है, वैसा शरीर भी हम लोगों का नहीं, क्योंकि कलिहत दुर्बलजीव अन्न के सहारे जीवित रहता है। देश की अवस्था भी याग-यज्ञादि के प्रतिकूल ही है। काल के प्रभाव से यज्ञीय द्रव्य, याज्ञिक ब्राह्मण और विशुद्ध मन्त्रादिकों का नितान्त अभाव है। देशवासी सब स्वार्थपरायण, मोहान्ध, कामासक्त और पापोन्मुख हो रहे हैं। आजकल की उच्च शिक्षा का फल नास्तिकता ही दीख रही है। ऐसी अवस्था में ध्यान, यज्ञ परिचर्यादि कहाँ तक हमारे अनुकूल होंगे, सहज ही समझ सकते हैं। हमारे त्रिकालज्ञ और परहितरत महर्षियों ने ऐसी अवस्था में हमारे कल्याण के लिए नामकीर्तनरूपी महौषधि की व्यवस्था की है। इस महौषधि को हम भूल न जायें इसलिए वैद्यरूपी श्रीकृष्णचन्द्र ने श्रीधाम नवद्वीप में श्रीगौरांगरूप में अवतीर्ण हो स्वयं इसका याजन कर हमें रोगमुक्ति का मार्ग दिखलाया है। हम यदि ठीक-ठीक विचार कर देखें तो हमारा जीवरूप से अपना परिचय देना ही भूल है, क्योंकि जीव नित्य कृष्णदास है, यह विश्वास और अनुभूति जब तक नहीं है, तब तक वास्तव में हम जीव भी नहीं। वास्तव में हमें यह विश्वास और अनुभूति नहीं है। हमारी यह घोर दुरवस्था देख परम दयालु निताइचाँद ने (कहते-कहते चक्षु आरक्तिम और सर्वांग कंटकित हो गया) जीवों के द्वार पर जा-जाकर रोते-पिटते हुए भी विनय और आग्रहपूर्वक हाथ-पैर जोड़कर उन्हें हरिनाम महौषधि दी है। परन्तु हम इतने विकारग्रस्त हैं कि कभी भूल से भी उस औषधि का सेवन करना नहीं चाहते और न ऐसे परम दयालु अयाचित-कृपाकारी वैद्य के निकट कृतज्ञता ही स्वीकार करना चाहते हैं। धिक्कार है हमारे जीवन को! और क्या कहूँ, हम हैं घोर पापासक्त अधर्मपरायण कामना-वासना-किंकर, दुर्बल, कलिहत जीव! एकमात्र हरिनाम ही है हमारे परित्राण का उपाय।

सज्जन—आप यदि विरक्त न हों तो एक प्रश्न करूँ?

बाबाजी—स्वच्छन्द होकर पूछिये। मेरे विरक्त होने का कोई कारण नहीं। मेरा परम सौभाग्य है कि आज आप लोग मुझसे भगवत् आलाप कर रहे हैं।

सज्जन—एकमात्र हरिनाम संकीर्तन ही यदि उद्धार का पथ है तो शास्त्रोक्त अनन्त मत और विभिन्न सम्प्रदायों की नाना देव-देवियों की उपासना का कोई प्रयोजन ही नहीं रहता और ऋषियों की बनायी हुई सभी विधियाँ निरर्थक और निर्मूल हो जाती हैं।

बाबाजी—क्यों, आपकी यह धारणा कैसे हुई?

सज्जन—आपने ही तो कहा, 'हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्। कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।' यदि यही बात है तो शास्त्रानुमोदित सौर, शाक्त, शैव, गाणपत्य प्रभृति विभिन्न उपासनाओं का क्या प्रयोजन है? आपकी बात से तो यही जान पड़ता है कि आपका बताया पथ ही प्रकृत पथ है और अन्यान्य देव-देवियों की उपासना की कोई आवश्यकता नहीं है। क्या सनातन हिन्दू शास्त्रों का भी यही अभिमत है?

बाबाजी—नहीं, मैंने ऐसा तो नहीं कहा। सनातन हिन्दू शास्त्रों का ये अभिमत कभी नहीं है। देखिये, वृक्ष में लाखों पत्ते होते हैं, किन्तु दो पत्ते भी एक प्रकार के नहीं होते। जगत् में कोटि-कोटि मनुष्य हैं, पर कोई दो मनुष्य आकृति में बिल्कुल एक-से नहीं हैं। पर जिस प्रकार विश्व में एक ओर वैचित्र्यमय पार्थक्य है, उसी प्रकार दूसरी ओर सामञ्जस्य भी है। जिस नियम के कारण वृक्ष के पत्ते झड़कर पृथ्वी पर गिरते हैं, उसी

नियम के आधीन रह कर चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र इत्यादि चक्कर लगाते हैं। जिस मानव जाति के लोग अपने-अपने स्वरूप, स्वभाव, भाव इच्छा और अहंकार के वशीभूत हो विभिन्न पथों पर संसार में विचरण करते हैं, उसी मानव जाति के सभी विभिन्न पथ-गामी लोग एक ही स्थान पर जाना चाहते हैं, क्योंकि सभी का एकमात्र लक्ष्य है आनन्द। इसलिए इस जगत् में एक ही ईश्वर की एक ही शक्ति के दो प्रकार के खेल दीख पड़ते हैं। एक है आकर्षण दूसरा विकर्षण; एक है केन्द्रानुग दूसरा केन्द्रातीत, अर्थात् एक खींचना, दूसरा छोड़ना; एक का धर्म है अनन्त वैचित्र्य का विकास, दूसरे का धर्म है अनन्त वैचित्र्य के उद्दाम उल्लास को एक परिपूर्ण सामंजस्य में मिला देना। इसलिए यदि इस विश्व के समस्त विषयों की आमूल पर्यालोचना की जाय तो वैचित्र्य में ऐक्य और द्वैत में अद्वैत अर्थात् अपूर्व मिलन दीख पड़ेगा, यही है प्रकृति का नियम। एक से अनेक होकर लीला करना ही लीलामय का लीला-माधुर्य है। जिस शास्त्र या धर्म में इस नियम का व्यतिक्रम है, वह शास्त्र या धर्म यथार्थ नहीं हो सकता। हमारे सनातन आर्यशास्त्र या आर्य-धर्म में कहीं भी इसका व्यतिक्रम देखने में नहीं आता। इसलिए वह यथार्थ है। हमारा सनातन आर्य-धर्म, प्रकृत सत्यधर्म, मानव की पूर्णतम परिणति का एकमात्र उपाय और अन्यान्य धर्मों में सर्वोत्कृष्ट इसलिए है कि यह वैचित्र्य में, नानात्व में एकत्व की उपलब्धि कराता है— पूर्ण सामंजस्य स्थापित करता है। इसमें अनेक सम्प्रदाय होते हुए भी सबका उद्देश्य एक ही है— सच्चिदानन्द गोविन्द की उपलब्धि। शास्त्रों ने जो नाम संकीर्तन को ही कलिकाल में जीवों के कल्याण का एकमात्र उपाय बतलाया है, उससे हमें समझना चाहिये कि वह कोई निर्दिष्ट साम्प्रदायिक नाम नहीं है। जिस प्रकार शास्त्रों ने सत्यगुण का एकमात्र धर्म ध्यान बतलाया है, पर ध्यान से किसी एक रूप के ध्यान का तात्पर्य नहीं है और सत्ययुग के महर्षिवृन्द एक ही रूप का ध्यान न कर शत-शत विभिन्न देवताओं का ध्यान करते थे, और जिस प्रकार त्रेता का एकमात्र धर्म यज्ञ होने पर भी शास्त्रों में अनेकों प्रकार के यज्ञों की प्रथा देखने में आती है, उसी प्रकार कलिकाल का एकमात्र धर्म नाम-संकीर्तन होते हुए भी किसी विशिष्ट सम्प्रदाय के नाम से नाम संकीर्तन का सम्बन्ध नहीं है। शास्त्रों का तात्पर्य केवल इतना ही है कि कलियुग की अवस्थानुरूप व्यवस्था नाम संकीर्तन ही है, ध्यान, योग, यज्ञादि नहीं। रूप-रस-गन्ध-शब्द-स्पर्श की आकर स्वरूप सच्चिदानन्दमय पूर्ण पूर्णतम वस्तु को जीव अपनी-अपनी रुचि के अनुसार अनन्त पथों द्वारा प्राप्त करते, अनन्त मतों द्वारा जानते, अनन्त रूपों में अनुभव करते और अनन्त रूप-रस-गन्ध-शब्द-स्पर्श द्वारा आस्वादन करते हैं—यही यथार्थ तत्व है। यदि हम कहें कि अनन्त को एक ही पथ से प्राप्त किया जा सकता है, या एक ही प्रकार से उसका अनुभव किया जा सकता है, तो यह कदापि प्रकृत पथ नहीं कहा जा सकता।

सज्जन—आपने कहा 'हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्। कलौ नास्त्येव, नास्त्येव, नास्त्येव गतिरन्यथा' अर्थात् कलिकाल में हरिनाम ही एकमात्र उपाय है। किन्तु 'हरि' कोई सार्वजनीन नाम तो है नहीं। यह तो वैष्णव धर्मावलम्बी किसी निर्दिष्ट सम्प्रदाय के लोगों के मत की ही बात मालूम होती है। हरिनाम द्वारा सब धर्म और सम्प्रदायों की बात कैसे सिद्ध हुई, यह मेरी समझ में नहीं आया।

बाबाजी—'ह्रि' धातु का अर्थ है हरन करना, इसलिए 'हरि' शब्द-वाच्य वे हैं जो चित्त-मन-प्राण का हरण करते हैं। वे काली रूप में शाक्तों का चित्त हरण करते हैं, इसलिए शाक्त 'हरि' शब्द से काली समझें। इसी तरह शैव 'हरि' से 'शिव', सौरगण सूर्य और गाणपत्य गणपति समझें। सारांश यह है कि जो जिसके उपासक हैं उन्हें उसी के नाम का कीर्तन करने से अभीष्ट फल की प्राप्ति होगी।

सज्जन—अच्छा, यदि कोई प्राकृत वस्तु किसी का चित्त हरण करे तो क्या उसे भी 'हरि' कहना होगा? बाबाजी—रूप-रस-गन्ध-शब्द-स्पर्श ही चित्त हरण करने के मूल कारण हैं। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि भगवान् श्रीहरि ही रूप-रस-गन्ध-शब्द-स्पर्श के आकर स्वरूप हैं। इसलिए पाञ्चभौतिक जिस किसी भी वस्तु से मन हरण हो, हमें उसे श्रीहरि का ही

कार्य समझना चाहिये। इसलिए शास्त्रकारों ने कहा है कि दृश्यादृश्य सभी वस्तुएँ भगवान् श्रीहरि में ही पर्यवसित हैं।

सज्जन—बात ठीक से समझ में नहीं आयी।

बाबाजी—हम हैं अनादि बहिर्मुख कलिहत जीव। हमारे नाम और बुद्धि सदा अविद्या और अज्ञान से आवृत हैं। जब तक अविद्या अज्ञान का आवरण नहीं हट जाता, भगवदुपलब्धि व भावादि का विकास होना असम्भव है। इसलिए हमें सबसे पहले अविद्या और अज्ञान को दूर करना चाहिये। इसके लिए हमें विद्या और ज्ञान की आवश्यकता है। इस विद्या का ही दूसरा नाम भाषा है। भाषा ही वस्तु प्रकाशक है। यदि भाषा न होती तो हमें मूक रहना पड़ता और हृदय के सुख-दु:ख, आनन्द-उल्लास, प्रेम-भक्ति प्रभृति का आदान-प्रदान कुछ भी न हो सकता, अर्थात् मानव का मानवत्व ही न रह सकता। विचार कर देखिये, उपनिषदादि द्वारा हमें प्राचीनतम महर्षियों के हृदय, भाव और उनकी उपलब्धियाँ जो आज भी प्राप्त हैं उसका मूल भाषा ही तो है। शास्त्रकथित समस्त अवतारों के नित्यत्व में हमारे विश्वास का कारण भी भाषा ही तो है। भाषा से ही तो हमें सच्चिदानन्द परब्रह्म के नित्यत्व की उपलब्धि होती है। भाषा मूल शब्द है, और शब्द का आश्रय व उत्पत्ति स्थान हैं श्रीहरि। सृष्टि के आदि में श्रीहरि ने 'तप: तप:' इन दो शब्दों द्वारा ब्रह्मा को आदेश किया था। यही शब्द की प्रथम सृष्टि है। अन्य प्रकार से अर्थात् अनुलोम-विलोम भाव से जगत् की जितनी भी वस्तुएँ हैं, वे एकमात्र हरि में ही पर्यवसित हैं, क्योंकि पहले था आकाश, आकाश के गुण शब्द के कम्पन से वायु की सृष्टि हुई, वायु के परस्पर घर्षण व घात प्रतिघात से अग्नि की, इन तीनों के संमिश्रण से जल और जल समेत चारों भूतों के संमिश्रण से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई और इन्हीं पंचभूतों से क्रमश: सारे जगत् की सृष्टि हुई। विलोम अर्थात् विपरीत भाव से भी देखिये कि जीव के नाश होने पर पंचभूत, पंचभूतों के नाश होने पर पंच तन्मात्रा, तन्मात्राओं के नाश होने पर तत्व, तत्व के नाश होने पर प्रकृति और प्रकृति के भी नाश होने पर एकमात्र श्रीहरि में ही पर्यवसान होता है। अतएव हरेर्नाम श्लोक में कलि में एक मात्र जिस हरिनाम की महिमा कही गयी है उसका तात्पर्य परमपुरुष गोविन्द से होते हुए भी शिव, दुर्गा, काली आदि सभी देवता उसमें सम्मिलित हैं; क्योंकि शास्त्र में कहा है—

तस्मिन् तुष्टे जगत् तुष्टं प्रीणिते प्रीणितं जगत्।

सज्जन—यदि आप रुष्ट न हों तो एक और प्रश्न करूँ?

बाबाजी—मैं तो पहले ही कह चुका हूँ कि मुझसे कोई भी प्रश्न पूछने में संकोच न करें। मेरे लिए तो यह बड़े आनन्द की बात है।

सज्जन—नाम के सम्बन्ध में आपने जो कुछ कहा वह सभी शास्त्रसम्मत है, किन्तु मैं दुर्भाग्यवश अब भी कुछ ठीक से समझ न सका। मैं नाम का अर्थ नहीं जानना चाहता, जानना यह चाहता हूँ कि क्या केवल मुख से शब्द उच्चारण करने से ही नाम हो जाता है और क्या इतने से ही परम पद की प्राप्ति हो जाती है? स्पष्ट शब्दों में मेरे मन की शंका तो यह है कि आजकल श्रीमन्महाप्रभु के मतावलम्बीगण उच्च कण्ठ से नाम लेने की महिमा का प्रचार करते हैं। उनका भाव यही होता है कि केवल मुख से नाम लेने से ही परमपद लाभ होता है। यदि यह बात सत्य है तो जिन लोगों ने गौड़ीय-वैष्णव धर्म का आश्रय लिया है, उनमें इतना पतन क्यों हो रहा है? श्रीमन्महाप्रभु को अप्रकट हुए चार सौ से* कुछ अधिक वर्ष हुए हैं। इतने थोड़े से समय में ही इस मत का जितना पतन हुआ है उतना शायद और किसी भी मत का नहीं हुआ। हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि गौड़ीय-वैष्णव केवल जीविका कमाने के लिए हरिनाम करते घूमते हैं। यदि उनके आचार व्यवहार की ओर लक्ष्य करें तो देखेंगे कि घोर नास्तिक कुतर्क-निष्ठ पाखण्डी भी जिन पाप कर्मों को करने में संकोच करता है, उन कर्मों को करने में उनकी आत्मा तनिक भी कुण्ठित नहीं होती। इसका कारण क्या है? मैं नाम के प्रति कटाक्ष नहीं कर रहा। मेरा दु:खित हृदय आपसे यह प्रश्न पूछने को बाध्य है।

---

* अब 500 से कुछ अधिक वर्ष हो गये।

बाबाजी—आपके प्रति महाप्रभु की बड़ी कृपा है। तभी आपके हृदय में यह वेदना हुई है। मैं समझता हूँ कि आपके मन का भाव इस प्रकार है—शास्त्र कहते हैं कि भगवन्नाम ही परमपद प्राप्त करने का एकमात्र उपाय है। इस नामजप का क्या अर्थ है? एक पक्षी मुख से 'कृष्ण कृष्ण' कहता है अर्थात् जड़ यन्त्र की भाँति केवल कृष्ण नाम उच्चारण करता है। इससे क्या उसको परमपद की प्राप्ति हो जायगी? वस्तु का लक्ष्य नहीं, प्राण में आकांक्षा नहीं, हृदय में उपलब्धि नहीं, मन में धारणा नहीं—इस प्रकार के प्राणहीन, मनहीन, हृदयहीन, ज्ञानहीन व्यक्ति का केवल मात्र शब्द उच्चारण ही क्या साधन है?

सज्जन—जी हाँ, मेरे प्रश्न का ठीक यही उद्देश्य है।

बाबाजी—इस प्रश्न के उत्तर में और क्या कहूँ? शास्त्रकारों ने कहा है—

सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः।।

(भा. 6/2/14)

अर्थात् चाहे संकेत से हो, परिहास से हो, उपदेश के छल से हो या खिलवाड़ से, एक बार नाम उच्चारण करने मात्र से जीव बहुत जन्मों के पापों से मुक्त होकर सद्गति लाभ करता है, जैसे, महापापी यवन मृत्यु के समय विभीषिका देख 'हाराम हाराम' (शूकर) शब्द उच्चारण करने से और अजामिल डाकू मृत्यु के समय 'नारायण' नामक पुत्र को पुकारने से विष्णुलोक को पहुँच गये थे। यदि कहो कि नाम-परायण व्यक्तियों का कुत्सित आचरण क्यों होता है, तो इसका कारण केवल नामापराध है। नाम का अवलम्बन लेकर जीविका निर्वाह करना या नाम की शक्ति के बल पर पाप-कार्य करना घोर अपराध है। अप्राकृत, चिन्मय, नित्य और अमूल्य नाम के बदले सामान्य अर्थ ग्रहण करने से अधिक बड़ा और क्या अपराध हो सकता है? श्रीमन्महाप्रभु ने निताइचाँद को बिन माँगे घर-घर जाकर नामरूपी अमृत लुटाने का आदेश किया था। आजकल जो लोग नाना प्रकार से इन्द्रियवृत्ति चरितार्थ करने के उद्देश्य से और लोकनिन्दा व समाज-शासन के भय से साधुवेश बनाकर तीर्थ स्थानों में रहते हैं, अथवा अर्थलाभ और प्रतिष्ठा की आशा से महात्मा का वेश लेकर देश-विदेश में लोक-प्रवञ्चना द्वारा महाजनों के पथ पर कलंक लगाया करते हैं, क्या उनके साथ आप धर्मपिपासु, अनुरागी, भगवन्निष्ठ वैष्णवों की तुलना करना चाहते हैं?

सज्जन—आजकल ऐसे ही लोगों की संख्या अधिक होने के कारण प्रकृत वैष्णव को खोज निकालना बड़ा कठिन हो गया है। आपकी सुन्दर मीमांसा से मेरे मन का सन्देह और हृदय की व्यथा बहुत कुछ दूर हो गयी है। मैंने आपको बहुत कष्ट दिया। कृपा कर मेरा अपराध क्षमा करें।

बाबाजी—परम दयालु निताइचाँद की कृपा से आज आपके साथ नाना रूप भगवत्-कथा आलोचना कर मुझे बहुत आनन्द हुआ।

इस प्रकार बाबाजी महाशय सबके चित्त का संशय और हृदय का ताप मिटा परम शान्ति संस्थापन करने लगे। मेरे अपने मन की अवस्था न जाने किस प्रकार की हो रही थी। मन और प्राण कह रहे थे कि अपने-जैसे कुसंस्कार-मेघाच्छन्न महामोहान्धकार में डूबे पतित और अभिमानी बाबू लोगों को लाकर इस भिखारी वैरागी के निकट उपस्थित कर दूँ।

समय अधिक होते देख मैंने कहा, "बाबाजी महाशय! अब समय बहुत हो गया है। स्नानादि के पश्चात् प्रसाद ग्रहण कर कथा-वार्ता करें तो अच्छा हो।" यह सुन बाबाजी महाशय ठीक बालक के समान स्नान करने चल दिये। मैं उनका मधुर व्यवहार देख-देख उनकी ओर उत्तरोत्तर आकृष्ट होता जा रहा था। स्नानादि के पश्चात् सबने प्रसाद ग्रहण कर विश्राम किया। मैं भी वैष्णव अधरामृत पानकर विश्राम करने चला गया।

अपराह्न कोई चार बजे एक और संकीर्तनदल हमारे मकान पर आ पहुँचा। उस दल में दस बारह लोग थे। उनके बीच में एक बीस-बाइस वर्ष का युवक मूल गान कर रहा था। युवक का कण्ठ-स्वर बड़ा मधुर था। हम सब बाहर आये और मन्त्र-मुग्ध-से होकर उसकी ओर देखने लगे। जैसा उसका स्वर था,

वैसे ही सुन्दर बोल भी। प्रत्येक अक्षर के साथ न जाने कितनी सुधा टपकती थी। कुछ समय कीर्तन हो चुकने पर बाबाजी महाशय युवक को आलिंगन कर अश्रु विसर्जन करने लगे। पहले तो मैं विचारने लगा कि यह कैसा व्यापार है? इसमें माया की अभिव्यक्ति है या प्रेम की, सुख की या दुःख की, स्वार्थ की या परमार्थ की? थोड़ी ही देर में मेरा यह संशय मिट गया। मैं समझ गया कि यह रोना प्रेम का है। जैसे-जैसे रोदन अधिक होता गया सुख की मात्रा भी अधिक होती गयी। बाबाजी महाशय एकदम बोल उठे, "राम! इस बार मेरे साथ पुरी चलना होगा।" तब हम लोग समझे कि बालक का नाम 'राम' है। बाबाजी महाशय ने फिर पूछा, "यहाँ कहाँ ठहरे हो?"

राम ने एक सज्जन को लक्ष्य कर कहा—"रामबाग में इनके घर ठहरा हूँ। उस मुहल्ले के सभी लोग बड़े कीर्तन-प्रेमी हैं और कीर्तन में प्रेम से सहयोग करते हैं। इसलिए मुझे वहाँ बड़ा अच्छा लगता है।"

इतना कह दण्डवत प्रणाम कर राम ने वहाँ से प्रस्थान किया। अब से नित्य वह हमारे घर आने लगा। हम भी उसके मधुर व्यवहार के कारण उसकी ओर आकृष्ट होने लगे। बाबाजी महाशय का उसके प्रति भ्रातृभाव रहता था। मेरे बड़े भाई कुञ्ज बाबू विशेष रूप से रामदास से प्रेम करने लगे। इन्हीं दिनों अनेक लोगों ने बाबाजी महाशय से मन्त्र ग्रहण किया। मैंने भी अपने बड़े भाई की अनुमति से बाबाजी महाशय से मन्त्र लिया।

इसी प्रकार कई दिन बीते। एक दिन प्रातःकाल उठते ही बाबाजी महाशय ने कहा, "देख कुञ्ज! मेरी इच्छा है कि कुछ समय के लिए गंगा किनारे किसी स्थान पर जाकर रहूँ।" यह सुन मेरे मामा बाबू वटकृष्ण मल्लिक महाशय बोले, "यदि कृपाकर मुझे आदेश करें तो सबको गंगा किनारे अपने बगीचे में ले चलूँ।" हम सभी ने उस स्थान को बहुत सुन्दर और बाबाजी महाशय के लिए उपयुक्त समझ कर इस प्रस्ताव का समर्थन किया। शीघ्र ही बाबाजी महाशय को गाड़ी कर वहाँ ले जाया गया। स्थान बहुत निर्जन और मनोरम था। बाबाजी महाशय मनोमत स्थान पाकर परमानन्द के साथ नाम-कीर्तन कर श्रोताओं का चित्तरञ्जन करने लगे। मेरे बड़े भाई सदा ही बाबाजी महाशय के साथ रहते। अन्यान्य अनेक सज्जन नाम मात्र के लिए अपने-अपने कार्य पर जाते और अवकाश पाते ही बाबाजी महाशय के पास आ जाते। रामदास भी बाबाजी महाशय के साथ ही थे। मानों वे बाबाजी महाशय का दाहिना हाथ थे। कभी-कभी वे आदर के साथ कहते, "राम! थोड़ा नाम तो सुनाओ भाई।" राम दादा की आज्ञा पाते ही प्रेमानन्द-गद्गद हो भाव भरे कण्ठ से कीर्तन कर सबके प्राणों में सुख का संचार करते।

सालिखा में कीर्तन

इस प्रकार कई दिन व्यतीत हुए। एक दिन बाबाजी महाशय ने दासगदाधर की पीठस्थली दर्शन करने के लिए एंडेदह जाने का विचार प्रकट किया। यह सुन एक सज्जन बोले, "आज सालिखा में कीर्तन करने की बात है, इसलिए पीठस्थली दर्शन कर वहाँ से सीधे सालिखा जाने में सुविधा होगी।" बाबाजी महाराज ने अपनी स्वीकृति प्रदान की। यथासमय सब लोग एंडेदह की ओर चल दिये। कुछ देर में पीठस्थली पहुँच कर संकीर्तन प्रारम्भ किया। सभी प्रेमानन्द में विभोर थे। बाबाजी महाशय दासगदाधर से नित्यानन्द प्रभु का मिलन और अन्यान्य लीलाओं का पदों में कीर्तन करने लगे। आनन्द की अवधि न रही। सब देह-स्मृति खो बैठे। दासगदाधर के गोपीभाव में नृत्य सम्बन्धी पद-कीर्तन कर बाबाजी महाशय बीच-बीच में अपूर्व नृत्य करने लगे। एंडेदहवासी आबाल-वृद्ध-वनिता सभी बाबाजी महाशय के नानाविध सात्विक भावों से विभूषित कलेवर के दर्शन कर एवं मन प्राण हरलेने वाला कीर्तन सुन परस्पर कहने लगे, "हमने कभी न ऐसा कीर्तन सुना और न इस प्रकार का प्रेम विकार देखा। लगता है मानो प्रेम की मूर्ति राधा-भावाविष्ट दासगदाधर फिर से प्रकट हुए हों।" बाबाजी महाशय का भाव देख और उनका कीर्तन सुन भावुक भक्तगण मानो दासगदाधर के साथ निताइचाँद की लीला का प्रत्यक्ष दर्शन करने लगे।

बहुत समय तक इसी प्रकार कीर्तन-नर्तन द्वारा जन साधारण को मोहित कर बाबाजी महाशय सालिखा की ओर चल दिये। एंडेदह निवासी अनेक भक्त भी उनके पीछे-पीछे जाने लगे। जाते-जाते भक्तों को लक्ष्यकर कहने लगे, "मंगलमय परम-कारुणिक भगवान् जिस समय जो करते हैं वह हमारे मंगल के लिए ही होता है। आज महामारी प्लेग के उपलक्ष में भगवान् को धन्यवाद दें या दोष? उन्हें पक्षपाती कहें या निरपेक्ष? मंगलमय कहें या अमंगलमय? दयामय कहें या निर्दय? हम हैं कलिहत क्षुद्र जीव। सुख-दुःख यह दो चीजें लेकर ही है हमारा सारा व्यवहार। इनमें एक है परमानन्द, दूसरा घोर निरानन्द, एक ज्योतिर्मण्डल, दूसरा निविड़ अन्धकार। किन्तु भगवान् इन दोनों से अतीत हैं। वे निरवच्छिन्न सुखस्वरूप सच्चिदानन्द-विग्रह, रसमयतनु, परमदयालु और प्रेमदाता हैं।"

भक्तगण-प्रभु आपने पहले कहा कि भगवान् सुख-दुःख से परे हैं और फिर यह कि वे सुख के स्वरूप हैं। यह दोनों बातें एक साथ कैसे सम्भव हो सकती हैं?

बाबाजी—भगवान् सुखस्वरूप हैं यह सत्य है। पर हम जिसे सुख या आनन्द कहते हैं भगवान् उससे अतीत हैं, क्योंकि हमें पुत्र के जन्म से सुख और मृत्यु से दुःख, धन की प्राप्ति में सुख और हानि में दुःख, बन्धुगण के समागम में सुख और वियोग में दुःख होता है। यह दोनों ही अकिंचितकर और क्षणिक हैं। हमारी चेष्टा अज्ञ बालक और सन्निपात विकार-ग्रस्त रोगी के समान है। बालक शरीर में धूल लपेट कर सुखी होता है, साँप को खेल की सामग्री समझ उसके पीछे भागता और आनन्दित होता है। हम भी ईर्ष्या, द्वेष, हिंसा इत्यादि मैल-मिट्टी शरीर में लपेटकर सुख का बोध करते हैं और रमणीरूपी सर्पिनी को आनन्द की पुतली समझ उसके पीछे धावित होते हैं। जिस प्रकार माँ के बालक की धूल झाड़ कर गोदी लेने पर बालक उसे शत्रु समझकर रोते-रोते अस्थिर हो जाता है, और क्रीड़ा-कौतुक हेतु सर्प के पश्चात् भागने वाला बालक किसी व्यक्ति के मना करने पर उसे अपने सुख का बाधक समझ उसकी आँखों से ओझल रहने की चेष्टा करता है, हम भी उसी प्रकार ईर्ष्या, द्वेष, हिंसा और परनिन्दा प्रभृति मलिनता-दूरकारी गुरु-वैष्णवों के उपदेश दुःखकर समझ उनकी आँखों से ओझल रहने की चेष्टा करते हैं; काम, क्रोध भोगादि को अनिष्टकारी बताने वाले शास्त्रों और सन्तों को अपना वैरी समझ उनसे दूर रहने की चेष्टा करते हैं। जैसे विकारग्रस्त रोगी के जल माँगने पर भी आत्मीयगणों के जल न देने से वह उन्हें निष्ठुर और मूर्ख समझने लगता है, उसी प्रकार हम भी अपना भला-बुरा न समझ भगवान् से जो चाहते वही माँग लेते हैं और उनके न देने से वांक्षाकल्पतरु नाम को झूठा समझते और उन पर पक्षपात का दोष आरोपित करते हैं। आज यदि यह महामारी न होती तो कलकत्ते में क्या इस प्रकार के भुवन-मंगल नाम-कीर्तन का विराट् आयोजन सम्भव हो सकता? इस सालिखा स्थान को तो तुमने पहले भी देखा है और आज भी देख रहे हो। कैसा मनोहर लग रहा है। हर रास्ते के दोनों ओर नाना प्रकार के झण्डे फहरा रहे हैं। हजारों केले के खम्भे लग रहे हैं। दरवाजे पर सजावट हो रही है। संकीर्तनकारी भक्तों की थकावट दूर करने के लिए जगह-जगह डाब (कच्चा नारियल), बरफ, गुलाब जल आदि की व्यवस्था है। जिन लोगों ने इस महाविपद के समय और किसी प्रकार का प्रयत्न या अनुष्ठान न कर इस भुवनमंगल नाम-संकीर्तन का आयोजन किया है, उन्हें मैं हृदय से शत-शतबार धन्यवाद देता हूँ। आज इस आनन्दमय व्यापार को देख मुझे कुन्तीदेवी की प्रार्थना याद आती है—

विपदः सन्तु ताः शश्वत् तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत् स्यादपुनर्भवदर्शनम्।।

(भा. 1/8/25)

इसी प्रकार नानाविध कथोपकथन करते हुए निर्दिष्ट स्थान पर उपस्थित हो संकीर्तन प्रारम्भ किया। चारों ओर के लोगों का जमघट होने लगा। संकीर्तन के अनेक दल जगह-जगह से आकर बाबाजी महाशय के साथ कीर्तन में सम्मिलित हुए। दुःखी जनों के रोने और विपदा में फँसे निःसहाय जीवों की पुकार में

स्वभाव से ही जिस प्रकार अनुराग भरा होता है, उसी प्रकार आज हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, ब्राह्मण, शूद्रादि सभी व्याकुल प्राण से सहज ही बाबाजी के अनुराग भरे स्वर से स्वर मिलाकर 'हरिबोल' ध्वनि कर रहे हैं। आनन्दमय भगवान् की आनन्दमय नाम-ध्वनि ब्रह्माण्ड भेदकर विरजा के पार गोलोकधाम में पहुँच और उनके आनन्दमय चरणों का चुम्बनकर, मानो उनके आदेश से मृत्युलोक में प्रत्यावर्तन कर आवाल-वृद्ध-वनिता, पशु-पक्षी, सभी को और दूना आनन्द प्रदान कर रही है। किसी को भी देहस्मृति नहीं। सभी मानों नाम-रस में मतवाले हैं, असंख्य लोग जाति-कुल-गौरव का परित्याग कर धूल-धूसरित शरीर, गलदश्रु नयन और गद्‌गद कण्ठ से 'हरि-बोल, हरि-बोल' कह हाथ से ताली बजा-बजा नृत्य कर रहे हैं। विलासी युवकों के बहुमूल्य वस्त्र धूल में लिपट रहे हैं। बाबाजी महाशय अथाह आनन्द-सागर में डूबकर जैसे उसकी तह में जा लगे हैं। तनिक भी बाह्यज्ञान नहीं है। ऊर्ध्व नेत्र चरण पर चरण रखे, दोनों भुजाएँ उठाये नृत्य कर रहे हैं। कभी-कभी भाव में विभोर हो धूल में लोट-पोट होने लगते हैं। शरीर की धूल पसीने से मिलकर कर्दमाकार हो जाती है और कर्दमाकार शरीर में क्षण-क्षण पर ऐसे पुलक और कम्प का उदय होता है कि लोग देखकर आनन्द के साथ-साथ विस्मय से आच्छादित हो जाते हैं।

कुछ समय तक इस प्रकार कीर्तन कर सब एक स्थान पर विश्राम करने लगे। सालिखावासी प्रसादी डाब, शर्बत और नाना प्रकार के मिष्ठान्न द्वारा इनकी सेवा करने लगे।

प्लेग के उपलक्ष में जिस दिन जिस स्थान पर बाबाजी महाशय का कीर्तन होता, उस दिन उस स्थान के लाखों व्यक्ति प्रेमानन्द सिन्धु की उत्ताल तरंगों में बाह्यज्ञान रहित हो डुबकियाँ लगाने लगते। किसकी सामर्थ्य है जो उस महासंकीर्तनानन्द को भाषा में व्यक्त कर सकें? कुछ काल विश्राम कर लेने के पश्चात् बाबाजी महाशय ने बाबू बटु मल्लिक की उद्यानशाला की ओर प्रस्थान किया।

मुकुन्द घोष के घर आम खाने का निमन्त्रण

आज श्रीमुकुन्द घोष के यहाँ सब लोग निमन्त्रित हैं। मुकुन्द बाबू इन्हें अपने घर ले जाने के लिए बटु बाबू की उद्यानशाला में आकर उपस्थित हैं। पहले ही कहा जा चुका है कि इनके प्रति घोष महाशय और उनकी स्त्री का वात्सल्य भाव है। आज उन्हें पुत्रों के प्रति पितापने का अभिमान हो रहा है। 'कितने दिनों से घर जाकर कुछ माँगकर खाया नहीं'—यह कह कर वे दुःख प्रकाशित करने लगे। बाबाजी महाशय बोले, "पिताजी! आज हम अवश्य जायेंगे। आप घर जाकर माँ से अच्छी-अच्छी चीजें बनाकर तैयार रखने के लिए कह दें। आज अनेक दिनों का भोजन एक साथ ही कर लेंगे।" घोष महाशय इतने-से सन्तुष्ट न होकर बोले, "मैं यह सब सुनना नहीं चाहता, तुम्हें मेरे साथ ही चलना होगा।" इसलिए सब घोषबाबू के साथ हो लिये। रसमयतनु परम कौतुकी बाबाजी महाशय गाड़ी पर बैठते ही घोषबाबू की वेदना दूर करने को बालक की भाँति बोले—"पिताजी, आज हमें क्या-क्या खिलायेंगे? आज बड़ी भूख लगी है। घर पहुँचते ही कुछ खाने को मिलना चाहिये। जेठ का महीना है। आम और दूध तो होगा ही। और भी बहुत-से द्रव्य खाने को देने होंगे" इत्यादि। घोष महाशय आनन्द विभोर हो गद्‌गद कण्ठ से कहने लगे, "भाई, सब कुछ तो तुम्हारा ही है। मैं तो निमित्त मात्र हूँ। अपनी माँ के पास चलो, फिर देखा जायेगा।"

इस प्रकार कथोपकथन करते-करते घोष महाशय के घर आ पहुँचे। इधर घोषबाबू की वात्सल्यमयी पत्नी ने निश्चय कर रखा है कि बाबाजी महाशय के आने पर उनसे सहज संलाप न करेंगी। बाबाजी महाशय माँ के अभिमानयुक्त भाव को समझ पहले ही उसका प्रतिविधान करने लगे। घर पहुँचते ही बालक की भाँति व्याकुल हो कहने लगे, "माँ! बड़ी भूख लगी है। शीघ्र कुछ खाने को दो।" सुनते ही माँ का वात्सल्यरस अभिमान चूर्ण हो गया। जल्दी-जल्दी ठाकुर जी के नाना प्रकार के प्रसादी द्रव्य, रबड़ी, सन्देश प्रभृति

बाँटकर प्रत्येक को एक-एक द्रव्य बल-पूर्वक खिलाने लगीं। बाबाजी महाशय और उनके साथी बालक की भाँति माँ से खाने के लिए अनिच्छा प्रकट करने लगे। इस प्रकार बड़े आनन्द से सबने बाल्यभोग प्रसाद सेवन कर विश्राम किया।

इधर भोगराग की तैयारी होने लगी। इतने में घोष बाबू बाजार से कुछ बड़े-बड़े फजली आम ले आये और बोले, "इनका बाल्यभोग अभी लगाकर इन्हें दो।" घोषपत्नी ने प्रफुल्लित हो आमों का भोग ठाकुर जी के आगे प्रस्तुत किया। घोष बाबू जिस कमरे में बाबाजी महाशय विश्राम कर रहे थे, वहाँ जाकर उनसे नाना प्रकार से प्रेमालाप करने लगे। थोड़ी ही देर में घोष-पत्नी एक पत्थर के थाल में आम लेकर आयीं, और बाबाजी महाशय के सम्मुख रख एक आम उनके मुख में दे दिया। बाबाजी महाशय के मुख में आम देखते ही रामदास के हृदय में न जाने किस अपूर्व भाव का उदय हुआ, झट दौड़कर बायें हाथ से बाबाजी महाशय का गला पकड़ आम अपने मुँह से दबा लिया। सख्य-रस की मूर्ति बाबाजी महाशय ने रामदास को गोद में बिठा लिया। कैसा अपूर्व दृश्य है! कैसा अनिर्वचनीय सख्यरस का खेल! कैसा मधुर भ्रातृवात्सल्य! एक आम को दोनों मुँह से पकड़े हैं। दोनों के नेत्रों में प्रेमाश्रु डब-डबा रहे हैं। दोनों का शरीर पुलकायमान है। दोनों किसी अपूर्व भाव राज्य में प्रवेश कर गये हैं। किसी को भी बाह्य स्मृति नहीं। उसी समय घोषबाबू ने पद प्रारम्भ किया—

"श्रीनन्दनन्दन, करि गोचारन,
मलिन ओ मुखशशी।
संगे हलधर, सब सहचर,
तारा माँझे जनु शशी।।
करि नाना केलि, हइया बिकलि,
बसिला तरुर तले।
मलय पवन, बहे घन घन,
शीतल जमुनाकूले।।
सकल राखाल[1] क्षुधाय[2] व्याकुल,
कहये त्यजिया लाज।
मोरा सबे चाइ, वनफल खाइ,
शुनहे राखालराज।।
सब शिशु मेलि, करिया धामालि,
वनफल तूलि निल।
खाइते खाइते, बड़ मिठ बलि,
कानुर बदने दिल।।
कोन शिशु जाइया, मुखे मुख दिया,
से फल काड़िया खाय।
हासिर हिल्लोरे, भासिल सकले,
ए दास उद्धव गाय।।

—श्रीनन्दनन्दन का मुखारविन्द गोचारण लीला के बाद म्लान हो रहा था। उनके साथ थे बलराम और सखागण। उन सबके बीच वे तारागणों में चन्द्रमा के समान शोभा पा रहे थे। नाना प्रकार की लीला कर वे विकल हो एक तरु के तले बैठ गये। यमुना का किनारा था। शीतल सुगन्धित पवन बह रहा था। ग्वाल-बाल क्षुधा से व्याकुल थे। वे लाज छोड़ कहने लगे, 'सुनो हे, ग्वालबालों के राजा! हमारी सबकी वन-फल खाने की इच्छा हो रही है।' इतना कह सबने धमाचौकड़ी मचायी और तोड़ लाये बहुत-से वनफल। उन्हें खा-खाकर जो मीठे लगे कन्हैया के मुख में देने लगे। एक सखा उनके मुख से अपना मुख लगा उनके मुख से फल निकाल कर खाने लगा। हँसी का फुहारा फूट पड़ा, जिसमें सबके-सब तराबोर हो गये।"

गीत और हृदय का भाव एक हुआ। अब सम्भाले कौन? बाबाजी महाशय अचेत हो भूमि पर लेट गये। दाँत जुड़ गये और शरीर धनुष के समान टेढ़ा हो गया। घोषबाबू बार-बार वही पद गाने लगे। धीरे-धीरे बाबाजी महाशय के साथी भी आकर उस गान में सम्मिलित हुए। आनन्द की अवधि न रही। कीर्तन की ध्वनि सुन अनेक लोग आँगन में आ गये। बालक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी बाबाजी महाशय की यह अवस्था देख विस्मय सागर में डूब गये। उस धनुषाकार शरीर में कभी कम्प, कभी पुलक, कभी स्वेद और कभी वैवर्ण होने लगा। कुछ देर बाद बाबाजी महाशय अर्द्धबाह्य अवस्था को प्राप्त कर नाना प्रकार के सख्य रस के पद गाने

1. ग्वाले, 2. भूख से।

लगे। रस और लीला जैसे मूर्तिमान हो गये। आबाल-वृद्ध और युवक, जो भी वहाँ उपस्थित थे, किसी को बाह्य स्मृति न रही। सभी मानो यमुना के तट पर किसी वृक्ष के नीचे वन-भोजन लीला में प्रविष्ट थे। कीर्तन के पश्चात् आम का थाल ले बाबाजी महाशय एक-एक भक्त के मुँह में आम दे स्वयं उनका अधरामृत पान करने और स्वयं एक आम खा दूसरों को वही खिलाने लगे।

इस प्रकार परमानन्दपूर्वक लगभग बारह बजे का समय हो आया। तब घोष महाशय और उनकी पत्नी के अनुरोध से कीर्तन समाप्त कर और महाप्रसाद ग्रहण कर सब लोग विश्राम करने लगे। अपराह्न बहुत- से भक्तों के साथ तत्व-कथा में व्यतीत हुआ। क्रमश: रूप अभिसार और मिलन कीर्तन में रात्रि के ग्यारह बज गये। आनन्दपूर्वक रात्रि व्यतीत हुई। दूसरे दिन वहाँ से चलने के लिए प्रस्तुत हुए। उसी समय घोष महाशय और उनकी पत्नी आकर एक दिन और रुकने के लिए आग्रह करने लगे। उनके स्नेहानुरोध के कारण बाबाजी महाशय को उस दिन वहीं स्नान, आह्निक, महा-प्रसादादि समापन कर दोपहर को विश्राम करना पड़ा।

दण्ड महोत्सव

आज रघुनाथदास गोस्वामी का दण्ड महोत्सव है। बाबाजी महाशय ने कुञ्जबाबू से कहा, "निताइ की प्रेरणा से आज हमने पानिहाटी जाने का विचार किया है।" कुञ्जबाबू ने कहा, "आज प्रभु की कृपा से रविवार है और सबकी छुट्टी है। चलिए नाव पर सब साथ ही चलें।" ऐसा ही हुआ। नाम-कीर्तन करते-करते गंगातट पर जा पहुँचे और एक बजरा किराये पर ले सब उस पर बैठकर चल दिये। बाबाजी महाशय नौका पर बैठते ही उच्च स्वर से 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' कीर्तन करने लगे। बाबू लोग भी प्रेम में मतवाले हो साथ-साथ कीर्तन करने लगे। नाम की ध्वनि से नदी का जल विकम्पित होने लगा। आनन्दमयी माँ गंगा मानो अपने प्रभु के अन्तरंग भक्तों का साथ पा कल-कल ध्वनि से आनन्द प्रकाश करने लगीं। जो जहाँ था, वहीं नाम के साथ-साथ नृत्य करने लगा। कोई-कोई हाथ से ताली बजा और झूम-झूम कर नृत्य करने लगे। मल्लाह कीर्तन की ताल के साथ सिर हिलाता हुआ डांड़ चलाने लगा।

दोनों ओर तट पर लोग अवाक् हो नाम सुन रहे थे। बड़े-बड़े प्रतिष्ठित अधिकारीगण भी आज बालक-वत् हो रहे थे। जिनकी जिह्वा पर कभी निताइ-गौर नाम नहीं आया वे भी आज नामरस में मग्न हो कभी हँस रहे थे, कभी रो रहे थे और कभी प्रेमानन्द में नृत्य कर रहे थे। रंगिया निताइचाँद का यह अपूर्व रंग देख सभी मतवाले हो रहे थे। सभी की आत्म-स्मृति जाती रही थी। द्रवमयी माँ भागीरथी प्रेमोन्मत्त सन्तान को छाती से लगा उत्ताल तरंगों के साथ प्रेमानन्द में नृत्य कर रही थीं। नाव बड़ी थी, लेकिन प्रेम में पागल भक्तों की प्रेम-तरंग और माँ भागीरथी की आनन्द हिल्लोरों के घात-प्रतिघात के कारण कुछ अप्रकृतिस्थ-सी डगमगाती जा रही थी।

सुख का समय शीघ्र व्यतीत हो जाता है। मल्लाह आनन्दपूर्वक पुकार उठा, "यह रहा पानिहाटी ग्राम। यह देखिये, पेड़ के नीचे कितने लोग एकत्र हैं।" सुनते ही सब लोग एक साथ नाव से उतरने को हुए। मल्लाह ने विनयपूर्वक कहा, "थोड़ा और रुक जाइये। नाव किनारे से लगा लूँ, नहीं तो डूब जायगी।" बाबा हँसते-हँसते बोले, "भाई, यह नाम की नौका है। यह क्या डूब सकती है?" और नृत्य करने लगे। मल्लाह एकटक उनकी भाव-भंगी देख रहा था और प्रेम में गद्गद हो अश्रुपात कर रहा था। नौका धीरे-धीरे घाट से आ लगी। सब आनन्दपूर्वक घाट पर उतरे। बाबाजी महाशय के नेत्र लाल हो रहे थे। वे गद्गद कण्ठ से गाने लगे—

आहा मरि कि मधुर पानिहाटी ग्राम।
नित्यानन्द स्वरूपेर विहारेर स्थान।।
एइना तरुर तले प्रभु दयामय।
रघुनाथे कृपा कैला हइया सदय।।
सेइ तरुवर एइ, सेइ गंगातीर।
सेइ पानिहाटी एइ, सेइ गंगातीर।।
काँहा नित्यानन्द राम, काँहा तार गण।
काँहा दास रघुनाथ देह दरशन।।

ओहे पानिहाटीवासी जत नरनारी।
देखाओ निताइचाँद करुणा वितरि।।
तोमादेर प्रेमे बाँधा निताइ रंगिया।
विहरिछे[1] गनसह नाचिया गाइया।।
तोमादेर कृपा बिना के देखिते पारे।
देखाइया सेइ लीला किने लह[2] मोरे।।
नयने देखिब तारे लइया ना जाब।
प्रेमहीन मोरा तारे रखिते नारिब[3]।।
हा हा प्रभु नित्यानन्द करुणा-वारिधि।
भक्त संगे तव लीलार नाहिक अवधि।।
बड़ साध सेइ लीला देखिब नयने।
वंचित कर ना प्रभु भक्तिहीन जने।।
अद्यापिह सेइ लीला करिछ हेथाइ।
अभागिया जन मोरा देखिते न पाइ।।
आज सेइ रघुनाथेर कृपादंड दिन।
आसियाछि देखिबारे मोरा दीनहीन।।
भक्त संगे सेइ लीला करि आस्वादन।
शीतल करिब सबार तापित जीवन।।

गा-गाकर भावाविष्ट हो बाबा नृत्य करने लगे। नृत्य के पश्चात् दासगोस्वामी का दण्ड-महोत्सव-कीर्तन प्रारम्भ किया। भीड़ आने लगी। लोगों की भीड़ का कुछ ठिकाना न रहा। सभी के मुख से 'गौर हरि बोल' ध्वनि निकल रही थी। सभी आनन्द में विभोर और बाह्य स्मृतिहीन हो रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था कि प्रेम का सागर उमड़ पड़ा है और रंगिया निताइचाँद फिर से प्रकट होकर लीला कर रहे हैं। कैसा अपूर्व दृश्य है! प्रेममय निताइचाँद की कैसी अपूर्व प्रेमलीला है। 'आपनिओ जेइ मत प्रभु नित्यानन्द। सेइमत करिलेन सब भक्तवृन्द' इस बात का प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है। पदों में वर्णन है कि रघुनाथ गोस्वामी के दण्ड-महोत्सव के समय भक्तों की भीड़ के कारण तट पर इतना स्थानाभाव था कि उन्होंने जल में उतरकर चिउड़ा प्रसाद सेवन किया था। परन्तु आज जनसंख्या उससे भी कहीं अधिक दीख पड़ रही है। आज तो जल में भी स्थानाभाव दीख रहा है। बहुत-से लोग नावों पर चढ़ महोत्सव दर्शन, कीर्तन-श्रवण और चिउड़ा महाप्रसाद सेवन कर रहे हैं। गंगा में इतनी नावें एकत्र हो गयी हैं कि गणना करना कठिन है।

बहुत समय तक कीर्तन करने के बाद एकदम राघव पण्डित के घर की याद आ गयी। मन की गति के अनुकूल देह की गति होने लगी। सभी राघव पण्डित के घर की ओर चल पड़े। बाबाजी महाशय बिलकुल देहज्ञान रहित थे। देह तनिक भी अपने वश में नहीं थी। ऐसा लगता था कि कोई एक भाव की पुतली को पकड़ कर लिये जा रहा है। इस प्रकार नृत्य और कीर्तन करते-करते सब राघव पण्डित के माधवी मण्डप में जा पहुँचे। उस समय की बाबाजी महाशय की अवस्था का वर्णन एक भक्त ने इस प्रकार किया है—

कभु हर्ष कभु रोष, कभु उत्कन्ठा सन्तोष,
उद्वेग विषाद कभु आर्ति।
कभु दैन्य प्रलापन, कभु हास्य रोदन,
एत भाव एककाले स्फूर्ति।।
भावेर विकार जत, आपन समय मत,
एक देहे करिछे उदय।
अश्रु कम्प पुलकादि, स्वेद वैवर्ण निरवधि,
देखि सबार हइल विस्मय।।
कभु भावे कण्ठरोध, कभु हय आत्मबोध,
कभु बले गद्गद वाणी।
विरहे व्याकुल हिया, काँदे कभु फुकरिया,
आपनाके अभागिया मानि।।

बाबा का शरीर भाव समूह से पुष्ट हो कुछ और ही प्रकार का दीखने लगा। इस प्रकार बहुत समय तक कीर्तनानन्द होता रहा। फिर कुछ भक्त कौशलपूर्वक गंगातट पर सेनेदे ठाकुर की बगीची में कीर्तन ले गये। बगीची की शोभा अति मनोरम थी। देखते ही बाबा को वृन्दावन का भ्रम हो गया और भावावेश में मधुर-मधुर नृत्य करने लगे। बहुत-से लोग एकत्र हो गये। एक भक्त प्राण के आवेश से कीर्तन के बीच बाबा को साष्टांग दण्डवत् कर उनके चरणों से लिपट गया। बाबा महाशय स्थिर भाव से खड़े हो गये। भगवान् जाने भक्त के मन में कौन-सा भाव उदय हुआ। देखते-देखते वह अचैतन्य हो गया और उसके दाँत भिच

1. विहार कर रहे हैं, 2. खरीद लो, 3. रख न सकूँगा।

गये। साथियों में-से कुछ लोगों ने जब उसके हाथ से बाबा के चरण छुड़ाकर उसे प्रकृतिस्थ करने की कोशिश की, तो देखा कि उनके दाहिने पैर की वृद्धांगुली उसके मुख में है और उसके मुँह के दोनों ओर से रक्तपात हो रहा है। मुख से उंगली निकालने के लिए बड़ी चेष्टा की, पर किसी प्रकार सफलता न मिली, क्योंकि जिनकी उंगली वे भी भावाविष्ट और जिसके मुँह में वह भी भावाविष्ट। यदि किसी को कष्ट हो रहा है तो अन्य व्यक्तियों को। उनके प्राणों में बड़ा आघात हो रहा है। अन्त में एक लोहे की चाबी भक्त के मुँह में देकर किसी प्रकार उँगली को बाहर किया गया। किन्तु भक्त फिर भी संज्ञाहीन अवस्था में ही पड़ा रहा। उसके शरीर में अश्रु, कम्प, पुलकादि सात्विक भाव इस प्रकार प्रकाशित होने लगे कि लोग देखकर विस्मित हो गये। थोड़ी देर में भक्तों ने उसे पकड़कर उठाया और बाबा ने आलिंगन दानकर प्रकृतिस्थ किया। फिर विश्राम करने के लिए चबूतरे पर बिठा दिया।

इसी समय कुछ भक्तों ने बाबा महाशय के सम्मुख कुछ प्रसादी आम लाकर रखे। बाबा ने उनकी हरिलूट प्रारम्भ की। धीरे-धीरे इतनी भीड़ हो गयी कि उसका सम्भालना कठिन हो गया। आनन्द के समय जो कुछ होता है सभी आनन्दमय होता है। आमों की छीनाझपटी में अपार आनन्द का अनुभव होने लगा। छोटे-बड़े, धनी-दरिद्र, बालक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष का कोई भेद न रहा। सभी आनन्द में मतवाले हो रहे थे। जिसे हरिलूट का एक आम भी मिल जाता, वही अपने को कृतार्थ समझता। इस प्रकार कुछ समय बगीचे में आनन्द मनाकर बाबा मण्डली सहित कीर्तन करते-करते फिर पेड़ के तले आ गये और वृक्षराज को दण्डवत् प्रणाम कर बहुत समय तक कीर्तन कर बजरे पर जा बैठे। बजरे पर ही मालसा भोग का प्रबन्ध हुआ। भोग-आरति-कीर्तन समाप्त होने के बाद सबने चिउड़ा प्रसाद सेवन कर नाम प्रारम्भ किया। सभी प्रेम में मतवाले हो गये। आनन्द-सिन्धु उमड़ पड़ा। बजरे पर उद्दण्ड नृत्य होने लगा। सुरतरंगिनी ने प्रेम-तरंगिनी का रूप धारण किया। बजरा भी मानो नाम-कीर्तन की ताल के साथ मस्ती से झूम-झूम कर मन्द गति से चलने लगा और यथासमय घाट पर जा लगा। सबने उतर कर बटु बाबू की बगीची में विश्राम किया।

जहाज में श्रीधाम पुरी की यात्रा

कलकत्ते में प्लेग के उपलक्ष में कीर्तनानन्द में कई दिन व्यतीत कर एक दिन बाबाजी महाशय ने पुरी जाने की इच्छा प्रकट की। यह सुन कलकत्ते के सभी भक्त व्याकुल हो गये और परस्पर कहने लगे, "बहुत जन्मों की सुकृति के फल से इस प्रकार के महापुरुषों का संगसुख लाभ हुआ था। प्रभु इतना शीघ्र ही इस सुख से हमें वंचित कर देंगे, यह कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था।" पर महापुरुष तो स्वेच्छामय होते हैं। जिस पर हमारे बाबाजी महाशय तो और भी अधिक स्वेच्छामय थे। अपनी इच्छा से कभी तो बालकों के इशारे पर चलते और कभी इतने स्वतन्त्र हो जाते कि किसी का भी साहस न होता जो उनकी इच्छा के विरुद्ध उनसे कुछ करा ले। कुञ्ज बाबू, पुलिन बाबू प्रभृति और कुछ दिन कलकत्ते ठहरने के लिए विशेष भाव से प्रार्थना करने लगे, पर उनका प्रयत्न सफल न हुआ। बाबा महाशय हँसकर बोले "भाई! मैं तो पराधीन ठहरा, निताइचाँद जिस समय मुझ अधम से जो कराना चाहते हैं, वही करने के लिए बाध्य रहता हूँ। तुम लोग कोई दु:ख मत करना। उनकी इच्छा होगी तो फिर यहाँ ले आयेंगे।" इतना कह वे पुरी जाने के लिए प्रस्तुत हुए। तब कुञ्ज बाबू ने अपने छोटे भाई पुलिन बाबू से कहा, "तुम इन लोगों को स्टीमर पर बिठा आना और जितना रास्ता रेल से जाना होगा, उसका किराया इनमें से किसी को दे देना।" पुलिन बाबू अति आग्रह सहित उनके साथ चल दिये। उस समय कलकत्ते से पुरी के लिए रेल नहीं थी। पुलिन बाबू ने स्टीमर-घाट पर जाकर टिकिट खरीद दिया, और ये उन्नीस आदमी श्रीधाम पुरी को रवाना हुए। पुलिन बाबू भी बहुत दु:खी हो घर लौट आये।

जहाज ने चलना आरम्भ किया और इन्होंने अपना कीर्तन। उसी समय जहाज के कप्तान ने एक कुली द्वारा इनसे यह गोलमाल बन्द करने के लिए कहा। बाबा महाशय ने कहा, "गोलमाल तो कुछ भी नहीं

भाई, हम तो भगवान् का नाम ले रहे हैं, जिससे अमंगल नहीं मंगल ही होगा।" किन्तु मुसलमान कप्तान ने कुछ भी न सुना। कुछ हिन्दू कर्मचारी इन लोगों से कप्तान की बात मानने के लिए आग्रह करने लगे। बाबा और अधिक प्रतिवाद न कर मौन हो गये। जहाज ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता गया, हवा का वेग भी अधिक होता गया। समुद्र की तरंगें उछल-उछल कर जहाज पर बैठे लोगों के वस्त्र भिगोने लगीं। उत्ताल तरंगों को देख सब आतंकित हो गये। पर जब-जब बाबा महाशय और उनकी मण्डली उन तरंगों को देख गगनभेदी स्वर से 'जय नित्यानन्द राम' कहकर हुँकार करते, तरंगें समुद्र में लीन हो जातीं। यह अवस्था देख कप्तान ने एक कुली से बाबा महाशय को फिर पहले की तरह कीर्तन करने के लिये कहलाया। बाबा महाशय ने उस कुली से कहा, "तुम कप्तान से जाकर पूछो कि इस समय क्या उन्हें यह गोलमाल अच्छा लगेगा, और हमारा कीर्तन करना उचित होगा।" कुली के मुख से यह सुन कप्तान बाबा महाशय के पास आकर बोला, "बाबा मैंने अज्ञान के कारण उस समय आपसे कीर्तन के लिये निषेध किया था। ऐसा लगता है कि उसी पाप के कारण हमें यह दण्ड मिल रहा है। आप लोग कृपा कर उस बात का ख्याल न कर कीर्तन प्रारम्भ करें। इस प्राण-संकट के समय आप और विलम्ब न करें। इस विपत्ति से उत्तीर्ण होने के पश्चात् मैं फिर आप लोगों के दर्शन करूँगा।" यह कहकर वह अपने स्थान को वापस चला गया। बाबाजी महाशय ने निताइचाँद को धन्यवाद देकर दूने उत्साह से नामकीर्तन प्रारम्भ किया। पूर्वोक्त हिन्दू नामधारी बाबू लोग भी प्राण के भय से उच्च स्वर में 'भज निताइ गौर राधे श्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' नाम करने लगे। धीरे-धीरे जहाज काले पानी में जा पहुँचा। बहुत-से लोग काले पानी की दुर्गन्ध के कारण उल्टी करने लगे। तरंगों के भीषण थपेड़ों से जहाज बीच-बीच में जलमग्न होने लगा। यात्रियों के कण्ठ तक जल आ गया। हिन्दू, मुसलमान सभी प्राण के भय से उच्च स्वर से कीर्तन कर रहे थे। इसी प्रकार चार घण्टे बीत गये, तब प्रभु मानो प्रसन्न हुए। हवा बन्द हो गयी। आकाश निर्मल हो गया, यात्रियों ने जीवन लाभ किया। तब कप्तान आकर बाबा महाशय से विनीत भाव से क्षमा प्रार्थना कर कहने लगा, "आज आप लोगों के कीर्तन के प्रताप से ही सबके प्राणों की रक्षा हुई है, नहीं तो ऐसी अवस्था में किसी प्रकार जहाज की रक्षा होना सम्भव नहीं था।" बाबाजी महाशय ने कहा, "देखो भाई, भगवत् नाम की अपार महिमा है। जो नाम है वही भगवान् हैं। नाम और भगवान् में कुछ अन्तर नहीं। भगवान् के अनन्त नाम अल्लाह, खुदा, यीशु, मुहम्मद, काली, दुर्गा, शिव, कृष्ण, विष्णु, निताइ, गौर इत्यादि, इनमें कुछ भी भेद नहीं है।" तुम शायद हमारे निताइ-गौर का नाम लेने में कुछ संकोच भी करो, पर मुझे तो अल्लाह, खुदा, यीशु आदि नाम लेने में कोई संकोच नहीं, क्योंकि भगवान् पूर्ण-पूर्णतम हैं और धर्म शब्द सार्वजनिक है, व्यक्तिगत नहीं। यह सुनकर कप्तान अश्रुगद्गद कण्ठ से बोला, "हमारे कुरान शरीफ का भी ठीक यही मत है। कुरान शरीफ में लिखा है किसी के धर्म और कर्म की निन्दा करने से खुदा के आगे दोषी बनना पड़ता है।" इस प्रकार कथोपकथन होता रहा। कालापानी पार करते-करते रात हो गयी। जहाज ने लंगर डाला। वह रात्रि जहाज में ही बीती। दूसरे दिन प्रातःकाल जहाज रवाना होकर ग्यारह बजे चाँदबली पहुँचा।

यात्रीगण चाँदबली स्टेशन पर उतरकर स्नान करने लगे। इन लोगों ने समुद्र तट पर कीर्तन प्रारम्भ किया। इतने में एक साहब ने वहाँ आकर इनका कीर्तन बन्द करना चाहा। जहाज के कप्तान और अन्य लोगों ने साहब को समझाया कि किस प्रकार बाबाजी महाशय ने अपने कीर्तन से जहाज की रक्षा की थी। यह सुन साहब ने फिर कुछ न कहा और वह भी प्राण खोलकर कीर्तन करने लगा। उस समय रमानाथ बाबू, शरत बाबू, रामप्रसाद बाबू और रघुनाथ बाबू आदि अनेक उड़ीसावासी और बंगाली सज्जन कार्योपलक्ष में चाँदबली रहते थे। ये लोग बाबाजी महाशय का कीर्तन सुन बहुत प्रसन्न हुए और कई लोगों के मुख से पूर्वदिन की घटना के बारे में सुनकर उनके प्रति बहुत आकृष्ट हुए व उनसे दो एक दिन चाँदबली ठहरने का आग्रह करने लगे। किन्तु रथयात्रा अति सन्निकट होने के

कारण बाबाजी महाशय उनकी प्रार्थना स्वीकार न कर सके। उस दिन उनके आहारादि की व्यवस्था शरत बाबू के यहाँ हुई।

आहारादि के पश्चात् रघुनाथ बाबू के विशेष आग्रह पर सब लोग कीर्तन करते-करते उनके घर की ओर चल दिये। रघुनाथ बाबू के घर का रास्ता एक साहब के मकान के सामने होकर था। बहुत-से लोगों ने विचार किया कि साहब के मकान के सामने होकर जाने से कीर्तन में अवश्य कुछ न कुछ बाधा होगी। किन्तु कीर्तनध्वनि सुनकर साहब बाहर आये और इन लोगों को देखते ही टोप उतारकर खड़े हो गये। ये लोग उस समय कीर्तन में मतवाले हो रहे थे। साहब बाबाजी महाशय की ओर एकटक देखते रहे। क्षणभर में ये लोग साहब के मकान से आगे निकल गये। गगनभेदी मधुर कीर्तन से दसों दिशाएँ आनन्दमय हो गयीं। सब उद्दण्ड नृत्य करते जा रहे थे। किसी को बाह्य स्मृति न थी। बाबाजी महाशय के शरीर में अश्रु कम्प पुलकादि सात्विक भाव दृष्टिगोचर हो रहे थे। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी विस्मित हो परस्पर कह रहे थे "ये बाबाजी अवश्य ही कोई महापुरुष हैं। इस प्रकार की अवस्था किसी सामान्य मनुष्य में कदापि सम्भव नहीं। कैसा सुन्दर मुखारविन्द और कैसा सुन्दर भाव है।" "हमने अनेक साधु देखे हैं, परन्तु इस प्रकार के महात्मा के तो हमने आजतक दर्शन नहीं किये।" "देखो कितने सरल भाव से कीर्तन कर रहे हैं। बालक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी अनायास मतवाले होकर उसी नाम का कीर्तन कर रहे हैं। ऐसा लगता है जैसे सभी का नामोच्चारण का कितने दिन का अभ्यास है। इनको देखने मात्र से ऐसा बोध होता है कि ये कितने दिन के परिचित हैं।" इस प्रकार जिसकी जैसी मनोगति थी समालोचना कर रहा था। ये प्रेमावेश में नाचते-नाचते दर्शकवृन्द को प्रेमसागर में निमग्न करते जा रहे थे। पूर्वोक्त रघुनाथ बाबू के घर पहुँचने में प्रायः एक घण्टा लग गया। वहाँ भी बहुत देर तक कीर्तन होता रहा। सभी आनन्द में मतवाले थे। कुछ देर पश्चात् कीर्तन समाप्त कर सबने विश्राम किया। पाँच बजे के लगभग पुरी जाने के उद्देश्य से कटक जाने वाली बोट पर सवार हुये। बोट ने जब नहर में प्रवेश किया शरत बाबू ने कटक के पोस्ट-मास्टर को तार दिया कि "एक महापुरुष नवद्वीप से कटक होकर पुरी जा रहे हैं। उनका अलौकिक भाव देख और सुमधुर कीर्तन सुन यहाँ के हिन्दू, मुसलमान सभी मुग्ध हो गये हैं। कालेपानी में भयानक तूफान के कारण जहाज समुद्र में डूब चला था और कप्तान तथा यात्रियों ने जीवन की आशा छोड़ दी थी। संकीर्तन कर इन महापुरुष ने तूफान से जहाज की रक्षा की। इस कारण जहाज के कप्तान और बहुत-से साहब लोगों का इनके प्रति विशेष भक्तिभाव है।" शरत बाबू का तार पाकर कटक के पोस्टमास्टर और टेलीग्राफ मास्टर बहुत आनन्दित हुए। उन्होंने स्थानीय बहुत-से लोगों के निकट यह शुभसंवाद पहुँचा दिया। संवाद पाकर कटक के बहुत-से लोग उत्कण्ठित हो महापुरुष के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे।

इसी प्रकार दिन बीत गया। पुरी पोस्ट-ऑफिस के हेडक्लर्क बाबू गोपालप्रसाद दत्त ने कटक के पोस्टमास्टर को पहले ही लिख रखा था—"बड़े बाबा महाशय जैसे ही कटक पहुँचे हमें तार से सूचना दीजियेगा।" कटक के पोस्टमास्टर साहब ने यह तार भेज दिया कि "कल चाँद-बली से यह तार मिला है कि एक महापुरुष नवद्वीप से पुरी जा रहे हैं। उन महात्माओं के संकीर्तन और अलौकिक शक्ति के प्रभाव से चाँदबली के हिन्दू मुसलमान और ईसाई विमुग्ध हो गये हैं। सम्भवतः आज वे कटक पहुँच जायेंगे। पुरी के लिये रवाना होने से पहले आपको सूचना भेजूँगा।" पुरी-निवासी भक्त-वृन्द यह संवाद पाकर अत्यन्त आनन्दित हुए। बाबा महाशय जैसे ही कटक पहुँच कर बोट से उतरे, वैसे ही कई सज्जन उनके पास आकर बोले, "हमें कल ही आपके आने का संवाद मिला है। शरत बाबू ने चाँदबली से हमारे यहाँ के पोस्ट मास्टर साहब को तार से सूचित कर दिया था। हमारी सबकी इच्छा है कि कुछ दिन कटक में रहकर हम लोगों को कृतार्थ करें।"

बाबा महाशय ने कहा—"भाई निताइचाँद कब तक रखें यह तो वही जानें। मेरी अपनी कोई क्षमता नहीं है। श्रीजगन्नाथदेव की रथयात्रा करीब-करीब

आ पहुँची है। ऐसा बोध होता है कि निताइचाँद मुझे अधिक समय यहाँ न रखेंगे। भविष्य में यदि और किसी समय वे ले आये तो यहाँ कुछ समय रहकर आप लोगों के साथ आनन्द उपभोग करूँगा।"

इस प्रकार वार्तालाप में करीब आधा घण्टा व्यतीत कर नाम करते-करते बाबा महाशय ने शहर में प्रवेश किया और आनन्दचन्द्र ब्रह्म के घर जाकर उपस्थित हुए। बाबाजी महाशय को देखते ही आनन्द बाबू ने आनन्द-आत्महारा हो इनके विश्राम की व्यवस्था की। नाना प्रकार के कथोपकथन में बहुत समय बीत गया। इधर ठाकुर जी के भोग की व्यवस्था होने लगी। यथासमय बाबा महाशय ने साथियों सहित प्रसादादि पा कुछ विश्राम किया। अपराह्न में बहुत-से भक्त आने लगे। उनके साथ नानारूप तत्व-कथा में दिन डूब गया। सन्ध्या समय आरति-कीर्तन, रूप अभिसार और मिलन कीर्तन कर तथा प्रसाद सेवन कर शयन की तैयारी की।

इस प्रकार दो दिन आनन्दब्रह्म के घर बड़े आनन्द से बीते। तीसरे दिन प्रभात में काटजुड़ी नदी में स्नान करने के हेतु कीर्तन करते-करते सब लोग बाहर निकले। काटजुड़ी नदी में स्नान कर जब आनन्दब्रह्म के घर वापस आ रहे थे, प्यारीमोहन दत्त नामक एक भक्त से भेंट हुई। प्यारी बाबू बहुत धनी तो नहीं थे, पर सद्-व्ययी और परम-भक्त थे। उनके घर पर श्रीश्रीगोविन्द जी की सेवा थी। वे और उनकी स्त्री दोनों वात्सल्य रस के उपासक थे। प्यारी बाबू के तीन पुत्र थे। वे भी परमभक्तिमान थे। किसी साधु वैष्णव या भक्त के दर्शन कर उसके साथ बात-चीत में इतने तल्लीन हो जाते कि कुछ सुधबुध न रहती। जब भी उन्हें कोई नई वस्तु या उपादेय द्रव्य मिलता, श्रीगोविन्द जी को अर्पण कर उसके द्वारा किसी भक्त की सेवा करते थे। उनके परिवार में सभी का यह स्वाभाविक गुण था। प्यारी बाबू की पत्नी के विशुद्ध भाव को देख महा-पाखण्डी के हृदय में भी वात्सल्यमयी माँ यशोदा की स्मृति सहज जाग उठती थीं। मानो वे जगत् की माँ थीं। बालक, युवक, वृद्ध किसी को भी उदास या क्लान्त देखतीं, तो थोड़ा गोविन्द जी का प्रसाद खिलाये बिना न रहतीं। आज मायापाशमुक्त निष्किञ्चन, भावानुरागी साधुगण माँ के स्नेहपाश में बँध गये। इन्हें देख माँ आनन्द से अधीर हो गयीं। बाबा महाशय ने लपककर जैसे ही उनके चरणों में प्रणाम किया, उनका वात्सल्य मूर्तिमान हो उठा। उन्होंने अपने बायें पैर की धूल लेकर बायें हाथ से उनके मस्तक पर रखी और दाहिने हाथ से उनकी ठोड़ी पकड़ कर बोलीं, "बाबा! सुखी रहो। तुम लोग मेरे गोविन्द के साथी हो। तुम्हारे आनन्द से मेरा गोविन्द भी आनन्दित होता है। गोविन्द जी में तुम्हारी प्रीति सदा बनी रहे। तुम लोग चिरञ्जीवी हो, गोविन्द जी से मेरी यही प्रार्थना है।" वात्सल्य रस की दृष्टि पहले मुख पर ही पड़ती है। इसलिए माँ बाबा महाशय के मुख की ओर देखकर बोलीं, "कीर्तन के परिश्रम से तुम्हारा सबका मुख सूख गया है। लो गोविन्द जी का प्रसाद पाकर विश्राम करो।" यह कहकर नाना प्रकार के द्रव्य गोविन्द जी को भोग लगा सबको अपने हाथ से खिलाने लगीं। प्यारी बाबू और उनके घर के सभी लोगों के विशेष आग्रह के कारण बाबा महाशय उस दिन उन्हीं के घर ठहर जाने को बाध्य हुए। आनन्दब्रह्म के घर से उन्हें लिवा ले जाने के लिये लोग आने लगे। किन्तु वात्सल्य प्रेम के बन्धन को तोड़ उन्हें लिवा ले जाने का किसी को साहस न हुआ। उन्होंने कहा, "भाई, आनन्द से कहना कि आज हमारा आना न हो सकेगा।" इधर गोविन्द जी के भोग की तैयारियाँ होने लगीं। भोग के पश्चात् प्रसाद सेवन कर सबने विश्राम किया। अपराह्न में जब शहर के लोग आकर बाबा महाशय से नगर-कीर्तन के लिये आग्रह करने लगे, तब प्यारी बाबू बोले, "आज आप बहुत क्लान्त हो रहे हैं। इस समय विश्राम कीजिये। कल सबेरे नगर-कीर्तन ठीक होगा।" सबने यह बात स्वीकार कर ली। एक वृद्ध और सम्मानित व्यक्ति ने प्रश्न किया, "महाशय, ऐश्वर्य और माधुर्य दोनों में कौन श्रेष्ठ और हम लोगों के लिए अवलम्बनीय है?"

बाबा ने कहा—"शास्त्रों में लिखा है"—

जार जेई भाव सेई हय सर्वोत्तम।
तटस्थ हइया विचारिले आछे तारतम।।

जो व्यक्ति जिस रस का उपासक है, उसके लिए वही श्रेष्ठ है। किसी और रस की आलोचना करना भी उसके लिये अन्तराय समझना चाहिये। किन्तु तटस्थ होकर विचार करने से यह पता चलता है कि रसों में परस्पर उत्कर्षापकर्ष है। ऐश्वर्य और माधुर्य के बीच माधुर्य ही श्रेष्ठ है। कविराज गोस्वामी ने माधुर्य रस के उपासक अर्थात् रागानुग भक्तों के लिए कहा है—

गोपी-अनुगत बिना ऐश्वर्य ज्ञाने।
भजिलेओ नाहि पाय व्रजेन्द्रनन्दने।।

अन्यत्र है 'ऐश्वर्य थाकिले प्रेमेर गाढ़ता ना स्फुरे।' अन्यत्र, 'देखिलेओ नाहि माने केवलार गणे।' व्रजवासियों के विशुद्ध माधुर्य रस की परीक्षा करने हेतु योगमाया के श्रीकृष्ण को उपलक्ष्य कर नाना रूप से ऐश्वर्य-लीला प्रकाशित करने पर भी उन्होंने कभी श्रीकृष्णचन्द्र में ऐश्वर्य का आरोप नहीं किया। व्रजगोपिकाओं ने श्रीकृष्ण की शंख-चक्र-गदा-पद्म विभूषित चतुर्भुज-मूर्ति दर्शन करके भी उन्हें द्विभुज, मुरलीधर नन्दनन्दन से भिन्न और कुछ नहीं जाना और न उनके इस रूप से भिन्न और किसी रूप के प्रति कामना ही की। इसी प्रकार व्रजबालकों ने गोवर्धन धारण, कालियदमन प्रभृति लीलाओं में उनकी अलौकिक शक्ति देखकर भी उन्हें सखा कन्हैया से भिन्न और कुछ नहीं माना, और माँ यशोदा ने कृष्ण के मुखारविन्द में विश्व ब्रह्माण्ड देखकर भी उन्हें सर्वैश्वर्यपरिपूर्ण ईश्वर मानने के बजाय यह समझकर कि उन्हें कुछ हो गया है नानारूप शान्तिस्वस्त्ययनादि की व्यवस्था की। शान्तरस के भक्तगण जिन श्रीकृष्णचन्द्र की 'अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारण-कारणम्' सर्वनियन्ता, षडैश्वर्य-सम्पन्न, पूर्णपूर्णतम भगवान् मानकर पूजा करते हैं, वे ही श्रीकृष्ण यशोदा प्रभृति मातृस्थानीया गोपियों द्वारा तिरस्कृत और शासित होते हैं। इतना ही नहीं, आवश्यकता होने पर उनके हाथ पैर भी वे बाँध देती हैं। अब समझ देखो कि ऐश्वर्य और माधुर्य रस के बीच कौन-सा श्रेष्ठ है। मोटी बात यह है कि ऐश्वर्य तो भक्तों से भगवान् को दूर रख उनके हृदय में भीति और संकोच का संचार करता है, माधुर्यरस उन्हें भक्तों के निकट लाकर और सम्बन्ध बोध करा कर उनके हृदय में निःसंकोचता उत्पन्न करता है। प्राकृत राज्य के एक दृष्टान्त द्वारा इस विषय को और भी स्पष्ट रूप से समझ लो—

मान लो कि दाशरथि महापात्र नाम के कोई सज्जन किसी अदालत के प्रधान न्यायाधीश हैं। जब वे विचारासन पर उपविष्ट रहते हैं, उस समय उनको हुजूर और धर्मावतार कहकर सम्बोधित किया जाता है। विख्यात वकील और बैरिस्टरादि नीचे खड़े होकर आदर और भय के साथ उनसे बातचीत करते हैं। परन्तु जब जज साहब घर जाकर बैठकखाने में विश्राम करते हैं, एक वृद्धा स्त्री आकर कहती हैं, हाय रे दासू! तू अभी तक बाहर ही बैठा है। तू इतना बड़ा हो गया फिर भी हिताहित का कुछ ज्ञान नहीं जो भीतर जाकर कुछ जलपान कर लेता।' जज साहब दण्डवत् प्रणाम कर सिर झुकाये घर में प्रवेश करते हैं। भीतर घुसते ही नौकरानी दो-चार रसभर्त्सना-सूचक शब्द कहती है। जज साहब मुस्कराते हुए पत्नी के कमरे में चले जाते हैं। वहाँ देखते हैं कि पत्नी रुष्ट होकर मान किये बैठी है। वे नानाप्रकार के मीठे वाक्य कह और खुशामद दरामदकर उसे प्रसन्न करते हैं। अब विचार कर देखो कि जिनके सामने वकील बैरिस्टर बात कहते हुए भय खाते थे, विचारालय में जिनका नाम हुजूर और धर्मावतार था, वे ही एक वृद्धा स्त्री के द्वारा बालक के समान तिरस्कृत और अन्तःपुर निवासिनी एक स्त्री द्वारा नाना प्रकार से लांछित और पराभूत होते हैं। स्पष्ट है कि ऐश्वर्य और माधुर्य में कौन श्रेष्ठ और अवलम्बनीय है। वृद्ध सज्जन और अन्यान्य भक्तगण बाबा महाशय के मुख से सरल भाषा में यह सुसिद्धान्त सुनकर प्रसन्न हुए। सन्ध्या बीतने पर आरति-कीर्तन के पश्चात् अभिसार और मिलन-कीर्तन कर महाप्रसाद सेवन कर सबने विश्राम किया।

दूसरे दिन प्रातःकाल बाबाजी महाशय प्रातःकृत्य समापन कर साथियों को लेकर नगर-कीर्तन की तैयारी करने लगे। कटकवासी अनेक लोग आकर उपस्थित हुए। बाबाजी महाशय 'निताइ-गौरांग, निताइ गौरांग, निताइ गौरांग गदाधर' यह पद गाते हुए नगरकीर्तन को निकले। भक्ति की दृष्टि से कटक शहर की तात्कालिक

अवस्था उतनी उन्नत न थी, क्योंकि शहर के अधिकांश लोग आधुनिक सभ्यता के प्रभाव से ब्राह्म और ईसाई धर्मों के प्रति आकृष्ट थे। विशेषत: वैष्णव धर्म के प्रति किसी की बिलकुल आस्था नहीं थी। यहाँ तक कि वैष्णव शब्द सुनते ही वे चरित्रहीन अशिक्षित और असभ्य की धारणा करते थे। आज बाबाजी महाशय का कीर्तन सुन और नानाविध भावभूषणों से विभूषित उनके सुविशाल शरीर के दर्शन कर उनके मन में क्षणकाल के लिए बिजली के समान भक्ति का संचार हुआ। कोई-कोई तो आकर संकीर्तन में योग देने लगे और कोई इच्छा होते हुए भी पद-मर्यादा के विचार से दूर खड़े होकर कीर्तन सुनने लगे। साढ़े दस बजे के लगभग नगर-कीर्तन से प्यारी बाबू के घर वापस पहुँचे। थोड़ी देर विश्राम कर काठजुड़ी नदी में जाकर स्नान किया। नदी से लौटकर भोजनादि कर विश्राम किया। अपराह्न में शहर के अनेक शिक्षित व्यक्ति आकर बाबाजी महाशय से धर्म सम्बन्धी वार्ता करने लगे।

इसी प्रकार परमानन्दपूर्वक पाँच छह दिन बीत गये। रथशत्रा में जब पाँच छह दिन रह गये, तब एक दिन बाबा महाशय ने पुरी जाने का विचार प्रकट किया और स्नेहमयी माँ से बहुत अनुनय विनय कर किसी प्रकार विदा ली। कटकवासी अनेक लोग बाबाजी महाशय के विच्छेदजनित दु:ख से दु:खित हो उनके दर्शन के हेतु स्टेशन पहुँचे। यथासमय गाड़ी आ गयी। बाबाजी महाशय मृदु वाक्यों से सबको आश्वासन दे गाड़ी पर बैठे।

इधर कटक के पोस्टमास्टर साहब ने पुरी पोस्ट-ऑफिस के हेडक्लर्क गोपाल बाबू को बाबा महाशय के आगमन की पहले ही तार से सूचना दे दी थी, जो सारे शहर में फैल चुकी थी। बाबाजी महाशय के अभिन्न कलेवर नवद्वीप दादा के मन में आनन्द नहीं समा रहा था। बार-बार वे जगन्नाथ जी के मन्दिर में जा प्रसादी माला और चरण-तुलसी लेकर आ रहे थे। पूज्यपाद रामकृष्णदास बाबाजी महाराज, कुञ्जविहारी राय, बलराम पट्टनायक, भुवनमोहन साउ, गोपालप्रसाद दत्त, वैष्णवचरण पट्टनायक प्रभृति बाबाजी महाशय के कई अन्तरंग भक्त उनका स्वागत करने के लिए माला, चरण-तुलसी और कुछ प्रसादी मिठाई लेकर जब स्टेशन जाने को तैयार हुए, तब नवद्वीप दादा ने भी निज संगृहीत प्रसादी माला और चरण-तुलसी आदि अपने विशेष कृपापात्र जयगोपालदास नामक एक अठारह उन्नीस वर्ष के लड़के को देकर उसे उनके साथ भेज दिया। नवद्वीप दादा और गोकुल दादा प्रणयाभिमान के कारण बाबा महाशय को लिवाने के लिए नहीं गये। पर अपने प्रतिनिधिस्वरूप जयगोपाल से कह दिया, "तुम थोड़ी दूर अलग खड़े रहना। दादा तुम्हारा नाम लेकर पुकारें, तब उन्हें यह बड़ी माला और किशोरी गोपाल, राधाविनोद, गोविन्द दादा प्रभृति उनके अन्तरंग भक्तों को छोटी मालाएँ पहना देना।" सब स्टेशन पहुँच कर गाड़ी की प्रतीक्षा करने लगे। जयगोपाल मन ही मन सोचने लगा। "मैं कैसे पहचानूँगा? वे महापुरुष हैं। मुझे कभी देखा-जाना नहीं है। वे मेरा नाम लेकर मुझे क्यों कर पुकारेंगे? दादा ने तो कहा है जब तक वे पुकारें नहीं उनके पास मत जाना। उनका कहना भी कैसे टाल सकता हूँ?" देखते-देखते मदमत्त दिग्गज की भाँति भूमण्डल को कम्पित करती हुई गाड़ी स्टेशन पर आ पहुँची। पुरीवासीगण करताल के साथ 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरेकृष्ण हरे राम' नाम-कीर्तन कर रहे थे। गाड़ी के शब्द के साथ-साथ सुमधुर खोल करताल का शब्द और कर्ण-रसायन कण्ठध्वनि सुन सभी के प्राणों में प्रबल वेग से आनन्द की धारा बहने लगी। गाड़ी रुकते ही यात्री उतरने लगे। गोपाल बाबू, बलराम बाबू प्रभृति रेलिंग के बाहर खड़े थे। बाबा महाशय के आदेशानुसार संगीगण एक-एक कर बाहर निकले। जैसे ही ये लोग रेलिंग के बाहर आये बलराम बाबू आदि ने उनके गले में प्रसादी मालाएँ पहनाई। सब बाहर आकर एक निर्दिष्ट स्थान पर जा बैठे। सबके पीछे बड़े बाबाजी महाशय झूमते-झूमते आये। उन्हें देखते ही बलराम बाबू आदि ने आनन्द से विह्वल हो प्रसादी माला उनके गले में डाली। माला के गले में पड़ते ही उनका सारा शरीर पुलकायमान हो उठा। कम्पित कलेवर से उन्होंने सबको प्रेमालिंगन किया और फिर थोड़ा आगे बढ़कर बोले, "जयगोपाल! तुम

भी आये हो? आओ प्रसादी माला दो।" सुनते ही जयगोपाल हाथ में प्रसादी माला लिये प्रेमार्द्र हृदय से शीघ्रता से आगे बढ़ा। बाबा महाशय सुदीर्घकाय थे। जयगोपाल को उनको माला पहनाने में कठिनाई होती। कदाचित् इसी कारण उन्होंने उसे गोद में उठा लिया। जयगोपाल ने तुरन्त माला पहना दी। अन्तरंग भक्तगण समझ गये कि माला ग्रहण करने के साथ-साथ बाबा महाशय ने जयगोपाल को भी सदा के लिए अपना लिया। जयगोपाल ने भी उसी क्षण बाबा महाशय को आत्म-समर्पण कर दिया। बाबा महाशय उसे गोदी लिये-लिये जहाँ और सब साथी बैठे थे, उसी स्थान पर जा अपने सुमधुर सम्भाषण से पुरीवासी भक्तों को आनन्दित करने लगे। पूज्यपाद रामकृष्णदास बाबाजी तरह-तरह का महाप्रसाद सब के मुख में देने लगे।

पुरीवासी भक्तों के आनन्द की सीमा नहीं। बहुत दिनों पश्चात् अपने प्राणों के प्राण, हृदय-सर्वस्व, बड़े बाबाजी महाशय को पाकर वे ऐसे हो रहे हैं, जैसे उनकी मृत देह ने नवजीवन लाभ किया हो। सब आनन्दसागर में डूब रहे हैं। किसी को भी बाह्यस्मृति नहीं। थोड़ी देर में बाबाजी महाशय ने शहर की तरफ जाने की इच्छा प्रकट की। लालटैन और मशालें जलाई गयीं। बाबा महाशय सदल-बल आगे-आगे कीर्तन करते और नाचते-नाचते चले जा रहे थे। क्रमशः श्रीश्रीजगन्नाथदेव के मन्दिर की परिक्रमा कर कुन्टाइवेन्टसाहि पण्डित मठ में पहुँचे। बलराम बाबू प्रभृति ने पहले ही यहाँ इनके महाप्रसाद पाकर विश्राम करने की व्यवस्था कर रखी थी। बड़े बाबा महाशय के आगमन के उपलक्ष में सौ से भी अधिक व्यक्ति वहाँ उपस्थित थे।

उनके आदेशानुसार सबने महाप्रसाद सेवन प्रारम्भ किया। भक्तगण उत्फुल्लित हो नाना-रूप ध्वनि करने लगे। महाप्रसाद सेवन में करीब डेढ़ घण्टा लग गया। सभी आत्मविस्मृत और आनन्द में विभोर थे। कोई भी नहीं चाहता था कि वह अननुभूतपूर्व मिलनानन्द भंग हो, या उस अपूर्व मधुमयी रजनी का शेष हो। परन्तु तुरन्त विचार आया कि रात्रि अधिक हो गयी है, बाबा महाशय को कष्ट होगा। भक्तगण आत्मसुख की इच्छा विसर्जन कर इस विचार को प्रकट करने लगे। क्रमशः सब अपने-अपने स्थान को चले गये। बाबाजी महाशय ने रात्रि में वहीं शयन किया।

सबेरा होते-होते बहुत-से भक्तों का समागम हो गया। बाबा महाशय नामकीर्तन करते-करते नरेन्द्र सरोवर की ओर स्नान करने के लिए चले। स्त्री, पुरुष, बालक, बृद्ध, युवक जिसके भी कान में सुमधुर कीर्तनध्वनि प्रवेश करती थी वही चुम्बक-पत्थर से आकृष्ट हुए लोहे की तरह उस ओर भाग पड़ता था। सभी मानो एक अभिनव आनन्द-सागर की उत्ताल तरंगों में गोते लगा रहे थे। कैसा मधुर प्रेमराज्य था। छोटे-बड़े ऊँच-नीच का कोई विचार नहीं था। जो एक बार बाबा महाशय को दण्डवत् करता उसी को वे हँसते-हँसते प्रेम से आलिंगन कर लेते। करीब आठ बजे नरेन्द्र सरोवर पहुँचे। आज नरेन्द्र सरोवर में मानो प्रेम का हाट लगा है। मानो चार सौ वर्ष के पश्चात् आज गौरलीला फिर से प्रकट हुई है। ऐसा लगता है कि स्वयं महाप्रभु भक्तों के साथ रसालाप, कुशलप्रश्न, नरेन्द्र स्नान और जलकेलि द्वारा सुखसागर में स्वयं डूब रहे हैं और दूसरों को डुबा रहे हैं। नरेन्द्र सरोवर में स्नान कर चुकने पर जैसे ही बाबाजी महाशय ने जगन्नाथदेव के मन्दिर जाने की इच्छा प्रकट की, वैसे ही भक्तगण मदमत्त हाथी की भाँति आनन्द से हुँकार करते हुए मन्दिर की ओर चल पड़े। 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' नाम कीर्तन करते-करते और नाचते-नाचते श्रीश्रीजगन्नाथदेव के सिंहद्वार पर पहुँचे और गरुड़स्तम्भ के निकट दण्डवत् कर मन्दिर में प्रवेश किया।

जगमोहन में कीर्तन

थोड़ी देर में बाबा महाशय जगमोहन में जा पहुँचे। देखते हैं कि जगन्नाथ जी के पट बन्द हैं। केवल चित्रपट के दर्शन हो सकते हैं। पर वह भी इस समय सेवा के कारण बन्द हैं। यह देख उनके मन में अभिमान जागा। आँखों में जल नहीं था, पर आखें लाल थीं। मुख में शब्द नहीं था, पर अधरोष्ठ विकम्पित थे। दोनों गाल रक्तवर्ण थे। वे भाव में गर-गर हो न जाने

क्या कहना चाहते थे। एकदम कण्ठ रुद्ध हो गया। थोड़ी देर में एक दीर्घ निश्वास के साथ गाने लगे—

भावेर आवेशे, गौरांग आमार,
प्राणनाथे ना देखिया।
विरहेर भरे, डाकिया बंधुरे,
कहे बेयाकुल हइया।।[1]
बहु दिन परे, देखिते तोमारे,
आइनु तोमार ठाँइ।
तुया व्यवहार, बुझिते एबार,
आमार शकति नाइ।।[2]
गृह छाड़ाइया, वनवासी कैले,
रूपे गुने भुलाइया।
ओहे मनोचोर, एबे हैनु पर,[3]
निजे रैले लुकाइया।।
मनेर बेदन[4], काहारे[5] कहिब,
के बुझिवे मोर दुःख।
ओ चाँदबदने, ना हेरि सघने[6],
बिदरिया जाय बुक।।[7]
आशाय आशाय, एसेछिनु बन्धु,
तुया देखिबार तरे।
कि दोषे विधाता, ए बाद साधिल,
ए दुःख बलिब कारे।।[8]
अचल बलिया, उचले चढ़िनु,
पड़िनु अगाध जले।
लछमी चाहिते, दारिदे घेरल,
माणिक हारानु हेले।।[9]
रसमय बलि, के बले तोमारे,
शुनह नागरचाँदा।
छाड़िया स्वजन, गृह परिजन,
हइनु तोमारइ बाँधा।।
जाति कुलशील, किछु ना गणिनु,
गुरुजन गृहकाज।
धरम करम, सब तेयागिनु,
सती कुलवती लाज।।
दिवस रजनी, गुण गुनि गुनि,
हइनु बाउलि पारा[10]।
तबु रसमय, बुझिते नारिनु,
तोमार प्रेमेर धारा।।
दयामय बलि,[11] जाहारे भजिनु,[12]
तार एतो निठुरता।[13]
रमणी लम्पट, नागरशेखर,
तार मुखे नाहि कथा।।
अलपे अलपे, मू जदि जानिताम,
तबे कि एमन करि।[14]
सुखेर लागिया, पीरिति करिया,
(एखन) झूरिया झूरिया मरि।।[15]
स्वपनेओ कभु, भाबि नाहि जाहा,
ताहाइ घटिल काले।[16]
निदारुन विधि, ए हेन अवधि,
लिखेछिल मोर भाले।।
भालो हैल कान, दिला समाधान,[17]
आर बा बलिब कि।
जमुनार जले, ए तनु त्यजिब,
निचय करियाछि।।[18]

गाते-गाते कण्ठ बिलकुल रुंध गया। अश्रुजल से मुख और वक्षस्थल भीग गया। संगीगण सब अधीर हो गये। महापुरुष की शक्ति से सभी के हृदय में एक-सा भाव छा गया। सबकी आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी, किसी को भी देह की सुध न रही। सब का कण्ठ गद्गद हो गया। ऐसा लगा कि कोई भी इस राज्य में न रहा। सबको प्रतीत होने लगा कि

1. प्राणनाथ को न देखकर गौरांग महाप्रभु विरहाकुल हो भावावेश में कहते हैं। 2. बहुत दिन बाद तो तुम्हें देखने आयी हूँ तुम्हारे निकट, पर तुम्हारा यह कैसा व्यवहार है, समझने की शक्ति मुझमें नहीं है। 3. अब मैं पराई हो गयी। 4. वेदना, 5. किससे, 6. तुम्हें भली प्रकार न देख, 7. मेरी छाती फटी जा रही है। 8. हे बन्धु, मैं आयी थी तुम्हें देखने की आशा लेकर। विधाता ने न जाने किस दोष के कारण आशा पूरी नहीं की। 9. अचल जानकर पहाड़ पर चढ़ी, पर अगाध जल में जा पड़ी। चाही थी लक्ष्मी, आ घेरा दारिद्र्य ने। 10. अत्यन्त पागल हो गयी। 11. दयामय जानकर। 12. जिसका भजन किया। 13. उसकी ऐसी निष्ठुरता। 14. मुझे अल्पमात्र भी इसका आभास होता तो क्या मैं ऐसा करती, 15. सुख के खातिर प्रीति जोड़ी और रो-रोकर मर रही हूँ। 16. जो स्वप्न में भी नहीं सोचा था वही आज हो गया। 17. हे श्रीकृष्ण अच्छा हुआ जो तुमने समाधान कर दिया। 18. जमुना जल में शरीर त्याग करने का अब मैंने निश्चय कर लिया।

श्रीगौरांगचाँद श्रीश्रीजगन्नाथदेव को न देख विरहिणी, महाभाव-स्वरूपिणी, रसमयी श्रीराधिका के भाव में विभोर हो प्रणयरोष के कारण प्राणनाथ को सम्बोधन कर न जाने क्या-क्या कह रहे हैं। पण्डा, पुजारीगण यह सब देख-सुन अवाक् हैं। बहुत दिनों बाद एक प्रेम की नदी न जाने कहाँ से आकर आपामर स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध सभी को विरह-सागर की उत्ताल तरंग-माला में ले जाकर कभी तैराने और कभी डुबाने लगी। सभी विवश हो गये। कैसी मधुर प्रेम की लीला थी। हठात् श्रीमन्दिर का कपाट खुला। सब उत्कण्ठा के साथ दर्शन के हेतु आगे बढ़े। बड़े बाबाजी महाशय दोनों हाथों से आँसू पोंछकर झूमते-झूमते चले। पहले जगन्नाथ जी के चित्रपट के दर्शन हुए। विरह-ज्वाला कुछ शान्त हुई। एक पण्डे ने जगन्नाथ जी की प्रसादी माला लाकर बाबा महाशय के गले में डाल दी। माला का स्पर्श होते ही उनका शरीर पुलकित हो उठा। अश्रुधार से वक्षस्थल भीगने लगा। थोड़ी देर में मन ही मन न जाने क्या विचार करते हुए बोल उठे 'अच्छा, मोदेर जा हय होबे, तुमि केन दुःख पाबे, सुखे थाक ओहे सुखमय।'* और यही गाते-गाते मन्दिर के बाहर आये और स्नानवेदी की ओर बढ़े। वहाँ नाना प्रकार का महाप्रसाद सजा रखा था। बलराम बाबू ने अपने दुशाले से जगह साफ कर बाबा महाशय को वहाँ बिठा दिया। नये-नये बहुत-से भक्त आकर चारों ओर से उन्हें घेरकर बैठ गये। वे सबसे प्रेमालाप करने लगे; इतने में बलराम सारा प्रसाद एकत्र कर सबको परोसने लगे। पूज्यपाद श्रीरामकृष्णदास बाबाजी ने कुछ महाप्रसाद हाथ में ले बड़े बाबा महाशय के मुख में दिया। उन्होंने भी कुछ महाप्रसाद लेकर उनके मुख में दिया। इस प्रकार प्रायः सभी भक्तगण एक दूसरे को महाप्रसाद खिलाने लगे। महाप्रसाद सेवानन्द में एक घण्टा बीत गया। ग्यारह बजे के करीब उन्हें समुद्र स्नान को जाने की धुन उठी। किसी के वश की बात न थी कि उनकी मनोगति को रोकता। एक पण्डे ने कहा, 'कल नवयौवन रूप के दर्शन होंगे।'

बाबाजी—किस समय?

पण्डा—शायद दस बजे हों।

बाबाजी—आशा है दर्शन करूँगा। आगे आपके आकर्षण और जगन्नाथदेव की इच्छा की बात है।

इसी समय माधव पशुपालक नामक एक पण्डा बोला 'देखिये, आप जब पुरी में नहीं रहते जगन्नाथदेव उदास रहते हैं। मेरा विश्वास है कि आप श्रीजगन्नाथदेव के कोई विशेष अन्तरंग हैं। आपका कीर्तन सुनकर हमें ऐसा लगता है कि श्रीचैतन्य महाप्रभु स्वयं हम लोगों को कृतार्थ करने के लिये फिर से अवतीर्ण हुए हैं।' और भी बहुत-से लोगों ने तत्काल इस बात का समर्थन किया। बाबा महाशय हाथ जोड़ बोले, "निताइ निताइ! ऐसी बात न कहिये। मैं तो उनका दासानुदास हूँ।" इस प्रकार कथोपकथन करते-करते सभी समुद्र की ओर चल दिये। समुद्र स्नान कर घर लौटते समय महात्मा विहारीदास पुजारी इन लोगों को गंगामाता मठ में महाप्रसाद के लिये ले गये। इनके साथ करीब पचास आदमी थे। सबने बड़े आनन्द से महाप्रसाद सेवन किया। गंगामाता मठ के महन्त पण्डित श्रीयुत माधवदास बाबाजी महाशय बड़े बाबाजी महाशय के पास बैठकर नानारूप इष्टालाप करने लगे। कोई चार बजे सब बलराम महान्ति के घर गये। बलराम ने पहले से ही इनके ठहरने के लिए हरिश्चन्द्र बसु का निवास स्थान ठीक कर रखा था। हरिश बाबू इस समय कलकत्ते में थे। इसलिए उनके यहाँ ठहरने की विशेष सुविधा भी थी। ये लोग परमानन्दपूर्वक उस दुमंजिले मकान में रहने लगे।

तीसरी बार नवयौवन दर्शन और हरिवल्लभ बाबू के घर कीर्तन

आज श्रीश्रीजगन्नाथ जी का नवयौवन दर्शन होगा। जो भक्तगण उन्हें देखे बिना एक दिन भी नहीं रहे सकते, उनका असह्य दुःख देखकर भी न जाने क्यों इतने दिन से छिपे जगन्नाथदेव को आज अपने भक्तों की याद हो आई है और उनके दुःख के कारण उनके प्राण रोने लगे हैं। भक्तवत्सल प्रभु से क्या अब रहा जा सकता है? ग्यारह बज गये हैं। चारों ओर

* मेरा जो होना होगा सो होगा, तुम क्यों दुःख पाओ? तुम रहो सुख से हे सुखमय देखकर।

लोगों की भीड़ है। सबके नेत्र उत्कण्ठापूर्वक मन्दिर के द्वार की ओर लगे हैं। सूर्यदेव की किरणों के ताप के साथ-साथ मानो भक्तों के अनुराग की तीव्रता बढ़ते-बढ़ते अब असह्य हो गई है। इसी समय शान्तिमय श्रीजगन्नाथदेव ने मृदु-मधुर, मुसकाते, प्रेम रस से सने मुख-चन्द्रमा के दर्शन करा सबके हृदय की ताप बुझा दी और अपने बाँके नयन और कुटिल कटाक्ष से जनसाधारण को प्रेमसागर में डुबा दिया। शंख, घण्टा, मृदंग, मंजीरा, भेरी, तूरी आदि की ध्वनि और भक्तों की गगनभेदी हरिध्वनि से त्रिभुवन परिव्याप्त हो गया। किसी के हृदय में आनन्द समा नहीं रहा था। बाबाजी महाशय अभी तक अपनी भक्तमण्डली के साथ 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' कीर्तन कर रहे थे। श्रीश्रीजगन्नाथदेव का चाँद-वदन देखते ही उनका मन भावराज्य में प्रवेश कर गया और उन्होंने गाना प्रारम्भ किया—

जगन्नाथेर मुख हेरि[1] गौर किशोर।
राधिकार भावावेशे हइल विभोर।।
स्वरूपेर कर धरि कहे धीरि धीरि।
कि मोहन भंगि चेये देख सहचरी।।
कालिया बरनखानि केबा निरमिल।
अलका तिलका दिया केबा साजाइल।।
भुरु जुग नहे जेन कामेर कामान।[2]
आँखिठारे अबलार निल कुलमान।।[3]
नासाय मुकुता दोले[4] मुखे मृदु हासि।
हेरि सती कुलवती हते चाय दासी।।
कहिते कहिते गोरार भावान्तर हइल।
राजवेश निरखिया व्याकुल हइल।।
चल वृन्दावने बन्धु चल वृन्दावने।
गोपीसने रासलीला कर कुञ्जवने।।
व्रजवासीर दुःख हेरि विदरये[5] हिया।
पशु पाखी काँदे नाथ तोमा ना देखिया।।
तृण नाहि खाय गाभी वत्स नाहि हेरे।
अधोमुखे निरवधि तुया लागि झुरे।।[6]
काँदिया[7] हइल अन्ध यशोमति माइ।
तुया नाम बिनु तार आन कथा नाइ।।
कानु कानु बले काँदे जत सखागन।
सान्त्वना करये व्रजे नाहि हेन जन[8]।।
व्रजवासीगण तुया[9] परान समान।
केमने[10] भूलिया रइले कठिन पराण।।
वृन्दावने जे आनन्द-सिन्धु उथलय।
इंहा एक बिन्दु नाहि मोर मने हय।।
वृन्दावने गोपसंगे नटवर वेश।
इंहा हाथि घोड़ा रथ देखि राजवेश।।
व्रजे वंशीधारी इंहा सदा दंडधर।
पात्र मित्र भृत्य, भये काँपे निरन्तर।।
प्रेमहीन स्थाने भय मर्यादा संकोच।
प्रेमेर स्वभाव साम्यभाव निःसंकोच।।
ताइ बलि जाहाँ नाहि भयेर संचार।
ताहाँ चल उथलिबे प्रेमेर पाथार[11]।।
एत बलि मुख पाने चाहिया रहिल[12]।
आश्वास पाइया गोरा नाचिते लागिल।।

गाते-गाते बाबाजी महाशय आनन्द में मधुर नृत्य करने लगे। जगमोहन आनन्द से परिपूर्ण हो गया। एक अपूर्व भाव था—हास्य भी, रोदन भी। हास्य की हिल्लोल और आनन्द की तरंग में डुबकियाँ लगाते-लगाते नेत्रों से जल बह रहा था, प्राण व्याकुल होकर पुकार रहे थे—'काँहा करों काँहा जाओं, काँहा गेले तोमा पाओं' इत्यादि। नेत्रों से निरन्तर अश्रुधार बह रही थी। हृदय में स्फूर्ति थी और मुख पर हँसी। वे आनन्द में अधीर हो उद्दण्ड नृत्य कर रहे थे। विरह और मिलन, यह दोनों भाव एक साथ दृष्टिगोचर हो रहे थे, या क्षण-क्षण में बदल कर एक दूसरे का स्थान ले रहे थे। इस प्रकार कुछ समय उद्दण्ड नृत्य कीर्तन कर बाबा महाशय कोइल-बैकुण्ठ नामक मन्दिर के भीतर एक निर्जन स्थान में जा बैठे। इसी बीच बहुत से भक्त नाना प्रकार का महाप्रसाद लेकर उपस्थित हुए। बलराम बाबू यथायोग्य महाप्रसाद एकत्र कर सबको परोसने लगे। उपस्थित

1. देखकर, 2. दोनों भौंहें कामदेव के बाण के समान, 3. नेत्रों के कटाक्ष से मुझ अबला का कुल-मान ले लिया। 4. हिल रहा है। 5. फटा जाता है। 6. मुख नीचाकर निरन्तर तुम्हारे कारण रोती हैं। 7. रो-रोकर। 8. सान्त्वना दे सके ऐसा व्रज में कोई भी नहीं है। 9. तुम्हारे, 10. कैसे, 11. सागर, 12. इतना कह मुख की ओर देखते रहे।

महाप्रसाद से सबकी उदरपूर्ति हो गयी। प्रसाद पाकर सबने वहीं विश्राम किया। तीसरे पहर नरेन्द्र सरोवर में स्नानादि कर सब निवास स्थान को लौट आये।

उस दिन रात्रि में हरिवल्लभ बाबू वकील के यहाँ सबका निमन्त्रण था। सन्ध्या के बाद ही ये 'भज निताइ गौर राधेश्याम। जप हरे कृष्ण हरे राम।।' कीर्तन करते-करते हरिवल्लभ बाबू के मकान पर पहुँच गये। बैठकखाने में बहुत-से प्रतिष्ठित लोग उपस्थित थे। श्रीरामकृष्ण परमहंस सम्प्रदाय के कई संन्यासी भी थे। सभी की इच्छा थी बड़े बाबा महाशय का कीर्तन सुनने की। किसी-किसी के मन में अनेक प्रकार के प्रश्न पूछने की इच्छा थी। किसी ने यह जानने के अभिप्राय से कि बाबा महाशय वेदान्त में विश्वास करते हैं या नहीं बहुत से प्रश्न पूछने के लिये स्थिर कर रखे थे। हरिवल्लभ बाबू ने मन ही मन संकल्प कर रखा था यह परीक्षा करने का कि इनका किसी धर्म या धार्मिक व्यक्ति के प्रति विद्वेष-भाव है या नहीं। इस प्रकार सबके भिन्न-भिन्न भाव थे। कोई किसी के मनोभाव को जानता नहीं था। सबने सोच रखा था कि कीर्तन समाप्त होते ही अपने-अपने प्रश्न पूछेंगे।

बाबाजी महाशय आधा घण्टा उद्दण्ड नृत्य-कीर्तन करने के पश्चात् बैठ गये। क्षण भर बाद ही किसी के कुछ कहने-सुनने की अपेक्षा न कर फिर कीर्तन करने लग गये। हम पहले ही कह चुके हैं कि किसी प्रकार की पद-पदावली मुखस्थ करके कीर्तन करने का इतना कभी अभ्यास न था। जिस समय मन में जो स्फूर्ति होती, उसी के अनुसार कीर्तन करने लगते। आज का कीर्तन रस-कीर्तन नहीं था। कीर्तन प्रारम्भ किया, जो वेदान्त सम्बन्धी विचारों से परिपूर्ण था। ब्रह्म, आत्मा एवं भगवान् का भेदाभेद ज्ञान और भक्ति का तारतम्य, ज्ञान के कितने प्रकार हैं, प्रकृत ज्ञानी का आचरण किस प्रकार का होता है, कीर्तन में इन्हीं सब सिद्धान्तों की सुविवेचना होने लगी। वैदान्तिक महात्मागण, जो अभी तक दूर बैठे थे, पास खिसक आये। प्रश्न करने का न किसी को अवकाश था न इसकी आवश्यकता ही रही। बाबा महाशय त्रिपदी, चौपदी और पयार छन्दों में आप ही प्रश्न करते और आप ही उत्तर देते। पहले तो किसी-किसी को ऐसा लगा कि इस भाव का शायद कोई पद्य ग्रन्थ है, जो उन्होंने कण्ठस्थ कर रखा है। परन्तु थोड़ी देर बाद सबकी समझ में आ गया कि उनकी यह धारणा निराधार थी। यह तो उनकी भगवत्‌दत्त शक्ति का ही प्रभाव था। सब लोग विस्मित और स्तम्भित हो कीर्तन सुन रहे थे। उत्फुल्लित हो रहे थे, क्योंकि उन्होंने बहुत-से शास्त्रों का अध्ययन कर जिन प्रश्नों को कठिन और पूछने योग्य समझा था, उन्हीं प्रश्नों का सुन्दर और सरल भाषा में सुर और ताल के साथ उन्हें सन्तोष जनक उत्तर मिल रहा था। चारों ओर 'बलिहारी' 'वाहवा' और हरिध्वनि। एक-एक कर सबके प्रश्नों का उत्तर हो गया। अन्त में सर्वधर्मसमन्वय -सूचक 'अद्वेष्टा सर्व-भूतेषु', 'अहिंसा परमोधर्मः', 'अहंकार विमूढ़ात्मा कर्ताहमिति मन्यते', 'समः सर्वेषु भूतेषु', 'सर्वधर्मान्‌परित्यज्य मामेकं शरण व्रज', इत्यादि भगवद्‌गीता के महावाक्यों को लेकर कीर्तन होने लगा। इससे हरिवल्लभ बाबू और उनके कई वकील मित्रों के मन का सन्देह भी मिट गया। इतना ही नहीं, उनके नेत्रों से आनन्दाश्रु बहने लगे और वे अपने शिक्षाभिमान को तिरस्कृत करने लगे।

इस प्रकार रात्रि के साढ़े ग्यारह बजे तक कीर्तन होता रहा। फिर सब मिलकर पहले की भाँति 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' कीर्तन और उद्दण्ड नृत्य करने लगे। इस बार कोई कीर्तन किये बिना न रहा। बाबू लोग, संन्यासी, वैरागी सब एक साथ कीर्तन करते-करते हाथ से ताली बजा-बजाकर नृत्य करने लगे। बारह बज गये, पर किसी की कीर्तन समाप्त करने की इच्छा न हुई। बाबा महाशय नें मानो भक्तों के थक जाने के भय से कीर्तन समाप्त किया। सब अपने-अपने प्रश्नों का यथोचित उत्तर पाकर आनन्दित हो बाबा महाशय को प्रणाम कर अपना -अपना मनोभाव व्यक्त करने लगे। किन्तु बाबा महाशय का वही एक भाव था। वे प्रत्येक बात से निताइचाँद का सर्वान्तर्यामित्व, सर्वज्ञत्व और सर्वेश्वरत्व स्थापन कर अपना दीन भाव पोषण कर रहे थे। सब लोग परमानन्द-पूर्वक प्रसाद ग्रहण कर और बाबाजी महाशय को निकट से दण्डवत कर हरिनाम करते-करते अपने घर वापस गये।

रथयात्रा और चैतन्यदास का अप्राकट्य

आज श्रीजगन्नाथदेव की रथयात्रा है। चारों ओर चहल-पहल है। बाबाजी महाशय प्रातःकृत्य समापन कर भक्तमण्डली सहित कीर्तन करते-करते श्रीजगन्नाथ देव के मन्दिर में जाकर उपस्थित हुए। कुछ देर जगमोहन में कीर्तन हो चुकने के पश्चात् बलभद्रदेव रथ पर विराजमान हुए। क्रमशः सुभद्रादेवी और सुदर्शनचक्र ने रथ को सुशोभित किया। इनके पश्चात् थोड़ी ही देर में जगन्नाथदेव झूमते-नाचते, नर-नारियों का मन हरण करते सहास्य वदन रथ के निकट आये। बाबाजी महाशय अभी तक बाट जोह रहे थे। जैसे ही जगन्नाथदेव का चन्द्रवदन दृष्टिगोचर हुआ, उन्होंने भावावेश में सुमधुर नृत्य करते-करते पद-कीर्तन आरम्भ किया—

भावेते विभोर, गौर किशोर,
नव नटवर राय।
स्वरूपेरे धरि, कहे धीरि-धीरि,
देखबि सजनी आय।।
आसिछे कालिया, हेलिया दूलिया,
रसमय गुणधाम।
चरने नूपुर, बाजिछे मधुर,
नवीन नाटुया ठाम।।
कटिते किंकनी, बाजे किनि-किनि,
पीतवास परिधान।
गले वनमाला, करियाछे आला,
रसिक नागर कान।।
बहुदिन परे, जाबे व्रजपुरे,
व्रजेन्द्रनन्दन हरि।
पाइ रसराज, गोपिनी समाज,
राखिबे हृदय भरि।।

आनन्द की सीमा नहीं। भीड़ का ठिकाना नहीं। जगन्नाथदेव झूमते-झूमते एक तूलिका से दूसरी तूलिका पर जा रहे थे। साथ ही उलुध्वनि, जय-ध्वनि, शंख-घण्टा-मृदंग-मजीरा-ध्वनि से दिग्मण्डल विकम्पित हो रहा था। धीरे-धीरे जगन्नाथदेव रथ पर आ विराजे। कैसी सुन्दर रथ की शोभा है। रथ के ऊपर मणि-माणिक्य-जड़ित चन्द्रातप बंधा है। नाना प्रकार के झण्डे फहरा रहे हैं। चारों ओर बहुमूल्य वस्त्रादि शोभा पा रहे हैं। झांझ, काँसर, भेरी, तूरी, मृदंग, मंजीरा, शंख, घण्टा प्रभृति नाना प्रकार के बाजे बज रहे हैं। पुरी के राजा का प्रतिनिधि-पण्डा सोने की झाड़ू से रथ के सामने झाड़ू लगाता जा रहा है। निर्दिष्ट समय पर कालाबेठियागण ने आकर रथ की रस्सी सम्हाली। इधर यात्रीगण भी रथ खींचने के लिए व्यस्त हो रहे थे। चारों ओर की भीड़ रथ-मार्ग में समा नहीं रही थी। जगन्नाथदेव के मुख की ओर देख कोई हँसता था, कोई फूट-फूटकर रोदन करता था, कोई आनन्द में अधीर हो नृत्य करता था। देखकर बोध होता था कि श्रीकृष्णचन्द्र द्वारका से व्रज को जाने के लिए रथ पर आरूढ़ हैं, इसीलिए द्वारकापुरवासी भावी विरह की चिन्ता से व्याकुल हो चारों ओर आर्तनाद कर रहे हैं।

राज्यकर्मचारियों ने बहुत चेष्टाकर रथ के आगे की भीड़ को थोड़ा हटाया। तब रथ खींचने का कार्य प्रारम्भ हुआ। दाऊजी मानो नन्दबाबा के घर जाने के लिए अति व्याकुल हो रहे थे। उनके रथ की रस्सी पकड़ते ही वह धड़-धड़ शब्द कर चल पड़ा और बलगण्डी पर जा पहुँचा। बलगण्डी पर मानो बलभद्रदेव को भाई की याद आई, जो पीछे रह गये थे। उन्हें साथ लेने के लिए वे थोड़ा रुक गये। बड़े भाई को जाते देख सुभद्रा भी उनके पीछे शीघ्रता से जाने लगीं। यह देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो जाते समय लक्ष्मी से कुछ से कुछ गुप्त वार्तालाप करने के हेतु जगन्नाथ जी ने सुदर्शनचक्र को भी बहन के साथ कर भाई के पास भेज दिया। थोड़ी ही देर में सुभद्रा भाई के पास पहुँच गईं, परन्तु जगन्नाथ जी अभी वहीं हैं। शायद लक्ष्मीदेवी उन्हें किसी प्रकार जाने की अनुमति नहीं दे रही हैं। इस अवसर पर बाबा महाशय को सरल हृदयवाली व्रजगोपियों की मनोवेदना का अनुभव होने लगा और वे गाने लगे—

जगन्नाथे हेरि आमार गोरा गुनमनि।
भावावेशे बले जेन राइ कमलिनी।।
वृन्दावने चल बन्धु विलम्ब ना कर।
व्रजवासीर दशा जाइ नयने नेहार।।

अन्न नाहिं खाय केह पानी नाहिं पिये।
आशाय आछये प्राण पथ निरखिये।।
तृण नाहिं खाय गाभी नाहिं जाय दूरे।
ऊर्ध मुखे तुया लागि दिवानिशि झूरे।।
ना चराय गाभी केह ना करे दोहन।
दुहिलेओ दुग्ध नाहि करे आवर्तन[1]।।
आवर्तित दुग्ध केह दधि नाहि करे।
दधि करिलेओ केह ना जाय नगरे।।
दधि करि व्रजनारी ना करे मन्थन।
मथिलेओ ननी[2] लेइ करये रोदन।।
व्रजभूमि हइल बंधु शोकेर आगर।
हासि विनिमये[3] सदा शुनि हाहाकार।।
तुया बिनु व्रजे कारो ना रबे[4] जीवन।
एक बार व्रजे चलो व्रजेर जीवन।।

गाते-गाते उच्च स्वर से रोदन करने लगे। रोने के स्वर से चारों दिशाएँ गूँज उठीं। उसी समय मानो जगन्नाथदेव सोते से जाग पड़े। मन वृन्दावन की ओर चल पड़ा। रथ भी धीरे-धीरे उसी ओर जाने लगा। आनन्द-समुद्र उमड़ पड़ा। उलुध्वनि, जय-ध्वनि, शंख-घण्टा-मृदंग-मजीरा-भेरी-तुरी प्रभृति की ध्वनि से चारों दिशाएँ गूंज उठीं। आज वृन्दावनचाँद वृन्दावन में उदित होंगे, व्रज का विरह-अन्धकार मिट जायगा, यह जानकर भक्तों के मन में आनन्द नहीं समा रहा है और जगन्नाथदेव की ओर देख-देखकर वे न जाने क्या-क्या कह रहे हैं। जगन्नाथदेव भी झूमते-झूमते कभी दाहिने और कभी बायें दृष्टिपात करते जा रहे हैं। आज सभी लोग एक नये भाव से विभावित हो रहे हैं। सभी एक नये आनन्द से उन्मत्त हो मधुर नृत्य कर रहे हैं। बाबाजी महाशय को इस अवसर पर सपार्षद गौरांगदेव के मधुर कीर्तन का स्मरण हो आया। गौरांगचाँद तो राधारानी हैं और उनके भक्त सब व्रज-परिकर। आज वे सब मिलकर कृष्णचन्द्र को वृन्दावन ले जा रहे हैं और भावावेश में आनन्द से नृत्य कर रहे हैं। इसलिए उन्होंने गाना प्रारम्भ किया—

नाचि नाचि जाय, गोरा नटराय,
भावावेशे ढुलि ढुलि।
चारिदिके कत, भक्त शत शत,
नाचे हरि हरि बलि।।
नाचे नित्यानन्द, प्रेमानन्द कन्द,
गोरामुख निरखिया।
नाचये अद्वैत, श्रीवासादि जत,
आनन्द विभोर हइया।।
श्रीअच्युतानन्द, स्वरूप रामानन्द,
नाचे मुकुन्द मुरारि।
राय भवानन्द, सेन शिवानन्द,
काशी मिश्र आदि करि।।
सार्वभौम संगे, नाचे मनोरंगे,
वासुदेव वक्रेश्वर।
नाचे हरिदास, काला कृष्णदास,
वाणीनाथ गदाधर।।
श्रीकमलाकर, दास गदाधर,
नाचे उद्धारण दत्त।
वैद्य विष्णुदास, श्रीगोपालदास,
नाचे प्रेमे हइया मत्त।
नाचे रामदास, आर गौरीदास,
अभिराम आदि करि।
नाचे नरहरि, गोरामुख हेरि,
भावावेशे घुरिफिरि।।
जगन्नाथ हेरि, आपना पाशरि,
नाचये भकतगण।
हरि बोल ध्वनि, बिनु नाहि शुनि,
सबे आनन्दे मगन।।

आनन्द की अवधि नहीं। स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध सभी भावतरंग में डुबकियाँ लगा रहे हैं। जगन्नाथ भी मानो आनन्द में झूमते हुए धीरे-धीरे चले जा रहे हैं। मानो आनन्द का बाजार लगा है। धीरे-धीरे जगन्नाथदेव राजबाड़ी के सामने आ पहुँचे। वहाँ पंक्तिभोग लगा। बाबा महाशय के मन में न जाने कौन-सा भाव उदय हुआ। साथियों को चुपचाप छोड़ उदास भाव से धीरे-धीरे रामचण्डी गली में प्रवेश कर स्थानीय पोस्टऑफिस के हेड क्लर्क बाबू गोपालप्रसाद दत्त महाशय के बरामदे में जा बैठे। अति गम्भिर भाव था।

1. गर्म नहीं करता, 2. मक्खन, 3. निमित्त, 4. रहेगा।

मुख देखकर लगता था कि किसी गम्भीर चिन्तासागर में निमग्न हैं। रास्ता चलने वाले लोगों को किसी को उनकी तात्कालिक अवस्था देख कुछ कहने या पूछने का साहस नहीं हो रहा था।

आज आठ मास हुए उनके अन्तरंग भक्त श्रीचैतन्यदास रोगी अवस्था में गुरप नगर से इनका साथ छोड़ पुरी पधारे थे। उन्हें बड़े हरिबाबू के पुराने डाकघर के पश्चिम भाग के एक कमरे में ठहराकर उनकी सेवा शुश्रूषा हो रही थी। वे सदा अपने को दासी समझ गोपी भाव से उपासना करते थे। गुरु में उनकी अनन्य निष्ठा थी, गुरुसेवा ही उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य था। गुरु के अतिरिक्त वे और कुछ भी नहीं जानते थे। श्रीनिवास आचार्य प्रभु के प्रति रामचन्द्र कविराज की जिस प्रकार की निष्ठा थी श्रीचैतन्यदास की भी गुरु के प्रति ठीक उसी प्रकार की निष्ठा थी। शयन में, स्वप्न में, आहार-विहार में, आलाप-विलाप में उनके मुख से गुरु के अतिरिक्त और कोई शब्द सुना जाता था। उनकी सेवा के लिए नवद्वीप दादा ने जयगोपालदास को नियुक्त किया था। जयगोपाल भी नवद्वीप दादा के आदेश से प्राण से उनकी सेवा करते थे। चैतन्यदास की कृपा ही जयगोपाल का एकमात्र अवलम्ब था। चैतन्यदास से ही बाबा महाशय के पार्षदों में गोपीभाव की उपासना चली थी।

आज चैतन्यदास की अवस्था बहुत शोचनीय है। उनके जीवन की आशा भी करीब-करीब जाती रही है। जयगोपाल जब उन्हें पथ्य देने के लिए निकट गये तो देखा कि उनकी अवस्था बहुत खराब हो रही है। जयगोपाल बालक ही थे। इसलिए उनकी अवस्था देखकर बहुत घबरा गये। उसी समय चैतन्यदास ने बहुत प्रकार से जयगोपाल को सान्त्वना देते हुए कहा, "तुम्हारे भय का कोई कारण नहीं। तुम एक बार मुझे प्राणप्रियतम श्रीगुरुदेव के दर्शन करा दो। तभी मैं जानूँगा कि तुम मेरे परम बन्धु हो। मेरे मन में बड़ी अभिलाषा है कि अन्तिम समय श्रीगुरुदेव के चरण दर्शन करते-करते शरीर त्याग करूँ। मैं प्रभु के चरणों में प्रार्थना करता हूँ कि वे स्वप्न में भी दुष्प्राप्य अप्राकृत वस्तु तुम्हें प्रदान करें। तुम्हें और क्या दे, सकता हूँ? गुरुदेव ने कृपाकर मुझे जो भाव रत्न प्रदान किया था, उसे मैं अकपट हृदय से तुम्हें प्रदान करता हूँ। तुम यह मधुर भाव अवलम्बन कर कुछ दिन प्राकृत जगत् में रह अप्राकृत चिन्मय राज्य की परम सुखमय वस्तु का आस्वादन करो।" इतना कहते-कहते वे नीरव हो गये।

इधर नवद्वीप दादा रथ के आगे बाबा महाशय को न देख कर घर वापस आये। वहाँ भी उन्हें न पाकर तुरन्त चैतन्यदास के पास गये। वहाँ देखा कि उनकी अवस्था बहुत शोचनीय हो रही है। जयगोपाल से जब सारा वृत्तान्त सुना तो फिर बाबाजी महाशय की खोज में निकल पड़े। कुछ ही दूर जाकर देखा कि वे गोपाल बाबू के बरामदे में उदास बैठे हैं और किसी विशेष चिन्ता में निमग्न हैं। निकट जाकर बोले, "चैतन्य की अवस्था ठीक नहीं है। वह एक बार आपके दर्शन करने के लिए व्याकुल हो रहा है।" बाबा महाशय निरुत्तर। नवद्वीप दादा किंकर्तव्यविमूढ़ हो फिर चैतन्य के पास लौट आये और जयगोपाल को उनके पास भेज दिया। स्वयं चैतन्य के शरीर को द्वादश तिलक और नामांकित छापे से विभूषित किया। जयगोपाल तो बालक था। बाबाजी महाशय के सामने जाते डरता था और उनसे बातचीत करने का उसे बिलकुल अभ्यास न था। किन्तु आज नवद्वीप दादा के आदेश के साथ-साथ न जाने क्या शक्ति उसे मिल गयी कि सीधे उनके सामने जाकर खड़ा हो गया और बोला, "आप कैसे महापुरुष हैं? एक व्यक्ति अन्तिम समय आपके दर्शन चाहता है और आप निश्चिन्त होकर यहाँ बैठे हैं।" शीघ्र चलिये यह सुन महापुरुष के मन में न जाने क्या विचार आया, वे जयगोपाल के साथ जाकर चैतन्य के सिरहाने खड़े हो गये। नवद्वीप दादा बोले, "चैतन्य! दादा आ गये।" चैतन्यदास कुछ बोल न सके। आँखों के इशारे से उनसे पैरों की ओर खड़े होने को कहा। बाबा महाशय काठ की पुतली के समान चैतन्य के पैरों के पास जाकर खड़े हो गये। चैतन्यदास ने आकर्ण-विस्तृत नयनों से एक बार बाबाजी महाशय को एड़ी से चोटी तक निहारा फिर उनके मुख की ओर एकटक देखते रहे। नवद्वीप दादा बाबा महाशय का दाहिना चरण उठा कर चैतन्य के सीने पर रखने लगे। उस समय देखा कि छाती पर

कई कागज रखे हैं, जो चादर से ढकें हैं। तब कागज हटाकर छाती पर चरण रख दिये। चैतन्यदास सजल नेत्रों से बाबाजी महाशय के चरणों में क्षमा प्रार्थना कर मानो अन्तिम विदा माँगने लगे।

बाबाजी महाशय अभी तक निश्चल, निस्पन्द, स्थिर, धीर भाव से खड़े थे। अब मानों हृदय का बाँध टूट गया। प्रेम-सिन्धु उथल पड़ा। नेत्रों के जल से मुख और वक्षस्थल भीग गया। गद्गद कण्ठ से कहने लगे "चैतन्य रे! मुझे परित्याग कर चिरशान्तिमय राज्य में प्रवेश करने जा रहा है। मैं और क्या कहूँ? तेरे जन्म-जन्मार्जित जितने भी पाप-ताप और अपराध हैं सब मैं ग्रहण करता हूँ। तू निर्मल और विशुद्ध अन्तःकरण से परम दयालु निताइचाँद के पार्षदों में रहकर अपने अभिलषित भाव के अनुसार प्रार्थित वस्तु का आस्वादन कर।"

इधर श्रीश्रीजगन्नाथदेव का रथ कुण्डाइबेंटसाही के सामने आकर खड़ा हो गया। अभी तक बाबाजी महाशय के प्रिय शिष्य रामदास सदलबल रथ के आगे कीर्तन कर रहे थे। एकदम ऐसा आकर्षण हुआ कि उद्दण्ड नृत्य करते-करते सब चैतन्यदास के निकट जा पहुँचे और वहाँ एक अपूर्व दृश्य देखा। चैतन्य के आकर्ण विस्तृत नयन-भृंग बाबाजी महाशय के मुख-कमल का मधुपान कर विभोर हो रहे हैं। अपने वक्षस्थल पर बाबाजी महाशय के चरण-कमल का स्पर्श पा वे आनन्द सागर में डुबकी लगा रहे हैं। मुख पर मधुर मुस्कान है और सर्वांग पुलक से परिपूर्ण। मनुष्य जीवन के चरम लक्ष्य को प्राप्त कर उनका शरीर बार-बार काँप उठता है मानो वे परम करुण श्रीगुरुदेव की करुणा के उज्ज्वल दृष्टान्त से सर्वसाधारण को अवगत करा रहे हैं। सब उच्च कण्ठ से 'हा! निताइ गौर राधेश्याम, हा! हरे कृष्ण हरे राम' का उच्चारण करते-करते अविरल अश्रुधार बहा रहे हैं। एकदम चैतन्यदास का सारा शरीर काँप उठा। दोनों नेत्र विस्फारित हो गये। मुख की मधुर मुस्कान और अधिक उज्ज्वल भाव सहित प्रकाशित होने लगी। कुछ विस्मित भाव से वे एकटक बाबा महाशय की ओर देखने लगे। देखते-देखते शरीर से श्वास निकल गयी, देह का स्पन्दन बन्द हो गया, हृदय में आवेग न रहा, प्राणों में व्याकुलता न रही, नेत्रों की भंगी न रही। जयगोपाल उनके कान में उच्च स्वर से श्रीगुरुदेव का नाम सुनाने लगा। बाबा महाशय अब भी पूर्ववत् स्थिर भाव से खड़े रहे। अपूर्व दृश्य। इसे मृत्यु कहें या नवजीवन प्राप्ति। देह त्याग कहें या देह-धारण। अभाव कहें या भाव में प्रवेश। अप्राकट्य या निर्विकल्प-समाधि। अशान्ति या चिरशान्ति। निरानन्द या परमानन्द। उपेक्षणीय या वाँछनीय। अन्तिम काल या प्रथमकाल। सभी अनिमेष-नयन चैतन्यदास के मुख की ओर देख रहे हैं और उनके भाग्य की भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे हैं। धीरे-धीरे उनका मुख और उज्ज्वल हो गया। सबके नेत्रों से अश्रुधार बह रही है, सबका कण्ठ गद्गद है और मुख से उच्चारित हो रहा है—'हा निताइ गौर राधेश्याम। हा हरे कृष्ण हरे राम।' इस प्रकार प्रायः आधा घण्टा बीत गया। नवद्वीप दादा ने चैतन्य के सीने पर से चादर हटाकर देखा कि नीचे दो कागज हैं। एक पर श्रीगुरु वन्दना और श्रीगुरुप्रणाम और दूसरे पर श्रीगुरुदेव के एक लाख नाम लिखे हैं। सब देखकर अवाक्! इस प्रकार की गुरुनिष्ठा और गुरुभक्ति संसार में दुर्लभ है। बाबाजी महाशय एक ओर बैठे साश्रुनयन और गद्गद कण्ठ से चैतन्यदास के गुणों की प्रशंसा करते-करते बोले, "कृपामय निताइचाँद ने मुझे ऐसे निष्ठावान् भक्त का संग दे क्यों उसे अंगीकार कर मुझे उसके संग-सुख से वंचित किया, वे ही जानें।"

समय अधिक होता देख सुचतुर गोविन्द दादा ने चैतन्य के देह को बाहर लाकर एक चौकी पर लिटा दिया। उसी समय कोई श्रीजगन्नाथदेव की प्रसादी माला, चरण-तुलसी और कुछ महाप्रसाद लेकर आया। माला बाबा महाशय के गले में पहना दी। बाबा महाशय ने तुरन्त वह माला चैतन्य के गले में डाल दी। चारों ओर से भक्तगण 'जय निताइ' की ध्वनि करने लगे। रामकृष्णदास बाबाजी ने चरण-तुलसी और महाप्रसाद थोड़ा-थोड़ा सबके मुख में देकर फिर वही अधरामृत चैतन्य के मुख में दिया। बाबा महाशय चैतन्य के प्रति जगन्नाथदेव की भी कृपा देख उसके भाग्य को सराहने लगे। थोड़ी देर बाद सब लोग चैतन्यदास को लेकर

नाम करते-करते समुद्र-तीर पर पहुँचे। बाबा महाशय ने अपने हाथ से देह को समुद्र जल से स्नान कराया। फिर प्रसादी डोर-कौपीन और बहिर्वास पहनाकर उसे छाती से लगा उद्दण्ड नृत्य करने लगे। आहा! अपूर्व वात्सल्य! चैतन्यदास का मस्तक बाबा के कन्धे पर है, हाथ गले में लिपटे हैं और उनके हँसते हुए मुखारविन्द को देखकर प्रतीत होता है कि ये चिर-अभिलषित, देव-दुर्लभ श्रीगुरुदेव के प्रेमालिंगन को प्राप्त कर चिरशान्ति-सागर में निमग्न हैं। बाबा महाशय इसी प्रकार प्रेमोन्मत्त हो बहुत देर तक उद्दण्ड नृत्य करते रहे। किसकी शक्ति थी जो चैतन्य की देह को उनसे ले सकता? उनकी यह अवस्था देख श्रीहरिदास ठाकुर के निर्याण की स्मृति सबके मन में जाग गयी। जब बाबाजी महाशय कुछ स्थिर हुए तो गोविन्द दादा ने चैतन्य की देह को इनसे लेकर काष्ठ शैया पर लिटाया। सबके नेत्रों से जल की वर्षा हो रही थी, और मुख से हाहाकार हो रहा था। यथासमय सत्कार-क्रिया प्रारम्भ हुई। सब अश्रु-गद्‌गद कण्ठ से 'हा! निताइ गौर राधेश्याम, हा! हरे कृष्ण हरे राम' गान करते-करते चैतन्य के चारों ओर परिक्रमा करने लगे। अपूर्व चन्दन गन्ध से चारों दिशायें आमोदित हो गयीं। उपस्थित जनसाधारण इस आश्चर्य जनक व्यापार से अत्यन्त विस्मित हुआ।

चैतन्यदास की तात्कालिक क्रिया समाप्त कर सब घर लौटे। उस दिन बाबा महाशय जिसे भी देखते, उसी से शतमुख से चैतन्यदास के गुणों का वर्णन करते।

इस बार श्रीजगन्नाथदेव कुछ मन्थर गति से यात्रा कर रहे थे। बाबाजी महाशय प्रतिदिन सदल-बल रथ के आगे कीर्तन करते थे। श्रीजगन्नाथदेव ने धीरे-धीरे चलकर अष्टमी के दिन सन्ध्या समय गुण्डीचा मन्दिर में प्रवेश किया। पुरीवासी जन-साधारण के आनन्द की सीमा नहीं। नाना प्रकार के भोगराग की धूम मच रही है। सात-आठ दिन बाद जगन्नाथदेव का प्रसाद ग्रहण कर सब परमानन्दित हैं। कई दिन पश्चात् गुण्डीचा मन्दिर परित्याग कर जगन्नाथ जी अपने मन्दिर पधारे।

साथियों के प्रति बाबा महाशय का आदेश था-प्रातः समुद्र स्नान एवं श्रीश्रीजगन्नाथदेव के मन्दिर में संकीर्तन, मध्याह्न में लालाबाबू के क्षेत्र में और दूसरे क्षेत्रों में अलग-अलग दो-दो चार-चार मूर्तियों द्वारा महाप्रसाद सेवन, सन्ध्या समय आश्रम में नाम-संकीर्तन, सन्ध्या-आरति-कीर्तन इत्यादि। आनन्दमय के साथ सभी आनन्दमय थे। इतना परिश्रम करने पर भी किसी को आनन्द का अभाव प्रतीत नहीं होता था। इस प्रकार परमानन्दपूर्वक दिन बीत रहे थे।

प्रेमानन्द-संवाद

एक दिन बाबाजी महाशय कई साथियों को ले कीर्तन करते-करते लालाबाबू के क्षेत्र की ओर जा रहे थे। उसी समय उस क्षेत्र के पासवाले मकान से एक बाबू और उनके साथ एक वैष्णव मूर्ति निकले और बाबा महाशय को बहुत आग्रह कर अपने घर ले गये। थोड़ी देर कीर्तन करने के पश्चात् बाबू ने सबको दण्डवत् प्रणाम कर पूछा—"आप लोग सब किस ओर जा रहे थे?"

बाबाजी—बाबा! हम लोग कंगाल हैं। लालाबाबू के क्षेत्र में महाप्रसाद लेने जा रहे थे।

बाबू—यदि दास को आदेश हो तो कुछ महाप्रसाद मँगा आप लोगों की सेवा कर कृतार्थ होऊँ।

बाबाजी—हम लोग तो 'उदर पूरण आशे, कपट वैष्णव वेशे, भ्रमिया बेड़ाई घरे घरे'। हम लोगों को आपत्ति ही क्या हो सकती है? 'एक अंग साधे किबा साधे बहु अंग' हम लोग भक्ति के चौसठ अंगों में से और किसी अंग का पालन चाहे करें, या न करें, महाप्रसाद सेवन में हमारी विशेष निष्ठा है। यहाँ तक कि महाप्रसाद सेवन में हमें अश्रु, कम्प, पुलकादि भी होने लगते हैं।

बाबू बाबा महाशय की दैन्योक्ति सुन उनके प्रति और भी आकृष्ट हुए और पूर्वोक्त वैष्णव मूर्ति को महाप्रसाद ले आने के लिए मन्दिर भेजा। तब बाबा महाशय ने पूछा, 'तुम्हारा निवास स्थान कहाँ है?'

बाबू-दास का निवास-स्थान रंगपुर जिले में है और नाम है प्यारी मोहनदास।

बाबाजी—नाम तो बड़ा मधुर है। क्या काम करते हैं?

बाबू—आपने कृपा कर कुछ विषय सम्पत्ति दे रखी है। उसी से काम चलता है। और कुछ काम करने की आपने शक्ति भी नहीं दी है। अब श्रीचरणों में यही प्रार्थना है कि विषय-भोग से मुक्ति प्रसार कीजिए। बहुत विषय भोग हो लिया है।

बाबाजी—स्त्री, पुत्रादि क्या सब घर पर ही हैं?

बाबू—उसमें भी आपकी यथेष्ट कृपा ही है। केवल एक बहन है। उसे किसी धाम में छोड़कर मैं निश्चिन्त हो जाऊँगा।

बाबाजी—प्रभु जिसके ऊपर कृपा करते हैं, ऐसा ही होता है। अच्छा आप कबसे श्रीधाम में वास कर रहे हैं?

बाबू—केवल चार मास से। रथ के समय आपके दर्शन किये थे, परन्तु आलाप करने का सुयोग नहीं हुआ। आज आपने कृपाकर सुयोग दिया है और आप ही ने कृपा कर शक्ति-संचार किया है, जिससे आपसे बात करने का साहस हो रहा है। मैं तो घोर पापी और पाखण्डी हूँ, मेरे समान व्यक्ति के लिए तो आपके दर्शन ही असम्भव हैं।

बाबाजी—बाबा! यह तो सब निताइचाँद का खेल है। हम लोग उनकी कठपुतली मात्र हैं। वे जब जिस प्रकार नचाते हैं, इच्छा हो चाहे न हो, हमें वैसे ही नाचना पड़ता है। उन्होंने हमारे परस्पर मिलन के लिये आज का दिन निर्धारित कर रखा था। इसके पहले बहुत चेष्टा करने से भी क्या होता?

इसी बीच महाप्रसाद आ गया। महाप्रसाद सेवन कर सब लोग विश्राम करने लगे। प्यारी बाबू भी महाप्रसाद ग्रहण कर बाबाजी महाशय के पास जा बैठे। उनके मन में बहुत-सी बातें आ रही थीं, जिन्हें वे उनसे कहना चाहते थे। पर उनकी हिम्मत नहीं पड़ रही थी। एकाएक बाबा महाशय उनकी ओर उन्मुख हो कहने लगे। "जान पड़ता है तुम कुछ कहना चाहते हो। स्वच्छन्दतापूर्वक कहो, संकोच करने की कोई आवश्यकता नहीं।" यह सुन प्यारी बाबू प्रसन्न हो बोले 'मेरे समान पतित जीव को क्या करना चाहिये, जिससे वह सहज में भगवत् पथ पर अग्रसर हो सके? लोग तो तरह-तरह के उपाय बताते हैं, पर मुझे तसल्ली नहीं होती। आप कृपाकर मेरे हृदय का भ्रम दूर करें।

बाबाजी—हमारे समान दुर्बल, कलिहत, पापासक्त, और मायामुग्ध जीवों के लिये नाम-संकीर्तन छोड़ कोई और उपाय नहीं है। इस सम्बन्ध में गोस्वामियों ने बहुत-से शास्त्र प्रमाण दिये हैं। श्रीचैतन्यचरितामृत के अन्त्य खण्ड के बीसवें परिच्छेद में श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीमुख से इस सम्बन्ध में जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है, उसकी बहुत ही सरल व्याख्या मैंने श्रीगुरुदेव से सुनी है। उसीको कहता हूँ। द्वापर के अवसान पर परम पराक्रमशाली कलिराज ने राज्याधिकार प्राप्त करते ही देखा कि प्रजा में विद्रोह फैला है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, अधर्म, पापलिप्सा, अज्ञान, हिंसा, परनिन्दा आदि प्रधान कर्मचारियों से नित्य प्रजा की शिकायत सुनते-सुनते उनकी क्रोधाग्नि भड़क उठी। उन्होंने कर्मचारियों को आदेश दिया 'चाहे जिस उपाय से भी क्यों न हो, प्रजा को शीघ्र मेरे वश में करो।' कर्मचारीगण राजा का आदेश पाकर प्रजा पर कठोर शासन करने लगे। उनके उत्पीड़न से प्रजा मृतप्राय हो गयी। जीवगण कलिराज से भयभीत हो अपना-अपना धर्म कर्म छोड़ नाना प्रकार के पापकार्य करने लगे। पृथ्वी शोकाकुल हो धर्म के निकट गई, तो देखा कि धर्म-रूपी वृष त्रिपदभग्न अवस्था में एक टांग से मुमुर्षु भाव ग्रहणकर खड़े हैं। दोनों ने एक दूसरे से अपने-अपने दुःख की कहानी कही और एक दूसरे से परामर्श कर विष्णु भगवान् की अदालत में जीवों के विरुद्ध फौजदारी का मुकदमा दायर किया।

जीवों ने न्यायालय में उपस्थित होकर कहा 'धर्मावतार! इस सम्बन्ध में हमारा तनिक भी दोष नहीं। हम लोगों को कलिराज के कठोर शासन से उत्पीड़ित हो अनिच्छावश नाना प्रकार के पाप-कर्म करने पड़ रहे हैं। कलि के शासन में रहते हुए हमारे लिए किसी भी प्रकार का धर्माचरण सम्भव नहीं हैं। अतएव हुजूर से प्रार्थना है कि हमारी अवस्था के अनुरूप व्यवस्था कर दी जाय। न्यायाधीश ने दोनों पक्षों की

दलीलें सुनने के पश्चात् प्रधान सरकारी कर्मचारी भक्तप्रवर राजा परीक्षित के ऊपर कलिराज पर शासन करने का भार सौंपा और जीवों के प्रति काम्य कर्म, वर्णधर्म, आश्रम-धर्म, व्रत, नियम-निष्ठा, तीर्थपर्यटन आदि याजन करने का हुकुम जारी किया। राजा परीक्षित ने सुयोग पाकर कलिराज पर निग्रह करते हुए जीवों पर अत्याचार न करने का आदेश किया।

जीवगण फिर धर्म-कर्म में प्रवृत्त होने लगे। यह देख कलिराज और कोई उपाय न देख सूक्ष्मरूप से चतुराई के साथ अपने अधिकार का विस्तार करने लगे। दुर्बल जीव कलिराज की छलता से उनके वशीभूत हो अनजाने फिर पाप-पथ की ओर अग्रसर होने लगे। पृथ्वी पूर्ववत् पाप भार से कातर और अतिवृष्टि अनावृष्टि आदि से जीर्ण-शीर्ण हो गयी। वह इन्द्रदेव के पास गयी और उनसे इस सब व्यतिक्रम का कारण पूछा। इन्द्रदेव बोले 'इस अनर्थ का एक मात्र कारण है जीवों का यज्ञादि द्वारा देवताओं को उनका प्राप्य अंश न देना।' यह सुन पृथ्वी ने द्वारका में जजकोर्ट में जीवों के विरुद्ध अभियोग किया। जजसाहब श्रीकृष्णचन्द्र ने जीवों से इस सब का कारण पूछा। जीव बोले, "महाराज! इसमें हमारा तनिक भी दोष नहीं। विशुद्ध घृतादि और उपयुक्त आचार्यों के अभाव के कारण यज्ञादि सम्भव नहीं। कलिराज के उत्पीड़न से हमारे हृदय इतने दुर्बल हो गये हैं कि व्रतोपवासादि हमसे नहीं बनते, और मन्त्र तथा मन्त्रिक के असंस्थान के कारण कर्मादिकों के अनुष्ठान नहीं बनते। अतएव हमारी अवस्था देख हुजूर जो मुनासिब समझें करें।" जज साहब जीवों की बेबसी देख और उनके प्रति कृपा परवश हो बोले—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

—हे जीवो! तुम भय न करो। तुमसे यज्ञ और धर्म-कर्म इत्यादि नहीं बनते तो तुम इन सबका परित्याग कर अनन्य भाव से मेरी शरण ग्रहण करो। मैं सभी पापों से तुम्हारा उद्धार कर तुम्हें मुक्ति प्रदान करूँगा। जज का फैसला सुन वादी-प्रतिवादी दोनों पक्ष प्रसन्न होकर अपने-अपने स्थान को चले गये। परन्तु मूढ़ जीव भगवद्वाक्य का यथार्थ अर्थ न समझकर धर्म कर्मादि परित्याग कर बैठे और यथेच्छाचारी हो गये। भगवद्वाक्य के एकांश अर्थात् सर्वधर्म के परित्याग का विशेष रूप से याजन करने लगे। यहाँ तक कि देव-द्विज-गुरु-वैष्णवादि के प्रति अविश्वास, तीर्थों के प्रति अश्रद्धा और वेदादि की अवज्ञा करने लगे और घोर पाखण्डी बन गये। भगवद्वाक्य के दूसरे अंश का, जिसमें अनन्यभाव से शरणापन्न होने का आदेश किया था, विस्मरण कर बैठे। इसलिए अधर्मभाव अत्यन्त प्रबल हो गया और पृथ्वी का पापभार पहले की अपेक्षा और अधिक बढ़ गया। पृथ्वी ने देखा कि किसी भी प्रकार जीवों को धर्म-पथ पर लाना सम्भव नहीं हो रहा। नाना प्रकार के आमोद-प्रमोद करना, धन उपार्जन करना और पुत्र कन्यादि के विवाहादि में व्यय करना ही उनके जीवन का उद्देश्य बन गया है। दान, व्रत, जप, तप नियमादि लुप्तप्राय हो गये हैं। यदि कोई कुछ अनुष्ठान करते भी हैं तो वह दम्भ और अहंकार से परिपूर्ण होता है। इसलिये उनका फल विपरीत होता है। बहुत सोच-विचार करने के पश्चात् पृथ्वी ज्ञानावलम्बी महापुरुषों के पास गयी। उनसे अपनी दुःखभरी कहानी कही और जीवों को सत्पथ पर लगाने की व्यवस्था करने की प्रार्थना की। उन्होंने पृथ्वी को अभय प्रदान कर उचित व्यवस्था करने का आश्वासन दिया। तत्पश्चात् वे शंकराचार्यकृत ब्रह्मसूत्र के भाष्य का प्रचार कर निराकारवाद के सिद्धान्त से जगत् को प्लावित करने लगे। पर लोगों ने 'तत्वमसि' और 'अहं ब्रह्मास्मि' प्रभृति महावाक्यों को केवल मुखस्थ कर लिया। इनके अनुरूप आचरण की तनिक भी चिन्ता न कर भोग विलासादि में रत रहने लगे।

इस प्रकार जब पृथ्वी का पाप-भार बढ़ कर उसके लिए बिलकुल असह्य हो गया, तब परम दयालु प्रभु व्रज-विलास परित्याग कर श्रीमती राधिका की भावकान्ति अंगीकार कर, श्रीधाम नवद्वीप में अवतीर्ण हुए। पृथ्वी ने सोचा कि अब मेरे दुर्दिन समाप्त हुए। यह नया हाकिम परम दयालु है। इसके कोर्ट में अपील करने से मेरी सुनवाई अवश्य होगी। इसलिये वासुदेव सार्वभौम, प्रकाशानन्द सरस्वती आदि बड़े-बड़े बैरिस्टरों

की सहायता से उसने श्रीगौरांगदेव के हाईकोर्ट में अपील की। जीवों ने भी देखा कि यदि इस अन्तिम कोर्ट का भी उनके लिए कुछ कठोर आदेश हुआ तो बड़ी चिन्ता की बात होगी। इस बार विशेष रूप से मुकदमे की पैरवी होनी चाहिये। इसलिये उन्होंने श्रीनिताइ, अद्वैत और हरिदास यह तीन बैरिस्टर किये। बहस प्रारम्भ हुई। फरियादी के पक्ष के बैरिस्टरों ने जीवों के विरुद्ध बहुत सी नजीरें पेश कीं। जज ने दोनों पक्षों की दलीलें बड़े ध्यान से सुनी। फिर उन्होंने स्वरूप दामोदर और राय रामानन्द इन दोनों सरकारी वकीलों से परामर्श किया। इन्होंने फरियादी के बैरिस्टर के मत का खण्डन किया। सकुशल विचारक ने किसी भी पक्ष को कष्ट न हो, यह सोचकर फैसला जूरी के ऊपर छोड़ दिया। सात जूरी नियुक्त हुए-श्रीनिताइ, अद्वैत, हरिदास, स्वरूप दामोदर, रामानन्द, प्रकाशानन्द सरस्वती और वासुदेव सार्वभौम। परन्तु जूरी ने आग्रह किया कि उनके विचार कर लेने पर भी अन्तिम निर्णय का भार जज साहब पर ही होगा। हाकिम ने इस बात को स्वीकार किया। बहस प्रारम्भ हुई। जज ने दोनों पक्षों की दलीलें ध्यान से सुनीं और जूरी का मत लेकर अन्तिम फैसला इस प्रकार कर दिया—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।
हर्षे प्रभु कहे शुन स्वरूप रामराय।
नाम संकीर्तन कलौ परम उपाय।।
संकीर्तनयज्ञे करे कृष्ण-आराधन।
सेई त सुमेधा पाय कृष्णेर चरण।।
नाम संकीर्तन हैते सर्वानर्थनाश।
सर्व शुभोदय कृष्णे परम उल्लास।।
संकीर्तन हैते पाप संसार नाशन।
चित्तशुद्धि सर्वभक्ति साधन उद्गम।।
कृष्ण प्रेमोद्गम प्रेमामृत आस्वादन।
कृष्ण प्राप्ति सेवामृत-समुद्रे मज्जन।।

यह फैसला सुन नित्यानन्द और हरिदास आनन्द से नृत्य करते-करते बोले—

'पतित पाखंडी स्त्री जवन ए जगते।
उद्धार हइल श्रीचैतन्य-कृपा हइते।।
आचण्डाले नाम प्रेम दिया कैल धन्य।
ऐछे दाता दयालु श्रीकृष्णचैतन्य।।

आहा! कैसा सुन्दर निर्णय है महाप्रभु के इस न्यायालय का। न्यायालय क्या है करुणालय है। न्यायाधीश का मुखकमल जैसे करुणारूपी अमृत बरसाने वाला अकलंक पूर्णचन्द्र है, भक्तों के चित्त को हरषानेवाला मकरन्दपूर्ण हेम-कमल है, पाखण्ड रूपी विकार का नाश करने वाली सुतीव्र औषधि है, या भक्तों के हृदय की चिन्तामणि है। उनकी अतुलनीय सौन्दर्यशाली प्रेममय मूर्ति के दर्शन की बात तो दूर, उसके एक बार हृदय में उदय होते ही सभी आसामी मुक्तिलाभ करते हैं, फरियादी शान्तिरस से प्लावित हो जाते हैं, वकील प्रेम में विह्वल हो जाते हैं और साक्षीगण निर्भीक और आनन्दमय हो जाते हैं। न्यायाधीश ने सरकारी वकीलों से कहा, "देखो, जीवगण तो अनादि काल से मोह-कारागार में बन्द हैं ही। उन्हें मैं और क्या दण्ड दे सकता हूँ?" मेरे विचार से उन्हें कारागार से मुक्ति मिल सके, हमें ऐसा उपाय सोचना चाहिये। तुम उन लोगों से कह दो कि वे केवल एक बार 'हरे कृष्ण' नाम उच्चारण करें। वे चिरकाल के लिये मुक्त हो जायेंगे। न्यायाधीश का यह अपूर्व करुणापूर्ण आदेश सुन वकील प्रेम-पुलकित और उत्फुल्लित हो मोह-कारागारग्रस्त, मायाबद्ध जीवों को सम्बोधित कर उच्च कण्ठ से घोषणा करने लगे, "देखो जीवो, तुम एक बार हरे कृष्ण नाम उच्चारण करो।" यह शुभ संवाद सुन कोई तो आनन्द विह्वल हो मन और प्राण से हरिनाम करने लगे। कोई मुख से तो हरिनाम करने लगे पर उनका हृदय प्लावित नहीं हुआ। मन और प्राण नाम-प्रेमरस में डूब न सके। किसी- किसी ने जैसे इस घोषणा को सुनकर भी नहीं सुना और बोले, "मौज से तो कट रही है। नाम-वाम लेने से क्या होगा?" किसी ने कहा, "नाम लेने में हमें आपत्ति नहीं, पर समय कहाँ है? सारा दिन तो सांसारिक कार्यों में लगे रहते हैं, नाम लें किस समय? यह सब काम तो उनके लिये हैं, जिन्हें और कोई काम ही नहीं। भगवान् ने हाथ-पैर दिये हैं, जिससे मेहनत मजूरी कर पेट भर सकें। यदि सभी लोग साधु हो जायेंगे तो संसार कौन करेगा?"

निताइचाँद ने सोचा कि चिरकाल से कारागार में रहते-रहते जीव इसी को सुख का स्थान समझने लग गये हैं। इन्हें कारागार से मुक्ति पाने की बात अभी समझ में न आयेगी। ये तो कहेंगे ही बड़े मजे में हैं, समय से भोजन मिलता है, आलीशान मकान रहने को है। इसे छोड़ और कहाँ जायेंगे, कहाँ जाकर फिर से आहारादि की रहने-सहने की व्यवस्था करेंगे। इस अवस्था में उनके उद्धार के लिये कोई दूसरी ही युक्ति करनी होगी। इनसे प्रेम कर जब तक इन्हें, जिस सुख का अब यह अनुभव कर रहे हैं, उससे अधिक सुख का अनुभव न कराया जायगा, तब तक ये मोहकारागार को न छोड़ सकेंगे। यह सोचकर वे जीवों के द्वार पर जा-जाकर विनीत भाव से कहने लगे, "जीवगण! सोचो तो सही, हमारे कुसुम-सुकोमलतनु, मनोहर कान्तिवाले, वात्सल्य-मूर्तिमती असहाया शचीदेवी के वक्षोनिधि श्रीगौरांगचाँद किसके लिए वृक्षतलवासी बने हैं? किसके लिए सतीकुलशिरोमणि विष्णुप्रियादेवी को सदा के लिए विरह-सागर में छोड़ आये हैं। किसके लिये नवद्वीपचाँद नवद्वीप को अन्धकार में छोड़ पतितों के द्वार-द्वार पर जा रो-रो कर उनसे हरिनाम की भिक्षा माँग रहे हैं? भाई इससे अधिक तुम्हारे प्रति उनके प्रेम का परिचय और क्या हो सकता है? जिन्होंने बिना कुछ सोचे तुमसे इतना प्रेम किया, जो तुम्हारे कारण अपना सुख-सम्पत्ति सब कुछ छोड़ भिखारी बने, उनकी ओर एक बार भी तुमने प्रेम के चक्षुओं से नहीं ताका, एक महूर्त के लिए भी उनकी अहैतुकी कृपा पर विचार नहीं किया। तुम फिर भी अपनी स्वार्थपूर्ण निकृष्ट वृत्ति के ही अधीन रहे और माया पिशाची की लात खाते-खाते जीवन व्यतीत कर दिया। इतनी करुणा पाकर भी तुम्हें चैतन्य न हुआ, तुम्हारी आँखें न खुलीं। अब और तुम्हारे लिए उपाय ही क्या हो सकता है? भाई, मैं तुम्हारे पैर पड़ूँ, तुम जैसे हो वैसे ही रहो, पर दिन पीछे और रात पीछे एक बार 'हा गौरांग, कह लिया करो। तुम्हें किसी प्रकार का अभाव न रहेगा, प्रेमधन की प्राप्ति होगी, और मैं चिरकाल के लिए तुम्हारे हाथ बिक जाऊँगा। इसीलिए कहता हूँ—

भज गौरांग, कह गौरांग, लह गौरांगेर नाम रे।
जे जन गौरांग भजे, सेई आमार प्राण रे।।"

—समझे? नाम संकीर्तन छोड़ कलिकाल में हमारे लिए और उपाय नहीं है।

प्यारी—नामसंकीर्तन ही एक मात्र उपाय है यह तो मैं समझा, पर एक शंका रह गयी। निताइचाँद कहते हैं 'भज गौरांग, कह गौरांग, लह गौरांग नाम।' गौरांगदेव कहते हैं 'कहो हरे कृष्ण'। हम किसका आदेश मानें?

बाबाजी—महाप्रभु कहते हैं 'हरे कृष्ण' कहो, अन्यत्र कहा है—

जनम धरिया हेलाय श्रद्धाय जे लय निताइएर नाम।
आमि बिकाई तारे देखाई जुगल राधाश्याम।।

अर्थात् जो श्रद्धा से या अश्रद्धा से किसी प्रकार भी निताइ का नाम लेता है, मैं उसके हाथ बिक जाता हूँ और उसे राधाश्याम के दर्शन कराता हूँ। इसके अतिरिक्त गुरुदेव कहते हैं, 'निताइ गौर भज' अर्थात् नित्यानन्द और गौरांग दोनों का नाम लो, तुम सोचते होगे कि किसकी बात मानें और किसकी बात न मानें?

प्यारी—जी, मैं सन्देह में पड़ गया हूँ।

बाबाजी—इनमें से किसी की भी अवज्ञा नहीं करनी है। प्रत्येक का वाक्य भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा और करणापाटव दोषों से मुक्त है। फिर भी सबसे पहले श्रीगुरु-वाक्य का पालन करना ही हमारा कर्तव्य है। गुरुवाक्य के पालने से और सबके वाक्यों का पालन हो जाता है। गुरुदेव कहते हैं 'भज निताइ गौर, पाबे राधाश्याम'—निताइ गौर भजो तो राधाश्याम मिलेंगे। ठीक है, श्रीगुरुदेव की कृपा से जब निताइ का आश्रय लिया जाता है तभी गौरांग की प्राप्ति होती है, क्योंकि निताइ आश्रय हैं, गौरांग विषय। निताइ की कृपा से जब गौरांग मिलते हैं तो वे आदेश करते हैं 'भज राधेश्याम' और राधेश्याम के भजन का एक मात्र उपाय है 'हरे कृष्ण' नाम-कीर्तन। कोई तुम्हारा थोड़ा उपकार करता है, या तुम्हें कुछ देता है तो तुम सारे जीवन उसका गुण गाते हो। तो जिसकी कृपा से गोलोक का गोपनीय चिरअनर्पित धन तुम्हें अनायास प्राप्त हुआ, उसे आगे न भजोगे और उसका पहले गुणगान न करोगे तो क्या करोगे? यदि न करोगे तो अकृतज्ञ न कहलाओगे? इसलिये पहले निताइगौर को

ही भजो। उन्हें भजने से कोई अभाव न रहेगा और मन का सारा सन्देह मिट जायेगा।

प्यारी-प्रभो! अब मेरा सन्देह तो दूर हुआ। पर यह बताइये कि श्रीकृष्ण के तो अनेकों नाम हैं। उनमें कुछ तारतम्य भी है क्या?

बाबाजी—नाम और नामी अभिन्न हैं। इसलिये जब नामी के विभिन्न स्वरूपों में तारतम्य है, तब नामों में तारतम्य होगा ही। वैकुण्ठनाथ श्रीपति के नाम से जिनका संकेत होता है, उनका क्या व्रजनाथ गोपीवल्लभ के नाम से हो सकता है? दुर्योधन द्वारा वस्त्र-हरण के समय द्रोपदी जब व्याकुल होकर पुकार रही थी 'हा द्वारकानाथ! हा रुक्मिणीवल्लभ! हा वैकुण्ठनायक! हे कालीयनिसूदन कृष्ण! इस घोर विपद में मेरी रक्षा करो' तब कृष्ण उस स्थान से (जिसके नाम से वे उन्हें पुकार रहीं थीं) हस्तिनापुर जाने की चिन्ता कर रहे थे। कृष्ण के आगमन में विलम्ब देख युधिष्ठिर आदि पाँचों भाई हताश हो गये। द्रोपदी व्याकुल होकर कहने लगी 'हा हृदयनाथ! हा प्राणवल्लभ! हे पाण्डवों के सखा! हे द्रोपदी के प्राण सर्वस्व! एक बार आकर दासी की दशा देखो।' इतना कहने की देर थी कि कृष्ण द्रोपदी के पीछे आ खड़े हुए और कहने लगे 'भय की क्या बात है सखी? मैं तुम्हारे पास हूँ। किसकी सामर्थ्य है जो तुम्हारा अपमान कर सके?' इतना कह तुरन्त ही वस्त्ररूप धारण कर उन्होंने द्रोपदी की लज्जा की रक्षा की। तब द्रोपदी ने पूछा 'कृष्ण, तुम कहा करते हो कि विपत्ति में मेरा स्मरण करते ही मैं तुम्हारे पास आ जाऊँगा, परन्तु आज ऐसी घोर विपत्ति में पड़ी मैं तुम्हें इतना पुकार रही थी और तुमने आने में इतना विलम्ब किया!' कृष्ण ने कहा 'देखो द्रोपदी, मैंने तो कुछ भी विलम्ब नहीं किया। तुमने मेरा नाम ले लेकर मुझे जिस-जिस स्थान को भेजा, मैं वहीं से यहाँ आने की चेष्टा कर रहा था, और जैसे ही तुमने कहा 'प्राणवल्लभ, हृदयनाथ' मैं तुम्हारे पास खड़ा मिला। तुम्हारी बात की तो मैं अवहेलना नहीं कर सकता। तुमने जब मुझे 'द्वारकानाथ' कहकर पुकारा मैं उस समय द्वारकापुरी में था, जब 'वैकुण्ठनाथ' कहकर पुकारा तब मैं वैकुण्ठ में था।' तो देखो नाम में तारतम्य हुआ या नहीं?

प्यारी—यदि यही बात है, तो इतने नामों का प्रचार कर जीवों की उपासना में व्याघात डालने की क्या आवश्यकता थी?

बाबाजी—बाबा! भिन्नरुचिर्हि लोकः। सबकी रुचि एकसी नहीं है। इसलिये विभिन्न रुचि के लोगों के लिए विभिन्न नाम, धाम और रूप हैं। सीधी बात यह है कि जब कोई अपना लक्ष्य स्थिर कर उन्हें पुकारता है तो तुरन्त ही वे उसके अभीष्टदेव के रूप में उसके निकट पहुँच जाते हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

प्यारी—लक्ष्य स्थिर होने का उपाय क्या है?

बाबाजी—एकमात्र प्रेमानुराग।

प्यारी—प्रेम का उपाय क्या है?

बाबाजी—प्रेम नित्यसिद्ध वस्तु है। साधनादि द्वारा वह साध्य नहीं है। श्रवण-कीर्तनादि से चित्त की शुद्धि होने पर उसका प्रकाश होता है। महाप्रभु ने श्रीमुख से कहा है—

नित्यसिद्ध कृष्णप्रेम, साध्य कभु नय।
श्रवणाद्य शुद्ध चित्ते करये उदय।।

और—**जेरूपे लइले नाम प्रेम उपजय।**
ताहार लक्षण सुन स्वरूप रामराय।।
तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः।।

अर्थात्—**उत्तम हञा आपनाके माने तृणाधम।**
दुइ प्रकारे सहिष्णुता करे वृक्षसम।।
वृक्ष जेन काटिलेह किछु ना बोलय।
शुकाइया मैले कारेओ पानी ना मागय।।
जेई जे मागये तारे देय आपन धन।
घर्म वृष्टि सहि आनेर करये पोषण।।
उत्तम हइया वैष्णव हबे निरभिमान।
जीवे सम्मान दिबे जानि कृष्ण-अधिष्ठान।।
एइमत हञा जेई कृष्णनाम लय।
श्रीकृष्णचरणे तार प्रेम उपजय।।

प्यारी—जब मनुष्य जन्म सर्वश्रेष्ठ है तो सब प्राणियों की अपेक्षा अपने को हीन मानना क्या कपटता

नहीं है? बाहर से कितनी ही हीनता क्यों न दिखाई जाय, क्या अन्तर में श्रेष्ठत्व का बोध होना स्वाभाविक नहीं है?

बाबाजी—स्थावर, जंगम, कीट, पतंग, तृण, लता आदि से मनुष्य किसी प्रकार भी श्रेष्ठ नहीं है, क्योंकि जिन क्षित्यप्तेजोमरुद्व्योम पंचभूतों द्वारा वृक्षादि बने हैं, उन्हीं से मनुष्य भी बना है। वृक्ष जीवित अवस्था में नि:स्वार्थ भाव से दूसरे प्राणियों को आश्रय प्रदान करता है, पत्र पुष्प फलादि से उनका पोषण करता है, अपने देह की पुष्टि या अपना पेट भरने के लिए किसी से प्रार्थना नहीं करता, और दूसरे का अनिष्ट करने की चेष्टा किसे कहते हैं जानता भी नहीं। इसके विपरीत यदि मनुष्य किसी को आश्रय प्रदान करता है, या उसका पोषण करता है, तो उसमें उसका अपना स्वार्थ निहित रहता है, यहाँ तक कि अपने स्त्री पुत्रादि का पालन-पोषण करने में भी उसका अपना स्वार्थ रहता है। मानव अपने देह की पुष्टि करने और अपना पेट भरने के लिए दूसरे प्राणी का वध करना अपना धर्म समझता है। इतना ही नहीं, दस बीस को साथ ले निरीह प्राणियों का शिकार कर आनन्दोत्सव मनाता है, मत्स्यादि के तो जैसे प्राण ही नहीं हैं, बड़ी-बड़ी मछलियों को काटने में आनन्द का अनुभव करता है और प्रशंसा का भागी होता है। परन्तु उसके अपने असंख्य लोम-कूपों में से एक बिन्दु रक्तपान करने की इच्छा से कोई मच्छर आ बैठता है, तो उसका वध कर डालता है। तो बताओ, मनुष्य श्रेष्ठ है या वृक्ष? इसके अतिरिक्त कोमल से कोमल बिछौनों पर लेटकर भी इसे आराम नहीं मिलता। कितने प्रकार के इत्र, एसेन्स और गुलाबजलादि की आवश्यकता पड़ती है। पर विभिन्न देशीय विभिन्न प्राणियों के रक्तमांस से परिपुष्ट इस शरीर में से जब प्राण निकल जाने के उपक्रम होते हैं, तब पिता-माता, भाई-बहन, स्त्री-पुत्र और सभी नाते रिश्तेदार इसे बाहर निकालने के लिए व्यस्त हो पड़ते हैं। बाहर निकालकर भी निश्चिन्त नहीं होते। गोबर से उस स्थान को लीपते हैं। दस, पन्द्रह दिन या एक मास तक अशौच मानते हैं, होम यज्ञादि द्वारा घर को और अपने आपको पवित्र करते हैं। शव जहाँ गाढ़ा जाता है, या जलाया जाता है, उस स्थान की मिट्टी छू जाने पर भी गंगा-स्नान करते हैं। यह है तुम्हारे मनुष्यत्व की श्रेष्ठता। और वृक्ष का मृत देह यदि किसी उपयुक्त हाथ में पड़ जाय तो वह उससे रथ, सिंहासन, खाट-खटोला, सन्दूक इत्यादि निर्माण कर अवशिष्ट अंश मनुष्य देह की पुष्टि के लिए उपयोगी खाद्य-द्रव्य पकाने के काम में लेता है। यदि वृक्ष का मृत देह न हो तो मनुष्य की मृत देह का संस्कार पर्यन्त न हो सके।

यह तो हुई स्थावर देह की बात। अब जंगम देह की उपयोगिता देखो! एक क्षुद्र चींटी कहीं थोड़ा-सा भी खाद्य-द्रव्य पाती है तो द्रुतवेग से जा अन्य चींटियों को बुला लाती है, जिससे सब मिलकर थोड़ा-थोड़ा खा सकें। पर मनुष्य को कहीं कोई अच्छी वस्तु मिल जाती है तो वह इस भय से कि कोई देख न ले, बड़ी सावधानी से भी उसके बारे में कहते संकोच करता है। ये है मनुष्य जाति की उच्चता। अब क्षमता देखो! तुमने किसी वस्तु को बड़े यत्न से किसी स्थान पर ढक कर रखा। चींटी अपने बुद्धि-कौशल से ठीक उसी स्थान पर जा पहुँचती है, और तुम अपनी ही रखी वस्तु को भूलकर जगह-जगह ढूँढ़ते हो, दूसरों से ढुँढ़वाते हो। इस हिसाब से चींटी की क्षमता अधिक हुई या मनुष्य की? पशु-पक्षियों को मल-मूत्र आदि त्याग कर साफ करने के लिए मेहतर की आवश्यकता नहीं होती और न उन्हें स्पर्श कर कोई अपवित्र होता है। गाय का मल-मूत्र स्थान को पवित्र करता है; पर मनुष्य का मल-मूत्र स्पर्श करने की कौन कहे, जो उसे साफ करता है, उसे स्पर्श करने पर भी स्नान करना होता है। अब विचार कर देखो कि मनुष्य बड़ा हुआ या पशु-पक्षी।

प्यारी—अब मेरे मन का भ्रम दूर हुआ और मैं तृणादपि श्लोक का प्रकृत मर्म समझा। मेरी समझ में आया कि मनुष्य जाति सबसे हीन है।

बाबाजी—मनुष्य जाति के निकृष्ट होने की बात कहाँ तक कहूँ? देखो गाय, भैंस, सिंह, व्याघ्र, श्रृगाल, श्वान आदि निर्दिष्ट समय को छोड़ सदा निर्विकार चित्त से नर मादा एक साथ उठते-बैठते और भोजन-

शयन आदि करते हैं। पर मनुष्य जाति को स्थान-अस्थान, समय-असमय, धर्माधर्म, यहाँ तक कि सम्बन्ध-विचार तक नहीं है। स्त्री को देखते ही पुरुष और पुरुष को देखते ही स्त्री कामातुर हो जाते हैं। अधिक क्या कहूँ, विचार कर देखने से मनुष्य जाति की निकृष्टता के ही तरह-तरह के सबूत मिलते हैं, उत्कृष्टता के नहीं। फिर भी भगवत् नाम, रूप, गुण आदि का अवलम्बन कर भगवत्-आराधना करने से भगवत्-कृपा का भाजन हो वही मनुष्य सर्वोत्कृष्ट हो जाता है। जिस मनुष्य की यह धारणा बन जाती है कि वह जगत् के सारे पदार्थों से हीन है, वास्तव में वही मनुष्य कहलाने योग्य है। शास्त्रों में भी ऐसे ही मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ और भगवत् अनुग्रह का पात्र कहा गया है। नीति शास्त्र में कहा है—

आहारनिद्राभयमैथुनञ्च
सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणां।
धर्मोहि तेषामधिको विशेषो,
धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।।

जो मनुष्य माया मोह में आबद्ध रहकर भगवत्-आराधना नहीं करता, उसे शास्त्रकार आत्मघाती कहते हैं। जैसे—

नृदेहमाद्यं खलु धर्मसाधनं
प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारं।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं,
पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा।।

प्यारी—आपने कहा, 'भक्त ही भगवान् के अनुग्रह का पात्र है।' भगवान् तो सर्वेश्वर, सर्वान्तर्यामी-सर्वनियन्ता हैं। क्या उनके निग्रह का पात्र भी कोई है? यदि भगवान् के निग्रह और अनुग्रह दोनों के ही पात्र हैं, तो क्या उनमें वैषम्य दोष नहीं होता? वे जगत् के माता-पिता हैं। सन्तान चाहे योग्य हो, चाहे अयोग्य, रूपवान् हो चाहे कुरूप, धार्मिक हो या अधार्मिक, माता-पिता के स्नेह में क्या इस कारण से कोई अन्तर हो सकता है?

बाबाजी—भगवान् में कदापि वैषम्य दोष नहीं हो सकता। उनमें जो वैषम्य दीख पड़ता है, वह वास्तव में उनमें नहीं है, वह तो पात्रों का ही गुण-दोष है। इस सम्बन्ध में एक साधारण दृष्टान्त सुनो। एक दिन मैं दोपहर के समय एक पहाड़ के ऊपर गया। धूप बहुत तेज थी। मैं छाया ढूँढ़ने लगा। देखा कि एक समतल स्थान पर दो पत्थर पड़े हैं। दोनों कोई हाथ भरके हैं और ठीक एक-से रंग और आकार के। बहुत देखभाल करने पर भी मैं उनमें किसी भी प्रकार का भेद न पा सका। पर देखा कि एक पत्थर से अग्नि निकल रही है। उसके ऊपर शुष्क तृण लता-पता इत्यादि गिरते ही जल उठते हैं, दूसरे पत्थर से पसीने की बूँदें निकल रही हैं। उसे स्पर्श कर देखा तो बहुत ठण्डा लगा। तब एक साधु से मैंने पूछा कि यह क्या बात है। एक ही स्थान पर एक ही जाति की दो वस्तुओं की क्रिया में पार्थक्य क्यों? क्या इस पत्थर पर सूर्य की किरणें नहीं पड़ रही हैं? उन्होंने कहा, 'बाबा, सूर्य का ताप तो सर्वत्र ही समान है। पर यह पत्थर सूर्यकान्त मणि है। इस पर सूर्य की सामान्य किरणें पड़ने पर भी अग्नि निकलने लगती है। और यह चन्द्रकान्तमणि है। इस पर सूर्य की जितनी तेज किरणें पड़ती हैं, उतना ही यह अधिक शीतल, स्निग्ध और स्वेद-बिन्दुयुक्त हो जाता है।' ऐसे ही देखो, एक तालाब में दो फूल खिलते हैं। एक कमल और दूसरा कुमुद। प्रभात में सूर्य की किरणें निकलते-निकलते कमल प्रस्फुटित होने लगता है और ज्यों-ज्यों सूर्य की किरणें तेज होने लगती हैं, उसकी शोभा भी बढ़ जाती है। अभागिनी कुमुदिनी प्रभात होते ही विरहिणी पत्नी के समान म्लान होने लगती है और सूर्य का तेज जैसे-जैसे बढ़ता जाता है, वह अधिक म्लान होती जाती है। यहाँ क्या तुम सूर्य में वैषम्य दोष कहोगे? भगवान् की कृपा भी इसी प्रकार सर्वत्र समान है, परन्तु हमारी ग्रहण-शक्ति में भेद होने के कारण उसके फलाफल में भेद होता है। पिता एक ही स्कूल में दो पुत्रों को पढ़ने भेजता है। एक परीक्षा में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त करता है, दूसरा फेल हो जाता है। एक कक्षा में ध्यान से पढ़ाई-लिखाई करता है, इसलिए पास हो जाता है; दूसरा ध्यान नहीं देता, खेल-कूद और असद् कार्यों में रत रहता है, इसलिए फेल हो जाता है। इसे क्या पिता-माता का दोष कहा जायगा? भक्त भगवान् के शरणापन्न हो कातर भाव से कृपा-प्रार्थना करता है। भगवान् उसमें शक्ति-संचार

करते हैं। अभक्त उनसे दूर रहता है और अभिमान के कारण अपने को ही ईश्वर मान विपत्ति में पड़ जाता है। इसमें भगवान् का क्या दोष? भगवान् तो उसे कुपथ पर जाने को कहते नहीं, बल्कि नाना प्रकार से उसे कुपथ से हटाने की चेष्टा करते हैं।

प्यारी—अच्छा, भगवान् जब हमारे प्रति इतने दयावान हैं तो उन्होंने अनिष्टकारी काम-क्रोधादि की सृष्टि ही क्यों की? उन्होंने एक सुन्दर पात्र में हलाहल विष भर कर जीव के सम्मुख रख दिया है, जिसका वह लोभ-वश पान करता है। यह क्या भगवान् का अन्याय नहीं है?

बाबाजी—यह तुम्हारी भूल है। परम मंगलमय भगवान् ने इस जगत् में जिन दृश्यादृश्य पदार्थों की सृष्टि की है, उनमें से एक भी हमारे लिए अनिष्टकारी नहीं है। एक व्यक्ति का घर जल जाता है, उसका इकलौता पुत्र और प्यारी पत्नी उसमें भस्म हो जाते हैं। वह व्याकुल हो भगवान् से कहने लगता है, 'हे प्रभो! तुमने अग्नि की सृष्टि न की होती तो आज मेरे धन-दौलत, स्त्री-पुत्र का नाश न होता। अग्नि की सृष्टि कर तुमने बड़ा अन्याय किया।' अन्यत्र किसी के यहाँ एक बालक का जन्म होता है, बर्फ गिरती है, बालक के हाथ-पैर ठण्ड में जकड़ जाते हैं। उसी समय कोई व्यक्ति अग्नि का सेंक लेकर बालक को स्वस्थ करता है। उस समय वह व्यक्ति भगवान् को धन्यवाद देता है और कहता है—'प्रभो! तुम्हारी कैसी अपार कृपा है। यदि तुमने अग्नि की सृष्टि न की होती तो आज इस शिशु के प्राणों की किसी प्रकार रक्षा न होती'। अब तुम इसे अग्नि का दोष कहोगे या गुण? एक व्यक्ति एक डाक्टर के यहाँ अलमारी में एक विष की शीशी रखी देखता है। डाक्टर उससे कहता है— 'सावधान! इस शीशी के स्पर्श से ही मृत्यु हो सकती है।' तब वह बड़ी विरक्ति से डाक्टर से कहता है—'यह आप लोगों का कैसा अन्याय है? लोगों के उपकार के लिए आप डाक्टर बने हैं, फिर ऐसा अनिष्टकारी पदार्थ क्यों रखते हैं?' डाक्टर कुछ उत्तर नहीं देता। थोड़ी देर में उसे एक रोगी की चिकित्सा के लिए बुलाया जाता है। रोगी को सन्निपात है, नाड़ी छूट चुकी है। डाक्टर पूर्वोक्त व्यक्ति से कहता है, 'इस विष की शीशी को लेकर जरा मेरे साथ चलिए।' वह व्यक्ति विष की शीशी ले उसके साथ चल देता है। रोगी के निकट पहुँचते ही डाक्टर उससे कहता है, 'इस शीशी से छह बूँद थोड़े-से जल में मिलाकर इस रोगी को पिला दे।' वह पहले समझता है कि शायद डाक्टर रोगी की असह्य वेदना को देख विष द्वारा उसके प्राण हर उसे कष्ट से मुक्त करना चाहता है। डाक्टर के विशेष अनुरोध करने पर वह छह बूँद रोगी को पिला देता है। दो ही मिनट के भीतर रोगी की अवस्था में परिवर्तन होने लगता है। एक बार और छह बूँद विष दिये जाने पर वह स्वस्थ हो जाता है। तब डाक्टर कहता है, 'महाशय अब समझे विष का उपयोग?' कभी-कभी विष भी अमृत हो जाता है, प्राण-विनाश-कारी पदार्थ प्राण-रक्षक हो जाता है, और व्यवहार-दोष से अमृत भी विष के समान फल देने लगता है। इसीलिए कहता हूँ कि पहले श्रीगुरुदेव का आश्रय लेकर महाजनों के आदेशानुकूल कार्य करना सीखो। तब देखोगे कि काम-क्रोधादि ही तुम्हारे हितसाधक बन जाते हैं। श्रीनरोत्तम ठाकुर महाशय ने कहा है 'काम कृष्ण-कर्मार्पणे, क्रोध भक्तद्वेषी जने, लोभ साधुसंगे हरि-कथा' इत्यादि। यदि सत्संग में तुम्हें लोभ है तो लोभ ही भगवत्प्राप्ति का साधन है। और यदि लोभ ही एकमात्र भगवत्प्राप्ति का उपाय है तो लोभ की सृष्टि करने में भगवान् का दोष है या उनकी कृपा? शास्त्र कहते हैं—कृष्णभक्तिरसभाविता मतिः, क्रीयतां यदि कुतोऽपि लभ्यते। तत्र मूल्यमेव लौल्यमेकलं जन्मकोटिसुकृतैर्न-लभ्यते।'

प्यारी—भगवान् के लिए लोभ कैसे उत्पन्न हो?

बाबाजी—आर्यगण उच्च स्वर से कहते हैं कि इसका साधु-गुरुकरुणा के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं। कोटि-कोटि जन्मों की सुकृति से भी लोभोत्पत्ति नहीं होती।

प्यारी—साधु-असाधु की क्या पहचान है? हम तो अज्ञ जीव ठहरे। आज एक व्यक्ति को असाधु समझकर उससे घृणा करते हैं, कल देखते हैं वही महापुरुष हो जाता है। तो वास्तविक पहचान क्या है

और किस प्रकार का साधुसंग करने से अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है?

बाबाजी—द्रष्टा को छोड़कर संसार में जितनी दृश्यादृश्य वस्तुएँ हैं, सभी साधु-शब्द वाच्य हैं। चोर में भी यदि तुम साधु बुद्धि रख सको तो तुम्हारी कार्य-सिद्धि होगी। आचरण से साधु-असाधु की पहचान नहीं हो सकती।

गर्हित आचरण करये जदि महा अधिकारी।
निन्दार आछुक दाय हासियेओ मरि।।

तुम हो मायामुग्ध जीव। अपने आपको साधु-परीक्षा की कसौटी मान लेना भूल होगा। मनुष्य मात्र में बिना विचारे साधु बुद्धि रख अदोष-दशा हो, स्वयं भक्ति का याजन करो। इससे तुम्हारी उन्नति होगी, अभीष्ट फल की प्राप्ति होगी। इस सम्बन्ध में एक कथा है—

एक राजा बड़ा वैष्णवसेवी था। वैष्णवगण जैसी सेवा चाहते, राजा बिना विचारे उसे सम्पन्न करता। राजा का ऐसा भाव देख चार डाकू वैष्णव के वेश में राज्य में आये और राजा से कहा कि वे अन्तःपुर में रानी के हाथ से सेवा प्राप्त करेंगे। महाराज ने बिना विचारे उन्हें रानी के निकट भेज दिया। वैष्णवों ने भोजनादि कर शयन किया। रानी जब उनकी चरण-सेवा के लिए आई तब चारों ने मिल कर रानी का वध कर डाला और उसके स्वर्णाभूषण ले सवेरा होते न होते वहाँ से निकल भागे। परिचारिकाओं ने जब सारा समाचार राजा को सुनाया तो वे बोले 'पापिन ने अवश्य वैष्णव चरणों में कोई अपराध किया होगा, नहीं तो ऐसा कभी न होता। वैष्णवों की सेवा में कोई त्रुटि अवश्य रह गयी है, यदि ऐसा न होता तो वे इस प्रकार क्यों चले जाते? वे जो सामान ले गये हैं, उसके चार भाग करने पर एक-एक के हिस्से में पड़ेगा ही कितना?' इतना कह उन्होंने बहुत-सा धन लेकर अपने सेवकों को उन वैष्णव-वेशधारी डाकुओं के पास भेज दिया और कहा, 'यदि वे न आयें तो उनके चरणों में रानी के अपराध की क्षमा माँग उनका चरणामृत लेते आना।' राजा के सेवक द्रुतवेग से वैष्णवों के पीछे-पीछे भागने लगे। कुछ देर बाद जब डाकुओं ने देखा कि उनके पीछे राजा के सेवक भागे आ रहे हैं तो अपने प्राणों की आशंका से वे तेजी से भागने लगे। सेवकों ने दूर से अभय-प्रदान करते हुए उनके निकट जा सारा वृत्तान्त सुनाया और राजा का दिया हुआ धन अर्पण कर रानी के अपराध की क्षमा माँगी तथा राजधानी लौटने की प्रार्थना की। वैष्णववेशधारी डाकुओं का हृदय परिवर्तन हो गया। वे राजा के सेवकों के साथ राजधानी लौट आये। देखते ही राजा ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया और सम्मानपूर्वक अन्तःपुर में रानी के शव के पास ले गये। उन्होंने चारों के चरण धो चरणामृत रानी के मुख में डाल दिया। चरणामृत का स्पर्श पाते ही रानी जैसे निद्रा से जागी हुई-सी उठ कर बैठ गई। बताओ, यह डाकुओं के चरणों की शक्ति थी या राजा के विश्वास की? इसी से कहा गया है—'विश्वासे मिलिये वस्तु, तर्के बहु दूर।' विश्वास करो, फल पाओगे। फिर भी स्वजातीय साधुसंग करना आवश्यक है।

प्यारी—स्वजातीय क्या?

बाबाजी—जिसका एक भाव, एक विषय और एक आशय हो, उसी को स्वजातीय कहते हैं। अर्थात् हमारे प्राण जिस भाव से, जिस अवस्था में, जिस स्थान पर जिसे चाहते हैं, उसे ठीक उसी भाव, अवस्था और स्थान में जो चाहता है वह अपना स्वजातीय है। उसी का संग करना चाहिए। मान लो एक स्टेशन पर सैकड़ों व्यक्ति टिकट ले रहे हैं। उनमें से कोई कटक का टिकट चाहता है, कोई काशी, गया या प्रयाग का। कोई प्रथम श्रेणी का टिकट चाहता है, कोई दूसरी का, कोई तीसरी का। तुम इनमें से किसका संग करोगे? कौन इनमें से तुम्हारा स्वजातीय होगा? वह जिसने तुम्हारे गन्तव्य स्थान का और तुम्हारी श्रेणी का टिकट ले रखा है—वह चाहे हिन्दू हो, मुसलमान या ईसाई, तुम्हारा स्वजातीय है, और उसी का संग करना तुम्हारे लिये ठीक है। गन्तव्य स्थान अपरिचित होने पर भी उसके संग-बल से तुम्हारा साहस दूना बना रहेगा। तुम्हारे सहोदर माता-पिता या भाई-बहन, जो तुम्हारे साथ एक भावापन्न नहीं हैं, तुम्हारे लिये विजातीय हैं। उनका संग करने से तुम्हारे भाव में अवनति होगी, उन्नति नहीं। क्योंकि देखो, एक ही व्रजेन्द्रनन्दन कृष्ण

के उपासक हैं उनके दास और सखागण। दास हाथ जोड़कर स्तवन करते हैं। उनकी धारणा है कि कृष्ण हमारे हर्ता-कर्ता-विधाता हैं; और सखागण कृष्ण से कहते हैं—ओ रे कन्हैया, तू क्या रोज-रोज इतनी देर तक सोया करेगा और हम आकर तुझे जगाया करेंगे? आ चल, तुझे खेल में हराकर हम सब तेरे कन्धे पर चढ़ेंगे। श्रीदाम कहते हैं—तुम कौन-से बड़े आदमी हो, हमारे ही जैसे तो हो। बताओ, सखाओं की बात दास्यभाव के भक्तों के मन में ग्लानि उत्पन्न करेगी या नहीं? एक ही देव के उपासक होते हुए भी वे एक-दूसरे के लिए विजातीय हैं। नरोत्तम ठाकुर महाशय ने कहा है—

आन कथा ना कहिबे, आन कथा न शुनिबे,
सकलइ कहिबे परमार्थ।

अर्थात् जो कुछ भी कहो, सुनो, परमार्थ के विषय में, अन्य कथा न कहो न सुनो। रसान्तर कथा भी अन्य कथा में शामिल है।

प्यारी—यदि इस प्रकार का स्वजातीय साधु न मिले तब क्या करना चाहिए?

बाबाजी—'साधु' शब्द से केवल मनुष्य ही नहीं समझना चाहिए। शास्त्र, श्रीमूर्ति और नाम भी समझना चाहिये। इन चार प्रकार के साधुओं में प्रत्येक में स्वजातीय और विजातीय होते हैं। निज अभीष्ट रस प्रतिपादक शास्त्र ही स्वजातीय शास्त्र हैं, उन्हीं की आलोचना करनी चाहिए। निज भावरसोद्दीपक श्रीमूर्ति ही स्वजातीय है, उसी का दर्शन और उसी की सेवा करनी चाहिए। निज अभीष्ट भाव, रस और सम्बन्धवाचक नाम ही स्वजातीय हैं। उन्हीं का सदा श्रवण और कीर्तन करना चाहिए। इस प्रकार के संग से जीव का अपना स्वरूप प्रकाशित होता है, जीव और कृष्ण का सम्बन्ध जाग उठता है।

प्यारी—जीव का निज स्वरूप क्या है, मैं नहीं समझा। जीव के जो अवयव हैं उनका स्वरूप तो प्रकाशमान है ही, इसके अतिरिक्त प्रकृत स्वरूप प्रकाश क्या है?

बाबाजी—जीव प्राकृत तत्त्व से आवृत हो चाहे जिस प्रकार का स्वभाव क्यों न प्राप्त कर ले और उस स्वभाव के अनुरूप चाहे जिस प्रकार की आकृति क्यों न प्राप्त कर ले, वह स्वभाव और आकृति नश्वर हैं। स्वरूपत: जीव नित्य कृष्णदास है। यही स्वरूप नित्य अविनाशी और चिन्मय है। इसी को प्रकृत स्वरूप कहते हैं।

प्यारी—जीव और भगवान् में भेद क्या है? वेदान्त शास्त्र कहते हैं—'अहं ब्रह्मास्मि', 'तत्त्वमसि।' तन्त्र कहते हैं 'शिवोऽहम्।' वेदों का कर्म-काण्ड कहता है—'देवो भूत्वा देवं यजेत्।' और पूजा प्रणाली में आर्य ऋषियों ने कहा है, 'देवं ध्यात्वा स्वशिरसि पुष्पं दत्त्वा सोऽहम् इति विचिन्त्य पुनर्ध्यायेत्।' इत्यादि। इन सब शास्त्र-वाक्यों से जीव और भगवान् का अभिन्नत्व प्रतिपन्न होता है। केवल भक्तिशास्त्र ही कहते हैं 'जीवेर स्वरूप हय नित्य कृष्णदास।' इस विषय को मुझे विशेष रूप से समझाने की कृपा कीजिए।

बाबाजी—ब्रह्मसूत्र और भक्तिशास्त्रों का सिद्धान्त एक है। दोनों का अभिप्राय एक है। जीव भगवान् की तटस्थ शक्ति है। शक्ति और शक्तिमान में भेद नहीं होता। 'शक्ति शक्तिमतोरभेद:।' अग्नि और उसकी दाहिका-शक्ति दोनों में परस्पर भेद होते हुए भी अभेद है। अग्नि से दाहिका-शक्ति को पृथक् नहीं किया जा सकता है। इसीलिए शास्त्रों में 'अचिन्त्य भेदाभेद' का वर्णन है। जीव और भगवान् में तत्त्वत: अभेद होते हुए भी लीला-विस्तार के लिए भगवान् ने देखने में भेद-स्वरूप अंगीकार किया है। अग्नि और उसकी दाहिका शक्ति में भेद करना जितना कठिन है, उतना भगवान् और जीव में भेद करना नहीं। सीधी बात यह है कि भगवत्सत्ता से जीव की सत्ता है, पर जीव की असत्ता में भी भगवत्सत्ता विद्यमान रहती है। प्राकृत शक्ति-शक्तिमान् और अप्राकृत शक्ति-शक्तिमान् जीव और भगवान् में यही भेद है।

प्यारी—भगवान् से जीव का सम्बन्ध जगाने का क्या उपाय है?

बाबाजी—भगवान् से जीव का सम्बन्ध जगाने के लिए ही संसार क्षेत्र है। दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर ये चार रस संसार क्षेत्र में सदा वर्तमान रहते हैं। सम्बन्ध न रहने से संसार भी नहीं रहता। मनुष्य

सांसारिक सम्बन्ध-सुख उपभोग कर जब आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक, इन तीन प्रकार के तापों द्वारा नाना प्रकार से यन्त्रणा-ग्रस्त होता है, तब विवेक-बल से सांसारिक सम्बन्ध सुख छोड़ प्रकृत सम्बन्ध तत्त्व के अनुसन्धान के लिए व्याकुल हो उठता है। इस सच्ची व्याकुलता के कारण ही जीव को साधु-संग मिलता है। साधु-संग से तत्त्वज्ञान होता है। तत्त्व-ज्ञान जीव को भगवदोन्मुख करता है। भगवदोन्मुख जीव भक्ति-पथ पर अग्रसर होने के लिए हृदय से श्रीगुरुदेव के चरणों का आश्रय लेता है। गुरुदेव कृपाकर उसके हृदय में भगवत्सम्बन्ध जगा देते हैं। तब जीव भगवान् से सम्बन्ध स्थापित कर उनसे हृदय से प्रेम करने लगता है। प्रेमी का हृदय सेवा के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता। सेवा ही है प्रेम का प्राण। सेवा के बिना प्रेम जीवित नहीं रहता। भगवत्साक्षात्कार न होने तक सेवा दो प्रकार से सम्पन्न होती है—एक तो मानसिक रूप से, दूसरे श्रीमूर्ति उपासना के रूप में। मानसिक सेवा में साधक मानसिक रूप से ठीक उसी प्रकार भगवच्चिन्तन और भगवत्सेवा में रत रहता है, जिस प्रकार प्राकृत जगत् में अविवाहिता किशोरी स्वामी-सेवा-विषयक मानसिक चिन्तन में लीन रहती है। यह स्मरण और मनन बड़ा ही मधुर और आनन्दप्रद होता है। साधक इस मानसिक सेवा की ओर जितना अग्रसर होता जाता है, अन्य विषयों में उसकी आसक्ति उतनी ही घटती जाती है और अन्त में भगवत्सान्निध्य की प्राप्ति होती है। श्रीमूर्ति रूप में जो भगवत्सेवा होती है, उसमें साधक अपने अभीष्ट देव की श्रीमूर्ति स्थापित कर और उसमें नित्यत्व का आरोप कर मन-वचन-कर्म से अष्टकाल सेवा करता है। ये मार्ग बड़ा ही सुगम और प्रीतिप्रद है; क्योंकि इसमें पंचकर्मेन्द्रियाँ, पंचज्ञानेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार एवं कामक्रोधादि षड्रिपु अपना बहिर्मुख भाव छोड़ अन्तर्मुख हो भगवत्सेवा की अनुकूलता धारण कर बाधक न होकर साधक बन जाते हैं। इस प्रकार की सेवा द्वारा साधक थोड़े ही प्रयत्न से भगवत्साक्षात्कार प्राप्त कर लेता है। तब प्राकृत संसार और प्राकृत देह में रहते हुए भी वह अप्राकृत, नित्य, सच्चिदानन्दमय निज अभीष्ट देव के साथ साक्षात् आलाप व्यवहारादि करता है।

प्यारी—आपकी बात से यह समझ में आता है कि गुरुकृपा ही वस्तु है, किन्तु समय के प्रभाव से आजकल सद्गुरु मिलना ही तो कठिन है। इसलिए यह सब उपासना मुझे आकाश-कुसुम जैसी जान पड़ती है।

बाबाजी—'गुरु' शब्द भगवत्बोधक है। जिस प्रकार 'भगवत्' के साथ 'सत्' 'असत्' शब्द जोड़ते नहीं बनता, वैसे ही 'गुरु' के साथ भी। व्यावहारिक जगत् में भी 'गुरु' का अर्थ है—महत्। सद्महत् और असद् महत् कैसे हो सकता है, बताओ।

प्यारी—'गुरु' शब्द भगवत्-बोधक है, यह विचार तो कभी मेरे मन में आया ही नहीं। गुरुडम चलाने वाले आजकल के व्यवसायी व्यक्तियों के व्यवहार और उपदेश से भक्ति-पथ पर अग्रसर होना तो दूर, उल्टे अवनति ही होगी।

बाबाजी—क्यों भाई? तुमने तो बहुत शास्त्र देखे हैं। भगवान् कहते हैं—

आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित्।
न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत सर्वदेवमयो गुरुः।।

और गुरु-गीता में कहा है—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।

कविराज गोस्वामी का वाक्य है—

'दीक्षागुरुके तो जानि कृष्णेर स्वरूप।।'

अन्यत्र कहा है—

'गुरुरूपे कृष्णकृपा तत्त्वेर अवधि।'

इसी वाक्य के आधार पर श्रीसनातन गोस्वामी ने कहा है—

जीवेर निस्तार लागि नन्दसुत हरि।
भुवने प्रकाश हन गुरु रूप धरि।।
महिमाय गुरु कृष्ण एक करि जान।
गुरु-आज्ञा हृदे सब सत्य करि मान।।
सत्यज्ञाने गुरुवाक्ये जाहार विश्वास।
अवश्य ताहार हय व्रजभूमे वास।।
जार प्रति गुरुदेव हन परसन्न।
कोन विघ्ने सेह नाँहि हय अवसन्न।।

कृष्ण रुष्ट हइले गुरु राखिबारे पारे।
गुरु रुष्ट हइले कृष्ण राखिबारे नारे।
गुरु माता गुरु पिता गुरु हन पति।
गुरु बिने त्रिसंसारे नाहिं आर गति।।
गुरुके मनुष्यज्ञान ना कर कखन।
गुरु-निन्दा कभु कर्णे नाकर श्रवण।।
गुरुनिन्दुकेर मुख कभु ना हेरिबे।
जथा हय गुरुनिन्दा तथा ना जाइबे।।
गुरुर विक्रिया जदि देखह कखन।
तथापि अवज्ञा नाहिं कर कदाचन।।
गुरु-पाद-पद्म नित्य जे करे वन्दन।
शिरे धरि वन्दि आमि ताहार चरण।।
हेन गुरु-पाद-पद्म हृदे करि आश।
श्रीगुरु वन्दना करे सनातनदास।।

अब विचार करो। शास्त्र-सिद्धान्त के अनुसार यदि गुरु और गोविन्द एक ही वस्तु हैं तो उनके क्रिया-कलाप की समालोचना करने का तुम्हारे-जैसे क्षुद्र जीव को क्या अधिकार है? गुरुदेव के प्रति शिष्य का दृढ़ विश्वास होने से, गुरु चाहे जैसे भी हों शिष्य उनके द्वारा अभीष्ट वस्तु लाभ करता है। गुरु गाय हैं, शिष्य दोग्धा। शिष्य एकाग्रचित्त हो जितना दुहता है, उतना फल पाता है। यदि गुरुदेव इस विचार से कि वह शिष्य के मनोनुकूल न हुए तो उसकी भक्ति के पात्र न हो सकेंगे, सदा शिष्य के मनोमत होने की चेष्टा करते रहें, तो गुरुदेव उपासक और शिष्य उपास्य हुए न? श्रीगुरुदेव सर्वशक्तिमान् हैं। वे जो चाहें कर सकते हैं। शिष्य की क्या सामर्थ्य कि उनके गुण-दोष का विचार कर सके। तुलसीदास जी ने कहा है—'गुरु मिले लाख-लाख, चेला ना मिले एक।' गुरुदेव के आचरण में कपट, प्रवंचना इत्यादि देख शिष्य समझ सकता है कि उनकी ऐसी प्रकृति है, परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं। शिष्य की अपनी मनोवृत्ति के अनुसार ही शिष्य को तदनुरूप वस्तु दीख पड़ती है। गुरु कैमरे के समान हैं। शिष्य जिस प्रकार की चित्तवृत्ति लेकर उनके पास जाता है, वैसा ही फोटो उसमें आ जाता है।

प्यारी—प्राय: देखने में आता है कि गुरुदेव शिष्य के घर जा अर्थ और वस्त्रादि का लोभ करते हैं। शिष्य किसी प्रकार यह सब भेंट कर देता है तो उसकी कन्या और भगिनी आदि के प्रति लोभ करते हैं। अब बताइये इस प्रकार का व्यवहार देख कब तक शिष्य की श्रद्धा उनमें बनी रह सकती है? इसीलिए गुरु के आगमन की बात सुन उसके प्राण सशंकित हो उठते हैं।

बाबाजी—अच्छा बताओ, तुम एक खट्टे आम के बीज से निकले वृक्ष में से मीठे आम पाने की आशा कर सकते हो? यदि मीठा आम खाना चाहते हो तो बीज भी मीठे आम का ही रोपना पड़ेगा। दीक्षा ग्रहण करते समय क्या तुमने श्रीगुरुदेव के चरणों में निष्कपट हृदय से आत्मसमर्पण किया था? गुरुदेव के दर्शन से कृष्ण-साक्षात्कार-जनित आनन्द की अनुभूति की थी? गुरु-दत्त मन्त्र प्राप्त करने के समय कृष्ण-प्राप्ति-जनित सुख का अनुभव किया था? हम लोगों का प्रधान दोष है कि हम व्याधि की उत्पत्ति के प्रकृत कारण का अनुसन्धान नहीं करते और जब व्याधि बहुत बढ़ जाती है तो हताश हो बैठते हैं। 'कुलगुरु घर आये हैं, क्या करना चाहिये? आर्थिक व्यवस्था ठीक नहीं फिर भी एक रुपया प्रणामी और एक जोड़ा धोती तो देनी ही होगी। पूजा का खर्च अलग। जो भी हो, किसी प्रकार मन्त्र लेने का जो एक झंझट है, उसे मिटा दिया जाय, नहीं फिर कभी गाड़ीकर गुरुदेव को बुलाना पड़ा तो खर्च अधिक लगेगा।' शिष्य इस प्रकार का सोच विचार करता होता है, उसका कोई हितैषी बोल उठता है—'धोती-जोड़े के बजाय कुछ और रख देने से भी काम चल सकता है। और प्रणामी का रुपया तो उधार भी किया जा सकता है। गुरु-शिष्य का सम्बन्ध एक दिन का थोड़े ही होता है। शिष्य जब तक जीवित रहता है, देता ही रहता है।' इस भाव से किये गये गुरु-करण का फल क्या कभी अच्छा हो सकता है? गुरुदेव का संशोधन करने से पहले अपने अन्त:करण की ओर देखना चाहिए। गुरुदेव निर्मल दर्पण के समान हैं। शिष्य जिस प्रकार की अन्त:करण-वृत्ति लेकर उनके पास जाता है, वैसा ही प्रतिबिम्ब उसमें दीख पड़ता है। सारांश यह कि शिष्य अपनी मनोवृत्ति के अनुसार ही गुरु में गुण-दोष का आरोप करता है।

प्यारी—आपने कहा, नाम सर्वशक्तिमान है, नाम लेने में देश-काल शुचि-अशुचि का विचार नहीं है, नाम लेते ही प्रेम का उदय होता है। नाम और प्रेम एक ही हैं। जिस किसी रूप में भी हो, नाम तो हम लोग लेते ही रहते हैं, प्रेम-संचार की बात तो दूर, हमारा कपट भी दूर नहीं होता। हम तो अविश्वासी जीव हैं; जब तक कोई प्रत्यक्ष फल न देख लें, शास्त्र-वाक्यों में अन्ध-विश्वास कैसे करें?

बाबाजी—मान लो एक व्यक्ति अनेक कठिन रोगों से पीड़ित है। उसकी बाहरी अवस्था देख कुछ पता नहीं चलता, पर अन्दर ही अन्दर वह भयानक कष्ट भोग रहा है। बहुत डाक्टर-वैद्यों को दिखाया जा चुकने पर भी कोई लाभ नहीं हुआ। एक सुविज्ञ चिकित्सक आकर कहता है—'देखो भाई! मेरे पास एक अचूक महौषधि है। उसे लेने से मस्तिष्क स्निग्ध, शरीर पुष्ट और अन्तःकरण प्रफुल्ल होता है। उसका सेवन करने के बाद तुम्हारे शरीर में रोग नाम की वस्तु नहीं रहेगी।' इतना कह एक गोली उसके मुख में रख देता है। गोली खाने के थोड़ी देर बाद रोगी कहता है—"क्यों कविराज महाशय! मेरा शरीर तो मोटा हुआ नहीं, व्याधि भी कम नहीं हुई, कैसी आपकी औषधि है?" तो कविराज महाशय यही तो कह सकते हैं न, "बाबा बहुत दिनों की संचित व्याधि है, तरह-तरह की चिकित्सा करते हुए इतने दिन हो गये हैं। विश्वास-पूर्वक दो चार दिन और औषधि लो, अवश्य फल होगा।" इसीलिये तो कहता हूँ, अनादिकाल से कितने पाप, महापाप, अपराध, महापराध, कपट, वंचना, परनिन्दा, हिंसा-द्वेष, ईर्षा, असूया, अभिमान, दम्भ, अविश्वास, परछिद्रान्वेषण, देव-द्विज-गुरु-वैष्णव-निन्दा इत्यादि का संचय कर रखा है। फिर भी पूछते हो कि एक बार नाम लेने से प्रेम उत्पन्न क्यों नहीं होता। यदि श्रद्धा-विश्वास-पूर्वक नाम लेते तब भी एक बात थी। सीधे तौर पर यों समझो कि तरह-तरह के सामान से भरे घर की सफाई करने के लिए तुमसे कहा जाय तो तुम क्या करोगे? बेकार की चीजों को फेंककर काम की चीजों को यथास्थान रख दोगे, घर को धूप-अगरु इत्यादि से सुगन्धित कर दोगे, तभी तो घर की सफाई होगी। नाम सर्वशक्तिमान है सही; पर वह किसी का विनाश नहीं करता। नाम के लिए कोई वस्तु वर्जनीय नहीं। नाम दोष को गुण में, काम को प्रेम में और खेल को लीला में परिणत करता है; नाम रिपुओं को सहायक, प्राकृत को अप्राकृत बना देता है और सांसारिक माया सम्बन्ध को नित्य चिन्मय सम्बन्ध राज्य में बदल देता है। पाप दूर करना नाम या नामाभास की क्रिया नहीं है, वह नाम का अवान्तर फल है। जिस प्रकार बहुत-से मच्छरों को मारने के लिए तोप की जरूरत नहीं होती, उसी प्रकार जन्म-जन्मान्तर के अर्जित पाप-पुंज का विनाश करने के लिए नाम की आवश्यकता नहीं होती। नाम के आने की सम्भावना मात्र से पाप स्वतः भाग जाते हैं—

शास्त्र में कहा है—

नाम्नैव यादृशी शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः।
तावत् कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः।।

इसी श्लोक का अर्थ इस प्रचलित पद में व्यक्त किया गया है।

एक बार हरिनामे जत पाप हरे।
पातकीर साध्य नाइ तत पाप करे।।

प्यारी—नित्य चिन्मय सम्बन्ध क्या है और कैसे बनता है?

बाबाजी—नित्य चिन्मय सम्बन्ध का अर्थ अप्राकृत अविनाशी चैतन्यमय सम्बन्ध है। मैं पहले ही कह चुका हूँ, सम्बन्ध राज्य का ज्ञान कराने के लिए ही हमारा यह संसार क्षेत्र है। शास्त्र ने शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर इन पाँच रसों का निर्देश किया है। किन्तु सम्बन्ध राज्य में दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर यही चार रस रहते हैं। शान्त रस में ईश्वर के अस्तित्व को मानकर और उन्हें सर्वेश्वर, सर्व-नियन्ता, स्रष्टा, पालक और संहारक जान उनकी आराधना की जाती है। सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, सनातन इत्यादि इस रस के पात्र हैं। शान्त रस में किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं होता। दास्य रस में सम्बन्ध होता है। उसमें ईश्वर को प्रभु और अपने आपको उनका दास मानकर उपासना की जाती है। संसार के अधिकांश व्यक्ति दास्य रस के

उपासक होते हैं। दास्य रस के भक्त भक्ति के चौंसठ अंगों का पालन करते हैं। वे विधि मार्ग और रागमार्ग दोनों का ही अवलम्बन करते हैं।

प्यारी—राग और विधि में क्या भेद है?

बाबाजी—विधि का अर्थ है नियम या कानून। पापादि के फलस्वरूप नरकयन्त्रणा के भय से अथवा स्वर्गादि के सुख की अभिलाषा से प्रेरित होकर भगवदोन्मुख व्यक्ति का शास्त्रोक्त विधिनिषेध का पालन करते हुए भगवदुपासना करना ही वैधी उपासना है। तात्पर्य यह कि वैधी भक्त भगवत्सुख-असुख की बात नहीं जानता, वह केवल यह जानता है कि शास्त्र की विधि पालनीय है और उसका निषेध वर्जनीय। भगवान् का लोभ रख कर शास्त्र की अपेक्षा किये बिना भगवदुपासना करने को रागमार्ग की उपासना कहते हैं। इस उपासना में सदा भगवत्सुख अन्वेषण, आत्मसुखाभिलाष-शून्यता, फलाकांक्षाराहित्य, और भगवान् में दृढ़ श्रद्धा होती है। दोनों प्रकार के भक्तों की बाहरी क्रिया एकसी होने पर भी उनकी मानसिक गति में तारतम्य होता है। विधि कहती है, स्नान किये बिना मनुष्य पवित्र नहीं होता। राग कहता है स्नान करो चाहे न करो, मानसिक पवित्रता होनी चाहिए। विधि कहती है, सफेद पुष्प से पूजा करनी चाहिए, राग कहता है कृष्णसेवा के लिए किसी भी रंग का पुष्प हो, सुगन्धित और कोमल होना चाहिए। विधि कहती है, पूजा अर्चना करो, इष्ट प्रसन्न होंगे और तुम्हारे अभीष्ट की पूर्ति होगी। विधि फल चाहती है, राग उपास्यदेव का सुख चाहता है। विधि बहिरंग है, राग अन्तरंग।

प्यारी—भक्ति के चौंसठ अंग और नवधा भक्ति क्या है?

बाबाजी—भक्ति के चौंसठ अंग हैं 1. गुरु-पदाश्रय, 2. कृष्णमन्त्र शिक्षा और दीक्षा, 3. विश्वासपूर्वक गुरु सेवा, 4. साधुओं का मार्गानुगमन, 5. सद्धर्म जिज्ञासा, 6. कृष्ण की प्रीति के लिए सुख भोगों का त्याग, 7. तीर्थवास, 8. भक्ति के मुख्य उपाय का अवलम्बन, 9. हरिवासर सम्मान, 10. धात्र्यश्वत्थ गौरव, 11. बहिर्मुख संग का त्याग, 12. बहुत शिष्य न करना, 13. आडम्बर का त्याग, 14. बहुग्रन्थ-कलाभ्यास, व्याख्या एवं कुतर्क वर्जन, 15. व्यवहार में अकृपणता, 16. शोकमोहादि के वशीभूत न होना, 17. दूसरे देवताओं की अवज्ञा न करना, 18. किसी भी प्राणी को उद्वेग न देना, 19. नामापराध और सेवापराध न करना, 20. कृष्ण या कृष्णभक्तों के प्रति विद्वेष या उनकी निन्दा न सहना, 21. वैष्णव-चिह्न धारण करना, 22. हरिनामांकित चिह्नादि शरीर पर धारण करना, 23. निर्माल्य (प्रसादी) धारण, 24. भगवान् के सम्मुख नृत्य, 25. दण्डवत नमस्कार, 26. अभ्युत्थान, 27. अनुगमन, 28. भगवन्मन्दिर गमन, 29. परिक्रमा, 30. पूजा, 31. परिचर्या, 32. गीत, 33. संकीर्तन, 34. जप, 35. निवेदन, 36. स्तव पाठ, 37. नैवेद्य आस्वादन, 38. चरणामृत पान, 39. धूपमाल्यादि-सौरभ ग्रहण, 40. श्रीमूर्ति-स्पर्शन, 41. श्रीमूर्ति दर्शन, 42. आरत्रिक और उत्सवादि दर्शन, 43. श्रवण, 44. कृष्णकृपापेक्षा, 45. स्मरण, 46. ध्यान, 47. दास्य, 48. सख्य, 49. आत्मनिवेदन, 50. निजप्रिय वस्तु अर्पण, 51. कृष्णार्थ अखिल चेष्टा, 52. सर्वथा शरणागति, 53. तुलसी सेवा, 54. भागवतादि शस्त्र-अध्ययन, 55. मथुरा मंडलवास, 56. वैष्णव सेवा, 57. शक्त्यनुरूप वैभव द्वारा साधुगण सहित महोत्सव, 58. कार्तिक व्रत धारण, 59. जन्मयात्रा महोत्सव, 60. श्रद्धापूर्वक श्रीमूर्ति सेवा, 61. रसिक जनों के साथ भागवतार्थ आस्वादन, 62. स्वजातीय स्निग्ध साधुसंग, 63. नाम संकीर्तन, 64. मथुरा मंडल सेवा।

नवधाभक्ति इन चौंसठ अंगों के अन्तर्गत है।

नवधाभक्ति है—1. श्रवण. 2. कीर्तन, 3. स्मरण, 4. पादसेवन, 5. अर्चन, 6. वन्दन, 7. दास्य, 8. सख्य, 9. आत्मनिवेदन।

दास्य भाव के सेवक चौंसठ अंगों में से एक या बहुत-से अंगों का निष्ठापूर्वक याजन कर भावसिद्ध होते हैं। इनका प्राप्ति स्थान है—1. वैकुण्ठ, 2. गोलोक, 3. द्वारका, 4. मथुरा, 5. वृन्दावन इत्यादि। इनमें से कोई पूर्ण ऐश्वर्य भाव से, कोई ऐश्वर्यमिश्रित माधुर्य भाव से और कोई विशुद्ध माधुर्य भाव से वैकुण्ठनाथ नारायण की, द्वारकानाथ मथुरानाथ कृष्णचन्द्र की और

गोलोक विहारी वृन्दावनचन्द्र की उपासना करते हैं। दास्य रस का विशुद्ध माधुर्यभाव एकमात्र व्रज को छोड़ और कहीं दृष्टिगत नहीं होता। इस दास्यभाव के सम्बन्ध में श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है—'आमाके ईश्वर माने आपनाके हीन। आमि तार प्रेमे बाध्य ना हइ अधीन।।' जय-विजय, व्यास, नारद, ध्रुव, प्रह्लाद, अम्बरीष, रक्तक, पत्रक, सारंग इत्यादि इस रस के असख्य पात्र हैं। सख्य रस अर्थात् बन्धुत्व भाव में रागमार्गी को ही प्रवेश करने का अधिकार है, वैधीभक्त को नहीं। यह सख्य भाव दो प्रकार का है, ऐश्वर्यमिश्रित सख्य और विशुद्ध सख्य। ऐश्वर्य मिश्रित सख्य भाव के पात्र हैं उद्धव, अर्जुन इत्यादि। इसके प्राप्ति स्थान हैं द्वारका, मथुरा। विशुद्ध सख्य रस के पात्र हैं—श्रीदाम, सुबल, मधुमंगल इत्यादि। इसका प्राप्ति-स्थान है एक मात्र वृन्दावन। सखागण तीन श्रेणियों में विभक्त हैं—सखा, प्रियसखा और प्रिय-नर्मसखा। ऐश्वर्यमिश्रित सख्य रस के पात्र उद्धव, अर्जुन इत्यादि जब कभी कृष्ण के ऐश्वर्यादि का दर्शन करते हैं तो सोचते हैं—हाय, मैंने सर्वैश्वर्य-सम्पन्न कृष्ण के साथ निरन्तर सखा-जैसा व्यवहार कर घोर अपराध किया है। भगवान् कृष्णचन्द्र ने जब अर्जुन को अपना ऐश्वर्य दिखाया तो वे मुग्ध होकर बोले—

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं
हे कृष्ण! हे यादव! हे सखेति!
अजानता महिमानं तवेदं
मया प्रमादात् प्रणयेन वापि।।इत्यादि।।

इससे यह समझ में आता है कि इनका माधुर्यांश थोड़ा और ऐश्वर्यांश प्रबल है। विशुद्ध सख्य रस के पात्र श्रीदाम सुबल आदि को श्रीकृष्ण की महती ऐश्वर्यशक्ति देखकर भी उनके ऐश्वर्य का बोध नहीं होता, बल्कि वे उसे किसी मन्त्र का परिणाम या ऐन्द्रजालिक व्यापार समझते हैं। गोवर्धन धारण, दावाग्निपान इत्यादि लीलाओं में सम्पूर्ण ऐश्वर्य क्रिया प्रत्यक्ष देखकर भी सखाओं के मन में थोड़ा भी ऐश्वर्य का स्पर्श नहीं हो सका, वरन् गोवर्धन धारण के समय कोई-कोई तो दौड़कर अपने-अपने डण्डे से कृष्ण की सहायता करने लगे। दावाग्निपान के बाद सुबल कृष्ण का मुख अपने हाथों में ले कहने लगे 'भाई कन्हाई, आग से तुम्हारा सुकोमल मुख झुलस तो नहीं गया?' विचार कर देखो, कैसा मधुर भाव है। ऐश्वर्य को देखकर भी ऐश्वर्य की गन्ध तक का स्पर्श नहीं। इस सख्य रस में दास्य का सेवा-गुण और सख्य का मित्रतागुण दोनों वर्तमान हैं। रसों के तारतम्य के अनुसार प्रत्येक रस में उसके पूर्व के रसों के गुण संचारित रहते हैं। वात्सल्य रस में कृष्ण को पुत्र जान उनके प्रति स्नेह-व्यवहार और अपने पिता-माता होने का ज्ञान रहता है। यह रस दो प्रकार का है—ऐश्वर्य-मिश्रित और विशुद्ध। ऐश्वर्य-मिश्रित वात्सल्य के पात्र वसुदेव-देवकी इत्यादि हैं; इसके प्राप्ति-स्थान द्वारका-मथुरा आदि हैं। ये ऐश्वर्य देखते ही अपने सम्बन्ध को भूल जाते हैं। मथुरा में कृष्णचन्द्र ने जन्म लेते ही वसुदेव और देवकी के वात्सल्य की परीक्षा के उद्देश्य से चतुर्भुज रूप धारण किया, तो वसुदेव देवकी अपने सम्बन्ध को भूलकर स्तुति करने लगे।

त्वमस्य लोकस्य विभो! रिरक्षिषु-
र्गृहेऽवतीर्णोऽसि ममाखिलेश्वर।
राजन्यसंज्ञासुरकोटियूथपै-
र्निर्व्यूह्यमाना निहनिष्यसे चमूः।।

देवकी बोलीं—

रूपं यत्तत् प्राहुरव्यक्तमाद्यं,
ब्रह्म ज्योतिर्निर्गुणं निर्विकारं।
सत्तामात्रं निर्विशेषं निरीहं,
स त्वं साक्षाद्विष्णुरध्यात्मदीपः।।

ये लोग कृष्ण में पुत्र-भाव रखते हुए भी कभी उनकी ताड़ना और भर्त्सना आदि करने की बात नहीं सोच सकते। श्रीकृष्ण भी उस प्रकार से इनके अधीन नहीं होते। ऐश्वर्य-विहीन विशुद्ध वात्सल्य रस के पात्र नन्द-यशोदा इत्यादि सम्पूर्ण ऐश्वर्य क्रियाओं को प्रत्यक्ष देखकर भी उन्हें दैवी या आसुरी क्रिया मानते हैं। श्रीकृष्ण नन्द-यशोदा के विशुद्ध वात्सल्य भाव की परीक्षा करने के उद्देश्य से मिट्टी खाने की लीला के बहाने मुखारविन्द में ब्रह्माण्ड का प्रकाश कर स्वयं ही परास्त होते हैं, क्योंकि माँ यशोदा उक्त व्यापार को ग्रहों की बाधा समझती हैं और नन्द से उसकी शान्ति

का उपाय करने के लिए कहती हैं। नन्द महाराज भी ब्राह्मण को बुला अनेक प्रकार से शान्ति विधान कराते हैं। गोवर्धन धारण के समय माँ यशोदा दूसरे बालकों को बुलाकर कहती हैं—"मेरा दुधमुहाँ बच्चा आज सात दिन से इतने बड़े पर्वत को हाथ पर उठाये हुए है। उसे बड़ा कष्ट हुआ है। तुम सब कुछ सहायता करो। गोपाल को तनिक विश्राम करने दो" इत्यादि। वृन्दावन में कृष्णचन्द्र कितना भी ऐश्वर्य प्रकट करें व्रजवासी विचलित नहीं होते। वे सदा कृष्ण की ताड़ना, भर्त्सना, वन्दना, शिक्षा, आदि द्वारा लालन-पालन कर उन्हें अपने वश में रखते हैं। यदि माँ यशोदा किसी के मुख से कृष्ण की ऐश्वर्य कथा सुनती भी हैं तो कहती हैं—'कृष्ण मेरा अबोध बालक है, उसने तो आजतक भूख लगने पर माँगना भी नहीं जाना। उसके विषय में ये सब बातें कहने से उसका अकल्याण हो सकता है। अन्नप्राशन के अवसर पर गर्गमुनि ने कहा था—'नारायण समो गुणैः।' उस मुनिवाक्य की शक्ति के कारण उसके द्वारा कोई कार्य भले ही सम्पन्न हो सकता है। मेरा विश्वास है, गोपाल की देह में नारायण आविर्भूत होकर सारी लीलाएँ करते हैं।' इस वात्सल्य रस में दास्य की सेवा, सखा का क्रीड़ा-कौतुकादि-सूचक मित्र भाव और वात्सल्य के लालन-पालनादि गुण सदा वर्तमान रहते हैं। वह किसी प्रकार का ऐश्वर्यादि देख कर भी श्रीकृष्ण को अपने वात्सल्य रस के पात्र गोपबालक से भिन्न और कुछ नहीं समझ पाते। उन्हें कभी भी अपने सुख की अभिलाषा नहीं होती।

मधुरभाव अर्थात् कान्ताप्रेम में श्रीकृष्ण स्वामी हैं और मैं उनकी प्रेयसी, यह भाव रहता है। कृष्ण की प्रेयसी स्वकीया और परकीया भेद से दो प्रकार की होती है। स्वकीया का अर्थ है:—

करग्रहविधिं प्राप्ताः पत्युरादेशतत्पराः।
पातिव्रत्यादविचलाः स्वकीयाः कथिता इह।।

अर्थात् विधिपूर्वक विवाहिता, पति की आज्ञानुवर्तिनी पतिव्रता स्त्री को स्वकीया कहा जाता है। द्वारकापुरी में श्रीकृष्ण की सोलह हजार एक सौ आठ पतिव्रता रानियाँ हैं। उनमें से रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती, कालिन्दी, शैव्या, भद्रा, कौशल्या और माद्री आठ मुख्य हैं। उनमें भी रुक्मिणी और सत्यभामा प्रधान हैं। ये पतिपरायणा और पतिसेवारता किन्तु धर्मभीरु हैं, अर्थात् पति को सुख देने वाले कार्य भी यदि धर्म-सम्मत और सतीकुलोचित नहीं हैं तो उन्हें करना इनके लिये सम्भव नहीं है। किसी समय नारद का सन्देह दूर करने के लिए द्वारका में श्रीकृष्णचन्द्र ने अपने शरीर को ज्वर से पीड़ित कर लिया और कहा कि किसी प्रेयसी का चरणामृत ही व्याधिशान्ति का एकमात्र उपाय है। नारद रुक्मिणी, सत्यभामा इत्यादि सोलह हजार एक सौ आठ द्वारकावासिनी रानियों में से प्रत्येक के पास गये और श्रीकृष्ण के यन्त्रणादायक रोग की शान्ति के लिए उनको अपना चरणामृत देने की प्रार्थना की। पर कोई प्रेयसी, यह जानते हुए भी कि चरणामृत के बिना कृष्णचन्द्र का जीवन संकट में पड़ जायेगा, धर्मनाश होने के भय से कुछ न कर सकी। उन्हें पति को खोकर विधवा होना स्वीकार था, पर धर्म खोकर नरकयन्त्रणा भोगना स्वीकार न था। इसलिए वे प्रेम में परिपूर्ण अनुरागवती होते हुए भी स्वार्थपरा और सकामा थीं।

परकीया की परिभाषा इस प्रकार है—

रागेणैवार्पितात्मानो लोकयुग्मानपेक्षिणा।
धर्मेणास्वीकृता यास्तु परकीया भवन्ति ताः।।

अर्थात् जो रागवशवर्तिनी होकर ऐहिक, पारलौकिक, सतीकुलोचित धर्मादि का उल्लंघन कर श्रीकृष्ण के प्रति आत्म-समर्पण कर देती हैं, उन्हें परकीया कहते हैं। ये एकमात्र कृष्ण-सुख में ही सुखी होती हैं। इनके प्रेम में आत्म-सुख की गन्ध भी नहीं होती। इस रस की मुख्य पात्र हैं एकमात्र व्रज-गोपियाँ। ये पड़ोसियों और गुरुजनों की ताड़ना, भर्त्सना खुशी-खुशी सहन करते हुए भी उन्हें प्रेम चक्षुओं से देखती हैं। इनका भाव पूर्णतः निष्काम है।

प्यारी—आपने तो कहा कि गोपियों में काम नहीं होता, किन्तु श्रुति कहती है, 'कामाद् गोप्यः।' श्रीचैतन्यचरितामृत में भी कहा है, 'निरन्तर काम-क्रीड़ा जाँहार चरित'। यह क्या बात है?

बाबाजी—श्रुति और चैतन्यचरितामृत की जो बात तुमने कही वह ठीक है। केवल काम ही क्यों, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, प्रवंचना, कुटिलता आदि

वृन्दावन में पूर्ण रूप से विराजमान हैं। व्रजगोपियों का काम क्रोधादिरहित होना वैसा ही है जैसा कृष्णविमुख होना। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मिथ्या व्यवहार इत्यादि ही तो उनकी उपासना हैं। फिर भी गोस्वामीगण 'काम' शब्द का उच्चारण करने में भयभीत होते हैं, उसका कारण यह है कि प्राकृत जगत् के लोगों ने अपने मन में 'काम' शब्द के वास्तविक अर्थ के स्थान पर एक प्रकार के कल्पित अर्थ को धारण कर रखा है।

'काम' शब्द के उच्चारण मात्र से ही उन्हें एक प्रकार के कुत्सित अर्थ का बोध होता है। इसलिए पिता कन्या के निकट एवं भाई बहन के निकट इस शब्द का उच्चारण करने में संकोच करते हैं। इसलिए आचार्यों ने कहा है, 'हे जीवो! तुम 'काम' शब्द से जो अर्थ लेते हो वह तुम्हारी नितान्त भूल है। वह हृदय-कलुषता को बढ़ाने वाला और भगवत्-पथ-विरोधी है, अतः त्याज्य है। हम जब वृन्दावन के मधुर भावों के आचरण को 'काम' शब्द से अभिहित करते हैं, तो उसका तात्पर्य 'प्रेम' से होता है। काम प्राकृत है, प्रेम अप्राकृत। काम अन्धकार है, प्रेम निर्मल चन्द्रालोक। काम आत्मसुखाभिलाषी है, प्रेम कृष्ण-सुखाभिलाषी; काम असपत्न है, प्रेम बहुजनलिप्सु। इसीलिए कहते हैं 'वृन्दावने अप्राकृत नवीन मदन, कामबीज काम-गायत्री जाहार उपासन'। 'काम' का शाब्दिक अर्थ है, 'कामोऽभिलाषस्तर्षश्च' अर्थात् अभिलाष एवं तृष्णा। व्रजगोपियाँ कुलमान, मर्यादा, पातिव्रत्य धर्म और स्वर्गाभिलाष इत्यादि को तृणतुल्य त्यागकर एकमात्र कृष्णसुखाभिलाषिणी और इसलिए आत्मसुखविवर्जिता हैं। यह काम अप्राकृत है। जहाँ तक तृष्णा का सम्बन्ध है, गोपियों की तृष्णा इतनी है कि संसार-सागर से उसकी निवृत्ति नहीं हो पाती। इसलिए वे प्रेम-सागर में कूद पड़ती हैं। इस प्रकार तृष्णा-निवृत्ति होना तो दूर, वह और बढ़ने लगती है। वे रसमयतनु नवजलधर श्यामसुन्दर का अवलम्बन कर रातदिन अप्राकृत रस का आस्वादन करने लगती हैं। फिर भी उनकी प्यास नहीं बुझती, उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है। अब तुम्हीं बताओ गोपियाँ निष्काम हुईं या पूर्णकाम। केवल काम शब्द के कुत्सित अर्थ का निराकरण करने के लिए ही 'निष्काम-निष्काम' कहते हैं। सचमुच गोपियों को निष्काम कहना ही भूल है। संक्षेप में जिस काम में आत्मसुख की भावना रहती है, वही काम (कुत्सित वस्तु) कहलाता है और जो आत्मसुख से रहित होता है, वह प्रेम (जीवन की आराध्य वस्तु) कहलाता है। उसी कामबीज से कृष्ण की आराधना होती है और उसी कामगायत्री से कृष्ण वशीभूत होते हैं। वही काम-चेष्टा व्रजलीला है। इसीलिए श्रीचैतन्यचरितामृत में कहा है—

सहजे गोपीर प्रेम नहे प्राकृत काम।
कामक्रीड़ा साम्ये तार कहि काम नाम।।
निजेन्द्रिय सुख हेतु कामेर तात्पर्य।
कृष्णसुख तात्पर्य हय गोपीभाववर्य।।
गोपीगणेर प्रेम रूढ़ महाभाव नाम।
विशुद्ध निर्मल प्रेम कभू नहे काम।।
काम प्रेम दोंहाकार विभिन्न लक्खन।
लौह आर हेम जईछे स्वरूपे विलक्खन।।
आत्मेन्द्रिय-प्रीति इच्छा तारे बलि काम।
कृष्णेन्द्रिय-प्रीति इच्छा धरे प्रेम नाम।।
कामेर तात्पर्य निज संभोग केवल।
कृष्णसुख तात्पर्य हय प्रेम महाबल।।
लोकधर्म वेदधर्म देहधर्म कर्म।
लज्जा धैर्य देह-सुख आत्मसुख मर्म।।
दुस्त्यज आर्यपथ निज परिजन।
स्वजने करये जत ताड़न भर्त्सन।।
सर्व त्याग करि करे कृष्णेर भजन।
कृष्ण-सुख-हेतु करे प्रेमेर सेवन।।
प्रेमैव गोपरामाणां काम इत्यगमत् प्रथाम्।
इत्युद्धवादयोऽप्येतं वांछन्ति भगवत्प्रियाः।।

प्यारी—गोपियों में आत्म-सुख की अभिलाषा न होती तो वे अपने शरीर को नाना प्रकार की वेश-भूषा से क्यों सजातीं, यदि उनकी आत्मेन्द्रिय तुष्टि की इच्छा न होती तो कृष्ण-संग की लालसा से वन-वन में उन्हें खोजती क्यों फिरतीं?

बाबाजी—श्रीचैतन्यचरितामृत में इस विषय की मीमांसा इस प्रकार की गई है—

तबे जे देखिये गोपीर निज देहे प्रीत।
सेह त कृष्णेर लागि जानिह निश्चित।।
एइ देह कइल आमि कृष्णे समर्पण।
ताँर धन ताँर एइ सम्भोग साधन।।
ए देह दर्शन स्पर्शे कृष्णे संतोषन।
ए लागि करेन देहे मार्जन भूषन।।
आर एक अद्‌भुत् गोपीभावेर स्वभाव।
बुद्धिर गोचर नहे जाहार प्रभाव।।
गोपीगण करेन जखन[1] कृष्ण दर्शन।
सुख वांछा नाहिं सुख हय कोटिगुन।।
गोपिका दर्शने कृष्णेर जे आनन्द हय।
ताहा हैते कोटिगुण गोपी आस्वादय।।
गोपिका दर्शने कृष्णेर बाढ़े प्रफुल्लता।
शे माधुर्य बाड़े जार नाहिक समता।।
आमार दर्शने कृष्ण पाइल एत सुख।
एइ सुखे गोपीर प्रफुल्ल अंगमुख।।
गोपी शोभा देखि कृष्णेर शोभा बाड़े जत।
शेइ शोभा देखि गोपीर शोभा बाड़े तत।।
एइ मत परस्पर पड़े हुड़ाहुड़ि।[2]
परस्पर बाड़े केह मुख नाहिं मुड़ि।।
किन्तु कृष्णसुख हय गोपी-रूपगुणे।
कृष्ण-सुखे सुख-वृद्धि हय गोपीगणे।।
अतएव शेइ सुख कृष्ण-सुख पोषे[3]।
एइ हेतु गोपी-प्रेमे नाहिं काम-दोषे।।
आर एक गोपीप्रेमेर स्वाभाविक चिन्।
जे प्रकारे हय प्रेम काम-गंध-हीन।।
गोपीप्रेमे करे कृष्ण-माधुर्येर पुष्टि।
माधुर्य बाड़ाय प्रेम हञा महातुष्टि।।
प्रीतिविषयानन्दे तदाश्रयानन्द।
ताहा नाहिं निजसुख वांछार सम्बन्ध।।
निरुपाधि प्रेम जाँहा ताहाँ एइ रीति।
प्रीति विषयसुखे आश्रयेर प्रीति।।

मधुर रस का एक नाम पररस भी है। जैसे आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी, इनमें से प्रत्येक महाभूत के गुण उसके बादवाले महाभूत में संचारित होने के कारण पृथ्वी में पाँचों महाभूतों के गुण रहते हैं, वैसे ही शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, इन चारों रसों के गुण मधुर रस में वर्तमान रहते हैं। शान्त का विश्वास, दास्य की सेवा, सख्य की मित्रता और वात्सल्य का स्नेह मधुररस में वर्तमान रहते हैं। इस मधुर रस की एकमात्र अधिकारिणी व्रजगोपियाँ हैं, इसका स्थान श्रीवृन्दावन है, विषय श्रीनन्दनन्दन हैं। व्रजगोपियाँ कन्यका और परोढ़ा भेद से दो प्रकार की हैं।

कन्यका के विषय में कहा है—

अनूढ़ाः कन्यकाः प्रोक्ताः सलज्जाः पितृपालिताः।
सखीकेलीषु विश्रब्धाः प्रायो मुग्धागुणान्विताः।।

अर्थात् जो वयःप्राप्ता, अविवाहिता, माता-पिता द्वारा प्रतिपालिता, पितृगृह में अवस्थिता, अपनी समवयस्का सखियों के साथ क्रीड़ा-कौतुक-परायणा और श्रीकृष्ण के प्रति अनुरागवती हैं, उन्हें कन्यका कहते हैं। उनकी गणना प्रायः मुग्धाओं में होती है।

परोढ़ा के विषय में कहा—

गोपैर्व्यूढ़ा अपि हरेः सदा संभोगलालसाः।
परोढ़ा वल्लभास्तस्य व्रजनार्योऽप्रसूतिकाः।।

अर्थात् जो व्रजनारियाँ व्रजवासी गोपों की परिणीता होकर भी अनुराग-बल से श्रीकृष्ण के संभोग-सुख की अभिलाषिणी, योगमाया पौर्णमासी देवी की शक्ति के प्रभाव से पतिसंभोगविरहिता, अतएव अप्रसूतिका होती हैं, उन्हें परोढ़ा कहते हैं। ये परोढ़ा प्रेयसियाँ रूप, गुण, प्रेम, माधुर्य आदि में सर्वश्रेष्ठ हैं। साधन-सिद्धा, कृपा-सिद्धा और मन्त्र-सिद्धा, ये तीन भेद हैं। साधनसिद्धा दो प्रकार की हैं—यौथिकी और अयौथिकी। जिन्होंने अपने निज-जनों के साथ एकत्र साधन कर सिद्धिलाभ किया है, उन्हें यौथिकी साधनसिद्धा कहते हैं। ये मुनिगण और श्रुतिगण भेद से दो प्रकार की हैं। सीतासहित राम के दर्शन कर दण्डकारण्यवासी गोपालोपासक मुनियों के हृदय में गोपी-विषयिणी रति उत्पन्न हुई। उसी भाव से बहुत दिनों तक उपासना करने से व्रज-गोपियों की देह प्राप्त कर वे कृष्ण में अनुरक्त हुए। इसी प्रकार समस्त सूक्ष्मदर्शिनी श्रुतियों ने व्रज-लीला-दर्शन से परमाश्चर्यान्विता और तद्भावलिप्सु हो गोपीदेह लाभ

1. जब, 2. होड़, 3. पुष्टि करता है।

कर कृष्ण ने अनुराग प्राप्त किया। इन दोनों प्रकार की गोपियों को यौथिकी साधनसिद्धा कहते हैं।

अयौथिकी तीन प्रकार की हैं, साधन-सिद्धा, कृपा-सिद्धा और नित्य-सिद्धा। जो व्रजगोपियों के भाव से विभावित हो साधन करते-करते व्रज में गोपीदेह लाभ कर कृष्णानुरागी होते हैं उन्हें अयौथिकी साधनसिद्धा गोपी कहते हैं। जो गोपियों के कृष्णसंभोग सौभाग्यादि दर्शन से लोभयुक्त हो और गोपियों का आनुगत्य प्राप्त कर उनकी कृपा से व्रज-गोपकुल में जन्म ग्रहण कर कृष्ण में अनुरागयुक्त होते हैं अथवा जो योगमाया की कृपा से गोपियों का आनुगत्य स्वीकार कर तत्तद्देह में ही कृष्ण संग लाभ करते हैं, उन्हें कृपा-सिद्धा कहते हैं। देव, दानव, गन्धर्व, किन्नर, मनुष्य, पशु, पक्षी, स्त्री-पुरुष, कोई भी क्यों न हो उसपर एक बार नित्यसिद्धाओं का कृपाकटाक्ष होते ही उसे लीलाप्राप्ति होती है, इसमें सन्देह नहीं। नित्यसिद्धा गोपियाँ इस प्रकार हैं—श्रीराधिका, चन्द्रावली, ललिता, विशाखा, पद्मा, शैव्या, श्यामा, तारा, भद्रा, चित्रा, गोपाली, धनिष्ठा, पाली, खञ्जनाक्षी, मनोरमा, मंगला, विमला, लीला, कृष्णा, शारी, तारावली, विशारदा, चकोराक्षी, कुंकुमा इत्यादि। इनमें ललिता, विशाखा, पद्मा और शैव्या इन चार को छोड़ बाकी सब यूथेश्वरी हैं। इन यूथेश्वरियों में श्रीमती राधिका और चन्द्रावली सर्वप्रधान हैं। इनमें भी राधिका सर्वथाधिका हैं। ललितादि चारों गोपियों ने सभी प्रकार से यूथेश्वरी बनने के योग्य होते हुए भी सखीभाव के प्रति आकर्षण होने के कारण सखीत्व ही ग्रहण किया है। इन नित्यसिद्धा गोपियों में से प्रत्येक के यूथ में लाख-लाख गोपियाँ हैं। सभी रूप, गुण प्रेम में अतुलनीया हैं। श्रीमती राधिका महाभाव-स्वरूपिणी और असमोर्द्ध-गुणशालिनी हैं। श्रीचन्द्रावली और श्रीराधिका में केवल तदीयता और मदीयता के भाव को लेकर ही अन्तर दिखाई देता है। चन्द्रावली तदीयभावापन्ना हैं, अर्थात् मैं कृष्णचन्द्र की हूँ, इस भाव से विभाविता हैं, इसलिए 'घृतस्नेहा' हैं। श्रीमतीराधिका मदीयभावापन्ना हैं, अर्थात् कृष्ण मेरे हैं, इस भाव से भाविता हैं, इसलिए 'मधुस्नेहा' हैं।

प्यारी—इससे तो यह समझ में आता है कि कृष्ण से किसी प्रकार का सम्बन्ध स्थापित कर कोई उनका भजन करे तो व्रज-प्राप्ति का अधिकारी हो जाता है। तो इसका अर्थ हुआ कि वृन्दावन सम्बन्ध राज्य है।

बाबाजी—सामान्य दृष्टि से देखने पर तो यही लगता है कि वृन्दावन सम्बन्ध राज्य है, किन्तु थोड़ा विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि श्रीवृन्दावन सम्बन्धातीत, अप्राकृत अनिर्वचनीय सम्बन्धभावराज्य है। वृन्दावनलीला केवल भाव लीला है। वृन्दावन में समस्त भाव ही परकीय हैं। व्रजेन्द्रनन्दन कृष्ण का गर्भवास नहीं है। देवकीनन्दन कृष्ण के जन्म ग्रहण के समय वसुदेव-देवकी उनके शंख, चक्र, गदा, पद्म-धारी चतुर्भुज रूप का दर्शन कर अनेक प्रकार से उनकी स्तुति करने लगे तो कृष्ण ने उन्हें आदेश किया, "मुझे गोकुल में नन्द के घर रखकर वहाँ से यशोदा-नन्दिनी महामाया को ले आओ।" आदेश पाकर वसुदेव श्रीकृष्ण को गोद में ले गोकुल को चल दिये। जैसे ही वे बीच यमुना में पहुँचे, श्रीकृष्ण गोद में से गिर गये। तब वसुदेव अत्यन्त व्याकुल हो उन्हें ढूँढ़ने लगे। थोड़ी ही देर में कृष्ण मिल गये और वे उन्हें लेकर फिर गोकुल की ओर चल दिये। तात्पर्य यह है कि यमुनाजल में गिरने के बहाने मथुरानाथ नारायण तो अन्तर्हित हो गये और रसमय श्रीकृष्णचन्द्र आविर्भूत हो गये। यही कृष्ण वृन्दावनेश्वर व्रजेन्द्रनन्दन नवकिशोर, नटवर, गोपवेश और वेणुकर हैं। यशोदादेवी के गर्भजात पुत्र न होते हुए भी उनका नाम यशोदानन्दन हुआ। माँ यशोदा और नन्द इत्यादि ठीक पुत्रभाव से कृष्ण का लालन-पालन, ताड़न-भर्त्सन आदि करते हैं। इसीलिए कृष्ण ने कहा है—

माता मोरे पुत्र-भावे करये बन्धन।
सखा सख्यभावे करे स्कन्धे आरोहण।।
प्रिया यदि मान करि करये भर्त्सन।
वेदस्तुति हइते[1] सेओ[2] हरे मोर मन।।

अन्यत्र कहा है—

उपपति भावे भजे व्रजरमागण।
ताहादेर प्रेमे आमाय करे आकर्षण।।

---

1. वेद स्तुति से भी अधिक, 2. वह।

ऊपर सब स्थानों पर 'भाव' शब्द इस बात का द्योतक है कि श्रीवृन्दावन लीला परकीया है। अर्थात् पुत्र भाव से तात्पर्य हुआ-पुत्र के प्रति जैसा भाव होता है ठीक वैसे भाव से, न कि पुत्र रूप से। इसी प्रकार सखा रूप से नहीं, सखा भाव से। उप-पति रूप से नहीं उपपति भाव से। तुम्हीं बताओ कि वृन्दावन में गोप-गोपियों के साथ कृष्ण का क्या सम्बन्ध था। यदि कोई ग्रन्थकार देवकीनन्दन कृष्ण का यमुना जल में गिरने के बहाने अन्तर्धान होना स्वीकार न करें तो भी भाव का परकीयत्व असिद्ध नहीं होता, क्योंकि मथुरानाथ कृष्ण तो क्षत्रिय हैं और व्रजवासीगण गोप अर्थात् वैश्य। वैश्य जाति के व्रजवासियों के साथ कृष्ण का क्या सम्बन्ध हो सकता है? इसीलिए कहा है, वृन्दावन सम्बन्धातीत राज्य है। एक अन्य स्थान पर व्रजवासियों का स्वरूप-निर्देश इस प्रकार है—

गमन नटन लीला, वचन संगीत कला,
मधुर चाहनि आकर्षन।
रंग बिनु नाहिं अंग, भाव बिनु नाहिं संग,
रसमय देहेर गठन।।

स्वभाव से ही व्रजवासीगण भाव छोड़ अभाव का संग नहीं कर सकते।

प्यारी—किस भाव की उपासना करने से व्रजेन्द्रनन्दन कृष्ण की प्राप्ति होती है।

बाबाजी—व्रज-उपासना का मूलाधार है अनुराग अर्थात् प्रेम। यही प्रेम जितना विशुद्ध होगा उतना ही उपासना का मार्ग सुगम होगा और उतना ही कृष्ण निकट आते जायेंगे। इस विशुद्ध प्रेम का अवलम्बन लेकर—'व्रज जनार कोन एक भाव लञा भजे। भावयोग्य देह पाइया कृष्ण पाय व्रजे'— किसी भाव से भजन करने पर व्रज में भावयोग्य देह मिलती है और कृष्ण की प्राप्ति होती है। इसमें आनुगत्य प्रधान सहायक है। बिना आनुगत्य के भजन करने पर भी प्राप्ति नहीं होती।

प्यारी—अच्छा, शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर पाँचों में कौन-सा रस श्रेष्ठ है।

बाबाजी—रस के तारतम्य अथवा उपासना पद्धति के भले-बुरे की बात मैं नहीं जानता। जिसको जिस रस का लोभ है, उसके लिए वही श्रेष्ठ और अनिर्वचनीय आनन्द देनेवाला है। तभी श्रीचैतन्य-चरितामृत में कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने कहा—

कृष्ण प्राप्तिर उपाय बहुविध हय।
कृष्ण प्राप्तिर तारतम्य बहुत आछय।।
किन्तु जार जेइ भाव शेइ सर्वोत्तम।
तटस्थ हञा विचारिले आछे तारतम।।
पूर्व-पूर्व रसेर गुण परे परे हय।
दुइ तिन गणने पञ्च पर्यन्त बाड़य।।
गुणाधिक्ये स्वादाधिक्य बाड़े प्रति रसे।
दास्य सख्य वात्सल्येर गुण मधुरेते बइसे।।

★ ★ ★ ★ ★

परिपूर्ण कृष्णप्राप्ति एइ प्रेमा हइते।
एइ प्रेमार वश कृष्ण कहे भागवते।।

प्यारी—इससे तो यह जान पड़ता है कि मधुर भाव ही सर्वश्रेष्ठ है। इसी मधुर भाव की उपासना प्रणाली मुझे एक बार अच्छी तरह समझा दीजिये।

बाबाजी—इस उपासना प्रणाली को मुझे समझाने की आवश्यकता नहीं। एक बार चैतन्यचरितामृत देख लेने से ही अच्छी तरह समझ में आ जायेगी।

राधाकृष्ण लीला हय अति गूढ़तर।
दास्य वात्सल्यादि भावेर ना हय गोचर।।
तबे एक सखीगणेर इँह अधिकार।
सखी हइते हय एइ लीलार विस्तार।।
सखी बिना एइ लीला पुष्ट नाहि हय।
सखी लीला विस्तारिया सखी आस्वादय।।
सखी बिना एइ लीलाय अन्येर नाहि गति।
सखीभावे जेइ तारे करे अनुगति।।
राधाकृष्ण कुञ्जसेवा साध्य सेइ पाय।
सेइ साध्य पाइते आर नाहिक उपाय।।

★ ★ ★ ★ ★

सखीनां संगिनीरूपामात्मानं वासनामयीं।
आज्ञासेवापरां तत्तत्कृपालंकारभूषितां।।
विभुरपि सुखरूपः स्वप्रकाशोऽपि भावः।
क्षणमपि नहि राधाकृष्णयोर्या ऋते स्वाः।।
प्रवहति रसपुष्टिं चिद्विभूतीरिवेशः।
श्रयति न पदमासां कः सखीनां रसज्ञः।।

★ ★ ★ ★ ★

सखीर स्वभाव एक अकथ्य कथन।
कृष्णसह निज लीलाय नाहिं सखीर मन।।
कृष्णसह राधिकार लीला जे कराय।
निजकेलि हैते ताहे कोटि सुख पाय।।
राधार स्वरूप कृष्ण-प्रेम कल्पलता।
सखीगण हय तार पल्लव पुष्प पाता।।
कृष्णलीलामृते जदि लताके सिञ्चय।
निजसेक हइते पल्लवाद्येर कोटि सुख हय।।
यद्यपि सखीर कृष्णसंगमे नाहिं मन।
तथापि राधिका जत्ने करान संगम।।
नाना छले कृष्णे प्रेरि संगम कराय।
आत्म-कृष्णसंग हइते कोटि सुख पाय।।

★ ★ ★ ★ ★

सेइ गोपीभावामृते जार लोभ हय।
वेदधर्म त्वजि सेइ कृष्णाके भजय।।
रागानुगामार्गे तारे भजे जेइ जन।
सेइ जन पाय व्रजे व्रजेन्द्रनन्दन।।
अतएव गोपीभाव करि अंगीकार।
निरंतर चिन्ते राधाकृष्णेर विहार।।

अपने सिद्धदेह की मन में सदा भावना करते हुए, प्राकृत देह का विस्मरण कर उसी अप्राकृत चिन्मय देह में अवस्थान करते हुए और अपनी यूथेश्वरी का अनुगमन कर अष्टकाल सेवा करते-करते भाव स्थायी हो जाता है और फिर उसी भाव के योग्य देह लाभ होता है।

प्यारी—तो, यह सेवा कायिक नहीं, मानसिक है?

बाबाजी—उपासक की तीन अवस्थाएँ हैं—प्रवर्त्त, साधक और सिद्ध। ये तीनों प्रकार के उपासक कायिक, वाचिक और मानसिक रूप से सेवा करते हैं। जो व्यक्ति किसी कामना से भक्ति करते हैं किन्तु श्रद्धा या निष्ठा से रहित होते हैं, उन्हें प्रवर्त्त भक्त कहते हैं। ये तीन प्रकार के हैं—प्रवर्त्त-प्रवर्त्त, साधक-प्रवर्त्त और सिद्ध-प्रवर्त्त। कामना-सिद्धि के लिए श्रद्धा की कोमलता के अनुरूप प्राप्त संग के अनुसार आचरण करने वाला और दूसरों में दोष-दृष्टि रखने वाला व्यक्ति प्रवर्त्त-प्रवर्त्त भक्त कहलाता है। गुरुवाक्य में थोड़ी श्रद्धा रखने वाले और कामना-सिद्धि के निमित्त नाना प्रकार से याजन करनेवाले भक्तों के साथ उसी प्रकार से याजन कर बाद में अनुताप करने वाले व्यक्ति को साधक-प्रवर्त्त कहते हैं। वासनानुकूल फलप्राप्ति की कामना से साधु, शास्त्र और गुरुवाक्य के दोष-गुण की समालोचना करते हुए, अतृप्त भाव से काम्यकर्मादि द्वारा भगवदर्चना करने वाले को सिद्ध-प्रवर्त्त कहते हैं। जो श्रद्धावान है, जिसकी श्रीकृष्ण में रति है, जो नानारूप विघ्नादि से विचलित हो जाता है, जो भक्ति-याजन परायण है, भक्ति चिह्न धारण करने वाला है, उसे साधक कहते हैं। ये साधक भी तीन प्रकार के हैं—प्रवर्त्त-साधक, साधक-साधक और सिद्ध-साधक। साधु, शास्त्र, एवं गुरुवाक्य का मन ही मन समालोचना द्वारा समन्वय कर श्रद्धा-सहित विधि-पूर्वक याजन करने वाले साधक को प्रवर्त्त साधक कहते हैं। सम्बन्ध-निर्धारणपूर्वक श्रद्धा-सहित भक्ति-याजन, ईश्वर-प्रेम भक्त-मैत्री, अज्ञ पर कृपा, शत्रु के प्रति उपेक्षा करने वाले को साधक-साधक भक्त कहते हैं।

अद्वेष्टा सर्वभूतानां सर्वप्राणिहिते रतः।
फलेष्वासक्तिरहितो मन्निष्ठो याजकः सुधीः।।
निर्ममो निरहंकारो यतात्मा दृढ़निश्चयः।
विकारैः सात्विकैर्युक्तः सिद्धत्त्वं साधकस्य तु।।

अर्थात् सभी जीवों के प्रति द्वेषभाव से रहित प्राणीमात्र का हितैषी, फल की इच्छा से रहित, भगवन्निष्ठ, याजनकारी, ममताशून्य, निरहंकार, संयतचित्त, सात्विकादि विकारयुक्त, दृढ़ विश्वासी व्यक्ति को सिद्ध-साधक कहते हैं।

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तः कृष्णाश्रितक्रियः।।
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी यथालाभसुखी क्षमी।
स्थिरधीः सन्ततप्रेमसौख्यास्वादपरायणः।।
निराशी सात्विकैर्युक्तः फलासंगविवर्जितः।
शुभाशुभपरित्यागी सिद्धः स्यान्मुक्तलिंगकः।।

अर्थात् न तो किसी को उद्वेग पहुँचाने वाले और न स्वयं किसी से उद्विग्न होने वाला, हर्ष रोष भय और उद्वेग-शून्य, कृष्णसेवा में रत, निन्दास्तुति में सम भाव रखने वाला, मितभाषी, यथालाभ-सन्तुष्ट, क्षमाशील,

धीर, सर्वदा प्रेम-सुख के आस्वादन में तत्पर, निराशी, सात्विक भूषणों से भूषित, फल की इच्छा रहित और शुभाशुभपरित्यागी व्यक्ति को सिद्ध कहते हैं। सिद्ध साधन-सिद्ध, कृपा-सिद्ध और नित्यसिद्ध के भेद से तीन प्रकार के होते हैं। श्रीगुरुवाक्य में दृढ़ श्रद्धा रखने वाले, भावैकनिष्ठ, कृष्णगुणानुकथन में आत्म-विस्मृत और विकल हो जाने वाले, कृष्णसुखाभिलाषी, प्रेमानुरागवान्, परिचर्यापरायण, कृष्णार्थ ही समस्त चेष्टाएँ करने वाले, साधनफल-त्यागी व्यक्ति को साधन-सिद्ध कहते हैं, जैसे-मार्कण्डेय, ध्रुव, श्रुतिकन्या, मुनि-कन्यागण इत्यादि। कृपासिद्ध के लिए किसी भजन क्रिया की अपेक्षा नहीं होती। उसमें बाहरी क्रियाओं के न होने पर भी आन्तरिक अनुराग, श्रद्धा, हृदय की कोमलता और व्याकुलता का होना ही पर्याप्त होता है। कृपा-सिद्ध के लिए पात्रापात्र, योग्यायोग्य का विचार नहीं होता। जिससे मन सन्तुष्ट होता है, उसी पर अनुग्रह होता है। वही कृपापात्र होता है। प्रह्लाद, बलि, शुकदेव, यज्ञपत्नी इत्यादि कृपा-सिद्ध हैं। श्रीमती राधिका, चन्द्रावली, ललिता, विशाखा इत्यादि नित्य सिद्धा हैं। चाहे कितना भी जप-तप, भजन-साधन, नियमनिष्ठा क्यों न हो, गुरुकृपा के बिना काम नहीं बनता, किसी की कृपा सम्भव नहीं। यदि कोई साधन-पथ पर अग्रसर होना चाहे तो सर्वप्रथम श्रीगुरुदेव को सन्तुष्ट करने का उपाय करे—अक्षय गुरु-कृपा प्राप्त करे—श्रीगुरुदेव का आनुगत्य ग्रहण करे। तब अत्यन्त कष्टसाध्य कार्य भी सुगम हो जायगा, अलभ्य वस्तु भी अनायास प्राप्त हो जायगी।

प्यारी—गुरुदेव यदि निकट न हों, तो क्या करना चाहिए?

बाबाजी—भाई, गुरुदेव के निकट न होने पर जीव एक क्षण भी नहीं रह सकता। बताओ, जब तुमने मातृगर्भ से जन्म लिया तो मातृस्तन हाथ में ले दुग्धपान करने की शिक्षा तुम्हें किसने दी? क्षुधार्त होने पर रो-रोकर माँ को पुकारना किसने सिखाया? थोड़ा बड़ा होने पर किसने माँ, बाबा-दादा बोलना सिखाया? किसने अपना-पराया, भला-बुरा, आग-पानी, शीत-ग्रीष्म का अनुभव कराया? किसने हाथ पकड़ कर चलना सिखाया? किसने वर्णज्ञान कराया। हमें जिस समय जैसी आवश्यकता होती है, भगवान् गुरुरूप में हमारे पास रहकर ठीक वैसी ही शिक्षा देते हैं। कभी साक्षात् रूप में उपस्थित होकर कोई बात समझा देते हैं तो कभी अन्तर्यामी रूप में। आधुनिक विज्ञान कहता है कि शिक्षा के लिए गुरु की आवश्यकता नहीं। मैं पूछता हूँ कि जिस शिक्षा के फलस्वरूप आज तुम ज्ञानी, वैज्ञानिक और विद्वान् हो वह शिक्षा किसने दी? किसने तुम्हारा हाथ पकड़ कर क-ख-ग-घ सिखाया और वर्णज्ञान कराया? गुरु नित्य चिन्मय और सर्वव्यापी हैं। आवश्यकता होते ही वे उपस्थित हो जाते हैं। जब भी हमें किसी अभाव का बोध होता है, व्याकुल मन से पुकारने से वे दर्शन देते हैं।

प्यारी—जो व्यक्ति सब प्रकार से अक्षम हो, उसे क्या करना चाहिये? उसका क्या कोई उपाय नहीं?

बाबाजी—क्यों नहीं? जो लिखना पढ़ना नहीं जानता, उसकी जमींदारी क्या नहीं चलती? तुम्हें अगर लिखना नहीं आता और कहीं तुम्हें अपने नाम को सही करना है तो क्या करोगे?

प्यारी—क्या करेंगे। किसी के बकलम दस्तखत करा देंगे?

बाबाजी—इस विषय में ठीक ऐसी ही बात है। यदि कोई काम नहीं कर सकते या उसकी भलाई-बुराई नहीं सोच सकते, तो किसी को अपना क्षमता-पत्र दे दो, सुचारु रूप से कार्य चलता जायेगा—घर बैठे लाभ होगा।

प्यारी—बात तो बिल्कुल ठीक जान पड़ती है। मेरे जैसे अशक्त, क्षुद्र जीव के लिए यही मार्ग सुगम है। जरा इसे अच्छी तरह समझा दीजिए।

बाबाजी—समझाने के लिए कोई खास बात नहीं। एक बार मन-वचन-कर्म से श्रीगुरुदेव के चरणों में आत्मसमर्पण कर दो और सरल मन से कहा—"प्रभो मैं आपके श्रीचरणों में बिक गया हूँ। आज से अपना सारा कर्तव्याकर्तव्य आपके ऊपर छोड़ कर मैं निश्चिन्त हूँ।" ऐसा कर फिर अपने सम्बन्ध में इसके अतिरिक्त कोई दूसरा विचार न लाओ। यदि गुरुदेव के

आदेशानुसार उनके होकर कुछ कर सकते हो तो करो, किन्तु सावधान, लाभ की आशा से नहीं। फलाफल उनका है। रात-दिन मन में यही धारणा रखो। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।' अर्थात् भगवान् ने अर्जुन को लक्ष्य कर लोगों को शिक्षा दी कि तुम मेरे हाथों सदा के लिए बिके हुए हो। तुम्हारा केवल कर्म करने का अधिकार है। फलाफल के भोक्ता तुम नहीं हो। एक जगह कहा है—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।

अर्थात् हे अर्जुन, तुम जो करो, जो खाओ, जो हवन करो, जो दान करो, जो तपस्या करो उसका समस्त फलाफल मुझे समर्पित कर दो। इसी को 'क्षमता-पत्र देना' कहते हैं। तुम अपने बारे में चिन्ता न करो। वे तुम्हारी चिन्ता करेंगे।

प्यारी—पर गुरुदेव ने जो शिष्य को याजन करने का आदेश किया है, वह कैसे?

बाबाजी—वह याजन तुम्हारा नहीं है, उन्हीं का है। जिस दिन से तुमने उनके श्रीचरणों में आत्म-समर्पण किया, उसी दिन से वे अंगीकार-पत्र द्वारा तुम्हारे निकट पूरी तरह बँध गये। वे तुम्हें निश्चय ही मंजिल पर पहुँचा देंगे। उन्होंने जो तुम्हें याजन करने का आदेश किया, वह केवल अपनी सहायता के लिए। कल्पना करो कि तुम नवद्वीप जाने के लिए एक नौका किराये पर लेते हो, माँझी को तुम नवद्वीप तक के दस टके देने को कहते हो। वह तुम्हारी बात मानकर नाव छोड़ देता है। कुछ दूर जाकर वह कहता है—महाशय, यदि आप भी एक डाँड़ लेकर नाव खेने लगें, तो मुझे भी कुछ सुविधा हो जाय और आप भी कुछ जल्दी पहुँच जायें। तुम यदि वैसा करते हो तो उसका भी उपकार होगा, तुम्हारा भी रास्ता जल्दी तय हो जायगा और यदि नहीं करते हो तो तुम्हारे ऊपर माँझी का जोर नहीं। जितने भी समय में हो, माँझी तुम्हें नवद्वीप ले जाने के लिए बाध्य है। किन्तु यदि तुम डाँड़ हाथ में ले विपरीत दिशा में नाव खेने लगो तो माँझी कहेगा—'भाई, आप कुछ मत कीजिए, चुपचाप नाव में बैठे रहिए। मैं जितनी भी देर में होगा आपको गम्य स्थान पर पहुँचा दूँगा।' तुम फिर भी माँझी की बात न सुन कर विपरीत दिशा में ही नाव खेते रहो तो वह और कोई चारा न देख तुम्हें तुम्हारे हाल पर छोड़ देने को बाध्य हो जायगा। तुम्हारी नौका समुद्र में चक्कर काटने लगेगी। तुम्हारे सामने से कितनी-कितनी नौकाएँ निकलती चली जायेंगी, किन्तु तुम्हारी नौका कभी अनुकूल और कभी प्रतिकूल रूप से चलती हुई एक ऐसी जगह पहुँचेगी, जहाँ चारों ओर ऊँची-ऊँची लहरें उठ रही होंगी। वहाँ से गम्यस्थान की दिशा का अनुमान करना तुम्हारे लिए कठिन हो जायगा। बताओ, इस अवस्था के लिए माँझी दोषी है, या तुम? रोग होने पर नियमित रूप से औषधि लो और सुपथ्य ग्रहण करो, शीघ्र अच्छे हो जाओगे। औषधि न खाओ तो न सही लेकिन कुपथ्य न करो, तो भी ठीक हो जाने की आशा हो सकती है। किन्तु तुम औषधि भी न खाओ, कुपथ्य भी करो तो कैसे ठीक होंगे? श्रीगुरुदेव के ऊपर निर्भर रह कर निश्चेष्ट रहो, उनके वचनों पर विश्वास करो, अभीष्ट प्राप्ति होगी। यदि कुछ करने का मन हो, गुरुदेव के आदेशानुसार कार्य करो। श्रीगुरुदेव के ऊपर निर्भर रहो और अपनी ओर से चेष्टा भी करते रहो, वह भी प्रतिकूल, तो बोलो, फल कैसे होगा? सुगम पथ के मालिक तो स्वयं बन जाओ और दुर्गम पथ पर जो करें वह प्रभु! कष्टसाध्य कार्य तो गुरुदेव को अर्पित कर दो और फलप्राप्ति के लिए उतावले रहो, तो कैसे चलेगा? पारमार्थिक राज्य में दुकानदारी नहीं चलती। जो हो सके करो, न हो सके उन पर डाल दो।

प्यारी—विषय आश्रय तत्व क्या है, यह भी बताना होगा।

बाबाजी—विषय का अर्थ है उपास्य वस्तु अर्थात् अभीष्ट वस्तु। उस विषय की प्राप्ति में जो सहायक होता है, उसे आश्रय कहते हैं। आश्रय का अर्थ है अवलम्बन। यह पाँच प्रकार का होता है—नामाश्रय, गुरुपदाश्रय, मन्त्राश्रय, भावाश्रय और भक्ताश्रय। नाम की कृपा न होने से कोई कार्य नहीं हो सकता। पहले अपनी रुचि के अनुसार किसी भी नाम का आश्रय ग्रहण कर लेना चाहिए। फिर वही नाम करते-करते नाम की कृपा से चित्त की मलिनता दूर हो जाने पर

नाम के प्रतिपाद्य विषय अर्थात् नामी के प्रति लोभ उत्पन्न हो जायगा। लोभ उत्पन्न होने पर लोभनीय वस्तु की प्राप्ति के लिए मन में व्याकुलता उत्पन्न होगी। यही व्याकुलता गुरु-प्राप्ति का प्रधान उपाय है। व्याकुलता उत्पन्न होते ही गुरु के चरणों का आश्रय प्राप्त होगा। गुरु-पदाश्रय प्राप्त हो जाने मात्र से गुरु की कृपा से मन्त्र प्राप्ति होगी। नाम और मन्त्र-जप करते-करते भाव-संचार होगा। एकनिष्ठता से किसी भाव का आश्रय लेते ही उसी भाव के भावाढ्य भक्त की कृपा प्राप्त होगी। भावाढ्य भक्त-अर्थात् विषय के अन्तरंग परिकर की कृपा प्राप्त कर उनके आनुगत्य में उनके द्वारा आचरित और आदिष्ट पन्थ का अवलम्बन करने को आश्रय कहते हैं। इस प्रकार भावाश्रय प्राप्त कर लेने पर फिर कोई बाधा नहीं रहती, यहाँ तक कि विषय उसे स्वयं आकर्षित कर लेता है। इसीलिए श्रीनरोत्तम ठाकुर महाशय ने कहा है—'आश्रय लइया भजे, तारे कृष्ण नाहिं त्यजे। आर सब मरे अकारण।' वृन्दावन में विषय हैं यशोदानन्दन श्यामसुन्दर। दास्यभाव के आश्रय हैं रक्तक, पत्रक आदि, वात्सल्य भाव के नन्द, यशोदा इत्यादि, सख्य भाव के श्रीदाम, सुबल आदि, मधुर भाव के श्रीराधा, चन्द्रावली इत्यादि। व्रज-उपासना की मूल भित्ति है आनुगत्य। शुरू से आखीर तक सबको आनुगत्य स्वीकार करना पड़ता है। नामाश्रय ग्रहण कर लेने के बाद श्रीगुरुपदाश्रय प्राप्त करने पर नामाश्रय छोड़ देना पड़ेगा, ऐसी बात नहीं। प्रवर्त्त, साधक, सिद्ध किसी अवस्था में किसी आश्रय को छोड़ने की आवश्यकता नहीं होती, अपितु आनुगत्य भाव उत्तरोत्तर प्रबल होता जाता है, क्योंकि प्राप्य वस्तु जितनी निकट आती जाती है, उसके प्रति साधक की उतनी ही कृतज्ञता-स्वीकृति बढ़ती जाती है।

प्यारी—प्रेम का अर्थ क्या होता है?

बाबाजी—प्रेम का अर्थ है विशुद्ध स्नेह। यह विशुद्ध स्नेह एक मात्र व्रज वृन्दावन को छोड़ और कहीं नहीं हैं। यह हमारे जैसे स्वार्थ-परायण व्यक्तियों के लिए सर्वथा असम्भव है। यदि भाग्य से ऐसा प्रेम किसी को किसी भी व्यक्ति के प्रति उत्पन्न हो जाय तो भी वह उसकी व्रज प्राप्ति में सहायक होता है। गोविन्द घोष ठाकुर के हृदय में अपने पुत्र के प्रति विशुद्ध वात्सल्य भाव उत्पन्न हुआ। उसी वात्सल्य से उन्हें कृष्ण-प्राप्ति हुई। कृष्णचन्द्र उनके पुत्र को आत्मसात् कर स्वयं घोषठाकुर के पुत्र के रूप में रहने लगे। संसार में ऐसे अनेक दृष्टान्त पाये जाते हैं। प्रेम अन्धा होता है। वह कुल, शील, जाति, विद्या, रूप, गुण, भले, बुरे का विचार करना नहीं जानता, योग, जप-तप, ज्ञान-ध्यान, भजन-साधन नहीं देखता। प्रेम प्राण चाहता है, आत्म समर्पण करना पसन्द करता है। प्रेम प्रतिदान चाहे बिना अपने आप मिलता है। इस विषय में एक सुन्दर दृष्टान्त सुनो—

औरंगजेब बादशाह एक बार दुष्ट मन्त्रियों के परामर्श से बड़ा ही देवद्वेषी हो उठा। यहाँ तक कि जगह-जगह घूम-घूम कर देवी-देवताओं के अनेक मन्दिर तोड़ने लगा और मूर्तियों में से किसी का हाथ, किसी का पैर, किसी की कमर तोड़-तोड़ कर दिल्ली भेजने लगा। यादवाचल नामक ग्राम में एक साधु एक कृष्णमूर्ति की सेवा करते थे। एक दिन उन्होंने बादशाह के आगमन की चर्चा सुनी तो अत्यन्त व्याकुल होकर बादशाह के हाथ से अपनी इष्टमूर्ति की रक्षा का उपाय सोचने लगे। अन्त में यह उपाय सूझा कि जमीन में एक गड्ढा खोद कर उसमें ठाकुर को समाधि दे दी जाय। इसी विचार से वे जमीन खोदने लगे। खोदते-खोदते जब गड्ढा चार हाथ का हो गया, तब उन्होंने श्रीमूर्ति लाकर उस गड्ढे में रखी। इच्छामय की इच्छा के विरुद्ध कार्य करने की किसमें सामर्थ्य? साधु जब गड्ढा बन्द करने लगे तो देखते हैं कि गड्ढा ठाकुर की कमर तक ही गहरा है। फिर गड्ढे को और गहरा खोद कर ऊपर आकर देखा तो वैसा का वैसा। बादशाह के आदमियों ने आकर उनके मन्दिर को गिरा दिया और श्रीमूर्ति को लेकर चल दिये। मूर्ति को बड़ा ही सुन्दर देख बादशाह की कन्या ने खेल के लिए पिता से उसे माँग लिया। यथासमय बादशाह दिल्ली पहुँचे। जैसे-जैसे बादशाह की कन्या बड़ी होती गई, मूर्ति पर उसका स्नेह बढ़ता गया, यहाँ तक कि एक क्षण को भी उसके लिए श्रीमूर्ति का साथ छोड़ना

असम्भव हो गया। नहाते, खाते, सोते, बैठते, सभी समय वह उसे साथ रखती। प्रेममय ठाकुर प्रेम में बँध गये। धीरे-धीरे शहजादी के साथ बातचीत, शयन-भोजन विलासादि भी चलने लगा।

कौतुकी ठाकुर कुछ कौतुक न करें, यह कैसे हो सकता था? रामानुज स्वामी को स्वप्न में आदेश किया 'मैं दिल्ली में औरंगजेब बादशाह के घर हूँ, तुम मुझे वहाँ से लाकर सेवा करो।' प्रातःकाल बहुत से वैष्णवों को साथ ले यतिराज दिल्ली की ओर चल पड़े। दिल्ली पहुँच कर सोचने लगे कि ठाकुर को कैसे प्राप्त करें। कोई उपाय समझ में नहीं आया तो बादशाह के चारों दरवाजों पर घेरा डाल दिया। बादशाह के घर खबर पहुँची कि बहुत-से फकीरों ने दरवाजे रोक लिए हैं। उसी समय बादशाह ने हरकारा भेज पता लगाया कि वे लोग धनजन कुछ नहीं चाहते, बादशाह के पास उनके एक ठाकुर हैं, उन्हीं को चाहते हैं। सुनकर बादशाह ने यतिराज को अपने दरबार में बुलाया और जितने भी ठाकुर थे, सबको दिखाकर कहा—'तुम जो मूर्तियाँ चाहो ले लो।' यतिराज पहचान न सके कि उन्हें स्वप्न में आदेश करने वाली मूर्ति कौन-सी है। अतः बोले—'मैं कल सबेरे आपको बताऊँगा।' रात्रि में उन्हें स्वप्न हुआ—'मैं बादशाह की मूर्तियों में नहीं, बादशाह की कन्या के पास हूँ।' प्रातःकाल स्वामी जी ने यह वृत्तान्त कहा तो बादशाह ने दासी के हाथों कन्या से मूर्ति देने के लिए कहला भेजा। कन्या ने उत्तर भेजा—"मूर्ति मेरे प्राणों के समान है। मैं प्राण दे सकती हूँ, मूर्ति नहीं।" बादशाह ने कन्या से बहुत कहा कि वह जैसी चाहे मणिमाणिक्य खचित रत्नमयी मूर्ति ले ले और फकीर की मूर्ति दे दे, किन्तु उसने कुछ भी नहीं माना। बादशाह अपनी वचन-रक्षा के लिए बड़े चिन्तित हो उठे। तभी उन्हें एक उपाय सूझा। वे कन्या से बोले—'अच्छा, कल मैं दरबार में यह मूर्ति रखवा दूँगा, यह स्वयं चलकर जिसकी गोद में पहुँच जायगी, उसी की हो जायगी।' सबने यह बात मान ली।

दूसरे दिन यही किया गया। हजार-हजार योगी-तपस्वी साधु-संन्यासी एक ओर, और वह आचार-नियम-निष्ठा-विहीना, योग-तप-रहिता, यवन-पुत्री एक ओर। प्रेममय ठाकुर किसकी मर्यादा की रक्षा करें? प्रेम की, या योग-तपस्या की, यह विचारते हुए और रुनझुन-रुनझुन नाचते हुए शहजादी की गोद में पहुँच गये। बादशाह अवाक्! साधु सभी एक के बाद एक शहजादी के प्रेम को 'धन्य-धन्य' कहने लगे। तब रामानुज स्वामी अत्यन्त दुःखित हो त्रिदण्ड हाथ में ले बोले—'अरे लम्पट! अरे शठ! तेरा यदि यवन गृह में ही रहने का मन था तो मुझे इस यवनपुरी में बुलाकर क्यों अपमानित किया? यह ले अपनी कण्ठी-माला, अपना धर्म, अपना वेद। आज से मैं प्रचार करूँगा कि संसार में धर्म नहीं रहा, तेरे ऊपर ब्रह्मवध का पातक लगाऊँगा।' यह कह कर जैसे ही त्रिदण्ड फेंक कर वे रोने लगे, ठाकुर शहजादी की गोद से उनकी गोद में आ गये। शहजादी ने विरह-व्याकुल हो आहार निद्रा छोड़ प्राण त्यागने का दृढ़ निश्चय कर लिया। बादशाह अनेक चेष्टाएँ करके भी उसे शान्त न कर पाये। शहजादी ने कहा—'यदि प्राण रक्षा चाहें तो मुझे साधु के साथ जाने दें। मन्त्रियों के परामर्श से बादशाह ने यही किया। शहजादी रामानुज स्वामी के चरण पकड़ कहने लगी—'बाबा, सुना है मेरे प्राणप्रिय देवता आपके समीप पुत्रवत् प्रतिपाल्य हैं, अतः मैं आपकी पुत्री हुई। आप मुझे अपने साथ ले चलें और सेवा-पूजा के समय के अतिरिक्त ठाकुर को मेरे पास रहने दें।' यतिराज ने और कोई चारा न देख शहजादी की प्रार्थना स्वीकार कर ली।

यतिराज ने ठाकुर का नाम रखा सम्पतकुमार। कुछ दिन बाद शहजादी सम्पतकुमार से बोली—'देखो प्राणनाथ! मैं क्षण भर के लिए भी तुम्हारी विरह यन्त्रणा नहीं सह सकती। अतः ऐसा करो कि मुझे तुम्हारा पल भर भी वियोग न हो। प्रेममय ठाकुर प्रेमिका की पुकार सुनने के लिए बाध्य थे। शहजादी उनके मुखचन्द्र को अपने नयन-चकोरों से अपलक देखते हुए अविच्छेद सुधा-पान कर रही थीं, अब वे उनसे एक पल भी विलग नहीं हो सकती थीं। दूसरे दिन प्रातःकाल स्वामीजी सेवा के लिए सम्पतकुमार को लेने गये तो देखा कि शहजादी उन्हें अपने वक्ष पर लिटाये चिरशान्ति लाभ कर रही हैं। उसी समय उन्होंने शहजादी की एक

स्वर्ण-प्रतिमा बनवाकर सम्पतकुमार के वाम भाग में स्थापित की और यादवगिरि में शहजादी के समाधि-स्थान पर मन्दिर बनवा कर सेवा प्रकाशित की। प्रेम का कौतुक देखो। शहजादी ने कोई शास्त्रादि के अध्ययन द्वारा कृष्ण के पूर्ण पूर्णतम ब्रह्म होने का विश्वास प्राप्त कर उनसे प्रेम नहीं किया था। कृष्ण कोई देवता हैं या सुख-मोक्ष-प्रदाता, यह धारणा भी उन्हें नहीं थी। वे केवल इतना जानती थीं कि यह एक खिलौना है। प्रेम की विशुद्धता और प्रगाढ़ता के कारण उस खिलौने के माध्यम से ही उन्हें कृष्ण-प्राप्ति हो गई।

प्यारी—प्रेम को उत्पन्न करने का उपाय क्या है।

बाबाजी—प्रेम नित्य-सिद्ध वस्तु है, उसकी उत्पत्ति का प्रश्न ही नहीं उठता। कविराज गोस्वामी ने श्रीचैतन्यचरितामृत में कहा है।

नित्यसिद्ध कृष्णप्रेम साध्य कभू नय।
श्रवणाद्य शुद्ध चित्ते करये उदय।।

श्रवणादि किसी उपाय से चित्त की विशुद्धता उत्पन्न होते ही प्रेम का विकास होने लगता है। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि प्रेम चाहता है—स्वच्छता, सरलता और कोमलता। कोई धनी एक काँच के बक्स में बहुत-से मणि-माणिक्य रख देता है। कोई दूसरा व्यक्ति उस काँच के बक्स पर कालिख पोत देता है। धनी मणि-माणिक्य न पाकर जगह-जगह उन्हें खोजता हुआ शोक से कातर हो लोगों से उनकी प्राप्ति का उपाय पूछने लगता है। इसी प्रकार सबके हृदय में प्रेमधन रहता है, किन्तु हृदय की मलिनता के कारण उसे पाने में असमर्थ हो लोग उसे इधर-उधर खोजते फिरते हैं। शास्त्र में जो कुछ भी साधन-भजन कहे गये हैं, वे सब केवल चित्त-शुद्धि के लिए हैं। साधनादि हृदय-शोधक हैं और उपयुक्त देह प्रस्तुत करने में सहायक मात्र हैं, प्रम के जनक या भगवत्प्राप्ति के सहायक नहीं। साधनादि के साथ प्रेम या भगवत्प्राप्ति का जन्य-जनकता सम्बन्ध मान लेने पर उसके नित्यत्व की हानि होती है। भगवान् सर्वव्यापी, सर्वकारण और सर्वनियन्ता हैं। वे सदा तुम्हारे निकट हैं। उन्हें पाने के लिए तुम्हें साधनों की क्या आवश्यकता?

प्यारी—तो क्या साधन की कोई प्रयोजनीयता नहीं?

बाबाजी—साधन तो केवल सेवा की योग्यता और चित्त की स्वच्छता प्राप्त करने के लिए हैं। यदि लीला की दृष्टि से देखो तो कृष्ण लम्पट पुरुष हैं, तुम युवती स्त्री हो। तुम यदि उनको खोजने निकलो तो क्या तुम्हारा धर्म नहीं जाता? तुम अनेकों प्रकार के वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हो अपने घर बैठी रहो, तुम्हारे सौन्दर्य पर मुग्ध हो लम्पट पुरुष कृष्ण स्वयं ही तुम्हें खोजेंगे। तुम्हारे हृदय में प्रेम-रूपी कस्तूरी का विकास होने से गन्ध-प्रेमी कृष्ण-मृग स्वयं मदमत्त हो तुम्हें पाने की चेष्टा करेंगे। कृष्ण प्रेम-भिखारी, भाव-ग्राही हैं। तुम भाव-भूषणों से विभूषित हो, अनुराग की साड़ी पहन, सर्वांग में प्रेम-कस्तूरी-गन्ध का लेपन कर, अप्राकृत कला विलास में कौशल प्राप्त करने की चेष्टा करो। कृष्ण स्वयं तुम्हें पाने के लिए व्याकुल हो उठेंगे।

तब प्यारी बाबू रोते-रोते बाबाजी महाशय के चरणों पर गिर पड़े। बाबाजी महाशय उन्हें आलिंगन कर बोले—'भय क्या है भाई। निताइचाँद परम दयालु, पतित पावन हैं, उद्विग्न होने की कोई बात नहीं। छल-कपट छोड़ उन्हें पुकारो, अभीष्ट लाभ होगा।'

प्यारी—छल-कपट किसे कहते हैं, समझ नहीं पा रहा हूँ।

बाबाजी—छल-कपट के बहुत अर्थ हैं। अन्याभिलाषा, ज्ञान, कर्म (काम्यकर्म), भुक्ति, मुक्ति, सिद्धि इत्यादि भी छल-कपट में आते हैं। भक्तगण मुक्ति की प्रार्थना करना तो दूर भगवान् के सामीप्य की इच्छा भी पसन्द नहीं करते। शास्त्र में कहा है—

सालोक्य-सार्ष्टि-सामीप्य-सारूप्यैकत्वमप्युते।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः।।

दाता-शिरोमणि निताइचाँद अयाचक को भी दान देते हैं, यहाँ तक कि-'जे ना लय तारे बले दन्ते तृण धरि। आमारे किनिया लह भज गौरहरि।।' प्रेम की गागर सिर पर रख द्वार-द्वार पर 'कौन लेगा, कौन लेगा प्रेम-सुधा' की आवाज लगाते हुए जो सभी को प्रेमदान करते हैं, उनसे माँग कर अपनी वृत्ति खराब करने से क्या लाभ! इसी से कहा है कि कामना-वासना-शून्य हो निताइचाँद के आदेश का प्रतिपालन करो, अभीष्ट लाभ होगा।

प्यारी बाबू आनन्दविह्वल हो गद्‌गद कण्ठ से कहने लगे—"आज मैं धन्य हुआ। मेरे हृदय में बहुत दिनों से संचित सन्देह आपकी कृपा से दूर हुए। मैंने अनेक साधुओं का संग किया किन्तु ऐसी सरल भाषा में कठिन तत्व मीमांसा और किसी से नहीं सुनी। श्रीचरणों में यही प्रार्थना है कि जब एक बार दास कहकर अंगीकार कर लिया है, तो अब कभी अलग न करें।"

अपूर्व घटना

श्रीधाम पुरी में रथयात्रा के बाद की एक अपूर्व घटना है, जिसका श्रीवसन्तकुमारदास बाबाजी महाशय ने उल्लेख किया है। हम उसे उन्हीं के शब्दों में यहाँ उद्‌धृत करते हैं—मेरा नाम वसन्तकुमारदास है। मेरा पूर्व निवासस्थान यशोहर जिले के अन्तर्गत पालितातला में था। मैं एक ब्रह्मचारी से हठयोगादि की शिक्षा ग्रहण कर देश देशान्तर में भ्रमण कर रहा था। बंगाब्द 1304 में गुरुभाई राधाकृष्णदास के साथ रथयात्रा के दर्शन हेतु श्रीधाम पुरी जाकर नरेन्द्र सरोवर के किनारे एक मकान में रहने लगा। एक दिन स्नान करते समय देखा कि कुछ लोग नरेन्द्र सरोवर के किनारे उच्च स्वर से संकीर्तन कर रहे हैं। ये साधु हैं या संन्यासी, या वैष्णव, मैं कुछ ठीक-ठीक न समझ सका। सबके गले में तुलसी की माला थी, ललाट पर हरिमन्दिर तिलक और शरीर पर एक नये ढंग से लिपटी हुई चादर, जिससे पैर तक ढके हुए थे। सभी लोग प्रायः एक सी उमर के जान पड़ते थे। उनके बीच एक दीर्घाकार पुरुष था, जो न बहुत स्थूल था, न बहुत कृश। उसे देखते ही मन में विचार आया कि ये कोई महापुरुष हैं। सब भाव में मतवाले होकर नृत्य कर रहे थे, और गद्‌गद कण्ठ से 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' गा रहे थे। इन लोगों के दर्शन मात्र से मेरे मन में एक अनिर्वचनीय भाव का संचार हो गया। मैं मन्त्रमुग्ध-सा, आत्महारा-सा कुछ दूर खड़ा हो एकटक इन महापुरुष के क्रिया-कलाप देखने लगा। थोड़ी देर में संकीर्तन मण्डली मेरे निकट आ पहुँची। मैंने महापुरुष को प्रणाम किया, वैसे ही उन्होंने प्रतिप्रणामपूर्वक मुझे उठाकर आलिंगन किया। आहा! कैसा अमृतमय अप्राकृत संस्पर्श! कैसा सुशीतल वक्षःस्थल! स्पर्श मात्र से मानो मेरे जन्म-जन्मान्तर के कोटि-कोटि ताप मिट गये। मैं किंकर्तव्यविमूढ़ की भाँति खड़ा रह गया। महापुरुष मुझे कीर्तन के साथ श्रीजगन्नाथजी के मन्दिर ले गये। वहाँ बहुत देर तक कीर्तन कर साथियों को घर भेज दिया। कुछ देर मन्दिर में रुककर मुझे अपने साथ पास के कोटभोग मठ में ले गये। वहाँ के लोगों ने बहुत आग्रह कर हमें एक कमरे में ले जाकर बिठा दिया। तब महापुरुष के पूछने पर मैंने इस प्रकार अपना परिचय दिया—"मैं कुछ दिन पहले श्रीधाम नवद्वीप में गोविन्ददास महन्त के अखाड़े में रहता था। एक दिन आपने कृपाकर इस नराधम को दर्शन देने के हेतु बुलवाया था, परन्तु अपने दुर्दैव के कारण आपके गुरुदेव के आश्रम पर जाकर भी आपके श्रीचरण दर्शन का सौभाग्य प्राप्त न कर सका। मन में बड़ा दुःख था। आज आपने निज गुणवश कृपाकर भक्ति-विश्वास-हीन इस अधम को कृतार्थ किया।" इसके पश्चात् नाना रूप कथोपकथन होने लगा।

"इतने में भयानक वर्षा आरम्भ हुई। क्षणभर में मठ के आँगन में जल ही जल हो गया। उस दिन मठ में इन महापुरुष को महाप्रसाद के लिए निमन्त्रण था। एक दूसरे कमरे में महाप्रसाद सेवन की व्यवस्था की गयी थी। वृष्टि रुक जाने पर भी आँगन जल से भरा था। महापुरुष ठीक बालक के समान बोल उठे, 'मुझे कोई गोदी में लेकर उस कमरे में ले जाये। मैं पानी में चल कर नहीं जाऊँगा।' मैं झट खड़ा होकर बोला, 'आइये मैं गोदी में ले चलूँ।' मैंने इतना कहा ही था कि पाँच वर्ष के बालक की भाँति वे मेरे गले में बाँह डालकर गोद में आ गये। मैं उन्हें बालक की भाँति गोद में ले जा रहा था और मन ही मन विस्मयपूर्वक कह रहा था 'कैसा आश्चर्य! इतना बड़ा शरीर, और इतना छोटा और हलका जैसे एक कार्क का पुतला। मैं इस प्रकार विचार कर ही रहा था कि उन्होंने विश्वम्भर मूर्ति धारण कर ली और उन्हें गोद में रखना असम्भव हो गया। यद्यपि मैंने विचार किया था कि कमरे के भीतर ले जाकर ही उन्हें गोद से उतारूँगा, पर बड़े कष्ट से उन्हें तुरन्त बरामदे में ही उतार देना पड़ा। मैं

सोचने लगा। 'कैसे आश्चर्य की बात है, जब गोद में लिया तब तो ऐसे लगे जैसे कार्क का पुतला और देखते ही देखते अचल पाषाण मूर्ति स्वरूप हो गये। सामान्य मनुष्य में इस प्रकार की अलौकिक शक्ति नहीं हो सकती। ये निश्चय ही कोई महापुरुष हैं। मैं इस प्रकार विचार कर रहा था, उसी समय उन्होंने पुकार कर कहा, 'आओ, महाप्रसाद पाना होगा।' सुनते ही मैं जैसे चौंक उठा और कमरे के भीतर जाकर उनके बाईं ओर की पत्तल के सामने बैठ गया।"

"प्रसाद में जगन्नाथ का महाप्रसाद था और ठाकुर जी का भी। महापुरुष ने ठाकुरजी की प्रसादी दाल में से चार-पाँच मिर्चे निकालीं और सब तरह की चीजों में से थोड़ा-थोड़ा लेकर सब एक साथ मिला लिया और उसमें से एक ग्रास मेरे मुँह में दिया। ग्रास को निगलते ही मुझे लगा जैसे सारे शरीर में अग्नि-शिखा जल रही हो। नेत्रों से आँसुओं की धारा बहने लगीं। यह देख एक योगिनी माँ बोली, 'बाबा ने लड़के को मिर्चे खिलाकर मार दिया।' महापुरुष बोले 'क्यों, महाप्रसाद जो है।' फिर मुझे लक्ष्य कर कहने लगे 'बड़ा कष्ट हो रहा है? अच्छा तो यह गिरास खाओ, ठण्डक पड़ जायेगी।' यह कहकर उन्होंने उसी मिले हुए प्रसाद में से फिर मेरे मुँह में एक गिरास दिया, जिसे पाते ही मुँह में ठण्डक पड़ गई। सारा शरीर शीतल हो गया। ऐसा लगा जैसे महापुरुष ने मेरा कष्ट देख एक गिरास माखन का खिला दिया हो। आहा! कैसा मधुर स्वाद! कैसा अपूर्व सुशीतल स्पर्श! कैसी सुन्दर सुगन्ध! मैंने अपने जीवन में ऐसी स्वादिष्ट किसी भी वस्तु का आस्वादन नहीं किया, जिससे मैं उसकी तुलना कर सकूँ। कैसे आश्चर्य की बात! एक ही वस्तु की एक ही समय दो प्रकार की क्रिया! मैंने अपने जीवन में बहुत-से महापुरुषों का सत्संग किया था, परन्तु इस प्रकार की असम्भव घटना का किसी के द्वारा मुझे अनुभव नहीं हुआ। मेरे मन में दृढ़ धारणा हुई कि मेरे समान महापतित, अभिमानी और अविश्वासी जीव को कृतार्थ करने के लिए ही उन्होंने यह लीला रची है। उसी दिन से महापुरुष के चरणों में सदा के लिए आत्म-समर्पण कर उनके साथ रहने लगा।"

कुतिया को उपदेश

एक दिन बाबा महाशय गंगामाता मठ में प्रसाद पाने के लिए निमन्त्रित हुए। प्रातःकृत्य समाप्त कर भक्तमण्डली के साथ कीर्तन करते-करते श्रीजगन्नाथदेव के मन्दिर पहुँचे। वहाँ बहुत समय तक कीर्तन कर नाम-कीर्तन करते-करते समुद्र-स्नान को गये। समुद्र-स्नान के पश्चात् कोई दस बजे गंगा-माता मठ में जा उपस्थित हुए। महन्त माधवदास बाबाजी, बिहारीदास पुजारी और कई व्यक्ति बाबा महाशय के साथ नाना रूप भगवत्-कथा आलोचना करने लगे। सभी की इच्छा थी कि बाबा महाशय कुछ कीर्तन करें, किन्तु समय अधिक हो जाने के कारण किसी को उनसे कहने का साहस नहीं हो रहा था। एकाएक बाबा स्वयं बोल उठे 'इस समय थोड़ा नाम-कीर्तन करने से किसी के भजन में कुछ बाधा तो नहीं पड़ेगी?' यह सुन महन्त माधवदास आनन्दपूर्वक बोले, 'हम लोगों के मन में भी यह विचार हो रहा था, परन्तु समय अधिक हो जाने के कारण आपसे कहने का साहस नहीं हो रहा था।' बाबा महाशय 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' कीर्तन करने लगे। क्रमशः वासुदेव सार्वभौम भट्टाचार्य महाशय का गुणगान करते-करते उनके गौरांगाष्टक का अर्थ विषय भाव से करने लगे। महन्त माधवदास बाबाजी और उपस्थित वैष्णव-मण्डली आनन्द-सागर में निमग्न हो गये। इस प्रकार एक बजे तक कीर्तन करने के पश्चात् सबकी अनिच्छा होते हुए भी कीर्तन समाप्त किया।

इसी समय एक उड़ीसावासी पण्डित हाथ जोड़कर बाबा महाशय से बोले, "बाबा! आपके चरणों में मैंने अपराध किया है। मैं इसके पहले समझता था कि यह बाबाजी केवल 'निताइ गौर राधेश्याम, हरे कृष्ण हरे राम' गाता फिरता है। शास्त्रादि का कुछ ज्ञान नहीं रखता। किन्तु आज आपका कीर्तन सुन मैं आश्चर्यान्वित हो गया हूँ। मैं बड़े-बड़े महात्माओं का सत्संग करके भी जिस गौरांगाष्टक का विषय अर्थ समझने में असमर्थ रहा, आज आपके मुख से सुर और ताल में उसी गौरांगाष्टक के प्रत्येक शब्द की अति सरल व्याख्या सुनकर अपने पाण्डित्याभिमान

को धिक्कार रहा हूँ। मैं घोर अभिमानी, भक्तिहीन और पाखण्डी हूँ।' यह सुन बाबाजी विनीत भाव से बोले 'निताइ! निताइ! बाबा मैं तो आप लोगों का दासानुदास हूँ। यथार्थ में शास्त्रादि कुछ नहीं समझता, काठ की पुतली के समान आप लोग जो बुलवाते हैं, वही बोलता हूँ। आप लोग आशीर्वाद कीजिये, जिससे निताइचाँद की कृपा से वैष्णव चरणों में सदा मति रहे।' इस प्रकार नानारूप कथोपकथन के पश्चात् महाप्रसाद पाकर करीब तीन बजे आश्रम की ओर प्रस्थान किया।"

हरीश बाबू के घर के निकट देखा कि एक काले रंग की कुतिया रास्ते के बीच मुँह ऊँचाकर उच्च स्वर से रो रही है। बाबाजी महाशय ने कीर्तन बन्द कर एक वृद्धा स्त्री से उसके रोने का कारण पूछा। वह बोली 'बाबा, उसके चार बच्चे हुए थे। उस मोहल्ले के बाबू लोगों के बच्चे सब पकड़ ले गये हैं। इसीलिए कल से इसने कुछ नहीं खाया है। केवल चीत्कार कर रो रही है।' तब बाबा महाशय कुतिया के निकट बैठ उसे नमस्कार कर कहने लगे, 'माँ! संसार का यही नियम है। सर्वनियन्ता भगवान् जिसे जिस मुहूर्त में जहाँ भेजते हैं, उसे उसी मुहूर्त में वहाँ जाना पड़ता है। कौन किसकी सन्तान है? कौन किसका माता-पिता? संसार केवल मायिक सम्बन्ध मात्र है। माँ, तुमने पूर्व जन्म की अनेक सुकृतियों के फलस्वरूप धाम में जन्म लिया है। किन्तु उस सुकृति को इस प्रकार नष्ट करना ठीक नहीं। तुमने बहुत दिन माया का खेल खेला है, अब निताइचाँद की कृपा ग्रहण करो। आज से सर्वदा नाम श्रवण, महाप्रसाद-सेवा और साधु-संग में जीवन व्यतीत करो। तुम्हारे चार बच्चे चले गये हैं, तो जाने दो। हम इतने बच्चे तो हैं। हम सब तुम्हें माँ कहकर पुकारेंगे। चलो हमारे आश्रम चलो। वहाँ प्रसाद पाना।' इतना कह बाबा चलने लगे।

इतनी देर कुतिया बाबाजी महाशय की ओर एकटक देखती हुई उनकी बात सुन रही थी। जैसे ही उन्होंने आश्रम चलने के लिए कहा, वह उनके पीछे-पीछे चलने लगी। भक्तों ने कुतिया जिस स्थान पर बैठी थी, उसकी रज लेकर अपने माथे से लगाई और नाम करते-करते बाबाजी महाशय के साथ आश्रम लौटे। बाबा दुमंजिले पर चढ़े, कुतिया भी उनके पीछे-पीछे चढ़ गई। उन्होंने पूछा 'महाप्रसाद है क्या?' जयगोपाल बोला 'जी है।' बाबा ने कहा 'इन निताइदासी माँ को नीचे ले जाकर प्रसाद सेवन कराओ। इनकी सेवा का भार मैं तुम्हारे ऊपर सौंपता हूँ। प्रतिदिन माँ को अधरामृत सेवन कराना। इससे सेवा-शक्ति प्राप्त होगी।' जयगोपाल निताइदासी को नीचे ले गया और महाप्रसाद सेवन करा बोला 'माँ, तुम यहीं रहना। मैं तुम्हें वैष्णव अधरामृत दिया करूँगा।' उस दिन से निताइदासी बाबाजी महाशय के साथ रहती और वे जिस-जिस स्थान को कीर्तन करने जाते उनके साथ जाती। यदि कोई कुछ अनिवेदित वस्तु देता तो उसे कभी न खाती। जहाँ कहीं ठाकुर की आरति के घण्टे का शब्द सुनती, शंख की-सी ध्वनि करतीं। बाबाजी महाशय जब 'हरिबोल' बोलते तब उनके सामने दोनों पैर ऊपर उठाकर 'हो-हो' कर उच्च ध्वनि करती।

श्रीश्रीराधाचरण कुञ्ज-प्राप्ति

पूर्वोक्त प्यारीबाबू अपने साथियों को विदाकर बाबाजी महाशय के साथ रहने लगे। एक दिन वे बाबा महाशय से बोले 'देखिये, मेरी एक अनाथ बहन है। यदि थोड़े-से खर्च से कहीं एक मन्दिर मिल जाय तो जीवन पर्यन्त उसके वहाँ रहने का प्रबन्ध कर दिया जाय। जीवन के अन्त में वह मन्दिर सर्वसाधारण का हो जाय। यदि ऐसा हो सकता तो मैं निश्चिन्त हो आपके श्रीचरणों में रहकर सुखी होता।' कई दिन पश्चात् कुञ्जविहारीदास नामक तीस वर्ष के एक बाबा बाबाजी महाशय के पास आकर दण्डवत् प्रणाम कर बोले 'मेरा एक मठ है। उसमें ठाकुर सेवा होती है। मैं अब सेवा नहीं चला पा रहा हूँ। थोड़ा-सा कर्ज भी है। आप कृपा कर कर्ज चुकाकर और सेवा का भार ग्रहण कर मुझे मुक्त करें। मैं स्वाधीन होकर कभी आपके साथ और, कभी वृन्दावन में रहूँगा।' बाबा महाशय मृदु मुस्कान के साथ बोले, "भाई, तुम्हें कितना रुपया देना है?"

कुञ्ज—अस्सी रुपये के लगभग होगा।

बाबाजी—किसे देना है?

कुञ्ज—छोटे हरीश बाबू वकील को।

बाबाजी—अच्छा ठीक है। मैं भिक्षा कर तुम्हारा कर्ज चुका दूँगा। तुम मठ में रहकर सेवा करना। तुम्हारी गुरु से प्राप्त सेवा तुम्हारे ही पास रहेगी।

कुञ्ज—मेरी वृन्दावन जाने की प्रबल इच्छा है। इसलिए मुझे तो आप मुक्त ही कर दें।

आज्ञाकारी बलराम ने उसी क्षण प्यारी बाबू को बुला सारा वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया। प्यारी बाबू ने परमानन्द-पूर्वक हरि बाबू का रुपया चुकाकर मठ की लिखापढ़ी कर ली। इधर बाबाजी महाशय कुञ्जदास से पूछने लगे, 'आपके और कौन है?'

कुञ्जदास—मेरी गर्भधारिणी माँ है।

बाबाजी—अच्छा, तभी माँ को छोड़ विरक्त होने का विचार है। चलो एक बार माँ को देख आयें।

इतना कह कुञ्जदास बाबाजी के साथ जैसे ही मठ में जाकर उपस्थित हुए, स्नेह की मूर्ति वृद्धा माता बाहर आईं। देखते ही बाबा महाशय ने 'माँ' कहकर उन्हें प्रणाम किया। माँ प्यार से बोलीं 'आओ बाबा! प्रभु तुम्हारा मंगल करें' और बैठने को आसन बिछाया। इस दिन से माँ मानो जगत् की माँ हो गईं। बाबा महाशय को ठाकुर के दर्शन कर बहुत आनन्द हुआ। ठाकुर जी के नाम से मठ का नाम रखा 'राधारमण कुञ्ज।' कोई-कोई उसे कुञ्ज-मठ भी कहते। क्रमशः इस स्थान में अनेक प्रकार के महोत्सव होने लगे।

बालक-भोजन

श्रीश्रीराधारमण जी की सेवा सुचारु रूप से चलने लगी। भास्कर मिश्र नामक एक पुजारी की नियुक्ति की गयी पूर्वोक्त कुञ्जदास बाबाजी महाशय के साथ रहने लगे थे। उनकी बूढ़ी माँ और पुजारी मन्दिर में रहकर ठाकुर सेवा के कार्य में सहायता करने लगे। स्थान बड़ा मनोरम था, जैसा निर्जन वैसा ही शान्तिमय। एक दिन बाबा महाशय के मन में बैठे-बैठे न जाने क्या विचार आया, उन्होंने प्रिय नवद्वीप को बुलाकर कहा 'देख नवद्वीप! श्रीश्रीराधारमण का प्रसाद पाने के लिए कुछ आनन्द-मूर्ति वैष्णवों को निमन्त्रित कर आ तो।' इनके मुख से ऐसी बात कभी सुनने में नहीं आती थी। ये कहा करते थे कि 'वैष्णव मात्र ही आनन्दमय और निष्कलंक होते हैं।' परन्तु आज इस प्रकार की भाषा का प्रयोग क्यों किया यह वे ही जानें। बूढ़ी माँ से बोले, 'माँ! कई मूर्ति वैष्णवों की सेवा होगी। कुछ अधिक रसोई बनानी होगी।' नवद्वीप पास ही बैठे थे। बाबा बोले 'जाओ नवद्वीप! वैष्णव निमन्त्रित कर आओ।'

नवद्वीप—निमन्त्रण हो गया।

बाबा—कैसे? मैंने तो तुम से इसी क्षण कहा है। तुमने निमन्त्रण कब किया?

नवद्वीप—आपको आनन्दमय उदारचरित वैष्णवों का आगमन ही तो चाहिये। आपने जब अपने मन में ऐसा विचार किया है तो निमन्त्रण तो साथ ही साथ हो चुका।

बाबा—कुछ पत्तल और मिष्ठान्न की आवश्यकता होगी। अच्छा, निताइ की इच्छा से सब हो जायगा।

आज दोनों भाइयों के मन में न जाने कौन-सी लीला करने का विचार हुआ हैं। दोनों ने यह भेद किसी को न बताकर अपने मन में ही रखा। कोई दस बजे एक भक्त दो व्यक्तियों के साथ कुछ दूध, कन्द[1], चार कूंढ़े दही रसगुल्ले और कुछ पत्तल लेकर श्रीश्रीराधारमण कुञ्ज में आया और बाबाजी महाशय को दंडवत् कर बोला "बाबा, मैं आपको खोजता हुआ बड़े हरीश बाबू के पुराने डाकघर में गया था। वहाँ आपको न पाकर यहाँ चला आया हूँ। यह थोड़ी सामग्री ठाकुर जी के भोग के लिए है।"

बाबा—बाबा, तुमसे किसी ने कुछ कहा था क्या?

भक्त—जी नहीं। मुझसे किसीने कुछ नहीं कहा। मैं जगन्नाथ जी के दर्शन के हेतु जैसे ही सिंह दरवाजे पर जाकर खड़ा हुआ, मन में यह विचार आया कि कुछ मिठाई आपके ठाकुर जी के लिये ले चलूँ। जब मिठाई लेने गया तो यह ग्वाला बोला, "बाबू, खाली

1. पुरी का मिष्ठान्न विशेष।

मिठाई देना ठीक नहीं। कुछ दही भी देना उचित होगा।" मैंने कहा—"अच्छा, कितने कूंढ़े हैं?" इसने कहा "चार कूंढ़े।" मैंने कहा "अच्छा, ले चलो।" धीरे-धीरे चला आ रहा था, उसी उसय हरिपाटरा नामक एक दुकानदार ने मुझसे पूछा 'आप कहाँ जा रहे हैं?' मैंने कहा "बड़े बाबाजी महाशय के पास।" वह उसी समय बोल उठा "तब मेरे जाने की आवश्यकता नहीं; आप कृपा कर यह दूध, कन्द और केले के पत्ते उन्हें दे दीजियेगा।" मैंने कहा "यदि वे पूछें तो क्या कहूँ?" वह बोला "और कुछ कहने की आवश्यकता न होगी। इस दास के नाम से दण्डवत् कर कहियेगा कि निताइचाँद की इच्छा हुई थी, इसलिये उन्होंने इस भोग की व्यवस्था की है।"

नवद्वीप दादा अभी तक एकान्त में बैठे थे। एकाएक अश्रुपूर्ण नयन और गद्गद कण्ठ से 'बोल श्रीनित्यानन्द' कहकर पागल की तरह नाचते-नाचते बाहर निकल पड़े। बारह बजे बाबाजी महाशय भी सड़क से नाम की ध्वनि सुन बाहर निकले। देखते हैं कि पागल नवद्वीप लगभग सौ बालक-बालिकाओं के साथ उन्मत्त होकर नाचते-नाचते चला आ रहा है। देखते ही दण्डवत् प्रणाम कर हाथ से ताली बजा-बजा उस नामयज्ञ में घृत आहुति देने के समान योग देने लगे। बालक और बालिकाएँ इन्हें चारों ओर से घेर 'बोल श्रीनित्यानन्द' कह कर चाहने लगे। एक तो बालकों का कण्ठ, उस पर भी प्रेम से पगा हुआ मीठा स्वर, ऐसा लगता था मानो आनन्दसागर उमड़ पड़ा हो। मार्ग का प्रत्येक धूलकण जैसे नामानन्द में विभोर होकर नाचने लगा। किसी को भी देह-स्मृति न रही। बालक और बालिकाओं में कोई रज में लोट रहा था, कोई दोनों भुजायें उठाकर नाच रहा था, कोई भाग-दौड़कर नाम कर रहा था। एक अपूर्व दृश्य था। धीरे-धीरे कीर्तन राधारमण कुञ्ज के निकट आ पहुँचा। नवद्वीप दादा और बाबा महाशय ने भीतर प्रवेश किया। बालक और बालिकाएँ भी नाचते-नाचते उनके पीछे-पीछे आये। राधारमण के आँगन में आकर तुमुल कीर्तन आरम्भ हुआ। बाबा महाशय आवेश में झूमते-झूमते एक-एक बालक को पकड़ और छाती से लगा ज्यूंही छोड़ देते थे, वैसे ही वह विभोर होकर नृत्य करने लगता था। एक-दो की नहीं, सभी बालकों की इसी प्रकार की अवस्था थी। बालक और बालिकाएँ इतने मतवाले हो रहे थे कि इनके चाहने पर भी कीर्तन बन्द होने की कोई सम्भावना न दीख पड़ती थी। जब एक बज गया, बाबा महाशय सब बच्चों के बीच खड़े हो कहने लगे 'हरि हरि बल रे पिला*।'

बालकगण—हरि हरि बल रे पिला।

बाबाजी—आसरे प्रसाद पाइब कैसे।

बालकगण—आसरे प्रसाद पाइब कैसे।

इस प्रकार रसमय विग्रह बाबा महाशय जो कहते थे बालक और बालिकागण भी परमानन्द में विभोर हो वही कहते थे। तब बाबाजी महाशय के आदेश से सबको कतार से बिठा कर पत्तलें परसी गईं और जयगोपाल महाप्रसाद लेने गया। उसने रसोई घर में जाकर देखा कि अन्दाज से बीस-पच्चीस लोगों के लिए प्रसाद है। किंकर्तव्य-विमूढ़ अवस्था में वह रसोई-घर में खड़ा रह गया। बाबा महाशय ने यह सब समझ लिया और रसोई-घर में जाकर जयगोपाल से बोले, "जाओ प्रसाद परोसो, भय की क्या बात? निताइ की इच्छा से इतना महाप्रसाद ही पर्याप्त होगा।" इतने थोड़े-से प्रसाद में किस प्रकार सबको पूरा पड़ेगा, इस विचार से जयगोपाल कुछ कम-कम परोसने लगा। यह देख बाबा महाशय क्रोध में बोले, "यह कैसा परोसना है? परिपूर्ण मात्रा में सबको जल्दी-जल्दी परोस जाओ। तुम तो अदरक के व्यापारी हो, तुम्हें जहाज की खबर रखने की क्या आवश्यकता है? जमा-खर्च का हिसाब रखने के लिए तो निताइचाँद ने तुम्हें नहीं भेजा है। तुम्हें परोसने का काम सौंपा है। स्वच्छन्द रूप से परोसे जाओ।" यह सुन जयगोपाल हाथ खोलकर परोसने लगा। क्रमशः सौ बालक- बालिकाओं, दस-बारह आगन्तुक भिखारी और बाबा महाशय के बीस-पच्चीस साथियों ने भरपेट भोजन किया। फिर चार-पाँच के लिए सब प्रकार का महाप्रसाद अवशेष रह गया। सब देखकर अवाक्। तब बाबा महाशय जयगोपाल को लक्ष्यकर कहने लगे—

* उड़िया भाषा में 'पिला' बालक को कहते हैं।

'महाप्रसादे गोविन्दे नाम ब्रह्मणि वैष्णवे।
स्वल्पपुण्यवतां राजन् विश्वासो नैव जायते।।

महाप्रसाद, नाम, वैष्णव, एवं श्रीकृष्ण के लिए किसी भी कार्य को असम्भव न समझना चाहिये। तुम लोग इतने संदिग्ध-चित्त हो कि चिन्मय वस्तु को प्राकृत समझते हो। क्या तुम समझते हो कि ठाकुर वास्तव में भोग नहीं लगाते? यदि तुम्हें विश्वास ही नहीं है तो जगत् में सेवक नाम से परिचय ही क्यों देते हो? वनवासी होकर निर्जन में भजन करना सहज है, किन्तु निताइचाँद के संसार में रहकर उनकी और उनके दास-दासियों की सेवा करना बड़ा कठिन है। इस सेवा को ही सेवा समझना चाहिये। मानसिक वृत्ति के अनुसार ही लोगों को फलाफल का भोग करना पड़ता है। शास्त्र कहते हैं 'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध-मोक्षयो:।' इन आनन्दमय निष्कलंक सरल हृदयवाले बालक-बालिकाओं में ही यदि वैष्णव-बुद्धि न रख सको, यदि इन्हें साक्षात् नारायण रूप न समझ सको तो और किसमें इस प्रकार की बुद्धि रख सकोगे? धामवासी मनुष्यों की तो बात ही नहीं-पशु, पक्षी, कीट, पतंग पर्यन्त को सालोक्य और सारूप्य मुक्ति-प्राप्त जीव समझना चाहिये। यह क्षेत्रवासी सभी चतुर्भुज रूप हैं, सब नारायण सदृश्य हैं। सुनो—

एक सम्भ्रान्त धनी व्यक्ति क्षेत्रवास करते थे। उनके तीन पुत्र थे। कालक्रम से उनकी मृत्यु हो गयी। दूर देश में रहने वाले पुत्रों के आने में विलम्ब हुआ। इसलिए डोमों ने मृत देह का सत्कार किया। तीन-चार दिन पश्चात् पुत्रों ने आकर सुना कि उनके पिता का डोमों ने सत्कार किया है। तब वे बहुत दु:खित होकर कहने लगे 'हमारे पिता बहुत बड़े नैष्ठिक भक्त थे। जीवन भर उन्होंने नहीं जाना कि प्रवञ्चना या दूसरे की अनिष्ट-चेष्टा किसे कहते हैं। दया, धर्म, दान, तितिक्षा प्रभृति जिनके जीवन का व्रत था उन महापुरुष की जब इस प्रकार की असद् गति हुई तब दूसरों का तो कहना ही क्या। तब दूसरे लोग इतना कठोर व्रत धारण कर तीर्थवास करें ही क्यों? और क्यों जगन्नाथ जी के दर्शन के लिए व्याकुल हों। हम तो जगन्नाथ जी के दर्शन न करेंगे। इतना कह खिन्न मन से क्षेत्र त्याग कर रहे थे, उसी समय देखा कि दो डोम एक मृत देह लिये जा रहे हैं। एकाएक एक डोम के सिर के बाल खुल पड़े। उसके दोनों हाथ जो मृत शरीर को पकड़े थे बालों को नहीं सम्हाल सकते थे। तब उसके शरीर में से दो और हाथ निकले और बालों को सम्हाल कर लुप्त हो गये। पुत्रों ने विस्मित भाव से यह सब देखकर पास में बैठे वृद्ध ब्राह्मण से इसका रहस्य पूछा। उन्होंने कहा 'बाबा! क्षेत्रवासी मनुष्य ही नहीं, पशु, पक्षी, कीट, पतंग पर्यन्त चतुर्भुज हैं। यह सभी जगन्नाथदेव के नित्य पार्षद हैं। धामवासी लोगों में प्राकृत बुद्धि रखने से नरक की प्राप्ति होती है। धाम में मृत्यु को प्राप्त करने वाले व्यक्ति को भगवत्-सारूप्य की प्राप्ति होती है। वृद्ध ब्राह्मण के मुख से यह सुनकर पुत्रों का संशय दूर हुआ और पिता की सद्गति हृदय में रखकर आनन्दपूर्वक उनके लिए बहुत अर्थ व्यय कर धामवासियों के स्नेह पात्र बने।

इसी अभिप्राय से श्रीश्रीनरोत्तम ठाकुर ने कहा है 'गौरांगेर संगीगणे, नित्य सिद्ध करि माने, से जाये व्रजेन्द्रसुत पाश। गौरमण्डल भूमि, जेबा जाने चिन्तामणि तार हय व्रजभूमे वास।।' इसी प्रकार व्रजवासिनी गोपियाँ श्रीमती राधारानी की काय-व्यूह रूप हैं, और काशीवासी सब बाबा विश्वेश्वर के सारूप्य प्राप्त हैं। धाम मात्र ही अप्राकृत, नित्य, चिन्मय वस्तु है। इसे कभी प्रपंच के अन्तर्गत न समझना चाहिये।'

इस प्रकार उपदेश कर बाबा महाशय सबका अधरामृत ग्रहण कर स्वयं महाप्रसाद सेवन करने बैठे। बालकगण प्रसन्न होकर अपने-अपने घर गये। बाबा महाशय बालकों के साथ इस प्रकार की अनेक लीलाएँ प्राय: किया करते। वे कहा करते 'बालकगण निष्कपट, दृढ़ विश्वासी, एकनिष्ठ, अदोषदर्शी, परचर्चाविहीन और आनन्दमय होते हैं। बालक चरित्र साधन पथ का आदर्श है, और बालकों का संग उच्च साधु संग है।'

श्रीश्रीहरिदास ठाकुर उत्सव

भाद्र मास है। प्राय: सर्वदा ही वृष्टि हो रही है। फिर भी अन्य देशों की अपेक्षा श्रीधाम पुरी में वृष्टि कुछ कम है। एक दिन बाबा महाशय ने प्रात:काल

बलराम को बुलवाया। हम पहले ही कह चुके हैं कि बलराम मानो गौरलीला के वाणीनाथ पट्टनायक हैं। आफिस जाना तो नाम-मात्र का है, सदा बाबा महाशय तथा उनके परिकरों के आदेश-पालन में तत्पर रहते हैं। केवल बाबाजी महाशय ही क्यों, समय-असमय जिसको जिस चीज की आवश्यकता होती है बलराम उसे पूर्ण करते हैं। किसी की आज्ञा का पालन करने या किसी का अत्याचार सहन करने से बलराम की प्रसन्नता और बढ़ती है। सत्वगुण की मूर्ति बलराम का मुख कभी मलिन नहीं रहता। जैसे ही बाबाजी महाशय का सन्देश मिला बलराम ने प्रफुल्लित चित्त से आकर उन्हें दण्डवत् की। बाबा बोले 'बलराम! कल श्रीश्रीहरिदास ठाकुर की तिरोभाव तिथि है। महाप्रभु ने स्वयं भिक्षा कर हरिदास ठाकुर का महोत्सव किया था। मेरी इच्छा है कि भिक्षा कर उत्सव मनाया जाय।' बलराम ने कहा—'जो आज्ञा, आप आश्रम में रहें। मैं गोविन्द दादा और नवद्वीप दादा को लेकर भिक्षा को जाता हूँ।' बाबा महाशय बोले 'नहीं, उस तरह से भिक्षा न होगी। नाम लेकर जाना होगा, चलो इसी समय चलें।' यह कह कर वे उठ पड़े और साथ में दो खोल और दस-बारह जोड़ा करताल लेकर बाहर निकले। बाबा महाशय के कन्धे पर झोला और मुख पर हरिनाम है। आगे-आगे नृत्य करते हुए एक-एक घर के दरवाजे पर कुछ समय रुक कर चले जा रहे हैं। बलराम रास्ते में सबको बतलाते जा रहे हैं कि श्रीश्रीहरिदास ठाकुर के उत्सव के लिये भिक्षा हो रही है। कोई पाँच रुपये, कोई दो रुपये, कोई आठ आने, चार आने अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार दे रहा है। थोड़ी दूर जाने के बाद भयानक वर्षा होने लगी। परन्तु इनका भिक्षा का नियम कठोर है। भयंकर धूप या वृष्टि होने पर भी किसी के बरामदे में जाकर आश्रय लेने का निषेध है।

एक अद्‌भुत रहस्य है। एक-एक दरवाजे पर थोड़ी देर प्रतीक्षा कर दूसरे दरवाजे पर जाते हैं। इसी बीच पहले वाले मकान के लोग रुपया-पैसा और चावल इत्यादि लेकर पीछे-पीछे भागते हैं। इस प्रकार ये जिस मोहल्ले में चले जाते हैं उसके लोग भी इनके साथ पानी में भीगते हैं। धीरे-धीरे दोपहर हो गयी। तब बलराम आदि के अनुरोध से आश्रम लौटे। झोला उतार कर देखा कि पचासी रुपये चार आने भिक्षा में मिले हैं। बलराम ने कहा 'तीस-चालीस रुपये और हो जाने की सम्भावना है।'

बाबाजी—देखो, जगन्नाथ जी और समाधिस्थान के तीनों प्रभुओं के भोग की किस प्रकार व्यवस्था करनी होगी, इसका कुछ हिसाब कर लेना चाहिये।

बलराम एक कागज लाकर बोले—'हाँ, किस प्रकार हिसाब करना होगा?'

बाबाजी—डेढ़ सौ रुपये का जगन्नाथ जी का भोग होगा, और पचास रुपये ठाकुरों के भोग और अन्यान्य खर्च में लगेंगे। रुपये के लिए तुम्हें चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं, निताइचाँद सब उपलब्ध करा देंगे।

इस प्रकार बन्दोबस्त कर बलराम को विदा किया और स्वयं यथासमय प्रसाद ग्रहण कर विश्राम किया। शिबुदास नामक एक भक्त विशेष उद्योगी और कार्यक्षम थे। बाबा महाशय अनेक बाद बलराम की सहायता के लिए शिबु को नियुक्त कर दिया करते थे। सबेरा होने से पहले ही शिबुदास को बुलवाकर कहा 'देख शिबु, आज हरिदास ठाकुर का उत्सव है। बलराम के साथ रहकर उत्सव ठीक तरह सम्पन्न हो ऐसा प्रयत्न करना। सभी वैष्णवों को निमन्त्रण देना। समाजबाड़ी के तीनों ठाकुरों के भोग की व्यवस्था के लिए भी जिस-जिस वस्तु की आवश्यकता हो उसे एकत्र करना।' आज्ञा पाते ही शिबु परमानन्दपूर्वक सब व्यवस्था करने लगे। सन्ध्या समय बाबाजी महाशय कीर्तन के साथ कचहरी के रास्ते से बाहर निकले। धीरे-धीरे बहुत लोग साथ हो लिये।

भाद्रमास की शुक्ला चतुर्दशी है। चन्द्रमा के आलोक से समुद्र की लहरें उमड़-उमड़ कर आतीं और तटीय स्थल को प्लावित कर अपने स्थान को चली जाती हैं। आहा, कैसा मनोरम दृश्य है। तट जनशून्य और निस्तब्ध है। बीच-बीच में केवल प्राणों को मतवाला करने वाली, हृदय को पिघलाने वाली, उच्छ्‌वासमय तरंग-ध्वनि चारों दिशाओं को मुखरित

कर रही है। इसी समय इनके प्रायः तीन सौ भक्त खोल करताल, निशानादि लिये 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' नाम कीर्तन के साथ नाचते-नाचते वहाँ आ पहुँचे। एक तो चन्द्रमा का आलोक। उस पर भी चारों ओर मशालें जल रही हैं। एक अपूर्व दृश्य है। बाबाजी महाशय के हृदय में आज न जाने किस प्रकार के नूतन भाव का उदय हो रहा है। अतीत की स्मृतियाँ हृदय को जैसे उछाल रही हैं। समुद्र की एक-एक तरंग के साथ मानों प्राणों के मध्य विरह-तरंग उछल-उछल कर हृदय क्षेत्र को प्लावित कर दोनों नेत्रों से होकर सौ-सौ धार के रूप में बाहर आ रही हैं। उस आर्ति और व्याकुलता को देख और उस रोदन को सुन पत्थर का हृदय भी पिघल जाता है। हम पहले ही कह चुके हैं कि बाबा महाशय नामरूप से लीला आस्वादन किया करते हैं। वे जहाँ-जहाँ भी जाते हैं नामरूप से महाप्रभु को सपरिकर आगे कर चलते हैं। आज भी यही बात है। वे देख रहे हैं कि महाप्रभु सपरिकर श्रीहरिदास ठाकुर को लेकर चले जा रहे हैं और वे उनके पीछे-पीछे कीर्तन करते जा रहे हैं। हरिदास के विरह में महाप्रभु व्याकुल हो रहे हैं—परिकरगण भी अधीर हो रहे हैं। यह देख इनका हृदय विदीर्ण हो रहा है। हरिदास के संगसुख का स्मरण कर महाप्रभु का मुख-कमल आँसुओं से भीग रहा है। यह देख वे भी रो-रोकर अधीर हो रहे हैं। कैसा मनोरम दृश्य है। कैसा चित्ताकर्षक भाव! कैसी प्राणों को विदीर्ण करने वाली व्याकुलता! कैसी मीठी कीर्तनध्वनि! कैसी नयनरञ्जक नृत्यभंगि! कैसा अपूर्व उनकी शक्ति का प्रभाव! प्रायः तीन सौ लोग समान भाव से इनकी ओर देखते हुए कीर्तन-श्रवण कर रहे हैं। सभी आत्मविस्मृत हैं, सभी मानो उस अप्राकृत चिन्मय राज्य में डूबे हुए हैं।

धीरे-धीरे समाधि मन्दिर में जा पहुँचे। हरिदास ठाकुर के समाधिस्थान का दर्शन कर बाबाजी महाशय बालक के समान उच्च स्वर से रोदन करते-करते चरितामृतोक्त हरिदास के निर्वाण की कथा गान करने लगे। बहुत लोगों का समागम हुआ। रात नौ बजे पंगत आरम्भ हुई। समाधि मन्दिर का द्वार सबके लिए खुला था। जो भी आता था महाप्रसाद पाता था। बालुकामय निर्जन समुद्रतीर बहुजन-समाकीर्ण आनन्दमय स्थान होगया था। आहूत, अनाहूत, आगन्तुक, दुःखी, कंगाल, सबके महाप्रसाद पा चुकने के पश्चात् बाबा महाशय अन्तरंग भक्तों सहित स्वयं प्रसाद पाने बैठे। शिबुदास और बलराम ने परोसना प्रारम्भ किया। कैसा अनिर्वचनीय आनन्द है। साथियों में कोई निताइ गुण गान कर रहा है, कोई गौर-गुण। बीच-बीच में बाबाजी महाशय जलद गम्भीर निनाद से चारों दिशाएँ कम्पित कर एक-एक ध्वनि कर रहे हैं। सब प्रेम में मतवाले होकर निताइ-गौरांग की जय बोल रहे हैं। इस प्रकार परमानन्दपूर्वक महाप्रसाद पाकर बाबा महाशय निकट के एक स्थान पर जा बैठे और बोले 'मैं ऐसा सुखमय स्थान परित्याग कर आश्रम नहीं जाऊँगा।' यह सुन गोविन्द दादा ने उनके सोने के लिए बालुका द्वारा सिर, बाँह, और पैरों के लिए तकिये प्रस्तुत कर उसके ऊपर अपनी चादर बिछा दी। बाबा महाशय उस पर लेट गये और उनके चारों ओर सब बैठकर कोई हाथ, कोई पाँव, कोई कटि कक्ष दबाने लगे। संगीगण परस्पर नानारूप क्रीड़ा-कौतुक करने लगे। इस प्रकार रात्रि प्रायः शेष होने पर सबने विश्राम किया। दूसरे दिन प्रातः समुद्रस्नान कर नाम करते-करते आश्रम को लौटे।

नगर कीर्तन में गोपाल बाबू

एक दिन सबेरे आठ बजे नगरकीर्तन निकालने के उद्देश्य से बाबा महाशय पोस्ट आफिस के हेड क्लर्क गोपाल बाबू के घर गये। संगीगण आश्रम से नाम करते-करते गोपाल बाबू के घर आ पहुँचे। आँगन में कीर्तन हो रहा है। इधर गोपाल बाबू ने नवद्वीप दादा से कहा 'दादा! आज मुझे कुछ पहले ही आफिस जाना है। कुछ विशेष कार्य है। इसलिए मैं कीर्तन में योग न दे सकूँगा।' नवद्वीप दादा बोले 'तो तुम कीर्तन को दण्डवत् प्रणाम कर आफिस जाओ। हम लोग नगर-कीर्तन के लिए निकलें।' गोपाल बाबू आफिस की पोशाक पहन कीर्तन को दण्डवत् कर जैसे ही आफिस जाने को हुए, बाबाजी महाशय ने जयगोपाल के गले से खोल निकाल कर उनके गले में डाल

दिया। गोपाल बाबू भी बिना कुछ विचारे खोल बजाने लगे। कीर्तन नगर की ओर चल पड़ा। संगीगण परस्पर कहने लगे 'गोपाल बाबू की पोस्ट ऑफिस की नौकरी है। आफिस जाये बिना कैसे चलेगा? किसी प्रकार कौशलपूर्वक उनके गले से खोल निकाल कर उन्हें मुक्त कर देना होगा।' गोपाल बाबू के खोल बजाने से बाबा महाशय को बड़ा सुख होता था। इसलिए कीर्तन के समय वे गोपाल बाबू को निकट ही रखते थे। आज भी ऐसा ही हुआ। इसलिए किसी की युक्ति न चली। जैसे-जैसे दिन चढ़ने लगा। कीर्तनानन्द भी वैसे ही बढ़ता गया। धीरे-धीरे इन्होंने श्रीमन्दिर की बाहर से परिक्रमा कर हरचण्डीसाई में प्रवेश किया।

इस मार्ग पर दोनों ओर केवल जगन्नाथ जी के सेवक पण्डों की बस्ती है। कीर्तन का ऐसा जोर है कि पण्डागण कोई बच्चे को गोदी में लिये, कोई मुख में दातन दबाये, कोई तेल मालिश करते-करते कीर्तन में आकर नृत्य कर रहे हैं। सभी मानो आत्महारा हैं। सभी कीर्तन के प्रवाह में बहे जा रहे हैं, भाव में विभोर हैं आनन्द की अवधि नहीं। कीर्तन की ध्वनि जिस किसी के कर्ण में प्रवेश करती है, वही भागकर आता है और उसमें योग देने लगता है। कीर्तन के आगे बालकों का एक दल नानारूप नृत्य करता चल रहा है। क्रमशः टोटागोपीनाथ और हरिदास ठाकुर की समाधि दर्शन कर कचहरी के रास्ते और पोस्ट आफिस के निकट से होकर कीर्तन करते-करते आश्रम वापस आये। साथ में बहुत-से लोग थे। सभी प्रेम में विभोर हो रहे हैं। बहुत देर तक नृत्य कीर्तन होता रहा। फिर मानो सबको थका जान बाबा महाशय ने कीर्तन समाप्त किया। उसी समय गोपाल बाबू को खोल रख दण्डवत् करते देख बाबाजी महाशय चौंक कर बोले—'गोपाल! आज तुम्हारा दफ्तर नहीं है?'

गोपाल—जी, है तो।

बाबाजी—समय क्या है?

गोपाल—एक बज गया है।

बाबाजी—इतना समय हो गया और तुम आफिस नहीं गये, कुछ नुकसान तो नहीं होगा?

गोपाल—यह आप जानें।

बाबाजी—तुम्हें किस समय जाना होता है?

गोपाल—दस बजे, और किसी-किसी दिन सबेरे भी जाना होता है। आज मुझे नौ बजे ही जाना था।

बाबा महाशय कुछ विस्मित होकर बोले—'अच्छा, निताइ की इच्छा से आज तुम्हें ऑफिस जाने की आवश्यकता नहीं।' संगीगण में से कोई-कोई कहने लगे 'पोस्ट आफिस का काम है। नौकरी तो रहेगी ही नहीं। कहीं ऊपर से जुरमाना भी न हो।' गोपाल बाबू निश्चिन्त होकर बैठे रहे। सबने कुछ उदास होकर महाप्रसाद ग्रहण करने के बाद शयन किया। गोपाल बाबू भी घर चले गये। दूसरे दिन यथा समय आफिस आ अपना काम करने लगे। न इनसे किसी ने कुछ पूछा ही और न इन्होंने कुछ कहा, केवल पोस्टमास्टर बाबाजी महाशय की प्रशंसा करते रहे। गोपाल बाबू भी बीच- बीच में योग देते रहे। क्रमशः कार्य समाप्त हो गया। हाजरी के रजिस्टर में दस्तखत करते समय वे विचारने लगे 'कल अवश्य बाबा महाशय ने मेरे लिए कष्ट किया होगा। तभी पोस्टमास्टर या दफ्तर के किसी बाबू ने मुझसे कुछ पूछताछ नहीं की। मेरे ही रूप में अवश्य बाबाजी महाशय पोस्ट आफिस आये होंगे। जो हो, जब कोई कुछ पूछ-ताछ कर ही नहीं रहा तो कल की भी हाजरी बना दूँ। पीछे जो प्रभु करेंगे होगा।' यह विचार कर उन्होंने दस्तखत बना दिये। पोस्ट ऑफिस का काम खत्म कर बाबा महाशय के पास जा सारा वृत्तान्त कह सुनाया। बाबा बोले, 'भाई! नाम का आश्रय लेने से यदि अप्राकृत चिन्मय राज्य का सारा अभीष्ट पूर्ण हो सकता है, तो एक सामान्य आफिस का काम नहीं चल सकता? हमारे मन में दृढ़ विश्वास नहीं है। इसलिए हमें फल प्राप्त नहीं होता। सारे साधन-भजन का मूल है विश्वास। विश्वासे मिलये वस्तु। तर्के बहुदूर।'

गोपाल बाबू अश्रु-गद्गद कण्ठ से कहने लगे—"प्रभु! मेरे लिए आपको जो कष्ट उठाना पड़ता है, उसकी कोई सीमा नहीं। मेरा अपराध क्षमा कर आशीर्वाद कीजिए कि प्रति जन्म में आपके श्रीचरण का आश्रय पाऊँ। मैं कोई साधन-भजन नहीं जानता।

फिर भी आप मुझ पर इतनी दया रखते हैं। दयामय! यदि मैं कुछ भजन करता होता तो न जाने क्या होता।" इतना कह चरणों में लोटकर रोने लगे। बाबाजी महाशय ने उन्हें उठाकर प्रेम से आलिंगन किया। संगीगण ने एक साथ प्रेम से 'नित्यानन्द राम' ध्वनि की।

सखी-वेश

बाबाजी महाशय राधारमण कुञ्ज में बैठे थे। गोविन्द दादा, नवद्वीप दादा, प्यारी बाबू, जयगोपाल, किशोरी गोपाल, अद्वैतदास, राधाविनोद, कुञ्ज बाबू, गोपाल बाबू इत्यादि दस पन्द्रह लोग उनके चारों ओर बैठे नानारूप उपासनातत्व श्रवण कर रहे थे। गोविन्द दादा, प्यारी बाबू, राधाविनोद, अद्वैतदास, जयगोपाल प्रभृति कई लोग प्राय: सर्वदा शरीर से चादर लपेट कर उसका एक पल्ला सिर पर ओढ़े रहते। इसमें प्राय: सभी अल्पवयस्क थे। यद्यपि गोविन्द दादा और प्यारी बाबू की उम्र कुछ अधिक थी, फिर भी उन सबमें वे ठीक बालकवत् थे, और उनका व्यवहार भी उसी प्रकार का था। हम पहले ही कह चुके हैं कि चैतन्यदास की सेवा-शुश्रुषा करने से जयगोपाल ने उनकी कृपा लाभ की थी, जिसके कारण वह बहुत सेवाप्रिय था। बालक होते हुए भी उसके ऊपर रसोई करने, परोसने और बाबाजी महाशय की सेवा का भार सौंपा हुआ था। गोविन्द दादा और नवद्वीप दादा दोनों उसमें शक्ति संचार कर और उसे सेवा-शिक्षा प्रदान कर सेवा के अनुकूल बनाये रखते थे, यहाँ तक कि नवद्वीप दादा स्वयं सेवा ग्रहण कर उसे बतलाते थे कि किस प्रकार उनके जीवनधन बाबाजी महाशय की सेवा करनी चाहिये, किस समय उन्हें किस प्रकार की सेवा की आवश्यकता होती है और कौन-सा भाव उन्हें प्रिय है। जयगोपाल को कीर्तन से इतना प्रेम न था। उसका लक्ष्य केवल सेवा के प्रति था। उसके मन का भाव था कि वह सदा आश्रम में रह कर उनकी सेवा करे। बाबा महाशय को देखते ही न जाने उसके हृदय में कौन-से भाव का उदय होता था; परन्तु वह कभी मुख उठाकर नेत्रों की ओर नहीं देख सकता था और न उनसे कुछ कह ही सकता था। केवल नेत्रों से जल बहाया करता था। आँसू सदा ही उसके नेत्रों में डबडबाया करते थे। वह यदि किसी से कुछ कहता सुनता तो केवल गोविन्द दादा और नवद्वीप दादा से।

कोई नौ बजे का समय होगा। माधव पशुपालक (जगन्नाथ जी के श्रृंगारी पण्डा) जगन्नाथजी की चरण तुलसी, कण्ठमाला और स्नान-जल लेकर आये। उन्हें देखते ही बाबा महाशय और अन्यान्य सब लोगों ने दण्डवत् प्रणाम किया। चरण-तुलसी और कण्ठमाला लेकर बाबा महाशय ने पण्डाजी को अपने पास बिठाया। जयगोपाल पंखा कर रहा था। माधव पशुपालक ने बाबा महाशय से कहा, 'देखिये मैं जब इन लोगों को देखता हूँ, मुझे ऐसा बोध होता है कि यह सब व्रज की सखियाँ हैं'। मैं क्या कहूँ। एक दिन जगमोहन-कीर्तन के समय ये लोग घूम-घूमकर नृत्य कर रहे थे। मैंने उस समय धूप-पूजा करते हुए देखा कि ये सब घाघरा पहने हैं। मैंने सोचा 'आज बाबाजी महाशय इन्हें सखी वेश में सजाकर लाये हैं। आहा! कैसा सुन्दर भाव है।' मैं यह विचार कर ही रहा था कि उस समय जगन्नाथ जी की कण्ठमाला खिसक पड़ी। मैंने सोचा कि इसमें अवश्य कोई अपूर्व रहस्य है। भोग के पश्चात् वह माला आपको लाकर दी और आपने सम्भवत: इस बालक को या इसके समान किसी दूसरे बालक के हाथ में दी। उस दिन आपसे यह सब न कह सका। आज यह कहने के लिए ही आपके पास आया हूँ।' तब बाबाजी महाशय बोले 'आप लोग जगन्नाथ जी की अन्तरंग सखी हैं। आपकी कृपा से असम्भव भी सम्भव हो सकता है। आप इन लोगों को आशीर्वाद कीजिए, जिससे इनकी मनोवांछा पूर्ण हो।' उसी समय उन्होंने जयगोपाल को संकेत किया और जयगोपाल ने उनके चरण स्पर्श कर प्रणाम किया। आशीर्वाद देते हुए माधव पशुपालक ने कहा 'जगन्नाथ जी तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करें।' क्रमश: सबने इसी प्रकार प्रणाम किया और सबको आशीर्वाद कर पण्डा जी ने प्रस्थान किया। बाबा महाशय ने एक बालक से कहा 'खोल करताल ले आओ। आज राधारमण की मध्याह्न लीला का गान होगा।' वैसे ही खोल करताल आ गये। कुञ्ज बाबू से बोले 'कुञ्ज! गोष्ठलीला गान करो तो।' कुञ्ज बाबू ने गाना प्रारम्भ किया। श्रीराधारमण को भी उसी

समय गोष्ठवेश धारण कराया गया। गोष्ठ–गमन कीर्तन होते समय जैसे ही श्रीमती तुंगमणि मन्दिर पर खड़ी हैं, इस भाव के पद का कीर्तन होने लगा, वैसे ही जयगोपाल श्रीमती राधिका को एक चौकी के ऊपर बिठाकर सबका भावोद्दीपन करने लगा। कीर्तन में जिस–जिस भाव का वर्णन होता था, वह उसी प्रकार के वेशभूषा से ठाकुर जी को सुसज्जित करता था। ऐसा प्रतीत होता था कि लीला प्रकट रूप से हो रही है और सहचर–सहचरीगण कीर्तन–नर्तन कर रहे हैं। क्रमशः राधाकुण्ड में मिलन हुआ। राधारानी बायीं ओर बैठीं। जयगोपाल और अद्वैतदास दोनों ओर खड़े होकर पंखा करने लगे। राधाविनोद, किशोरीगोपाल और चार–पाँच लोग नृत्य कर रहे थे। बाबाजी महाशय राधाकुण्ड का वर्णन और उसके माहात्म्य का कीर्तन करने लगे। आनन्द की सीमा न रही। सब आत्महारा हो उन्मत्त भाव से नृत्य- कीर्तन कर रहे थे। कौन कहाँ गिरता और भाव में लोट–पोट होता इसका कुछ ठीक न था। जयगोपाल राधारमण जी के मन्दिर में भीतर बैठा पंखा झलते–झलते एक साँस रो रहा था। कीर्तन की धुन सुनकर बहुत–सी स्त्रियाँ भी वहाँ आ गई थीं। बाबा महाशय ने जैसे ही नत्य करना आरम्भ किया चारों ओर से उलुध्वनि होने लगी। इधर जयगोपाल राधारमण जी के निकट मूर्छित होकर पड़ा है। अद्वैत आदि के अनेक प्रयत्न करने पर भी उसे चेतना नहीं हो रही है। इसी समय बाबा महाराज नृत्य करते–करते राधारमण जी के निकट पहुँचे और जयगोपाल के कान में कुछ मन्त्र प्रदान किया। तुरन्त चैतन्य लाभकर जयगोपाल सिर पर चादर ओढ़ मन्दिर के एक कोने में जा बैठा और रोने लगा। बाबाजी महाशय बाहर आकर फिर कीर्तन में योग देने लगे। कीर्तन बड़े वेग से हो रहा था। उसी समय एक व्यक्ति ने एक साड़ी देकर कहा 'आप लोगों को इस समय एक साड़ी की आवश्यकता है न? मैं इसीलिए ले आया हूँ। कौन पहनेगा?' यह सुन सब अवाक्! नवद्वीप दादा ने जैसे ही बाबा महाशय को साड़ी दिखलाई, उन्होंने साड़ी सिर से लगाकर नवद्वीप को इशारा किया। नवद्वीप ने साड़ी राधारानी की प्रसादी कर बाबा महाशय की चादर के ऊपर लपेट सिर पर ओढ़ा दी चारों ओर भक्तगण 'जयराधे, जयराधे' कह नाचने लगे। बाबा महाशय का अंग पुलकावलि से सुसज्जित हो रहा था। लाल–लाल नेत्रों से जलधारा निकल कर उनके कपोलों को भिगो रही थी। वे भावगद्गद कण्ठ से प्रार्थना करते हुए न जाने क्या–क्या कह रहे थे। संगीगण प्रेम में मतवाले हो कीर्तन कर रहे थे और बाबाजी महाशय की उस भुवनमोहन मूर्ति के दर्शन कर नेत्रों को सार्थक कर रहे थे। इन्होंने कीर्तन में और भी अनेक बार साड़ी पहनी थी। किन्तु इस प्रकार का अपूर्व रूप और कभी देखने में नहीं आया था। ऐसा लगता था कि ये बाबा महाशय की मूर्ति ही नहीं है। साढ़े–चार बजे के समीप कीर्तन समाप्त कर नवद्वीप को कान में कुछ आदेश दिया। नवद्वीप ने भीतर जाकर जयगोपाल को वह साड़ी पहना दी। किसी और ने उसकी हाथों में तुलसी की माला बाँध दी। तब नवद्वीप ने उसके हाथ पकड़ कर बाबा महाशय के चरणों में समर्पित किया। बाबा महाशय भाव गद्गद कण्ठ से बोले 'राधारानी की कृपादत्त वस्तु जतन से रखना। आनन्द पाओगे। मेरे भाग्य में यह वस्तु नहीं थी। प्रभु ने तुम्हारे ऊपर कृपा की है। यह बड़े सुख की बात है। केवल वेश धारण कर लेने से ही न होगा। वेशोचित कार्य भी करना होगा। सखीभाव अंगीकार करने पर सम्पूर्ण आत्म–सुख विसर्जन करना होता है। निष्काम व्रजगोपियों के भाव, स्वभाव, इच्छा और अहंकार के अनुरूप हृदय को बनाकर साधन करने से वह अवस्था प्राप्त हो सकती है। सदा सखी भाव हृदय में धारण कर कायिक, वाचिक, मानसिक तीनों प्रकार से उसी के अनुरूप आचरण करना आवश्यक है। जब तक भावानुयायी स्वभाव का गठन नहीं हो जाता, वह भाव स्थायी नहीं रह सकता। स्वभाव गठन करने का प्रधान उपाय है सेवा। अर्थात् नित्य जानकर श्रीमूर्ति की कायिक, मानसिक और वाचिक सेवा करने से, प्राणीमात्र में श्रीगुरु का प्रकाश बोध करने से और वैष्णव मात्र को कृष्ण से अभिन्न समझ बिना किसी प्रकार का विचार किये सेवा करने से अभीष्ट वस्तु लाभ होगी,' इस प्रकार उपदेश देने लगे। नवद्वीप दादा ने पूछा 'इसका क्या नाम रखना होगा?'

बाबाजी—तुम्हारी सबकी क्या इच्छा है?

नवद्वीप—मेरी इच्छा है कि इसका नाम ललितादासी हो। सबने नवद्वीप दादा के प्रस्ताव का समर्थन किया और बाबा महाशय ने भी उसे स्वीकार किया। इसी समय से ललितादासी को कोई 'सखी बाबाजी', कोई 'बोउ' (बहू) बाबाजी, कोई 'दीदी', कोई 'माँ' कह कर पुकारने लगे। बाबाजी महाशय, नवद्वीप दादा, गोविन्द दादा इत्यादि ऐसी चेष्टा करने लगे, जिससे उसके भाव की पुष्टि हो।

काला कुञ्जदास

एक दिन बाबाजी महाशय प्रातःकृत्य समापन कर पंचतीर्थ स्नान करने के उद्देश्य से संगीगण को साथ ले कीर्तन करते-करते जगन्नाथदेव की बाहर से परिक्रमा कर मार्कण्डेय सरोवर पहुँचे। इनका स्वाभाविक नियम था कि किसी भी स्थान को जाते समय सपरिकर श्रीमन्महाप्रभु को आगे कर उनके पीछे-पीछे जाते। श्रीमन्महाप्रभु स्वरूप दामोदर से मार्कण्डेय सरोवर का माहात्म्य वर्णन कर रहे हैं, इस भाव से कुछ देर कीर्तन कर वे जगन्नाथ दर्शन के लिए गये। मन्दिर में प्रवेश कर रोहिणी कुण्ड के जल का स्पर्श कर जगन्नाथ दर्शन किये और फिर समुद्र की ओर चल दिये। भावावेश में महाप्रभु यमुना के भ्रम से समुद्र स्नान करने जा रहे हैं, इस भाव का कीर्तन करते-करते समुद्र-स्नान कर चक्र-तीर्थ की ओर गमन किया। चक्रतीर्थ में भी महाप्रभु भक्तों से चक्रतीर्थ का वर्णन कर रहे हैं, इस भाव का कीर्तन कर इन्द्रद्युम्न सरोवर को गये। वहाँ महाप्रभु रामानन्दराय से इन्द्रद्युम्न सरोवर के सम्बन्ध में पूछते हैं और रामानन्द राय यथाविधि उसका वर्णन करते हैं, इस भाव से सम्बन्धित कीर्तन करते-करते प्रेमानन्दपूर्वक वहाँ स्नान कर जगन्नाथ दर्शन को चल दिये।

आज लाला बाबू के क्षेत्र के मैनेजर प्यारी बाबू ने इन सबको महाप्रसाद पाने के लिये निमन्त्रित कर रखा है। इस कारण जगन्नाथ दर्शन कर दस बजे ये लोग लाला बाबू के क्षेत्र में पहुँचे। बाबा महाशय का कीर्तन सुनने के लिए बहुत लोग प्रतीक्षा कर रहे थे। कुछ देर उद्दण्ड कीर्तन कर बाबा महाशय 'अक्रोध परमानन्द नित्यानन्दराय। अभिमानशून्य निताइ नगरे बेड़ाय' इस पद का गान करने लगे। सब लोग प्रेमानन्द में विभोर होकर नृत्य कर रहे थे। इसी समय कोई तीस वर्ष की आयु का एक भागलपुर-निवासी ब्राह्मण वहाँ आकर नृत्य करने लगा। ब्राह्मण बहुत रोगी था। उसके दाहिने हाथ में डण्डा, बायें हाथ में घण्ठी और कन्धे पर कम्बल था। वह इस प्रकार विभोर होकर नाचने लगा कि घण्टी और कम्बल भूमि पर गिर पड़े, फिर भी उसे कुछ पता न चला। दोनों नेत्रों से अविरल आँसुओं की धारा बह कर उसके वक्षःस्थल को भिगो रही थी। उसका भाव और गति देखकर जान पड़ा कि उसकी श्रवण शक्ति कुछ कम थी। कुछ देर अविश्रान्त भाव से नाचते-नाचते अचेत हो भूमि पर गिर पड़ा। सब लोग उसे चारों ओर से घेर कर नृत्य करने लगे। जब देखा कि किसी प्रकार उसकी अचेतना भंग नहीं हो रही है तो बाबा महाशय ने उसके कान में नाम सुनाने का आदेश दिया। एक व्यक्ति ऊँचे स्वर से उसके कान में नाम उच्चारण करने लगा। प्यारी बाबू ने कहा 'यह व्यक्ति कई दिन से यहाँ है। बिलकुल ही बहरा है। इसके कान के आगे ढोल पीटने से भी शब्द सुनाई नहीं पड़ता। नाम सुनाने से क्या होगा?' यह सुन बाबा ने ब्राह्मण के निकट बैठकर जैसे ही उसकी छाती पर बायाँ हाथ रखकर 'जय निताइ' कहा, वैसे ही उसका सर्वांग रोमांचित हो उठा; तब बाबा महाशय उसके कान में मन्त्र प्रदान करने लगे। एक-एक मन्त्रात्मक वर्ण के ब्राह्मण के कान में प्रवेश करने के साथ उसका देह कम्पायमान होता था। क्रमशः उसके नेत्र और मुख प्रफुल्लित होने लगे। मन्त्र समाप्त होते ही वह अति विस्मित भाव से 'जय निताइ' कहकर नाचने लगा। उसके मुख से 'निताइ' नाम सुनकर सब अवाक् रह गये। बाबाजी महाशय ने उसे हृदय से लगा लिया। वह रोते-रोते बोला 'गुरुजी और एक बार बोल दीजिये। दो एक बात पाशर गइल बा।' यह सुनकर सब समझ गये कि ब्राह्मण ने मन्त्र सुन लिया है। बाबा महाशय ने और एक बार उसके कान में मन्त्र पढ़ दिया। क्रमशः कीर्तन समाप्त कर सब प्रसाद पाने लगे। ब्राह्मण से जब प्रसाद पाने के लिए अनुरोध किया गया, वह

असम्मति प्रकाश करता हुआ हाथ जोड़ कर कुछ दूर खड़ा हो गया और अश्रुओं की अविरल धार विसर्जन करने लगा। यथासमय सबका प्रसाद पाना समाप्त होने पर ब्राह्मण बाबा महाशय की पत्तल पर जा बैठा। उसका भक्ति-विश्वास देख सब आश्चर्यान्वित हो गये। इसी समय से ब्राह्मण बाबा महाशय के साथ रहने लगा। वह अंग्रेजी, बंगला और हिन्दी जानता था। कुछ दिन पश्चात् बाबा महाशय ने उसे भेक देकर उसका नाम कुञ्जदास रखा। क्रमश: उसका अनुराग और निष्ठा देख उसे जगन्नाथदेव के मन्दिर के भीतर श्रीमन्महाप्रभु के चरण-चिह्न की सेवा में नियुक्त किया। सब लोग उसे काला कुञ्जदास कह कर पुकारते थे। काला कुञ्जदास अवकाश पाते ही गुरुदेव की सेवा में किसी न किसी रूप से नियुक्त रहते। किसी-किसी दिन सारी रात बीतने पर भी छोड़कर शयन न करते। गुरुसेवा में इस प्रकार की निष्ठा बहुत कम देखने में आती है।

रास-कीर्तन

एक दिन रात्रि आठ बजे के लगभग बाबा महाशय ने परिकरों को बुलाकर कहा 'आज सबको सखीवेश धारण कर रास-कीर्तन करना होगा।' उनके आदेश से गोविन्ददास और ललितादासी ने राधाविनोद को राधारानी और करुणाकर दास को कृष्ण वेश धारण कराया। गोपाल बाबू, कुञ्ज बाबू और बलराम बाबू आदि गृहस्थ भक्तों ने निज-निज परिधेय वस्त्र और बाबाजी लोगों ने ललितादासी की साड़ी पहनी। किसी-किसी ने अपनी चादर ही बाँध कर गोपी वेश बना लिया। शीतलदास सदा सख्य रस में निमग्न रहता। वह किसी प्रकार भी स्त्रीवेश धारण करने को तैयार न हुआ। बाबा महाशय ने शीतल की रसनिष्ठा की परीक्षा के हेतु एक से कहा 'उसे जबरदस्ती साड़ी पहना दो, नहीं तो रास में प्रवेश मत करने दो।' शीतल बोला 'मैं कभी स्त्री नहीं बनुँगा, कृष्ण मिलें या न मिलें।' गोविन्द दादा ने जैसे ही कहा 'जबरदस्ती साड़ी पहना देंगे' वह भय से भाग गया। बाबा महाशय उसकी रस-निष्ठा देख बहुत प्रसन्न हुए।

इधर अभिसार कीर्तन आरम्भ हो गया। बाबा महाशय ने 'जय जय जय विजयि कुंजे कुञ्जरवर गामिनी' पद गान द्वारा राधागोविन्द का मिलन करा रास-कीर्तन प्रारम्भ किया, राधागोविन्द और सखीवेशधारी बाबाजीगण कीर्तन के भावानुसार हाव-भाव प्रकाश कर बाबा महाशय के आनन्द की वृद्धि करने लगे। कौन कह सकता था कि नित्य-लीला प्रकट नहीं है? हृदय में गोपी-भाव की स्फूर्ति के कारण सभी अश्रु-कम्प-पुलकादि सात्विक भूषणों से विभूषित हो रहे थे। कैसा अपूर्व दृश्य था! बाबा महाशय यूथेश्वरी बने थे और संगीगण सब अनुगता गोपी। कोई चामर से सेवा कर रहा था, कोई पंखे से, कोई पान खिलाने के उद्देश्य से यूथेश्वरी मुखापेक्षी था। समयानुरूप सेवा का आदेश पाकर सब अपने को धन्य समझ रहे थे। सखियाँ नृत्य कौशल में कृष्ण को पराजित कर उनका चूड़ा और वंशी निकाल उन्हें लज्जित कर रही थीं। कृष्णचन्द्र अपने छलबल और कौशल से अपना दम्भ रखने का प्रयत्न कर रहे थे। उस समय सखीगण दो दलों में बंट कर कीर्तन द्वारा अपने-अपने दल की पुष्टि करने लगीं। विशाखा के दल की गोपियाँ श्यामसुन्दर का गुणगान कर राधिकापक्षावलम्बिनी ललिता के दल की गोपियों को परास्त करने की चेष्टा कर रही थीं और ललिता के दल की गोपियाँ श्रीमती राधिका का गुणगान कर कृष्ण पक्षावम्बिनी विशाखा के दल की गोपियों को परास्त करने की चेष्टा कर रही थीं। कोई सहज में हार मानने को न थी। अन्त में एक दल -'राइ जय जय राधे राधे' और दूसरा दल 'श्याम जय जय राधे राधे' गाते-गाते प्रेमावेश में नृत्य करने लगा। बहुत समय तक इस प्रकार के वादानुवाद का आनन्द चलता रहा। तब बाबा महाशय पद-गान में दोनों दलों को एकत्र कर 'जय राधा राधारमण' कह नृत्य करने लगे। संगीगण भी उसी भाव से नृत्य करने लगे। इस आनन्दमय कथा का कौन वर्णन कर सकता है? वह लीलामाधुरी, वह कीर्तनानन्द और वह भाव-प्रेम केवल अनुभवगम्य है। जिसे कृपामय ने कृपाकर उस लीला में प्रवेश कराया था उसी को वह प्रत्यक्ष गोचर थी।

इस प्रकार परमानन्दपूर्वक रात्रि शेष होने को आई। बाबा महाशय ने अपने शयनगृह में निभृत निकुञ्ज की कल्पना कर उसमें राधागोविन्द को प्रवेश कराया। अन्यान्य सब उस रासमण्डली में विश्राम करने लगे। थोड़ी देर बाद फिर कुञ्ज-भंग कीर्तन प्रारम्भ हुआ। पीछे सूर्योदय के साथ रंग-भंग होने के भय से सब दरवाजे बन्द कर दिये गये। कुञ्ज-भंग के पश्चात् कृष्ण को नन्दालय और श्रीमती को जावट भेजकर कीर्तन समाप्त किया। परन्तु उस समय भी सबके सब उस अप्राकृत आनन्द के नशे में चूर हो रहे थे। सब बाह्यस्मृति -रहित हो परस्पर कह रहे थे 'आहा! इतने अल्प समय में ही रात्रि समाप्त हो गई। न आशा पूर्ण हुई, न मन ही तृप्त हुआ। भगवान् यदि कृपा कर इस रात्रि को और बड़ा कर देते तब शायद आशा पूर्ण होती और कुछ आनन्द का उपभोग भी होता। कैसा आश्चर्य! साधारणतया तो ऐसा लगता कि रात्रि शेष होना ही नहीं चाहती, और आज जैसे देखते-देखते ही सबेरा हो गया। सुख का समय बहुत जल्दी बीत जाता है।' इस प्रकार की आलोचना करते-करते प्रातःकृत्यादि करने लगे।

बालकों का सखावेश

एक दिन सबेरे बाबा महाशय बैठे थे। उसी समय परशुराम कपड़ेवाला पाँच जोड़े टसर की चादर लेकर आया और उन्हें दण्डवत् की। बाबा महाशय ने पूछा 'परशु! क्या लाये हो?'

परशु—कुछ जोड़े टसर की चादरें लाया हूँ।

बाबाजी—कितने जोड़े हैं, देखें।

परशु ने गठरी खोलकर कई जोड़े चादर बाबा महाशय के हाथ पर रख दिये। बाबा महाशय ने पूछा, 'क्या दाम हैं?'

परशु—आठ रुपये जोड़ा।

बाबाजी—और कितने जोड़े तुम्हारे पास हैं?

परशु—घर पर चार जोड़े और हैं।

बाबाजी—अच्छा वह भी ले आओ।

परशुराम ने शीघ्रतापूर्वक घर जा और चार जोड़े लाकर बाबा महाशय के हाथ पर रख दिये। बाबा महाशय ने अद्वैत, राधाविनोद, करुणाकर, शीतल, ब्रज, गोकुल, किशोरी, गोपाल और बाहर के दो बालकों को चादरें पिठवस्त्र की भाँति पहनाकर बाँध दीं और सबके ललाट पर गोपीचन्दन से नाना प्रकार तिलक कर एक-एक के कान में श्रीदाम, सुदाम, दाम, बसुदाम, बलराम, कृष्ण, सुबल, मधु-मंगल आदि एक-एक नाम सुना दिया। नाम सुनते ही वे सब तदनुकूल भाव से आविष्ट हो नाचने लगे। बाबा महाशय ने गान आरम्भ किया—

"आय रे आय, जीवन कानाइ जाइ गोचारने।
(आमरा) हेले दुले नेचे-नेचे खेलब रे भाइ तोर सने।।
(कानाइ) तुइ ना गेले, वेनु ना बाजाइले,
धवली श्यामली आदि के राखे गहन वने।
(ओ से) जमुनार कूले, केलि कदम्ब मूले,
(तोरे) मन साधे राखालराजा साजाइब जतने।।
(आमरा) सकले मिले, वने वनफल तुले,
खेते-खेते मिठ हले दिब रे तोर वदने।
(डाकछे) दादा बलराम, आयरे नव घनश्याम,
श्रीदाम सुदाम दाम बसुदाम चेये आछे तोर पाने।।

इत्यादि

—प्राण प्यारे कन्हैया! आ चलें गाय चराने। अरे भइया, हम सब तेरे साथ झूम-झूम कर और नाच-नाच कर खेलेंगे। यदि तू न जायगा और बाँसुरी न बजायगा तो धवली, श्यामली आदि की कौन रखवाली कर पाएगा उस गहन वन में? जमुना किनारे केलिकदम्ब के नीचे हम तुझे जी भर के राखालराजा सजायँगे। हम सब मिलकर वनफल तोड़ेंगे और खाते-खाते जो मीठे लगेंगे तेरे मुख में देंगे। ओ रे नव घनश्याम, शीघ्र आ, तुझे बलराम दादा बुला रहे हैं, और श्रीदाम, सुदाम, दाम, वसुदाम तेरी ओर दृष्टि लगाये हुए हैं।

सब त्रिभंग-भंगी के साथ पैर पर पैर रख नाचते-नाचते राजपथ होकर जगन्नाथ जी के मन्दिर गये। जगमोहन में और भी आनन्द होने लगा। बाबा महाशय कीर्तन में यमुनातट पर सखागण के खेल-कूद, वन-भोजन, जल-केलि इत्यादि का इस प्रकार वर्णन करने लगे कि उसे सुन घोर पाखण्डियों का हृदय भी ब्रज के विशुद्ध सख्य रस में डूब जाता। सखा-वेशधारी

बालकों का तो कहना ही क्या! वृद्धा स्त्रियाँ कीर्तन सुन एवं इनकी भावभंगी देख वात्सल्य रस में निमग्न हो गईं। कुछ देर में कीर्तन समाप्त कर जैसे ही सब बैठे, भक्तों ने नाना प्रकार के प्रसाद लाकर उपस्थित किये। बाबा महाशय सबको घेरे में बिठाकर वन-भोजन लीला का उद्दीपन करने लगे। महाप्रसाद पाने के बाद कुछ विश्राम कर तीसरे पहर उतर-गोष्ठ कीर्तन करते-करते सब आश्रम पहुँचे।

श्रीश्रीजगन्नाथदेव का पहिलभोग

देखते-देखते पौष मास आ पहुँचा। जगन्नाथ जी के पहिलभोग की लीला प्रारम्भ हुई । इस समय जगन्नाथ जी की वात्सल्य सेवा होती है। रात्रि में चार बजे के पहले ही मंगल आरति के पश्चात् नाना प्रकार का पीठापाना भोग लगता है। इस भोग का नाम है पहिलभोग। इस समय जितना कुछ भी भोगराग होता है वह सबेरे तड़के ही हो जाता है। बाबा महाशय ने गोकुलदास को नियमित रूप से जगन्नाथ जी की मंगल आरति दर्शन और कीर्तन करने का आदेश किया। किसी-किसी दिन स्वयं ही कीर्तन लेकर जाते। कुञ्जदास को आदेश किया 'तुम प्रतिदिन राधारमण कुञ्ज से नाम के साथ साष्टांग दण्डवत् करते-करते जगन्नाथदेव के मन्दिर के बाहर परिक्रमा कर जगन्नाथ जी के दर्शन किया करना।' इस समय गोविन्द दादा के यत्न और आग्रह से बहुत थोड़े परिमाण में खिचड़ी पका कर ठाकुर जी को भोग लगाया जाने लगा। दो-चार दिन बाद बाबा महाशय ने गोविन्द दादा से कहा 'देख गोविन्द! यदि पौष मास में ठाकुर जी को खिचड़ी का ही भोग लगाना उपयुक्त है तो ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये, जिससे थोड़ा-थोड़ा खिचड़ी प्रसाद सभी भक्तों को मिल सके।' यह सुन गोविन्द दादा प्रसन्न होकर बाबा महाशय की आज्ञानुरूप व्यवस्था करने लगे। इस प्रकार कई दिन बीते। एक दिन बाबा महाशय गोविन्द दादा से बोले 'देख, मेरी बड़ी इच्छा है कि एक दिन बंगाली पीठे का ठाकुर जी को भोग लगाकर उड़ीसावासी लोगों को प्रसाद सेवन कराया जाय।' गोविन्द दादा ने पूछा 'कौन-कौन सा पीठा किस परिमाण में तैयार करना होगा?'

बाबाजी—बताओ, तुम कौन-कौन सा पीठा तैयार कर सकते हो?

उस समय रसोई का भार ललितादासी पर था। गोविन्द दादा ने जब उन्हें बुलाकर पूछा तो वे बोलीं, 'मैं तो कुछ नहीं जानती। आप जैसी आज्ञा दें वैसा करने को प्रस्तुत हूँ।'

बाबाजी—चोषी पीठा बना सकेगी?

गोविन्द—उसमें बहुत समय लगेगा।

बाबाजी—तो आज दूध का पाटीजोड़ा बनाओ। पीछे देखा जायगा।

भिक्षा द्रव्यादि संग्रह करने का भार गोविन्द-दादा और नवद्वीप दादा पर था। दोनों प्रसन्नता-पूर्वक भिक्षा के लिए निकले। चार बजे के करीब एक मन दूध और उसी के अनुसार और चीजें लेकर दोनों आश्रम पहुँचे। बाबा महाशय इन लोगों को थका हुआ देख स्वयं निमन्त्रण देने को बाहर निकले। रात में आठ बजे बहुत से लोगों को निमन्त्रण कर लौट आये। तब तक गोविन्द दादा ने पीठा तैयार करवा लिया। दूसरे दिन और दूसरे बहुत-से पदार्थ प्रस्तुत कर ठाकुर को भोग लगाया गया। लगभग एक बजे निमन्त्रित लोगों के साथ पीठा महोत्सव सम्पन्न हुआ।

गोकुल दादा रोज रात को एक बजे नरेन्द्र सरोवर में स्नान कर नाम करते-करते श्रीजगन्नाथदेव की मंगल आरति के दर्शन करने के पश्चात् दस बजे लौटते। महीना खत्म होने को था। एक दिन आठ बजे के लगभग अद्वैतदास आकर बाबाजी महाशय से बोले 'गोकुल दादा को भयानक सर्दी बुखार हो गया है, आज मंगल आरति के दर्शन के लिए नहीं जा पाएँगे।' यह सुनकर बाबा महाशय क्रुद्ध भाव से बोले 'यह सब मुझे पहले ही क्यों नहीं बताया? नियम भंग करने से बड़ा अन्याय होता है।' यह कह कर एक दूसरे आदमी को मन्दिर भेज-दिया। गोकुल को भयानक ज्वर था। इन दिनों ये लोग पुराना डाकघर छोड़ हरीश बाबू के मकान में आ गये थे। बाबाजी महाशय नीचे की एक कोठरी में रहते थे। साथियों में से कुछ नीचे दूसरी कोठरियों में और कुछ ऊपर की मंजिल पर रहते थे।

गोकुल दादा को ऊपर की मंजिल से नीचे की एक कोठरी में लाना था। ज्वर के साथ-साथ उनमें चित्तभ्रम के कुछ लक्षण भी दिखाई देने लगे थे। दस बजे तुलसी परिक्रमा करने का हठ करने लगे तो बाबाजी महाशय बोले 'अच्छी बात है, दो आदमी पकड़ कर इन्हें परिक्रमा करा दो।' किन्तु गोकुल दादा उनकी बात न मान कर बोले 'आपका आदेश पाकर बिना किसी की सहायता के मैं स्वयं ही परिक्रमा कर लूँगा।' यह कहकर बिना किसी की सहायता के एक मात्र गुरुदेव के आदेश के बल से स्वयं तुलसी परिक्रमा की। फिर सबको यथायोग्य प्रणाम-वन्दना कर और वैष्णव-अधरामृत पान कर आकर लेट गये। रात में लगभग आठ बजे बाबाजी महाशय से बोले 'मुझे एक रास-कीर्तन सुना दीजिये।' बाबाजी महाशय ने कुञ्ज बाबू और गोपाल बाबू से कीर्तन करने को कहा। सब रूप-अभिसार एवं रास-कीर्तन करने लगे। गोकुल दादा कीर्तन के भावों के अनुरूप हाथ, मुख और आँखों की भंगी प्रकट करने लगे। दूसरे लोग इसे ज्वर का विकार समझे। पर वे बार-बार बाबाजी महाशय का हाथ पकड़ कर कहने लगे—'यह देखो, कैसी सुन्दर लीला है, कैसी अप्राकृत शोभा है! आहा, चामर आदि भी कैसे अप्राकृत हैं। अपरूप नृत्यभंगी है। कैसी मधुर स्वर-लहरी है। मनोहर सुगन्ध से चारों दिशाएँ आमोदित हैं। अलौकिक सौन्दर्य का दर्शन कर पशु-पक्षी, तरु-लता सभी विभोर हो रहे हैं।' यह सुन बाबाजी महाशय गद्गद कण्ठ से कहने लगे 'गोकुल! कहाँ, मैं तो कुछ भी नहीं देख रहा।'

गोकुल बोले—'क्या यह छल करने का समय है? आप ही तो इन सबका परिचय करा रहे हैं। ओह! कैसी ज्योति है। आँखों में चकाचौंध हो रही है।' इसी प्रकार की प्रत्यक्ष लीला-दर्शनसूचक नाना प्रकार की बातें सुन सभी विस्मित हो गये। अपूर्व कीर्तनानन्द! किसी को भी बाह्यस्मृति नहीं। रात्रि लगभग बारह बजे रास समाप्त होने पर और राधागोविन्द के विलास-कुञ्ज में प्रवेश करने पर सेवापरा सखी- मंजरीगण अपनी-अपनी सेवा में नियुक्त हो गयीं, इस भाव के पद का गान कर जिस समय वे लोग 'जय राधारमण' कहकर जय बोलने लगे, गोकुल दादा 'जय राधे' कह विस्मित भाव से दाहिने हाथ की तर्जनी को ऊपर की ओर हिलाते हुए जैसे कुछ निरीक्षण करने लगे। नेत्र निर्निमेष, निश्चल, निस्पन्द पर मुख पर एक अप्राकृत हँसी। सर्वांग पुलकित! अनिर्वचनीय! गोकुल दादा की तात्कालिक अवस्था को देख कोई यह नहीं समझ सका कि वे चिरकाल के लिए दृश्य जगत् की स्थूल देह परित्याग कर चिन्मय सूक्ष्म देह से नित्य लीला में प्रवेश कर गये। सभी विस्मित भाव से उनके मुख की ओर देख 'जय राधारमण' कहने लगे। गोकुल दादा की पुतलियाँ निस्पन्द थीं। वे महाभावमयी लीला में प्रवेश कर महासमाधि को प्राप्त कर चुके थे। धन्य गुरु-भक्ति! धन्य गुरु-वाक्य विश्वास! धन्य गुरुनिष्ठा! कभी किसी ने गोकुल दादा को माला-जप या आह्निक-पूजा करते नहीं देखा था। गुरु-आज्ञा का पालन करना ही उनका एक मात्र याजन था। जो साधन-भजन, ध्यान, जप, पूजा, स्मरण-मनन के बिना ही केवल गुरु-भक्ति के बल से और गुरुदेव की कृपा से उच्च गति पा जाते हैं, गोकुल दादा उनका उज्ज्वल दृष्टान्त हैं। उस रात सबने गोकुल दादा को घेर कर शयन किया। उन्हें उस प्रकार लेटा देख कोई नहीं जान सकता था कि वे मर गये हैं। दूसरे दिन सुबह बाबाजी महाशय के आदेश से सभी नाम-कीर्तन करते-करते गोकुल दादा की देह को समुद्र तट पर ले गये और यथाविधि अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न की।'

झाँजपीठामठ-प्राप्ति

एक दिन स्थानीय मुंसिफ बाबू किशोरीमोहन सेन और डिप्टी मैजिस्ट्रेट बाबू जगच्चन्द्र राय कुछ लोगों को साथ ले बाबाजी महाशय के पास आये। अनेक प्रकार की तत्त्वालोचना के पश्चात् किशोरी बाबू बाबाजी महाशय से बोले 'देखिए, आप लोगों का इस प्रकार अनेक स्थानों पर रहना हमें बड़ा असुविधा-जनक प्रतीत होता है। एक मठ हो तो कैसा रहे? दूसरों के स्थान पर रहने से एक प्रकार की पराधीनता रहती है, अपना स्थान हो तो स्वाधीनता रहे।'

बाबाजी—देखो किशोरी! जीव मात्र ही पराधीन है। जीव की स्वाधीनता ही तो अनिष्ट का कारण है।

फिर भी निताइचाँद ने जिस अवस्था में रखा है, उसे स्वाधीन ही कहना चाहिये पराधीन नहीं, क्योंकि यदि इसी समय किसी अन्य स्थान पर चले जाने का मन हो तो किसी प्रकार के बन्दोबस्त की जरूरत नहीं। जो अवस्था तुम बतला रहे हो, विचार कर देखो तो वही पराधीनता है; क्योंकि एक निर्दिष्ट निवास स्थान होने से कहीं जाते समय उसका बन्दोबस्त किये बिना जाना सम्भव नहीं।

किशोरी—आपने ही तो कहा था 'सेवा साधक-रूपेण सिद्धरूपेण चात्र हि।' सेवा धर्म ही सर्वोत्कृष्ट धर्म है। सेवा द्वारा भगवान् का जो रूप सहज प्राप्त हो जाता है वह अन्य किसी साधन द्वारा नहीं होता। इसी से कहता हूँ कि इस स्थान पर झाँजपीटा-मठ नामक एक मठ था। कागज-पत्रों से ज्ञात हुआ है कि श्रीनरोत्तम ठाकुर महाशय के शिष्य सेवादास नामक एक सिद्ध बाबाजी थे। उन्होंने ठाकुर महाशय के आदेश से श्रीश्रीराधाकान्तविग्रह-सेवा की स्थापना की थी। तभी से उनकी शिष्य-प्रशिष्य परम्परा में सेवा चली आ रही थी। इस मठ का एक दूसरा नाम विरक्त सिद्धाश्रम भी है। इसके अधिकारी कृष्णदास के परलोकवास के बाद इसका कोई वारिस नहीं रहा। इसलिए इसके श्रीविग्रह और अन्याय अस्थावर सम्पत्ति थाने में हैं। मुझे लगता है कि कुछ दिन और चेष्टा न की गई तो सरकार उन पर अपना अधिकार कर लेगी। आपकी अनुमति पाकर इस सम्बन्ध में मैं कुछ चेष्टा कर सकता हूँ। कृपा कर अनुमति प्रदान करें।

बाबाजी—भैया, मैं तो पूर्ण आसक्त हूँ, मुझे विरक्त आश्रम में न ले जाना ही अच्छा होगा। तुमने जो सेवाधर्म की बात कही सो वास्तविक सेवा को छोड़ पूर्णरूप से भगवत् प्राप्ति का और कोई उपाय नहीं है, अधिकारी होना चाहिए। जीव की त्रिविध अवस्था है—आसक्ति, विरक्ति और अनासक्ति। धन, जन, देह, मन, मर्यादा, पूजा, प्रतिष्ठा इत्यादि के प्रति गाढ़ ममता को आसक्ति कहते हैं। इसी के प्रभाव से जीव पाप को पुण्य, अधर्म को धर्म और असत्य को सत्य समझ मोह-गर्त में गिर जाता है और वासनायुक्त देह धारण कर अनन्तकाल तक स्वर्ग और नरक-रूप संसार का भोग करता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने इसी आसक्ति का परित्याग करने के लिए अर्जुन से गीता में कहा है—

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः।।

अन्यत्र कहा है—

भोगमूलं सदासक्तिः।

इसी आसक्ति को उत्पन्न करने वाली समस्त वस्तुओं को छोड़ निर्जन वन में निष्किंचन भाव से वास करने का नाम है विरक्ति। विरक्ति-याजन की जगत् को शिक्षा देने के लिए ही श्रीसनातन गोस्वामी ने एक-एक वृक्ष के नीचे एक-एक दिन वास किया था, नित्य वन के साग-पात का अलोना भोग ठाकुर को लगा स्वयं उसका सेवन किया था, ठाकुर मदनमोहन के साक्षात् प्रकट होकर नमक-माँगने पर भी उनके वाक्य की अवहेलना की थी, दिन रात में छप्पन घड़ी स्मरण और चार घड़ी विश्रामादि किया था, यहाँ तक कि वैराग्य की रक्षा के लिए मदनमोहन का प्रसाद छोड़ व्रजवासियों के घर-घर मधुकरी माँगकर खायी थी, जाड़े में अपने भोटिया कम्बल के बदले फटी-पुरानी कंथा धारण कर परमानन्दपूर्वक कृष्ण-भजन किया था।

अब अनासक्ति। कर्म करते हुए भी फल में आसक्ति का परित्याग, विचरणशील इन्द्रियों के विषयों के ग्रहण में अनिच्छा और जल-कमलवत् विषयों में निर्लिप्त भाव से अवस्था करने का नाम ही अनासक्ति है। यह अवस्था अत्यन्त कठिन है। इसके बिना सेवा करना सम्भव नहीं। इस सम्बन्ध में भगवान् अर्जुन से कहते हैं—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

★ ★ ★ ★ ★

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत् तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।

इसी को कहते हैं आत्मसमर्पण। अधिकारी व्यक्ति ही कह सकते हैं 'त्वया हृषीकेश हृदिस्थितेन यथा नियुक्तोस्मि तथा करोमि'-हम नट हैं, भगवान् सूत्रधार; वे जिस प्रकार नचाते हैं हम उसी प्रकार नाचते हैं। ये लोग पाप-पुण्य के भागी नहीं होते, सुख-दुःख, लाभ-

अलाभ, मान-अपमान, जय-पराजय सर्वत्र इनका समभाव रहता है। इस अवस्था को प्राप्त व्यक्ति के विषय में शास्त्र कहते हैं 'विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः।' अनासक्ति के बिना सेवा करने से अवनति छोड़ उन्नति की आशा नहीं। आसक्ति रहते आत्म-सुख-लिप्सा का त्याग सम्भव नहीं, आत्मसुख रहते सेवा सम्भव नहीं।

इस प्रकार अपना दैन्यभाव दिखाते हुए अनेक प्रकार की बातें करने लगे। किन्तु किशोरी बाबू का मन प्रसन्न न हुआ। वे विषण्ण भाव से प्रणाम कर चले गये। दूसरे भक्तों ने भी यथास्थान प्रस्थान किया।

दिन बीतते गये। एक दिन कोई दस बजे बाबाजी महाशय सदलबल नामकीर्तन करते-करते राधाकान्त मठ में प्रसाद पाने जा रहे थे। उसी समय किशोरी बाबू और जगत बाबू एक गाड़ी से ऑफिस जा रहे थे। कीर्तन सुनते ही उन्होंने गाड़ी से उतर कर बाबाजी महाशय को प्रणाम किया। बाबाजी महाशय ने मृदु मुसकान के साथ पूछा 'अच्छे हो ?'

किशोरी—आपकी कृपा से शरीर अच्छा है, किन्तु मन में एक बड़ा सन्देह उत्पन्न हो गया है।

बाबाजी—क्या सन्देह है? यदि इस समय कहने योग्य हो तो कहो।

किशोरी—अच्छा, श्रीमूर्ति और भगवान् में क्या भेद है?

बाबाजी—श्रीमूर्ति और भगवान् में जरा भेद नहीं। भेदबुद्धि करने से नरकगामी होना पड़ता है।

किशोरी—राधागोविन्द के साथ आपका क्या सम्बन्ध है?

बाबाजी—हम राधारानी की दासी हैं, परिणामतः श्रीराधा के प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण हमारे भी प्राणवल्लभ हैं।

किशोरी—यह आप केवल मुख से कह रहे हैं, हृदय से नहीं। क्योंकि आप तो स्नानादि कर प्रसाद पाने जा रहे हैं और आपके प्राणवल्लभ आज एक मास से उपवास कर रहे हैं। परसों नीलाम होकर किसके हाथ में पहुँचेंगे कौन जाने। अधिक क्या कहूँ, उस दृश्य को देख पाषाण-हृदय भी गल जायेंगे।

इस बार बाबा महाशय धैर्य धारण न कर सके। बालक की तरह रोते-रोते बोले—'भाई, मेरी क्या क्षमता है? मैं क्या करूँ?'

किशोरी—मेरे रहते आपको कुछ भी करना नहीं है। केवल आदेश देने की देर है।

बाबाजी—अच्छा जो तुम्हें ठीक लगे करो।

यह सुन किशोरी बाबू प्रसन्न मन बाबा महाशय के चरणों में प्रणाम कर ऑफिस चले गये। ये भी कीर्तन करते-करते राधाकान्त मठ पहुँचे। किशोरी बाबू ने जल्दी से ऑफिस का कार्य समाप्त कर मैजिस्ट्रेट साहब को इस भाव की एक दरख्वास्त दी कि हिन्दुओं के उपास्य देवता राधागोविन्द विग्रह कई दिनों से थाने में हैं, उनकी सेवा-पूजा बन्द है। इसलिए जमानत लेकर उन्हें मुक्त किया जाय।

उस दिन शनिवार था। समय निकल चुकने के कारण दरख्वास्त पेश न हो सकी। दूसरे दिन कचहरी बन्द थी, कचहरी का चपरासी नहीं था। किशोरी बाबू स्वयं मैजिस्ट्रेट की कोठी पर गये। पता लगा कि साहब कटक गये हैं। उनके पद का चार्ज डिप्टी मैजिस्ट्रेट जगत्बाबू के पास है। उसी समय जगत्बाबू के घर जा वहाँ से कटक मैजिस्ट्रेट साहब को तार किया।

इधर बाबाजी महाशय कीर्तन सहित झाँजपीटा मठ पहुँचे। देखा कि मठ की अवस्था अत्यन्त शोचनीय है। ठाकुरमन्दिर बिना मरम्मत के पड़ा है। चारों ओर ऐसा उजाड़ है कि ठाकुर की तो बात ही क्या, मनुष्य के निवास के लिए भी वह स्थान अनुपयुक्त है। कीर्तन के लिए खड़े होने तक को स्थान नहीं। बाबाजी महाशय ने बड़ी मुश्किल से एक स्थान पर 'हरि लूट' कराकर कीर्तन समाप्त किया और मकान की सफाई का इन्तजाम करने लगे। बलराम पर समस्त कार्यभार डाल दिया। उन्होंने बहुत-से आदमियों को लगाकर श्रीमन्दिर और भोग-मन्दिर इत्यादि की मरम्मत और मकान की सफाई करवा उसे गोबर से शुद्ध करवा दिया। काले रंग का एक बूढ़ा कुत्ता मठ के उत्तर की ओर अवस्थित एक टूटी दीवार पर से यह सब देख रहा था। जब सफाई हो चुकी, वह दीवार से उतर कर बाबाजी

महाशय के चरणों में लोटने लगा। पड़ोसियों ने बताया कि यह कुत्ता अधिकारी कृष्णदास बाबाजी के गुरु भगवानदास महन्त के समय से ही इस मठ में है। कृष्णदास बाबाजी के देह-त्याग के पश्चात् जब ठाकुर एवं अन्य सम्पत्ति ले जाने के लिए पुलिस आयी तो पहले तो इसने उन्हें मठ में घुसने ही नहीं दिया। बाद में बड़ी मुश्किल से वे इसे डरा-धमका कर ठाकुर को ले जा सके। उसी दिन से यह इस टूटी दीवार पर पड़ा है। कितने लोग रास्ते से निकल जाते हैं, कुछ नहीं बोलता; किन्तु पुलिस के लोगों को देखते ही बेचैन हो उठता है और उन्हें गली से बाहर करके ही शान्त होता है। यह सुनकर बाबाजी महाशय कुत्ते को दण्डवत् प्रणाम कर कहने लगे 'बाबा तुम महापुरुष हो, कृपा करो जिससे सेवा करने की शक्ति प्राप्त कर सकूँ। तुम्हारे प्राणाधार ठाकुर शीघ्र ही अपने स्थान पर अधिकार करेंगे, इसमें सन्देह नहीं' यह कह कर संगी जनों के साथ अपने स्थान को चले गये। कुत्ता वहीं रह गया।

दूसरे दिन सुबह उठ कर सब एक नये उत्सव में मग्न हो गये। उस दिन वसन्तपञ्चमी थी। ये लोग यह उत्सव 'जगन्नाथवल्लभ' में करते थे। गोविन्द दादा और नवद्वीप दादा उत्सव का जुगाड़ करने लगे। लगभग 11 बजे कीर्तनादि समाप्त कर सब लोग चिवड़ा-महाप्रसाद ग्रहण करने बैठे थे, उसी समय एक पुलिस का आदमी आकर बोला 'दरोगा बाबू ने कहलाया है कि मैजिस्ट्रेट साहब ने तार किया है, अपने ठाकुर को ले जाओ। एक बजे पुलिस के साहब आयेंगे। उससे पहले ही थाने से ठाकुर को हटा लो।' सुनने ही बाबा महाशय परमानन्दपूर्वक प्रसाद हाथ में लिये बरामदे में आये और एक छलाँग में रास्ते पर कूद पड़े। अचानक न जाने मन में क्या आया, हाथ जोड़ वैष्णवमण्डली के निकट जाकर बोले 'आप सब महाप्रसाद ग्रहण करें। मेरा अपराध मन में न लायें,' और द्रुत गति से थाने की ओर दौड़ पड़े। 'किस प्रकार ठाकुर को लाया जाय' मन ही मन सोचते जा रहे थे कि किसी ने आकर कहा 'यहाँ एक पालकी है, उसमें ठाकुर की विजय-यात्रा कराना ठीक रहेगा न?' बाबाजी महाशय प्रसन्न होकर उस पालकी की व्यवस्था कर थाने पहुँचे। वहाँ जाकर देखा कि श्रीश्रीराधाकान्त जी तो एक कौपीन मात्र पहने हैं, राधारानी निर्वस्त्रा हैं, और दूसरे सब ठाकुर एक टोकरी में पड़े हैं। यह देख वे व्याकुल भाव से रोने लगे। ललितादासी ने अपनी ओढ़नी राधारानी को पहना कर उनकी लज्जा ढकी। ठाकुर को पालकी पर बिठा दिया। कहीं से एक अंग्रेजी बैण्डवाले आकर कहने लगे 'बाबाजी महाप्रभु! आपकी आज्ञा हो तो हमारी ठाकुर के साथ-साथ जाने की इच्छा है।' बाबाजी महाशय बोले 'योगमाया का यह कैसा संयोग है। अच्छा भाई, तुम लोग ठाकुर के पीछे-पीछे चलो।' ऐसा कह नाम-कीर्तन करते-करते चल पड़े। आगे-आगे संकीर्तन, बीच में ठाकुर और पीछे-पीछे अंग्रेजी बाजा। लोगों की भीड़ लग गई। आनन्दमय युगल-किशोर सबको आनन्द-सागर में निमग्न करते चले आ रहे थे। अभिषेकादि के सारे द्रव्य भी साथ ही साथ इकट्ठे होने लगे। कोई परमान्न भोग के लिए दूध मिठाई कोई पंचामृत, कोई ठाकुर के लिए रेशमी जोड़ा—सब अपनी-अपनी इच्छानुसार अनेक प्रकार की सामग्री लाकर इकट्ठा करने लगे। ठाकुर को मन्दिर में प्रविष्ट करा उनके अभिषेक और भोगादि की व्यवस्था की जाने लगी। बाबाजी महाशय ने सुगन्धित, शीतल जल की एक सौ आठ कलसियों से ठाकुर का महाभिषेक कराया। फिर भोग के पश्चात् उनके शयन की व्यवस्था कर दी।

श्रीश्रीराधाकान्तदेव की वंशी और माखनमिश्री

श्रीश्रीराधाकान्तदेव ने मन ही मन कहा 'भक्तों ने सारी चीजें तो जुटा दीं, पर वंशी का क्या हो?' शायद किसी से कुछ कहने का साहस न पाकर स्वयं भिक्षा के लिए निकल पड़े। माँटी-मण्डपसाहि में रामायत सम्प्रदाय के एक साधु रहते थे। साधु बड़े प्रेमी थे, एक गोपालमूर्ति की सेवा करते थे। गोपाल जैसे उनके प्राण थे। कहीं भी कोई उपादेय सामग्री उन्हें दिखाई दे जाती तो उसे गोपाल के लिए ले आते। लगभग एक साल हुआ गोपाल के लिए वे एक बाँसुरी ले आये थे। सेवा के समय जैसे ही बाँसुरी पर निगाह पड़ती, कह उठते 'हाय! मैं तो बाँसुरी लाया, किन्तु गोपाल ने उसे

अंगीकार नहीं किया। एक दिन यदि त्रिभंगी मुद्रा में खड़ा होकर वंशी हाथ में ले लेता तो मेरी मनोकामना पूरी होती।' साधु की यह पुकार गोपाल के पास पहुँच गयी। तभी तो श्रीश्रीराधाकान्त जी रात रहते साधु के पास जा उपस्थित हुए। साधु सो रहा था। उस पर हाथ रख कर बोले, 'बाँसुरी मुझे दे दो।' साधु निद्रित अवस्था में ही चमत्कृत भाव से बोले 'आप कौन हैं? कहाँ रहते हैं?'

ठाकुर—मेरा नाम राधाकान्त है। मैं झाँजपीटा मठ में रहता हूँ।

अकस्मात् साधु की निद्रा टूट गई। आँख खोल कर देखा तो कहीं कोई नहीं। उसी समय साधु बाँसुरी लेकर झाँजपीटा मठ के लिए रवाना हो गये। वे झाँजपीटा मठ जानते नहीं थे। रात अभी बाकी थी। लोगों का आवागमन नहीं हो रहा था। किसी से पूछने-ताछने की सुविधा न देख मन ही मन सोचने लगे 'किधर जाऊँ?' उसी समय एक आदमी आकर पूछने लगा 'आपको किधर जाना है?'

साधु—भैया, मुझे झाँजपीटा मठ जाना है।

आगन्तुक—इसी रास्ते चले जाओ।

यह कह कर वह अन्तर्धान हो गया। साधु के मन में थोड़ी देर को प्रश्न उठा कि आगन्तुक कौन था और फिर वे उसके बताये रास्ते पर चल दिये। किन्तु दोलमंडपसाहि पहुँचकर फिर रास्ता भूल गये। उस समय वे और किसी से न पूछ कर मन ही मन कहने लगे, 'हे राधाकान्तदेव! यदि तुम्हारी वंशी लेने की इच्छा हो तो मुझे ठीक रास्ते पर ले चलो।' कैसा आश्चर्य! बिना किसी से पूछे साधु महाराज क्षण भर में झाँजपीटा मठ के दरवाजे पर पहुँच 'बड़े बाबाजी महाशय' कहकर पुकारने लगे। एक आदमी ने जैसे ही सदर दरवाजा खोला, वे बाबाजी महाशय के पास आ पहुँचे और प्रेम-गद्गद कण्ठ से सारा वृत्तान्त कह सुनाया। बाबाजी महाशय साधु गद्गद कण्ठ से बोले 'बाबा! आपका परम सौभाग्य है, जो स्वयं ठाकुर ने आपके पास जा वंशी की भिक्षा माँगी।' इसी समय श्रीश्रीराधाकान्तदेव की मंगल-आरति होने लगी। सभी दर्शनों के लिए उठ खड़े हुए। आरति के बाद साधु बाँसुरी ठाकुर के हाथ में दे साश्रुनयन प्रेम गद्गद कण्ठ से कहने लगे 'प्रभो! मैं महापापी, दुराचारी, नराधम हूँ, भक्ति किसे कहते हैं, नहीं जानता। फिर भी तुम्हारी इतनी करुणा कि मुझे स्वयं दर्शन देकर कृतार्थ किया। इस भक्तिहीन की मुरली को अंगीकार कर सुखी हो, यही मेरी प्रार्थना है दयामय! दास के प्रति सदा ऐसी ही दया बनाये रखना।' ऐसा कह दो रुपये चरणों में रख प्रणाम कर बाबाजी महाशय से बोले 'देखिए, आज प्रभु को खीर-भोग लगाइएगा।' बाबाजी महाशय साधु का प्रेम एवं राधाकान्तदेव का खेल देख अत्यन्त विस्मित भाव से साधु को आलिंगनपूर्वक विदा कर प्रात:कृत्य करने चले गये।

बाबाजी महाशय ने गंगामातामठ के श्रीविहारीदास पुजारी महाशय के शिष्य करुणाकरदास को श्रीश्रीराधाकान्तदेव की सेवा में नियुक्त कर सेवा के नियम बना दिये। कुंज-भंग के बाद मंगल-आरति कर राधाकान्त और राधारानी अलग-अलग रहेंगे। दोनों का अलग-अलग स्नान, शृंगार, आरति और भोग होगा। भोग के बाद गोष्ठवेश धारण कर राधाकान्त गोष्ठ-गमन करेंगे, श्रीमती भी सूर्य-पूजा के बहाने सखियों के साथ राधाकुण्ड जाकर कृष्ण से मिलेंगी। इस समय परमान्न भोग लगाकर आरति की जायगी। फिर चार बजे के समय शीतल भोग के बाद दोनों अलग हो जायेंगे। सन्ध्या समय राधाकान्त की गोधूलि आरति और श्रीमती जी की आरति के बाद जल लाने के बहाने युगल मिलन होगा, फिर आरति होगी। आरति के बाद दोनों अलग-अलग हो जायेंगे। रात्रि दस घड़ी के बाद अभिसार द्वारा फिर मिलन होगा। उसके बाद निकुञ्ज आरति और शयन होगा। इसी नियम से सेवा चलने लगी। सेवा की सुविधा के लिए कुछ भक्त चार-पाँच गायें ले आये। राधाकान्त जी के गोष्ठवेश की लीला-पुष्टि के हेतु उन गायों को उनके सामने बाँधा गया। गोष्ठ-गमन का समय होने पर कृपासिन्धुदास नामक एक भक्त गायों को चराने ले जाता और उत्तरगोष्ठ के समय वापस आ जाता। जैसे-जैसे नियमित रूप से सेवा चलने लगी, श्रीविग्रह

की अवस्था में भी वैसे-वैसे परिवर्तन दिखाई देने लगा। प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल श्रीविग्रह की अलग-अलग अवस्थाएँ परिलक्षित होतीं। सेवा-परिपाटी देख कर नित्यलीला का प्रत्यक्ष बोध होता। लीला के साथ-साथ ठाकुर की माखन-चोरी की बात याद आई। पावना जिले के महिमचन्द्रदास नामक एक सज्जन आश्रम में रहते थे। राधाकान्त जी ने उन्हें रात्रि में स्वप्न दिया और कहा 'देखो, तुम मेरी माखन-मिश्री-भोग की कुछ व्यवस्था कर दो।' वे बोले 'आप इस विषय में दादा (बड़े बाबाजी महाशय) से क्यों नहीं कहते?' ठाकुर ने उत्तर दिया 'वे मेरे लिए और बहुत-से कष्ट करते हैं, मुझे अपने आप भी तो कुछ करना चाहिए।' सुबह उठकर महिमचन्द्र ने बाबाजी महाशय से जब स्वप्न का वर्णन किया तो दोनों रोने लगे। बाबाजी महाशय बोले 'देख महिम! यद्यपि मैं भिक्षा करके माखन-मिश्री का प्रबन्ध कर सकता हूँ, किन्तु इस समय उन्होंने तुम्हारे निकट अपनी इच्छा प्रकट की है तो तुम्हें ही प्रबन्ध करना उचित है।' महिम ठहरे भिखारी, पैसा कौड़ी पास नहीं। उन्होंने भिक्षा करके कुछ माखन-मिश्री भोग की व्यवस्था की। इसी दिन से रोज माखन-मिश्री-भोग लगने का नियम हो गया।

करुणाकरदास का सखीवेश : आउलियामठ-उद्धार

श्रीमूर्ति की नित्यलीला स्थापित कर अपने-अपने भाव के अनुसार सेवा करने से अभीष्ट पूर्ति होती है, मानो इसका दृष्टान्त उपस्थित करने के लिए ही श्रीराधारानी ने अपने सेवक करुणाकरदास पर कटाक्ष किया। करुणाकरदास बालक थे, आकुमार ब्रह्मचारी, भक्ति और निष्ठा-परायण थे। विशुद्ध हृदय में बड़ी सरलता से भाव का संचार हो जाता है। करुणाकरदास राधाकान्त जी की युगल आरति के समय स्वेच्छा से ही सखी-वेश धारण कर आरति करते। इसी प्रकार कई दिन बीत गये। एक दिन न जाने किस शुभ मुहूर्त में सखी-वेश धारण किया कि फिर नहीं छोड़ सके। उनके वेश-परिवर्तन के बारे में लोग नाना प्रकार की बातें करने लगे, तो वे बाबाजी महाशय के चरण पकड़ रोते-रोते बोले 'प्रभो! आप मुझ पर कृपा करें। मैं रोज युगल आरति के समय सखी-वेश धारण कर बाद में उसे उतार देता था, किन्तु आज मैं किसी भी प्रकार उसे उतारने में समर्थ नहीं हो रहा हूँ। पहले की बातें जैसे मुझे कुछ भी याद नहीं, मेरे मन में सदा यही धारणा रहती है कि मैं गोपी हूँ।' सुनकर बाबाजी महाशय प्रेम-गद्गद कण्ठ से बोले 'भाई तुम्हारे ऊपर कृपामयी श्रीमती की पूर्ण कृपा है। शास्त्र कहते हैं प्रभु सेवक के अपराध ग्रहण नहीं करते, थोड़ी सी सेवा को बहुत मानते हुए अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हैं। इस महावाक्य का तुम्हारे द्वारा प्रत्यक्ष अनुभव किया। महाभाव स्वरूपिणी करुणामयी राधारानी ने तुम्हें गोपीभाव दान कर कृष्णसेवा के योग्य बना दिया है। उनकी अहैतुकी कृपा देख हम विमुग्ध हैं। तुमने महारत्न पाया है, प्रयत्न करो, कृतार्थ होंगे। रस में एकनिष्ठ होकर सेवा करने से स्वयं तो आनन्द पाओगे ही, साधारण लोगों को भी आनन्दित कर सकने में समर्थ होगे। जीव मात्र प्रकृति है। भ्रमवश अपने में पुरुष होने का अभिमान रखने वाले लोगों के साथ एकत्र शयन, भोजन, रहन-सहन इत्यादि से दूर रहना। प्रकृति तीन प्रकार की है—भावप्रकृति, स्वभाव-प्रकृति और स्वरूपप्रकृति। स्वरूपप्रकृति के साथ निर्जनवास, एकत्र शयन, भोजन, उपवेशन स्पर्श आदि सर्वथा परित्याज्य हैं। किसी दूसरे के रस या भाव की आलोचना करना अनिष्टकर है। दीक्षामन्त्र और उपासना को लेकर वितर्क करना और असूयावश किसी की उपासना को हीन बताना इस पथ के सर्वथा विरुद्ध है। ऐश्वर्य-ज्ञान-पूर्ण व्रजोपासना भाव-विरुद्ध है। अपने में संसारी बुद्धि रख कर सर्वसाधारण की वैष्णवबुद्धि से सेवा करना। अनिवेदित किसी वस्तु को ग्रहण न करना।' इस प्रकार करुणाकर के बहाने सबके हृदय को नानाविध उपदेशामृत से सिंचित कर सरस और स्निग्ध बनाया। नवद्वीप दादा ने पूछा 'इसका नाम क्या रखेंगे? बाबाजी महाशय थोड़ी देर सोच कर बोले 'कुसुममंजरी दासी'। सुनकर सब लोग बड़े आनन्दित हुए। कुसुममंजरी दासी के लिए राधाकान्त देव की श्रीअंग सेवा और कीर्तनादि के

समय नृत्य-इन्हीं दो सेवाओं का निर्देश किया। परमानन्दपूर्वक सेवाकार्य चलने लगा।

एक दिन बाबाजी महाशय घूमते-घामते कुंडाईबेंटसाही की भीतरी गली हेरागौरीसाही में जा पहुँचे। वहाँ एक आदमी ने कहा बाबाजी महाशय! यहाँ एक मठ है जिसमें निताइ-गौर और सीतानाथ के विग्रह हैं। चलिये दर्शन कर लीजिए।' सुनते ही बाबाजी महाशय बड़े उत्साह से चल दिये, किन्तु वहाँ जाकर जो देखा वह हृदय-विदारक था। बड़ी सुन्दर-सुन्दर मूर्तियाँ वहाँ विराजमान थीं, किन्तु सेवा के अभाव में मलिन-वदन हो रही थीं। कितने दिनों से वहाँ के किवाड़ बन्द थे, कौन जाने। चारों ओर चींटियों और कीड़े-मकोड़ों का राज्य था। निताइ, गौर, सीतानाथ, सीता ठाकुरानी और अच्युतानन्द ये पाँच काष्ठ-मूर्तियाँ थीं। इनके अतिरिक्त और बहुत-से युगल विग्रह, शालग्राम और दूसरे ठाकुर थे। श्रीविग्रह अत्यन्त प्राचीन मालूम होते थे। सेवा की अवस्था देख बाबा महाशय उच्च स्वर से रोने लगे। बहुत दिनों के बाद ठाकुर-मन्दिर में लोगों को आया देख दो एक पड़ोसी भी आ गये। बाबा महाशय ने उनसे पूछा 'यह मठ किसका है और इसकी सेवा किसके पास है?' एक आदमी ने बताया 'यह स्थान अत्यन्त प्राचीन है। आउलिया गोसाईं नामक अद्वैतवंशी गोस्वामी ने इस सेवा की स्थापना की थी। आजकल श्रीपद्मचरण गोस्वामी प्रभु इस मठ के स्वत्वाधिकारी हैं। ठाकुर की बहुत सम्पत्ति है, किन्तु उपयुक्त लोगों के अभाव में वसूली नहीं होती। प्रभु जो थोड़ी-बहुत वसूली कर लेते हैं, उससे मादक द्रव्यों का सेवन कर आत्मानन्द में समय बिताते हैं। एक पुजारी ने कुछ दिन सेवा की। किन्तु कई महीने हुए वह छोड़कर चला गया। तब से सेवा बन्द पड़ी है।' सुनकर बाबा महाशय बोले 'अहो! प्रभु की कैसी विडम्बना है। लोग जो कहते हैं कि धन-सम्पत्ति रहने पर सेवा में कोई असुविधा नहीं होती, यह भूल है। सत्पात्र के अभाव में कोई वस्तु काम नहीं देती। अच्छा, निताइचाँद की जो इच्छा।' यह कह झाँजपीटा मठ से चावल-दाल मँगाकर उस दिन की सेवा की व्यवस्था की। दूसरे दिन से पृथक् भिक्षा की व्यवस्था कर रघुनाथदास नामक एक युवक को इस मठ में रखा। वह भी बड़े यत्न से सेवा चलाने लगा। मठ का नाम आउलिया मठ था। बाबाजी महाशय के यत्न से राधारमणकुञ्ज, झाँझ-पीटा मठ और आउलिया मठ इन तीनों स्थानों की लुप्त सेवा का उद्धार हुआ, यह देख पुरीवासी सब इनकी ओर विशेष रूप से आकृष्ट होने लगे।

नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी से मिलन

एक दिन बाबा महाशय अपने साथियों के साथ श्रीजगन्नाथ-दर्शन को गये थे। बड़ी देर तक जगमोहन में कीर्तन कर परिक्रमा करने के बाद लक्ष्मीदेवी के मन्दिर गये। वहाँ छोटे कद के, न बहुत दुबले न बहुत मोटे, एक ब्रह्मचारी एक ओर खड़े थे। बाबा महाशय के कीर्तन और नृत्य का दर्शन कर वे स्तम्भित विस्मित हो उनकी ओर देख रहे थे। नेत्रों के जल से वक्षस्थल भीग रहा था। ब्रह्मचारी बंगाली थे, किन्तु आकृति देख कर कोई उन्हें मद्रासी के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझ सकता था। वे बड़े उदार प्रकृति के थे। उनकी उस समय की अवस्था देख लगता था कि वे इस राज्य में नहीं हैं। वे कीर्तनध्वनि सुनते और विस्फारित नेत्रों से बाबा महाशय को ऊपर से नीचे तक देखते जाते। पुलक से उनका शरीर व्याप्त था। बाबा महाशय जैसे ही 'जय नित्यानन्द राम' कह कर हुँकार करते, ब्रह्मचारी महाशय कम्पितकलेवर हो नृत्य करने लगते। उनकी अवस्था देख बाबा महाशय ने प्रेमानन्द में भर उनका आलिंगन किया। बाबा महाशय अति दीर्घाकार, ब्रह्मचारी महाशय खर्वाकृति। इसीलिए इनके सीने पर ब्रह्मचारी महाशय झूलने लगे। आहा, कैसा अपूर्व मिलन! जैसे कितने दिनों के सुपरिचित आत्मीय हों। वास्तव में यही बात है। हम शायद समझते हों कि इनका यह प्रथम परिचय है, किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं। ये नित्य सिद्ध हैं। इसलिए बहुत समय से सुपरिचित और एकसंगी हैं। थोड़े दिनों के लिए किसी कार्यवश दोनों का परस्पर विच्छेद हो गया था। आज फिर पुरानी स्मृतियों के जागने पर दोनों आनन्दरूपी पवन के झकोरों से झूल रहे हैं। ब्रह्मचारी महाशय एकदम अधीर हो गये हैं। केश बिखरे हैं, वस्त्रादि

अस्तव्यस्त हैं। नृत्य करते-करते वस्त्र खुल पड़ते हैं और वे उन्हें धीरे-धीरे सम्हाल लेते हैं। आगन्तुक यह देख कर अवाक् थे, परस्पर कह रहे थे 'ये ब्रह्मचारी बड़े विद्वान, बड़े गम्भीर हैं, आधुनिक अँगरेजी शिक्षा में शिक्षित हैं, फिर भी पागल की तरह नाच रहे हैं।' ब्रह्मचारी महाशय अपनी पुस्तकें और दूसरा सामान वहीं भूलकर नाचते-नाचते बाबा महाशय के साथ बाहर आ गये। बाबा महाशय ने एक आदमी को उनका सामान मठ में ले आने का आदेश दिया। ब्रह्मचारी महाशय बाबा महाशय को जैसे प्राकृत नेत्रों से नहीं देख रहे थे, बार-बार उनके मुख की ओर देख-देख अप्राकृत भाव-राज्य में डूब रहे थे। आनन्द की सीमा नहीं थी। झाँजपीटा मठ में पहुँच कुछ देर बाद बाबा महाशय ने कीर्तन समाप्त किया। ब्रह्मचारी महाशय का नाम नित्यस्वरूप था। उनकी बात-चीत, चाल-ढाल और भावगति देख बाबा महाशय ने उनका नाम रख दिया बटुदास। बटुदास जैसे वास्तव में मधुमंगल की आवेश मूर्ति थे। वे ललितादासी कुसुमदासी इत्यादि सबके लिए जैसे एक कौतुक की सामग्री बन गये थे। बाबा महाशय को वे भाई साहब कह कर सम्बोधन करते थे। इस प्रकार कई दिन बीत जाने पर बटुदास ने वैशाखी पूर्णिमा के दिन बाबा महाशय से मन्त्र ग्रहण किया। उसी क्षण से उन्हें व्रज-सख्य-लीला की स्फूर्ति हुई। उनके हृदय में सदा के लिए मधुमंगल भाव स्थायी हो गया। सखियों के साथ उनके सदा मीठे झगड़े होते रहते, विशेषत: ललितादासी के साथ तो दूसरी बात ही न होती। "भूख लगी है" कहते ही लड्डू, पेड़ा, कचौड़ी कुछ न कुछ उन्हें देना ही पड़ता। बटुदास की अपूर्व गुरुनिष्ठा थी। नित्य गुरु-पूजा किये बिना जल ग्रहण न करते। गुरुपूजा के समय वे बाबाजी महाशय की तुलसीदल से अर्चना करते। उनके बार-बार मना करने पर भी न मानते। प्राय: कहते "क्यों? 'आचार्य मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित्। न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत सर्वदेवमयो गुरु:। गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वर:।' क्या ये भगवद्वाक्य नहीं हैं? बार-बार शास्त्रों ने जो कहा है—'न गुरोरधिकं किंचित्। सर्वाग्रे श्रीगुरुं नत्वाप्रणमेद्देवतान्तरम्। साक्षात् विष्णुसमं मत्वा पूजयेद्विधिपूर्वकम्।।' यह सब क्या आप नहीं मानते?" इत्यादि अनेक तर्कों से बाबा महाशय को निरस्त कर रोज गुरु-पूजा करते। बाबा महाशय जब बाहर जाते, बटु पंखा लेकर साथ-साथ चलते। उनकी ऐसी सेवा-निष्ठा थी कि रात-दिन पंखा करने पर भी न थकते।

पादरी से भेंट

एक दिन अपराह्न में नरेन्द्र सरोवर के पास चौराहे पर एक वृद्ध पादरी भाषण कर रहे थे। बहुत से लोग इकट्ठा हो गये थे। पादरी साहब एक स्टूल पर खड़े होकर अनेक श्रुतिमधुर कौतूहलपूर्ण वाक्यों द्वारा जन साधारण को समझा रहे थे कि ईसाई धर्म ही श्रेष्ठ है, ईसा के उपदेश ही मानवमात्र के लिए अवलम्बनीय हैं, ईसा ही सबके एकमात्र उपास्य हैं। पादरी साहब हर बात के बाइबिल से प्रमाण देते थे। बहुधा वक्ता अपने मत की पुष्टि के लिए भाषण के बीच बहुत-से प्रतारणा वाक्य बोल जाता है। आज पादरी साहब भी यही कर रहे थे। किसी गलत बात को ईसा का वचन कहकर लोगों को बार-बार उसे समझाने की कोशिश कर रहे थे। इसी समय स्वच्छन्दगति नवद्वीप दादा उस रास्ते से गुजरे। पादरी साहब की बात सुन दु:खी होकर उन्होंने जोर से कहा— Wrong Conclusion (गलत सिद्धान्त) और चल दिये। शब्द सुनते ही साहब आश्चर्यचकित रह गये। नीचे उतर कर एक साथी से कहा 'देखो, यह जो आदमी जा रहा है उसे बुला तो लाओ।' वह आदमी इन्हें बुला लाया। साहब ने पूछा—तुमने क्या कहा था?

नवद्वीप—क्या साहब, हमने तो विशेष कुछ नहीं कहा था। तुम्हारी बात से तुम्हारे ही धर्म पर दोष आता है और ईसा के उदारतापूर्ण वचनों में संकीर्णता आती है, इसीलिए मैंने कहा था।

साहब—तुम कहाँ रहते हो?

नवद्वीप—यहाँ पुरी में झाँजपीटा मठ नामक एक स्थान है, वहीं रहता हूँ।

साहब—वहाँ और कौन-कौन लोग रहते हैं?

नवद्वीप—साहब! तुम जैसे पादरी हो, वैसे ही वहाँ हमारे पादरी (गुरु) और उनके बहुत-से शिष्य रहते हैं।

साहब—तुम्हारे पादरी से क्या मैं मिल सकता हूँ?

नवद्वीप—किसी से मिलने में उन्हें कोई आपत्ति नहीं होती, फिर भी मिलने का समय निश्चित हो तो अच्छा।

साहब—कल चार बजे मैं तुम्हारे पादरी से मिलूँगा।

नवद्वीप 'अच्छा, ठीक है' कह कर चले गये। साहब भी पूर्ववत् अपना कार्य करने लगे। दूसरे दिन ठीक चार बजे चार-पाँच लोगों को साथ ले साहब झाँजपीटा मठ आ गये। देखते ही बाबा महाशय ने उनकी अभ्यर्थना कर बैठने के लिए आसन दिया। बाबा महाशय के पास जो कोई भी आता, सबसे पहले उसे प्रणाम करना उनका स्वाभाविक नियम था। आज साहब को उन्होंने जैसे हाथ जोड़ प्रणाम किया साहब ने भी विस्मय के भाव से ही प्रति-प्रणाम किया। बाबा महाशय ने साहब को आलिंगन कर आसन पर बिठाया। इनके व्यवहार से साहब मुग्ध हो गये। उन्होंने बाबा महाशय को अपने पास बिठा कर पूछा 'आप अंग्रेजी जानता हय?'

बाबाजी—साहब! मैं बंगला भाषा छोड़ और कोई भाषा नहीं जानता।

साहब—क्यों, मैंने सुना है आप बहुत भाषा जानता है।

बाबाजी—जानता हूँ या नहीं, बंगला भाषा छोड़ दूसरी भाषा का व्यवहार कर मुझे सुख नहीं मिलता।

साहब—अच्छा, आपका धर्म क्या है?

बाबाजी—सामान्य रूप से कहा जाय तो मेरा धर्म हिन्दू धर्म है। किन्तु इस हिन्दू धर्म में भी उपास्य भेद से शाक्त, शैव, गाणपत्य, सौर और वैष्णव वे पाँच प्रकार हैं। हम वैष्णव सम्प्रदायी हैं।

साहब—आप किसकी आराधना करता है?

बाबाजी—हमारे उपास्य राधाकृष्ण, निताइ-गौर हैं।

यह सुनकर साहब कृष्णलीला-वर्णन करने लगे। पहले वस्त्र-हरण, उसके बाद लगभग डेढ़ घण्टे तक माखन-चोरी, जल-केलि, रासलीला, पूतना-वध, वत्सासुर-वध, दान, नौकाविहार इत्यादि लीलाओं का यथातथ्य वर्णन करते रहे। बाबा महाशय स्थिर भाव से सुनते रहे। बीच-बीच में उनकी देह में ऐसा कम्प हो जाता कि साहब स्तम्भित रह जाते। कभी-कभी सर्वांग सेमल-वृक्ष की तरह पुलक उठता। नेत्र-जल से मुख और वक्षस्थल भीग जाते। साहब कथा कहते जाते और उनकी अवस्था को देख विस्मित होते जाते। धीरे-धीरे साहब ने लीला-दोषों का वर्णन करना आरम्भ कर दिया। किन्तु उससे बाबाजी का आनन्द और बढ़ने लगा। साहब बोले—आप जिसकी उपासना करता है, वह घोर लम्पट, मिथ्यावादी, चोर, प्रवंचक और स्त्री-हत्याकारी है।

बाबाजी—ठीक है।

साहब—अच्छा, आप गोहत्या को निन्दनीय कार्य कहता है। आपके ईश्वर ने गोवध किया। फिर भी आप उन्हें ईश्वर कहता है। देखो, हमारे ईसा ने कभी कोई ऐसा कार्य नहीं किया। अपने आप बहुत-सा अत्याचार सह कर भी जीवों पर दया किया, जीवों के लिए प्राण दिया।

बाबाजी—ठीक है, हमारा धर्म ईसा को बुरा नहीं कहता। ईसा एक ईश्वरानुगृहीत पुरुष थे। वे ईश्वर के अवतार थे, यह कहने में भी हमें कोई हिचक नहीं।

साहब इस बात का कोई उत्तर न दे बाबा महाशय की भाव-भंगी देख कहने लगे—'देखिये मैंने, आपके धर्म का और आपके ईश्वर का इतना निन्दा किया, पर आपको क्रोध न होकर आनन्द हुआ। ऐसा क्यों? पहले मुझे यह बता दीजिए, बाद में कुछ और सुनूँगा। आप यदि हमारे धर्म का या हमारे ईसा का इसका एक अंश भी निन्दा करता तो हमें दुःख होता।'

बाबाजी—साहब! हमारे जो ईश्वर हैं, वे पूर्ण-पूर्णतम सच्चिदानन्दमय भगवान् हैं; उनकी निन्दा नहीं हो सकती। दोष कहलाने वाली चीज उन्हें स्पर्श भी नहीं कर सकती। उनके चरित्र में आपने जो भी दोष दिखाये हैं, हम उनको उनके चरित्र में अधिक दोषों से युक्त मानकर उनका स्तवन करते हैं। जिस वस्तु में हेय और उपादेय अंश रहते हैं, वह पूर्ण कैसे

हो सकती है? हेयांश का त्याग और उपादेयांश का ग्रहण करने से भी उसकी पूर्णता की हानि होती है। भगवान् अंशी हैं, जीव अंश हैं; वे पूर्ण हैं जीव अणु है; वे प्रभु हैं, जीव दास है। संसार के सभी जीव उन्हीं में अनुस्यूत हैं, क्योंकि उनके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। तब परस्त्रीहरण का दोष उन पर कैसे लगाया जा सकता है? सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग-इन चारों युगों में जब-जब भगवान् ने अवतार लिया, उनके नित्य परिकर भी उनके साथ-साथ अवतीर्ण हुए। भगवान् की नित्य प्रेयसियाँ व्रजगोपियाँ भी उनके साथ अवतीर्ण हुईं। उनकी जो भी लीला हुई अपने परिकरों के साथ ही हुई। भगवान् कृष्ण ने स्वयं कहा है—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।।

जब-जब असुरगण भाँति-भाँति के शरीर धारण कर स्त्री, बालक, ब्राह्मण, देवता वैष्णव आदि पर अनेक प्रकार के अत्याचार करने लगे, भगवान् ने तब-तब अवतीर्ण हो उनका विनाश कर उन्हें पापयोनि से छुटकारा दिलाया। भगवान् ने कभी गायों का पालन छोड़ विनाश नहीं किया और जिसने ऐसा किया उसे उन्होंने दण्ड दिया। फिर भी जब असुरगण वृष या वत्स रूप धारण कर आये तो उन्होंने उनका वध करके उन्हें असुर योनि से मुक्त किया। किसी भी धर्म या धार्मिक व्यक्ति के प्रति द्वेष, परनिन्दा, परचर्चा इत्यादि बातें वैष्णव धर्म की सर्वथा विरोधी हैं। जगत् के समस्त दृश्यादृश्य पदार्थ श्रीकृष्ण का प्रकाश हैं। वे मंगलमय हैं; जीव का जब जहाँ जैसा प्रयोजन होता है वैसी अवस्था कर देते हैं। वे सूत्रधार हैं; हम उनके हाथ की पुतली हैं। उनकी जैसे नचाने की इच्छा होती है, नचाते हैं। हम लोगों का स्वतन्त्र चेष्टा कर सकना बिलकुल सम्भव नहीं है।

साहब अभी तक बाबाजी महाशय के मुख की ओर देखते हुए नीरव रहकर तत्त्व-मीमांसा सुन रहे थे। इस बार हृदय खोल कर कहने लगे 'मैंने इतनी देर में यह भली प्रकार समझ लिया कि वैष्णव धर्म ही आदि और श्रेष्ठ धर्म है। जब तक हृदय में द्वेष-हिंसा रहती है तब तक यह कहना कि हृदय में धर्म-भाव है विश्वास-योग्य नहीं। आज मेरे मन का भ्रम मिट गया। अच्छा, आपके ईश्वर का कोई निर्दिष्ट रूप है, या मनचाहे रूप में उनकी उपासना की जा सकती है?

बाबाजी—भगवान् सच्चिदानन्दविग्रह हैं—सर्व-रूप, सर्वरस, सर्वगन्ध, सर्वशब्द और सर्वविध स्पर्श के आकर हैं। जगत् में दृश्यादृश्य जो भी रूप है, सब ईश्वर के ही हैं। तब भी कोई पूर्ण, कोई अंश, कोई अवतारी, कोई अवतार, कोई कला, कोई विलास-रूप में इस संसार में अनेक कार्य साधन करते हैं। इसी पुरी धाम में श्रीश्रीजगन्नाथ रूप में ईश्वर साक्षात् वर्तमान हैं। हम संकीर्णबुद्धि जीव हैं; शाक्त, वैष्णव, हिन्दू, म्लेच्छ, यवन, ब्राह्म, क्रिस्तान इत्यादि मतों को लेकर भेद करते हैं। किन्तु सर्वनियन्ता, सर्वेश्वर, जगत्पिता के समीप सभी समान हैं। काली, कृष्ण या शिव कह कर पुकारने से वे सुनेंगे; अल्लाह, खुदा, इशु कह कर पुकारने से नहीं सुनेंगे, ऐसी धारणा हमारी भूल है। देश, काल, पात्र या रुचि के अनुसार आचार, व्यवहार, वेशभूषा, आहार-विहार में पार्थक्य देखकर हम वही भेद ईश्वर पर आरोपित कर उनके जगदीश्वर, जगत्पिता, जगन्नाथ, भुवनेश्वर, भुवनमोहन, पूर्ण-पूर्णतम, आदिपुरुष इत्यादि नामों को छोटा बना देते हैं। इन्हीं जगन्नाथदेव की बौद्ध बुद्ध-रूप में, ब्राह्मसमाजी ओंकार रूप में, और कोई नारायण रूप में, कोई द्वारकानाथ रूप में, कोई व्रजेन्द्रनन्दन के रूप में उपासना करते हैं। यहाँ बहुत से मुसलमान जगन्नाथदेव की कृपा प्राप्त कर कृतार्थ होते हैं। शास्त्रों में तो यहाँ तक कहा है कि उनके हाथ से तैयार की हुई खाद्यसामग्री भी जगन्नाथदेव स्वीकार करते हैं।

'जगन्नाथदेव को कुछ भोग देने की मेरी इच्छा है' कह कर साहब ने दस रुपये का एक नोट जेब से निकाला।

बाबाजी—साहब, अगर आप जगन्नाथदेव का प्रसाद ग्रहण करें तभी मैं आपके रुपयों से उनका भोग लगा सकता हूँ।

साहब—प्रसाद आप लोग किसे कहते हैं? भात है तो हमारे वश का नहीं। हम लोग भात नहीं खा सकते।

बाबाजी—नहीं, हम लोग केवल भात को ही प्रसाद कहते हों, ऐसी बात नहीं। भगवान् जो कुछ भी ग्रहण करते हैं, उसी को प्रसाद कहा जाता है।

'भात छोड़कर आप जो चाहें खिला सकते हैं।' यह कह कर साहब दस रुपये का नोट बाबाजी के हाथ में देने लगे तो नवद्वीप दादा ने कहा—'साहब, मुझे दीजिए, वे पैसा हाथ से नहीं छूते।' साहब ने और भी विस्मित भाव से नोट नवद्वीप दादा के हाथ में दे विदा ली। अपूर्व परिवर्तन। साहब के चले जाने पर किसी ने बाबाजी महाशय से पूछा 'अच्छा, साहब ने इतनी कृष्ण-निन्दा की पर आपको जरा भी दु:ख नहीं हुआ?'

बाबाजी—साहब के मुख से तुमने क्या कृष्ण-निन्दा सुनी? तुम यह समझते हो कि तुम जो कहते हो, या जैसे भी व्यवहार करते हो, वह सब भाव-राज्य की बात है, और दूसरा जो कुछ कहता है वह निन्दा है। तुम तो कृष्ण को लम्पट, चोर, कपटी, शठ, प्रवंचक, दुष्ट कह सकते हो, क्योंकि तुम्हारा गोपीभाव है। साहब का क्या गोपीभाव नहीं है? भाव किसी का खरीदा नहीं। विशुद्ध-हृदय होने पर ही भाव प्रस्फुटित होता है। भाव म्लेच्छ-यवन कुछ नहीं मानता। कृष्ण रूप-गुण नहीं देखते। वे भावग्राही हैं, विशुद्ध भाव से ही उन्हें वश में किया जा सकता है।

इस प्रकार उन्होंने साथियों के हृदय की संकीर्णता दूर कर पादरी साहब के उन रुपये में पन्द्रह रुपये और मिला कर पच्चीस रुपये के भोग की व्यवस्था की। दूसरे दिन बड़ी स्वादिष्ट वस्तुओं से जगन्नाथदेव का भोग लगा। पर पादरी साहब का कहीं पता न था। इस विषय पर परस्पर बहस होने लगी तो बाबा महाशय बोले 'तुम लोगों को इतना परेशान होने की जरूरत नहीं, महाप्रसाद के आकर्षण से वे स्वयं आ पहुँचेंगे।' वास्तव में यही हुआ। चार बजे पादरी साहब आ गये। बाबाजी महाशय ने पहले की तरह अभ्यर्थनादि कर उन्हें बिठाया। अनेक प्रकार से मधुर आलाप होने लगा। पादरी साहब बोले 'मैंने देश-देशान्तर में भ्रमण किया है, बहुत से लोगों से वार्तालाप किया है, किन्तु आपके व्यवहार से हृदय की जो अवस्था हुई है वैसी कभी नहीं हुई। मेरी इच्छा है कि आप—जैसे समदर्शी और उदार साधु के साथ जीवन का शेष समय व्यतीत करूँ।'

बाबाजी—साहब, जीव निमित्त मात्र है। जो कुछ जागतिक व्यापार होते हैं, एकमात्र भगवदिच्छा से। हम उनकी नृत्य-पुत्तलिका हैं। वे जिस प्रकार नचाना चाहते हैं, हम उसी प्रकार नाचते हैं। शास्त्र में कहा है 'आपन इच्छाय जीव कोटि वांछा करे। कृष्णेर जेइ इच्छा सेइ फल धरे।'

इस प्रकार नाना रूप इष्टालाप के पश्चात् बाबाजी महाशय ने साहब से जगन्नाथदेव के महाप्रसाद की बात की तो उन्होंने बड़ा आग्रह दिखाते हुए अपने एक आदमी को बुलाकर महाप्रसाद घर ले जाने के लिए कहा। बाबाजी महाशय के आदेशानुसार एक रज के थाल में अनेक प्रकार का मिष्ठान्न प्रसाद सजा कर जैसे ही साहब के पास लाया गया, उन्होंने सिर से टोप उतार महाप्रसाद की अभ्यर्थना की और पूर्वोक्त व्यक्ति के हाथों उसे घर भिजवा दिया और स्वयं बाबाजी महाशय से विदा ले समुद्र तट पर भ्रमण के लिए चले गये। तब से पादरी साहब जितने दिन पुरी में रहे, प्राय: रोज बाबाजी महाशय के दर्शन कर सच्चे सुख का लाभ करते रहे।

भक्त का पादप्रहार

शान्तिपुर निवासी श्रीश्रीअद्वैतवंशावतंस महात्मा प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी महाशय थोड़े ही दिन पूर्व लीला संवरण कर चुके थे। उनके शिष्य उन दिनों भी सुदर्शनवल्लभ में (नीलमणि ब्रह्म की कोठी पर) रह रहे थे। एक दिन बाबाजी महाशय संकीर्तन करते-करते नरेन्द्र-सरोवर के तट पर प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी महाशय के समाधि-स्थान की परिक्रमा कर श्रीजगन्नाथदेव के दर्शन के लिए चले। साथ में बहुत-से लोग थे, प्रभुपाद के भी दो-तीन शिष्य थे। जगन्नाथ वल्लभ के स्थान से आगे बढ़कर कीर्तन जैसे ही प्रभुपाद के पूर्व निवासस्थान सुदर्शनवल्लभ के निकट पहुँचा, बाबाजी महाशय साष्टांग प्रणाम कर रज में लोटते हुए रोने लगे। उसी समय बरिशाल जिले के रहने वाले प्रभुपाद के एक भक्त नाचते-नाचते आये और बाबाजी

महाशय के वक्षस्थल पर जोर का पादप्रहार किया। बाबाजी महाशय जैसे रज में लोटते, उक्त महात्मा उनके अगल-बगल, पीठ पर, कमर पर पाद-प्रहार करते। यह देख साथियों में से कोई रो-रोकर अधीन होने लगे, कोई किंकर्तव्यविमूढ़ भाव से आपस में बात-चीत-करने लगे। इसी समय बाबाजी महाशय उठकर प्रेमपूर्ण भाव से नृत्य करने और बार-बार आनन्दविभोर हो प्रहारकारी महात्मा का आलिंगन करने लगे। उस समय बाबाजी महाशय के मुख की ओर देख सकने की किसी की सामर्थ्य न थी। उनके शरीर से एक अपूर्व तेज प्रस्फुटित हो रहा था। साथियों की उस समय की अवस्था को देख बाबाजी महाशय क्या समझे, कहा नहीं जा सकता; किन्तु उक्त प्रहारकारी महात्मा को अपने सामने कर कीर्तन करते-करते सिंहद्वार में प्रविष्ट हुए। सिंहद्वार में प्रवेश करते ही उक्त महात्मा के मन में किस भाव का उदय हुआ, अन्तर्यामी ही जानते हैं। वे दोनों हाथों की मुट्ठियों में रज भर-भर कर बाबाजी महाशय के नाक-मुख आदि पर मारने लगे। बाबाजी महाशय कीर्तन में विभोर थे। लगभग सभी साथी इस जुगुप्सित व्यवहार से मर्माहत हो गये। किन्तु क्या करते? पीछे बाबाजी महाशय के मन को चोट लगेगी, इस भय से कोई कुछ नहीं कह सका। किन्तु जब महात्मा का व्यवहार सीमा के बाहर हो गया तो बटु (नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी) कुछ कुपित भाव से उनका हाथ पकड़ उन्हें मना करने लगे, लेकिन अदोषदर्शी, उदारप्रकृति, क्षमामूर्ति बाबा ने कटु-वचनों से उनकी भर्त्सना कर वहाँ से हटा दिया और महात्मा को मधुर वचनों द्वारा सांत्वना दे प्रेमालिंगनपूर्वक बड़ी सावधानी से घर भेज दिया। तत्पश्चात् कीर्तन करते-करते झाँजपीटा मठ लौट आये।

अक्रोध-परमानन्द सरलस्वभाव महापुरुष किसी का कोई अपराध ग्रहण नहीं करते, यह सच है। किन्तु भक्तवत्सल भगवान् को यह सहन नहीं होता। भगवान् भक्त की व्यथा नहीं सह सकते। सदा साधुओं की रक्षा और असाधुओं के विनाश के लिए उन्होंने अवतार लिया है। प्रहारकारी महात्मा को रात में भयंकर ज्वर हो आया और बाबाजी महाशय के जिस-जिस अंग पर उन्होंने प्रहार किया था, उसी-उसी स्थान पर उनके शरीर में भयंकर वेदना होने लगी, रात को सो भी नहीं सके। मन में बड़ा अनुताप था। किससे कहते? अपने कर्मों का फल-भोग है, यह विचार करते हुए अत्यन्त कष्ट से रात बिताई। जैसे ही सबेरा हुआ, वे अपने एक गुरुभाई को साथ ले झाँजपीटा मठ जा पहुँचे। उस दिन बाबाजी महाशय के मन में जाने क्या आया, रात को झाँजपीटा मठ में न रहकर बड़े हरीश बाबू के घर जाकर सोये। ब्राह्ममुहूर्त में उठ प्रातःकृत्य समाप्त कर बैठे ही थे कि उपर्युक्त महात्मा आकर इनके चरण पकड़ रोने लगे। मुख से बोल नहीं फूट रहा था। गद्‌गद कण्ठ से इतना ही कह सके 'मैं घोर पाखण्डी हूँ, नराधम हूँ, मेरा अपराध क्षमा कर दीजिये। मैंने असह्य यन्त्रणा में छटपटाते हुए रात बिताई है। उठने की शक्ति नहीं थी, इसीलिए आपके पास नहीं आ सका। मेरे बाहर आप जितना ताप देखते हैं, अन्तर में उसकी अपेक्षा सौगुनी ज्वाला जल रही है। मुझे विश्वास है कि आप यदि मेरे ऊपर कृपा नहीं करेंगे, मुझसे प्रसन्न नहीं होंगे तो मेरी यह यन्त्रणा दूर नहीं होगी। मैंने आपके प्रति जो पैशाचिक व्यवहार किया, उससे निश्चय ही गुरुदेव ने अप्रसन्न होकर मुझे यह कष्ट दिया है। गुरु-वैष्णव के चरणों में अपराधी के लिए नरक में भी स्थान नहीं है। तो मेरी क्या गति होगी?' यह कह कर वे उच्च स्वर से रोने लगे। बाबाजी महाशय ने तुरन्त उन्हें उठा कर आलिंगन किया और सान्त्वनापूर्ण वचनों से प्रबोध देने लगे। यहाँ तक कि उन्होंने महात्मा से शपथपूर्वक कहा 'बाबा, मेरे मन में जरा भी मैल नहीं। आप स्थिर होकर नाम करें, हृदय की ज्वाला शान्त हो जायगी, परम शान्ति मिलेगी।' लेकिन कहने से क्या होता है। बाबाजी महाशय जितना ही कहते कि मेरे निकट आपका कोई अपराध नहीं है, उतना ही महात्मा के हृदय में ताप की मात्रा बढ़ती जाती। उनकी अवस्था देख बाबाजी महाशय का हृदय पिघल गया, करुणा उत्पन्न हो गई और वे बोले "देखो भैया, यदि तुमने कोई अन्यायपूर्ण व्यवहार किया है, तो अपने गुरुदेव के निकट जाओ; उनके प्रसन्न होते ही तुम्हारा समस्त ताप दूर हो जायगा। एकमात्र श्रीगुरुदेव के अतिरिक्त

और किसीने तुम्हारा अपराध ग्रहण नहीं किया, ग्रहण करने में समर्थ भी नहीं। मनुष्य जब तक श्रीगुरुचरणों का आश्रय ग्रहण कर आत्मसमर्पण नहीं करता, तब तक उस पर साधारण जनता का अधिकार रहता है और वह निग्रह-अनुग्रह करने में समर्थ रहता है, किन्तु ज्यों ही वह गुरुचरणों का आश्रय प्राप्त कर आत्म-समर्पण कर देता है, उस पर किसी और का कोई अधिकार नहीं रहता, यहाँ तक कि गुरुसमर्पित देह पर साक्षात् कृष्णचन्द्र का भी कोई अधिकार नहीं रहता। इसीलिए सनातन गोस्वामी ने कहा है—

कृष्ण रुष्ट हइले गुरु राखिबारे पारे।
गुरु रुष्ट हइले कृष्ण राखिबारे नारे।।

श्रीगुरुपदाश्रित व्यक्ति किसी के प्रति यदि कोई अन्यायपूर्ण आचरण करे या किसीको कष्ट दे तो उससे गुरुदेव का हृदय व्यथित होता है। इस प्रकार वह अपराध गुरुदेव के निकट होता है। लोग समझते नहीं कि अपराध की शान्ति के लिए क्या करें। तुम प्रभु की समाधि पर जाकर हृदय खोल कर उनसे सब कह दो, शान्ति मिलेगी। यह तो परमार्थ राज्य है, इसका तो कहना ही क्या; साधारण प्राकृत राज्य में भी यदि किसी की स्त्री या पुत्र या और कोई अधीनस्थ व्यक्ति किसी अन्य के प्रति अपराध कर बैठे और कोई व्यक्ति उसकी शास्ति के लिये उस व्यक्ति को न बतलाकर, जिसके वह आधीन है, उस पर विचार करने लग जाय तो वह कानून की दृष्टि से दोषी होगा या नहीं? क्षमता रहते हुए भी मर्यादालंघन के भय से कोई किसी के अधिकारस्थ व्यक्ति पर हस्तक्षेप नहीं करता। इसलिए तुम गुरुदेव के निकट प्रार्थना करो, वे अपने महत्त्वगुण से तुम्हारी धूल झाड़ कर तुम्हें गोद में ले होंगे।" यह सुन उक्त प्रहारकारी महात्मा बाबाजी महाशय के चरणों में साष्टांग प्रणाम कर द्रुतगति से प्रभु विजयकृष्ण गोस्वामीपाद की समाधि पर जा अत्यन्त व्याकुल भाव से प्रार्थना करने लगे। उस दिन से उनकी यह दशा हो गई कि सबेरे तड़के ही समुद्र स्नान के लिए जाते समय जब तक बाबाजी महाशय के चरणदर्शन कर बड़ी कातरतापूर्वक अपने दोष के लिए क्षमा न माँग लेते तब तक आगे न जाते, यहाँ तक कि बाबाजी महाशय के दल के किसी भी छोटे-बड़े व्यक्ति तक को साथ देख विनीत भाव से अपने अपराध की क्षमा माँग दण्ड देने के लिए प्रार्थना करते।

वांछानिधि को स्वप्न में मन्त्रप्राप्ति

एक दिन लगभग नौ बजे बाबाजी महाशय झाँजपीटा मठ में श्रीश्रीराधाकान्तदेव के सम्मुख बैठे थे। चारों ओर भक्तगण बैठे हुए नानारूप कथनोपकथन कर रहे थे। उसी समय कोई पैंतीस-छत्तीस वर्ष का एक व्यक्ति आकर उन्हें सिर से पैर तक देखने लगा। थोड़ी देर बाद 'यही हैं' कहते-कहते अचैतन्य हो गिर पड़ा। सब घबड़ा कर आगन्तुक के उपचार में जुट गये; बहुत देर तक प्रयत्न करने पर भी जब सफल न हुए तो बाबाजी महाशय ने मृदु-मृदु हँसते हुए बायें हाथ से उसका मस्तक स्पर्श किया। उनका स्पर्श पाते ही आगन्तुक का शरीर काँपने लगा और दोनों नेत्रों से अविरत जलधारा निकल कर गण्डस्थल को भिगोने लगी। पर उसके मुख पर आनन्द की झलक थी, स्वेद-सिंचित कलेवर पर पुलकावली सुशोभित हो रही थी। उसकी अवस्था देख सभी सोचने लगे कि यह भाग्यवान् कोई परमानन्दमय वस्तु हृदय में लेकर आनन्दसागर में डूब-उतरा रहा है। किसी प्रकार बाह्य-ज्ञान न होता देख बहुत-से लोगों के अनुरोध पर बाबाजी महाशय ने उसके वक्षस्थल पर अपना चरण अर्पण किया। चरण का स्पर्श पाते ही भक्त ने नेत्र खोले और दोनों हाथों से श्रीचरण जकड़ कर बालक की तरह रोने लगे। बाबाजी महाशय नानारूप प्रबोध-वाक्यों से सान्त्वना देकर उनकी अस्थिरता का कारण पूछने लगे। वे बोले, "बाबा, दस-बारह दिन हुए एक दिन हमारे गाँव में हरि-संकीर्तन हुआ। मैं उस समय अत्यन्त व्याकुल हो भगवान् से कहने लगा 'हा प्रभु! क्या मैं अदीक्षित ही रहूँगा? सद्गुरु के चरणों का आश्रय प्राप्त करने का सौभाग्य क्या मुझे नहीं मिलेगा? मैं घोर अविश्वासी हूँ। मेरे मन के अनुकूल गुरु मिलाने में तुम ही समर्थ हो।' कीर्तन समाप्त होने पर मैं घर आकर सो गया। रात में स्वप्न देखा कि एक दीर्घाकार उज्ज्वल श्यामवर्ण व्यक्ति हँसते-हँसते मेरे माथे पर हाथ रख कर कह रहे हैं, तुझे भय क्या है रे? तुझ पर

निताइचाँद की कृपा हुई है। कल रात को अत्यन्त पवित्र भाव से एकाकी पवित्र स्थान में शयन करना, सद्‌गुरु की प्राप्ति होगी।' मैं अनिमेष नेत्रों से उस हँसते हुए मुख की ओर देख रहा था। देखते-देखते वे कहीं चले गये। व्याकुल भाव से उन्हें खोजते-खोजते मेरी नींद टूट गई। आँख खोल कर देखता हूँ कि वहाँ तो कहीं कोई नहीं। सबेरा हो चुका था। सोचने लगा कि यह सब मेरे मन की कल्पना थी या किसी महापुरुष की कृपा? जो भी हों, महापुरुष के आदेशानुसार कार्य करूँगा। बाद में फल मालूम होगा। धीरे-धीरे रात हो गई। उस रात मैंने कुछ भी नहीं खाया। मकान के बाहरी हिस्से के एक छोटे कमरे में स्वच्छ वस्त्र धारण कर एक चटाई पर लेट कर स्वप्नदृष्ट महापुरुष की बात सोचते-सोचते सो गया। रात कब बीत गई, पता नहीं। रात के अन्तिम प्रहर में आपने मेरे मस्तक पर चरण अर्पण कर जलद गम्भीर स्वर में कहा 'बेटा वांछानिधि! तेरे जन्म-जन्मान्तर के पाप-ताप सब मैंने ले लिए, भय न कर, तुझे परमार्थ-धन की प्राप्ति हुई। यत्नपूर्वक उसकी रक्षा कर, शान्ति मिलेगी।' ऐसा कह इस नराधम को आलिंगनपूर्वक............" कहते-कहते भक्त का गला भर आया और वे उच्च स्वर से रोने लगे। बाबाजी महाशय सान्त्वना देते हुए बोले 'कहो भैया, कहो, पतितपावन निताइचाँद की कृपा की कथा सुन हृदय शीतल होगा।' भक्त गद्‌गद कण्ठ से बोले....."वे दाहिने कान में मन्त्र-प्रदान कर मेरे सम्मुख खड़े हो गये। मैं श्रीचरण पकड़ जब दण्डवत् प्रणाम करने लगा, आप हँसते-हँसते बोले 'प्राप्त वस्तु की यत्नपूर्वक रक्षा करो, मैं पुरी जा रहा हूँ, समय पर मिलन होगा' और अन्तर्हित हो गये। मैं व्याकुल भाव से रोते-रोते जग गया। अहैतुकी कृपा का स्मरण कर हृदय फूला नहीं समा रहा था। पर हताश मन से यह सोच-सोच कर अधीर भी हो रहा था कि अमूल्य निधि पाकर भी मैं कुछ नहीं कर पाया। हृदय की दो बात भी खोल कर न कह पाया। उन्होंने कृपा कर जो प्रदान किया, वह भी सब याद नहीं रहा। मन में बड़ा क्षोभ हो रहा था, 'हा प्रभो! तुमने अभागे के उद्धार के लिए कृपावश कितना कष्ट उठाया, पर कर्म-दोष से मैं कुछ नहीं समझ पा रहा हूँ। तुम पुरी चले गये हो। पुरी में कितने साधु-महात्मा रहते हैं। मैं इन पापी नेत्रों से तुम्हें कैसे पहचानूँगा? किंकर्तव्यविमूढ़ हो मैं समय काटने लगा। प्रायः सदा घर के उस बाहरी कमरे में ही रहता। देखते-देखते तीन दिन बीत गये। रात को जो महापुरुष पहले दिखाई दिये थे, वे ही आकर कहने लगे 'क्यों रे, तुझे अभीष्ट वस्तु प्राप्त हुई है, फिर इतना व्याकुल क्यों है?' मैं कातर भाव से बोला 'प्रभो! आपकी दया से ही मैंने पाया था, किन्तु उन्होंने जो कुछ दिया वह कुछ भी मेरे मस्तिष्क में नहीं है और श्रीगुरुदेव का परिचय भी मुझे प्राप्त नहीं हो सका है। आपको मेरे लिए इसका कुछ उपाय करना ही होगा।' इतना कह मैं रो पड़ा। वे कृपापूर्वक मुझे एक कागज देते हुए बोले 'देख! इस कागज पर तेरे गुरुदेव के हाथ का लिखा मन्त्र है। अभ्यासपूर्वक इसका जप कर। तेरे गुरुदेव का नामधाम मैं कुछ नहीं बताऊँगा। पुरी के झाँजपीटा मठ में जाकर अपने अभीष्टदेव को खोज लेना।' इतना कह वे अन्तर्धान हो गये। मैंने खोजते-खोजते दो दिन बाद आपको पाया है। आप ही ने मेरे ऊपर कृपा की थी।"

बाबाजी—भैया, निताइचाँद ने तुम पर कृपा की है, मुझे तो निमित्त भर बनाया है।

भक्त—प्रभो! मेरे लिए तो आप ही साक्षात् निताइ हैं। यदि ऐसा न होता तो मुझ-जैसे पतित जीवों का उद्धार कैसे होता?

बाबाजी—छिः! ऐसा नहीं कहते। मैं तो निताइचाँद का दासानुदास होने योग्य नहीं हूँ; फिर भी वे कृपा करते हैं तो काठ की पुतली को भी निमित्त बना लेते हैं। तुम्हारा वह लिखा हुआ कागज कहाँ है?

भक्त—यह है प्रभु! मैं साथ लाया हूँ।

इतना कह उन्होंने अपने दुपट्टे में से एक कागज खोलकर बाबाजी महाशय के हाथ में दे दिया। बाबाजी महाशय कागज पाकर विस्मित भाव से पढ़ने लगे। उपस्थित भक्त बाबाजी महाशय के हाथ में कागज देख एक साथ बोल उठे "सचमुच यह तो आपके ही हाथ का लिखा है। धन्य भाग्यवान् भक्त! तुमने अपने

अनेक जन्मों के सुकर्मों का फल इस अभूतपूर्व कृपा के रूप में प्राप्त किया है। अहो करुणामय! तुम जिस पर कृपा करने की इच्छा करते हो, उसे कोई अभाव नहीं रहता, इन महाभाग्यवान् भक्त के द्वारा इमें इस बात का प्रत्यक्ष अनुभव हो गया। भाई, हम लोगों पर कृपा करो, जिससे हम भी तुम्हारे समान सम्पूर्ण रूप से न सही, कणमात्र ही गुरु-कृपा लाभ कर सकें।" यह कह सबने भक्त को प्रणाम किया। तभी नवद्वीप दादा हँसते-हँसते आ उपस्थित हुए। उन्हें देखते ही आगन्तुक भक्त उच्च स्वर से बोल उठे, 'यही तो मेरे उद्धारकर्ता, परम-दयालु महापुरुष हैं। इन्होंने तो मुझे यह कागज दिया था। इन्होंने तो पहले दिन मुझे दर्शन देकर अभयवाणी द्वारा सांत्वना दी थी। मुझ जैसे पतित जीवों के लिए इन्हीं के तो प्राण रोते हैं। अहा! इतनी दया क्या मनुष्य में सम्भव है? ये मनुष्य कदापि नहीं हो सकते।' ऐसा कह रोते-रोते वे नवद्वीप दादा के चरणों पर गिर पड़े। यह देख नवद्वीप दादा विस्मित होकर बोले 'क्यों भाई, क्या हुआ? मैं तो कुछ भी नहीं समझ पा रहा।' तब एक व्यक्ति ने उपस्थित भक्त का सारा वृत्तान्त उन्हें सुना दिया। सुनकर नवद्वीप दादा सजलनयन भक्त को आलिंगन कर आनन्द-पूर्वक नृत्य करते-करते प्रभु की अहैतुकी कृपा की जय बोलने लगे। बाबाजी महाशय गद्गद कण्ठ से बोले "निताइचाँद जीवोद्धार के लिए कितना प्रयत्न करते हैं, कितनी तरह से जीव को उन्मुख करने की चेष्टा करते हैं, इसका कोई ठिकाना नहीं। मनुष्य तो केवल निमित्त मात्र है।"

"स्वतन्त्र पुरुष स्वेच्छामय निजगुणे।
वृक्षद्वारे कृपा करेन कोन भाग्यवाने।।
परम करुणामय गौर नित्यानन्द।
ना भजिनु हेन प्रभु मुञि छार मन्द।।
पतितेरे कोल दिया करेन आत्मसात्।
शास्त्रवाक्य नहे सुधु देखो हे साक्षात्।।"

कहते-कहते साश्रुनयन दोनों बाँहें फैलाते हुए वांछानिधि से बोले 'आओ भैया! परमदयालु करुणामय निताइचाँद के प्रत्यक्ष कृपापात्र तुम्हें स्पर्श कर अपने इस अविश्वासी हृदय को धन्य करूँ।' सब लोग चारों ओर से 'निताइ गौर हरि-बोल' कहते हुए जय-जयकार करने लगे। वांछानिधि कुछ दिन मठ में रहकर बाबाजी महाशय के आदेश से अपने देश को चले गये।

बालकों के साथ होली

देखते-देखते फागुन का महीना आ गया। एक दिन अचानक ठण्ड लग जाने के कारण बाबाजी महाशय की छाती और पीठ में दर्द होने लगा। प्रसिद्ध चिकित्सक राजवैद्य श्रीमागुनी मिश्र को बुलाया गया। उन्होंने हाथ देखकर नाना प्रकार की दवायें बताईं और विशेष सतर्कता के साथ शुश्रूषा करने के लिए कहा; यहाँ तक कि साथियों को भय दिखाते हुए बोले 'देखो यदि ठण्डी हवा या पानी इनके शरीर से किसी भी प्रकार छू गया तो बहुत खतरनाक होगा। सावधानी की जरूरत है, किसी प्रकार की त्रुटि न हो जाय।' साथी लोग कविराज की बात सुन विशेष सावधानी से इनकी सेवा करने लगे। कमरे की खिड़कियाँ बन्द कर उसे गरम रखने के लिए एक कोने में आग रखी गई। छाती पर फलालेन बाँध दी गयी और गरम कपड़ों से सारे शरीर को भली प्रकार ढक कर लिटा दिया गया। किसी से कोई विशेष बातचीत नहीं की। इनकी यह अवस्था देख सब साथी चिन्तित हो गये। लगभग तीन बजे बड़े हरीश बाबू के छोटे लड़के और वकील बाबू हरिश्चन्द्र घोष के दो लड़के दस-बारह दूसरे लड़कों को साथ लेकर झाँजपीटा मठ में आ गये। सबके हाथ में एक-एक पिचकारी थी। बाबाजी महाशय जिस कमरे में लेटे थे, उसी के दरवाजे के पास जा बड़े हरीश बाबू का लड़का बोला 'दादा महाशय! हम लोग आपके साथ होली खेलने आये हैं, आप उठें।' सुनते ही बाबाजी महाशय बोले 'क्या है रे?' लड़के बोले 'हम लोग होली खेलने आये हैं।' बाबाजी महाशय झटपट सीने का फलालेन इत्यादि खोल बाहर निकल आये। साथियों ने बहुत रोकना चाहा पर उनकी कुछ न चली। बाबाजी महाशय ने स्नानवेदी के निकट पत्थर के कुण्ड में जल भरने का आदेश किया। एक आदमी को रंग लाने बाजार भेज दिया। बाबाजी महाशय ने एक बड़ी पिचकारी और साथियों ने आठ-दस छोटी-छोटी पिचकारियाँ हाथ में

ले लीं। कुण्ड में जल भरकर रंग घोला गया। ललिता दासी, कुसुममञ्जरी दासी, रसमञ्जरीदासी[1] और दूसरी सखियाँ एवं आगन्तुक बालक सब एक ओर और अकेले बाबाजी महाशय दूसरी ओर।

खेल आरम्भ हुआ। सभी आत्मविस्मृत थे, किसी को बाह्यस्मृति न थी। बाईस-तेईस पिचकारियाँ बाबाजी महाशय को लक्ष्य कर अविरल बरस रही थीं। फिर भी बाबाजी महाशय कभी-कभी सबको लगभग तीस हाथ दूर हटा देते थे। सभी खेल में मत्त थे। सभी बाबाजी महाशय को परास्त करने की चेष्टा कर रहे थे, कोई सफल नहीं हो पा रहा था। बाबाजी महाशय उन पर सावन की जलधारा की भाँति पिचकारी छोड़ रहे थे। खेल में हार कर सब कहने लगे 'कुण्ड से रंग भरने में हमारे पक्ष को असुविधा होती है, अत: हम दो-दो लोग एक-एक पात्र में रंग ले लें, आप कुण्ड के रंग से खेलें, तब देखें कैसे हराते हैं।' बाबाजी महाशय के सहमत हो जाने पर दो-दो लोगों ने एक-एक पात्र में रंग भर उन्हें चारों ओर से घेर कर खेल आरम्भ कर दिया। अपूर्व ऐश्वर्य की छटा! चारों ओर से सब अविश्रान्त भाव से बाबाजी महाशय पर पिचकारी छोड़ रहे हैं और वे अकेले एक पिचकारी से सबसे समान रूप से युद्ध कर रहे हैं। प्रत्येक व्यक्ति यही देख रहा है कि बाबाजी महाशय सबको छोड़ केवल मेरे साथ पिचकारी खेल रहे हैं। सब एक ही समय में समानरूप से बाबाजी महाशय का मुख देख रहे हैं, सब लाल ही लाल दिखाई दे रहे हैं। दो लोग जल लाकर कुण्ड में बराबर डालते जा रहे हैं फिर भी पूरा नहीं डाल पा रहे। अन्त में बाबाजी महाशय घड़ा भर-भर एक-एक व्यक्ति के ऊपर रंग डालने लगे। सब अपना-अपना रंग-पात्र छोड़कर भाग खड़े हुए। लगभग पाँच बजे तक इसी प्रकार होली का मधुर खेल खेलकर बालकों के साथ भाँति-भाँति के मिष्टान्न-पक्वान्न महाप्रसाद सेवन और मनोरंजन में कुछ समय बिता कर सबको विदा किया।

अब साथियों को होश आया। सब सोच-सोच कर अस्थिर होने लगे। आपस में कहने लगे 'दो घण्टे तक हम इस प्रकार के अस्वस्थ व्यक्ति के ऊपर अविरत ठण्डा पानी डालते रहे, जाने क्या विपत्ति आयगी।' यह कह कर झट बाबाजी महाशय के भीगे कपड़े उतार कर उन्हें सूखे कपड़े पहना दिये। वे मृदु मुसकान के साथ बहिर्वास पहन बाहर बैठ गये। साथी सब अपने-अपने व्यवहार पर लज्जित थे, किसी में कुछ भी बोलने का साहस न था। शाम हुई, ठाकुर की आरति आरम्भ हुई, बाबाजी महाशय कीर्तन करने लगे। रात लगभग नौ बजे तक कीर्तन कर श्रीमन्दिर के सम्मुख विश्राम किया। पथ्य के लिए क्या बनेगा, यह पूछने का साहस भी किसी को न था। तभी बाबाजी महाशय स्वयं बोले 'जगन्नाथदेव का महाप्रसाद है क्या?'

ललितादासी—कविराज महाशय ने महाप्रसाद पाने के लिए मना कर दिया है।

बाबाजी—अच्छा, यह बात जो पूछता उसे बताती, मुझे तो बता कि महाप्रसाद है या नहीं?

ललिता—है तो, ठण्डा हो गया है।

बाबाजी—अच्छा, ले आ।

ललितादासी एक पत्थर की थाली में महाप्रसाद ले आई। बाबाजी महाशय ने दण्डवत् प्रणामपूर्वक महाप्रसाद पा विश्राम किया। सभी चिन्तित थे कि बाबाजी महाशय रात में अस्वस्थ न हो जायँ। दूसरे दिन सबेरे ही पूर्वोक्त राजवैद्य ने आकर देखा कि बाबाजी महाशय नंगे बैठे हैं, तो ललितादासी को झिड़कते हुए बोले 'क्यों, मैं तुम लोगों को बार-बार सावधान कर गया था कि इनकी छाती पर गरम कपड़ा बाँधकर गरम कुरता पहनाना और बड़ी सावधानी रखना, तुमने वह सब कुछ नहीं किया।' तभी बाबाजी महाशय बोले 'मैं कल तो बड़ी सावधानी से रहा था। आज तबीयत बिलकुल ठीक है, इसीलिए ऐसे बैठा हूँ।'

कविराज—ठीक है, फिर भी एक दिन में तबीयत पूरीतरह से ठीक नहीं हो सकती। ठण्ड लगने से और खराब हो सकती है।

बाबाजी—मुझे तो लगता है कि बड़ी गर्मी है, क्योंकि कल बहुत-सी गरम चीजों का व्यवहार किया था।

1. इनका पूर्व नाम रघुनाथदास था। आउलिया मठ में ठाकुरसेवा का भार पहले इन्हीं पर था। श्रीगुरुदेव की कृपा से और भगवत्सेवा के प्रभाव से इनके हृदय में गोपीभाव का संचार हुआ। इसीलिये कुछ दिन पूर्व इन्होंने सखीवेश ग्रहण कर लिया था।

कविराज—अच्छा, लाइये हाथ देखूँ।

बाबाजी महाशय ने कविराज महाशय के हाथ में अपना हाथ दे दिया। सबको मालूम था मिश्र महाशय का नाड़ी-ज्ञान बहुत उच्च कोटि का है, यहाँ तक कि नाड़ी देख कर रोग-निदान और मृत्यु-काल तक बता सकते हैं। इसीलिए दूर-दूर से लोग मिश्र महाशय को ले जाते हैं। आज मिश्र महाशय हाथ देख कर कहने लगे 'कैसा आश्चर्य है। मैंने तो आपको कोई विशेष गर्म औषधिं नहीं दी, कल दिन-रात में कुल तीन गोलियाँ दी थीं। उससे इतनी गर्मी कैसे आ गई मैं नहीं समझ पा रहा। कल क्या पथ्य लिया था?'

बाबाजी—कल रात को महाप्रसाद लिया था। विशेष व्यस्तता के कारण आपकी दो गोलियाँ भी नहीं ले सका; तब भी बिल्कुल ठीक हो गया।

नवद्वीप दादा तभी मुस्कराते हुए बोले 'मिश्र महाशय, कल की सावधानी की क्या कहें, एक बार इनके शरीर की ओर और आश्रम के चारों ओर देख कर समझ सकते हैं। तीन बजे से पाँच बजे तक प्रातः तीस कलसी ठण्डे जल से पिचकारी खेली गयी। बाद में साढ़े छह से नौ बजे तक बाहर खड़े होकर कीर्तन करते रहे। रात दस बजे जगन्नाथ जी का महाप्रसाद सेवन कर कमरे का दरवाजा, खिड़कियाँ सब खोलकर सो गये। अब भी इनके शरीर पर रंग के चिह्न हैं।' कविराज महाशय अभी तक अवाक् होकर नवद्वीप दादा की बात सुन रहे थे। बात समाप्त होते न होते बाबाजी महाशय से बोले—

"महात्मानां कार्यमचिन्तनीयं
देवोऽपि ज्ञातुं नहि यत् समर्थः।
क्षुद्रातिक्षुद्रोऽपरिपक्वबुद्धिः
कुतोऽहमज्ञः परिचिन्तयामि।।

महाप्रभु के नित्यपरिकर आपके समान महापुरुषों को लेकर समालोचना करना या उनके लिए व्यवस्था करना ठीक नहीं। हमारा कोई अपराध ध्यान में न लाइयेगा। हम तो ब्राह्मण जाति के लोग हैं, स्वभाव से अभिमानी हैं। चिकित्सा विषयक शिक्षा पाकर अभिमान और भी बढ़ गया है।"

बाबाजी—आप मेरे पितृतुल्य हैं, फिर ब्राह्मण हैं, सब विषयों के गुरु। विशेषतः हमारे आराध्य देव श्रीगौरांग मिश्र वंश में ही हुए थे। देशगत भेद होते हुए भी जातिगत और उपाधिगत समानता के कारण आपको देखते ही मुझे पुरन्दर मिश्र की कथा याद आ जाती है। मैं आपका दासानुदास हूँ। कृपा कीजिए, लीलामय की लीला देखकर इस क्षुद्रातिक्षुद्र प्राकृत देह में अभिमान न हो। आप आदेश करें तो आज स्नान करलूँ।

कविराज—व्यर्थ में मुझे निमित्त का भागी बनाने से क्या होगा? मेरा विश्वास है कि आप प्राकृत मनुष्य नहीं हैं। आपकी इच्छा ही भगवत् इच्छा है। आप जो चाहें कर सकते हैं।

बाबाजी महाशय ललितादासी से बोले 'मिश्र महाशय का आदेश मिल गया, जल्दी स्नान का प्रबन्ध करो।' इस प्रकार स्नान कर स्वस्थ शरीर से श्रीश्रीजगन्नाथदेव के दर्शन और संकीर्तनानन्द में दिन बिताने लगे।

न्यायरत्न की महाप्रसाद-सेवा

एक दिन बालेश्वर जिला निवासी कुछ सज्जन श्रीधाम पुरी में श्रीश्रीजगन्नाथदेव के दर्शन के लिये आये। वे बहुत भक्तिमान थे; साथ में कोई ज्यादा आडम्बर नहीं था। केवल एक नौकर और एक पुरोहित। पुरोहित का नाम था श्रीयुत शशिभूषण गंगोपाध्याय न्यायरत्न। न्यायरत्न महाशय कर्मनिष्ठ, निरामिषभोजी और सदाचारी ब्राह्मण थे। त्रिसन्ध्या स्नान और एक समय आहार करते थे। वे एक दिन बिना खाये रह सकते थे, पर जिस-किसी के हाथ का नहीं खा सकते थे। श्रीश्रीजगन्नाथदेव का दर्शन कर उन्हें बड़ा सुख हुआ, पर आनन्द बाजार का व्यापार देख बड़ा बुरा लगा, यहाँ तक कि वे अपने हृदय का भाव दबा न सके और एक पुरीवासी सज्जन के पास जाकर बोले 'अरे महाशय, यह क्या? यहाँ तो बाजार में अन्न बिकता है और जो आता है उसे जूठा कर जाता है।' उन सज्जन ने उत्तर दिया 'अभी आपने देखा ही क्या है। पण्डा लोग बिना चखे महाप्रसाद मन्दिर से बाहर नहीं निकालते, यहाँ तक कि कुत्ता भी खा जाता है तो उसी

हाँड़ी में देव-देवी को महाप्रसाद समर्पित किया जाता है। यही तो जगन्नाथदेव का माहात्म्य है।'

न्यायरत्न—बाबा! छोड़िये माहात्म्य। यहाँ हम ठाकुर के दर्शन को आते हैं या जाति गँवाने को जगदीश्वर ने जिस कुल में जन्म दिया है उसके कर्तव्य को भूल लोभवश इस प्रकार का कार्य कर पिण्ड की इच्छा रखने वाले अपने पुरखों को निराश कर उनके अभिशाप का भागी थोड़े ही बनना है।

सज्जन—महाशय, हम उच्चकुल के बहुत-से पंडितों को इसी महाप्रसाद के पिण्ड द्वारा अपने पुरखों का श्राद्ध करते नित्य देखते हैं।

न्यायरत्न—भक्ति-शास्त्र में किसी-किसी स्थान पर कुछ लोगों के मत-से विष्णु-निवेदित अन्न द्वारा पितरों के श्राद्ध का विधान तो है, किन्तु शास्त्र इस प्रकार चाण्डाल पर्यन्त के उच्छिष्ट द्वारा पितरों के श्राद्ध का विधान कभी नहीं कर सकते।

सज्जन—प्रभु! जगन्नाथक्षेत्र के माहात्म्य की सूचना देने वाले किसी ग्रन्थ का बोध आपको होता तो इस प्रकार की समालोचना न करते। मैं तो शास्त्र आदि कुछ भी नहीं जानता फिर भी सुना है—

शुष्कं पर्युषितं वापि नीतं वा दूरदेशतः।
प्राप्तमात्रेण भोक्तव्यं नात्र कालविचारणा।।

जब शुचि-अशुचि, काल-अकाल का विचार किये बिना महाप्रसाद ग्रहण करने की व्यवस्था है तो फिर और क्या बाकी रहा?

न्यायरत्न महाशय उन सज्जन की बात सुन क्रुद्ध होकर बोले 'देखिये महाशय, मैं आपका यह सब सिद्धान्त नहीं मान सकता। यह सिद्धान्त अन्न प्रसाद के विषय में नहीं हैं, केवल चरण-तुलसी और चरणामृत के लिये है। घोर कलियुग में इस प्रकार अपने-अपने मतों की स्थापना करने के लिए शास्त्रों का एकदेशीय अर्थ ग्रहण करने से ही धर्म का लोप हो गया है। इसीलिये यह दुरवस्था फैली है।'

इतना कह न्यायरत्न महाशय द्रुतगति से अपने निवास-स्थान पर पहुँच यजमानों से कहने लगे 'देखो, क्या तुम साधारण लोगों की जूठन-मन्दिर का महाप्रसाद ही मँगाओगे या घर पर कोई व्यवस्था करोगे? मैं जो देख आया हूँ उसे देख कर अब मैं महाप्रसाद ग्रहण नहीं करूँगा।' वे लोग न्यायरत्न महाशय की सदाचारिता जानते थे। उन्होंने चिन्तित होते हुए कहा 'आपके लिए पण्डे को बुला कर अलग से भोग की व्यवस्था करा देंगे।'

न्यायरत्न—नहीं, उन सब पण्डे-पुजारियों पर मेरा विश्वास नहीं। मैंने उन लोगों के बारे में जितना सुना है उसके बाद और कुछ शेष नहीं रहता। मैं कुछ फल और दूध लेकर रह लूँगा।

वे लोग बहुत तर्क-वितर्क करके भी न्यायरत्न महाशय को प्रसाद लेने पर राजी न कर पाये, तो उनके लिये कुछ फल, मिठाई और दूध की व्यवस्था कर दी। तीन दिन बीत गये, न्यायरत्न महाशय ने अन्न छुआ भी नहीं। चौथे दिन अपराह्न में उन लोगों ने घर वापस जाने का निश्चय किया। न्यायरत्न महाशय नित्यकर्म से निवृत हो श्रीमन्दिर में जगन्नाथ जी के दर्शन के लिये गये तो देखा कि जगमोहन में संकीर्तन हो रहा है। संकीर्तन के नेता बाबाजी महाशय की कण्ठ-ध्वनि सुन न्यायरत्न महाशय का मन आकर्षित हुआ। वे मन्त्र-मुग्ध की तरह खड़े हो कर कीर्तन सुनने लगे। यहाँ तक कि सदाचारी न्यायरत्न महाशय के विधि-विधान का बाँध तोड़ उनके नेत्रों से दो-एक बूँद आँसू टपक पड़े। थोड़ी देर बाद पास में खड़े किसी व्यक्ति से संकीर्तन दल के नेता दीर्घाकार पुरुष का परिचय पूछा तो वह बोला 'इन्हें सब लोग बड़े बाबाजी कहते हैं। ये झाँजपीटा मठ में रहते हैं।'

न्यायरत्न—मुझे कुछ बातें पूछनी हैं। क्या ये उनका उत्तर देंगे?

सज्जन—खुशी से पूछिए। ये बड़े निरभिमानी हैं। इनसे कोई बालक भी कुछ पूछता है तो उसे तब तक समझाते हैं जब तक वह समझ नहीं जाता।

न्यायरत्न—इनसे कब बातचीत की जाय?

सज्जन—कुछ समय प्रतीक्षा कीजिए। कीर्तन समाप्त होने पर यहीं बैठेंगे। उस समय जो चाहे पूछ लीजिएगा।

सज्जन की बात सुन न्यायरत्न महाशय विशेष आश्वस्त भाव से कीर्तन सुनने लगे। लगभग डेढ़ पहर तक संकीर्तन करने के बाद बाबाजी महाशय के बैठ जाने पर न्यायरत्न महाशय उनके समीप पहुँचे। बाबाजी महाशय ने उनका परिचय पूछा। उन्होंने अपना परिचय देने के बाद पूछा 'बाबा, महाप्रसाद किसे कहते हैं? क्या केवल अन्न को ही महाप्रसाद कहते हैं, दूसरी वस्तुओं को नहीं?'

बाबाजी—आप अनेक शास्त्रों के पण्डित हैं। मैं सिद्धान्त क्या जानूँ? पर गुरुदेव से सुना है 'श्रीकृष्णे निवेदित जा किछु हइबे। महाप्रसाद जाने ताहा ग्रहण करिबे।। स्पर्श दोषे कृष्ण प्रसाद नष्ट नाहिं हय। नष्ट दोष घटाइले नरक निश्चय।।'

कुक्कुराणां मुखाद् भ्रष्टं तदन्नं पावनं महत्।

★ ★ ★ ★ ★

शुष्कं पर्युषितं वापि नीतं वा दूरदेशतः।
प्राप्तमात्रेण भोक्तव्यं नात्र कालविचारणा।।

दृष्टान्तस्वरूप एक कथा सुनिए। एक दिन देवर्षि नारद ने वैकुण्ठ जाकर देखा कि वैकुण्ठनाथ नारायण भोजन करने बैठे हैं। श्रीलक्ष्मीदेवी पंखा कर रही हैं। नारद मन ही मन सोचने लगे कि आज बड़े समय से आये। यदि देवी प्रसन्न होकर मुझे एक कण अधरामृत प्रदान कर दें तो धन्य हो जाऊँ। भगवान् की सेवा समाप्त हो जाने पर नारद लक्ष्मीदेवी की स्तुति करने लगे। स्तुति से तुष्ट हो लक्ष्मीदेवी ने नारद से वर माँगने के लिए कहा तो वे बोले 'माँ, मैं और कुछ नहीं चाहता। मुझे भगवान् के अधरामृत का एक कण प्रदान कर दें तो मेरी मनोकामना पूर्ण हो जाय।' यह सुन लक्ष्मीदेवी ने प्रसन्न हो नारद जी को थोड़ा अधरामृत दिया। नारद उसे पाकर प्रेम से उन्मत्त हो नृत्य करने लगे। आठों सात्विक विकार उनके अंगों को आभूषित करने लगे। अव्याहत-गति नारद नृत्य करते-करते कैलाश पहुँचे। नारद की परम प्रेममयी अवस्था देख देवाधिदेव महादेव पूछने लगे 'प्रिय नारद! तुम्हें इस प्रकार का प्रेमभाव कहाँ से प्राप्त हुआ?

नारद—गुरुदेव! आज आपकी कृपा से मैंने परम पदार्थ लाभ किया है। आज मेरी बहुत दिनों की आशा पूर्ण हुई है। श्रीवैकुण्ठधाम पहुँचकर मैंने देखा कि वैकुण्ठनाथ भोजन कर रहे हैं। श्रीलक्ष्मीदेवी पंखा झल रही हैं। कुछ समय बाद भगवान् का आचमन हुआ। थोड़ा भगवद्-अधरामृत पाने के लिए मैंने लक्ष्मीदेवी की स्तुति की। उन्होंने प्रसन्न हो मेरी अभिलषित वस्तु प्रदान कर बहुत दिनों की साध पूरी की। प्रभो, और क्या कहूँ, यदि संसार में कोई वस्तु प्राप्त करने योग्य है या अमृत नाम की कोई वस्तु है तो वह भगवद् अधरामृत है। आहा! मैंने ऐसे अपूर्व पदार्थ का कभी आस्वादन नहीं किया।

भोलानाथ नारद पर कुछ क्रोध करते हुए बोले 'नारद, क्या यही तुम्हारी गुरुभक्ति है? क्या यही तुम्हारी कृतज्ञता है? इस प्रकार की अपूर्व वस्तु से मुझे वंचित कर अकेले ही उसका उपभोग कर लिया।' नारद डरते-डरते बोले 'गुरो! मैं प्रकृत ही अकृतज्ञ हूँ, श्रीगुरु समर्पित जीव को जो कुछ भी मिले उसे यदि वह श्रीगुरुदेव को अर्पित न करे तो घोर प्रवञ्चक और अपराधी होता है। प्रभो! मैं प्राप्त करते ही लोभपरवश हो हिताहित ज्ञान से शून्य हो गया। अब क्या करूँ आदेश कीजिए।' महादेव नारद के दाहिने हाथ को देखने लगे। खोजते-खोजते नखसन्धि में उन्हें एक कण दिखाई दिया। महाप्रसाद के उस कण का सेवन कर गुरु शिष्य दोनों प्रेमोन्मत्त भाव से नृत्य करने लगे। भोलानाथ के पद भार से कैलाशपुरी डगमगा उठी। पार्वतीदेवी अन्तःपुर से डरती हुई आकर दोनों की अवस्था देख विस्मित हो गई। कुछ देर बाद महादेव के शान्त हो जाने पर देवी उनके इस आकस्मिक प्रेमोन्माद का कारण पूछने लगीं तो शंकरदेव बोले 'देवी, नारद की कृपा से आज मैं देवदुर्लभ महाप्रसाद प्राप्त कर धन्य हुआ हूँ। आहा! कैसा अमृत-विनिन्दित मधुर आस्वादन था। पार्वती! मैंने बहुत दिन भगवद्-अनुग्रह लाभ किया है, पर इस प्रकार की कृपा मेरे ऊपर कभी नहीं हुई।'

शंकर की बात सुन पार्वतीदेवी को अभिमान हो आया। उनका मुख मलिन पड़ गया। गण्डस्थल कम्पित और रक्तिमाकार हो गये। फड़कते हुए होंठों से बोलीं 'प्रभो! क्या मेरे प्रति यही आपका प्रेम है? क्या यही

अहैतुकी प्रेम का लक्षण है? प्राय: सदा ही आप मुझे अर्द्धांगिनी कहते हैं। क्या यही उसका प्रमाण है? अच्छा, मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि आपने मुझे वंचित कर जो महाप्रसाद पाया है वही मैं आपको छोड़ आचण्डाल सभी को समान रूप-से बाटूँगी।' यह कह देवी तपस्या में लग गयीं। उसी तपस्या के फल से विमलाक्षेत्र नाम के इस धाम में बिना किसी विचार के महाप्रसाद वितरण होता है। श्रीश्रीजगन्नाथदेव के खाने से इसका प्रसाद नाम हुआ। फिर विमलादेवी को समर्पित होने से इसका नाम महाप्रसाद हो गया। यह महाप्रसाद जितना निम्नगामी होगा, उतना ही एक-एक महत् शब्द उसके आगे जुड़ जायगा। यह किसी प्रकार भी अपवित्र नहीं होगा। आप यदि दु:खी न हों तो मैं आपसे कुछ पूछना चाहूँगा।

न्यायरत्न—बाबा, मैं आज तीन दिनों से यहाँ रह रहा हूँ, किन्तु मनको शान्ति नहीं, जाने ईश्वर की क्या मर्जी हैं। आज अपको देखते ही मनमें धारणा हो गई कि आपके द्वारा ही शान्ति मिलेगी। और तो क्या कहूँ, आपके मुख से कीर्तन सुनते ही मेरे हृदय का भाव परिवर्तित होने लगा। आज मेरे हृदय में एक अभाव-जैसा लग रहा है। आप जो चाहें पूछिए।

बाबाजी—अच्छा, श्रीविग्रह के विषय में आपकी क्या धारणा है?

न्यायरत्न—श्रीविग्रह और तत्स्वरूप अभिन्न हैं। सच्चिदानन्दतनु भगवद्स्वरूप में अंग-अंगी भेद नहीं है। श्रीमूर्ति के साक्षात्कार में भगवद्-साक्षात्कार न करने से पुनर्जन्म होता है। श्रीमूर्ति दो प्रकार की होती है—लेख्य और लेप्य। बाह्य और अभ्यन्तर भेद से लेख्य मूर्ति दो प्रकार की होती है। लेप्य चार प्रकार की होती है—मनोमयी, मणिमयी, दारुमयी और मृण्मयी। इनमें से प्रत्येक मूर्ति को उनका स्वरूप मानना होगा।

बाबाजी—जगन्नाथदेव को आप कौन-सा स्वरूप मानते हैं?

न्यायरत्न—जगन्नाथदेव साक्षात् नारायण हैं—इस सिद्धान्त का खण्डन करने की सामर्थ्य किसी-में नहीं है।

बाबाजी—अच्छा, यदि कोई साक्षात् नारायण का भुक्तावशेष स्पर्श करे, तो क्या वह अपवित्र हो जायेगा? या उक्त महाप्रसाद में किसी दूसरे के द्वारा भुक्त होने के बाद उस व्यक्ति के अधर का गुण उसमें संचारित हो जायेगा, या भगवद्-अधर का गुण ही रहेगा?

न्यायरत्न महाशय का मन इस बार न जाने कैसा हो गया। बोले 'आपको बड़ा कष्ट हुआ, अब चलिये आपके निवासस्थान को चलें।' बाबाजी महाशय बड़े आग्रह से न्यायरत्न महाशय को साथ ले कीर्तन करते-करते झाँजपीटा मठ गये। मठ में श्रीश्रीराधाकान्तदेव और दूसरी मूर्तियों के दर्शन से न्यायरत्न महाशय बड़े प्रसन्न हुए। जिस स्थान पर वैष्णवों की महाप्रसाद सेवा होती थी उसी पंगत घर में सब बैठ गये। फिर महाप्रसाद के सम्बन्ध में बातचीत आरम्भ हुई।

न्यायरत्न—बाबा, आपने जो-'शुष्कं पर्युषितं वापि' प्रमाण दिया था, वह क्या-अन्न-महाप्रसाद के विषय में है? मैं तो समझता था कि वह चरणामृत और चरण-तुलसी के विषय में है।

बाबाजी—अच्छा इसे चरणामृत और चरणतुलसी के विषय में मान लीजिये, किन्तु 'कुक्कुराणां मुखाद्भ्रष्टं तदन्नं पावनं महत्। न देश नियमस्तत्र न काल नियमस्तथा। प्राप्तमन्नं द्रुतं शिष्टै र्भोक्तव्य हरिरब्रवीत्।' इत्यादि प्रमाणों में जो अन्न शब्द का साफ-साफ उल्लेख है, उससे मन में किसी सन्देह के रहने की गुञ्जाइश नहीं। और भी देखिए, भगवान् के अधरामृत में ही यदि स्पर्श दोष रह जाय तो उनकी भगवत्ता कहाँ रही? मैं जिसे ईश्वरबुद्धि से पूजता हूँ या जिसको भोग लगाता हूँ, उसमें यदि मेरा ही विश्वास न हो तो दूसरे का क्या होगा? 'महाप्रसादे गोविन्दे नामब्रह्मणि वैष्णवे, स्वल्प-पुण्यवतां राजन् विश्वासो नैव जायते।' भक्तों ने जोर देकर कहा है—हे भगवन्! यद्यपि तुम्हारी माया दुरत्यया है फिर भी 'उच्छिष्टभोजिनो दासास्तव मायां जयेमहि।' भगवद्-अधरामृत की जब इतनी महिमा है तो वह सामान्य स्पर्श मात्र से ही दूषित हो जायगा? आप पण्डित हैं, मैं आपको और क्या समझाऊँ। आप स्वयं सोच-विचार कर देख लीजिये क्या उचित है। मैं तो सीधी बात जानता हूँ, जब तक अधरामृत और

चरणामृत में विश्वास नहीं होता, भगवान् में भी नहीं हो सकता।

न्यायरत्न महाशय चुपचाप बाबाजी महाशय की बात सुन रहे थे। उनका हृदय द्रवित हो रहा था, नयनों से जल प्रवाहित हो रहा था, प्राणों में अनुताप की ज्वाला जल रही थी, बालक की तरह रोते-रोते बोल उठे 'बाबा, मेरी क्या गति होगी? मैं घोर अविश्वासी और पाखण्डी हूँ। मैंने तीन दिन जगन्नाथ धाम में निवास कर उनके दर्शन किये, किन्तु उसका कोई भी फल मुझे नहीं मिलेगा, क्योंकि जगन्नाथदेव के महाप्रसाद और उनके सेवक गण के प्रति विद्वेष-भाव हृदय में पोषित करता रहा हूँ। इस घोर अपराध से मुक्ति का क्या उपाय है? मेरे हृदय में धू-धू कर अनुताप की अग्नि जल रही है। मेरे जात्याभिमान को, मेरे पाण्डित्य को, मेरी नैष्ठिकता को धिक्कार है। हाय! आज तक मैं कितनी भीषण अविद्या से ग्रसित रहा। आप मेरे ज्ञानदाता, परम हितैषी गुरु हैं। आप कृपा कर मुझे बतायें कि इस अपराध से उद्धार का क्या मार्ग है?'

बाबाजी महाशय हाथ जोड़ कर बोले 'आप सुविज्ञ नैष्ठिक ब्राह्मण हैं। आप ही मेरे लिये गुरु के समान हैं। आप स्थिर होकर श्रीश्रीजगन्नाथदेव से कहिये। वे परम दयालु हैं। अपने सेवकों की बुराई या उनके अवज्ञाजनित अपराधों को अपने गुणों से क्षमा कर देते हैं। महाप्रसाद की अवज्ञा के लिए श्रीविमलादेवी से सच्चे मन से क्षमा माँगिए। वे जगदम्बा हैं। सन्तान के प्रति कभी कठोर नहीं होतीं।'

न्यायरत्न—मैं उनसे और क्या कहूँ। वे आद्या-शक्ति महामाया अन्तर्यामिनी हैं। मेरे हृदय के सारे भाव जानती हैं। वे आपामर जनसाधारण को महाप्रसाद वितरण करने की प्रतिज्ञा से आबद्ध हैं। मेरे कारण ही यदि वे अपनी प्रतिज्ञा भंग करना चाहती हैं तो करें, मैं घोर पाखण्डी हूँ, जब तक वे स्वयं ही मुझे महाप्रसाद न देंगी, मैं नहीं समझूँगा कि मेरे अपराधों का मोचन हुआ।

इसी समय गुरुदास ब्रह्मचारी नामक एक पूर्वदेशीय भक्त मिठाई का पात्र हाथ में लेकर अत्यन्त त्रस्तभाव से बाबाजी महाशय के पास आकर बोला बाबा, एक स्त्री मेरे हाथ में यह महाप्रसाद देकर बोली 'बाबा! तुम शीघ्र ही यह महाप्रसाद ले जाकर बाबाजी महाशय को दे दो।' और यह कहकर मुझे मन्दिर से यहाँ भेज दिया। सुनते ही बाबा महाशय पुलकाश्रु-कम्पान्वित कलेवर से महाप्रसाद हाथ में ले नृत्य करते-करते न्यायरत्न महाशय के मुख में एक-एक ग्रास देने लगे। न्यायरत्न महाप्रसाद पा प्रेमपूरित हृदय से नाचते-नाचते बोल उठे—

'धन्योऽस्मि कृतकृतोऽस्मि सफलं जीवितं मम।
साधु-संगप्रभावेण सद्यः प्रक्षीणकल्मषः।।

'हा दयामय! करुणानिधान! मैं कर्मचाण्डाल तुम्हारे सेवक और अधरामृत का विद्वेषी हूँ। फिर भी तुम्हारी इतनी दया। माँ करुणामयि विमले! तुम्हारे क्षेत्र में आकर मैंने घोर अपराध किया, किन्तु तुम्हारी अहैतुकी करुणा के बल से उद्धार पा लिया। माँ! सन्तान के प्रति सदा इसी प्रकार की दया बनाए रखना' कहते-कहते उन्मत्त के समान नृत्य करने लगे। उनका शरीर पुलकित था। नयनों का जल वक्षस्थल को भिगो रहा था। थोड़ी देर बाद बाबाजी महाशय के चरणों में साष्टांग गिर पड़े। इतनी दृढ़ता से उन्होंने बाबाजी महाशय के चरण पकड़ लिये कि अनेक चेष्टा करने पर भी वे छुड़ा न सके। न्यायरत्न महाशय के मुख से केवल यही शब्द निकल रहे थे, 'गुरुदेव, आपकी कृपा ही मेरे लिये एकमात्र सम्बल है। आपकी कृपा के रूप में मैंने अमूल्य रत्न का लाभ किया है। मैं अनन्त काल तक आपके चरणों में कृतज्ञता-पाश से बंधा रहूँगा।' बाबाजी महाशय ने न्यायरत्न महाशय को दोनों हाथों से उठा कर आलिंगन किया। कैसा अपूर्व दृश्य! एक-दूसरे के नेत्रों के जल से दोनों सिक्त हो रहे थे। एक-दूसरे के कम्प से दोनों कम्पित हो रहे थे। कैसा अपूर्व मिलन! कैसा सुन्दर परिवर्तन! जो नैष्ठिक ब्राह्मण अपनी जाति के लोगों के हाथ का खाने मे भी परहेज करता था, आज सत्संग के प्रभाव से श्रीश्रीजगन्नाथदेव के महाप्रसाद को हाथ में ले एक-एक व्यक्ति के मुख में दे रहा था और शेष स्वयं ग्रहण कर रहा था। न्यायरत्न महाशय के यजमान उन्हें खोजते-खोजते झाँजपीटा मठ आये तो उनकी अवस्था

देख चकित रह गये। न्यायरत्न महाशय यजमानों को देखते ही अस्तव्यस्त भाव से महाप्रसाद हाथ में ले उनके मुख में दे और शेष स्वयं ग्रहण कर साश्रुगद्‌गद कण्ठ से बोले 'बाबा, इन महापुरुष की कृपा से आज मेरा कुसंस्कार दूर हो गया। आज मैं महाप्रसाद पाकर धन्य हूँ। आज मेरी समझ में आया कि भगवद् कृपा की अपेक्षा भगवद्-भक्त की कृपा अधिक बलवती है। भाई, तुम अपने देश को जाओ। मैं कुछ दिन इन्हीं महापुरुष के साथ रह कर मनुष्य जीवन का वास्तविक कर्तव्य जानकर वापस आऊँगा।' यजमान लोगों ने पुरोहित महाशय तथा दूसरे लोगों को भक्तिभाव से प्रणाम कर अपने देश को प्रस्थान किया। न्यायरत्न महाशय भी मध्याह्न स्नान कर श्रीश्री राधाकान्तदेव का महाप्रसाद सेवन करने बैठे। थोड़ी दूर बाबाजी महाशय भी बैठे। महाप्रसाद सेवन करते-करते न्यायरत्न महाशय ने बाबाजी महाशय से पूछा 'श्रीश्रीजगन्नाथदेव के महाप्रसाद और श्रीश्रीराधाकान्तदेव के महाप्रसाद में कुछ अन्तर है क्या?'

बाबाजी—आपकी क्या धारणा है?

न्यायरत्न—कृष्ण को निवेदित वस्तु ही यदि महाप्रसाद है, जैसा कि शास्त्रों में कहा है, तो इसमें मेरी धारण के लिये कोई स्थान नहीं रहता। विशेषत: जो लोग कृष्ण-मन्त्र में दीक्षित हैं, उनके लिए इस प्रकार का प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि अपने-अपने इष्ट में श्रेष्ठत्व बुद्धि न होने से निष्ठा होना असम्भव है।

यह कह कर पहले की तरह महाप्रसाद एक ग्रास लेकर पास बैठे एक व्यक्ति के मुख में दिया और उसका अवशेष स्वयं पाया। न्यायरत्न महाशय का ऐसा अपूर्व भक्तिभाव देख उपस्थित भक्त-मण्डली 'गौर हरिबोल' कह उठी। बाबाजी महाशय भक्तगण से बोले "कृष्ण कृपाय कोन जीवेर श्रद्धा जदि हय, वेद धर्म लंघि सेइ कृष्ण के भजन। आहा! कैसी अपूर्व करुणा! ऐसे विशुद्ध हृदय में विशुद्ध तत्व की स्फूर्ति नहीं होगी तो कहाँ होगी? आज इनका सिद्धान्त सुन गोपीनाथ आचार्य के साथ सार्वभौम भट्टाचार्य के वार्तालाप की बात याद आती है। महाप्रभु की भगवत्ता के सम्बन्ध में जब दोनों में वाद-विवाद होने लगा तो आचार्य बोले 'भट्टाचार्य, तुम्हारे ऊपर जब उनकी कृपा होगी, तब तुम आप ही यह सिद्धान्त करोगे।' जो न्यायरत्न महाशय साधारण व्यक्ति के विश्वासयोग्य वस्तु श्रीश्रीजगन्नाथदेव के महाप्रसाद के सम्बन्ध में भी सन्देह बुद्धि रख कर तीन दिन उपवासी रहे थे, वे ही नैष्ठिक सदाचारी ब्राह्मण, आज सभी श्रीविग्रहार्पित अन्न में महाप्रसाद बुद्धि रख उसमें नित्य चिन्मयत्व की स्थापना कर रहे हैं और तदनुकूल आचरण कर रहे हैं। ऐसा विशुद्ध संग पाकर आज मैं अपने आपको धन्य मानता हूँ।"

न्यायरत्न महाशय कुछ दिन झाँजपीटा मठ में रह आनन्द का उपभोग कर अपने परिवार के विशेष आग्रह पर देश लौट गये।

कटक-यात्रा

कटक जिले में महांगा नाम का स्थान है। वहाँ के श्रीयुत बाबू आनन्दचन्द्र ब्रह्म बाबाजी महाशय को अपने कटक-स्थित घर में ले जाने के लिए श्रीधामपुरी आये हैं। उनकी इच्छा है कि बाबाजी महाशय के साथ उनके दो-चार अन्तरंग साथी ही चलें, किन्तु इस सम्बन्ध में उनसे कुछ कहने का साहस नहीं कर पा रहे हैं। एक दिन अपराह्न के समय आनन्द बाबू बोले—'कटक यात्रा की जाय तो कैसा?'

बाबाजी—हाँ, चलेंगे।

दो-चार दिन बीतने पर एक दिन आनन्द बाबू ने विशेष आग्रह के साथ कहा—'बहुत दिन हो गये। आज चला जाय।'

बाबाजी—आज वृहस्पतिवार है, आज के दिन धाम नहीं छोड़ा जाता।

आनन्द—आप महापुरुष हैं। आपके लिये वृहस्पतिवार अमावस्या और पूर्णिमा क्या? यह सब तो संसारी लोगों की बातें हैं।

बाबाजी—देखो आनन्द, इन सब बातों में संसारी या उदासी का प्रश्न नहीं। हम लोग प्रचलित लोकाचार का यथार्थ महत्व न समझ कर अनेक बार इस प्रकार

अपना दम्भ प्रकट करते हैं। विचार किया जाय तो यह हमारी भूल के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वृहस्पतिवार की ही बात लो, वृहस्पतिवार का दूसरा नाम है गुरुवार। इस दिन कहीं यात्रा करने से श्रीगुरुदेव के निकट अपराधी होते हैं। इस वार का एक और नाम लक्ष्मीवार है। लक्ष्मीवार के दिन जिस धाम से यात्रा की जाती है, लक्ष्मी उस धामेश्वर को छोड़ देती है। तो अब बताओ कि यह क्या केवल गृहस्थियों का विषय है? सभी के तो गुरु हैं। उनका असन्तोष जगत् के असन्तोष का कारण होता है। मान लो मैं परमविरक्त हूँ, मुझे लक्ष्मी की आवश्यकता नहीं। पर इसलिए क्या धामेश्वर से भी लक्ष्मी का त्याग करा दिया जाय?

आनन्द—मैं नहीं समझता कि मेरा-जैसा तुच्छ जीव एक साधारण काम करे और लक्ष्मी ईश्वर को छोड़ जायें। ऐसा ही होता तो हम श्रीनारायण के वक्षस्थल पर बैठने वाली लक्ष्मीदेवी का अपनी इच्छा से वियोग या संयोग करा सकते।

बाबाजी—लक्ष्मी को छोड़ने के विषय में एकादशी माहात्म्य में इसी प्रकार का वर्णन है—

मत्शयने मदुत्थाने मत्पार्श्वपरिवर्तने।
फलमूल जलाहारी हृदि शूलं ममार्पयेत्।।

अर्थात् जो लोग मेरी शयन, उत्थान एवं पार्श्व परिवर्तनी एकादशी को फलमूल और जल ग्रहण करते हैं, वे मेरे हृदय में शूल बेधते हैं। मैंने जल पिया और भगवान् के हृदय में शूलाघात हुआ, इसका क्या अर्थ है? यह कि उस दिवस फल आदि आहार करने से भगवान् शूलाहतवत् दुःखी होते हैं। लक्ष्मीदेवी के विरह में भगवान् को जिस तरह का कष्ट होता है, वैसा ही कष्ट हमारे वृहस्पतिवार को दूसरी जगह जाने से होता है, उसे करना हमारे लिये कभी उचित नहीं।

आनन्द—(हाथ जोड़कर) प्रभु, अब समझा कि हमारे दिन प्रतिदिन के कामों में भी बहुत कुछ महत् उद्देश्य रहते हैं।

इस प्रकार कुछ दिन बीतने पर एक दिन प्रातःकाल बाबाजी महाशय ने साथियों से कहा, 'देखो, आनन्द बहुत दिनों से आया बैठा है। आज कटक जाना होगा।' ललितादासी ने पूछा 'साथ कौन-कौन जायगा?' बाबाजी महाशय ने कहा 'बहुत लोगों के जाने की आवश्यकता नहीं। चार-पाँच व्यक्ति जो चाहें चल सकते हैं।' यह सुनकर आनन्द बाबू मन ही मन प्रसन्न हुए और सोचने लगे कि अन्तर्यामी गुरुदेव ने मेरे मन की बात जान ली। जाने वालों में कौन-कौन होंगे, इसका अभी ठीक नहीं, इसलिये साथियों में कोई प्रसन्न हैं; कोई चिन्तित और कोई दुःखी।

क्रमशः सन्ध्या हुई। बाबाजी महाशय के कटक जाने की बात सुन पुरवासी बहुत-से भद्र लोग उनसे मिलने आये और कहने लगे, 'यथासम्भव शीघ्र वापस आने की चेष्टा कीजियेगा क्योंकि आपके यहाँ न रहने से हम लोगों को कुछ भी अच्छी नहीं लगता।' इस प्रकार की प्रेमभरी बातें सुन बाबाजी महाशय ने अपने मधुर वचनों से सबको शान्त किया और उनसे विदा हो खोल करताल के साथ नाम करते-करते स्टेशन की ओर चल दिये। मठ में एक वृद्ध बाबाजी को छोड़ सब उनके साथ चल पड़े। बहुत-से बाबू लोग भी साथ हो लिये। यथासमय स्टेशन पर पहुँचकर बाबाजी महाशय ने एक सज्जन से पूछा 'भाई, गाड़ी में कितनी देर है?' सज्जन ने घड़ी देखकर कहा, 'डेढ़ घण्टे की देर है।' इस पर बाबाजी महाशय ने एक ओर बैठकर सभी को लक्ष्यकर कहा, 'देखो, जो मेरे साथ जाना चाहें अपना हाथ उठाकर इस ओर आ जायें।' सभी उस ओर जाने लगे। मठ में सेवा कार्य के लिए कुछ लोगों को छोड़ अट्ठाईस व्यक्तियों के जाने का निश्चय हुआ। इससे आनन्द बाबू के मन में कुछ चिन्ता पैदा हो गई। उन्होंने सोचा था कि बाबाजी महाशय के साथ बहुत से बहुत सात-आठ लोग जायेंगे। इतने लोगों को जाते देख मन ही मन न जाने क्या सोच रहे थे, उसी समय बाबाजी महाशय ने अपना अंगोछा सामने बिछाते हुए कहा 'सब लोग मुझे थोड़ी-थोड़ी भिक्षा दो।' सब लोग एक-एक, दो-दो रुपये देने लगे। जैसे ही आनन्द बाबू कुछ रुपये देने को हुए, बाबाजी महाशय बोले 'आनन्द अभी ठहरो, जब आवश्यकता होगी मैं कहूँगा।' यह सुन आनन्द बाबू कुछ लज्जित हुए। बाबाजी महाशय के कहने पर बलराम बाबू ने रुपये गिन कर

कहा, '23 रुपये 12 आने हुए हैं; इससे तीस टिकट खरीदे जा सकते हैं।'

इधर टिकट के लिए घण्टा बजते ही सब लोग भाग दौड़ करने लगे। एक मद्रासी सज्जन बड़ी द्रुत गति से टिकट लेने जा रहे थे। बाबाजी महाशय ने उन्हें आवाज देकर कहा 'भाई ये कुछ रुपये हैं, इन्हें ले जाओ और कटक के जितने टिकट आयें ले आओ।' वह व्यक्ति विस्मय के साथ वहाँ खड़ा रहा। बाबाजी महाशय ने फिर कहा 'भाई सोचने का समय नहीं, टिकट का समय निकला जा रहा है।' बलराम से कहा 'बलराम! जो रुपये हैं इन्हें दे दो'। बलराम ने सब रुपये उसे दे दिये। वह रुपये हाथ में लेकर धीरे-धीरे जाने लगा। जाते समय मुड़-मुड़ कर विस्मय के साथ बाबाजी महाशय की ओर देखने लगा।

देखते-देखते वह व्यक्ति आँखों से ओझल हो गया। कोई आधा घण्टा बीत गया। उसे आता न देख सभी साथी आपस में कहने लगे, 'न जाने कहाँ का अपरिचित आदमी था, लगता है रुपया लेकर चला गया।' किसी ने कहा 'मद्रासी आदमी, फिर कोई जान न पहचान। निश्चय ही टिकट लेकर गाड़ी में जा बैठा है।' किसी-किसी ने कहा, 'बाबाजी महाशय आज्ञा दें तो अभी ढूँढ़कर पकड़ लाऊँ।' इस प्रकार अपनी-अपनी मानसिक वृत्ति के अनुसार सोच-विचार करते-करते सब चिन्ता में डूब गये। तब बाबाजी महाशय ने मृदु हास्य के साथ कहा 'क्यों सिद्धान्त-वाचस्पतियो, जान पड़ता है कि रुपयों की बड़ी चिन्ता हो रही है।' कुञ्ज बाबू ने कहा 'जी, चिन्ता की बात तो है ही। आधे घण्टे से अधिक हो गया है, वह क्या अब आयेगा? हम इतने लोग थे, आप आदेश करते, अब तक टिकट खरीद कर गाड़ी में बैठ भी गये होते।' बाबाजी महाशय ने व्यंग्य करते हुए कहा 'हाँ, मुझे समझने में भूल हो गई, तुम सब परिचित थे, तुम्हीं लोगों को भेजना ठीक था। अच्छा कुञ्ज! यह तो बताओ, तुम कितने जन्मों से मेरे परिचित हो? जिस दिन तुम्हें पहली बार देखा था, यदि उसी दिन अपरिचित समझ कर तुममें अविश्वास करता तो क्या कभी तुम्हारे में विश्वास हो सकता था? तुम क्या यह कहना चाहते हो कि इस स्थूल शरीर के साथ दो-चार दिन संसर्ग होने से ही परिचय हो गया? दूसरे की बात तो दूर रही, क्या तुम्हारा अपने से परिचय है? तुम कौन हो? कहाँ से आये हो? कहाँ जाओगे? तुम्हारा स्वरूप क्या है? क्यों आये हो? तुम्हारी क्या जाति है? क्या यह सब बता सकते हो?'

कुञ्ज—क्यों नहीं बता सकता? मेरा नाम कुञ्जविहारी राय है। मेरी कायस्थ जाति है। अपने जन्म स्थान से नौकरी करने के लिए यहाँ आया हूँ। कागज कलम से परिचय दिये बिना तो कोई नौकरी ही नहीं मिल सकती।

बाबाजी—बहुत ठीक। अच्छा बताओ जब सब लोग तुम्हें मरा समझ कर घर से बाहर निकाल देते हैं, तब क्या तुम्हारे इस परिचय में कोई कमी आ जाती है? कायस्थ कुल में उत्पन्न, सभी अवयवों से युक्त, दसों इन्द्रियों से सम्पन्न कुञ्जविहारी राय तो तुम फिर भी वर्तमान रहते हो। फिर स्त्री-पुरुष माता-पिता आदि आत्मीय स्वजन तुम्हें अस्पृश्य समझ कर क्यों घर से निकाल देते हैं? उस समय तुम इतने अपवित्र क्यों समझे जाते हो कि जिस कुल में जन्म लेते हो उस कुल के लोग भी एक महीने तक अशौचावस्था में रहते हैं? जिस पुत्र के साथ तुम्हारा परिचय था और जिससे तुम्हें इतनी आशायें थीं, वह अकातर भाव से तुम्हारे मुख में आग लगा देता है। जिस पिता से तुम्हारा परिचय था और जिसने तुम्हें इतने लाड़-चाव से पाला था, वह तुम्हारे सुन्दर शरीर को जला कर राख कर देता है। क्या इसी को परिचय कहते हैं? क्या इसी को तुम सम्बन्ध या ममता कहना चाहते हो? कितना भ्रम, कितनी अविद्या? कितना मोह! निविष्ट चित्त से सोचकर देखो, सच्चिदानन्द, आदि-पुरुष, गोविन्द की एक किरण मात्र प्राप्त कर इतना अपवित्र अचेतन पदार्थ भी जगत् में अत्यन्त पवित्र होकर आदरणीय बन जाता है और उसी वस्तु के अभाव में पूर्ववत् अचेतन अपवित्र बन जाता है। सम्बन्ध है सच्चिदानन्द गोविन्द के साथ, परिचय भी उन्हीं के साथ। उन्हीं की सत्ता में जगत् की सत्ता है। भ्रम में ढके होने से तुम जिसे इस समय अपरिचित समझ रहे हो, **सम्भव है वह** किसी जन्म में तुम्हारा पिता, पुत्र, स्वामी, माता **अथवा**

स्त्री रहा हो। भविष्य में भी किसका कौन क्या होगा, इसका किसे पता? जीव मात्र एक ही स्थान से आया है और एक ही स्थान को जायगा। श्रीचरितामृत में महाप्रभु ने कहा है—'जीव कृष्ण नित्यदास।' जब सभी एक भगवान् के दास हैं, तो परिचित अपरिचित का भेद कहाँ रहा? पर यह तो दूर की बात है। अभी-अभी तुम्हारे मन में जो सन्देह उत्पन्न हुआ है वह बिल्कुल निराधार है। किसी का भी अपना कमाया हुआ धन टिकट खरीदने के लिए नहीं दिया गया। भगवान् ने अपनी इच्छा से कटक जाने के लिए रुपये दिये हैं। यदि इस धन से वह किसी दूसरे के अभाव की पूर्ति करना चाहते हैं, तो उसमें तुम्हें और मुझे आपत्ति करने का क्या अधिकार है? जो देने वाले हैं, वे अपनी दी हुई वस्तु से जो करना चाहें कर सकते हैं, लेने वाले को आपत्ति करने का क्या अधिकार है? मुझे ऐसा कोई विशेष कार्य नहीं जिससे अभी कटक जाये बिना काम न चले। इच्छामय निताइचाँद चाहेंगे तो ले जायेंगे।

यह सुनकर सभी साथी लज्जित हुए। उसी समय पूर्वोक्त मद्रासी बाबू को टिकट लेकर आता देख सब और भी लज्जित हुए। बाबू ने तीस टिकट बाबाजी महाशय के निकट रख भक्ति-भाव से गद्गद होकर उनके चरणों में प्रणाम किया। जब सब गाड़ी में बैठ गये बाबू बाबाजी महाशय से प्रश्न करने लगे।

बाबू—बाबाजी महाराज! आप कहाँ रहते हैं?

बाबाजी—भाई, प्रभु ने कुछ दिन श्रीजगन्नाथधाम में रक्खा था। इस समय कटक ले जा रहे हैं। किस उद्देश्य से कहाँ ले जायेंगे वही जानें।

बाबू—आपने क्या मुझे कभी कहीं देखा है?

बाबाजी—पता नहीं देखा है कि नहीं। पर किसी न किसी जन्म में अवश्य देखा है।

बाबू—मैं एक अपरिचित विदेशी आदमी हूँ, मुझे देखते ही किस विश्वास पर आपने इतने रुपये दे दिये?

बाबाजी—भाई, मैंने अपनी कोई निजी सम्पत्ति तो तुम्हें दी नहीं। प्रभु ने मुझे इस स्टेशन पर इन लोगों के कटक जाने के खर्च के लिए कुछ रुपये दिये। मैंने देखा, तुम टिकट लेने जा रहे हो। इसलिए तुम्हें रुपये दे दिये। क्या तुम्हें कोई विशेष कष्ट हुआ?

बाबू—जी नहीं, मुझे कोई कष्ट नहीं हुआ। बस मैं मन ही मन आपके व्यवहार की बात सोच रहा था। मैं सोच रहा था कि इस प्रकार का व्यवहार किसी मनुष्य के लिए सम्भव नहीं है। मेरा विश्वास है कि आप मनुष्य नहीं हैं।

बाबाजी—भाई, मैं मनुष्य नहीं हूँ, यह बात कह सकते हो। मनुष्य के अनेक कर्तव्य हैं। मनुष्य अपने कार्य बल से इन्द्रत्व प्राप्त कर सकता है; फिर वैराग्य के बल पर इन्द्रत्व और ब्रह्मत्व को तृणवत् त्याग भी सकता है। ध्रुव, प्रह्लाद, व्रजगोपियाँ आदि मनुष्य हैं। मनुष्य में द्वेष, हिंसा, परस्त्री-लालसा आदि नहीं हो सकते। मनुष्य काम, क्रोध का दास नहीं है। केवल अपना और कुटुम्ब का भरण-पोषण करने के लिए ही मनुष्य देह नहीं है। मनुष्य देह भगवद्भजन के लिए है। नीति शास्त्र में कहा है—

आहार-निद्रा-भय-मैथुनंच
सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो
धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।।

दया और क्षमा मानव देह के भूषण हैं। जो व्यक्ति अपने सुख के लिए दूसरे का सुख अथवा जीवन नष्ट कर सकता है, उसकी गणना मानव समुदाय में करना भूल है। हम लोगों ने मानव देह धारणा की है यह सत्य है; किन्तु मानवोचित कर्तव्यपालन हमसे बिल्कुल नहीं होता। तभी तो कहता हूँ 'मैं मनुष्य नहीं, सामान्य अधम जीव हूँ।'

बाबू—आप कुछ भी क्यों न कहें, हमें लगता है आप ईश्वर के अवतार हैं। हम लोग विषयी हैं, हमारे उद्धार का क्या कोई साधन नहीं? ऐसा सुन्दर मानव जन्म क्या व्यर्थ ही चला जायगा? क्या प्रभु हमारी ओर एक बार भी नहीं देखेंगे? क्या वे हमसे पक्षपात करेंगे?

बाबाजी—भाई, भगवान् में पक्षपात सम्भव नहीं। वे निरपेक्ष हैं, सभी जीवों पर समान रूप से दया करते

हैं। उनके मन में अपने पराये की भावना नहीं। जीव अपने-अपने कर्मों के फल भोगते हैं। चन्द्रमा सर्वत्र शीतल किरणें प्रसारित कर सभी का ताप दूर करता है; पर विरही लोगों के लिए वही अतिशय ताप का कारण बन जाता है। कोकिल के सुमधुर रव से किसके श्रवण तृप्त नहीं होते? किन्तु विरही के हृदय में वह वज्रनाद जैसा लगता है। इसे क्या तुम चन्द्रमा और कोकिला का पक्षपात कहोगे? भगवान् यदि जीवों को अपना प्रिय अथवा अप्रिय समझकर अनुग्रह-निग्रह करते तो क्या पूतना को मातृगति प्राप्त हो सकती थी? तभी तो कहता हूँ, भगवान् ने संसार में विषय भोग की वस्तुएँ दी हैं, भोग करो; किन्तु अभिमानरूपी मदिरा को पीकर मत्त न हो जाओ। भगवान् को साथ में लेकर विषय भोग करो। अपने को कृष्णदास-दासी मानकर पुत्र, कन्या का लालन-पालन यत्नपूर्वक करो। दूसरे के अनिष्ट की चेष्टा न कर भगवान् की दी हुई वस्तु का अनासक्त भाव से उपभोग करो। गृहस्थाश्रम के जो-जो कर्तव्य शास्त्रों में निर्दिष्ट हैं, बिना कुछ सोचे उनके पालन करने का प्रयत्न करो। पितृ-ऋण, देव-ऋण और ऋषि-ऋण परिशोध करने में उद्योगी बनो; तुम देखोगे कि यह संसार ही सुख का आगार हो जायगा। यही वस्तुएँ कृष्ण-प्राप्ति में साधक हो जायेंगी; यही स्नेह ममता तुम्हें अप्राकृत सम्बन्ध राज्य में ले जायेंगी। यही स्त्रियाँ, गोपीभाव से शिक्षा-गुरु के रूप में कृष्ण-सेवा की रीति बता कर तुम्हारे भजन के अनुकूल सिद्ध होंगी। जीव स्वयं ही अपना अनिष्ट कर लेता है और भ्रमवश दूसरे को दोष देकर भगवान् के निकट अपराधी हो जाता है।

गाड़ी अभी चल रही थी। मद्रासी सज्जन चुपचाप बाबाजी महाशय के उपदेश सुन रहे थे। एकाएक गाड़ी रुक गई। बाबाजी महाशय भी चुप हो गये। मद्रासी के हृदय का बाँध टूट गया। वह एकदम अधीर हो बालक की तरह जोर से रो पड़ा और बाबाजी महाशय के दोनों चरण हृदय पर रख गद्‌गद हो कहने लगा,' 'बाबा! आपकी कृपा से मेरी कर्म-बन्धन से मुक्ति हुई और परम शान्ति मिली। अब आशीर्वाद दीजिये कि मैं जन्म-जन्म में आपके श्रीचरणों का दास होकर परमपुरुष भगवान् की सेवा कर सकूँ।' बाबाजी महाशय ने अपने आलिंगन से उसे शान्त किया और एक आदमी से पूछा 'यह कौन-सा स्टेशन है?' पता चला कि कटक स्टेशन है। बाबाजी महाशय साथियों के साथ गाड़ी से उतरे। मद्रासी सज्जन ने कलकत्ते का टिकट लिया था, पर वे भी इनके साथ उतर गये।

आनन्द बाबू ने बाबाजी महाशय से कहा 'गाड़ी तैयार है' और उसमें बैठने की प्रार्थना की। बाबाजी महाशय ने आनन्द बाबू को आश्वासन देते हुए कहा, 'आनन्द, तुम अपने घर जाओ। मैं फिर किसी समय तुम्हारे यहाँ आऊँगा। आज तुम्हारे यहाँ जाना न हो सकेगा।' आनन्द बाबू ने कहा, 'बाबा, यहाँ तो और किसी के साथ आपका विशेष परिचय नहीं है, इतनी रात में कहाँ जायेंगे? खाने-पीने की क्या व्यवस्था होगी?' बाबाजी महाशय ने मृदु हास्य के साथ कहा, 'क्यों, निताइ की कृपा से काठजुड़ी नदी का जल है और उसके किनारे बड़े-बड़े पेड़ भी हैं। फिर किस बात की चिन्ता है?' इतना कहकर वे स्टेशन के पास एक जगह विश्राम करने लगे। मद्रासी बाबू अधीरतावश बहुत-सी बातें पूछने लगे।

बड़े आनन्द से रात बीती। दूसरे दिन प्रात:कृत्य समापन कर सब 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' नाम करते-करते नदी के किनारे-किनारे जाने लगे। आगे-आगे दो खोल बज रहे थे। पीछे बाबाजी महाशय प्रेमोन्मत्त हो पैर पर पैर रख नाचते-नाचते चले जा रहे थे। साथ में प्राय: तीस व्यक्ति थे। किसी को बाह्यज्ञान नहीं था, सब उद्दण्ड नृत्य में रत थे। क्रमश: स्थानीय लोग आ-आ कर कीर्तन में योग देने लगे। नये ढंग का संकीर्तन दल देख और नयी तरह का नाम सुन जैसे जैसे लोगों की संख्या बढ़ती गई कीर्तन भी जोर पकड़ता गया।

भूतों के घर में वास

साढ़े आठ बज चुके थे। एक सज्जन ने बाबाजी महाशय के एक साथी भीमचन्द्र सिंह से पूछा 'आप लोग कहाँ जा रहे हैं?' साथी ने उत्तर दिया 'किसी निर्दिष्ट स्थान को नहीं।' यह सुनकर पासवाले एक

कौतुकी व्यक्ति ने हँसते-हँसते कहा 'जब कोई निर्दिष्ट स्थान नहीं, तो भूतों के घर में ठहर जाइये।' बाबाजी महाशय ने कुछ उत्साह के साथ पूछा, 'भूतों का घर कहाँ हैं? क्या दिखा सकोगे?'

उस आदमी ने कुछ गम्भीर होकर कहा, 'हाँ हाँ, जरूर दिखा सकता हूँ। इसी रास्ते पर बालू बाजार में बकील तीनकौड़ी बाबू के घर के बाद तीन-चार घर छोड़ कर कृष्ण पालित का जो दोमंजिला मकान है, उसी को भूतों का घर कहते हैं। उसमें कोई भी नहीं रह सकता, पर आप लोग साधु हैं, आप लोगों के बारे में नहीं कह सकता।' सुनते ही बाबाजी महाशय निर्दिष्ट रास्ते पर कीर्तन करते हुए जाने लगे। किसी से भी बिना पूछे, जैसे बहुत दिनों से सुपरिचित हों, सीधे उसी घर के आगे जा खड़े हुए। घर के पास कपड़े की एक दूकान थी। उसके मालिक श्रीहृदयनाथ चौधुरी नामक वृद्ध भक्त ने संकीर्तन के आगे ज्यों ही दण्डवत् प्रणाम किया, बाबाजी महाशय ने पूछा, 'भाई, इस घर के मालिक से चाबी मँगाकर आप इसे खुलवा सकेंगे?'

हृदय बाबू—जी, इस घर में कोई रह नहीं सकता?

बाबाजी—इसीलिये तो हम लोग आग्रह कर रहे हैं।

यह सुन हृदय बाबू ने द्रुतगति से कृष्ण पालित के घर से चाबी लाकर घर खोल दिया। इन लोगों ने घर में प्रवेश कर प्रत्येक कमरे में संकीर्तन किया और छत पर जाकर उद्दण्ड नृत्य किया। उनके भार से छत ऐसी काँपने लगी मानो गिर जायेगी। कुछ क्षण बाद बाबाजी महाशय कीर्तन पूरा कर दूसरी मंजिल के एक कमरे में जाकर बैठे। साथियों में से किसी ने दूसरी मंजिल पर और किसी ने नीचे की मंजिल पर अपना-अपना आसन जमा लिया। जिस घर के पासवाले रास्ते पर चलने में भी लोग डरते थे, आज उसीमें ऊपर नीचे आदमियों की भीड़ लगी है। सभी आनन्द में मग्न हैं। आबाल-वृद्ध-वनिता सब इनकी चर्चा कर रहे हैं। कोई दम्भ के साथ कहता है 'रात को देखा जायेगा। हमने कितने देखे हैं; अच्छे-अच्छे साहसी मुसलमान तक हार मान गये हैं; फिर ये तो साधारण वैरागी ठहरे।' कोई कहता है 'भाई, ये जो दीर्घाकार बाबाजी हैं, इसे देखकर भक्ति जागृत होती है। मेरा विश्वास है कि ये कोई महापुरुष हैं?' कोई कहता, 'कितने महापुरुष देख लिये, भूत-प्रेतों के आगे महापुरुषपना नहीं चलता।' इस प्रकार तरह-तरह से समालोचकों के मुख पर जो आया, वह कहने लगे। कुछ भले लोग बाबाजी महाशय के पास बैठकर तरह-तरह के प्रश्न कर रहे थे। उसी समय हृदय बाबू ने बाबाजी महाशय से कहा 'यदि आज्ञा हो तो कुछ दाल-चावल मँगाकर भोग की व्यवस्था की जाय।'

बाबाजी—इच्छामय निताइचाँद की जो इच्छा।

हृदय बाबू—क्या लाना है?

बाबाजी महाशय ने ललितादासी की ओर संकेत करते हुए कहा, 'बाबा तुम चाहो तो इनसे पूछकर व्यवस्था कर सकते हो। मुझसे पूछना व्यर्थ है।' ललितादासी रसोई की व्यवस्था करने लगीं। बाबा महाशय ने वृद्ध हृदय बाबू को 'बाबा' (पिता) कहा, अतः वे सभी के बाबा हा गये। सभी से वात्सल्यपूर्ण व्यवहार करने लगे। उन्होंने नीचे उतर कर अपनी कन्या के समान ललितादासी से परामर्श किया और बाजार से दाल, चावल, तरकारी आदि भोग की वस्तुएँ लाने की व्यवस्था की। रसोई आरम्भ हुई। हृदय बाबू सभी की आवश्यकता पूरी करने लगे। कुछ क्षण पीछे कृष्ण बाबू ने आकर बाबाजी महाशय से कहा, 'यदि आप आज्ञा दें तो मैं किसी दूसरे स्थान की व्यवस्था कर दूँ, क्योंकि मेरे इस घर में अपदेवता के अत्याचार के कारण कोई नहीं रह सकता। आप विदेशी हैं, उस पर भी वैष्णव; आप लोगों पर किसी प्रकार का अत्याचार हुआ तो मुझे भी अपराध लगेगा।'

बाबाजी—भय किस बात का है, हम लोग भी अपदेवता विशेष है। देखें निताइचाँद क्या करते हैं। वह अकेला भूत है। हम इतने भूत हैं, हमारा सभी का शरीर पंचभूत का गढ़ा है। उससे इतना डरने से कैसे काम चलेगा? दो-एक दिन बाद, आवश्यकता हुई तो व्यवस्था हो जायेगी। भाई, तुम मन में किसी प्रकार का दु:ख मत मानना।

कृष्ण—मैं तो खैर समझ गया। पर मेरी माँ किसी तरह नहीं मानेंगी। उन्होंने मुझसे बहुत कुछ कहा है।

बाबाजी—वह तुम्हारी माँ हैं, मेरी भी माँ हैं। सन्तान की बात माँ से कहना। वे अवश्य मान जायेंगी। वे पतिव्रता सती हैं, आशीर्वाद दें तो भय की कोई बात ही नहीं।

बाबाजी महाशय ने इस प्रकार मधुर वचनों से कृष्णबाबू को सन्तुष्ट कर उन्हें माँ के पास भेज दिया। क्रमशः बहुत-से लोग वहाँ इकट्ठा हो गये। उनके साथ कथा-वार्ता करते-करते दो बज गये। सभी के अनुरोध पर स्नान आह्निक कर ठाकुर के भोग के बाद महाप्रसाद ग्रहण किया; फिर आगन्तुक भक्तजनों के साथ तरह-तरह की भगवद्‌कथाएँ कहते-कहते संध्या हो गई। कीर्तन आरम्भ हुआ।

बहुत भीड़ हो गई। चारों ओर से लोग दौड़-दौड़ कर आने लगे। लगता था जैसे किसी को अपनी सुध-बुध नहीं है। आज किसी के मन में भूतों के घर का डर नहीं है। श्मशानवत् स्थान आज आनन्द-कानन हो गया है। लोगों का एक दल आता है, एक जाता है। रात के दस बज गये हैं, पर किसी को पता नहीं। सभी आत्मविस्मृत हैं, न जाने सब किस नये भाव में विभोर हैं। सभी तरह के लोग उपस्थित हैं। किसी ने सुना कि भूतों के घर साधु आये हैं, वह उनकी चाल-ढाल देखने और उनका हाल लेने ही चला आया है। कोई यही समझकर चला आया है कि बाबाजी महाशय एक बड़े ओझा हैं, देखें मन्त्र द्वारा वे किस तरह घर का शोधन करते हैं। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो यह देखने आये हैं कि भूत उन पर कैसा अत्याचार करता है। पर कोई कैसी भी भावना लेकर आया, यहाँ आकर उसने जो देखा, उसे सब कुछ विपरीत लगा। बाबाजी महाशय एक कमरे में बैठे नाम-कीर्तन कर रहे थे, और साथी लोग उसे दुहरा रहे थे। लोगों ने देखा कि न तो स्थान शोधन किया गया है और न तन्त्र मन्त्र की कोई बात की गई है। देखकर सब अवाक्! कोई-कोई कहने लगे, 'अच्छा देखा जायगा, दो दिन बीतने दो। सब कुछ अपने आप सामने आ जायेगा।' इस प्रकार अपनी-अपनी मनोवृत्ति के अनुसार सब कहने लगे। बहुत देर तक नाम कीर्तन हुआ, फिर सबके साथ नाना प्रकार की कथा-वार्ता कर बाबाजी महाशय ने उन्हें विदा किया। इतनी रात गये भोजन करने की किसी की इच्छा न थी। फिर भी हृदय बाबू ने कुछ मिठाई मँगाकर ठाकुर को भोग लगाया। सभी ने थोड़ा-थोड़ा प्रसाद ग्रहण किया। जो बचा हृदय बाबू के घर भिजवा दिया। तत्पश्चात् अपनी-अपनी रुचि के अनुसार कोई ऊपर, कोई नीचे, विश्राम करने चले गये। जिस कमरे में कीर्तन हुआ था, उसमें बाबाजी महाशय सो गये; सेवा के लिए दो-चार व्यक्ति उनके पास रहे*।

श्रीविनोदविहारी जी के मन्दिर में

सबेरा होते ही बाबाजी महाशय ने नित्य नियम पूरा कर प्रभाती कीर्तन आरम्भ किया। बहुत-से लोग इकट्ठा होने लगे। सब तरह-तरह के उद्देश्य लेकर आये थे, कोई कीर्तन सुनने, कोई यह देखने कि रात में इन लोगों पर कोई अत्याचार तो नहीं हुआ, कोई बाबाजी महाशय की परीक्षा करने और कोई बस कौतुक देखने। बाबाजी महाशय तो आत्मानन्दी थे। कोई किसी भी भाव से आया, उन्होंने सबको प्रेमभरी दृष्टि से देखते हुए अपने कीर्तन के द्वारा एक हृदयंगम करा दिया कि भगवद् आराधना ही मानव जीवन का एकमात्र कर्तव्य है।

इस प्रकार लगभग आठ बजे जैसे ही बाबाजी महाशय कीर्तन समाप्त करने को हुए, हृदय बाबू बोले, 'बाबा, हमारे विनोदविहारी जी के दर्शन करने जायेंगे क्या?' बाबाजी महाशय ने बड़े उत्साह से कहा, 'चलो भाई, यह तो बड़े सौभाग्य की बात है।' यह कहकर, 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरेकृष्ण हरे राम' नाम करते हुए अपने दल के साथ बाहर निकले। बाजार के बीच में होकर जब कीर्तन जाने लगा, दुकानदार अपनी-अपनी दुकानें छोड़ कर कीर्तन में योग देने लगे। बीच में जहाँ कहीं रुकते लोग इकट्ठा हो जाते, फिर कीर्तन में विभोर होने के कारण कोई भी उस स्थान को छोड़ आगे न बढ़ना चाहता। विनोदविहारी जी का मन्दिर बालू बाजार के बीच ही था, फिर भी कीर्तन लेकर जाने में दो घण्टे लग गये। विनोद विहारी जी के मन्दिर में बहुत भीड़ हो गई। सभी राधाविनोद

* भूतों का प्रसंग आगे 'नगर-कीर्तन' के प्रसंग में देखें।

जी की अपूर्व माधुरी देखकर मोहित हो गये। बाबाजी महाशय ने प्रेमविह्वल होकर गद्गद कण्ठ से कीर्तन आरम्भ किया—

(हेर देख) विनोद[1] नागर राय।
(उहार) विनोद चिकुरे, विनोद बरिहा[2],
दूलिछे[3] विनोद बाय[4]।।
विनोद नयाने, विनोद चाहनि[5],
विनोद टेरछ छाँदे।
विनोद नासाय, विनोद मुकुता,
हेरिया[6] पड़िनू फाँदे।।
विनोद अधरे, विनोद हासि,
विनोद विनोद बोल।
विनोद बाँशेर, विनोद बाँशरी,
विनोद विनोद रोल।।
विनोद गलाय, विनोद माला,
विनोद विनोद दोले।
कोन् विनोदिनी, विनोद गाँथनि,
गेंथेछे विनोद फूले।।
विनोद हेलन, विनोद दोलन,
विनोद बाँकुया श्याम।
विनोद कटिते, विनोद धटी[7],
विनोद विनोद ठाम।।
विनोद चरणे, विनोद नूपुर,
विनोद विनोद बाजे।
विनोद बसने, विनोद भूषण,
विनोद विनोद साजे।।
विनोदेर बामे, शोभे विनोदिनी,
विनोद मोहन रूप।
(जनू) चाँदे चकोरिनी, जलदे दामिनी,
पिरीति रसेर कूप।।
आहा मरी मरी, जुगल माधुरी,
छटाय भुवन भूले।
(जनू) श्याम सरोवरे, हेम कमलिनी,
रसेर हिल्लोले दोले।।

इस प्रकार बाबाजी महाशय ने स्वरचित बहुत से पद गाये। विनोद-विनोदिनी की अपूर्व रूप-माधुरी देखकर मानो प्रेमसिन्धु उथल पड़ा। सभी उपस्थित जन उनका अपूर्व कीर्तन सुन विस्मय में डूब गये। आनन्द की अवधि न रही। दोपहर हो गई। बाबाजी महाशय ने भक्त लोगों के मन की बात जान कर कीर्तन पूरा किया और विनोदविहारी जी के सामने बैठ गये। सभी लोग उन्हें घेर कर बैठ गये। हृदय बाबू बोले, 'बाबा, विनोदविहारी जी के आगे अष्ट-प्रहर नाम-कीर्तन हो, मेरे मन में यह वासना जागृत हुई है। आगे आपकी जैसी इच्छा।'

बाबाजी—भक्त के हृदय में किसी इच्छा के जागृत होने पर भक्तवत्सल निताइचाँद उसे अवश्य पूरा करते हैं। आनन्दमय श्रीराधाविनोद जी के पास आते ही मेरे मन में आया कि यहाँ एक दिन अष्ट-प्रहर नाम-कीर्तन हो तो अच्छा रहे। निताइचाँद ने भक्त के हृदय में वही इच्छा जागृत की, यह बड़े आनन्द की बात है।

हृदय बाबू—पर हम लोग तो कुछ जानते नहीं कैसे क्या होगा और किस-किस वस्तु की आवश्यकता होगी।

बाबाजी—कल प्रातःकाल से परसों प्रातःकाल तक नाम-कीर्तन होगा। किसी भी क्षण विराम नहीं होगा। आवश्यकता किसी चीज की नहीं। बस एक तुलसी का बिरवा, पाँच कलसियाँ, और दो एक चित्रपटों से काम चल जायेगा।

यह सुन कर हृदय बाबू विशेष उत्साह के साथ अष्ट प्रहर कीर्तन की व्यवस्था करने लगे। उस दिन इन लोगों के महाप्रसाद की व्यवस्था विनोदविहारी जी के मन्दिर में हुई। महाप्रसाद पाकर सभी घर लौट आये।

सन्ध्या के पश्चात् अधिवास कीर्तन का आयोजन होने लगा। कटक में इससे पहले इस प्रकार का अष्ट-प्रहर कीर्तन कभी नहीं हुआ था। फलतः सभी लोग एक नये उत्साह को लेकर कीर्तन में योग देने लगे। बाबाजी महाशय ने कीर्तन के साथ विनोदविहारी जी के मन्दिर पहुँच कर अधिवास कीर्तन आरम्भ किया। आनन्द की अवधि न रही। रात को प्रायः ग्यारह बजे तक कीर्तन चला। इसके बाद सबने घर जाकर विश्राम किया।

1. क्रीड़ा-कौतुक युक्त। 2. मोरपंख। 3. हिल रहा है। 4. हवा से। 5. चितवन। 6. देखकर। 7. पटका जो तिकोना करके कमर पर बांधा जाता है।

दूसरे दिन प्रात:काल नाम आरम्भ हुआ। अपूर्व-आकर्षण! क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, जो कोई नाम सुनने अथवा इन लोगों का कार्य-कलाप देखने आता, वही ठीक चुम्बक के प्रति खिंचे लोहे की भाँति कीर्तन में योगदान करने लगता। स्कूल के लड़के दूर खड़े होकर नाम सुन रहे थे। एकदम पागलों की भाँति झूमते-झूमते कीर्तन के बीच आकर नाचने लगे। किसी के हाथ से पुस्तक गिर पड़ी, उसे ध्यान नहीं, कोई पुस्तक हाथ में लिये ही उन्मत्त हो नाच रहा है; कोई प्रेमानन्द में विभोर और जूते पहने ही कीर्तन के बीच इधर से उधर लोट-पोट हो रहा है। गृहस्थ, बालक, वृद्ध किसी को अपने शरीर का ध्यान नहीं। सभी ग्रह-ग्रस्त भाँति आवेश में नृत्य कर रहे हैं और 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' कीर्तन कर रहे हैं। विनोदविहारी के मन्दिर में आज मानो आनन्द का स्रोत फूट निकला है। ठाकुर के आगे कीर्तन हो रहा है। वे भी मानो आनन्द में मत्त होकर नृत्य कर रहे हैं। जो एक बार युगल चन्द्र-मुख की ओर देख लेता है, वही कहता है 'कैसा आश्चर्य है, हम लोग तो रोज ही राधाविनोद जी के दर्शन करते हैं, किन्तु ऐसा अपूर्व हास्य, अनोखा रूप-लावण्य पहले कभी नहीं देखा। लगता है कि ठाकुर नृत्य कर रहे हैं।' जैसे-जैसे दिन बीतता गया, आदमियों की संख्या बढ़ती गई। नाम की ध्वनि से दसों दिशाएँ गूंज उठीं। प्रेममय की कृपा से मानो सभी कुछ प्रेममय हो गया।

आज विनोदविहारी जी के घर प्रेम और आनन्द का बाजार लगा है। उसे छोड़ कौन आनन्दविहीन बालू बाजार जाये? इसलिये आज विनोदविहारी जी के मन्दिर में ही बाजार लगा है। इधर तो आनन्द बाजार और साधुसज्जनों का बाजार लगा है, उधर सागवाली साग लिये विभोर हो कीर्तन सुन रही है; बोझा ढोने वाले मजदूर बोझा सिर पर लिये चित्रपुत्तलिका के समान खड़े हैं; कोई बाजार करके लौट रहा है, घर की सुध-बुध खोकर विनोदविहारी जी के मन्दिर के सामने खड़ा आनन्द सागर में गोते लगा रहा है; ग्वाला जो दूध ले जा रहा था, दूध की कलसी कन्धे पर लिये-लिये संकीर्तन में नृत्य कर रहा है; अद्‌भुत दृश्य है। प्रवृत्ति और निवृत्ति का संग्राम चल रहा है। निवृत्ति के आकर्षण से प्रवृत्ति के दास-दासी प्रवृत्ति को साथ लिये निवृत्ति के चरणों में लौट रहे हैं।

बाबाजी महाशय कुछ देर कीर्तन कर एक ओर बैठकर भद्र लोगों के साथ भगवद्कथावार्ता करने लगे। दोपहरी बीत चली, फिर भी खाने-पीने की चिन्ता नहीं, लीलाकथा में लीन हैं। साथियों में से कोई-कोई विशेष उद्विग्न हो गये हैं, पर किसी को कुछ कहने का साहस नहीं हो रहा। लोग बाबाजी महाशय को घेरकर इस प्रकार बैठे हैं कि उनके पास तक जाना ही बड़ा कठिन है। सभी चिन्तित हैं।

उसी समय थोड़ा घूंघट निकाले, अधिक अवस्था की, एक महिला एक हाथ में दूध का पात्र और दूसरे में मिठाइयों का थाल लेकर द्रुत गति से वहाँ आकर रुकीं। उनकी दोनों आँखों में जल था; देखकर लगता था मानो वे वात्सल्यमूर्ति स्नेहमयी माँ यशोदा हों। बड़ी उत्कण्ठा के साथ बाबाजी महाशय की ओर एक-एक कदम आगे बढ़ाने लगीं। ऐसा लगा मानो सभी के मन-प्राण वात्सल्य रस में डुबा देंगी। किसी से कुछ कहने की आवश्यकता न पड़ी। सबने उनके लिए रास्ता कर दिया। क्रमश: बाबाजी महाशय के पास आकर उन्होंने थाली एक ओर रख दी और बायें हाथ से उनका मस्तक पकड़कर दाहिने हाथ से दूध का कटोरा मुख से लगा दिया। वे भी ठीक पाँच वर्ष के बालक की तरह दूध पीने लगे। माँ ने दूध पिलाकर एक-एक कर कुछ मिठाइयाँ खिलाई। जैसे ही खिलाना पूरा हुआ, उन्होंने चारों ओर देखा और लज्जा से अवनत हो सिर का पल्ला खींच लिया। वे किसके साथ, कैसे इतनी दूर अनजाने रास्ते पर चली आईं और अब कैसे बाहर जायें—यह सब सोचकर उनका हृदय उद्वेलित हो उठा। उपस्थित लोगों ने इस भाव-मूर्ति को प्रणाम कर कहा, 'माँ, आप नि:संकोच इस रास्ते से चली जायँ। जगत् आपकी सन्तान है, आप जगत्‌माता हैं, फिर भय किस बात का?' माँ अति सन्तुष्ट हो धीरे-धीरे बाहर आईं और विनोदविहारी जी के आगे खड़ी हो गयीं। सभी ने उत्सुकता से बाबाजी महाशय से पूछा, 'बाबा, ये कौन हैं? ऐसी अपूर्व भावविह्वलता तो हमने कभी नहीं देखी।'

बाबाजी महाशय बोले, 'ये मानिक घोष बाजार निवासी श्रीयुत् प्यारीमोहन दत्त महाशय की पत्नी हैं; गन्ध वणिक जाति की हैं। ऐसी अपूर्व वात्सल्य रस की मूर्ति मैंने और कभी नहीं देखी। ये सदैव भावनिमग्ना रहती हैं। इनके घर गोविन्ददेव की सेवा होती है। ये वात्सल्य भाव से उनकी जो सेवा करती हैं, उसे देख बड़े-बड़े पाखण्डियों का भी हृदय पिघल जाता है। किसी व्यक्ति विशेष की ओर लक्ष्य नहीं रखतीं। घर कोई भी क्यों न आये, उसे कुछ न कुछ खिलाये बिना नहीं रहतीं। इस निर्हेतुक वात्सल्य रस का स्थान एकमात्र श्रीवृन्दावन है। श्रीगुरु कृपा से इस प्रेम का एक कण भी जिसे प्राप्त हो गया है। वह जगत्पूज्य है। वात्सल्य-भाव के आगे काम पराभूत हो जाता है, मधुरभाव लज्जित हो जाता है, ऐश्वर्य भाव दूर भाग जाता है, जाति, कुल, मान नष्ट हो जाते हैं, और परापर का ज्ञान भय से छिप जाता है। वात्सल्य प्रेम में संकोच के लिये स्थान नहीं।'

इस प्रकार कथोपकथन चल रहा था, उसी समय प्यारी बाबू आकर बोले, 'बाबा, तुम्हारी माँ ने जब सुना कि तुमने अभी तक कुछ नहीं खाया, तो मिठाई लेकर दौड़ी चली आई। मैंने सवारी का प्रबन्ध करने की चेष्टा की, पर उन्होंने मेरी एक न सुनी। कैसा आश्चर्य! स्नान के लिए नदी जाती हैं तो रास्ता भूल जाती हैं, पर आज साथ में किसी को लिये बिना ही इतनी दूर अपरिचित रास्ते पर निरपेक्ष भाव से निःसंकोच चली आईं। मैं चेष्टा करके भी उनके साथ न आ सका। उनकी ऐसी तेज चाल कभी नहीं देखी।' यह सुन सब अवाक् रह गये। बाबाजी महाशय थोड़ा हँसते हुए बोले, 'भाई, माँ ने वात्सल्यसागर में उछाल मारी थी। अनुराग रूप वायु के कारण उत्कण्ठा रूपी तरंग इतनी प्रबल हो गई कि अपरिचित पथ भी इतनी जल्दी तय कर लिया। कुल, मान और मर्यादा वात्सल्य के आगे लज्जित होकर दूर भाग जाते हैं। वात्सल्यमयी माँ मानो यशोदा की प्रतिमूर्ति हैं। हम लोग बड़े भाग्यवान् हैं जो ऐसी भावमूर्ति का वात्सल्य प्राप्त किया।' यह सुन सभी एक साथ बोल पड़े, 'हम लोगों ने जीवन में ऐसा भाव कभी नहीं देखा, और देख पायँगे ऐसी आशा भी कभी नहीं की। यह सब आपकी कृपा से ही हुआ।'

बातें शेष हुईं। बाबाजी महाशय ने विनोदविहारी का महाप्रसाद लिया। तत्पश्चात् नाम-कीर्तन को चलाये रखने के लिए साथियों को टोलियों में बाँट दिया। अपने-अपने निश्चित समय पर आकर सभी नाम करने लगे। रात बीत गयी, किसी को पता नहीं चला। रात्रि के शेष भाग में 'निताइ गौर राधेश्याम, हरे कृष्ण हरे राम' भैरवी राग में चला। एक अपूर्व आनन्द था। मधुमय नाम, मधुमय स्वर, मधुमय समय, मधुमय संगीत, मधुमय तान-सभी ने मिलकर मन और प्राण मत्त कर दिये। सभी आनन्द में मग्न हो उठे। बाबाजी महाशय पैर पर पैर रखकर नृत्य कर रहे थे। उनका विशाल शरीर नृत्य के समय पुतली की भाँति मानो स्वतः घूम रहा था। उपस्थित सभी उनके भुवन-मोहन नृत्य को देख विस्मय सागर में डूब गये। नौ बज गये, फिर भी कोई नहीं चाहता था कि नाम समाप्त हो। पता नहीं इच्छामय की क्या इच्छा थी, प्रातः दस बजे बाबाजी महाशय इस प्रकार नृत्य करते-करते सबको लेकर निकल पड़े। साथ में असंख्य लोग थे। कटकवासियों की दृष्टि में उनकी भाव-भंगी, उनका कीर्तन-नर्तन, उनकी चाल, उनका सम्भाषण सभी कुछ नया लगा। सभी के हृदय में एक नया उत्साह था। बालक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी एक बात करते थे, 'बलिहारी, कैसा अपूर्व आनन्द, अपूर्व कीर्तन, अपूर्व नृत्य! बहुत गीत सुने हैं, नृत्य देखे हैं, पर ऐसा सर्वचित्ताकर्षक प्रभाव और कभी अनुभव नहीं किया' नगर-भ्रमण के बाद विनोदविहारी के आँगन में कीर्तन समाप्त हुआ। फिर सब लोग काठजुड़ी नदी में स्नान करने गये। काठजुड़ी नदी का जल और उसकी तटवर्ती भूमि देखकर बाबाजी महाशय बोले, 'काठजुड़ी नदी ठीक अपनी गंगा-जैसी लगती हैं। ऐसा निर्मल जल और ऐसी अपूर्व शोभा साधारण नदियों में प्रायः नहीं देखी जाती।'

बाबाजी महाशय जितने दिन कटक में रहे, वे काठजुड़ी नदी के जल के अतिरिक्त और कोई जल व्यवहार में नहीं लाये। इतना ही नहीं, वे काठजुड़ी नदी में स्नान करते समय गंगा का स्तव पाठ करते। स्नान कर सब लोग नाम करते-करते विनोदविहारी जी के मन्दिर में लौटकर आह्निक आदि करने लगे।

विनोदविहारी जी का भोगराग पूरा होने पर सबने अन्य बहुत-से भक्तों के साथ बड़े आनन्द से महाप्रसाद ग्रहण किया। फिर अपने निवासस्थान पर लौट कर विश्राम किया।

स्वामी केशवानन्द से मिलन

एक दिन तीसरे पहर एक व्यक्ति ने बाबाजी महाशय से आकर कहा 'काशी से एक साधु आये हैं, आपसे मिलना चाहते हैं।'

सुनते ही बाबाजी महाशय चौंक कर बोले, 'अरे, वे कहाँ हैं? चलो, मैं उनके पास चलता हूँ।'

आदमी ने कहा 'वे श्रीयुत् बाबू वनविहारी पालित महाशय के घर हैं, चलिये।'

बाबाजी महाशय उस व्यक्ति के साथ वनविहारी बाबू के घर जा पहुँचे। स्वामीजी को देखते ही बाबाजी महाशय ने उन्हें नमस्कार किया। स्वामीजी ने प्रति नमस्कार कर उन्हें पास बैठा कर पूछा 'आपका नाम?'

बाबाजी—इस दास को सभी राधारमणचरणदास कहते हैं।

स्वामीजी—कहाँ रहते हो?

बाबाजी—रहने का कोई निश्चित स्थान नहीं। श्रीजगन्नाथदेव ने बहुत दिन अपने धाम में रक्खा था, इस समय न जाने किस उद्देश्य से यहाँ भेज दिया है।

इस प्रकार की बहुत-सी बातों के पीछे स्वामीजी ने पूछा 'अच्छा, गौरांगदेव ने केशव भारती के निकट शिखासूत्र त्याग कर गेरुआ वस्त्र धारण कर संन्यास लिया था। उनके माला-तिलक आदि कुछ भी नहीं था, फिर उनके सम्प्रदाय में शुभ्र वस्त्र और शिखा-सूत्र, माला, तिलक आदि का प्रचलन कैसे हुआ?'

बाबाजी—स्वामीजी, ईश्वराणां वचः सत्यं तथैवाचरणं क्वचित्। श्रीगौरांगदेव पूर्ण-पूर्णतम साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र हैं। उनका आचरण जीव के लिए आचरण नहीं हो सकता। उन्होंने जीव को जिस प्रकार चलने की शिक्षा दी है, उसी प्रकार चलना हमारा कर्तव्य है। भविष्य में लोगों के मन में ऐसा कोई सन्देह पैदा न हो, इसीलिये तो महाप्रभु ने अपने सम्प्रदाय को मध्वाचार्य सम्प्रदाय के अन्तर्गत कर दिया है। वैष्णव सम्प्रदाय चार भागों में विभक्त हैं—रामानुज, विष्णुस्वामी, मध्वाचार्य एवं निम्बादित्य। इन चारों ही सम्प्रदायों में शुभ्रवसन, शिखा, सूत्र, माला और तिलक धारण किये जाते हैं।

स्वामीजी—महाप्रभु के मतावलम्बी लोग अन्य सम्प्रदाय में क्यों आये?

बाबाजी—महाप्रभु ने आज्ञा की थी कि मुझसे प्रेम करने वाले या मुझमें गुरु-बुद्धि रखने वाले अपने को मध्वाचार्य सम्प्रदाय के बतायँ। महाप्रभु की आज्ञापालन करना और उन्हें प्रसन्न रखना हमारा सभी प्रकार से कर्तव्य है।

स्वामीजी—मध्वाचार्य सम्प्रदाय के वैष्णव लोगों की भजन-प्रणाली से पता चलता है कि उनके आराध्य देवता नारायण हैं, उनका धाम बदरिकाश्रम है और उनके उपास्य ब्रह्म हैं। आप लोग उसी सम्प्रदाय के होकर राधागोविन्द की उपासना क्यों करते हैं?

बाबाजी—श्रीमन् महाप्रभु ने रागमार्गी उपासना-प्रणाली के अनुसार ऐश्वर्यगन्धहीन व्रजजनों का आनुगत्य लेकर श्रीकृष्ण-भजन करने का उपदेश किया है। व्रजगोपियाँ नारायण को देवता मान कर उनकी पूजा कर उनसे इसी बात की प्रार्थना करती हैं कि उन्हें श्रीकृष्ण-प्राप्ति हो। अतः व्रज-भाव के भजन में नारायण को ही देवता मानकर चलना पड़ेगा। महाप्रभु के मतावलम्बी लोगों का किसी को भी अवज्ञा की दृष्टि से देखना उचित नहीं। सर्वदेव पूजिबे ना हबे तत्पर, सबार निकट मेगे लबे कृष्णभक्ति वर।' सभी देवताओं का पूजन करना चाहिये, पर उनमें तत्पर न होकर उनसे कृष्ण-भक्ति का वर माँग लेना चाहिये। गोपियों ने कात्यायनी व्रत करके कृष्ण को पाया था। गोपेश्वर महादेव व्रज के अधीश्वर हैं। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीमन् महाप्रभु ने स्वयं आचरण कर जीवों को शिक्षा दी है। वे दक्षिण भ्रमण के लिये निकले थे, तब की बात है। वे वहाँ जिस देवता का दर्शन करते, उसी की मान-मर्यादा के साथ वन्दना करते और इष्ट-प्राप्ति की प्रार्थना करते। इस प्रकार उन्होंने जगत् को सिखाया

कि श्रीवृन्दावन-लीला अप्राकृत नर-लीला है। ऐश्वर्य की गन्ध भी रहने से अथवा राधागोविन्द को नारायण आदि के समान देवता मानने से व्रजप्राप्ति नहीं होती। श्रीधाम वृन्दावन तथा श्रीधाम नवद्वीप दोनों धामातीत धाम हैं? इसलिये बाहर रहकर हमारे उपासना तत्व को समझना उतना सहज नहीं है।

स्वामीजी—अच्छा, आप कहते हैं कि श्रीगौरांगदेव के आदेश का पालन करना ही आप लोगों का कर्तव्य है। श्रीगौरांगदेव ने स्वयं भक्त-भाव स्वीकार किया था। उन्होंने अपने को भजने के लिए तो नहीं कहा। उनकी स्तव-स्तुति की जाती थी अथवा उनका नाम-कीर्तन आदि किया जाता था, तो वे असन्तुष्ट ही होते थे। फिर आप लोग उनका भजन क्यों करते हैं?

बाबाजी—जिस तरह वृन्दावनविहारी नन्द-नन्दन वंशी-धारी ने कभी अपने को भजने के लिये नहीं कहा, पर श्रीगौरांग महाप्रभु के आदेश से हम उनका भजन करते हैं, उसी प्रकार श्रीमन्महाप्रभु के अभिन्न कलेवर श्रीनित्यानन्दप्रभु, नित्यपार्षद श्रीअद्वैत प्रभु, श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी इत्यादि के आदेश से हम श्रीगौरांगदेव का भजन करते हैं। श्रीनित्यानन्द ने कहा है—

भज गौरांग, कह गौरांग, लह गौरांगेर नाम।
जे जन गौरांग भजे शेइ आमार प्राण।।
दिन गेले हा गौरांग बले एक बार।
शे जन आमार होय आमि होइ तार।।

फिर श्रीगौरांग कहते हैं—

जनम धरिया हेलाय श्रद्धाय जे लय निताइर नाम।
आमि बिकाइ तारे देखाइ जुगल राधाश्याम।।

इसलिये हम दोनों के आदेश से दोनों का भजन करते हैं। पर यदि किसी को अपने कर्तव्य का ठीक-ठीक ज्ञान है, तो निताइ-गौरांग के चरणों में चिरकृतज्ञता स्वीकार कर सबसे पहले उन्हीं का भजन और स्मरण करना चाहिये, क्योंकि यदि निताइगौरांग कृपा कर चिरअनर्पित नाम-प्रेम तथा राधा-गोविन्द की युगल उपासना का आपामार साधारण जीवों में बिना पात्र-अपात्र का विचार किये वितरण न करते, तो सोचिये अनादि काल से मायामुग्ध कलिहत जीवों की क्या दुर्दशा होती? कोई हमारा साधारण उपकार करता है अथवा हमें किसी से कोई साधारण वस्तु प्राप्त होती है तो हम सौ-सौ बार उसके प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करते हैं, पर जिसने हमारी दुर्दशा देख अपने सुख-ऐश्वर्य को तिलांजलि दे, द्वार-द्वार पर जा और रो-रो कर ब्रह्मा आदि के लिये भी दुर्लभ प्रेमरूपी परम धन का बिना सोचे-समझे वितरण किया, उनका भजन करने अथवा उनके प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करने तक में हम कुण्ठित होते हैं। हम इतने भ्रान्त जीव हैं।

कहते-कहते बाबाजी महाशय की आँखों में पानी आ गया, कण्ठ गद्‌गद हो गया, और सर्वांग पुलकावली से विभूषित हो गया। उनके इस अपूर्व प्रेमविकार को देख स्वामीजी बड़े सन्तुष्ट हुए और बोले, 'आज मैं आपका संग पाकर धन्य हुआ। ऐसी सरल भाषा में वैष्णव सिद्धान्त आज तक किसी से नहीं सुना।' बाबाजी महाशय ने हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक कहा, 'आप लोग महात्मा हैं, आपकी कृपा से काठ की पुतली भी नाच सकती है, एक पंगु भी पर्वत को लाँघने में समर्थ हो सकता है। फिर मेरे मुख से कुछ कहलाएँ, तो क्या बड़ी बात है,' इस प्रकार के दीनता भरे वाक्य सुन स्वामीजी ने उठकर आत्मविभोर हो बाबाजी महाशय को आलिंगन किया। दोनों एक दूसरे के प्रति गुरु-बुद्धिरहित हो सख्य भाव में डूब गये। स्वामीजी ने पूछा, 'जीव का मुख्य साधन क्या है, किस रास्ते पर चलने से वह सहज में भगवान् की ओर अग्रसर हो सकता है?

बाबाजी—यह बात आप मुझसे न पूछकर यदि आप स्वयं ही बतायें तो अच्छा होगा। मैं शास्त्रादि कुछ नहीं जानता। मैं तो श्रीगुरुदेव की कृपा से मेरे मन को जो अच्छा लगता है, अथवा वे जो कहलाते हैं, वही कह सकता हूँ।

स्वामीजी—मैं ऐसी दैन्योक्ति नहीं सुनना चाहता। तुम्हें जो अच्छा लगता है उसी को सुनकर मैं अपने को कृतार्थ समझूँगा।

बाबाजी—जीव का मुख्य साधन है भक्ति। भगवान् भक्ति-सूत्र में जैसा बँधते हैं, वैसा और किसी तरह नहीं बँधते। भक्ति-पथ अत्यन्त सुगम, अनायास

प्राप्त होने वाला, एवं नित्य सुखप्रद है। श्रीमद्-भगवद्गीता में भगवान् ने कहा है—

'भक्त्या त्वनन्यया शक्यो ह्यहमेवंविधोऽर्ज्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुञ्च तत्वेन प्रवेष्टुञ्च परन्तप।।'

स्वामीजी—पर योग मार्ग में भी तो भगवान् बँध जाते हैं। उनहोंने श्रीमद्भगवद्गीता में योग को ही तो प्रधान बताया है—

'अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।।

बाबाजी—योग आपेक्षिक शब्द है। योग के दो लक्षण हैं? प्रथम-योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।'यह चित्त-वृत्तिनिरोध रूप जो योग है, इसकी प्रत्येक को आवश्यकता है। योग से किसी पथ विशेष को नहीं समझना चाहिये।'योगः कर्मसु कौशलं।' भक्ति, ज्ञान अथवा कर्म के पथ को पहचानने की योग्यता को ही योग कहते हैं। विचार कर देखिये, शास्त्रों में जिस हठयोग, राजयोग आदि का उल्लेख है, उनमें शरीर-रक्षा अथवा मन की स्थिरता के अतिरिक्त और कुछ है? योग शास्त्र में जो कहा गया है, भक्ति शास्त्र में भी ठीक वही है। क्रम-भेद से फलाफल की विभिन्नता मात्र है। पतञ्जलि कहते हैं, 'चित्त की सभी वृत्तियों का अवरोध करो। धौति, वस्ति, नेति, आसन एवं प्राणायाम आदि द्वारा कफ-पित्त आदि का वैषम्य दोष दूर करते हुए भी नाड़ियों को सरल बनाओ। ध्यान धारणा आदि द्वारा चित्त होने पर समाधि अवस्था प्राप्त होगी।' श्रीमन्महाप्रभु कहते हैं, चित्त की वृत्तियों को अवरुद्ध कर रखने से जब किसी न किसी कारण वे उन्मुक्त होंगी, तो वे क्या कुपथ की तरफ नहीं जायेंगी? एक पागल, जिसे कोठरी में बन्द रखा जाता है, किसी प्रकार मुक्त हो जाने पर क्या वह पूर्ववत् पागलपन नहीं करता? इसलिये इतने कष्ट से चित्त-वृत्तियों को न दबा कर ऐसा कार्य करना चाहिये, जिससे वह अनायास परिवर्तित हो सकें। काम को कृष्ण-विषयक कामों में अर्पित कर, क्रोध को भक्त-विरोधी लोगों की ओर लगाकर, लोभ को साधु-संग और हरि कथा में लगा कर सभी इन्द्रियों की गति बदल दी जाय, तो विपत्ति की आशंका नहीं रहती। आसन, प्राणायाम आदि द्वारा नाड़ियों को सरल कर ध्यान धारणा के योग से चित्त स्थिर हो तब समाधि प्राप्त होती है। इतना कष्ट उठाने की आवश्यकता क्या है? उच्च स्वर से नाम-कीर्तन, उद्दण्ड नृत्य, दण्डवत् नमस्कार, परिक्रमा आदि से देह की जड़ता एवं नाड़ी की वक्रता नष्ट हो जाती है और अपने आप सहज समाधि लग जाती है। योग शब्द का दूसरा अर्थ है—योजना करना, जैसे कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग इत्यादि।'कर्मणा भगवता सह योगः कर्मयोगः' इसी प्रकार 'ज्ञानेन भक्त्या वा भगवता सह योगः।' इससे पता चलता है कि योग कोई मार्गविशेष नहीं है। ज्ञान, कर्म, भक्ति इत्यादि द्वारा भगवान् के साथ चित्त-वृत्तियों के योग को ही 'योग' नाम दिया गया है। तभी श्रीमन्महाप्रभु ने कहा है कि ज्ञान, कर्म आदि की अपेक्षा भक्ति द्वारा पूर्ण-पूर्णतम श्रीभगवान् के साथ सहज में योग हो जाता है। यही कारण है कि भक्ति योग को सर्वापेक्षा श्रेष्ठ बताकर उसका वर्णन किया गया है। भक्ति भी दो प्रकार की है—वैधी और रागानुगा। वैधी भक्ति चौंसठ अंगों तथा नौ प्रकार में विभक्त है। रागानुगा भक्ति का क्रम नहीं बताया जा सकता, क्योंकि रागमार्गावलम्बी भक्त के प्राण कब किस ओर जायेंगे, कोई नहीं कह सकता। ये लोग वेद-विधि के परे हैं, फिर भी भक्तों द्वारा पूर्व आचरित मुख्य-मुख्य पथों का उल्लेख शास्त्र करते हैं। रागात्मिका भक्ति का दूसरा नाम सम्बन्ध-भक्ति है। इसके मुख्य साधन शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं मधुर पाँच प्रकार के हैं। इनमें से दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं मधुर यह चार भाव ही व्रज में देखने में आते हैं। मेरे प्रभु, मेरे सखा, मेरे पुत्र, मेरे कान्त - इस भाव से उपासना करने से श्रीकृष्ण अति सहज में वश में हो जाते हैं। यह चारों भाव श्रेष्ठ हैं, फिर भी तटस्थ होकर विचार करने से पता चलता है कि उत्तरोत्तर श्रेष्ठता के कारण गोस्वामी जनों ने मधुर भाव को ही सर्वश्रेष्ठ बताया है। मधुरभाव में बहुत से आवरणों को भेदकर पूर्ण निष्काम भाव से ऐश्वर्य-गन्धहीन हो उपासना करने से व्रजेन्द्रनन्दन कृष्ण की प्राप्ति होती है। पर यह गोपियों के आनुगत्य बिना सम्भव नहीं।

स्वामीजी—साधन द्वारा व्रज-प्राप्ति मैं समझ गया। पर जीव की मुक्ति का क्या उपाय है? सेवा और परिचर्या भी तो कर्म है।

बाबाजी—भगवत् उद्देश्य के लिये किया गया कर्म, कर्म की गणना में नहीं आता। अतः वह कर्म जीवन के बन्धन का कारण नहीं होता।

स्वामीजी—कर्म में उसकी गणना हो चाहे न हो, कर्म तो है ही। कर्म रहते मुक्ति कैसे होगी? मुक्ति ही तो एक मात्र वाञ्छनीय है।

बाबाजी महाशय हँसते-हँसते बोले, 'भगवत्-सेवापरायण व्यक्ति के लिए मुक्ति की वाञ्छा करना तो दूर रहा, वह उसे तुच्छ समझ कर उसका परित्याग कर देता है। भगवान् ने स्वयं कहा है—

सालोक्य-सार्ष्टि-सामीप्य-सायुज्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति बिना मत्सेवनं जनाः।।

सेवानिष्ठ व्यक्ति सेवा के अतिरिक्त और किसी वस्तु की कामना नहीं करता। यहाँ तक कि ध्यानादिक तप को भी वह हेय समझता है। फिर व्रजभाव के उपासकों की तो कोई बात ही नहीं। इस विषय में श्रीमन्महाप्रभु के श्रीमुख का वाक्य प्रमाण है। उन्होंने राधाभावावेश में कहा है—

पूर्वे उद्धवद्वारे, एबे साक्षात् आमारे,
जोगज्ञानेर कहिले उपाय।
तुमि विदग्ध कृपामय, जानो आमार हृदय,
मोरे ऐछे करिते न जुआय[1]।।
चित्त काढ़ि तोमा हैते, विषये चाहि लागाइते,
जत्न करि नारि काढ़ीबारे।[2]
तारे ज्ञान शिक्षा करो, लोक हासाइया मारो,
स्थानास्थान ना करो बिचारे।।
नहे गोपी जोगेश्वर, तोमार पद-कमल,
ध्यान करि पाइबे सन्तोष।
तोमार वाक्य परिपाटी, तार मध्ये कुटीनाटी,
शुनि गोपीर बाढ़े आर रोष।।
देहस्मृति नाहि जार, संसार कूप काँहा तार,
ताहा हैते ना चाहे उद्धार।
विरह-समुद्र-जले, कामतिमिंगिले गिले[3],
गोपी गणे लेहो तार पार।।

जिन लोगों ने संसार को कृष्ण का संसार मानकर अपने को श्रीकृष्ण को अर्पित कर दिया है, उनके लिये यह संसार दुःख और बन्धन का कारण नहीं हो सकता। उनकी सभी चेष्टाएँ कृष्ण के सुख के लिये होती हैं। कृष्ण को अर्पित किये गये शरीर द्वारा कदापि अधर्माचरण नहीं हो सकता। यदि कभी कहीं इसके विपरीत देखने में आता भी है तो उसके लिये वह व्यक्ति उत्तरदायी नहीं, क्योंकि भगवान् ने कहा है, 'मन्निमित्ते कृतं पापमपि धर्माय कल्पते।'

अभी तक स्वामीजी चुपचाप बाबाजी महाशय की बात सुन रहे थे। अब उन्होंने आनन्द से अधीर हो उन्हें आलिंगन कर लिया। कैसा अद्भुत दृश्य! दोनों के विशाल शरीर पुलक से परिपूर्ण हो समान रूप से कम्पित हो उठे। दोनों के आँसुओं से दोनों भीग गये। कभी दोनों जोर से हँस पड़ते, कभी प्रेम में विह्वल हो उद्दण्ड नृत्य करने लगते। कौन-सा आनन्द स्रोत दोनों के हृदय में उमड़ पड़ा, यह वे ही जानें। उपस्थित दर्शकगण विह्वल हो उनकी ओर देखने लगे और उस अननुभूतपूर्व आनन्द लहरी की एक-एक बूँद का आस्वादन कर अपने को धन्य मानने लगे। कुछ देर बाद जब दोनों स्थिर हुए, बाबाजी महाशय ने स्वामीजी से सख्यभाव से विदा लेकर वासस्थान को प्रस्थान किया।

प्यारी बाबू के घर महोत्सव

जैसे-जैसे दिन बीतने लगे, कटकवासी बाबाजी महाशय के प्रति अधिक आकर्षित होने लगे। एक दिन प्यारी बाबू आकर बाबाजी महाशय से बोले 'बाबा! तू सर्वत्र आनन्द करता घूमता है। एक दिन गोविन्द के घर नहीं चलेगा?' पहले ही कहा जा चुका है कि प्यारी बाबू और उनकी पत्नी वात्सल्य रस के उपासक थे और बाबाजी महाशय तथा उनके पार्षदों के प्रति उनका वात्सल्यभाव था।

बाबाजी—ऐसी क्या बात है बाबा! गोविन्द हमारे हैं, और हम आपके। आपकी आज्ञा की देर है।

1. शोभा नहीं देता। 2. यत्न करके भी मन तुमसे नहीं हटा सकती। 3. कामरूपी मगर निगले जा रहा है।

प्यारी—अच्छा तो आज ही सही।

बाबाजी—इसमें मुझे क्या आपत्ति है?

प्यारी—कितने आदमी हो जायेंगे?

बाबाजी—इसके लिए चिन्ता न करें। आप जो कुछ गोविन्द को भोग लगायेंगे, उसी से निताइचाँद पूर्ति कर देंगे। सम्भवत: चालीस-पचास लोग हो जायेंगे।

यह सुन प्यारी बाबू प्रसन्न हो घर चले गये। उन्होंने बाबाजी महाशय के कथनानुसार पचास-साठ लोगों के लिये आवश्यक सामग्री का प्रबन्ध कर लिया। दो ब्राह्मण पुजारी रसोई करने लगे। दिन बीतने को आया। बाबाजी महाशय कीर्तन करते-करते बालू बाजार, चौधुरी बाजार, बक्सी बाजार, चाँदनी चौक, साहबजादा बाजार होते हुए अन्त में मानिक घोष बाजार की ओर जाने लगे। इसी बाजार के बीच प्यारी बाबू का घर था। जिस समय संकीर्तन दल उनके घर के आगे आकर खड़ा हुआ, आदमियों की संख्या ढाई सौ से कम न थी। बाबाजी महाशय द्वारपर एक ओर खड़े हो सबको अन्दर भेजने लगे। सभी के प्रवेश कर चुकने पर उन्होंने स्वयं मस्ती के साथ घर में प्रवेश किया। गोविन्द जी को दण्डवत् प्रणाम कर वे जब रसोईवाले स्थान पर पहुँचे तो देखा कि आदमियों की अतिरिक्त संख्या को देख प्यारी बाबू और उनकी पत्नी बड़े चिन्तित हैं। उन्होंने माँ (प्यारी बाबू की स्त्री) को प्रणाम कर कहा 'माँ! निश्चिन्त होकर नाम श्रवण करो। खाने की चिन्ता न करो, निताइचाँद सब अभाव पूरा करेंगे। कोई भूखा न लौटे यही चाहती हो न।' स्नेहमयी माँ ने उनके सिर पर हाथ रखकर कहा 'बेटा! सब कुछ तुम्हीं लोगों का है; यदि कोई भूखा रखता है, तो तुम्हें ही अपयश लगेगा! मेरा क्या?' बाबाजी महाशय ने हँसते-हँसते कहा 'अच्छा ऐसा ही होगा। निताइचाँद के प्रसाद से कोई वंचित न रहेगा। चलो सब कीर्तन सुनें।' कहकर स्वयं नाचते-नाचते कीर्तन के बीच पहुँच कर नाम करने लगे। रात्रि प्राय: डेढ़ प्रहर बीत गई। किसी को ज्ञान नहीं, आबाल-वृद्ध-युवक सब नाम में उन्मत्त। किसी को बाहर की खबर नहीं। जो लोग बैठे हैं, वे एकाग्रचित्त से बाबाजी महाशय के मुख की ओर देख रहे हैं। जो इनके साथ कीर्तन कर रहे हैं, वे एक प्राण होकर एक तान से उनके स्वर में स्वर मिला कर ताल-ताल पर नृत्य कर रहे हैं। प्यारी बाबू के तीनों लड़के कीर्तन में नाच रहे हैं; वे स्वयं इस नामानन्द में विभोर हैं।

इस प्रकार बहुत देर तक कीर्तन रहने के बाद उसका विराम हुआ। घर में जगह बहुत कम थी। बैठने में असुविधा होगी, इसलिए बाबाजी महाशय स्वयं सबको बिठाने लगे। सभी निर्विकार भाव से एक साथ बैठने लगे। पंक्ति अथवा जाति विषयक विचार मानो डर कर उस स्थान से दूर भाग गये। परोसने का भार ललितादासी और कुसुमदासी पर था। बाबाजी महाशय एक बार भोगवाले कमरे में गये और प्रसाद देखकर ललितादासी से बोले 'आनन्दपूर्वक प्राण खोल कर परोसो; निताइचाँद साथ हैं।' ललितादासी बोलीं 'आप महाप्रसाद पाने बैठिये, कोई चिन्ता नहीं।' इस पर बाबाजी महाशय कुछ ब्राह्मणों को साथ ले पंगत के बीच में जाकर बैठ गये। पंगत आरम्भ हुई, आनन्द की अवधि न रही। स्थानाभाव के कारण सब एक साथ न बैठ सके। इनके सभी साथी राधाविनोद, किशोरीगोपाल, अद्वैतदास आदि एक-एक कोने में खड़े होकर निताइ-गौर तथा राधागोविन्द का गुणानुकीर्तन करने लगे। बाबाजी महाशय प्रेमानन्द में विभोर हो अर्धमुद्रित नेत्रों के साथ झूम रहे थे। भोगवाले कमरे से जितना महाप्रसाद आता था उतना मानो निताइचाँद फिर पूरा कर देते थे। निताइचाँद का भण्डार पूरा ही रहता था। इस प्रकार परमानन्दपूर्वक एक पंगत हो गई। दूसरी आकर बैठ गई। इस पंगत के पूरा होने पर प्राय: तीस-चालीस महिलाओं ने प्रसाद पाया। तत्पश्चात् प्यारी बाबू की स्त्री ने भोग के कमरे में जाकर देखा कि अभी सात-आठ लोगों के उपयुक्त प्रसाद बाकी है। यह देख भक्तिमयी माँ बच्ची की तरह रो पड़ीं। बाबाजी महाशय की अलौकिक शक्ति देख कर सभी विस्मित हो गये। पचास-साठ लोगों के लिये बनाये गये अन्न से कोई तीन सौ लोगों की तृप्ति हुई। जिन लोगों ने रसोई की थी, उन्होंने आश्चर्य चकित हो ललितादासी से पूछा 'इतने लोगों की पूर्ति कैसे हुई?'

उन्होंने उत्तर दिया 'मैं क्या करूँ? आवश्यकतानुसार दाल-तरकारी परोसती गई, मैं तो इतना ही जानती हूँ। कहाँ से ये सब आया और किस प्रकार पूर्ति हुई, एकमात्र गुरुदेव जानें। परोसते समय इन सब बातों के विषय में सोचने का अवकाश ही मेरे पास कहाँ था?'

रात अधिक होने के कारण ये लोग और विलम्ब न कर नाम करते-करते वासस्थान को जाने को तैयार हुए। पढ़े-लिखे बाबू लोग बाबाजी महाशय से आज्ञा ले अपने-अपने घर चले गये। इन लोगों ने भी अपने स्थान पर आकर विश्राम किया। उड़ीसा भ्रमण के समय प्रायः प्रतिदिन बाबाजी महाशय की ऐसी ऐश्वर्य-लीला देखने में आती।

शाक्त-वैष्णव-तत्वमीमांसा

एक दिन प्रातःकाल किसी भक्त ने आकर बाबाजी महाशय से प्रार्थना की कि वे सपार्षद उसके यहाँ प्रसाद पायें। बाबाजी महाशय राजी हो गये। भक्त ने पूछा—'आपके साथ लगभग कितने लोग होंगे?' उन्होंने मृदु हास के साथ कहा—'तुम कितने लोगों के लिए कहना चाहते हो?'

भक्त—मेरी कोई इच्छा नहीं। आपकी जो इच्छा, वही होगा।

बाबा—मैं और क्या कहूँ? कीर्तन के साथ यदि दस आदमी अधिक चलें तो तुम्हें अपना परम सौभाग्य समझना चाहिये।

भक्त—इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं; पर पहले से मालूम न हो तो प्रबन्ध कैसे होगा?

बाबा—अच्छा, तो सौ आदमियों तक के लिए आयोजन करो। दो-चार कम भी हो सकते हैं, अधिक भी हो सकते हैं।

भक्त प्रसन्नचित्त घर चला गया। बाबाजी महाशय नियमानुसार रात में ही निमन्त्रण स्वीकार करते थे, क्योंकि दिन में सभी लोग समान भाव से योगदान नहीं कर सकते थे। कीर्तन सुनने की उत्कंठा भी बहुत लोगों को रहती थी। इसीलिए दिन में अपने-अपने स्थान पर ठाकुर जी को भोग देकर प्रसाद पाते और रात में भक्त जनों के घर जाते। भक्त दोपहर पीछे इन लोगों को ले जाने के लिये आ गया। बाबाजी महाशय साथियों के साथ नाम लेकर चल पड़े। बालू बाजार के रास्ते से कटक शहर घूमते हुए, भक्त के घर जा पहुँचे।

भक्त जाति का हलवाई था; बहुत पैसेवाला था। लोगों का कहना था कि वह थोड़ा कंजूस था, पर आज मानो उसका हृदय खुल गया था। बाबाजी महाशय ने सौ आदमियों के लिये कहा था, उसने प्रायः दो सौ आदमियों के लिए प्रबन्ध किया। वह कीर्तन के साथ अतिरिक्त जनसंख्या देख चिन्तित नहीं, वरन् आनन्दित हुआ। बहुत समय कीर्तन कर नाम समाप्त कर जैसे ही बाबाजी महाशय बैठे, दुर्गाप्रसाद दत्त और बलराम महापात्र नामक दो युवक उनके आगे आकर बैठ गये। इन दोनों के बीच तीन दिन से वाद-विवाद चल रहा था। विवाद का विषय दोनों के इष्टदेवों को लेकर था। दुर्गाप्रसाद जाति का गन्धवणिक, वैष्णव सम्प्रदायभुक्त तथा कृष्ण-मन्त्र में दीक्षित था। उसका मत था कि कृष्ण-भजन ही सर्वश्रेष्ठ है; श्रीकृष्ण ही एकमात्र ईश्वर हैं, अन्यान्य देव-देवियाँ, उनकी अंश-कला विशेष हैं। बलराम महापात्र अवस्था में दुर्गाप्रसाद से कुछ बड़ा था। उसका कहना था कि शक्ति-उपासना ही सर्वप्रधान है, जगत् के सभी काम एकमात्र शक्ति के खेल हैं, शक्ति के बिना सृष्टि का काम नहीं हो सकता, कृष्ण भी शक्ति की उपासना करते हैं, आद्याशक्ति भगवती के भजन बिना मनुष्य जीवन बेकार है। इस प्रकार तीन दिन से बराबर वाद-विवाद चल रहा था। कोई किसी को परास्त नहीं कर पाया था। दोनों ने बाबाजी महाशय को मध्यस्थ के रूप में स्वीकार किया था। पर किसी में साहस नहीं हो रहा था कि उनसे कुछ कहे। बाबाजी महाशय ने मृदु हँसते हुए कहा 'तुम लोगों को देख ऐसा लगता है कि तुम कुछ कहने के लिए आये हो। बोलो, क्या शंका है? मैं स्वयं न जानते हुए भी दूसरों से पूछकर तुम्हारा सन्देह दूर करूँगा।' तब साहस पाकर दोनों बोल उठे, 'शक्ति-उपासना श्रेष्ठ है या कृष्ण-उपासना?'

बाबाजी—तुम किसे बड़ा मानते हो, पहले बताओ, फिर मैं कहूँगा।

दुर्गा—श्रीकृष्ण बड़े हैं। भागवत में कहा है—

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।
इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे।।

श्रीचैतन्यचरितामृत में कहा है—

युग प्रवर्तन हय अंशकला हइते।
आमा बिनु केहो नारे व्रजप्रेम दिते।।

जब हमें प्रेम से ही प्रयोजन है, तो बिना कृष्ण को भजे कैसे काम चलेगा? और भी कहा है—

श्रेयांसि तत्र खलु सत्वतनोर्नृणां स्युः।

यह तो हुई शास्त्र की बात। व्यावहारिक दृष्टि से देखें तो शाक्त लोगों का आचरण कितना घृणित है। मद्यमांस लेकर क्या कभी भगवदुपासना होती है? वह सब तो आसुरी काम हैं। काली-दुर्गा की जितनी लीला है, उसमें मार-काट के अतिरिक्त और क्या है? आप ही बताइये, जिसका हम भजन करें, यदि वह ही खड्ग, त्रिशूल, मूषल, मुद्गरधारी है, तो हमारे में सत्त्वगुण कहाँ से आयेंगे?

'अकामो विष्णुकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्।।'

काली—दुर्गा आदि सकाम देवी-देवताओं का भजन कर परमार्थ लाभ कभी नहीं हो सकता। शाक्तों के साथ वैष्णवों की तुलना ही असम्भव है।

बाबाजी—अच्छा, तुम क्या कहते हो भाई?

महा—मैं पहले यह पूछना चाहता हूँ कि शक्ति बिना क्या कोई कार्य हो सकता है? दृश्यादृश्य-स्थूलसूक्ष्म-जगत् शक्ति से उत्पन्न है। शक्ति के अभाव में शक्तिमान कोई भी कार्य नहीं कर सकता। जब उसके बिना शक्तिमान कोई कार्य ही नहीं कर सकता, तो शक्ति बड़ी नहीं हुई क्या? व्रज-गोपियों ने शक्ति-आराधना कर श्रीकृष्ण को प्राप्त किया था। वन में जाकर भगवती को माँ कहकर सम्बोधित किया। माँ ने भी उन्हें गोद में ले अपने दस हाथों से मक्खन खिलाया। इससे हम क्या समझें? माँ से देवताओं ने अपनी रक्षा के लिये प्रार्थना की थी, तभी उन्होंने असुरों के विनाश के लिये अस्त्र धारण किये थे। माँ भक्तवाँछा कल्पतरु हैं। उनके आगे भक्त जो प्रार्थना करते हैं उसे पूरा करती हैं। रामचन्द्र, कृष्णचन्द्र ने क्या कभी अस्त्र धारण नहीं किये?

बाबाजी—अच्छा, तुम लोगों के मत सुने। अब दोनों अपने हृदय का द्वेषभाव त्याग मेरी बात सुनो। हिंसा-द्वेषपूर्ण हृदय में विशुद्ध वस्तु को धारण नहीं किया जा सकता। मेरे विचार से तुम दोनों की ही धारणायें गलत हैं। शक्ति और शक्तिमान के गुरुत्व-लघुत्व को लेकर विचार करना सम्भव नहीं। कारण—'शक्तिशक्तिमतोरभेदः।' इस प्राकृत राज्य की बात सोचो। अग्नि और दाहिका शक्ति, इनका लघुत्व-गुरुत्व, अथवा दोनों की पृथकता, क्या कोई निर्धारित कर सकता है? गीता में कहा है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दृष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।

अन्यत्र कहा है—

साधकानां हितार्थाय ब्रह्मणो रूपकल्पना।

पुराणान्तर में—

देवानां कार्यसिद्धयर्थमाविर्भवति चाम्बिका।

इस प्रकार शास्त्र शक्ति-शक्तिमान के अभेद को छोड़ भेद की कल्पना भी नहीं करते। तुमने श्रीमद्भागवत का प्रमाण दिया—

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।

सुन्दर! कृष्ण अंशी हैं, अन्य सब उनके अंशकला विशेष हैं। इससे क्या समझे? अंशी और अंश में, अथवा अवतारी और अवतार में, पार्थक्य क्या सम्भव है? एक-एक कार्य की सिद्धि के लिए, देश-काल-पात्र के अनुरूप, भगवान् एक-एक रूप धारण करते हैं, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। भगवान् के किसी अवतार के क्रिया-कलाप अथवा लीला की समालोचना करना साधन के विरुद्ध है। हम जब अपने प्राकृत चक्षु और संकीर्ण बुद्धि से किसी लीला को देखेंगे, तो हमें दोष दीखेंगे। यदि भगवत्स्वरूपों में भी दोष रहे, तो जीव का क्या होगा? श्रुति, स्मृति, पुराण, तन्त्र, इतिहास आदि में जो ऋषि-मुनियों का मतान्तर दीखता है, वह

केवल उपासकों की रुचि और उनके अधिकारों की भिन्नता के कारण है।

'त्रयी सांख्यं योग: पशुपतिमतं वैष्णवमिति।
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमद: पथ्यमिति च।।
रुचीनां वैचित्र्याद् ऋजुकुटिलनानापथजुषां।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।।

हम लोगों की अपनी-अपनी प्रवृत्ति के अनुसार उपासना तथा आचारगत पार्थक्य इतना हो गया है कि यह उपासकों को अतिक्रम कर उपास्यों तक फैल गया है। निर्विकार, निष्काम विशुद्ध वैष्णव-धर्म में कल्पित उपधर्म-भाव का बहुत विस्तार हो गया है। अपनी-अपनी इन्द्रियवृत्ति को चरितार्थ करने के लिए बनाये गये उपधर्मों के प्रभाव से मनुष्य महाप्रभु के विशुद्ध पथपर न जाने कितने कलंक आरोपित करते हैं। इतना ही नहीं, शिक्षित समाज में भी वैष्णव धर्म के प्रति इतनी अश्रद्धा हो गई है कि इस अश्रद्धा ने धर्म-याजकों को अतिक्रम कर भगवान् तक को स्पर्श कर लिया है। ऐसा शाक्त लोगों में भी हुआ है। तन्त्रादि में, शक्ति की उपासना-प्रणाली जिस प्रकार मिलती है, उसमें देश-काल-पात्र के अनुसार आचरण का निर्देश किया गया है। उपासक इन सब बातों की ओर ध्यान नहीं देते। वे अपनी-अपनी प्रवृत्ति के बल पर यथेच्छाचार करते हैं। फलत: लोगों की नजरों में उनके प्रति विपरीत भाव उत्पन्न हो गया है, और उनकी यह आचरण-भ्रष्टता उपासकों तक ही सीमित न रह कर उपास्यों तक के ऊपर आरोपित हो गयी है। इसी कारण पंच देवताओं के उपासक प्राय: एक दूसरे के प्रति द्वेष-हिंसा रखते हैं। तन्त्र में दिव्याचार, वीराचार और पश्वाचार इन तीन प्रकार की विधियों का निर्देश किया गया है। दिव्याचार देवताओं के पक्ष में और वीराचार-पश्वाचार मनुष्यों के पक्ष में स्थिर किये हैं। क्षत्रियधर्मावलम्बी राजस प्रकृतिवाले सभी लोग वीराचार के अनुसार, और सात्विकभाववाले लोग पश्वाचार मत से शक्ति-उपासना करते हैं। यही नहीं, तन्त्रादि में अनेक स्थानों पर कलियुग में एकमात्र पश्वाचार द्वारा माँ की उपासना का विधान मिलता है। पश्वाचार, अर्थात् सात्विक आचार से मद्य-मांस आदि का कोई सम्बन्ध नहीं। बहुत-से लोग पश्वाचार मत से उपासना शुरू करते हैं, पर तन्त्र में लिखे वीराचार के दो-एक श्लोक कण्ठस्थ कर अपनी-अपनी प्रवृत्ति को चरितार्थ करने की इच्छा से, पशु-हिंसा अथवा मद्यादि का व्यवहार कर बैठते हैं। क्या इसी को माँ की उपासना प्रणाली कहा जाय? इन्हीं सब बातों को लेकर शाक्त और वैष्णवों का झगड़ा है। शास्त्रों का प्रकृत मर्म जाने बिना ही बाह्य व्यवहार को लेकर विवाद करना गलत है। मैं तो बहुत कुछ खोज करने पर भी शाक्त और वैष्णवों में कोई पार्थक्य नहीं देख पाया, क्योंकि वैष्णवधर्मावलम्बियों का प्रधान आधार ही योगमाया पौर्णमासी देवी हैं। उनकी कृपा प्राप्त किये बिना तो लीला में प्रवेश करने का अधिकार ही नहीं मिल सकता। व्रजगोपियों ने कात्यायनी व्रत करके श्रीकृष्ण को प्राप्त किया था। माँ यशोदा ने हरगौरी की आराधना कर कृष्ण को प्राप्त किया था। शचीमाँ ने पोड़ामाता नामक नवद्वीपाधिष्ठात्री देवी तथा पुण्यसलिला माँ गंगा की उपासना कर गौरांगदेव को प्राप्त किया था। प्रधान पद-रचयिता ठाकुर चण्डीदास ने ग्राम्यदेवी वाशुली की आराधना कर, उनकी कृपा से श्रीश्रीराधागोविन्द-लीला का प्रत्यक्ष अनुभव किया था। किसी भी भाव को लेकर चलने वाला वैष्णव क्यों न हो, शक्ति की कृपा बिना क्या उसने कभी भगवान् को प्राप्त किया है? फिर जो लोग शाक्त होने का अभिमान करते हैं या 'वैष्णव लोग कुछ भी नहीं' कह कर उनके प्रति अवज्ञा प्रदर्शन करते हैं और वाद-विवाद करते हैं, वह क्या शालग्राम-शिला की सेवा नहीं करते? विष्णु की पूजा-आराधना के बिना कोई आराधना सिद्ध नहीं हो सकती। शास्त्र में कहा है 'विष्णुपूजाविहीना या सा पूजा निष्फला मता!' अन्यत्र 'चक्रहीनन्तु यत्स्थानं तत्तु शौचविवर्ज्जितं। न हि देवगणास्तत्र तिष्ठन्ति शंकरोऽब्रवीत्।' ऐसा कौन व्यक्ति है, जो अन्तकाल में हरे कृष्ण, गोविन्द, राम, नारायण ब्रह्म आदि नाम उच्चारण नहीं करता? अब किसे शाक्त कहें और किसे वैष्णव?

यह तो हुई साधन की बात। अब लो भगवत्स्वरूप की बात। रामचन्द्र ने रावण वध के समय एक सौ

आठ नील-कमलों से देवी की आराधना की थी। श्रीकृष्ण ने वृन्दावन-लीला का आस्वादन करने के लिए योगमाया का आश्रय ग्रहण किया था। उनको प्रणाम कर उनकी वन्दना की थी और देवी दशभुजा को 'माता' कह कर उनसे मक्खन ग्रहण किया था। देवादिदेव महादेव रामनाम में उन्मत्त हो दिन-रात श्मशान में भ्रमण करते रहते हैं। महामाया भगवान् का अधरामृत पाने के लिए बहुत तपस्या कर श्रीजगन्नाथधाम में विमला रूप से वास करती हुई महाप्रसाद ग्रहण करती हैं। इसी प्रकार देव-देवियाँ परस्पर एक दूसरे की आराधना करते रहते हैं। इस विषय को लेकर विवाद करना बिलकुल अनुचित है। 'निन्दाशून्य नम्रभावे सबारे स्तवन। अभ्यागत आहूत व्यक्तिर चरण वन्दन' यह साधारण वाक्य है। धर्मसाधक मात्र का कर्तव्य है इसका पालन करना। इसमें गृहस्थ, वानप्रस्थ अथवा संन्यासी का भेदाभेद नहीं। पर जो भी हो सही, 'परचर्च्चकेर गति नाहि कोनो काले।' विशेषतः वैष्णवधर्म के तो यह बिलकुल विपरीत है।

ब्राह्मण आचण्डाल कुक्कुरान्त करि।
दण्डवत् करिबेक बहुमान्य करि।।
एइ शे वैष्णवधर्म सबारे प्रणति।
शेइ धर्मध्वजी जार इथे नाहि मति।।

यही महावाक्य वैष्णवधर्म की मूलभित्ति है। जब शास्त्र चण्डाल और कुत्ते तक को प्रणाम वन्दना करने के लिए कहते हैं, तो शिव, दुर्गा, काली आदि देव-देवी क्या उनसे भी तुच्छ हैं? जो कुछ भी नहीं मानते, वह भी अच्छे हैं, पर एकदेशव्यापिनी भक्ति तो अनर्थ की जड़ है। यह बात शास्त्र में भी मिलती है—

किछुइ ना माने हय सेहो त पाषण्ड।
एके माने आरे ना माने शेइ मत भण्ड।।
पाषण्डेर उद्धार हइबे अवहेले।
भण्डेर निस्तार नाहिक कोनो काले।।

तुम्हारे इस विवाद से मुझे एक कहानी याद आ गई। एक गुरुदेव अपने किसी शिष्य के घर गये। शिष्य के कोई सन्तान न थी। स्वामी-स्त्री दो ही प्राणी थे। स्त्री ने गुरुदेव से प्रश्न किया 'गुरुदेव, शिष्य का एकमात्र आश्रय-स्थान अथवा उसके उद्धार का उपाय क्या है?' गुरुदेव बोले 'बेटी, श्रीगुरु पाद-पद्म ही शिष्य का एकमात्र सहारा है। गुरुपाद-पद्म-सेवा को छोड़ संसार-पार जाने का और उपाय नहीं।' गुरुवाक्य में ही निष्ठा रखने वाली शिष्य-पत्नी ने मन ही मन निश्चय कर लिया कि गुरुपाद-पद्म ही श्रेष्ठ हैं, गुरुपाद-पद्म सेवा ही शिष्य का एक मात्र कर्तव्य है। पर शिष्य ने सोचा 'गुरु मुखपद्म वाक्य, चित्तेते करिया ऐक्य, आर ना करिहो मने आश।' श्रीगुरुदेव के श्रीमुखनिःसृत मन्त्रात्मक अक्षर यदि कानों के रास्ते हृदय में प्रवेश न करते, तो हृदय का अन्धकार किस प्रकार दूर होता? अनादि काल से त्रिताप-तापित हृदय मरु-भूमि की तरह कठोर और शुष्क था। अयाचित कृपाकारी परम दयाल श्रीगुरुदेव ने करुणाकर अपने उपदेश रूपी अमृत से सींचकर उस हृदय को सुशीतल और स्निग्ध बनाया है। अतएव श्रीगुरुदेव का श्रीमुख ही सर्वश्रेष्ठ है।' एक दिन जब स्वामी-स्त्री दोनों अपने-अपने मन की बात कहने लगे तो दोनों में वाद-विवाद हो गया। स्त्री कहने लगी, गुरुदेव के चरण श्रेष्ठ हैं; स्वामी कहने लगा उनका मुख श्रेष्ठ है। जब कोई किसी को परास्त न कर सका, तो गुरुदेव को संवाद दिया गया। गुरुदेव के आते ही शिष्य-पत्नी ने उनके चरणों की देख-रेख आरम्भ कर दी। शिष्य उनके उपदेशामृत का पान करने में विभोर हो गये। गुरुदेव ने अपने को बड़े संकट में पड़े देखा। शिष्य और शिष्य-पत्नी दोनों उनके मुख और चरणों को लेकर व्यस्त हैं, उनके बैठने के लिये आसन की अथवा भोजनादि की व्यवस्था कौन करे? गुरुदेव दोपहर के समय वैसे आये हैं, कौन पंखा कर उन्हें स्वस्थ करे? उनके सिर और उदर का सेवक तो यहाँ कोई है ही नहीं। इसी को कहते हैं एकदेश-व्यापिनी भक्ति। मुझे जिस-जिस वस्तु की आवश्यकता है, उसे मैं जिससे प्राप्त कर सकूँ, वही मेरा सर्वस्व है, उसके अतिरिक्त दूसरा कोई रहे या मरे। स्वामी ही स्त्री का एकमात्र सेव्य है; स्वामी सेवा ही उसका कर्तव्य है। सास, ससुर, देवर या जेठ की सेवा का उल्लेख तो शास्त्र में है नहीं, इसलिये उनकी सेवा करने की कोई आवश्यकता नहीं। जो लोग पूर्णपूर्णतम श्रीकृष्ण का भजन करना

चाहते हैं, वे शिव, दुर्गा आदि तो दूर यदि तृण, लता, कीट, पतंग को भी प्रेम-भक्ति की दृष्टि से न देखें तो उनके कृष्ण-भजन की अंग-हानि होती है।

एक बात और पूछता हूँ। जो विष्णु-आराधना करते हैं, वे वैष्णव हैं, जो शक्ति-उपासना करते हैं, वे शाक्त हैं। यह ठीक है, पर जो लोग श्रीसम्प्रदायी वैष्णव हैं, उन्हें क्या कहोगे, शाक्त या वैष्णव? वे भी तो शक्ति की उपासना करते हैं। व्रज के उपासक लोग माधुर्यभाव से श्रीमती राधारानी की आराधना करते हैं, वे भी शाक्त हैं। यदि कहो विष्णुशक्ति को भजने वाला वैष्णव है और अन्य शक्ति को भजने-वाला शाक्त, तो सुनो, मार्कण्डेय पुराण के अन्तर्गत चण्डी के नारायणी महात्म्य में है—

'सर्वमंगलमांगल्ये शिवे सर्वार्थ साधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तुते।।

कितने ही स्थानों पर भगवती को नारायणी कहा गया है। तभी कहता हूँ, यह भेद उपास्यगत नहीं, आचारगत है। सात्विकभाव से जो भी भजन करता है, चाहे किसी का भजन हो, वही वैष्णव है, कारण विष्णु का एक नाम है 'सत्व'। जिस जगह सात्विक भाव रहता है, वहाँ और किसी का अधिकार नहीं होता। इसलिये मेरा कहना है कि धर्म को लेकर विवाद मत करो। उसे छोड़ जिसकी जैसी रुचि है, उसी के अनुसार भगवत्पथ पर अग्रसर हो। जिस समय जैसी आवश्यकता होगी प्रभु स्वयं पूरी करेंगे। शंकर-शंकरी परम वैष्णव-वैष्णवी जगत् के माता-पिता हैं। समस्त जगत् प्रकृति है, सच्चिदानन्द गोविन्द मात्र पुरुष हैं। उपयुक्त पात्र के साथ सम्बन्ध स्थिर करना होता है, तो माता-पिता ही करते हैं। अतएव सर्वप्रथम परम वैष्णव जगद्गुरु शंकर और शंकरी की आराधना करो। उनकी कृपा से ही श्रीश्रीराधागोविन्द प्राप्त करोगे।

अब तो दोनों युवक व्याकुल हो बाबाजी महाशय के चरणों में पड़ रोने लगे। उन्होंने दोनों को आलिंगन कर स्वस्थ किया। उपस्थित भक्त लोग जो बहुत समय से उपास्यगत द्वैतभाव अपने हृदय में पालते आ रहे थे, बाबाजी महाशय के मुख से यह शाक्त-वैष्णव-समन्वय श्रवण कर, अपने को अपराधी मानकर उनके चरणों में क्षमा प्रार्थना करने लगे। प्रेमगद्‌गद कण्ठ से बाबाजी महाशय बोले 'भाइयो, धन्य है कलियुग। परम दयाल निताइ-गौरांग कैसे भी अपराध का विचार नहीं करते। व्याकुल प्राण से 'हा! निताइगौरांग' कह कर पुकारो। उनके चरणों में आत्मसमर्पण करो, अभीष्ट प्राप्त होगा।' इस प्रकार सभी को आश्वासन दे, परमानन्दपूर्वक महाप्रसाद-सेवन कर नाम करते-करते वे अपने स्थान को लौट आये।

द्वादश गोपाल

एक दिन विमलाप्रसाद सेन नामक किसी भक्त के घर से बाबाजी महाशय और उनके पार्षदों के लिये महाप्रसाद का निमन्त्रण आया। सेन लोग जाति के वैद्य थे। ये पहले कयेरपुर रहते थे, आजकल ये और इनके स्वजातीय कुछ अन्य लोग अपने-अपने परिवारों के साथ नौकरी-चाकरी के कारण कटक में रहते थे। इनके घर की महिलायें फूलों से सुन्दर-सुन्दर मालायें, जूड़े और तरह-तरह के अलंकार बनाने में निपुण थीं। पता नहीं, आज किसकी प्रेरणा से, ये जूड़े, मालायें और विभिन्न प्रकार के पुष्पाभरण तैयार कर रही थीं। किसी से कुछ कहना-सुनना नहीं; लगता था कि आज उनके सबके हृदय में अनजाने ही एक अनिर्वचनीय भाव खेल रहा था।

दिन बीतता देख बाबाजी महाशय सगण नाम-कीर्तन करते-करते स्थान से निकल पड़े और कटक शहर के बहुत स्थानों में भ्रमण करते हुए विमला बाबू के घर जा पहुँचे। उद्दण्ड कीर्तन चल रहा था, उसी समय उन्होंने एक लड़के से कहा 'देख रे! तेरे घर में फूलों के तरह-तरह के अलंकार तैयार हुए हैं, उन्हें ले आ तो।' वह लड़का इस घर का नहीं था। विमला बाबू का स्वजातीय और आत्मीय था। उसने थोड़ा विस्मित होकर कहा, 'जी, मुझे तो कुछ पता नहीं। अच्छा, देखकर आता हूँ।' कहकर जब वह घर के भीतर पहुँचा, तो देखा कि महिलाओं ने फूलों के तरह-तरह के जूड़े, बालियाँ, कंकण, बाजूबन्द, हार आदि अलंकार बना-बनाकर थालियों में रखे हैं। वह विस्मय के साथ सोचने लगा, निश्चय ही यह सर्वान्तर्यामी महापुरुष हैं, नहीं तो जिस बात को हम

लोग यहाँ पास रहते हुए भी नहीं जान सके, ये कैसे जान गये?' यह सोचते-सोचते वह फूलों की थाली लेकर बाहर आया। फूल देखकर बाबाजी महाशय ने मन ही मन क्या सोचा, वे ही जानें। वे साथियों को नाम करने का आदेश कर, स्वयं प्रसन्न चित्त एक ओर बैठ कर युवकों को एक-एक कर सजाने लगे। कृष्णपालित, राधाकृष्ण महान्ति, व्रजबाबू इत्यादि बारह युवकों को उनके मनोभाव के अनुसार, बारह ग्वालों के वेश में सजा दिया, और एक-एक कर पंक्ति में खड़ा कर दिया। तत्पश्चात् जैसे ही उन्होंने एक-एक के कान में एक-एक ग्वाले का नाम और मन्त्र उच्चारण किया, वह उसी प्रकार के भाव से भर गया। तब उनके आदेशानुसार साथी लोग युवकों के आगे कीर्तन करने लगे। उधर ललितादासी आदि सखियों की सहायता से अन्य आठ व्यक्तियों को सखी-वेश में सुसज्जित कर दिया गया और उन्हें एक वृत्त बनाते हुए खड़ा कर दिया गया। बाबाजी महाशय उनके भी कानों में एक-एक सखी मंजरी का नाम और मन्त्र उच्चारण कर भावोन्मत्त अवस्था में कीर्तन में योगदान करने लगे। कृष्णलीला के द्वादश रखाल (ग्वाले) गौरलीला में द्वादश गोपाल हुए हैं—इस विषय के तथा उनकी अन्य सब लीलाओं के पद गा-गाकर वे उपस्थित भक्त लोगों के हृदय में समकालीन कृष्णलीला और गौरलीला के प्रत्यक्ष भाव जगाने लगे। अब मानो प्रेमसिन्धु उथल पड़ा। सभी विभोर हैं; सभी मानो प्रत्यक्ष लीला का अनुभव कर आनन्दसागर में तल्लीन हैं। बाबाजी महाशय ने सख्यरस गान के पश्चात् समयानुसार मधुर लीला में प्रवेश किया। अब वे उसी भाव के गीत गाने लगे। आठों सखियाँ अपूर्व नृत्य करने लगीं, आबाल-वृद्ध-वनिता सभी मानो लीला में विभोर हैं। किसी को बाह्य चेतना नहीं। बाबाजी महाशय जिस भाव का स्वरचित पद गाते हैं, सखा-सखी ठीक उसी भावानुसार नृत्यकर अथवा अंग भंगिमा प्रकट कर उपस्थित दर्शकों के आनन्द को दसगुना कर देते हैं और स्वयं प्रेमानन्दसागर में डूबने लगते हैं। आश्चर्य! ये युवक जिन्हें कृष्णलीला और गौर लीला का बिलकुल ज्ञान नहीं, आज महापुरुष की शक्ति के प्रभाव से भावसागर में निमग्न, आत्म-विभोर एवं बाह्यस्मृतिहीन हो इस प्रकार नृत्यकीर्तन कर रहे हैं मानो वे प्रत्यक्ष लीला में विचरण कर रहे हों।

रात बीतने को आई देख एक साथी ने बाबाजी महाशय से कहा 'प्रायः तीन बजे हैं।' यह सुन वे किसी की इच्छा न होते हुए भी कीर्तन समाप्त कर उपस्थित भक्तजनों के साथ महाप्रसाद पाने बैठे। अभी भी किसी का नशा नहीं उतरा था। कोई रो-रहा था। कोई रो-रोकर अधीर था। प्रायः साढ़े तीन बजे महाप्रसाद पाकर पुनः नामकीर्तन करते-करते सब स्थान को लौट आये।

बाउल बाबाजी

एक दिन बाबाजी महाशय अपने दल के साथ कटक शहर में घूमने निकले। साथ में बहुत से स्थानीय लोग थे। जाते-जाते वनबाबू के बगीचे जा पहुँचे। वहाँ बाउल मतावलम्बी एक सिद्ध बाबाजी रहते थे। कुछ दिन पहले नित्यलीला में प्रवेश कर चुके थे। उनका एक शिष्य अपने गुरुदेव की गुदड़ी और पादुकाओं की सेवा करता था। बाबाजी महाशय ने उस स्थान पर दण्डवत् प्रणाम कर कहा 'सिद्ध महात्मा स्वेच्छापूर्वक विचरण करते हैं, प्रकट-अप्रकट रहना उनका खेल मात्र है। वे कृपाकर जिसे दर्शन देना चाहते हैं, वह अनायास उनके दर्शन पा जाता है।' यह सुनकर एक भक्त ने हाथ जोड़कर बाबाजी महाशय से कहा 'आपकी बात से मुझे एक सन्देह हो गया। यह स्थूल शरीर पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश, वायु पाँच तत्वों से मिलकर बना है। इसमें साधु, असाधु, ज्ञानी, अज्ञानी का भेद नहीं। यह जब सूक्ष्म शरीर में परिवर्तित होता है, तब प्रथानुसार रज में मिला दिया जाता है, या जल में फेंक दिया जाता है, या अग्नि में दग्ध कर दिया जाता है। इस प्रकार स्थूल पंचभूत पंचतत्वों में मिल जाते हैं। फिर महात्मा लोग अपनी इच्छा से उसी देह में कैसे प्रकट हो सकते हैं? और जब उसी देह में प्रकट नहीं हो सकते तो उन्हें पहचाना कैसे जा सकता है?'

बाबाजी—भाई! जिस प्रकार अचिन्त्य शक्तियुक्त भगवान् के कार्यादि हमारी बुद्धि के अगोचर हैं, उसी प्रकार सिद्ध महात्मा लोगों के कार्यादि भी अगम्य हैं।

अत: उनके बारे में सोचना या तर्क के द्वारा उनका समन्वय करना असम्भव है। शास्त्र कहते हैं 'अचिन्त्या: खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्।' जब योगबल से परकाया में प्रवेश अथवा अणिमा, लघिमा सिद्धियाँ प्राप्त करना सम्भव है, तब क्या भगवद्-भजन कर एक सामान्य स्थूलदेह धारण करना सम्भव नहीं? इस सम्बन्ध में एक बात याद आ गई। श्रीपाट अम्बिका कालना में सिद्ध भगवानदास बाबाजी महाशय एक दिन अपने आसन पर बैठे, आँखें बन्द किये, भजन कर रहे थे। उसी समय एक धनीमानी व्यक्ति उनके दर्शन करने आया। बाबाजी महाशय एकाएक बड़े त्रस्तभाव से कहने लगे 'अरे मार मार, भगा भगा। ठाकुर जी का अनिष्ट करने आया है, निकाल, निकाल!' आगन्तुक व्यक्ति बड़े विस्मय में पड़कर सोचने लगा, 'मैं तो साधु दर्शन के लिये आया था, साधु मेरे ऊपर इतना क्रुद्ध क्यों हो गये? जो भी हो, इसका कारण जाने बिना नहीं जाऊँगा।' यह सोच कर वह उसी जगह बैठ गया क्षणभर पीछे, जब बाबाजी महाशय को बाह्य-ज्ञान हुआ और बाबू को सामने देखा, तो वह हड़बड़ाते हुए बोले—'भाई! कब आये? भजन-साधन तो आनन्द से चल रहा है?' बाबू ने थोड़ा स्तम्भित होकर कहा—'बड़े आश्चर्य की बात है। इतनी कटु भाषा के बाद इतना आदर! यह क्या बात?'

बाबाजी—क्यों भाई! कटु बात किसने कही? सर्वत्राभ्यागतो गुरु:। अभ्यागत तो नारायण के समान होता है। उससे कटु बात कहना भगवान् से कटु बोलने जैसा है।

बाबू—मेरा तो कुछ कहने का साहस नहीं हो रहा है। आपके आदेशानुसार मैं उसी समय चला जाता; बस यही जानने के लिये कि मैं किस अपराध के कारण आपके क्रोध का पात्र हुआ यहाँ रुक गया हूँ।

बाबाजी—क्या हुआ भाई? मैं तो कुछ भी नहीं समझ पा रहा हूँ।

बाबू—मैं आपके दर्शन करने जैसे ही आकर खड़ा हुआ, आप चीख उठे 'अरे मार-मार! भगा-भगा! ठाकुर जी का अनिष्ट करने आया है, निकाल-निकाल।'

बाबाजी—(लज्जित होकर) भाई, मनमें कोई दु:ख मत मानना, मैंने न तो तुमसे कुछ कहा, और न तुम्हें देखा। श्रीवृन्दावन में गोविन्द-मन्दिर के एक तुलसी के पौधे को बकरी खा रही थी। मैंने उस बकरी को भगाया है।

बाबू ने बड़े विस्मय के साथ जेब में से घड़ी निकाल कर उक्त घटना का समय निश्चित कर वृन्दावन सम्वाद भेजा। वृन्दावन से उत्तर आया कि 'उस दिन ठीक उसी समय गोविन्दजी के सामने लगे तुलसी के पौधे को एक बकरी खा रही थी। कालनानिवासी भगवानदास बाबाजी महाशय ने उसे भगा दिया।' हमने अपनी स्थूल दृष्टि से देखा कि भगवानदास बाबाजी महाशय अपने आश्रम में बैठे भजन कर रहे हैं। अब बताओ, यदि उनकी स्थूल देह वृन्दावन न जाती तो कौन उन्हें भगवान दास बाबाजी के रूप में पहचानता? इसी को कहते हैं सिद्ध अवस्था। सिद्ध महात्मा लोग स्वेच्छानुसार विचरण करते रहते हैं और अपनी इच्छा से यथातथा स्थूल देह धारण कर सकते हैं। भगवान् के प्रकट- अप्रकट होने की भाँति महात्माओं की भी यह एक लीला मात्र है। यह सिद्ध महात्मा भी सदा इसी स्थान पर विराजते हैं। इस प्रकार की बातचीत हो रही थी उसी समय एक बाबाजी ने आकर कहा—आइये, हमारे श्रीराधा रासविहारी जी के दर्शन कीजिये।' बाबाजी महाशय बड़े आनन्दचित्त हो श्रीश्रीरासविहारी जी के दर्शन करने चले गये। श्रीरासविहारीजी के पुजारी वृद्ध श्रीगदाधर दास बाबाजी और उनके शिष्य भिक्षा कर श्रीरासविहारी जी की सेवा चलाते थे। पता नहीं श्रीरासविहारीजी की क्या इच्छा थी, बाबाजी महाशय के दर्शन करते ही उनके मन-प्राण उन्होंने चुरा लिये। वे साश्रुगद्गद कण्ठ से बोले 'भाई! आपके रासविहारी जी ने मुझे अंगीकार कर लिया। मैं तो भाई, कुछ सेवा परिचर्या भी नहीं जानता; मेरे प्रति यह आदेश क्यों?' वृद्ध रोते-रोते बोले—'भाई मैं भी मन ही मन सोच रहा था कि इतने दिन बाद मुझे अपने मन का व्यक्ति मिला, अब इनके हाथों रासविहारी को सौंपकर निश्चिन्त हो जाऊँगा।'

बाबाजी महाशय बोले—'मैं भगवत्सेवा के अयोग्य हूँ, इच्छामय की इच्छा है, वे ही जानें?' इस प्रकार

नाना प्रकार के वार्तालाप के बाद वे अपने स्थान पर लौट आये।

कुछ दिन पीछे, जब गदाधरदास बाबाजी सेवा चलाने में असमर्थ हो गये और बाबाजी महाशय के कटक में उपस्थित न रहने के कारण अपना अभिप्राय न बता सके, तो उन्होंने रासविहारीजी की सेवा का भार श्रीयुत बाबू प्यारीमोहन दत्त महाशय के हाथों सौंप दिया। क्रमशः प्यारीमोहन बाबू की चेष्टा और रासविहारीजी की इच्छा से उक्त सेवा बाबाजी महाशय ने अंगीकार की।

नगर-कीर्तन

एक दिन प्रातः कई भद्र पुरुष बाबाजी महाशय के पास बैठे नाना प्रकार की भगवत्कथावार्ता कर रहे थे। उसी समय हृदय बाबू आकर बोले—'बाबा, रोज ही निमन्त्रण में जाते हैं और उस उपलक्ष में नगर-कीर्तन हो जाता है, पर निरपेक्षभाव से नगर-कीर्तन एक दिन भी नहीं हुआ।'

बाबाजी—भाई, तुम लोगों के हृदय शुद्ध हैं, तुम व्याकुल प्राण से निताइचाँद से अपने मन की बात कहोगे तो वह अभिलाषा पूरी करेंगे।

हृदय—आज रविवार है, सब की छुट्टी है। यदि आज ही रखा जाय तो कैसा?

बाबाजी—अच्छा! निताइचाँद की इच्छा है तो आज ही सही।

हृदयबाबू प्रसन्न हो नगर-कीर्तन की तैयारी करने लगे। थोड़ी देर में यह समाचार एक दूसरे के मुख से सर्वत्र फैल गया और एक नये उत्साह की लहर शहर में दौड़ गई। बाबाजी महाशय ने साथियों के साथ काठजुड़ी नदी में स्नान कर महाप्रसाद पाकर थोड़ा विश्राम किया। चार बजे के लगभग बहुत-से लोग आकर इकट्ठा हो गये। किसी भक्त ने प्रसादी फूलमाला और चन्दन से बाबाजी महाशय को सुसज्जित कर दिया। उन्होंने प्रेम गद्गद कण्ठ से कीर्तन आरम्भ किया—

प्रकट अप्रकट लीलार दुइतो विधान,
प्रकट लीलाय करेन प्रभु निजे नृत्यगान।
अप्रकटे नामरूपे साक्षात् भगवान्,
कीर्तन-विहारी रूपे सदा वर्तमान।।
(प्रभुर) दक्षिणे श्रीनित्यानन्द वामे गदाधर,
सम्मुखेते नृत्यावेशे कुबेर कुमार।
गदाधरेर वामे श्रीवास आर नरहरि,
चौषट्टि महान्त द्वादश गोपाल संगे करि।।
सबाकार आगे निताइ दुबाहु तूलिया,
हरेकृष्ण हरिनाम जान बिलाइया[1]।
जे ना लय तारे बले दन्ते तृण धरि,
आमारे किनिया लहो भजो गौरहरि[2]।।
एतो बलि नाचे निताइ हुँकार करिया।
आगूपाछू नाचे जत संगेर संगिया।।
भावावेशे गोराचाँद नाचे बाहु तुले।
मुख बुक[3] भेशे जाय नयनेर जले।।
(हेरो) ऐ गोराराय, भाइ निताइ सने,
आनन्दे हरिगुण गाय रे।
(गोरा) हरे कृष्ण हरि बलि,
प्रेमे दूटि बाहु तुलि रे,
के निबि[4] के निबि बलि जाचिया बेड़ाय[5] रे।।
(गोरार) अरुण कमल आँखि,
प्रेमे ढुलू ढुलू देखि रे,
चरणे चरण राखि नाचि नाचि जाय रे।
(गोरा) रा रा रा रा रा बलि,
धा बलिते पड़े ढलि रे,
सोनार पर्वत जेनो धूलाते लोटाय रे।।
(गोरार) ढल ढल मुखचाँद भुवन मोहन फाँद रे,
जेनो अकलंक पूर्ण चाँद उदित धराय रे।
चारिदिके भक्तगण, करे हरिसंकीर्तन रे,
हरि बलि गौरहरि नाचे उभराय रे।।
भकत मण्डली माझे, नाचे गोरा नटराजे रे,
हुँकार करिया नाचे नित्यानन्द राय रे।
पतित पाषण्डी जत, नाचे गाय कत शत रे,
(आज) प्रेमेर वन्याय त्रिजगत भेशे जाय रे।।

---

1. लुटाते जा रहे हैं। 2. गौर हरि का भजन कर मुझे खरीद लो। 3. वक्षस्थल। 4. कौन लेगा। 5. भ्रमण कर रहे हैं।

इस प्रकार कीर्तन करते-करते कटक की गली-गली में भ्रमण करने लगे। भीड़ का ठिकाना नहीं! सभी की दृष्टि बाबाजी महाशय पर! महापुरुष भावावेश में कीर्तन कर रहे हैं और पैर पर पैर रख नृत्य कर रहे हैं। इस भीड़ में साथियों में से कौन कहाँ है कुछ पता नहीं। कैसा मनोहर दृश्य है। छोटे-बड़े अपने-पराये का भेद नहीं; शत-शत मुख कीर्तन कर रहे हैं; शत-शत हाथों से तालियाँ बज रही हैं। शत-शत व्यक्ति आनन्द में आत्मविभोर हो नृत्य कर रहे हैं। मानो आनन्द का स्रोत फूट निकला है। बालक-वृद्ध-युवक सभी इस प्रेम की बाढ़ में बहे जा रहे हैं। कटक शहर इस बाढ़ में जैसे डूब गया है। जिस रास्ते से कीर्तन जाता है, उसी के दोनों ओर खड़े आबाल-वृद्ध-वनिता सब एक नूतन आनन्द में मत्त हो उठते हैं। कोई बाहर आकर, कोई छत पर चढ़कर, कोई फिर जंगले के पास आकर संकीर्तनानन्द उपभोग कर अपने को धन्य मान रहा है। जिस-जिस स्थान को पीछे छोड़ संकीर्तन आगे जाता है, उसके लोग चित्त-पुत्तलिकाओं की तरह 'न ययौ न तस्थौ' भाव से खड़े रह जाते हैं। 'आनन्द' बाहर की वस्तु नहीं, अतः उसे भाषा में व्यक्त करना अथवा दूसरे को समझाना सम्भव नहीं। आज कटकवासी किस आनन्द का उपभोग कर रहे हैं, वे स्वयं ही जानते हैं। सभी की वासना है कि वे बाबाजी महाशय के साथ रह कर उनका संग-सुख अनुभव करें, श्रीमुख का सुधासिक्त नाम-कीर्तन सुन मन-प्राण तृप्त करें। मानो सभी का मनोभाव जानकर अन्तर्यामी प्रभु बीच-बीच में चौराहों पर रुक-रुक कर उद्दण्ड नृत्य करते जाते हैं। यह सुयोग पाकर सभी उनके साथ नृत्य-कीर्तन करने लगते हैं।

चाँदनी रात है। फिर भी कोई मशाल, कोई लालटेन, कोई गैस लेकर चला आ रहा है। किसी ने किसी से कुछ नहीं कहा। निताइचाँद जिसके हृदय में जैसी प्रेरणा कर रहे हैं, वह उसी प्रकार कर रहा है। कीर्तन के परिश्रम से बाबाजी महाशय का शरीर पसीने से लथपथ हो गया है। कोई छोटा पंखा, कोई बड़ा पंखा लेकर हवा कर रहा है; पर भीड़ के कारण वे कभी पास रहते हैं, कभी दूर जा पड़ते हैं, इसलिए उनकी थकान दूर नहीं हो पाती। यह देख नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी एक छोटा पंखा लेकर बाबाजी महाशय के सिर पर हवा करने लगे। उड़ीसा-भ्रमणकाल में, बाबाजी महाशय की ब्रह्मचारी पर कितनी कृपा थी सब जानते हैं। नित्यस्वरूप छोटे कद के और अपेक्षाकृत मोटे थे, फिर भी संकीर्तन के समय बाबाजी महाशय द्रुतगति से चलें, या धीरे, वे बिना थकान अनुभव किये उनके सिर पर पंखा करते रहते थे। रात हो चाहे दिन, दोपहर हो चाहे सन्ध्या, बाबाजी महाशय किसी स्थान पर किसी अवस्था में हों, नित्यस्वरूप पंखा हाथ में लिए उनके पीछे खड़े रहते।

इस प्रकार शहर के बहुत-से स्थानों का भ्रमण कर रात्रि प्रायः ग्यारह बजे संकीर्तन करते-करते स्थान पर लौटे और कीर्तन समाप्त किया। उस रात कहीं निमन्त्रण न था, अतः स्थान पर ही महाप्रसाद पाकर सब सो गये।

बाबाजी महाशय लेटे हुए थे; ललितादासी हवा कर रही थीं। रात्रि प्रायः दो बजे बाबाजी महाशय एकदम चौंककर ललितादासी की छाती पर हाथ रख बोले 'तुझे डर लगा क्या?'

ललिता—(साश्चर्य) क्यों, मुझे तो कुछ पता नहीं। क्या हुआ?

बाबाजी—छत को जानेवाली सीढ़ियों पर तुझे कुछ नहीं दीखता?

ललिता—(सीढ़ियों की ओर देखकर) अभी तक तो मैंने कुछ नहीं देखा था; आपकी बात सुनकर अभी-अभी देखा, कोई एक स्त्री-सी ऊपर जाते हुए दिखाई दी। बाल कैसे सुन्दर लम्बे-लम्बे थे। वह कौन है और इतनी रात गये इस तरह क्यों जा रही है?

बाबाजी—वह इतने दिन से इसी घर में थी; उसी के डर से इस घर में कोई रह नहीं सकता था। आज मुझसे भेंट कर घर छोड़ कर चली गई।

ललिता—तो क्या वह भूत है?

बाबाजी—और नहीं तो क्या? भूत नहीं होती, तो इस प्रकार अलक्षित भाव से कैसे जाती?

ललिता—आपसे क्या बातें हुई?

बाबाजी—ये सब सुनकर क्या करेगी? बहुत कुछ विनती-प्रार्थना कर बोली, 'जिस दिन आपने यहाँ आकर नाम-कीर्तन किया, उसी दिन चली जाती, सिर्फ यही सोचकर कि ऐसा अपूर्व संग कभी नहीं पाया और न कभी पाऊँगी, अब तक बनी रही। आज आपसे विदा लेने आई हूँ।' कहकर दण्डवत् प्रणाम कर दूसरी जगह चली गई। उसका उद्धार हो गया।

ललिता—किस अपराध से वह भूत बनी?

बाबाजी—अपराध तो उसके जीवन में कम ही थे, पर प्रलोभन में पड़कर उसने बहुत-से पापकर्म किये थे। इसलिए अन्त में उसकी अपमृत्यु हो गई थी। तभी भूत-योनि को प्राप्त हुई। उसके बहुत-से सुकर्म थे, इसलिए प्रभु ने थोड़े में ही उद्धार कर दिया।

इस प्रकार बहुत-सी बातें करते-करते बाबाजी महाशय सो गये। ललितादासी भी यथास्थान सोने चली गई।

पुरी-प्रत्यागमन

समय किसी के अधीन नहीं। देखते-देखते कटक में एक मास से अधिक परमानन्द में निकल गया। जगन्नाथदेव की स्नानयात्रा पास आयी देख जब बाबाजी महाशय ने पुरी जाने की इच्छा प्रकट की, तो कटक-वासी वहाँ और कुछ दिन ठहर जाने के लिए उनसे विशेष अनुरोध करने लगे। लेकिन जब उन्होंने पुरी जाने का निश्चय कर ही लिया, तो सबने विशेष रूप से प्रार्थना की कि वे बीच-बीच में कटक आते रहें। उन्होंने सब कुछ निताइचाँद पर छोड़, अपने मधुर वचनों से सबको सन्तुष्ट कर श्रीधाम पुरी की यात्रा की।

स्टेशन पर आ गये, पर किसी से कुछ कहा सुना नहीं; साथियों ने भी कुछ अर्थ-व्यवस्था नहीं की। एक साथी ने बाबाजी महाशय से पूछा 'टिकटों की क्या व्यवस्था होगी?'

बाबाजी महाशय ने मृदु हँसते हुए कहा 'भाई, मुझे तो कहीं जाने का विशेष प्रयोजन है नहीं। निताइचाँद को आवश्यकता है, तो वे व्यवस्था करेंगे, नहीं यहीं दस दिन ठहरेंगे।'

उसी समय टिकट के लिये घन्टी बजी। महापुरुष निश्चिन्त बैठे थे। यात्री लोग टिकट खरीदने के लिए भाग-दौड़ करने लगे। एकाएक एक कटकवासी युवक ने कुछ टिकट लाकर बाबाजी महाशय के आगे रख दिये। उन्होंने पूछा 'टिकट लाने के लिए तुमसे किसने कहा?' युवक ने डरते-डरते उत्तर दिया, 'जी, मुझसे किसी ने कुछ नहीं कहा। कचहरी से लौटकर जब घर आया तो सुना कि आप पुरी पधार रहे हैं, आपके श्रीचरण दर्शन करने की इच्छा से स्टेशन आया। आते ही, न जाने क्यों, किसी के बिना कुछ कहे, टिकट खरीद लाने की इच्छा हुई। सोचा यदि बाबाजी महाशय से पूछता हूँ तो वे शायद मना कर दें। इसलिए आपसे बिना मिले ही जाकर टिकट खरीद लाया। अपराध क्षमा कीजिये।' बाबाजी महाशय बोले 'नहीं भाई, अपराध कुछ भी नहीं, मैं तो बस निताइचाँद का खेल देख रहा हूँ।' गाड़ी आने पर अपने साथियों से कहा 'लो अभीष्ट की पूर्ति हो गई, बड़े चिन्तित हो गये थे न, तभी निताइचाँद ने यह किया।' कटकवासी-भक्तजनों को अपने मधुर वचनों से आश्वस्त कर वे गाड़ी में जा बैठे। रात को दस बजे श्रीधामपुरी पहुँचे; फिर नाम करते-करते आश्रम पहुँच गये।

राघव की झालि

पुरी में आज फिर से आनन्द है। बाबाजी महाशय संकीर्तन लेकर जगन्नाथ-दर्शन को निकले हैं। जिस किसी से भेंट होती है, वही आनन्द-सागर में डूबने लगता है। जो जगन्नाथदर्शन नहीं करना चाहता, नाना कार्यों में व्यस्त है, वह भी आज उनके साथ दर्शन करने जा रहा है। दुकानदार दुकान छोड़कर कीर्तन के साथ मन्दिर जा रहे हैं। उपवासक्लान्त रोगी भी अपने प्राणों के बल दर्शन को चल दिये हैं। बच्चे अपना खेल छोड़ कर आगे-आगे दौड़ रहे हैं। वृद्ध लोग लाठी के सहारे पीछे-पीछे नाम करते हुए चल रहे हैं। अपूर्व दृश्य! अपूर्व आकर्षण शक्ति।

बाबाजी महाशय ने भक्तजनों की भीड़ के साथ मन्दिर में प्रवेश किया। जगन्नाथ दर्शन कर श्रीजगमोहन में कीर्तन करने लगे। भीड़ का कुछ ठिकाना नहीं।

जगन्नाथदेव के सेवक पण्डा-पुजारी बहुत दिनों बाद बाबाजी महाशय को पाकर आनन्द में विभोर हैं। जैसे ही जगन्नाथ के शृंगारी पण्डा माधव पशुपालक ने प्रसादी माला लाकर बाबाजी महाशय के गले में डाली, वे आनन्द में नृत्य करने लगे। हरिध्वनि, उलुध्वनि और संकीर्तन ध्वनि से दसों दिशायें मुखरित हो उठीं। सभी प्रेमानन्द में विभोर थे। आज बहुत दिनों बाद जगन्नाथदेव का श्रीमुखचन्द्र दर्शन कर बाबाजी महाशय अपने को रोक न सके। नाना प्रकार के पद गाने लगे। बहुत देर तक कीर्तन कर जगमोहन से बाहर आये। श्रीमन्दिर की परिक्रमा की। गम्भीरा, सिद्धबकुल एवं सार्व-भौमालय दर्शन कर समुद्र-स्नान किया। फिर हरिदास ठाकुर की समाधि, टोटा गोपीनाथ आदि दर्शन करते हुए झाँजपीटा मठ पहुँच गये।

जगन्नाथदेव की स्नान-यात्रा आ पहुँची। पूर्ववत् कीर्तनानन्द में स्नान-यात्रा-उत्सव समाप्त हुआ। बाबा पुरी छोड़कर बहुत दिन बाहर रह चुके थे, इसलिये और कहीं जाना नहीं हुआ। प्रतिदिन शेषरात्रि में उठकर कीर्तन करते-करते पंचतीर्थ-भ्रमण करते और स्नान कर मन्दिर परिक्रमा करते। इस प्रकार आनन्द से दिन बीतने लगे।

कृष्ण चतुर्दशी के दिन तीसरे पहर बाबाजी महाशय झाँजपीटा मठ में बैठे थे। अकस्मात् मन-प्राण को मत्त कर देने वाली संकीर्तन-ध्वनि सुनाई पड़ी। बाहर आकर देखा कि प्राणप्रिय शिष्य श्रीरामदास बहुत-से भक्तों के साथ कीर्तन करते हुए चले आ रहे हैं। एक अपूर्व दृश्य है। हर एक के सिर पर डलिया में कुछ सामान है, आँखों में आँसू और मुख पर किसी अकथनीय व्यथा के स्पष्ट चिह्न। सबके आगे रामदास गा रहे हैं—

दमयन्ती दत्त द्रव्ये झालि साजाइया,
आइलेन राघव पण्डित जतने लइया।
(चले राघव पथे-पथे)
(झालि लइया माथे)
(प्रेमे काँदिये काँदिते)

इस प्रकार एक-एक कर आखर दे रहे हैं और मानो आबाल वृद्ध-वनिता सभी के हृदय में 'राघव की झालि, लीला की झाँकी प्रकट कर रहे हैं। क्रमशः मठ के द्वार पर आकर भावुक-चूड़ामणि रामदास ने पद गाया—

गौड़ हइते राघवेर झालि साजाइया।
आनियाछि तुआ प्राणगौरांग लागिया।।
झालि माथे गोरासाथे करिया मिलन।
शीतल करह मोदेर तृषित नयन।।
बड़ साधे आसियाछि नीलाचल-पुरी।
तूआ सह देखिबारे गौरांग श्रीहरि।।
बारेक करुणा करि श्रीराधारमण।
शेइ लीलाखेला मोदेर कराओ दरशन।।

गाते-गाते जैसे ही उन्होंने मठ में प्रवेश किया, बाबाजी महाशय ने प्रेमगद्गद हृदय से रामदास को आलिंगन किया। फिर सब पंगतघर में चले गये। भक्तलोग जो-जो वस्तुएँ अपने साथ लाये थे, एक-एक कर बाबाजी महाशय के आगे रखने लगे। ललितादासी उन्हें खोल-खोलकर उनके नाम ले-लेकर बाबाजी महाशय को बताती गई। बाबाजी महाशय वस्तुओं के नाम सुनते जाते हैं, और उनका मुख और वक्ष आँसुओं से भीगता जाता है, शरीर पुलकित होता जाता है। जैसे ही 'तिलके लड्डू और पुराना सुक्ताचूर्ण' सुना, जोर से रोते-रोते मूर्छित हो जमीन पर गिर पड़े। बहुत देर में कुछ चेतना आने पर भक्त लोगों से बोले 'देखो भाई! करुणामय निताइचाँद की कृपा से कल गम्भीरा में राघवमिलन-लीला का आस्वादन करेंगे।' प्रेमी भक्त यह सुनकर प्रेमानन्द में हरिध्वनि कर उठे। जो अपने-अपने स्थान से कोई द्रव्य नहीं ला सके थे, वह बाजार से तरह-तरह के द्रव्य लाकर प्राणों का आवेग दूर करने लगे। बाबाजी महाशय ने ललितादासी को आदेश दिया 'श्रीचैतन्यचरितामृत में राघव की झालि का वर्णन है, उसके अनुसार जो-जो द्रव्य अभी नहीं आ सके हैं उनका संग्रह कर लो।' ललितादासी दुगनी उत्साहित हो बाबाजी महाशय के आदेश-पालन में लग गई। कपड़े की थैलियाँ प्रस्तुत कर उनमें नाना प्रकार के द्रव्य भरने लगीं। तरह-तरह के अचार-मुरब्बों को छोटे-बड़े मिट्टी के पात्रों में भर कर उन्हें छोटी-छोटी टोकरियों में रख दिया। चरपरे लड्डू, बेसन के लड्डू, मूँग के लड्डू आदि नाना प्रकार के द्रव्य तैयार कर

एक-एक पात्र में रख दिये। चरितामृत देख-देखकर यथासाध्य सभी वस्तुओं का संग्रह करने लगीं। बाबाजी महाशय के प्राणों में बड़ा आवेग है। वे बीच-बीच में आ-आकर यह सब आयोजन देख जाते हैं और आयोजकों का उत्साह दूना कर जाते हैं।

प्रातःकाल हुआ, लोग स्नानादि कर एकत्र होने लगे। बाबाजी महाशय ने एक-एक आदमी के सिर पर एक-एक डलिया रख उन्हें पंक्ति में खड़ा कर दिया। फिर अपने सिर पर एक डलिया रख कीर्तन आरम्भ किया—

कोथा प्राण विश्वम्भर गोरा नटराय।
गौड़ हइते आसियाछि देखिते तोमाय।।
बहु दिन देखि नाँइ ओ चाँद वदन।
बारेक करुणा करि देहो दरशन।।
श्रीअद्वैत नित्यानन्द दुँहु अग्रगण्य।
आचार्यरत्न, आचार्य निधि, श्रीवासादि धन्य।।
वासुदेव दत्त, मुरारि गुप्त, गंगादास।
श्रीमान् सेन श्रीमान् पण्डित अकिंचनकृष्णदास।।
मुरारि पण्डित गरुड़ पण्डित बुद्धिमन्त खान।
संजय पुरुषोत्तम पण्डित भगवान्।।
शुक्लाम्बर, नृसिंहानन्द आर जत जन।
सबाइ आइला नाम ना जाय गणन।।
कुलीनग्रामी खण्डवासी आर शिवानन्द।
आइला देखिते सबे तुआ मुखचन्द्र।।
दमयन्तीदत्त द्रव्य जतने लइया।
आइला राघव पण्डित झालि साजाइया।।
तोमा ना देखिया सबे विषादे मगन।
एकबार देखा दाओ शचीर नन्दन।।

अत्यन्त व्याकुल भाव से यह पद गाते-गाते जैसे ही काशीमिश्रालय के सम्मुख पहुँचे, वैसे ही महाप्रभु के प्रतिनिधिस्वरूप बलभद्रदास महन्त महाशय ने प्रसादी माला लाकर बाबाजी महाशय के गले में डाल दी और परस्पर प्रेमालिंगन कर गम्भीरा के द्वार पर आये। बाबाजी महाशय गम्भीरा मन्दिर के भीतर खड़े पुजारी को गोविन्द समझ उसके हाथ में एक-एक द्रव्य देते जा रहे हैं, और पुजारी उन्हें भीतर रखते जा रहे हैं। बाबाजी महाशय गाते जा रहे हैं—

धरो नाओ हे गोविन्द रेखो जतन करे।
मनोभाव बूझि तूमि दिओ गोरांगेरे।।
दमयन्ती देवी साक्षात् वात्सल्येर मूर्ति।
दियाछेन श्रीगौरांगे करि कत आर्ति।।
(धरो नाओ हे गोविन्द)
अपरूप भक्ष्य द्रव्य प्रभुर जोग्य भोग।
वत्सरेक प्रभु जेनो करेन उपभोग।।
(धरो नाओ हे गोविन्द)
आम्र कासुन्दि आदा कासुन्दि,
झाल कासुन्दि आर।
लेम्बु आदा आम्रकोलि विविध प्रकार।।
(धरो..........) इत्यादि

आनन्द की अवधि नहीं। बहुत लोग इकट्ठा हैं। सब एक ही भाव में निमग्न। महाप्रभु की प्रत्यक्ष लीला का अनुभव करते हुए प्रेम-सागर में डूबे जा रहे हैं। अधिकारी, महन्त एवं अन्यान्य वैष्णव बाबाजी महाशय के भावगद्‌गदकण्ठ से सुमधुर पदावली श्रवण कर और नवागत भक्तजनों की भाव-विह्वलता देख प्रेमाश्रु वर्षण कर रहे हैं और कह रहे हैं 'धन्य निताइगौरांगगत प्राण बाबाजी महाशय! धन्य इनके परिकर! इनके प्रभाव से प्रत्यक्षलीला आस्वादन कर आज हम भी धन्य हैं।'

समय अधिक हो गया था। भक्तजनों के श्रम को देख बाबाजी महाशय ने इच्छा न होते हुए भी कीर्तन समाप्त किया। महन्त बलभद्रदास एवं अधिकारी हरिभजनदास आदि महात्माओं ने महाप्रसाद पाने के लिए विशेष आग्रह कर बाबाजी महाशय को सगण वहीं रोक लिया। बाबाजी महाशय उन्हें श्रीमन्महाप्रभु का प्रतिनिधि मानकर महान्तजी के व्यवहार से परम सन्तुष्ट हुए। कुछ देर विश्राम कर महाप्रसाद पा सबने श्रीजगन्नाथदेव का नवयौवन देखने की इच्छा से नाम करते-करते श्रीमन्दिर को प्रस्थान किया। पन्द्रह दिन पीछे आज जगबन्धु का चन्द्रवदन-दर्शन कर भक्तलोग आनन्द-सागर में गोते खा रहे हैं। बाह्यस्मृतिहीन हो उन्हें अपलक नेत्रों से देख रहे हैं। बाबाजी महाशय श्रीगौरांगदेव को साथ ले भाव-विभावित चित्त से अभिनव पदावलि गा-गा कर स्वयं भावसागर में डूब

रहे हैं और उपस्थित भक्तवृन्द को डुबा रहे हैं। इस प्रकार कुछ देर कीर्तन-नर्तन कर वे आश्रम लौट आये और विश्राम किया।

रात बीत गई; सुबह हुई। आज श्रीगुन्डीचा-मार्जन उत्सव है। बलराम बाबू पर सभी द्रव्यों के संग्रह का भार है। वे सभी वस्तुएँ इकट्ठा कर मठ आये। उनका भक्तिभाव और कार्यकौशल देख सब बड़े प्रसन्न हुए। बाबाजी महाशय ने कीर्तन लेकर जगन्नाथदेव दर्शन को प्रस्थान किया। मन्दिर में जिस किसी से भेंट हुई, उसीसे तीसरे प्रहर गुन्डीचामार्जन लीला में योगदान करने का अनुरोध कर आश्रम लौट आये। सबने स्नानाह्निकादि कर महाप्रसाद सेवन किया। फिर श्रीयुत रघुनाथदेव गोस्वामी को अग्रवर्ती कर कीर्तन करते-करते गुन्डीचाभवन को प्रस्थान किया। पूर्ववत् बड़े समारोह के साथ मन्दिर का मार्जन, प्रक्षालन किया; जलकेलि और महाप्रसाद सेवा आदि कर आश्रम लौट आये।

रात बीती; फिर सुबह हुई। सब अपना-अपना प्रातःकृत्य समाप्त कर तैयार हो गये। बाबाजी महाशय ने भी स्नानआह्निकादि कर कीर्तन करते-करते मन्दिर को प्रस्थान किया। आज रथ-यात्रा है। तीन रथ आकर सिंहद्वार पर खड़े हो गये। रथ पर चढ़ने के लिए चार बाँधा गया; श्रीजगन्नाथदेव ने शुभ विजय की। रथ नहीं खींचा गया। दूसरे दिन नौ बजे के लगभग रथ का खींचना आरम्भ हुआ। बाबाजी महाशय पूर्ववत् रथ के आगे सपार्षद कीर्तन-नर्तन करने लगे। सात दिन में श्रीजगन्नाथदेव श्रीगुन्डीचा मन्दिर पहुँचे। बाबाजी महाशय के साथी प्रतिदिन कीर्तन लेकर गुन्डीचा मन्दिर जाने लगे। नवें दिन यात्रा पूरी कर जगन्नाथदेव ने अपने मन्दिर में शुभागमन किया। इस प्रकार कीर्तनानन्द में बाबाजी महाशय के दिन बीतने लगे।

उड़ीया-भ्रमण ★ केन्द्रापाड़ा-गमन

केन्द्रापाड़ा के जमींदार भक्तप्रवर बाबू श्यामसुन्दर नरेन्द्र जगन्नाथदेव की रथयात्रा के उपलक्ष में श्रीधामपुरी आये हैं। वे सपार्षद बाबाजी महाशय को एक बार केन्द्रापाड़ा ले जाने के लिए बहुत दिनों से विशेष रूप से अनुरोध करते आ रहे हैं। एक दिन प्रातःकाल बाबाजी महाशय नित्यक्रिया पूरी कर झाँजपीटा मठ में बैठे थे, उसी समय श्यामसुन्दर बाबू ने आकर दण्डवत् प्रणाम किया और उनके चरण पकड़ कर रोते-रोते आग्रह किया कि वे उसी दिन केन्द्रापाड़ा चलें। बाबाजी महाशय जाने को तैयार हो गये। जगन्नाथ-दर्शन, समुद्र-स्नान और महाप्रसाद-सेवन कर उन्होंने थोड़ा विश्राम किया। दोपहर पीछे बहुत-से भक्त आकर इकट्ठा होने लगे। बाबाजी महाशय उन लोगों के साथ नाना प्रकार की तत्वकथा-आलोचना कर उनसे उड़ीसा-भ्रमण के लिए विदा माँगने लगे। सन्ध्या हुई। राधाकान्तदेवकी आरति के दर्शन किये। उन्हें प्रणाम कर और उनकी सेवा के लिए दो-तीन भक्तों को वहाँ छोड़ आप सपार्षद नाम करते-करते पुरी-स्टेशन जा पहुँचे। श्यामसुन्दर बाबू ने पहले से ही सारा बन्दोबस्त कर रखा था। इन लोगों ने गाड़ी में चढ़ते ही नाम आरम्भ कर दिया। रेल-कर्मचारियों में से किसी-किसी की इच्छा नाम में बाधा देने की हुई भी, पर बाबाजी महाशय को देख किसी ने कुछ नहीं कहा। श्यामसुन्दर बाबू ने बाबाजी महाशय और उनके कुछ प्रधान साथियों के लिए इण्टर क्लास के टिकट खरीदने की इच्छा प्रकट की। बाबाजी महाशय ने कहा 'देखो श्यामसुन्दर! एक साथ भोजन में या यात्रा करते समय ऊँच-नीच का विचार करना वैष्णव धर्म के विरुद्ध है। महाप्रभु ने स्वयं आचरण कर जीवों को शिक्षा दी है। उन्होंने यहाँ तक कहा है कि 'अच्छे-अच्छे द्रव्य भक्तों को दो, और मुझे दो पचमेल साग'। इसलिये यदि तुम मुझे सुख पहुँचाना चाहते हो तो मुझमें और दूसरे वैष्णवों में आहार-व्यवहार को लेकर किसी प्रकार का भेद न रखो। श्यामसुन्दर बाबू ने थोड़ा लज्जित होकर कहा "तो सभी के इण्टर क्लास के टिकट ले लिये जायें ?" बाबाजी महाशय ने मना करते हुए कहा 'भाई, बेकार पैसा खर्च करने की आवश्यकता नहीं। तुम्हारा वैष्णव-सेवा-प्रधान संसार है। सद्भाव से खर्च करो, आनन्द पाओगे।' तीसरे दर्जे में बैठ कर सब लोग कटक

★ यह घटना केन्द्रापाड़ा के जमीदार श्रीयुत श्यामसुन्दर नरेन्द्र महाशय से प्राप्त हुई है।

पहुँचे। वहाँ एक दिन रुक कर नाव द्वारा केन्द्रापाड़ा के लिए प्रस्थान किया।

नौका यथासमय केन्द्रापाड़ा पहुँची। श्यामसुन्दर बाबू की इच्छा थी बाबाजी महाशय को पालकी में बिठाकर ले जायें। पर वे किसी प्रकार भी राजी न हुए और नाम करते-करते पैदल ही चल पड़े। संकीर्तन-ध्वनि से दसों दिशाएँ मुखरित हो गईं। चारों ओर धूमधाम मच गई कि पुरी से एक महापुरुष आये हैं, उनके साथ कई सखियाँ हैं, वे नृत्यादि करती हैं, महापुरुष बड़ा ही मधुर कीर्तन करते है—चारों ओर से लोग आने लगे। साधु-वैष्णव लोग केन्द्रापाड़ा में सदा ही आते-जाते रहते, पर ये लोग उन सबसे भिन्न लगते थे। इन्होंने नये ढंग से चादरें बाँध रखी थीं, नई तरह के इनके नाम थे और ये नये ढंग का नृत्य और कीर्तन करते थे। देख-सुनकर सभी लोग विस्मित थे! बाबाजी महाशय की सुमधुर नृत्य-भंगिमा देख आपामर जनसाधारण मुग्ध थे। गोविन्ददेव के मन्दिर पहुँचकर सबने साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। मन्दिर श्यामसुन्दर बाबू के घर में ही था। गोविन्ददेव की भुवनमोहन मूर्ति के दर्शन कर बाबाजी महाशय की आँखों से आँसू बहने लगे। उनका वक्षस्थल भीग गया। सर्वांग पुलकावलि से विभूषित हो गया। उनकी अवस्था देख लगता था मानो वे इस राज्य में नहीं हैं। उन्होंने प्रेम-विभोर हो भावगद्गद कण्ठ से गाना आरम्भ किया—

आहा मरि मरि, की रूप माधुरी,
नागरी नागर राज।
ए तिन भुवने, नाहिक तुलना,
मदनमोहन साज।।
आध वरण, चिकण कालिया,
आध कनक काँति।
नव जलधरे, जनू सौदामिनी,
मिलल कतेक भाँति।।
आध शिरे शोहे, मयूर मुकुट,
ईषत् वामेते हेला।
आध शिरे, वेणी जनु भुजंगिनी,
मयूर सहिते मेला।।
आध ललाटे, चन्दन तिलक,
(जनु) जलदे मिलित शशी।
आध भाले शोहे, सिन्दूर कस्तुरी,
(जनु) अरुणे तिमिर राशि।।
आध गले दोले, वनफूल हार,
आध गले गजमोति।
आध नासिकाय, मुकुता दोलनी,
आध नासिकाय मोति।।
आध कटिते, पीत धटी शोहे,
आध नीलिम साड़ी।
आध करे शोहे, कनक वलया,
आध करे नीलचूड़ी।।
(दोहाँर) कटिते किंकिणी, चरणे नूपुर,
मधुर मधुर बाजे।
डाहिने ललिता, वामे श्रीराधिका,
शोहे मनमथ राजे।।

बहुत-सी पद-पदावलियाँ गाकर थोड़ी देर में कीर्तन समाप्त किया। श्यामसुन्दर बाबू के चार भाई बाबाजी महाशय को साष्टांग प्रणाम कर हाथ जोड़ कर खड़े हो गये। बाबाजी महाशय ने उन्हें आलिंगन द्वारा कृतार्थ कर उनसे तरह-तरह के कुशल प्रश्न पूछे। उन्होंने अत्यन्त विनय के साथ प्रश्नों के उत्तर दिये। गोविन्ददेव के झूलेवाले कमरे में इन लोगों के रहने का बन्दोबस्त कर दिया गया। बाबाजी महाशय अपने साथियों के सहित विश्राम कर रहे थे, उसी समय गोविन्दजी की आरति का घण्टा बजा। सबने आरति के दर्शन किये और कीर्तन आरम्भ किया। इधर गोविन्ददेव के भोग की तैयारी होने लगी। सभी ने परमानन्दपूर्वक गोविन्दजी का महाप्रसाद पाकर रात्रि में लगभग एक बजे विश्राम किया।

अष्टप्रहर कीर्तन

गोविन्दजी के मन्दिर में रोज कीर्तन होने लगा। नित्य नूतन पद-पदावली, नित्य नूतन भाव से कीर्तन! दो-एक दिन पीछे, प्रातःकाल बाबाजी महाशय ने श्यामसुन्दर बाबू को बुला कर कहा, '**देखो श्यामसुन्दर!** बहुत दिनों से अष्ट-प्रहर कीर्तन नहीं हुआ। **निताइचाँद**

की इच्छा है कि एक अष्ट-प्रहर कीर्तन हो।' श्यामसुन्दर बाबू ने प्रसन्न होकर कहा 'हाँ, तो किस प्रकार क्या-क्या वस्तुएँ संग्रह की जायेंगी और किस जगह उसकी व्यस्था होगी?' बाबाजी महाशय ने अष्ट-प्रहर के लिए आवश्यक सभी वस्तुओं का उल्लेख किया और दूसरी मंजिल की उत्तरवर्त्ती कोठरी के आगे अष्ट-प्रहर के लिए स्थान निर्दिष्ट का दिया। तैयारी होने लगी।

आज अष्ट-प्रहर हरिनाम कीर्तन का अधिवास है। आठ-साढ़े आठ बजे के लगभग सम्वाद आया कि श्यामसुन्दर बाबू के कनिष्ठ भ्राता गोकुल बाबू की हालत बहुत खराब है। बाबाजी महाशय ने श्यामसुन्दर बाबू से पूछा 'श्यामसुन्दर! गोकुल को क्या हो गया है?'

श्याम—बहुत दिन से उसे शूल वेदना है। बहुत इलाज कराया, पर कोई लाभ नहीं हुआ। अब कई दिन से उसे भारी कम्प हो रहा है। कम्पन को देख लगता है कि बस इसी मुहूर्त प्राण निकल जायेंगे। बहुत-से बड़े-बड़े डाक्टरों को दिखाया है, कलकत्ते से बहुत-सी दवाइयाँ मंगाई गई हैं, पर किसी से कुछ नहीं होता दीख रहा। इस समय उसकी जो अवस्था है, उसे देख लगता है कि उसके प्राण न रहेंगे। वह इतनी यन्त्रणा भोग रहा है कि देखकर हृदय विदीर्ण हो जाता है।

बाबाजी—वह कहाँ है?

श्याम—हमारे कचहरीघर के एक ओर एक कमरा है, उसमें।

बाबाजी—क्या खाता-पीता है?

श्याम—जी, खाना तो क्या, थोड़ा दूध भी गले से नहीं उतरता।

बाबाजी—अरे! बेचारा बड़ा कष्ट पा रहा है। चलो देख आयें।

इतना कह वे श्यामसुन्दर बाबू के साथ गोकुल के पास गये। देखा कि वह चारपाई पर लेटा है, उसके अत्यन्त क्षीण शरीर में बराबर कम्पन हो रहा है। चार-पाँच लोग उसके हाथ-पैर पकड़े बैठे हैं; सभी के चेहरे मलिन हैं। बाबाजी महाशय खाट के एक ओर बैठ कर उसके वक्ष पर हाथ रख बोले 'गोकुल! कैसी तबियत है भाई!' गोकुल वाक्-शक्तिहीन है; उसने कातर दृष्टि से उनकी ओर देखा; लगा सदा के लिये उसने अपने को उनके श्रीचरणों में समर्पित कर दिया। बाबाजी महाशय ने मन ही मन क्या सोचा, वे ही जानें। उनकी आँखें भर आईं, सर्वांग पुलकावली से सुशोभित हो गया। गोकुल के वक्ष पर उनका दायाँ हाथ रखा था। धीरे-धीरे उनके शरीर में भी कम्पन होने लगा। भयानक दृश्य था! दोनों के शरीर के कम्प के कारण उपस्थित व्यक्ति और द्रव्यादि मानो एक भीषण तरंग में पड़कर झकझोर खाने लगे। क्षणभर में पानी में पानी मिल गया, अर्थात् बाबाजी महाशय के कम्प में गोकुल का कम्प प्रवेश करने लगा। गोकुल उठ बैठा, बाबाजी महाशय के श्रीचरण अपने सिर और वक्ष से लगाकर उसने अपने जन्मजन्मान्तर के तापों को शान्त किया। तब बाबाजी महाशय ने पूछा 'गोकुल! अब तबीयत ठीक है न! किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं है।'

गोकुल—जी, आपकी कृपा से मैं परम शान्ति का अनुभव कर रहा हूँ। इस समय दैहिक अथवा आन्तरिक किसी प्रकार की ज्वाला-यन्त्रणा नहीं है।

बाबाजी—इन सब शीशियों बोतलों में क्या है?

गोकुल—इलाज के लिये कलकत्ते के औषधियाँ आई थीं।

बाबाजी—अब भी औषधि खाने की इच्छा है?

गोकुल—आप जो आदेश देंगे मैं वही करने को प्रस्तुत हूँ।

बाबाजी—मैं यदि इन्हें पानी में फेंक देने के लिये कहूँ?

गोकुल—निश्चय ही फेंक दूँगा।

बाबाजी—अच्छा, तो इन्हें अपने हाथ से गोबरा नदी में उड़ेल दो।

गोकुल तत्क्षणात् बिना कुछ सोचे-विचारे प्रायः चार सौ रुपयों की औषधियाँ गोबरा में उड़ेल आया। आकर जैसे ही उसने बाबाजी महाशय के चरणों में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया, उन्होंने उसे उठाकर

आलिंगन किया। गोकुल की अवस्था में एकदम ऐसा परिवर्तन देख सभी बड़े प्रसन्न और विस्मित हुए और बाबाजी महाशय की अलौकिक शक्ति की चर्चा करने लगे। श्यामसुन्दर बाबू के आनन्द की अवधि न रही। क्रमशः सबने स्नान-आह्निक कर महाप्रसाद पाया। गोकुल ने भी बाबाजी महाशय के आदेश से स्नान कर उनका अधरामृत लिया।

देखते-देखते संध्या हो गई। गोविन्द जी की आरति के पश्चात् बाबाजी महाशय ने आज्ञा-माला और चन्दनादि लेकर अधिवास कीर्तन किया। नियमानुसार पूर्णघटस्थापना और खोलमंगल-संकीर्तन महोत्सव का अधिवास कर बाबाजी महाशय ने श्यामसुन्दर बाबू और उनके भाईयों को आदेश दिया 'तुम पाँचों भाई कल सुबह बहुत जल्दी उठकर गोविन्दजी के मन्दिर में उपस्थित होना।' दूसरे दिन सुबह बहुत जल्दी स्नानादि कर जैसे ही पाँचों भाई गोविन्ददेव के मन्दिर में आये, बाबाजी महाशय ने गोविन्द जी के बड़े पुजारी आनन्द पण्डा से कहा 'देखो, तुम्हारे मन्दिर में जो गोपाल यन्त्र है, उसका थोड़ा-सा चरणामृत तो दो।' पुजारी ने हड़बड़ाकर जैसे ही उस यन्त्र का चरणामृत लाकर बाबाजी महाशय के हाथ में दिया, उनके सारे शरीर में रोमांच हो गया और आँखों के पानी से मुख और वक्षस्थल भीग गया। उन्होंने गद्‌गद कण्ठ से साथियों से नाम करने के लिए कहा। सबने 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' नाम प्रारम्भ कर दिया। जगमोहन में शताधिक लोग थे। बाबाजी महाशय ने गोविन्द जी के बरामदे में से अपने दाहिने हाथ की तर्जनी उठाकर प्रत्येक को लक्ष्यकर जाने क्या मन्त्र उच्चारण किया, संकीर्तन की आवाज में बस 'ॐ-ॐ' शब्द सुना जा सका। क्षणभर पीछे उपस्थित लोग एक साथ उच्च स्वर से रोने लगे। किसी को पता नहीं कि रोदन का क्या कारण है, क्या उद्देश्य है। प्रायः आधा घण्टा इस प्रकार बीता। तत्पश्चात् बाबाजी महाशय ने सबको साथ ले निर्दिष्ट स्थान पर अष्ट-प्रहर कीर्तन आरम्भ किया। अपूर्व नाम-ध्वनि से दिशाएँ गूँज उठीं। सब उन्मत्त हो गये; किसी को बाह्यस्मृति न रही। जैसे-जैसे समय बीतने लगा जनसंख्या भी बढ़ती गई। आश्चर्य की बात है कि केन्द्रापाड़ा से पाँच कोस की सीमा के भीतर जितने भी संकीर्तन-दल थे, सब आ-आकर कीर्तन में योग देने लगे। मानी लोग मर्यादा नहीं चाह रहे थे; धन चाहने वाले धन के लिये प्रार्थना नहीं कर रहे थे; दलपति निमन्त्रण की बाट नहीं देख रहे थे; भद्रपुरुष अपने सम्मान की ओर लक्ष्य नहीं कर रहे थे। सभी जाने किस अभिनव आकर्षण से आकृष्ट हो मन्त्रमुग्धवत् कीर्तन में योग दे रहे थे। एक-एक दल खोल-करताल बजाते कीर्तन करते आ-आकर कीर्तन में इस प्रकार प्रवेश करने लगा मानो छोटी-छोटी नदियाँ अपनी उत्ताल तरंग-मालाओं से नाना स्थानों को प्लावित करती हुई गम्भीर गर्जनशील अथाह महासमुद्र में आकर मिल रही हों। आनन्द-सागर उफन उठा। नाम-तरंग क्रमशः प्रबल होने लगी। बालक-वृद्ध, पुरुष-नारी, आपामर जनसाधारण उस तरंग में इधर-उधर धक्के खाने लगे। केन्द्रापाड़ावासी अननुभूतपूर्व आनन्द उपभोग करने लगे। आबाल-वृद्ध-युवक सभी एक अप्राकृत नशे में चूर थे। कीर्तनानन्द में उन्मत्त बच्चे आत्मविस्मृत हो नृत्य कर रहे थे। उनके माता-पिता जब उन्हें कीर्तन-मण्डली में से घर लिवा ले जाने के लिये उनका हाथ पकड़ते, तब वह उलंग बालक उसी अवस्था में 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' कहते हुए नाचने लगते। यदि कोई बलपूर्वक उन्हें घर ले जाता, तो वे फिर छिप कर भाग आते और कीर्तन में योग देने लगते। पास के रास्ते से होकर ग्वाले गाय-भैंस लेकर चले जा रहे थे। नाम के आकर्षण से वे गाय-भैंसों को छोड़ कीर्तन में योग-दान करने लगे। बोझा लेकर जाने वाले मजदूर संकीर्तन-ध्वनि से मुग्ध हो सिर पर बोझा रखे-रखे ही शरीर मटका-मटका कर नृत्य करने लगे। कीर्तन मण्डली पहिये की तरह द्रुतवेग से मण्डलाकार नृत्य कर रही थी। बाबाजी महाशय बीच में खड़े एक-एक व्यक्ति को आलिंगन करते जाते थे और वह दुगने उत्साह से नृत्य करने लगता था। संकीर्तन ध्वनि से चारों दिशाएँ मुखरित हो गईं। इसी प्रकार अत्यन्त वेग के साथ नाम का प्रवाह चलता रहा। उस आनन्द की बात भाषा द्वारा कोई कैसे व्यक्त करे।

सुख का समय बहुत जल्दी बीत जाता है। देखते-देखते रात बीत गई, सबेरा हो गया। बाबाजी महाशय के आदेश से झण्डे, निशान आदि का प्रबन्ध कर नगर-कीर्तन निकाला गया। आगे-आगे बाबाजी महाशय नाम करते हुए नाचते-नाचते चल रहे थे। उनके पीछे असंख्य व्यक्ति परमानन्द में नृत्य कर रहे थे। केन्द्रापाड़ा के नर-नारी एक दूसरे से कह रहे थे 'हम लोगों के सौभाग्य की सीमा नहीं; केन्द्रापाड़ा आज धन्य हो गया। धन्य हैं श्यामसुन्दर बाबू! उन्हीं की कृपा से आज हमने ऐसे महापुरुष के दर्शन किये। हम यहाँ अनेक साधु-वैष्णवों के दर्शन करते रहते हैं, पर ऐसा महाशक्ति-सम्पन्न रसमय-विग्रह न कभी देखा और न देखेंगे।' इस प्रकार अपनी-अपनी धारणा के अनुसार वे समालोचना करने लगे। केन्द्रापाड़ा गाँव की परिक्रमा कर आपामर जन-साधारण को प्रेमानन्दसागर में डुबा दोपहर एक बजे कीर्तन लौट कर आया। उस दिन गोविन्ददेव के भोग का प्रबन्ध विशेष रूप से हुआ था। भोग लगने के बाद बहुत-से वैष्णवों और दुखी-कंगाल लोगों ने महाप्रसाद पाया। दूसरे स्थानों के कीर्तन सम्प्रदायों के लोगों ने बाबाजी महाशय से एक बार अपने यहाँ चलने का अनुरोध किया। उन्होंने किसी प्रकार अपने मधुर वचनों से उन्हें सन्तुष्ट कर विदा किया।

पद्मनाभ-उद्धार

एक दिन सदलबल गोविन्ददेव की चन्दन-पुष्करिणी में स्नान करते समय बाबाजी महाशय के मन में न जाने क्या आया, वे बोले 'चलो देखें, पुष्करिणी के बीच मन्दिर तक कौन पहले तैर कर पहुँच जाता है।' श्यामसुन्दर बाबू बोले 'तो सब एक साथ तैरना शुरू करेंगे।' बाबाजी महाशय ने कहा 'नहीं, तुम सब आगे जाओ, मैं पीछे रहूँगा।' बाबाजी महाशय हाथों का सहारा लिये बिना तैरने लगे, इसलिये सबने सोचा कि वे निश्चय ही पीछे रह जायेंगे। वक्ष तक पानी के ऊपर था और वे वक्षस्थल पर दोनों हाथ रख हाथ से जप कर रहे थे। दर्शक देखकर अवाक् थे। लगता था कि वे पैरों से चलकर जा रहे हैं। पर क्षणभर में न जाने किस कौशल से एकदम सबसे आगे होकर उस जल-मध्यस्थित पर्वताकार भूमि पर जा बैठे। क्रमशः सब लोग वहाँ आकर एकत्र हुए। सब थके हुए थे, पर बाबाजी महाशय बिलकुल क्लान्त नहीं थे। गोविन्दजी की विहार-भूमि दर्शन कर वे बोले 'देखो, यह स्थान बड़ा ही मनोरम है। यहाँ बैठकर श्रीकुण्ड के भीतर बने विलास मन्दिर की लीलाएँ याद आ जाती हैं।' कुछ देर तक इसी प्रकार तरह-तरह की लीला-कथायें होती रहीं। फिर सबने किनारे लौट कर शुष्क वस्त्र पहने। भक्तजन लीलामय की आनन्दमयी-लीला-क्रीड़ा देख परमानन्द सागर में निमग्न हो गये। क्रमशः सभी नाम करते-करते गोविन्दजी के सामने आ पहुँचे।

इसी समय चौबीस-पच्चीस साल का एक ब्राह्मण युवक आकर बाबाजी महाशय के पैर पकड़ बड़ी व्याकुलता के साथ रोने लगा। वह किस भाषा में क्या कह रहा था किसी की समझ में न आया। उसकी बातों में कुछ-कुछ संस्कृत और कुछ-कुछ अँगरेजी मिली थी। वहाँ ऐसा कोई न था जिसकी आँखें उस युवक की अवस्था देख भर न आई हों। उसका धूल में लोटना-पोटना, उसकी आर्ति, उसका हृदय विदारक क्रन्दन और उसकी भक्ति-मिश्रित गद्‌गद कण्ठ की कातरोक्ति सुन सबका हृदय पिघल गया। बाबाजी महाशय ने जैसे ही व्यग्र हो उसे उठाकर आलिंगन किया, वह फिर जमीन पर गिर कर बड़ी व्याकुलता से छटपटाने लगा। उसके मुँह से सिर्फ यही शब्द निकलते थे 'गुरो! कृपां कुरु।' किसकी सामर्थ्य थी कि उसे शान्त करता? उसकी ऐसी अवस्था देख बलराम बाबू आदि बाबाजी महाशय से अनुरोध करने लगे कि वे उसे मन्त्र प्रदान करें। बाबाजी महाशय ने भी उसकी व्याकुलता देख निताइचाँद की इच्छा समझ उसके कान में मन्त्रोच्चारण कर दिया। भाग्यवान् ब्राह्मण युवक अभीष्ट वस्तु प्राप्त कर 'धन्योऽस्मि कृतकृतोऽस्मि कुलं पवित्रं जननी कृतार्था' आदि वाक्य उच्चारण करने लगा। मन्त्र-प्राप्ति के साथ ही साथ उसके शरीर में सात्विक विकार स्पष्ट दिखाई देने लगे। उसने कातर भाव से बाबाजी महाशय के चरण पकड़ लिये और आवेगभरे हृदय से मिश्रित भाषा में अपने जीवन की घटनाओं का वर्णन कर बाबाजी

महाशय से क्षमा-प्रार्थना करने लगा। बाबाजी महाशय ने बंगला भाषा में जो उपदेश दिये, उन्हें नित्य-स्वरूप ब्रह्मचारी ने अँगरेजी भाषा में परिणत कर युवक को समझा दिया। बलराम बाबू ने जब उससे परिचय पूछा, तो उसने अँगरेजी में बताया 'मेरा नाम पद्मनाभ है। कान्यकुब्ज ब्राह्मण हूँ। निवास-स्थान मलयालम में है। मैंने एम.ए. पास किया है। इस समय वेदान्त पढ़ने काशीधाम जाने का मेरा निश्चय है।' सुनकर सभी परमानन्दित हुए। इसी दिन से पद्मनाभ देव-प्रकृति का व्यक्ति हो गया। गले में पाँचकण्ठी तुलसीमाला और माथे पर तिलक धारण कर बाबाजी महाशय के साथ रहने लगा। क्रमशः बलराम बाबू, श्यामसुन्दर बाबू, ब्रजसुन्दर बाबू, वृन्दावन बाबू, गोकुल बाबू आदि सभी ने बाबाजी महाशय से मन्त्र ग्रहण किया।

कुछ दिन बाद बाबाजी महाशय श्यामसुन्दर बाबू के घर दुमंजिले पर बैठे श्यामसुन्दर बाबू और कुछ अन्य लोगों से बातें कर रहे थे। नीचे की मंजिल में नौकर-चाकर और बाहर के कुछ लोग थे। उनमें कृष्ण मानसिंह नामक एक व्यक्ति एक दूसरे व्यक्ति से धीरे-धीरे कह रहा था 'बड़ो बाबाजी महाप्रभु जेत्ते बड़ो-बड़ो लोक मानंकू डाकी हाँकी जोर जबरदस्ती करी मन्त्र देउछन्ती। ए गरीबकू आर किये पचारे? कुष्णार तो आउ पयसा नाहि, मन्त्र पाइबारओ सम्भव नाइ।' (अर्थ आगे स्पष्ट हो जायेगा) इधर बाबाजी महाशय एकदम चंचल होकर 'कृष्ण कृष्ण' पुकारने लगे। श्यामसुन्दर बाबू विस्मित हो बोले 'कहाँ, कृष्ण तो कहीं नहीं है।'

बाबाजी—तुम एक आदमी को भेज दो। कृष्ण-मानसिंह नीचे है, उसे लिवा लाये।

श्यामसुन्दर बाबू ने एक व्यक्ति को भेज दिया; उसने कृष्ण से बाबाजी महाशय की बात कही। कृष्ण डरते-डरते ऊपर आकर खड़ा हो गया। बाबाजी महाशय मृदु हास्य के साथ बोले 'क्यों रे कृष्ण! तू क्या कह रहा था? मैं सिर्फ बड़े लोगों को जोर जबरदस्ती कर मन्त्र देता हूँ, गरीबों के प्रति लक्ष्य नहीं करता? भाई! यह तेरी भूल है; मन्त्रदाता निताइचाँद के निकट छोटे-बड़े सभी समान हैं। इतना ही नहीं; बड़े लोगों की अपेक्षा कंगालों के प्रति वह अधिक कृपा करते हैं, उनकी कृपा सिर्फ समय-सापेक्ष है' यह कहकर बाबाजी महाशय ने कृष्ण को मन्त्र प्रदान किया। कृष्ण अपनी भ्रान्त धारणा के कारण अपने को अपराधी जान बड़ा दुःखी हुआ पर बाबाजी महाशय ने उसे आलिंगन कर अभय प्रदान किया। श्यामसुन्दर बाबू ने बाबाजी महाशय से पूछा- कृष्ण ने क्या कहा था?'

बाबाजी—कुछ नहीं। उसके मन में ऐसा भाव आया था कि बाबाजी महाशय केवल बड़े लोगों को जोर जबरदस्ती कर मन्त्र देते हैं। उसके पास न तो पैसा है और न वह बड़ा आदमी है, उसे कौन पूछे?

श्यामसुन्दर ने कृष्ण से पूछा तो उसने कहा 'आज्ञे मू तले बसि ठिक एहि कथा कहुथिली, अन्तर्जामी प्रभु तो सबू जानि पारिले मू आउ कोन कहिवा।' सुनकर सभी अत्यन्त विस्मित हुए। इस प्रकार केन्द्रापाड़ा में नाना प्रकार की ऐश्वर्य-माधुर्यमयी लीला क्रीड़ाओं में दिन बीतने लगे।

द्युतिसिंह का उद्धार

एक दिन राघव माहान्ति नामक एक भक्त के घर सपार्षद बाबाजी महाशय का निमन्त्रण था। आप अपराह्न के समय साथियों के साथ नाम करते-करते उसके घर जा रहे थे। रास्ते में एक कोढ़ी को देखकर बोले 'क्यों रे द्युतिसिंह! जो करने को था बहुत कर लिया, अब भी तुझे चेत नहीं हुआ?' द्युतिसिंह ने दण्डवत् प्रणाम कर कहा 'बाबा! आप क्या कह रहे हैं, मैं तो कुछ भी नहीं समझा।' इस पर बाबाजी महाशय उसके जीवन के सारे वृत्तान्त आदि से अन्त तक इस प्रकार कहने लगे जैसे उन्हें मुखस्थ हों। वे एक-एक दिन की घटना कहते थे, और द्युतिसिंह काँपता जाता था। इसी तरह जब उन्होंने उसके इस जन्म और पूर्व जन्म के पाप-पुण्यों की सारी बातें कहीं तो वह उनके चरण पकड़कर उच्चस्वर से रोने लगा। उसके मन में ऐसी आत्मग्लानि आ गई कि वह अपने प्रत्येक अंग की अवस्था का उल्लेख कर कहने लगा 'देखो बाबा! मैं घोर पतित हूँ। मेरे हाथों की उँगलियाँ देखो, प्रायः गिरने को आ गई हैं। पैरों की

उँगलियों में शक्ति नहीं, लगता है जैसे सुन्न होकर नष्ट होने को हैं। मैं आपकी शरण मैं आया हूँ। आप यदि इस पाप से मेरा उद्धार नहीं करेंगे, तो कौन करेगा? मैं ऐसा अभिमानी और पाषण्डी हूँ कि आपके अतिरिक्त और कोई मेरा उद्धार करने वाला इस संसार में नहीं है। दयामय! शास्त्रों में पढ़ा है कि महाप्रभु ने दक्षिण के किसी कोढ़ी ब्राह्मण को आलिंगन कर उसे व्याधिमुक्त किया था। हे प्रभु! उसके पास भक्ति थी मेरे पास भक्ति तो है ही नहीं, मैं विष्णु-वैष्णवद्वेषी और देव-द्विज-गुरु-चरणों में घोर अपराधी हूँ। करुणामय! मेरे व्यवहार को देख कोई मुझसे दो बातें करना चाहे, ऐसा व्यक्ति मुझे आज तक नहीं मिला। मेरा विश्वास है कि आप-जैसे अदोषदर्शी प्रभु मुझे और कभी नहीं मिलेंगे। जब करुणा कर इस पतित के दु:ख से दु:खी हुए हैं, तो पतितपावन! यदि इस पतित के उद्धार का उपाय नहीं बतायेंगे तो मैं क्या करूँगा और कहाँ जाऊँगा?' इतना कह वह एक दम अधीर हो जमीन पर गिर कर जोर-जोर से रोने लगा।

कुसुम-सुकोमल करुणहृदय बाबाजी महाशय ने अपने अश्रु-कम्पादि सात्विकभावों से परिपूर्ण शरीर से द्युतिसिंह को उठाकर आलिंगन प्रदान किया। उसके कान में मन्त्र दिया और प्रसन्न होकर कहा 'भाई! तेरे जन्म-जन्म के जितने भी पाप-ताप हैं, मैं लेता हूँ। चिन्ता न कर। पापों के कारण तेरी यह दुर्दशा हुई है। निताइचाँद की कृपा से अब कुछ नहीं होगा। आज से तू निष्पाप होकर निताइचाँद के श्रीचरणों का चिन्तन कर, तुझे शीघ्र सद्गति प्राप्त होगी।'

द्युति—बाबा! मुझमें साधन-भजन करने की तो कुछ भी शक्ति नहीं। मेरी क्या गति होगी?

बाबाजी—तुझे और किसी साधन-भजन की आवश्यकता नहीं। एकमात्र नाम कर। नाम से ही सारे अनर्थों का नाश हो जायगा।

द्युति—प्रभु! मैं कौनसा नाम लूँ, निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ, अत: आप आज्ञा कीजिये, कौनसा नाम लेना मेरा कर्तव्य है?

बाबाजी—**एक बार कृष्णनामे जत पाप हरे।**
पातकीर साध्य नाहि तत पाप करे।।
शेइ कृष्णनाम जीव लय बहुबार।
तथापि न हय प्रेमपुलकाश्रुधार।।
तबे जानि अपराध आछये प्रचुर।
कृष्णनाम बीज ताहे ना हय अंकुर।।
निताइ-गौरांगे नाइ शे सब विचार।
नाम लइते प्रेम हय बहे अश्रुधार।।

भाई, निताइगौरांग की कृपा के अतिरिक्त कलि के जीवों की गति नहीं। परमदयाल अवतार निताइ-गौरांग प्रभु यदि कृपा कर जीवों के घर-घर जाकर नाम-प्रेम का वितरण न करते, तो हम लोगों की क्या दशा होती? रत्नाकर ने कितने युग तपस्या की, तब कहीं राम-नाम उच्चारण करने की शक्ति पाई। कलिहत पतित जीव जान-बूझकर महापाप करते हुए भी 'हरे कृष्ण, राम, गोविन्द' उच्चारण कर रहे हैं यह किसकी कृपा है? तभी कहता हूँ भाई, भज सको चाहे न भज सको, दिनान्त में निशान्त में एक बार उन परम करुणामय निताइ-गौरांग को मस्तक झुका देना। श्रद्धा से, चाहे अश्रद्धा से एक बार 'हा निताइ गौरांग!' कहकर पुकारना, सर्वार्थसिद्धि होगी।

द्युतिसिंह कुछ कहने को हुआ पर भय से सकुचा गया। अन्तर्यामी प्रभु उसके मन की बात जानकर बोले 'द्युतिसिंह, चल, तेरे घर चलें।'

सुनते ही वह आत्महारा भाव से नृत्य करते-करते बोला, 'हे अन्तर्यामी प्रभो! मेरे हृदय में वासना जागते ही आपने उसे पूरा करने की इच्छा की। मैं अधम जीव हूँ; मेरे मन में इसी वासना का उदय हुआ था, पर कहने का साहस नहीं हो रहा था। प्रभु, करुणा करें तो इसी रास्ते दास के घर पधारें।' बाबाजी महाशय प्रेमानन्द में नृत्य करते हुए द्युतिसिंह के घर पहुँचे। वहाँ किंचित् महाप्रसाद ग्रहण कर पुनः नाम करते-करते राघव माहान्ति के घर गये। श्यामसुन्दर बाबू बाबाजी महाशय से कहने लगे 'जिसका नाम लेने से आदमी को दिन में भोजन नहीं मिलता और उसकी दुर्दशा की सीमा नहीं रहती, ऐसे व्यक्ति के घर आज आपने महाप्रसाद पाया!' बाबाजी महाशय ने थोड़ा हँसकर कहा 'श्यामसुन्दर! वह आदमी बहुत अच्छा है। सिर्फ बाहर की अवस्था देखने से तो काम नहीं चलता, उसका अन्तःकरण

बड़ा ही निर्मल है। थोड़े दिनों में उसका परिचय मिल जायगा।' सचमुच बाबाजी महाशय के केन्द्रापाड़ा छोड़ कर चले जाने के कुछ दिन पीछे ही द्युतिसिंह की अवस्था में परिवर्तन हो गया। भगवद्गुणानुकीर्तन, भागवतपाठ-श्रवण, साधु-सज्जन-ब्राह्मण वैष्णव में प्रीति-भक्ति मानो उसकी स्वाभाविक वृत्ति हो गई।

क्रमशः दामोदर मोक्ता, सुदर्शन मोक्ता आदि लोगों के घर निमन्त्रण होने लगा और बहुत-से लोग बाबाजी महाशय से उपदेश ग्रहण करने लगे। केन्द्रापाड़ा आनन्द से परिपूर्ण हो गया। सदा नामकीर्तन होने लगा, वैष्णवों और दु:खी-कंगालों की सेवा होने लगी।

एक दिन एक उड़िया नाटक-दल आकर बाबाजी महाशय से कहने लगा 'हमारी बड़ी इच्छा है कि आपको अपनी भाषा के गीत सुनायें, यदि कृपाकर आज्ञा दें, तो आरम्भ करें।' बाबाजी महाशय ने श्यामसुन्दर को बुलाकर कहा 'देखो श्यामसुन्दर, एक बार उड़िया-गान सुनेंगे।' श्यामसुन्दर बाबू ने प्रसन्न होकर अष्टप्रहरवाले स्थान पर संगीत का प्रबन्ध कर दिया। ध्रुवचरित्र नाट्यगान आरम्भ हुआ। बाबाजी महाशय एकाग्रचित्त से गान सुनने लगे। गायक लोग भी दूने उत्साह से गाने लगे। उन लोगों के गाने में भाव एवं युक्तिविरुद्ध बहुत-सी बातें थीं और हाव-भाव अंग-संचालन भावानुकूल नहीं थे। फिर भी बाबाजी महाशय उस समय कुछ न बोले; प्रशंसा ही करने लगे। एक व्यक्ति ने कहा 'ऐसा अयौक्तिक एवं भाव-विरुद्ध गान सुनकर भी आप प्रशंसा कर रहे हैं।' बाबाजी महाशय हँसते हुए बोले 'देखो, 'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियं' यह महावाक्य सदा सभी को याद रखना चाहिये। यद्यपि इन लोगों को भावादि का बोध कम है, तथापि इन्हें उत्साह न मिले तो इनका उद्यम टूट जायगा। कुछ समझाने की आवश्यकता है तो बाद में समझाया जा सकता है।' किसी भी प्राणी के हृदय को उद्विग्न करना बाबाजी महाशय के स्वभाव विरुद्ध था। बाद में उन्होंने उक्त नाटक-दल के अभिभावक को बुलाकर उसे विशुद्ध भाव-तत्व समझा दिया। उसने भी उनके वचन शिरोधार्य कर अपने को धन्य माना।

गोविन्ददास की विदा

एक दिन प्रातःकाल बाबाजी महाशय श्यामसुन्दर बाबू के दफ्तर में बड़े गम्भीर होकर बैठे थे। किसी से कुछ कह-सुन नहीं रहे थे। उनके सहचरों में से बहुत-से लोग श्यामसुन्दर बाबू के घर के उत्तरवर्ती दोमंजिले में रहते थे। लगभग सात बजे उन्होंने एक पत्र लिखकर एक बच्चे के हाथ गोविन्द दादा के पास भिजवा दिया और कहा कि वे जो कुछ कहें उन्हें आकर बता दे। लड़के ने पत्र ले जाकर गोविन्द दादा को दिया। वह खोलकर पढ़ने लगे।

'भाई गोविन्द! पत्र पढ़ते ही बिना आपत्ति किये पैदल श्रीधाम वृन्दावन चले जाओ। वृन्दावन पहुँचकर श्रीराधाकुण्ड में वास करो। वहाँ झाड़ू लगाओ और माधुकरी वृत्ति का आश्रय लेकर जीवन-यापन करो। इस समय मेरे साथ और मिलना नहीं होगा। श्रीनिताइचाँद की इच्छा से समयानुसार कहीं दूसरी जगह साक्षात्कार होगा। इति—

वैष्णवदासानुदास
श्रीराधारमणचरणदास

पत्र की बात सुनते ही मानो सभी के सिर पर वज्राघात हो गया। सभी व्याकुल होकर कहने लगे। 'हाय! यह क्या हुआ! किस कारण से बाबाजी महाशय का कुसुम-सुकोमल रसमय हृदय आज वज्र से भी कठोर हो गया?'

क्षणभर पीछे गोविन्द दादा ने धीर भाव से उत्तर दिया 'अच्छा, ऐसा ही होगा। उनके चरणों में मेरी दण्डवत्। वे सुख से रहें।' लड़के ने लौटकर यह तीन बातें बाबाजी महाशय से कह दीं। वे चुपचाप प्रातःकृत्य करने पीछे की ओर चले गये। जो सर्वदा उनके पास रह कर सेवा-कार्यादि करते थे, आज उन्हें भी उनसे कुछ कहने का साहस नहीं हो रहा था, सभी उदास थे। उन्होंने ऐसा गम्भीर भाव धारण कर लिया था कि किसी की हिम्मत न थी जो उनसे आँखें भी चार करता। नित्य-स्वरूप ब्रह्मचारी ने आकर कहा 'आज्ञा हो तो मैं गोविन्द दादा के साथ वृन्दावन चला जाऊँ।'

बाबाजी—खुशी से! मुझे कोई आपत्ति नहीं।

नित्य—गोविन्द दादा आकर एक बार दण्डवत् कर जायँ तो..........

बाबाजी—नहीं, अपना-अपना काम देखो। तुम्हें दूसरे से कोई मतलब नहीं।

नित्यस्वरूप को और कोई बात कहने का साहस न हुआ, वे दण्डवत् प्रणाम कर रोते-रोते गोविन्द दादा के पास चले गये। रात चार बजे उठकर श्यामानन्ददास और निताइदास नाम करते-करते परिक्रमा करने निकले। कोई आठ बजे बाबाजी महाशय के पास आकर दण्डवत् प्रणाम कर बोले 'गोविन्द दादा के साथ वृन्दावन जाने की हमारी बड़ी अभिलाषा है, क्या आज्ञा है?'

बाबाजी—कोई आपत्ति नहीं, खुशी से जाओ; यदि और कोई जाना चाहे, तो उसे भी ले जा सकते हो।

श्यामसुन्दर बाबू आदि कठपुतली-जैसे खड़े-खड़े सब देख रहे थे, पर किसी को कुछ कहने का साहस नहीं हो रहा था। इधर गोविन्द दादा, नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी, श्यामानन्ददास और निताइदास चारों व्यक्ति साश्रु-नयन गद्गद कण्ठ से 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' गाते हुए चल पड़े। जो जा रहे थे, वे रो रहे थे, और जो रह गये थे, वे भी। जो इनकी अवस्था देख रहे थे, उनके भी आँसू नहीं थम रहे थे। चारों ओर रोदन व्याप्त था। एकमात्र बाबाजी महाशय धीर-स्थिर-गम्भीर भाव से मुँह धो रहे थे। उसी समय श्यामसुन्दर बाबू अत्यन्त व्याकुल भाव से रोते-रोते साष्टांग दण्डवत् प्रणाम कर बाबाजी महाशय के पैर पकड़ कर कहने लगे 'मेरी एक प्रार्थना है; मैं इन चारों को वृन्दावन तक का किराया दिये देता हूँ; इसमें आप कोई आपत्ति न करें।'

बाबाजी—मुझे क्या आपत्ति है? वे यदि लेना चाहें, तो दे दो।

श्यामसुन्दर बाबू गोविन्द दादा के पास पहुँच कर उनसे वृन्दावन जाने के लिए पाथेय लेने का अनुरोध करने लगे। गोविन्द दादा उदास हो बोले 'क्या अब भी परीक्षा पूरी नहीं हुई। बलिहारी दया!' कह कर द्रुतगति से चल पड़े। गोविन्द दादा को परेशानी कम होगी, इसी विचार से उनके साथियों ने पाथेय लेने की इच्छा की, पर उनकी तात्कालिक अवस्था देख किसी का भी पाथेय लेने का साहस न हुआ। श्यामसुन्दर बाबू बहुत यत्नाग्रह करके भी विफलमनोरथ हो बाबाजी महाशय के पास लौटकर बोले 'बहुत चेष्टा करने पर भी मैं दुर्भाग्य से सफल न हो सका, गोविन्द दादा किसी प्रकार भी पाथेय लेने को राजी न हुए।' यह सुन बाबाजी महाशय बहुत सुखी हुए। अब उनके मुख का भाव परिवर्तित हो गया, आँखों में पानी आ गया। गद्गदकण्ठ से श्यामसुन्दर बाबू से पूछा 'श्यामसुन्दर! गोविन्द क्या यथार्थ ही चला गया?'

श्याम—जी, आपने ही तो भेज दिया। आज्ञा हो तो अब भी मैं किसी को भेजकर उन लोगों को वापस लाने की चेष्टा करूँ।

बाबाजी—नहीं, नहीं, ऐसा न करना, वे श्रीवृन्दावन धाम जा रहे हैं। इस काम में क्या बाधा देना चाहिये?

सुयोग पाकर ललितादासी बोलीं—'आपका हृदय इतना कठोर है, यह हम लोग पहले नहीं जानते थे। कैसा आश्चर्य है? जाते समय बेचारे को एक दण्डवत् करने को भी नहीं आने दिया। 'वज्रादपि कठोराणि मृदुनि कुसुमादपि' की जो बात सुनी थी, आज प्रत्यक्ष देख ली। अब इस दिखावटी रोने की क्या आवश्यकता है?'

बाबाजी—तुम लोग समझते नहीं। गोविन्द का सुसमय आ रहा है। निताइ की कृपा से वह खूब उन्नति करेगा। वे मंगलमय हैं। किसी को कष्ट नहीं देते।

ललिता—वे दुःख-सागर में डुबाकर पीछे सुख देंगे, ऐसा मान कर सन्तोष करना हम-जैसे क्षुद्र जीवों के लिये कठिन है।

बाबाजी—तो तुम्हारे मत से वे अविचारक अथवा निर्बोध हैं। यह जीव का भ्रम है; इच्छामय जिसके द्वारा जो कार्य कराना चाहते हैं, उसे उस कार्य में प्रवृत्त करने के साथ वे उसके हृदय में उसी प्रकार की शक्ति का संचार कर देते हैं। वे हम लोगों की तरह परिच्छिन्न ज्ञानवान् थोड़े ही हैं। वे अन्तर्यामी हैं; सबके मन की बात जान कर ही कार्य करते हैं।

ललिता—अच्छा, किस दोष के कारण आपने उसे अलग कर दिया?

बाबाजी—तुम क्या वृन्दावन जाना दोष में शामिल करती हो? वृन्दावन में श्रीराधाकुण्ड पर रहना, वहाँ झाड़ू-सेवा करना, भिक्षा कर खाना, इसके लिए तो महात्मा तरसते हैं।

ललिता—यही बात है तो हम लोगों को इतना दु:ख क्यों हो रहा है?

बाबाजी—तुम लोग स्वार्थपरायण और माया के कीड़े हो। तुम समझते हो, जैसे भी हो साथ सटे रहना ही अच्छा है। ऐसी बात नहीं।

ललिता—आप ही कहते हैं, 'साधुसंग साधुसंग सर्वशास्त्रे कय। लवमात्र साधुसंग सर्वसिद्धि हय।।' 'सत्संगान्मुक्त दु:संग' इत्यादि। मैं यदि स्वयं अच्छा बन सकती हूँ, तो किसी संग की क्या आवश्यकता? मैं चाहे पाखण्डी, नास्तिक, अविश्वासी कुछ भी क्यों न होऊँ, सत्संग के प्रभाव से निश्चय ही मेरी मति परिवर्तित होगी, क्योंकि वस्तु-शक्ति बुद्धि की अपेक्षा नहीं रखती।

बाबाजी—ये सभी बातें सत्य हैं, 'संग' शब्द से तुम लोगों ने जो समझा है, वही गलत है। संग दैहिक क्रिया नहीं, मानसिक है। संग का अर्थ है आसक्ति। इसी अर्थ में श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है—

ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात् संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते।।
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।।

जिस वस्तु के विषय में बार-बार मन में सोचा जाता है, उसी में आसक्ति हो जाती है। आसक्ति के कारण उस विषय में काम (अभिलाषा) जाग्रत होता है। क्रमशः काम से क्रोध, क्रोध से मोह, मोह से स्मृति-नाश, स्मृतिनाश से बुद्धिनाश, और बुद्धिनाश से प्राणनाश हो सकता है। सुनो, किसी गाँव में दो ब्राह्मण थे—दीननाथ और रघुनाथ। इन दोनों के बीच ऐसी मित्रता थी कि एक दूसरे को देखे बिना बेचैन हो जाते थे। दोनों एक दूसरे का भला करने में व्यस्त रहते थे। पर दोनों की प्रकृति भिन्न थी। दीननाथ सात्विक, आचारी, परम वैष्णव था, श्रवण-कीर्तनादि-परायण नैष्ठिक भक्त था। रघुनाथ अत्यन्त दुराचारी, असच्चरित्र और पाखण्डी था। एक दिन दोनों मित्र कहीं जा रहे थे। थोड़ी दूर जाकर दीननाथ बोला 'चलो भाई! श्रीमद्भागवत पाठ सुनने चलें। व्यर्थ के कामों में समय नष्ट करना ठीक नहीं। यदि ऐसा सुन्दर मानव-जन्म पाकर भगवदुपासना ही न हुई, तो मानव जन्म की सार्थकता क्या? आहार-विहारादि तो पशु भी करते हैं। अतएव चलो। श्रीमद्भागवत-कथा सुन कर जीवन सफल करें।'

रघुनाथ ने उत्तर दिया। 'देखो भाई! तुम्हारी बात पर मुझे गुस्सा आता है। तुम ऐसा सुन्दर मानव-शरीर पाकर थोड़े-से असभ्य लोगों के संग-दोष से व्यर्थ उपवास करते हो, निरामिष भोजन करते हो, शरीर पर इतनी मिट्टी मले रहते हो। फिर यहाँ भागवत-पाठ, वहाँ चरितामृत-पाठ सुन-सुन कर यों ही समय निकाल देते हो। न जाने तुम्हारे यह क्या कुसंस्कार हैं? भगवान् यदि इस प्रकार कष्ट भोगने के लिये ही मनुष्यजन्म देता, तो विलास करने की प्रवृत्ति अथवा शक्ति ही क्यों देता? सोच कर देखो, नाना प्रकार के सुगन्धी द्रव्य इत्र, गुलाबजल, एसेन्स, पाउडर, साबुन इत्यादि की सृष्टि करने की क्या आवश्यकता थी? तभी तो कहता हूँ, मनुष्य जीवन भोग का जीवन है। लाख-लाख जन्म कष्ट उठाने के बाद मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ है। यदि इस जन्म में भी इतना कष्ट उठाया, तो सुख और कब मिलेगा? भगवान् भी तो कुछ सोचते हैं। किसी सामान्य राज्य में भी बहुत दिन काम करने के बाद आदमी को पेंशन मिलती है, कोई काम न करने पर भी उसे घर बैठे वेतन मिल जाता है। हम लोगों ने तो न जाने कितने जन्म कष्ट भोगा है, क्या अब भी छुटकारा न मिलेगा? अतएव इस दुर्बुद्धि को छोड़ मेरे साथ बाजार चलो। किसी अच्छे किस्म के मादक द्रव्य का व्यवहार कर किसी परम रूपसी रमणी के घर चलें और गान-वाद्य आदि नाना प्रकार के आमोद-प्रमोद के बीच मानव जीवन सफल करें।'

इस प्रकार दोनों अपने-अपने मत की श्रेष्ठता प्रतिपादन कर एक-दूसरे को अपनी ओर खींचने की बहुत चेष्टा करने लगे। पर किसी को सफलता न मिली। अन्त में दोनों अपने-अपने अभीष्ट स्थान की ओर चल दिये। एक व्यक्ति श्रीमद्‌भागवत-पाठ सुनने बैठ गया। दूसरा वेश्यालय पहुँचकर नाना प्रकार के आमोद-प्रमोद में मत्त हो गया। उस समय बैकुण्ठ धाम में देवर्षि नारद भगवान् से कथोपकथन में लगे थे। एकाएक भगवान् जोर से हँस पड़े। नारद पूछने लगे 'प्रभो! हँसे क्यों?'

भगवान्—'नारद! मृत्युलोक में दो ब्राह्मण हैं, एक श्रीमद्‌भागवत-पाठ सुनने गया है, दूसरा वेश्यालय। दोनों मित्रता के सूत्र में बँधे हैं, उन दोनों की विपरीत गति की बात सोच कर मुझे हँसी आ गई।'

नारद—विपरीत गति क्या? मेरी समझ में नहीं आया।

भगवान्—नारद! इन दोनों ब्राह्मणों का समय पूरा हो चुका है; ये दोनों मृत्यु को प्राप्त होंगे। पर जो वेश्यालय में है, उसका वैकुण्ठ-आगमन होगा, और जो भागवत पाठ सुन रहा है, उसे अधोगति प्राप्त होगी।

नारद—प्रभो! तब तो शास्त्र मिथ्या हैं, और आपके वाक्य भी। आपने कहा है—

नाहं तिष्ठामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।।

दूसरी जगह कहा है—

तुलसी काननं यत्र यत्र पद्मवनानि च।
पुराणपठनं यत्र तत्र सन्निहितो हरिः।।

जहाँ आप उपस्थित हैं, वहीं वैकुण्ठ है। उस पर भी आपका सान्निध्य। इतने पर भी यदि जीव की अधोगति हो, तो सद्‌गति कहाँ है? मैं तो आपका भाव बिलकुल नहीं समझा।

भगवान्—नारद! जो व्यक्ति भागवत सुनेगा, वह सद्‌गति प्राप्त करेगा। और जो वेश्यालय-गमनादि असत्कार्य करेगा, उसकी असद्‌गति होगी। इसमें तो कोई दोष नहीं है न?'

नारद—यह तो शास्त्रों में लिखा ही है। यदि कोई असत् कार्य करेगा तो उसकी अधोगति होगी।

भगवान्—तो चलो नारद, हम दोनों मृत्यु-लोक चलें।

भगवान् और नारद सूक्ष्म-रूप धारण कर उस जगह जा पहुँचे, जहाँ भागवत-पाठ हो रहा था। दोनों ने देखा कि ब्राह्मण आत्म-विभोर होकर सोच रहा है—'मेरा पुराना साथी रघुनाथ इस समय न जाने क्या कर रहा होगा। शायद मद्यपान कर वारांगना के साथ क्रीड़ा-कौतुक में समय बिता रहा होगा, उस विलासिनी रमणी ने अपने दोमंजिले वाले कमरे को तरह-तरह की सुगन्धित विलासिता की वस्तुओं से खूब सजा रखा होगा और वह नाना प्रकार के अलंकारों से अलंकृत, विलास-लालसामयी, नृत्य-गीत-कला प्रवीणा, परम रूपवती उस वारांगना के साथ बैठा हास्य-परिहास में मस्त होगा, उसके चारों ओर दासियाँ नाना प्रकार की सेवा-परिचर्या करती होंगी।' इसी प्रकार के विचारों में वह खोया हुआ था। जब उसका समय पूरा हो गया और उसके प्राण निकल गये, यमदूत ने आकर उसे बाँध लिया।

भगवान्—क्यों नारद! भागवत-श्रवण का फल देखा?

नारद—प्रभो! ऐसे भागवत-श्रवण का फल तो ऐसा ही होना चाहिये। अब दूसरे ब्राह्मण की अवस्था जानने के लिए बड़ा कौतूहल हो रहा है। कृपा कर वहाँ चलिये।

नारद के साथ वेश्यालय पहुँच कर भगवान् ने देखा कि दूसरा ब्राह्मण नाना प्रकार के आमोद-प्रमोद में लगा है, पर उसका मन कहीं और है। वह सोच रहा है—'हाय! मेरा इतना पुराना साथी दीननाथ पता नहीं किस अवस्था में है! शायद जहाँ वह है, भागवत-पाठक उच्चासन पर बैठकर भागवत-पाठ कर रहा है, उसके चारों ओर तिलक-छापे वाले भक्त लोग बैठे हैं, एक तुलसी का पौधा भी हो सकता है सामने रखा हो। कथावाचक एक-एक श्लोक की व्याख्या करता जा रहा है, और सब लोग रो-रो कर अस्थिर हो रहे हैं, कभी-कभी पाठक की किसी बात को सुन सब लोग एक साथ 'हरिबोल' कह उठते हैं। कोई-कोई व्यक्ति 'हरे कृष्ण', 'गोविन्द', 'राम', 'नारायण' उच्चारण कर आनन्द में मग्न हो रहे हैं।' सोचते-सोचते उसके

प्राण निकल गये। एक विष्णुदूत आकर उसकी नाना प्रकार से स्तव-स्तुति कर उसे वैकुण्ठ ले गया।

भगवान्– क्यों नारद! रहस्य समझ में आया?

नारद–प्रभो! आपकी कृपा से बहुत कुछ अनुभव हो गया, पर अभी एक सन्देह दूर नहीं हुआ। इतने समय तक जिस व्यक्ति ने भक्ति की, अन्तकाल में उसकी ऐसी असद्गति क्यों हुई?

भगवान्–क्यों नारद! मैंने तो बार-बार कहा है–

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरं।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः।।

उस ब्राह्मण ने इतने समय तक जो भजन किया है, उसकी सुकृति कभी नष्ट नहीं होगी, पर अन्तिम काल की भावनाओं के कारण उस सुकृति का फल प्राप्त करने में थोड़ी देर होगी।

इस प्रकार बातें करते-करते भगवान् और नारद अपने-अपने स्थान को चले गये।

अब समझ में आया संग किसे कहते हैं? भगवान् ने और भी कहा है–

सतां प्रसंगान्मम वीर्यसंविदो
भवन्ति हृत्कर्ण-रसायनाः कथाः।
तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि
श्रद्धारतिर्भक्तिरनुक्र-मिष्यति।।

'जोषनात् सेवनात्' अर्थात् रुचि के साथ अनन्यचित्त होकर श्रवण करने से भक्ति जाग्रत होती है।

इस प्रकार नाना प्रकार की बातों में बहुत समय बीत गया। बाबाजी महाशय स्नान करने चले गये। बाकी सब अपने-अपने कार्य में लग गये।

कृष्णानन्द की विदा

केन्द्रापाड़ा-निवासी आपामर साधारण जन सभी आनन्द-सागर में निमग्न हैं। प्रायः हर समय कीर्तनानन्द, भगवत्-कथा, भक्तिग्रन्थ-पाठादि के बीच एक अनिर्वचनीय नशे में चकनाचूर हैं। उसी समय टेंकानल से संस्कृत पढ़ने केन्द्रापाड़ा आये सत्रह-अठारह वर्ष के दो बालक रत्नाकर मिश्र और गतिकृष्ण बाबाजी महाशय के दर्शन करने आये। दोनों उड़ियावासी शासन ब्राह्मण हैं, जो उड़ीसा के ब्राह्मणों में सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं, और प्रायः शैव या शाक्त हुआ करते हैं। दोनों में रत्नाकर नाम का बालक बाबाजी महाशय और उनके साथियों से इतना प्रभावित है कि हर समय उन्हीं के साथ रहता है, उन्हीं की तरह तीन कण्ठी तुलसी-माला धारण करता है और उन्हीं के साथ, जहाँ भी उनका निमन्त्रण होता है, प्रसाद ग्रहण करता है। गतिकृष्ण इस कारण उससे क्रुद्ध है। वह उसकी कण्ठी तोड़ फेंकने की चेष्टा करता है और वैष्णवों के साथ बैठ कर प्रसाद पाने के लिए उसे डाँटता-डपटता रहता है।

बाबाजी महाशय के किसी साथी ने उनसे गतिकृष्ण की निन्दा करते हुए जब यह सब कहा, तो वे बोले–"देखो भाई, कभी ऐसा भी होता है कि जो व्यक्ति जिस विषय से द्वेष करता है, वह उसी से आकृष्ट हो पड़ता है। हो सकता है कि गतिकृष्ण जो रत्नाकर से द्वेष करता है, उसके वैष्णवों का संग करने के कारण, एक दिन स्वयं परम वैष्णव हो जाय और रत्नाकर, जो वैष्णवों से प्रेम करता जान पड़ता है, वैष्णव-द्वेषी हो जाय।" बाबाजी महाशय के सभी साथी बोल पड़े–"असम्भव, ऐसा कभी नहीं हो सकता।" बाबाजी महाशय यह सुन हँस दिये।

इसी बीच एक दिन प्रातःकाल कृष्णानन्ददास ने आकर बाबाजी महाशय से कहा–"आपकी अनुमति हो तो प्रेमानन्द भारती जी के साथ एक बार अमेरिका आदि स्थानों का चक्कर लगा आऊँ।"

बाबाजी–प्रेमानन्द भारती भक्ति का प्रचार करने अमेरिका जा रहे हैं। उनके साथ सहयोग करना तो अच्छी बात है। आज ही जाने की व्यवस्था करो।

इतना कह बाबा महाशय स्नान करने के लिए गोबरा नदी की ओर जाने लगे। श्यामसुन्दर बाबू आदि साथ हो लिये। वे बोले–"इस नदी का जल तो बहुत गन्दा है। हम लोग इसमें स्नान नहीं करते। आप भी इतने दिन से यहाँ हैं, एक दिन भी इसमें स्नान करने नहीं गये। आज कैसे जा रहे हैं?"

बाबाजी महाशय के मन में शायद गतिकृष्ण की बात अब भी घूम रही थी। उन्होंने कहा 'देखो, स्रोतस्विती नदी का जल क्या कभी गन्दा होता है? गतिशील सभी वस्तुएँ उन्नति के सोपान की ओर अग्रसर होती हैं। अनुराग गतिशील है। अनुराग सत् वस्तु में हो या असत् वस्तु में, अनुरागी व्यक्ति को ऊर्द्धगामी करेगा ही। गति समाप्त होते ही उन्नति की आशा भी समाप्त हो जाती है। नदी गतिशील न हो तो उसमें कीड़े पड़ सकते हैं। गोबरा नदी का स्रोत है, इसलिये वह गतिशील है।

कृष्णानन्द—अनुरागी की गति असत्-पथ की ओर हो तो कैसे उन्नति हो सकती है?

बाबाजी—गतिशील होने के कारण परिवर्तन सहज में हो जाता है। घोर पाषण्डी, शराबी, चोर, डाकू, निष्ठुर, दाम्भिक व्यक्ति भी यदि गतिशील है, तो अति सामान्य कारण के उपस्थित होने पर भी उतना ही ऊँचा उठ सकता है, जितना वह नीचा था। विल्वमंगल, तुलसीदास, रत्नाकर, अजामिल, जगाइ-माधाइ आदि प्रमाण हैं।

इस प्रकार कथा-वार्ता के बाद स्नानादि समापन कर सब लोग घर लौटे। तिलक आह्निकादि कर कीर्तन आरम्भ किया। कीर्तन के पश्चात् प्रसाद ग्रहण कर बाबा बिना विश्राम किये फिर कृष्णानन्द के साथ नानारूप तत्व-कथा में जुट गये। तत्व-कथा करते-करते तीन बज गये। कृष्णानन्द के जाने का समय हो गया। उन्होंने अश्रुपूर्ण नेत्रों से गद्‌गद कण्ठ से कहा—"मुझे किस प्रकार चलना होगा, एक बार उपदेश करने की कृपा करें।"

बाबाजी—मैं क्या कहूँ भाई, इतना अवश्य करना कि सदा निताइचाँद के ऊपर निर्भर रहना। किसी से अर्थादि ग्रहण मत करना। जहाँ भी रहो केवल उदर भरने योग्य भिक्षा करना। प्रयोजन से अधिक कोई वस्तु प्राप्त हो तो उसका त्याग करना। एकनिष्ठ रहकर भजन करना।

कहते-कहते उनके दोनों नेत्र लाल और सजल हो गये। अर्धमुद्रित नेत्र और गद्‌गद कण्ठ से बोले—"भाई! आओ, तुम्हारे जाने के पूर्व एक बार प्राण-भर आलिंगन कर मन की साध मिटा लूँ। न जाने फिर कब प्रभु तुमसे मिलायें।" कृष्णानन्द अधीर भाव से बाबाजी महाशय के चरण पकड़ कर रोने लगे। उनकी आर्ति, रोना और प्रेमविह्वल भाव देख सब अवाक्। थोड़ी देर बाद बाबाजी महाशय ने उन्हें उठाकर आलिंगन किया। आलिंगन करते ही दोनों विभोर! दोनों रो-रोकर अस्थिर, दोनों के अश्रुजल दोनों के कलेवर अभिषिक्त। कोई पन्द्रह-बीस मिनिट तक बाबा महाशय ने कृष्णानन्द को अपने वक्ष:स्थल से लगाये रखा। जब उन्हें छोड़ा तो वे भाव में मदमस्त, अर्धमुद्रित आरक्त नेत्रों से उन्मत्त की तरह लुढ़कते-पुढ़कते चलने लगे। बाबाजी महाशय के साथी गोबरा नदी तक उन्हें छोड़ने गये। केवल खाँकी अखाड़ा के महन्त, ललितादासी, बलराम बाबू, एक जटाधारी बाबाजी और गतिकृष्ण बाबाजी के साथ रहे। नदी पार कर कृष्णानन्द 'भज निताइ गौर राधेश्याम। जप हरे कृष्ण हरे राम।' नाम कीर्तन करते-करते आगे चले गये।

इधर बाबाजी महाशय के मन में न जाने क्या आया, वे ललितादासी से बोले—"शीघ्र माला ले आ।" ललितादासी घर के भीतर से माला ले आयीं। बाबा ने माला अपने हाथ से गतिकृष्ण को पहना दी। फिर ललितादासी से कहा— "प्रसादी डोर-कौपीन और बहिर्वास है क्या?" ललितादासी ने देखा कि कालाकुञ्जदास बाबाजी अभी स्नान करके गये हैं और उनका भीगा डोर-कौपीन और बहिर्वास पड़ा है। उसे लाकर देते ही बाबाजी महाशय ने गतिकृष्ण को उसे पहना दिया। उसका मलिनवस्त्र अपने मस्तक से बाँध लिया। एक झोला और घण्टी उसके हाथ में दिया और कान में मन्त्र देने के उपरान्त भिक्षा करने को कहा। उसी समय संगीगण कृष्णानन्द को विदाकर लौट आये। उन सबसे बालक के साथ भिक्षा को जाने को कहा।

भिक्षा करके लौटने पर बालक का नाम रखा गोवर्द्धनदास। उसने भिक्षा का झोला उनके हाथ में दिया तो बोले—"बाबा! तुम्हारे जन्म-जन्मान्तर के जितने पाप-ताप थे सब मैंने ग्रहण किये। अब तुम्हें कोई भय नहीं। निर्मल होकर निताइचाँद को पुकारो। वे शीघ्र कृपा करेंगे।" बालक का मन न जाने कैसा हो गया। वह व्याकुल भाव से रोने लगा। बलराम बाबू ने उसके

हाथ पकड़ बाबाजी महाशय के चरणों में साष्टांग लिटा दिया। बाबा महाशय ने उसे उठाकर आलिंगन किया। सब लोग उसके भाग की प्रशंसा करने लगे। उसका मन ऐसा हो गया कि वह फिर कभी इन लोगों का संग न छोड़ सका। पूर्वोक्त रत्नाकर की अवस्था में परिवर्तन आ गया। उसने गले की कण्ठी तोड़ दी और गतिकृष्ण का भी मन बदल देने की बहुत चेष्टा की। पर किसकी सामर्थ्य थी जो उसमें तनिक भी परिवर्तन ला सकता? गोवर्द्धन के प्रति बाबाजी महाशय की कृपा देख सब को बड़ा आश्चर्य हुआ।

कुतिया का मति-परिवर्तन

कुछ दिनों से खाँकी सम्प्रदायी एक नैपाली साधु केन्द्रापाड़ा में वास कर रहे हैं। अत्यन्त निरीह-प्रकृति के हैं। धूनी पर ही भोजन तैयार कर लेते हैं। श्यामसुन्दर बाबू के घर एक वृक्ष के नीचे साधु के रहने की जगह है। उनके साथ कुछ लाल रंग की एक कुतिया है। वह पूरी तरह से साधु पर निर्भर है। साधु का साथ छोड़ कहीं भी नहीं जाती। नाम है सुखिया। साधु जिस दिन जो खाते हैं, सुखिया भी वही खाती है। सुखिया के प्रति साधु का वात्सल्यस्नेह है। रात को जब साधु सो जाते हैं, कुतिया भी उनके पास सो जाती है। एक दिन सुबह, न जाने किस कारण, साधु ने सुखिया को चिमटे से मारा। शासन की दृष्टि से साधु वात्सल्यभाव से उसे बीच-बीच में उस प्रकार मार देते थे, पर आज का आघात कुतिया के हृदय को छू गया। थोड़ी दूर पर बाबाजी महाशय बैठे मुँह धो रहे थे; वह रोते-रोते उनके पास जा कर खड़ी हो गई। इससे पहले बहुत लोगों ने परीक्षा की दृष्टि से उसे साधु से अलग थोड़ी दूर ले जाने की बहुत चेष्टा की, पर वह सफल न हुए। आज पता नहीं निताइचाँद क्या खेल खेलना चाहते हैं। सुखिया ने स्वयं ही आकर बाबाजी महाशय के चरणों की शरण ले ली है। साथी लोग उसे भगाने की जितनी चेष्टा करते हैं, वह उतना ही उनकी चौकी के भीतर घुस जाती है। साधु अपने आसन से 'सुखिया, सुखिया' पुकार रहे हैं, पर सुखिया पास में होते हुए भी दूर है, सुनकर भी नहीं सुन रही है। थोड़ी देर में साधु बाबाजी महाशय के पास आये। उन्होंने उठकर उन्हें नमस्कार किया। साधु ने प्रतिनमस्कार कर कुतिया का सारा वृत्तान्त बाबाजी महाशय को सुनाया। बाबाजी महाशय कुतिया के शरीर पर हाथ फेरते हुए कहने लगे 'माँ! क्या करोगी? तुम्हारे गुरु और पितृस्थानीय साधु ने तुम्हें इतने दिन जगह-जगह घुमाया है। इस साधारण शासन के कारण उनका साथ छोड़ना तुम्हारे लिए उचित नहीं। अत: उनके साथ जाओ।' किसकी ताकत जो उसे चौकी के नीचे से बाहर निकाले? उसे निकलता न देख बाबाजी महाशय उठ खड़े हुए। जैसे ही सुखिया ने देखा कि वे खड़े हो गये हैं, वह द्रुति गति से निकलकर उनके पैरों में लोटने लगी। बाबाजी महाशय उसके शरीर पर हाथ फिराते हुए उसे पूर्ववत् साधु के पास जाने का उपदेश देने लगे। अन्त में उन्होंने साधु से कहा 'बाबा! आप उसे पकड़ कर ले जाइये।' वात्सल्य से मुग्ध होकर जैसे ही साधु उसे पकड़ने को हुए, वह अत्यन्त व्याकुल भाव से चीखने लगी। उपस्थित लोग देखकर विस्मित हो गये। साधु कातर होकर कहने लगे 'अरी सुखिया! मैं इतने दिन से तेरा पालन-पोषण कर रहा हूँ, आज बिलकुल भूल गई। मैं बूढ़ा साधु हूँ, तेरे लिये कितना कष्ट उठाया है। अच्छा किया, अब मेरी ममता भूलकर दूसरे साधुओं का संग ले लिया?' वह इस प्रकार की बातें कहते हुए और बड़ा दु:ख प्रकट करते हुए सुखिया को पकड़ने की चेष्टा करते रहे। पर सुखिया ने उनकी ओर मुड़कर भी न देखा। बहुत प्रयत्न करने के बाद वह हार कर अपनी जगह जाकर बैठ गये। थोड़ी देर बाद जब बाबाजी महाशय घर में जाने लगे तो सुखिया भी उनके साथ जाने लगी। इसके बाद उसने कभी उनका साथ नहीं छोड़ा, यहाँ तक कि यदि ये लोग उसे लिए बिना किसी जगह न्योते पर चले जाते तो वह अपने आप वहाँ पहुँच जाती।

कुछ दिन पीछे की बात है। एक दिन सुबह बाबाजी महाशय साथियों को ले स्नान करने गये; सुखिया भी साथ थी। बाबाजी महाशय बोले 'देखो, आज सुखिया को स्नान करा दो।' फिर स्वयं पुकारने लगे 'ओ सुखिया! आ स्नान करेगी?' सुखिया स्वेच्छा से पानी में उतर गई और जी खोल कर स्नान करने लगी। यह देख साथी एक साथ 'हरिबोल' बोल उठे।

स्नानादि के पश्चात् स्थान पर लौट कर और तिलक-आह्निकादि कर सब लोग 'जय जय नित्यानन्द अद्वैत गौरांग' कीर्तन करने लगे। सुखिया एकाएक कीर्तन के बीच आकर लोट-पोट होने लगी। सभी देखकर विस्मित! बाबाजी महाशय ने उसके कान में मन्त्र दे दिया। साथी लोग प्रेमानन्द में उद्दण्ड नृत्य-कीर्तन करने लगे। सुखिया भी कीर्तन में बाबाजी लोगों के साथ चक्कर लगाने लगी। बहुत देर तक कीर्तन हुआ। तत्पश्चात् गोविन्ददेव का महाप्रसाद पाकर सबने विश्राम किया।

बारिमूल और निकराइ की यात्रा

एक दिन अपराह्ण के समय बाबाजी महाशय बहुत-से भक्तों के साथ श्यामसुन्दर बाबू के घर दुमंजले पर बैठे थे, एकाएक श्यामसुन्दर बाबू को पुकार कर बोले 'देखो श्यामसुन्दर! तुम लोगों की जमींदारी में कई पहाड़ हैं न?' श्याम—जी हाँ, बड़ा ही सुन्दर दृश्य है, घूमने-फिरने के लिए रास्ते भी हैं।

बाबाजी—एक बार उन पहाड़ों को देखने चलें न? श्यामसुन्दर बाबू बहुत प्रसन्न होकर बोले 'लगता है इतने दिनों पीछे उड़ीसा की दुर्दशा दूर हुई। अब उसके अच्छे दिन आने को हैं। यदि आदेश हो तो अभी सब व्यवस्था कर दी जाय।'

बाबाजी—निताइचाँद की इच्छा से ऐसा ही हो। कल सुबह ही यहाँ से निकल जायँ।

इस पर बहुत-से केन्द्रापाड़ावासियों ने आपत्ति की। वे कहने लगे 'यहाँ और कुछ दिन ठहर कर जाना अच्छा होगा।' बाबाजी महाशय उनके इस प्रस्ताव से सहमत नहीं हुए। उन्होंने उन सबको अपने मीठे वचनों से सान्त्वना देकर दूसरे दिन सुबह प्रस्थान करना निश्चित किया।

पथ-प्रदर्शन के लिये एक व्यक्ति को साथ ले जाने की व्यवस्था हुई। उसी समय बारिमूल निवासी श्रीयुत शरत्चन्द्र घोष आकर बाबाजी महाशय को अपने गाँव ले जाने के लिये विशेष आग्रह करने लगे। बाबाजी महाशय उनके प्रस्ताव से सहमत हो गये। तब वे बोले 'नौका की व्यवस्था कर दी गई है, नौका से जाने में ही सुविधा होगी।'

देखते-देखते सुबह हो गई। केन्द्रापाड़ावासी आबाल-वृद्ध-वनिता सभी के मन आज उदास हैं; सभी के मुख मलिन हैं, नेत्र डबडबाये हुए हैं। इतने दिन वे एक अनिर्वचनीय आनन्दसागर में गोते लगा रहे थे। आज वह सागर सूख गया है। आनन्द की जगह निरानन्द का पवन बहने लगा है। बाबाजी महाशय प्रातः नित्यनियम कर गोविन्ददेव के आँगन में जाकर खड़े हो गये। चारों ओर से बहुत-से लोग एकटक उनके मुख की ओर देख रहे थे। साथी मृदंग-करताल लेकर आये। वैसे ही उन्होंने 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' नाम आरम्भ कर दिया। कुछ देर गोविन्ददेव के आगे नाम हुआ, फिर सब उन्हें दण्डवत् प्रणाम कर मानो उन्हीं के आदेश से नाम करते-करते गोबरा नदी पर नाव में जा बैठे। मध्याह्न नित्यनियम बारिमूल में ही होगा, ऐसा निश्चय किया गया। शरत्बाबू इन लोगों के साथ ही थे। बारिमूल केन्द्रापाड़ा से तीन मील था। नौका बहुत बड़ी थी, इसलिये धीरे चल रही थी। बाबाजी महाशय नौका में ही कीर्तन करने लगे। यथासमय शरत्बाबू के घर पहुँचे। उनकी इच्छा थी कि बाबाजी महाशय थोड़ा कीर्तन करें। पर समय थोड़ा जानकर उनकी कहने की हिम्मत न हुई। अन्तर्यामी बाबाजी महाशय ने उनके मन की बात जानकर मध्याह्न नियम पूराकर कीर्तन आरम्भ कर दिया।

आनन्द की अवधि न रही। जो व्यक्ति जिस भाव अथवा प्रश्न को लेकर कीर्तन में आता, वह देखता कि बाबाजी महाशय अपने कीर्तन में ठीक उसी भाव अथवा प्रश्न की विशद व्याख्या कर रहे हैं। यह देख बारिमूल निवासी भक्तजन विस्मित एवं स्तम्भित हो गये। एक वृद्ध ब्राह्मण अपना मनोभाव गुप्त न रख सकने के कारण बोल उठा 'मैं इतना बूढ़ा हो गया, पर आज तक ऐसा महाशक्ति-सम्पन्न वैष्णव मेरे देखने में नहीं आया। आज हमारा बारिमूल गाँव धन्य हो गया।' कोई कहने लगा 'ये आदमी नहीं हैं; मैं जो बात पूछना चाहता था, आकर देखा कि आप उसी को कीर्तन में व्याख्या कर समझा रहे हैं। समझाने का ढंग भी कैसा सुन्दर! मेरा विश्वास है कि बालक-वृद्ध-स्त्री-पुरुष कोई भी बिना समझे नहीं रहा।' इस प्रकार अपने-अपने

मनोभाव व्यक्त करने लगे। समय अधिक हो गया था। सभी को कष्ट होगा जानकर इच्छा न होते हुए भी कीर्तन समाप्त किया।

थोड़े विश्राम के बाद महाप्रसाद पाने की व्यवस्था हुई। इसी समय केन्द्रापाड़ा से बलदेवजी और गोविन्द देव का मिष्ठान्न महाप्रसाद आ पहुँचा। बाबाजी महाशय महाप्रसाद को देखते ही खड़े हो गये और साश्रुगद्‌गद कण्ठ से कहने लगे 'धन्य है करुणामय की कृपा! हमने उन्हें छोड़ दिया पर वे हमें छोड़ना नहीं चाहते।' महाप्रसाद सेवन कर कुछ विश्राम किया। विश्राम करके बैठे ही थे कि केन्द्रापाड़ा से बहुत-से लोग आने लगे। बलराम बाबू, श्यामसुन्दर बाबू, वृन्दावन बाबू, गोकुल बाबू, लक्ष्मीनारायण, जगदेव आदि सभी बाबाजी महाशय के साथ उड़ीसा-भ्रमण के लिये निकले। दस पालकियाँ साथ थीं। श्यामसुन्दर बाबू आदि सभी लोग बाबाजी महाशय से पालकी में बैठने के लिये विशेष अनुरोध करने लगे। पर वे किसी प्रकार सहमत न हुए। इसलिये कोई भी पालकी में नहीं बैठा। एक-एक पालकी के साथ सत्रह-सत्रह पालकी उठाने वाले थे; सभी खाली पालकियाँ कन्धों पर रख चलने लगे। शरत् बाबू इन लोगों से एक दिन बारिमूल में रुक जाने के लिये विशेष अनुरोध करने लगे। पर बाबाजी महाशय किसी प्रकार राजी न हुए। प्रायः चार बजे नाम करते-करते बारिमूल से प्रस्थान किया। पथ-प्रदर्शक साथ हैं, पर किसी से बिना पूछे बाबाजी महाशय नाम करते हुए और पैर पर पैर रख नृत्य करते इस प्रकार चले जा रहे हैं जैसे वे हर स्थान से सुपरिचित हैं। रात आठ बजे निकराइ जा पहुँचे। वहाँ हनुमान जी की सेवा होती है। महावीर जी की मूर्ति देखकर बाबाजी महाशय बड़े आनन्द से नृत्य करने लगे। कुछ देर उद्दण्ड नृत्य कर हाथ जोड़कर पद गाया—

नमो नमो कपिराज भक्तचूड़ामणि।
प्रभु लागि सर्वत्याग हेन नाहि शुनि।।
तोमा हेनो निष्ठावान आर केबा आछे।
ताइ निष्ठाभक्ति मोरा जाचि तूआ काछे।।
महावीर-शिरोमणि तूमि भक्तभूप।
वक्षचिरि देखाइले सीताराम रूप।।
नामेर महिमा तूमि देखाले सबारे।
राम बले अवहेले गेला सिन्धुपारे।।
प्रभु लागि असाध्य साधन बहु कैले।
तोमार स्मरणे जीवेर निष्ठा-भक्ति मिले।।
तोमार करुणा ह'ले अधमेओ पाय।
ताइ कोटि परणाम करि तूया पाय।।

इस प्रकार नाना प्रकार के पद-कीर्तन करते-करते बाबाजी महाशय साष्टांग पृथ्वी पर लोटने लगे। कुछ देर पीछे कीर्तन समाप्त कर विश्राम किया। इधर ठाकुर जी के भोगराग की व्यवस्था होने लगी। यथासमय प्रसाद पाकर रात मन्दिर में ही बिताई।

नामसम्प्रदाय-संशोधन

दूसरे दिन सुबह नित्यनियम पूरा कर बाबाजी महाशय ने श्यामसुन्दर बाबू से पूछा, 'श्यामसुन्दर अब यहाँ से कहाँ जाना है?' श्यामसुन्दर बाबू ने कहा 'यहाँ से आठ मील दूर पलेइ कचहरी है, उसके बहुत ही पास ओलासनि नामक एक पहाड़ है। आज उसी कचहरी को चला जाय।' बाबाजी महाशय 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' नाम आरम्भ कर चल पड़े। बलराम बाबू आदि ने विशेष अनुरोध किया कि वे पालकी में बैठ जायँ, पर वे किसी तरह राजी न हुए। सभी लोग नगर-परिक्रमा कर नाम करते-करते यथासमय पलेइ कचहरी जा पहुँचे। कचहरी के तहसीलदार और अन्य कर्मचारी परमानन्दपूर्वक इनकी विशेष रूप से देखभाल करने लगे। इनके साथ चार पुजारी थे। ठाकुरजी का भोग लगते-लगते समय बहुत हो चुका था। अतः उस दिन और कहीं जाना न हो सका। सन्ध्या पीछे आरति-कीर्तन आरम्भ हुआ। स्थानीय बहुत-से लोग आये; पर कोई बंगला भाषा नहीं जानता था। कुछ देर बाद अन्तर्यामी बाबाजी महाशय ने सभी का मनोभाव समझ कर नामकीर्तन आरम्भ कर दिया। सभी लोग उसमें योगदान करने लगे। रात प्रायः ग्यारह बजे तक उद्दण्ड नृत्य और कीर्तन चला। सबको परम आनन्द हुआ। कीर्तन के बाद सबने महाप्रसाद पाकर विश्राम किया।

दूसरे दिन प्रातः नित्यनियम पूरा कर बाबाजी महाशय ने श्यामसुन्दर बाबू से कहा 'चलो पहाड़ देख आयें।' साथी चलने की तैयारी करने लगे। पहाड़ पर पहुँचते ही वहाँ कुछ वैष्णवों को देख बाबाजी महाशय ने वैष्णवोचित सम्मान प्रदर्शित कर उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया और उनकी गद्दी के आगे जाकर बैठ गये। उनमें से मधुसूदनदास नामक एक वैष्णव बाबाजी महाशय से वार्तालाप करते हुए कहने लगे 'नाम को छोड़ कलि के जीवों के उद्धार के लिये दूसरा कोई उपाय नहीं। महाप्रभु ने कहा है 'नाम भजो नाम चिन्तो नाम करो सार, नाम बिने कलिकाले गति नाहि आर। खाइते-शुइते जथा तथा नाम लय, काल देश नियम नाइ सर्वसिद्धि हय।' नाम और नामी अभिन्न हैं। नामी से नाम बड़ा है। नाम वांछाकल्पतरु है। नाम से जिस वस्तु की भी याचना की जाती है, वह उसे देता है। कलियुग में नाम ही साधन है, नाम ही भजन, कीर्तन और अवलम्बन है।' बाबाजी महाशय नाम की व्याख्या सुन रहे थे और उनका सर्वांग पुलकित हो रहा था, आँखों से झर-झर पानी बह रहा था। वे गद्‌गद कण्ठ से बोले 'आज मैं धन्य हो गया। प्रभु ने बहुत दिनों से ऐसे नामनिष्ठ सम्प्रदायी महात्माओं का दर्शन और संगलाभ नहीं कराया था। आज मेरा परम सौभाग्य है।'

मधुसूदन—मुझे आश्चर्य है कि महाप्रभु ने जब नाम ही कलिकाल के जीवों के लिये एकमात्र आश्रय बताया है, तो नाम को छोड़ जीव दूसरी ओर क्यों भागता है?

बाबाजी—जीव दूसरी ओर क्यों जाता है इसका कोई उत्तर नहीं। अर्जुन ने श्रीकृष्ण से पूछा था—

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पुरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः।।

अर्थात् हे कृष्ण! जीव किसकी प्रेरणा से अपनी स्वयं इच्छा न होते हुए भी बलपूर्वक नियुक्त-जैसा पापाचरण करता रहता है?

श्रीकृष्ण ने कहा—

काम एष क्रोध एषो रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्।।

अर्थात् हे अर्जुन! यह काम और क्रोध रजोगुण समुद्भूत हैं; जीव के सत्पथ पर चलने में इन्हीं को परम शत्रु समझो। यह दोनों ही महाशय (महापेटू) हैं, अर्थात् इनको चाहे कितने भोग्य विषय क्यों न दिये जायँ, इनकी तृष्णा की निवृत्ति नहीं होती। जो महापापी हैं वे देश-काल-पात्रापात्र और सम्बन्ध आदि का भी कोई विचार नहीं करते, उन्हें भोग्य वस्तु मिल भर जानी चाहिये। आप सोचिये, महाप्रभु ने जीव के लिये कितना कष्ट स्वीकार किया है और साधन के उच्च सोपान पर चढ़ने के सुगम मार्ग का कैसी स्पष्ट रीति से उपदेश किया है—

हर्षे प्रभु कहे शुनो स्वरूप रामराय।
नाम संकीर्तन कलौ परम उपाय।।
संकीर्तन यज्ञे करे कृष्ण आराधन।
शेइ तो सुमेधा पाय कृष्णेर चरन।।
नाम संकीर्तन हइते सर्वानर्थनाश।
सर्व शुभोदय कृष्णे परम उल्लास।।
संकीर्तन हइते पाप संसार नाशन।
चित्तशुद्धि सर्व भक्ति साधन उद्‌गम।।
कृष्णप्रेमोद्‌गम प्रेमामृत आस्वादन।
कृष्णप्राप्ति सेवामृत-समुद्रे मज्जन।।
अनेक लोकर वांछा अनेक प्रकार।
कृपाते करिला अनेक नामेर प्रचार।।
खाइते शुइते जथा तथा नाम लय।
काल देश नियम नाइ सर्वसिद्धि हय।।
सर्वशक्ति नामे दिलेन करिया विभाग।
आमार दुर्दैव नामे नाहि अनुराग।।

इतनी कृपा होते हुए भी नाम में हम लोगों का अनुराग नहीं है, इसे अपना दुर्भाग्य छोड़ और क्या कहा जाय? प्रभु की कैसी कृपा है? कदाचित् नाम में हमारी रुचि न हो यह सोच कर उन्होंने अनेक नामों की सृष्टि कर दी है। जिसे जो नाम अच्छा लगे, उसी को ले। कोई वंचित न रहे।

मधु—क्यों? 'नाम' शब्द का उच्चारण किसी भी सम्प्रदाय का व्यक्ति करे, उसका शब्दगत भेद कैसे होगा?

बाबाजी—भाई! 'नाम' शब्द की बात नहीं है। 'नाम' शब्द के जो सम्बन्धी पद हैं, बात उनकी है। हरि, कृष्ण, राम, गोविन्द, गोपाल, निताइ, गौर आदि सैकड़ों-हजारों नाम एक ही व्यक्ति के हैं। यह जो एक-एक नाम शब्द हैं, उनमें तो भेद है ही, जैसे आपका नाम है कृष्णदास, किसी और का नाम है हरिदास, किसी तीसरे का नाम है रामदास। इनमें हरि-कृष्ण-रामगत अथवा दासत्वगत भेद न भी हो, तो भी व्यक्तिगत भेद तो है ही। रामदास कहकर पुकारे जाने पर क्या आप उत्तर देंगे? अथवा केवल 'दास' कहकर पुकारने से क्या कोई भी उत्तर देगा?

मधु—आप कुछ भी कहें, अपने-अपने सम्प्रदाय का मत कोई छोड़ थोड़े ही देता है।

बाबाजी—भाई! मैं किसी से भी उसके सम्प्रदाय का मत त्याग कराने नहीं आया। मैं तो आपसे शिक्षा लेने आया हूँ। यदि कृपा कर आप अपने सम्प्रदाय की उपासना पद्धति बतायें, तो मुझे बड़ा सुख होगा। यदि कोई आपत्ति हो अथवा गुरुवर्ग की ओर से ऐसा करने के लिये निषेध हो, तो मैं अनुरोध नहीं करता।

मधु—नहीं, अपनी उपासना प्रणाली किसी को बताने के लिये गुरुदेव ने निषेध नहीं किया।

यह कहकर उन्होंने अपने गले से एक पदक उतार कर बाबाजी महाशय के हाथ में दिया। बाबाजी महाशय ने देखा कि पदक पर 'नाम' यह दो अक्षर लिखे हैं। उन्होंने विस्मित हो महात्मा से पूछा 'इससे तो मैं कुछ भी नहीं समझा, स्पष्ट कर समझाइये।'

मधु—आप इस पदक के ऊपर जो देख रहे हैं यही हम लोगों की उपासना है, यही हमारी पूजा की वस्तु है, यही हमारा ध्येय है। इसी मन्त्र की हम लोग माला जप करते हैं।

बाबाजी—आप लोगों के गुरुदेव का आदेश क्या है?

मधु—गुरुदेव ने कहा है, 'नाम को छोड़कर कलियुग में और गति नहीं। नाम ही एक मात्र साधन है; नाम का ही जप करो, नाम का ही ध्यान करो।'

बाबाजी—उन्होंने क्या 'नाम' इन दो अक्षरों की उपासना करने के लिये कहा है, या किसी निर्दिष्ट नाम का जप करने का आदेश किया है?

मधु—हमारे परम गुरुदेव ने पर्वत के ऊपर इस आश्रम की स्थापना की थी। पचपन साल से यह आश्रम चला आ रहा है। उनका हस्तलिखित एक ग्रन्थ है, उसी को देखकर हमारे गुरुदेव ने हमारे लिये उपासना पद्धति निर्धारित की है।

बाबाजी—क्या आपके परम गुरुदेव का वह ग्रन्थ मैं एकबार देख सकता हूँ?

'खुशी से' कहकर महात्मा कमरे से वह ग्रन्थ ले आये। वे स्वयं ही उसे खोल कर पढ़ने लगे। ग्रन्थ एक प्रकार का संग्रह ग्रन्थ था, तालपत्रों पर हाथ से लिखा हुआ था। संग्रह होते हुए भी ग्रन्थ निर्दोष और नामगत था, काल के प्रभाव से नाम का विशेषण लुप्त हो गया था, विशेष्य पद मात्र रह गया था।

बाबाजी—क्यों भाई! आपके ग्रन्थ में 'नाम' इन दो अक्षरों के भजने की बात तो कहीं नहीं है। इसमें जितनी भी कथाएँ अथवा जो भी श्लोक हैं, वह सभी भगवत् नामगत हैं; आप लोगों ने फिर यह सिद्धान्त कहाँ से पाया?

मधु—हम लोगों ने इस ग्रन्थ को कभी खोल कर नहीं देखा, ऐसा करने की आवश्यकता ही नहीं समझी। उपासना के सम्बन्ध में भी कभी किसी के साथ समालोचना नहीं की। आज आपके साथ वार्तालाप करने से जान पड़ता है कि यह हम लोगों की भूल है। बताइये, अब क्या करना चाहिये।

बाबाजी—करना तो विशेष कुछ नहीं है, पर उपासना के विषय में जिद करना और साम्प्रदायिकता के कारण यथार्थ तत्व को स्वीकार न करना ठीक नहीं। आप लोगों की उपासना में और कोई बात अनुचित नहीं है। बस एक बात समझने की है। 'नाम' इन दो अक्षरों का जप न कर अपनी-अपनी रुचि के अनुसार हरि, कृष्ण, गोविन्द, गोपाल, निताइ, गौर, राम, नृसिंह, शिव, दुर्गा आदि में से किसी भी नाम का जप-कीर्तन करना चाहिये।

यह सुनकर मधुसूदनदास बड़े ही आनन्दित हुए और बाबाजी महाशय को दण्डवत् प्रणाम कर बोले 'आपने मेरा बहुत उपकार किया है। आपकी कृपा से आज मैं प्रकृत उपासना का मर्म समझ सका। अब आपके चरणों में विनीत प्रार्थना है कि ऐसी कृपा कीजिये, जिससे किसी प्रकार के प्रलोभन में पड़ कर यथार्थ तत्व की अवज्ञा न करूँ। इस प्रकार वे महात्मा तरह-तरह के दीनता-सूचक वाक्यों द्वारा अपने भावोद्गार प्रकट करने लगे। बाबाजी महाशय ने नाम-संकीर्तन आरम्भ किया। क्रमशः नाम सम्प्रदाय के अन्यान्य वैष्णव आकर संकीर्तन में नृत्य करने लगे। पर्वत के ऊपर आज मानो नाम का सागर उमड़ने लगा। सभी आत्म-विभोर हो नाम करने लगे। नाम की कृपा और महापुरुष के संग-प्रभाव से सभी को चैतन्य होने लगा, सभी के प्राणों में अनुतापानल धू-धू कर जलने लगा। सभी नाम-कीर्तन के साथ रोदन करते जा रहे थे। कोई-कोई अधीर होकर संकीर्तन के बीच जमीन पर लोट-पोट हो रहे थे। कोई बाबाजी महाशय के पैर पकड़ कर रोते-रोते प्रार्थना कर रहे थे और कह रहे थे 'कृपा कर हमारे उद्धार का उपाय बताइये।' इस प्रकार प्रायः ग्यारह बजे तक पहाड़ पर कीर्तन हुआ। तत्पश्चात् नाम करते-करते सब निकराइ कचहरी गये। स्नान-आह्निक और महाप्रसाद सेवन कर विश्राम किया। अपराह्न में कचहरी के मुहर्रिर ने कहा 'इस अशिक्षित, अत्यन्त दरिद्र और क्षुद्र गाँव के भीतर एक बार श्रीचरण नहीं रखेंगे? आबाल-वृद्ध-वनिता सभी ग्रामवासी आपके दर्शन के इच्छुक हैं। एक बार उनकी मनोवासना पूरी करनी ही होगी।' मुहर्रिर की बात सुन और ग्रामवासी सर्वसाधारण की आर्ति देख बाबाजी महाशय प्रेम के साथ नाम करते-करते बाहर निकले। गाँव तो था ही, रास्ते-गलियाँ अधिक साफसुथरे नहीं थे। पर गाँव के बालक-बूढ़े, स्त्री-पुरुष सभी के मन अत्यन्त निर्मल थे। उनके हृदय में आवेग था। सब अपने-अपने गृह-कार्यों को छोड़ दौड़-दौड़ कर संकीर्तन में आने लगे। उनका अपूर्व सरलतापूर्वक भाव देख बाबाजी महाशय एकदम मुग्ध हो गये। ग्रामवासियों की उस उत्कण्ठा के कारण संकीर्तन में इतना आनन्द आने लगा कि बाबाजी महाशय और उनके साथी प्रेम में मस्त हो गये; उन्हें बाह्यज्ञान न रहा। इतने बड़े गाँव की गली-गली घूमने पर भी किसी को थकान न हुई। रात हो गई, पर किसी को पता नहीं। आनन्द उत्तरोत्तर बढ़ता गया। घर लौटने की बात किसी के मन में आई ही नहीं। यह देख चतुर मुहर्रिर गाँव के बीच से जाने वाले सीधे रास्ते से संकीर्तन दल को कचहरी ले आया। बाबाजी महाशय उद्दण्ड नृत्य करने लगे। साथी भावविभोर हो गये। भीड़ के मारे कचहरी में तिल रखने को भी जगह न रही। सब आत्म-विस्मृत भाव से बाबाजी महाशय की ओर देख रहे थे। रात प्रायः ग्यारह बजे बाबाजी महाशय झूमते-झूमते उस कमरे में जाकर बैठ गये, जो उनके रहने के लिये निश्चित किया गया था। सुचतुर नवद्वीपदास ने कमरे के दरवाजे बन्द कर दिये।

थोड़ी ही देर पीछे बाबाजी महाशय बालक की तरह बोल पड़े 'मैं खाऊँगा।' नवद्वीप दादा के आदेश से ललितादासी फलों की टोकरी में से नारंगियाँ निकाल-निकाल कर और उन्हें साफ कर बाबाजी महाशय को देने लगीं। वे भी खाते-पीते नाना प्रकार से बालवत् हठ करने लगे। अपूर्व भावावेश! अपूर्व कण्ठ-स्वर! बाहर से जो सुनते थे, उन्हें लगता था कि कोई बालक अपने आत्मीय जनों के आगे हठ कर रहा है। वे कभी किसी की गोद में जा बैठते, कभी किसी की। जिसकी गोद में जा बैठते थे, वह व्यक्ति भी मन्त्र मुग्धवत् उन्हें गोद में बिठाये तरह-तरह की चीजें उनके मुँह में देकर अपने को धन्य मानता था। इस प्रकार प्रायः डेढ़ घण्टे तक उन्होंने बालक आवेश में उपस्थित लोगों को वात्सल्य रस में डुबाये रखा। एकाएक जैसे ही एक व्यक्ति ने आकर उनके चरणों का स्पर्श किया, उनका वह आवेश जाता रहा। वे 'निताइ-निताइ' कह कर चारों ओर इस प्रकार देखने लगे जैसे किसी अपरिचित स्थान पर आ गये हों। कुछ देर में स्वस्थ होने पर उन्होंने नवद्वीप दादा से कीर्तन समाप्त करने को कहा। गाँववासी अपने-अपने घर चले गये। इन लोगों ने भी यथासमय महाप्रसाद ग्रहण कर विश्राम किया।

पैगम्बर पहाड़ पर

दूसरे दिन प्रातः नित्यनियम पूरा कर बाबाजी महाशय ने श्यामसुन्दर बाबू से पूछा 'श्यामसुन्दर! यहाँ से कहाँ जाना है?'

श्यामसुन्दर बाबू बोले, "यहाँ से चारिनंगल कचहरी जाने का विचार है। इस कचहरी के पास एक पहाड़ है जिसका नाम है पैगम्बर पहाड़। बहुत दिनों से इस स्थान को लेकर हिन्दू-मुसलमानों का झगड़ा चला आ रहा है। हिन्दू कहते हैं 'यहाँ बलदेव जी ने पश्चिम की ओर मुँह कर केन्द्रासुर का वध किया था।' मुसलमान कहते हैं 'हमारे पैगम्बर साहब ने यहाँ नमाज पढ़ी थी।' मुसलमानों का पक्ष ही तगड़ा है, इसलिये वहाँ उन्हीं लोगों की सेवा-पूजा चलती है। समय-समय पर हिन्दू भी दर्शन करने जाते हैं, भोग लगा कर प्रसाद ग्रहण करते हैं।"

यह सुन बाबाजी महाशय बहुत प्रसन्न हुए और नाम करते-करते चारिनंगल जा पहुँचे। थोड़ी देर आराम कर बोले 'श्यामसुन्दर! चलो, इसी अवस्था में पैगम्बर साहब के दर्शन कर लिये जायँ।' सभी लोग परमानन्दपूर्वक नाम करते पहाड़ के ऊपर मन्दिर पर पहुँचे। बाबाजी महाशय ने मन्दिर के आगे साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। यह देख कर सभी अवाक् रह गये। मुसलमान आपस में कहने लगे 'आश्चर्य! ऐसा समदृष्टिसम्पन्न साधु हमने कभी नहीं देखा।' कुछ देर बाद बाबाजी महाशय ने एक पुजारी मुसलमान से पूछा 'भाई, यह किसकी मूर्ति है?'

पुजारी—जी, इस विषय में हिन्दूओं के साथ बहुत दिनों से हम लोगों का वाद-विवाद चल रहा है। हिन्दू कहते हैं कि केन्द्रासुर का वध करने के समय बलदेव जी इस प्रकार घुटनों के बल बैठे थे। हम कहते हैं कि हमारे पैगम्बर साहब नमाज पढ़ रहे हैं। उन्हीं के नाम पर इस पहाड़ का नाम पैगम्बर पहाड़ पड़ा है। अतः हम लोग सेवापूजा करते हैं। हिन्दू लोग बीच-बीच में दर्शन करने आते रहते हैं।

बाबाजी महाशय ने यह सब सुना और प्रसन्न हो कुछ मिठाई मँगवाकर मूर्ति को भोग लगाया और प्रसाद ग्रहण किया। साथियों ने अधरामृत लिया। इस पर जगदीश बाबू बाबाजी महाशय से कहने लगे 'आपका यह कार्य मैं कुछ उचित नहीं समझता, क्योंकि आप जैसा आचरण करेंगे, दूसरे लोग भी बिना सोचे-विचारे वैसा ही करेंगे। गीता में भगवान् ने कहा है—

यद् यदाचरित श्रेष्ठस्तत्तद्देवेतरो जनः।
स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।।

बाबाजी—क्यों, आप जब इन्हें बलदेव मानते हैं, तब इनका प्रसाद लेने में क्या दोष है?

जगदीश—बलदेव तो हैं, पर यवनों ने जो स्पर्श कर लिया है। अस्पृश्य द्वारा स्पर्श हो जाने पर जब तक अभिषेक नहीं होता, तब तक ठाकुर शुद्ध नहीं होते और तब तक उनकी सेवा-पूजा भी निषिद्ध मानी जाती है।

बाबाजी—इसका मतलब यह कि नीच जाति के स्पर्श से भगवान् अपवित्र हो जाते हैं। खूब! एक सामान्य नीचजातिवाले व्यक्ति के स्पर्श से जो अपवित्र हो जाता है, वह घोर पापी, पतित और पाखण्डी का उद्धार कर सकता है, यह कैसे स्वीकार किया जा सकता है? स्वयमसिद्धःकथमपरान् साधयति? फिर आपके मत से यवनों के सृष्टिकर्ता और हिन्दुओं के सृष्टिकर्ता अलग-अलग हुए, क्योंकि जो यवनों की सृष्टि करते हैं, वह ब्राह्मणों की सृष्टि कैसे कर सकते हैं?

जगदीश—तो क्या आप जातिभेद को कुसंस्कार कहेंगे?

बाबाजी—जातिभेद की तो यहाँ कोई बात ही नहीं। हम लोगों की कैसी गलत धारणा है! हम अपनी जातिकुलगत दलबन्दी को भगवान् तक पहुँचा देते हैं। भक्तिमार्ग की बात को दूर, स्वाभाविक राज्य की बात ही विचार कर देखो। यदि भगवान् में भी स्पर्शदोष या जातिगत विचार रहा तो उनकी भगवत्ता ही कहाँ रही? तब तो भगवान् यदि कृपाकर किसी भक्त के यहाँ जाना चाहें, तो उन्हें किसी परिचित व्यक्ति को अपने पास रखना होगा, क्योंकि यदि वह भूल से किसी यवन के घर चले गये तो किसी हिन्दू के घर नहीं जा सकते। हम केवल मुँह से ही उच्चारण किया करते हैं

'अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा। यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः।' सोचिये तो सही कि जिसका एकबार नाम स्मरण करने से आदमी भीतर-बाहर पवित्र हो जाता है, वह किसी के स्पर्श मात्र से अपवित्र हो जाये!

जगदीश—उनका नाम लेने से ही तो पवित्र होते हैं, पर यवन उनका नाम कहाँ लेते हैं?

बाबाजी—आप किस नामको भगवान् का नाम कहेंगे? क्या राम, कृष्ण, काली, दुर्गा, शिव, ब्रह्मा यही भगवान् के नाम हैं? अल्लाह, खुदा, पीर, पैगम्बर यीशु, मोहम्मद भगवान् के नाम नहीं हैं? ऐसी बात नहीं। शब्द ही ब्रह्म है; संसार में जितने शब्द हैं, सब भगवान् को प्रतिपादित करते हैं।

स्पर्श दोष से जब भगवदधरामृत नष्ट नहीं होता, तब स्वयं भगवान् की श्रीमूर्ति यवन के स्पर्श से अपवित्र कैसे होगी? भेद है प्रवृत्ति-व्यवहार को लेकर। प्रत्येक जाति के भीतर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चारों वर्ण हैं; गुणों के अनुसार जाति का निर्णय हुआ है। यही भक्तिशास्त्र कहते हैं-

सर्ववर्णेऽति ते शूद्रा ये न भक्ता जनार्दने।

अन्यत्र मिलता है-

चाण्डालोऽपि द्विजश्रेष्ठो हरिभक्तिपरायणः।
हरिभक्तिविहीनस्तु द्विजोऽपि श्वपचाधमः॥

भगवान् किसी के निकट बँधे नहीं हैं; वे तो भावग्राही हैं। जिस किसी में विशुद्ध भाव देखते हैं, उसी को ग्रहण कर लेते हैं। देखिये, यह लोग उन्हीं (भगवान् के) लिये अपने भोग-विलास, सुख ऐश्वर्य को त्यागकर इस पहाड़ी भूमि पर वास करते हुए उन्हीं की उपासना कर रहे हैं, उन्हीं की सेवा-परिचर्या करते हुए विशुद्ध भाव से जीवनयापन कर रहे हैं। फिर भी इन्हें हम साधु कहने को तैयार नहीं और हम चाहे हिन्दू-कुल में जन्म लेकर म्लेच्छों की तरह आचार-व्यवहार करें, ठाकुर को सामने रखकर नाना-प्रकार के अत्याचार, अनाचार करें, जीव-हिंसा करें, ठगी-धोखेबाजी करें, तो भी हम साधु हैं। हम हिन्दू हैं, इसलिये सबकुछ कर सकते हैं। इसे पक्षपात के अतिरिक्त और क्या कहा जाय? इस प्रकार के भेद को श्रीमन्ममहाप्रभु ने बहुत ही बुरा माना है। वे तो केवल गुण के ही पक्षपाती हैं। उन्होंने श्रीमुख से कहा है-

किबा विप्रा किबा न्यासी शूद्र केने नय,
जेइ कृष्णतत्ववेत्ता शेइ गुरु हय।

जगदीश—तो क्या आप उस अभिषेक-व्यवस्था को, जिसका शास्त्रों में निर्देश है, गलत बताना चाहते हैं?

बाबाजी—शास्त्रों में जितने भी विधि-विधान और निर्देशादि हैं, सभी आत्म-शोधन के लिये हैं। हमारे मन को पवित्र करना ही शास्त्रों का उद्देश्य है। यदि शास्त्रों के ये निर्देश न होते, तो अब तक व्यभिचार दोष से हमारा धर्म उच्छृङ्खलता को प्राप्त हो जाता। गुण-दोष का विचार हम जैसे कलियुगी जीवों के लिये सम्भव नहीं। तभी तो समाज-शासन, शास्त्र-शासन, जातिभेद, क्रियाभेद आदि की व्यवस्था है। पर भक्ति-मार्ग पर अग्रसर होने के लिये सभी शास्त्र-विधियों का पालन करना न तो आवश्यक है और न संभव।

बाबाजी महाशय के मुख से शास्त्रसम्मत और युक्तिपूर्ण तत्व-कथा सुन जगदीशबाबू बहुत प्रसन्न हुए। कुछ देर बाद बाबाजी महाशय ने नाम आरम्भ किया। कई मुसलमान शान्त भाव से इतनी देर उनके मुखसे तत्वालोचना सुनते रहे, और जब नाम आरम्भ किया, तब निश्चल भाव से एकाग्रचित हो नाम सुनने लगे। सब लोग मन्दिर-परिक्रमा कर नाम करते-करते पहाड़ के चारों ओर देखने लगे। बहुत देर घूमने-फिरने के पश्चात् और उस स्थान के मुसलमान सेवकों को अपने व्यवहार से प्रसन्न कर नीचे आये। चारिनंगल कचहरी में विशेष प्रकार से भोगराग की व्यवस्था हुई थी। बाबाजी महाशय और उनके साथियों के वहाँ पहुँचने पर ठाकुरजी को भोग लगाया गया। सबने स्नानादिके पश्चात् महाप्रसाद ग्रहण कर विश्राम किया।

खण्डगिरि पर दूसरी बार

दूसरे दिन सुबह उठते ही बाबाजी महाशय ने खण्डगिरि जाने का प्रस्ताव रखा। लक्ष्मीनारायणबाबू बोले 'मेरी इच्छा है कि दोपहर को यहीं प्रसाद पाकर

पहाड़ पर चलें। वहाँ एक रात रहे बिना ठीक न रहेगा, क्योंकि पहाड़ पर दर्शनीय वस्तुएँ बहुत हैं।' बाबाजी महाशय सहमत होकर स्नान-आह्निकादि करने लगे। एक बजे के लगभग प्रसाद पाकर सब नाम करते-करते खण्डगिरि के लिये रवाना हुए। पहले से ही लक्ष्मीनारायण बाबू ने वहाँ रात को ठहरने के लिये एक बहुत बड़ा तम्बू गढ़वा दिया था। उसके भीतर एक ओर बाबाजी महाशय के साथियों के रुकने की व्यवस्था थी, दूसरी ओर श्यामसुन्दरबाबू आदि के ठहरने की। बाबाजी महाशय कीर्तन करते हुए पहाड़ पर भ्रमण करने लगे।

आस-पास के गाँवों के ब्राह्मणों की धारणा थी कि बाबाजी महाशय जातिभेद नहीं मानते और जाति-भेद दूर करने के लिए ही देश-देश भ्रमण करते हुए महोत्सवादि कर चाण्डाल आदि सबको एक साथ भोजन कराते हैं। यथार्थ बात जानने के लिये, कुछ लोग मिलकर पहाड़ पर उनसे मिलने आये। बाबाजी महाशय ने दूर से ही उन्हें आता देख साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम कर विनीत भाव से उनका स्वागत किया। एक ब्राह्मण बोला 'आप महापुरुष हैं; हम लोगों ने वेद आदि नहीं पढ़े, न आचार-विचार ही जानते हैं। हम गृहस्थ ब्राह्मण हैं। आप हमारा इस प्रकार सम्मान करें, यह ठीक नहीं।' बाबाजी महाशय हाथ जोड़कर बोले "वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः।' फिर भगवान् ने स्वयं कहा है 'अविद्यो वा सविद्यो वा ब्राह्मणो मामकी तनुः।' आप लोगों का आचार-विचार देखने का किसी को अधिकार नहीं। आप कैसे भी क्यों न हों, हम लोगों के गुरु-स्थानीय हैं।" ब्राह्मण लोग और कुछ उत्तर न दे सके। उन लोगों में से स्मृतिरत्न उपाधि-धारी एक स्मार्त पण्डित ने बाबाजी महाशयसे प्रश्न किया 'जातिभेद सृष्टिकर्ता के बनाये हैं या आदमी के?'

बाबाजी—भगवान् ने कहा है : 'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण-कर्मविभागशः'; अन्यत्र मिलता है 'मुख-बाहूरुपादेभ्यः पुरुषस्याश्रमैः सह। चत्वारो जज्ञिरे वर्णाः गुणैर्विप्रादयः पृथक्' दूसरी जगह कहा है 'अन्त्यजानसृजत् ब्रह्मा तामसान् श्रमजीविनः।' जब भगवान् ने गुणकर्मादि के भेद से पृथक्-पृथक् भाव से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्त्यजकी सृष्टि की है और उनके आश्रमादि भी निश्चित किये हैं, तो जातिभेद को आधुनिक मानने से कैसे चलेगा?

स्मृतिरत्न—आजकल शिक्षित समाज, यहाँ तक कि बहुत से साधक भी, जाति-भेद प्रथा को समाप्त करने में लगे हैं।

बाबाजी—अनादिसिद्धि वस्तु को समाप्त करने की चेष्टा गलत ही कही जायेगी।

स्मृतिरत्न—सुना है कि चैतन्यदेव जातिभेद नहीं मानते थे, और इसीलिये उनके उपासक भी नहीं मानते।

बाबाजी—श्रीगौराङ्ग महाप्रभु मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं। संसारमें ऐसा कोई पदार्थ ही नहीं जिसे वे न मानते हों। फिर भी, वे सारग्राही हैं; शास्त्र का जो सार मर्म है उसी को उन्होंने निरपेक्षभाव से स्वीकार किया है। वैसे भगवद्भक्त के विषय में शास्त्र कहते हैं-

चाण्डलोऽपि द्विजश्रेष्ठो हरिभक्तिपरायणः।
हरिभक्तिविहीनस्तु द्विजोऽपि श्वपचाधमः॥'

भागवत में कहा है-

विप्राद्द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ-
पादारविन्द-विमुखात् श्वपचं वरिष्ठं।
मन्ये तदर्पितमनो वचने हितार्थः
प्राणं पुनाति सकुलं न तु भूरिमानः॥

सभी शास्त्रों का सार मर्म ग्रहण कर महाप्रभु भगवद्भक्तों के साथ व्यवहार करते हैं; लोग बाहर से उनके व्यवहार को देख कर समझते हैं कि वे जाति-भेद नहीं मानते।

स्मृतिरत्न—आप लोगों में आहारदि की जो व्यवस्था है, उससे तो नहीं लगता कि जाति जैसी कोई चीज आप मानते हों। मनुष्य तो दूर, आप लोगों में कुत्ते तक की जूठन ब्राह्मण लेते हैं। यह क्या बात है?

बाबाजी—भाई, श्रीक्षेत्रधाम में जो होता है, वह क्या आपने कभी नहीं देखा? देखा नहीं भी तो क्या, आप सुपण्डित हैं। शास्त्रादि की बात जानते हैं। देखिये पद्मपुराण में क्या लिखा है-

'शुष्कं पर्युषितं वापि नीतं वा दूरदेशतः।
प्राप्तमात्रेण भोक्तव्यं नात्र कालविचारणा।

न देशनियमस्तत्र न कालनियमस्तथा।
प्राप्तमन्नं द्रुतं शिष्टैर्भोक्तव्यं हरिरब्रवीत।

अन्यत्र-

कुक्कुराणां मुखाद्भ्रष्टं तदन्नं पावनं महत्

★ ★ ★ ★ ★

कृष्णे निवेदित वस्तुर प्रसाद आख्यान्।
वैष्णवोच्छिष्ट हय महाप्रसाद नाम।
स्पर्शदोषे कृष्ण प्रसाद नष्ट नाहि हय।
नष्टदोष घटाइले नरक निश्चय।

इस प्रकार बाबाजी महाशय नाना प्रमाणों द्वारा महाप्रसाद की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने लगे। पहाड़ के पास एक गाँव में रामोपासक वैष्णवों का एक मठ था। वहाँ सीताराम की सेवा होती थी। मठ के महन्त कार्तिकी पूर्णिमा के दिन बड़े समारोह के साथ अपने इष्ट सीताराम की मूर्तियों को लेकर खण्डगिरि पर आते थे और रासलीला करते थे। उन लोगों ने जैसे ही सुना कि बाबाजी महाशय संकीर्तन दल के साथ बहुत-से लोगों को लेकर खण्डगिरि आयेंगे ओर वहाँ एक रात ठहरेंगे, उन्होंने गाँववासियों को सूचित कर दिया कि उनके ठाकुर भी आज ही खण्डगिरि जायेंगे। बहुत लोग आने लगे। एक भद्रपुरुष ने आकर महन्तजी से पूछा 'महन्त महाराज, आपकी रासलीला कार्तिकी पूर्णिमा को होती थी न?'

महन्त—भाई, जब महात्मा वैष्णव लोग पधार रहे हैं तो हमारी वह कार्तिकी पूर्णिमा आज ही है।

किसी ने और कुछ नहीं कहा। सभी बड़े उत्साह के साथ ठाकुर को ले चले। अपूर्व आकर्षण! चारों ओर से तरह-तरह के गायक-दल आने लगे। बड़ी धूमधाम हो गई। जगह-जगह कीर्तन होने लगा, कहीं मृदंग के साथ, कहीं पखावज के साथ, कहीं ढोलक और कहीं खञ्जरी के साथ। चारों ओर दुकानें लग गईं। तरह-तरह के खेल तमाशेवाले आ गये। स्थान बहुत विस्तृत था। प्राय: पाँच हजार व्यक्ति इकट्ठा हो गये। लक्ष्मीनारायणबाबू ने चार-पाँच सौ व्यक्तियों के भोजन की व्यवस्था की थी। एक तो पहाड़, फिर रात का समय; उन्होंने सोचा था कि बहुत लोग नहीं होंगे। पर अब इतने व्यक्तियों को देख वे लज्जित होकर एक पालकी में जा छिपे। धीरे-धीरे रात हो गई। चारों ओर मशालें जलनें लगीं। नाना प्रकार के गायन-वादन और आदमियों के शोरगुलसे दसों दिशाएँ गूंज उठीं। सभी आनन्द में मग्न थे। तम्बू के भीतर बाबाजी महाशय ने कीर्तन आरम्भ किया। सब भीड़ तम्बू में सिमट आई। फिर भी वातावरण शान्त रहा। सब चित्रपुत्तलिका के समान स्थिर भाव से कीर्तन सुनते रहे।

रात ग्यारह बजे कीर्तन समाप्त हुआ। श्यामसुन्दर बाबू आकर बाबाजी महाशय से बोले 'लक्ष्मीनारायण दादा ने चार-पाँच सौ व्यक्तियों के लायक रसोई कराई है; उपस्थित लोगों की संख्या पाँच हजार के लगभग होगी। यह देखकर वे तो छिप कर बैठ गये हैं! ठाकुरजी को भोग लग चुका है। अब क्या होगा?'

बाबाजी महाशय ने बलराम भ्रमरवर को बुलाया और कहा 'देखो बलराम! जिस जगह रसोई हो रही है, वहाँ जाकर हाथ जोड़कर माँ अन्नपूर्णा से कहो 'माँ करुणामयी! बहुत-से भूखे लोग उपस्थित हैं। रात का समय है और पहाड़ी जगह। किसी प्रकार की व्यवस्था सम्भव नहीं है, अतएव ऐसी कृपा करो जिससे इसी सामग्री में सबकी पूर्ति हो जाय।' इधर सभी को एक साथ बिठा दो और पुजारी लोगों से कहो कि वे दाल, तरकारी, चावल आदि प्रत्येक वस्तु एक ओर से परसना आरम्भ करें। मैं भी आ रहा हूँ।

बलरामबाबू बिना कुछ सोचे-विचारे बाबाजी महाशय के आदेशानुसार कार्य करने लगे। इसी बीच बाबाजी महाशय उस स्थान पर, जहाँ भोग लगाया गया था, पहुँचकर प्रेम-गद्गदकण्ठ से 'जय निताइ' कह हुँकार कर पुजारी लोगों को अभय देते हुए बोले 'भाई, निताइचाँद की कृपा से कोई अभाव नहीं रहेगा; माँ जाह्नवा को यादकर एक ओर से परसना आरम्भ कर दो।' इतना कह वे पंगत के बीच चले गये। पत्तल देते समय देखा कि पत्तलें कम हैं। उपस्थित दुकानदारों के यहाँ जितनी पत्तलें थीं मँगा ली गईं। जो फिर भी बिना पत्तलों के रह गये, वे मिट्टी के पात्र लेकर अथवा कपड़ा बिछा-बिछा कर महाप्रसाद पाने बैठ गये। पूर्वोक्त ब्राह्मणों से बाबाजी महाशय ने पूछा 'इतनी रात में आपका घर जाना तो कठिन है, कुछ जलपान के

लिये मँगा दिया जाय।' ब्राह्मण एक साथ बोल उठे 'आपने अभी महाप्रसाद के माहात्म्य की चर्चा की है, फिर हमारे लिये जलपान अलग से क्यों मँगाने को कह रहे हैं?'

बाबाजी—देखिये, यह आप लोगों की रुचि की बात है। दूसरों की बातपर विश्वास करने से तो चलता नहीं। आप कृपा कर जैसा आदेश करें, वैसी ही व्यवस्था की जाय।

ब्राह्मण महाप्रसाद पाने के लिये राजी हो गये। बाबाजी महाशय ने श्यामसुन्दरबाबू को बुलाकर कहा 'इन लोगों को विशेष यत्न के साथ अलग बिठा कर महाप्रसाद सेवन की व्यवस्था करो।' श्यामसुन्दरबाबू ने वैसी ही व्यवस्था की, पर आदमियों की संख्या इतनी अधिक थी और रात का समय था। नाना जातीय लोग अलग बैठे हुए ब्राह्मणों के पास आकर बैठने लगे। श्यामसुन्दरबाबू उन्हें उठाने को हुए तो ब्राह्मण निषेध करते हुए बोले 'बाबू! यह तो महाप्रसाद है, इसमें जाति-विचार क्या? इसमें स्पर्श दोष नहीं होता।' उनकी बात सुन सभी विस्मित हो बाबाजी महाशय की शक्ति की प्रशंसा करने लगे।

परोसना आरम्भ हुआ। पुजारी बाबाजी महाशय के आदेशानुसार एक ओर से परोसने लगे। निताइचाँद का अपूर्व खेल! उपस्थित जन-साधारण ने पेट भर महाप्रसाद पाया। यह देखकर लक्ष्मीनारायणबाबू, श्यामसुन्दरबाबू आदि ने परमानन्द से बाबाजी महाशय के चरणों में दण्डवत् प्रणाम कर कहा 'इतने लोगों ने पेट भर प्रसाद पाया, और अब भी प्राय: पच्चीस व्यक्तियों के लायक प्रसाद बचा हुआ है! कैसा आश्चर्य है! यह सब कैसे हुआ, हमें तो पता भी नहीं चला।'

बाबाजी—भगवत्-शक्ति का खेल क्या किसीकी समझ में आ सकता है? जिन प्रभु ने द्रौपदी के एक कण साग से दस हजार ऋषियों की उदर-पूर्ति की थी, उनके लिये पाँच-सौ व्यक्तियों के भोजन से पाँच हजार व्यक्तियों का पेट भरना तो अत्यन्त साधारण बात है। संसार में ऐसा कोई असम्भव काम नहीं, जो उनके कृपा-कटाक्ष से सम्भव न हो सके। हम विश्वास के अभाव के कारण ही अभाव अनुभव करते हैं।

इस प्रकार नाना प्रकार के उपदेशों से सबको प्रबोध दे और प्रतिष्ठा के भयसे ऐश्वर्य भाव को छिपा सभी को महाप्रसाद-सेवन के लिये बैठने का आदेश दे उन्होंने स्वयं महाप्रसाद पाया। सभी ने बाबाजी महाशय का अधरामृत लेकर विश्राम किया। आगन्तुक लोग भी उस रात वहीं रह गये। उन्होंने आमोद-प्रमोद में रात्रि व्यतीत कर दी।

बाँकशाइ-गमन

दूसरे दिन सुबह प्रात:कालीन नित्यनियम पूराकर बाबाजी महाशय और उनके साथी कीर्तन करते-करते रवाना हुए। जिस गाँव में कीर्तन पहुँचता, उसीके बालक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी दौड़े चले आते। कुलवधुएं इस प्रकार कीर्तन के पास आकर खड़ी हो जाती थीं, जैसे कुल मर्यादा और गुरुजनों के संकोच को बिलकुल भूल गई हों। एक गाँव की सीमा तक नहीं पहुँच पाते थे कि दूसरे गाँव के लोग आ पहुँचते थे। आनन्द का स्रोत उमड़ पड़ता था। इस प्रकार नाना स्थानों का भ्रमण करते प्राय: दस बजे बाँकशाइ कचहरी पहुँचे। यह स्थान श्यामसुन्दरबाबू के इलाके में था। पहले से ही ठाकुरजी के भोगादि की व्यवस्था कर दी गई थी। पहुँचते ही बाबाजी महाशय ने पूछा- 'श्यामसुन्दर! यहाँ कोई प्रसिद्ध ठाकुर मन्दिर है?'

श्याम—जी, गोपालजी का अपूर्व विग्रह है, और बहुत प्राचीन मन्दिर है।

बाबाजी—तो दर्शन करने चलें न?

श्याम—अब समय काफी हो गया है। गोपालजी के भोग का समय हो रहा है।

बाबाजी महाशय श्यामसुन्दरबाबू की बात से सहमत हो स्नानादि कर मध्याह्न कीर्तन करने लगे। इधर रसोई हो चुकने पर ठाकुरजी को भोग दिया गया। संकीर्तन समाप्त होने पर सबने महाप्रसाद पाकर थोड़ा विश्राम किया।

शाम चार बजे सब लोग नाम करते हुए गोपाल दर्शन को चले। इन लोगों की ही संख्या बहुत थी, तिस पर गाँव वाले बहुत-से लोग इनके अभिनव-अप्राकृत आनन्दमय सङ्ग से आकृष्ट हो अपना-अपना

काम छोड़ इनके साथ हो लिये थे। गोपालजी की मूर्ति के बारे में सुन सबने सोचा था कि बाल-गोपाल मूर्ति होगी, पर मन्दिर पहुँचकर देखा कि राधा-मदनगोपालजी हैं। राधा-मदनगोपाल की अपूर्व छवि है; दोनों का नया ढंग और नई भाव भङ्गिमा है। देखते ही बाबाजी महाशय ने प्रेम-विभोर हो नाना प्रकार की पद-पदावली आरम्भ कर दीं। उपस्थित सभी लोग गाँव के रहने वाले थे। नहीं कहा जा सकता कि बंगला भाषा उन्होंने कभी सुनी या नहीं। फिर भी बाबाजी महाशय के मुख से सरल भाषा में मधुर पदावली सुन आबाल-वृद्ध स्त्री-पुरुष सभी मुग्ध हो गये। सभी आनन्द-सागर में गोते खाने लगे। बीच-बीच में लगता था कि मदनगोपालजी आनन्द में मस्त हो नृत्य कर रहे हैं। इस प्रकार बहुत देर तक सबको कीर्तनानन्द में विभोर कर ये लोग नाम करते हुए विश्रामस्थल पर लौट आये।

परमानन्द में दिन बीतने लगे। एक दिन अपराह्न में खानू मियाँ नामक एक मुसलमान गवैया बाबाजी महाशय को गाना सुनाने आया। बाँकशाइ कचहरी घर के एक ओर बगीचे के भीतर एक अपूर्व वृक्ष था। उसका स्वाभाविक फैलाव इस प्रकार का था कि देखने में वह कुञ्ज जैसा लगता था। उसकी शाखायें ऊपर से नीचे की ओर इस प्रकार झुकी थीं कि जमीन को स्पर्श किये रहती थीं, यदि कोई उसके नीचे जा बैठता था, तो उसे बाहर से नहीं देखा जा सकता था। खानू मियाँ, श्यामसुन्दरबाबू आदि कुछ लोगों को साथ ले बाबाजी महाशय उस वृक्ष के नीचे बैठ गये। खानू मियाँ अपने स्वरचित पदों द्वारा बड़े ही मधुर भावसे राधाकृष्ण-लीला का वर्णन करने लगे। जैसी सुललित पदावली थी, वैसा ही मधुमय कण्ठस्वर। एक-एक कर वे गीत सुना रहे थे और बाबाजी महाशय तथा अन्य श्रोता आनन्द में आत्मविभोर हो रहे थे।

इस प्रकार बहुत देर तक पदावली कीर्तन होता रहा। एकाएक बाबाजी महाशय ने आनन्द विह्वल हो खानू को आलिङ्गन कर उसके कान में हरिनाम-मन्त्र प्रदान किया। इसपर खानू मियाँ आनन्द-विभोर हो बाबाजी महाशय के पैर पकड़कर प्रेम गद्‌गदकण्ठ से कहने लगे 'आज मेरा जीवन धन्य हो गया। मैं इतने दिन कृष्ण-लीला-गुण-कीर्तन करता घूमता रहा। आज वह सार्थक हुआ। आज प्रभु ने मुझे अङ्गीकार कर लिया।' खानू मियाँ के प्रति बाबाजी महाशय की इस अयाचित कृपा को देख श्यामसुन्दरबाबू आदि सभी एक स्वर से उसके सौभाग्य की प्रशंसा करने लगे। खानू ने विनीत वाक्यों से सबके आशीर्वाद की प्रार्थना कर बाबाजी महाशय के चरण पकड़ लिये। उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया और उनके आदेश से अपने घर प्रस्थान किया। बाबाजी महाशय श्यामसुन्दरबाबू से बोले 'देखो श्यामसुन्दर! यह जगह इतनी मनोरम है कि इसे छोड़ दूसरी जगह जाने की इच्छा नहीं होती।' इस प्रकार बातचीत में सन्ध्या हो गई। सन्ध्या-आरति-कीर्तन आरम्भ हुआ। रूप-अभिसार मिलन-कीर्तन के पश्चात् सबने यथासमय महाप्रसाद पाकर विश्राम किया।

दूसरे दिन तड़के ही प्रात:कालीन नित्य नियम पूराकर बाबाजी महाशय ने कचहरी घर के आँगन में नाम-कीर्तन आरम्भ कर दिया। चारों ओर से लोग आ-आकर इकट्ठा हो गये। प्राय: आठ बजे जब धूप आँगन में आने लगी, तो यह देखकर कि बाबाजी महाशय को कष्ट हो रहा है, श्यामसुन्दरबाबू बोले 'कमरे में चलकर कीर्तन किया जाय तो कैसा रहे?' बाबाजी महाशय बोले 'नहीं, आज इस आँगन में ही उदयास्त नाम-कीर्तन होगा।' श्यामसुन्दरबाबू ने ऊपर चँदवा टँगवा दिया और कीर्तन वहीं होता रहा।

अपूर्व आकर्षण! समय के साथ-साथ कीर्तनानन्द भी बढ़ने लगा। घर में तिलभर जगह न रही; चारों ओर आदमी ही आदमी; प्राय: छह सौ आदमी थे। कचहरी घरके एक ओर एक कमरे में एक बड़ा सम्बर (मृगजातीय जन्तु) बँधा था। बारह बजे के लगभग वह छटपटाने लगा। बाबाजी महाशय बोले 'उसे छोड़ दो।' एक व्यक्ति ने उसे खोल दिया। वह खुलते ही तेजी से बाबाजी महाशय के पास आकर उनका शरीर चाटने लगा। इस पर बाबाजी महाशय ने उसके काम में मन्त्र देकर कहा 'जाओ भाई, स्वस्थ होकर कमरे में रहो और मन ही मन नाम करो; प्रभु शीघ्र तुम पर कृपा करेंगे, कहकर जैसे ही उन्होंने उसकी पीठ पर बायें

हाथ से एक थप्पड़ मारा, वह धीरे-धीरे अपने कमरे में चला गया। सब अत्यन्त आश्चर्यचकित हो आपस में कहने लगे 'हम लोगों ने ऐसा महापुरुष कभी नहीं देखा, और कभी देखेंगे ऐसी आशा भी नहीं।' क्रमश: सन्ध्या हो गई; बाबाजी महाशय नामके साथ आरति-कीर्तन करने लगे। रात दस बजे के करीब महाप्रसाद पाकर शयन किया।

महाप्रसाद-मिलन

एक दिन सुबह सब बैठे हुए थे। एकाएक बाबाजी महाशय श्यामसुन्दरबाबू को सम्बोधित कर कहने लगे 'देखो श्यामसुन्दर! आज बड़ा ही शुभ दिन है। ऐसा दिन बार-बार नहीं आता।'

श्याम—क्या बात है?

बाबाजी—आज एक अपूर्व मिलन होगा।

श्याम—क्या हम लोग उसे देख सकेंगे?

बाबाजी—क्यों नहीं! सभी के सामने होगा।

सुनकर सब बड़ी उत्कण्ठा से उस सुसमय की प्रतीक्षा करने लगे। बाबाजी महाशय ने स्नानादि और मध्याह्न कीर्तन कर महाप्रसाद पाया और थोड़ा विश्राम किया। चार बजे के लगभग एक व्यक्ति अपने कंधे पर एक बोझा लिये हुए आया। बाबाजी महाशय ने उससे पूछा 'भाई, तुम्हारे कंधे पर क्या है' वह बोला 'श्रीजगन्नाथन्कर महाप्रसाद आउ केन्द्रापाड़ा बलदेव जीउ, गोविन्द जीउ ओ गोपीनाथ जीउन्कर महाप्रसाद विजय करु अच्छन्ति।'

सुनते ही बाबाजी महाशय का सर्वाङ्ग पुलकित हो गया, नेत्र सजल और लाल हो गये। उन्होंने झट उठकर महाप्रसाद के आगे साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया। प्रसाद को भीतर ले जाकर अपने हाथों से खोलने लगे। उसी समय एक पुजारी ने आकर कहा 'गोपालजी का थोड़ा-सा महाप्रसाद लाया हूँ।' सुनते ही बाबाजी महाशय ने झट उठकर पूर्ववत् दण्डवत् प्रणाम किया। उन्होंने अपने हाथ से उस महाप्रसाद को एक ओर रखा ही था कि दो व्यक्ति और आ पहुँचे। उनमें से एक बोला 'चारिनङ्गल के महन्त ने लक्ष्मीनारायणजी का प्रसाद भेजा है।' दूसरे ने कहा 'कयेरपुर के श्यामबाबू ने अपने विनोदविहारीजी का, कुयापाल के गोपीनाथजी का और माहाङ्ग के गोविन्दजी का थोड़ा-थोड़ा महाप्रसाद भेजा है।' अब बाबाजी महाशय का धैर्य जाता रहा। वे आनन्द में अधीर हो नृत्य करने लगे। थोड़ी देर में कुछ स्थिर होने पर उन्होंने आवरण खोल-खोल कर सभी महाप्रसादों को एक पात्र में इकट्ठा किया। ललितादासी ने हर महाप्रसाद में से थोड़ा-थोड़ा लेकर एक थाली में सजाया। बाबाजी महाशय ने सबसे बैठ जाने को कहा और स्वयं महाप्रसाद परोसने लगे। ललितादासी ने कहा 'आप यहाँ बीच में बैठ जाइये। मैं सबको परोसे देती हूँ।' बाबाजी महाशय बीच में बैठ गये। ललितादासी उस थाल को उनके आगे रख सबको परोसने लगीं। उपस्थित भक्तजन लीलामय की इस विचित्र लीला को देख विस्मय सागर में डूब गये। आनन्द का स्रोत उमड़ने लगा। बाबाजी महाशय श्यामसुन्दरबाबू से बोले 'श्यामसुन्दर! प्रसाद लानेवाले से पूछो तो उसे यहाँ किसने भेजा?' श्यामसुन्दरबाबू के पूछने पर उस प्रथम आगन्तुक ने कहा 'आज्ञा पनर दिन बड़ सिंगार भोग थाला उत्तरु जने कालिया ब्राह्मण बड़ देउलरु भारिया बलि डाकिले मू पँहुछिबारु मोहर हातरे देड़टी टंका देइ कहिले 'तू एहि महाप्रसाद नेइ नेयाली बाटे झन्कर देइ केन्द्रापाड़ा पँहुछि सेठु श्यामसुन्दर बाबुन्क इलाकारे अलतिठारे बाँकशाइ चरणदास बड़ बाबाजी अछि ताकु देबू। एहि देड़ टंका बाटरे खर्च करिबू; तोहर मजुरी सेटि मागिले से देइ देबे।' इहा बलि से चालि गला, मू बि भार नेइ रहना होइलि, जेमति केन्द्रापाड़ा आपना ओयासकू पँहुछिलु ठिक सेहि समयरे बलदेवन्कर महाप्रसाद आसि विजय कले। मोहर एहि कथा शुनि समस्ते आनन्द होइ सेइ बलदेवन्कर प्रसाद आउ गोविन्ददेवन्कर प्रसाद ओ लक्ष्मीनारायण जगदेवन्कर गोपीनाथजीउन्कर प्रसाद मोहर हातरे देइ गोटिये लोक संगे एठी पठाइ देबा हेले! मू आउ कण कहिबि जगन्नाथन्कार अनुग्रहरे मूये एत्ते बाट चालि आसिलि मोहर टिकिये कष्ट वा परिश्रम बोध होइ नाहि।'

उसकी बात सुन सब बड़े आश्चर्यान्वित हुए। बाबाजी महाशय जगन्नाथदेवकी कृपा और उनके स्नेह

की बात सोच-सोचकर रोते-रोते कहने लगे 'हा प्रभु! यह नराधम आपको छोड़ दूर देश में आ गया है। आपकी फिर भी इतनी कृपा! धन्य, धन्य करुणामय।' कहकर आनन्द में नृत्य करने लगे। उनकी तात्कालिक अवस्था देख उपस्थित भक्तजन आनन्दविह्वल भावसे 'जय जगन्नाथ' कहकर कोई नृत्य करने लगे, कोई उच्च स्वर से रोते-रोते पृथ्वी पर लोट-पोट हो अपने को धन्य मानने लगे। इस प्रकार महाप्रसाद-मिलनानन्द में बहुत समय बीत गया। श्यामसुन्दरबाबू ने कुछ देकर जगन्नाथजी के भारवाहक को विदा किया। सन्ध्या-समय बाबाजी महाशय ने आरति कीर्तन आरम्भ किया। क्रमशः रूप, अभिसार और मिलन-कीर्तन के पश्चात् महाप्रसाद पाकर सभी ने विश्राम किया।

कुयापाल, माहाङ्ग और कयेरपुर में

एक दिन कुयापाल-निवासी श्रीयुत गोलोकचन्द्र बसु महाशय ने बाबाजी महाशय को अपने घर बुलाने के लिये आदमी भेजा। वे सदल कीर्तन करते-करते वहाँ जा पहुँचे। गोलोकबाबू के ठाकुर-घर में प्रायः तीन घण्टे तक उद्दंड कीर्तन हुआ। बहुत-से लोगों ने बाबाजी महाशय से मंत्र ग्रहण किया।

वहाँ एक दिन रह कर, माहाङ्ग के श्रीयुक्त बाबू आनन्दचन्द्र ब्रह्मके घर गये। आनन्दबाबू विशेष यत्नके साथ सबकी सेवा शुश्रूषा करने लगे। उनके मनमें बड़ी इच्छा थी कि बाबाजी महाशय को उनके साथियों सहित कुछ दिन वहाँ रखा जाय, पर उनकी चेष्टा सफल न हुई, क्योंकि बाबाजी महाशय एक बार उड़ीसा-भ्रमण करना चाहते थे। इसी कारण किसी जगह बहुत दिन रहना नहीं हो पाता था। दो दिन माहाङ्ग रह कर श्रीयुक्त बाबू श्यामचरण सेन महाशय के विशेष आग्रह पर कयेरपुर में उनके मन्दिर गये। ठाकुर जी का नाम 'विनोद विहारी' उनकी दाहिनी ओर ललिताजी और बाईं ओर श्रीमती थीं। अपूर्व विग्रह था; सेवा भी बड़े प्रेमसे की जाती थी। श्यामाचरणबाबू वैद्य जाति के थे। उनके वंश में सभी लोग विनोदगतप्राण थे। महिलायें नाना प्रकार के फूलों के आभूषण तैयार कर विनोदविहारी जी को सुशोभित करती रहती थीं। उनमें इस सम्बन्ध में एक दूसरे से होड़ रहती थी। यदि एक विनोदजी के लिये फूलों का चूड़ा तैयार करती तो दूसरी फूलों की गोट, कानबाली आदि बना देती थी। तीसरी उससे भी अच्छा फूलों का गहना तैयार कर ठाकुर को पहना देती थी। भोग के विषय में भी इसी प्रकार की होड़ रहती थी। सब एक-दूसरे को परास्त करने की चेष्टा करती थीं। असल बात यह थी कि आबाल-वृद्ध-वनिता सभी ने विनोदविहारीजी को आत्म-समर्पण कर रखा था। उनके सभी काम विनोदविहारीजी को लेकर होते थे। आज बाबाजी महाशय को पाकर सभी परमानन्दित थे। किसी नैमित्तिक लीला के कारण हो अथवा बाबाजी महाशय के दर्शनार्थ, आज ठाकुरजी श्रीमती और ललितादेवी को लेकर बाहर पधारे हैं। विनोदविहारी का सर्वाङ्ग चन्दन-चर्चित है, नाना प्रकार के फूल-साजों से सुशोभित है। उनके चारों ओर नाना प्रकार के सुगन्धी पुष्प-गुच्छ लगे हुए हैं। अपूर्व शोभा है। बाबाजी महाशय विनोदविहारीजी के दर्शन कर आनन्द में मग्न हो रहे हैं। वे कभी श्रीमती की ओर और कभी ललितादेवी की ओर देख लेते हैं। उनका अपूर्व भाव और सौन्दर्य देख-देखकर बराबर रोते जाते हैं। कुछ देर पीछे एक बच्चे से पूछा 'भाई, आज विनोदविहारीजी बाहर कैसे?' बच्चे ने कहा-'आज आपको दर्शन देने के लिये ही ठाकुरजी बाहर आये हैं।' सुनते ही आप प्रेमपुलकित हो नृत्य करते हुए बोले-'प्रभु! धन्य है तुम्हारी करुणा। मैं तुम्हें नहीं चाहता, फिर भी तुम मेरे लिये इतने उत्कंठित हो। मुझे दर्शन देने सिंहासन छोड़ बाहर आ गये। और क्या कहूँ? मेरे पास वह भाषा ही नहीं जिससे मैं कुछ कह सकूँ।' इस प्रकार नाना प्रकार के दीनताभरे वाक्यों से भी जब वे अपने प्राणों का आवेग दूर न कर सके, तो कीर्तन आरम्भ किया-

(हेर देख) विनोद नागर, विनोद नगरी,
विनोद मोहन रूप।
विनोद हेलन, विनोद दोलन, विनोद रसेर कूप॥
विनोद वचन, विनोद रचन, विनोद मुखेर हासि।
विनोद नयने, विनोद चाहनी, मरमे रहल पाशि॥
दक्षिणे ललिता, वामे भानुसुता, माझे सोहे नटराज।

(किबा) नव जलधरे, जनु सौदामिनी।
मदनमोहन साज।
(दोंहार) नासाय मुकुता, कटिते किंकिणी,
चरणे नूपुर बाजे।
आधो नील साड़ी आधो पीतवास, जिनि मनमथ राजे॥
आधो शिरे सोहे, मयूर मुकुट, ईषत् वामेते हेला।
आधो शिरे वेणी, जनु भुजङ्गिनी, मयूर सहिते मेला।
आधो गले शोहे, गजमोति हार, आधो गले वनमाला॥
आधो वरण कषित काँचन, आधो चिक्कन काला॥
राइर कपाले, सिन्दूर तिलक, श्यामेर चन्दन बिन्दु।
सोनार कमले, भानुर उदय, नव जलधरे इन्दु॥
आहा मरि मरि, की रूप माधुरी, छटाय भुवन भूले।
कनक लतिका, जनु जड़ाओल, नवीन तमाल कोले॥

प्राय: दो घण्टे तक इस प्रकार सुमधुर पदावली-कीर्तन कर जनसाधारण को आनन्द-सागर में डुबो दिया। तत्पश्चात् महाप्रसाद पाकर विश्राम किया।

चक्रवर्ती का सन्देह-भञ्जन

दूसरे दिन प्रात:काल जब बाबाजी महाशय नित्य नियम पूराकर ठाकुर-घर में बैठे थे, रासबिहारी चक्रवर्ती नामक एक ब्राह्मण आया। उसे उन्होंने बड़े सम्मान से पास बिठाया। उसने प्रश्न किया-'भगवान् में असमानता या पक्षपात का दोष है या नहीं?'

बाबाजी—भाई! भगवान् सर्वेश्वर, सर्वान्तर्यामी, सर्वव्यापी, सर्वभूत-हितरत और समदर्शी हैं, उनका न कोई शत्रु है, न मित्र। उन्होंने गीता में स्वयं कहा है-

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।

चक्रवर्ती—पर गीता में ही भगवान् ने कहा है-

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृतां।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे-युगे॥

फिर उन्होंने पूतना, अघासुर, बकासुर, तृणावर्त दन्तवक्त्र, शिशुपाल, कंस, जरासंध आदि का वध किया। रामावतार में रावण का वधकर विभीषण को राज्य दिया; बाली को मारकर सुग्रीव को राजा बनाया। यह सब देखकर तो यह नहीं कहा जा सकता कि वे पक्षपात रहित हैं।

बाबाजी—इस असुर-विनाश के काम में अनुग्रह-निग्रह की बात कहाँ है?

चक्रवती—क्यों, एक को वंशसहित ध्वंस कर देना और दूसरे को जो उनके भक्त अर्थात् खुशामदी हैं, राज्य दे देना, यह अनुग्रह-निग्रह नहीं तो क्या है? इन्द्र को इन्द्रत्व प्रदान करने के लिए वामन रूप में अवतीर्ण हो छल कर इतने बड़े दाताशिरोमणि राजा बलि का सर्वस्व हरण कर लिया। यहाँ तक कि उसे बाँधकर पाताल भेज दिया। इतने पर भी क्या उन्हें समदर्शी और दयालु कहना ठीक है?

बाबाजी—मुझसे यदि इसका उत्तर पूछते हैं, तो मैं कहूँगा कि यदि किसी को दयालु कहा जाय तो एक भगवान् को ही कहा जा सकता है और किसी को नहीं, क्योंकि दया कालाकाल, पात्रापात्र, पाप अथवा अपराध की अपेक्षा नहीं रखती। आप एक-एक लीला को लीजिये, जिसका आपने इंगित किया है। पूतना बालघातिनी राक्षसी, हिंसापरायण और क्रूर थी। वह अपने स्तनों पर विष लगाकर कृष्ण को मारने गई थी। परमदयाल श्रीकृष्ण ने उसके जन्म जन्मान्तर की संचित पापराशि और उसके क्रूरवृत्ति-सम्पन्न प्राणों का नाश कर उसे अपनी वात्सल्यमयी धात्रियों के बीच स्थान दिया। दन्तवक्त्र, शिशुपाल, कंस आदि असुरों ने गो-ब्राह्मण-देवता एवं वैष्णवों से द्रोहकर इतना पाप संचित कर लिया था कि उसके लिये उन्हें अनन्त जीवन नरक-यंत्रणा भोगनी पड़ती। पर परमदयाल भगवान् ने अपने हाथों उनका वध कर उन्हें सालोक्य, सारूप्य अथवा सायुज्य मुक्ति प्रदान की। विचार कर देखिये कि बहुत तपस्या करने पर भी जिस मुक्ति को पाना कठिन होता है, वह मुक्ति यह असुर भगवान् से द्रोह कर अनायास ही पा गये। विचार करने से पता चलता है कि भगवान् पापी-पतितों के प्रति ही विशेष कृपा करते रहे हैं। रावण-कुम्भकर्ण ने भगवान् से तीन जन्म शत्रुता की और जब ब्रह्मशाप से मुक्त होने की प्रार्थना की, तो भगवान् ने उनकी प्रार्थना सुन ली। बलिराज मद में भगवान् के पादपद्म भूल गये थे। कृपामय भगवान् ने उनके सारे बन्धन तोड़ उन्हें पाताल में स्थान दिया। देखिये, बलि के प्रति उनकी इतनी

कृपा कि वे सदा के लिये उनके प्रेम में आबद्ध हो उनके द्वार पर द्वारी रूप से विराजमान रहे।

चक्रवर्ती—तो फिर भक्त लोग उन्हें भक्तवत्सल क्यों कहते हैं?

बाबाजी—यही तो भगवान् की भगवत्ता है; वे अनुग्रह करते हैं पतित-पाखण्डियों पर, भक्त समझते हैं कि हमारे ऊपर ही कृपा कर रहे हैं।

चक्रवर्ती—यह तो असुरादिकी बात हुई, पर सामान्य जीवों की क्या वह उपेक्षा नहीं करते?

बाबाजी—कैसे?

चक्रवती—जीव और ईश्वर में सम्बन्ध क्या है?

बाबाजी—जीव अंश है, वे पूर्ण हैं। जीव दास है, वे प्रभु हैं। जीव अणु है, वे महान हैं। शास्त्र कहते हैं-

केशाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।
भागो जीव इति ख्यातः स चानन्ताय कल्पते॥

जीव की कोई स्वतन्त्र क्षमता नहीं। वे जो कराते हैं, जीव इच्छा से हो या अनिच्छा से वही करता है।

चक्रवर्ती—ठीक है! तब फिर वह एक आदमी से नाना प्रकार के असत् कार्य करा उससे नरक-भोग क्यों कराते हैं? दूसरे से ऐसे कार्य करा, जिससे वह सुखमय वैकुण्ठादि धामों में जाय, उसके निकट बँध क्यों जाते हैं? एक व्यक्ति तो बड़ा ही दयालु और क्षमा-शान्ति परायण है, दूसरा घोर अत्याचारी और पाखण्डी है। एक परदु:ख-दुखी, दाता-शिरोमणि है, दूसरा परम स्वार्थी और परवित्तापहारक। यदि वे ही सब जीवों के संचालक हैं, तो यह विषमता क्यों?

बाबाजी—जीव अपनी प्रवृत्ति के वश हो असत् पथ की ओर अग्रसर होना चाहता है, तो भगवान् नाना प्रकार के बाधा विघ्न उपस्थित कर उसे असत् पथसे हटाने की चेष्टा करते हैं। फिर भी जीव होश में नहीं आता और बार-बार उसी कार्य में प्रवृत्त होता है, तो वे उसे अपनी क्षमता का ज्ञान कराने के लिये थोड़ा शिथिल होकर आड़ में रहते हैं। तभी जीव नाना प्रकार के सुख-दु:ख भोगता है।

चक्रवर्ती—जीव की ऐसी प्रवृत्ति होती ही क्यों है?

बाबाजी—इसका मूल कारण है अहंकार। प्रकृति ही सारे कार्य करती है, पर जीव मिथ्या अहंकार कर कष्ट पाता है। तभी तो भगवान् ने गीता में कहा है-

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहंकारविमूढ़ात्मा कर्ताहमिति मन्यते॥

इस अहंकार के बल पर ही जीव सारे अनर्थ बुलाता है। कल्पना कीजिये कि कोई राजा एक कर्मचारी को शान्ति-स्थापना के लिये नियुक्त करता है, पर वह उस कार्य में प्रवृत्त होते ही अपने को कर्ता मानकर जो मनमें आता है करने लगता है। उसके ऊपर कोई है, यह बात वह भूल जाता है। राजा को जब उस कर्मचारी के ऐसे व्यवहार का पता चलेगा, तब क्या उसे गुरुतर दण्ड नहीं भोगना पड़ेगा?

चक्रवती—जीव का कर्तापना भी तो भगवद्दत्त ही है, जीव का इसमें क्या दोष? यदि वे जीव को ऐसी क्षमता न देते, तो वह ऐसा अहंकार क्यों करता?

बाबाजी—नहीं, यह कर्तापना भगवद्दत्त नहीं है। गीता में कहा है-

न कर्तुत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते॥

चक्रवर्ती—ठीक है। यह जो स्वभाव है, वह भी तो जीव का अपना नहीं, पूर्व जन्म के अच्छे-बुरे कर्मों के फलानुसार भगवान् ही तो हमें ऐसी प्रवृत्ति या स्वभाव देते हैं।

बाबाजी—यह भी भगवद्दत्त नहीं हो सकता, यह अज्ञानजनित है। गीता में है-

नादत्ते कस्यचित् पापं न चैव सुकृतिं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः॥

चक्रवर्ती—यह अज्ञान कहाँ से आया? और क्यों जीव भगवद्-बहिर्मुख हुआ?

बाबाजी—भगवद्-विस्मृति ही इस बहिर्मुखता का कारण है। चरितामृत में कहा गया है-

कृष्ण भूलि जेइ जीव अनादि बहिर्मुख।
अतएव माया तारे देय संसार दुख।
कभू स्वर्गे उठाय कभू नरके डुबाय।
दण्ड्य जने राजा जेन नदीते चुबाय।

इस बहिर्मुखता को कितने दिन हो गये, कोई नहीं बता सकता। तभी मैंने कहा कि जीव अनादि काल से इसी प्रकार दु:ख भोगता आता है। ज्ञान-अज्ञान, सुख-दु:ख, प्रकाश-अन्धकार सभी प्रभु-निर्मित हैं; पर अज्ञान की सृष्टि का उद्देश्य जीव को मोहित कर कष्ट देना नहीं। ज्ञान का सुखमयत्व और सर्वशक्तिमत्ता समझाने के लिये ही लगता है प्रभु ने अज्ञान रचा है।

मङ्गलमय भगवान् की बनाई सभी वस्तुएँ मङ्गलकारी हैं। अधिकार भेद से अथवा अवस्थानुसार जो विरोध दिखाई देता है, वह व्यवस्था-दोष के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

चक्रवर्ती—व्यवस्थापक कौन है?

बाबाजी—श्रीगुरुदेव।

चक्रवर्ती—फिर सन्देह होता है। गुरु यदि मूर्ख अथवा अनपयुक्त हो, तो शिष्य क्या करे?

बाबाजी—गुरु मूर्ख अथवा अनुपयुक्त हो, यह बात ही असंगत है, क्योंकि भगवान् ने कहा है-

आचार्यं मां विजानीयात् नावमन्येत कर्हिचित्
न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत सर्वदेवमयो गुरुः।

इसलिये गुरु को मूर्ख कहना वैसा ही है जैसा भगवान् को मूर्ख कहना।

चक्रवर्ती—मैं व्यवहार में जो प्रत्यक्ष देखता हूँ उसे कहने में क्या दोष? गुरु आते ही अपनी वार्षिक भेंट के लिये व्यस्त हो जाते हैं, शिष्य के धर्म अथवा परमार्थ की ओर उनका बिलकुल भी लक्ष्य नहीं रहता और लक्ष्य रखने की उनमें क्षमता भी नहीं होती। ऐसी स्थिति में आप क्या कहेंगे?

बाबाजी—'गुरु' शब्दगत वस्तु नहीं है, विश्वासगत है। यदि शिष्य गुरु में भगवद्-बुद्धि रखे, तो गुरु से सर्वसिद्धि हो सकती है। एकलव्य ने विश्वास के बल पर ही मिट्टी के बने द्रोण से सारी अस्त्र विद्या सीखी थी। बताइये, उस मिट्टी की बनी द्रोण की मूर्ति में कौन-सी शक्ति थी? गुरु-शरीर में भले ही कोई गुण न हो पर यदि उसमें हमारी भगवद् बुद्धि है; तो हमें निश्चय ही अभीष्ट फल की प्राप्ति होगी। इस सम्बन्ध में एक गल्प है। काशीधाम में दशाश्वमेधघाट पर एक ब्राह्मण नित्य प्रात: स्नान और सन्ध्या आह्निक करता था। एक वेश्या भी रोज प्रातः उस पार से इस पार गङ्गा-स्नान करने आती थी। ब्राह्मण बहुत शान्त प्रकृति का था। वेश्या नित्य स्नान कर उससे कहती 'स्वामी! मुझे एक मन्त्र दीजिये।' ब्राह्मण कुछ न कहता, पर मन ही मन उसे बड़ा क्रोध आता। इस प्रकार प्रायः तीन महिने बीत गये। एक दिन ब्राह्मण गुस्सा न रोक पाया, बोला 'तू क्या कह रही थी?'

वेश्या—स्वामी! मुझे एक मन्त्र दीजिये।

ब्राह्मण—तू तो महापापिन है, मंत्र लेकर क्या करेगी?

वेश्या—स्वामी बिना मंत्र के भव-सागर पार नहीं जा सकती, तभी कहती हूँ कि मन्त्र दे दीजिये।

ब्राह्मण मन ही मन कहने लगा 'तू यदि भव-सागर पार जायेगी, तो नरक में कौन जायेगा?' फिर वेश्या से बोला 'जा, मूसल का भजन कर।' सुनते ही वेश्या ने ब्राह्मण को सानन्द दण्डवत् प्रणाम किया और घर को चली गई। उसी दिन से ब्राह्मण उस घाट को छोड़कर दूसरे घाट पर स्नान करने लगा। वेश्या एकाग्रचित से 'मूसल, मूसल' जपने लगी। एक दिन उसने सोचा 'गुरु कर्णधार होकर भव-सागर से पार कर देंगे, फिर इस सामान्य नदी को पार करने के लिये मैं नाव में क्यों बैठूँ?' यह सोच कर और श्रीगुरु-चरण का स्मरण कर 'मूसल, मूसल' जपते हुए अनायास पैरों चलकर गङ्गा के उस पार पहुँच गई। इसी प्रकार प्रतिदिन आने-जाने लगी। लोगों ने देखा तो एक-दूसरे से कहने लगे कि एक वेश्या पैरों चलकर गङ्गा पार कर जाती है। यह सुन ब्राह्मण ने उस वेश्या का पता लगाना चाहा, जिसने उससे मन्त्र लिया था। दूसरे दिन वह दशाश्वमेधघाट पर स्नान करने गया। क्षणभर पीछे देखा कि वही वेश्या जप करते-करते गङ्गा पार चली आ रही है। घाट पर ब्राह्मण को देखते ही उसने गले में कपड़ा डाल जैसे ही ब्राह्मण के चरणों में प्रणाम किया, ब्राह्मण ने पूछा 'तुम गङ्गा-पार किस तरह कर लेती हो?' वेश्या बोली 'क्यों प्रभो! आप कर्णधार होकर भव-सागर पार करायेंगे, फिर यह तो सामान्य नदी है! आपकी कृपा से आपके दिये मंत्र को जपते-जपते अनायास आ जाती हूँ। कैसे ले आते हैं आप जानें।

ब्राह्मण ने थोड़ा विस्मित होकर मनमें सोचा कि इस 'मूसल' शब्द में कोई गुण होगा। एकबार परीक्षा करनी चाहिये। उसने वेश्या से कहा 'तुम किस तरह पार करती हो, एकबार दिखाओ तो।' वेश्या बोली 'प्रभो! आप ही तो मुझे पार करते हैं। आज चलिये, इस दासी के घर पदार्पण कीजिये।' कहकर वेश्या 'मूसल' मन्त्र जपते-जपते निर्भय हो जल के ऊपर पैरों चलने लगी। ब्राह्मण भी वही मन्त्र जपते-जपते और डरते-डरते एक-एक कदम आगे बढ़ाने लगा। कुछ ही दूर गया होगा कि अगाध जल में डूबने लगा। तभी कहता हूँ कि योग्यता अथवा मन्त्र की शुद्धि-अशुद्धि विचारने से कोई लाभ नहीं। शिष्य के विश्वास पर ही फलाफल निर्भर करता है।

चक्रवर्ती महाशय की आँखें पानी से भर गईं; उन्होंने उठकर बाबाजी महाशय को आलिङ्गन किया और अपने घर चले गये। बाबाजी महाशय भी महाप्रसाद ग्रहण कर विश्राम करने लगे।

सिंगापुर-यात्रा

बाँकशाइ कचहरी में परमानन्द के साथ पन्द्रह दिन कट गये। मधुपुर राज्य के मैनेजरबाबू गोपीमोहन राय महाशय अपनी सिंगापुर-कचहरी में बाबाजी महाशय को ले जाने के लिए प्राय: अपना आदमी भेजते रहे। एक दिन स्वयं आकर विशेष अनुरोध कर रहे थे उसी समय बन्धडिहि गाँव (बाँकशाइ से प्राय: दो मील) के मुख्तारबाबू रघुनाथ माहान्ति भी बाबाजी महाशय को उनके साथियों सहित निमंत्रण देने आये। बाबाजी महाशय ने रघुनाथबाबू से पूछा 'रघुनाथ! तुम्हारा गाँव क्या सिंगापुर वाले रास्ते में हैं?' रघुनाथबाबू ने कहा 'जी हाँ।' इस पर वे बोले 'अच्छा, कल रात तुम्हारे घर ठहरकर दूसरे दिन सुबह सिंगापुर चले जायेंगे। रघुनाथबाबू सहमत हो गये। गोपीबाबू भी परमानन्दित हो बाबाजी महाशय के चरणों में प्रणाम कर उनसे विदा लेकर चले गये।

सुबह होते ही बाबाजी महाशय बाँकशाइ निवासी आबाल वृद्ध वनिता सभी से विदा लेने लगे। वह एक अपूर्व दृश्य था। बालक-वृद्ध युवक सभी एक स्वर से कहने लगे 'महाप्रभु! आउ किच्छि दिन एठी रहि करि आह्म मानन्कर हृदय शुद्ध करि तेवे जीवा हेवे।' बाबाजी महाशय सभी को सुमधुर वाक्यों से समझाकर शाम को पाँच बजे बन्धडिहि के लिये रवाना हुए। इधर बाँकशाइ-कचहरी के छामूकरण (तहसीलदार) क्षेत्रवासी माहान्ति ने मन ही मन यह संकल्प कर रखा था कि जिस दिन बाबाजी महाशय स्वयं मुझे बुलाकर अधरामृत देंगे अथवा श्रीचरण-सेवा करने के लिए कहेंगे, उसी दिन समझूँगा कि उनकी मुझपर कृपा हो गई; उससे पहले मैं कभी माँगकर अधरामृत नहीं लूँगा और न चरणसेवा करूँगा। उसने यह बात अपने मन में ही रखी थी। बन्धडिहि जाने के समय बाबाजी महाशय ने उससे कहा 'क्षेत्रवासी! मेरे साथ चलो।' क्षेत्रवासी 'जो आज्ञा' कह कर उनलोगों के साथ चल दिया। बन्धडिहि में रघुनाथ मुख्तार के घर पहुँचकर रात में खूब कीर्तन हुआ। उनके घर के सभी लोगों ने तथा गाँववासी बहुत-से स्त्री-पुरुषों ने उस दिन बाबाजी महाशय से मन्त्र ग्रहण किया। रात ग्यारह बजे कीर्तन समाप्त कर महाप्रसाद पाने के पश्चात् बाबाजी महाशय ने श्यामसुन्दरबाबू से कहा 'देखो श्यामसुन्दर! तुम कोई इस पत्तल पर मत बैठना; क्षेत्रवासी को बुलाकर उसे बैठालना।' यह कहकर वे सोने चले गये। बाबाजी महाशय की बात सुन क्षेत्रवासी ने बड़े आनन्द से उस पत्तल का अधरामृत लिया। थोड़ी देर पीछे उसे बुलाकर बाबाजी महाशय बोले 'क्षेत्रवासी! तुम पैर दबाना खूब अच्छा जानते हो, आओ तो! एक ही दिन दोनों वासनाओं की पूर्ति हुई देख क्षेत्रवासी ने प्रेमानन्द में विभोर हो बाबाजी महाशय के चरण पकड़ लिए और रोते-रोते सारी बात बता दी।

दूसरे दिन सुबह बाबाजी महाशय ने नित्य नियम पूरा कर साथियोंसहित सिंगापुर-यात्रा आरम्भ की। बंधडिहि से प्राय: एक मील दूर चाँदपुर गाँव में पहुँचकर देखा कि मार्ग में खुली जगह में अनेक स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध-युवक उनके दर्शन के लिये इकट्ठा हैं। दर्शन करने की उत्कण्ठा सभी में प्रबल जानकर उन्होंने एक ऐसा ऐश्वर्य दिखाया कि सभी लोग एकसाथ समान

रूप से उनके दर्शन कर तृप्त हो गये। ग्रामवासियों के विशेष आग्रह पर उस समय उन्हें वहीं रुकना पड़ा।

इधर मधुपुर राजा के मैनेजरबाबू गोपीमोहन राय ने अपने कचहरी घर से प्रायः एक कोस दूर तक का रास्ता अद्‌भुत ढंग से सुसज्जित करा रखा था। रास्ते के दोनों ओर केले के वृक्ष लगाये थे; नाना वर्ण की पताकायें तथा आम के पत्ते और पुष्पादि लगाये थे। मैनेजरबाबू बड़े उत्साह के साथ रास्ते के दोनों ओर नानाप्रकार के प्रकाश की व्यवस्था कर रहे थे और मन ही मन सोच रहे थे कि यदि बाबाजी महाशय रात को शुभागमन करें तो बड़ा आनन्द हो। इस प्रकार नानाप्रकार की कल्पनायें करते हुए बाबाजी महाशय को लिवाने चल पड़े। उनके चाँदपुर पहुँचते ही बाबाजी महाशय बोले 'गोपी! तुम जो बात मन में सोच रहे हो, वही होगी। मैं सन्ध्या पीछे ही कचहरी-घर पहुँचूँगा।' सुनते ही गोपीमोहनबाबू बड़े विस्मित हुए। बाबाजी महाशय ने यथासमय स्नानादि कर संकीर्तन आरम्भ किया। चारों ओर आदमी ही आदमी दीख रहे थे। कीर्तन-ध्वनि से दसों दिशाएँ मुखरित थीं। बालक-वृद्ध-युवक सभी कीर्तन में नृत्य कर रहे थे। ऐसे परमानन्दमय सङ्गको छोड़ घर कैसे वापस जाऊँगा, यही सोच श्यामसुन्दरबाबू उच्चस्वर से रोते-रोते एकाएक जमीन पर गिर पड़े। उनकी वह आर्ति और रोदन सुनकर पाषाण-जैसे हृदय भी पिघल गये। श्यामसुन्दर भावी विरह से व्याकुल हो रेत में लोट-पोट हो रहे थे। यह देखकर बाबाजी महाशय उनकी पीठ पर पैर रख नृत्य करने लगे। कुछ देर नृत्य कर अर्धमुद्रित नेत्रों से स्थिर भाव से खड़े हो गये। उसी समय जब बहुत से लोग मन्त्र लेने के लिये उनसे अत्यन्त व्याकुल भाव से प्रार्थना करने लगे, तो उन्होंने भाग्यवान श्यामसुन्दर की पीठ पर खड़े-खड़े ही बहुत-से लोगों को मन्त्र प्रदान किया। समय अधिक हुआ देख भक्त लोगों ने महाप्रसाद पाने के लिये नाना प्रकार से अनुरोध किया तो आपने कीर्तन समाप्त किया और महाप्रसाद लेकर थोड़ा विश्राम किया।

प्रायः चार बजे चाँदपुर से सिंगापुर कचहरी के लिये प्रस्थान किया। श्यामसुन्दरबाबू आदि कुछ लोग बाबाजी महाशय का अप्राकृत आनन्दमय संग छोड़ घर लौट जाने के लिये अनिच्छुक थे। बाबाजी महाशय ने नाना प्रकार के मधुर वाक्यों से उन्हें सान्त्वना देकर घर भेज दिया। सन्ध्या पीछे बाकी सब लोग सिंगापुर कचहरी जा पहुँचे। परम प्रेमी गोपीबाबू के आदर-सत्कार से सभी तृप्त हुए। बाबाजी महाशय ने कीर्तन करते-करते कचहरी घर में प्रवेश किया। प्रायः दो घण्टे तक वहाँ उद्दण्ड नृत्य-कीर्तन हुआ। गोपीबाबू के यत्न और आग्रह से पास के स्थानों से बहुत-से पण्डित और बाबू लोग कीर्तन सुनने आये। बाबाजी महाशय के दर्शनकर और उनका कीर्तन श्रवण कर सभी परमानन्दित हुए। बहुत देर तक कीर्तन चला। फिर थोड़ा विश्राम कर और महाप्रसाद पा सबने शयन किया।

दूसरे दिन सुबह प्रातःकृत्य एवं स्नानादि कर नगर कीर्तन के लिये निकले। गाँव का दृश्य बड़ा मनोरम था बाबाजी महाशय और उनके साथी परमानन्दपूर्वक कीर्तन करते-करते नगर-भ्रमण कर प्रायः ग्यारह बजे स्थान को वापस लौटे। आते ही गोपीबाबू ने बहुत से डाब (कच्चे नारियल) ठाकुरजी को भोग लगाकर बाबाजी महाशय और उनके साथियों को दिये। बाबाजी महाशय ने एक डाब का जल पिया और जो थोड़ा-सा बचा उसे 'श्यामसुन्दर पिओ' कहकर जमीन पर डाल दिया। ललिता दासी बोलीं- 'श्यामसुन्दर तो यहाँ हैं नहीं।' बाबाजी महाशय बोले- 'वह बड़ा अच्छा लड़का है, हम लोगों का साथ छोड़ने से उसे बड़ा कष्ट हुआ है, अभी तक लेटा पड़ा है। प्रभु का अधरामृत (डाब का पानी) पीकर स्वस्थ हो जायगा।' इधर श्यामसुन्दरबाबू ने पहले ही एक व्यक्ति को बाबाजी महाशय का अधरामृत लाने के लिये भेज दिया था। वह यह सब घटना अपनी आँखों से देखकर अवाक् रह गया। क्रमशः बाबाजी महाशय ने महाप्रसाद पाकर थोड़ी देर विश्राम किया।

श्यामसुन्दरबाबू ने जिस आदमी को भेजा था, वह बाबाजी महाशय का अधरामृत और उनकी चबाई हुई सुपारी लेकर बाँकशाइ कचहरी में उनके पास पहुँचा। इधर श्यामसुन्दरबाबू कमरे में लेटे थे। एकाएक उनका मुँह डाब के अत्यन्त मीठे जल से भर गया। उस जल को गले से नीचे उतार कर सोचने लगे-'**यह कैसा**

आश्चर्य है? मैं कमरे के भीतर लेटा हूँ, मेरे मुँह में डाब का ऐसा जल कहाँ से आ गया? क्या यह स्वप्न है? मैं सो तो नहीं रहा था। तो क्या यह श्रीगुरुदेव की कृपा है?' इस प्रकार तरह-तरह की बातें सोचने लगे। उसी समय उस व्यक्ति ने आकर उन्हें सब वृत्तान्त कह सुनाया। श्यामसुन्दरबाबू श्रीगुरुदेव की इस अहैतुकी कृपा की बात सुनकर जोर से रोने लगे। गोपीबाबू के विशेष आग्रह पर बाबाजी महाशय ने सिंगापुर कचहरी में परमानन्दपूर्वक कुछ दिन व्यतीत किये।

धनेश्वर-गमन

एक दिन सिंगापुर कचहरी में बैठे हुए बाबाजी महाशय ने गोपीबाबू से पूछा-'गोपी! यहाँ से धनेश्वर कितनी दूर है?'

गोपी—जी, दस मील के करीब होगा।

बाबाजी—एक बार वहाँ जाने की बड़ी इच्छा है।

गोपी—यहाँ और कुछ दिन ठहरिये। मैं किसी आदमी को भेजकर धनेश्वरवासियों को सम्वाद पहुँचा दूँ। वे लोग आकर ले जायेंगे।

गोपीबाबू वहाँ दो-चार दिन और रुक जाने के लिये बाबाजी महाशय से विशेष अनुरोध करने लगे। पर वे अपने मीठे वचनों से उन्हें शान्त कर तीसरे पहर नाम करते-करते धनेश्वर के लिये चल पड़े। इस गाँव में करण कायस्थों की ही संख्या अधिक है। उनके पूर्वपुरुषों ने वहाँ एक श्रीगौरांग-विग्रह की स्थापना कर उसकी सेवा-पूजा के लिये कुछ जमीन आदि की भी व्यवस्था कर दी थी। महाप्रभु के पुजारी श्रीगोविन्द-वल्लभदास अधिकारी महाशय ने महाप्रभु के मन्दिर में ही बाबाजी महाशय और उनके साथियों के ठहरने की व्यवस्था की। स्थानीय भद्र-पुरुषों में से चतुर्भुजदास आदि कुछ सम्भ्रान्त लोग बाबाजी महाशय के प्रति विशेष रूप से आकृष्ट हुए। गाँव में पुरी के झाँजपीटा मठ के श्रीश्रीराधाकान्तदेव की कुछ जमीन इन्हीं लोगों की देखरेख में थी। झाँज-पीटा मठ के अधिकारी कृष्णदास बाबाजी महाशय की असावधानी और बेपरवाही के कारण बहुत दिनों से इस जमीन की मालगुजारी आदि वसूल नहीं हो पाई थी। अब बाबाजी महाशय के दर्शन करते ही सब अपने आप मालगुजारी देने लगे। यहाँ तक कि चतुर्भुजबाबू की चेष्टा से वे लोग अपनी-अपनी मालगुजारी के हिस्से की मात्रा बढ़ाकर आधा भाग मालगुजारी आधा भाग चावल देने को राजी हो गये। एक दिन गोविन्दवल्लभ अधिकारी ने बाबाजी महाशय से कहा-'झाँजपीटा मठ के अधिकारी कृष्णदास बाबाजी महाशय ने यहीं शरीर छोड़ा है।' सुनते ही बाबाजी महाशय ने कहा-'उन्होंने यहीं शरीर छोड़ा है? उनका संस्कार आदि किया गया कि नहीं? जिस जगह शरीर छोड़ा है, वह मुझे दिखाओगे?'

गोविन्दवल्लभ अधिकारी महाशय 'जी हाँ' कहकर उन्हें उस जगह ले गये। बाबाजी महाशय कीर्तन करते-करते अधिकारी महाशय की अस्थियाँ लेकर चले। महाप्रभु के मन्दिर में स्थित पुष्करिणी के ईशान कोण में एक स्थान निश्चितकर उन्होंने उन अस्थियों को समाधि दी और अपने लोगों में से एक से कहा 'जब तक तुम यहाँ रहो, विधिवत् इस समाधि की सेवा करना और इन्हें महाप्रभु का महाप्रसाद समर्पित करना।' वह व्यक्ति उसी दिन से बाबाजी महाशय के आदेशानुसार कार्य करने लगा।

एक दिन मधुपुर के राजा के मैनेजर गोपीबाबू तथा अन्यान्य बहुत से भद्रपुरुष महाप्रभु के मन्दिर के सामने वाले मैदान में बैठे नाना प्रकार के प्रश्न पूछ रहे थे। बाबाजी महाशय भी हँसते-हँसते अत्यन्त जटिल प्रश्नों का उत्तर सरल भाषा में देकर उनका सन्देह दूर कर रहे थे। एक ने प्रश्न किया-'नित्य' शब्द का क्या अर्थ है?'

बाबाजी—'त्रिकालसत्यत्वं नित्यत्वं' अर्थात् जो वस्तु पहले थी, वर्तमान में है, और भविष्य में भी रहेगी, उसी को 'नित्य' कहते हैं।

भक्त—फिर व्रजलीला और नवद्वीपलीला किस तरह नित्य हैं? द्वापरयुग में जो व्रजलीला सर्वनयनगोचर थी और कलियुग में चार सौ वर्ष पूर्व श्रीगौरांगदेव ने सपरिकर जो लीला की थी, वह आज किसी को क्यों नहीं दीखती?

बाबाजी—नित्यत्व के विषय में आचार्यों ने कहा है-

प्रकट अप्रकट लीलार दुइ तो विधान।
प्रकट लीलाय करेन प्रभु निजे नृत्य-गान॥
अप्रकटे नामरूपे साक्षात् भगवान्।
कीर्तनविहारी रूपे सदा वर्तमान॥

अन्यत्र

अद्यापिह शेइ लीला करे गौर राय।
कोनो कोनो भाग्यवान् देखिबारे पाय॥

हम जिस वस्तु को आँखों से नहीं देख पाते वह नहीं है, यह नहीं कहा जा सकता। सोचिये, दिन में हमें तारे दिखाई नहीं देते। तो क्या हम यह मान लें कि आकाश में तारे नहीं हैं?

भक्त—जो वस्तु दिखाई नहीं देती, वह है ऐसा विश्वास कैसे हो सकता है?

बाबाजी—संसार की सभी वस्तुऐं दिखाई दें, सो बात नहीं। कुछ वस्तुऐं ऐसी हैं, जो देखी जा सकती हैं, कुछ ऐसी हैं जिनको अनुमान से जाना जाता है। अनुमान कई प्रकार का होता है। कुछ वस्तुऐं लक्षणों के द्वारा जानी जाती हैं, कुछ आप्त-वाक्य द्वारा। पूर्णग्रास चन्द्रग्रहण के समय जब आकाश में केवल तारे दिखाई देते हैं, यह अनुमान करना पड़ता है कि चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्रादि नित्य विराजमान हैं। इसी प्रकार प्रेम का विकास और जीव-उद्धार आदि कार्यों को देखकर मानना पड़ता है कि उन स्थानों पर निताइ-गौरांग का आविर्भाव हुआ है। वे इच्छामय स्वतंत्र पुरुष हैं। जब सबको दिखाई देना चाहते हैं, तो ऐसा करते हैं। जब छिपना चाहते हैं, तो किसी की शक्ति नहीं जो उन्हें देख सके। भगवत्-लीला कछुए के शरीर जैसी है। कछुए के अंग जब बाहर निकले होते हैं, तो सभी को दिखाई देते हैं; जब भीतर घुसे रहते हैं, तब बाह्य-दृष्टि के अगोचर होते हैं। भगवत्-स्वरूप भी ठीक ऐसा ही है। इच्छामय अपनी इच्छा से प्रकट होते हैं तो सबको दिखाई देते हैं; जब अप्रकट रहते हैं तो केवल अनुभव स्वरूप होते हैं।

भक्त—यह बात चलिये मैं मान लेता हूँ। पर गोस्वामी जन कहते हैं कि श्रीराधागोविन्द दोनों मिलकर श्रीगौरांग रूप में नवद्वीप धाम में अवतीर्ण हुए; वृन्दावन की सखी-मंजरी आदि ने नवद्वीप में गौरांग-परिकरों का रूप धारण किया, और वृन्दावन और नवद्वीप अभिन्न हैं। यदि ऐसी ही बात है, तो वृन्दावन का नित्यत्व कहाँ रहा? दूध जब दही के रूप में बदल जाता है, तो दूध जैसी कोई पृथक् वस्तु नहीं रह जाती; उसी प्रकार वृन्दावन-लीला जब नवद्वीप लीला में परिणत हो गई, तब वृन्दावन-लीला के नाम से तो कोई पृथक् वस्तु रही नहीं। इसलिये जब वृन्दावन लीला की स्थिति थी, तब नवद्वीप लीला का अभाव था। जब नवद्वीप-लीला की स्थिति थी, तब वृन्दावन-लीला का अभाव था। इसके अतिरिक्त यह भी समझ में नहीं आता कि श्रीगौरांगदेव ने भक्तभाव अंगीकार कर राधा-कृष्ण-उपासना-शिक्षा किस प्रकार दी?

बाबाजी—भाई, तुम जो कह रहे हो, वह प्राकृत वस्तु के विषय में ठीक हो सकता है। भगवत् लीला से सम्बन्धित बातें दूसरे प्रकार की हैं। भगवत् इच्छा से गोलोक, वृन्दावन, मथुरा, द्वारका एवं नवद्वीप सभी लीलायें समकालीन हैं और सर्वत्र विद्यमान हैं। यदि कहो कि कैसे, तो इसका एकमात्र उत्तर यही है कि भगवदिच्छा से। तभी गोस्वामी जनों ने कहा है कि गोलोक-लीला भी नित्य है और वृन्दावन-लीला भी; द्वारका-मथुरा-नवद्वीप लीलायें सभी नित्य हैं। इसका समाधान यही है कि यह सब भगवदिच्छा से है अथवा योगमाया के प्रभाव से।

कहते-कहते बाबाजी महाशय की आँखें लाल और उनका सर्वाङ्ग पुलकित और कम्पित हो गया। थोड़ी देर में वे एकदम मूर्छित होकर जमीन पर गिर पड़े। दोनों आँखें फट गई और दोनों हाथों की मुट्ठियाँ बँध गईं। देखकर साथी लोग विस्मित हो गये। शरीर इस प्रकार कड़ा हो गया जैसे कोई लौहदण्ड हो। यदि एक पैर उठाया जाता तो सारा शरीर उठ जाता। छानबीन कर देखा तो लगा कि साँस चल रही है। सभी उच्चस्वर से 'भज निताई गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' गाने लगे। आगन्तुक भक्त लोग बाबाजी महाशय की ऐसी अवस्था देख परमानन्दित और विस्मित हुए।

इस प्रकार बहुत समय बीत गया। साथियों के विशेष प्रयत्न से वे स्वस्थ हुए। इस तरह नामानन्द में

धनेश्वर गाँव में कुछ दिन बीते। एक दिन कोड़ाई, तुलती दला आदि गाँवों के लोग कीर्तन के लिये उन्हें आमंत्रित कर अपने साथ लिवा ले गये। वे जिस दिन जिस गाँव में जाते उस दिन उस गाँव के लोग आबाल-वृद्ध वनिता सभी संकीर्तन आनन्द में विभोर हो जाते।

एक दिन दोपहर पीछे बाबाजी महाशय चतुर्भुज बाबू के घर बैठे नाना प्रकार की तत्वकथा-आलोचना कर रहे थे। उपस्थित व्यक्तियों की संख्या चालीस-पचास थी। सभी उनके मुख की ओर देख रहे थे और वे प्रसन्न मुद्रा में यह बात स्पष्ट कर रहे थे कि कलियुग में एकमात्र नामसंकीर्तन से ही सब अनर्थों का नाश होता है, सब प्रकार से कल्याण होता है, और भगवत्प्रेम तक जाग्रत होता है। किसी भक्त ने कहा 'संकीर्तन तो बहुत दिनों से कर रहा हूँ, पर प्रेम किसे कहते हैं, आज तक नहीं जान पाया। इतना ही नहीं, शोक-संताप के समय को छोड़, किसी भी दिन आँखों में एक बूँद पानी नहीं आया।'

बाबाजी—भाई! नाममें प्रेम तो निहित है ही, पर आकांक्षा अथवा आग्रह न होने से प्रकाशमान वस्तु का भी अनुभव नहीं होता। नानाप्रकार की खाद्यवस्तुएं सामने रखी होती हैं, पर क्षुधा नहीं होती तो उनमें किसी प्रकार की रुचि नहीं होती, यहाँ तक कि उनकी तरफ देखने का मन भी नहीं करता। यह बात भी ठीक उसी तरह है। प्राणों में आकांक्षा जाग्रत करो। प्रेम ही आवश्यक है, बिना प्रेम हम इस संसार में एक मुहूर्त्त भी नहीं रह सकते। प्रेम ही हमारे इस लोक और परलोक का एक-मात्र अवलम्ब है। इस बात की हृदय में दृढ़ धारणा करो और इसके लिये आग्रह जाग्रत करो। अभीष्ट वस्तु मिल जायगी।

भक्त—क्या हरे कृष्ण नाम से प्रेम का उदय नहीं होता?

बाबाजी—क्यों नहीं होता? महाप्रभु ने तो ऐसी कोई बात नहीं कही कि अमुक नाम से प्रेम का उदय होगा, अमुक से नहीं। उन्होंने तो कहा है 'खाइते शुइते जथा तथा नाम लय। काल देश नियम नाइ सर्वसिद्धि हय।' इसका तो प्रत्यक्ष फल होता है। तुम सब यहाँ उपस्थित हो। सभी मिलकर 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे' नामका उच्चकण्ठ से कीर्तन करो। अभी पता चल जायगा।

कहते ही सभी एक साथ 'हरे कृष्ण' नामकीर्तन करने लगे और बाबाजी महाशय संख्या रखने लगे। आहा! बलिहारी! अपूर्व करुणा! अपूर्व दृश्य! पाँच-सात मिनट पीछे ही सभी की आँखों में पानी भर आया; सभी के कण्ठ गद्‌गद हो गये; बीच-बीच में प्रेम के कारण कण्ठरोध होने लगा। क्रमशः कम्प-पुलक आदि सात्विक विकारों ने भी सबके ऊपर अधिकार कर लिया। आबाल-वृद्ध-युवक सभी प्रेम में विभोर। सभी की आँखों में जल, सभी के मुखों पर नाम, और प्राणों में प्रबल आकांक्षा मिश्रित व्याकुलता! प्रायः डेढ़ घण्टे तक किसी को कुछ ध्यान नहीं। पूर्वोक्त भक्त प्रेम में अधीर हो एकदम बाबाजी महाशय के पैर पकड़कर जोर-जोर से रोने लगा। बाबाजी महाशय ने उसे आलिङ्गन-दान कर स्वस्थ किया। सन्ध्या हो गई। कीर्तन करते-करते सबने महाप्रभु के मन्दिर लौटकर सन्ध्या-आरति-कीर्तन किया। आरति-कीर्तन तो रोज ही होता है, पर आज का कुछ दूसरा ही ढंग है। आज लगता है जैसे सभी के हृदय में आनन्द का फव्वारा छूट रहा है। रात को प्रायः ग्यारह बजे तक कीर्तन चला। तत्पश्चात् महाप्रसाद पाकर सबने विश्राम किया।

संकीर्तन-महारास

कुछ दिन से रामानन्ददास बाबाजी नामक एक वैष्णव श्रीधाम वृन्दावन से आकर धनेश्वर में वास कर रहे हैं। बाहर से देखने में कुछ अप्रकृतिस्थ-से लगते हैं। कभी हँसते हैं, कभी रोते हैं, कभी नृत्य करते हैं और कभी एकदम नीरव भाव धारण कर लेते हैं। एकदिन दोपहर पीछे एक भक्त ने बाबाजी महाशय से कहा 'इन रामानन्द बाबाजी ने भिक्षा कर हम लोगों के गोचर मैदान में पीपल वृक्ष के नीचे महोत्सव किया था। उस दिन बड़ा आनन्द रहा।' सुनते ही बाबाजी महाशय प्रसन्न हो बोले 'चलो, उस स्थान को देखें' और सबके साथ नाम करते-करते वहाँ जा पहुँचे। स्थान बड़ा ही मनोरम था; श्मशान घाट के पास था। चारों ओर खुला था; बस एक प्रकांड पीपल का वृक्ष उसमें खड़ा था। पीपल-वृक्ष के नीचे पहुँचकर बाबाजी

महाशय ने कहा देखो 'सब मण्डली बना एक-दूसरे का हाथ पकड़ कर नाम करते हुए नृत्य करो। स्थान बड़ा सुन्दर है, इसे देखते ही रास-स्थली की याद आती है। आज संकीर्तन महारास किया जाय।' यह कहकर उन्होंने कीर्तन आरम्भ किया-

नाचत गोरा नटराय।
पारिषदगण जत, गोपिका मण्डली शत,
चौदिके घेरिया दाँड़ाय॥
भकत-मण्डली माझे, नाचे गोरा नटराजे,
भावे विवश भेलो अङ्ग।
हरि-हरि-हरि बलि, घन देइ करतालि,
बाढ़ल प्रेम-तरङ्ग॥
अरुण कमल आँखि, भावे ढुल-ढुल देखि,
मुख जिनि शशी षोलकला।
चौदिके भक्तजन नाचतहि अगणन,
जनु शोहे चाँदकी माला॥
(दाँड़ाय) चरणे चरण थुइया, ललित त्रिभंग हइया,
जेनो व्रज नव युवराज।
बरज रमणीगन, जैछन निमगन,
तैछन भकत समाज॥
दक्षिणे श्रीनित्यानन्द, परम आनन्द कन्द,
वामे गदाधर राधा रूप।
अग्रे देव देवाद्वैत, दक्षिणेते छत्र हस्त,
श्रीवास पण्डित भक्तभूप॥
नरहरि रामानन्द, मुकुन्द गोविन्दानन्द,
वासुदेव घोष वक्रेश्वर।
हरिदास शिवानन्द, नाचे राय भवानन्द,
गावत स्वरूप दामोदर॥
श्रीशचीनन्दन, भुवन आनंदन,
करु कत सुखद विलास।
कीर्तन रासकेलि, कलारसे निमगन,
वदन कमले मृदु हास॥

इस प्रकार भावावेश में जाने कितने पद गाते-गाते सभी प्रेम-विभोर हो गये हैं। बाबाजी महाशय बीच में पद-कीर्तन कर रहे हैं, और मधुर-मधुर नृत्य कर रहे हैं। खुले मैदान में आज मानो आनन्द का बाजार लगा है। किसी को बाह्यस्मृति नहीं। सभी मानों महाप्रभु के पार्षदरूप में मण्डली बनाकर नृत्य कर रहे हैं। बीच में बाबाजी महाशय चरणपर चरण रख, अर्धमुद्रित नेत्रों से, भावावेश में इस प्रकार नृत्य कर रहे हैं मानो उनके आगे-आगे कोई और नाचता जा रहा है और वे आवेश में प्रफुल्लित हो उसके साथ नृत्य कर रहे हैं। कौन कह सकता है कि नाम-रूप में साक्षात् प्रभु विद्यमान नहीं हैं? 'अद्यापिह सेइ लीला करे गोरा राय' इसका आज मानो सभी को अनुभव हो रहा है। अपनी-अपनी भावना के अनुसार कोई व्रजलीला की रास-मण्डली देख रहा है, कोई सपरिकर गौरांग देव का संकीर्तन-महारस देख रहा है। इस प्रकार बहुत देरतक नृत्य-कीर्तन कर बाबाजी महाशय बोले 'देखो, यह स्थान नवद्वीप है और यह रज सपरिकर श्रीगौरांगदेव की चरण-रज है। इसके अणु-अणु में प्रेम छिपा है।' यह कह कर उन्होंने एक मुट्ठी रज सबके ऊपर बिखेर दी। भक्त लोग प्रेमावेश में रज में लोटने लगे। सब एक दूसरे के शरीर से रज मलने लगे।

बाबाजी महाशय धनेश्वर में रहते समय प्रायः इस पीपल-वृक्ष के नीचे आकर बैठा करते। धनेश्वर में बाईस दिन रहकर उन्होंने नाना प्रकार की लीलायें कीं और गाँववासियों को आनन्दसागर में डुबाये रखा।

पुरुषोत्तमपुर-गमन

बहुत दिनों से बाबाजी महाशय ने गोपीबाबू और गोपालबाबू से कह रखा है कि उनके जन्मस्थान पुरुषोत्तमपुर जायेंगे। आज गोपीबाबू पुनः आकर विशेष अनुरोध करने लगे। बाबाजी महाशय वहाँ जाने का निश्चय कर भक्त लोगों से बोले 'धनेश्वरवासियों का प्रेम बड़ा निष्कपट है। अतः नाम करते हुए गाँव के बीच में होकर सभी से विदा लेते हुए जाना होगा।' वही हुआ। नाम करते-करते गाँव में प्रवेश किया। हर दरवाजे पर बालक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, जो भी दिखाई दिये, उनसे विदा ली। गाँववासी भी बड़े आवेगभरे हृदय से जोर से रोते-रोते आकर उनके पैरों में गिरने लगे। रोदन ही रोदन! मानो अब कोई अपने घर में नहीं रहना चाहता। आजतक उन्होंने जितना आनन्द भोग किया था उसका सौ गुना दुःख मानो अब भोग

रहे हों। कैसा भीषण हृदय-विदारक दृश्य! सभी अपने-अपने घरों को छोड़ जोर से रोते हुए बाबाजी महाशय के साथ चलने लगे। यह देख बाबाजी महाशय ने सभी को सुमधुर वचनों से शान्त कर अपने कदम थोड़े तेज कर दिये। गाँववासी, जब तक देख सके, बाबाजी महाशय की ओर देखते रहे। जब वे आँखों से ओझल हो गये सब अपनी-अपनी शून्य देह लिये घर को लौट गये। कोई-कोई बाबाजी महाशय के साथ पुरुषोत्तमपुर चले गये। गोपीबाबू के बड़े भाई क्षेत्रमोहन राय और लालविहारी राय आदि विशेष यत्न के साथ सपरिकर बाबाजी महाशय को अपने गाँव ले जाकर संकीर्तनानन्द एवं महोत्सव करने लगे। वे जिस दिन जिस गाँव में जाते उस दिन गाँव के आपामर जन साधारण प्रेमानन्द में मस्त हो जाते। बड़े-बड़े पाखण्डी भी उनका संकीर्तन अथवा उनके श्रीमुख की उपदेशावलि सुन मुग्ध हो जाते। गोपालबाबू का घर पुरुषोत्तमपुर में था। बाबाजी महाशय उनके गाँव में गये हैं, यह सुनकर वे पुरी से छुट्टी लेकर घर पहुँचे और दूसरे दिन बाबाजी महाशय को अपने घर लिवा ले गये। उस दिन के आनन्द की बात लेखनी की सामर्थ्य के बाहर है। पुरुषोत्तमपुरवासी कहने लगे 'कई दिन से बाबाजी महाशय कीर्तन कर रहे हैं, पर रोज आनन्द की मात्रा बढ़ती ही जा रही है।'

जाजपुर में ठाकुरजी को चावल भोग

साथियों के साथ परमानन्द में कुछ दिन पुरुषोत्तमपुर में बिताकर बाबाजी महाशय ने लालबाबू के विशेष अनुरोध पर जाजपुर के लिये प्रस्थान किया। जाजपुर के अन्तर्गत गोपालपुर में लालबाबू की ससुराल है। उनके ससुर अब नहीं हैं। वृद्धा सास और उनके ठाकुर की सेवा की देखभाल के लिये वे सपरिवार ससुराल में ही रहते हैं। उनकी वृद्धा सास साथियों-सहित बाबाजी महाशय को आया देख परमानन्दित हैं। बाबाजी महाशय तथा और सब लोग उन्हें माँ कहकर सम्बोधित करते हैं। बाबाजी महाशय के साथी वृद्धा को 'माँ माँ' कह तरह-तरह का बालहठ करते हैं और वे भी उन्हें लेकर नाना प्रकार के कौतुक करती हैं। वृद्धा के घर श्रीराधा-गोविन्द की सेवा चलती है; उसके लिये एक ब्राह्मण सेवक नियुक्त है। यह लोग जाति के कायस्थ हैं। देश-प्रथानुसार कायस्थ के घर ठाकुरजी को चावल का भोग नहीं लगाया जाता। अतः उनके ठाकुरजी को धूप में पकाया चावल, केले आदि का भोग दिया जाता है। एक दिन बाबाजी महाशय अपने कुछ साथियों और लालबाबू की वृद्धा सास के साथ ठाकुर-दर्शनको गये। प्रभु की इच्छा, उस समय ठाकुरजी को भोग दिया जा रहा था। बाबाजी महाशय बोले 'माँ! इतनी जल्दी ठाकुरको भोग लगाया जा रहा है, रसोई कहाँ होती है?'

वृद्धा—बेटा, हम लोगों के ऐसे भाग्य कहाँ जो ठाकुरजी चावल खाना स्वीकार करें! हम कायस्थ हैं; हमारे ठाकुरजी हमेशा धूप में सिद्ध किये चावल और केला ग्रहण करते हैं।

बाबाजी—क्या माँ! यह चावल केला कैसा?

वृद्धा—हमारे ददिया ससुर ने एक ब्राह्मण को पुजारी नियुक्त किया था। उन्हीं के वंश के लोग यह चावल-केला भोग लगाते हैं और घर में रसोई करके खाते हैं।

बाबाजी—क्यों, तुम्हारे ठाकुरजी को खाने की जरूरत नहीं क्या?

वृद्धा क्या करें बेटा! हम लोग तो ऐसा चावल खा नहीं सकते।

बाबाजी—अच्छा माँ! जिस वस्तु को तुम स्वयं नहीं खा सकतीं, उसे ठाकुरजी को कैसे देती हो?

वृद्धा—क्या किया जाय बेटा! वंश परम्परा से ऐसा ही चला आ रहा है; हम लोग भी ऐसा ही करते हैं।

बाबाजी—इससे क्या तुम्हारे प्राणों को आघात नहीं लगता? जिस मुख में माँ यशोदा मक्खन देते डरती थीं, उसी मुख में तुम धूप में पकाये चावल और केला देती हो और स्वयं नाना प्रकार की वस्तुऐं बनाकर खाती हो! बताओ, ऐसी सेवा की क्या आवश्यकता है?

वृद्धा—बेटा, पुरखों से सुना है कि ठाकुरजी की प्रतिष्ठा गुरु अथवा पुरोहित के नाम से हो तभी ठाकुरजी को चावल भोग लग सकता है, अन्यथा शूद्रादि के घर चावल भोग नहीं लग सकता। बीच-बीच में दिल को बड़ा आघात पहुँचता है, पर किया क्या जाय? दूसरा

कोई उपाय ही नहीं; बाध्य होकर यही चावल-केला भोग देते हैं।

बाबाजी—अच्छा, चावल भोग देने में तुम्हीं लोगों को आपत्ति है, अथवा किसी और को भी?

वृद्धा—पहले तो ब्राह्मण लोग ही आपत्ति करते हैं; हम भी इसलिये कोई प्रतिवाद नहीं करते।

सुनकर ललिता दासी बोलीं 'अच्छा, जितने दिन हम लोग यहाँ हैं, उतने दिन हम रसोई बनाकर ठाकुरजी को भोग लगायेंगे; पीछे तुम्हारी इच्छा हो सो करना।'

बाबाजी महाशय ने भी प्रसन्न हो इस बात का समर्थन किया। वृद्धा कुछ नहीं बोली। दूसरे दिन सुबह उठते ही ललिता दासी ने वृद्धा से कहा 'माँ! मैं रसोई बनाऊँगी, सब चीजें मुझे लाकर दे दो।'

वृद्धा ने हँसते हुए कहा 'बेटी, सभी कुछ तुम्हारा है। ठाकुर भी तुम लोगों के हैं, मैं भी तुम लोगों की हूँ, इस घर में जो भी कुछ है सब तुम्हारा है। तुम्हारी जो इच्छा हो करो।' ललितादासी ने परम आनन्द और उत्साह के साथ नाना प्रकार के व्यंजन तैयार किये, और नौ बजे के लगभग ठाकुर-मन्दिर में भोग सजाकर बाबाजी महाशय को बुलाया। उन्होंने ठाकुरजी के पास बैठ कर उनसे कहा 'देखो, खूब उत्साह और प्रेम से ठाकुरजी को भोग लगाओ। ऐसा करो जिससे ठाकुरजी फिर कभी धूप में पके चावल न खायें।' ठाकुरजी को धूप में पके चावल खिलाये जाने की बात से सभी के प्राणों को बड़ी वेदना हुई थी, अतः सभी इस बात की चेष्टा में थे कि वह प्रथा बन्द हो जाय। ठाकुरजी के भोग के पीछे बाबाजी महाशय ने प्रसाद पाया। तत्पश्चात् ललितादासी ने विशेष आग्रह के साथ लालबाबू की वृद्धा सास को प्रसाद-सेवन कराया और कहा 'माँ! क्या आपके जीवन में कभी भी आपको अपने ठाकुरजी का प्रसाद मिला है?'

वृद्धा ने उत्तर दिया 'नहीं बेटी! ऐसा कभी मेरे भाग्य में नहीं जुटा। आज मेरा जीवन धन्य हो गया। जीवन में प्रसाद तो बहुत मिला, पर आज जैसा स्वादिष्ट प्रसाद और कभी नहीं पाया। तभी कहती हूँ बेटी! तुमलोग जितने दिन यहाँ रहो रोज इसी तरह भोग लगाओ।' ललितादासी बोलीं 'माँ, सो तो करेंगे, पर बारहों महीने इसी प्रकार ठाकुरजी को भोग लगे, इसकी चेष्टा आपको करनी चाहिये।' वृद्धा यह बात सुनकर रोते-रोते बोली 'क्या प्रभु मुझे ऐसा सौभाग्य देंगे कि उन्हें इस घर में इस प्रकार भोग लग सके?'

क्रमशः तीन चार दिन बीत गये। एक दिन रात के अंतिम प्रहर में वृद्धा ने स्वप्न देखा कि पुजारी ब्राह्मण ने रसोई कर ठाकुरजी को भोग लगाया है और वे ठाकुरजी के आगे बैठी हुई हैं। उसी समय ठाकुरजी हँसते हुए उससे कहते हैं 'माँ, तीन-चार दिन से मैं बड़ा सुखी हूँ, देखना, कहीं मुझे इस सुख से वंचित न कर देना। तुम्हारी चाहे जो इच्छा हो जैसे भी हो, दो बार तो रसोई कर मुझे खाने को देना ही।' इसपर वृद्धा ने रोते-रोते ठाकुरजी से कहा 'पर मेरे आत्मीय लोग मेरी निन्दा करेंगे, उसका क्या उपाय करूँ?' ठाकुरजी ने उत्तर दिया 'माँ, तुम्हारे मायाराज्य के आत्मीय लोग बड़े हैं, या मैं? उन लोगों की बातों से तुम्हारा क्या होगा? माँ, संसार की ओर ध्यान देने चलें, तो परमार्थ नष्ट हो जाता है, अतः प्रतिज्ञा करो कि किसी की बात पर ध्यान न देकर इस पुजारी ब्राह्मण से रसोई तैयार करा मुझे रोज खाने को दोगी।' वृद्धा और कुछ न कह सकीं, बोलीं 'मैं तो बूढ़ी हो गई हूँ, तुम्हारी जो इच्छा हो सो करो।' कहते-कहते निद्रा भंग हो गई।

प्रातःकाल वृद्धा ने बड़े ही कातर भाव से सारी बात बाबाजी महाशय को सुनाई। उन्होंने साश्रु-गद्गद कण्ठ से कहा 'माँ, तुम परम भाग्यवती हो। नहीं तो भगवान् क्या इस प्रकार किसी से खाने को माँगते हैं? तभी कहता हूँ कि सामान्य समाज के डर से अथवा दो-चार लोगों की बातों में आकर इस सौभाग्य से वंचित न हो।' वृद्धा रोते-रोते कहने लगी 'बेटा, तुम एक बार पुजारी ब्राह्मण को समझा कर कह दो। वह कोई आपत्ति न करे, तो मुझे कोई डर नहीं।' बाबाजी महाशय ने लालबाबू से कहकर पुजारी को बुलवाया। पुजारी लड़का ही था। बाबाजी महाशय ने उससे पूछा 'भाई, ठाकुरजी की सेवा क्या तुम्हीं करते हो?' पुजारी बोला 'जी हाँ, मेरे दादा को इन लोगों ने इस पद पर नियुक्त किया था। तभी से यह सेवा हमारे हाथों होती आ रही है।'

बाबाजी—अच्छा भाई! ठाकुरजी को धूप में पकाये चावल और केला देते समय क्या तुम्हारे मन में कोई कष्ट नहीं होता?

पुजारी—कष्ट या सुख कुछ भी नहीं होता। हमेशा से जैसा होता आया है, मैं भी वैसा ही करता हूँ। फिर भी, बीच-बीच में मनमें आता है कि हम लोग चावल को सिद्ध कर खाते हैं, यदि ठाकुरजी भी हमारे अपने लोगों में से ही होते, तो उन्हें यह चावल न देकर रसोई में पकाये हुए चावलों का भोग लगता। फिर यह सोचने लगता हूँ कि जिनके ठाकुरजी हैं, उन्हीं की इच्छा से यह सब हो रहा है, मुझे और कुछ सोचने विचारने की क्या आवश्यकता?

बाबाजी—अच्छा, यदि यह लोग ठाकुरजी को उबाले हुए चावल भोग लगाना चाहें, तो तुम्हें कोई आपत्ति होगी?

पुजारी—मैं इस बात का कोई उत्तर नहीं दे सकता। मेरी माँ हैं उनसे पूछूँगा; वे जो कहेंगी, मैं आपको बता दूँगा।

पुजारी ने अपनी माँ के पास जाकर सारी बातें कहीं। उसकी माँ बोली 'बेटा, तेरे पिता दादा किसी ने ऐसा नहीं किया, तू कैसे करेगा? दूसरे ब्राह्मण भी क्या कहेंगे? पर बाबाजी महाशय भी इतने बड़े महात्मा हैं, उनकी बात का लंघन भी कैसे करेगा? मैं तो बेटा बड़ी दुविधा में पड़ गई। तू एक काम कर। अपनी भलाई-बुराई का भार बाबाजी महाशय के ऊपर छोड़ दे। वे जो कहें, सो कर।'

पुजारी माँ की बातसे बड़ा खुश होकर पुनः बाबाजी महाशय के पास आया और उनसे माँ की बात कही। उन्होंने लालबाबू और उनकी सास को बुलाया और कहा 'तुम लोग ऐसी चेष्टा करो, जिससे पुजारी को कोई परेशानी न हो।' इसी समय कुछ गाँववासी आये। कुछ बाबाजी महाशय के इस प्रस्ताव से असन्तुष्ट और असहमत थे। वे नाना प्रकार के वाद-विवाद करने लगे। बाबाजी महाशय मंद-मंद हँसकर सभी की बातों का यथायथ उत्तर देने लगे। अन्त में सब एक स्वर से बोले 'यह बात बहुत अच्छी है; हमारे यहाँ ऐसा चलन नहीं, इसलिये हमें कुछ अजीब-सा लगता है।' इस पर बाबाजी महाशय ने कहा 'भाई, व्यावहारिक जगत में कोई भी बुरा-भला काम करें, आरम्भ में कुछ अजीब-सा लगता है। पर जब वह काम सुचारु रूप से चलने लगता है, तो कोई असुविधा नहीं होती। मेरा सभी से यही निवेदन है कि कोई भी कार्य क्यों न हो भला-बुरा, सत-असत का विचार किये बिना उसे कभी न करना। ऐसा करने से दिनों-दिन तुम्हारे आनन्द की वृद्धि होगी।'

तब से लालबिहारीबाबू की ससुराल में ठाकुरजी को उबले चावल और पकाई वस्तु का भोग लगाया जाने लगा। क्रमशः मानो सबकी आँखें खुल गईं, ठाकुरजी और ठाकुरजी के प्रसाद में सबका विश्वास हो गया। यह लोग भी परमानन्द में दिन व्यतीत करने लगे।

मोहनीबाबू के घर

एक दिन दोपहर पीछे स्थानीय वकील श्रीयुत मोहिनीबाबू ने आकर बाबाजी महाशय से भेंट की। वे परम भक्त और वैष्णवसेवी थे। जाजपुर में कोई वैष्णव आता तो वह सबसे पहले मोहिनीबाबू का अतिथि होता।

मोहिनीबाबू बोले—'कल कृपाकर एक बार मेरे घर पदार्पण कीजिये।' बाबाजी महाशय ने प्रसन्न हो उनका निमंत्रण स्वीकार कर लिया। थोड़ी देर नाना प्रकार की भगवत् चर्चा कर वकील साहब अपने घर चले गये। दूसरे दिन बाबाजी महाशय प्रातःकृत्य समापन कर नौ बजे सबको साथ लेकर नाम करते-करते मोहिनीबाबू के घर पहुँचे। बहुत देर उद्दण्ड कीर्तन कर सब बैठक में बैठ गये। मोहिनीबाबू ने बहुत-से लोगों को आमंत्रित किया है; सभी वकील और मुख्तार हैं। सभी बाबाजी महाशय के सामने बैठे हैं। सभी की इच्छा बाबाजी महाशय के मुखसे तत्वमीमांसा सुनने की है। एक बाबू बोले-'हम लोग कुछ बातें पूछना चाहते हैं, आप यदि अनुमति दें तो कहें।'

बाबाजी—भाई, मुझे कोई आपत्ति नहीं। प्रभु द्वारा दी गई वाक्शक्ति पाकर जो व्यक्ति उनके लीला-गुण-चरित्र की बात नहीं करता, उसका मूक होना ही अच्छा।

बाबू—भगवान् जब सुख-दुख के दाता हैं, तो किसी को सुख और किसी को दुःख क्यों देते हैं? उनके लिये सभी जीव समान हैं।

बाबाजी—'स्वकर्मफलभुक् पुमान्!' जीव अपने-अपने कर्मों के अनुसार फल भोगते हैं। वे सूक्ष्म निरीक्षण कर देखते हैं कि किसे क्या दण्ड या पुरस्कार दिया जा सकता है, तदनुसार जीव के लिये व्यवस्था करते हैं। आप तो वकील हैं, आसानी से समझ सकते हैं; विचारक चित्रलिखित पुतली की तरह कोर्ट में बैठा रहता है। साक्षी-प्रमाणादि द्वारा वह वादी और प्रतिवादी के कार्य को स्थिर कर और कानून की दृष्टि से उसे आँककर उन्हें दण्ड या मुक्ति प्रदान करता है। बताइये, इससे विचारक पर क्या पक्षपातित्व दोष लग सकता है?

बाबू—प्राकृत राज्य का विचारक तो पराधीन अर्थात् राज्यकर्मचारी होता है। राजा ने जैसा कानून बना दिया कर्मचारी को उसी कानून के अनुसार चलना पड़ता है। पर भगवान् तो किसी के अधीन नहीं। वे अपनी इच्छा से अच्छा-बुरा सभी कुछ कर सकते हैं; फिर उन्हें दोष क्यों नहीं लगेगा?

बाबाजी—अच्छा, आप क्या यह कहना चाहते हैं कि राजा कानून के आधीन नहीं? कानूनविरुद्ध कोई काम करने पर राजा को कोई दोष नहीं लगता? ऐसा कभी नहीं हो सकता; भगवान् ने स्वयं कहा है-

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्मचेदहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

अब देखो, भगवान् स्वतंत्र हैं या परतंत्र। वे अपने बनाये कानून के इतने अधीन हैं कि जीव तो एक बार उनके कानून का उल्लंघन कर भी सकता है, पर वे स्वयं कभी कानून-विरुद्ध काम नहीं कर सकते। यही कारण है कि जीव जैसा कर्म करता है, भगवान् उसी प्रकार के दण्ड की व्यवस्था करते हैं।

बाबू—जीव ऐसा कौनसा कानून-विरुद्ध काम करता है, कि परमदयालु भगवान् भी उसे दण्ड देते हुए कुण्ठित नहीं होते?

बाबाजी— जीव कौन से कानून-विरुद्ध काम करता है, मैं कहाँ तक गिनाऊँ? फिर भी देखो, जीव जब माँ के गर्भ में असह्य यंत्रणा भोगता है और कातर होकर भगवान् को पुकारता है, तब भगवान् उसके कातर क्रन्दन को सुन करुणा-परवश हो उसे अपना सुखमय स्वरूप दिखाकर उसके सैकड़ों जन्मों के पाप-पुण्यों की बात उसे स्मरण कराते हैं। जीव डरकर भगवान् से प्रतिज्ञा करता है 'प्रभो! इस बार पृथ्वी पर पहुँचकर आपके अभय-चरणों को कभी नहीं भूलूँगा।' पर बाहर आते ही महामाया की सुखद गोद का स्पर्श पा सब भूल जाता है। यही नहीं, समय- समय पर भगवत्सत्ता तक को लुप्त करते हुए अपना प्रभुत्व स्थापित करने की चेष्टा करता है। भगवान् इतने दयालु हैं कि फिर भी जीव को चैतन्य करने के लिये नाना प्रकार के बाधा विघ्न, रोग-शोकादि प्रदान करते हैं। कैसा दुर्भाग्य है? जीव के मस्तिष्क में यह बात क्षण भरके लिये भी नहीं आती कि उन सब बाधा -विघ्नों का एकमात्र कारण उसकी भगवद्विस्मृति है। इसीलिये वह दुःख पाता है। श्रीचैतन्यचरितामृत में कहा है-

कृष्ण भूलि जेइ जीव अनादि बहिर्मुख।
अतएव माया तारे देय संसार दुःख॥
कभु स्वर्गे उठाय कभु नरके डुबाय।
दंड्य जने राजा जेन नदी ते चुबाय॥

बाबू—जीव कृष्ण को क्यों भूल जाता है?

बाबाजी—जीव अपने-अपने कर्मों के अनुसार तदनुयायी शरीर पाकर फिर ऐसे कर्म करने लगते हैं कि महामाया के मोहजाल में फँस अनन्तकाल तक नाना प्रकार की ज्वाला-यंत्रणा से पूर्ण इस संसार में यातायात-रूपी दुःख भोगते हैं।

बाबू—अच्छा, असत्पथ पर चलने की बुद्धि के दाता अथवा असत् वस्तु के सृष्टा भी तो भगवान् ही हैं। वे यदि जीव को असत् पथपर चलने की बुद्धि न देते अथवा असद् वस्तुओं की सृष्टि न करते, तो जीव इतना दुःख क्यों पाते?

बाबाजी—जीव के सभी सुख-दुःखों का मूल कारण है मन। शास्त्र कहते हैं 'मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः। संकल्प-विकल्पात्मिका वृत्ति को मन कहते हैं। मन ही संसार के सब कर्मों का कर्ता और इन्द्रियों का अधीश्वर है। इन्द्रियाँ दो प्रकार की हैं। ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय। इन्द्रियों को सुख-दुःख

देने वाले कर्मों का मन आचरण करता है। इसलिये भगवान् सुख-दु:ख के दाता नहीं कहे जा सकते।

बाबू—मन तो जड़ है, मनको चलाने वाला कोई चैतन्यमय पुरुष न हो, तो क्या मन काम कर सकता है?

बाबाजी—नहीं, कभी नहीं। बुद्धि-प्राप्त जो चैतन्य शक्ति है वही मनकी संचालक है; वही सत्-असत् कार्यों की कर्ता है, और वही सुख-दु:ख की भोक्ता है।

बाबू—तभी तो भगवान् सुख-दु:ख के दाता हुए। क्योंकि वह बुद्धिप्राप्य चैतन्य शक्ति इस वृहत् चैतन्य के अंश के अतिरिक्त और क्या है?

बाबाजी—बुद्धि-प्राप्त चैतन्य उस पूर्ण चैतन्य का अंश है सही। पर वह विकारी है, इसलिये उस निर्विकार निष्क्रिय विशुद्ध चैतन्य से पृथक् है। उसी को जीव कहते हैं। जीव सुख-दु:ख का भोक्ता है, परमात्मा द्रष्टा अर्थात् साक्षीस्वरूप है। जीव जब भगवान् से विमुख होता है, तब दु:ख भोगता है; और जब भगवत्-उन्मुख होता है, तब अनन्त सुख-सागर में तैरता है।

बाबू—जीव कितने दिनों से इस प्रकार भगवद् विमुख है?

बाबाजी—कितने दिनों से यह तो कोई नहीं बता सकता। पर शास्त्रकार कहते हैं कि वह अनादिकाल से बहिर्मुख है, अर्थात् उसका आरम्भ निश्चित नहीं किया जा सकता।

बाबू—अनादि बहिर्मुख जीव भगवद् उन्मुख कब होगा? उसे तो होश है नहीं जो अपने मोहपाश को तोड़ सके।

बाबाजी—मोह-पाश को तोड़ने के लिये भगवत्-कृपा के अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं है। भगवत्कृपा का मूल है साधुकृपा। श्रीमन्महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी से कहा है-

सेई विभिन्नांश जीव दुइ त प्रकार।
एक नित्य मुक्त एकेर नित्य संसार॥
नित्य-मुक्त नित्य कृष्ण-चरणे उन्मुख।
कृष्ण-पारिषद नाम भुञ्जे सेवासुख॥
नित्य-बद्ध कृष्ण हइते नित्य-बहिर्मुख।
नित्य संसार भुंजे नरकादि दु:ख॥
सेइ दोषे माया पिशाची दण्ड करे तारे।
आध्यात्मिक तापत्रय तारे जारि मारे॥
काम-क्रोधेर दास हइया तार लाथि खाय।
भ्रमिते-भ्रमिते जदि साधु-वैद्य पाय॥
ताँर उपदेश मंत्रे पिशाची पलाय।
कृष्णभक्ति पाय तबे कृष्ण निकटे जाय॥

बाबू—आपकी इस बात से मेरे मन में फिर सन्देह होता है। आपने कहा कि जीव दो प्रकार के हैं, एक नित्यबद्ध और एक नित्यमुक्त। नित्यबद्ध के लिये नित्य संसार है। बन्धन यदि नित्य है तो वह टूट कैसे सकता है? त्रिकालसत्यत्वं नित्यत्वं। नित्यवस्तु की उत्पत्ति और उसका विनाश दोनों ही असम्भव हैं।

बाबाजी—बड़ा सुन्दर प्रश्न है। श्रीचैतन्य-चरितामृत में एक स्थान पर कहा है-

'कृष्ण भूलि जेइ जीव अनादि बहिर्मुख।
अतएव माया तारे देय संसार दु:ख।'

अन्यत्र कहा है 'नित्यबद्ध कृष्ण हइते नित्य-बहिर्मुख। नित्य संसार भुंजे नरकादि दु:ख।' एक मुख से निकले दो वाक्य परस्पर विरोधी होने से उनमें दोष आता है, अतएव 'नित्य' शब्द का अर्थ अनादि समझना होगा। अर्थात् जिसका आदि निर्धारित करना जीव की शक्ति से परे है; पर आदि है, यह निश्चित है। अल्पायु, मायामुग्ध, दुर्बल, श्रद्धा-विश्वासहीन कलिहत जीव नाना प्रकार के प्रमादों में पड़कर सुदुर्लभ मानव जीवन को व्यर्थ बिता रहे हैं, यह देख प्रेमदाता परमदयाल निताइचाँद ने द्वार-द्वार जाकर आग्रहकर प्रेमधन-वितरण किया है। हाय! हम लोग इतने बहिर्मुख हैं कि ऐसे दयालु प्रभु के अभय पाद-पद्म भूलकर अनित्य संसार सुख में लिप्त हैं।

कहते-कहते उनके नेत्र लाल और अश्रुपूर्ण हो गये। वे तत्क्षणात् 'बोल श्रीनित्यानन्द' कहते हुए उछलकर नृत्य करने लगे। जिस जगह बैठे थे, उसके प्राय: पाँच-छह हाथ ऊपर पंखे का लट्ठा लटक रहा था। उठते ही वह लट्ठा सिरसे लगकर तीन-चार हाथ

ऊपर उछल गया। लट्टे के नीचे जो हुक लगे थे, उनमें से एक उनके सिर से लगा और खून की धार बह निकली। पर उन्हें इसका पता ही नहीं; वे बराबर नृत्य कर रहे हैं। अन्य लोग भी नृत्य कर रहे हैं। खोल-करताल बज रहे हैं, पर नवद्वीपदादा रक्त देख 'गों-गों' कह कर हुंकार रहे हैं। किसकी ताकत जो उन्हें स्थिर कर सके? मोहिनीबाबू और अन्य बाबू लोग बाबाजी महाशय की उस तन्मयता को देख अवाक् रह गये। साथी लोग रक्त को बन्द करने के लिये नाना प्रकार की चेष्टा करने लगे। पर बाबाजी महाशय उद्दण्ड नृत्य में ऐसे तल्लीन कि कोई उनका मस्तक स्पर्श ही न कर सका। साथी लोग नवद्वीपदादा की व्याकुलता और बाबाजी महाशय की ऐसी अवस्था देख अधीर होकर आपस में कहने लगे 'किसी प्रकार रक्त बन्द कर पाते, तो फिर कोई चिन्ता नहीं थी।' कुछ देरतक उद्दण्ड नृत्य कर बाबाजी महाशय स्थिर हुए तो सबने पास जाकर देखा कि रक्त अपने आप बन्द हो गया। ललितादासी ने गण्ड-स्थल पर पड़ी पहले की रक्तधार को अपने आँचल से पोंछा, तो बाबाजी महाशय बोले 'क्या हुआ?' ललितादासी सिरके उस क्षत स्थान को दिखाने के लिये जब स्वयं उसे देखने को हुईं, तो देखा कि कहीं भी कोई चिह्न नहीं! सभी अवाक्! बाबू लोगों ने उनके सिरपर पंखे का आघात और सिर से दोनों गण्डस्थलों पर रक्तधार का बहना अपनी आँखों से देखा था; पर अब क्षतस्थान का नामोनिशान भी न पाकर बहुत ही विस्मित हो उन्होंने बाबाजी महाशय से पूछा 'आपको क्या जरा भी कष्ट नहीं हुआ?'

बाबाजी महाशय बोले 'भाई, मुझे तो पता नहीं आघात कहाँ लगा। यदि तुम लोगों ने उसे देखा भी हो तो क्या प्रभु की कृपा से वह मुहूर्तभर में ठीक नहीं हो सकता? जो प्रभु हमें सदा-सदा अपनी गोद में रखते और हमारी रक्षा करते हैं, उनके लिये यह सब करना अत्यन्त साधारण बात है।' सुनकर सभी ने बाबाजी महाशय के चरणों में प्रणाम किया। क्षणभर पीछे सभी ने परमानन्दपूर्वक महाप्रसाद ग्रहणकर थोड़ा विश्राम किया, और फिर नाम करते-करते निवास स्थान को प्रस्थान किया।

वर्ण विचार

एक दिन की बात है। लालबाबू की ससुराल के पास स्थित एक घर में बाबाजी महाशय बैठे थे। कुछ भक्त नाना प्रकार के प्रश्न कर रहे थे और वे सभी के प्रश्नों के उत्तर दे रहे थे। उसी समय अकस्मात् एक ब्राह्मण वहाँ आ पहुँचा। वह जाजपुर में एक बड़ा पण्डित था। उसके आते ही बाबाजी महाशय ने उसे दण्डवत् प्रणाम कर विशेष सम्मान के साथ बिठाया। ब्राह्मण ने भी बाबाजी महाशय को विशेष आग्रह के साथ अपनी बगल में बिठाया। ब्राह्मण के आने का उद्देश्य था उपासना को लेकर बाबाजी महाशय के साथ कुछ समालोचना करना। पर वह मन में जिस भाव को लेकर आया था वह उनके दर्शनकर और उनके व्यवहार को देख एकदम बदल गया। ब्राह्मण धीरे-धीरे बोला 'अच्छा बाबा! आप जिन कृष्ण की उपासना करते हैं, वे कौन हैं?'

बाबाजी—व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण सर्व-अवतारी पूर्णपूर्णतम हैं। शास्त्र कहते हैं-

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम्॥

श्रीमद्भागवत में आया है-

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयं।
इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे॥

उनकी ही आज्ञानुसार ब्रह्मा रजोगुण द्वारा जगत् की सृष्टि करते हैं, विष्णु सत्वगुण द्वारा उसका पालन करते हैं, और शिव तमोगुण द्वारा उसका संहार करते हैं। भगवान् की आज्ञानुसार कार्य करते रहने पर भी वे सभी स्वतन्त्र ईश्वर हैं।

ब्राह्मण—सृष्टि-स्थिति-प्रलय तो अपने आप ही हो रहे हैं। वस्तु के आकर्षण और विकर्षण से पारस्परिक संयोग ही वस्तु-उत्पत्ति का कारण है। वस्तु सूक्ष्मरूप में उत्पन्न होकर नाना प्रकार के कौशलों द्वारा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ग्रहण कर बढ़ती है और समय बीतने पर फिर लुप्त हो जाती है। इन सब कामों को करने के लिये एक-एक ईश्वर की कल्पना करने की क्या आवश्यकता है?

बाबाजी—अच्छा, मैं आपसे एक साधारण-सी बात पूछता हूँ। जिस ज्ञान के बल पर आप यह सब बता रहे हैं, वह ज्ञान कहाँ से आया?

ब्राह्मण—नाना प्रकार के शास्त्रों की आलोचना करने से बुद्धि परिमार्जित होती है। इस परिमार्जित बुद्धि की कुशलता से शास्त्रों के सूक्ष्मतत्वों का अनुसंधान सम्भव होता है, और इस सूक्ष्मतत्व-अनुसंधान से ही ज्ञान की उत्पत्ति होती है।

बाबाजी—शास्त्रों की उत्पत्ति कहाँ से हुई?

ब्राह्मण—चिन्तन-शक्ति द्वारा वेदों के अपौरुषेय वाक्यों को परिस्फुट कर उन्हें जनसाधारण के निकट बोधगम्य बनाने की इच्छा से पूर्व ऋषिजनों ने जो वाक्य कहे हैं, उन्हीं को शास्त्र कहते हैं।

बाबाजी—वेदों की उत्पत्ति कहाँ से हुई?

ब्राह्मण—वेद स्वयं-प्रकाशित हैं।

बाबाजी—तो आप वेदों को मानते हैं?

ब्राह्मण—वेदों को न मानने से कैसे चलेगा?

बाबाजी—वेद कहते हैं 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म, शास्त्रयोनित्वात् सच्चिदानन्दघनरसमयत्वाच्च।' फिर आप ईश्वर को क्यों नहीं मानते? ईश्वर के अस्तित्व के विषय में बहुत से प्रमाण हैं। उन सबको मैं कहाँ तक बताऊँ? मेरा विश्वास है कि जिसे मामूली भी वर्णज्ञान है, वह कभी भी भगवत् सत्ता को अस्वीकार नहीं कर सकता।

ब्राह्मण अब तक शान्त थे। पर इस बार थोड़ा गरम होकर बोले 'अच्छा तो आप ही मुझे वह वर्ण-ज्ञान सिखा दीजिये। जिससे भगवत् सत्ता स्वीकार की जाती है।'

बाबाजी—आप क्रोध न कीजिये। थोड़ा सोच कर देखिये। अकारादि हकारान्त सेंतालीस वर्ण हैं। इन वर्णों के पारस्परिक योग से शब्द की उत्पत्ति है। वेद पुराणादि शब्दात्मक हैं। शब्द का मूल है वर्ण। वर्णों का आदि है अकार प्रत्येक वर्ण के भीतर यह अकार है; 'अ' के बिना किसी भी वर्ण का उच्चारण नहीं किया जा सकता, जैसे- क्+अ=क; ख्+अ=ख; च्+अ=च इत्यादि।

ब्राह्मण—ये तो व्यंजन वर्ण हैं, जो पराधीन है; स्वर वर्ण स्वाधीन हैं। स्वरवर्ण में तो अकार रह नहीं सकता।

बाबाजी—क्यों, मैंने तो पहले ही कहा था कि सभी वर्णों में अकार है। शुरू से लीजिये, अकार ओकार मिलकर औकार हुए, इसलिये औकार के भीतर अकार हुआ। इसी प्रकार अकार उकार से ओकार, अकार एकार से ऐकार, अकार इकार से एकार हुए हैं।

ब्राह्मण—अच्छा इकार उकार में अकार कहाँ है?

बाबाजी—इ एवं य का उच्चारण स्थान तालू है; उ एवं व का उच्चारण स्थान ओष्ठ है। इकार का उत्पत्तिस्थान यकार तथा उकार का उत्पत्ति-स्थान वकार है। अब देखिये, य एवं व के भीतर अकार है। अतः इकार उकार के भीतर भी अकार है। आप पण्डित हैं, थोड़ा अनुसन्धान करने पर मुझसे कहीं अच्छा ढूँढ़ निकालेंगे, इसमें सन्देह नहीं। फिर भी दो-एक उदाहरण देता हूँ; इष्ट, इज्या आदि शब्दों में यज् धातु के य की जगह इ हो गया है। इस यकार के भीतर जो अकार था, वह भी इस इकार के भीतर प्रवेश कर गया है। इसी प्रकार उप्त एवं उक्त आदि शब्दों में वप् एवं वच् धातु के व की जगह उ हो गया है। व का अकार इस उकार के भीतर है। इसी प्रकार पृच्छति, वृश्चति, भृज्जति आदि पदों में प्रच्छ, व्रश्च तथा भ्रस्ज धातु के र की जगह ऋ हो गया है। इसलिये र का अकार ऋ के भीतर है।

इस बार ब्राह्मण थोड़े स्तम्भित एवं विस्मित भाव से धीरे-धीरे बोले 'चलिये, प्रति वर्ण में अकार है स्वीकार किया। पर इससे भगवत्ता के विषय में क्या सिद्ध हुआ?'

बाबाजी—प्रति वर्ण में अकार स्वीकार करने से भगवत्ता स्वीकार हो जाती है। शास्त्र कहते हैं-

'अकारो विष्णुरुद्दिष्ट उकारस्तु महेश्वरः।
मकारेणोच्यते ब्रह्मा प्रणवेन त्रयो मताः॥'

एकाक्षर कोषाभिधान में कहा गया है 'अकारो वासुदेवः स्यादाकारश्च पितामहः।' अतएव जब प्रति

वर्ण में अकार-रूप में विष्णु हैं, तब वर्णों से बने प्रत्येक शब्द में भी विष्णु-रूपी भगवान् हैं। शब्द में होने से वे स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि में भी आ जाते हैं। इसलिये पाञ्चभौतिक वस्तुमात्र में विष्णु हैं।

ब्राह्मण—तो आपकी बात से पता चला कि सत्वगुण के अधीश्वर पालनकर्ता विष्णु ही प्रत्येक वस्तु में वर्तमान हैं।

बाबाजी—इस विष्णु शब्द में सर्वेश्वर, गुणातीत गुणमय भगवान् को लक्ष्य किया गया है। विष्णु शब्द का धातुगत अर्थ है 'विश्व व्याप्तौ' अर्थात् जो विश्वब्रह्मांडान्तवर्ती स्थूल-सूक्ष्म सभी वस्तुओं में व्यापक रूप से वर्तमान है, उन्हीं को विष्णु कहा जाता है। अतः विष्णु शब्द और ब्रह्म शब्द एकार्थवाचक है।

ब्राह्मण की आँखें सजल हो गईं। वे गद्गद कण्ठ से बोले 'अबतक मैं शास्त्रालोचना में अनेक लोगों पर विजय प्राप्तकर अभिमान-मंचपर बैठा था। समझता था कि मैं बड़ा ज्ञानी और पंडित हूँ; पर आज आपके मुख से सरल भाषा में अपूर्व भगवत्तत्व विषयक सुसिद्धान्त सुनकर लगता है कि मैंने इतने दिन व्यर्थ बिताये। मुझे आपसे और कुछ भी नहीं कहना। बस यही प्रार्थना है, ऐसी कृपा कीजिये कि प्रत्येक वस्तु में भगवत् सत्ता का अनुभव कर सकूँ।' बाबाजी महाशय हाथ जोड़कर बोले 'निताइ निताइ! भाई, मैं तो बिलकुल मूर्ख हूँ, आप पंडित हैं, फिर ब्राह्मण हैं। आप लोग जगद्गुरु हैं, आपके कृपा-कटाक्ष से जगवासी नरनारी भगवत्कृपा के अधिकारी हो सकते हैं।' इस प्रकार बहुत समय बीत गया। लालबाबू के अनुरोध पर बाबाजी महाशय ने स्नान किया। सब लोग अपने-अपने घर चले गये। उन्होंने भी महाप्रसाद पाकर विश्राम किया।

वकील ब्रह्मानन्दबाबू

दिन बीतने लगे और जाजपुर के शिक्षित लोग क्रमशः बाबाजी महाशय के प्रति विशेषरूप से आकृष्ट होने लगे। चारों ओर आपके विषय में बातचीत, आपके द्वारा की गई सुमीमांसाओं की प्रशंसा, और आपके गीतों की व्याख्या चलने लगी। आपकी नृत्य-भंगिमा अपूर्वत्व, आपकी सरलता, आपके सद्व्यवहार आदि को लेकर वे आपका यशोगान करने लगे। बाबाजी महाशय का चिरंतन स्वभाव था कि जिस जगह प्रशंसा होती और प्रतिष्ठा मिलती, वहाँ कभी न रुकते। आज भी वही हुआ; सुबह उठते ही लालबाबू से बोले 'देखो लालबिहारी! जाजपुर आये बहुत दिन हो गये। पुरी जाना जरूरी है। कल पुरी चला जाय।' लालबाबू विशेष अनुरोध करते हुए कहने लगे 'हम लोगों की एकान्त अभिलाषा है कि आप यहाँ कुछ दिन और ठहरकर अपने उपदेशामृत से हमारी हृदय-मरुभूमि सींचकर थोड़ा सरस कर दें।' बाबाजी महाशय बोले 'भाई, निताइचाँद की इच्छा हुई तो फिर आना होगा; इस बार और अधिक रुकने की इच्छा नहीं है।' इस प्रकार बातें हो रही थीं, उसी समय दो-तीन भद्रपुरुषों को लेकर वकील ब्रह्मानन्दबाबू आ पहुँचे। देखते ही बाबाजी महाशय ने बड़े आदर से सबको बिठाया। ब्रह्मानन्दबाबू हाथ जोड़कर बोले 'बाबा! मेरी बड़ी अभिलाषा है कि आप एकबार सपरिकर मेरे घर पधारकर कुछ कीर्तनानन्द करें।'

बाबाजी—भाई, मुझे तो कोई आपत्ति नहीं, पर पुरी जाने के लिये मन थोड़ा चंचल हो रहा है। यदि फिर कभी प्रभु यहाँ ले आये तो देखा जायेगा।

ब्रह्मानन्दबाबू ने साश्रुगद्गद कण्ठ से कहा 'जो कुछ भी हो इस नराधम की आशा तो पूरी करनी हो होगी। उस दिन मोहिनीबाबू के घर आपको देखा था। तभी मेरे मन में यह आशा जगी थी। मैं नराधम, असच्चरित्र सही, पर आप तो परमदयालु अदोषदर्शी और पतितपावन हैं।'

बाबाजी—भाई, मैं न पतित-पावन हूँ, न परम दयालु, उनका दास अवश्य हूँ।

ब्रह्मानन्द—आप चाहे जो हों, मैं तो आपको ही जानता हूँ।

बाबाजी—तुम्हारे यहाँ कब जाना होगा?

ब्रह्मानन्द—आप जिस दिन चाहें; मैं तो सोचता था कि आज ही चलें।

बाबाजी—तो ठीक है, आज तुम्हारे घर कीर्तन कर कल पुरी जाना होगा।

ब्रह्मानन्दबाबू परमानन्दित हो बाबाजी महाशय को प्रणाम कर अपने घर चले गये। उसी समय लालबाबू ने आकर कहा 'मैं समझता हूँ कि ब्रह्मानन्द के घर जाना ठीक नहीं, क्योंकि वह बड़ा शराबी और पाखण्डी है। विशेषत: साधु-वैष्णवों के प्रति उसमें बिलकुल श्रद्धा नहीं है।'

बाबाजी—खूब कहा, क्या सिर्फ भक्त और विश्वासी लोगों के घर ही जाना उचित है? निताइचाँद ने अपनी प्रकट लीला में जगाइ-माधाई आदि बहुत-से पतित-पाखण्डियों का उद्धार किया था; अप्रकट लीला में नाम-रूप में क्या वह एक आदमी की भी मति न बदल सकेंगे? ऐसी बात नहीं। जगत् परिवर्तनशील है; किसी की सामयिक असद्वृत्ति देख उसकी अवज्ञा करना उचित नहीं। आज जो व्यक्ति घोर पाखण्डी है, हो सकता है वही कल प्रभु की कृपा से परम साधु हो जाय। दूसरी ओर, आज जो परम साधु है, सम्भव है काल के प्रभाव से वह कल असत्पथावलम्बी, अविश्वासी और घोर पाखण्डी हो जाय।

इस प्रकार बातचीत में कुछ समय बीत गया। बाबाजी महाशय ने स्नानादि कर महाप्रसाद पाकर थोड़ा विश्राम किया। तीसरे पहर इन्हें लेने ब्रह्मानन्दबाबू के घर से एक व्यक्ति आया। बाबाजी महाशय ने सबसे विदा ली और नाम करते-करते सपार्षद ब्रह्मानन्दबाबू के घर के लिये प्रस्थान किया।

ब्रह्मानन्दबाबू ने जाजपुर के बहुत से वकील-मुख्तारों और अन्याय इष्ट मित्रों को निमंत्रित किया था। सभी बाबू लोग बाबाजी महाशय के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे। उसी समय इन लोगों ने उद्दण्ड नृत्य करते-करते सीधे ब्रह्मानन्दबाबू की बैठक में प्रवेश किया। बैठक में फर्श बिछा था और वह सुगन्धी द्रव्यों तथा नाना प्रकार की रोशनी से सुसज्जित थी। बाबू लोग हड़बड़ाकर उठ खड़े हुए। कीर्तन प्रारम्भ हुआ। ब्रह्मानन्दबाबू एक ओर हाथ जोड़कर खड़े कीर्तन सुन रहे हैं और प्रेमाश्रुओं से उनका वक्षस्थल भीग रहा है। अपूर्व परिवर्तन! दो दिन पहले तक जो व्यक्ति शराब में मत्त होकर साधु-वैष्णवों को देखते ही दो कड़वी बातें कह उठता था, और ऐसा कर अपने को परम बुद्धिमान समझता था, जो नाम-संकीर्तन तो दूर, भक्ति भाव एवं आत्मदैन्य से भरे अनुतापसूचक पदादि भी सुनकर अपने कान बन्द कर लेता था, वही आज थोड़े से बाबाओं के ताल-स्वर-रहित नाम-संकीर्तन और उद्दण्ड नृत्य को देख-सुनकर आत्मविभोर हो इस प्रकार अश्रु वर्षण कर रहा है! थोड़ी देर इस प्रकार उद्दण्ड नृत्य-कीर्तन कर मानो बाबू लोगों के मन की बात जानकर बाबाजी महाशय ने बैठकर पद आरम्भ किया-

ओ मन ऐखनओ कि कर काम।
जान ना कि बलि, शमन खाताय,
लिखिया आइले नाम॥
जखन एखाने जे काज करिछ,
दूते जनाइछे साटे।
तखनइ सेखाने, कागजे धरिया,
पलके पलके आँटे॥
उलटि पालटि, नाड़िछे देखिछे,
जखन फुराबे जमा।
आँटिया साँटिया, बाँधिया लइबे,
बुझिया दे रे भाई क्षमा॥
कामेते चञ्चल, हइया विकल,
कुकाज करिछ कत।
पूरव स्मरिया, देख ना रे भाई,
आपन विचार मत॥
व्यापारे आसिया, मूल हाराइलि,
धरिया मानव दे।
आपन गरवे, आपनि डूबिछे,
तोरे बूझाइबे के॥
आइन लइया कत, विचार करिस,
दिवस रजनि जागी।
आपन विचार, करिया देख ना के
तोर पापेर भागी॥
एकाल गनिछ, पाछू ना भविछ,
आपना आपनि दड़।
भाविछ शमने, फाँकि दिबे भाई,
निजे चतुर बड़॥
ए घर ए बाड़ी, जत टाका कड़ि,
ए मोर ओ मोर कथा।

क्षणेके सकल, हइबे विफल,
तूमि बा थाकिबे कोथा॥
दारा सुत लये, आमोद प्रमोद,
काटालि सकल दिन।
नयन मूदिया, भाविया देखना,
परमायु कत दिन॥
धन्य कलिजुगे, जनम पेयेछ,
भारत भूमेते वास।
हेलाय श्रद्धाय, हरि हरि बल,
पूरिबे मनेर आश॥

इस प्रकार बहुत देर तक नाना प्रकार का मन:शिक्षा-सूचक पद-कीर्तन हुआ। बाबू लोग स्तम्भित हो गये। ब्रह्मानन्दबाबू एक ओर बैठे-बैठे रो रहे थे, बीच-बीच में 'हाय-हाय' कह जोर से चीत्कार कर उठते थे। कुछ देर में जब कीर्तन समाप्त हुआ, वे व्याकुल भाव से रोते-रोते बाबाजी महाशय के चरणों में गिर पड़े। उन्होंने उन्हें उठाकर आलिंगन किया और नाना प्रकार के सान्त्वना-सूचक उपदेश दिये। इसी बीच महाप्रसाद की व्यवस्था हो गई। सब महाप्रसाद पाने बैठे। ब्रह्मानन्दबाबू कुछ दूर खड़े थे। बाबाजी महाशय ने पुकारकर कहा 'आओ भाई! मेरे पास आओ।'

ब्रह्मानन्द—जी, मैं आप लोगों के बीच आने योग्य नहीं।

बाबाजी—क्यों भाई, यह तो महाप्रसाद है, चिन्मय वस्तु है। इसमें स्पर्शदोष नहीं होता। तुम नि:संकोच मेरे पास आकर बैठो।

ब्रह्मानन्दबाबू बाबाजी महाशय की बात की अवहेलना न कर सके; उनके पास जाकर बैठ गये। बाबाजी महाशय के आदेश से एक व्यक्ति ने उनके सामने एक पत्तल डाल दी। पुजारी ने महाप्रसाद परोस दिया। ब्रह्मानन्दबाबू की तो अवस्था ही कुछ और हो गई। महाप्रसाद क्या पायें, उनका मन तो बाबाजी महाशय के हर व्यवहार पर बलिहारी जा रहा है। वे सिर्फ उनकी भाव-भङ्गिमा देख रहे हैं। महाप्रसाद पाकर सबने बैठक में विश्राम किया। पासवाले कमरे में बाबाजी महाशय के विश्राम की व्यवस्था की गई। बड़े सबेरे ही प्रात:कालीन नित्यनियम पूराकर वे जाने को थे, उसी समय ब्रह्मानन्दबाबू अत्यन्त विनीत भावसे आकर बोले 'आज यहीं ठहरकर इस अधम के पशुजीवन का उद्धार कीजिये। मैं घोर पाखण्डी हूँ। शास्त्रों में अजामिल, रत्नाकर, जगाइ-माधाइ आदि का वर्णन किया गया है, पर मैं उनकी अपेक्षा करोड़गुना निकृष्ट हूँ। आपके अतिरिक्त और कोई है अथवा हो सकता है जो मेरा उद्धार करे, इस पर मुझे विश्वास नहीं। आपको इस पतित का उद्धार करना ही पड़ेगा।' बाबाजी महाशय ने थोड़ी देर सोचकर कहा 'निताइचाँद पतितपावन हैं। उनकी इच्छा हो तो कुछ भी असम्भव नहीं। आज हम लोगों को यहाँ रोकने की निताइचाँद की इच्छा नहीं लगती। तुम दु:खी मत हो भाई! प्रभु इच्छा हुई तो फिर मिलना होगा।' कह कर 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' नाम करते-करते प्रस्थान किया।

पहले ही कहा जा चुका है कि बाबाजी महाशय कभी किसी से रास्ता नहीं पूछते थे। आप चरणपर चरण रख नाचते हुए जा रहे हैं; साथी लोग भी नृत्य करते जा रहे हैं। ब्रह्मानन्दबाबू साथ में हैं। प्राय: एक मील चलकर एक पेड़ के नीचे बाबाजी महाशय ठिठक कर खड़े हो गये। उनके अर्द्धमुद्रित नेत्रों से अविरल अश्रुधार बहने लगी। सारा शरीर पुलक से भर गया, गण्डस्थल एकदम लाल और कम्पायमान हो गये। इधर ब्रह्मानन्दबाबू संकीर्तनदल के पीछे रोते-रोते चुम्बकाकृष्ट लोहे की तरह द्रुतगति से आकर बाबाजी महाशय के चरणों में गिर पड़े। वे चौंककर पैरों में ब्रह्मानन्द को पड़ा देख बोले 'आहा बलिहारी! कैसी करुणा है? लीलामय की लीला की बलिहारी।' कहकर ब्रह्मानन्दबाबू को उठाकर आलिंगन-दान कर उनके कान में मन्त्र प्रदान किया। साथी लोग खुशी से पागल हो गये। ब्रह्मानन्दबाबू पुन: उनके चरणों में गिरकर कहने लगे 'प्रभो! मैं घोर शराबी, असच्चरित्र, नारकी जीव हूँ। मेरा विश्वास है कि मेरा उद्धार करने के लिये ही आपका अवतार हुआ है। प्रभु, मैं अपनी अवस्था को समझा सकूँ, ऐसी भाषा मेरे पास नहीं है। आप अन्तर्यामी हैं, सभी जानते हैं और जान रहे हैं। मैं और क्या कहूँ? इस अधम का भार आपके श्रीचरणों पर

है।' कहकर बच्चे की तरह जोर से रोने लगे। बाबाजी महाशय ने नाना प्रकार के सान्त्वना वाक्यों द्वारा उन्हें धैर्य देकर घर वापस भेज दिया और पुन: नाम करते-करते वैतरणी स्टेशन की ओर चल पड़े। स्टेशन के पास एक गाँव में जैसे ही पहुँचे, कुछ भक्त लोग आकर विशेष आग्रह के साथ कहने लगे 'हम सभी की अभिलाषा है कि इस समय यहीं विश्राम कर हम लोगों को कृतार्थ करें। अनुमति हो तो ठाकुरजी के भोग की व्यवस्था की जाय।' बाबाजी महाशय ने भक्त लोगों का अनुरोध मान लिया। सुचतुर साथियों ने थोड़ी ही देर में रसोईकर ठाकुरजी को भोग लगाया। इधर बाबाजी महाशय ने स्नानादि कर 'जय जय नित्यानन्दाद्वैत' कीर्तन आरम्भ कर दिया। गाँव बहुत छोटा था। स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध सभी भक्त थे। सभी अपने-अपने गृहकार्यों को छोड़ उस पेड़ के नीचे इकट्ठा हो गये। क्रमश: कीर्तन समाप्त कर, महाप्रसाद पाकर सब यथासमय स्टेशन पहुँचे। आधा घण्टे पीछे गाड़ी आई, सब उसमें बैठकर श्रीधामपुरी के लिये रवाना हुए।

श्रीधामपुरी-प्रत्यावर्तन

रात ग्यारह बजे गाड़ी पुरी स्टेशन पहुँची। गाड़ी से उतर कर बाबाजी महाशय ने सबसे कहा 'मेरे साथ कोई न रहे; तुम सब नाम करते-करते झाँजपीटा मठ चले जाओ। मैं इस बार राधारमण कुञ्ज में ठहरूँगा' पहले तो सबने उनसे अलग रहने की अनिच्छा व्यक्त की, पर जब वे किसी प्रकार न माने तो सभी नाम करते-करते चल पड़े। ज़ाजपुर से स्टेशन आते समय ललिता दासी के पैर में काँटा लग गया था। इसलिये वे धीरे-धीरे जा रही थीं। उनके मन में यह बात थी कि वे किसी कौशल से बाबाजी महाशय के साथ जायें। बाबाजी महाशय लोटा हाथ में ले स्टेशन से समुद्र की ओर जानेवाले रास्ते पर चलने लगे। ललितादासी भी धीरे-धीरे उनके पीछे-पीछे चलने लगीं। एक पुल के पास पहुँच कर बाबाजी महाशय ने पूर्व की ओर के मैदान में प्रवेश किया। ललितादासी पुलपर खड़ी रहीं। थोड़ी देर बाद जैसे ही वे लौटे, एक पुलिस के सिपाही ने उन्हें यात्री समझकर कहा 'आप कौन हैं, यहाँ पाखाना करते हैं? चलिये थाने चलना पड़ेगा।' बाबाजी महाशय अप्रतिम भावसे बोले 'भाई, क्या करूँ? मुझे जाना पड़ा, अब निताइचाँद की इच्छा से जो चाहो सो करो। थाने जाना हो तो वहाँ चलो। मुझे भी लाभ होगा, क्योंकि बहुत दिनों से बंकिमबाबू, पूर्णबाबू आदि से मिलना नहीं हुआ। इस उपलक्ष्य में उनसे भी मिलना हो जायेगा।' ज्योत्स्ना भरी रात थी। सिपाही ने थोड़ा पास आकर जैसे ही बाबाजी महाशय को पहचाना, वह बोला 'महाप्रभु! मैं पहचान नहीं सका, मेरा अपराध न लें' और कहकर द्रुतगति से चला गया। बाबाजी महाशय मृदु हँसकर चलने लगे। ललिता दासी भी पीछे-पीछे जाने लगीं। यथासमय राधारमण कुञ्ज पहुँचे। मठ के अधीश्वर श्रीराधारमणजी सोये हुए थे। उन्हें जगाया नहीं। ललितादासी ने बाबाजी महाशय का बिस्तर लगा दिया। उनसे खाने के लिये पूछा तो उन्होंने अनिच्छा प्रकट की। इसलिये रसोई की व्यवस्था नहीं की गई। बाबाजी महाशय सो गये। साथ में जो दो-एक लोग थे वे भी सो गये।

बालमुकुन्द बाबू से भेंट

झाँजपीटा की सेवा-पूजा का भार कुसुम मंजरीदासी सखी पर था। वहीं रहकर बाबाजी महाशय के साथी मधुसूदनदास भिक्षा करते थे। राधारमण कुञ्ज में कुञ्जदास बाबाजी, ललितादासी एवं रसरङ्गिनी दासी सखी आदि कुछ लोग बाबाजी महाशय के साथ थे। श्रीश्रीराधारमणदेव की सेवा के लिये एक सेर चावल की रसोई की व्यवस्था की गई। स्थानीय डिप्टी बालमुकुन्दबाबू बाबाजी महाशय का कीर्तन सुनने की इच्छा कई बार व्यक्त कर चुके थे। अभी तक इसके लिये सुविधा नहीं हो सकी थी। एक दिन उनके घर बाबाजी महाशय का सपार्षद निमंत्रण था। ललितादासी और कुसुमदासी वहाँ रसोई करने गईं। दस बजे के लगभग बाबाजी महाशय भी कीर्तन लेकर पहुँचे। उस दिन रविवार था। बालमुकुन्दबाबू का दफ्तर बन्द था, अत: उनके लिये कीर्तन सुनने की विशेष सुविधा थी। यद्यपि वे वैष्णव धर्म में दीक्षित न थे, वे परम श्रद्धावान एवं अत्यन्त मधुर स्वभाव के थे। कोमल वस्तु से दूसरी वस्तु का संयोग सहज ही हो जाता है। आज

बालमुकुन्दबाबू के हृदय पर भी भगवत्प्रेम की छाप पड़ गई। संकीर्तन से उनका हृदय और भी पिघल गया। आँखों में पानी भर आया और भगवत्-उपासना के विषय में जानने की उत्कण्ठा जाग्रत हुई। वे व्यग्रता- पूर्वक बाबाजी महाशय से दीक्षा के लिये कहने लगे। उन्होंने भी उनके मधुर भाव से मुग्ध हो उन्हें गले से लगा लिया और उनकी उत्कण्ठा को और भी बढ़ाने की दृष्टि से महाप्रसाद ग्रहण कर वासस्थान को प्रस्थान किया।

बालमुकुन्द बाबू की उत्कण्ठा क्रमशः बढ़ने लगी। एक दिन जब उन्होंने विशेष आग्रह किया तो बाबाजी महाशय ने उन्हें मंत्र प्रदान किया। तभी से बालमुकुन्द बाबू रोज एक बार कुञ्जमठ आते हैं और बाबाजी महाशय का अधरामृत ग्रहण कर दफ्तर जाते हैं। घटनाक्रम से मजिस्ट्रेट साहब उनसे कुछ नाराज हो गये। कारण यह था कि बालमुकुन्दबाबू कुछ स्वतन्त्र स्वभाव के थे। कचहरी जाने के समय कभी-कभी नाक पर तिलक लगाकर जाते थे। उनकी मूछें भी खूब बड़ी-बड़ी थीं। एक दिन बाबाजी महाशय बोले 'देखो बालमुकुन्द! इन मूँछों से तुम ठीक व्रजगोपों जैसे लगते हो। देखना, कहीं इन्हें साफ न करा देना।' पता नहीं बाबाजी महाशय की इस बात का उन्होंने क्या अर्थ लगाया, दूसरे दिन जब वे मूँछें साफ कर बाबाजी महाशय के पास आये तो उन्हें देखते ही बाबाजी महाशय बोले 'अरे पगले! तुझसे मूँछें साफ करने को मना किया था। यह क्या किया?' उन्होंने उत्तर दिया 'बाबा, ठीक ही हुआ। गले में तुलसी की कण्ठी और मुँह के ऊपर मूँछें! दोनों में कैसा एक विरोध सा लगता था। आज मूँछें साफ कर मन बहुत प्रसन्न है।' अनुभव की बात सुन बाबाजी महाशय ने उन्हें आलिंगन प्रदान किया। इधर उनके साहब पता नहीं कैसे, क्रमशः और भी विरक्त होते गये और उनका वेतन कम करने की चेष्टा करने लगे। एक दिन नौ बजे के लगभग बालमुकुन्दबाबू दफ्तर की पोशाक में कुञ्ज-मठ आये। दैवयोग से थोड़ी ही देर पहले एक पण्डा जगन्नाथ देव की प्रसादी गेंदे के फूलों की एक मोटी-सी माला बाबाजी महाशय को पहनाकर गया था। बालमुकुन्दबाबू ने प्रणाम किया, त्यों ही बाबाजी महाशय ने वह माला उनके गले में डाल दी और राधाविनोद को आदेश दिया कि बालमुकुन्दबाबू के मस्तक पर तिलक लगा दें। उन्होंने बड़ा-सा तिलक लगा दिया। बालमुकुन्दबाबू ने बाबाजी महाशय का अधरामृत लेकर बड़े आनन्द से कचहरी के लिये प्रस्थान किया। साहब उनसे नाराज तो थे ही, आज उन्हें माला-तिलक में कचहरी आया देख गुस्से में आग-बबूला होकर बोले 'यह क्या?'

बाल—साहब! यह हमारे भगवान् की प्रसादी माला है।

साहब—दफ्तर में इस प्रकार से आना एकदम गलत है।

बाल—क्यों साहब, दफ्तर के साथ क्या धर्म का कोई सम्बन्ध नहीं?

साहब—हो, तब भी ऐसी वेश-भूषा में आना ठीक नहीं।

बाल—क्यों साहब, आप भी तो अपनी पोशाक में आये हैं। मैं अपनी पोशाक में आया हूँ, इसमें क्या बुराई है? मैं यदि कोई गैरकानूनी अथवा सरकार का अनिष्ट करने वाला काम करूँ, तो दूसरी बात है।

कुछ देर बाद साहब बोले 'मैं तुम्हारा वेतन कम कर दूँगा।'

सुनकर बालमुकुन्दबाबू ने कहा 'साहब वेतन कम करने की इच्छा हो तो कीजिये, कोई आपत्ति नहीं, पर मैं स्वधर्म नहीं छोड़ सकता।' आश्चर्य! साहब उनकी स्वधर्म-निष्ठा देखकर अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और इस बात की चेष्टा करने लगे कि उनके वेतन में कुछ वृद्धि हो। उस दिन से साहब का बालमुकुन्दबाबू के प्रति द्वेषभाव प्रेम-भाव में परिणत हो गया। नाना कारणों से बालमुकुन्दबाबू का भक्तिभाव दिनों-दिन बढ़ने लगा। उनका स्वभाव ठीक बच्चे जैसा था। बाबाजी महाशय को दूर से देखते ही वे दौड़कर उन्हें दण्डवत् प्रणाम करते और चार-पाँच मिनट तक उनके पेट पर अपना सिर रखकर परमानन्द अनुभव करते। कोई पूछता तो कह देते 'जिस दिन मैं बाबाजी महाशय के पेट पर सिर नहीं रखता, वह दिन बड़ी अशान्ति में बीतता है।'

ललितादासी की परीक्षा

राधारमणकुञ्ज में नित्य एक सेर चावल की रसोई होती है। श्रीराधारमण देव के भोग के बाद जब बाबाजी महाशय प्रसाद पा लेते हैं तो अन्य लोग अधरामृत लेते हैं। झाँजपीटा मठ में भोग के बाद वहाँ रहने वाले वैष्णवों की सेवा होती है, तत्पश्चात् कुसुममञ्जरीदासी महाप्रसाद लेकर आती हैं, जिसे ललितादासी, रसरङ्गिनीदासी और कुसुममञ्जरीदासी आदि सेवन करती हैं। एक दिन पता नहीं बाबाजी महाशय के मन में क्या आया, एक सेर चावल की रसोई हुई और राधारमणदेव को भोग दिया गया; बाबाजी महाशय तीन-चार लोगों के साथ बैठकर सारा महाप्रसाद सेवन कर गये। अकस्मात् कुछ भक्त आ पहुँचे तो वे बोले 'देखो, थोड़े-से चावल और पकाकर राधारमण को भोग लगाओ।' सुनते ही नवद्वीपदादा पास के कुञ्जविहारी राय के घर से दो सेर चावल भिक्षाकर लाये; ललितादासी ने उनमें से एक सेर चावल सिद्धकर राधारमणदेव को भोग लगा दिया। भोग के बाद बाबाजी महाशय ने उस महाप्रसाद में से थोड़ा-सा ग्रहण किया, फिर भक्त लोग उसी अधरामृत को पाकर जैसे ही उठने को हुए, कुछ भक्त और आ गये। बाबाजी महाशय ने पूर्ववत् रसोई करने का आदेश दिया। ललितादासी ने बचे हुए चावल भी पका लिये। इसी समय झाँजपीटा मठ से महाप्रसाद आया। बाबाजी महाशय के आदेश से दोनों महाप्रसादों को मिलाकर भक्त लोगों को दिया गया। फिर जो कुछ बचा, उसे खाने को कुसुमदासी और रसरङ्गिनी दासी को बाबाजी महाशय ने आदेश दिया। दोनों ने कहा 'दीदी ने अभी तक कुछ नहीं खाया।' सुनकर बाबाजी महाशय ने कुछ गुस्से में कहा 'अच्छा, तुम लोग पाओ, उसकी चिन्ता मत करो।' जो कुछ बचा था दोनों पा गईं।

बाबाजी महाशय ललितादासी को कामकाज करने के लिये इस प्रकार एक के बाद एक आदेश देते जाते थे कि वे इच्छा होते हुए भी प्रसाद नहीं पा सकती थीं। सब लोग प्रसाद पा चुके तो बाबाजी महाशय ने विश्राम किया। उसी समय एक व्यक्ति जेनामठ से कुछ चिड़वा, दूध और मिठाई लेकर आया। बाबाजी महाशय को सोता जान जैसे ही वह यह सब चीजें लेकर बड़ी सावधानी से राधारमणदेव के सहन में पहुँचा, आप कमरे में से बोल पड़े 'देखो, यह सब चीजें ठाकुरजी के जगने पर बाद में भोग दी जायँगी। इस समय मेरे कमरे में रख जाओ।' ललितादासी समझ गईं कि आज उन्हें कुछ नई लीला करनी है। अत: वे हँसते-हँसते सब चीजें बाबाजी महाशय के कमरे में रख आईं।

चार बजे के लगभग पूर्वोक्त वस्तुएँ राधारमणजी को समर्पित की गईं। बाबाजी महाशय ने हाथ-मुँह धोकर थोड़ा-सा प्रसाद स्वयं लिया और बाकी सारा अपने हाथों से भक्तजनों में बाँट दिया; ललितादासी रह गईं। वे उनकी ओर देखकर मृदु-मृदु हँसते हुए बोले 'अरे! इसे तो भूल ही गया। खैर, बर्तनों में जो लगा रह गया है, उसी से इसका काम चल जायेगा।' ललितादासी ने भी हँसते-हँसते उँगली से थोड़ा-सा अधरामृत लेकर पात्रादि साफकर रख दिये। आश्चर्य! उस किञ्चित् अधरामृत से ही उनकी भूख मिट गई और परम तृप्ति लाभ हुई!

सन्ध्या से पहले बाबाजी महाशय जगन्नाथ-दर्शन के लिये निकले। जाते समय भुवन साउके घर से कुछ पूड़ी-कचौड़ी और मोहनभोग प्रसाद आया। उन्होंने एक पूड़ी का टुकड़ा तोड़कर उनके बड़े लड़के से कहा 'ले जाओ, कहना कि यह मेरा अधरामृत है।' उस लड़के ने भी कुञ्जमठ जाकर उनके आदेशानुसार कार्य किया। इधर बाबाजी महाशय ललितादासी से कह गये थे 'मेरे लिये यदि कुछ खाने को आये, तो सावधान! उसे खत्म मत कर देना।' ललितादासी ने भुवन साउके बड़े लड़के निताइदास के हाथ से थाली लेकर घर के भीतर रख दी। रात नौ बजे के लगभग बाबाजी महाशय ने लौटकर ललितादासी से पूछा "मेरे लिये जो खाने को आया था वह कहाँ है?"

ललिता—क्यों, वह तो अधरामृत था। मैंने सारा पा लिया।

बाबाजी—किसने कहा था अधरामृत है?

ललिता—क्यों, आपने ही तो निताइदास के द्वारा कहला भेजा था।

बाबाजी—वह तो झूठ था। मैंने तेरी परीक्षा के लिये कहा था।

ललिता—तो जब आपकी बात झूठ हो सकती है, तो मेरी भी झूठ है।

इतना कह उन्होंने पूड़ी-कचौड़ियों का थाल लाकर बाबाजी महाशय के आगे रख दिया। बाबाजी महाशय कुछ विस्मित हुए और उन्होंने थाल में से थोड़ा सा स्वयं ग्रहण कर ललितादासी से खाने को कहा। काम से अवकाश मिलने पर ललितादासी ने उपस्थित लोगों के साथ प्रसाद सेवन किया।

टोटागोपीनाथ का नटवर वेश

इस प्रकार परमानन्द में दिन बीतने लगे। बाबाजी महाशय कीर्तनानन्द में सपार्षद श्रीगौरांग देव के साथ क्रमशः श्रीश्रीजगन्नाथदेव की रथयात्रा, गुंडिचामार्जन आदि लीलाएँ पूर्ववत् आस्वादन करने लगे। देखते-देखते कार्तिक मास आ गया; श्रीश्रीजगन्नाथदेव का नटवर वेश आरम्भ हो गया और इन्हें बालधूप नामक भोग दिया जाने लगा। एक दिन बाबाजी महाशय अपने सभी साथी-सहचरों को लेकर टोटागोपीनाथ के दर्शन करने गये। गोपीनाथजी के साथ राधाभावाविष्ट श्रीगौरांगदेव का मिलन करा मन ही मन जाने क्या सोचा वे ही जानें। पुजारी से पूछा 'आप गोपीनाथजी को नटवर वेश में सजा सकेंगे?' पुजारी ने उत्तर दिया 'आपकी कृपा हो तो अवश्य सजा सकूँगा।' यह सुनकर प्रसन्न हो वे अपने स्थान को लौट आये।

दूसरे दिन प्रातः नित्यकर्म के बाद बलरामबाबू को बुलवा कर बोले 'देखो बलराम! गोपीनाथ को नटवर वेश में देखने की अभिलाषा जगी है, इसलिये भिक्षा के लिये बाहर निकलने का विचार है।' बलरामबाबू ने कहा 'नटवर वेश में ऐसा क्या खर्च होगा? उसके लिये भिक्षा करने की क्या आवश्यकता है?' बाबाजी महाशय ने थोड़ा हँस कर कहा "देखो बलराम! भिक्षालब्ध वस्तु द्वारा भगवत्सेवा करने से जितनी प्रीति होती है, उतनी किसी एक व्यक्ति के पैसे से करके नहीं होती। इसलिये चलो, सब मिलकर भिक्षा करें।" इतना कहकर 'भज निताइ गौर राधेश्याम। जप हरे कृष्ण हरे राम' नाम करते हुए भिक्षार्थ निकल पड़े।

साथ में बहुत लोग हैं। खोल-करताल बज रहे हैं। पहले पुरीवासियों ने सोचा कि बाबाजी महाशय नगर-कीर्तन के लिये निकले हैं, पर जब देखा कि उनके कन्धे पर झोली है, तो सभी हड़बड़ाते हुए बलरामबाबू से पूछने लगे 'आज किस उपलक्ष्य में बाबाजी महाशय भिक्षा के लिये निकले हैं?" बलरामबाबू ने कहा 'टोटा गोपीनाथ का नटवर वेश करने की इच्छा है, सो भिक्षा के लिये निकले हैं।' सुनते ही सब अपनी-अपनी इच्छानुसार कोई पाँच, कोई दस, कोई दो-दो एक-एक रुपये बाबाजी महाशय की झोली में डालने लगे। थोड़ी देर भ्रमण कर झाँजपीटा मठ लौटे। झोली को उलटकर बलरामबाबू ने गणना की और बताया कि तरानवे रुपये चार आने भिक्षा में प्राप्त हुए हैं। बाबाजी महाशय ने गोविन्ददादा से कहा 'देखो गोविन्द! गोपीनाथजी के नटवर वेश के लिये वस्त्रादि जिस-जिस वस्तु की आवश्यकता हो, संग्रह करो।' गोविन्ददादा हँसते-हँसते बोले 'खाली नटवर वेश से तो काम न चलेगा; लीलाकीर्तन, नृत्य एवं वैष्णव-सेवा भी तो होनी चाहिये।' बाबाजी महाशय बोले, 'अच्छा, तुम लोग सरल प्राण से प्रार्थना करो, निताइचाँद की इच्छा से पैसों का अभाव नहीं होगा।' बलरामबाबू ने कहा, 'बालकों की नृत्य-मण्डली बुलवा लेना ठीक न होगा?'

बाबाजी—कहाँ का दल ठीक रहेगा?

बलराम—सत्यवादी के बिहारीबाबू का दल बहुत अच्छा है, उनका लड़का खूब नाचता है।

बाबाजी—तो ठीक है। उन लोगों को सूचना भिजवा दो।

बलरामबाबू ने प्रसन्न हो सत्यवादी को एक आदमी भेज दिया और नाना प्रकार की वेश-भूषाओं का प्रबन्ध करने लगे। बाबाजी महाशय ने शिबुदास को बुलवाकर गोपीनाथ के घर दो मन दूध की सूजी की खीर और एक सौ रुपये के जगन्नाथ-भोग की व्यवस्था करने के लिये कह दिया। सभी पुरीवासी वैष्णवों को निमंत्रण भिजवा दिया। दूसरे दिन सुबह

गोविन्द दादा को वेश बनाने के लिये भेज दिया। तत्पश्चात् सभी लोग स्नानादि कर आठ बजे के लगभग नाम करते-करते चल दिये। बलरामबाबू ने बिहारीबाबू के दल को लिवा लाने के लिये एक व्यक्ति सत्यवादी भेजा। गोपीनाथजी के भोग के लिये रसोई होने लगी। इधर गोविन्ददादा और एक पुजारी ठाकुरजी का नटवर वेश बनाने लगे।

दस बजे के लगभग गोपीनाथ के दर्शन खुले। भीड़ का कुछ ठिकाना नहीं। दर्शन भी अपूर्व! जो कोई गोपीनाथजी के दर्शन करता है, वह मानो जीवन भरके लिये उनके श्रीचरणों में बिक जाता है। कोई आनन्द में नाच रहा है, कोई गोपीनाथ के चन्द्रमुख की ओर देख-देख फूट-फूट कर रो रहा है। यथासमय गोपीनाथजी के भोग की व्यवस्था हुई। भोग-आरति-कीर्तन के बाद उन्हें शयन कराया गया। ये लोग भी महाप्रसाद पाकर थोड़ा विश्राम करने लगे।

इधर बिहारीबाबू का दल आ पहुँचा; गाना आरम्भ हो गया। बिहारी का लड़का अपूर्व नृत्य-गान कर रहा था। बाबाजी महाशय प्रेम-विभोर हो गान सुन रहे थे। संकीर्तन के भावों के साथ नृत्य-परायण लड़का ऐसा अपूर्व अभिनय कर रहा था कि सभी विस्मित हो गये। रात सात बजे के लगभग गान समाप्त हुआ। इधर वैष्णव-मण्डली के आने पर महाप्रसाद पंगत आरम्भ हुई। श्रीगोपीनाथजी के ऐसे अपूर्व दर्शन थे कि जो भी एकबार उनकी ओर देखता वही मुग्ध हो जाता। जब सभी महाप्रसाद पा चुके तो पता नहीं बाबाजी महाशय के मन में किस भाव का संचार हुआ, उन्होंने स्वयं कीर्तन आरम्भ किया।

व्रज अभिसारिनीर भावे विभावित
रसमय गौरकिशोर।
स्वरूपेर करे धरि कहे शुनो सहचरि
काँहा मोर रसिकशेखर।
ना हेरि शे चाँदमुख बिदरिया जाय बुक
खने जुग सम मोर लागे।
चूड़ाय मयूरपुच्छ मल्लिका मालति गुच्छ
सदाइ हियार माझे जागे।
(सइ) कि खने हेरिनु[1] रूपखानि।
मदनमोहन ठाम जिनि कत कोटि काम
ताहे आधो बंकिम चाहनि[2]।
गले वनमाला दोले रमणीर मन भूले
कटिते किंकिणीं भालो साजे।
कपाले चन्दन चाँद भुवनमोहन फाँद
चरणे नूपुर घन बाजे।
पीतबास करे शोभा बिजुरी जिनिया आभा
नटवर नागर राज।
रजनी अधिक भेलो गुरुजन घुमाओलो
चल सबे ना कर बेआज।

★ ★ ★ ★ ★

बाम अंगुलि बाम नासिकाते दिलो।
श्रीहरि सऊँरि बाम पद बाड़ाइलो॥
स्वरूप रामानन्द दोंहे चले दूइ पाशे।
चलिते चलिते पहुँ कहये तरासे॥
अबश हइल गा चलिते ना पारि।
कत दूरे वृन्दावन कह सहचरि॥
स्वरूप कहये आर बहु दूर नय।
श्याम-अङ्ग सौरभ गन्ध नासिकाते बय॥
शुनिया आनन्दे पहुँ विभोर हइया।
प्रवेशिलो वृन्दावने जय जय दिया॥
वृन्दावने प्रवेशिया चारु पाने[3] चाय[4]।
निकुञ्ज माझारे[5] श्याम देखिबारे पाय॥
गोपीनाथेर बामे दाँड़ाइल गौरहरि।
नवीन जलदे जनु थिर बिजुरी॥
श्याम बामे किवा शोभा रसेर मञ्जरी।
सखीगन जय देय दुहुँ रूप हेरि॥

इस प्रकार नाना प्रकार के पद गाते-गाते आप भी आनन्द-सागर में नृत्यकर उपस्थित जनसमूह को आनन्द-सागर में डुबाने लगे। रात अधिक हो जाने पर इच्छा न होते हुए भी कीर्तन समाप्त किया। पुजारी ठाकुर को शयन कराने की तैयारी करने लगे। उसी समय बाबाजी महाशय के साथी शीतलदास और व्रजेन्द्रदास ने ओट में से मृदु स्वर से गाना आरम्भ किया-

1. देखा। 2. कटाक्ष। 3. चारों ओर। 4. देखती है। 5. बीच में।

तनु तनु मिलल रसेर आवेशे।
प्रिय सहचरिगण रहु चारिपाशे॥
कि दिब उपमा रूपेर कि दिब उपमा।
कानू मरकत मणि राइ काँचा सोना॥
अङ्गे अङ्ग हेलाहेलि बयाने बयान।
चाँद चकोर पारा नयाने नयान॥
नव जलधर किये सौदामिनी कोले।
रसेर भ्रमरा किये कनक कमले॥
आधशिरे मोहन चूड़ा आधशिरे वेणी।
शिखिकोरे दोले जनु कालभुजङ्गिनी॥

पदके पूरा होते ही बाबाजी महाशय ने भावावेश में हुंकार भरी और अचैतन्य हो गये। आसानी से यह भी पता नहीं चल रहा था कि साँस चल रही है या नहीं; निश्चेष्ट निस्पंद कठपुतली की तरह जमीन पर पड़े थे। नवद्वीपदादा आदि चार व्यक्तियों ने पास-पास बैठकर उनके शरीर को गोद में लिटा लिया और शीतलदास से कहा कि उक्त गीत फिर से गायें। बालक शीतलदास, जो बाबाजी महाशय को देखकर डर गया था, उक्त गीत पुनः गाने के लिये तैयार न हुआ। इसपर जब नवद्वीप दादा ने उसे समझाया कि बाबाजी महाशय की यह अवस्था बड़ी आनन्दप्रद है, तो उसने गान आरम्भ किया। थोड़ी देर में बाबाजी महाशय अधैर्यभाव से ठीक एक बच्चे की तरह जोर-जोर से रोते हुए जमीन में लोट-पोट होने लगे। गोपीनाथजी के बरामदे के पत्थर असमान थे, डर था कि कहीं उनसे रगड़कर उनके शरीर से रक्त न निकलने लगे। कुशल साथी अपने-अपने कौशल से भी उन्हें स्थिर नहीं कर पा रहे थे। उनका शरीर क्षत-विक्षत हुआ जा रहा था। इतना ही नहीं, जो लोग उन्हें सम्हालने की चेष्टा कर रहे थे, उनकी भी वही स्थिति हो रही थी। इधर रात अधिक हो जाने के कारण पुजारी गोपीनाथजी को शयन कराने के लिये व्यस्त थे। इसलिये नवद्वीप दादा के परामर्श से सभी ने मिलकर बाबाजी महाशय को पकड़ कर बाहर एक वट-वृक्ष के नीचे लिटा दिया। वहाँ वे कुछ देर स्तम्भित भाव से रहे। फिर आवेश में आकर श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु को लक्ष्य कर अपने जीवन की कितनी बातें करने लगे, यथा-"घर पर एक प्रकार से ठीक ही था। तुमने नाना प्रकार के चक्कर डालकर घर छुड़वा दिया। अब देश देशान्तर में भ्रमण करा रहे हो। पहले अपने रूप-गुणों से मुग्ध कर पागल कर दिया, अब पकड़ में भी नहीं आ रहे हो। याद नहीं कि स्वप्न में क्या-क्या उपदेश देकर मुझसे नीलाचल आने के लिये कहा। जब मैं साक्षीगोपाल पहुँचा तो मेरे कान में मन्त्र दिया। कब किस जगह रहना है, सदा आदेश देते रहे, पर साक्षात् दर्शन एक बार भी क्यों नहीं दिया?" इस प्रकार के न जाने कितने आक्षेप किये।

फिर एकदम भावान्तर हुआ। उन्होंने आविष्ट हो नये ढंग का श्रीगौरांगदेव का अभिसार-कीर्तन आरम्भ किया। आनन्द की अवधि न रही। सभी लोग आनन्द में आत्म-विभोर हो उनके साथ कीर्तन करने लगे। रात का तीसरा पहर बीतने को हुआ, तब कुछ प्रकृतिस्थ हो कीर्तन समाप्त किया और नाम करते हुए मठ लौटे। वह 'गोरा अभिसार', जिसकी स्फूर्ति उन्होंने श्रीयुक्त राधाकृष्ण बसु नामक उड़ीसावासी एक एकनिष्ठ बंगाली युवक में अपनी विशेष कृपाशक्ति का संचार कर कराई थी, इस प्रकार है-

नीलाचले गोराराय सङ्गेते निताइ।
स्वरूपादि रामराय श्रीवास रामाइ॥
मुरारि मुकुन्द नरहरि गदाधर।
वासुदेव वक्रेश्वर आदि सहचर॥
संकीर्तननावेशे रात्रि दिन नाहि जाने।
की भाव उठये कभु ना जाय कथने॥
जखन थाकये प्रभु काशीमिश्रावासे।
निरन्तर मग्न रहे राधाभावावेशे॥
स्वरूप रामानन्द दोहें देखि सखी बोधे।
ललिता विशाखा बलि सदाइ सम्बोधे॥
कुटिलार भये जेन अन्तरे तरास।
कदापि नाहिक शुनि मुखे उच्च भाष॥
श्यामेर विच्छेद सदा हियामाझे जागे।
श्यामगुण आलापन सदा भालो लागे॥
हेन भावे सदा प्रभुर विवश हृदय।
शारदीय ऋतु आसि हइल उदय॥
शारदीय शुभ्र निशाय चन्द्रिका उज्ज्वल।
प्रवाहित सुरभित वायु सुशीतल॥

नेहारि द्विगुण उठे भावेर तरङ्ग।
अवश हइल मनप्राण सर्व अङ्ग॥
देखि सहचरगण उत्कण्ठित मन।
प्रभुर रक्षणे सदा करे सुजतन॥

★ ★ ★ ★ ★

(एक दिन) अपराह्ने गोराशशि, काशीमिश्रगृहे बसि,
नखे क्षिति करये लिखन।
वाम करे गण्ड राखि अधोमुखे मनोदुखि,
अझोरे झरये दुनयन॥
मलिन देखिया मुख बिदरिया जाय बुक,
किसेर लागिया प्रभु काँदे[1]।
देखिया स्वरूप आसि आथे व्यथे काछे बसि[2],
हृदये धैरज नाहिं बाँधे॥
वस्त्राञ्चले नेत्रवारि, मुछाइया धीरि धीरि,
करे कर करिला धारण।
मानि नर्मसहचरि, द्विगुण नयनवारि,
उथलिलो ना जाय वारण॥
स्वरूपेर गला धरि, काँदे प्रभु गौरहरि,
फुकरि फुकरि मनोदुखे।
वाष्पे कंठ हय रुद्ध, वाक्य ना निःसरे शुद्ध,
नीरवे थाकये अधोमुखे॥

★ ★ ★ ★ ★

मनेर वेदना, कारे आमि कब, शुन गो ललिता सइ[3]।
श्यामेर विरहे, मनप्राण दहे, किसे तार देखा पाइ॥
पूरब पीरित, तूमि जानो सब, मम प्राणबाँधु काला।
केमने ताँहारे, बारेक देखिया, जुड़ाय हियार ज्वाला॥
नव जलधर, रसे ढर ढर, बरण चिकन काला।
अंगेर भूषण, अमूल्य रतन, मणि माणिकेर माला॥
नयन सुचारु, सुभंगिम भुरु, तेरछ चाहनि ताय।
अपाङ्ग नेहारि, कुलबती नारी, तेजे कुल लाज भय॥
सुरङ्ग अधरे, सुभङ्ग मुरलि, वरषे ललित रव।
कामिनी कुरङ्ग, शुनि अवशाङ्ग, धाय शेइ दिके सब॥
कृष्ण केशदाम, अति अनुपाम, ताहे बाँधियाछे चुड़ा।
मल्लिका मालती, फूल नाना जाति, चतुर्दिके आछे बेड़ा॥
तथि पड़े उच्च, चारु शिखिपुच्छ, ईषत बामेते हेला।
नेहारि कामिनी, आकुल पराणि अन्तर अनङ्ग ज्वाला॥
उन्नत नासाय, गोरोचना शोभे, ललाटे चन्दन बिन्दु।
सुनील गगन, माझे शोभे जनु, अकलङ्क पूर्ण इन्दु॥
परिसर[4] उरे, किबा शोभा करे, चारु कुसुमेर दाम।
सेरूप नेहारि आपना धिक्कारि, मुरछित हय काम॥
राता[5] उतपल[6] जिनि करतल, भुज करिकर[7] जिनि।
चम्पकेर कलि, जिनिया अंगुली, नखे कोटि शशि मानि॥
कत ना जतने, रतन बलय, परिधान भुजराजे।
अंगुले अंगुरि, शोभे सारि सारि[8], सुललित साजे॥
परिहित[9] नव, सुपीत बसन, पीत उत्तरीय गले।
नील जीमुते[10], थीर बिजुरि, शोभिछे गगन तले॥
रक्त कोकनद, जिनि पद जुग, रतन नूपुर साजे।
चञ्चल चरणे, हेलिते दूलिते[11], मधुर मधुर बाजे॥
जगमोहनिया, त्रिभंगिम ठाम, कदम्ब तलाय कानु।
राधे राधे राधे, किवा मन साधे, डाकिछे मोहन बेनु॥
शे रूप माधुरि, आहा मरि मरि, जागिछे हियार माझे।
ओइ शुनो सखि, मोहन मुरलि, गहन विपिने बाजे॥
आमि कुलवती, नवीना जुबती, कानूर पीरिति ताय।
हियार माझारे, जागे निरन्तरे, कहो कि करि उपाय॥
हास-परिहास, ललित विलास, तेरछ चाहनि[12] सइ।
सऊँरि[13] सऊँरि, धैरज[14] पासरि[15], सदा अधीरा हइ॥
शुन शुन ओइ, ओ गो प्राण सइ, श्यामेर बाँशरीरब।
बाजिछे आबार, गृहेते एबार, ना थाकिब ऐकलब[16]॥
(आमि) चलिनुएखनि, जथा नीलमणि, बिपिने बाँशरी बाय[17]।
बिलम्ब ना सय, कि हते कि हय, जाबि तोरा जदि आय॥
बलिते बलिते, प्रभु शचीसुते, राधाभावे हइ भोर।
पागलिनि प्राय द्रुत बेगे धाय, जथा श्याम चितचोर॥
आथे व्यथे उठि, तखने स्वरूप, आँगिना माझारे गिया।
दुबाहु पसारि[18], नेत्रे बहे बारि, रहे पथ आगुलिया[19]॥
सम्मुखे ताँहारे, देखि गोराराय, बलिछे बिनय बानी।
केनो गो ललिते, मम प्राणाधिके, निषेधहो मोरे तूमि॥
(आमार) मनेर बेदना, तूमि सब जानो, एखनि भूलिलेसब।
आकुल पराणि, शुनिनु जखनि, श्यामेर बाँशरीरब॥

---

1. किसके लिये प्रभु रोदन कर रहे हैं। 2. निकट बैठकर। 3. सखी। 4. प्रशस्त। 5. लाल। 6. कमल। 7. हाथी की सूंड। 8. पंक्ति। 9. पहले हुए। 10. मेघ में। 11. हिलते-डुलते। 12. चितवन। 13. स्मरण कर। 14. धीरज। 15. खोकर। 16. एक क्षण। 17. बजाता है। 18. फैलाकर। 19. रोककर।

तोमारे सतत, मम मनोमत जानिताम निरन्तर।
मम कर्मफेरे, निठुरा हइले, नहे केनो भावान्तर?
आमार पराण, करे आन चान, बिने श्याम नीलमणि।
ताँरे ना देखिया, पराण संशय, बाहिराय हेनो मानि॥
एइ वाक्य धरो, मम हित करो, तोमा ठाँइ भिक्षा चाइ।
पथ छाड़ि देहो, नाहिं निषेधहो, श्यामेर समीपे जाइ॥
जदि हित चाहो, मोरे ना बारहो[1], आर ना बिलम्ब सय[2]।
नतुबा[3] अचिरे, पराण आमारि, रहे किबा नाहिं रय॥

★ ★ ★ ★ ★

स्वरूपेर हाते धरि प्रभु गोराराय।
काकुति मिनति करि सकातरे चाय[4]॥
कभू वा विनय करि बले मृदु बाणी।
कभू वा सादरे बले प्रिय सखी मानि॥
कभू भय कभू दुःख कभू करे क्रोध।
स्तब्ध हइ थाके स्वरूप ना आइसे प्रबोध॥
क्षनेक चिन्तिया मने स्वरूप बोलय।
केमने जाइबा धनि निकुञ्ज निलय॥
राजार नन्दिनी तूमि कुलेर कामिनी।
दिवसे केमने बने जाबे एकाकिनी॥
ताहाते ब्रजेर लोक कि बलिबे शुनि।
पथिमाझे[5] आलू-थालु[6] जेनो पागलिनि॥
बातुलीर[7] प्राय देखि सबे उपहासि।
कलङ्क रटाबे नामे भालो नाहिं बासि॥
नवनीत सम तव तनु सुकोमल।
प्रखर आतप तापे हइबे बिकल॥
कमलेर दल जिनि कोमल चरणे।
कुशांकुर बिद्ध हबे ब्रजेर बिपिने॥
शुनि स्वरूपेर वाणी बले गोराराय।
के ना जाने ब्रजे श्यामकलंकिनी राइ॥
जे दिन श्यामेर रूपे मातियाछे चित।
तिलांजलि कुलेशीले दिनु सुनिश्चित॥
कि मोर कुलेर लाजे किबा लोकभय।
एखनि जाइब चलि जथा श्यामराय॥
कि मोर शरीरे काज ए शून्य जीबने।
केमने देखिबो आमि मुरलीबदने॥

बृथा निबारण मोरे ना कर ललिते।
बूझिते नारहो किबा दुःख मोर चिते॥
पाय धरि बलि सइ छाड़ो मोर पथ।
बिलम्ब हइले जानो घटिबे बिपद॥

★ ★ ★ ★ ★

मनेते चिन्तिया, जुकति करिया, स्वरूप बलिछे बाणी।
आछे एतो बेला, ना हओ उतना, बलि शुनो कमलिनी॥
जटिला मुखरा, कुटिला प्रखरा, एखनि लागाबे द्वन्द्व।
कतना खञ्जना, सहिबे जातना, कत ना बलिबे मन्द॥
शुनितेइ मात्र, प्रभु गोराराय, जटिला कुटिला बोल।
चुपे-चुपे गिया, गृहे प्रवेशिया, नेत्रे घन बहे लोर॥
बिधिरे धिक्कारि, प्रभु गौरहरि, बिलापये मने मने।
बिधि निरबोध, नाहि बोधाबोध, भावाभाव नाहि जाने॥
श्याम रूपराशि, हेरि दिवानिशि, मने छिलो बड़ो साध।
मोर नारी कुले, जनम कराये, ताहे पड़ियाछे बाध॥
ताहे कुलवती, नवीना जुबती, शाशूड़ी ननदी ज्वाला।
कत छला करि, दिवस शर्वरी, हेरिते चिकन काला॥
एबारे मरिया, जनम लइबो, धरिबो पुरुष तनु।
जखनि इच्छिबो, तखनि देखिबो, जाइया नन्देर कानु॥
काल भुजंगिनी, सम ननदिनी, शाशुड़ी व्याघ्रीर पारा।
कतइ झूरिब[8], अन्तरे अन्तरे, हेरिते दुकूल[9] चोरा॥
गुमरिया[10] काँदि, मुंइ निरबधि, फुकारि काँदिते नारि।
तुषानल जेनो, मरम बेदना, आर ना सहिते पारि॥
बलिते बलिते, हय उछलित, गोरार नयन लोर।
अझोरे झरये, निबारण नय, राधाभावे हय भोर॥

★ ★ ★ ★ ★

भावेर आवेग प्रभुर सहने ना जाय।
दन्डे दन्डे उठिया आकाशपाने चाय॥
मुहूर्तेक शत जुग सम करि मानि।
कतक्षने अस्तमित हय दिनमणि॥
भितरे बाहिरे कोथा सोयाथ[11] ना पाय।
कभू अधोमुखे बसि करे हाय हाय॥
कभू पूर्वमत बेगे उठि चलि जाय।
बहु प्रबोधिया स्वरूप प्रभुरे रहाय॥
कभू उर्द्धदृष्टि रहे दुइ कर्ण भेरी[12]॥

---

1. रोको। 2. सहन कर सकती हूँ। 3. नहीं तो। 4. देखते हैं। 5. रास्ते में। 6. अस्त-व्यस्त। 7. पागलपने की बात करनेवाली। 8. रोऊँगी। 9. वस्त्र। 10. धीरे-धीरे। 11. शान्ति। 12. खड़े करके।

हृदय भरिया शुने श्यामेर बाँशरी॥
तिले तिले शतगुणे बाड़े व्याकुलता।
देखिया स्वरूप बड़ो मने पाय व्यथा॥
हेन काले अस्ताचले गत दिवाकर।
शारद प्रदोष आविर्भाव धरापर॥
सन्ध्या-आगमने सब पारिषदगण।
क्रमे-क्रमे प्रभुपाशे कैला आगमन॥
श्रीपाद निताइ आर राय रामानन्द।
श्रीवासादि करि जत छिला भक्तवृन्द॥
आर जत भक्तजन बाहिरे थाकिला।
गम्भीराते नित्यानन्द रामराय गेला॥
प्रभुर देखिया भाव निताइर उल्लास।
धीरे-धीरे दुइजने वैसे प्रभु पाश॥
दोंहारे देखिया प्रभुर उत्कण्ठा बाढ़य।
अनंग मंजरी विशाखिका भाव हय॥
आग्रहे पूछय 'तूमि छिला सब कति।
पराण राखहो मोर करिया जुकति॥
श्यामेर विच्छेदानले दग्ध हय तनु।
त्वराय मिलाहो मोरे नन्दसुत कानु॥'
बलिते-बलिते प्रभुर भाव उथलिला।
दुहूँ गला धरि उच्चे काँदिते लागिला॥
सखीकण्ठ धरि काँदे आकुल अन्तरे।
काँहा मोर प्राणसखा श्याम नटबरे॥
काँहा मोर कानु बलि हय कण्ठरोध।
सखीगने मिलि देय प्रभुरे प्रबोध॥

★ ★ ★ ★ ★

किछुक्षण परे, गोरार अन्तरे, अभिनव भावोदय।
श्याम अभिसारे, जाइबे विचारि, आनन्दे मातिया रय॥
बरज रमणी, राइ बिनोदिनी, साजिते साजिते आश।
निपुणा सखीरे, आदेशिछे धीरे, मने मने महोल्लास॥
क्रन्दन सम्बरि, बले गौरहरि, सखीगने सम्बोधिया।
श्याम अभिसारे, जाइब सत्वरे, देहो मोरे साजाइया॥
जतन करिये, बेणी बिनाइये, दुलाइहो पृष्ठदेशे।
मालतरि हारे, ताहे थरे थरे, साजाइहो चौपाशे॥
कुँकुमेर बिन्दु, कपाले रचहो, सिन्दुरेर बिन्दु पाशे।
चंदने चर्चित, करो सर्व अंग, पराइहो शुभ्रबासे॥
कुसुम रचन, करि आभरण, साजाइहो जथास्थाने।
(आमि) श्याम नटबरे, नवीन नागरे, मिलिबो गहन बने॥
सुबासित बारि, सुवर्ण झारि, भरि लहो मोर साथे।
ताम्बुलादि जत, उपहार शत, लइ चलो अलक्षिते॥
एतेक बलिया, चलिलो उठिया, अभिसारिकार भावे।
(जेनो) निकुंज भवने, श्याम दरशने, चले राइ अनुरागे॥

★ ★ ★ ★ ★

कमलिनी भावे चले गोरा अभिसारे।
अलक्षिते सशंकिते गमन मन्थरे॥
काशीमिश्र बाटी छाड़ि समुद्रेर पथे।
अभिसारे जाय गोरा टोटागोपीनाथे॥
भक्तगण आपनारे सहचरि मानि।
राइये घिरिये चले जेनो बरज-रमणि॥
निर्मल शरद निशि फुल्ल चन्द्रोदय।
सुशीतल मन्द-मन्द बहिछे मलय॥
पुष्पोद्याने चतुर्दिके कुसुम विकास।
ज्योत्स्नामयी धरा जेनो परा[1] शुभ्र बास[2]॥
तप्त स्वर्णवर्ण तनु लिप्त मलयजे।
लाजे पूर्णचन्द्र बूझि त्यजे धरामाझे[3]॥
अंगेर छटाय दीप्ति पाय निशापति।
मन्थरे चलये श्याम अनुरागे माति॥
दक्षिणे निताइ चले वामेते स्वरूप।
गोरा अभिसार करे अति अपरूप॥
आगे आगे रामराय विशाखार भावे।
निकुंजेर पथे पथे जाय अनुरागे॥
चतुर्दिके भक्तगण मंडली करिया।
श्यामगुण गाइ चले धनिरे घेरिया॥
समुद्रेर पथे नाहि लोक गतागति।
चन्द्रकरे बालूराशि शोभा पाय अति॥
समुद्र निरखि प्रभुर जमुना स्मरण।
तीरे बालू देखि हय पुलिन भरम॥
श्यामगुण गाने प्रभु आनन्देते माति।
कभू धीरे-धीरे जाय कभु द्रुतगति॥
निताइ स्वरूप गले तुलि दुइ कर।
विवश हइये चले गोरा नटवर।
रामराये पूछे शुनो विशाखा सुन्दरि॥

---

1. पहने हुए। 2. सफेद वस्त्र। 3. अपना स्थान छोड़कर पृथ्वी पर आ गया।

कतदूरे कुंजबन कह त्वरा करि।
चलिते ना पारि आर अवश सर्वाङ्ग।
हेन काले पाय गोरा श्याम-अङ्ग गन्ध॥
फिरिया पराणि जेनो पाइला शरीरे।
चलिते लागिला गोरा अति धीरे धीरे॥
चलिते चलिते गोपीनाथेर सम्मुखे।
उपनीत गोराचाँद होन मनसुखे॥

ओइ गोराराय-

श्रीराधाभावे, दाँड़ाये गोपीनाथे चाय।
गिये गोपीनाथ आगे, देखे गोरा अनुरागे,
भावावेशे ओष्ठाधर ईशत काँपय॥
प्रणयमानेते भोला, अपाङ्गे[1] नेहारे काला,
नीरवे दाँड़ाये थाकि किछु ना बलय।
कभू दैन्ये करे स्तुति, बोले तूमि प्राणपति,
तोमा ना देखिले मोर जीवन संशय।
विषादेते गोरा राय, कभू करे हाय हाय,
मुइ अभागिनी नारी किसे तोमा पाइ॥
नयने बहिछे धारा, बोले कानु चितचोरा,
(आमि) तव पदे क्रीतदासी राख राङ्गपाय।
आमि नारी परबश, तूमि मोर सरबस,
हिया माझे थुये तोमा जीवन जूड़ाइ॥
श्याम कलंकेर डालि, माथे करि बनमाली,
जेन सदा हइ श्याम-कलंकिनी राइ।
प्रेष्ठ मानि अनुरागे, आलिंगह सबा आगे,
किंबा आदर्शने मम बिदर हृदय॥
किबा यथा तथा कुरु, तुमि लम्पटेर गुरु,
तबू प्राणनाथ मम अन्य केह नय।
गोपीनाथे गौरहरि, आत्मसमर्पण करि,
राधाभावे अनिमिखे दाँड़ाइया रय॥

टोटागोपीनाथ की सेवा-व्यवस्था

एक दिन बाबाजी महाशय झाँजपीटा मठ में बैठे थे। उसी समय वकील श्रीयुतबाबू हरिवल्लभ बसु महाशय आ पहुँचे। देखते ही दोनों ने परस्पर प्रणाम किया और प्रीतिसम्भाषण करते हुए बैठ गये। हरिवल्लभ बाबू जाने क्या कहना चाहते थे। नाना प्रकार की भगवत् कथा-आलोचना होते रहने के कारण मौका नहीं पा रहे थे। उन्होंने कुछ देर पीछे बाबाजी महाशय से पूछा "बाबा! मठ में इतनी सुन्दर सेवा चलती है, कैसे चलती है?"

बाबाजी—भाई, जिनकी सेवा है, वही चलाते हैं।

हरि—यह तो ठीक है, फिर भी कोई उपलक्ष?

बाबाजी—एकमात्र भिक्षा द्वारा ही सब काम चलता है।

हरि—किसी दिन भिक्षा न मिले, और बहुत-से वैष्णव आ जायँ, तब क्या होगा?

बाबाजी—इच्छामय प्रभु किसी को कहीं ले आते हैं, तो उसके आहार-व्यवहारादि की व्यवस्था पहले से कर रखते हैं। सोचिये, जिस समय हम माता के गर्भ में थे, उस समय आहारादि का संग्रह किस बुद्धि अथवा विद्या के कौशल से हुआ था? फिर जब इस पृथ्वी पर आये, उस समय माता के स्तनों में दूध का संचार किसने किया? तभी तो शास्त्र कहते हैं-

भोजनाच्छादने चिन्ता वृथा कुर्वन्ति वैष्णवाः
योऽसौ विश्वम्भरो देवः स किं भक्तानुपेक्षते॥

हरि—बात ठीक है, पर दृढ़ विश्वास होना चाहिये। आप में जैसा दृढ़ विश्वास है, वैसा और लोगों में होना सहज बात नहीं।

बाबाजी—भाई! वे अन्तर्यामी हैं; विश्वास होगा तो देंगे, न होगा तो न देंगे, ऐसी बात नहीं। वे अच्छे-बुरे सभी को भोजन देते हैं। हाँ इतनी बात अवश्य है कि विश्वासी के लिये यह आसान और सुखकर है, अविश्वासी के लिये थोड़ा कष्टकर।

हरि—धन की सार्थकता क्या है?

बाबाजी—सद्व्यय करना, दुःखी का दुःख दूर करना, भूखे को अन्न देना, भजनशील व्यक्ति को भजन की अनुकूलता प्रदान करना आदि बातों में ही धन की सार्थकता है।

हरि—सुन्दर! इस आश्रम में इतने वैष्णव भजन करते हैं; यदि कोई धनी व्यक्ति इन्हें कुछ भजन की अनुकूलता प्रदान करना चाहे अर्थात् इन्हें आहारादि के

1. कटाक्ष से।

लिये किसी प्रकार की चिन्ता न करनी पड़े, उसके लिये उद्विग्न न होना पड़े, इसके लिये यदि वह कुछ माहवारी की व्यवस्था करना चाहे, तो आपको कोई आपत्ति होगी? असल बात यह है बाबा कि प्रभु की कृपा से मेरे पास काफी धन है; मेरी इच्छा है कि इस स्थान के लिये कुछ पैसा नियमित रूप से हर महीने देता रहूँ, जिससे इन निष्किञ्चन वैष्णवों के भजन में कुछ सहायता हो सके।

बाबाजी—देखिये, आपको प्रभु ने धन दिया है। आपके मनमें ऐसी वासना उदय होना बड़े आनन्द का विषय है। पर एक बात है। आप समझदार व्यक्ति हैं; जो कार्य करें उसका अच्छा-बुरा फल सोचकर करना चाहिये। आप जिस भाव से इन निष्किञ्चन वैष्णवों का उपकार करना चाहते हैं, उससे उपकार की जगह अपकार होने की ही सम्भावना है। पहली बात यह है कि जिस दिन से आप मासिक व्यवस्था करेंगे, उसी दिन से इन लोगों के उपास्य देवता आप हो जायँगे। महीने के आखीर में ये लोग अपने अभीष्ट देव की चिन्ता न कर आपकी ही चिन्ता करेंगे। एक दिन की देर होगी तो आपके बारे में सोचने लग जायँगे। दूसरे ही दिन कहेंगे, कैसा आदमी है, महीना बीत गया, अभी तक पैसा नहीं दिया? अब ठाकुर-सेवा कैसे चले? इस प्रकार जितना अभाव होगा उतना ही आपके ऊपर वैष्णवों का कटाक्ष होगा। दूसरी बात, इन लोगों के मन में संकोच होगा, अर्थात् ये सोचेंगे कि बाबूजी जितना पैसा देते हैं, उसी में सारा खर्च चलाना पड़ेगा, वैष्णव-सेवा हो चाहे न हो। अब आप ही सोचिये, आपकी अर्थ-सहायता भजन की अनुकूलता हुई अथवा प्रतिकूलता? आकाशवृत्ति से भगवत्-निर्भरता आती है, इच्छा से हो चाहे अनिच्छा से। आय निर्दिष्ट होने से व्यय के विषय में संकोच होगा।

हरि—यह बात तो ठीक है, पर किस प्रकार अर्थसहायता की जाय, जिससे दोनों ही पक्षों की रक्षा हो सके?

बाबाजी—जब इच्छा हो, तभी सहायता की जाय, यही अच्छा। सामयिक दान से किसी के भी अनिष्ट की आशंका नहीं होगी।

हरि—यह तो तभी तक हो सकता है, जब तक कि जीवन है। ऐसी क्या व्यवस्था हो सकती है, जिससे कोई कार्य सदैव चलता रहे?

बाबाजी—तब तो अच्छा यह होगा कि यहाँ कुछ न कर श्रीमन्महाप्रभु के कृपादत्त श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी के टोटागोपीनाथजी की सेवा के लिये कुछ व्यवस्था कीजिये।

हरिवल्लभबाबू प्रसन्न हो बोले 'बाबा! टोटा गोपीनाथजी की सेवा के लिये दो रुपये प्रतिदिन के हिसाब से व्यवस्था हो जायगी; पर इस मठ के लिये भी कृपाकर कोई आदेश दें, तो मुझे बड़ा सुख होगा।' बाबाजी महाशय थोड़े उदास भाव से बोले "अच्छा, फिर किसी समय निताइ जो कुछ कहलवायँगे, वही होगा।" सुनकर हरिवल्लबाबू हर्ष-विषाद मिश्रित भाव से घर चले गये। आप भी अपना नित्यनियम करने लगे। इसी समय से हरिवल्लभबाबू ने टोटागोपीनाथजी की सेवा के लिये दो रुपये रोज बाँध दिये।

आनन्द मित्र से भेंट

इस प्रकार परमानन्द में दिन बीतने लगे। कई दिन हुए, नवद्वीपदादा कटक गये थे। एक दिन तीसरे पहर वे एक भद्र पुरुष के साथ पुरी धाम बाबाजी महाशय के पास पहुँचे। भद्र पुरुष ने उन्हें प्रणाम किया और कहा "आपके निकट एक प्रार्थना करना चाहता हूँ।"

बाबाजी—बड़ी खुशी से, प्राण खोलकर कहो।

भद्र—आपको कटक लिवा जाने के लिये वकील श्रीयुक्त आनन्दचन्द्र मित्र महाशय ने मुझे भेजा है। एक बार कृपाकर चलिये।

बाबाजी—आनन्द मित्र कौन हैं? हम लोग कटक गये थे, क्या उस समय उनसे मिलना नहीं हुआ?

भद्र—वे कौन हैं, मैं क्या बताऊँ। फिर भी शास्त्रों में जगाइ-माधाइ, रत्नाकर आदि के जो नाम आते हैं, उनके साथ यदि तुलना की जाय, तो मित्र महाशय किसी भी अंश में उनसे कम न थे। पर अब इन नवद्वीपदादा की कृपा से उनमें अवर्णनीय परिवर्तन

देखकर हम मुग्ध हो गये हैं। वे दादा से आपके विषय में सुनकर आपके दर्शन के लिये व्याकुल हैं।

बाबाजी—परिवर्तन कैसे हुआ?

भद्र—वह तो महाभारत है, बताने में बहुत समय लगेगा।

बाबाजी—कोई चिन्ता नहीं, बिना संकोच आद्योपान्त बताओ।

भद्र—आनन्द मित्र ३५/३६ वर्ष के एक सुन्दर गौरवर्ण युवक हैं। वे पहले रघुनाथपुर में थे। वकालत पास करने के बाद से कटक में काठगड़ासाही में मकान बनाकर रहते हैं। कायस्थ जाति के हैं। कटक के एक विशेष शिष्ट और सम्मानित व्यक्ति हैं। वकालत में भी उन्होंने बहुत थोड़े समय में विशेष योग्यता प्राप्त कर ली है। यहाँ तक कि ऐसी-ऐसी समस्याएँ, जो बड़े-बड़े वकीलों की समझ में नहीं आतीं, आनन्दबाबू सहज ही हल कर लेते हैं। हिन्दू तो वे नाममात्र के हैं; मुझे नहीं लगता कि धर्म के साथ उनका कोई सम्बन्ध भी है। आहार के विषय में वे चरमपन्थी हैं, किसी चीज से विमुख नहीं। जातिभेद को वे कुसंस्कार समझते हैं। प्रतिमापूजा को निकृष्ट धर्म की बात मानते हैं। सनातन आर्यधर्म में कोई सार है ऐसा उनका विश्वास नहीं। हाँ उनमें एक गुण है; उनका हृदय कोमल है। परदुःख देखकर उनके प्राण रो उठते हैं; पर संग-प्रभाव से बहुत बार उस भाव को हृदय की दुर्बलता मानकर उसे त्यागने की चेष्टा करने लगते हैं। वे घोर विलासी हैं। अपनी मनोवृत्ति के अनुरूप सुख-स्वच्छन्दता एवं आहार-विहारादि द्वारा शरीर की पुष्टि करना और मनको आनन्द प्रदान करना, यही मनुष्य जीवन का प्रधान कर्तव्य मानते हैं।

एक दिन की बात है। आनन्दबाबू कचहरी की पोशाक पहने रहे थे, उसी समय ये महात्मा पागलों की तरह मलिन वेश में सहास्य-वदन करताल बजाते और 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' गाते आनन्दबाबू के घर में प्रविष्ट हुए। आनन्दबाबू के नौकर-चाकरों ने अपनी बाबूजी की रुचि के प्रतिकूल इस कार्य को करने के लिये निषेध किया। पर आपका ध्यान उधर गया ही नहीं। आप आनन्द से नाम करते रहे। आनन्दबाबू ने बैठक से बाहर निकलकर पूछा 'क्या चाहता है?' पर आपको कोई होश ही नहीं, नाम में मग्न हैं। आनन्दबाबू ने थोड़ा विरक्त होकर कर्कश स्वर में कहा 'ए पागल? बात नहीं सुनता, क्या चाहता है?' इस बार मानो उनकी बात इनके कानों में पहुँची, थोड़ा मृदु हँसकर बोले 'कुछ भी नहीं।'

आनन्द—तो क्या करने आया है?

आपने उत्तर दिया-'पता नहीं।'

आनन्दबाबू एक नौकर को आदेश देकर कि उन्हें चार पैसे देकर विदा करे अपनी बैठक में चले गये। नौकर चार पैसे देने लगा, पर आप उन्हें न लेकर पूर्ववत् नाम करते रहे। इस पर आनन्दबाबू बैठक के भीतर से चीख पड़े, 'क्यों रे! पैसा देकर उसे विदा क्यों नहीं कर देता?' नौकर बड़ा डरता हुआ बाबूजी के पास जाकर बोला 'बाबूजी, वह पैसा नहीं लेता और जाना भी नहीं चाहता।' बाबूजी क्रोध में आकर बोले 'बदमाश! यहाँ बदमाशी कर रहा है, ठहर मैं आता हूँ।' नौकर दौड़कर आया और बोला 'अरे, बाबूजी आ रहे हैं, भाग जा, नहीं मार खायगा।' यह सुनकर ये थोड़ा हँसे और पहले की अपेक्षा और जोर से नाम करने लगे। आनन्दबाबू कचहरी जाने के लिये बाहर निकल कर बोले 'क्यों रे? तू क्या चाहता है?' ये उत्तर न देकर प्रेमभरी दृष्टि से उनकी ओर देखते रहे। आनन्दबाबू को निश्चय हो गया कि ये पागल है; कुछ मृदु भाव से बोले, 'ये पैसे लेकर चला जा, क्यों बेकार परेशान करता है?' इस पर भी जब इन्होंने कुछ नहीं कहा, तो आनन्दबाबू ने विरक्त होकर नौकर से कहा 'अरे चाबुक तो ला! इसकी बदमाशी अभी भुला दूँ।' सुनते ही नौकर ने कोचवान से चाबुक लाकर उन्हें दे दी, पर ये उससे जरा भी भयभीत या संकुचित न हुए; अपितु और भी आनन्दोन्मत्त हो गये। इनकी आँखों में से जाने कैसी एक आनन्दमय अपूर्व ज्योति बाहर निकलने लगी; मुख-मण्डल पुलकित हो गया, ओष्ठाधर प्रीतिपूर्ण मधुर हास्य से नृत्य करने लगे। आनन्दबाबू बड़े चक्कर में पड़े। उन्होंने तो इन्हें एक नगण्य भिक्षुक समझा था, पर उनकी परिमार्जित विचार-बुद्धि ऐसा मानने को तैयार न हुई। उनका

विवेक उन्हें इनका परिचय और ही रूप में देने लगा। वे नम्रतापूर्वक बोले 'अच्छा बताओ तुम क्या चाहते हो?' ये हँसते-हँसते कहने लगे 'मुझे कुछ खाने को दो, मैं खाऊँगा।'

'क्या खाओगे?'

'लाई (मुरमुरा)'

आनन्दबाबू चार पैसे देते हुए बोले 'ये पैसे ले जाओ; खा लेना।'

'पैसे का क्या होगा, पैसे क्या खाये जायँगे?'

आनन्दबाबू विस्मित होकर एक चवन्नी आगे फैंककर बोले 'यह लो, लाई खरीद कर खा लेना।' ये उस रजत-खण्ड की ओर देखे बिना ही हँसते-हँसते चले आये। आनन्दबाबू अपलक दृष्टि से इनकी ओर देखते रहे। कुछ ही देर में ये ओझल हो गये, आनन्दबाबू कचहरी चले गये। कचहरी तक उनके हृदय में इनके हाव-भाव व्यहारादि को लेकर एक आन्दोलन चलता रहा, फिर वहाँ के कामकाज में लग जाने से यह सब भूल गये।

दो दिन बाद प्राय: आठ बजे के समय फिर 'भज निताई गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' गाते हुए आप आनन्दबाबू के घर जा पहुँचे। वे बैठक में बैठे मुकदमे के कागजात देख रहे थे, आपका कण्ठ-स्वर सुन जाने कैसे हो गये। एक नौकर से बोले 'इस पागल को बुलाओ तो।' नौकर ने आदेश पालन किया। उस दिन इनका वेश कुछ और प्रकार का था। नाक पर ऊर्द्धपुण्ड्र-हरिमन्दिर तिलक था, शरीर से एक चादर लपेटे थे। आनन्दबाबू ने देखते ही मृदु हँसकर पूछा 'क्यों? आज क्या है मनमें? आज तो भव्य सभ्य वेश में हो। गले में माला, सिर पर तिलक, देखकर लगता है जैसे वैरागी हो! बताओ कैसे आये?'

आप निरुत्तर। आपके मृदु हास्य और सरल चितवन से आनन्दबाबू का हृदय पिघलने लगा। वे बोले 'क्यों, कोई जवाब नहीं दिया? आओ, आगे आओ।'

आप मन्त्रमुग्धवत् आनन्दबाबू की मेज के पास जाकर खड़े हो गये। आनन्दबाबू ने थोड़ा मृदु हँसकर कहा 'इस चौकी पर बैठो।' आप बैठ गये। उन्होंने फिर पूछा 'क्यों, क्या बात है, बोलो?' आप निरुत्तर।

आनन्द—तुम्हारा नाम क्या है?

आप—(मृदु हँसकर) मुझे बहुत लोग नवद्वीपदास कहकर पुकारते हैं।

आनन्द—क्या सोचकर यहाँ आये हो?

नवद्वीप—मुझे कुछ खाने को दो।

आनन्द—क्या खाओगे?

नवद्वीप—लाई।

आनन्द—सो तो समझलो दी। यहाँ कहाँ रहते हो?

नवद्वीप—मैं कंगाल हूँ, मेरे रहने का क्या ठीक? जिस दिन जहाँ आश्रय पाता हूँ, उस दिन वहीं रह लेता हूँ।

आनन्द—खाते-पीते कहाँ हो?

नवद्वीप—जिस दिन जहाँ मिल जाता है।

आनन्दबाबू एक रुपया आपके पास फेंककर बोले 'यह लो, लाई खाना चाहते थे, खाओ।'

नवद्वीप—सो तो खाऊँगा पर तुम तो नहीं दे सके न? मैं चाहता हूँ लाई, तुम दे रहे हो रुपया। संसार इसी प्रकार का है, चाहते हैं कुछ, मिलता है कुछ।

कहकर हँसते हुए आप चौकी से उठे। आनन्दबाबू थोड़े-थोड़े व्यस्त होकर बोले 'अरे सुनो, सुनो, बैठो। लाई मैं ही मँगाये देता हूँ।'

नवद्वीप—फिर किसी दिन आऊँगा।

ऐसा कह पूर्ववत् गाते हुए ये द्रुत गति से चले गये। रुपया जहाँ था वहीं पड़ा रहा। आनन्दबाबू बड़े विस्मित हो सोचने लगे, 'यह आदमी कैसा है? अवस्था भिक्षुक जैसी है, पर रुपया-पैसा लेता नहीं। पहले सोचा था पागल है, पर वार्तालाप से तो मस्तिष्क में कहीं कोई विकार मालुम नहीं पड़ता। वैष्णव का वेश है, पर वैष्णव लोग जैसे अशिक्षित-असभ्य होते हैं, यह वैसा नहीं। मेरे पास ही क्यों आता है? मैं तो धर्म-कर्म भी नहीं करता, फिर यह मेरे पास किस आशा से आता है? पूछने पर सिर्फ कहता है मुझे कुछ खाने को दो। वह भी लाई छोड़कर कोई दूसरी चीज

नहीं। दो दिन आया, दोनों बार वही बात। न मैंने दिया, न उसने खाया।' इस उथल-पुथल में घड़ी ने टन-टनकर नौ बजा दिये। वे कामकाज में लग गये। तीन-चार दिन बीते एक दिन शाम छह बजे के लगभग कचहरी से लौटकर आनन्दबाबू आरामकुर्सी पर बैठे हुक्का पी रहे थे। एक अल्पवयस्क बालिका पास ही खेल रही थी। उसी समय ये पूर्ववत् 'भज निताई गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' गाते करताल बजाते वहाँ जा पहुँचे। इन्हें देखते ही वे व्यग्र होकर बोले 'अरे आओ, आओ, मैं तुम्हें ही खोज रहा था।' किसी वस्तु का अनुसंधान करते-करते यदि अकस्मात् वह मिल जाय, तो मनुष्य आनन्द से खिल उठता है। आनन्दबाबू की भी उस समय वही अवस्था हुई। नौकर को एक और कुर्सी लाने का आदेश दिया; कुर्सी आते ही आप उस पर बैठ गये।

आनन्द—तो गुसाँई, आज क्या है मन में, बताओ?

नवद्वीप—उस दिन कह गया था। तभी लाई खाने आया हूँ।

आनन्द—लाई क्यों, और कुछ खाओ न?

नवद्वीप—नहीं नहीं, लाई खाऊँगा। दे सकते हो तो कहो, नहीं चला जाऊँगा।

आनन्द—अच्छा, मँगाये देता हूँ। (नौकर से) अरे यहाँ आ, लाई तो ला।

आदेश पाकर नौकर झटपट लाई लेने चला गया। आनन्दबाबू ने पूछा 'अच्छा, तुम रोज-रोज मेरे पास क्यों आते हो?' वे बोले 'आप बता सकते हैं, आप रोज-रोज कचहरी क्यों जाते हैं?'

आनन्दबाबू को इस बात पर थोड़ा आश्चर्य हुआ, वे बहुत विरक्त भी हुए। उन जैसे प्रतिष्ठित, सुशिक्षित, धनी व्यक्ति से एक सामान्य भिखारी इस प्रकार निर्भीक होकर प्रश्न करे, यह एक आश्चर्य चकित कर देनेवाली बात थी। आनन्दबाबू की धारणा थी कि वे शिक्षित हैं, वक्ता और सुमीमांसक हैं। अब तक संसार की सभी घटनाओं ने उनकी इस धारणा की पुष्टि की थी। जो भी कोई किसी विषय पर उनसे परामर्श करने आता था, वह उनकी तीक्ष्ण बुद्धि से हार मानकर जाता था। जो आनन्दबाबू छोटी उम्र में कानून के विषयों में बड़े-बड़े अनुभवी, प्रतिष्ठित और प्रवीण व्यक्तियों के इजलास में छक्के छुड़ा देते थे, वे ही आज एक भिक्षुक के प्रश्न का उत्तर देने में सकपका गये। अपने उस अहंकार को भूलकर इस आघात को पाकर वे बड़ी विरक्ति के साथ बोले 'मैं जिस लिये कचहरी जाता हूँ, क्या तुम भी उसी लिये मेरे पास आते हो?'

नवद्वीप—तुम तो पढ़े-लिखे हो, मैं मूर्ख हूँ। तुम्हारा विज्ञान कहता है कि सभी कुछ एक नियम के आधीन है। यदि यह बात सच है, तो क्या यह सम्भव नहीं हो सकता कि मैं भी उसी लिये तुम्हारे पास आता हूँ जिस लिये तुम कचहरी जाते हो?

आनन्द—मैं यह बहुत स्पष्ट रूप से नहीं समझा।

नवद्वीप—तुम लोग सम्भवतः ईश्वर को नहीं मानते, पर नियम को मानते हो, विज्ञान को मानते हो। विज्ञान के अनुसार ही तो जिस नियम से चन्द्र-सूर्य-ग्रह आदि चक्कर लगाते हुए अपनी-अपनी जगह पर स्थिर रहते हैं, उसी नियम के अनुसार पेड़ों के पत्ते जमीन पर गिरते हैं।

आनन्द—यह ठीक है, इसे कहते हैं मध्याकर्षण शक्ति।

नवद्वीप—जो कुछ भी कहते हों; हाँ, तो मान लो कि तुम सूर्य या चन्द्र की तरह हो, क्योंकि तुम इतने बड़े वकील हो; इतना रुपया पैसा कमाते हो; तुम्हारा इतना बड़ा मकान है, कितनी ही गाड़ियाँ हैं; नौकर- नौकरानियाँ हैं, जो तुम्हारे इशारे पर चलते हैं। तुम हो इतने बड़े, और मैं एक भिक्षुक, पेट की खातिर द्वार-द्वार मारा-मारा फिरता हूँ। मैं एक छोटे-से पेड़ की पत्ती हूँ, पर हम दोनों ही संसार में घूम रहे हैं, क्या इसका कारण एक नहीं?

आनन्दबाबू का चेहरा थोड़ा लाल हो गया। विस्फारित नेत्रों से नवद्वीपदास की ओर देखते हुए बोले 'मैं कचहरी जाता हूँ पैसे के लिये, क्या तुम भी मेरे पास उसी लिये आते हो?'

नवद्वीप—तुम शायद मुझे धोखा देने के लिये ऐसा कह रहे हो, या तुम अपनी बात ठीक तरह से जानते नहीं हो।

आनन्द—क्यों, पैसे के अतिरिक्त और क्या है कचहरी में?

नवद्वीप—यदि पैसे के लिये ही जाते हो, तो पैसा पाकर चुप क्यों नहीं बैठ जाते?

आनन्द—पैसा कमाता हूँ अभाव-पूर्ति के लिये।

नवद्वीप—तो देखो, पैसे के लिये नहीं, अभाव पूर्ति के लिये कचहरी जाते हो।

आनन्द—चलो, यह समझो।

नवद्वीप—यह अभाव क्या है?

आनन्द—खाना-पीना, जीवन-यात्रा का निर्वाह।

नवद्वीप—खाना-पीना, खिलाना-पिलाना ही अन्तिम लक्ष्य है, या इसके मूल में और भी कुछ है?

आनन्द—और क्या होगा?

नवद्वीप—अच्छी तरह सोचो, हम लोग खाते- पहनते हैं अथवा स्त्री-पुत्रादि को खिलाते-पहनाते हैं, क्यों?

आनन्द—इससे हमें सुख होता है।

नवद्वीप—तो फिर तुम सब कुछ किस लिये करते हो?

आनन्द—सुख के लिये।

नवद्वीप—मैं भी अपने सुख के लिये तुम्हारे पास आता हूँ। सुना तुम्हारा नाम आनन्दचन्द्र है, आनन्द की एक किरण पाने के लिये आता हूँ।

इसी समय नौकर लाई लेकर आया। आनन्दबाबू बोले 'यह लो, तुम्हारी लाई आ गई।' नवद्वीपदास आनन्द-विभोर हो झट लाई का पात्र हाथ में लेकर बोले वाह! कितनी अच्छी लाई है। देखो भाई, मेरा एक गँवारपना है; शायद तुम्हें अच्छा न लगे। पर क्या करूँ, संस्कार या स्वभाव को छोड़ना बड़ा मुश्किल होता है। मुझे एक तुलसीपत्र चाहिये, क्योंकि लाई का भोग लगाये बिना इसे खाने में मुझे सुख नहीं होगा। शायद यहाँ तुलसीपत्र मिलना कठिन हो?'

आनन्द—नहीं, नहीं, कठिन क्यों? (नौकर से) अरे, तुलसी-पत्र ला तो।

सुनते ही नौकर तुलसी-पत्र लेने चला गया। आनन्दबाबू को चुपचाप देखकर नवद्वीपदास बोले 'क्यों भाई! क्या सोच रहे हो? भगवान् को लाई निवेदन करना कुसंस्कार मात्र है, यही न?'

आनन्द—ठीक यही बात तो नहीं, पर हाँ बहुत कुछ, क्योंकि जिसके बारे में हम सोच नहीं सकते, जिसका अस्तित्व सिद्ध करना भी दु:साध्य है उसे फिर आवेदन-निवेदन कैसा?

नवद्वीप—बहुत ठीक। यथार्थ ही हम उनका अस्तित्व निश्चय नहीं कर सकते।

आनन्द—तब फिर यह सब किस लिये?

नवद्वीप—अच्छा भाई, तुम्हारे पिता अभी हैं?

आनन्द—नहीं।

नवद्वीप—उनकी बात तुम्हें खूब याद है?

आनन्द—है क्यों नहीं?

नवद्वीप—तुमने अपने दादाजी को देखा है?

आनन्द—नहीं।

नवद्वीप—उनके पिताजी को भी शायद नहीं देखा?

आनन्द—नहीं।

नवद्वीप—इन लोगों के विषय में तुम्हें विश्वास है?

आनन्द—कैसा विश्वास?

नवद्वीप—यही कि एक दिन ये सब जीवित थे। किसी समय तुम्हारी ही तरह पैसा कमाते थे। तुम्हारे परदादा के लड़के तुम्हारे दादा, तुम्हारे दादा के लड़के तुम्हारे पिता, और अपने पिता के लड़के तुम स्वयं हो, इसका तुम विश्वास करते हो न?

आनन्द—हाँ, विश्वास करता हूँ, करता क्यों नहीं?

नवद्वीप—क्यों, किस युक्ति अथवा प्रमाण के अनुसार अपने परदादा के अस्तित्व में विश्वास करते हो?

आनन्द—(थोड़ा सोचकर) मैं स्वयं और चारों ओर का मानव समाज इस विश्वास का प्रमाण है।

नवद्वीप—अर्थात् तुम यह स्वीकार करते हो कि किसी अप्रत्यक्ष विषय पर अन्य प्रत्यक्ष विषय को देखकर विश्वास किया जा सकता है?

आनन्द—हाँ, करना ही पड़ता है।

नवद्वीप—पर ईश्वर के विषय में तो तुम ऐसा नहीं करते, और ऐसा करने को कुसंस्कार मानते हो।

आनन्द—कैसे?

नवद्वीप—और नहीं तो क्या? अपने अप्रत्यक्ष परदादा या दादा के विषय में तो प्रत्यक्ष मानव समाज को और स्वयं अपने को देखकर विश्वास कर सकते हो; पर पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण, ऊपर-नीचे जिधर भी देखो, उधर सर्वदा प्रत्यक्ष आनन्दमय के प्रकाश को देखकर भी उनमें विश्वास नहीं करते। प्रत्यक्षवाद को स्वीकार करते हो, तो सर्वत्र ही स्वीकार करो। कर्ता के बिना कर्म हो सकता है क्या? स्थावर-जङ्गम, पशु-पक्षी, गिरि-नदी, आकाश-पाताल, ग्रह-नक्षत्र, चन्द्र-सूर्य, तरु-लता, पत्र-पुष्प आदि से परिवेष्टित वैचित्र्यपूर्ण अपूर्व महिमान्वित इस जगत् के सृष्टिकर्ता को क्यों नहीं मानते? कोई उसे मानता भी है तो वह कुसंस्कार क्यों लगता है?

आनन्दबाबू हुक्के की नली मुँह में दिये चित्र-पुत्तलिकावत् आपकी बातें सुनते रहे, और क्रमशः जाने कैसे विभोर-से होने लगे। जिसे उन्होंने एक सामान्य अकिञ्चन भिक्षुक समझा था, उसे अब शिक्षित और ज्ञानी मानने को बाध्य होने लगे। इसी बीच नौकर तुलसी-पत्र लेकर आया। नवद्वीपदास ने तुलसी रखकर लाई का भोग लगाया।

आनन्दबाबू थोड़ी देर पीछे बोले 'तुम जब कभी कुछ खाते हो, तभी भगवान् को भोग लगाते हो?'

नवद्वीप—हाँ, हमारे गुरुदेव का यही आदेश है; यथासाध्य उसका पालन करने की चेष्टा करता हूँ। वे कहते हैं, 'अन्नं विष्ठा पयो मूत्रं यद् विष्णोरनिवेदितम्।' अनिवेदित वस्तु को ग्रहण करने में अपराध होता है।

आनन्द—इसका क्या मतलब?

नवद्वीप—भाई, तुम सुशिक्षित और आधुनिक सभ्यता के पक्षपाती हो। कृतज्ञता स्वीकार करना क्या आधुनिक सभ्यता का लक्षण नहीं है? हम लोग अपने स्त्री-पुत्र, नौकर-चाकर आदि से भी कोई सहायता पाकर तत्क्षणात् 'थैन्क यू' कहकर कृतज्ञता- पाश से मुक्त हो जाते हैं। तो जिसकी कृपा से माँ के गर्भ में आहार प्राप्त किया; पृथ्वी पर आते ही जिनने दया कर हमारे आहार के लिये माँ के स्तनों में दूध का संचार किया; जिनकी कृपा से दिन प्रतिदिन के उत्थान और पतन के बीच रहते हुए भी इस देह को धारण करने में समर्थ हैं; जो हर घड़ी हमारी भूख के लिये आहार, प्यास के लिये जल, जाड़ों में धूप और गर्मी में हवा देते हैं, उनके प्रति प्रतिदिन आहार के समय थोड़ी कृतज्ञता स्वीकार करना क्या बर्बरता अथवा पागलपन है? भाई, जरा आँखें बन्द कर सोचो, यदि वे न दें, तो क्या कोई दे सकता है अथवा कोई खा सकता है? कितने दिनों से मैं तुमसे एक मुट्ठी लाई खाने को माँग रहा हूँ, क्या तुम दे पाये? हमलोग सोचेंगे कि तुम जैसा एक बड़ा आदमी मुझ-जैसे भिखारी को लाई क्या, चाहे जो खिला सकता है; पर ऐसा सोचना गलत है। यदि भगवान् न दें, तो तुम्हारी तो क्या बिसात, एक सम्राट भी किसी को एक टुकड़ा नहीं दे सकता। आज उन्होंने मुझे दिया है, तो उन्हीं का दिया दान उन्हें समर्पण कर उनका प्रसाद ग्रहण करना क्या मनुष्य मात्र का कर्तव्य नहीं है?

आनन्द—कृतज्ञता स्वीकार करना ही तुम्हारे भोग लगाने का एकमात्र उद्देश्य है।

नवद्वीप—किसी विषय को हम स्वीकार करें या न करें, स्थिर चित्त से उसका मर्म ग्रहण करना मनुष्यमात्र का कर्तव्य है। किसी धर्म के विषय में यदि हम कुछ जानना चाहें और आरम्भ से ही उसके प्रति अश्रद्धा प्रदर्शित करें या सोचें कि वह कुछ भी नहीं, तो उस धर्म में कितनी ही सत्यता क्यों न हो, वह कितना ही विशुद्ध क्यों न हो, हमारा 'अहंकार' उसका यथार्थ मर्म नहीं समझने देगा। यदि हम अहंकार के उस ऊँचे मंच से नीचे उतर सकें, तो संसार की प्रत्येक वस्तु से कुछ न कुछ शिक्षा अथवा आनन्द अवश्य प्राप्त करेंगे। पर हम ऐसा नहीं करते। किसी को विद्या का गर्व है, किसी को धन का, किसी को पद का, किसी को रूप का, किसी को ज्ञान का, किसी को अपने साधन का। इस प्रकार सभी किसी न किसी प्रकार के अहंकार में मत्त हो निरन्तर त्रिताप ज्वाला से पीड़ित रहते हैं। तभी कहता हूँ भाई, तुम वैष्णव धर्म का पालन करो, या न

करो, पर शुद्ध चित्त से अर्थात् अवज्ञा-अहंकार को छोड़ सरल हृदय से उसका यथार्थ मर्म समझने की चेष्टा करो; निताइ समझा देंगे। सनातन धर्म, विशेषत: वैष्णव धर्म के प्रति तुम्हें अत्यन्त अश्रद्धा है, पर मैं तुमसे पूछता हूँ कि इस विषय में क्या तुमने कुछ विचार-विमर्श किया है, क्या शास्त्रादि पढ़े हैं? पैसा कमाने के लिये जिस तरह तुमने कानून आदि का अध्ययन किया है, उस तरह क्या वैष्णव-शास्त्रों का मन्थन किया है? यह ठीक है कि तुमने खूब पढ़ा-लिखा है, पर वह सब बेकार है, क्योंकि विजातीय प्रभावों से प्रभावित पंडितों के संकीर्ण विचारों का अध्ययन कर तुम अपने हृदय को शून्य किये बैठे हो और सर्वमंगलमय सार्वभौमिक धर्म के प्रति आस्थाहीन होकर आचार-विचार, आहार-व्यवहार में विकृत भाव धारण कर निरन्तर आत्मसुख की लालसा में घूम रहे हो।

आनन्द—बात तो ठीक है। अच्छा, मैं यथासाध्य सरल अन्त:करण से तुम्हारी बातें समझने की चेष्टा करूँगा। भगवान् को भोग लगाने का यथार्थ उद्देश्य क्या है, स्पष्ट रूप से बताओ?

नवद्वीप—और किसी कारण में विश्वास करोगे?

आनन्द—विश्वास योग्य होगा तो क्यों न करूँगा?

नवद्वीप—किसके विश्वासयोग्य?

आनन्द—मेरे।

नवद्वीप—तुम कौन हो?

आनन्द—मैं मनुष्य हूँ।

नवद्वीप—ठीक सोचकर कहो।

आनन्द—सोचना-समझना क्या? मनुष्य नहीं तो और कौन हूँ?

नवद्वीप—मनुष्य तो हो, पर मनुष्य कहने से तुम क्या समझते हो? मैं यही पूछता हूँ। अर्थात् मनुष्य के लक्षण क्या हैं?

आनन्द—भाई! इन सब बातों के विषय में तो मैंने कभी नहीं सोचा। अच्छा तुम्हीं बताओ।

नवद्वीप—तुम इतने पढ़े-लिखे व्यक्ति हो, वकालत करते हो, रोज कितनी कानून की बातों से बड़े-बड़े जज-मजिस्ट्रेटों को चक्कर में डाल देते हो और सामान्य मनुष्य का लक्षण बताने में इतना सोच-विचार? हमारे शास्त्र कहते हैं कि मनुष्य का शरीर चौबीस तत्वों से बना है। वे तत्व हैं: पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पंचभूत, पंचतन्मात्रा, मन, बुद्धि, अहंकार और महत्। है न यह बात?

आनन्द—थोड़ा और स्पष्ट करो।

नवद्वीप—पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं-वाक्, पाणि, पैर, पायु और उपस्थ (जननेन्द्रिय)। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं-आँख, कान, नाक, जीभ, त्वचा (चमड़ी)। इसी तरह पंचभूत है- पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश, वायु। और पंचतन्मात्रा हैं-रूप, रस, गंध, शब्द और स्पर्श।

आनन्द—ठीक।

नवद्वीप—तत्पश्चात् मन, बुद्धि, अहंकार और महत् हैं। संकल्प-विकल्पात्मिका वृत्तिविशेष को मन कहते हैं। निश्चयात्मिका वृत्ति को बुद्धि कहते हैं। अहंकार का अर्थ है 'मैं' 'मेरा' इस प्रकार का ज्ञान। तत्पश्चात् है महत्।

आनन्द—महत् क्या है?

नवद्वीप—महत् को समझाया नहीं जा सकता, पर समझा जा सकता है। उसे दिखाया नहीं जा सकता, पर देखा जा सकता है। उसका आस्वादन नहीं कराया जा सकता, पर आस्वादन किया जा सकता है।

आनन्द—यही तो गोलमाल है। जिसका कोई प्रमाण-प्रयोग नहीं, जो किसी को दिखाया नहीं जा सकता, समझाया नहीं जा सकता, बताया नहीं जा सकता, उसका विश्वास कैसे हो?

नवद्वीप—ठीक कहते हो। अच्छा, जिस समय तुम गहरी नींद में होते हो, उस समय तुम्हारी कर्मेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, अहंकार आदि कोई काम नहीं करते, क्योंकि उस समय यदि कोई तुम्हें गाली दे या तुम्हारी प्रशंसा करे, तो तुम कुछ नहीं समझते; हर्ष-विषाद आदि भी उस समय नहीं होते, यहाँ तक कि उस समय यदि कोई बाघ या सांप आक्रमण करे, तो तुम बुद्धिशक्ति द्वारा अपना बचाव तक नहीं कर सकते। फिर भी यह सच

है कि तुम रहते हो, और तुम्हें ज्ञान भी रहता है। वह कौन-सा ज्ञान है, बताओ?

आनन्द—उस समय हमें किसी प्रकार का ज्ञान रहता है, इसका प्रमाण क्या है?

नवद्वीप—यदि तुम्हें ज्ञान नहीं रहता, तो नींद टूटने पर नींद के समय की सुख-दु:ख की याद कैसे रहती है? तुम कहते हो, भाई, आज बड़े आराम से सोया, होश ही नहीं रहा।

आनन्द—इसी ज्ञान को महत् कहते हैं?

नवद्वीप—बिलकुल इसी को नहीं, यह है चैतन्य अर्थात् अविनाशी नित्य पदार्थ। 'महत्' शब्द का अर्थ भाषा द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि शास्त्र उसे अव्यक्त कहते हैं। इसे तो अनुभव ही किया जा सकता है। फिर मैं ठहरा मूर्ख, क्या बताऊँ? तुम एक शिक्षित व्यक्ति हो, बचपन से ही पाश्चात्य भाषा और संस्कृति का तुम्हें अभ्यास है। तुम्हें समझाना मेरी शक्ति के बाहर है। हाँ, अपने गुरुदेव से जो कुछ सुना है और सुनी बात को जितना ग्रहण किया है, उससे यदि तुम्हारी तृप्ति हो सके तो बताऊँ।

आनन्द—वह तो बताओगे, पहले मेरी एक बात का उत्तर दो। तुमलोग विदेशी भाषा और संस्कृति से इतनी घृणा क्यों करते हो?

नवद्वीप—कौन कहता है कि हम घृणा करते हैं? यदि मेरी बातों से तुम्हारी ऐसी धारणा बनी है, तो मैं समझता हूँ कि मैं अपना भाव ठीक व्यक्त नहीं कर सका। हम लोग किसी भी भाषा या भाव से घृणा नहीं कर सकते, क्योंकि हमारे गुरुदेव का आदेश ऐसा नहीं है। उनका कहना है कि अहंकार से दूषित अपनी नीच वृत्ति के अतिरिक्त इस संसार में घृणा करने के लिये और कुछ नहीं। संसार में दृश्यादृश्य सभी पदार्थ भगवान् का प्रकाश हैं; इसलिये हम यदि किसी से घृणा करते हैं या किसी की अवहेलना करते हैं तो अधर्म करते हैं।

आनन्द—तब तुम मेरे आचार-व्यवहार से घृणा क्यों करते हो?

नवद्वीप—यदि मैं तुमसे या तुम्हारे आचार-व्यवहार से घृणा करता तो तुम्हारे पास खाने के लिये आता?

आनन्द—तुम मुझसे घृणा नहीं करते?

नवद्वीप—मेरा तो यही विश्वास है; कम से कम घृणा न करने की यथासाध्य चेष्टा करता हूँ।

आनन्द—तुम्हारी बातों में पाश्चात्य भाषा और आचार व्यवहार के प्रति कटाक्ष रहता है, मैं ऐसा समझता हूँ।

नवद्वीप—कभी नहीं। कटाक्ष तो है सिर्फ स्व-धर्मत्याग के प्रति। सर्वेश्वर, सर्वान्तर्यामी, मंगलमय भगवान् ने जिस व्यक्ति को जिस स्थान में, जिस काल में, जिस अवस्था में जन्म दिया है, वह यदि तदनुकूल आचरण न करे तो उसका अमंगल होता है। हम अपनी-अपनी विद्या-बुद्धि के अहंकार में मत्त हो एक मनगढ़न्त उन्नति की कल्पना कर दूसरों के आचार-व्यवहार या धर्म का अनुकरण करने लगते हैं। क्या यह कभी हितकर हो सकता है? इसी बात को लक्ष्य कर गीता में भगवान् ने अर्जुन से कहा है—

'स्वधर्मे निधनं श्रेय: परधर्मो भयावह।'

आनन्द—तुम कहना चाहते हो कि अँगरेजी शिक्षा या पाश्चात्य सभ्यता में कोई सार नहीं?

नवद्वीप—नहीं। ऐसा कोई धर्म या व्यवहार नहीं हो सकता, जिसमें सार न हो। फिर भी देश-काल-पात्र के अनुसार अवस्था को समझकर व्यवस्था करनी चाहिये। वात के रोगी को कुनैन खिलाने से कैसे काम चलेगा? स्वधर्म को त्यागने का उपदेश भ्रामक है।

आनन्द—यदि स्वधर्म में कोई भ्रम हो, तो भी क्या उसका आचरण करना चाहिये? पिता-पितामह आदि ने सम्भवत: संस्कार या अज्ञानतावश कोई कार्य किया, मैं यदि ठीक वही नहीं करता, तो क्या वह स्वधर्म-त्याग होगा?

नवद्वीप—पहले यह देखना होगा कि वह आचरण आधुनिक है या प्राचीन। यदि वह पहले के आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट पथ है, तो वह निश्चय ही भ्रामक नहीं। मैं अपने क्षुद्र मस्तिष्क या क्षुद्र ज्ञान में उसे स्थान नहीं दे सकता, इसीलिये मुझे वह भ्रामक लगता है। पूर्वाचार्यों ने विशेष निरीक्षण कर किसी बात का स्वयं आचरण कर और उसके दोष-गुण अनुभव करके ही उसे

विधिबद्ध किया है। मैं अपने सामान्य ज्ञान को लेकर उन लोगों का आशय कैसे समझ सकता हूँ? भगवान् को निवेदन कर आहार करने के द्वितीय उद्देश्य को समझने से पहले हमें यह समझना चाहिये कि हम आहार करते क्यों हैं?

आनन्द—आहार शरीर की पुष्टि के लिये करते हैं।

नवद्वीप—सिर्फ शरीर की पुष्टि के लिये? मानसिक या आध्यात्मिक शक्ति के लिये नहीं?

आनन्द—आहार के साथ मन का विशेष सम्बन्ध है या नहीं, यह बात मैं ठीक से नहीं कह सकता।

नवद्वीप—क्यों भाई! सोचकर देखो, आहार के साथ मन का कितना निकट सम्बन्ध है। एक दिन यदि तुम ठीक समय पर खाना नहीं खाते, तो तुम्हारा मन कितना अशान्त हो जाता है। आहार करते ही मन कितना शान्त हो जाता है। यह तृप्ति कौन अनुभव करता है?

आनन्द—ठीक है। शरीर के साथ मनका घनिष्ठ सम्बन्ध है, हमारे शरीर को कुछ हो जाता है तो मनको स्थिर रखना कठिन हो जाता है।

नवद्वीप—इससे पता चलता है कि आहार से जैसे शरीर की पुष्टि होती है, वैसे ही मनकी भी होती है।

आनन्द—सो तो ठीक है; पर भगवान् को निवेदन करने की जो बात थी?

नवद्वीप—अच्छा, शरीर और मनकी पुष्टि का क्या अर्थ है?

आनन्द—शरीर की पुष्टि का अर्थ है शरीर का सबल, स्वस्थ और निरोग होना। मनकी पुष्टि का अर्थ है मन की शान्त अवस्था।

नवद्वीप—मन की शान्त अवस्था किसे कहते हैं?

आनन्द—शान्त अवस्था का अर्थ है काम, क्रोध, लोभ आदि के प्रभाव से मुक्त निर्विकार अवस्था।

नवद्वीप—हाँ, तो भोग्य वस्तु को भगवान् को निवेदन करने की जो बात है, उसे मैं कैसे समझाऊँ? तुम जैसे शिक्षित व्यक्ति को उसे समझाना मुझ जैसे व्यक्ति के लिये आसान नहीं। फिर तुम समझ भी गये, तो क्या विश्वास करोगे?

आनन्द—युक्तिसंगत बात हुई तो क्यों न करूँगा?

नवद्वीप—तो बताओ मानव-जीवन का उद्देश्य क्या है?

आनन्द—खाना, पीना, मौज करना।

नवद्वीप—आहार-विहार के अतिरिक्त मानव-जीवन का और कोई उद्देश्य नहीं है क्या?

आनन्द—और क्या होगा?

नवद्वीप—तो फिर मनुष्य-जीवन और पशु-जीवन में अन्तर क्या है?

आनन्द—पशुओं का आहार सीमाबद्ध होता है; उनकी इच्छाशक्ति उतनी विकसित नहीं होती। मनुष्य स्वाधीन है; स्वेच्छानुसार कार्य कर सकता है।

नवद्वीप—अच्छा, तुमने जीवन का उद्देश्य बताया आहार-विहार। इसका क्या अर्थ है, क्या कभी सोचा है?

आनन्द—इसमें सोचने की क्या बात है?

नवद्वीप—है क्यों नहीं? बताओ, तुम आहार क्यों करते हो?

आनन्द—भूख मिटाने और शरीर को पालने के लिये।

नवद्वीप—भूख क्या चीज है?

आनन्द—भूख का अर्थ है अभाव।

नवद्वीप—यदि अभाव को दूर करना ही आहार का प्रमुख उद्देश्य है, तो चाहे जो कुछ खाकर काम चला सकते हो। दूध, घी, कढ़ी, पुलाव आदि खाने की इच्छा क्यों करते हो?

आनन्द—वह अवस्था और प्रकृति के अनुसार होती है। अच्छा खाने की किसकी इच्छा नहीं होती? जिनकी परिस्थिति ऐसी नहीं होती कि अच्छी-अच्छी चीजें खा सकें, वे चाहे जो खाकर पेट भर लेते हैं।

नवद्वीप—इसलिये, आहार सिर्फ भूख मिटाने के लिये नहीं किया जाता। उसके साथ प्रवृत्ति का भी सम्बन्ध है।

आनन्द—सो तो है ही।

नवद्वीप—यह प्रवृत्ति क्या है?

आनन्द—मैं समझता हूँ वह है सुख की इच्छा।

नवद्वीप—वह कैसे? पहले तुमने कहा था कि आहार-विहार ही मानव-जीवन का उद्देश्य है; अब शायद यह कहना चाहते हो कि आहार के साथ आनन्द भी चाहिये?

आनन्द—यह तो ठीक ही है; हम जो भी काम करते हैं, इसलिये करते हैं कि उससे हमें सुख प्राप्त करने की आशा होती है।

नवद्वीप—तो अब अच्छी तरह समझलो कि मानव-जीवन का उद्देश्य केवल आहार-विहारादि नहीं, आनन्द भी है। कोई दस दिन निराहार रह एक आसन पर बैठा रहता है; कोई सूर्य की प्रखर किरणों में सिर नीचे, पैर ऊपर किये रहता है; और कोई दुग्ध-फेन-सी कोमल शय्या पर लेटकर दिन बिताता है। क्या इन सभी का उद्देश्य एक नहीं है? पहले लगता है कि उद्देश्य अलग-अलग हैं; पर ध्यान से देखने पर पता चलता है कि उद्देश्य सबका एक है।

आनन्द—यह स्पष्ट है कि आनन्द ही सबका उद्देश्य है।

नवद्वीप—तो यथार्थ विषय हुआ आनन्द। आनन्द पाने के लिये मनुष्य ही क्यों, जीवमात्र लालायित है। बताओ, यह आनन्द नित्य है या अनित्य?

आनन्द—जब जीव ही नित्य नहीं तो उसका आनन्द कैस नित्य हो सकता है?

नवद्वीप—आश्रय के साथ आश्रित का ऐसा कोई भी निकट सम्बन्ध नहीं हो सकता, जिससे आश्रय की अनित्यता से आश्रित की अनित्यता हो। आनन्द नित्य वस्तु है; सच्चिदानन्द आदिपुरुष गोविन्द की आह्लादिनी शक्ति की वृत्ति विशेष है। आनन्द अप्राकृत है। हम संसार में जो आनन्द उपभोग करते हैं, वह उस आनन्द की छायामात्र है। आहार-विहार, संयोग-वियोग आनन्द नहीं, आनन्द के सहायक हैं अथवा अवलम्बन हैं। मान लो, तुम्हें कटक से पुरी जाना हो तो तुम्हें पहले घोड़ागाड़ी से और फिर रेलगाड़ी से जाना होगा। पुरी तुम्हारा प्राप्ति-विषय है और रेलगाड़ी आदि सभी वस्तुएँ उस विषय-प्राप्ति की सहायक या अवलम्बन हैं। उसी तरह आनन्द ही एकमात्र प्राप्ति-विषय है; सांसारिक व्यापार उसके सहायक मात्र हैं।

आनन्द—अच्छा, यह जगत् प्राकृत है या अप्राकृत?

नवद्वीप—यह जगत् प्राकृत है।

आनन्द—सांसारिक व्यापारों का अवलम्बन लेकर चिन्मय अर्थात् अप्राकृत आनन्द का उपभोग किया जा सकता है क्या? तुमने कहा कि आहार-विहारादि आनन्द के अवलम्बन हैं, फिर कहा कि आनन्द नित्य और अप्राकृत है। अनित्य वस्तु के अवलम्बन से क्या नित्य वस्तु की प्राप्ति हो सकती है?

नवद्वीप—बड़ा सुन्दर प्रश्न है। इतनी देर के वाद-विवाद के बाद अब अन्तिम मीमांसा की बात आ गई। भगवान् को भोग लगाने का प्रधान उद्देश्य यही है। हमारी बालकों-जैसी क्षुद्र बुद्धि है। किसी वस्तु की अच्छाई-बुराई का हमें पता नहीं। इसलिये हमारे आगे जो भी वस्तु आती है, उसके विषय में अपनी बुद्धि से कुछ न सोचकर, प्रभु को अर्पित कर देते हैं; वे उसका हेय अंश निकालकर उपादेय अंश हमें दे देते हैं। कोई बच्चा एक अच्छा पका हुआ बेल पाकर बड़े आनन्द से अपने पिता या माँ के पास ले जाता है। कुशल माता-पिता उसका छिलका और बीज निकालकर बच्चे को खाने को देते हैं। बच्चा उसे खाकर प्रसन्न होता है। उसका शरीर पुष्ट होता है। मान लो कोई बच्चा माता-पिता को बिना बताये स्वतन्त्र रूप से बेल को खाने लगे, तो सम्भव है कि वह ऊपर का छिलका ही चबाने लगे और उसे नीरस समझकर फेंक दे। प्रभु तो अप्राकृत, नित्य, चिन्मय और सर्वव्यापी हैं। उनकी कृपादत्त वस्तु को हम बस एक बार उनका नाम लेकर उनके हाथ में समर्पित कर दें, तो हमारा कर्तव्य पूरा हो जाता है। तत्पश्चात् वे, चाहे जैसे हो उसका प्राकृतत्व नष्ट कर और उसमें अप्राकृत गुणों का संचार कर हमें दे देते हैं। खाद्य वस्तु की बात तो दूर रही, हम तो कभी-कभी विष तक उन्हें दे देते हैं, परन्तु वे इतने करुणामय हैं कि उसी विष को अमृत कर हमें दे देते हैं। प्रह्लाद के पिताने प्रह्लाद को

विषयुक्त भोजन खाने को दिया; प्रह्लाद ने जैसे ही भगवान् को अर्पित किया, वह अमृत हो गया। इस प्रकार मीराबाई के प्राणों का अन्त करने की इच्छा से राणा ने एक बड़ा ही भयंकर विषधर काला साँप शालग्राम कहकर उनके पास भिजवाया। मीरा ने सरल भाव से पिटारी खोलकर देखा तो एक अपूर्व शालग्राम-शिला निकली। मीरा को पता भी नहीं था कि उसके भीतर क्या है; राणा ने साँप को शालग्राम कह कर भेजा था, इसलिये परम दयालु भगवान् ने उसी नाम के प्रभाव से पिटारी के भीतर से काला साँप दूर कर स्वयं उसमें प्रवेश किया। हाय रे! जीव ऐसे दयालु प्रभु को भी भजना नहीं चाहता।

आनन्द—तुम लोग जो कुछ भी करते हो, क्या भगवान् को बताकर करते हो?

नवद्वीप—उन्हें बताकर करने की चेष्टा करते हैं। अच्छा, सोचो तुम किसी काम को गुप्तरूप से करना चाहते हो। मानलो, कोई दूसरा आदमी तुम्हें इस काम को करता देख ले तो तुम्हारा क्या करना उचित है?

आनन्द—और क्या करना? जब उसे पता ही चल गया, तो उसे सभी बातें बता देनी चाहिये।

नवद्वीप—तो देखो, भगवान् विश्वतश्चक्षु, सर्वान्तर्यामी, सर्वनियन्ता हैं। तुम कितने ही गुप्तरूप से कोई कार्य क्यों न करो, वे सदैव तुम्हारे पास रहकर हँसते रहते हैं। तुम्हारे जानने से पूर्व ही वे जान जाते हैं। तुम्हारे न देखने पर भी वे देख लेते हैं। अब बताओ, जो सब कुछ जानता है, उससे किसी बात को गुप्त रखना मूर्खता है कि नहीं?

आनन्द—उन्होंने सब कुछ जान लिया, यह मैं कैसे समझूँ?

नवद्वीप—यह बात दूसरे को समझाना कठिन है। अच्छा, मैं तुमसे पूछता हूँ, तुम जब कोई अन्याय करने या झूँठा मुकदमा लड़ने जाते हो, उस समय तुम्हारे हृदय में क्या किसी तरह का डर अथवा संकोच नहीं होता?

आनन्द—कभी-कभी होता है, पर वह एक-आध मिनट में गायब हो जाता है।

नवद्वीप—इसका होना ही इस बात का द्योतक है कि भगवान् ने जान लिया। तुम्हारी कोई गुप्त बात किसी को जरा पता चल जाती है, तो मन में भय आ जाता है; उसी तरह जब लोगों की निगाहों से बचकर, अत्यन्त गोपन में, गहन रात्रि में घर के भीतर कोई पाप-कर्म करने को होते हो, तो मन में भय का संचार होता है। क्यों? इसीलिये कि उस पाप-कर्म का सर्वान्तर्यामी विश्वतश्चक्षु भगवान् को पता चल गया।

इस बार आनन्दबाबू का हृदय न जाने कैसा हो गया। दोनों आँखें लाल और सजल हो गईं। गद्‌गद कण्ठ से बोले 'भाई! जो व्यक्ति घोर पापी, प्रवंचक, असदाचारी और लम्पट है, जिसके पापों का अनन्त काल तक नरक यन्त्रणा भोगने पर भी प्रायश्चित्त नहीं हो सकता, उसका क्या उपाय है?'

नवद्वीप—भाई, डर किस बात का? परम दयालु अवतार है प्रभु का। कलियुग में यदि यही सब सोच-विचारकर जीव-उद्धार करना होता तो कलियुग के जीवों की गति हो ही नहीं सकती थी। यही कारण है कि दयालु प्रभु ने कलियुग के लिये सहज उपाय निर्धारित किया है। किसी ने कितने पाप क्यों न किये हों, वह एक बार हृदय में अनुताप की अग्नि प्रज्वलित कर व्याकुल प्राण और सरल भाव से भगवान् के चरणों में शरण लेकर अपने पापों के लिये क्षमा-प्रार्थना करे और प्रभु के चरणों में निवेदन करे कि कहीं फिर वह उस मार्ग पर न चला जाय...यदि वह व्यक्ति केवल इतना करे, तो प्रभु उसे अपने वक्ष से लगा लेंगे। भगवान् सब काम कर सकते हैं, पर वे जीव से घृणा नहीं कर सकते। वे करुणामय हैं; कोई कितना ही दुराचारी क्यों न हो, वे बड़े प्यार से उसे गोद में ले लेते हैं।

नवद्वीप दादा की सब बातें आनन्दबाबू चुपचाप सुनते रहे; आँसुओं से उनका वक्षस्थल भीगता रहा; पर अब एकदम अधीर हो नवद्वीप दादा के पैरों में गिर कर जोर-जोर से रोकर कहने लगे; 'हाय! मेरा क्या होगा? मैंने अशेष पाप किये हैं, मेरा उद्धार कौन करेगा? मैं तो जगाइ-माधाइ से भी ज्यादा दुराचारी हूँ।'

उनकी ऐसी आर्ति देख नवद्वीप दादा ने उन्हें आलिङ्गन कर बहुत कुछ कह कर आश्वस्त किया।

वे रोते-रोते बोले 'दादा! मेरा उद्धार कैसे होगा? आपने जब कृपाकर मुझे चेत कराया है, तो ऐसा कीजिये कि मैं नरक में न पड़ूँ। मुझे किस प्रकार चलना होगा; क्या करना होगा, आदेश कीजिये।' नवद्वीप दादा ने कहा 'देखो, मेरी जितनी शक्ति थी, उतना तो मैंने बता दिया। अब गुरुदेव के हाथ की बात है। वे जैसी व्यवस्था करेंगे, वैसा होगा।'

आनन्द—तुम्हारे गुरुदेव कहाँ हैं? वे क्या इस महापापी को स्पर्श करेंगे? क्या इस महापापी का ऐसा शुभ दिन होगा?

नवद्वीप—भाई, वे परम दयालु हैं। उनके एक बार दर्शन करके ही समझ जाओगे। वे इस समय श्रीधामपुरी में हैं।

आनन्द—उन्हें यहाँ किस तरह लाया जाय?

नवद्वीप—वे स्वतन्त्र पुरुष हैं; पता नहीं आयँगे कि नहीं; पर यदि तुम्हारे प्राणों में व्याकुलता हो, तुम्हारे प्राण उन्हें आकर्षित कर सकें, तो वे आ भी सकते हैं।

आनन्द—दादा! मुझमें न तो व्याकुलता है न आकर्षण। मेरे पास तो एकमात्र अवलम्ब तुम्हीं हो। तुम्हारी जो इच्छा हो करो। मेरी इतनी ही प्रार्थना है कि मुझे विलम्ब और सहन नहीं हो रहा है, जितनी जल्दी हो व्यवस्था करो।

यह कहकर कातर भाव से मुझे और दादा को पुरी आने के लिये कहा। उन्हीं की प्रेरणा से हम दोनों आपके पास आये हैं। आपको एकबार अवश्य चलना होगा।

बाबाजी—भाई, पतितपावन निताइचाँद से कहो। वे ले जायँगे तो जाऊँगा।

इस पर नवद्वीप दादा बोले 'आज तो समय नहीं रहा, कल दिन की गाड़ी से चलना ठीक होगा।' इस प्रकार तरह-तरह की बातों में सन्ध्या हो गई। ठाकुर की आरति देखकर सभी मन ही मन सोचने लगे किस पर प्रभु की कृपा होगी, किसे साथ चलने का आदेश करेंगे, इच्छामय श्रीश्रीजगन्नाथ देव के दर्शन कर मठ में आये। सेवा के लिये चार-पाँच लोगों को छोड़कर बाकी सभी को अपने साथ चलने का आदेश किया। सबने आनन्दपूर्वक महाप्रसाद-सेवन कर थोड़ा विश्राम किया। तत्पश्चात् नाम करते-करते सब स्टेशन चल दिये। रास्ते में जो भी बाबाजी महाशय को देखता, वही पूछता 'पुरी फिर कितने दिन में लौटेंगे?'

बाबाजी महाशय मृदु-मृदु हँसते हुए उत्तर देते 'निताइ कहाँ ले जायँगे, कहाँ रखेंगे और फिर कब लायँगे, वही जानें। तुम सभी प्रभु से कहो, वे जहाँ कहीं भी रखें, उनका नाम न भूलूँ।' इस प्रकार प्रसन्न-मुख सबसे विदा ले स्टेशन जा पहुँचे। यथा समय टिकट का घण्टा बजा। आनन्दबाबू द्वारा प्रेरित आदमी ने बाबाजी महाशय से कहा 'आनन्दबाबू ने सेकन्ड क्लास के टिकट खरीदने को कहा है।' बाबाजी महाशय ने मृदुभाव से हँसते हुए कहा 'भाई, रेल में बड़ा आदमी बनकर क्या होगा? हो सकता है कल कटक में भिक्षा करनी पड़े; इसलिये नीचे की क्लास की टिकट लेना ही अच्छा।' वह व्यक्ति कुछ शर्मिन्दा होकर बाबाजी महाशय के आदेशानुसार छब्बीस टिकट ले आया। सब लोग गाड़ी में बैठ गये।

यथासमय गाड़ी चल दी। खोल-करताल के साथ बाबाजी महाशय ने कीर्तन आरम्भ किया। नवद्वीप दादा के मन में एक कौतूहल पैदा हुआ। उन्होंने सोचा कि आनन्दबाबू को बाबाजी महाशय का परिचय दिया जाय और देखा जाय कि उनकी उत्कण्ठा कितनी है। यदि वे अपने इष्टदेव को पहचान न सकें, तो समझा जाय कि अभी समय नहीं हुआ है। इधर आनन्दबाबू के हृदय में क्या भाव उठा, प्रभु ही जानें। उन्हें खबर कुछ भी नहीं, पर वे गाड़ी लेकर अकस्मात् स्टेशन पर पहुँचे। ट्रेन भी यथासमय स्टेशन पहुँची। बाबाजी महाशय का स्वाभाविक नियम था कि गाड़ी में बैठने के समय सबको बिठाकर स्वयं बैठते थे, और गाड़ी से उतरते समय सबको उतार कर स्वयं उतरते थे। आज भी वही हुआ। साथी लोग जैसे ही गाड़ी से उतरने लगे, आनन्दबाबू सबसे हाथ जोड़कर दण्डवत् प्रणाम कर प्रार्थना करने लगे कि वे घोड़ा-गाड़ी में बैठें और स्टेशन के गाड़ी वालों से बोले 'देखो, एक गाड़ी में दो-दो बिठाकर मेरे घर ले चलो।' गाड़ीवाले बाबूजी के आदेशानुसार कार्य करने लगे। नवद्वीप दादा पूर्वोक्त

भद्रपुरुष के साथ एक ओर खड़े आनन्दबाबू की अनुराग-परीक्षा कर रहे हैं। क्रमशः सभी साथियों के उतर जाने के बाद बाबाजी महाशय बाहर आये। उन्हें देखते ही आनन्दबाबू आँधी से गिरे केले के वृक्ष की तरह उनके चरणों में गिरकर अपराधी बालक की तरह जोर-जोर से रोते हुए व्याकुल होकर कहने लगे 'बाबा, मेरा उद्धार कीजिये। मेरा और कोई नहीं है। इतने दिन अपना समझकर जिनके लिये धर्माधर्म और पाप-पुण्य का विचार न कर दिन-रात परिश्रम कर कमाई की, उनमें से कोई भी मेरे पापों का हिस्सेदार नहीं होगा, यह मैंने अब जान लिया। अब तो आप ही मेरे एकमात्र अवलम्ब हैं।' बाबाजी महाशय ने सजल-नयन आनन्दबाबू को उठाकर आलिङ्गन किया और गद्‌गद कण्ठ से कहा 'भाई! डर किस बात का? परम दयालु पतित-पावन निताइचाँद तो हैं। चलो, घर चलो' और गाड़ी में बैठ गये।

इसी बीच नवद्वीप दादा और पूर्वोक्त भद्रपुरुष ने एक गाड़ी से जाकर आनन्दबाबू के घर से लगे एक पृथक् घर में सबके रहने की व्यवस्था कर दी। व्यवस्था का सभी भार नवद्वीप दादा पर था। आनन्दबाबू की गाड़ी में आनन्दबाबू, बाबाजी महाशय, ललिता दासी और कुसुममञ्जरी दासी थे। गाड़ी में बैठते ही आनन्दबाबू बाबाजी महाशय के चरणों को वक्ष से लगा कर अपने आँसुओं से प्रक्षालन करते हुए अपने जीवन का सारा वृत्तान्त कहने लगे।

"बाबा! मैंने असंख्य पाप किये हैं। मद्य-मांस आदि शायद ही कोई ऐसी वस्तु होगी, जिसका मैंने व्यवहार नहीं किया। मेरे पेट में संभवतः अब भी मुर्गों का हाड़ है। मेरे द्वारा न जाने कितनी स्त्रियों का सतीत्व नष्ट हुआ है। शास्त्रों में जगाइ, माधाइ, अजामिल, रत्नाकर आदि दस्युओं का वर्णन है। उनसे भी बड़ा पापी मैं हूँ। दस्यु तो आदमी के सिर पर लाठी मार उसका धन अपहरण करता है, पर मैं इतना विश्वासघाती हूँ कि जिसने मेरा उपकार किया, उसी का मैंने सर्वस्व लूटा। एक पक्ष का वकील होकर पैसे के लोभ में दूसरे पक्ष का काम किया, अभिमान के कारण पृथ्वी को तुच्छ समझा, संसार में ईश्वर नामका कोई है, अथवा मेरे ऊपर भी कोई विचार करने वाला है और एक दिन मुझे अपने इन कर्मों के फलस्वरूप अशेष यन्त्रणा भोगनी पड़ेगी, इसमें मुझे अबतक विश्वास न था। गुरु-लघु में कुछ भेद नहीं मानता था, सम्बन्ध-ज्ञान किसे कहते हैं कुछ नहीं जानता था। आज नवद्वीपदादा की कृपा से मैं सोते से जाग गया हूँ; आज मुझे तीनों लोक शून्य दिखाई दे रहे हैं। जिधर भी दृष्टि जाती है, उधर अपार दुःख-सागर देखकर मुझे निराशा होती है। जिस किसी की ओर देखता हूँ उसी के प्रति लगता है घोर अपराधी हूँ। बाबा! मेरा और उपाय नहीं। मैं ऐसे समुद्र में पड़ा हूँ, जिसका किनारा नहीं दीखता। मेरा उद्धार आपके अतिरिक्त और कौन करेगा? मुझे देख निताइ-गौर भी भयभीत होंगे। संसार में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं, जो मेरे दुराचारों की बात सुनकर मुझसे घृणा न करे। बाबा! आपके अतिरिक्त ऐसा और कोई नहीं, जो इस घोर नारकी, अधम, पतित जीव का उद्धार कर सके।"

उनके अनुताप का वर्णन कैसे और किस भाषा में किया जाय। बाबाजी महाशय अर्द्धमुद्रित नेत्रों से गद्दी का सहारा लिये बैठे थे। उनके दोनों चरण आनन्द के वक्षपर थे। बीच-बीच में वे काँप उठते थे और गद्‌गद कण्ठ से 'जय निताइ' 'जय निताइ' कहने लगते थे। जब आनन्दबाबू बहुत ही अधीर हो गये, तब बाबाजी महाशय उन्हें आश्वासन देते हुए कहने लगे, 'भाई, चिन्ता न करो। धन्य है कलियुग! परमदयाल अवतार अदोषदर्शी निताइ-गौर की कृपा से कोई भी वंचित न रहेगा। अपने जन्म-जन्म के अर्जित सभी पाप-ताप मुझे देकर तुम निर्मल भाव से उनके चरणों की शरण लो।' इतना कह वे आनन्दबाबू को दृढ़ आलिङ्गन कर स्थिर भाव से बैठ गये; उनका श्रीअंग ऐसा श्रीहीन और काला हो गया कि उन्हें पहचानना भी कठिन हो गया। थोड़ी देर में गाड़ी काठगड़ासाही में आनन्दबाबू के घर के आगे जाकर रुकी। उनके गाड़ी से उतरते ही नवद्वीपदादा उनका श्रीअंग देखकर, अत्यन्त व्याकुल भाव से 'हा निताइ, जय निताइ!' कहकर उन्मत्त की तरह नृत्य करने लगे। दोनों एक दूसरे का भाव जान गये। बाबाजी महाशय झूमते-झूमते

अपने बायें हाथ से नवद्वीप दादा का दायाँ हाथ पकड़कर नृत्य करने लगे। इसी बीच सभी लोग खोल-करताल लेकर आ पहुँचे, कीर्तन आरम्भ हुआ। सुचतुर नवद्वीपदादा ने प्राणों के भी प्राण अपने दादा को लेकर नाचते-नाचते आनन्दबाबू के कमरे के पासवाले कमरे में प्रवेश किया। भीतर पहुँचते ही बाबाजी महाशय ने उद्दण्ड नृत्य आरम्भ किया। साथी लोग उन्हें चारों ओर से घेरकर नाम करने लगे।

अकस्मात् आनन्दबाबू के घर वह अपूर्व संकीर्तन-ध्वनि सुन पड़ोसी लोग भाग-भाग कर आने लगे। इस असम्भव बात को सम्भव हुआ देख सभी लोग आश्चर्यान्वित हो एक-दूसरे से कहने लगे, 'कैसा आश्चर्य! जिस व्यक्ति के डर से पड़ोस में भिखारी नहीं आते थे, आज उसी के घर में नाम-संकीर्तन!' पास जाकर सभी ने देखा कि आनन्दबाबू विभोर हो हाथ ऊपर उठाये नृत्य कर रहे हैं। शरीर पर कमीज आदि कुछ नहीं; नेत्रों के जल से मुख और वक्षस्थल भीग रहा है। बीच-बीच में संकीर्तन की भूमि पर इधर से उधर लोटने-पोटने लगते हैं। यह देख सभी कहने लगे 'ऐसा अपूर्व परिवर्तन देखना तो दूर रहा, कभी सुना भी न था। कहीं सत्ययुग तो फिर से नहीं आ गया?' किसी ने कहा 'यह जो पागलसा बाबाजी है, इसे मैंने दो-चार दिन पहले भी नाम करते-करते बाबूजी के घर घुसते देखा है। लगता है इसी की कृपा से इनके मन में कुछ परिवर्तन हुआ है।' कोई-कोई कहने लगे 'भाई, साधु-कृपा हो तो मन बदलते कितनी देर लगती है? देखो न, ये जो महापुरुष नृत्य कर रहे हैं, उनका कैसा सुदीर्घ कलेवर है, घुटनों तक लम्बी भुजाएँ हैं, और कैसे आविष्ट होकर नृत्य-कीर्तन कर रहे हैं! बलिहारी! कैसी सुमधुर आवाज है! और देखो, आनन्दबाबू रोते-रोते इनके पैरों में पड़कर लोट-पोट हो रहे हैं और व्याकुल होकर न जाने क्या-क्या कह रहे हैं? निश्चय ही इन महापुरुष की कृपा से आनन्दबाबू देव-प्रकृति के हो जायँगे।' इस प्रकार सभी अपनी-अपनी धारणा के अनुसार कहने लगे।

इधर ये लोग नामानन्द में विभोर थे। बहुत देर बाद कीर्तन समाप्त हुआ और सब बैठ गये। पड़ोस के बहुत से भद्रपुरुष आकर बाबाजी महाशय के साथ तरह-तरह की कथा-वार्ता करने लगे। आनन्दबाबू इन सबके भोजनादि और अन्य सेवा-शुश्रूषा का सारा भार नवद्वीपदादा पर छोड़ निश्चिन्त होकर बाबाजी महाशय के श्रीमुख से तत्व-कथा सुनने लगे। नवद्वीपदादा ने भी सुचारुरूप से भोग-राग की व्यवस्था की। रात को लगभग ग्यारह बजे सबने महाप्रसाद-सेवन कर विश्राम किया।

भगवत्कृपा से जिस प्रकार असम्भव सम्भव हो जाता है, उसी प्रकार भगवान् के भक्त की कृपा से भी ऐसे कार्य जो मानव बुद्धि के परे हैं, इतने सहज रूप से सम्पन्न हो जाते हैं कि पता भी नहीं चलता। आज आनन्दबाबू शुभ गुणों की मूर्ति हैं, स्वर्ग के देवता हैं। अब उनकी वह उद्धत प्रकृति नहीं है। उनके मुवक्किल मुकदमों के विषय में परामर्श करने आते हैं, तो वे नम्रभाव से कहते हैं 'देखो भाई! यदि इस केस में कोई झूठी बात निकली, तो मैं उसी वक्त इसे छोड़ने को बाध्य हो जाऊँगा।' कभी-कभी वे मुवक्किलों से कहते, 'भाई! बेकार झगड़ा कर कीमती मनुष्य जन्म क्यों नष्ट करते हो? जाओ, आपस में समझौता करलो, इससे यदि तुम्हारा कुछ नुकसान भी हो तो कोई बात नहीं। मुकदमा लड़ने के माने हैं अर्थ-दण्ड और परिश्रम, उस पर भी अशान्ति। पैसा खर्च करके अनर्थ खरीदना! उनके व्यवहार और मीठी बातों से मुवक्किलों की आँखों में आँसू आ जाते। उन्होंने पत्नी से कहा 'देखो, मेरे पहले के स्वभाव के अनुकूल जो भी द्रव्य हैं, उन्हें फेंक दो, या किसी को बाँट दो।' उनकी बैठक में जो पहले चित्र लगे थे, उनके स्थान पर भगवान् से सम्बन्धित चित्र लग गये। आज जो कोई आनन्दबाबू को देखता है, वह गद्‌गद कण्ठ से भगवान् को धन्यवाद दे उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित करता है।

बाबाजी महाशय और आनन्दबाबू के बीच पिता-पुत्र का सम्बन्ध है। आनन्दबाबू उन्हें बाबा कहते ही अस्थिर हो जाते हैं। उन्हें बैठे देख एकदम आकर 'बाबा' कह उनके दोनों चरण अपने वक्ष से लगाकर पाँच सालके बच्चे की तरह रोने लगते हैं। अपूर्व परिवर्तन! आनन्दबाबू की वर्तमान अवस्था देखकर

कौन कहेगा कि यह कभी उद्धत प्रकृति का आदमी था, या इसके हृदय को रजोगुण ने कभी स्पर्श भी किया था। नौकर-नौकरानियों ने जिनके मुख से 'अरे' 'क्यों रे' के अतिरिक्त और कुछ नहीं सुना, उनसे आज वे 'भाई' 'बेटा' कह कर सम्बोधन करते हैं। बातें करते-करते जिस किसी के आगे आत्म-ग्लानि से रोते-रोते अधीर हो जाते हैं।

एक दिन की बात। लगभग दस बजे का समय था। आनन्दबाबू निश्चेष्ट बाबाजी महाशय के पास बैठे थे। बबाजी महाशय ने पूछा 'आनन्द! आज कचहरी नहीं जाना?'

आनन्द—बाबा! इस प्रतारणामय काम को करने की मेरी अब इच्छा नहीं। आप कृपा कीजिये। मैं कचहरी और नहीं जाऊँगा।

बाबाजी—क्यों भाई? तुम तो इतने पढ़े-लिखे हो। इस तरह बच्चों की-सी बात करने से कैसे काम चलेगा? यह बताओ कि किसके दोष से वकालत प्रतारणामय हुई?

आनन्द—दोष किसका बताऊँ? यह तो काम ही ऐसा है कि इच्छा न होते हुए भी प्रवंचना करनी पड़ती है।

बाबाजी—अच्छा, कानून शब्द का क्या अर्थ है?

आनन्द—'कानून' का अर्थ है राजविधि व न्याय।

बाबाजी—ठीक। राजपुरुषों ने हमारे देश में जो कानून प्रचलित किया है, वह उनका स्वयं का सोचा हुआ है, या हमारे किसी शास्त्र के मतानुसार है?

आनन्द—कानून किसी की कल्पित वस्तु नहीं; वह सत्य है, क्योंकि मनु, मिताक्षरा, दायभाग आदि हिन्दुओं के स्मृति-शास्त्रों का अभिप्राय लेकर उसकी रचना की गई है।

बाबाजी—स्मृतिशास्त्र को व्यवस्थाशास्त्र या धर्मशास्त्र कहते हैं। जहाँ धर्म शब्द रहता है, वहाँ प्रवंचना, कपट, छल-चातुर्य नहीं हो सकता। न्यायालय का नाम है धर्म-स्थान और न्यायाधीश को कहते हैं धर्मावतार। जहाँ इतने सारे 'धर्म' शब्द हों, वहाँ प्रवंचना का क्या काम? वकील या मुख्तार शब्द का अर्थ है सहायक। एक अशिक्षित व्यक्ति राजपुरुष के आगे जाकर अपना मनोभाव व्यक्त करने में असमर्थ होता है। वह इतना भी नहीं जानता कि न्यायाधीश कौन है, और कहाँ है। इसलिये राजा ने प्रजा का अभाव दूर करने के लिये सुशिक्षित, कानून-ज्ञाता, सुपरिचित और विश्वसनीय व्यक्ति को ऐसी क्षमता प्रदान की है कि वह वादी या प्रतिवादी की ओर से न्यायाधीश को सब कुछ समझा सके और न्यायाधीश उचित न्याय कर सके। अब बताओ, राजा ने किस उद्देश्य से वकील-मुख्तारों की सृष्टि की है? तुम लोग क्या पैसे के लालच में अपने-अपने धर्म की ओर नजर न रख दूसरे का अनिष्ट नहीं करते? फिर दोष देते हो कानून को और पेशे को। न्याय-आसन पर बैठने वाले व्यक्ति को झूठी बात इस प्रकार समझा देते हो कि वह बहुत छानबीन करने के बाद भी उसको मानने को बाध्य होता है। ऐसा करके तुम घोर अपराध के भागी होते हो। इस तरह कमाये हुए धन से जो धनी बनते हैं और परिपुष्ट होते हैं, उनकी बुरी गति होती है। जो लोग ऐसे वकील की सहायता से दूसरे का धन-दौलत अपहरण करते हैं, उनकी और उनके परिवार की भी बुरी गति होती है। फिर जो झूठी गवाही देते हैं उनकी कौन कहे। सारांश यह कि इस सब अनर्थ की जड़ वकील की स्वार्थपरता छोड़ और कुछ नहीं है।

आनन्द—यही बात है बाबा! इसीलिये मैं ऐसा असत्कार्य अब नहीं करना चाहता।

बाबाजी—क्यों भाई! वकालत के पेशे का तो कोई दोष हुआ नहीं। कानून नहीं कहता कि तुम प्रवंचना कर इतने लोगों का नरक का रास्ता साफ करो। कानून तो यही कहता है कि ऐसा करो जिससे गलत काम न हो। मेरे मत से धर्मवृत्ति से इस कार्य में जितना भी लगा जा सके, उतना अच्छा है। अधर्म को उतना ही कम आश्रय मिलेगा। अच्छा, तो आज से मन ही मन यह दृढ़ संकल्प करो कि 'मैं किसी प्रकार भी गलत काम नहीं करूँगा। झूठे मुकदमे से बहुत पैसा मिले तो भी उसे न लूँगा, जी-जान से सत्य की ओर अग्रसर होऊँगा।' फिर देखना दिन पर दिन तुम्हारी कितनी उन्नति होती है। पहले कुछ अभाव का अनुभव होगा, पर उस अवस्था में लोभ दूर रखना पड़ेगा। हो सकता है कोई व्यक्ति

किसी झूठे मुकदमे के लिये पाँच सौ रुपये देने लगे। उस समय मनमें हो सकता है कि मैं हाथ में आई इतनी बड़ी रकम कैसे छोड़ दूँ। बहुत सम्भव है कि आत्मीय-स्वजन कहने लगें, 'यह क्या! पेशा करने बैठे हो, ऐसे दूकान कब तक चलेगी? तुम्हारे हमेशा के बँधे-बँधाये मुवक्किल दूसरे वकीलों के पास चले जायँगे, फिर क्या होगा' इत्यादि। लेकिन भाई, उस समय यदि थोड़ा-सा धैर्य से काम लिया, तो भविष्य में जब सबको तुम्हारी सत्यवादिता का पता चल जायगा तो देखोगे कि कितने मुवक्किल तुम्हारे पास आते हैं। प्रभु तुम्हें चारों ओर से इतना पैसा और सम्मान देंगे कि तुम सम्भाल नहीं पाओगे। भाई, लोभ के वशीभूत हो अधिक रसगुल्ले खाकर जब आँव हो जाय, तब रसगुल्लों को दोष देने से काम कैसे चलेगा? रात-दिन प्रभु से अपने पहले किये पाप-कर्मों के लिये क्षमा प्रार्थना करो और भविष्य के लिये उनसे सत्यता, न्याय-परायणता, धर्मनिष्ठा माँगो। पिशाच-प्रवृत्ति चरितार्थ करने की अपेक्षा आत्मग्लानि पैदा करने की चेष्टा करो, परम शान्ति प्राप्त होगी। कर्म छोड़कर ही साधु बना जाता है, ऐसा सोचना गलत है। कपटता का त्याग करो, धर्म का दिखावा मत करो। भीतर बाहर एक होने की चेष्टा करो; भगवान् पर निर्भर करो; कभी बुरे रास्ते पर नहीं जाओ। भ्रमवश यदि कुमार्ग पर जाना भी चाहोगे, तो प्रभु निश्चय ही पीछे हटा देंगे।

आनन्दबाबू इतनी देर चित्रपुत्तलिकावत् स्थिर हो बाबाजी महाशय की बातें सुनते रहे और यह सोचकर कि इतने दिन लोभ के वशीभूत हो इतने असत्कार्य किये हैं मन ही मन अपने को धिक्कारते रहे। जैसे ही बाबाजी महाशय की बात खत्म हुई, वे अत्यन्त व्याकुल भाव से रोते-रोते उनके पैरों में पड़ गये। बाबाजी महाशय ने उन्हें अपने आलिङ्गन से स्वस्थ कर कचहरी भेज दिया। इधर यथासमय ठाकुरजी का भोग लगा। सभी ने मध्याह्न कीर्तन कर महाप्रसाद पाया और विश्राम किया।

आनन्दबाबू की दीक्षा

आनन्दबाबू सदा बाबाजी महाशय के आगे बच्चों की तरह रोते और जिद करते, 'एक दिन मुझे दीक्षा देनी होगी। जब मेरा नरक-कुण्ड से उद्धार ही किया है, तो यह भी करना होगा कि मैं फिर उसमें न गिरूँ। दो दिन से रात को यही सोचा करता हूँ कि बाबा मुझसे कोई कड़वी बात क्यों नहीं कहते। मैं तो अब भी वही पशु हूँ जो पहले था। इस अस्पृश्य देह से भगवत् उपासना कैसे होगी? उपासना किसे कहते हैं, उसका क्या क्रम है, किस प्रकार पुकारने से किस मार्ग पर चलने से सहज ही भगवत्-पथ पर अग्रसर हुआ जा सकता है, मैं कुछ नहीं जानता। आज मुझे मन्त्र देना ही होगा।'

बाबाजी महाशय आनन्द की परीक्षा लेने की दृष्टि से थोड़ा हँसकर बोले 'भाई, इतने उतावले क्यों होते हो? शान्त हो, धीरे-धीरे सब हो जायगा।'

आनन्द—बाबा! मेरी और परीक्षा क्यों लेते हैं? अब और समय कहाँ है? सारा जीवन तो व्यर्थ नष्ट कर दिया। न जाने कब साँस रुक जाय। अब देर क्यों बाबा? आज ही मेरा पशुत्व दूर कीजिये। पतित-अधम सन्तान को गोद में लेकर फिर घृणा क्यों?

बाबाजी—भाई! घृणा नहीं, निताइचाँद तुम पर कृपा करेंगे, उसमें मुझे क्या करना है? पर यदि इस पुतली को निमित्त न बनाकर किसी और के द्वारा यह कार्य कराते तो अच्छा होता।

आनन्द—बाबा! क्या तीनों लोक में ऐसा कोई और आदमी या देवता है, जो इस पाषण्डी का उद्धार कर सके। मेरा विश्वास है कि सिर्फ मेरे उद्धार के लिये ही आपका अवतार हुआ है। निताइ-गौर जगाइ-माधाइ का उद्धार कर पतित-पावन हुए थे, पर मेरे आगे वे भी हार गये। मैं नहीं समझता था कि मेरा उद्धार करने वाला भी कोई है। हिरण्यकशिपु का उद्धार करने के लिये नृसिंह अवतार हुआ था, उसी तरह मेरा उद्धार करने के लिये आपका अवतार हुआ है, यह ध्रुव सत्य है।

बाबाजी—पागल! ऐसी बात करने से अपराध होता है। 'वृक्षद्वारे कृपा करेन इहा ताँहार गुन।' जो भी हो, यदि निताइ ने कृपा की तो कल देखा जायगा। आनन्दबाबू आनन्द से पागल हो द्रुतगति से नवद्वीपदादा के पास जाकर बोले दादा! बाबा ने कल मंत्र देने की

बात कही है। मुझे किस तरह क्या-क्या करना होगा?' दादा हँसते हुए बोले 'करना और क्या है? गले में माला पहन सकोगे?'

आनन्द—दादा! मैं तो कुछ भी नहीं कर सकता और न कुछ कर सकूँगा। तुम्हारा कृपा कटाक्ष हो तो ऐसा कौन सा काम है जो न हो सके?

नवद्वीप—भाई, मैं कौन होता हूँ? यदि निताइ चाहेंगे तो होगा। गले में माला और सिर पर चोटी तो होनी ही चाहिये। और क्या कहूँ? बाकी के लिये दादा से पूछो।

इस तरह दिन बीत गया। दूसरे दिन सुबह उठ कर आनन्दबाबू ने नौकर को आदेश किया, 'भाई, एक नाई बुला लाओ।' नौकर नाई को बुला लाया। आनन्दबाबू ने नाई से कहा, 'भाई, मेरे सिर पर एक बड़ी सी चोटी छोड़कर मुंडन कर दो।' नाई सुनते ही बोला 'बाबूजी! आप ठीक कहते हैं, या वैरागियों से मजाक कर रहे हैं?'

आनन्द—क्यों भाई, मेरा ऐसा वेश रखना क्या तुम असम्भव समझते हो?

नाई—बाबूजी, मैं आपका नौकर हूँ, और क्या कहूँ? आपका ऐसा वेश रखना तो दूर की बात, मैं तो आपके मुँह से ऐसी बात सुनना भी असम्भव समझता हूँ।

आनन्दबाबू ने सजल-नयन गद्गद कण्ठ से कहा 'भाई, महत् पुरुष की कृपा से आज जो बिलकुल असम्भव था वह भी सम्भव हो गया। आज मेरा पुनर्जन्म है। देर न कर मेरा मुण्डन कर दो और मुझे आशीर्वाद दो कि श्रीगुरुवैष्णवों के चरणों में मेरी मति हो।'

नाई हाथ जोड़कर आनन्दबाबू के पैर पकड़कर रोते-रोते कहने लगा 'बाबूजी, आज मैं धन्य हो गया। ऐसा महापुरुष दुनियाँ में है, इस बात में मुझे विश्वास नहीं था। आज आपकी कृपा से उनका दर्शन कर और उन्हें स्पर्श कर मैं कृतार्थ हो गया।' यह कह कर आनन्दबाबू के आदेशानुसार नाई ने उनके सिर का मुण्डन किया और दाढ़ी बनाई। आनन्दबाबू ने जल्दी ही काठजुड़ी नदी में स्नान किया। तत्पश्चात् जैसे ही उन्होंने मुण्डित मस्तक से नवद्वीपदादा के चरणों में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया, नवद्वीपदादा ने उन्हें अपने आलिंगन से कृतार्थ किया। इससे पहले पुरी निवास के समय बाबाजी महाशय के लिये एक नई माला बनवाई गई थी, पर उसे उन्होंने पहला नहीं था, वह उनके पास ही थी। उस नई माला को आनन्दबाबू को पहनाने का प्रस्ताव उठा, तो आनन्दबाबू बोले- वह माला मैं नहीं पहनूँगा' और द्रुत गति से बाबाजी महाशय के पास जाकर उनके चरणों में गिर पड़े।

पहले तो बाबाजी महाशय आनन्दबाबू को पहचान ही न सके, फिर बोले 'यह क्या! तुम्हें यह सब करने के लिये किसने कहा?'

आनन्द—बाबा, कहता और कौन? आपके अतिरिक्त मुझसे और कौन कहेगा? मुझे अपने गले की माला देनी होगी।

बाबाजी महाशय मृदुभाव से हँसते हुए बोले 'क्यों भाई, ठीक तो हो, माला किस लिये? तुम्हें बहुत-सा समय साहब लोगों के साथ बिताना होगा, वे लोग सम्भव है माला देखकर तुम्हारा उपहास करें।'

आनन्द—बाबा, सन्तान की ऐसी उपेक्षा करने से कैसे काम चलेगा? लोगों से प्रतिष्ठा और प्रशंसा पाने की आशा से इतने दिन इतना सब किया। पर शान्ति न मिली; यथार्थ मार्ग भी नहीं मिला। यदि आप यथार्थ दिखाकर निष्कपट रूप से उसपर चलने की शक्ति दें, तो मेरा विश्वास है कि कोई उपहास न करेगा। हम लोगों का अन्तःकरण दुर्बल है, तभी तो किसी राजा अथवा राजपुरुष से साक्षात्कार करना होता है तो अच्छी पोषाकादि पहनकर जाते हैं, यहाँ तक कि माला तिलकादि अपने धर्मचिह्नों को छिपाने की चेष्टा करते हैं। सोचते नहीं कि इस कपटता के लिये हम प्रभु के और उस राजा या राजपुरुष दोनों के प्रति अपराधी होते हैं। मेरी यदि श्रीगुरुपाद-पद्मों में सत्य निष्ठा है, और यदि निष्कपट भाव से प्रभु को पुकार सकता हूँ और तदनुसार वेशादि धारण करता हूँ, तो लोग मेरा उपहास क्यों करेंगे? करें भी तो उससे मेरे आनन्द में क्या फरक पड़ेगा? और वृद्धि ही होगी।

यह सुनकर बाबाजी महाशय बहुत आनन्दित हुए। आनन्दबाबू को आलिङ्गनकर बोले 'भाई, आज तुम्हारे मुख से अपूर्व निष्ठा और निर्भरता की बातें सुन मैंने जो सुख पाया है, उसका वर्णन नहीं कर सकता। दु:खी न हो, मैंने तुम्हारे मुख से यह सब सुनने के लिये ही इस प्रकार कहा था। तुम्हारी सरलता और निष्कपटता के कारण मैं तुम्हारे हाथ बिक चुका हूँ। अब मैं तुम्हारा हूँ, तुम जो चाहो कर सकते हो।' कहकर अपने गले की पाँच लड़वाली कण्ठीमाला तोड़कर एक व्यक्ति से बोले 'ये माला आनन्द को पहना कर उसके तिलक कर दो।' उनके आदेशानुसार आनन्दबाबू को माला पहना दी गई और उनके तिलक कर दिया गया। वह नई माला बाबाजी महाशय के गले में बाँध दी गई। उन्होंने नाम आरम्भ कर दिया। साथी आकर नाम में योग-दान देते हुए उन्मत्त भाव से उद्दण्ड नृत्य-कीर्तन करने लगे।

यथा समय बाबाजी महाशय ने आनन्दबाबू के कान में मन्त्र प्रदान किया। अनुतापानल से उनके हृदय-क्षेत्र के झाड़झंकार भस्म हो चुके थे और वह नयन जल से धुलकर स्वच्छ और सरस हो चुका था। उसमें बीज पड़ते ही अंकुर निकल आये। अश्रु, कम्प, पुलक आदि सात्विक विकार एक साथ दिखाई देने लगे। आनन्दबाबू इतने अधीर हो उठे कि उन्हें सँभालना मुश्किल हो गया। साथी लोग नाम में उन्मत्त थे। आनन्दबाबू भाव में उन्मत्त थे। आज मानो आनन्द का सागर उमड़ पड़ा। भुजाएँ ऊपर उठाये विभोर भाव से नृत्य करते-करते वे हठात् मूर्छित होकर जमीन पर गिर पड़े। यह देख नवद्वीपदादा प्रेमानन्द में उद्दण्ड नृत्य करने लगे। किसी को बाह्य ज्ञान न रहा। बाबाजी महाशय अर्ध उन्मीलित नेत्रों से बीच-बीच में 'जय निताइ!' कह कर हुंकार कर उठते, जिससे संकीर्तन तरंग और भी प्रबल हो जाती। आनन्दबाबू की आँखों से अचैतन्यावस्था में भी बराबर आँसू झर-झर बह रहे थे। उनका सारा शरीर पुलकावलि से विभूषित था, मुख रक्तवर्ण और प्रफुल्लित था। वे बीच-बीच में चौंक उठते और उनका शरीर इस प्रकार काँपने लगता कि दर्शन अवाक् रह जाते। कुछ देर बाद बाबाजी महाशय ने उन्हें हाथ पकड़कर उठाया। कुछ-कुछ होश में आते ही वे बाबाजी महाशय के चरण पकड़ कर रोने लगे। उन्होंने नाना प्रकार के आश्वासन-वाक्यों से उन्हें शान्त किया और उनके दोनों हाथ पकड़ कर प्रेमानन्द में उद्दण्ड नृत्य करने लगे। वे भी मन्त्रमुग्धवत् बाबाजी महाशय के साथ नाचने लगे। आनन्दबाबू को देख दर्शकगण मुग्ध, स्तम्भित एवं विस्मित होकर महापुरुष की कृपा की जय बोलने लगे। कुछ देर कीर्तन करने के बाद बाबाजी महाशय ने नाम बन्द किया।

आनन्दबाबू की बैठक में चार हाथ लम्बा, दो हाथ चौड़ा एक शीशा था। बाबाजी महाशय उनका हाथ पकड़कर उसके आगे जाकर खड़े हो गये। अपूर्व दृश्य था। आनन्दबाबू अति दीर्घाकार गौरवर्ण पुरुष थे। माला, तिलक और चोटी के साथ सत्वगुण की मूर्ति जैसे लग रहे थे। जो कोई भी उन्हें बाबाजी महाशय की बाईं ओर खड़े देखता था, वह आनन्द में विभोर हो जाता था। अकस्मात् बाबाजी महाशय के मन में जाने क्या विचार आया, उन्होंने अपना बायाँ हाथ आनन्दबाबू के कंधे पर रख दिया। चारों ओर भक्त लोग 'हरि हरि' ध्वनि करने लगे। आज आनन्द वह आनन्द नहीं रहे। आज वे मानो अप्राकृत आनन्द की मूर्ति हो गये। धन्य कृपा! धन्य महापुरुष की शक्ति का प्रभाव! आज आनन्द की अवस्था देख रत्नाकर, अजामिल, जगाइ-माधाइ आदि के उद्धार की बात याद आ जाती है। बलिहारी! प्रभु की नित्यलीला-क्रीड़ा की कैसी माधुरी है! लगता है जैसे वह उत्तरोत्तर वृद्धि पा रही है। अब भी गोराराय वही लीला कर रहे हैं। पर प्रकट लीला से अप्रकट लीला में कहीं अधिक माधुर्य है, अधिक शक्ति का विकास है। हमलोग अन्धे, बहरे, अविश्वासी जीव हैं, प्रत्यक्ष देख कर भी नहीं देखते, सुनकर भी नहीं सुनते, समझकर भी समझना नहीं चाहते। बन्धुओं! एक बार आँखें बन्द कर आनन्द मित्र की तात्कालिक अवस्था और मूर्ति का ध्यान कीजिये। जिस आनन्द के प्रताप से शहर के साधु, वैष्णव, भिखारी आदि सशंकित रहते थे, डरके कारण छिप जाते थे, वही आनन्द आज हाथ ऊपर कर संकीर्तन में नाचते-नाचते धूल में लोट-पोट हो रहा है। उसके

गले में पाँच लड़ी की कण्ठीमाला, माथे पर हरिमन्दिर तिलक, आँखों में आँसू और शरीर में पुलक और कम्प हैं। जो व्यक्ति किसी साधु-वैष्णव को देखते ही उसे ढोंगी कहता था, वही आज वैष्णव का नाम सुनते ही झटपट दण्डवत् करने लगता है! धन्य नवद्वीपदादा! तुम्हारी अहैतुकी कृपा की जय हो! जिस बैठक में परनिन्दा, परचर्चा, परछिद्रान्वेषण और परवित्तापहरण आदि को लेकर परामर्श होता था, उसी में आज संकीर्तन की धूम मची है! 'मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम्' आदि जो बातें हमने सुन रखी हैं, वह सभी आज आनन्दबाबू के परिवर्तन को देख सामान्य सी लगती हैं। आनन्दबाबू रह-रहकर उस शीशे में अपने को देखते हैं और जो पोशाक वे पहले पहला करते थे, उसे धिक्कारते हैं। आँखों से आँसू निकल रहे हैं, जिनसे उनका मुख और वक्षस्थल भीग रहा है। थोड़ी देर बाद जब वे किसी कार्यवश घर के भीतर गये, तो नवद्वीपदादा वहाँ जाकर उनकी पत्नी और नौकरानियों से पूछने लगे 'अच्छा माताओ! आज अपने बाबूजी को देखकर ठीक-ठीक बताओ कि ये पहले अच्छे लगते थे, या अब?' इस पर सभी एक साथ बोल पड़ीं 'पहले तो बाबूजी को देखते ही हमें डर लगता था, बातें करने का भी साहस नहीं होता था। आज लगता है जैसे माधुर्य की मूर्ति हों। देखते ही प्रेम उमड़ता है।' आनन्दबाबू की पत्नी आकर नवद्वीपदादा के पैर पकड़ रोते-रोते बोलीं 'दादा! मैंने ऐसा क्या अपराध किया है, जो मेरा उद्धार नहीं हुआ? मैं क्या सदा पशु ही बनी रहूँगी?' यह सुन नवद्वीपदादा गद्‌गद कण्ठ से आश्वासन देते हुए बोले 'डर किस बात का है? पतित-पावन अवतार में कोई भी वंचित न रहेगा।'

इधर ठाकुरजी का भोग-राग पूरा हुआ। सभी ने महाप्रसाद पा विश्राम किया। आनन्दबाबू ने बाबाजी महाशय का अधरामृत स्वयं लेकर घर के सब लोगों में बाँट दिया। इस प्रकार बाबाजी महाशय, नवद्वीप दादा और अन्य वैष्णवों का अधरामृत और चरणामृत सेवन कर आनन्दबाबू का घर पवित्र हो गया। तब आनन्दबाबू की प्रार्थना पर बाबाजी महाशय ने यथासमय उनके परिवार के सभी लोगों को मन्त्र प्रदान किया। क्रमशः आनन्दबाबू के घर सात्विक आहार-व्यवहार देख सभी कटकवासी बाबाजी महाशय के प्रति विशेषरूप से भक्तिभाव रखने लगे।

पुरी-प्रत्यावर्तन

आनन्द मित्र के घर एक मास से अधिक हो गया। बाबाजी महाशय कहीं जाने की बात कहते तो आनन्दबाबू आँखों में आँसू भर लाते और उनके पैर पकड़ कर कहते 'बाबा, और कुछ दिन रुक जाइये।' यदि कोई उन्हें आमंत्रित करने आता तो व्याकुल भाव से रो उठते। एक दिन सुबह बाबाजी महाशय बड़े गम्भीर होकर बैठे थे। जैसे ही आनन्दबाबू ने आकर दण्डवत् प्रणाम किया, वे बोले 'भाई, आज पुरी जाना होगा। बहुत दिन जगन्नाथदेव ने दूर रखा है, आज उन्हें देखने के लिये मन बड़ा उतावला हो रहा है। तुम बड़ी सावधानी से रहना और यथासम्भव साधु-संग करना। असत्य व्यवहार, हिंसा, परचर्चा, परछिद्रान्वेषण, परनिन्दा और दूसरे की अनिष्ट-चेष्टा, इन सब बातों को छोड़कर नाम का आश्रय लेकर रहना। कोई विपद न आयगी। प्रभु मंगलमय हैं, यह याद रखना।' किन्तु आनन्दबाबू बाबाजी महाशय के श्रीधाम पुरी जाने की बात ही सोच रहे थे। वे गद्‌गद कण्ठ से बोले 'बाबा, और कुछ दिन यहाँ रहकर अबोध सन्तान को थोड़ा और स्थिर कर जाइये न।' बाबाजी महाशय बोले, 'भाई, निताइचाँद सब ठीक करेंगे। अब मुझे रोको नहीं' और उन्होंने तुरन्त साथियों को पुरी-प्रस्थान के लिये तैयार होने का आदेश दिया। स्वयं आगन्तुक भक्तों से विदा ले स्नान-आह्निकादि कर और महाप्रसाद पा थोड़ा विश्राम किया।

अपराह्न में श्रीधामपुरी जाने के लिये वे स्टेशन की ओर चल पड़े। आनन्दबाबू कचहरी न जाकर उनके साथ स्टेशन गये। स्टेशन पर आनन्दबाबू बाबाजी महाशय के श्रीचरण पकड़ कर रोते-रोते कहने लगे, 'बाबा! मैं आपके बिना न रह सकूँगा। मुझे साथ ले चलना होगा।' बाबाजी महाशय ने तरह-तरह के आश्वासन दे उन्हें शान्त किया और कुछ दिन बाद एक बार पुरी आने का आदेश दे गाड़ी में बैठ गये। ट्रेन

चल दी। आनन्दबाबू दु:खी होकर घर लौट आये। पर उनके मन और प्राण बाबाजी महाशय के मधुमय संग में ट्रेन में ही बैठे चले गये। वे घर जाकर बैठक में लेट गये। स्त्री-पुत्रादि उनका ध्यान दूसरी ओर ले जाने की चेष्टा करने लगे। पर उनकी विरह-व्याधि और भी प्रबल होने लगी। इधर यथासमय गाड़ी पुरी पहुँची, और बाबाजी महाशय झाँझपीटा मठ पहुँच गये।

पुरी में आज से फिर नया आनन्द शुरू हो गया है। बाबाजी महाशय श्रीश्रीजगन्नाथदेव के मन्दिर में रोज संकीर्तन कर नाम करते-करते समुद्र-स्नान और परिक्रमा करने लगे हैं।

एक दिन संवाद आया कि बाबाजी महाशय के शिष्य वकील प्राणवल्लभबाबू का शरीर बहुत अस्वस्थ है। बाबाजी महाशय उन्हें देखने गये, तो वे बोले 'देखिये, मेरी बड़ी अभिलाषा है कि मैं अपना यह घर श्रीश्री राधाकान्तजी को अर्पित कर भेक ले लूँ। मेरा विश्वास है कि मैं अब ज्यादा दिन नहीं बचूँगा।' बाबाजी महाशय ने कहा 'क्यों, आपकी पत्नी जब मौजूद है, तो इतने उतावलेपन की क्या आवश्यकता है?' इस पर प्राणवल्लभबाबू बोले, 'स्त्री के लिये तो गाँव में सम्पत्ति है। मैं चाहता हूँ कि मैं अपनी कमाई सम्पत्ति अपने हाथ से भगवत्सेवार्थ दान कर जाऊँ।' उनकी पत्नी ने भी इस बात से अपनी सहमति जताकर विशेष उत्साह के साथ घर की लिखा-पढ़ी करा दी। चार-पाँच दिन बाद ही प्राणवल्लभबाबू का शरीर गिरने लगा। उनकी प्रार्थनानुसार बाबाजी महाशय ने उन्हें भेक दिया। प्रभु की इच्छा से भेक लेने के कुछ दिन बाद ही वे संसार त्यागकर चले गये। बाबाजी महाशय ने उस स्थान का नाम रखा 'प्राणवल्लभ मठ।' स्थान बहुत ही मनोरम है, अत: बहुत बार बाबाजी महाशय यहाँ आकर ठहरा करते थे। यही नहीं, किसी-किसी दिन तो जगन्नाथ-दर्शन कर लौटते समय रात को इसी मठ में आकर विश्राम करते।

गदाधरदास का पुनर्जन्म

एक दिन बाबाजी महाशय के मन में न जाने क्या आया, वे ललितादासी से बोले, देखो, कल बहुत से भक्त बाबू लोगों को यहाँ प्रसाद पाने के लिये कहूँ, ऐसा सोचा है। अतएव ऐसा करना जिससे जल्दी ही ठाकुरजी का भोग-राग हो जाय।

ललिता—जी, कितने लोग होंगे?

बाबाजी—लोगों की संख्या से तुम्हें कोई प्रयोजन नहीं। दो मन चावल बनेंगे और उसी के अनुसार बाकी वस्तुएँ होनी चाहियें। तुम्हें अकेली को ही रसोई करनी होगी। चने की दाल, आलू और छेने का रसा आदि चार-पाँच दाल-साग और पूड़ी बनेंगे।

ललिता—रसोई के लिये मेरे साथ एक और व्यक्ति न रहने से समय बहुत लगेगा।

बाबाजी महाशय नाना प्रकार की आपत्ति कर अन्त में कुसुममञ्जरीदासी को साथ में रखने के लिये राजी हुए और बोले, 'दस बजे तक ठाकुरजी के भोग की व्यवस्था हो जानी चाहिये।' ललितादासी बाजार से सामग्री खरीदने का आयोजन करने लगीं। उस दिन रात को सदल बाबाजी महाशय का बड़े हरीशबाबू के घर निमन्त्रण था। इधर तीसरे पहर से ही चावल-दाल आदि वस्तुएँ ठीक की जाने लगीं। सन्ध्या के समय राधाकान्तदेव की आरति के दर्शन कर सभी लोग पंगत में जाने की तैयारी कर रहे थे, उसी समय बाबाजी महाशय के शिष्य जाजपुरनिवासी वृद्ध वैष्णव गदाधरदास मठ के कुएँ के पास से चीख पड़े 'बाबा! साँप ने काट लिया, बचाओ!' यह सुन सब घबड़ा गये और वृद्ध को उस जगह से पकड़ कर ले आये। आँगन में आते-आते वृद्ध बाबाजी न जाने कैसे हो गये। शरीर नीला पड़ गया, हाथ-पैर के जोड़ अचल हो गये, जीभ लगभग पाँच अंगुल बाहर निकल आई। पूज्यपाद अवधूत ज्ञानानन्द स्वामीजी के शिष्य गोविन्दानन्द परिव्राजक और कृष्णानन्द स्वामीजी ने जूटकी डोर से उनके पैरों को जोड़ पर बाँध दिया। बाबाजी महाशय ने उनकी अवस्था देखकर सबसे नाम करने के लिये कहा और उनके पैर का बन्धन खोल दिया। बन्धन खुलते ही वे एकदम बेहोश होकर पड़ गये। सब दु:खी होने लगे। बाबाजी महाशय ने गदाधर को संकीर्तन के बीचों-बीच लिटाकर खूब जोर से नाम आरम्भ किया। नाम की अपूर्व ध्वनि उठी। चारों ओर

से लोग चुम्बकाकृष्ट लोहे की तरह दौड़े चले आये। ठाकुरजी के आँगन में तिलभर जगह न रही। जहाँ-जहाँ नाम की ध्वनि पहुँची, वहीं से लोग आकर इकट्ठा होने लगे। संकीर्तन करने वाले चक्र की तरह घूमने लगे। सभी सोचने लगे कि गदाधरदास मानव-लीला संवरण कर चुके हैं। बाबाजी महाशय ने संकीर्तन में घूमते-घूमते उनके सिर पर अपने बाँयें पैर से एक जोर की लात मारी और फिर घूमने लगे। उनके चरण का स्पर्श पाते ही गदाधरदास की अवस्था में परिवर्तन होने लगा। कृष्णानन्द स्वामीजी विस्मित हो बाबाजी महाशय की ओर देखने लगे। इसी समय अलक्षितभाव से बाबाजी महाशय ने फिर गदाधरदास के सिर पर पदाघात किया। पदाघात होते ही गदाधर हड़बड़ाकर उठे और बाबाजी महाशय को खोजने लगे। इस समय बाबाजी महाशय संकीर्तन के बीच आकर उद्दण्ड नृत्य कर रहे थे। गदाधर सुयोग पाते ही उनके पैर पकड़ कर रोने लगे। उन्होंने उन्हें स्थिर कर कीर्तन में नाचने के लिये कहा। वे बड़े अपूर्व ढंग से नृत्य करने लगे। उन्हें देख सब अवाक् रह गये। जो गदाधरदास कभी एक पैर भी नहीं नाचे थे, वे आज इतना सुन्दर नृत्य कर रहे थे कि सभी विस्मित थे!

कुछ देर बाद नाम बन्द हुआ। गदाधरदास रोते-रोते कहने लगे 'बाबा! आज का दिन मेरी मृत्यु का निर्धारित दिन था। मेरी जन्मकुण्डली के अनुसार आज सभी बात सच हुई। उसमें लिखा है कि इकसठवें साल, सन्ध्या-समय, दायें पैर के पिछले हिस्से पर सर्पाघात होने से प्राणान्त होगा। मैंने देश के अनेक ज्योतिर्विद् पण्डितों से इसके प्रतिकार के लिये अनुरोध किया, पर सभी ने कहा कि तुम्हारी और आयु नहीं है। यह इकसठवें वर्ष का ही अन्त चल रहा है। तभी मैंने संसार-आश्रम छोड़कर आपके श्रीचरणों में आश्रय लिया था। मुझे दिन के बारे में ठीक मालूम था। पर मैंने किसी को कुछ बताया नहीं। आज जैसे ही कुएँ के पास पहुँचा, पता नहीं कहाँ से साँप ने आकर दायें पैर में निर्दिष्ट स्थान पर ही काट लिया। मैं तो तभी समझ गया कि मेरा जीवन समाप्त हुआ। पर आश्चर्य! आपने मुझे दैवअगोचर भाव से बचा लिया।'

बाबाजी—पागल! ऐसा नहीं कहते। नाम-नामी अभिन्न हैं। नाम से ही तुम्हारा संकट दूर हुआ है।

गदाधर—बाबा! मैंने तो प्रत्यक्ष ही देखा कि आप मुझे वापस ले आये। मैं आपकी बातों में कैसे आऊँ?

बाबाजी—भाई, प्रभु का काम दास पर नहीं थोपते। उससे अपराध होता है।

गदाधर—मैं गलत कहूँ, तभी तो।

बाबाजी—तुम्हारी वह जन्मकुण्डली है?

गदाधर—है क्यों नहीं?

बाबाजी—अच्छा, उसे कल देखेंगे। तुम निमन्त्रण में जाओगे?

गदाधर—मैं आपका हूँ। शरीर आपका है, आप जो आज्ञा देंगे वही करूँगा।

बाबाजी—तो चलो, महाप्रसाद पाने, श्रीजगन्नाथ देव की कृपा से तुम्हारा सब भला होगा।

इतना कह नाम करते-करते बड़े हरीशबाबू के घर महाप्रसाद पाने गये। गदाधरदास भी साथ में गये। दूसरे दिन सुबह एक उड़िया पण्डित को बुलाकर उससे गदाधरदास की कोष्ठी गणना कराई गई। गत रात की ठीक वही घटना आद्योपान्त उसी क्रम में कोष्ठी में लिखी थी। उस दिन के बाद उनका आयु-काल निर्धारित ही नहीं हो रहा था, यह देख सब अवाक् रह गये। कोष्ठी में लिखी बातें इतनी सच होती शायद किसी ने नहीं देखीं थीं। तीन-चार दिन तक गदाधर दास के उस क्षत स्थान पर थोड़ा दर्द रहा; पर बाबाजी महाशय के दोनों नेत्र लाल हो गये और शरीर इतना गर्म हो गया कि तीन-तीन बार स्नान करने के बाद भी रात को उन्हे नींद नहीं आती थी। नाना प्रकार के यत्नों के बाद तीन दिन बाद शरीर स्वस्थ हुआ। गदाधर दास दो वर्ष पुरी रहे, फिर बाबाजी महाशय के आदेशानुसार श्रीधाम वृन्दावन में श्रीराधाकुण्ड पर रहने लगे। वहाँ ढाई वर्ष रहने के बाद उन्होंने नित्यलीला में प्रवेश किया।

अटलदास से भेंट

एक दिन लगभग बारह बजे दिन में एक गौरवर्ण युवक मठ में आया। देखने में शिक्षित लगता था। पता

नहीं, वहाँ क्या खोजने आया था। किसी से कुछ कह-सुन नहीं रहा था। सिर्फ यही पूछ रहा था 'इस आश्रम का मालिक कौन है?' सबने कहा 'आप विश्राम कीजिये, महाप्रसाद पाइये, मालिक के आते ही भेंट कर लीजिये।' वह युवक किसी प्रकार राजी नहीं हो रहा था। अन्त में हारकर उसने स्नान किया और महाप्रसाद पाया। बाबाजी महाशय का एक अन्य स्थान पर निमन्त्रण था, वे वहाँ गये हुए थे। चार बजे के लगभग आश्रम लौटकर आये। एक आश्रमवासी ने युवक को बाबाजी महाशय का परिचय दिया। वह बाबाजी महाशय को दण्डवत् प्रणाम कर उनके आगे बैठ गया। बाबाजी महाशय ने पूछा, 'तुम्हारा नाम क्या है?'

युवक—मेरा नाम अनाथबन्धुदास है।

बाबाजी—तुम्हारा निवास-स्थान?

अनाथ—कलकत्ता, भवानीपुर।

बाबाजी—क्या कोई नौकरी करते हो?

अनाथ—मैंने बी०ए० पास किया, पर कोई नौकरी नहीं की। यह भी पता नहीं प्रभु क्या करायँगे। इस समय मेरे गुरुदेव श्रीदीनबन्धु काव्यतीर्थ महाशय ने मुझे भेजा है। उनके तीसरे भाई घर छोड़कर पुरीधाम में आपके पास रह रहे हैं। इसलिये आपके पास आया हूँ। क्या आप ही इस आश्रम के मालिक हैं?

बाबाजी—भाई, तुम शिक्षित हो, तुम्हें ऐसी बात नहीं करनी चाहिये, क्योंकि जीव तो भगवान् के खेल की पुतली हैं। जीव कभी मालिक नहीं हो सकता; यदि जबरदस्ती कोई मालिक बनकर बैठ जाय, तो यह उसकी गलती है।

अनाथ—क्यों? हमारे पास तो बहुत कुछ स्वतन्त्र शक्ति है; क्या हम उसे लेकर स्वतन्त्रतापूर्वक काम नहीं कर सकते?

बाबाजी—भाई, हमारे पास कौन-कौन सी स्वाधीन वृत्तियाँ या शक्तियाँ हैं, मुझे समझाओ तो!

अनाथ—हम चाहें तो दूसरों का उपकार कर सकते हैं, चाहें तो उनका अनिष्ट भी कर सकते हैं। ज्ञान-उपार्जन, तीर्थ-पर्यटन, अर्थादि-संग्रह, सद्-व्यय या असद्व्यय, प्रत्येक कार्य में ही तो दोनों शक्तियाँ अर्थात् भगवदिच्छा एवं निजेच्छा अथवा क्रियायें स्पष्ट हैं।

बाबाजी—जीव ने सच्चिदानन्द परमपुरुष का अणु अंश पाया है। इसी के बल पर 'मैं, मेरा' कहकर हम लोग प्रभुत्व लिये फिरते हैं। जो शक्ति भगवान् में है, वह जीव में भी है। भगवान् जो कुछ कर सकते हैं, जीव भी वह सब कर सकता है; लेकिन वे पूरी-पूरी तरह करने में समर्थ है; जीव अणु परमाणु रूप में समर्थ है। पर विचार कर देखो जीव की यह जो स्वाधीनता अथवा ईश्वरत्व या इच्छा शक्ति है, वह पूर्णतः पराधीन है या नहीं। क्या मैं इच्छा करते ही कोई काम कर सकता हूँ? यदि इच्छामात्र से धन संग्रह किया जा सकता, तो लोग गरीब क्यों होते? स्त्री-पुरुष के सहयोग से सन्तान होती है, पर कितने ही लोग हैं, जो अनेक चेष्टा करने पर भी एक सन्तान हो इस बात की चेष्टा करते हैं, पर क्या वे सफल हो पाते हैं? एक व्यक्ति विद्या प्राप्त करने के लिये कितनी चेष्टा करता है, धन खर्च कर मास्टर रखता है, फिर भी उसे कोई ज्ञान प्राप्त नहीं होता। दूसरा साधारण-सी चेष्टा से ही अच्छा ज्ञान पा लेता है। हम जिस शरीर से दूसरे का इष्ट-अनिष्ट करना चाहते हैं, उस शरीर पर क्या हमारा अपना कोई अधिकार है? तुम इच्छा करने पर भी क्या अपनी बाल्य अथवा किशोरावस्था को निर्दिष्ट काल के अतिरिक्त दो दिन भी रख सकते हो? अथवा क्या इस यौवन को निर्दिष्ट समय के अतिरिक्त एक मुहूर्त भी रखने की शक्ति तुम में है? जिस समय दाँत निकलते नहीं, उस समय अनेक चेष्टा करने पर भी क्या दाँत पैदा कर सकते हो? और जब निकलते हैं, तब उसमें बाधा देने की अथवा जब गिरते हैं, तब उन्हें बनाये रखने की क्षमता क्या तुममें है? किसी काम में जीव की कोई स्वाधीनता नहीं है। देखने में यही लगता है जैसे जीव ही सब कर रहा है, पर विचार करने पर वह भ्रम दूर हो जाता है। मैं किसी का इष्ट अथवा अनिष्ट करना चाहता हूँ। मान लो उसी समय, ठीक उसी मुहूर्त, मेरा शरीर अचल हो जाय अथवा मेरे प्राण निकल जायँ, तो मैं क्या कर सकता हूँ? तो बताओ, इस स्वाधीनता को स्वाधीनता कहोगे या पूर्ण आधीनता?

इन सब बातों को खूब अच्छी तरह सोच-विचारकर ही आचार्य लोगों ने कहा है; 'प्रकृतेः क्रियामाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः। अहंकार विमूढ़ात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते॥' जीव कृष्ण का नित्यदास है। जीव का निजी कर्तृत्व बिन्दुमात्र नहीं।

अनाथ—जीव की स्वतन्त्र कार्यकारिणी शक्ति न भी सही, स्वतन्त्र मानसिक वृत्ति तो है। मानसिक इच्छा तो और किसी के अधीन नहीं। कोई बलवान जीव किसी दुर्बल जीव पर अत्याचार करता है; वह दुर्बल व्यक्ति शरीर से उसका कोई अनिष्ट नहीं कर सकता, पर उसकी मानसिक इच्छा तो निश्चय ही अपना कार्य करती है। क्यों?

बाबाजी—संकल्प-विकल्पात्मिका वृत्ति का नाम 'मन' है और निश्चयात्मिका वृत्ति का नाम है 'बुद्धि'। यह मन और बुद्धि जड़ पदार्थ हैं। चैतन्य शक्ति के बिना ये कोई कार्य नहीं कर सकते। हम भ्रमान्ध जीव हैं, आसानी से सर्वशक्तिमान, सर्वान्तर्यामी, सर्वव्यापी भगवत्सत्ता उपलब्ध नहीं कर पाते, और दोषारोपण करते हैं मन-बुद्धि पर। वास्तव में ऐसा नहीं है। जीव के जो भी कुछ कार्य हैं, सब भगवत् सत्ता के अधीन हैं। चैतन्य शक्ति के बिना मन, बुद्धि, इन्द्रियादि कोई काम नहीं कर सकते।

अनाथ—अच्छा, क्या संसार त्याग किये बिना, वैराग्य लिये बिना, भगवत् उपासना नहीं हो सकती?

बाबाजी—किसने कहा कि संसार त्यागे बिना भगवत्प्राप्ति नहीं होती? गोपियों और व्रजवासियों में से कितने गृहत्यागी थे? ध्रुव, प्रह्लाद, हरिश्चन्द्र अम्बरीष, जनक, पृथुने क्या भगवत् उपासना नहीं की थी? उन्हें क्या भगवत्प्राप्ति नहीं हुई? भगवत्प्राप्ति के लिये संसार-त्याग आवश्यक नहीं। पर उपासना करनी है। भगवत्प्राप्ति के लिये भगवदाराधना आवश्यक है, यह सच है। आराधना अपनी-अपनी सुविधानुसार सब करते हैं। संसार में रहकर जिसे आराधना की सुविधा हो वह संसार त्यागकर वन में क्यों जाय? फिर संसार में रहने से भोजन और वस्त्र की चिन्ता नहीं रहती; इसलिये मेरे मत से तो संसार में रहने में ही अधिक सुविधा है।

अनाथ—तो आपने संसार त्याग क्यों किया?

बाबाजी—भाई! मेरे लिये इसी में सुविधा है। खूब खाने को मिलता है; खूब प्रतिष्ठा होती है।

अनाथ—यह जो मेरी तरह युवक हैं, इन्होंने संसार क्यों छोड़ा? यह लोग संसार में रहकर अर्थादि द्वारा दुःखी-दरिद्रों का उपकार करते, तो जगत का कितना भला होता? आपको इस विषय में चेष्टा करनी चाहिये। माता-पिता, भाई आदि ने पैसा खर्चकर लिखना-पढ़ना सिखाया, इस तरह वैराग्य ले लेने से फिर लिखने-पढ़ने की सार्थकता क्या?

बाबाजी—भाई! भगवान् जिससे जब जैसा कराना चाहते हैं, वह उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं कर सकता। तुम एक व्यक्ति को वैराग्य से घर वापस ले जाने के लिये आये हो। प्रभु यदि चाहें और यदि प्रभु की कृपा से उसका वैराग्य सच्चा हो, तो उसका वापस जाना तो अलग रहा, तुम्हें स्वयं ही वह इस वैराग्य-पथ पर ला सकता है।

अनाथ—मैं कभी इस पथ पर नहीं आऊँगा। जिन्होंने इतनी चेष्टा कर लिखना-पढ़ना सिखाया, उनके लिये भी तो कुछ करना है। संसार में सत्पथ पर चलकर भगवदुपासना करना ही काफी है। संसार छोड़ना हमारे गुरुदेव का मत नहीं।

इस प्रकार दिन बीत गया। दूसरे दिन सुबह उठते ही स्नानादि कर बाबाजी महाशय सदल नाम करते-करते मन्दिर को गये। पूर्वोक्त अनाथबाबू भी साथ गये। मन्दिर में पहुँचते ही श्रीजगन्नाथदेव के दर्शन हो गये। आज बाबाजी महाशय का संकीर्तन कुछ और ही प्रकार का है; सिर्फ दर्शन-जातीय भाषा और तद्जातीय कथा। सभी साधनों में भक्तिमार्गीय साधन की श्रेष्ठता, मनुष्य जीवन का कर्तव्य इत्यादि बातें आज के संकीर्तन के विषय हैं। अनाथबाबू कीर्तन सुनकर न जाने कैसे होते जा रहे हैं। उन्होंने इतने दिन जिस रास्ते को जीवन उन्नति का सोपान माना था, वही उन्हें असार प्रतीत हो रहा है। वे जिस भाव से संसार आश्रम में प्रवेश करने जा रहे थे। और दूसरों को उपदेश दे रहे थे, वह अब उन्हें अपनी भूल मालूम पड़ रही है। बाबाजी महाशय की सर्वदर्शन-शास्त्र-सम्मत और युक्तिपूर्ण बातें उनके

हृदय को तीर की तरह बेधती हुई कुसंस्कार रूपी शत्रुओं को समूल नष्ट कर चुकी हैं। थोड़ी देर में उनकी आँखों में पानी आ गया। वे अत्यन्त व्याकुल भाव से संकीर्तन के बीच में जाकर लोटने-पोटने लगे। बाबाजी महाशय ने उन्हें उठाकर आलिंगन किया। संकीर्तन के बाद वे बाबाजी महाशय के श्रीचरण पकड़कर कातरभाव से कहने लगे 'प्रभु! मुझे बंधन से मुक्त कीजिये; मेरा और कोई नहीं। अब संसार-कूप में कूदने की इच्छा नहीं करती।' इस प्रकार कातरोक्ति सुन बाबाजी महाशय का हृदय पिघल गया। अनाथबाबू के विशेष आग्रह पर उन्होंने उन्हें निताइ-गौरांग मन्त्र प्रदान किया। अनाथबाबू ने चिर जीवन के लिये अपने को बाबाजी महाशय के चरणों में अर्पित कर दिया। उनका संसार में वापस जाना न हुआ। जिसे वापस ले जाने के लिये आये थे, उसके साथ मिलकर वैष्णव-सेवा, गुरु-सेवा और भगवत्सेवा करने लगे। कुछ दिन बाद उन्होंने आश्रम त्यागकर वैराग्य-वेश धारण करने के लिये विशेष आग्रह किया। पहले तो बाबाजी महाशय ने बहुत निषेध किया, पर जब वे किसी प्रकार भी न माने, तो उन्हें भेक दे दिया। उनका नाम हो गया अटलबिहारीदास। अटल सर्वगुणसम्पन्न हो गये। अद्वितीय गुरु-निष्ठा और गुरु-भक्ति के जैसे प्रतीक हो गये। वे शिक्षित लोगों से कहते 'देखो भाई, तुम लोग बाबाजी महाशय की बातों में अन्धे की तरह विश्वास न करना। अच्छी तरह सूक्ष्म विवेचन करना। वैष्णव-धर्म को अन्धविश्वासी अथवा अशिक्षितों का धर्म मत समझना। बाबाजी महाशय किसी को प्रलोभन देकर वैराग्य देते हैं, यह मत सोचना। जो लोग वैराग्य लेते हैं, वे खूब सोच-विचार कर समझ-बूझकर ही लेते हैं। इसका दृष्टांत मैं स्वयं हूँ।' इस प्रकार अटलदास शिक्षित समाज में भी विशेष आदर के पात्र हो गये। बाबाजी महाशय का संग कितना आनन्दप्रद है, वे लोगों को विशेष रूप से समझाने लगे।

कुछ दिन बीते। एक दिन बाबाजी महाशय ने उनसे पूछा 'भाई अटल! जिनके आदेश से तुम यहाँ आये थे, उन्हें कोई खबर भेजी कि नहीं?'

अटल—सो तो कुछ नहीं किया। खबर देते ही दुनियाँ के अनेक झंझट आ खड़े होंगे। मेरे विचार से उन लोगों को न बताना ही ठीक है।

बाबाजी—तो क्या तुम्हारा मत है कि वैराग्य संसार को बिना बताये गुप्तरूप से ही लेना चाहिये?

अटल—और क्या? दुनियाँ वालों को पता चला नहीं कि नाना प्रकार के विघ्न ओर विपत्तियाँ उपस्थित हुईं। उन विपत्तियों से जितना बच सकें उतना अच्छा।

बाबाजी—जब लोगों को पता चलेगा तब क्या करोगे? तुम्हारा विचार गलत है। तुम वैराग्य को इतनी दुर्बल वस्तु समझते हो कि साधारण-सी कोई बाधा आते ही परास्त हो जायगा? दूसरे काम भले ही छिप कर किये जायँ, पर वैराग्य कभी छिपाकर नहीं लिया जाता। जो वैराग्य बाधा-विघ्नों से बचकर लिया जाता है, वह कभी स्थाई नहीं हो सकता। यदि वास्तव में तुम्हारे मन में वैराग्य आया है, तो अपने गुरुदेव से क्षमा-प्रार्थना कर उनसे कृपा-भिक्षा माँगो। इससे वैराग्य दृढ़ होगा। ध्रुव जब वन में जाने लगे, तब नारद ने उनके वैराग्य की परीक्षा करने के लिये कितने प्रलोभन दिखाये थे। ध्रुव बालक थे, फिर भी देवर्षि उन्हें फुसला न सके? आओ, काव्यतीर्थ महाशय को पत्र लिखो।

बाबाजी महाशय के कथानानुसार अटल ने अपनी अवस्था का यथायथ वर्णन करते हुए कलकत्ते पत्र भेज दिया। कुछ दिन बाद उनके बड़े भाई हरिपदबाबू आये। उनकी इच्छा थी कि अटल और काव्यतीर्थ महाशय के तीसरे भाई दोनों को ही एक साथ कलकत्ते ले जायँगे। दैवचक्र और महत्-शक्ति के प्रभाव से उनकी भी मति पलट गई। एक दिन बाबाजी महाशय से बोले, 'बाबा! मेरी अब घर जाने की इच्छा नहीं है। तीर्थ-भ्रमण करने की बड़ी इच्छा है।' बाबाजी महाशय मृदुभाव से हँसकर बोले 'पैदल या रेल से?'

हरिपद—जी, ये सब तो मैं नहीं जानता, इसका भार मैंने आपके चरणों पर छोड़ दिया, आपकी जैसी इच्छा।

बाबाजी महाशय चुप रहे। तीन-चार दिन बीते; एक वृद्धा आकर बाबाजी महाशय से कहने लगीं,

'बाबा! मेरी बड़ी इच्छा है कि थोड़ा तीर्थ-भ्रमण करूँ; आप मुझे एक ऐसा विश्वसनीय आदमी दीजिये जो मुझे यत्नपूर्वक सभी तीर्थ करा लाय। मैं उसका सारा खर्चा दूँगी।' बाबाजी महाशय साश्रु-नयन गद्‌गद कण्ठ से बोले 'हा निताइ! तुम वाञ्छा-कल्पतरु हो; किसी की कोई वासना अपूर्ण नहीं रखते। तुम्हारी दया की बलिहारी!' उन्होंने हरिपदबाबू को वृद्धा के साथ भेज दिया। दीनबन्धु काव्यतीर्थ महाशय यह सम्वाद पाकर बड़े आश्चर्य-चकित हुए। कहने लगे, 'कैसा आश्चर्य है। जिसे भेजता हूँ, वही वापस नहीं आता। अच्छा, इस बार मैं खुद चलूँ, देखूँ वहाँ क्या चक्कर है!' क्रुद्धभाव से वे पुरी पहुँचे। बाबाजी महाशय से कथावार्ता की। उनका व्यवहार देखा। फिर अटल और अपने भाई की अवस्था देख पता नहीं कैसे हो गये। चार-पाँच दिन मठ में रहकर परमानन्द उपभोग किया; फिर बाबाजी महाशय के आदेशानुसार उन लोगों को आशीर्वाद दे कलकत्ता लौट आये।

इसी समय से काव्यतीर्थ बाबाजी महाशय के प्रति बहुत आकृष्ट हो गये। यहाँ तक कि कभी उनकी माँ स्नेह के वशीभूत हो अपने पुत्र के वैराग्य के लिये बाबाजी महाशय पर किसी तरह का कटाक्ष करतीं, तो वे छूटते ही कहते 'माँ! तुम नहीं जानतीं। यदि कभी उन महात्मा का दर्शन करोगी तब देखोगी उनकी अमानुषिक शक्ति। मैंने देश-देशान्तर का भ्रमण किया है, पर ऐसे महापुरुष का कहीं दर्शन नहीं किया। पूर्व जन्म के विशेष पुण्य और माता-पिता की कृपा के बिना ऐसे महापुरुष के चरणों का आश्रय नहीं मिलता। आश्चर्य की बात है कि उन्हें देखते ही मन-प्राण द्रवित हो जाते हैं। संसार की बातें याद नहीं रहतीं। इच्छा होती है कि सदा के लिये उनके श्रीचरणों का आश्रय लेकर जन्म सफल कर लें। दूसरों की क्या कहूँ? मैंने उनके दर्शन किये हैं, तभी से उनकी मधुर मूर्ति मेरे हृदय में जाग्रत रहती है। न जाने कब फिर उनके दर्शन कर जीवन धन्य करूँगा।'

कलकत्ता गमन

एक दिन हालीशहर निवासी श्रीनित्यसखा मुखोपाध्याय नामक एक ब्राह्मण युवक बाबाजी महाशय के दर्शन के लिये आये। पता नहीं पहले से इन दोनों का परिचय था या नहीं। दोनों एक दूसरे को देखते ही भ्रातृभाव से लिपट गये। दोनों के नेत्रों से जल की धारा बहने लगी, अंग में स्तम्भ और पुलक होने लगा, और मुख पर हँसी झलकने लगी। इस अपूर्व मधुमय मिलन को देख आश्रमवासी विमुग्ध हो गये। थोड़ी देर बाद स्थिर हो दोनों एक दूसरे से कुशल प्रश्न करने लगे; एक दूसरे को दादा कहकर पुकारने लगे। बाबाजी महाशय बोले, "आप ब्राह्मण हैं और सुविज्ञ पंडित, इसलिए मेरे बड़े भाई हैं।" नित्यसखाबाबू बोले, 'आप उमर में बड़े और भजन-परायण वैष्णव हैं। कहाँ आप और कहाँ मैं। इसलिए यदि आप मुझे छोटा भाई न मानेंगे तो मुझे बड़ा दु:ख होगा।' अन्त में बाबाजी महाशय को अपनी पराजय माननी पड़ी। फिर भी दोनों के परस्पर व्यवहार से जानना कठिन था कि उनमें कौन बड़ा है, कौन छोटा। नित्यसखाबाबू के रहने की व्यवस्था राधारमण कुञ्ज के बैठकखाने में कर दी गई। पर हर महाप्रसाद के समय दोनों साथ न बैठें यह सम्भव न था।

दिन इसी प्रकार आनन्द से बीतने लगे। एक दिन दोनों भाइयों ने विचार किया कि भक्त-मंडली सहित बालेश्वर होते हुए नवद्वीप-धाम की यात्रा की जाय। बाबाजी महाशय ने ठाकुर सेवा के लिए कुछ लोगों को छोड़ बाकी आश्रमवासियों को दूसरे दिन अपने साथ चलने का आदेश किया। आश्रम-वासी सुनकर बहुत आनन्दित हुए। दूसरे दिन प्रात:काल बाबाजी महाशय भक्त-मंडली सहित श्रीजगन्नाथजी के दर्शन करने गये। वहाँ कुछ समय कीर्तन कर समुद्र स्नान को गये। मार्ग में जो भी मिला उससे नवद्वीप के लिये विदा माँगी। करीब दस बजे झाँझपीटा मठ लौट कर आये तो देखा कि सब चलने के लिए प्रस्तुत हैं। उन्होंने जिसे-जिसे ठाकुर-सेवा के लिए आवश्यक समझा उसे नाना प्रकार के मधुर वाक्यों से वहाँ रहने का आदेश दिया। तीसरे पहर नाना कीर्तन करते-करते यथासमय स्टेशन पहुँचे। गाड़ी में नित्यसखाबाबू से परामर्श कर निश्चय किया कि इस बार कटक में कहीं स्वतन्त्र रूप से रहा जाय, क्योंकि किसी के घर रहने से इच्छानुसार कहीं आने-जाने की स्वतन्त्रता नहीं रहती।

भगवान् की न जाने क्या इच्छा थी, कटक स्टेशन पर उतरते ही कुछ सज्जनों से भेंट हुई। उनके पूछने पर कि 'कहाँ ठहरेंगे' बाबाजी महाशय ने अपना विचार व्यक्त किया। उनमें से एक व्यक्ति ने कहा 'एक ऐसा स्थान है तो सही, पर वह स्टेशन से दूर है।'

बाबाजी—मैं यही चाहता हूँ। वह स्थान क्या आपका देखा है?

बाबू—हाँ, इस श्मशान घाट पर श्यामबाबू का एक बहुत बड़ा और पुराना मकान है। उसे लोग भूतों का घर समझते हैं। इसी से उसमें कोई रहता नहीं, एक दरबान मात्र रहता है।

बाबाजी—अच्छा चलो, वहीं चलें।

बाबाजी नाम करते-करते उस ओर चल दिये। बाबू लोग आगे हो लिए। मकान के सामने पहुँच उन्होंने दरबान को आवाज दी। बाबाजी महाशय को देखते ही दरबान की न जाने क्या अवस्था हो गई, वह हाथ जोड़कर बोला, 'आज्ञा कीजिए।' बाबा हँसते हुए बोले, 'हम तुम्हारे घर मेहमान हैं।' दरबान बोला, 'बाबा, यह आपका ही घर है, मैं तो आपका नियुक्त किया हुआ सेवक हूँ।' इतना कह वह सबको भीतर ले गया। बड़ा दोमंजिला मकान था। कोई-कोई कमरा टूटा दीखता था। फिर भी बाबाजी महाशय स्थान देख कर बहुत आनन्दित हुए। उनके साथियों ने थोड़ी ही देर में तीन-चार कमरे झाड़-पोंछकर रहने-योग्य बना लिये। बाबू लोगों ने आहारादि के लिए बहुत अनुरोध किया पर उस रात उन्होंने कुछ भी नहीं लिया। थोड़ी देर बाद बाबाजी महाशय की आज्ञा से बाबू लोग चले गये।

दूसरे दिन प्रातःकाल बाबाजी महाशय स्नानादि नित्य कृत्य समापन कर मण्डली-सहित नगर-कीर्तन के लिए निकले। कटकवासी बाबाजी महाशय के मुख से नाम-कीर्तन सुन बहुत आनन्दित हुए और कीर्तन में योगदान करने लगे। बाबाजी महाशय के पूर्व-परिचित लोग आशा कर रहे थे कि वे उनमें से किसी के यहाँ अवश्य ठहरेंगे, पर पूछ-ताछ करने पर उन्हें मालूम हुआ कि वे शहर के बाहर श्यामबाबू के मकान में ठहरे हैं। बाबाजी महाशय धीरे-धीरे बहुत से स्थानों में भ्रमण करते हुए करीब साढ़े दस बजे निवास स्थान को लौटे। ठाकुरजी को क्या भोग लगेगा और साथियों का क्या आहार होगा इसका किसी को ध्यान न था। सब कीर्तनानन्द में विभोर। इतने में पिछली रातवाले बाबू लोग करीब पचास व्यक्तियों के लिए चावल, दाल, तरकारी, घी, तेल, हाँड़ी, ईंधन आदि लेकर आ पहुँचे। बाबाजी जैसे ही कीर्तन समाप्त कर बैठे, उन्होंने दण्डवत् प्रणाम कर भोग की सामग्री वैष्णव-सेवा में लगाने का अनुरोध किया। बाबाजी महाशय की आज्ञा से साथी लोग रसोई की तैयारी करने लगे। उनकी आज्ञा थी कि जिस दिन जो सामग्री उपस्थित हो, उसका सबका भोग उसी दिन लगा दिया जाय। भोग के पश्चात् सबके प्रसाद पा लेने पर जो बच रहे वह दुःखी और कंगालों को बाँट दिया जाया करे। इस आज्ञा के अनुसार काम चलने लगा। श्मशान का वह निर्जन स्थान मानो आनन्द-कानन बन गया। इस बार बाबाजी महाशय के पास स्कूल और कालेजों के विद्यार्थी विशेष रूप से आने लगे। विद्यार्थी उनसे तरह-तरह के प्रश्न करते और बाबा प्रसन्न हो उनकी शंकाओं का समाधान करते।

साथियों को बाबा ने मुष्टि-भिक्षा करने का आदेश किया। भिक्षा द्वारा आनन्द से सेवा-कार्य चलने लगा। एक दिन श्रीप्यारीमोहन दत्त का छोटा लड़का मदनमोहन और उसके साथी अपने घर के पास खेल रहे थे। अचानक बिजली गिरी। मदनमोहन के साथियों को सामान्य चोट आई पर वह बिलकुल अचेत होकर गिर पड़ा। आँखें ऊपर चढ़ गईं, बत्तीसी भिंच गई, शरीर ढीला हो गया। दूसरे बालकों ने भयभीत हो उसके माता-पिता को सूचना दी। वह बालक की अवस्था देख हताश हो गये। बहुत-से लोग आ गये। किसी ने कहा, 'शीघ्र किसी डाक्टर को बुलाओ,' किसी ने कहा, 'अब उसके जीवन की आशा करना व्यर्थ है।' उस समय प्यारीबाबू के ज्येष्ठ पुत्र दुर्गाप्रसाद ने कहा, 'कोई कुछ न कीजिए। मैं बड़े बाबाजी महाशय के पास जाता हूँ।' इतना कह कर वह तेजी से एक घोड़ा-गाड़ी ले बाबाजी महाशय के पास पहुँचा और

उनसे सब वृत्तान्त कहा। बाबाजी गाड़ी में बैठ उसके साथ चल दिये। घटना-स्थल पर पहुँचकर देखा कि सब लोक शोकाकुल हैं। प्यारीबाबू और उनकी स्त्री ने मदन को उनके चरणों में अर्पण करते हुए कहा, यह लो बाबा, तुम्हारी वस्तु तुम्हें समर्पण की, अब जो चाहो करो।

बाबाजी महाशय ने आँखें बन्दकर थोड़ी देर तक न जाने क्या विचार किया। फिर कम्पित कलेवर से मदन को आलिंगन कर 'जय नित्यानन्दराम' कह एक हुंकार भरी। मदन को चैतन्य हो आया। उसके नेत्रों में जल आ गया, देह पूर्ववत् गौरवर्ण हो गई। बाबाजी महाशय ने उससे माता-पिता को प्रणाम करने को कहा। पर दुर्गाप्रसाद के इंगित पर वह उनके चरणों में गिर पड़ा। उन्होंने दयार्द्र हृदय से उसे उठाकर आलिंगन किया। दर्शकों को ऐसा प्रतीत हुआ कि उन्होंने उसे सदा के लिए आत्मसात् कर माया-बंधन से मुक्त कर दिया। दर्शकवृन्द उनकी अलौकिक शक्ति का दर्शनकर विस्मित हुए। कोई-कोई बालक के सौभाग्य को देख नेत्रों से जल बहाने लगे, और कोई प्यारीबाबू का सरल और दृढ़ विश्वास देख विस्मित हो गये। अत्यन्त दुःख के पश्चात् आनन्द भी अति मधुर होता है, इसलिए सब लोग एक अनिर्वचनीय आनन्द-सागर में निमग्न हो गये। सबकी इच्छा हुई कि बाबाजी महाशय उस दिन वहीं रहें, पर वे सहमत न हुए। मदन की माँ के अनुरोध से गोविन्दजी का कुछ बाल-भोग प्रसाद ग्रहण कर दुर्गाप्रसाद को साथ ले निवास स्थान को लौट आये।

इसी प्रकार की ऐश्वर्य-माधुर्य-मयी लीला में बाबाजी महाशय के दिन बीतने लगे। एक दिन वे नित्यसखाबाबू से परामर्श कर बालेश्वर चल दिये। वहाँ श्रीलक्ष्मीनारायण मिश्र के घर तीन दिन अवस्थान किया। एक दिन नगर-कीर्तन करते-करते रेमुना के गोपीनाथ के दर्शन करने गये। गोपीनाथ के सेवकों ने आग्रह कर उस दिन उन लोगों को वहीं ठहरा कर महाप्रसाद सेवन कराया। इसके पश्चात् अन्यान्य स्थानों के दर्शन कर ये लोग कलकत्ता रवाना हो गये। नित्यसखाबाबू किसी विशेष कार्य के कारण बालेश्वर में ही रुक गये। ये लोग यथासमय हावड़ा पहुँचे। वहाँ जगन्नाथ-घाट पर गंगा स्नान कर कलूटोला में कुंजबाबू के मकान पर जा पहुँचे। कूंजबाबू, पुलिनबाबू आदि बहुत दिनों बाद बाबाजी महाशय को पाकर परमानन्द सागर में डूब गये। कुंजबाबू की माँ वात्सल्य भाव रखती थीं। ये पुत्र-भाव से उनके निकट जा बालक की भाँति नाना प्रकार की याचना करने लगे।

रायबहादुर के बगीचे में

आज बाबाजी महाशय को कुंजबाबू और पुलिनबाबू का आदर-सत्कार कुछ अच्छा नहीं लग रहा था, क्योंकि पुरी से ही उनका मनोभाव बन गया था कि वे किसी व्यक्ति के घर न ठहर कर किसी निरपेक्ष स्थान में रहेंगे। पुलिनबाबू के यहाँ रहते दो दिन बीते। तीसरे दिन वे बोले, 'पुलिन, बटु मामा के बगीचे में चला जाय तो कैसा रहे? मेरी इच्छा किसी निरपेक्ष स्थान में रहने की है।' यह सुन पुलिनबाबू कुछ सशंकित हो बोले, 'आपको यहाँ किसी प्रकार की असुविधा तो नहीं है?'

बाबा—असुविधा कुछ नहीं। यह तो मेरा अपना ही स्थान है। फिर भी किसी निरपेक्ष स्थान में रहने की बड़ी इच्छा है। इसलिए अब तुम किसी प्रकार की आपत्ति न कर बटु मामा के बगीचे में ले चलो।

पुलिन बाबू उन्हें बगीचे ले गये। वहाँ पहुँचते ही उन्होंने नामकीर्तन आरम्भ किया। वह निर्जन बगीचा आनन्द कानन बन गया। बहुत से लोग आने लगे। लोगों की भीड़-भाड़ देख बाबाजी महाशय के साथियों में से एक ने कहा, 'जिस एकान्त के कारण हम लोग यहाँ आये थे वह एकान्त तो अब रहा नहीं।'

बाबाजी—मैंने निताइचाँद से निर्जन की प्रार्थना नहीं की थी। उनकी इच्छा हो तो सदा ही लोगों के बीच रखें। लोग कोई अनिष्ट करने तो आते नहीं। वह तो हित ही करते हैं। नित्य नाना लोगों के समागम से नये-नये उपदेश की प्राप्ति होती है। मैं तो निताइचाँद से केवल निरपेक्ष स्थान ही चाहता हूँ, क्योंकि अन्यापेक्षी होने से हृदय में भगवत्लीला स्फूर्ति होना कठिन है। श्रीमन्महाप्रभु के अनुसार केवल एकान्तवास ही उपयोगी नहीं है, निरपेक्षता अवश्य होनी चाहिए।

इसी प्रकार दिन बीतने लगे। एक दिन तीसरे पहर वराह नगर-निवासी कामाख्यानाथ दास बाबाजी और एंडेदह-निवासी बाबू प्रसन्नकुमार बंद्योपाध्याय रायबहादुर बाबाजी महाशय के दर्शन करने आये। कामाख्यादास बाबाजी महाशय को दण्डवत् प्रणाम कर बोले, 'इनका नाम प्रसन्नकुमार रायबहादुर है। ये लाट साहब के बड़े कृपापात्र हैं। अभी कुछ दिन से रामदादा के मुख से हरिनाम कीर्तन सुन भक्ति-पथ पर अग्रसर हुए हैं। आज आपके आने का संवाद पाकर आपके दर्शन करने आये हैं।

बाबाजी—यह मेरा परम सौभाग्य है कि इन-जैसे व्यक्ति के दर्शन हुए।

प्रसन्नबाबू (प्रेम गद्गद कंठ से)—बाबा मैं बड़ा पाखंडी हूँ। इतना बूढ़ा हो जाने पर भी होश में नहीं आ सका हूँ। बड़ा विधर्मी हूँ। आप लोगों की कृपा से अब समझ सका हूँ कि धर्म कोई वस्तु है। ऐसी कृपा कीजिए कि मेरी इसमें प्रवृत्ति हो।

बाबाजी—भाई, पतितपावन निताइचाँद ने करुणा कर कलिकाल के जीवों को अयाचित भाव से जिस नाम-प्रेम का दान किया है, उससे कोई भी जीव वंचित न रहेगा।

प्रसन्न—बाबा, निताइ कौन हैं, प्रेम किसे कहते हैं और उन्होंने किस प्रकार प्रेम का वितरण किया, मैं कुछ नहीं जानता। बाल्यकाल से ही अँगरेजी शिक्षा से प्रभावित हो, उसी के अनुरूप आचार-विचार में दिन बिताता रहा। आप मुझे वृद्ध समझने की भूल न करें, मैं बालक से भी अधिक मूर्ख और हीन हूँ। मेरा उद्धार करने के लिए आपको मेरा हृदय पकड़कर जबरदस्ती खींचना होगा। मेरी एक और भी प्रार्थना है जिसे आपको अनुग्रह कर पूरा करना होगा।

बाबाजी—मुझसे जितना भी हो सकेगा तुम्हारी सहायता करूँगा।

प्रसन्न—यहाँ पास ही एक बगीचा है। मेरी इच्छा है कि उसमें कुछ दिन रह कर इस पाषंडी और बहिर्मुख व्यक्ति की चित्तशुद्धि करें।

बाबाजी—मुझे कोई आपत्ति नहीं। निताइचाँद जिस स्थान में भी मुझे रखकर सुख पायँ वहीं रहने में मैं सुखी हूँ।

प्रसन्न—तो आज ही चलने की कृपा कीजिए न।

बाबाजी महाशय ने कहा, 'पुलिन, तुम बाबाजी लोगों को लेकर आना, मैं इनके साथ जा रहा हूँ।'

पुलिनबाबू बोले, 'तो फिर साथ ही चला जाय।' उनके इतना कहते ही सब चलने को तैयार हो गये। बाबाजी महाशय ने नाम प्रारम्भ किया। सब लोग खोल करताल के साथ नाम करते-करते रायबहादुर के बगीचे जा पहुँचे। बगीचे की शोभा देख बाबा बहुत प्रसन्न हुए बगीचे के पश्चिम की ओर एक बहुत बड़ा मकान था और दाहिनी ओर सरोवर था। अलग एक ओर रसोई घर था। नाना प्रकार के सुगन्धित फूलों से चारों दिशाएँ परिपूर्ण थीं। जिस कमरे में इन्हें ठहराने की बात थी उसका फर्श काठ का था। कर्मचारीगण उसे दिखाते हुए बाबाजी महाशय से बोले, 'इस कमरे में बड़ी-बड़ी नाचने वाली मेमों ने नृत्य किया है। आज भगवदनुग्रह से इसी कमरे में वैष्णवगण हरिनाम के साथ नृत्य करेंगे। बगीचे में कोई भी बंगाली आते हुए भय खाता था, क्योंकि वहाँ सदा ही साहब लोग हवा खाने के लिए आये रहते थे।'

प्रसन्नबाबू बाबा लोगों से बोले, 'बाबा, यह स्थान आपका ही है। फल-फूलादि जिस किसी वस्तु की आवश्यकता हो स्वतन्त्रतापूर्वक व्यवहार करें, किसी प्रकार का संकोच न करें।' मालियों से कहा, 'देखो, बाबाजी महाशय जिस समय जो हुक्म दें उसका पालन करना। इसमें यदि किसी से कोई त्रुटि हुई तो उसे फौरन बर्खास्त कर दिया जायगा।' बाबाजी महाशय के लिए और कुछ सामग्री लाने को एक कर्मचारी नियुक्त करते हुए उससे बोले, 'इन लोगों को कोई भी कष्ट न हो। इन्हें जब जिस चीज की जरूरत हो फौरन ला देना, पैसे की चिन्ता न करना।'

फिर बाबाजी महाराज से बोले, 'यह बगीचा आपका है और मैं भी आपका हूँ। आपको जिस समय जिस

चीज की आवश्यकता हो आपके आज्ञा करते ही कर्मचारीगण उसका पालन करेंगे। मैं तो हर समय आपके निकट रहूँगा नहीं और ये हैं सब नौकर। आपके आज्ञा किये बिना कुछ करेंगे नहीं। इसलिये यदि आप इन्हें आज्ञा करने में संकोच करेंगे तो मुझे बड़ा दुःख होगा।' बाबा ने उत्तर दिया, 'आप कोई चिन्ता न करें। जब जिस चीज की आवश्यकता होगी निताइचाँद की इच्छा से इनसे अवश्य कहा जायगा।' बाबाजी महाशय से आज्ञा लेकर प्रसन्नबाबू घर चले गये। इधर ठाकुर के भोगराग के पश्चात् सब लोग प्रसाद पाकर विश्राम करने लगे।

अपूर्व स्फूर्ति

दूसरे दिन प्रातःकाल बाबाजी महाशय प्रातः कृत्य समापन कर एक माली को बुलाकर बोले, 'बाबा, यहाँ से गंगा कितनी दूर है।' माली ने उत्तर दिया 'कोई एक मील होगी। यदि आपकी गंगास्नान करने की इच्छा हो तो चलिये, मैं आपको साथ ले चलूँ।'

बाबाजी महाशय नाम करते-करते माली के साथ गंगा की ओर रवाना हुये। गंगा घाट पर पहुँचकर उन्होंने माली को विदा किया। फिर कुछ देर गंगा के किनारे उद्दण्ड नृत्य और कीर्तन करने के पश्चात् स्नान करने लगे। स्नान के पश्चात् फिर कीर्तन करते-करते निवास स्थान की ओर लौटे और वहाँ कुछ देर उद्दण्ड नृत्य कीर्तन करने के पश्चात् यथासमय महाप्रसाद ग्रहण कर विश्राम किया।

तीसरे पहर रामदादा को बुलाकर बोले 'देखो राम, नित्य रात्रि चार बजे सबको साथ लेकर 'निताइ गौरांग, निताइ गौरांग, निताइ गौरांग गदाधर' कीर्तन करते-करते गंगास्नान को जाना और वहाँ से लौटकर तिलक आह्निक समाप्त कर 'नित्यानन्दाद्वैत गौरांग' कीर्तन करना और सन्ध्या समय सन्ध्या-आरति से अभिसार मिलन तक कीर्तन करना। इस त्रिसंन्ध्या-कीर्तन में कोई त्रुटि न हो।' रामदादा इनके आदेशानुसार कार्य करने लगे। एक दिन रात्रि को कोई दो बजे के समय बाबाजी महाशय ने रामदादा और अन्य सभी लोगों को बुलाकर गंगा-स्नान के लिये भेज दिया। ये लोग 'निताइ गौरांग' पद का कीर्तन करते-करते गंगातीर पर उपस्थित हुए। गंगा तीर पर पहुँचकर बहुत-से लोग कहने लगे, 'ऐसा मालूम पड़ता है कि अभी रात्रि बहुत शेष है, क्योंकि चारों ओर निस्तब्धता छाई है, लोगों का आना जाना नहीं है, नाव पर मल्लाह घोर निद्रा में सो रहे हैं, पक्षीगण नीरव हैं, चारों ओर मन्द पवन गम्भीर रात्रि का परिचय दे रहा है। बाबाजी महाशय ने इतनी रात्रि में हमें गंगा के किनारे भेज दिया है, हम इतने अँधेरे यहाँ बैठे रहकर क्या करेंगे और स्नान करके भी क्या करेंगे?' तब अनुभवी रामदादा बोले 'देखो भाई, जब मंगलमय गुरुदेव ने हमें इस समय यहाँ भेजा है तो अवश्य उनका कोई प्रयोजन होगा। आओ, हम यहाँ बैठकर कीर्तन करें।' यह कहकर उन्होंने कीर्तन आरम्भ किया। कीर्तन में अभूतपूर्व आनन्द आने लगा। रामदादा के कण्ठ से जैसे अमृत वर्षा होने लगी। एकमात्र 'जय शचीनन्दन जगजीवतारन, कलिकलुषनाशन अवतार' इस पद में ही चार घण्टे बीत गये, फिर भी कीर्तन शेष होने को नहीं आया। सात बजे स्नान कर जब ये लोग वापस पहुँचे तो बाबाजी महाशय बोले, 'राम, आज बहुत रात्रि में ही तुम्हें गंगा किनारे भेजकर बड़ा कष्ट दिया है न?' रामदादा प्रेमगद्गद कण्ठ से बोले, 'आज जैसे आनन्द और कृपा की अनुभूति पहले कभी नहीं हुई। संकीर्तन में ऐसे आखरों की स्फूर्ति हुई, जिन्हें मैंने न कभी सुना और न जिनकी कभी धारणा ही की। एकमात्र 'जय शचीनन्दन' कीर्तन में ही चार घण्टे बीत गये और संकीर्तन के पश्चात् हमें ऐसा लगा जैसे अभी शायद आधा घण्टा भी नहीं हुआ हो।'

बाबाजी—मंगलमय जिस समय जो करते हैं वह मंगल के लिये ही करते हैं, ऐसा सदा अनुभव करना। माँ गंगा ने कृपाकर जो अमूल्य रत्न दिये हैं उन्हें हृदय में धारण करना। तुम स्वयं सुखी होगे और दूसरों को सुखी करोगे। एक दिन हमें नहीं सुनाओगे?

राम—आपकी दी हुई वस्तु आप जिस समय चाहेंगे मेरे हृदय में स्फूर्ति कराकर सुन लेंगे और मुझे कृतार्थ करेंगे। यन्त्र तो निश्चल और निष्क्रिय होता है, यन्त्री जिस समय जिस स्वर में चाहता है बजाकर जन साधारण को आनन्द पहुँचा उसे धन्य करता है।

इसी प्रकार दो-तीन दिन बीत गये। एक दिन बाबाजी महाशय ने रामदादा से प्रभाती स्वर में 'निताइ गौरांग, निताइ गौरांग गदाधर' गाने को कहा। रामदादा गुरुदेव को हृदय में स्मरणकर पद गाने लगे। छह बजे से दस बजे तक कीर्तन होता रहा। प्रेम का पवन बहने लगा। बाबाजी महाशय ने भाव में विभोर हो रामदादा को प्रेमालिंगन कर धन्य किया और नित्य प्रात:काल इसी पद का कीर्तन करने का आदेश किया। प्रसन्नबाबू इत्यादि, जो वहाँ उपस्थित थे, सभी प्रेमानन्द में विभोर हो गये। उस दिन से नित्य प्रात:काल यह कीर्तन किया जाने लगा।

गणेश को सर्पाघात

रायबहादुर प्रसन्नबाबू के बगीचे में परमानन्द से दिन बीतने लगे। बाबाजी महाशय के साथ श्रीश्री राधारमणजी के चित्रपट की सेवा थी। रसोई घर निवास स्थान पृथक् था। इसलिये रसोई बन जाने पर ठाकुरजी के लिये भोग का थाल ठाकुर के सम्मुख लाना होता था। अवशिष्ट भोज्य सामग्री का भोग रसोई घर में ही लग जाता था और वहाँ पंगत बैठ जाती थी। एक दिन संध्या समय खिदिरपुर से नाना प्रकार के व्यंजन भोग के लिये आये, जिनमें बहुत-से दुग्ध के छाँच थे। किसी छाँच पर 'महामन्त्र' किसी पर 'निताइ गौर राधेश्याम' और किसी पर लता-पताओं के चित्र बने थे। संध्या आरति के पश्चात् वे सब ठाकुर के भोग के लिये प्रस्तुत किये गये और आरति कीर्तन के पश्चात् बाबाजी महाशय अपने हाथ में चाकू लेकर सब छाँचों से थोड़ा-थोड़ा काट कर लोगों को देने लगे। रसोई घर में जो लोग थे उन्हें भी बुला लिया। गणेशचन्द साऊ नाम का सोलह वर्ष का एक उड़ीसावासी युवक भी तेजी से बाबाजी महाशय की ओर भागा। एकाएक एक भयानक विषधर सर्प ने उसके दाहिने पैर की वृद्धांगुली में काट लिया। युवक ने व्याकुल होकर साथियों को पुकारा। वे उसे पकड़कर बैठक खाने में ले गये। प्रसन्नबाबू ने कक्ष को देव-देवियों के चित्रों से सजा दिया था। राधागोविन्द, निताइ-गौर, पंचतत्व और महादेवादि के एक-एक चित्र ऐसे थे जिन्हें देखकर आँख हटाने की इच्छा नहीं होती थी। गणेश को इस स्थान पर सुलाकर एक व्यक्ति ने बाबाजी महाशय से जाकर कहा, 'गणेश को साँप ने काट लिया है। वह बेहोश पड़ा है।' सुनते ही बाबाजी महाशय उसके निकट भागे गये और उन्होंने एक हृदय विदारक दृश्य देखा। गणेश के हाथ पाँव के जोड़ ढीले हो रहे हैं। शरीर नील वर्ण का हो रहा है, जिह्वा मुख से छह अंगुल बाहर निकली पड़ी है। उस समय उस स्थान पर अवधूत ज्ञानानन्द स्वामी के शिष्य कृष्णानन्द स्वामी और गोविन्दानन्द परिव्राजक भी उपस्थित थे। बाबाजी महाशय ने संगीगण से नाम करने को कहा और कृष्णानन्द स्वामी जी से बोले, 'देखो भाई, तुम इस लड़के को खड़ा कर संकीर्तन में ले आओ वे गणेश को खड़ा करने लगे तो देखा कि उसका शरीर बर्फ के समान ठंडा है और हाथ पैरों के जोड़ बिल्कुल ढीले हैं। वे अति कातर भाव तथा अश्रुगद्गद कण्ठ से बोले, 'दादा, इसके शरीर में तो प्राण ही नहीं हैं, शरीर जैसे बरफ की शिला बन गया है।' बाबा ने कहा, 'तुम अपना काम करो न। विचार करने वाले तो निताइचाँद हैं। उनकी जो इच्छा होगी करेंगे।' कृष्णानन्द स्वामी ने युवक को बड़े कष्ट से उठाया और उसका सिर अपने कन्धे पर रखा तथा उसे दृढ़ता से अपनी बाहों में जकड़कर नाम-कीर्तन के मध्य में भ्रमण करने लगे। इधर, नवद्वीप दादा अन्य साथियों के साथ उन्मत्त भाव से नामकीर्तन कर रहे थे। बाबाजी महाशय ने कमरे के दरवाजे की सिटकिनी लगा दी। कीर्तन का रोल धीरे-धीरे उच्चतर शिखर पर पहुँच गया। प्रसन्नबाबू अपने घर से ही कीर्तन की ध्वनि सुनकर तेजी से भागे आये, परन्तु दरवाजा बन्द देख बाहर खड़े रह गये। थोड़ी देर बाद बाबा उद्दण्ड नृत्य करने लगे। सभी विभोर और देह स्मृति-शून्य थे। स्वामीजी युवक को और अधिक देर तक न संभाल सके। इसलिये उन्होंने उसे भूमि पर लिटा दिया और स्वयं भी संकीर्तन में नृत्य करने लगे। कीर्तन-मण्डली इतनी द्रुत गति से परिभ्रमण कर रही थी कि किसी व्यक्ति विशेष को लक्ष्य करना कठिन था। लगभग एक घण्टे तक इसी प्रकार कीर्तन होता रहा। किसी को बाह्य स्मृति नहीं थी। एकाएक बाबाजी महाशय ने चौंककर अपना बायाँ पैर गणेश के मस्तक पर जोर से मारा। इच्छामय

प्रभु की इच्छा से उनके चरण के स्पर्श से ही गणेश के हाथ-पैरों के जोड़-दृढ़ हो गये, जिह्वा मुँह में प्रवेश कर गई और शरीर का वर्ण पहले की भाँति हो गया, किन्तु चेतना नहीं आयी। दस मिनट के पश्चात् बाबाजी महाशय ने पहले की भाँति एक बार फिर पदाघात किया। तब गणेश आँखें खोल इधर-उधर देखने लगा। उसकी तात्कालिक अवस्था देख ऐसा जान पड़ता था कि उसे किसी अप्राकृत वस्तु का दर्शन और स्पर्श मिला था और अब वह उसी का व्याकुलता से अन्वेषण कर रहा है। संकीर्तन वैसे ही चल रहा था। बाबाजी महाशय ने उससे कहा-'ये जो पंचतत्व हैं, इन्हें दण्डवत् प्रणाम करो, अभीष्ट पूर्ति होगी।' पर कौन सुने? गणेश ने बाबाजी महाशय को देखते ही व्याकुल भाव से रोते-रोते उनके चरण दृढ़ता से पकड़ लिये और बोला, 'बाबा, मेरे उद्धारकर्ता तो आप ही हैं। मैंने अपने नेत्रों से देखा आप मुझे उन दो विकराल मूर्तियों के हाथ से छुड़ाकर लाये हैं। उनका स्मरण कर मुझे अब भी कँपकँपी छूटती है। प्रभु, मैं बड़ा पाखण्डी हूँ। आपके सिवाय मेरा कोई नहीं है। मुझे अपने चरणों से विलग न करें।' इतना कह वह ठीक बालक की भाँति उच्च स्वर से रोने लगा। उसकी अवस्था देख सभी लोग अत्यन्त व्याकुल हो उच्च कण्ठ से 'हा निताई! हा निताइ!!' कहकर रोने लगे। कीर्तन की रोल की जगह रोने की रोल सुनाई पड़ने लगी। इतने में एक व्यक्ति ने प्रसन्नबाबू की व्याकुलता देख दरवाजा खोल दिया। प्रसन्नबाबू और अन्य आगन्तुक प्राणभर इस विस्मयजनक व्यापार को देखने लगे। बाबाजी महाशय अर्द्ध-मुद्रित नेत्र और प्रेमगद्‌गद कंठ से बोले, 'बाबा, हाथी का बोझ चींटी के ऊपर क्यों लादते हो। परम दयालु करुणामय निताइचाँद किसी का दुःख नहीं देख सकते। अन्यान्य युगों में उन्हें पुकारने और प्रार्थना करने की आवश्यकता होती थी। धन्य है यह कलियुग, जिसमें दयालु प्रभु अयाचित भाव से कृपा करते हैं। हम उन्हें भजें, या न भजें, केवल इतना विश्वास ही पर्याप्त है कि वे परम दयालु प्रभु हैं।' इस प्रकार बाबा के समझाने पर भी बालक गणेश की कुछ समझ में नहीं आया। वह बोला 'मैं आपका हूँ। बस मैं और कुछ नहीं सुनना चाहता। मेरे निताइ गौर आप हैं। आपके यदि कोई और हों तो हुआ करें। कृपा कर वचन दें कि आप मुझे अपने चरणों से अलग न करेंगे।'

बाबाजी बोले, 'भजन करो, निताइचाँद करुणामय हैं।' इतना कह उसे उठाकर आलिंगन किया। उपस्थित लोग गणेश के भाव की प्रशंसा करने लगे। बहुत दिनों से कामख्यादेशवासी एक जटाधारी ब्राह्मण इन लोगों के साथ रहते थे। बाबाजी महाशय प्रतिष्ठा के भय के कारण उन्हें बुलाकर बोले, 'बाबा आप तो साँप का मन्त्र जानते हैं। इस बालक को झाड़ दीजिये।' वृद्ध ब्राह्मण ने गणेश को झाड़ दिया। उसी समय बाबाजी महाशय बोले 'देखो, इन बाबा के मन्त्रबल से इसका विष दूर हो गया' गणेश से कहा 'ये तुम्हारे जीवन दाता हैं।' प्रसन्नबाबू बाबाजी महाशय के चरणों में दण्डवत् प्रणाम करते हुए बोले 'मैं तो जन्म से ही असदाचारी, विधर्मी और घोर पाषण्डी हूँ। मेरी कौन-सी ऐसी सुकृति थी, जिसके कारण मेरे स्थान पर आपका शुभागमन हुआ। मेरे जैसे हीन व्यक्ति के लिए तो आपका दर्शन भी दुर्लभ है।'

बाबाजी—निताइ, निताइ! आप तो ब्राह्मण हैं और मेरे गुरु तुल्य हैं।

प्रसन्न—बाबा, इस प्रकार कहकर मेरी प्रतारणा न करें। मैं ब्राह्मण हूँ या म्लेच्छ, यह तो मैं ही जानता हूँ। आपके चरणों में मेरी यह प्रार्थना है कि आप पतित जानकर मुझसे घृणा न करें। मेरी उम्र हो गई है और भोग विलासादि से शरीर अशक्त हो चुका है। अभी तक तो मैं बिल्कुल निश्चिन्त ही रहता था। धर्म-कर्म और पाप-पुण्य जैसी कोई वस्तु है, यह बात मेरे मन में ही न थी। स्वच्छन्दतापूर्वक पैसा पैदा करना, खाना-पीना, मौज उड़ाना, इसी को मनुष्य जीवन का कर्तव्य समझता था। परन्तु अब समझा कि इतने दिन वृथा ही गँवाये। इतने जंजालों में फँस चुका हूँ कि चाहने पर भी उनसे छुटकारा नहीं पा सकता। इसीलिये आपके चरणों में प्रार्थना करता हूँ कि अपनी कृपा से मुझे वंचित न करें।

इस प्रकार कथोपकथन में बहुत समय व्यतीत हो गया। बाबाजी महाशय के आदेश से प्रसन्नबाबू घर

चले गये। इधर रात्रि अधिक हो जाने के कारण सब लोग महाप्रसाद ग्रहण कर सो गये।

राय बहादुर द्वारा मन्त्रग्रहण

दिन पर दिन बीत रहे हैं, प्रसन्नबाबू को कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा। नित्य बागानबाड़ी में आकर बाबाजी महाशय के मुख से तत्वकथा सुनना या हरिकीर्तन सुनना, यही दो काम रह गये हैं। एक दिन उन्हें किले के मैदान जाना था। माली बहुत-से गुलाब के फूल लेकर उपस्थित हुआ। घर से गाड़ी आ गई। माली बोला, 'सरकार सब कुछ तैयार है, गाड़ी पर चलिये।' प्रसन्नबाबू बोले, 'देख, गुलाब के फूल यहाँ ठाकुरजी के लिये ले आ। मैं आज वहाँ नहीं जाऊँगा।' सब यह सुनकर अवाक् रह गये। माली फूलों की डलिया उठाकर लाने लगा। यह देख बाबाजी महाशय बोले 'इतने फूल कहाँ ले जा रहे थे?'

प्रसन्न—ये सब किले के मैदान ले जा रहा था। वहाँ साहब लोग और बाबू लोग इनको खरीद लेते हैं।

बाबाजी—तो आज क्यों नहीं ले गये?

प्रसन्न—यह आप जानें। मेरा कहीं जाने को जी नहीं चाहता।

बाबाजी—बहुत पैसे का नुकसान हुआ न?

प्रसन्न—बाबा! पैसा तो जीवन में बहुत पैदा किया है। किसी प्रकार का अभाव नहीं है। वह तो दिन-रात बढ़ता ही जा रहा है। परन्तु जिस वस्तु का दिन-दिन क्षय हो रहा है और जिसके लौटकर आने की सम्भावना नहीं है, उसके लिये तो प्राण छटपटाते नहीं। नातेरिश्तेदार कोई भी तो उस क्षति की चिन्ता नहीं करते। मैं जिस मूलधन को खो बैठा हूँ उसके लिये कोई दुःख नहीं करता। गुरुदेव! अब बहुत हो चुका। बहुत-से जन्म बीत गये। इस बार मेरे ऊपर कृपा कीजिये। बूढ़ा हो गया हूँ तो क्या, आचार-विचार में पशु से भी गयाबीता हूँ। मुझे दीक्षा देनी होगी। मैं आपके चरणों में आत्मसमर्पण कर चुका हूँ। आपके अतिरिक्त मेरा उद्धारकर्ता और कोई नहीं है। बतलाइये, आप मुझपर किस समय कृपा करेंगे?

इतना कह प्रसन्नबाबू बाबाजी महाशय के चरण पकड़ रोने लगे। बाबा ने जल्दी से वृद्ध ब्राह्मण को उठाकर छाती से लगा लिया और नाना प्रकार से आश्वासन देने लगे। परन्तु प्रसन्नबाबू किसी प्रकार धैर्य धारण न कर सके। अनुताप की ज्वाला किसी प्रकार नहीं मिट रही थी। जिस व्यक्ति के हृदय में अभीष्ट लाभ करने की उत्कण्ठा जाग्रत हो जाती है, वह क्या केवल आश्वासन के वाक्यों से परितृप्त हो सकता है? आज प्रसन्नबाबू किसी प्रकार भी स्थिर नहीं हो रहे हैं। केवल यही रट लगी है 'गुरुदेव, अब समय नहीं है। यदि इसी मुहूर्त जीवन यात्रा समाप्त हो गई तो पशु का पशु ही रह जाऊँगा। फिर क्या होगा, कहाँ जाऊँगा? प्रभो! इस नराधम का आश्रयदाता और कोई नहीं है।' बाबाजी महाशय निरुत्तर हो गये। उनका हृदय द्रवित हो गया और वे बोले 'यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो निताइचाँद से कहो। वे यदि इस पुतले द्वारा तुम्हारा कुछ उपकार करना चाहेंगे तो अवश्य करेंगे।'

प्रसन्न—अब विलम्ब करने का काम नहीं। जब आपने अनुग्रह किया ही है तब आज्ञा कीजिये कि कल ही यह सब काम हो जाय।

बाबाजी—ठीक है, जैसी प्रभु की इच्छा।

प्रसन्न—मैं तो बिलकुल अनभिज्ञ हूँ। किस-किस सामग्री की आवश्यकता होगी? उसकी एक सूची बना दें तो बड़ी कृपा हो?

बाबाजी—तुम्हारे ऊपर कृपा करेंगे निताइचाँद। उन्हें किन वस्तुओं की आवश्यकता होगी, वे जानें और तुम जानो। मुझसे क्यों पूछते हो? मैं तो केवल इतना जानता हूँ कि भगवत्-प्राप्ति के लिये चाहिये केवल मन और प्राण।

प्रसन्नबाबू और कुछ न कह कर हृष्टचित्त दण्डवत् प्रणामकर बाबाजी महाशय की आज्ञा से घर चले गये। इन्होंने भी यथासमय महाप्रसाद पाकर विश्राम किया। दूसरे दिन प्रातःकाल ही रायबहादुर प्रसन्नबाबू बाबाजी महाशय के पास आ इन लोगों को अपने यहाँ प्रसाद पाने का निमन्त्रण दे गये। फिर घर जाकर सब सामग्री इकट्ठा करने का आदेश दे स्वयं गंगास्नान कर

शीघ्र ही वापस लौट आये। करीब दस बजे बाबाजी महाशय दलबलसहित नाम करते-करते प्रसन्नबाबू के घर जा पहुँचे। बहुत देर तक उद्दण्ड कीर्तन होता रहा। फिर बाबाजी महाशय अपने साथियों को नाम करने की आज्ञा दे प्रसन्नबाबू द्वारा निर्दिष्ट स्थान पर जा बैठे। प्रसन्नबाबू ने नानारूप पूजा की व्यवस्था कर रखी थी। यथाविधि पूजन सम्पन्न होने के पश्चात् बाबाजी महाशय ने प्रसन्नबाबू को मन्त्र प्रदान किया। मन्त्र प्राप्त करते ही उनके सर्वांग में पुलक और कम्प होने लगा। वे प्रेमानन्द में विभोर होकर रोते-रोते बोले 'गुरुदेव! मेरे समान महापापी और पतित व्यक्ति जगत में दूसरा नहीं है। मेरा विश्वास है कि मेरा उद्धार करना जगाइ-माधाइ के उद्धार से भी अधिक कष्टकर है; प्रभु, अब ऐसी कृपा कीजिये कि मैं फिर उस नरक में न गिर जाऊँ और आपकी कृपादत्त वस्तु किसी प्रकार विस्मृत न हो।' बाबाजी महाशय प्रेमविह्वल भाव से उन्हें आलिंगन कर बोले, 'बाबा सदा नाम करना। नाम बिना कलियुग में अन्य कोई गति नहीं है।'

प्रसन्न—बाबा, मैं तो सर्वदा ही अपवित्र हूँ। मैं किस प्रकार नाम करूँगा?

बाबाजी—बाबा, नाम के निकट पवित्र अपवित्र, देश, काल, पात्र, अपात्र का कोई विचार नहीं है। महाप्रभु ने कहा है, 'खाइते शुइते जथातथा नाम लय, काल देश नियम नाइ सर्व सिद्धि हय।' अतएव बाबा, जिस प्रकार लोहा, चाहे अच्छा हो या बुरा, अग्नि के ऊपर रखने से ही लाल हो जाता है और उसका सारा मैल दूर हो जाता है, उसी प्रकार नामाग्नि के ऊपर चढ़ने से कोई कैसा भी पापी क्यों न हो विशुद्ध और निर्मल हो जाता है।

इस प्रकार नाना प्रकार के उपदेश-वाक्यों द्वारा प्रसन्नबाबू का मन स्थिर कर बाबा महाशय फिर नामकीर्तन में जाकर योगदान करने लगे। बहुत देर कीर्तन करने के पश्चात् सब महाप्रसाद सेवन करने बैठे। अद्वैत दास और राधाविनोद दास से बाबाजी महाशय ने कहा 'देखो, तुम दोनों सबके बाद महाप्रसाद पाना। तुममें से एक गौर गुण और दूसरा निताइ गुण की ध्वनि करो। जो हार जायगा वह दूसरे को अपने कंधे पर बिठा यहाँ से बगीचे ले जायगा।' दोनों बड़े उत्साह से ध्वनि करने लगे। अद्वैतदास गौर-गुण सूचक और राधाविनोद दास निताइ-गुण-सूचक पद कहने लगे। आनन्दमय की कैसी मधुमय लीला थी, कोई भी पद आरम्भ किया जाता था ऐसा लगता मानो आनन्द का पवन बह रहा है। चारों ओर लोग उत्कण्ठित होकर निताइ-गौर गुण श्रवण कर रहे थे। प्रसन्नबाबू हाथ जोड़कर एक ओर खड़े थे और उनके नेत्रों से अश्रुधारा बह रही थी। उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वे किसी अप्राकृत पथ के पथिक बन रहे हैं। बाबा महाशय ने दो एक ग्रास महाप्रसाद ग्रहण कर हाथ उठाया। उनके दोनों नेत्र रक्तवर्ण थे। मुखसे शब्द नहीं निकल रहा था। अंग-अंग पुलकित हो रहा था, और क्षण-क्षण में कम्प हो रहा था। वे इस भाव में कुछ समय रहे। फिर 'निताइ गुणमणि, आमार निताइ गुणमणि। आनिया प्रेमेर वन्या भासालो अवनि*।' यह पद गाते-गाते बिलकुल अधीर हो पृथ्वी पर लोट-पोट होने लगे। निकट की पाँच-सात पत्तलों का महाप्रसाद तितर-बितर होने लगा। वे महाप्रसाद के ऊपर ही लोट-पोट हो रहे थे। सब उन्हें सावधान करने का प्रयत्न करने लगे, परन्तु कोई कुछ न कर पाया। नवद्वीप दादा, राधाविनोद और दूसरे बालकों से उस पद को बार-बार कहलवाने लगे। क्रमशः वह पद बड़े उच्च स्वर से गाया जाने लगा। खोल करताल भी बजने लगे। डेढ़ घण्टे बाद बाबाजी महाशय कुछ स्थिर हुए। सारे अंग में महाप्रसाद लगा हुआ था। प्रसन्नबाबू कर जोड़कर बोले, 'बाबा, मेरे बड़े भाग्य से आज आपने यहाँ महाप्रसाद पाना स्वीकार किया था, परन्तु आप कुछ भी पा न सके। मेरा कैसा दुर्भाग्य है, अब मैं क्या उपाय करूँ?'

बाबाजी—बाबा, तुम्हारा परम सौभाग्य है। परम दयालु निताइचाँद ने तुम्हारे द्वारा हमें बहुत शिक्षा दी है और देंगे। कोई चिन्ता की बात नहीं। मैंने बहुत महाप्रसाद पाया है। फिर भी यदि किसी को कुछ संकोच है तो दोबारा महाप्रसाद लाने को कहो। मैं और

---

* हमारे निताइ गुणमणि हैं, उन्होंने प्रेम की नदी लाकर पृथ्वी को सराबोर कर दिया है।

दूसरे लोग, जिन्होंने महाप्रसाद सेवन नहीं किया है, सब मिलकर प्रसाद पा लेंगे।

यह सुन प्रसन्नबाबू ने प्रफुल्लित हो पुजारी से महाप्रसाद लाने के लिये कहा और उस स्थान को साफ करने की आज्ञा दी। बाबाजी महाशय ने कहा, 'इसकी कोई आवश्यकता नहीं। हम यहीं बैठ लेंगे।' इतना कह वे उन सब पत्तलों से महाप्रसाद इकट्ठाकर उसे पाने लगे। इधर पुजारी ने महाप्रसाद परोसना प्रारम्भ किया। सब लोग महाप्रसाद पा कुछ विश्राम कर कीर्तन करते-करते बगीचे में लौट गये।

काव्यतीर्थ का मन्त्रग्रहण

एक दिन तीसरे पहर चार बजे के लगभग बाबाजी महाशय भक्तगण सहित बगीचे में बैठे थे। नानारूप तत्वकथा आलोचना हो रही थी। उसी समय तीस वर्ष की उम्र के एक गौरवर्ण ब्राह्मण युवक आकर उपस्थित हुए। युवक के नेत्र सुदीर्घ, नासिका उन्नत और मुखकमल प्रफुल्लित था। उन्हें देख सब लोग मुग्ध हो गये। उनका नाम था दीनबन्धु काव्यतीर्थ वेदान्तरत्न। वे एक वैदिक श्रेणी ब्राह्मण और धर्म प्रचारक थे। इसके पूर्व एक बार श्रीधामपुरी जा चुके थे। इसलिये बाबाजी महाशय के परिचित थे। बाबाजी महाशय ने उन्हें देखते ही जल्दी से उठकर बड़े सम्मान के साथ अपने पास बिठाया और नानारूप कुशल-प्रश्न पूछने लगे। उन्होंने भी हँसते-हँसते उत्तर दिया। थोड़ी देर अलाप करने के बाद बाबा महाशय ने पूछा, 'इस समय क्या किसी कार्य के उपलक्ष्य में आये हैं या केवल सैर करने।'

काव्यतीर्थ—कार्य उपलक्ष्य में भी नहीं और सैर करने भी नहीं।

बाबाजी—यह कैसी बात? जीवमात्र का प्रत्येक कार्य में कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है। फिर आप तो पण्डित हैं।

काव्यतीर्थ—आप ठीक कहते हैं। सचमुच बात यह है कि आज यहाँ आने का कारण मैं स्वयं नहीं समझ पा रहा हूँ। मैं एक दूसरे स्थान को जा रहा था, जहाँ मुझे व्याख्यान देने के लिये आमन्त्रित किया गया है, पर न जाने कौन मुझे बलपूर्वक यहाँ खींच लाया। न जाने मंगलमय प्रभु का इसमें क्या अभिप्राय है।

बाबाजी—ऐसा लगता है कि प्रभु हम लोगों के संशोधन के लिये आपको यहाँ ले आये हैं।

काव्यतीर्थ—संशोधन के लिये लाये हैं यह बात तो ठीक ही है। पर किसके संशोधन के लिये, वे ही जानें।

बाबाजी—क्या? आप तो विशुद्ध वस्तु हैं। आपके कृपा-कटाक्ष से मेरे जैसे सैकड़ों व्यक्तियों का उद्धार हो सकता है।

काव्यतीर्थ—जीवोद्धार का भार तो भगवान् ने आपके ऊपर रखा है। मैं तो सांसारिक जीव ठहरा, दूसरों का उद्धार कैसे कर सकता हूँ। स्वयमसिद्धः कथमपरान् साधयति?

बाबाजी—वह तो हम लोगों की बात है। आप तो नित्य मुक्त हैं।

काव्यतीर्थ—जाने दीजिये। इस बहस में क्या रखा है? मेरा एक प्रश्न है। कृपाकर बतायें कि गुरुपदवाच्य कौन है?

बाबाजी—आप पंडित हैं और सब कुछ जानते हैं। फिर भी मुझसे पूछ रहे हैं। भगवान् ने कहा है, 'आचार्यं माँ विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित्। न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत सर्वदेवमयो गुरुः इस प्रकार के और भी अनेक शास्त्रवाक्य हैं, जिनसे यह स्पष्ट है कि गुरुतत्व और भगवत्तत्व एक ही हैं।

काव्यतीर्थ—तब अलग से गुरु करने की क्या आवश्यकता है?

बाबाजी—आचार्य रूप में भगवान् ही होते हैं यह आपने कैसे जाना?

काव्यतीर्थ—शास्त्रप्रमाण से।

बाबाजी—शास्त्रवाक्य आपने कैसे जाना!

काव्यतीर्थ—लोकपरम्परा से।

बाबाजी—तब लोकपरम्परा आपकी गुरु नहीं हुई क्या? विशेष रूप से यह विचारकर देखिये कि यदि जन्म के समय गुरु माँ के रूप में स्तनपान करने की शिक्षा न देते तो क्या आप जीवन धारण कर पाते?

इसके पश्चात् यदि माता-पिता, भाई-बन्धु के रूप में गुरुदेव प्रति मुहूर्त आपको शिक्षा न देते तो क्या आप अन्धे और बहरे व्यक्ति की भाँति मूर्ख न रह जाते, और आपका हाथ पकड़ कर वे आपको क, ख, ग, घ, न सिखाते तो क्या आप शास्त्र-शिक्षा प्राप्त कर सकते? इसीलिये कहता हूँ कि प्रत्येक मुहूर्त में और प्रत्येक कार्य में हमें गुरु की आवश्यकता है।

काव्यतीर्थ—वैष्णव-शास्त्र में शिक्षा-गुरु और दीक्षा-गुरु दोनों का उल्लेख क्यों है? एक ही से तो काम चल सकता है।

बाबाजी—क्या केवल वैष्णव-शास्त्रों का ही यह मत है? दूसरे मत भी दोनों प्रकार के गुरुओं को मानते हैं। तन्त्र-मन्त्र में जो गुरु और उपगुरु का विधान है, वह भी तो शिक्षा-गुरु और दीक्षागुरु के समान ही है। दीक्षा-गुरु एक के अतिरिक्त और नहीं हो सकते, पर शिक्षा गुरु तो अनन्त होते हैं। शास्त्र में लिखा है 'एकाक्षरं गुरुं-मन्येत्' इत्यादि।

काव्यतीर्थ—अच्छा, यदि जिसके निकट शास्त्रादि अध्ययन किया हो, उसे गुरु मान लिया, तब फिर मन्त्र लेने की क्या आवश्यकता?

बाबाजी—'अनन्तशास्त्रं बहुवेदितव्यं,' वेदा विभिन्नाः श्रुतयोर्विभिन्ना। नासावृषिर्यस्य मतं न भिन्नं, धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायां, महाजनो येन गतः स पन्थाः।'

काव्यतीर्थ—ठीक है। पूर्व महाजनगण जिस पथपर चले हैं उसी पथपर हमें चलना है, फिर और गुरु कर कान में मन्त्र लेने की क्या आवश्यकता है?

बाबाजी—दक्ष, पराशर, व्यास, नारद, वशिष्ठ, याज्ञवल्क्य, मनु इत्यादि सभी महाजनों के मत पृथक्-पृथक् हैं। आप किसके मत पर चलेंगे? इसलिये एक गुरु करने की आवश्यकता है। कान में मन्त्र देने का प्रधान उद्देश्य यह होता है कि वह दूसरे को सुनाई न पड़े दाहिना कान सदा पवित्र होता है। देह स्पर्शदोष से दूषित होने पर भी दाहिना कान पवित्र रहता है, पवित्र वस्तु के लिये पवित्र क्षेत्र की आवश्यकता है। इसलिये दाहिने कान में मन्त्र देने का विधान है।

इस प्रकार नानारूप कथोपकथन में शाम हो गई। काव्यतीर्थ महाशय बोले, 'गंगाजल मिल सकेगा क्या? मुझे सन्ध्या करनी है।' बाबाजी महाशय ने एक व्यक्ति को आदेश करते हुए कहा 'इन्हें ले जाओ। निर्मल स्थान में आसन लगाकर गंगाजल, पञ्चपात्र इत्यादि रखदो।' ऐसा ही किया गया। इधर सब लोग सन्ध्या-आरति-कीर्तन करने लगे। काव्यतीर्थ महाशय के भोजन के लिये पूड़ी, मोहनभोग और मिठाई इत्यादि की व्यवस्था होने लगी। बाबा उस दिन कीर्तन में न जाकर कमरे में ही बैठे रहे। काव्यतीर्थ भी सायं-सन्ध्या आदि समापनकर उनके निकट आ बैठे। नानारूप कथोपकथन चल रहा था। इतने में ललितादासी ने आकर कहा, 'भोग तैयार है, रात भी अधिक हो गई है।'

बाबाजी—तो ठीक है। पहले पंडितजी के भोजन की व्यवस्था कर दो।

ललिता—वे किस प्रकार का भोजन करेंगे, और हमारे हाथ का ले सकेंगे?

बाबाजी—तुमने क्या बनाया है?

ललिता—अलग से पूड़ी और मोहनभोग आदि की व्यवस्था की है।

बाबा ने काव्यतीर्थ महाशय से पूछा 'क्यों, पूड़ी, मोहनभोग प्रसाद लेने में कुछ आपत्ति है क्या?'

काव्यतीर्थ—आपकी जैसी इच्छा हो करें, मुझे कोई आपत्ति नहीं।

यह सुन ललितादासी ने एक आसन काव्यतीर्थ महाशय का और उसके पास दूसरा बाबाजी महाशय का लगा दिया। बाबाजी महाशय बोले, 'पंडित महाशय, बैठिये।'

काव्यतीर्थ महाशय 'मैं अभी आया' कहकर जिस कमरे में अभी तक कीर्तन हो रहा था, उसमें चले गये। जैसा हम पहले बता चुके हैं, कमरा बहुत अच्छी तरह से सजाया हुआ था। चारों ओर तरह-तरह के चित्रपट थे। चित्रपट इतने सुन्दर थे कि लगता मानो कुछ कहने जा रहे हैं। काव्यतीर्थ महाशय के मन में कौन-सा भाव उदय हुआ, अन्तर्यामी प्रभु ही जानें, वे पञ्चतत्व

के चित्रपट के सामने खड़े होकर अपना बनाया हुआ यह पद गाने लगे–

ओहे दीन दयामय विपद वारन दीन दुःखहारी।
एइ अकूल सागरे आमार नाइ अन्य काण्डारी॥
बड़ भय अन्तरे, पड़ेछे फापरे।
तुमी दया करे दाओ आमारे अभय पदतरी॥
तनु पापे भारी, ताइ भये मरि।
देखे अकाल वातास हच्छे हुताश बूझि डूबे मरि॥
आमार साधे वादी, रिपु छय जन वादी।
ताहे पदे पदे विपद बाधे से भय मने करि॥
आर भावाओना, भवेर कुभावना।
(आमि) भेवे भेवे हलाम सारा तोमाय परिहरि॥

एकबार सहज भाव से पद गाया। दूसरी बार बहुत विकल भाव से गाते–गाते नृत्य करने लगे। बाबाजी महाशय उस आसन पर ही बैठे थे। वे बीच–बीच में कम्पायमान होने लगते थे। इधर काव्यतीर्थ महाशय ठीक बालक की तरह उच्च स्वर से रो–रोकर गान में नाना प्रकार के आखर दे रहे थे। आखर का भाव उनके अपने प्रति कुछ इस प्रकार का था, 'हे प्रभु, मुझे इतने दिन वृथा संसार में चक्कर लगवाया है। आज गुरुरूप में कृपाकर हृदय का संशय मिटा दो।' इत्यादि। धीरे–धीरे वे इतने विह्वल हो गये कि भूमिपर लोट–पोट होने लगे। बाबा महाशय उनके भाव को देखकर उन्हें स्थिर करने के उद्देश्य से उनके पास जाकर खड़े हो गये। दूसरे लोग भी वहाँ आकर काव्यतीर्थ महाशय के साथ पद गाने लगे। काव्यतीर्थ महाशय एकदम अचैतन्य अवस्था में भूमिपर गिर पड़े। थोड़ी देर पश्चात् बाबाजी महाशय ने उनके सीने पर हाथ रखा। इनका स्पर्श पाते ही वे हुंकार मारकर और उनके चरण पकड़कर रोने लगे। वे केवल यही कहते थे, 'गुरुदेव, कृपा करो, दिन बीत गये, मैं बड़ा अभिमानी हूँ।' उनकी व्याकुलता देख बाबाजी महाशय ने उन्हें उठाकर सीने से लगा लिया। फिर भी वे स्थिर न हो सके और कहने लगे, 'प्रभो, मेरे कान में मन्त्र प्रदानकर मेरी मनोवासना पूर्ण कीजिये। मैं आपके चरणों में बिक चुका हूँ। बस आज से मैं आपका हूँ। आपकी जो इच्छा हो करें।'

इतना कह वे फिर रोने लगे। उनका रोना, प्रेमविह्वलता और आत्मसर्मपण देख सब विह्वल हो गये। नवद्वीपदादा बालक की भाँति 'हा निताइ, हा निताइ' कह रोने लगे। बाबाजी महाशय ने उन्हें फिर से आलिंगनकर कान में मन्त्र प्रदान किया। मन्त्र का एक–एक वर्ण जैसे उनके कान में प्रवेश करता था, उनके सर्वांग में पुलक और कम्प होता था और अश्रुजल से वक्षस्थल भीग जाता था। मन्त्र प्रदानकर जैसे ही उन्होंने पण्डितजी को छोड़ा, वे अचैतन्य होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। उनके नेत्र स्थिर और शरीर निश्चल निस्पन्द। भूमि पर गिरे ठीक काष्ठ की मूर्ति के समान। इधर बाबाजी महाशय भी भावाविष्ट थे। इसलिये सब लोग उन्हें पकड़कर बरामदे में ले गये। काव्यतीर्थ महाशय के पास पाँच–सात लोग नाम कर रहे थे। बाकी लोग बाबाजी महाशय के निकट बैठकर नाम कर रहे थे। बाबाजी महाशय के शरीर में जब कम्प होता था किसी की सामर्थ्य नहीं थी, जो उन्हें साध सकता। दाँत इस प्रकार काँपते कि संगीगण को लगता जैसे उसी क्षण सारे दाँत गिर पड़ेंगे। अंग में पुलक होता तब ऐसा लगता जैसे शिमूल वृक्ष हो। वे मुद्रित नेत्र, गद्गद कण्ठ और विलम्बित स्वर से 'गोपी–गोपी' शब्द पाँच–सात मिनट उच्चारण करने के बाद कहने लगे 'मैं गोपी हूँ, मैं गोपी हूँ।' कम्प किसी प्रकार कम नहीं होता था और न किसी प्रकार स्थिरता होती थी। सब लोग बहुत चिन्तित थे। रात भी अधिक हो चली थी। इसलिये ललितादासी रोते–रोते नवद्वीप दादा से बोलीं 'दादा, अब आप बाबाजी महाशय को किसी प्रकार स्थिर कर दें। यदि और थोड़ी देर उनकी यह अवस्था रही तो दाँत सब निकल पड़ेंगे। नवद्वीपदादा ने सबको व्याकुल देख आँखें बन्द कर थोड़ी देर के लिये कुछ ध्यान कर जैसे ही बाबाजी महाशय की पीठ पर हाथ रखा वे 'जय निताइ, जय निताइ' कहते हुए कुछ इस भाव से सचेत होते हुए दीखे जैसे वे कहाँ से कहाँ आ गये। नवद्वीपदादा ने उस कमरे में प्रवेश किया, जहाँ काव्यतीर्थ महाशय अचेत होकर लेटे थे। उनकी अब भी वही अवस्था थी। चारों ओर नाम हो रहा था, परन्तु उनकी देह निश्चल और निस्पन्द थी। यह देख

नवद्वीपदादा ने कहा 'दादा को बुलाओ।' एक व्यक्ति उसी समय बाबाजी महाशय को बुला लाया। उनके आते ही नवद्वीप दादा ने उनका दाहिना चरण पकड़ कर काव्यतीर्थ महाशय के सीने पर रखा दिया। चरण का स्पर्श होते ही उनका देह स्पन्दित हुआ, आँखों से अश्रु प्रवाहित होने लगे। वे चरण पकड़कर नाना प्रकार की कातरोक्ति करने लगे। बाबाजी महाशय ने उन्हें उठाकर आलिंगन द्वारा स्वस्थ किया। तब नवद्वीपदादा बोले 'रात्रि अधिक हो गई है। अब महाप्रसाद सेवन कर लिया जाय। कथा-वार्ता पीछे होगी।'

काव्यतीर्थ—भाई, आप लोग बहुत दिन गुरुदेव का प्रसाद ग्रहण करते-करते उस महाप्रसाद की मूर्ति स्वरूप हो गये हैं। आप लोग परम सौभाग्यवान हैं। आप लोगों की कृपा से आज मुझे गुरुदेव का महाप्रसाद मिला है। आप लोग ऐसा आशीर्वाद करें कि सदा मेरे ऊपर ऐसी ही कृपा बनी रहे। मैं तो घोर अभिमानी व्यक्ति हूँ। दूसरे मुहूर्त में ही सब कुछ भूल जाऊँगा। आप लोग मुझे न भूलियेगा, यही मेरी प्रार्थना है।

यह कहते-कहते महाप्रसाद पाने के लिये काव्यतीर्थ ने बाबाजी महाशय के साथ गमन किया। पहले से ही दोनों के लिये अलग-अलग आसन बिछे हुए थे। अपने-अपने आसन पर दोनों बैठ गये। तब काव्यतीर्थ महाशय कातर स्वर से बोले, 'गुरुदेव, मुझे इस प्रसाद से वंचित क्यों किया?'

बाबाजी—यह तो अन्न महाप्रसाद है और आप हैं ब्राह्मण, इसीलिये आपको देने का साहस नहीं हुआ।

काव्यतीर्थ—इसका अर्थ यह है कि आपने अभी तक मुझे अंगीकार नहीं किया। क्या आप भी मुझे जाति और कुल का गौरव देकर भुलाये रखना चाहते हैं?

बाबाजी—मैं क्या कहूँ? यह तो आपका विश्वास है।

दोनों ने महाप्रसाद पाकर विश्राम किया। दूसरे दिन प्रात: उठकर जैसे ही काव्यतीर्थ महाशय बाबाजी महाशय से विदा लेने गये वे बोले, 'देखिये, आपके ऊपर नित्यानन्द प्रभु ने कृपा की है, किन्तु मेरा आपसे अनुरोध है कि आप इस घटना को गुप्त ही रखें और किसी के भी आगे प्रकाश न करें।' काव्यतीर्थ महाशय ने 'जो आज्ञा' कहकर और श्रीचरणों में दण्डवत् प्रणामकर प्रस्थान किया। ललितादासी ने बाबाजी महाशय ने पूछा 'पण्डित महाशय से आपने इतने बड़े सौभाग्य की बात गोपन रखने को क्यों कहा? आप तो कहा करते हैं कि कपटता पाप का मूल है। तब आपने उन्हें ऐसा उपदेश क्यों किया?'

बाबाजी—इसका उत्तर मैं तुम्हें क्या दूँ? कल रात काव्यतीर्थ महाशय के मन में संकल्प विकल्प हो रहे थे, 'यदि इस घटना का प्रचार हुआ तो शायद बहुत-से लोग मेरे ऊपर कटाक्ष करेंगे, क्योंकि ब्राह्मण और पंडित होकर वैरागी गुरु करना शायद सबको अच्छा न लगेगा। क्या किया जाय और इनसे भी मैं इस बात को कैसे कहूँ?' अब समझ लो कि मैंने उनसे क्यों ऐसे कहा। मानी व्यक्ति का मान रखना ही कर्तव्य है। तुम्हारे लिये क्या? तुम तो समझती हो कि किसी को अपने दल में मिला लेना ही सब कुछ है। तू नहीं जानती कि इन सब लोगों द्वारा निताइचाँद जगत का कितना उपकार करेंगे और कितने मायाबद्ध पाषण्डी जीवों को भगवत्-पथपर अग्रसर करेंगे।

ललिता—यदि मन में यही धारणा थी कि इस घटना के प्रकाश पाने से जगत के उद्धार में व्याघात होगा तो गुरु करने की आवश्यकता ही क्या थी? मानमर्यादा और जाति का गौरव लेकर घर पर बैठ रहना ही ठीक था।

बाबाजी—इसकी आलोचना करने से तुझे क्या मतलब। निताइचाँद जिस समय जिसके द्वारा जो काम कराने की इच्छा करेंगे वही होगा। किसकी सामर्थ्य है जो उसके विपरीत करे। इतना कह बाबाजी महाशय नित्यकृत्य में लग गये।

काव्यतीर्थ का संशय छेदन

एक दिन नौ बजे के लगभग बाबाजी महाशय ने बाग में भ्रमण करते-करते कहा 'देखो, दीनबन्धु काव्यतीर्थ बड़े चक्कर में पड़ गये हैं। व्याकरण के अनुसार गौरमन्त्र शुद्ध करने के विचार से बड़ी समस्या में पड़े हैं। जीव का कैसा भ्रम है? नाम, मन्त्र और

भगवान् एक वस्तु हैं। उन्हें बुद्धि से समझना अथवा बुद्धि के अधीन करना क्या जीव के वश की बात हो सकती है? जो हो मंगलमय प्रभु उसका मंगल करें।'

इसी समय एकाएक दीनबन्धु काव्यतीर्थ आकर उपस्थित हुए। देखते ही बाबाजी महाशय उनका आदर सत्कार करने में लग गये। उन्होंने भी दण्डवत् प्रणाम किया। बाबाजी महाशय ने उन्हें उठा कर आलिंगन किया। परस्पर नानारूप कथोपकथन होने लगा। समय अधिक हो जाने पर ललितादासी के दोनों से स्नान के लिये अनुरोध करने पर दोनों स्नान-आह्निक आदि समाप्त करके बैठे। बाबाजी महाशय के शयन कक्ष में दोनों प्रसाद पाने के लिये आसन लगा दिया गया। बाबाजी महाशय के आने में थोड़ा विलम्ब था। इतने में काव्यतीर्थ महाशय ललितादासी के पास आकर बोले 'क्यों जी, गौरमन्त्र में क्या कोई संस्कृत की भूल है, या मेरे ही अभ्यास में कुछ भूल है?' ललितादासी कुछ मुस्कराती हुई बोलीं मुझे तो यह सब कुछ नहीं मालूम। पर सुना है कि गौरमन्त्र गुरुदेव को स्वप्न में प्राप्त हुआ था। आपको इस सम्बन्ध में यदि कुछ पूछना है तो उनसे पूछियेगा। आज आपके आने के ४-५ मिनिट पूर्व वे कह रहे थे 'काव्यतीर्थ व्याकरण के अनुसार गौरमन्त्र को शुद्ध करने के चक्कर में पड़ गये हैं। जो हो मंगलमय प्रभु उनका मंगल करें।' यह सुनकर काव्यतीर्थ महाशय कुछ विस्मित हुए। इतने में ही बाबाजी महाशय आ गये। दोनों ने नानारूप कथा-वार्ता सहित महाप्रसाद सेवन किया। अपराह्न पाँच बजे बाबाजी महाशय से आज्ञा लेकर काव्यतीर्थ महाशय चले गये।

चार-पाँच दिन पीछे एक दिन चार बजे के लगभग फिर काव्यतीर्थ आकर उपस्थित। उस दिन उनकी भावगति कुछ अन्य प्रकार की थी। मुखपर सुर्खी छाई हुई थी। नयन आँसुओं से डबडबा रहे थे। वेश-भूषा कुछ बेढंगी-सी थी। दूर से ही बाबाजी महाशय के दर्शन कर उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। बाबाजी महाशय ने जैसे ही जल्दी-जल्दी उन्हें उठाने के लिये उनका हाथ पकड़ा, वैसे ही वे बालक के समान उच्च स्वर से रोदन करते-करते बोले 'मैं घोर अपराधी अविश्वासी और पाखण्डी जीव हूँ। अभिमान के वश मैं जगत् को तृण के समान समझता था। सामान्य विद्या-मद से मत्त होकर साक्षात् भगवत्-स्वरूप पर दोषारोपण करता था। मेरे ऊपर कृपा कीजिये। मैंने जो अपराध किया था उसका मुझे भरपूर दण्ड मिल चुका है। यदि और भी अधिक दण्ड देने की इच्छा हो तो आदेश कीजिये। मैं अवनत मस्तक हो उसे ग्रहण करने को तैयार हूँ।'

बाबाजी—क्या हुआ? मैं तो कुछ भी नहीं समझ पा रहा हूँ।

काव्यतीर्थ—क्यों प्रभु, आप तो अन्तर्यामी हैं। आपको तो मेरे अन्तर की खबर बहुत दिन पहले मिल गई थी। इसके पहले मैं जब यहाँ आया था उसी दिन आपने अपने अन्तरंग भक्तों से मेरी सारी बात कही थी।

बाबाजी—मैं नहीं जानता किस समय क्या बात पागल की भाँति कह बैठता हूँ। इस समय क्या घटना हुई है आप स्पष्ट रूप से बतायें।

काव्यतीर्थ—आपने जिस दिन मेरे ऊपर कृपाकर मुझे मन्त्र प्रदान किया, उसी दिन से इस गौरमन्त्र के सम्बन्ध में मुझे सन्देह हो गया और मुझे जो कुछ थोड़ा बहुत संस्कृत ज्ञान है उसे लेकर मेरी स्वाभाविक धारणा बन गई कि मन्त्र अशुद्ध है। इस सन्देह को दूर करने के हेतु एक दिन आपके पास आया भी था, किन्तु जब मुझे ये मालूम हुआ कि मेरे हृदय की बात आपने पहले ही जान ली है तो अपने मन की बात मन ही मन आपसे कहकर चला गया। किन्तु मन्त्र उच्चारण करते समय मन दुःखी उपस्थित हुआ। कल रात दुःखी होकर शयन कर रहा था। लगभग ४ बजे प्रातः आप मेरे सामने उपस्थित हुए। बड़ी तेज दृष्टि से मेरी ओर देखते हुए और तर्जन-गर्जन करते हुए मेरे गाल पर एक चाँटा मारा और बोले 'क्यों रे, साधारण दो पन्ने व्याकरण के पढ़कर तुझे इतना अभिमान हो गया है कि तू साक्षात् नित्यानन्द प्रभु के मुख से निकले हुए मन्त्र पर कटाक्ष कर रहा था। तू क्या समझता है कि कलाप, मुक्तबोध, सारस्वतकौमुदी इत्यादि जितने व्याकरण प्रचलित हैं उन्हें लेकर सारा व्याकरण सम्पूर्ण है। कभी नहीं, पाणिनी व्याकरण को छोड़ और सभी अपूर्ण हैं।

पाणिनि के भी दो भाग हैं, पूर्व खण्ड और उत्तर खण्ड। उत्तर खण्ड के वेद विभाग में अनेक स्थानों पर इस प्रकार का प्रयोग है और वहीं इसका समन्वय किया गया है। और मैं तुझसे कहता हूँ कि यदि वो समन्वय न हो तब भी क्या नाम, मन्त्र और भगवान् का स्वरूप किसी शास्त्र द्वारा निष्पन्न हो सकते हैं? अरे मूर्ख वह तो सब स्वप्रकाश और सच्चिदानन्द पदार्थ हैं।' इस प्रकार मेरे ऊपर कृपादण्ड कर और मेरे हृदय के अन्धकार को विनाशकर मुझे कृतार्थ किया। यह देखिये, अबतक मेरे गाल पर वह चिह्न है।

इतना कह बाबाजी महाशय का चरण पकड़कर वे रोने लगे। उपस्थित लोग काव्यतीर्थ महाशय की बात सुन उनके गालपर कृपादण्ड का सुस्पष्ट चिह्न देखकर अवाक् रह गये। बाबाजी महाशय नानारूप सान्त्वना वाक्यों द्वारा उन्हें प्रबोध कराते हुए साश्रुगद्गद कण्ठ से बोले, 'बाबा, तुम धन्य हो, तुम्हारा सन्देह भी धन्य है। तुम्हारा संशय छेदन करने के लिये परम दयालु निताइचाँद ने कितनी कृपा की है। इस नराधम को लक्ष्य न कर उन्हीं को पुकारो। उनकी अहैतुकी कृपा की जय बोलो। निःसंकोच होकर उनके आदिष्ट पथपर अग्रसर हो। मनुष्य जीवन सफल होगा। तुमने एक तो मनुष्य-कुल में, फिर पुण्यक्षेत्र भारतवर्ष में और उससे भी अधिक ब्राह्मण कुल में जन्म प्राप्त किया है और प्रभु ने तुम्हें विद्यादि नानारूप भूषणों से भूषित कर रखा है। तुम्हारा यह जन्म तपस्या का जन्म है। इस पर भी यदि तुम्हीं ने उन परम दयालु प्रभु का भजन न किया, उनकी कृपा ग्रहण न की, तो और कौन करेगा? तुम्हारे समान व्यक्ति का संसर्ग पाकर मैं अपने को भाग्यवान समझता हूँ।

काव्यतीर्थ—गुरुदेव आप चाहे जो कहें, चाहे जितना कृपाकर मुझे उपदेश करें, परन्तु मैं जानता हूँ कि मेरे समान घोर अभिमानी, अविश्वासी नर-पिशाच का उद्धारक आपके अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकता था। मैंने इस जीवन में बहुत-से देशों में भ्रमण किया है और बहुत-से साधु संन्यासियों और तपस्वियों का संग किया है, परन्तु आज तक अदोषदर्शी, अक्रोध, परमानन्द और कृपा की मूर्ति मैंने कहीं नहीं देखी। ऐसा गुरु यदि न मिलता तो मेरे समान पतित व्यक्ति का उद्धार असम्भव होता। अब जिस प्रकार आपकी कृपादत्त अमूल्य वस्तु की रक्षा कर सकूँ, और मनुष्य जीवन में उन्नति कर सकूँ, एक बार कृपा कर वैसा उपदेश कीजिये।

बाबाजी—बाबा, मनुष्य जन्म का वास्तविक अवलम्बन विश्वास है। भगवत् राज्य में तर्क नहीं चलता। तर्क द्वारा तत्व का निर्देश नहीं होता। शास्त्र कहते हैं, 'अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत'। वास्तविकता भी यही है, क्योंकि वे स्वेच्छामय स्वतन्त्र पुरुष हैं। उनका कार्य-कलाप हमारे समान क्षुद्रबुद्धि-सम्पन्न मानव को ज्ञानगोचर नहीं हो सकता। इसीलिये कहता हूँ कि जिस प्रकार हम विश्वासपूर्वक संसार के अन्यान्य कार्य करते हैं, उसी प्रकार भगवत्राज्य में भी विश्वास करने की विशेष आवश्यकता है।

काव्यतीर्थ—हम लोग संसार में विश्वास द्वारा क्या कार्य करते हैं?

बाबाजी—क्यों, तुम्हारे पूर्व पुरुष ब्राह्मण थे और भारद्वाज, काश्यप, शांडिल्य या अत्रि प्रभृति के वंशसंभूत, इस बात का क्या तुम विश्वास नहीं करते? तुम अपने पिता के पुत्र हो, यह बात तुम्हें प्रत्यक्ष गोचर तो है नहीं, फिर भी क्या तुम इसका विश्वास नहीं करते? यह तो हुई अतीत की बात। वर्तमान में भी देखो, हमें इतना विश्वास है कि जब चक्षु कहते हैं 'यह एक स्त्री मूर्ति देख रहे हो। इस वस्तु में अपूर्व सुख निहित है। इसे ग्रहण करो।' तब चक्षुओं की बात का विश्वास कर हम तुरन्त उस ओर चल पड़ते हैं, चाहे मरें या जियें। इसी प्रकार प्रत्येक इन्द्रिय की बात का विश्वास कर हम उसके पीछे चल पड़ते हैं हम क्या यह सब किसी प्रत्यक्ष प्रमाण के आधार पर करते हैं? इसीलिये मैं कहता हूँ कि एकमात्र विश्वास पर निर्भर करो। तुम्हें किसी प्रकार का अभाव न होगा। तुम्हारे ऊपर प्रभु की इतनी बड़ी कृपा है कि उन्होंने स्वयं प्रत्यक्ष होकर तुम्हारे सन्देह को दूर किया।

काव्यतीर्थ—गुरुदेव, मैं आपके श्रीचरणों में चिरकाल के लिये बिक गया हूँ। कर्तव्य-अकर्तव्य के सम्बन्ध में पूर्ण रूप से आपके ऊपर निर्भर हूँ।

इस प्रकार नानारूप कथोपकथन में सन्ध्या हो गई। बाबाजी महाशय काव्यतीर्थ महाशय को सायं-सन्ध्या करने का आदेश देकर स्वयं नित्यकृत्य के लिये चले गये। यथासमय महाप्रसाद ग्रहणकर दोनों ने विश्राम किया। थोड़ी देर बाद काव्यतीर्थ महाशय बाबाजी महाशय के दोनों चरण अपने वक्ष-स्थल से लगाकर नाना प्रकार के प्रश्न करने लगे। इस प्रकार रात के साढ़े तीन बज गये। तब बाबाजी महाशय के आदेश से कुछ शयन कर दूसरे दिन प्रातः उठकर काव्यतीर्थ महाशय विशेष कार्य के लिये अपने घर चले गये। बाबाजी महाशय भी नित्यकर्म में लग गये।

इस प्रकार कई दिन बीत गये। एक दिन प्रातःकाल एक व्यक्ति को चार-पाँच लोग पकड़कर बाबाजी महाशय के निकट ले आये। वह व्यक्ति अचैतन्य अवस्था में था, उसके मुख से फेन निकल रहा था। उसे देखते ही बाबाजी महाशय ने कहा 'यह क्या है बाबा, इसे क्या हुआ है?' आगन्तुक लोगों ने कहा 'बाबा, रात को इसे साँपने काट लिया है। हम लोग बड़े दुःखी हैं। आप कृपा कर इसे बचा लीजिये।'

बाबाजी—बाबा, मैं तो कुछ जानता नहीं। पर एक वृद्ध ब्राह्मण हैं, जिनके मन्त्र से उस दिन एक साँप का काटा आदमी बच गया था। उन्हें बुलाये देता हूँ। वे ठीक कर देंगे।

आगन्तुक—महाराज, दो तीन उस्ताद तो बहुत झाड़फूंक कर थक गये। अब आपकी कृपा बिना ये मर जायगा।

बाबाजी—ना बाबा, इसके लिए तुम चिन्ता मत करो।

इतना कह नवद्वीप दादा से बोले, 'इसे घेर कर सब लोग नाम करो और बूढ़े बाबा को बुला दो।'

नवद्वीप दादा मृदु मुस्कान के साथ बाबाजी महाशय की आज्ञा के अनुसार करने लगे। खूब नाम होने लगा। वृद्ध ब्राह्मण बाबाजी महाशय के आदेश से उस व्यक्ति को मन्त्र द्वारा झाड़ने लगे। बहुत देर झाड़-फूंक करने के बाद जब कुछ नहीं हुआ तो आगन्तुक भक्तों ने कातर होकर बाबाजी महाशय से प्रार्थना की। वे भी कातर भाव से बोले, 'तुम निताइचाँद से प्रार्थना करो। वे ओझाओं के ओझा हैं। उनसे प्रार्थना करने से यह व्यक्ति ठीक हो जायगा।' यह सुन सब लोग 'हा निताइ! जय निताइ!' कहकर रोने लगे। बाबाजी महाशय स्वयं संकीर्तन में नृत्य करने लगे। कुछ देर बाद वे उन व्यक्तियों से बोले, 'देखो भाई, तुम लोग इस व्यक्ति को पकड़कर संकीर्तन में खड़ा कर दो।' उन्होंने ऐसा ही किया। किन्तु उस व्यक्ति के शरीर की सारी ग्रन्थियाँ शिथिल हो गईं थीं। शरीर का रंग काला पड़ गया था, मुख से फेन निकल रहा था। बाबाजी महाशय ने उद्दण्ड नृत्य करते-करते एकाएक उस व्यक्ति को सीने से लगा लिया। सीने से लगाकर कीर्तन में नाचने लगे। थोड़ी देर बाद वह व्यक्ति चौंवा पड़ा। बाबाजी महाशय ने उसे भूमि पर लिटा दिया और स्वयं नृत्य करने लगे। धीरे-धीरे वह कुछ प्रकृतिस्थ हुआ और निद्रा से जागे हुए व्यक्ति की भाँति चारों ओर देखने लगा। जैसे ही बाबाजी महाशय की ओर उसकी दृष्टि गई वह रो-रोकर बोला, 'महाराज! मुझे दयाकर अपने चरण दीजिये।' अन्य लोग यह देख अत्यन्त विस्मित भाव से बाबाजी महाशय को प्रणामकर नाना प्रकार से उनकी स्तुति करने लगे। बाबाजी महाशय उससे बोले, 'देखो भाई, इन बूढ़े बाबा ने तुम्हारी प्राण-रक्षा की है। इन्हें नमस्कार करो। इनके मन्त्र का प्रभाव अपूर्व है।' प्रतिष्ठा के भय से बाबाजी महाशय ने इस प्रकार वास्तविक घटना को ढकने की चेष्टा की। पर दर्शकों से वे इसे न छिपा सके। वे सब एक मत होकर बाबाजी महाशय को ही उसका प्राणदाता कहकर पुकारने लगे। यथासमय सब लोग अपने-अपने स्थान को चले गये।

दर्जीपाड़ा गमन

रायबहादुर प्रसन्नकुमार बन्द्योपाध्याय (एक्जीक्यूटिव इन्जीनियर, ईडन गार्डन) प्रायः सदा ही बाबाजी महाशय के पास रहते हैं। उनमें अपूर्व परिवर्तन हो गया है। जो सदा साहब लोगों के साथ आहार व्यवहारादि में परम शन्ति का अनुभव करते थे, निष्ठा और सदाचार को कुसंस्कार समझते थे, धर्म नाम की कोई चीज है, इस प्रकार की धारणा को जो

मन में कभी स्थान तक नहीं देते थे, वे आज परम सदाचारी निष्ठावान और धर्मपरायण हो गये हैं। गले में तुलसी की तीन कण्ठियाँ, माथे पर हरिमन्दिर तिलक, और मुख में सदा भगवन्नाम-उन्हें देख लगता है जैसे साक्षात् सतोगुण की मूर्ति हों।

बाबाजी महाशय को करीब एक महीना रायबहादुर साहब के बगीचे में हो गया। अब उनका मन वहाँ नहीं लग रहा है। लेकिन प्रसन्नबाबू का अतिशय आग्रह है। इसीलिये सहज में उनसे छुटकारा भी नहीं मिल रहा है। प्रसन्नबाबू कहते हैं, 'बाबा, मैं बहुत दिनों का पापी हूँ। आपने मेरा उद्धार किया है। किन्तु मुझे इस बात का भय है कि यदि आप और कुछ दिन यहाँ रह कर मेरे अन्दर शक्ति संचार नहीं करेंगे तो मेरा फिर से पतन सम्भव है। इसीलिये मेरी प्रार्थना है कि कम-से-कम दो महीने आप मेरे बगीचे में रहने की कृपा करें।' बाबाजी महाशय हँसते हुए बोले, 'बाबा, भिखारी वैरागी लोगों को बहुत दिन एक स्थान पर नहीं रहना चाहिये। मेरी अपनी तो इच्छा है ही। यदि निताइचाँद की इच्छा होगी तो न जाने कितनी बार यहाँ आना-जाना होगा, पर ऐसा बोध होता है कि इसबार मुझे और अधिक दिन यहाँ रखने की इच्छा नहीं है।' प्रसन्नबाबू किसी प्रकार बाबाजी महाशय को कुछ दिन और अपने यहाँ ठहराने की कोशिश करने लगे। इच्छामय प्रभु की इच्छा से दूसरे दिन ही दर्जीपाड़ा निवासी बाबू जोगेन्द्र नाथ मित्र अपने साथियों के साथ बाबाजी महाशय के निकट आकर अपने घर चलने के लिये विशेष आग्रह करने लगे। बाबाजी महाशय ने प्रसन्नबाबू को समझाकर सदलबल जोगेनबाबू के साथ उनके घर की ओर प्रस्थान किया। पहले से ही जोगेनबाबू ने अनाथनदेव लेन में अनाथबाबू के ही एक दुमंजिले मकान में बाबाजी महाशय के ठहरने की व्यवस्था कर रखी थी। ये लोग उसी मकान में जा ठहरे।

तीन-चार दिन बाद एकाएक बाबाजी महाशय का शरीर अस्वस्थ हो गया। छाती में बहुत बलगम जम गया और खाँसी आने लगी। साथी लोग बहुत चिन्तित हुए। इसी समय जोगेनबाबू बाबाजी महाशय से आकर बोले, 'आपका शरीर अस्वस्थ है। इसलिये हम सबको बड़ी चिन्ता है। यदि आज्ञा दें तो किसी कविराज को बुलाकर दिखा दिया जाय।' बाबाजी महाशय मृदु मुस्कान के साथ बोले, 'तुम्हारी जैसी इच्छा।' जोगेनबाबू तुरन्त कलकत्ते के प्रधान कविराज निशिकान्त सेन महाशय को ले आये। कविराज महाशय बाबाजी महाशय से बहुत कुछ भगवत्तत्व आलोचना करते रहे, फिर बोले 'आपकी नब्ज देखूँ तो।'

बाबाजी—अवश्य देखिये। आप तो भगवान् के विशेष कृपापात्र हैं, क्योंकि वे आपके द्वारा बहुत लोगों का हित करते हैं।

कविराज—मेरी क्या क्षमता है। मैं तो निमित्त मात्र हूँ। वे जीव के कल्याण साधन के लिये कितनी प्रकार से चेष्टा करते हैं। धर्म की ग्लानि होने पर स्वयं अवतार लेकर असुरों का विनाश और धर्म का संस्थापन करते हैं, और जब देखते हैं कि दुर्बल जीव अस्वस्थ रहकर कोई कार्य नहीं कर सकता तो धन्वन्तरि के रूप में अवतार लेते हैं। आप तो महापुरुष हैं। ऐसी कृपा करें कि मैं उनके उपदिष्ट मार्ग का अनुसरण कर सकूँ।

इतना कह कविराज महाशय बाबाजी महाशय का हाथ देखने लगे। छाती में अत्यधिक कफ जमा जानकर कुछ भयभीत होकर बोले, "बाबा, मेरा एक अनुरोध है। कुछ दिन तक आप अधिक बोलें नहीं। उच्च स्वर से संकीर्तन भी न करें और न कोई शारीरिक परिश्रम करें, क्योंकि आपकी जैसी अवस्था है इसमें यह सब करने से व्याधि बहुत अधिक बढ़ सकती है। मैं औषधि देकर एकबार ठीक कर दूँ, तब जैसी इच्छा हो करें। फिर किसी प्रकार के अनिष्ट का भय नहीं रहेगा।"

बाबाजी—कितने दिन तक यह सब बन्द रखना होगा?

कविराज—छह महीने तक बन्द रखें तो बहुत अच्छा है, नहीं तीन महीने तो रखना ही होगा।

बाबाजी—बाबा! तीन महीने तक उच्च कीर्तन बन्द रहेगा तो मैं समझता हूँ कि मेरा दिमाग खराब हो जायगा, या मेरे हृदय में कोई रोग उत्पन्न हो जायगा।

कविराज—ये तो आप उल्टी बात कहते हैं। उच्च कीर्तन, उच्च भाषण या अधिक भाषण से ही तो मस्तिष्क और हृदय के रोग उत्पन्न होते हैं।

बाबाजी—मैं तो यह जानता हूँ कि यह सब न करने से ही मेरा स्वास्थ्य खराब होता है।

कविराज—आप महात्मा हैं। आपके साथ सब कुछ सम्भव है। किन्तु मेरे अनुरोध से आपको कम से कम एक महीने अवश्य ही यह कष्ट स्वीकार करना होगा।

बाबाजी—अच्छा, निताइचाँद की इच्छा से मैं यथासाध्य प्रयत्न करूँगा।

कविराज महाशय ने सन्तुष्ट होकर दवाई का परचा लिख दिया और जोगेनबाबू ने एक व्यक्ति को उसे लेकर कविराज जी के घर भेज दिया। फिर वे दूसरे लोगों से परामर्श करने लगे कि किस-प्रकार कविराज महाशय की व्यवस्था के अनुरूप कार्य किया जाय। नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी बोले, 'आप किसी प्रकार का भय न करें। बाहर के लोग आयेंगे तभी तो ये उनके साथ बात-चीत करेंगे। मैं आज से दरवाजे पर दरबान बनकर बैठ जाऊँगा और किसी को अन्दर न जाने दूँगा।' सब लोग नित्यस्वरूप की बात से बड़े आनन्दित हुए। दवा भी कविराज के यहाँ से आ गई और नियमानुसार औषधि का सेवन और पथ्य आदि चलने लगा। औषधादि से बाबाजी महाशय को कोई आपत्ति थी ही नहीं, आपत्ति थी केवल उच्च संकीर्तन और भाषण बन्द कर देने से।

प्राणप्रिय रामदास ने बाबाजी महाशय से कहा 'मैं कीर्तन करता हूँ। आप यहीं बैठ कर सुनें।' बाबाजी महाशय इससे सहमत हुए। प्रातःकाल कीर्तन, सायंकाल पाठ और फिर कीर्तन की व्यवस्था की गई। पहला दिन बड़े आनन्द से बीता। दूसरे दिन सबेरे से ही बहुत-से लोग आने लगे। नित्यस्वरूप सबसे हाथ जोड़कर बोले, 'बाबाजी महाशय का शरीर अवस्थ है। इसलिये आप लोग कृपा कर कुछ दिन उनके दर्शन न करें।' कुछ लोग वापस चले गये, पर कुछ केवल एकबार दर्शन के लिये कातरभाव से आग्रह करने लगे। इस प्रकार नौ बज गये। बाबाजी महाशय एकदम चीत्कार कर उठे, 'ओ रे नित्यस्वरूप! मेरा माथा फटा जा रहा है। दरवाजा खोल नहीं तो पागल हो जाऊँगा।' साथियों ने नित्यस्वरूप से दरवाजा खोलने को निषेध किया। नित्यस्वरूप ऊपर आकर बाबाजी महाशय से बोले, 'कविराज महाशय ने कम से कम एक महीने के लिये आपको जोर से बोलने के लिये निषेध किया है।'

बाबाजी—दूसरे की वस्तु की ममता को दूसरा क्या जाने। मैंने तो सोचा था कि कविराज महाशय के उपदेशानुसार चलूँगा। पर यह देह मेरी तो है नहीं। जिनकी वस्तु है वह जैसे चाहें वैसे रक्खें। मेरा इसमें क्या अधिकार? मैं अपने मंगल की जितनी चेष्टा और चिन्ता कर सकता हूँ, अन्तर्यामी मंगलमय निताइचाँद मुझसे कहीं अधिक कर सकते हैं। जिस समय जैसी आवश्यकता होती है उस समय वे वैसी ही व्यवस्था कर देते हैं। निताइचाँद की इच्छा से जो लोग मेरे निकट हैं उनके द्वारा मेरा परम उपकार ही होगा, अपकार नहीं। निताइचाँद जितने दिन जिस पुतले के द्वारा जैसा खेल कराना चाहते हैं वैसा ही करते हैं। कोई भी उसके विपरीत नहीं कर सकता। इसलिये किसी को मत रोकना। भक्तों के हृदय में बिन्दुमात्र आघात पहुँचने से निताइचाँद को बड़ा कष्ट होगा। इस जीवन में मैं उन्हें सुख नहीं पहुँचा सका, पहुँचा सकने की आशा भी नहीं रखता। क्योंकि मैं सदा ही आत्मसुख के लिये लालायित रहता हूँ। इस पर भी यदि पग-पगपर उन्हें दु:ख दूँगा तो मेरी क्या गति होगी? सुखमय निताइचाँद हमारे सुख के लिये आत्मसुख की तिलाञ्जलि दे घर-घर जाकर रोदन करते हैं। अपने फूल के समान सुकोमल शरीर पर किये गये अत्याचारों को सहन करते हैं और पाषंडियों की भर्त्सना अवनतमस्तक होकर ग्रहण करते हैं। हम कभी भूल से भी उनके सुख के लिये प्रयत्न नहीं करते। धिक्कार है हमारी स्वार्थपरता को, धिक्कार हमारी नश्वर देह के सुख भोग की लालसा को, धिक्कार हमारे जीवन को!

इतना कह वे बालक के समान उच्चस्वर से रोने लगे। नित्यस्वरूप भी रोते-रोते बोले, 'मैं बड़ा अपराधी

हूँ। मैंने आपका प्रकृत मनोभाव न समझ कर जो कुछ भी किया है उसके लिये मुझे क्षमा करें।' इतना कह वे बाबाजी महाशय के चरण पकड़ कर रोने लगे। बाबाजी महाशय ने उन्हें उठाकर आलिंगन किया। यथासमय सबने महाप्रसाद ग्रहण कर विश्राम किया।

शिशिरबाबू से मिलन

एक दिन कोई चार बजे बाबाजी महाशय ऊपर की मंजिल में बैठे थे। ललितादासी पंखा कर रहीं थीं। दो-एक और भी लोग निकट बैठे थे, पर सब नीरव थे। एकाएक बाबाजी महाशय चौंकाते हुए बोले, 'कोई महात्मा आ रहे हैं, देखो तो'। एक व्यक्ति जल्दी-जल्दी बाहर जाने लगा। इतने में ही एक सज्जन वहाँ आकर उपस्थित हुए। उनकी वेश-भूषा अत्यन्त साधारण थी। शरीर पर केवल एक कुर्ता और साथ में एक चादर थी। चेहरे का रंग बहुत गोरा नहीं था, फिर भी मुखपर एक अपूर्व ज्योति थी और नेत्र कुछ डबडबाये-से थे। चाल से लगता था जैसे किसी अप्राकृत पथ के पथिक हों। जान पड़ता था कि जैसे उनके भीतर से कोई वस्तु प्रकाशित होना चाहती है और वे किसी प्रकार उसे दबाकर रख रहे हैं। दूर से उन्हें देखते ही बाबाजी महाशय एकदम बोल उठे, 'अरे दादा! आइये' और आगे बढ़ कर झट उन्हें आलिंगन कर लिया। अपूर्व सम्मेलन! स्पर्श मात्र से दोनों अचैतन्य हो गये। दोनों के नेत्रों से आँसुओं की धार प्रवाहित होने लगी, और दोनों के शरीर में सात्विक विकार प्रकाशित होने लगे। भक्तगण दोनों महापुरुषों के चारों ओर हाथ फैला कर इस प्रकार खड़े हो गये कि वे जमीन पर न गिर पड़ें। थोड़ी देर बाद बाह्यदशा को प्राप्त हो दोनों बैठ गये। दोनों के चक्षु आरक्तिम और सजल थे। आगन्तुक गद्गद कण्ठ से बोले, 'दादा, आप यहाँ आये हैं, यह सुनकर मैं बहुत दिनों से आपके दर्शन करने की इच्छा कर रहा था। परन्तु मेरे भाग्य में अभी तक आपके दर्शन नहीं थे। आज गौर की इच्छा से अभावनीय रूप से आपके दर्शन प्राप्त किये। ऐसा लगता है कि आप मुझे पहचान नहीं सके। इस अधम का नाम शिशिर कुमार घोष है।'

बाबाजी—दादा! बड़ा सौभाग्य है जो आज आपके दर्शन किये। न जाने निताइचाँद की क्या इच्छा है। प्रातःकाल से ही मन न जाने किधर छूटा चला जा रहा था। ऐसा लगता था कि किसी को आलिंगन करने के लिये हृदय उद्वेलित हो रहा है। कृपामय प्रभु की कैसी कृपा है, योगमाया का कैसा योगायोग। अभी कुछ क्षण पहले ही आपकी बात सोच रहा था।

शिशिरबाबू—क्यों, किस उद्देश्य से इस अधम को याद किया था?

बाबाजी—किसी उद्देश्य से नहीं। यह सोच रहा था कि शिशिरबाबू निताइ की कृपा से कितने शक्तिमान है। उन्होंने इतने बड़े नैष्ठिक ब्राह्मण पण्डित को निःसंकोच विलायत तक भेज दिया। यदि उनसे भेंट होती तो झगड़ा करता।

शिशिरबाबू—भाई, आपके ठाकुर बड़े सरल और सहज हों ऐसी बात नहीं। इस बार ब्राह्मण-पण्डिताई में ही न रहकर उन्होंने विदेशी लोगों का संग करने की इच्छा की है। इसमें मेरा क्या दोष? मैं तो यह देखता हूँ कि उनके साथ पड़कर मेरी अपनी जाति भी भ्रष्ट हो गई है।

इस प्रकार नानारूप प्रेमालाप होने लगा। उनका भाव दूसरों के लिये समझना कठिन था। परस्पर ही वे एक-दूसरे का भाव जान रहे थे। लोग इनका परस्पर व्यवहार देखकर अवाक् थे। कभी दोनों हँस पड़ते थे, कभी रो देते थे। कभी दोनों के देह में अश्रु, कम्प, पुलक आदि सात्विक विकार जाग उठते थे।

इस प्रकार बहुत समय बीत गया। यद्यपि एक दूसरे का साथ छोड़ने के लिये दोनों में से किसी की इच्छा न थी, फिर भी शिशिरबाबू ने कार्यानुरोध से बाबाजी महाशय से विदा ली।

दो-तीन दिन बाद रसिक मोहन विद्याभूषण और एक वैष्णव बाबाजी महाशय के पास आये। बाबाजी महाशय ने दोनों को बड़े सम्मान से अपने पास बिठाया। पहले से ही विद्याभूषण महाशय के साथ इन वैष्णव का माया के सम्बन्ध में कुछ वाद-विवाद चल रहा था। वैष्णव कहते थे कि सभी कार्य योगमाया का

खेल है। विद्याभूषण महाशय कहते थे कि प्राकृत राज्य के सब कार्य मायाकृत हैं, किन्तु अप्राकृत नित्य चिन्मय राज्य की लीलाएँ एकमात्र योगमाया के कार्य हैं। दोनों की बात सुनकर बाबाजी महाशय ने विद्याभूषण महाशय की ही बात का समर्थन किया और उन वैष्णव महानुभाव को समझाते-समझाते एकाएक संकीर्तन प्रारम्भ किया। संकीर्तन में आज और किसी विषय की चर्चा नहीं। केवल माया और योगमाया के सम्बन्ध की विशद् व्याख्या चल रही है। खूब जोरों का कीर्तन हो रहा है। इसी समय शिशिरबाबू अपने एक नाती के साथ वहाँ उपस्थित हुए और कीर्तन में योग देने लगे। सभी संकीर्तन में नृत्य कर रहे हैं। बहुत देर कीर्तन के पश्चात् नानारूप भगवत् प्रसंग करते हुए, सब अपने-अपने घर पधारे। इस प्रकार प्राय: ही शिशिरबाबू इस नाती को साथ लेकर बाबाजी महाशय के पास आया करते। बाबाजी महाशय बोले, 'आप जब आते हैं प्राय: यह नाती आपके संग रहता है। बालक बहुत भाग्यवान् है।' शिशिरबाबू मृदु मुस्कान के साथ बोले, 'देखिए, आपके पास आकर घर की सुध नहीं रहती। कहीं एकदम ही न भूल जाऊँ, इसीलिये इसे अपने साथ रखता हूँ।' बाबाजी महाशय हँसते-हँसते बोले, 'संसार छुटाने के बजाय आपके द्वारा प्रभु जो कार्य करा रहे हैं उनसे बहुत बड़े-बड़े उद्देश्यों की सिद्धि हो रही है और होगी। मैं प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि आपके जैसे व्यक्ति को दीर्घ जीवन प्रदान करें।' इस प्रकार कथा-वार्ता के पश्चात् शिशिरबाबू अपने घर चले गये और बाबाजी महाशय नित्यकृत्य करने लगे। दर्जीपाड़ा में अवस्थान करने के समय कभी बाबाजी महाशय शिशिरबाबू के घर जाते और कभी शिशिरबाबू बाबाजी महाशय के पास आते।

अतीनबाबू से मिलन

दर्जीपाड़े का संकीर्तनानन्द दिनोंदिन बढ़ता जा रहा था। एक दिन एक दीर्घकाय, कुछ स्थूलकाय युवक वहाँ आकर उपस्थित हुआ। वह किस समय वहाँ आ गया था, किसी ने नहीं जाना। उसके शरीर पर किसी धर्म या सम्प्रदाय विशेष का चिह्न न था। वेश साधारण रूप से भद्रोचित था। उसके आते ही बाबाजी महाशय ने विशेष आदर-पूर्वक 'आओ भाई, आओ भाई' कहकर उसे पकड़कर अपने पास बिठा लिया। आज दो-तीन दिन से बाबाजी महाशय का शरीर अस्वस्थ है। सीने में और पीठ में वेदना है। पुराने घी की मालिश की व्यवस्था की जा रही है, लेकिन उनका उधर बिलकुल ध्यान नहीं। युवक के साथ वार्तालाप में लगे हैं। बाबाजी महाशय ने पूछा 'भाई तुम्हारा नाम क्या है?' युवक ने कुछ विस्मित होकर कहा 'जी, मेरा नाम अतीन्द्रनाथ बसु है।'

बाबाजी—भाई, तुम तो पहलवान हो। मेरा यह हाथ दबा दो तो।

अतीनबाबू बाबाजी महाशय के व्यवहार से मुग्ध हो गये। ऐसा सरल और मधुर व्यवहार उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था। प्रसन्न होकर धीरे-धीरे बायाँ हाथ दबाने लगे। बाबाजी महाशय बोले, 'तुम इतने बलवान आदमी हो, पर तुम्हारे में कुछ दम नहीं दीखता। जरा जोर से दबाओ न।

अतीनबाबू जोर से दबाने लगे। वे जितना भी जोर लगाते बाबाजी महाशय कहते, 'बस यही जोर है। तुम कैसे पहलवान हो?' अतीनबाबू हैरान। अपनी पूरी ताकत लगाकर भी जब वे थक गये, तब विस्मित होकर उनके चरणों में प्रणाम किया। उन्होंने भी हँसकर कहा, 'बड़ा कष्ट हुआ तुम्हें। अच्छा अब बस करो' इतना कह नानारूप भगवत्-कथा कहने लगे।

थोड़ी देर बाद अतीनबाबू बाबाजी महाशय के चरणों में दण्डवत् प्रणाम कर चले गये, परन्तु उसी समय से वे बाबाजी महाशय के प्रति आकृष्ट हो गये। नित्य आकर उनसे नाना प्रकार की तत्वकथा और रामदास बाबाजी का प्रभाती कीर्तन श्रावण करने लगे। अतीनबाबू की देखा-देखी उनके साथी केवलचन्द्र चट्टोपाध्याय नाम के एक युवक भी बाबाजी महाशय के पास आने लगे। बाबाजी महाशय के उपदेश और रामदादा के सुमधुर कीर्तन से थोड़े ही दिनों में चट्टोपाध्याय महाशय की मति में परिवर्तन आ गया। उन्होंने बाबाजी महाशय से मन्त्र आदि ग्रहणकर गले में तुलसी माला धारण की। उनकी अवस्था में परिवर्तन देख लोग कहने लगे 'इनकी देह में, जगाइ-माधाइ

दोनों वर्तमान थे। इनका उद्धार करना साधारण शक्ति का काम नहीं था।' उनकी अवस्था देख दर्जीपाड़ा के सभी लोग विस्मित थे। बाबाजी महाशय ने उनका नाम रखा 'विजय'। वास्तव में उन्होंने उनके रूप में एक बड़े पाषंड का उद्धार कर जैसे जगत में विजय-पताका फहरा दी। विजय में अपूर्व गुरु-निष्ठा और नाम में रुचि हो गई। निताइचाँद की कैसी कृपा! जिस व्यक्ति से सभी लोग घृणा करते और जिसके साथ लोग डर-डर कर व्यवहार करते, वह आज देव-दुर्लभ भक्तिपथ का पथिक होकर सबके प्रेम का पात्र बन गया। लोगों का अनिष्ट करना ही जिसके जीवन का एकमात्र व्रत था, आज वह परहितरत है और परोपकार के लिये अपने प्राण भी गँवाने को प्रस्तुत है। संसार में ऐसा कौन-सा कार्य है जो सत्संग के प्रभाव से सम्भव नहीं?

इस प्रकार परमानन्दपूर्वक दिन बीतने लगे। एक दिन जोगेनबाबू के आग्रह से नगर-कीर्तन की तैयारी होने लगी। कलकत्ते में बिना सरकारी पास के नगर-कीर्तन नहीं किया जा सकता था। इसलिये जोगेनबाबू ने कई रास्तों का पास बनवा लिया। चार बजे कीर्तन निकला। बड़ी धूम-धाम का कीर्तन। बाबाजी महाशय नृत्य करते-करते कीर्तन मण्डली के आगे-आगे जा रहे थे और साथी लोग इनके पीछे-पीछे। प्राण अनुराग से सम्पन्न होते हैं तो विधि-निषेध का बन्धन नहीं रहता। कीर्तन मण्डली पासवाला रास्ता छोड़ दूसरे रास्ते पर जा निकली। उसे रोकने का साहस कौन करता? निताइचाँद की कृपा से उस आनन्द के स्रोत में बाधा-विघ्नरूपी तृण-लता-आदि सब बह गये। जो बाधा-विघ्न उपस्थित कर सकते थे वे भी उस आनन्द में योगदान कर अपने को धन्य समझने लगे और बहुत देर तक नगर-कीर्तन कर अपने घरों को वापस गये।

गिरीनबाबू से मिलन

मेरा नाम है गिरीनचन्द्र घोष। कुछ दिनों से नौकरी के कारण कलकत्ते में रह रहा था। उन्नीस सौ साल के शेष भाग में एक व्यक्ति ने मुझसे कहा 'देखिये, दर्जी पाड़े में एक साधु आये हैं। उनका अपूर्व भाव और अलौकिक शक्ति देखकर मन और प्राण विगलित हो जाते हैं। आप एक बार उनके दर्शन के लिये चलेंगे क्या?'

मैंने कहा 'क्या हर्ज है। आज ही शाम को चला जाय।' सन्ध्या समय उन सज्जन को और दो व्यक्तियों को लेकर मैं दर्जीपाड़े पहुँचा। वहाँ खूब जोरों का कीर्तन हो रहा था। पूर्वोक्त साथी से मैंने पूछा 'ये जो संकीर्तन कर रहे हैं क्या यही वह साधु हैं?' उन्होंने कहा 'नहीं, ये उनके शिष्य हैं। इनका नाम है रामदास।' रामदास नाम से और उनके आकार प्रकार से मुझे ऐसा लगा जैसे वे मेरे पूर्व परिचित हों। कीर्तन के पश्चात् उनसे वार्तालाप करने पर मेरा अनुमान ठीक निकला। बाबाजी महाशय उस दिन वहाँ न थे। इसलिये उनके दर्शन का सौभाग्य न हो सका। मन की उत्कण्ठा मन में रह गई।

दूसरे दिन जाकर देखा कि एक दीर्घाकार महापुरुष कीर्तन कर रहे हैं। उन्हें देखते ही मेरा मन आकृष्ट हो गया। पहले मुझे संकीर्तन में श्रद्धा रही हो ऐसी कोई बात न थी। फिर भी न जाने किस शुभ मुहूर्त में बाबाजी महाशय के श्रीमुख का नाम-कीर्तन मेरे कानों में पड़ा, मेरी न जाने क्या अवस्था हो गई। केवल एक ओर खड़ा हो कीर्तन सुनने लगा। बाबाजी महाशय से उस रोज कोई बात न हुई। पर उस दिन से मैं रोज उनके पास जाने लगा।

एक दिन प्रातःकाल जाकर देखा कि रामदादा और उनके अन्य साथी कालीघाट जा रहे हैं। सिर्फ बाबाजी महाशय और दो-एक व्यक्ति घर पर रह गये हैं। अवसर देख मैंने बाबाजी महाशय से पूछा, 'आप लोग कैसे वैष्णव है? सुना है कि वैष्णव लोग काली का दर्शन तो क्या, नाम भी नहीं लेते। पर आप लोग काली का दर्शन करने जाते हैं।'

बाबाजी—क्यों भाई, तुम तो शिक्षित व्यक्ति हो, एक साधारण सी बात नहीं समझ सकते। हृदय में किसी प्रकार का द्वेषभाव रहने से धर्मभाव कैसे आ सकता है? फिर वैष्णव धर्म में तो द्वेषभाव का प्रश्न ही नहीं उठ सकता।

काली दुर्गा तो दूर की बात है, वैष्णवगण तो तृणलता, कीट-पतंग पर्यन्त को अपने से श्रेष्ठ समझते हैं। किसी व्यक्तिगत संकीर्णता या दोष का निष्कलंक सार्वजनीन धर्म पर आरोप करना मूर्खता की बात है। श्रीमहाप्रभु और श्रीनित्यानन्द प्रभु इस प्रकार की बुद्धि को बहुत तुच्छ समझते थे।

मैं—अच्छा, निताइ और निमाइ कौन हैं?

बाबाजी—निताइ-गौर कौन हैं, यह बताना मेरे लिये बड़ा कठिन है, फिर भी मोटे तरीके से बतलाता हूँ। नन्दनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र ने श्रीराधिका का भाव एवं कान्ति ग्रहण कर नवद्वीप में श्रीशचीनन्दन रूप में अवतार लिया है और बलराम ने अनंगमञ्जरी के साथ मिलकर नित्यानन्द रूप में हाड़ाई पण्डित के घर अवतार लिया है।

मैं—इन्होंने अवतार किस लिये लिया, क्या किसी कार्य-सिद्धि के लिये?

बाबाजी—ठीक इसी उद्देश्य से कभी भी स्वयं रूप भगवान् के अवतार की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि उन्होंने कहा है-

युग प्रवर्तन हय अंश कला हइते।
आमा बिनु केह नारे व्रजप्रेम दिते॥

मैं—तो प्रेमदान करने के उद्देश्य से ही वे आये थे?

बाबाजी—प्रेमप्रदान भी आनुषंगिक है। मूल उद्देश्य है-

श्रीराधायाः प्रणयमहिमा कीदृशो वानयैवा-
स्वाद्यो येनाद्भुतमधुरिमा कीदृशो वा मदीयः।
सौख्यं चास्या मदनुभवतः कीदृशं वेत्ति लोभा-
त्तद्भावाढ्यः समजनि शचीगर्भसिन्धौ हरीन्दुः॥

यह तो हुआ श्रीगौरांग अवतार का मूल प्रयोजन और इसके साथ-साथ जितने भी कार्य उनके द्वारा सम्पादित हुए वे सब आनुषंगिक रूप से हुए। इस विषय की विस्तार से व्याख्या श्रीचैतन्यचरितामृत में की गई है। जो भी हो, तुम श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीकृत श्रीचैतन्यचन्द्रामृत ग्रन्थ का एक बार अवलोकन करने से सब कुछ समझ जाओगे।

यह कहकर बाबाजी महाशय ने मुझे श्रीचैतन्यचन्द्रामृत ग्रन्थ दिया। मैंने ग्रन्थ पढ़कर शाम को वापस कर दिया। दो-एक दिन बाद बाबाजी महाशय का शरीर कुछ अस्वस्थ हो गया। छाती और सीने में कफ का प्रकोप और दर्द हो गया। मैं ज्यों ही उनके पास पहुँचा, उन्होंने मुझसे पुराने घी की मालिश करने का कहा। मैं परमानन्दपूर्वक मालिश करने लगा।

एक दिन मैंने रामदादा से कहा भाई, तुम लोग संकीर्तन में रोते क्यों हो? यदि तुम मेरी आँखों में आँसू ले आओ तो समझूँ कि तुम्हारे पास कुछ है। रामदादा बोले, 'भाई, तीन दिन तक तुम निताइ-गौरांग के नाम का एक बार स्मरण करो। मेरा विश्वास है कि अवश्य फल होगा।' इस प्रकार दो दिन बीते। तीसरे दिन मैं बाबाजी महाशय की मालिश कर रहा था और रामदादा कीर्तन कर रहे थे-'हाड़ाई पण्डित सुत, जाह्नवा जीवन-धन।' न जाने क्यों, मैं एकदम रो पड़ा। बाबाजी महाशय ने मुझे आलिंगन किया। तब मैं और भी जोर से रोने लगा। मैं क्यों रोया, किसने रुलाया, मैं नहीं जानता। रामदादा के गाने की पंक्ति में कोई ऐसी बात न थी जिससे मेरा हृदय द्रवीभूत हो सकता। मैं कौन-सी अलौकिक शक्ति के प्रभाव से रो दिया, प्रभु ही जानें।

बाबाजी महाशय की कथावार्ता और उनके व्यवहार से मैं धीरे-धीरे विमुग्ध होने लगा। एकदिन मैंने बाबाजी महाशय को भक्त-मण्डली सहित अपने यहाँ निमन्त्रित किया। उन्होंने भी निमन्त्रण झट स्वीकार कर लिया। मैं उनकी इस उदारता से बहुत प्रभावित हुआ। कई दिन इस प्रकार परमानन्द से कटे। एक दिन विराट नगर-कीर्तन निकालने के लिये राज्य कर्मचारियों से पास बनवाया गया। मुझे आदेश हुआ कि मैं बाबाजी महाशय के साथ रहूँ, जिससे वे जब कीर्तन में आविष्ट होकर भूमि पर गिरने लगें तो मैं उनकी रक्षा कर सकूँ। यथासमय कीर्तन बिडनस्ट्रीट होता हुआ नीमतला स्ट्रीट में आनन्दमयी माँ के निकट पहुँचा। उसी समय बाबाजी महाशय को आवेश हुआ। मैंने आवेश के समय बाबाजी महाशय की रक्षा करने का जो विचार किया था वह न हो सका। वे कोई तीस-चालीस हाथ भूमिपर प्रेम में लोट-पोट होते हुए

गद्‌गद कण्ठ से कहने लगे 'माँ आनन्दमयी! धन्य कलियुग, एक बार 'गौर-हरि' बोल सुनकर तुम्हारी अबोध सन्तान प्रेमानन्द सागर में निमग्न हो जायँ। सन्तान के आनन्द से तुम भी आनन्दित होओ।' माँ योगमाये, जीव के हृदय क्षेत्र से हिंसा का बीज निकाल दो' इत्यादि। चारों ओर लोगों का जमघट। अश्रु, कम्प, पुलकादि सात्विक विकार एकसाथ बाबाजी महाशय की देह में प्रकाशित हो रहे थे। मैं धीरे-धीरे जैसे ही उनके पास गया, उन्होंने कृपाकर मुझे आलिंगन किया और मेरे कान में मन्त्र देकर मुझे कृतार्थ किया। मेरा पशु-जीवन समाप्त हो गया। आनन्द से हृदय उत्फुल्ल हो गया! चिरकाल के लिये मैंने उनके चरणों में आत्म-समर्पण किया। यथासमय कीर्तनमण्डली वापस लौटी और कीर्तन समाप्त हुआ। किन्तु वह अभूतपूर्व अनिर्वचनीय संकीर्तन ध्वनि मेरे कर्ण-कुहर में प्रवेश कर मुझे आनन्द सागर में फिर भी निमग्न करती रही। मैं अब वह मैं न रहा। आज भी जब मैं माँ आनन्दमयी के दर्शन करता हूँ, उस दिन की घटना और वह आनन्द मेरे हृदय में फिर जाग जाते हैं और मैं बाबाजी महाशय की अहैतुकी कृपा की जय बोलने लगता हूँ। (श्रीगिरीनचन्द्र घोष की लिखी घटना।)

नवद्वीपदादा की विदा

महत् पुरुषों का क्रिया-कलाप साधारण मनुष्यों की बुद्धि में नहीं आता। वे एक कार्य करते हैं और उसी से पाँच-सात और कार्य सिद्ध होते हैं। आज सात-आठ दिन से नवद्वीपदादा बाबाजी महाशय से कुछ अलग-थलग से दीख रहे हैं। बाबाजी महाशय से कथा-वार्ता तो दूर, देखना सुनना तक नहीं हो रहा हैं। वे कलूटोला में कुञ्जबाबू के मकान में रहते हैं। बीच-बीच में बाबाजी महाशय के निवास-स्थान पर आते अवश्य हैं, परन्तु दोनों भाइयों में दरस-परस नहीं होता। न ये भाई की बात पूछते हैं और न भाई दादा की बात पूछते हैं। इन लोगों को परस्पर इस प्रकार का अभिमान अक्सर होता था। पर मुश्किल आती थी साथियों की, जो दोनों से ही अपार स्नेह करते थे, क्योंकि वे लोग नवद्वीप दादा के गुरुभाई होने पर भी अधिकतर उन्हीं के उपदेशानुसार चलते थे। नवद्वीपदादा के प्रति उनका इतना आन्तरिक खिंचाव था कि वे एकबार बाबाजी महाशय की बात चाहे न मानते, पर नवद्वीपदादा जो कुछ भी कह देते उसका हृदय से पालन करते। इसीलिये आजकल नवद्वीप दादा को अपने बीच न पाकर वे दुःखी रहते। जब कीमी दादा आते सब उन्हें घेर कर बैठ जाते और अपना दुःख प्रकट करते हुए कहते, 'दादा! क्या हमें परित्याग कर रहे हैं?' नवद्वीपदादा हँसते-हँसते कहते, 'मैंने न तुम्हें त्यागा है और न त्याग सकता हूँ, पर तुम्हारे गुरुदेव ने इस जन्म के लिये मुझे त्याग दिया है।' बाबाजी महाशय और नवद्वीप दादा को जब एक दूसरे से अभिमान होता तो वे परस्पर सम्मान-सूचक भाषा का प्रयोग करते जैसे 'कहिये बाबाजी महाशय कैसे हैं? भजन तो ठीक चल रहा है?' दूसरा उत्तर देता 'आपकी कृपा से ठीक ही चल रहा है। आशीर्वाद कीजिये जिससे आपके चरणों में मति बनी रहे' इत्यादि। इस समय के अभिमान का कारण क्या है, किसी को पता नहीं। फिर भी थोड़ा बहुत अनुसन्धान करने से पता लगा है कि अभिमान का सूत्र रायबहादुर प्रसन्नबाबू के बगीचे से प्रारम्भ हुआ।

अभिमान का मूल सूत्र गुरुतत्व को लेकर है। नवद्वीप दादा कहते हैं 'गुरुदेव निताइ-गौरांग-मिलित तनु हैं, गुरुतत्व सर्वोपरि तत्व है, गुरु-पूजा होने से सब पूजा हो जाती हैं, गुरुदेव के सन्तुष्ट होने से सब सन्तुष्ट होते हैं। कृष्णे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन! गुरु सेवा से सब सेवा हो जाती है और गुरु का नाम जपने से सब नाम जप हो जाता है।' बाबाजी महाशय का कहना है 'ये सत्य है कि गुरु तत्वतः भगवत् तत्व से अभेद है, परन्तु कार्य रूप में दोनों में भेद न करने से उच्छृंखलता होती है। प्रकाशमान जितनी भी वस्तुएँ हैं, उनमें दृष्टांश और तत्वांश के रूप में भेदाभेद प्रकाश स्वीकार न करने से धर्म का विप्लव और शास्त्रों का अपलाप होता है। गुरु-तत्व में विश्वास होना उतना सहज नहीं है। गुरुतत्व प्रचार का तत्व नहीं है। गुरु-तत्व अपने-अपने भावानुसार आस्वाद्य है। भगवत्तत्व अधिक सहजरूप से अनुभवगम्य है। गुरु-तत्व बहुत ही कठिन तत्व है। जीव गुरुतत्व को ठीक-ठीक समझ

सकें इसलिये पूर्वाचार्यों ने तरह-तरह के उपदेश दिये हैं, जैसे-'अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरं। तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥' 'गुरु रूपा सखीर वामे, त्रिभंग हइया ठामे, चामरेर बातास करिब' इत्यादि। श्रीगुरुदेव को भगवत् प्राप्ति में सहायक मानकर जितनी सहज रीति से उपासना चल सकती है, उतनी उनमें साक्षात् भगवत्-बुद्धि के अनुरूप भाव और विश्वास के बिना केवल देखा-देखी इस प्रकार का आचरण करना उस पथ को कलंकित करना है। आजकल देखने में आता है कि कुछ लोग बड़े-बड़े सिद्धान्त मुखस्थ कर लेते हैं और चाहे उनके अनुरूप आचरण कर सकें या न कर सकें उन मुखस्थ सिद्धान्तों के बलपर तदनुकूल पथिक होने का दावा भरते हैं। इसलिये वे पथभ्रष्ट हो जाते हैं।'

नवद्वीपदादा कहते हैं—तब क्या "आचार्यं माँ विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित्। न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत सर्वदेवमयो गुरुः॥" "गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णु, गुरुर्देवो महेश्वरः" 'न गुरोरधिकं किञ्चित्" इत्यादि वचनों को मिथ्या कहना होगा?' गुरु को भगवत्-प्राप्ति में सहायक जानकर उनमें भक्ति और विश्वास करने का नाम मारफतदारी भक्ति है, अर्थात् गुरुभक्ति तभी तक है जब तक हमें अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति नहीं होती। इस प्रकार की भक्ति को यदि भक्ति न भी कहें तो कोई दोष नहीं।

इसके उत्तर में बाबाजी महाशय कहते हैं "गुरुतत्व और भगवत्-तत्व अभेद हैं। जो इस भाव से उपासना करते हैं, उन्हें दोष भी नहीं देता। मेरा तात्पर्य यह है कि अधिकारी भेद के हिसाब से आचरण करना उचित होता है, क्योंकि महाजनों ने कहा है-'अधिकारी नहे चाय भाव आचरिते। अल्पकाले विनाश हय हासिते खेलिते।' इत्यादि। कलिके जीव कोमल श्रद्धावान और अविश्वासी हैं। आज पर्यन्त श्रीराधागोविन्द और निताइ-गौर तक में तो उनका विश्वास है नहीं। इसके अतिरिक्त यदि अपने-अपने गुरुको अवतार रूप में खड़ा किया जाये तो जगत् का उपकार करने के बजाय अपकार ही होगा। इस प्रकार का प्रचार कदापि उचित नहीं।"

संक्षेप में नवद्वीपदादा की इच्छा है कि जिस प्रकार राधा-गोविन्द-मिलित-वपु श्रीमन्महाप्रभु हैं एवं बलराम -अनंगमंजरी-मिलित-वपु श्रीनित्यानन्दप्रभु हैं, उसी प्रकार निताइ-गौरांग-मिलित-वपु बाबाजी महाशय हैं, इस बात का वह सर्वसाधारण में प्रचार करें और उसी प्रकार आचरण भी करें। पर बाबाजी महाशय इसके पूर्ण विरोधी हैं। दोनों के बाहरी मनोमालिन्य का कारण यही है। इसी को लेकर दोनों का वादानुवाद और मतभेद है।

इसके पूर्व एक दिन बाबाजी महाशय प्रसन्नकुमार रायबहादुर के बगीचे में बैठे थे और मौन थे। एकदम वे बालक की भाँति रोने लगे। संगीगण बहुत चेष्टा करने पर भी जब इसका कारण न जान सके तो उन्होंने विशेष रूप से बाबाजी महाशय से कारण बताने का आग्रह किया। बाबाजी महाशय बोले, "जिस स्वतन्त्रता के हेतु मैंने सुरेन्द्र, देवेन्द्र और भवेन्द्र का परित्याग किया, उसी प्रकार की स्वतन्त्रता अब फिर आरम्भ हो गई है। उनकी याद आते ही प्राण रो उठते हैं। उनमें से प्रत्येक व्यक्ति महा-महाशक्ति धारण करता था। उनके साथ जब मैं तुलना करता हूँ तो मेरे वर्तमान साथी गीदड़ और कुत्तों की भाँति लगते हैं।"

इन परम भाग्यवान सुरेन्द्र, भवेन्द्र और देवेन्द्र की बात बाबाजी महाशय प्रायः किया करते। इससे जान पड़ता है कि उपरोक्त मतभेद के कारण नवद्वीपदादा से इनका वाद-विवाद बहुत दिनों से चल रहा था। आजकल नवद्वीपदादा की अपना मत स्थापित करने की इच्छा अधिक प्रबल हो गई है। इसीलिये दोनों में बोलचाल बन्द है। इनके परस्पर के इस भाव को देख संगीगण बहुत दुःखी होने लगे। वे कभी तो बाबाजी महाशय से कहते "हमारे दादा को अच्छा कर दीजिए।" कभी दादा से कहते "दादा हम आपके पैर पड़ते हैं, आप बाबाजी महाशय के साथ पहले जैसा व्यवहार करने लगें।" उत्तर में बाबाजी महाशय कहते 'मैं क्या करूँ? जो नवद्वीप सदा मेरे सुख में सुखी रहता था, वह आज आत्म-सुखी हो गया है। उसकी इच्छा है कि मुझे जगत् के सामने अवतार के रूप में खड़ा करे। इसलिये अब वह मेरा नवद्वीप कहाँ है?" नवद्वीपदादा

कहते "मैं क्या करूँ? जो दादा हमारे रसमय विग्रह, परमकरुण, कोमल-हृदय, बालकवत् सदा आनन्द में रहते, आज महागम्भीर मर्यादा-विधि-निष्ठा-परायण परम वैष्णव हो गये हैं। इसलिये आज वे हमारे दादा कहाँ हैं? आज तो वे गौरहरिदास महन्त के चेला यादवदास बाबाजी महाशय हैं।"

इस प्रकार कई दिन बीत गये। एक दिन रामदादा, पुलिनदादा, नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी, ललितादासी इत्यादि कई लोगों ने परामर्श किया कि बाबाजी महाशय से विशेष आग्रह कर इस समस्या को हल कराया जाय। रामदादा बोले, "देखो, मैं मुख से कुछ नहीं कहूँगा, फिर भी यदि मुझसे कहलाना ही चाहते हो तो मैं गान के माध्यम से कह सकूँगा।" सभी ने इस युक्ति को बहुत पसन्द किया। सात बजे के लगभग केवल यह कुछ लोग बाबाजी महाशय के पास जा बैठे और कमरे का दरवाजा बन्द कर लिया। सभी नीरव और निस्तब्ध। इसी समय रामदादा ने कातर कण्ठ और आर्तस्वर से गान प्रारम्भ किया।

"नवा कि तोर केउ नयरे चरण।
एक दिन नव अनुरागे, बाड़ाले सोहागे,
एखन केन भिन् बास हे एमन॥
(ठिक जेन परेर मतन)
(तोमार भाव किछु बुझिते नारि)
(आमरा जे आर सइते नारि)
(मरि मरि प्राणे मरि)" इत्यादि।

नेत्रों के जल से सबका वक्षस्थल भीग गया। राम दादा का बीच-बीच में कण्ठरोध होने लगा। एकाएक अधैर्य भाव से बाबाजी महाशय के चरण पकड़कर रोने लगे। बाबाजी महाशय का हृदय द्रवित हुआ। नेत्रों से जल की धार बहने लगी। गद्‌गद-कण्ठ से बोले, "अच्छा, मुझे क्या करना होगा?"

पुलिन—आप आज्ञा करें तो हम नवद्वीपदादा को यहाँ ले आयें।

बाबाजी—वह क्या यहाँ है?

पुलिन—नहीं, वे मेरे घर हैं।

बाबाजी—वह तो बहुत दूर है।

पुलिन—नहीं, मैं गाड़ी करके अभी ले आऊँगा।

बाबाजी—तुम्हारी जो इच्छा हो करो, मुझे कोई आपत्ति नहीं।

पुलिन दादा और नित्यस्वरूप जल्दी-जल्दी गाड़ी कर नवद्वीप दादा को लेने गये। नवद्वीपदादा ने पहले आपत्ति की, पर इनका विशेष आग्रह देख बोले, 'चलो चल रहा हूँ, पर फल विपरीत ही होगा।' यह कह वे गाड़ी पर बैठे। साथियों के हृदय में आशा का संचार हुआ। बहुत दिन बाद आज उनके दोनों प्राण एकत्र होंगे। कैसा आनन्द होगा। इस प्रकार के संकल्प-विकल्प उनके मन में हो रहे थे, उसी समय पुलिनदादा, नित्यस्वरूप और कुञ्जबाबू नवद्वीपदादा को साथ ले बाबाजी महाशय के निकट पहुँचे। कमरे में प्रवेश करते ही नवद्वीप दादा ने प्रणाम किया। बाबाजी महाशय ने प्रति प्रणाम किया। फिर दोनों नीरव। उपस्थित लोग एकबार नवद्वीप दादा की ओर देखते हैं और एकबार बाबाजी महाशय की ओर। किन्तु किसी का कुछ कहने का साहस नहीं हो रहा है। थोड़ी देर बाद बाबाजी महाशय ने कुछ उदास भाव से कहा, "मुझसे तुम्हें कुछ कहना है?"

नवद्वीप—आपकी इस समय जिस भाव में अवस्थिति है, आपकी उस भाव मूर्ति से मुझे कुछ कहना सुनना नहीं है और न उससे मेरा कोई व्यवहार ही है। मैं जिस रसमय विग्रह के हाथों बिक चुका हूँ, उसके साथ मेरा सम्बन्ध है। जब आपमें वह अवस्थान करेंगे, तब मुझे जो कुछ कहना होगा कहूँगा।

बाबाजी—मैं तो जानता नहीं मैं इस समय कैसा हो रहा हूँ? मैं सिर्फ ये जानना चाहता हूँ कि इस समय तुम्हें मुझसे कुछ कहना सुनना है?

नवद्वीप—कुछ नहीं, पर आप आशीर्वाद करें कि जिसके चरणों में आत्म-समर्पण कर चुका हूँ, उसमें रति रहे।

तब रामदादा, नित्यस्वरूप, पुलिन आदि को लक्ष्यकर बाबाजी महाशय बोले, "क्यों, अब तुम मुझसे क्या करने को कहते हो?" सब किंकर्तव्यविमूढ़ और मौन। थोड़ी देर बाद बाबाजी महाशय ने नवद्वीपदादा

को लक्ष्य कर कहा, "मैं और क्या कहूँ? जब मेरी इस देह से तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं, तो इससे अब तुम्हारा साक्षात्कार भी न होगा। तुम्हें जिस स्थान पर भी रहना अच्छा लगे, वहाँ रहो और जो करना अच्छा लगे वह करो।" नवद्वीप दादा "जो आज्ञा" कह दण्डवत् प्रणाम कर वहाँ से नीचे की मंजिल में उतर गये। बाबाजी महाशय के और बहुत से भक्त भी उनके पास जा बैठे। उनकी अवस्था उसी प्रकार की थी। किसी प्रकार का विषाद न था। सबके साथ पूर्ववत् आनन्दमय व्यवहार कर रहे थे। कुछ देर बाद बाबाजी महाशय को नीचे उतरते जान कर बोले, 'दादा ने कहा है इस जन्म में और मेरा साक्षात्कार न होगा; इसलिये अब यहाँ और अधिक समय ठहरना उचित नहीं। यदि कहीं मेरे नेत्रों के सामने पड़ गये तो उनकी बात मिथ्या होगी। इसलिये "मैं चला" कहते-कहते चल दिये।

जो नवद्वीप दादा और बाबाजी महाशय एक आत्मा के दो स्वरूपों की भाँति रहते, एक मुहूर्त के लिये भी जो एक दूसरे से विलग होने से व्याकुल हो जाते, जो नवद्वीप दादा का नाम लेते ही सुध-बुध खो बैठते, जो दादा के सुख के लिये त्रिलोक को तुच्छ मानते, यहाँ तक कि दादा को छोड़ निताइ-गौर और राधा-कृष्ण तक से प्रार्थना नहीं करते, वे बाबाजी महाशय के वज्र से भी कठोर वाक्य सुन बिन्दु मात्र भी दुःखी और क्षुब्ध नहीं हुए और कहीं दादा का वाक्य मिथ्या हो जाय और उनके मन में कष्ट हो, इस भय से शीघ्र स्थान छोड़कर चल दिये।

इस अमानुषिक व्यापार की समालोचना करना हमारी भूल होगी। इनमें से किसी की भी निन्दा करने से हमारा पतन होगा। हमारा विश्वास है कि इन दोनों के इस प्रकार के बाह्य व्यवहार का कारण लोक-शिक्षा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। नवद्वीप दादा निरपेक्ष होकर रहना चाहते हैं। वे कहते हैं-'अन्यापेक्षी होने से प्रेम में गाढ़ता नहीं आती। हम तो उसी मार्ग पर चलेंगे जिस पर चलने से हमारी भक्ति में उन्नति हो। लोग उसके बारे में क्या कहेंगे, इसका विचार हम क्यों करें? लोग निन्दा करें तो करें, घृणा करें तो करें, हम तो अपने प्रत्यक्ष दर्शन और अनुभव के अनुसार ही आचरण करेंगे।" बाबाजी महाशय कहते हैं "महाप्रभु तक ने लोकापेक्षा की है। हमारी तो गिनती ही क्या? 'धर्म संस्थापक प्रभु स्थापेन सर्व धर्म। लोकशिक्षा हेतु कभू ना लंघेन कर्म।' अन्यत्र महाप्रभु ने निताइ को लक्ष्य कर कहा है, 'लोकापेक्षा छाड़ तुमि कृष्ण कृपा हइते। आमि कभू लोकापेक्षा ना पारि छाड़िते'

बलपूर्वक लोकापेक्षा छोड़ना महत् पुरुषों का काम नहीं है, अपने आप ही यदि लोकापेक्षा छूट जाय तो दूसरी बात है। भक्तिपथ के पथिकों को यह दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिये कि हम काय, मन और वाक्य से किसी को उद्वेग न देंगे, सदा इस बात का प्रयत्न करेंगे कि हमारे किसी भी व्यवहार से किसी को कोई कष्ट न पहुँचे, हम सबकी मर्यादा रक्षा करते हुए चलेंगे। यदि पहले से ही यह संकल्प कर लिया जाय कि हम लोकापेक्षा नहीं रखेंगे, तो भक्ति में तन्मयता कैसे होगी? इसी कारण महाप्रभु ने छोटे हरिदास को लक्ष्य कर जगत को शिक्षा दी। बाबाजी महाशय की बातचीत और उनके व्यवहार से समझ में आता है कि उन्होंने लोकशिक्षा के लिये ही अपने अभिन्नकलेवर प्रिय पार्षद नवद्वीप दादा के ऊपर इतना कठोर शासन किया। उन्होंने भी ऐसा ही समझ नतमस्तक हो उनके आदेश का पालन किया। यदि वे चाहते तो निश्चय ही प्रयत्न करने पर बाबाजी महाशय का निश्चय रद्द कर देते। किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया।

बाबाजी महाशय कुछ दिन कलकत्ते रहकर सपार्षद नवद्वीप चले गये। कई दिन बाद नवद्वीप दादा भी नवद्वीप गये। परन्तु उस समय बाबाजी महाशय साथियों को लेकर नवद्वीप परिक्रमा के लिये चल चुके थे। इसलिये वे मन ही मन उन्हें प्रणाम कर नवद्वीप से वृन्दावन चले गये। न जाने प्रभु की क्या इच्छा थी, दो महीने बाद नवद्वीप दादा, बीमार पड़े। वे सोते-जागते हर समय 'दादा, दादा' पुकारते। कभी-कभी उन लोगों से जो उनकी सेवा-शुश्रूषा में लगे थे कहते, "शीघ्र मिश्री का शर्बत बनाओ। दादा मुझे देखने आ रहे हैं। बड़ी गर्मी है, उन्हें कष्ट होगा।" और यह कहकर उन्हें शर्बत पिलाते। कभी-कभी उन्होंने लोगों को उनके प्रत्यक्ष दर्शन भी कराये। इस प्रकार

कुछ दिन जीवित रहकर जगत को श्रीगुरुदेव के प्रति विशुद्ध माधुर्य भाव का आदर्श दिखाते हुए रथ-द्वितीया के दो दिन पहले अमावस्या को सबसे बोले "मुझे भ्रमर घाट पर ले चलो। मैं यमुनाजी के दर्शन करूँगा।" सबने ऐसा ही किया। यमुना तटपर पहुँचकर यमुनाजी की प्रणाम-वन्दना कर नाम करते-करते वह हमारे चक्षुओं से ओझल हो गये। नवद्वीप दादा की अलौकिक शक्ति और उनके अभावनीय कार्यकलाप को देख वृन्दावनवासी आश्चर्यान्वित हो गये। उनका विरह उन्हें असह्य हो गया और वे हाथ मसल-मसल कर कहने लगे, "हायरे! ऐसे महापुरुष का संग पाकर हमने अपने व्यवहार और बुद्धि के दोष से इतने थोड़े समय में ही उन्हें खो दिया। जब से वे वृन्दावन आये थे ऐसा प्रतीत होता था जैसे बाबाजी महाशय सदा यहाँ उपस्थित हैं। आज हम नवद्वीपदादा के अन्तर्धान के कारण एक नहीं दो महापुरुषों के विरह का भोग कर रहे हैं।" जिन्होंने नवद्वीपदादा का एक दो दिन भी सत्संग किया है वे, मुक्तकण्ठ से स्वीकार करेंगे कि उन्हें पाते ही ऐसा बोध होने लगता था कि सारे अभाव की पूर्ति हो गई। ऐसा भी देखा गया है कि कोई व्यक्ति बाबाजी महाशय के विरह में इतना कातर हो रहा है कि उसकी भूख-प्यास चली गई है और दिन-रात रोदन करता रहता है, जब वह बाबाजी महाशय के किसी सेवक को देख लेता है, तो उसकी विरह ज्वाला दुगनी हो जाती है, परन्तु नवद्वीपदादा को देखते ही उनके साथ हँस-हँस कर बात करने लगता है। उसका विरह दूर हो जाता है। हाय हाय! आज वह महारत्न प्राकृत चक्षुओं के अन्तराल में अवस्थित है। इसके अधिक हमारा और क्या दुर्दैव हो सकता है!

अमृतबाबू की कहानी*

मेरा नाम अमृतलाल मित्र है। बहुत दिनों से हम लोग कलकत्ते में रहते हैं। जब प्लेग के उपलक्ष्य में कलकत्ते में महासंकीर्तन का आयोजन हुआ था, उस समय एक दिन दर्जीपाड़े में श्रीदाममुदी लेन में सन्ध्या के पश्चात् नगरकीर्तन हो रहा था। उस समय नाना प्रकार के गायक कलकत्ते की गली-गली में नाम-कीर्तन कर रहे थे, पर इस प्रकार का मन और प्राण हर लेने वाला, हृदय को पिघला देने वाला कीर्तन और कहीं नहीं सुना। कैसा आश्चर्यजनक प्रभाव था उसका! घोर पाखण्डी, शराबी और दुश्चरित्र व्यक्ति भी दूर से ही नाम की ध्वनि सुनकर चुम्बकाकृष्ट लोहे के समान वहाँ जा उस महासंकीर्तन में योग दे रहे थे। संकीर्तन के नेता श्रीधाम पुरी के बड़े बाबाजी महाशय थे। उनका विशाल शरीर अश्रु, कम्प, पुलक, स्वेद प्रभृति सात्विक भूषणों से विभूषित था। वे परमानन्द में विभोर हो सुमधुर नृत्य कर रहे थे और उनकी गगन-भेदी कण्ठध्वनि से चारों दिशाएँ गूँज रही थीं। थोड़ी देर में संकीर्तन-मण्डली ने बाबू रामानन्द पाल महाशय के बाहर के मकान में प्रवेश किया। लोगों की जितनी भीड़ थी उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। अनेक पढ़े-लिखे युवक मन्त्रमुग्ध भाव-विभोर हो संकीर्तन में नृत्य कर रहे थे। सभी बाह्यदृष्टिरहित और प्रेमानन्द सागर में निमग्न थे। न जाने इच्छामय की क्या इच्छा थी। उसी समय बाबाजी महाशय एकाएक सबकी आँखों से ओझल हो गये। किसी को इसका ज्ञान न हुआ। थोड़ी देर बाद जब सबको बाह्य ज्ञान हुआ तो उन्हें कुछ अभाव-सा प्रतीत होने लगा। सबने समझा कि बाबाजी महाशय चले गये। युवकगण चकित होकर आपस में कह रहे थे-"कैसे आश्चर्य की बात है! संकीर्तन में इस प्रकार का नृत्य हमने पहले कभी नहीं किया। जिन महापुरुष की शक्ति से हमने इस अभावनीय अनिर्वचनीय अप्राकृत आनन्द का उपभोग किया, वे कहाँ चले गये? हमारा कैसा दुर्भाग्य है! क्या अब उन महापुरुष के कभी दर्शन न होंगे?" सब व्याकुल हो उनका अनुसंधान करने लगे, परन्तु कोई न समझ पाया कि वे किधर चले गये। मैं उस शुभ मुहूर्त से ही उनके दर्शन के लिये लालायित था।

दूसरे दिन सन्ध्या समय वे मुकुन्द घोष महाशय के साथ कीर्तन करते-करते दर्जीपाड़े की अनाथनाथदेव लेन में जोगेन्द्रनाथ मित्र के मकान पर पधारे। मैं कई और लोगों के साथ उस समय वहाँ उपस्थित था। मेरे

* यह कहानी दर्जीपाड़ानिवासी अमृतबाबू से ही प्राप्त हुई है।

आनन्द की सीमा न रही! बहुत देर कीर्तन करने के पश्चात् कुछ विश्राम कर वे मुकुन्दघोष महाशय के साथ उनके घर चले गये। उन्होंने हमें आदेश किया कि हम सब रोज रात में जोगेन्द्रबाबू के घर पर एकत्र होकर श्रीनरोत्तम ठाकुर महाशय की 'प्रार्थना', 'प्रेमभक्ति-चन्द्रिका' और 'हाटपत्तन' का पाठ और कीर्तन किया करें। उनके आदेशानुसार हम इस नियम का पालन करने लगे। दिन-भर नाना प्रकार के विषय-कार्यों में संलग्न रहते हुए भी रात के डेढ़ बजे तक हम परमानन्दपूर्वक संकीर्तन में संलग्न रहते।

इस प्रकार कुछ वर्ष व्यतीत हो गये। एक दिन परमेश्वरदास ठाकुर की पाठबाड़ी के अधिकारी श्रीउद्धवचन्द्र गुप्त महाशय से सुना कि बाबाजी महाशय सदल-बल ऐंडेदह में प्रसन्न कुमार बंद्योपाध्याय रायबहादुर की बगीची में आये हैं। मैं उनके दर्शन करने गया। उस दिन कोजागरी पूर्णिमा थी और चन्द्रग्रहण। रामदादा इत्यादि गंगा किनारे 'निताइ गौरांग गदाइ, अनंगकानाइ राइ' कीर्तन कर रहे थे। बाबाजी महाशय हम लोगों को लेकर 'भज निताइ गौर राधे श्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' कीर्तन कर रहे थे। करीब तीन घंटे तक ग्रहण का समय था। इतनी देर बराबर कीर्तन करने के पश्चात् ग्रहण बीतने पर वे तालाब से थोड़ा जल ले आये और शान्ति-जल के रूप में हमारे ऊपर छिड़क दिया। तब हम लोगों ने घर जाने का अभिप्राय प्रकट किया। उसी समय वे बोले "देखा, तुम लोग इतनी रात्रि में घर जाओगे तो रास्ते में बहुत कष्ट पाओगे। इसलिए आज यहीं ठहरो। कल महाप्रसाद ग्रहण करने के पश्चात् यहीं से आफिस चले जाना।" हम लोगों ने उनकी बात न मानी और रात में ही घर चल दिये। हमें गाड़ी न मिली। रातभर पैदल चलकर शेष रात्रि के समय घर पहुँचे और बाबाजी महाशय के अन्तर्यामित्व की समालोचना करने लगे।

कई दिन बाद बाबाजी महाशय जोगेनबाबू के विशेष आग्रह से दर्जीपाड़े की अनाथनाथदेव लेन के उक्त अनाथबाबू के एक दुमंजिले मकान में रहने लगे। वहाँ नाना प्रकार के भक्तों का समागम होने लगा। प्रतिदिन नये प्रकार का आनन्द उपभोग होता। श्रीपाट खड़दहनिवासी शशिभूषण घोष महाशय, जिन्होंने मुझसे बाबाजी महाशय के बारे में सुना था, प्रायः उनके दर्शन करने आते। एकदिन सन्ध्या समय बाबाजी महाशय शीतलभोग प्रसाद पाते-पाते बोले, "देखो, यह रसगुल्ला नवीन के यहाँ का है न?" हमें यह जानकर आश्चर्य हुआ कि रसगुल्ला नवीन हलवाई की ही दुकान का था। शशिबाबू से उन्होंने कहा, "क्यों शशि, क्या निताइ-गौर तुम्हें बहुत अच्छे लगते हैं?" शशि ने उत्तर दिया, "हाँ, सचमुच निताइ-गौर के नाम से जितना आनन्द होता है, उतना और किसी प्रकार से नहीं होता।"

बाबाजी—इस आनन्द को ही स्थायी करने के लिये साधन भजन की आवश्यकता है।

शशि—बाबा, पर हम तो कलियुग के दुर्बल जीव ठहरे। साधन-भजन करने की हममें क्षमता कहाँ? हमारे लिये क्या उपाय है?

बाबाजी—हम जैसे दुर्बल जीव हैं, वैसा ही परम दयालु प्रभु ने हमारे लिए सुगम विधान भी कर दिया है। "खाइते शुइते जथातथा नाम लय, काल देश नियम नाइ सर्व सिद्धि हय।" और क्या चाहिये बोलो, जैसे-तैसे एकबार नाम लेने से ही सर्वाभीष्ट की पूर्ति होती है। शास्त्र कहते हैं 'शुद्धं यद्यप्यशुद्धं व्यवहितरहितं तारयत्येव सत्यं। हेलया श्रद्धया वापि' इत्यादि। फिर भी हमारा ऐसा दुर्भाग्य है कि हम नाम जप में आलस्य करते हैं और अश्रद्धा रखते हैं। स्वयं भी नाम उच्चारण नहीं करते और दूसरों को भी नहीं करने देते।

इसी प्रकार नाना प्रकार के उपदेश द्वारा बाबाजी महाशय सबको कृतकृत्य करने लगे। एक दिन मुझसे बोले, 'अमृत, कल तुम सिर मुड़ाकर आना।' मैंने दूसरे दिन ऐसा ही किया और आकर जैसे ही उनको प्रणाम किया उन्होंने ललिताजी से कहा, 'अमृत को माला पहना, तिलक लगा, अच्छी तरह सजा दो।' ललिता दीदी ने उनकी प्रसादी माला मुझे पहना दी और तिलक लगा दिया। तब वे मेरी ओर देखकर बोले, 'शीशे में देखो, तुम कितने सुन्दर लग रहे हो'। मैंने कातर कंठ से कहा, 'यह सब आपकी कृपा है।' तब सबको उस कमरे से बाहर भेज मुझपर अयाचित

कृपा करते हुए उन्होंने मेरे कान में मन्त्र प्रदान किया और अशेष जन्मार्जित पापताप दूरकर सदा के लिये मुझे अंगीकार किया। उनका अप्राकृत प्रेमालिंगन प्राप्त कर मुझे ऐसा लगने लगा जैसे मेरे अंग-अंग में बिजली दौड़ रही है।

अनाथबाबू के इस घर के विषय में यह बदनामी थी कि इसमें किसी अपदेवता का वास है, जिसके कारण जो भी इसमें रहता है, वह या उसके परिवार का कोई न कोई व्यक्ति अकाल ही कालग्रस्त हो जाता है। अनाथबाबू ने इस भय से कि यह घर कहीं भूतों के अपवाद के कारण गिर न पड़े जोगेन्द्रबाबू के साथ परामर्श कर बाबाजी महाशय को इसमें रखा था। परन्तु बाबाजी महाशय को मालूम न था। एक दिन वे बोले, "देखो, इस घर में दो अपदेवता रहते हैं। वे मेरे सम्मुख आये। मैंने उनसे पूछा, 'आप इस घर में क्या रहते हैं? यहाँ कीर्तन होता है। आपको देख लोग भयभीत होंगे। इसलिये आप यहाँ से चले जायँ।' उन्होंने कहा, 'बाबा, हमें कीर्तन बड़ा अच्छा लगता है। कीर्तन सुनकर हमारा उद्धार होगा। आप कुछ दिन और हमें यहाँ ठहरने दें। हम जिस दिन यहाँ से जायँगे आपसे मिलकर जायँगे।' तब मैंने कहा, 'देखिये, कोई आपको देखकर भयभीत न हो जाय, इस बात का ध्यान रखें और जिस दिन यहाँ से जायँ कोई चिह्न अवश्य छोड़ जायँ' सचमुच एक दिन जब बड़े धूमका कीर्तन हो रहा था, हठात् एक नये कमरे का फर्श बीच से फट गया। यह देख सबने बाबाजी महाशय से चकित होकर इसका रहस्य पूछा, तब वे बोले, "वे जो दो अपदेवता इस घर में रहते थे आज यहाँ से चले गये हैं। वे कमरे में रहते थे। इसलिये यह चिह्न यहाँ छोड़ गये हैं। आज से इस घर का भय जाता रहा।"

दर्जीपाड़ा में अवस्थान करने के समय बाबाजी महाशय के पास एक महातेजस्विनी वयोवृद्धा परमसाधिका तपस्विनी ब्राह्मणी प्राय: उनके दर्शन करने आया करतीं। हम लोग उन्हें जोगिनीबाई कहा करते। हम या मोहल्ले की स्त्रियाँ जब उनके पास जातीं तो वे उन्हें नाना प्रकार के उपदेश दिया करतीं। एक दिन उन्होंने बाबाजी महाशय से कहा, "बाबा, क्या तुमने नवद्वीप को त्याग दिया है? वह कोई ऐसा व्यक्ति तो है नहीं। वह परम शक्तिमान और गुरुनिष्ठ भक्त है।" बाबाजी महाशय बोले, "नहीं, नहीं। मैं क्या कभी भी नवद्वीप का परित्याग कर सकता हूँ। वह तो मेरा प्राण है। कलि के जीवों की दुर्दशा देख नवद्वीप के प्राण जितने रोते हैं और उनके उद्धार के लिये नवद्वीप जैसा कातर होता है, ऐसा किसी के लिये होना असम्भव है। परन्तु उसने मेरी रुचि के विरुद्ध कोई अप्रिय कार्य किया था। इसलिये उसको मैंने दंड देकर अलग कर दिया।" जोगिनी माँ ने एक दिन मुझसे कहा, "देख, नवद्वीप ने श्रीगुरुचरण में आत्म-समर्पण किया है। गुरुदेव की कृपा से उसे ऐसी शक्ति प्राप्त है कि वह अपने स्थान पर बैठे-बैठे ध्यान में जान लेता है कि गुरुदेव कब कहाँ हैं, क्या कर रहे हैं, और क्या उनका उद्देश्य है। नवद्वीप जितेन्द्रिय और महातेजस्वी साधक है। यदि कोई यह जानना चाहता है कि श्रीगुरुतत्व क्या है, तो उसे नवद्वीप से जानना चाहिये। नवद्वीप एकमात्र गुरु के अतिरिक्त और कुछ नहीं जानता। तूने इतने दिन क्या किया? ऐसे दो महापुरुष तेरे सम्मुख कब से लीला कर रहे हैं और तू उन्हें पहचान न सका। इस चरणदास को लोग नहीं जानते। यह जाल-चैतन्य है। इसके स्पर्श से घोर पाषंडी भी भगवत् प्रेम से उन्मत्त हो जाता है। संकीर्तन के समय तू इसकी अवस्था नहीं देखता? मैंने संकीर्तन में इसके रोहों से रक्त निकलते देखा है। महाभाव के सभी लक्षण मैंने इसके शरीर में प्रकाशित होते देखे हैं। अमृत! मैं तुझसे क्या कहूँ! एक दिन मैं पुरी के झाँझपीटामठ में बैठी थी। एकाएक वह मेरे मुख में महाप्रसाद देने आया। मैंने उसकी परीक्षा करने के उद्देश्य से कहा, "मैं यह महाप्रसाद नहीं लूगीं। यदि यह महाप्रसाद वही है, जिसका एक कण आस्वादन कर शिव और दुर्गा ने उन्मत्त होकर नृत्य किया था, तभी मैं इसे ग्रहण करूँगी।" तब उसने डबडबाते नेत्रों और गद्गद कंठ से कहा, "माँ! यह वही महाप्रसाद है। एक बार आस्वादन करते ही आप इसका गुण जान जायँगी।" यह कहकर महाप्रसाद मेरे मुख में डाल दिया। महाप्रसाद ग्रहण करते ही मैं ऐसी उन्मत्त हो गई कि मैं भाषा द्वारा उसे व्यक्त नहीं कर

सकती। बड़ी मुश्किल से मैंने अपने आपको सँभाला। आज तक उस घटना की याद करते ही मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। मैंने पर्वतों पर भ्रमण कर बहुत से गुफावसी, जटाधारी, योगी, ऋषि, साधु, संन्यासी आदि की परीक्षा की है। परन्तु इसकी परीक्षा करते समय मैं स्तम्भित हो गई। आज तक ऐसे प्रेमी महापुरुष के मैंने दर्शन नहीं किये। तूने बड़ी सुकृति के फल से यदि उसकी कृपा पाई है, तो सावधान! विश्वास कर इस अमूल्य रत्न को यत्न-पूर्वक रखना सीख। तुझे अत्यन्त सुख की प्राप्ति होगी।" सचमुच ऐसे अदोषदर्शी, परमदयालु, पतितपावन प्रभु को पाकर हम सब धन्य हुए। यदि उन्होंने हमारे ऊपर अयाचित भाव से कृपा न की होती तो हमारी क्या दुर्दशा होती, कौन कह सकता है?

प्रभुपाद नवद्वीपचाँद गोस्वामी के दर्शन

एक दिन पूर्वाह्न के समय संकीर्तन हो रहा था। रामदास आदि सभी कीर्तन में मत्त थे। बाबाजी महाशय संकीर्तन सुन रहे थे। अकस्मात् न जाने क्या प्रेरणा हुई, संकीर्तन स्थल पर आकर गाने लगे-

सकल जनार मन, करिबारे आकर्षण,
विधाता कि पातियाछे फाँद।
एकबार जेई हेरे, से मन फिराते नारे,
मन उन्मादन गोराचाँद॥
हेरिये गौरांग गति, थुतूकृत गजेन्द्र गति,
गज से सामान्य मदे माता।
गौरांग वदन हेरि, सकलंक चन्द्रोपरि,
घृणा करे सकल जनता॥
गौर कांति झलमल, तार आगे स्वर्णाचल,
अचल से तारे कि गनिब।
गौरांग मधुर वाणी, अमृत तरंग जिनि,
पिले मन करे पिब पिब॥
आरे मोर सोनार गौरांग प्रभु।
हृदय उदय हैया, माताय आमार हिया,
भूलिते नारिव आर कभु॥
आरे मोर गौरसुन्दर नटराज।
श्रील जगन्नाथ आगे, बाढ़ाइया अनुरागे,
नाचे परि भाव रत्नसाज॥
वैवर्ण्य स्तब्धता आर, गद्गद वाक्योच्चार,
कम्प अश्रु पुलक सघर्म।
एइ सप्त सात्विक भाव, आर दुइ अनुभाव,
हास्य नृत्य सब प्रेमधर्म॥
नवरत्न अलंकार, अङ्गेशोभे चमत्कार,
हेरि जगन्नाथ प्रमुदित।
से रस जे निरखिल, सेह से रसे मातिल,
मोर मन करे उन्मादित॥
आरे मोर सोनार गौरांग प्रभु,
हृदये उदय हैया, माताय आमार हिया,
भूलिते नारिब आर कभू॥

अर्थात् सभी प्राणियों का मन आकर्षण करने के हेतु विधाता ने यह कैसा जाल बिछाया है। एक बार जो मनको उन्मत्त कर देने वाले गोराचाँद के स्वरूप को निहार लेता है उसका मन फिर उसमें अटककर रह जाता है, लौट नहीं सकता। गौरांग महाप्रभु की चाल देखकर लगता है कि हाथी की चाल भी उसके सामने कुछ नहीं। हाथी तो सामान्य मद से ही मत्त रहता है, वे अलौकिक मद से मत्त हैं। इसलिये उनकी चाल की उपमा हाथी की चाल से नहीं दी जा सकती। उनका मुखारविन्द देखकर लोग चन्द्रमा से भी घृणा करने लगते हैं। उनके शरीर की कान्ति झलमल करती है। उस कान्ति के आगे स्वर्णाचल की कान्ति भी कुछ नहीं है। फिर स्वर्णाचल तो अचल है, उनकी तुलना भी उससे कैसा की जा सकती है? उनकी वाणी अमृत की तंरग के समान मधुर है, जिसका एक बार पान कर लेने से बार-बार पान करने को जी चाहता है। स्वर्णांगी गौरांग महाप्रभु मेरे हृदय में उदय होकर उसे नचा रहे हैं मैं उन्हें कभी नहीं भूल सकूँगा। मेरे गौर सुन्दर नटराज जगन्नाथजी के आगे प्रेमावेश में मत्त होकर और भावरूपी रत्नों से सजकर नृत्य कर रहे हैं। वैवर्ण्य, स्तब्धता, गद्गद कंठ से वाक्योच्चारण, कम्प, अश्रु, पलक और स्वेद सात सात्विक भाव और हास्य तथा नृत्य दो अनुभाव, इन नौ अलंकारों से सुशोभित महाप्रभु जगन्नाथजी के दर्शन कर आनन्दित हो रहे हैं। जिस किसी ने भी इस रस का अनुभव किया है, वह इसमें डूब गया है। मेरे मन को भी इस रस ने उन्मादित कर

दिया है। स्वर्णांगी गौरांग महाप्रभु मेरे हृदय में उदय होकर उसे नचा रहे हैं, मैं कभी उन्हें भूल न सकूँगा।

यह गीत प्रभुपाद नवद्वीपचाँद गोस्वामी महाशय का रचित था और श्रीरघुनाथदास गोस्वामी के श्रीचैतन्य स्तवकल्पवृक्ष का अनुवाद था। गीत समाप्त होते-होते बाबाजी महाशय का मन न जाने कैसा हो गया। यथासमय संकीर्तन समाप्त कर वे रामदादा से बोले 'राम! श्रीनवद्वीपचाँद प्रभु के दर्शन करने के लिये चित्त बड़ा व्याकुल हो रहा है। वे इस समय घर पर हैं या नहीं, किसी को भेज कर मालूम करो।' यह सुन रामदादा स्वयं परमानन्दपूर्वक बेनेटोला गये और प्रभुपाद के दर्शन कर बाबाजी महाशय की बात कह सुनाई। सुनते ही प्रभुपाद बोले, 'बाबा, आज ही जैसे भी हो बाबाजी महाशय को यहाँ लाने का प्रयत्न करो। अभी थोड़ी देर पहले ही मैं उन्हें याद कर रहा था। वह मेरी बड़ी दीदी हैं। उन्हें देखते ही मन न जाने किस आनन्दमय राज्य में चला जाता है। उनकी बातचीत भाव-भंगी सब कुछ अप्राकृत चिन्मय राज्य की-सी जान पड़ती है। कैसी मधुर है उनकी आनन्दमय मूर्ति! एक दिन श्रीधाम नवद्वीप में नगरकीर्तन के समय मैंने उन्हें देखा था। उसी दिन से मुझे ऐसा लगा कि मेरा उनसे कुछ सम्बन्ध है। आज निश्चय ही उन्हें यहाँ लाने का उपाय करना चाहिये।' प्रभुपाद के आदेशानुसार रामदादा ने बाबाजी महाशय के पास आकर सब वृत्तान्त कहा। बाबाजी महाशय ने जोगेनबाबू को प्रभुपाद के दर्शन करने के लिये आवश्यक व्यवस्था करने की आज्ञा दी। उन्होंने तुरन्त तीन गाड़ियाँ मँगवाई। सन्ध्या व्यतीत होने के पहले ही सब लोग गाड़ी पर बैठकर 'श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द्। श्रीअद्वैत गदाधर श्रीवासादि गौरभक्तवृन्द' नाम का गान करते-करते प्रभुपाद के मकान की ओर चल दिये। यथासमय गाड़ी बेनेटोला में स्वाणांगी गौरांग के मन्दिर के दरवाजे पर पहुँची। ये लोग गाड़ी से उतर पड़े और नाम करते-करते दुमंजिले पर जाकर महाप्रभु के सम्मुख उद्दण्ड नृत्य करने लगे। इधर किसी ने जाकर प्रभुपाद को उनके शुभागमन का संवाद दिया। वे महाप्रभु के मन्दिर के सामने वाले घर से 'गौर आमार सर्वस्व धन गौर मूलाधार। प्राण गौर आमार प्राणपति गौर आमार गलार हार' गगनभेदी ध्वनि से गाते-गाते वहाँ जा उपस्थित हुए। अति अपूर्व सम्मिलन, अपूर्व भाव, अपूर्व आनन्द! दर्शन पाते ही प्रेमगद्गद भाव से बाबाजी महाशय जब प्रभुपाद को दण्डवत् करने लगे तो उन्होंने तुरन्त उन्हें उठा आलिंगन किया। दोनों की विशाल देहें अश्रु, कम्प, पुलकादि सात्विक भूषणों से विभूषित हो गईं। दोनों नीरव। न जाने क्या कहना चाह रहे थे, पर उनका कण्ठ प्रेम के कारण रुद्ध था। आनन्द क्रमशः बढ़ता ही जा रहा था। कुछ समय बाद प्रभुपाद प्रेमगद्गद कण्ठ से बोले, 'तुम मेरी दीदी हो। कई दिनों से तुम्हारे लिये मेरा मन न जाने कैसा-कैसा हो रहा था। आज महाप्रभु ने मिला दिया।'

बाबाजी—मैं तो आपकी दासी हूँ।

प्रभु—तुम भी दासी, मैं भी दासी। तुम श्रीरति मञ्जरी की दासी, मैं अनङ्गमञ्जरी की दासी; इसलिये तुम मुझसे बड़ी नहीं हो?

बाबाजी—मैं तो समझता हूँ कि आप साक्षात् अनङ्गमञ्जरी हैं।

प्रभु—भाई! साक्षात् की अपेक्षा दासी का अधिकार और आनन्द बहुत बड़ा है; उस अधिकार को छोड़ने से क्या लाभ? हम जो हैं वही रहें। हम सभी उनकी किंकरी हैं। तुमसे मिलने के पहले से ही मैं तुम्हें 'बड़ी दीदी' करके जानती थी।

बाबाजी महाशय के मुख से और कोई शब्द न निकला, केवल दोनों नेत्रों के जल से गण्डस्थल भीगने लगे। प्रभुपाद वाम हस्त बाबाजी महाशय के कन्धे पर रख भाव में विभोर हो गाने लगे।

नवद्वीप नागरी आगरी गोरा रसे।
कहिते गौराङ्ग कथा प्रेमजले भासे॥
भाव भरे भाविनी पुलक भरे भोरा।
श्रवणे नयने मने गोरा गोरा गोरा॥
गोरा-रूप-गुण अवतंस परे काने।
दिवानिशि गोरा बिने अन्य नाहि जाने॥
गोराचना निविड़ करिये माखे गाय।
जतन करिया गोरा नाम लिखे ताय॥

प्रेमावेशे प्रेमजल झरे दुनयने।
ताहे अभिषिञ्चे गोरार राङ्गा दुचरने॥
गोरोचना हरिद्रार पुतली करिया।
पूजये चक्षेर जले प्रेम फूल दिया॥
पिरीति नैवेद्य नाहे वचन ताम्बूल।
परिचर्या करे भाव समयानुकूल॥
अङ्गकान्ति प्रदीपे करय आरत्रिके।
कंकण शबद घन्टा आनन्द अधिके॥
अंग-गंध धूप-धुयाँ बहे अनुरागे।
पूजा करि दरश-परश रस माँगे॥
दिने दिने अनुराग बाड़िते लागिल।
लोचन बले एत दिने ज्ञान-शेल गेल॥

प्रभुपाद पहले गाते और सब लोग दुहराते। अपूर्व प्रेमावेश! बाबाजी महाशय और प्रभुपाद दोनों चरण पर चरण रख कर महाप्रभु के सम्मुख लम्बे बरामदे में एक सिरे से दूसरे सिरे तक सुमधुर नृत्य कर रहे थे। अति मनोहर दृश्य! नृत्य के समय लगता था कि दोनों महापुरुषों की विशाल देहें पेचदार पुतलियों के समान शून्य में नृत्य कर रहे हों या कोई सूत्रधार सूत्र द्वारा द्रुत गति से उन्हें नचा रहा हो। नाचते-नाचते जब.वे तेजी से मुड़ने लगते थे तो ठीक आलातचक्र के समान, एक दूसरे के पहचानने में भी नहीं आते थे। बहुत देर तक नृत्य करने के पश्चात् उन्होंने ललितादासी, राधाविनोदिनी दासी, कुसुममंजरी दासी इत्यादि सखियों को नाचने का आदेश किया। रामदादा कीर्तन करने लगे। रात दस बजे परमानन्द पूर्वक नृत्य और कीर्तन होता रहा। किसी की इच्छा न होते हुए भी ठाकुर सेवा के लिये कीर्तन समाप्त किया गया।

प्रभुपाद के स्वाभाविक नियम के कारण कोई उन्हें प्रणाम नहीं कर पाता था। चरणधूलि भी किसी को वे नहीं लेने देते थे। आज प्रेम की बाढ़ ने विधि का बन्धन तोड़ दिया। सखियों ने नृत्य समाप्त करते ही प्रभुपाद के चरण पकड़कर उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। उनके किंचित् आपत्ति करने पर बाबाजी महाशय बोले, 'ये तो आपकी ही हैं। इनके सिर पर चरण रख इन पर कृपा कीजिये। इनके उपासना और उद्यम सफल हों।' प्रभु थोड़ा मुस्काते हुए सखियों से बोले, 'एक दिन मैं भी तुम्हारी तरह लँहगा चोली पहन कर नृत्य किया करता था। मुझे देख लज्जा क्यों करती हो? आज मेरे सामने बैठ कर प्रसाद पाना होगा।' इतना कह उन्होंने सबके मस्तक पर हाथ रख आशीर्वाद दिया। पूछने पर रामदादा हाथ जोड़कर बोले, "मेरा नाम रामदास है।" प्रभुपाद प्रेमार्द्र हृदय से रामदादा को आलिंगन कर बोले, 'आज से तुम्हारा नाम हुआ नित्यानन्द रामदास' यह सुन बाबाजी महाशय 'जय नित्यानन्द राय' कहकर हुंकार उठे। प्रभु के आदेश से सब लोग प्रसाद पाने बैठे। सखियों को अपने सामने बिठाकर प्रभु ने महाप्रसाद पवाया। उनके ऊपर प्रभुपाद की ऐसी कृपा देख सब लोग विस्मित भाव से उनके सौभाग्य की प्रशंसा करने लगे। प्रभुपाद अतिशय आग्रह-पूर्वक बाबाजी महाशय और अन्य सभी लोगों को बार-बार महाप्रसाद दिलाकर स्नेह से सबको परितृप्त करने लगे। सब लोग यथा समय महाप्रसाद पा और प्रभुपाद के चरणों में दण्डवत् प्रणाम कर नाम करते-करते अपने स्थान को लौट आये।

कुब्जदास को जीवनदान

अब बाबाजी महाशय नवद्वीप आ गये हैं। नवद्वीप में गुरुदेव के आश्रम में रह रहे हैं। अपने साथियों को आदेश दे रखा है, 'कहीं न्यौता खाने न जाना। मेरी आज्ञा बिना किसी का दिया हुआ भोजन ग्रहण न करना। रात्रि में आश्रम से बाहर कहीं न जाना। वैष्णवमात्र में अभेद बुद्धि रखना और उन्हें प्रणाम करना। धामवासी और जीवों का दोष कभी न देखना। इन्हें नित्यसिद्ध जानकर इनके प्रति भक्ति करना। रजकी चिन्मयता में विश्वास रखना। श्रीनिताइ गौरांग की नित्य विहार-भूमि श्रीधाम नवद्वीप में जितनी मूर्तियाँ हैं, उनकी सेवा को अपनी नित्यसेवा जानना और उनके प्रति भक्ति करना। भगवान् को समर्पित न की हुई कोई वस्तु ग्रहण न करना। त्रिसंध्या कीर्तन करना। उपासना के विषय में किसी से वाद-विवाद न करना। व्रज मण्डल और नवद्वीप मण्डल की अभिन्नता में दृढ़ विश्वास रखना।' इत्यादि।

संगीजन अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार बाबाजी महाशय के आदेश पालन कर रहे हैं। एक दिन अपराह्न

में बाबाजी महाशय दर्शन के लिये बाहर गये। उसी समय एक वृद्धा स्त्री लगभग दो सेर रसगुल्ले लेकर वहाँ उपस्थित हुई और ठाकुर को भोग लगाने के लिये अनुरोध करने लगी। ठाकुर को भोग लगाने के साथ ही आश्रमवासियों को अपनी परीक्षा भी देनी होगी, इसका उस समय किसी को ध्यान न आया। उस स्त्री का आर्त भाव देख सब मुग्ध हो गये। रसगुल्लों का भोग लगाने के उपरान्त ललितादासी बाबाजी महाशय और उनके साथ जो कुछ लोग थे उनके लिए कुछ रसगुल्ले निकालकर सबको बाँटने लग गईं। मंगलमय प्रभु ही जानें कि कुंजदास को क्या सूझी। वह हँस-हँसकर एक-एक व्यक्ति के हाथ से रसगुल्ला छीन कर खाने लगा। इस प्रकार आनन्द से महाप्रसाद सेवा हो रही थी, तभी बाबाजी महाशय लौट आये और उन्होंने इस आकस्मिक आनन्दमय कोलाहल का कारण जानना चाहा। कुंजदास आगे बढ़कर बोला, "आज बड़े आनन्द से रसगुल्लों की पंगत हुई। मैंने किसी को भी खाने नहीं दिया। सबके हाथ से छीन कर खा लिया, केवल आपके लिए कुछ रख छोड़ा है।' बाबाजी महाशय कुछ हँस कर बोले, 'क्यों, रखने की क्या जरूरत थी?' इस प्रकार और कुछ बातचीत करते-करते संध्या हो गई और आरति कीर्तन आरम्भ हुआ। रात दस बजे तक कीर्तन चला, उसके पश्चात् सबने महाप्रसाद ग्रहणकर विश्राम किया।

सवेरा नहीं हो पाया था कि कुंजदास को उल्टी और दस्त होने लगे। कोई साढ़े सात बजे के लगभग अवस्था बहुत खराब हो गई। बाबाजी महाशय ने डाक्टर को बुलाया। डाक्टर ने आते ही कहा 'रोगी की हालत बहुत खराब है, इसका बचना कठिन है। घण्टे भर में और भी उपसर्ग दीख पड़ेंगे। बारह बजे तक पूर्ण विकार उत्पन्न होगा और साथ ही प्राण चले जायँगे। आप यदि औषधि देने को कहें तो मैं दे सकता हूँ, पर कोई फल न होगा।' फिर भी बाबाजी महाशय ने चिकित्सा करने के लिए आग्रह किया। डाक्टर ने रोगी की देखभाल बड़े यत्न से करने के लिए कहा। बाबाजी महाशय ने ललितादासी को सेवा के लिए नियुक्त कर दिया। इधर मधुसूदनदास आदि कई व्यक्तियों को नामकीर्तन करने के लिए कहा और वे कीर्तन करने लगे। रोगी की अवस्था अधिक खराब होने लगी। सब अंग बरफ के समान शीतल और पसीने से तर हो गये। नस-नस में ऐसी ऐंठन होने लगी कि तीन चार व्यक्तियों के लिए भी उन्हें सम्हालना कठिन हो गया। दस्त और उल्टी बराबर जारी, पेट फिर भी फूला हुआ। हिचकी, प्यास इत्यादि भयंकर हैजे के विशेष लक्षण प्रकट होने लगे। सबने कुंजदास के बचने की आशा छोड़ दी। बाबाजी महाशय ठाकुर मन्दिर के सम्मुख बैठे थे। चार-पाँच सज्जन उनके पास बैठे कुंजदास के विषय में बात कर रहे थे। उसी समय कुंजदास नामकीर्तन करने वाले व्यक्तियों को बुरी-बुरी गालियाँ देकर उनसे नाम बन्द करने को कहने लगा। वहाँ एक वृद्ध कविराज उपस्थित थे। उन्होंने नब्ज देखकर कहा, इसे सन्निपात हो गया है। कुंजदास बार-बार उठकर भागने की चेष्टा करता था। परन्तु उसकी सेवा में लगे हुए व्यक्ति उसे सावधानी से पकड़े थे। उसे नाना रूप से असम्बद्ध प्रलाप करते हुए देख सब हताश हो गये। उसको जाँघ में बार-बार ऐंठन से बड़ा कष्ट हो रहा था। ललितादासी नाना रूप से ऐंठन को दबाने की चेष्टा कर रही थीं। उसी समय कुंजदास को दस्त की एक ऐसी पिचकारी छूटी कि वह ललितादासी के गले में प्रवेश कर गई। उसका कुछ अंश उदर में चला गया और कुछ उन्होंने बाहर निकाल दिया। सबने शीघ्र बाबाजी महाशय के निकट जाकर यह घटना कह सुनाई। उन्होंने ललितादासी को बुलाया। पास में बैठे सज्जन घबड़ाकर बोले 'देखिए, रोगी की तो कोई आशा है ही नहीं, पर इनका विशेष ध्यान रखने की जरूरत है, क्योंकि हैजे का विष इनके पेट में पहुँच गया है।' बाबाजी महाशय कुछ मृदु मुस्कान के साथ बोले, 'देखिये, विपत्ति और संपत्ति एकमात्र प्रभु के हाथ है। यदि वह रक्षा करें तो कितना ही विष पेट में क्यों न चला जाय वह अमृत हो जाता है।' ललितादासी से उन्होंने पूछा, 'तेरे मन में किसी प्रकार का भय या घृणा तो नहीं है?' ललितादासी बोलीं 'आप क्या कह रहे हैं, मैं कुछ नहीं समझ पा रही हूँ।'

बाबाजी—तब कोई भय की बात नहीं। जा मुँह धो आ।

ललिता—मैंने मुख धोया जैसा न धोया। यह बालक क्या अकाल ही मारा जायगा?

बाबाजी—यदि दैवकी यही इच्छा है तो कोई क्या करे?

ललिता—नाम का आश्रय और गुरुपदाश्रय लेने पर भी क्या दैव रह जाता है? आप ही लोग तो कहते हैं कि गुरुपदाश्रय लेते ही पुनर्जन्म होता है।

बाबाजी—पुनर्जन्म होने से पूर्वजन्म की नियति कट जाती है, पर इस जन्म में अर्जित कर्मों का फल तो भोगना ही पड़ता है। इसके अतिरिक्त आश्रय की बात केवल मुख से कहने से ही तो नहीं होती, उसे कार्यान्वित भी तो करना होता है। आश्रय ग्रहण करने के पश्चात् भी यदि जीव की स्वतन्त्रता रह जाय तो आश्रय क्या हुआ?

ललिता—सब प्रकार से उपयुक्त जीव का ही तो ऐसा अधिकार हो सकता है। जिसका ऐसा अधिकार नहीं, उसका क्या उद्धार न होगा? मेरा विश्वास है कि आश्रयदाता की इच्छा के बिना केवल आश्रित जीव की इच्छा से कोई भी कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता।

बाबाजी—शुभ कार्य हो सके या न सके, अशुभ अवश्य हो सकता है। विचार करके देखो कि श्रीधाम में आने के साथ ही निताइचाँद ने तुम्हें लक्ष्य कर कहा था कि कोई पदार्थ प्राप्त हो तो मेरी आज्ञा के बिना न खाना। पर कल क्या हुआ? कुंजदास की ऐसी दुर्गति हुई कि उसने सबका प्रसाद छीन कर अकेले खा लिया। इस घटना को निताइचाँद की पूर्ण कृपा का चिह्न समझो। यदि ऐसा न होता तो सभी विपत्ति में पड़ते। जो भी हो सब निताइचाँद को पुकारो। वे मंगलमय हैं, अवश्य मंगल करेंगे।

ललिता—जो कुछ करना होगा आप ही करें। सीधी बात यह है कि इस अपराध के लिये यदि सामान्य दण्ड देकर ठीक कर लेते तो कोई बात नहीं थी। परन्तु इस प्रकार का प्राण दण्ड देने से क्या कोई आपके प्रभु को दयालु समझेगा? हमारा तो स्वभाव ही है स्वतन्त्रता, कपट इत्यादि नाना प्रकार के अपराध करना, पर आपका स्वभाव है क्षमा करना और अपराधी को गले लगाना।

बाबाजी—मैं क्या कहूँ? प्रभु से कहो। ठाकुर का चरणामृत और वैष्णव-चरणामृत उसके मुख और शरीर पर अच्छी तरह से मल दो।

ललितादासी ऐसा ही करने लगीं। बाबाजी महाशय कुंजदास के निकट जाकर बोले, 'क्यों रे कुंज! कैसा है?' कुंज का स्वर भंग हो गया था। आँखें लाल हो रही थीं, किसी को पहचानने की शक्ति नहीं थी। ललितादासी ने बाबाजी महाशय का चरण पकड़कर कुंज के माथेपर रखा और फिर सीने पर। चरण स्पर्श होते ही उसकी अवस्था में परिवर्तन होने लगा। किसी ने बाबाजी महाशय का चरणामृत लेकर कुंज के मुख में डाल दिया। मधुदादा अश्रु-गद्गद कण्ठ से जोर-जोर से नाम-कीर्तन करने लगे। देखते-देखते कुंज की अवस्था बदल गई। उसका शरीर स्वस्थ और सबल होने लगा। तीसरे दिन उसे पथ्य देने का आदेश हुआ। आश्रमवासियों के आनन्द की सीमा न रही। वे अपने प्राण-प्रिय ठाकुर परम दयालु प्रभु की जय-जयकार करने लगे। बाबाजी महाशय ने कुंज से कहा, 'देख, निताइचाँद की कृपा से तेरा पुनर्जन्म हुआ है। आगे सावधान रहना।' कुंज गद्गद कण्ठ से बोला, 'मैं कब सावधान रहा और रह सकूँगा। जब आपने कृपाकर मुझे बचाया है तो इसकी भी आप ही व्यवस्था करेंगे कि मुझसे प्रमाद न हो।'

रसकीर्तन श्रवण

इस प्रकार दिन व्यतीत होने लगे। यद्यपि बाबाजी महाशय के श्रीगुरुदेव आश्रम में उपस्थित न थे, उनके प्रतिनिधि स्वरूप गौरमोहनदास कर्ता बाबाजी महाशय की उपस्थिति के कारण उन्हें किसी प्रकार की असुविधा का बोध नहीं होता था। आश्रम की सेवा का भार उन्हीं पर था। बाबाजी महाशय के गुरुभाई महात्मा माधवदास बाबाजी महाशय ने मधुकरी वृत्ति का अवलंबन कर रखा था और वे नित्य मधुकरी कर लाते। एक दिन प्रातःकाल बाबाजी महाशय भक्तों के साथ आश्रम में बैठे नाना-रूप तत्वकथा आलोचना कर रहे थे। उसी समय गेरुआ वस्त्रधारी बड़े-बड़े बालों वाले एक युवक ने आकर उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। उन्होंने भी झट

प्रति-प्रणाम कर उसे पास बिठाया। माधवदास बाबाजी महाशय बोले, 'यह युवक यशोहर जिले के अन्तर्गत बेलवियायना ग्राम का है। इस समय माँ और अन्यान्य अनेक आत्मीय जनों के साथ श्रीधाम दर्शन के हेतु यहाँ आया है। यह जाति का कायस्थ है। पूर्वाश्रम में मेरा इसके साथ कुछ सम्बन्ध भी था। कई दिनों से यह तुमसे मिलने के लिए आतुर था और कुछ हृदय की बात कहना चाहता था, परन्तु सुयोग नहीं पा रहा था, इसलिए आज आया है। इसकी बात तुम्हें सुननी होगी।'

बाबाजी—बड़ी अच्छी बात है। बाबा, तुम्हारा नाम क्या है?

युवक—जी, मेरा नाम प्रियनाथदास सरकार है।

बाबाजी—तुम्हारे माता-पिता वर्तमान हैं?

प्रिय—पिता का गतवर्ष देहान्त हो गया। माताजी साथ आई हैं।

बाबाजी—विवाह किया है?

प्रिय—आपकी कृपा से उस ओर से निश्चिन्त हूँ।

बाबाजी—गेरुआ वस्त्र और बड़े-बड़े बाल क्यों धारण कर रखे हैं?

प्रिय—कोई खास बात नहीं। यहाँ कपड़े बार-बार मैले हो जाते हैं और बहुत असुविधा होती है, इसलिए ऐसा कर रखा है।

बाबाजी—नहीं, केवल इतना ही नहीं। मुझे लगता है कि साधु सजने की इच्छा है। अच्छा, तुम क्या कहना चाहते हो, कहो।

प्रिय—कहने की तो बहुत सी बातें थीं, पर कल नगर-कीर्तन के समय आपके दर्शनमात्र से मेरे सारे सन्देह मिट गये। मैंने एक अपूर्व करुणा का अनुभव किया। ऐसा लगा कि किसी ने बलपूर्वक मुझे संकीर्तन की ओर आकर्षित किया। जैसे ही मैं कीर्तन के निकट पहुँचा, मैंने देखा कि एक अपूर्व ज्योतिर्मय पुरुष अपनी आजानुलम्बी भुजाओं को ऊपर उठा प्रेमार्द्र भाव से और करुण नेत्रों से मानो मेरे समान पतित और पाषंडी जीवों को सम्बोधन कर कह रहे हैं, 'हे दुर्बल जीव! अब भय न कर, एक बार गौर-गौर कह। मैं तेरे जन्म जन्मान्तर के अशेष पापों का बोझ अपने माथे पर रख तुझे विशुद्ध व्रज प्रेम का अधिकारी बनाऊँगा।' मैं क्या कहूँ! साथ ही मन में विचार आया कि यही मुझे भवसागर से पार करने वाले मेरे अभीष्ट देव हैं। परन्तु यदि यह मेरे मन का भाव जान अयाचित भाव से मेरे ऊपर कृपा करें तो मैं समझूँ कि यह अन्तर्यामी, पतितपावन प्रभु हैं। यह विचार कर ही रहा था कि आप मुझे आलिंगन कर संकीर्तन के मध्य में ले गये। इसलिए मेरा सन्देह जाता रहा। पर एक जिज्ञासा है।

बाबाजी—हाँ, कहो, हृदय खोल कर कहो।

प्रिय—हमारे कुलगुरु की वंशावली का एक प्रकार से अभाव है, पर वे हमें एक व्यक्ति के सुपुर्द कर गये हैं, जो हम सबको मन्त्र देते हैं। हमारे माता-पिता कोई भी उनसे कृष्ण-मन्त्र ग्रहण करना चाहता है, तो उसे दे देते हैं। जो व्यक्ति स्वयं किसी मन्त्र में दीक्षित नहीं, उससे क्या वह मन्त्र लिया जा सकता है?

बाबाजी—इसका सिद्धान्त बड़ा कठिन है, क्योंकि गुरु-तत्व बहुत निगूढ़ तत्त्व है। किसे गुरु करना चाहिए, एकमात्र प्रभु ही जानते हैं। इसलिये इस प्रकार की जिज्ञासा मुझसे न करना ही उचित है।

प्रिय—मैं और कुछ नहीं चाहता। केवल यह जानना चाहता हूँ कि यदि गुरु रूप से एक बार किसी को स्वीकार कर लूँ और उनके चरणों में भक्ति न कर सकूँ, या उनकी किसी प्रकार अवज्ञा हो जाय और उनसे मंत्रादि ग्रहण करने के लिये हृदय में अनुताप हो तो क्या अपराध न होगा?

बाबाजी—अवश्य होगा। गुरु के प्रति अवज्ञा करना तो बहुत बड़ी बात है, उनमें मनुष्य-बुद्धि करना ही अपराध है। महाजनों ने कहा है-

गुरु के मनुष्य ज्ञान ना कर कखन।
गुरुनिंदा कभु कर्णे ना कर श्रवण॥
गुरुनिंदुकेर मुख कभु ना हेरिबे।
जथा हय गुरु निंदा तथा ना जाइबे॥
गुरुर विक्रिया जदि देखह कखन।
तथापि अवज्ञा नाहिं कर कदाचन॥

मेरे विचार से गुरु करके अपराध संचय करने की अपेक्षा गुरु न करना ही अच्छा है। पीछे इस प्रकार

का अनर्थ न हो इसी भय से पूर्व आचार्यगणों ने गुरु के घर बारह वर्ष रह कर गुरु-शिष्य की मानसिक अवस्था के अनुसार दीक्षित होने की व्यवस्था की थी। यदि यह सम्भव न हो तो कम से कम एक वर्ष अवश्य गुरु के साथ रह लेने के पश्चात् दीक्षा लेनी चाहिये।

प्रिय—यह भी सुना है कि गोस्वामीगणों ने असम्प्रदायी गुरु करने का निषेध किया है।

बाबाजी—हाँ, शास्त्रों में ऐसी बात नहीं है, यह नहीं कहा जा सकता। शास्त्रों में यह स्पष्ट लिखा है कि असम्प्रदायी या अवैष्णव गुरु नहीं करना चाहिए। पर कौन वैष्णव हैं, कौन अवैष्णव, यह केवल बाहरी वेश-भूषा से समझ लेना ठीक नहीं।

प्रिय—वैष्णव गुरु का आदेश प्राप्त कर उनसे तुरन्त दीक्षा ले लेने में भी कोई दोष है?

बाबाजी—यदि वे प्रसन्न मन से आदेश करें तब कोई दोष नहीं। तब तो उनके दर्शन मात्र से उनमें गुरुबुद्धि करना और उनकी प्राप्य वस्तु उन्हें देना सभी प्रकार से हमारा कर्तव्य है।

इस बार प्रियनाथ के मन की बात हुई। उसने प्रसन्न होकर पूछा, 'अच्छा, तो मंत्र लेने के लिए मुझे क्या करना चाहिए?'

बाबाजी—मंत्र लेना और देना तो निताइचाँद जाने, पर तुम्हें यह अभिमान का वेश तो अवश्य त्याग देना चाहिए। अभी जाकर मस्तक-मुण्डन कराओ और शुभ्र वस्त्र धारण करो।

प्रियनाथ ने बाबाजी महाशय की आज्ञानुसार कार्य किया। प्रातःकाल खूब जोर-शोर से कीर्तन होने लगा। प्रियनाथ बाबाजी महाशय के निकट मंत्र ग्रहण का संकल्प करके आया। संकीर्तन के निकट उपस्थित होते ही चुम्बकाकृष्ट लोहे के समान कीर्तन मंडली में प्रवेशकर नृत्य करने लगा। बाबाजी महाशय ने उस शुभ मुहूर्त में उसके हृदय के भाव को जानकर उसके कान में मंत्र प्रदान किया। मंत्र प्राप्त करते ही प्रियनाथ अचेत होकर गिर गया। अश्रु, कम्पादि सात्विक विकारों से उसका देह आभूषित हो गया। बहुत देर तक कीर्तन होता रहा, पर प्रियनाथ संज्ञाहीन अवस्था में ही पड़ा रहा। यह देख उसकी माँ रोने लगी। तब बाबाजी महाशय ने प्रेमाविष्ट हो प्रियनाथ को आलिंगन किया। उसी क्षण उसने निद्रा भंग हुई जैसी अवस्था में चट से उठकर बाबाजी महाशय को दण्डवत् प्रणाम किया। उन्होंने भी यथासमय कीर्तन समाप्त कर और महाप्रसाद ग्रहणकर विश्राम किया।

श्रीधाम नवद्वीप परिक्रमा

देखते-देखते धूलट उत्सव समाप्त हो चला। एक दिन गौरमोहनदास कर्ता बाबाजी बाबाजी महाशय से बोले, 'देखो बाबा, व्रज-मंडल और नवद्वीप मंडल में कोई भेद नहीं है, यह बात हम केवल मुख से ही कहते हैं, व्यवहार में ऐसा नहीं दीखता। गोराचाँददास महन्त बाबाजी और गोविन्ददास महन्त बाबाजी बहुत कुछ व्रजमंडल-परिक्रमा की भाँति नवद्वीप परिक्रमा का आयोजन किया करते थे। उनके अप्रकट होने के बाद से कई वर्ष नवद्वीप परिक्रमा एक प्रकार से बन्द ही रही है। इस बार यदि तुम प्रयत्न करो तो मेरा विश्वास है कि परिक्रमा सुव्यवस्थित रूप से हो सकती है।' बाबाजी महाशय आनन्दित हो बोले, 'बाबा, यह तो बड़े सौभाग्य की बात है। मैं आपकी सन्तान हूँ। उचित-अनुचित कुछ नहीं जानता। जो भी उचित हो मुझे आदेश करें। पहले कौन से दिन आप लोग परिक्रमा प्रारम्भ किया करते थे?'

कर्ताबाबाजी—धूलट के दूसरे दिन पंचमी को।

बाबाजी—पचंमी कब है?

कर्ताबाबाजी—कल बड़े अखाड़े से धूलट निकलेगी, उसके दूसरे दिन पंचमी है।

बाबाजी—तो ठीक है उसी दिन से परिक्रमा की जाय।

कर्ता—बहुत सी सामग्री भी तो संग्रह करनी होगी। वह कैसे होगी?

बाबा—बाबा, हम तो भिखारी, वैरागी ठहरे, हमें संग्रह करने की क्या आवश्यकता? निताइचाँद का नाम लेकर निकलेंगे, वे जैसी चाहेंगे, व्यवस्था करेंगे। जिनका संकल्प, वे ही पूरा करेंगे।

कर्ताबाबाजी महाशय ने परमानन्दपूर्वक बाबाजी महाशय को आलिंगन किया। परिक्रमा की बात उन्होंने सबसे कह दी। निर्दिष्ट दिन ढाई बजे के समय सब लोग आश्रम से बड़े अखाड़े के नाट्यमन्दिर होते हुए नित्यानन्द प्रभु, अद्वैत प्रभु, और महाप्रभु के दर्शन करते हुए परिक्रमा को चल दिये। साथ में प्राय: तीन सौ व्यक्ति थे। माधाईतला पहुँचकर रात्रि में विश्राम किया। दूसरे दिन प्रात: छाड़िगंगा पार कर एक नई बस्तीवाले गाँव में प्रवेश किया। गाँव का नाम था, इन्द्राकपुर चड़ा। इसमें केवल ग्वाल जाति के लोग बसते थे। कोई सात बजे होंगे। कीर्तन-मण्डली गाँव के मैदान-से होकर जा रही थी। मण्डली में जटिया रामदास नामक एक महात्मा थे। बाबाजी महाशय और वे सख्य रस से आविष्ट हो आगे-आगे नृत्य करते और प्रभाती सुरमें 'निताइ गौर राधेश्याम, हरे कृष्ण हरे राम' नाम कीर्तन करते जा रहे थे। नाम बड़ा मधुर लग रहा था। सब आनन्द से नृत्य कर रहे थे। बाबाजी महाशय और जटिया रामदास बाबाजी में बीच-बीच में मानो भाव का विस्फोट होता था। वे 'हई हई' शब्द के साथ हुँकार कर नृत्य करने लगते थे। एकाएक सात-आठ पहलवान किस्म के लोग एक दूसरे का हाथ पकड़ संकीर्तन को रोक कर खड़े हो गये। बाबाजी महाशय ने कहा, 'क्यों रे, तुम लोग कौन हो? क्या चाहते हो?' उनमें से एक वयोवृद्ध ने कहा 'आज हमारे इस गाँव में ही रुकना होगा। हम किसी प्रकार जाने न देंगे।'

बाबाजी—तुम किस जाति के लोग हो?

सब—हम ग्वाले हैं।

बाबाजी—अरे, तब तो तुम हमारी जाति के हो। अपनी जाति के लोगों की बात रखनी ही होगी। (कर्ताबाबाजी महाशय से) बाबा, अपने सजाति लोगों की बात टालना ठीक नहीं। इसलिए आज यहीं ठहरा जाय।

कर्ताबाबाजी महाशय ने पहले कुछ आपत्ति की, पर बाबाजी महाशय की प्रेममय लीला और ग्वालों का अनुराग देखकर उन्हें स्वीकृति देनी पड़ी। संकीर्तन ने गाँव के मध्य प्रवेश किया। इनके साथ जो कुछ सामग्री थी ग्वाले के घर में रख दी गई। गाँव छोटा होते हुए भी अति मनोरम था। उसमें बाँशी घोष नाम का एक सबसे धनी और संभ्रांत ग्वाला था। गाँव के सभी लोग उसके अनुगत थे। कीर्तन-मंडली गाँव की परिक्रमा कर उनके गोठ में पहुँची। ग्रामवासी आबाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी एक अभिनव अप्राकृत आनन्द सागर में निमग्न थे। कुछ देर में कीर्तन समाप्त हुआ।

बाँशी घोष बड़ी उदार प्रकृति का व्यक्ति था, पर 'साला' शब्द उसकी जबान पर सदा ही रहता था। उसने गाँव के कई प्रधान लोगों को बुलाकर कहा, 'देखो, आज कोई साला इस गाँव से दूध लेकर बाहर न जाय, सबको मना कर दो। सालो, तुम्हारे चौदह पुरखों के भाग्य से ऐसे महापुरुष नवद्वीप छोड़ कर तुम्हारे गाँव में आये हैं। आज इन्हें खीर ही खीर खिलाना।' यह सुन बाबा लोगों में से दो एक बोले, 'बाबा, केवल खीर ही खीर खाकर कैसे रहा जायगा?'

बाँशी—साले रोगी बाबाजी हैं न, खीर कैसे हजम होगी? अच्छा थोड़ा दाल भात भी बना लेना।

इसी प्रकार व्यवस्था होने लगी। इधर सुबलदास, नवगौरांगदास, सीतानाथदास, नारायणदास और हरिदास प्रभृति वैष्णव पुजारीगण रसोई की व्यवस्था करने लगे। कर्ताबाबाजी महाशय बाँशी घोष से परामर्श कर कार्य करने लगे। रसोई में देर होते देख बाँशी घोष ने जलपान के लिए लाई-चिउड़ा और कुछ मिठाई मँगा दी। सबने यथा-समय स्नानादि मध्याह्न कृत्य समापन कर और बालभोग महाप्रसाद ग्रहणकर संकीर्तन आरम्भ किया। ग्रामवासियों के आनन्द की सीमा न रही। गोचर भूमि जैसे व्रजभूमि हो गई। गाँव 'हई हई' 'रई रई' ध्वनि से व्याप्त हो गया। किसी को बाह्य स्मृति न रही। सब आविष्ट होकर कार्य कर रहे थे। बहुत देर तक संकीर्तन होता रहा। उसके पश्चात् बांशी घोष की प्रार्थनानुसार बाबाजी महाशय ने अनेक लोगों को मन्त्र प्रदान किया। बाँशी घोष को बुलाकर उन्होंने कहा, 'देख बाँशी, तेरे गाँव में जैसा आनन्द हुआ है वह निताइ की कृपा बिना कभी सम्भव नहीं हो सकता। इसलिए मेरे विचार से इस गाँव का नाम नित्यानन्द पर रखना उचित होगा।' यह सुन सबने हरिध्वनि की। एक बजे के लगभग

रसोई तैयार हो गई। ठाकुरजी को भोग लगा और सबने भोग-आरति-कीर्तन कर महाप्रसाद ग्रहण किया। थोड़ी दर विश्राम कर अपराह्न में वहाँ से चल दिये।

इनका पथ-प्रदर्शक था एकमात्र नाम। क्योंकि इनमें से केवल कर्ताबाबाजी बहुत दिनों से परिक्रमा करते आ रहे थे और मार्ग से परिचित थे। परन्तु उनमें कीर्तन-मण्डली के आगे चलने की क्षमता नहीं थी। जटिया रामदास बाबाजी आविष्ट होकर आगे आगे नृत्य करते जा रहे थे और बाबाजी महाशय भी प्रेमानन्द में विभोर हो नृत्य करते जा रहे थे। वे धीरे-धीरे बिल्व-पुष्करिणी पर पहुँचे और ग्रामवासियों के अनुरोध से रात्रि में वहीं विश्राम किया। अपराह्न में प्रसाद पा चुकने के कारण किसी ने रात में प्रसाद नहीं लिया। रात ग्यारह बजे तक कीर्तन होता रहा। गाँव के बहुत-से लोग एकत्र थे। सबकी इच्छा थी कि ये लोग एक दिन वहाँ ठहरें। परन्तु परिक्रमा के कार्यक्रम के कारण उनकी इच्छा पूर्ण न हो सकी।

दूसरे दिन प्रातः नाम करते-करते वे रवाना हुए। बाबाजी महाशय का मुख्य उद्देश्य था नाम-संकीर्तन प्रचार द्वारा लोगों का मंगल करना। इसलिए केवल सीधे रास्ते से न जाकर गाँवों के बीच से कीर्तन करते हुए जा रहे थे। यदि कहीं मार्ग में बहुत-से लोग मिल जाते तो वहीं एक घण्टा लगातार कीर्तन होता रहता। इस प्रकार नौ बजे के लगभग ब्राह्मणपुकुर पहुँचे। बाजार के और गाँव के बहुत से लोग एकत्र हो गये। वे बाजार के निकट एक स्थान पर इनके ठहरने की रसोई की व्यवस्था करने लगे। इधर बाबाजी महाशय और उनके साथियों ने स्नानादि कर संकीर्तन आरम्भ किया। कीर्तनध्वनि सुन चारों ओर से लोग छूट पड़े। बहुत भीड़ हो गई, फिर भी वातावरण नीरव और निस्तब्ध था। आबाल-वृद्ध-वनिता सब मन्त्रमुग्ध की भाँति बाबाजी महाशय की ओर देख रहे थे। उनके प्रेम-गद्गद कण्ठ से एक-एक पद उच्चारित हो रहा था। ऐसा लगता था कि उपस्थित सर्वसाधारण का हृदय द्रवीभूत होता जा रहा है। चार घण्टे तक कीर्तन होता रहा। किसी को सुधबुध न रही। श्रोताओं को धूप लग रही है, पर उन्हें होश नहीं। कोई बाजार करने आया है, कोई बाजार कर घर लौट रहा है, परन्तु संकीर्तन ध्वनि से विभोर हो अपना उद्देश्य भूल गया है। स्कूल जाते हुए बालक भी विभोर हैं। उन्हें स्कूल जाने की तथा अध्यापकों के शासन की सुधि नहीं। सब अनिमेष नेत्रों से बाबाजी महाशय की ओर देख रहे हैं। संकीर्तन मण्डली केवल 'मनः शिक्षा' का कीर्तन कर रही है। बाबाजी महाशय के मन में न जाने क्या भाव आया। वे एकदम उठकर नृत्य करने लगे। साथी लोग भी उनका अनुसरण करने लगे। श्रोतृवृन्द भी जो अभी तक नीरव होकर संकीर्तन सुन रहे थे प्राण खोलकर कीर्तन में योग देने लगे। कीर्तन का वेग और ऊँचा हो गया। सभी लोग विभोर हो गये। जिसने कभी स्वप्न में भी निताइ-गौर नाम नहीं जाना था, वह भी हाथ से ताली बजा-बजा 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' कहकर नृत्य करने लगा। मानो आनन्द का पवन बह निकला। बहुत देर इस प्रकार नृत्य-कीर्तन करने के पश्चात् सबका श्रम देख बाबाजी महाशय ने संकीर्तन समाप्त किया। इधर तीन बजे के लगभग ठाकुर को भोग लगा। प्रसाद पाते और आगन्तुक भक्त मण्डली को प्रसाद देते रात हो गई। इसलिए उस दिन वहाँ से चलना न हो सका। रात्रि में श्रीचैतन्य-चरितामृत के पाठ के पश्चात् सबने वहीं विश्राम किया।

दूसरे दिन सब प्रातःकृत्य समापनपूर्वक नाम करते-करते वहाँ से रवाना हुए। साथ में लोगों की संख्या क्रमशः बढ़ती गई, क्योंकि ये लोग जिस गाँव में भी एक दिन रुककर संकीर्तन आदि करते उस गाँव के लोग इस आनन्दमय संग का परित्याग न कर पाते। इसीलिए जिसे भी संसार से थोड़ा सा अवकाश मिलता, वह इनके साथ हो लेता। क्रमशः संकीर्तन गंगा पार हो मायापुर बाबू केदारनाथ दत्त भक्तिविनोद महाशय के मन्दिर पहुँचा।

कुछ देर वहाँ कीर्तन कर सब काजी की समाधि का दर्शन करने के उद्देश्य से आगे बढ़े। समाधि स्थान पर पहुँचते ही बाबाजी महाशय आविष्ट हो महाप्रभु के काजी-मिलन प्रसंग का कीर्तन करने लगे। समाधि स्थान पर एक काठ-चाँपा फूल का पेड़ था। वह कितना प्राचीन था, नहीं कहा जा सकता। उसका विस्तार इतना

अधिक था कि दर्शन मात्र से लगता था कि ये कोई बहुत प्राचीन ऋषि हैं जो स्वेच्छापूर्वक स्थावर देह धारणकर श्रीमन्महाप्रभु-लीला-रस-आस्वादन कर रहे हैं। उस वृक्षराज के तले एक मुसलमान की कुटिया थी। देखकर निश्चय करना कठिन था कि वह हिन्दू है या मुसलमान। गले में नाना प्रकार की मालाएँ थीं। वह इनके कीर्तन के बीच आकर नामगान और नृत्य करने लगा। वह बीच में बाबाजी महाशय के चरणों में गिरकर विलाप करने लगता था, "हा गुरुदेव! मेरे ऊपर कृपा कीजिए। कानों में हरिनाम प्रदान कर मेरा जीवन धन्य कीजिए। मैंने इतने दिन जिस मूर्ति का ध्यान किया है और जिसे आत्म-समर्पण किया है, आज उसी मूर्ति को सामने देख रहा हूँ। मुझे वंचित न कीजिए। मैंने परसों हताश होकर काजी साहब से यही प्रार्थना की थी। उन्होंने शेष रात्रि में मुझे आदेश दिया, 'थोड़े दिनों में ही तेरी अभिलाषा पूर्ण होगी। चिन्ता न कर। एक महात्मा यहाँ आ रहे हैं। उनसे अपने मन की बात कहना। वे तुझे अभीष्ट फल प्रदान करेंगे।' काजी साहब के आदेशानुसार मैंने आपको पा लिया है। मुझे दुराचारी जान परित्याग न कीजिए।" बाबाजी महाशय उसकी आर्ति देख अश्रुगद्गद कंठ से बोले, 'बाबा, काजी साहब ने तो किसी महात्मा के आने की बात कही थी, किन्तु इस दुरात्मा के प्रति इतना आग्रह क्यों? तुम तो साधु हो। महाप्रभु के नित्य परिकर काजी साहब के समाधि स्थान पर रहते हो। उनके संग-सुख का अनुभव करते हो। इसलिए तुम्हीं मेरे ऊपर कृपा करो, जिससे सर्वदा, सर्वत्र, सपरिकर प्रभु की नित्य लीला का अनुभव कर सकूँ।' पर उस व्यक्ति ने इसे सुना-अनसुना कर दिया और जोर से उनके चरण पकड़ कर रोने लगा। बाबाजी महाशय के संकीर्तन के बीच उनके कान में हरिनाम प्रदान करते ही वे अचैतन्य होकर गिर पड़ा। अश्रु-पुलकादि सात्विक विकारों का उसकी देह में प्रकाश होने लगा। संकीर्तन का दल उसे घेरकर संकीर्तन करने लगा। बहुत देर बाद उसे होश आया। बाबाजी महाशय उसे वहीं रहकर भजन करने का आदेश दे नाम करते-करते वहाँ से सुरभि-कुंज अथवा स्वरूपगंज नामक स्थान पर जा पहुँचे। कोई दस बजे का समय था, भोजन की कोई व्यवस्था न थी। उदार प्रकृति महात्मा जटिया रामदास बाबा एक दुकानदार से आलाप कर रहे थे। वह व्यक्ति प्रतिवर्ष परिक्रमा पर आने वाले लोगों को आवश्यक सामग्री दिया करता था। वह बड़े भक्ति-भाव से कहने लगा, 'मैं सदा से ही वैष्णव सेवा की सामग्री दिया करता हूँ। अपने रहते मैं आपको किसी से भी कुछ न लेने दूँगा।' दुकानदार का मतलब था कि वह सदा वैष्णव सेवा की सामग्री दिया करता था और परिक्रमा के लोग जाते समय उसे उपयुक्त मूल्य दे जाया करते थे। इस बार भी ऐसा ही हो।

महात्मा जटिया रामदास बाबाजी ने सोचा कि यह तो बड़ा भक्त है। स्वेच्छापूर्वक इतने दिन से वैष्णव सेवा करता आ रहा है, इसलिये हमें भिक्षा करने की आवश्यकता नहीं। जिस-जिस सामग्री की आवश्यकता थी बिना किसी संकोच के उस दुकान से ले गये। दुकानदार ने भी जहाँ सेर की जरूरत थी वहाँ सवा सेर दिया। जब यह एक सेर माँगते तो दुकानदार कहता, 'एक सेर से नहीं चलेगा, दो सेर दे रहा हूँ।' इससे जटिया रामदास बाबाजी बड़े आनन्दित थे। बाबाजी महाशय ने रामदास बाबाजी से पूछा, 'दादा, आज सामग्री का ढेर लग रहा है। इस सबका कोई देने वाला है या इसका भार आप ही पर है?' रामदास बाबाजी महाशय ने हँसकर कहा, 'दाता की बात तो क्या कहूँ, मैं एक सेर चाहता हूँ तो वह दो सेर देता है, किसी प्रकार की आपत्ति नहीं करता। बड़ा भक्त है।'

बाबाजी—नहीं, मैं भक्ति की बात नहीं कह रहा, पैसे-कौड़ी की जरूरत तो नहीं पड़ेगी?

रामदास—उसके लिए चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं।

यथासमय रसोई तैयार हुई और ठाकुर को भोग लगा। बाबाजी महाशय ने जैसे ही भोग-आरति-कीर्तन आरम्भ किया, चारों ओर से बहुत से लोग आने लगे। भोग-आरति के उपलक्ष में बहुत देर कीर्तन होता रहा। आनन्द की सीमा न रही। भोग-आरति-कीर्तन में इतना आनन्द हो सकता है, कोई नहीं जानता था। बहुत देर बाद सबने अनिच्छापूर्वक संकीर्तन समाप्त किया और महाप्रसाद ग्रहण कर कुछ विश्राम किया।

सबके महाप्रसाद पाते-पाते संध्या हो गई, इसलिए रात्रि में वहाँ ठहरने की व्यवस्था कर सब संकीर्तन करने लगे। दुकानदार आदि व्यवसायी लोग, जो मध्याह्न कीर्तन में योग न दे सके थे, इस समय आकर शामिल हो गये। कोई-कोई अपनी दुकान या घर से दीपक ले आया और नेत्रों को सफल करने लगा। रात्रि में साढ़े-दस बजे कीर्तन समाप्त हुआ। बहुत से लोगों ने आहार-विहार आदि की व्यवस्था के लिए अनुरोध किया। पर बाबाजी महाशय ने साथियों का अभिप्राय जान निषेध कर दिया। सब लोग अपने-अपने स्थान को चले गये।

दूसरे दिन प्रातःकृत्यादि समाप्त कर चलने की तैयारी में लगे थे, तभी पूर्वोक्त दुकानदार एक लम्बा चिट्ठा लेकर आया और बाबाजी महाशय के सामने रख दिया। बाबाजी महाशय ने पूछा 'बाबा, यह क्या?' दुकानदार बोला, 'कल का हिसाब।' सुनते ही जटिया रामदास बाबाजी महाशय क्रोध से लाल हो गये और बोले, 'हिसाब कैसा रे? तूने ही तो कहा था वैष्णव सेवा के लिए जो भी सामग्री लगती है, मैं दिया करता हूँ।'

दुकानदार—यह बात तो मैं अस्वीकार नहीं करता, पर मैंने यह कब कहा था कि मैं बिना पैसा-टका लिये ही सेवा किया करता हूँ!

जटिया—तूने नहीं कहा था तो मैं तो तेरा अभिप्राय यही समझा था।

दुकानदार—बाबा, मैं गरीब आदमी हूँ। मेरी इतनी सामर्थ्य कहाँ?

जटिया बाबाजी साथियों को लक्ष्य कर बोले—'जाओ सालो, मुझे इस दुकान में गिरवी रख जाओ।'

बाबाजी महाशय कुछ हँसकर बोले, 'आपको गिरवी रख कर उसका पैसा चुकना तो दूर रहा उल्टी आपकी खुराक और गरीब को देनी होगी।'

कर्ताबाबाजी महाशय और अन्यान्य साथी दुकानदार से कहने लगे, 'तुम्हें पहले ही स्पष्ट कर देना चाहिए था। हम गाँव से भिक्षा माँग लाते। अब हम कहाँ से लायँ?'

दूसरे दुकानदार भी उसे बुरा भला कहने लगे। दुकानदार किंकर्तव्यविमूढ़ भाव से बैठा चुपचाप सबकी डाँट सह रहा था। कुछ देर बाद बाबाजी महाशय बोले, 'तुम्हें कितना पैसा चाहिए?'

दुकानदार—पैंतालीस रुपये साढ़े तेरह आने।

बाबाजी—बाबा, मैं क्या कहूँ। मेरी बात का विश्वास करो तो कुछ व्यवस्था करूँ।

दुकानदार—आप जो भी करें मैं उसके लिए तैयार हूँ।

बाबाजी—यदि तुम चार-पाँच दिन पीछे नवद्वीप में हमारे गुरुदेव के आश्रम पर आ सको तो हम भिक्षाकर तुम्हारा पैसा दे सकते हैं। पर मैं अपरिचित भिखारी और वैरागी हूँ। मेरे ऊपर तुम्हारा विश्वास हो सकेगा?

दुकानदार—बाबा, आपकी बात पर मुझे पूरा विश्वास है, आप अपने हाथ से कागज लिख दें।

बाबाजी महाशय हँस कर बोले, 'अच्छा बाबा, ऐसा ही होगा।' इसी समय ललितादासी बोलीं, 'क्यों न साथियों से पूछ देखा जाय। यदि किसी से उधार भी मिल सके तो क्यों न इसके पैसे अभी चुकता कर दिये जायँ?' बाबाजी महाशय बोले, 'चेष्टा कर देखो। निताइचाँद की जैसी इच्छा।' तब ललितादासी सबसे पूछ-ताछ कर तेरह रुपये पन्द्रह आने लाईं। बाबाजी महाशय ने कहा, 'जो कुछ भी मिला है, उसे दे दो' और दुकानदार से बोले, 'बाबा इतना पैसा काट कर बाकी का कागज लिखे देता हूँ। तुम पाँच दिन बाद नवद्वीप में हमारे गुरुदेव के आश्रम से ले आना।' दुकानदार ने इसे स्वीकार किया और दुकान से एक कागज लाकर बाबाजी महाशय को लिखने को दिया। बाबाजी महाशय ने पूछा, 'कितना पैसा बाकी रहा?'

दुकानदार—साढ़े तेरह आने मैं छोड़े देता हूँ। बाकी में से तेरह रुपये पन्द्रह आने निकाल कर आप इकत्तीस रुपयों का कागज लिख दीजिए।

बाबाजी—ना बाबा, ऐसा क्यों। मैं पूरे बत्तीस का लिखे देता हूँ, क्योंकि इसके लिए शायद तुम्हें कई दिन तक चिन्ता रहेगी। इसलिए तो तुम्हें कुछ और अधिक ही देना चाहिए।

उपस्थित लोग बाबाजी महाशय के व्यवहार से बहुत मुग्ध हुए। बाबाजी महाशय इस प्रकार दुकानदार को प्रबोध दे और मृदु वाक्यों से विदा ले नाम कीर्तन करते-करते वहाँ से रवाना हुए।

गाँव चलकर सब लोग घोलापाड़ा के निकट किसी बगीचे में एक पेड़ के नीचे जा बैठे। स्थान बड़ा मनोरम था। इसलिए सबने वहीं ठहरने का निश्चय किया।

यथासमय सबने स्नानाह्निक आदि कर कीर्तन आरम्भ किया। ग्राम में अपूर्व संकीर्तन-ध्वनि सुन चारों ओर से लोग उमड़ पड़े। निर्जन कानन जनसमूह से परिपूर्ण हो गया। बड़ी चहल-पहल थी। ग्रामवासियों में से कोई लकड़ी इकट्ठा कर रहा था, कोई जल ला रहा था, कोई केले के पत्ते इत्यादि, जिसकी जैसी सामर्थ्य थी उसके अनुसार सब सामग्री एकत्र करने में लगे थे। ग्रामवासियों का इस प्रकार का आर्तिपूर्ण आग्रह देख ये लोग विमुग्ध हो गये। किसी का साहस न हुआ कि उन्हें निषेध करे। अपूर्व कीर्तन-ध्वनि का आकर्षण बढ़ने लगा। श्रीधाम नवद्वीप के निकट के गाँव में बसने वाले लोग सदा ही कीर्तन सुनते थे। परन्तु आज का कीर्तन उनके कानों को कुछ और तरह का लग रहा था। वे आपस में कह रहे थे, 'ऐसा कीर्तन तो हमने कभी सुना नहीं। कीर्तन के एक-एक शब्द से तन-मन और प्राण ऐसे खिंच रहे हैं कि संसार की सुध बिसर रही है। नवद्वीप में तो बराबर ही कीर्तन सुनते रहते हैं, परन्तु हमारी ऐसी मानसिक अवस्था कभी नहीं हुई। नवद्वीप के कीर्तन में कितना साज और सामान होता है। एक-एक दल में चार-चार पाँच-पाँच बड़े-बड़े उस्ताद बजाने वाले होते हैं, बड़े-बड़े ताल सुर होते हैं, यहाँ तो कुछ भी नहीं, बस एक खोल बज रहा है। कोई विशेष ताल नहीं है। परन्तु एक-एक शब्द मन और प्राण में न जाने कैसा लग रहा है।' किसी ने कहा, 'वह है व्यावसायिक कीर्तन और यह है नाम-कीर्तन। इसकी शक्ति तो प्रकट होगी ही।' दूसरे कई लोग एक साथ बोल उठे, 'हाँ भाई, हमने बहुत नाम कीर्तन सुना है, परन्तु ऐसी अवस्था कभी नहीं हुई। यह जो महापुरुष आगे गा रहे हैं, उन्हें देखते ही भक्ति होती है। उन्हीं की शक्ति के प्रसाद से हमारे समान पाखण्डियों के हृदय में भी परिवर्तन हो रहा है। आहा! देखते ही मन-प्राण उन पर न्योछावर करने को जी चाह रहा है। मन में होता कि ज्वाला-यन्त्रणामय इस मिथ्या संसार को छोड़ इसी सुखमय संग में रहकर जीवन व्यतीत करें।' इस प्रकार लोगों में अपने-अपने भाव के अनुसार समालोचना चल रही थी। बहुत देर के बाद कीर्तन समाप्त हुआ। यथासमय रसोई हुई। ठाकुर को भोग लगा। भोग-आरति के उपरान्त सबने महाप्रसाद पाया। निताइचाँद की कृपा से बाबाजी महाशय के साथियों के अतिरिक्त करीब दो सौ व्यक्तियों ने और प्रसाद पाया। आनन्द की सीमा न रही। बड़ी धूम-धाम के साथ खान-पान संध्या तक चलता रहा। रात्रि में उसी स्थान पर सबने विश्राम किया। दूसरे दिन प्रातः स्नान-आह्निक समापनपूर्वक सब नाम करते-करते वहाँ से चल दिये।

आज एकादशी है। खान-पान की विशेष व्यवस्था की आवश्यकता नहीं है। इसलिए कर्ताबाबाजी महाशय बोले, 'आज गंगा पार कर सीधे समुद्रगढ़ चलना चाहिए।' सबने इसे स्वीकार किया। घोलापाड़ा घाट से गंगा पार कर कोई साढ़े दस बजे समुद्रगढ़ जा पहुँचे। समुद्रगढ़ से छाड़िगंगा पार कर सब लोग गाँव के एक ओर एक बड़े वटवृक्ष के नीचे बैठ गये।

अपराह्न में बहुत लोग गदाधर पंडित गोस्वामी पाट दर्शन करने चाँपाहाटी गये। कुछ लोग वृक्ष के तले रह गये। यथासमय दर्शन शेष कर सबने रात्रि में वृक्ष के तले विश्राम किया। प्रातःकाल प्रातःकृत्य समाप्त कर श्रीधाम नवद्वीप रवाना हुए। उसी समय गाँव के कई भक्त आकर कहने लगे, 'देखिये, कल हमारे गाँव में आपने उपवास किया है। आज यदि बिना पारण किये चले जायँगे तो हमारा अमंगल होगा। इसलिए आज मध्याह्न ठाकुर भोग के पश्चात् प्रसाद ग्रहण कर जाइए।' भक्तों के अनुरोध से उन्हें रुक जाना पड़ा। गाँववासी चावल, दाल तरकारी इत्यादि जुटाने लगे। रसोई का प्रबन्ध हुआ। ये लोग स्नानादिक करने लगे। तीन घंटे धूमधाम से कीर्तन हुआ। भोग के उपरान्त यथासमय महाप्रसाद ग्रहणकर और कुछ देर विश्राम कर सब नाम-कीर्तन करते-करते श्रीधाम नवद्वीप की ओर चल दिये।

कलकत्ते के अखाड़े में अष्टप्रहर कीर्तन

आज फिर श्रीधाम में एक नये प्रकार का आनन्द छाया है। प्रात:काल बाबाजी महाशय अपने साथियों के साथ 'निताइ गौरांग, निताइ गौरांग, निताइ गौरांग गदाधर' कीर्तन करते-करते नगर में निकले। इधर कई दिन बड़े बाबाजी महाशय श्रीधाम में नहीं थे। इसलिए आज जैसे सब कुछ नया सा लग रहा है। जिसको भी देखते हैं उसे यथायोग्य प्रणाम वन्दना आदि कर कुशल-क्षेम पूछते हैं। इस प्रकार परस्पर मिलन के आनन्द के साथ कीर्तनानन्द क्रमश: प्रबल होता गया। करीब ग्यारह बजे आश्रम लौटकर सबने कीर्तन समाप्त किया। अपराह्न में कलकत्ते के अखाड़े के महन्त श्रीयुत किशोरदास बाबाजी महाशय आकर बोले, 'मेरी बड़ी अभिलाषा है कि अखाड़े में अष्टप्रहर कीर्तन हो।'

बाबाजी—यह तो बड़े आनन्द की बात है।

महन्त—पर एक बात है-व्यवसायी कीर्तनियाओं को पैसा देकर कीर्तन कराने से सुख नहीं होता। यदि आप अनुमति दें और हम सब स्वयं ही कीर्तन कर सकें तो बड़ा अच्छा हो।

बाबाजी—कीर्तन करना है तो इसी प्रकार करना चाहिए।

महन्त—तो किस दिन आरम्भ करें।

बाबाजी—आज ही अधिवास हो और कल नाम।

यह सुन महन्त बड़े आनन्द से सब व्यवस्था करने लगे। सन्ध्या समय अधिवास कीर्तन आरम्भ हुआ। नित्यानन्द प्रभु के मन्दिर के सेवाइत श्रीविश्वम्भरदास बाबाजी महाशय भी आकर उपस्थित हुए और कीर्तन में योग देने लगे। विहारीदास गौरदास प्रभृति आठ बड़े-बड़े वादक भी उपस्थित थे। वे समझते थे कि बाबाजी महाशय बड़ी-बड़ी ताल में गान करेंगे और उन्हें अपनी-अपनी शिक्षा और कौशल का परिचय विशेष रूप से देने का अवसर मिलेगा। परन्तु जो कुछ हो रहा था वह सब इसके विपरीत था। बाबाजी महाशय सीधी ताल में पद गा रहे थे। पहले वादकों का मन कुछ उदास हुआ, परन्तु दो एक टुकड़े बजाते-बजाते ही सब आनन्द में मस्त हो गये। बाबाजी महाशय के कीर्तन का स्वाभाविक नियम था कि जब जिस भाव का कीर्तन करते, तब उसी भाव को मूर्तिमान कर सबको हृदयंगम करा देते। आज भी वैसा ही हुआ। उपस्थित लोग आनन्द में विभोर हो रहे थे। किसी को भी बाह्य स्मृति नहीं थी। भीड़ बहुत थी। किसी ओर भी तिल रखने की जगह नहीं थी। आबाल-वृद्ध-वनिता सब एक दूसरे से कह रहे थे, 'हम बहुतों के मुंह से हरिनाम कीर्तन सुनते रहते हैं, परन्तु हमने आजतक अनुभव नहीं किया कि इसमें इतना आनन्द है। आज जैसे गौरांग-लीला फिर से प्रकट हुई है। अद्वैतप्रभु और सीता ठाकुरानी के साथ महाप्रभु का कथोपकथन कितना मधुवर्षण कर रहा है। यथा-समय कीर्तन समाप्त कर नाम प्रारम्भ किया। नाम का गगनभेदी कण्ठ स्वर सुन भक्तगण सुध-बुध खो एकदम भाग कर आने लगे। कैसा आकर्षण! नाटमन्दिर में लोग समा नहीं रहे थे, फिर भी सबकी इच्छा थी नाम में योग देने की। कीर्तन समाप्त कर ये लोग आश्रम पहुँच गये।

'कालस्य कुटिला गतिं।' इतने आनन्द के पश्चात् भी समालोचना आरम्भ हुई। समालोचना किसी व्यक्ति को लेकर हुई। कोई-कोई किशोरदास महात्मा से कहने लगे, 'तुम तो इतने बड़े महन्त हो, तुम्हारे अखाड़े में नया नाम होना किसी प्रकार भी उचित नहीं?' महन्त मधुर मुस्कान के साथ बोले, 'मेरी समझ में तो नहीं आता, इस नाम में कौनसा नया नाम है। आप लोग मुझे यह समझा दें कि 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम', नाम में कौनसा नया नाम है?' किसी-किसी ने कहा 'नाम नया नहीं होने पर भी महाप्रभु की आज्ञा का उल्लंघन तो हो ही रहा है। महाप्रभु ने 'हरे कृष्ण नाम' दिया है तब हमारा उस नाम को छोड़ और कोई करना अनुचित है।' महन्तजी बोले, 'अच्छा, यदि आप लोगों को सन्देह है तो चलिये, बाबाजी महाशय से पूछ कर सन्देह दूर कर लें।' इतना कह सबको साथ ले वे बाबाजी महाशय के निकट पहुँचे और उनसे सारा वृत्तान्त कहा। वे धीरे-धीरे कहने लगे, 'बाबा, महाप्रभु की लीला के सम्बन्ध में चैतन्यचरितामृत में जो कुछ लिखा है, उससे 'हरे कृष्ण

हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे' इस नाम का उच्च स्वर से खोल करताल के साथ कीर्तन-मण्डली में महाप्रभु ने कभी कीर्तन किया हो, ऐसा नहीं लगता। नवद्वीप में 'हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः गोपाल गोविन्द नाम श्रीमधुसूदन' एवं 'हरि ओम राम राम' नामकीर्तन छोड़ अन्य किसी संकीर्तन की बात का श्रीचरितामृत में उल्लेख हो ऐसा नहीं लगता। श्रीचैतन्यभागवत में 'हरि ओम राम राम, हरि ओम राम राम, एइ मते नगरे उठिलो ब्रह्म नाम।' बस इतना ही उल्लेख है। इसके पश्चात् महाप्रभु से जब भक्तों ने कीर्तन के बारे में पूछा तो-

आपनि सभारे प्रभु करेन उपदेश।
कृष्ण नाम महामन्त्र शुनह विशेष॥
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥
प्रभु बोले कहिलाम एइ महामन्त्र।
इहा गिया जपो सबे करिया निर्बन्ध॥
इहा हइते सर्व सिद्धि हइबे सभार।
सर्व क्षण बोल इथे विधि नाहि आर॥
दशे पाँचे मिलि निज दुयारे बसिया।
कीर्तन करह सभे हाते तालि दिया॥
हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः।
गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन॥
कीर्तन कहिलुं एइ तोमा सभाकारे।
स्त्रिये पुत्रे बापे मिलि कर गिया घरे॥
प्रभु मुखे मन्त्र पाइ सभार उल्लास।
दण्डवत करि सभे गेला निज वास॥
निरवधि सबाई जपेन कृष्ण नाम।
प्रभूर चरन कायमने करे ध्यान॥
सन्ध्या हैले आपन दुयारे सभे मिलि।
कीर्तन करये सभे दिया करतालि॥

(चैतन्यभागवत मध्य खण्ड, 23 वाँ अध्याय)

इसी अध्याय में अन्यत्र-

नगरे उठिल महा कृष्ण कोलाहल।
हरि बलि ठाइँ ठाइँ नाचये सकल॥
'हरि ओम राम राम हरि ओम राम राम।'
हरि बलि नाचये सकल भाग्यवान॥
ठाइँ ठाइँ एइ मत मिलि दशे पाँचे।
केहो गाय केहो बाय केहो माझे नाचे॥
लक्ख लक्ख कोटि कोटि हइल सम्प्रदाय।
आनन्दे नाचिया सर्व नवद्वीपे जाय॥
हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः।
गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन॥
केहो केहो नाचये हइया एकमेलि।
दशे पाँचे नाचे केहो दिया करतालि॥ इत्यादि

★ ★ ★ ★ ★

नगरिया लोके प्रभु जबे आज्ञा दिल।
घरे घरे महाकीर्तन करिते लागिल॥
हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः।
गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन॥ इत्यादि

(चैतन्यचरितामृत, आदि खण्ड, 17वाँ परिच्छेद)

★ ★ ★ ★ ★

दक्षिण भ्रमण के समय महाप्रभु ने यह कीर्तन किया था-

कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे॥
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण पाहिमाम्।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण रक्षमाम्॥
राम राघव राम राघव राम राघव रक्षमाम्।
कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव त्राहिमाम्॥

खोल करताल के साथ हरे कृष्ण महामन्त्र कीर्तन करने का विधान मेरी समझ में नहीं आता। इस नाम का यदि उच्चस्वर से कीर्तन किया जाय तो इसे महामन्त्र कैसे कह सकते हैं? मन्त्र मात्र अप्रकाश्य है। फिर महामन्त्र का घर-घर जाकर उच्चस्वर से कीर्तन करने का भाव क्या है, मैं नहीं समझ पाता। इसके अतिरिक्त मन्त्र रूप में शिष्य के कान में इसे सुनाने की प्रथा है, तो उच्च स्वर से इसका कीर्तन क्यों होता है, यदि मुझे समझा सकें तो बड़ी कृपा होगी।

आप कहेंगे कि हरिदास ठाकुर उच्च कण्ठ से एक लाख हरे कृष्ण नाम जप करते थे। यह सत्य है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि 'हरे कृष्ण' महामन्त्र का उच्च स्वर से कीर्तन करने की बात कहीं पाई जाती है या नहीं, इसमें बड़ा संदेह है, क्योंकि जहाँ-जहाँ भी

इसका उच्चस्वर से प्रकाश हुआ है, वहाँ गिनती रखी गई है। गिनती रखने से ही उसकी जप में गणना हो जाती है। श्रीरूप गोस्वामी ने महाप्रभु के अष्टक में कहा है-

हरेकृष्णेत्युच्चैः स्फुरितरसनो नामगणना-
कृतग्रन्थि-श्रेणी-सुभग-कटिसूत्रोज्ज्वलकरः।
विशालाक्षो दीर्घार्गलयुगलखेलाञ्चितभुजः
स चैतन्यः किं मे पुनरपि दृशोर्यास्यति पदं॥

चैतन्यचंद्रामृत में प्रबोधानन्द सरस्वती जी ने लिखा है-

बध्नन् प्रेमभर-प्रकम्पित-करोग्रन्थीन् कटिडोरकैः
संख्यातुं निजलोकमंगलहरेकृष्णेति नाम्नां जपन्।
अश्रुस्नातमुखः स्वमेवहि जगन्नाथं दिदृक्षुर्गता-
यातैर्गौरतनुर्विलोचनमुदं तन्वन् हरिः पातु वः॥

बाबा, यह मत समझना कि मैं जबरदस्ती तुम्हारे ऊपर यह मत लाद रहा हूँ। महाप्रभु ने जैसे अन्यान्य नाम-कीर्तन करने का आदेश दिया है, वैसे ही यदि 'हरे कृष्ण' महामंत्र कीर्तन करने का आदेश दिया होता, तब मुझे कोई आपत्ति न होती। उन्होंने तो स्पष्ट ही कहा 'कहिलाम एइ महामंत्र, इहा गिया जप सभे करिया निर्बन्ध' और साथ ही साथ यह भी कहा है कि-'हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः, गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन' कीर्तन कहिलु एइ तोमा सभाकारे। स्त्रिये पुत्रे बापे मिलि कर गिया घरे।' इसके बाद विधि-निषेध की बात और क्या बाकी रही?

यह तो हुई शास्त्र की बात। अपने-अपने मन में निरपेक्ष भाव से विचार कर देखो। यदि परम दयालु निताइ गौरांग देव अवतीर्ण न होते तो हमारी कैसी दुर्दशा होती। व्रजभाव की उपासना हमें कहाँ मिलती? हममें तो कभी किसी ने इस बात की धारणा ही नहीं की थी कि प्रेम जैसी वस्तु हमारे जैसे जीवों की प्राप्ति का विषय हो सकती है। विचार कर देखिये कि जिन्होंने शिव, ब्रह्मा आदि को भी दुर्लभ व्रज की निगूढ़ प्रेमसम्पत्ति जहाँ-तहाँ लुटाई है, उनका क्या एक बार नाम भी लेने में दोष है? दिन बीतने पर एक बार उनके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन को क्या अपने चिर-संस्कार-विरुद्ध समझ कर त्याग देना उचित है?

श्रीचैतन्यचरितामृत आदि खंड, अष्टम परिच्छेद में लिखा है-

बहु जन्म कर जदि नामसंकीर्तन।
तबु नाहिं पाय कृष्णपदे प्रेमधन॥
कृष्ण जदि छुटे भक्ते भुक्ति मुक्ति दिया।
कभु प्रेम भक्ति ना देय राखे लुकाइया॥
हेन[1] प्रेम चैतन्य निताइ दिल जथा तथा।
जगाइ माधाइ पर्यन्त अन्येर का कथा॥
स्वतंत्र ईश्वर प्रेम निगूढ़ भाण्डार।
बिलाइल[2] जारे तारे ना कैल विचार॥
अद्यापिह[3] देख चैतन्य नाम जेई लय।
कृष्ण प्रेमे पुलकाश्रु-विह्वल शे हय॥
नित्यानन्द बलिते[4] हय कृष्ण प्रेमोदय।
आउलाय शकल अङ्ग अश्रु गङ्गा बय॥
कृष्ण नामे करे अपराधेर विचार।
कृष्ण बलिते अपराधीर ना हय विकार॥
एक कृष्ण नामे करे सर्व पाप नाश।
प्रेमेर कारण भक्ति करेन प्रकाश॥
प्रेमेर उदये हय प्रेमेर विकार।
स्वेद कम्प पुलकादि गद्गदाश्रुधार॥
अनायासे संसार क्षय कृष्णेर सेवन।
एक कृष्ण नामेर फले पाइ एत धन॥
हेन कृष्ण नाम जदि लय बहु बार।
तबे जदि प्रेम नहे नहे अश्रुधार॥
तबे जानि अपराध आछये प्रचुर।
कृष्णनाम बीच ताहे ना हय अंकुर॥
चैतन्य नित्यानन्दे नाहि ए सब विचार।
नाम लइते प्रेम देन बहे अश्रुधार॥
स्वतन्त्र ईश्वर प्रभु अत्यन्त उदार।
तारे ना भजिले कभु ना हय निस्तार॥

इस प्रकार के अनेक वाक्यों द्वारा हमारे पूर्वाचार्यों ने निताइ गौरांग का भजन करने के लिए कहा है। फिर भी हमें इसमें आपत्ति होती है। हम समझते हैं कि यह

1. ऐसा। 2. लुटाया। 3. आज भी। 4. बोलने से।

एक नया नाम है। अन्यान्य सम्प्रदाय के लोग यदि ऐसी बात कहें तो एक बार सहन हो सकती है। पर निताइ-गौरांग के उपासकगण भी यदि कहें कि निताइ-गौर नाम करना नया नाम लेना है तो बड़े कष्ट की बात है। कहाँ तो हमें यह प्रयत्न करना चाहिए कि सर्वसाधारण हमारे उपास्य देव का भजन करें और कहाँ हम उन्हीं की नाना प्रकार से निन्दा करते हैं जो उनका भजन करते हैं, अर्थात् हम चेष्टा करते हैं कि लोग यह नाम न ले सकें। इससे दूसरों का उपकार होता है या अपकार, यह विचारने की बात है। मैंने महंतजी से इस नाम के लिये कोई विशेष अनुरोध नहीं किया था। उनकी इच्छा हो तो कोई और नाम भी करा सकते हैं।'

तब वैष्णवगण बोले, 'क्यों, हमने तो सुना है कि आप दूसरा कोई नाम नहीं मानते और न उसका कीर्तन करते हैं।'

बाबाजी—मेरी बात छोड़िए। मैं तो बड़ा पाषंडी अज्ञानी हूँ। कैसा भी विश्वास नहीं करता। फिर भी आप ऐसी कृपा करें कि मेरी गणना उन भांड लोगों में न हो जो भगवद्वाक्य, भगवन्नाम और भगवत्स्वरूप के एक प्रकार को मानते हैं और दूसरे को नहीं। श्रीमन्महाप्रभु ने कहा है-

किछुइ ना माने हय सेहत पाषण्ड।
एके माने आरे ना माने शेइ मत भंड॥
पाषंडेर उद्धार करिब अवहेले।
भंडेर निस्तार नाइ कोन काले॥

यद्यपि इस वाक्य का उल्लेख भगवत्स्वरूप के सम्बन्ध में किया गया है, तो भी इसे सर्वत्र लगाना चाहिए। मुझमें प्रीति, भक्ति, विश्वास तो कुछ भी नहीं है। फिर भी श्रीगुरुदेव के आदेश से निताइ-गौर नाम करने से अन्य नामों की अपेक्षा कुछ आनन्द की अनुभूति होती है। इसीलिए मैं यह नाम करता हूँ। मेरा यह विश्वास है कि बहुत बड़ा पाषंडी यदि एक बार भी निताइ-गौरांग का नाम ले तो उसके हृदय में आनन्द होगा ही होगा।

वैष्णवगण और कुछ न कह दण्डवत् प्रणाम कर चले गये। बाबाजी महाशय ने भी सबके प्रति-नमस्कार कर विश्राम किया। दूसरे दिन तड़के किशोरदास महन्तजी आकर बाबाजी महाशय और उनके साथियों को ले गये। नाम आरम्भ होने के पूर्व बाबाजी महाशय ने पूछा, 'कौनसा नाम होगा?' महंतजी ने उत्तर दिया, 'आप निःसंकोच भाव से 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' नाम आरम्भ करें। इसमें यदि कोई योगदान करे तो बड़ी अच्छी बात है; न करें तो क्या किया जाय। भगवदुपासना के सम्बन्ध में मैं और किसी का मत सुनने को तैयार नहीं। आप जैसी विवेचना करेंगे, वही मुझे शिरोधार्य होगी। आप मुझे अपनी छाया के समान अपना अनुगत समझें।' वास्तव में महन्तजी इसी प्रकार बाबाजी महाशय के साथ व्यवहार करते थे; यहाँ तक कि उनके अनुगत व्यक्ति भी जिस प्रकार का व्यवहार नहीं कर पाते थे, महंतजी सहज में कर लेते थे। बाबाजी महाशय भी महंतजी के प्रेम से इतने विमुग्ध थे कि अपनी इच्छा न होते हुए भी उनके स्नेहयुक्त आग्रह को टाल नहीं पाते थे। आज भी वही हुआ। महन्तजी के विशेष आग्रह से नाम आरम्भ हुआ। दुकानदार लोग अवकाश पाते ही आकर नाम में योग देने लगे। कोई-कोई किसी काम के लिए जाते हुए नाम से इतना आकृष्ट हुए कि काम-काज भूलकर उसमें सम्मिलित हो गये। दो-ढाई घंटे तक उन्हें कोई सुध-बुध ही न रही। दिन और रात बीत गये। किसी को पता न चला।

दूसरे दिन सात बजे के लगभग नगर-कीर्तन प्रारम्भ हुआ। जिस रास्ते से कीर्तन जा रहा था मानो वहाँ का कण-कण भाव-विभोर था। बाबाजी महाशय पैर पर पैर रखकर नृत्य करते जा रहे थे। सात-आठ खोल बज रहे थे। नाम की ध्वनि से दसों दिशायें गूँज रही थीं। जन-समुद्र उमड़ रहा था। सब मंत्रमुग्ध की भाँति इनके साथ-साथ चले जा रहे थे। बहुत से स्थानों में होते हुए कीर्तन-मण्डली अखाड़े में पहुँची। वहाँ बहुत देर तक जोर-शोर से कीर्तन होता रहा। उसके पश्चात् संकीर्तन समापन-सूचक पद का कीर्तन होने लगा। आनन्द की सीमा न रही। बाबाजी महाशय अर्धमुद्रित नेत्रों से खड़े थे, नेत्रों के जल से वक्षस्थल भीग रहा था, पुलकादि सात्विक विकारों से शरीर विभूषित था। एकला निताइ मन्दिर सेवाइत श्रीविश्वम्भरदास महन्त और गौरदास वादक बीच-बीच में ऐसा आखर देते थे,

जिससे आनन्द–सिंधु उमड़ पड़ता था। 'चैतन्य विलास सिन्धु, कल्लोलेर एक बिन्दु, तार कणा चाहे कृष्णदास' इस पद में ही डेढ़ घंटा बीत गया। किसी को बाह्य स्मृति न रही। आनन्द पवन बहता चला जा रहा था। एक बजे के लगभग दधिमंगल कर अनिच्छापूर्वक कीर्तन की समाप्ति की गई। क्रमश: सबने स्नानाह्निक आदि शेष कर महाप्रसाद ग्रहण कर विश्राम किया।

घटक के घर कीर्तन

इसी प्रकार आनन्द से दिन बीतने लगे। एक दिन बाबाजी महाशय नाना स्थान भ्रमण करते हुए श्रीयुत गोपाल घटक महाशय के घर पहुँचे। यद्यपि वे वेशधारी वैष्णव थे, उन्हें सब लोग घटक महाशय कहकर ही पुकारा करते थे। वे राढ़ी श्रेणी ब्राह्मण थे। घटक उनकी उपाधि थी। हम पहले ही कह चुके हैं कि बाबाजी महाशय के साथ उनका भ्रातृ–भाव था।

बाबाजी महाशय और घटक महाशय एक साथ प्रसाद पाने बैठे। नानारूप कथा–वार्ता, हँसी–मजाक चल रहा था। घटक महाशय बोले, 'उस दिन कलकत्ते के अखाड़े का अष्टप्रहर कीर्तन बड़ा मधुर लगा। एक बार यहाँ कीजिए न।'

बाबाजी—हाँ अवश्य। मैं भी मन ही मन यही सोच रहा था।

घटक—क्या-क्या सामग्री जुटानी होगी, एक सूची बना ली जाय।

बाबाजी—भाई सूची का क्या होगा, तुम तो सब जानते ही हो। सब कर लेना। आज ही अधिवास होगा। मैं सन्ध्या समय खोल करताल लेकर आ जाऊँगा।

घटक—रात्रि में महाप्रसाद की व्यवस्था करनी होगी न।

बाबाजी—क्या जरूरत है? सदा ही तो बाबाजी लोग तुम्हें परेशान करते रहते हैं।

घटक—तब भी छोरे–छापरे नाम करके खाली मुँह चले जायँ, यह मुझे सहन नहीं होगा।

बाबाजी—अच्छा, तुम्हारी जैसी इच्छा।

इतना कह वे आश्रम चले गये। इधर घटक महाशय परमानन्दपूर्वक नाना प्रकार की सामग्री एकत्र करने लगे। यथासमय बाबाजी महाशय साथियों को ले नाम करते–करते घटक महाशय के घर आ पहुँचे और अधिवास कीर्तन आरम्भ किया। श्रोताओं की भीड़ लग गई। आनन्द का पवन बहने लगा। बाबाजी महाशय के कीर्तन की एक बड़ी विशेषता यह थी कि जिस समय जिस भाव और रस का कीर्तन करते, उस समय उस भाव और रस को मूर्तिमान कर सर्वसाधारण के लिए बोधगम्य कर देते। आज भी ऐसा ही हुआ। शान्तिपुर में अद्वैत के घर मानो महाप्रभु सीता ठाकुरानी के साथ कथावार्ता कर रहे हैं, इस आशय का कीर्तन बहुत देर तक करने के पश्चात् बड़े वेग से नाम आरम्भ किया। बाजार से अनेक दुकानदार आकर कीर्तन में योग देने लगे। रात्रि लगभग ग्यारह बजे नाम समाप्त कर और प्रसाद ग्रहणकर सब आश्रम लौटे। दूसरे दिन प्रात: नाम आरम्भ हुआ। अपूर्व नामकी ध्वनि नाना प्रकार के लोगों को आकर्षित करती रही। नौ बजे के लगभग नित्यराधानन्ददास बाबाजी तथा पाँच और बाउल संप्रदायी वैष्णव वहाँ आकर उपस्थित हुए। उनमें से कई मूर्तियों के दर्शन मात्र से भक्ति का उद्रेक होता था। सब दीर्घाकार थे। सबके नाभि तक लम्बी दाढ़ी थी। सब संकीर्तन के एक ओर आकर खड़े हो गये। मंगलमय प्रभु की जाने क्या इच्छा थी। ठीक उसी समय बाबाजी महाशय ने ऐसा गीत आरम्भ किया, जिसमें उपासना तत्व, भक्ति पथ में कंटक, आहारादि के साथ उपासना का अति निकट सम्बन्ध, श्रीमूर्ति का नित्यत्व इत्यादि विषयों का वर्णन था। गान के साथ साथीगण 'भज निताइ गौर राधेश्याम' की टेक दुहराते जाते थे। बाबाजी महाशय के मुख से झंझावात के समान पद–स्फूर्ति हो रही थी। पूर्वोक्त महात्मागण एक तरफ खड़े गान सुन रहे थे और अश्रुजल से उनका वक्षस्थल भीग रहा था। उनमें से नित्यराधानन्द बाबाजी अत्यन्त अधीर हो पड़े। वे बीच–बीच में इतने आर्त स्वर से रोदन करते कि बड़े से बड़े पाषंडियों का हृदय द्रवित हो जाता। उस समय बाबाजी महाशय आविष्ट होकर गाने लगे–

जा गेछे जा गेछे जा,[1] जा आछे सामाल ता,[2]
एखनओ समय आछे भाइ।[3]
पूर्व दोष परिहरि, मन प्रान एक करि,
भज भज गौरांग निताइ।
धन्य कलिजुग धन्य, जाहे हइला अवतीर्ण,
निताइ गौरांग दुटि भाइ॥
पाप ताप मेगे नेय[4], प्रेम धन जेचे देय[5],
हेनो दाता आर भवे नाइ॥
जाति कुल नाहि बाछे, जारे देखे आपन काछे,
प्रेम भरे देय आलिंगन।
हेन प्रभु परिहरि, मिछे[6] अभिमान करि
आपना के बास एक जन।[7]
निशि ते मरिया जाओ, दिवसे परान पाओ,
तिले तिले कत भाव हय।[8]
त्रयात्मिक-व्याधि जत, बेड़िया आछये कत,
कि जानी कखन किबा हय॥
हेन नर देह धरि, दास भाव परिहरि,
आपना के आपनि भजाओ।[9]
वासनार दास हइया, मिछा लोक भुलाइया,
रौरव माझारे केने जाओ।
कपटता परिहरि भज निताइ गौर हरि,
अपराधे पावे परित्राण॥
चित्त सन्ध तम जाबे, प्रेमेर उदय हबे,
तबे तोर हइबे कल्याण।

बाबाजी महाशय ने इस प्रकार के न जाने कितने पद गाये। बारह बज गये। किसी को सुध-बुध न रही। सभी प्रेम में मतवाले और बाह्यज्ञान-रहित थे। गोपाल घटक महाशय बोले, 'बाबा, बहुत समय हुआ। छह घण्टे से लगातार कीर्तन हो रहा है। अब स्नानादि कीजिए न।' बाबाजी महाशय जैसे निद्रा से जाग कर बोले, 'अच्छी बात है।' वे कीर्तन समाप्त कर स्नान के लिए जा रहे थे। नित्यराधा बाबाजी उनके चरणों में गिर कर रोने लगे। उन्होंने झट उन्हें उठा सीने से लगाया और बोले 'भाई, भय क्या है? गौरांग अवतार परम दयालु अवतार है। हम कितने ही स्वतंत्र क्यों न हों, वे कभी हमारा परित्याग नहीं करते।' इसी समय से बाबाजी महाशय के साथ नित्यराधा बाबाजी महाशय का भ्रातृभाव हो गया। उनका आचार-विचार धीरे-धीरे विशुद्ध हो गया। उन्होंने अपने अखाड़े में निताइ-गौरांग सेवा की स्थापना की और एक आदर्श महापुरुष के रूप में विख्यात हुए। उपासना के सम्बन्ध में जब उन्हें कोई सन्देह होता तो बाबाजी महाशय के साथ इष्ट-गोष्ठी कर उसे दूर कर लेते।

इस प्रकार परमानन्दपूर्वक दिन व्यतीत हुआ। दूसरे दिन साढ़े-सात बजे के लगभग बाबाजी महाशय नगर-कीर्तन के लिए निकले। उस दिन जैसा आनन्द हुआ, शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। यथासमय नगर-कीर्तन समाप्त कर सब घर लौटे और नाम-यज्ञ के पश्चात् स्नानादि कर और महाप्रसाद ग्रहण कर विश्राम किया।

पुरी प्रत्यावर्तन

श्रीधाम नवद्वीप में बाबाजी महाशय अपनी भक्त मण्डली के साथ इसी प्रकार नाना भाव के संकीर्तनानन्द में दिन व्यतीत करने लगे। एक दिन वे आश्रम में बैठे थे। अकस्मात् कटक से आनन्द मित्र की बीमारी का तार आया, जिसमें उनसे वहाँ जाने के लिए बहुत अनुरोध किया गया था। नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी उनसे कटक जाने के लिए विशेष आग्रह करने लगे, पर उन्होंने कहा, 'निताइ की इच्छा से जो कुछ होना है, होगा। मैं चेष्टा करके तो यहाँ आया नहीं था और चेष्टा करके जा भी नहीं पाऊँगा। उनका कोई प्रयोजन हुआ तो भेज देंगे।' पहले से ही रामदादा और नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी कलकत्ते जाने की तैयारी कर रहे थे। तीन बजे स्टीमर छूटने वाला था। ठाकुर का भोग-राग हुआ, पंगत हुई। खीर-भोग के लिए कुछ दूध और मीठे का प्रबंध हुआ था। ललितादासी की इच्छा थी कि संध्या के पश्चात् निकुञ्ज भोग के लिए खीर बनाई जाय, जिससे ठाकुरभोग के पश्चात् वैष्णवगण भली प्रकार प्रसाद पा सकें। बाबाजी महाशय बोले, 'नहीं, राधाकुण्ड मिलन

1. जो गया, सो गया, 2. जो है उसे सम्हाल, 3. ओ भाई, अब भी समय है। 4. वे पाप ताप माँग कर ले लेते हैं, 5. प्रेम-धन बुलाकर देते हैं।, 6. मिथ्या, 7. अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व का अभिमान करते हो।, 8. क्षण-क्षण में कितने भाव बदलते हैं।, 9. स्वयं अपने आपको भजते और भजवाते हो।

के समय भोग देना चाहिए, क्योंकि राम और बटु का कुछ मीठा मुँह करके जाना अच्छा है।' यह सुन ललितादासी के बड़े प्रेम से उसी समय खीर-भोग प्रस्तुत कर बाबाजी महाशय के आदेश से सबको पंगत में बिठा दिया। इधर बाबाजी महाशय ने भी जल्दी-जल्दी प्रसाद पा लिया। यथासमय रामदादा और नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी जाने के पूर्व सबसे विदा लेने लगे। जैसे ही बाबाजी महाशय के निकट विदा माँगने पहुँचे, वे भी चादर बगल में दबा उनके साथ जाने लगे। साथियों ने समझा कि बाबाजी महाशय कौतुक कर रहे हैं। जब वे आश्रम के बाहर पहुँचे, ललितादासी बोलीं, 'क्या सचमुच आप जा रहे हैं? कल ग्रहण होकर चुका है। सात दिन तक यात्रा नहीं हो सकती? ऐसी अवस्था में हम लोगों को यहाँ छोड़ आप कैसे जायँगे?' बाबाजी महाशय कुछ मुस्कराते हुए बोले, 'जो भी हो। बहुत थोड़े समय में निताइचाँद तुम्हारी व्यवस्था कर देंगे। तुम सावधान रहना।' इतना कह तेजी से स्टीमर घाट की ओर चल दिये। साथी चित्र-लिखित के समान उनकी ओर ताकते रह गये और विह्वल भाव से परस्पर कहने लगे, 'क्या सचमुच बाबाजी महाशय चले गये? खूब! न किसी से कुछ कहा, न कोई तैयारी की।' किसी ने कहा, 'ऐसा लगता है कि वे कहीं जायँगे नहीं। केवल हम लोगों की परीक्षा कर रहे हैं।' इस प्रकार की समालोचना चल ही रही थी कि रामदादा, नित्यस्वरूप और बाबाजी महाशय स्टीमर पर जा बैठे। बाकी सब लोग निराश हो आश्रम को लौट आये।

बाबाजी महाशय, रामदादा और नित्यस्वरूप एक दिन कलकत्ते में रुकते हुए कटक आनन्द के घर पहुँचे। आनन्दबाबू ने अस्वस्थ होते हुए भी बाबाजी महाशय को देखते ही आनन्दोत्फुल्ल भाव से उठकर उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया और अपने निकट बिठाया। उन्होंने पूछा, 'बीमार कैसे हुए?'

आनन्द—बाबा, आप ही जानें। मैं तो आपकी सन्तान हूँ, और क्या कहूँ?

बाबाजी—अच्छा, तुम्हारे मन में क्या आ रहा है?

आनन्द—मेरे मन में आ रहा है, मैंने बहुत पाप किये हैं और कर रहा हूँ। उनका संशोधन करने के लिए आप मुझे कुछ कष्ट देकर चैतन्य कर रहे हैं। किन्तु मैं ऐसा पाषंडी हूँ कि किसी प्रकार भी चैतन्य नहीं हो रहा।

बाबाजी—बाबा, चिन्ता की क्या बात है? निताइ की कृपा से बहुत हो गया है, जो थोड़ा बहुत रह गया है उसका संशोधन भी वे शीघ्र कर लेंगे।

आनन्द—बाबा, औषधादि का सेवन बहुत किया है और कर रहा हूँ। अब ऐसी कृपा कीजिए कि चरणामृत या अधरामृत छोड़ और कुछ न लेना पड़े।

बाबाजी—भय की क्या बात है? जिसका भाव शुद्ध होता है, उसकी सहायता भगवान् निश्चय ही करते हैं। जीव के आगे-पीछे, दाहिने-बायें, ऊपर-नीचे उनकी सत्ता नित्य विराजमान है। जगत की सत्ता उनके बिना नहीं रह सकती। परन्तु जगत् के बिना वे भी नहीं रहते। इसलिए कहता हूँ कि अभाव अभियोग जो कुछ भी है उनसे कहो वे मंगलमय हैं। मंगल छोड़ अमंगल नहीं कर सकते। फिर औषधि लेना न लेना, यह अपने मन की बात है। बहुत-से महात्मागण प्राकृत मनुष्य भाव से औषधादि का व्यवहार करते हैं, परन्तु ऐसा करने से उनके भगवान् में विश्वास या भक्ति में कोई कमी नहीं आती बल्कि और वृद्धि होती है। जिनमें औषधादि के सेवन से विश्वास और भक्ति का किसी प्रकार ह्रास होता है, उनके लिये औषधि का प्रयोग न करना ही उचित है। पर एक बात से सावधान रहना चाहिए। स्वयं यदि औषधि न ले और किसी महात्मा को औषधि लेते देखे तो उनके प्रति कटाक्ष न करे और न उनकी अवज्ञा करे।

आनन्द—आप आशीर्वाद दीजिए जिससे ऐसा न हो। मेरे आत्मीय जनों को विशेष रूप से समझा दीजिये कि वे मेरे हृदय में और अधिक दुर्बलता उत्पन्न न करें। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि जिस मुहूर्त में आपके दर्शन हुए हैं, उसी मुहूर्त से मेरी सारी बीमारी ठीक हो गई है।

बाबाजी—बाबा, निताइचाँद से कहो, वे मंगलमय हैं। इतना कह कर बाबाजी महाशय ने आनन्दबाबू को आलिंगन किया। आनन्दबाबू ने भी बाबाजी महाशय का अशेष तापहारी परम मंगलमय आलिंगन प्राप्त कर

अपने को देहरोग तथा भवरोग से मुक्त समझकर परम शान्ति प्राप्त की। वे पत्नी को बुला कर बोले-'आज मैं बाबा का अधरामृत लूँगा। जितनी भी औषधियाँ हैं सबको फेंक घर साफ कर दो।' इधर बाबाजी महाशय के लिए ठाकुर भोग की व्यवस्था हो गई। उन्होंने स्नानाह्निक आदि के पश्चात् महाप्रसाद ग्रहण कर विश्राम किया।

अपराह्न में डिप्टी बालमुकुन्दबाबू के यहाँ से लोग आये और बाबाजी महाशय को ले गये। बालमुकुन्दबाबू का दिमाग चल गया था। वे बिलकुल पागल हो गये थे। उनका विवेक जाता रहा था। बाबाजी महाशय को देखते ही बालक के समान उच्च स्वर में रो-रो कर कहने लगे, 'बाबा, मैं पागल हो गया हूँ। मेरा उद्धार करो, मैं बड़ा अपराधी हूँ, बहुत लोगों को कष्ट दिया है, बहुतों पर अत्याचार किया है। बाबा, बहुत दिनों से आपके दर्शन प्राप्त नहीं हुए। आपके एक बार अङ्क में भरते ही मैं ठीक हो जाऊँगा।' तब बाबाजी महाशय ने उनकी हथकड़ी बेड़ी खोलने को कहा। सब लोग बहुत डरे कि खुलते ही लोगों पर अत्याचार करने लगेंगे। बालमुकुन्दबाबू चीख मार कर बोले, 'केवल एकबार खोल दो जिससे मैं प्राणभर बाबा का आलिंगन प्राप्तकर परम शान्ति लाभ करूँ।' इस प्रकार की कातर उक्ति सुनकर बाबाजी महाशय ने सबसे कहा, 'बाबा उसे खोल दो। वह कुछ भी नहीं करेगा।' खुलते ही बालमुकुन्दबाबू ने दौड़कर बाबाजी महाशय को जकड़ लिया। उन्होंने भी दृढ़ आलिंगन से उनके पाप-ताप हर उन्हें विशुद्ध किया। आलिङ्गन से छूटते ही बालमुकुन्दबाबू एक दम स्थिर हो गये। न वह औद्धत्य रहा न वह वाचालता। ठीक पहले की तरह शान्त भाव से बाबाजी महाशय के पास बैठ गये। बाबाजी महाशय ने पूछा, 'तुम्हारी यह अवस्था कैसे हो गई है?'

बाल-सेटलमेंट के काम में नाना स्थानों में घूमते-घूमते मैं नीमपाड़ा के अखाड़े गया था। नीमपाड़ा के अखाड़े में नाप-जोख करते समय बाबाजी लोगों के साथ कुछ मनोमालिन्य हो गया। मेरी धारणा है कि इस अपराध के कारण ही मेरी यह दुर्दशा हुई।

बाबाजी—वास्तव में यही बात है। तुम्हें देखते ही मेरे मन में यह बात आई थी कि तुमसे कोई वैष्णव अपराध हो गया है। इसीलिये तुमसे यह पूछताछ की थी। निताइ की इच्छा से जो कुछ होना था, हो लिया, अब सावधान रहना चाहिए। शास्त्र में लिखा है-

वैष्णवेते घटे जदि क्षुद्र अपराध।
महामहाभजनेते पड़े जाये बाद॥ इत्यादि

केवल वैष्णव ही क्यों, प्राणिमात्र को किसी प्रकार का उद्वेग देने से उनके प्रति अपराध होता है और उस अपराध से पार्थिव और पारमार्थिक दोनों प्रकार के अमंगल होते हैं। इस बात का सदा ध्यान रखना और मन-वचन-कर्म से सबको सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करना। मेरी राय है कि तुम एक बार वहाँ जा कर यथासम्भव उन लोगों से क्षमा प्रार्थना करो। उससे तुम्हारा परम मंगल होगा। तब बालमुकुन्दबाबू बाबाजी महाशय के चरण पकड़ रोने लगे। बाबाजी महाशय उन्हें आलिंगन कर और अनेक प्रकार से सांत्वना दे श्रीधामपुरी रवाना हुए।

यथासमय पुरी स्टेशन पहुँचे। बाबाजी महाशय जैसे ही उतरे स्टेशन मास्टर और अन्यान्य रेल अधिकारी एवं कर्मचारियों ने आकर प्रणाम किया और नानारूप कुशल-प्रश्न करने लगे। क्रमशः शहर के भीतर प्रवेश करने पर बहुत-से लोग आकर कौतूहलपूर्ण हृदय से नानारूप सुख-दुःख की बातें कहने-सुनने लगे। बाबाजी महाशय जगन्नाथदेव के दर्शन करने गये और वहाँ से झाँजपीटा मठ। बहुत-से साथी श्रीधाम नवद्वीप में थे। इसलिए आश्रम में लोग कम थे। फिर भी आश्रम में त्रिसंध्या कीर्तन और जगन्नाथ मन्दिर में कीर्तन नियमित रूप से चलने लगे।

इस प्रकार कई दिन केन्द्रापाड़ा से श्यामसुन्दरबाबू प्रभृति आकर बाबाजी महाशय और उनके साथियों को केन्द्रापाड़ा ले जाने के लिए विशेष अनुरोध करने लगे। बाबाजी महाशय ने कहा, 'सभी लोग तो श्रीधाम नवद्वीप में हैं। मैं अकेला ही आया हूँ। वे लोग भी आ जायँ तब निताइ की जैसे इच्छा होगी किया जायगा।'

श्याम—मेरी इच्छा है कि आप श्रीबलदेवजी की चन्दनयात्रा का एक बार दर्शन करें। यदि आप चाहें तो उन सबको बुलाने के लिए कुछ खर्च भेज दूँ।

बाबाजी—बलदेवजी की चन्दन यात्रा का दर्शन करने के पश्चात् पुरी में मदनमोहन की चन्दनयात्रा का दर्शन करना संभव हो सकेगा क्या?

श्याम—हाँ, खूब अच्छी तरह दोनों चन्दन यात्राएँ हो सकेंगी। केवल आपकी अनुमति होनी चाहिए। श्रीधाम नवद्वीप से कितने लोगों के आने की बात है?

बाबाजी—तुम्हारी यदि इतनी प्रबल इच्छा है उन्हें बुलाने की, तो मैं क्यों बाधा दूँ। तुम सभी को तो जानते हो। प्रत्येक के नाम चिट्ठी लिख दो तो सुविधा होगी।

श्यामसुन्दरबाबू ने नवद्वीप पत्र लिखे और पुरी आने के लिए सौ रुपये का मनीआर्डर भी कर दिया। बाबाजी महाशय ने भी एक पत्र द्वारा सबको पुरी आने का आदेश दिया। पुरी आने का आदेश पाकर उनके आनन्द की सीमा न रही, जैसे मृत देह में प्राणों का फिर से संचार हो गया। आनन्दपूर्वक स्टीमर से कलकत्ता और वहाँ से रेलयात्रा कर यथासमय पुरी पहुँचे। स्टेशन से नाम करते-करते झाँझपीटा मठ गये। मठ में बाबाजी महाशय के दर्शन पाते ही सबके सब उच्चस्वर से बालक के समान रोदन करते-करते उनके चरणों में गिर गये। तब बाबाजी महाशय ने उन्हें नवद्वीप छोड़ आने के कारण कुछ लज्जित भाव से और साश्रुगद्गद कंठ से नानारूप प्रबोध वाक्यों द्वारा आश्वासन देते हुए आलिंगन कर कृतार्थ किया। इधर श्यामसुन्दरबाबू इन लोगों के आने की बाट देख ही रहे थे। जैसे ही ये पहुँचे वे बाबाजी महाशय से केन्द्रापाड़ा चलने के लिए अनुरोध करने लगे। उन्होंने तीन दिन बाद चलने को कहा। तदनुसार व्यवस्था की जाने लगी। निर्दिष्ट दिन सब लोगों ने केन्द्रापाड़ा के लिए प्रस्थान किया। यथासमय बलदेवजी की चन्दन यात्रा का उत्सव प्रारम्भ हुआ। आनन्द की सीमा न रही। कीर्तनानन्द से केन्द्रापाड़ा परिपूर्ण हो गया। बहुत दिनों के बाद केन्द्रापाड़ावासी उनका मधुमय संग प्राप्त कर दुगने उत्साह का बोध कर रहे थे। इस प्रकार परमानन्दपूर्वक कई दिन बीते। पुरी में मदनमोहन की चन्दन यात्रा का समय निकट आ गया इसलिए और अधिक वहाँ रहना न हो सका। केन्द्रापाड़ावासियों की इच्छा के विरुद्ध उनसे विदा लेनी पड़ी। श्यामसुन्दरबाबू और गोकुलबाबू के साथ बाबाजी महाशय पुरी आ गये।

विविध घटनाएँ

श्रीधाम पुरी में आज आनन्द की सीमा नहीं है। चन्दनयात्रा उपलक्ष में श्रीश्रीराधामदनमोहन नरेन्द्र सरोवर में केलि करने जा रहे हैं। पुरीवासी आनन्द में मग्न हो चन्दन-माला लिए चले जा रहे हैं। बाबाजी महाशय सपरिकर श्रीमन्महाप्रभु को साथ ले कीर्तनानन्द से सबका हृदय द्रवित करते हुए भ्रमण कर रहे हैं। श्रीमदनमोहन श्रीमती को साथ ले नौकाकेलि कर रहे हैं। ये भी भक्तों के साथ श्रीमन्महाप्रभु को ले परमानन्द पूर्वक जल केलि कर रहे हैं। इस प्रकार इक्कीस दिन तक प्रतिदिन बड़े समारोह के साथ आनन्दपूर्वक चन्दनयात्रा उत्सव होता रहा। देखते-देखते स्नान-यात्रा उत्सव आ पहुँचा। जगन्नाथ, बलभद्र, सुभद्रा और सुदर्शन चारों का स्नान-वेदी पर आगमन हुआ। बाबाजी महाशय साथियों को ले आनन्दपूर्वक नानारूप कीर्तन करने लगे। लोगों की भीड़ लग गई। आनन्द की सीमा न रही। श्रीजगन्नाथदेव की तरह बाबाजी महाशय भी आये हुए यात्रियों के दर्शन का विषय बन गये। लोग ठेला-ठेली कर संकीर्तन को चारों ओर से घेरते हुए बिना पलक झपके बाबाजी महाशय की ओर देख रहे थे और उसके मुख से निकले सुन्दर पद-पदावलि कीर्तन सुन अपने को कृतकृत्य मान रहे थे। जगन्नाथ देव की स्नान यात्रा के अवसर पर पुरी के पास के गाँव के लोग ही अधिक आया करते हैं। वह किसी भाड़े के मकान में न रह कर प्रायः जगन्नाथ जी के मन्दिर में ही समय काट देते हैं। वह घरद्वार की चिन्ता से मुक्त रहकर अनन्य भाव से संकीर्तन में योग दे रहे थे। बड़े जोर का कीर्तन हो रहा था। स्नानादिक शेष हो जाने पर भी कीर्तन समान रूप से चलता रहा। इस प्रकार आनन्दपूर्वक अपराह्न चार बजे तक कीर्तन होता रहा। सब लोग अनिच्छापूर्वक कीर्तन समाप्त कर स्नानवेदी पर ही प्रसाद ग्रहण कर मठ लौट आये।

रात्रि में अकस्मात् बाबाजी महाशय को ज्वर हुआ। ज्वर के समय उनके सीने में पहले वेदना हुई थी। इस बार भी सीने में दोनों ओर कफ जम जाने के कारण भयानक वेदना थी। उनकी इच्छा न होने पर भी राजवैद्य श्रीयुत मागुनी मिश्र महाशय को बुलाकर चिकित्सा की व्यवस्था की गई। क्रमशः गुंडिचामार्जन लीला उपस्थित हुई। कविराज महाशय ने बाबाजी महाशय को गुंडिचा मन्दिर जाने के लिए निषेध किया। बाबाजी महाशय बोले, 'मैं केवल दर्शन कर लौट आऊँगा। मार्जन और कीर्तनादि ये लोग ही करेंगे।' कविराज महाशय ने फिर भी सब प्रकार से ठंड से बचने के लिए अनुरोध किया। बाबाजी महाशय बोले, 'इसकी आप चिन्ता न करें, मैं केवल दर्शन कर वापस आ जाऊँगा।'

संकीर्तन निकलते ही ये भी साथ-साथ चले। कुछ ही दूर जाने के बाद न जाने मन में क्या हुआ, संकीर्तन के बीच जा नाम-कीर्तन करने लगे। आनन्द की सीमा न रही। संकीर्तन करते-करते गुंडिचा मन्दिर में प्रवेशकर मार्जन आरम्भ किया। पूर्ववत् बड़े आनन्द के साथ गुंडिचा मार्जन लीला शेष कर आश्रम लौट आये। साथी बड़े आशंकित थे कि कहीं बाबाजी महाशय का शरीर और अधिक अस्वस्थ न हो जाय। बाबाजी महाशय को ठंड बहुत लग चुकी थी, परन्तु प्रभु की इच्छा से वे उस दिन पहले की अपेक्षा अधिक स्वस्थ दीख रहे थे। ऐसा कोई चिह्न नहीं दीख रहा था जिससे जान पड़ता कि वे पहले अस्वस्थ थे।

दूसरे दिन प्रातःकृत्यादि कर नाम करते-करते साथियों के साथ जगन्नाथ मन्दिर पहुँच गये। यथा-समय बलदेव, सुभद्रा, सुदर्शन और जगन्नाथदेव रथपर विराजे। उस दिन रथ अधिक दूर तक नहीं गया। दूसरे दिन बहुत तड़के ही बाबाजी महाशय और उनके साथी स्नानादि कर नाम करते-करते श्रीजगन्नाथदेव के रथ के आगे जाकर उपस्थित हुए और उन्हें लक्ष्य कर नानारूप पद-कीर्तन करने लगे। करीब साढ़े ग्यारह बजे रथ धीरे-धीरे चलने लगा। बाबाजी महाशय भी आत्महारा हो रथ के आगे प्राणप्रिय निताइ गौरांग को साथ ले नृत्य-कीर्तन करने लगे। पुरी के मजिस्ट्रेट ब्लेको साहब उनके कीर्तन से विशेष रूप से आकर्षित हुए। साहब बहुत सज्जन और शान्त स्वभाव के थे। एक बालक से भी हँसकर बात करते थे। उनके व्यवहार से प्रतीत होता था कि अभिमान मदिरा ने कभी उन्हें स्पर्श नहीं किया। उन्हीं के विशेष यत्न से जगन्नाथजी का रथ उस दिन जगन्नाथवल्लभ तक पहुँचा। दूसरे दिन प्रातःकाल ही रथ खींचकर गुंडिचा मन्दिर ले जाया जाय, इस विषय पर साहब सबके साथ परामर्श करने लगे। वे बाबाजी महाशय से बोले, 'देखिये, आप बहुत तड़के संकीर्तन लेकर आ जायँ, क्योंकि आपके नृत्य कीर्तन के बिना जगन्नाथजी का रथ न चलेगा।' बाबाजी महाशय बोले, 'बाबा, वह मेरा नहीं, हमारे प्रभु निताइ गौरांग का नृत्य कीर्तन है।' साहब ने कहा, 'जो भी हो, मैं तो यह देखता हूँ कि आप जिस समय जिस प्रकार का कीर्तन करते हैं, धीरे या द्रुत गति से, जगन्नाथजी उसी गति से चलते हैं।' इस प्रकार नाना कथोपकथन के पश्चात् सब लोग अपने-अपने स्थान को चले गये।

दूसरे दिन पहले बलभद्र और सुभद्रा का रथ बहुत थोड़े समय में गुंडिचा मन्दिर पहुँच गया। जगन्नाथ देव का रथ खींचा जाने लगा। वह चलते-चलते पुल के निकट जाकर खड़ा हो गया। बहुत प्रयत्न करने पर भी उसे एक कदम आगे न बढ़ाया जा सका। उस समय बाबाजी महाशय संकीर्तन बन्द कर रास्ते के एक ओर बैठे थे। मजिस्ट्रेट साहब ने जाकर उनसे कहा, 'आप चलिए, मेरा विश्वास है कि आपके खींचते ही रथ चल पड़ेगा।' बाबाजी महाशय आरक्तिम छलछल नेत्र और गद्गद कण्ठ से बोले, 'बाबा, मैं एक तुच्छ जीव हूँ, मुझमें बिन्दु मात्र क्षमता नहीं। पर मेरा विश्वास है कि श्रीमन् महाप्रभु के एक बार स्पर्श करने से ही रथ चलने लगेगा। चलिए, लीलामय श्रीजगन्नाथ और श्रीगौरांगदेव की लीला का प्रत्यक्ष दर्शन कर जीवन धन्य करें।' इतना कह 'बोल श्रीनित्यानन्द' कहते-कहते आविष्ट भाव से डगमगाते हुए एकदम रथ के पीछे जाकर नृत्य करने लगे। मजिस्ट्रेट साहब रथ के आगे जा बड़े उत्साह के साथ रथ खींचने की व्यवस्था करने लगे। इधर बाबाजी महाशय नृत्य करते-करते रथ को पीछे से माथे से

ठेलने लगे। इच्छामय की इच्छा से रथ चलने लगा। बाबाजी महाशय तब प्रफुल्ल होकर रथ के आगे जा पहले की तरह नृत्य-कीर्तन करने लगे। इच्छामय प्रभु की गति रुद्ध करने का कौन साहस कर सकता है? बहुत थोड़े समय में ही रथ गुंडिचा मन्दिर के बाहर जा खड़ा हुआ। जगमोहन की जगजनमनमोहिनी लीला का दर्शनकर आपामर साधारणजन आनन्द विभोर हो गये। दूसरे दिन जगन्नाथदेव ने यथासमय गुंडिचा मन्दिर में प्रवेश किया। परमानन्दपूर्वक सेवा आदि चलने लगी। अकस्मात् बाबाजी महाशय की छाती में पहले की तरह भयानक वेदना होने लगी। आश्रमवासियों में हलचल मच गई। वे सब उन्हें किसी प्रकार स्वस्थ करने में लग गये। गरम कपड़ों से उन्हें ढक दिया। थोड़ी देर में राजवैद्य मागुनी महाशय ने आकर देखा और बहुत सावधान रहने का आदेश दिया। बाबाजी महाशय कमरे का दरवाजा और खिड़कियाँ बन्द कर सो गये। ग्यारह बजे के करीब नवद्वीप-निवासी श्रीयुत ताराप्रसन्न वाक्ची, शितिकण्ठ गोस्वामी आदि चार-पाँच सज्जन आये। बाबाजी महाशय को अस्वस्थ सुन उन्होंने बिना खबर किये ही लौट जाना चाहा। परन्तु बाबाजी महाशय शीघ्रतापूर्वक बाहर निकले और उनसे अनेक प्रकार वार्तालाप करने लगे। बाबाजी महाशय बोले, 'आप लोग स्नानादि कर महाप्रसाद ग्रहण करें। संध्या समय दर्शनादि के लिए जायँ।' तब ताराबाबू बोले, 'देखिए, मैं जबतक हाथ पैर धो दर्शन न कर लूँगा तब तक और कुछ न करूँगा।'

बाबाजी—देखिए, इस धाम में महाप्रसाद का ही विशेष महत्व है। इसलिए पहले महाप्रसाद सेवन करना ही ठीक होगा और इस समय जगन्नाथजी गुंडिचा मन्दिर में विराजमान हैं। मन्दिर यहाँ से डेढ़ मील है। दोपहरी के समय इतनी दूर जाने में बड़ा कष्ट होगा।

तारा—कष्ट तो होगा ही, पर मन को भी तो प्रबोध होना चाहिये। शास्त्र-सिद्धान्त चाहे जो भी हो, मन को भी तो स्वीकृत होना चाहिए। इसलिए हमारे साथ एक आदमी कर दीजिए। हमलोग एक बार दर्शन कर फिर जो कुछ करना है, करेंगे।

बाबाजी महाशय ताराबाबू की निष्ठा से प्रसन्न होकर बोले 'तो और किसी आदमी का क्या होगा? चलिए, मैं आपके साथ चलता हूँ।'

तारा—नहीं, नहीं, आपका शरीर अस्वस्थ है। आपके जाने की कोई आवश्यकता नहीं। हमें रास्ता भर दिखा दे, ऐसा कोई भी व्यक्ति हमारे साथ कर देना ठीक होगा।

बाबाजी महाशय उनकी बात अनसुनी कर और गरम कपड़े फेंक-फाँक उनके साथ बाहर निकल लिये। तब शितिकण्ठ गोस्वामी बोले, 'दादा, दो एक जोड़ा करताल ले चलें न।'

बाबाजी—भाई वह तो लेनी ही होगी, क्योंकि हम हैं कलिहत दुर्बल जीव। किसी सवारी के बिना इतना रास्ता कैसे चलेंगे और चल भी लें तो बड़ा कष्ट होगा। इसलिए नाम की रेल पर चढ़ कर ही चलना होगा।

इतना कह खोल करताल के साथ 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' नाम करते हुए बाहर निकले। अनिर्वचनीय आनन्द! संकीर्तन के साथ हेरागौरी साही होकर राजमार्ग पर पहुँचे। किसी को देह की स्मृति न रही। लोगों की भीड़ का भी कुछ ठिकाना न था। सभी आनन्द में विभोर हो ताली बजा- बजाकर नृत्य कर रहे थे और मुखसे नाम कर रहे थे। जब बाबाजी महाशय मूल कीर्तन करते तब शितिकण्ठ नृत्य करते और जब शितिकण्ठदादा मूल कीर्तन करते तब बाबाजी महाशय नृत्य करते। दोनों के ही देह में सात्विक विकार समान रूप से दृष्टिगोचर हो रहे थे। ताराबाबू बीच-बीच में विभोर होकर गद्गद कंठ से कहते, 'हम लोग नवद्वीप में बड़े-बड़े कीर्तन सुना करते थे, परन्तु हमने अपने जीवन में ऐसे आनन्द का कभी उपभोग नहीं किया।' देखते-देखते संकीर्तन गुंडिचा मन्दिर पहुँचा। उस समय मध्याह्न धूप के कारण जगन्नाथदेव का दरवाजा बन्द होने जा रहा था। किन्तु बाबाजी महाशय को आते देख खुला रहने दिया गया। उन्होंने जी भरकर दर्शन किये। ताराबाबू को कुछ थका हुआ देख वहीं महाप्रसाद की व्यवस्था की गई। सबने चिर प्रचलित भेदाभेद बुद्धि परित्याग कर एक साथ महाप्रसाद

ग्रहण किया। फिर नाम करते-करते आश्रम लौट आये। बाबाजी महाशय की ताराबाबू प्रभृति अनेक प्रकार से सेवा-शुश्रूषा करने लगे। क्रमश: संध्या-आरति-कीर्तन आदि समाप्त कर और जगन्नाथदेव का महाप्रसाद ग्रहण कर सबने विश्राम किया। दूसरे दिन केन्द्रापाड़ा के जमींदार बाबू राधाश्याम नरेन्द्र के जेनामठ नामक स्थान पर आश्रमवासियों का निमन्त्रण हुआ। बलरामबाबू और श्यामसुन्दरबाबू आकर ताराबाबू प्रभृति को विशेष आग्रहपूर्वक लिवा ले गये। बाबाजी महाशय ने संकीर्तन आरम्भ किया। आनन्द की सीमा न रही। आबाल-वृद्ध-स्त्री-पुरुष सभी प्रेम में उन्मत्त हो गये। किसी को बाह्य स्मृति न रही। शितिकण्ठ गोस्वामी बाबाजी महाशय के साथ कीर्तन कर रहे थे। हृदय में अपूर्व भाव का विकास हो रहा था। बीच-बीच में शिमूल के काँटों के समान सारा शरीर रोमांचित हो रहा था। अश्रुकम्पादि शरीर को सुशोभित कर रहे थे। लोगों की अपार भीड़ थी। सभी आनन्द में विभोर थे। ताराबाबू आदि की न जाने कैसी अवस्था हो गई। कभी रोते, कभी हँसते और कभी नृत्य करते। सभी में एक नये जीवन का संचार हुआ जान पड़ता था।

बहुत देर कीर्तन करने के पश्चात् रात्रि अधिक हुई देख बलरामबाबू के अनुरोध से सब लोग महाप्रसाद पाने बैठ गये। बाबाजी महाशय के दाहिनी ओर ताराबाबू और शितिकण्ठ गोस्वामी बैठे। जैसे ही महाप्रसाद परोसा गया बाबाजी महाशय ने कितने ही प्रकार की दाल-तरकारियाँ आदि मिलाकर एक ग्रास ताराबाबू के मुख में दिया, उसका अर्धांश शितिकण्ठ गोस्वामी के मुख में और अवशेष क्रमश: नवद्वीप से आये कई एक ब्राह्मणों के मुख में दे स्वयं ग्रहण किया। सभी ने महाप्रसाद पाना आरम्भ किया। ताराबाबू के मन में न जाने कौनसा भाव उदय हुआ, वे अकस्मात् उठकर परिवेशनकारी व्यक्ति के हाथ से दाल की एक खाली हंडिया ले सबकी पत्तल से कुछ-कुछ अधरामृत ले उसमें रखने लगे। महाप्रसाद की अपूर्व कृपा से ताराबाबू की न जाने क्या अवस्था हो गई। उनका नवद्वीपस्थ वारेन्द्र ब्राह्मण कुलाभिमान भय के कारण न जाने कहाँ जा छिपा, पद-मर्यादा न जाने कहाँ चली गई। क्रमश: कमरे के भीतर से बरामदे में, बरामदे से आँगन में, आँगन से बाहर के कमरे में और फिर बाहर के रास्ते में बैठे हुए नीच जाति के दु:खी कंगालों की पत्तल से अधरामृत लेकर हांडी में रखने लगे। अन्त में एक कुष्ठ रोगी की पत्तल से अधरामृत ले एकदम आनन्द से अधीर हो गये। इधर दर्शकवृन्द नवागत विशिष्ट भद्र बाबू की ऐसी अवस्था देख महाप्रसाद की कृपा की जय बोलने लगे। क्रमश: ताराबाबू ने सारा महाप्रसाद मसलकर पूर्वानुक्रम को उलटते हुए एक-एक कर सबके मुख में दिया और जब बाबाजी महाशय के निकट पहुँचे तब वे अश्रुगद्गद कण्ठ से कहने लगे-

'महाप्रसादे गोविन्दे नामब्रह्मणि वैष्णवे।
स्वल्पपुण्यवतां राजन् विश्वासो नैव जायते॥

आहा, कैसी अपूर्व कृपा है! 'कृष्ण जखन कृपा करेन कोन भाग्यवाने। गुरु अन्तरजामी रूपे शिखान आपने।' इस विश्वास की बलिहारी।' इतना कह उस अधरामृत का एक ग्रास ले और उसमें से कुछ ताराबाबू के मुख में देते अवशेष अपने मुख में रख लिया। ताराबाबू ने भी एक ग्रास ले बाबाजी महाशय के मुख में कुछ देते हुए बाकी स्वयं ग्रहण किया। चारों ओर से 'हरि हरि' ध्वनि उठने लगी। इस प्रकार परमानन्दपूर्वक महाप्रसाद ग्रहणकर पूर्ववत् नाम-कीर्तन करते-करते मठ में आ सबने विश्राम किया। तीन दिन इस प्रकार आनन्द में व्यतीत कर ताराबाबू प्रभृति नवद्वीप लौट गये।

बाबाजी महाशय ने साथियों को आदेश दे रखा था कि मठ में त्रिसंध्या नामकीर्तन, समुद्र-स्नान, जगन्नाथदर्शन और जगमोहन संकीर्तन नित्य किया करें। झाँझपीटा मठ के लिए भिक्षा का भार साधारणत: मधुदादा के ऊपर रहता था। कभी-कभी जब बाबाजी महाशय आदेश देते तो कोई दूसरा व्यक्ति भी भिक्षा को चला जाता। एकदिन प्रात:काल उठते ही नवद्वीप दादा और गोविन्ददादा को बुलाकर बोले, 'देखो, पुरी शहर की गली-गली में जाकर दोनों भिक्षा करो और जो कुछ भी प्राप्त हो लाकर मुझे दो।' दोनों भिक्षा कर आश्रम को जैसे ही लौटते बाबाजी महाशय दण्डवत् प्रणामपूर्वक स्वयं भिक्षा का झोला ले लेते। इस प्रकार

कई दिन बीते। एक दिन भिक्षा लेकर नाम करते-करते इन लोगों ने जैसे ही आश्रम में प्रवेश किया और बाबाजी महाशय ने गोविन्ददादा से झोला लिया, सुरसिक गोविन्ददादा सख्य भाव से आविष्ट हो कुछ कटु वाक्य कहने लगे। साथी लोग सब अवाक् रह गये। बाबाजी महाशय भी विस्मित भाव से झोला सिर पर रखे खड़े रहे। बहुत देर तक यही अवस्था रही। फिर गोविन्ददादा बाबाजी महाशय के पैरों में पड़ प्रणाम कर पंगत के कमरे में जाकर बैठ गये। तब बाबाजी महाशय धीरे-धीरे बोले, 'क्यों रे, तेरा क्या दिमाग खराब हो गया है?'

गोविन्द—क्यों क्या हुआ?

बाबाजी—मेरे झोला लेते ही तू गालियाँ सुनाने लगा।

गोविन्द—मैंने तो गालियाँ दी नहीं। आप ही ने तो आदेश किया था कि भिक्षा में जो कुछ मिले मुझे लाकर देना। जो कुछ भी मिला सभी आपको देना था न। चावल दाल इत्यादि आपको दिये। गालियाँ अपने पास ही रख लेता तो क्या हजम कर पाता? हो सकता था कि गालियाँ देनेवाले व्यक्ति को देख कभी उसके प्रति हिंसाभाव जाग जाता। इसलिए उन्हें भी यथास्थान अर्पण कर दिया।

सुनते ही बाबाजी महाशय गोविन्ददादा को आलिंगन कर अश्रुगद्गद कण्ठ से बोले, 'गोविन्द, इस निष्कपट, विशुद्ध व्यवहार से मैं तेरे हाथ बिक गया।' इस प्रकार की अनेक कथावार्ता के पश्चात् सब लोग अपने-अपने सेवा कार्य में लग गये। कई दिन पीछे जब नवद्वीप और गोविन्ददादा राजमहल के गलीवाले रास्ते से भिक्षा करने जा रहे थे, अकस्मात् एक व्यक्ति आकर बोला, 'अरे बाबाजी, यहाँ नाम करना मना है। यहाँ से लौट जाओ।' नवद्वीपदादा कुछ मुस्कराते हुए बोले, 'क्यों बाबा, यहाँ क्या काल का अधिकार नहीं है? कंस राजा के बाद से आजतक तो ऐसी बात कभी सुनी नहीं।' और इतना कह वे नामकीर्तन करने लगे। राजकर्मचारी अपने प्रभुत्व की हानि से कुछ क्रुद्ध होकर बोला, 'ओ रे, फिर नाम लिया तो सजा भुगतनी होगी। तुझे पता नहीं कि राजमहल की सीमा के भीतर नाम करना मना है।' परन्तु ये उसकी बात सुनी-अनसुनी कर नियमपूर्वक नाम करते-करते जाने लगे। कर्मचारी बहुत गाली-गलौज करने लगा और मारने को उद्यत हुआ। इन लोगों ने उसका कुछ भी ख्याल न कर वहाँ से प्रस्थान किया।

दयामय प्रभु सब कुछ सहन कर सकते हैं, यहाँ-तक कि अपने ऊपर अत्याचार-अपचार भी, किन्तु नाम का अपमान या भक्त का अपमान कभी नहीं सह सकते। अकस्मात् पुरी में भयानक हैजा फैला। राजमार्ग और राजमहल के चारों ओर उसका विशेष जोर था। तीन-चार दिन बाद अपराह्न पाँच बजे राजा मुकुन्ददेव को उल्टी दस्त होने लगे। हलचल मच गई। डाक्टर लोग नानारूप चिकित्सा करने लगे। नानारूप शान्ति, स्वस्त्ययन, होम, जगन्नाथदेव की आराधना इत्यादि उपाय किये जाने लगे, परन्तु महाराज बहुत चिन्तित होकर राजगुरु श्रीपाद रघुनाथदेव गोस्वामी से बोले, 'मेरे ऊपर बड़ा आतंक छाया है। आप कृपा कर ऐसा उपाय बतायँ जिससे इस संकट से मुक्ति मिले।' तब गोस्वामी प्रभु और राजदीवान कालीबाबू इत्यादि विज्ञ लोगों ने कहा, 'हमारे विचार से शहर में नाम संकीर्तन कराना चाहिए, क्योंकि पुरी में जब हैजा होता है, तब केवल नामसंकीर्तन या भागवत सप्ताह को छोड़ और किसी उपाय से निवृत्ति नहीं होती। इसलिए भगवान् का मंगलमय नामकीर्तन कराना ही उचित है। यदि आपकी आज्ञा हो तो चेष्टा की जाय।' सुनते ही महाराज विशेष आग्रहपूर्वक बोले, 'यह बड़ी सुन्दर युक्ति है। शीघ्र व्यवस्था कीजिए।' रघुनाथदेव गोस्वामी महाराज का अभिप्राय समझाने के लिए दीवान कालीबाबू और उपस्थित लोगों को लक्ष्य कर बोले, 'कौनसे दल को आमन्त्रित किया जाय, उड़ीसावासियों के दल को या बंगालियों के दल को?' तब सब लोग एकमत होकर बोले, 'हमारा विश्वास है यदि बड़े बाबाजी महाशय अपने दल के साथ संकीर्तन करें तो तुरन्त ही सारा कष्ट मिट जाय।' गोस्वामीजी ने भी अपनी स्वीकृति प्रदान की। इसलिए गोस्वामी प्रभु, दीवानबाबू और दो-एक कर्मचारी मिलकर झाँझपीटा मठ में बाबाजी महाशय के पास गये। महाराज को अस्वस्थ सुन बाबाजी

महाशय तुरन्त बोले, आप चलें, मैं आता हूँ। कालीबाबू बोले–'महाराज बहुत उत्कण्ठित हैं, विलम्ब करने से काम न चलेगा। आप कृपया हमारे साथ ही चलें।' तब बाबाजी महाशय नवद्वीपदास से बोले, 'बहुत शीघ्र खोल करताल लेकर प्रस्तुत हो। राजमहल में कीर्तन करना है।' सुनते ही नवद्वीपदादा आनन्दोत्फुल्ल हो खोल करताल ले आये। बाबाजी महाशय 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' नाम करते-करते जैसे ही राजमहल के निकट पहुँचे, राजकर्मचारीगण आकर संकीर्तन मण्डल को महल के भीतर ले गये। संकीर्तन के दोनों ओर दो मशालें जल रही थीं। जब संकीर्तन उस कमरे के सामने पहुँचा जिसमें महाराज लेटे थे, तब महाराज बोले, 'देखो, मुझे पकड़कर कीर्तन के बीच ले चलो।' राजमाता ने पहले कुछ आपत्ति की, परन्तु महाराज का विशेष आग्रह देख कुछ न बोलीं। दो व्यक्ति महाराज के दोनों हाथ पकड़ उन्हें कीर्तन के बीच ले गये। महाराज ने उनका सहारा छोड़ संकीर्तन को प्रणाम किया और एक ओर खड़े हो गये। बाबाजी महाशय कीर्तन के साथ नृत्य करते-करते महाराज के चारों ओर चक्कर काटने लगे। थोड़ी देर में महाराज दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर नृत्य करने लगे। अपूर्व दृश्य था! उनके आकर्ण विस्तृत नयन डबडबा रहे थे, आजानुलम्बित भुजाएँ ऊपर उठी थीं। कभी बायें चरण पर देह का भार सम्भाल दाहिने चरण से नृत्य करते थे और कभी दाहिने चरण पर खड़े हो बायें से। कृशकाय और व्याधियुक्त होते हुए भी उनका मुखमण्डल ज्योतिर्मय हो रहा था। लगता था कोई आनन्दमय ऐश्वर्यवान मूर्ति सामने विराजमान है। संकीर्तन का आनन्द बढ़ने लगा। किसी को बाह्य स्मृति न रही। राज्यकर्मचारीगण हाथ से ताली बजाते हुए घूम-घूमकर नृत्य कर रहे थे और नाम कर रहे थे, परन्तु महाराज बीच में खड़े पहले की तरह नृत्य कर रहे थे। खोल, करताल और गगनभेदी संकीर्तन ध्वनि से राजभवन आनन्दभवन में परिणत हो गया। थोड़ी देर बाद बाबाजी महाशय महाराज को आलिंगन कर नृत्य करने लगे। चारों ओर से सब लोग 'हरि हरि बोल' की ध्वनि कर उठे। बाबाजी महाशय के साथी उन्मत्त भाव से नृत्य करने लगे। नवद्वीपदादा हुंकार के साथ उच्च स्वर से 'जय निताइ, जय निताइ!' कहते हुए बड़े वेग से कूद-कूदकर नृत्य करने लगे। कुछ देर इस प्रकार नृत्य कर जैसे ही बाबाजी महाशय ने महाराजा को छोड़ा महाराज की देह अश्रु, कम्प, पुलकादि भावों से विभूषित हो गयी। तब उन्होंने गद्गद कंठ से कहा, 'आज मैं धन्य हुआ। मंगलमय जगन्नाथदेव ने इस व्याधि के छल से मेरा मंगल किया। इच्छामय प्रभु की इच्छा से आज सभी प्रकार का अशुभ दूर हो गया।' इतना कह उन्होंने पास खड़े व्यक्ति को आदेश दिया, 'देखो, महल के कोने-कोने में संकीर्तन ले जाओ।' उसने ऐसा ही किया और मशाल के साथ अन्तःपुर के प्रत्येक कमरे में संकीर्तन को घुमा महाराज के निकट ले आया। तब महाराज संकीर्तन के स्थान पर खूब लोट-पोटकर अनुरोध करने लगे कि एकबार नित्य ही वहाँ संकीर्तन हो। बाबाजी महाशय 'निताइचाँद की जैसी इच्छा' कह नाम करते-करते रात साढ़े ग्यारह बजे के लगभग आश्रम लौट आये। उस दिन रात में महाराज ने किसी औषधि का प्रयोग नहीं किया। शरीर स्वस्थ और निरोग हो गया। वे उसी दिन से प्रत्येक दिन संध्या समय लोगों को भेजकर बाबाजी महाशय को संकीर्तन के साथ अपने महल में बुलाने लगे। बाबाजी महाशय तीन दिन तक संकीर्तन के साथ गये, पर राजमहल में सात दिन तक बड़े जोर शोर से संकीर्तन चलता रहा। उस समय से फिर कभी राजकर्मचारीगण ने नाम की अवज्ञा नहीं की और साधु महात्माओं के प्रति अपमानसूचक कोई शब्द न कहे, यहाँ तक कि बाबाजी महाशय के किसी भी साथी को देखते ही उसका यथोचित सम्मान करने लगे।

एक दिन बाबाजी महाशय प्रसादादि ग्रहणकर झाँझपीटा मठ के पिछले दो मंजिले हिस्से में शयन कर रहे थे। कोई हवा कर रहा था, कोई चरण-सेवा। उसी समय पन्द्रह सोलह वर्ष का एक बालक झाँझपीटा मठ में आया और बाबाजी महाशय से मिलने के लिए बड़ा आग्रह करने लगा। सबने कहा, बाबाजी महाशय सो रहे हैं, उठने पर दर्शन देंगे। पर बालक बड़ा उत्कंठित था। 'केवल एकबार उनके दर्शन करूँगा। दर्शन किये

बिना मेरा मन स्थिर न होगा। आप केवल यह बता दें कि वे कहाँ हैं?' परन्तु बालक का आग्रह ज्यों-ज्यों बढ़ता गया, ये लोग उतनी ही अधिक आपत्ति करने लगे। भक्तवत्सल प्रभु जैसे उसके भाव को जान शयन अवस्था में ही बोल उठे, 'देखो, एक बालक मठ में आया है। उसे शीघ्र यहाँ ले आओ तो। वह इतनी देर से यहाँ आने के लिए व्याकुल है। क्यों नहीं आने दिया?' तब एक व्यक्ति जल्दी-जल्दी जा बालक को ले आया। बालक ने बाबाजी महाशय को साष्टांग प्रणाम किया। उन्होंने भी आग्रह के साथ उसे उठाकर आलिंगन किया और पूछा, 'बाबा, तुम्हारा क्या नाम है?'

बालक—जी, मेरा नाम फणिभूषणदास है।

बाबाजी—तुम्हारा निवास?

बालक—तारकेश्वर के निकट एक गाँव में।

बाबाजी—धाम में आने का उद्देश्य? तुम बालक हो। घर से बिना कहे तो नहीं चले आये?

फणि—बाबा, मैं कलकत्ते में रहता था। जब आप कलकत्ते गये थे तब आपके दर्शन पाते ही मैंने मन ही मन संकल्प किया था कि मैं आपके ही आश्रम में जीवन व्यतीत करूँगा। इतने दिन तक आपकी खोज करता रहा। कई दिन हुए नवद्वीपदास नामक एक महापुरुष से भेंट हुई। उन्हीं की कृपा से आज आपके दर्शन हुए। मुझे सदा के लिए अंगीकार कीजिए। मैं संसार में नहीं रहूँगा।

इतना कह उनके चरण पकड़ रोने लगा।

बाबाजी महाशय बालक को फिर आलिंगन कर सांत्वना देते हुए बोले, 'ठीक है, यहीं रहना। इसके लिए चिन्ता क्यों करते हो? तुम्हारे घर और कौन है?'

फणि—माता-पिता कोई नहीं, केवल एक सहोदर भाई है। वह भी बहुत अस्वस्थ रहता है।

बाबाजी—तब तो प्रभु ने पहले ही व्यवस्था कर रखी है। इतना कह ललितादासी से बोले-'इसे महाप्रसाद दो।' ललितादासी ने बड़े प्यार से बालक को महाप्रसाद सेवन कराया। इसी समय से फणि बाबाजी महाशय के साथ रहने लगा। वह सातगाछिया निवासी श्रीयुत कुंजलाल गोस्वामी महाशय का मन्त्रशिष्य था।

एक दिन झाँझपीटा मठ में महोत्सव था। नाना प्रकार की रसोई बनी और ठाकुर को भोग लगा। यद्यपि विशेष रूप से किसी को आमन्त्रित नहीं किया गया था, तो भी अड़ोस-पड़ोस के और दु:खी कंगाल प्राय: दो-ढाई सौ व्यक्तियों ने प्रसाद पाया।

बाबाजी महाशय यथासमय महाप्रसाद पा और कुछ विश्राम कर बैठे थे। चार बजे तक ललितादासी और दो-एक व्यक्तियों को छोड़ सबका प्रसाद पाना हो चुका था। ललितादासी रसोई घर से बर्तन इत्यादि बाहर निकालकर एक स्थान पर रख रही थीं। प्रसादी बर्तनों के निकट ही पैरों पर जल डालते हुए न जाने मन में क्या आया, उन्होंने बाबाजी महाशय की ओर देखा और लज्जित हो दूसरे स्थान पर जाकर पैर धोये। फिर भी मन में नानारूप आन्दोलन चलता रहा। कुछ देर बाद स्वयं प्रसाद पा बाबाजी महाशय और ठाकुरजी की नित्य सेवा में लग गईं। बाबाजी महाशय भी श्रीजगन्नाथदेव के दर्शन करने चले गये।

संध्या समय ललितादासी को उठने की क्षमता न रही। दाहिने पाँव में असह्य वेदना होने लगी। अकस्मात् इस प्रकार की वेदना उठने का कारण किसी की समझ में न आया। रात में बाबाजी महाशय लौटकर आये तो साथियों ने ललिता के पाँव में दर्द की बात कही। उन्होंने मुस्कराते हुए कहा, 'पैर के दर्द का कारण उसकी कुछ समझ में आया क्या?' सबने कहा, 'नहीं, उनकी समझ में कुछ नहीं आ रहा है। वे एक कदम भी नहीं चल पा रही हैं।' उन्होंने उस बात पर कोई ध्यान न देकर ललितादासी को तरह-तरह के कामों में लगा दिया जो बिना चले फिरे नहीं हो सकते थे। वे भी अत्यन्त कष्ट के साथ सब काम बिना कुछ सोचे विचारे करे लगीं। दो दिन बीत गये और पाँव की वेदना कम न हुई। ऊपर से बाबाजी महाशय का उपहास जैसे कटे पर नमक छिड़क रहा था। तीसरे दिन रात को बारह बजे के लगभग ललितादासी अकेली कमरे में बैठी सोच रही थीं, 'न जाने इस असह्य यंत्रणा का क्या कारण है। अवश्य मुझसे कोई अपराध हो गया

है। इतना बड़ा अपराध कि दो दिन हो गये दर्द थोड़ा भी कम नहीं हुआ। पर क्या अपराध हुआ, यह भी समझ में नहीं आ रहा।' यह विचार करते-करते कहने लगी, 'मैंने ठाकुर के रसोई के बर्तनों पर पैर धोये थे और बाबाजी महाशय की मुझ पर दृष्टि पड़ी थी। निश्चित रूप से यही कारण है मेरी यंत्रणा का।' आश्चर्य की बात, यह विचार मन में आते ही पैर की वेदना कम हो गई। दूसरे दिन प्रातःकाल उठते ही बाबाजी महाशय ने पूर्ववत् ललितादासी को आवाज दी और वे हँसते-हँसते आईं। उनके पाँव की वेदना बहुत कुछ कम हुई देख उन्होंने पूछा, 'क्योंरी, तेरे पैर की वेदना कौन-सी दवा से ठीक हुई?'

ललिता—कारण-अनुसंधान के अतिरिक्त और कोई औषधि तो मैं नहीं जानती।

बाबाजी—ठीक-ठीक कारण का पता लगा तो?

ललिता—जी। मैं जहाँ तक समझ पाई हूँ, उस दिन बर्तनों के ऊपर पैर धोने के अतिरिक्त और कोई कारण नहीं था।

बाबाजी—असली कारण वही है। वस्तु मात्र के प्रति अवज्ञा करने से भगवान् की अवज्ञा होती है, यह साधारण नियम है। इसके ऊपर भक्ति राज्य की बात कुछ और है। जो वस्तु कृष्ण सेवा में नियुक्त होती है, वह कितनी ऊँची है। महाप्रभु ने तृणादपि श्लोक में जो जगत के दृश्यादृश्य सभी पदार्थों से अपने को नीचा मानने की बात कही है, उसे केवल अन्ध-विश्वास वाली बात न समझना। विशेष अनुसंधानों के साथ प्रत्येक पदार्थ का गुणानुभव करना ही साधना है। शास्त्र की बात जाने दो। स्वाभाविक दृष्टि से देखो कि तुम बड़ी हो या वह पात्र। तुम्हारी देह कितनी जगत-सेवा या भगवत् सेवा के अनुकूल है और ये पात्र कितने जगत् या भगवद्सेवा के अनुकूल हैं। पहली बात तो यह है कि तुम्हारे इष्टदेव ने उन्हें अंगीकार किया है। तुम्हें अंगीकार किया है यह बात अभी तक निश्चित नहीं है। सामान्य रूप से थोड़ी-सी अग्नि लगने से या किसी के कटुवाक्य कहने से तुम अस्थिर हो जाती हो, उनको कितनी आग लगती है और कितना उनका आघात होता है, फिर भी उन्हें चिन्ता नहीं। अपना जीवन देकर वह दूसरों का उपकार करते हैं। तिनकों के ढेर से भी मनुष्य का उपकार होता है। संसार की प्रत्येक वस्तु के प्रति कृतज्ञता स्वीकार करना और अपने को उससे हीन मानना सभी प्रकार से हमारा कर्तव्य है। भगवत्-सेवा के अनुकूल जितने भी पदार्थ हैं, सब चिन्मय हैं।

ललिता—ऐसा तो हम लोग भी करते हैं। पर उस दिन का व्यवहार किसी प्रकार की अवज्ञा के कारण या जानबूझ कर हुआ हो सो बात नहीं; मुझ पगली के पैरों में बड़ी जलन हो रही थी और बहुत-सा महाप्रसाद पैरों में लगा था। इसलिए जल्दी से पैरों पर जल डाल दिया था। एक पाँव धोते-धोते जैसे ही मन में बोध हुआ, मैं अन्यत्र चली गई। फिर मुझे कितना कष्ट हुआ, नहीं कह सकती। ऊपर से ठाकुर सेवा में कितनी असुविधा हुई। आप यदि एकबार संकेत कर देते तो मुझे चैतन्य हो जाता और वेदना जाती रहती।

बाबाजी—मैं यदि तुम्हें बता देता तो शायद तुम्हें उतना विश्वास न होता। अब जब भी ऐसी बात होने की संभावना होगी तुम्हें स्वयं चैतन्य हो जायगा और इस कष्ट की बात याद आयेगी, क्योंकि आत्मचैतन्य द्वारा वेदनानुभव करते हुए उसे कृपा-दण्ड के रूप में स्वीकार करने के अतिरिक्त इस प्रकार के अपराध की और कोई औषधि या प्रायश्चित्त नहीं है। ऐसा न होने से देखो तुम्हारे चरणों में कितनी वेदना हुई और अपराध की बात स्मरण करते ही बिना किसी चेष्टा के दूर हो गई। इसलिए इसे भगवत्कृपा ही समझना चाहिए।

कुछ दिन पश्चात् ललितादासी का शरीर अस्वस्थ हुआ। ठाकुर की रसोई करने वाले और किसी व्यक्ति के अभाव के कारण बाबाजी महाशय के एक शिष्य बाबाजी अपनी इच्छा से रसोई करने लगे। इसके पूर्व उक्त बाबाजी के व्यवहार से बाबाजी महाशय के गुरुदेव श्रीगौरहरिदास महन्त बाबाजी महाशय कुछ असंतुष्ट हो गये थे। इसलिए किसी प्रकार के भगवत्सेवा कार्य में उन्हें नियुक्त नहीं किया गया था। परन्तु जब स्वयं ही वे सेवा कार्य में नियुक्त हुए तो किसी ने इस विचार से बाधा न दी कि उनके मन में दुःख होगा। रसोई लगभग तैयार हो गई। उसी समय एक बड़ा बिलाव रसोईघर

में घुसा और चावल, दाल, तरकारी आदि सबमें से कुछ खा जैसे ही बाहर निकल रहा था, बाबाजी महाशय की उस पर नजर पड़ी। बाबाजी महाशय ने ललितादासी को बुलाकर कहा, 'क्यों री, ठाकुर का भोग हो गया क्या?' ललितादासी जल्दी से घर में गई और बोली, 'नहीं, अभी रसोई तैयार नहीं हुई है।'

बाबाजी—रसोई घर में बिलाव गया था। किस में मुँह दिया है, देख तो।

ललितादासी ने देखा कि जो वस्तुएं तैयार हो गई थीं, उसमें सभी में से बिलाव ने कुछ खा रखा था। तब बहुत दु:खित हो बाहर आकर बोलीं-'जो भी रसोई हुई थी, सबमें मुँह दिया है। एक मन चावल की रसोई है, अब उसका क्या होगा?'

बाबाजी—होगा क्या? जब भोग नहीं लगेगा तो धरती में गड्ढा खोदकर सब उसी में डाल दो। रसोई घर साफ कर फिर से स्वयं भली प्रकार रसोई बनाओ और ठाकुर को भोग लगाओ। तुमने समझने में भूल की। महात्मा वैष्णवगण जिसके प्रति तनिक भी असंतुष्ट होते हैं, उसके हाथ से किसी भी प्रकार का भगवत्-सेवा का कार्य नहीं हो सकता। 'वैष्णवेते घटे जदि क्षुद्र अपराध, महा-महाभजनेते पड़े जाय बाद।'

ललिता—मैं क्या करती? वे स्वयं ही तो रसोई घर में चले गये थे। मेरा उन्हें मना करना उचित था क्या?

बाबाजी-यह सब आलोचना रहने दो; अब जो कुछ किया उसका फल भोगो।

तब ललितादासी ने अन्यान्य बाबाजी लोगों को साथ ले आश्रम के एक ओर एक गड्ढा खुदवा कर उसमें दाल चावल तरकारी आदि डाल ऊपर से पटवा दिया और रसोईघर अच्छी तरह साफ कर और स्वयं स्नान कर रसोई बनाई। बाबाजी महाशय की इस प्रकार की मर्यादा रक्षा और शासन से सभी का ध्यान विशेष रूप से वैष्णव अपराध की ओर आकृष्ट हुआ। सभी ने मिलकर उक्त बाबाजी के लिए परम गुरुदेव श्रीगौरहरिदास महन्त महाशय से प्रार्थना की और उन्हें प्रसन्न किया।

एक दिन दो बजे के लगभग आश्रमवासी सब प्रसाद पा चुके थे। ललितादासी, कुसुम मंजरी इत्यादि कई एक सखियाँ रसोई घर में प्रसाद पाने बैठी थीं और नानारूप लीला-कथा आलोचना चल रही थी। उसी समय अकस्मात् एक बिलाव रसोई-घर में उनके निकट जाकर बैठ गया। पहले की घटना से सबके मन में बिलाव के प्रति द्वेष हो गया था, इसलिए जैसे ही वह निकट पहुँचा ललितादासी ने बायें हाथ से उसके मुँह पर चाँटा मारा। यद्यपि उन्होंने धीरे से मारा था, उसका मुँह पत्थर के फर्श से रगड़ जाने के कारण बहुत घायल हो गया। तब वह रोता-चिल्लाता बाहर चला गया। बाबाजी महाशय उस समय विश्राम करने के पश्चात् तख्त पर बैठे थे। अकस्मात् बिलाव का आर्तनाद उनके कान में पड़ा, पर उन्होंने किसी से कुछ कहा नहीं।

सब लोग अपने-अपने काम में लगे थे। अपराह्न कोई साढ़े पाँच बजे ललितादासी का बायाँ हाथ बिलकुल अचल हो गया और उसमें असह्य वेदना होने लगी। आश्रम की सेवा का अधिकांश भार ललितादासी पर था, इसलिये सेवाकार्य में बहुत असुविधा होने लगी। बाबाजी महाशय यह सब देखकर सुनकर भी किसी प्रकार की व्यवस्था नहीं कर रहे थे। जब किसी ने उनके पास जा सब हाल सुनाया और ठाकुर के निकुञ्ज भोग के लिए किसी और को नियुक्त करने के लिए कहा तब बोले, 'क्यों, हाथ में थोड़ा-सा दर्द है, उससे सेवा कार्य बन्द करने की क्या जरूरत है? निजकृत कर्म के फल के भोग किये बिना नहीं चलता। उससे कह दो कि सेवा न छोड़े।' उसने जा सारी बात ललितादासी से कही। वे भी यथासाध्य सेवा-कार्य करने लगीं। दो दिन बीत गये पर यंत्रणा कुछ कम न हुई। बाबाजी महाशय ने भी कुछ उपाय नहीं किया। कोई कुछ कहता तो कहते, 'आत्म-चैतन्य बिना औषधि क्या करेगी? यदि औषधि से ही सारा रोग चला जाता तो संसार के लोगों को इतना कष्ट न भोगना पड़ता। भगवत्-संसार में रहकर यदि कोई अपने आपको कर्ता या शास्ता माने तो उसे कष्ट होता ही है। सूक्ष्म से सूक्ष्म विचार किये बिना भगवत्-संसार में रहना और आनन्द भोग करना कठिन है। प्रभु जब इस प्रकार का चैतन्य करा देंगे तभी ठीक हो जाएगी।' इधर ललितादासी मन में विचारने लगीं, 'मैंने ऐसा कौन सा

गुरुतर अपराध किया है, जिससे दो दिन से सेवा कार्य से वंचित हूँ और असह्य वेदना भोग रही हूँ। प्रभु मुझे अपने कर्म के प्रति चैतन्य भी नहीं करा रहे।' वे मन ही मन इस प्रकार की समालोचना करते-करते सो गईं। रात तीन बजे अकस्मात् चौंक कर उठ बैठीं और सोचने लगीं, 'उस बिलाव को मारा था। उसी से मेरे हाथ में वेदना है।' जैसे ही मन में यह विचार आया वेदना बारह आना कम हो गई और हृदय का अवसाद भी दूर हो गया। दूसरे दिन उन्हें प्रात:काल स्वस्थ भाव से सेवा-कार्य करते देख बाबाजी महाशय बोले, 'तेरे हाथ की वेदना तो बहुत कुछ ठीक हो गई है। कौन सी दवा की?'

ललिता—गृहस्थ जब तक निद्रित रहता है तभी तक चोर चोरी कर सकता है। जाग जाने पर क्या और चोरी कर सकता है?

बाबाजी—अच्छा हुआ, तू जाग गई। कुछ चैतन्य हुआ? किस अपराध से यह हुआ, कुछ स्मरण आया?

ललिता—उस दिन मैं जब प्रसाद पा रही थी, एक बिलाव म्याऊँ करता मेरे पास आया और मैंने बाँये हाथ से उसके मुँह पर एक चाँटा मारा। वह जोर-जोर से रोता हुआ भाग गया। मुझे लगता है शायद इसी कारण मेरी यह दुरवस्था हुई।

बाबाजी—शायद क्या? यही तो बात थी।

ललिता—अच्छा बिलाव को तो कृष्ण सेवा का विरोधी समझ राधारानी ने त्याग रखा है, तब उसको मार भगाने में अपराध क्यों होना चाहिये? उसी ने तो ठाकुर का भोग नष्ट किया था। तब भी क्या उसको प्यार करती?

बाबाजी—बिलाव कृष्ण-सेवा का विरोधी हो सकता है, परन्तु इसलिए वह कृष्ण या वैष्णव अधरामृत का भागी नहीं हो सकता, यह कहाँ लिखा है? देख, तूने उस दिन कैसा निर्दयता का कार्य किया। तुम लोग महाप्रसाद पा रही थीं। जब एक भूखा जीव तुम्हारे निकट आया उसे कुछ खाने को देना तो दूर, उस पर ऐसा प्रहार किया कि मैं समझता हूँ, चार दिन तो उसे वेदना रही ही होगी। वह तो एक मुट्ठी का अभिलाषी था। यदि आश्रम में भी उसको इस प्रकार ताड़ित किया जाय तो बेचारे का क्या होगा? प्राणि मात्र तो कृष्णदास है। दास के कष्ट से क्या प्रभु को कष्ट न होगा? शास्त्र में भी लिखा है-

ब्राह्मण आचण्डाल कुक्कुरांत करि।
दण्डवत् करिबेक बहुमान्य करि॥
एइ शे वैष्णव धर्म सबारे प्रणति।
शेइ धर्मध्वजी जार इथे नाहि मति॥

जब ऐसी बात है तो क्या बिलाव को छोड़कर बाकी सबके प्रति वैष्णव-बुद्धि रखनी होगी? तुम लोग बड़े स्वार्थी हो। सोचते हो कि जिससे कुछ स्वार्थ सिद्धि हो उसी को प्रसाद दो। यह तुम्हारा भ्रम है, क्योंकि भगवत्-इच्छा से जिन वस्तुओं की सृष्टि हुई है, उनमें कोई ऐसी नहीं है जो तुम्हारे प्रतिकूल हो। प्राणी मात्र से किसी न किसी रूप में तुम्हारा उपकार अवश्य होता है। यह भी संभव है कि कोई-कोई काम इन प्राणियों के बिना सम्पन्न हो ही न सके, और यदि यह मान भी लिया जाय कि इन सब प्राणियों से हमें कोई लाभ नहीं, तब भी भगवत्-प्रेरणा से सृष्ट जीव मात्र की अवज्ञा करना क्या भगवान् की अवज्ञा करना नहीं है? आसक्त, विरक्त और अनासक्त, ये तीन प्रकार के आश्रम हैं। आसक्त वे हैं जो पूर्ण रूप से मायाबद्ध संसारी जीव हैं। विरक्त वे हैं जिन्होंने माया संसार के क्लेशों का अनुभव कर उसका परित्याग किया है। निर्मल भाव से एक-एक रात एक-एक वृक्ष के तले रह कर असंग्रही और अयाचक वृत्ति द्वारा उदर-पूर्ति इत्यादि करते हैं। और अनासक्त वे हैं जो कमल के पत्ते पर जल की बूँद के समान निर्लिप्त भाव से संसार में रहते हैं। रजोगुण या तमोगुण इन दोनों में से किसी का भी अवलम्बन संसार के लिए अनिष्टकर है। शास्त्र कहते हैं-

निन्दाशून्य नम्र भावे सबारे स्तवन।
अभ्यागत आहूत व्यक्तिर चरण वन्दन॥
प्राणिमात्रे कोन रूपे उद्वेग ना दिबे।
काय मनोवाक्ये सबाय सन्तोष करिबे॥
जथा लाभे सन्तुष्ट सदा निष्ठा परायण।
त्रिविध रूपेते सदा श्रीकृष्ण सेवन॥

भगवत्संसारी जीव को उपर्युक्त शास्त्रोपदेशों का आचरण करना आवश्यक है। राजर्षि जनक, राजा अम्बरीष, पुण्डरीक विद्यानिधि, विलासी कृष्णदास इत्यादि सब भगवत्संसार के ही संसारी थे।

ललिता—इस प्रकार का संसारी होना तो हमारे लिए असंभव जान पड़ता है। ऐसी आशा करना भी अनुचित प्रतीत होता है।

बाबाजी—प्रभु की कृपा से असंभव भी संभव हो जाता है। उन्होंने जब तुम्हें अपने संसार का संसारी किया है तो तुम्हारी योग्यता अयोग्यता का विचार वे ही करेंगे। तुम्हारा कर्तव्य केवल इतना है कि तुम पूर्ण रूप से उनकी आज्ञा पालन करने की चेष्टा करो। कृपासिद्ध व्यक्तियों का यही साधन है।

ललिता—जब साधन ही करना है तब कृपा क्या हुई? लोग साधन-भजन में असमर्थ होने के कारण ही तो कृपा के लिए प्रार्थना करते हैं।

बाबाजी—कृपा के साधन-भजन में और साधन के साधन-भजन में बड़ा अन्तर है। कृपा का साधन-भजन तो ऐसा है जैसे मानो एक राजा है, जो बड़ा सम्पत्तिशाली, विद्वान् और बुद्धिमान है, परन्तु उसके पुत्र सब प्रकार से अयोग्य और विद्या-बुद्धि-हीन हैं। पिता उन्हें शिक्षा देने की भरसक चेष्टा करता है, पर कोई फल नहीं होता। वह मन्त्रियों से परामर्श करता है। मन्त्री सब एकमत हो कहते हैं, 'राजन्, आपके ही तो पुत्र हैं, वे कहाँ जाँय। आप कृपा कर उनके लिए कुछ उपाय कर दीजिए।' तब वह पुत्रों को बुला उन्हें सारी सम्पत्ति सौंप देता है और कहता है, 'देखो, बेटा, तुम इस अपार सम्पत्ति के अधिकारी हुए। तुम्हें उपार्जन करने की कोई चेष्टा नहीं करनी है। केवल यह चेष्टा करनी है कि वह उपार्जित सम्पत्ति नष्ट न हो।' इतना कह और कुछ आवश्यक उपदेश देकर वह निश्चिन्त हो परमार्थ कार्य में लग जाता है। पुत्रों का पिता के उपदेशों का पालन करना तथा उनके अतिरिक्त अन्यान्य अनेक सदुपदेशों के अनुसार कार्य करना कृपालब्ध सम्पत्ति की रक्षा के उद्देश्य से होता है। कृपासिद्ध साधकों का साधन वस्तु प्राप्ति के लिए नहीं हैं, प्राप्त वस्तु की रक्षा के लिए है। इसके विपरीत साधनसिद्ध साधकों का साधन वस्तु उपार्जन के लिए होता है; जैसे गरीब का बालक, जिसके कोई पैतृक सम्पत्ति नहीं है, स्वयं नौकरी कर या जिस किसी उपाय से संभव हो संसार-निर्वाह करने की चेष्टा करता है। इसी से मैं कहता हूँ कि तुम लोगों को न तो उपार्जन करने की कोई चेष्टा करनी है, न किसी प्रकार का अभाव ही रहेगा। तुम्हें केवल कृपालब्ध वस्तु की रक्षा के अनुकूल भाव रखना और प्रतिकूल विषयों का परित्याग करना ही पर्याप्त है। इसे साधन नहीं कहते, इसे रक्षण कहते हैं।

तब ललितादासी प्रभृति सब लोगों ने बाबाजी महाशय के चरण पकड़ अश्रुगद्गद कण्ठ से कहा, 'हम तो कुछ नहीं जानते और न कुछ करने की सामर्थ्य ही रखते हैं; आप ही को ऐसी कृपा करनी होगी, जिससे आपकी कृपादत्त सम्पत्ति नष्ट न हो। जिस प्रकार कृपाकर अमूल्य सम्पत्ति दी है, उसी प्रकार कृपा कर वह शक्ति दें, जिससे हम इस सम्पत्ति की रक्षा कर इसका भोग कर सकें।' इस प्रकार की नानारूप कातरोक्ति सुन बाबाजी महाशय मृदु वाक्यों से सबको आश्वस्त कर और अपने-अपने सेवा कार्य में नियुक्त होने का आदेश कर स्वयं नित्यकृत्य में लग गये।

* * * * *

देखते-देखते श्रीजगन्नाथदेव की रथयात्रा आ गई। हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि जगन्नाथदेव की सेवा बड़ी विश्रृंखल हो रही थी, यहाँ तक कि रोज नियम से शयन तक नहीं होता था। पुरीधाम का सारा व्यापार बाबाजी महाशय के लिए बड़ा आनन्दप्रद था, परन्तु जगन्नाथदेव की सेवा की ऐसी दुरवस्था देख वे बहुत मर्माहत हो रहे थे। रथ सिंहद्वार पर आकर उपस्थित है, बारह बज गये हैं और जगन्नाथजी के रथ पर विराजने की कोई व्यवस्था नहीं। यह देख बाबाजी महाशय ने किसी राजकर्मचारी से कहा, 'महाशय, आप लोग सब भक्तिमान कर्मचारी हैं। जगन्नाथदेव की ऐसी अवस्था देख क्या आपके हृदय को चोट नहीं पहुँचती? जगन्नाथजी के रथ एक दिन में ही गुंडिचा मन्दिर पहुँच जाया करते थे, पर आज जगन्नाथदेव रथ पर विराजेंगे भी या नहीं, यह भी निश्चित नहीं जान पड़ता।' कर्मचारी बहुत दु:ख के साथ बोले, 'देखिये बाबा, सेवा के प्रति

राजा का बिलकुल ध्यान नहीं है। यदि कोई कर्मचारी सेवा के लिए कुछ प्रयत्न करता भी है तो उस पर सबका कटाक्ष होने लगता है। इसलिए नौकरी के भय से कोई भी कर्मचारी कुछ कहने या करने का साहस नहीं करता।'

बाबाजी—मैं कहता हूँ कि आज की इस घटना से आप राजा को अवगत करा दें। मेरा विश्वास है कि अवश्य फल होगा।

कर्मचारी और कुछ न कह बाबाजी महाशय की चरणधूलि ले राजा के निकट गये। इधर बाबाजी महाशय कातर कंठ और आवेगपूर्ण हृदय से नामकीर्तन करने लगे। न जाने नाम के प्रभाव से या भगवदिच्छा से थोड़ी ही देर में जैसे सब लोग एकदम सजग हो गये और भाग-दौड़ करने लगे। राज-दरबार की ओर से पण्डों से जवाब तलब होने लगा कि अभीतक जगन्नाथदेव की पहुंडी-विजय क्यों नहीं हुई? चारों ओर हलचल मच गई। इच्छामय की इच्छा से बहुत थोड़े समय में ही बलराम, सुभद्रा, सुदर्शन और जगन्नाथदेव रथ पर बैठ गये। उस दिन रथ खींचा नहीं गया। बाबाजी महाशय भी आश्रम नहीं लौटे। रथ के नीचे ही सो रहे।

दूसरे दिन दस बजे के करीब बलराम का रथ खींचा जाने लगा। वे कुछ दूर जा चुके थे तब सुभद्रादेवी का रथ भी वहाँ पहुँचा। पर न जाने लीलामय जगन्नाथदेव की क्या इच्छा थी, रथों की गति बहुत धीमी थी। बहुत से लोगों के यत्न करने पर भी उस दिन रथ राजमहल तक न पहुँच सका। सबके मन में खेद था। कहाँ तो जगन्नाथदेव आज के दिन रथ पर चढ़ गुंडिचा मन्दिर पहुँच जाते थे, और नानारूप 'मीठा-पाना' का उन्हें भोग लगता था, और कहाँ आज के केवल 'घसाचिड़ा' का भोग खा रथ के ऊपर रास्ते में समय व्यतीत कर रहे थे। रोज रथ खींचा जा रहा था, किन्तु थोड़ी सी दूर जाकर खड़ा हो जाता था। इस प्रकार पाँच दिन बीत गये। छठे दिन बाबाजी महाशय के प्रति जगन्नाथदेव का क्या आदेश हुआ, वे ही जानें। जगन्नाथदेव का अवकाश हो रहा था, ये निकट खड़े थे। अवकाश के अन्त में सेवक पण्डा ने जगन्नाथदेव की दाँतुन उठाकर बाबाजी महाशय के हाथ में दी। उस कृपालब्ध वस्तु को प्राप्तकर इनका शरीर अश्रु, कम्प, पुलकादि से परिव्याप्त हो गया और हृदय उत्फुल्ल हो उठा। ये उसे मस्तक पर धारणकर झाँझपीटा मठ आ गये। बाबाजी महाशय को देख सब लोग सामने आ गये। ललितादासी कुछ विस्मित हो कर बोलीं, 'यह क्या? जगन्नाथदेव मस्तक पर क्यों?' यह सुनते ही बाबाजी महाशय के नेत्रों से अश्रुधार बह निकली। ठाकुर-मन्दिर के पास कमरे की ओर निर्देश कर गद्‌गद कण्ठ से बोले, 'देखो, बहुत शीघ्र यह कमरा साफ कर दो। उनका कहना है कि उनका अन्न-भोग बहुत दिन से बंद है और आदेश है कि यहाँ अन्न भोग की व्यवस्था हो।' यह सुन लोगों ने जल्दी-जल्दी कमरे को साफ किया और वहाँ एक आसन पर जगन्नाथदेव की विजय-मूर्ति स्वरूप उस दाँतुन को स्थापित किया। तब बाबाजी महाशय बोले, 'देखो, जगन्नाथदेव का जिस प्रकार मिट्टी की हड़िया में भोग तैयार होता है और मिट्टी की हड़िया में ही लगता है, ठीक उसी प्रकार यहाँ भी भोग लगाना होगा।'

ललिता—हमारे हाथ से जगन्नाथदेव खायँगे तो?

बाबाजी—यदि दयामय का ऐसा अनुग्रह न होता तो यहाँ पधारते ही क्यों? किसी प्रकार का सन्देह न कर कृपामय की कृपा का स्मरण कर शुद्ध भाव से जाकर रसोई बनाओ।

ललितादासी बाबाजी महाशय के आदेशानुसार कार्य करने लगी। जगन्नाथदेव का नियमानुसार भोगराग चलने लगा। दूसरे दिन पहले की तरह सुभद्रादेवी के अवकाश के समय बाबाजी जैसे ही रथ के आगे उपस्थित हुए, पण्डे ने सुभद्रादेवी की दाँतुन बाबाजी महाशय के हाथ में दी। इन्होंने भी पूर्ववत् उसे मस्तक पर धारण किया और आश्रम लौट आये। जैसे ही आश्रम पहुँचे, भीतर कई लोग एक साथ बोल उठे, 'यह आज सुभद्रादेवी का शुभागमन हुआ है।' बाबाजी महाशय ने यह सुनते ही जगन्नाथदेव के दाहिनी ओर उन्हें स्थापित किया। इस प्रकार तीन दिन में तीन मूर्तियों की स्थापना हुई और विधिपूर्वक उनकी सेवा चलने लगी। इधर जगन्नाथदेव ने बड़ी मुश्किल से नवमी के दिन गुंडिचा मन्दिर में प्रवेश किया। दशमी

के दिन फिर रथ उठा और उसे वापस जगन्नाथ मन्दिर में खींच लाने का प्रयत्न किया जाने लगा। लौटते समय रथ बहुत जल्दी-जल्दी चलने लगा। सब सोचने लगे कि शायद दो एक दिन के भीतर ही जगन्नाथदेव मन्दिर पहुँच जायँगे। बलदेव एवं सुभद्रादेवी का रथ बहुत आगे निकल गया। तब सबने यह निश्चय किया कि जगन्नाथदेव का रथ भी उनके पास आ जाय तब इनका रथ खींचा जाय। इसलिए सब इकट्ठे हो जगन्नाथदेव का रथ खींचने लगे। इच्छामय की इच्छा के विरुद्ध किसकी सामर्थ्य थी कि कुछ कर सकता। रथ पुल के ऊपर आकर कुछ टेढ़ा होकर खड़ा हो गया। बहुत चेष्टा करने पर भी तिल भर आगे न खींचा जा सका। पुरीवासी सब हताश हो गये। बहुत से लोग सोचने लगे कि इस बार सम्भव है जगन्नाथ मन्दिर में पहुँच ही न सकें। इस प्रकार बहुत दिन बीत गये। बाबाजी महाशय बार-बार दर्शन करने जाते और व्यथित हृदय वापस लौट आते। दुःखी कंगाल हा-हाकार करने लगे। सब कहने लगे, 'हाय, अब हम कैसे बचेंगे? कलिके जीवों के अन्नगत प्राण हैं। आज कई दिन से अन्नप्रसाद के दर्शन भी नहीं किये। जगन्नाथदेव चिउड़ा खा रहे हैं और हमें भी केवल चिउड़ा प्रसाद ही मिल रहा है।' बाबाजी महाशय उनकी कातरोक्ति श्रवण कर आश्रम लौटे और साथियों से बोले, 'देखो, आज से तुम्हें प्रसाद मिले न मिले, जो कोई भी भूखा तुम्हारे पास आये उसे एक मुट्ठी अन्न अवश्य देना।' साथी लोग ऐसा ही करने लगे। आश्रम में प्रायः दो सौ लोग रोज प्रसाद पाने लगे। किसी ने बाबाजी महाशय से पूछा 'इतने लोग कैसे प्रसाद पा रहे हैं? इसका भार किसके ऊपर है?'

बाबाजी—बाबा, निताइचाँद का संसार है। वे ही निर्वाह करते हैं। हमें जमा-खर्च का भार उन्होंने नहीं दिया है। कहाँ से और कैसे कार्य चल रहा है, वे ही जानें। पर काम ठीक चल रहा है, न सञ्चय होता है, न अभाव।

कई दिन बाद दोनों समय रसोई की व्यवस्था होने लगी। साथियों में बाबाजी महाशय ने ऐसी शक्ति का संचार किया कि वे दोनों समय प्राय साढ़े तीन सौ लोगों की रसोई का परिवेशन आदि कार्य बड़े उत्साह से करने लगे। आश्रम में किसी नौकर-चाकर या पुजारी की व्यवस्था तो थी नहीं। सब-कुछ आश्रम वासियों के ऊपर ही निर्भर था। पर सारा कार्य बड़े सुचारु रूप से हो रहा था और सब लोग बहुत आनन्दित और उत्फुल्ल थे।

इस प्रकार कई दिन बीते। एक दिन चार बजे के लगभग बाबाजी महाशय बाहर बैठे थे। अकस्मात् ललितादासी ने आकर कहा, 'बाजार करने के लिए कुछ नहीं है। कल सबेरे की रसोई का बाजार आज न करने से काम न चलेगा।'

बाबाजी—तो ठीक है, बाजार करो। मुझसे कहने की क्या आवश्यकता है। जिनका संसार है, उनसे कहो, वे व्यवस्था करेंगे।

ललिता—मैं और किससे कहूँ? मैं तो आप ही को देखती हूँ, इसलिए आपसे कह रही हूँ। प्रत्यक्ष छोड़ अनुमान की कहाँ खोज करूँ?

बाबाजी—मैं भी तो यही कहता हूँ। प्रत्यक्ष वस्तु छोड़ अनुमान से क्यों कहती हो? तुम जिसे प्रत्यक्ष कहती हो, वह तो कुछ भी नहीं है। आज तुम जिससे कह रही हो, कल सम्भव है उसे मरा जान उसकी देह को अग्नि में झोंक दो। आज जिसे स्पर्श कर अपने को पवित्र समझती हो, कल हो सकता है उसे स्पर्श कर अपने को अपवित्र मानो और बिना स्नान किये न रह सको। ऐसा क्यों? जिसे तुम प्रत्यक्ष देखती हो वह तो फिर भी तुम्हारे सामने वर्तमान रहता है, उसे फेंक क्यों देती हो? जिसे तुम प्रयत्न कर सुन्दर-सुन्दर वस्तुएँ प्रस्तुत कर दादा, बाबा, माँ कह कर खिलाती-पिलाती हो, वह तुम्हारे सामने ही सोया रहता है, फिर तुम क्यों कहती हो 'दादा कहाँ चले गये, बाबा हमें अनाथ कर कहाँ चले गये' इत्यादि। वर्तमान तो वर्तमान ही है। इस स्थूल देह को चैतन्यवान् प्रत्यक्ष वस्तु माना तो अचेतन कोई वस्तु परित्याग करने के लिए नहीं रहती। यही तो तुम्हारी भूल है। जिसकी सत्ता से जगत की सत्ता है, वह कभी अप्रत्यक्ष नहीं हो सकता। विशेष रूप से भक्तिराज्य में यह सम्भव नहीं। यद्यपि दर्शन-शास्त्र में ईश्वर तत्त्व को अनुमान सिद्ध माना है, मुझे

यह बात अच्छी नहीं लगती कि जो वस्तु दृश्यादृश्य जगत में ओत-प्रोत होकर सदा वर्तमान है, उसे अनुमानसिद्ध माना जाय। गौर-लीला, कृष्णलीला आदि सर्वदा सर्वनयनगोचर है, इसलिए भ्रम छोड़ो। निताइचाँद के संसार में वास करती हो, वे पूरा करेंगे।

ललिता—कहाँ, किससे और किस प्रकार कहूँ, बता दीजिये।

बाबाजी—क्यों, मैंने तो तुमसे बहुत बार कहा है कि श्रीमूर्ति नित्य हैं, उनकी सेवा नित्य है और सेवक नित्य हैं। इसलिए मन्दिर में जा चाहे मेरा ही नाम लेकर कहो कि उन्होंने भेजा है, आपके संसार में दोनों समय पर पाँच सौ लोग की रसोई बन रही है, अब बाजार के लिए खर्च नहीं है, जैसा चाहें करें।

ललितादासी बाबाजी महाशय के कथनानुसार श्रीमूर्ति से निवेदन करने के लिए मन्दिर की ओर चलीं अवश्य, परन्तु प्रसन्न मन से नहीं, क्योंकि वे समझ रही थीं कि बाबाजी महाशय ने केवल तसल्ली देने के लिए उनसे ऐसा कहा है। उन्होंने सोचा, मैं भी उनके आदेशानुसार मन्दिर में जाकर एक बार कह दूँ और फिर निश्चिन्त होकर बैठूँ, फिर देखूँ, क्या होता है। निताइ अपने हाथ से खर्च ला देते हैं या और कुछ करते हैं। यह सोचते-सोचते श्रीमन्दिर के सामने जा कुछ ऊपरी मन से बोलीं, 'निताइ, तुम्हारे संसार में दोनों समय चार-पाँच सौ व्यक्तियों की रसोई बन रही है। बाजार के लिए खर्च बिलकुल नहीं है; जैसा चाहो, करो।' यह कह वे अपने कमरे में चलीं गईं। बाबाजी महाशय भी अकेले बैठे थे। कोई बीस मिनट बाद उन्होंने ललितादासी को आवाज दी। वे कुछ असंतुष्ट और अनमने भाव से जाने लगीं, क्योंकि थोड़ी देर पहले वे विफल मनोरथ हो उनके पास से लौटी थीं। अब बाबाजी महाशय की अवज्ञा नहीं कर सकती थीं, इसलिए जा रही थीं और मन में चिन्ता कर रही थीं, 'बाबाजी महाशय तो उदासीन हैं। आज यदि बाजार न हो सका तो कल इतने लोगों के लिए भोजन की व्यवस्था कैसे होगी?' बाबाजी महाशय के निकट जाते ही देखा कि सौ रुपये की दो गड्डियाँ उनके सामने रखीं हैं और एक साधारण-से व्यक्ति वहाँ बैठे हैं। बाबाजी महाशय ने उनसे पूछा, 'बाबा, यह रुपया किस उद्देश्य से दे रहे हो?'

व्यक्ति—मैंने सुना कि ठाकुर के संसार में बाजार खर्च का अभाव है, इसलिए यह कुछ थोड़ा-सा दे रहा हूँ, क्योंकि मैं कुछ देने लायक नहीं हूँ।

बाबाजी—इससे कल वैष्णव सेवा हो जाय तो कैसा?

व्यक्ति—मेरी अपनी कोई भी अभिलाषा नहीं है। आश्रम में बहुत-से वैष्णव दु:खी कंगाल आदि प्रसाद पाते रहते हैं, यदि इस द्रव्य से सेवा में कुछ सहायता हो सके तो कर लीजिएगा।

इतना कह दंडवत् प्रणामपूर्वक उन्होंने प्रस्थान किया। बाबाजी महाशय ने ललितादासी से कहा, 'लो, अभीष्ट वस्तु का लाभ हुआ। अब विलम्ब क्यों करती हो? निताइ वांछा-कल्पतरु हैं। जो जिस वस्तु की इच्छा करता है, उसे वही देते हैं।' ललितादासी यह सब व्यापार देख विस्मित भाव से अपनी मानसिक संकीर्णता और विश्वास-रहित बुद्धि को धिक्कार रही थीं। बाबाजी महाशय की बात सुन अश्रुगद्गद कंठ से बोलीं, 'मैंने तो उस समय आपकी बात सुन कोई विश्वास और भक्ति से निताइ से प्रार्थना नहीं की थी। मेरे मन में तो कुछ क्रोध था और मैं सोच रही थी कि आपका ऐसा उदासीन भाव है, न जाने किस प्रकार कल ठाकुर और वैष्णवों की सेवा हो सकेगी।'

बाबाजी—तब तुम्हीं देखो, ऊपरी मन से प्रार्थना करने से जब उनकी ऐसी कृपा-दृष्टि हो सकती है, तो श्रद्धापूर्वक करने से क्या नहीं हो सकता? जीव की संकीर्ण बुद्धि और अविश्वास ही तो उसके दु:ख का कारण है और इसी से वह भगवद्-विमुख हो पड़ता है।

ललिता—प्रत्यक्ष देख सुनकर भी हमें विश्वास न हो तो हमारी गति क्या होगी? जिनके संसार में हम वास करते हैं, जो हमारे भरण-पोषण के लिए सदा प्रयत्नशील हैं, उन्हें यदि हम न पहचानें और उन पर विश्वास न करें तो हमारे समान प्रवंचक और अकृतज्ञ जगत में कौन होगा? मैं समझती हूँ कि हमारे जैसे

मनुष्यों से तो पशु बहुत श्रेष्ठ हैं। कुत्ते आदि अपने स्वामी के मुखापेक्षी हो निश्चिन्त रहते हैं। जब वह एक मुट्ठी अन्न डाल देते हैं, खा लेता है; जो कुछ मिल जाता है, उसी से खुश रहते हैं, पर हमारी तृष्णा की तो किसी प्रकार निवृत्ति नहीं होती। प्रभु जितना देते हैं, तृष्णा और अभिमान उतना ही बढ़ जाते हैं। पर आप बताइए, विश्वास कैसे हो?

बाबाजी—विश्वास पैदा करने का मूल साधन है शरणागति। अनन्यभाव से उनकी शरण ग्रहण करने से ही विश्वास होता है। शरणागति छह प्रकार की है-

आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनं:।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्वे वरणं तथा।
आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः।

अर्थात् जो-जो विषय हमारे अनुकूल हैं उन्हें विचारपूर्वक हृदय में धारणकर प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प और प्रतिकूल विषयों का कायमनवाक्य से परित्याग करने का संकल्प। सीधी बात यह है कि जो-जो विषय हमारे लिए अनिष्टकारी हैं, चाहे प्राण क्यों न चले जायँ, ग्रहण न करना और जो-जो विषय इष्टकारी हैं, उन्हें ग्रहण करना, चाहे जगत् और ब्रह्माण्ड से हमें उनके लिए पृथक् ही क्यों न रहना पड़े। इस प्रकार की दृढ़ता शरणागति की पहली सीढ़ी है। इस पर चढ़ने से ही विश्वास हो जायगा कि वे हमारी रक्षा करेंगे। यह विश्वास होने पर उनके प्रति आत्मनिवेदन को ही शरणागति कहते हैं। शरणागत व्यक्ति का कभी विनाश नहीं होता। उसकी रक्षा के लिए वे स्वयं सदा चिन्तित रहते हैं। सोचो तो सही, यह जो चार-पाँच सौ व्यक्ति यहाँ प्रसाद पाते हैं, उन्हें क्या तुम खाने को देती हो? प्रभु यदि न दें तो तुम दे सकती हो? दूसरे की बात तो जाने दो, तुम्हीं को यदि वे न दें तो तुम क्या अपना पेट भर सकती हो? आज तो तुम अपने को विशेष कार्यक्षम, विचारशक्ति सम्पन्न और बुद्धिमती समझती हो, जब गर्भ में थीं तब तुमने कौनसी विद्या-बुद्धि के बल से अपने जीवन की रक्षा की थी? भूमिष्ठ होते ही कौन से विचार और कौशल बल से तुमने मातृस्तन में दूध का संचार किया था? और यदि तुम्हारे पास संग्रह किया हुआ अन्न भी हो, पर यदि वह खाने न दें तो तुम खा सकती हो क्या? इसलिए सदा प्रभु की अधीनता स्वीकार कर और उनकी कठपुतली बन संसार में रहना चाहिए। उनके ऊपर निर्भर करने से कभी किसी प्रकार का अभाव नहीं होता, यह दृढ़ सत्य है। इसी उद्देश्य से शास्त्र कहते हैं-

भोजनाच्छादने चिन्ता वृथा कुर्वन्ति वैष्णवाः।
योऽसौ विश्वम्भरो देव सः किं भक्तानुपेक्षते॥

मन में यह धारणा दृढ़ कर भगवदाश्रय में वास करना चाहिए। सती स्त्री का धर्म अवलम्बन करना ही साधक का कर्तव्य है। सती स्त्री जिस प्रकार पति-परायणा होती है, पति के सुख में ही सुखी होती और पति जो कुछ उपार्जन कर लाता है, संतुष्ट मन से उसके द्वारा ही संसार-यात्रा निर्वाह करती है, उसी प्रकार साधक को भी रहना उचित है। असती स्त्री के समान कभी यह नहीं कहना चाहिए, मुझे यह चाहिए, वह चाहिए, अथवा अमुक प्रकार की वस्तु के बिना काम नहीं चलेगा। यद्यपि पति की सेवा के लिए चेष्टा और इच्छा को स्वतन्त्र चेष्टा नहीं कहा जा सकता, फिर भी पति को उद्वेग देकर सेवा करने से क्या लाभ? सेवा माने सुख प्रदान करना। सुखमय को सुखी करने के लिए आनुगत्यभाव और निष्ठा चाहिए। वे भाव के भूखे हैं। भाव से समर्पित की गई सामान्य वस्तु को भी बड़े प्रेम से ग्रहण करते हैं और भावशून्य हृदय से दी गई उत्तम से उत्तम वस्तु को तुच्छ समझकर दूर से ही उसका परिहार करते हैं।

इस प्रकार नानारूप उपदेश प्रदान कर बाबाजी महाशय ने ललितादासी को बाजार करने का आदेश किया। ललितादासी ने उन रुपयों की गड्डियाँ गिनीं तो इक्यासी रुपये निकले। उन्होंने बाबाजी महाशय से पूछा, 'किस प्रकार से क्या व्यवस्था करनी है?' बाबाजी महाशय ने सम्पूर्ण भार उनको सौंपते हुए कहा, 'अपने हाथ में पैसा न रखकर जिस-जिस वस्तु का विशेष प्रयोजन है, संग्रह करो।' इतना कह वह श्रीजगन्नाथदेव के दर्शन करने चले गये। ललितादासी भी प्रसन्न हो आवश्यकतानुसार नानारूप द्रव्य बाजार से लाने लगीं।

कई दिन बाद जगन्नाथदेव मन्दिर लौट आये और उनकी पूर्ववत् सेवा चलने लगी। बाबाजी महाशय भी कीर्तनानन्द में दिन व्यतीत करने लगे। एक दिन बाबाजी महाशय बलरामबाबू के घर बैठे हुए थे। उसी समय बलराम के ज्येष्ठ पुत्र जगबन्धु ने आकर प्रणाम किया। कुछ दिनों से जगबन्धु के शरीर में भयानक रोग लग गया था और धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा था। बहुत दिनों से बाबाजी महाशय उसे देखते आ रहे थे, परन्तु आज किसी शुभ मुहूर्त में उनकी दृष्टि उस पर पड़ी। उन्होंने बलराम को बुलाया और बोले 'जगू का स्वास्थ्य दिन पर दिन खराब होता जा रहा है, कुछ उपाय क्यों नहीं करते?'

बलराम—उपाय क्या करूँ? जितने प्रकार की चिकित्सा हो सकती है, सामर्थ्यानुसार करा चुका हूँ, पर रोग का कम होना तो दूर रहा, बढ़ता ही जा रहा है, क्या करूँ?

बाबाजी—देखो, पूर्वजन्म के गुरुतर अपराधों के प्रभाव से ये समस्त व्याधियाँ होती हैं, इसीलिए प्राय: देखने में आता है कि दैवशक्ति के अतिरिक्त और किसी उपाय से ये ठीक नहीं होतीं। राधाकुण्ड में एक वैष्णव थे। उनके दाहिने हाथ की कलाई उतर गई। वह उस हाथ में झाड़ू बाँध कुंड के चारों ओर सफाई किया करते थे। एक दिन कई वैष्णव बैठे इष्टगोष्ठी कर रहे थे। उनकी दृष्टि इन वैष्णव पर पड़ी और वे कहने लगे, 'इनका कैसा एकान्त अनुराग है; न जाने किस अपराध से ऐसी व्याधि लग गई है। हमारा विश्वास है कि एकमात्र रजरानी की कृपा होने से ठीक हो सकती है।' प्रभु की इच्छा से यह बात वैष्णव बाबाजी के कान में पड़ी। उसी दिन से वे सदा शरीर में रज लपेट कर रहने लगे। कभी श्रीकुंड की गीली रज मल लेते और कभी शुष्क। देखते-देखते बहुत थोड़े दिनों में बाबाजी का शरीर स्वस्थ और उज्जवल कान्तिमय हो गया। ऐसा और भी कितनी ही बार देखने में आया है।

बलराम—मैं स्वीकार करता हूँ कि दैवीशक्ति से बड़ी और कोई शक्ति नहीं, पर दैव एकमात्र विश्वास पर निर्भर करता है और विश्वास किसी दूसरे के हाथ की बात नहीं है।

बाबाजी—यह बात ठीक है, 'विश्वासे पाइबे वस्तु तर्के बहु दूर।' परन्तु इसमें बहुत कुछ तुम्हारे ऊपर भी निर्भर करता है, क्योंकि वह तो बालक है, पिता-माता यदि उसे विश्वास के पथ पर ले जाने की चेष्टा करें तो बहुत अनुकूलता हो सकती है।

तब बलरामबाबू रोते-रोते बाबाजी महाशय के चरण पकड़ कर बोले 'मैं स्वयं घोर अविश्वासी हूँ, उसे कैसे विश्वास दिला सकता हूँ, पर आज मैं उसे आपके चरणों में समर्पित करता हूँ, आपकी जैसी इच्छा हो करें।'

बाबाजी—निताइ! निताइ! मुझे समर्पण करने से क्या होगा? निताइचाँद को समर्पण करो। उनका दास है, वही रक्षा करेंगे।

बलरामबाबू जगबंधु का हाथ पकड़ बाबाजी महाशय के चरणों में उसे अर्पित करते हुए अश्रुगद्गद कंठ से बोले, 'मैं अब कुछ नहीं जानता, मैंने आपके चरणों में अर्पित किया। अब हम लोगों के साथ सम्बन्ध रखने की इसे कोई आवश्यकता नहीं। आपके पास रहेगा, आपके आदेश के अनुसार चलेगा, आपकी इच्छा हो तो इसे 'भेक' भी दे सकते हैं। हमारा इस पर अब किसी प्रकार का अधिकार या इसके प्रति कोई दायित्व नहीं रहा।'

बाबाजी—तुम अकेले ही इसके अधिकारी नहीं हो। तुम्हारी स्त्री की क्या बात है, जान लेना चाहिए।

बलराम—मैंने उससे पूछ रखा है। आस पड़ोसियों से भी परामर्श कर रखा है। सभी का कहना है कि इसे आपके चरणों में अर्पित कर देना चाहिए। आज से मैं इसकी ओर से निश्चिन्त हो गया।

इतना कह जगबन्धु से बोले, 'बेटा, आज से तुम हमारे नहीं रहे। सम्पूर्ण रूप से बाबाजी महाशय के चरणों में आत्मसमर्पण करो। हृदय से उनके आदेश का पालन करो, तुम्हारी इस लोक और परलोक दोनों में गति होगी। जन्म-जन्मान्तर के अपराधों से निवृत्ति होगी और परम सुख की प्राप्ति होगी।' जगबंधु ने बाबाजी महाशय के चरणों में साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया। बाबाजी महाशय बोले, 'अच्छा बेटा, निताइचाँद

के संसार में रहकर उनके आदेश का पालन करो। पिता-माता को दण्डवत् प्रणाम करो। तुम्हारे इस स्थूल शरीर पर उनका सम्पूर्ण अधिकार है। उनके आदेश से धर्मपथ पर चलने का सुयोग प्राप्त हुआ है।' जगू ने ऐसा ही किया। बलरामबाबू सरल हृदय से बोले, 'बेटा, निश्चिन्त होकर भगवद्-भजन करो और जीवन धन्य करो। तुम्हारे द्वारा हम भी कृतार्थ हों।' जगू पिता को प्रणाम कर माता के निकट गया और उनसे विदा के लिए प्रार्थना की। माँ अश्रुगद्गद कंठ से बोलीं, 'बेटा, तुम्हारे शरीर की जैसी अवस्था हो रही है, उसे देख माया-मोहवश तुम्हें अपने पास रखने से क्या होगा? इतने दिनों से कितनी चेष्टा की, पर कुछ भी फल न हुआ। इसलिए अब बाबाजी महाशय के पास रहो, उनकी कृपा से तुम्हारा मंगल होगा।' कहते-कहते वे रोने लगीं। जगू माँ को दण्डवत् कर बाबाजी महाशय के पास झाँझपीटा मठ चला गया और उनके साथ रहने लगा। बाबाजी महाशय ने उसे नियमपूर्वक ठाकुरजी के सामने त्रिकाल संध्या करने, अट्ठाइस बार उन्हें साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करने, रज में लोट-पोट होने, वैष्णव अधरामृत पान करने, चरणामृत सेवन करने, साध्यानुसार आश्रम में झाडू लगाने, समुद्र-स्नान करने और जगन्नाथदेव के मन्दिर के भीतर-बाहर चार बार परिक्रमा करने का आदेश किया। जगू भी उसी तरह आदेश पालन करने लगा। देखते-देखते जगू के शरीर में परिवर्तन होने लगा। ऐसा लगने लगा कि जगू अब पहले का जगू नहीं रहा। शरीर का रङ्ग बदल गया। सब देख कर आश्चर्य में पड़ गये, जो भी उसे देखता, मुक्तकण्ठ से बाबाजी महाशय की जय बोलता। बाबाजी महाशय जहाँ भी जाते, जगू वहाँ उनके साथ जाता। ये जब सपरिकर कलकत्ते गये, जगू भी उनके साथ गया। न जाने प्रभु की क्या इच्छा थी, जगू का शरीर बिलकुल स्वस्थ हो गया। किसी व्याधि का चिह्न भी उसके शरीर में न रहा। परन्तु मानसिक स्थिति में कुछ परिवर्तन होने लगा। पहले जिस प्रकार गुरु-वैष्णवों में श्रद्धा-भक्ति, आदिष्ट याजन में विशेष निष्ठा और अधरामृत, चरणामृत आदि में विश्वास था, उसमें धीरे-धीरे कमी होने लगी। कोई कुछ कहता तो उस पर क्रोध करने लगता। एक दिन कुसुममञ्जरीदासी ने बलपूर्वक उसे रज में लोट-पोट कराया तो वह उठकर उन्हें बहुत कुछ भला-बुरा कहने लगा। 'स्वकर्मभुक् पुमान्।' मानसिक वृत्ति के साथ-साथ शारीरिक परिवर्तन भी होने लगा। धीरे-धीरे फिर से रोग का संचार होने लगा। जब बाबाजी महाशय अपनी मण्डली के साथ रायबहादुर प्रसन्नकुमार के दक्षिणेश्वर के बगीचे में ठहरे हुए थे, उस समय एक दिन जगू की अवस्था देख ललितादासी उसे बाबाजी महाशय के निकट ले गईं और उनसे कातर भाव से उसके बारे में कहने लगीं। बाबाजी महाशय बोले, 'पूर्वजन्मार्जित गुरुतर अपराध के कारण इसे यह व्याधि हो जाती है, इसलिए लाख प्रयत्न करने पर भी इसके मन में भक्ति विश्वास स्थायी रूप से नहीं टिक पाता। मैं क्या करूँ?'

ललिता—विपत्ति पड़ने पर ही तो लोग शरणापन्न होते हैं; जो भक्ति-विश्वासपूर्वक याजन कर सकता है वह महत् पुरुष के आश्रय के लिए क्यों लालायित होगा? जिसके पास कुछ भी नहीं है, उसका यदि उद्धार कर सकें तभी तो कृपा समझी जायगी।

बाबाजी—कृपा का प्रकृत अर्थ तो यही है। परन्तु यदि कोई कृपालब्ध वस्तु की रक्षा न कर सके तो क्या किया जाय? प्रभु प्रति मुहूर्त कृपा करते हैं, जीव यदि ग्रहण न करे, अनुभव न करे और नानारूप दुष्कर्म करता रहे तो प्रभु क्या करें? एक व्यक्ति तुम्हारे ही उपकार के लिए तुम्हारे पास आता है, तुम यदि उसको ठहरने नहीं देतीं, तब वह क्या करे? कृपा का प्राण है एकमात्र विश्वास। कृपा प्राप्त करने के पहले जीव चाहे कितना अविश्वासी, भक्ति-श्रद्धाविहीन और दुराचारी हो, उससे कोई क्षति नहीं, पर कृपा प्राप्त करने के बाद भी यदि वह विश्वास और श्रद्धा न करे तो कृपा निर्जीव हो जाती है। प्राणहीन वस्तु अधिक समय तक नहीं टिक सकती। इसीलिए इस प्रकार के व्याधि-ग्रस्त लोग अधिकतर ठीक नहीं हो पाते। दो एक ही ठीक होते हैं। इस लड़के की जैसी पहले अवस्था थी और जैसा पहले याजन और गुरु-वैष्णव में श्रद्धा, विश्वास था, वह अब बिलकुल नहीं रहा। इसीलिए इसे इतना कष्ट है।

ललितादासी तब साश्रुगद्गद कंठ से बोलीं, 'जैसा भी है, अब ऐसी कृपा कीजिए जिससे इसमें फिर परिवर्तन हो जाय। यह देखिए कैसी दुरवस्था है इसकी।' इतना कह उन्होंने उसके शरीर के घाव को दिखाया। उसे देख बाबाजी महाशय के नेत्रों में आँसू आ गये। वे बोले, 'मैं क्या करूँ? जाओ, पहले गंगा की रज लगा कर अच्छी प्रकार धो डालो। फिर थोड़ा-सा सरसों का तेल लगा कर उसके ऊपर फिर गङ्गा की रज लगा दो। फिर पूर्ववत् वैष्णव चरणामृत, अधरामृत आदि लेता रहे। निताइचाँद की कृपा से ठीक भी हो सकता है।'

ललितादासी बाबाजी महाशय के आदेशानुसार कार्य करने लगीं। आश्चर्य की बात है कि एक दिन जब घाव धोया जा रहा था, उसमें से कोई दो-ढाई तोले सड़ा मांस निकला। सात दिन में वह स्थान सूख गया। पन्द्रह दिन में रोग बिलकुल जाता रहा। जगबन्धु तीन चार वर्ष बाबाजी महाशय के साथ रहने के पश्चात् पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गया और उसका शरीर अपूर्व ज्योति-सम्पन्न हो गया। विधि की विडम्बना से इतनी कृपा के बाद भी उसे चैतन्य न हुआ। धीरे-धीरे महत् संग छोड़ संसार में आने जाने लगा। कुछ दिन आश्रम में और कुछ दिन घर में रहने लगा और अन्त में फिर से मायाजाल में फँस कर पूर्ण संसारी हो गया। बाबाजी महाशय के साथियों ने अनेक बार उसे सत्पथ पर लाने की चेष्टा की, पर कोई सफलता न मिली। एक दिन उन्होंने बाबाजी महाशय से पूछा, 'इतनी कृपा के पश्चात् भी ऐसा परिवर्तन क्यों हो जाता है?'

बाबाजी—परिवर्तन का मूल कारण है अभिमान। घृणा, लज्जा, अविश्वास, अश्रद्धा आदि जितने भी अनिष्ट के कारण हो सकते हैं, उन सबके मूल में अभिमान छोड़ और कुछ नहीं रहता। इस जन्म में इसका जितना भी होना था, हो लिया। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता, तुम चाहे जितनी चेष्टा करो। और चेष्टा करने से तुम्हारे प्रति अश्रद्धा उत्पन्न होगी। इससे अपराध संचय न हो, इसके लिए तुम्हें चेष्टा करनी चाहिए। उसकी मानसिक वृत्ति में किसी प्रकार का हस्तक्षेप करना अन्याय होगा। मन ही मन निताइचाँद से प्रार्थना करो कि उसके अगले जन्म का फल अच्छा हो।

गुणसिन्धु

एक दिन बाबाजी महाशय ठाकुर मन्दिर के निकट बैठे थे। आश्रमवासी दो-चार लोग उनके पास बैठे नानारूप दंत-कथा सुन रहे थे। चार बजे के लगभग हरिनाम की मालाझोली हाथ में लिए एक भक्त जिनकी अवस्था ४५-४६ वर्ष के लगभग होगी, उनके पास आकर बैठ गये।

भक्त को देखते ही बाबाजी महाशय यथायोग्य अभ्यर्थना करने लगे। पर भक्त शीघ्र ही माला-झोली रख बाबाजी महाशय को साष्टांग दण्डवत् प्रणाम कर हाथ जोड़े एक ओर खड़े हो गये। नेत्रों से अश्रुधार बह कर उनकी लम्बी दाढ़ी से टपकने लगी। बाबाजी महाशय ने नानारूप सात्वनापूर्ण वचनों के साथ उनसे अपने पास बैठने को कहा, परन्तु वे खड़े ही रहे और गद्गद कंठ से बोले, 'बाबा, मेरे ऊपर कृपा कीजिए, मैं घोर पाषंडी और अविश्वासी हूँ, मुझे श्रीचरणों में स्थान दीजिए' और इतना कह फिर उनके चरण पकड़ कर रोने लगे। उन्होंने उन्हें हाथ पकड़ कर अपने निकट बिठाया और परिचय पूछा। वे बोले, 'मेरा नाम है गुणसिन्धु राय चौधुरी। बाखरगंज जिले का निवासी हूँ। कई दिन से श्रीधाम में आया हुआ हूँ। आपका संकीर्तन प्रायः सुना करता हूँ; परन्तु आपके चरणों में उपस्थित होने का सौभाग्य प्राप्त नहीं कर सका हूँ। इच्छा होते हुए भी ऐसा नहीं कर सका, क्योंकि मैं बड़ा पतित हूँ, आपके निकट आना मेरे लिए उतना ही कठिन है, जितना किसी बौने के लिए चाँद को पकड़ लेना। फिर भी जब आप एक बार आकर्षण कर मुझे अपने निकट ले ही आये हैं तो सदा के लिए आश्रय देने की कृपा करें। मैं आपका बालक हूँ, मुझे जिस प्रकार भी रखेंगे, रहूँगा और जैसे चलायँगे चलूँगा।'

बाबाजी—कहाँ ठहरे हो?'

गुण०—कुंडाइवैण्ट साही में बानाम्बर गली में एक मकान किराये पर ले रखा है।

बाबाजी—साथ में और कौन है?

गुण०—एकमात्र आपके श्रीचरणों का भरोसा है। मैं प्राय: किसी को अपने साथ नहीं रखता, आपकी कृपा से जिन-जिन तीर्थ स्थानों में गया हूँ, अकेला ही रहा हूँ; पर एक मकान के बिना काम नहीं चलता, इसीलिए मकान ले रखा है; इस कारण आप मुझे दूर न कर दें।

बाबाजी—क्यों बाबा, तुम तो परम भक्त हो, प्रभु के अंतरंग हो, तुम्हें क्या भय है?

गुण०—मेरी अभिलाषा है कि जो कई एक मूर्ति आश्रम में हैं, वे एक बार अपनी चरण-धूलि से मेरे निवास-स्थान को पवित्र करें। आपका क्या मत है?

बाबाजी—वहाँ नाम-कीर्तन करना होगा, या महाप्रसाद पाने के लिए कह रहे हो?

गुण०—महाप्रसाद पाने जैसा ही समझें।

इस प्रकार नानारूप कथावार्ता के पश्चात् गुणसिंधु चले गये। यथासमय बाबाजी महाशय सपरिकर गुणसिन्धुबाबू के घर महाप्रसाद पाने पहुँचे। नानाप्रकार की सामग्री महाप्रसाद में उपस्थित थी और गुणसिन्धु के नेत्र प्रेमाश्रुओं से भरे थे। उनका व्यवहार देख सभी लोगों का स्नेह उमड़ पड़ा।

इस प्रकार कई दिन बीते। एक दिन गुणसिन्धु घर पर बैठे माला जप कर रहे थे। अकस्मात् बाबाजी महाशय भ्रमण करते-करते वहाँ पहुँच गये; मानो आकाश का चाँद गुणसिन्धु के हाथ लग गया। शीघ्र आसन दे और साष्टांग दण्डवत् प्रणाम कर नानारूप स्तव-स्तुति करने लगे। कुछ देर बाद बहुत धीरे-धीरे बोले, 'बाबा, यहाँ हजार रुपये का नोट भुनाने की सुविधा है क्या?'

बाबाजी—इसकी चिंता न करो। बलराम को देना, वह भुना देगा।

गुण०—कुछ सामान की विशेष आवश्यकता थी।

बाबाजी-चिन्ता न करो, मैं अभी बलराम को बुलाकर व्यवस्था कराये देता हूँ। इतना कह वे गुणसिन्धु की नौकरानी से बोले, 'तुम बलरामबाबू का घर जानती हो क्या?'

उसने उत्तर दिया—'हाँ जानती हूँ, अभी उन्हें बुलाये देती हूँ।' वह बलरामबाबू को झट बुला लाई। बाबाजी महाशय ने जब उनसे गुणसिन्धुबाबू की बात कही तब वे बोले, 'हजार रुपये का नोट भुनाने के लिए तो कचहरी जाना पड़ेगा।'

गुण०—अच्छा, तो क्या अभी जाकर बाजार से पीतल और कांसे के कुछ बर्तन खरीदे जा सकते हैं? नोट भुनने पर पैसा दे देंगे।

बाबाजी—हाँ, ऐसा क्यों नहीं हो सकता? बलराम किसी दुकानदार से परिचय करा देगा, पैसे की क्या चिन्ता है? पैसा तो एक महीने पीछे भी दिया जा सकता है।

इतना कह उन्होंने बलराम के साथ गुणसिन्धु को दुकान भेज दिया। बलराम ने जगन्नाथदेव के सिंहद्वार पर हरिपाटरा नामक एक दुकानदार से उनका परिचय करा दिया और कहा, 'देख हरि, इन्हें जो कुछ बर्तन भांड़े, वस्त्र आदि की जरूरत हो, वह तुम्हारे पास न भी हो तो दूसरे दुकानदार से निःसंकोच दिला देना, पैसा-कौड़ी की चिंता न करना। इसकी जिम्मेदारी मेरी है।'

गुण०—नहीं दादा, आपकी जिम्मेदारी की क्या जरूरत है। मैं नोट भुनाते ही रुपया इन्हें दे दूँगा।

दुकानदार ने जिस-जिस सामान की इन्हें आवश्यकता थी लाकर दे दिया। उस दिन कपड़े और बर्तन भांड़े मिलाकर कोई पचाय-साठ रुपये का सामान खरीदा। इसी प्रकार गुणसिन्धु बाबाजी महाशय के साथियों से बड़ी चतुराई से घुलमिल कर रहने लगे। कभी किसी से दस-बीस रुपये उधार लेकर बाबाजी महाशय के किसी गृहस्थ भक्त के यहाँ रख देते। वह यदि विशेष परिचय न होने के कारण कुछ संकोच करता तो कहते, 'यह क्या बात है भाई, पैसा-कौड़ी तो बहुत तुच्छ वस्तु है। तुम्हारे जैसे व्यक्ति के प्रति यदि थोड़े से पैसे-कौड़ी का विश्वास न करूँगा तो परमार्थ धन कैसे पाऊँगा?' इस प्रकार नित्य ही दो चार दस पाँच रुपये का लेन-देन करते। फिर किसी दिन बिना कारण आकर कहते, 'दादा, पचास रुपये दे दो, मैं

कल ही तुम्हें दे जाऊँगा।' वह सोचता, प्राय: ही तो इस प्रकार का लेना-देना इनसे होता रहता है, इसलिए दे देता। फिर उसी दिन शाम को वह रुपया लौटा देते और कहते, 'भाई, मैंने सोचा था कल दूँगा, पर आज ही हाथ आ गये तो सोचा अभी क्यों न दे आऊँ।' इस प्रकार वे सबके साथ विशेष विश्वास योग्य व्यवहार करने लगे। अपने पण्डे से सौ रुपये उधार लेकर एक दिन जगन्नाथ को भोग लगाया और पंडों को भोजन कराया। चार-चार आना दक्षिणा प्रत्येक पण्डे को और अपने पंडे को एक जोड़ा धोती और इसी प्रकार दूसरे लोगों का यथा-योग्य सम्मान किया। बीच-बीच में बलरामबाबू से दस पाँच रुपये ले अपना कार्य करने लगे। परन्तु नोट भुनाने की बात जब कोई कहता तो तुरन्त कहते, 'हाँ भाई, कल ही पंडे ने कहा है कि उसे इस हजार के नोट की आवश्यकता है और वह रुपया इकट्ठा कर रहा है।'

गुणसिंधु के घर प्राय: ही वैष्णव सेवा और ब्राह्मण भोजन होता रहता। बाबाजी महाशय के साथियों की तो कोई बात ही नहीं, किसी दिन बाल-भोग, किसी दिन जगन्नाथ का महाप्रसाद और किसी दिन बाबाजी महाशय के निकट विशेष अनुनय विनय कर उनके साथियों द्वारा अपने घर रसोई कराना और सबकी सेवा करना नित्य चलता रहता।

इधर कई भक्तों के अनुरोध से बाबाजी महाशय कटक चले गये थे। उनके संगीगण बहुत उदास थे। ललितादासी कार्त भाव से बोलीं, 'यदि कोई कटक जाता तो बड़ा अच्छा होता।' यह सुन गुणसिंधु बोले, 'यह तो बड़ी अच्छी बात है, मैं चला जाऊँगा, बाबाजी महाशय को लेता आऊँगा और अपना हजार रुपये का नोट भी भुनाता आऊँगा। आप मुझे दस रुपये दे दीजिए, मैं लौट कर दे दूंगा।' ललितादासी ने रुपये दे दिये। उन्होंने कटक जा बाबाजी महाशय से कहा, 'बाबा, मैं सिर्फ नोट भुनाने आया हूँ।' बाबाजी महाशय बोले, 'अच्छा किया, यहीं भुनाना ठीक होगा।' कई दिन तक गुणसिंधु बाबाजी महाशय के साथ रहे, पर नोट भुनाने का नाम भी न लिया। एक दिन बाबाजी महाशय बोले, 'क्यों गुणसिंधु, नोट भुनाने आये थे न?' गुणसिंधु ने उत्तर दिया, 'यही तो सोच रहा हूँ। यहाँ से नोट भुना कर इतना रुपया मुझे ले जाने में बड़ी असुविधा होगी, इसलिए पुरी चल कर ही भुना लूँगा।'

उसी दिन गुणसिंधु बाबाजी महाशय के साथ पुरी चले आये। कई दिन पीछे बाबाजी महाशय को गुणसिंधु कहीं मिल गये और बोले, 'सोचता हूँ कि इतना रुपया यहाँ रखना ठीक नहीं, इसलिए आपके यहाँ रख दूँ।'

बाबाजी महाशय भी सरल भाव से बोले, 'अच्छा बाबा, ऐसा ही करो, जिससे तुम्हें किसी प्रकार की असुविधा न हो।' तब गुणसिंधु ने प्रसन्न हो एक कपड़े की पोटली खोली और दोनों हाथों से उसमें से एक बटुआ उठा कर बोले, 'बाबा, इसमें दो हजार रुपये के दो नोट हैं। इसे केवल अपने आश्रम में रखना।' बाबाजी महाशय एक लड़के के हाथ उस बटुए को ललितादासी के पास भेजते हुए बोले, 'उससे कहना कि बड़े यत्न से इसे बक्से के अन्दर रख दे।' लड़के ने ललितादासी को बटुआ दे दिया और उन्होंने यत्नपूर्वक बक्से के अन्दर उसे रख दिया। दुर्गापूजा के समय गुणसिन्धु बड़ी धूम-धाम के साथ बाबाजी लोगों को खिलाने-पिलाने और उनका आदर सत्कार करने लगे। आश्रमवासी बाबाजी लोगों को एक-एक चादर और बहिर्वास, ललितादासी और कुसुममञ्जरीदासी को एक-एक साड़ी दी। इस प्रकार कोई सौ रुपये खर्च किये। सब सामान हरि की दुकान से उधार आया। इसके अतिरिक्त हाथखर्च के लिए जो आवश्यकता हुई वह बलराम से लिया। गुणसिन्धु के व्यवहार से सब लोग बहुत सन्तुष्ट थे। पर पैसे-कौड़ी के मामले में सबको कुछ-कुछ सन्देह होने लगा था। एक दिन ललितादासी ने बाबाजी महाशय ने कहा, 'गुणसिन्धु की बातें और उसका व्यवहार न जाने कैसा है, मेरी तो कुछ समझ में नहीं आता।' बाबाजी महाशय क्रुद्ध होकर बोले, 'तुम लोगों की बड़ी कुत्सित प्रकृति है। किसी के दोष छोड़ गुण नहीं देख सकतीं। जो व्यक्ति दो घण्टे आह्निक पूजा करता है और सदा ब्राह्मण-वैष्णव की सेवा में लगा रहता है उसके ऊपर सन्देह करने का क्या कारण है? वह तो तुमसे कुछ चाहता नहीं। फिर उसके प्रति दोष दृष्टि क्यों? शास्त्र कहते हैं-

ग्राह्नति साधुरपस्य गुणं न दोषान्।
दोषान्वितो गुणिगुणान् परिहाय दोषं।।
बालः स्तनात् पिवति दुग्धमसृक् विहाय।
त्यक्त्वापयो रुधिरमेव पिवेज्जलौका।।

इसका दृष्टान्त यदि कहीं न मिले तो तुम्हारे पास है। सैकड़ों गुण प्रत्यक्ष हैं फिर भी उन्हें छोड़कर दोष न होते हुए भी दोषों की सम्भावना के नाते उनकी सृष्टि करने की क्या आवश्यकता है?' इस प्रकार वे अनेक प्रकार से उनका तिरस्कार करने लगे। इधर गुणसिन्धु दुकानदारों से, पण्डों से, बलराम से, बाबाजी महाशय के अन्यान्य साथियों और गृहस्थ भक्तों से कोई नौ-साढ़े नौ सौ रुपये उधार ले चुके, फिर भी उधार थमा नहीं। एक दिन बलरामबाबू से चालीस रुपये माँगे तो वे बोले, 'दादा, आज मेरे पास रुपया नहीं है। अपना नोट लाइये न, भुना दूँ।' गुणसिन्धु ने जब यह बात बाबाजी महाशय से कही तो उन्होंने बलराम से चाहे उधार लेकर ही हो, चालीस रुपये की व्यवस्था कर उन्हें देने के लिए कहा। बलरामबाबू परेशान होकर दूसरे दिन प्रातः ललितादासी के पास गये और बोले, 'जीजी, मुझसे और रुपये की व्यवस्था नहीं होती और गुणसिन्धु से नोट भुनाने के लिए माँगता हूँ तो वह देते नहीं। क्या किया जाय? आप जरा बाबाजी महाशय से कहकर एक नोट मुझे दे दीजिए, मैं आज ही भुना दूँगा।' बाबाजी महाशय बाल बनवा रहे थे। उसी समय ललितादासी ने उनसे यह बात कही। वह कुछ कड़े होकर बोले, 'नोट तो तेरे पास ही है। पर तुम लोगों को विश्वास नहीं होगा। गुणसिन्धु तो कई दिन हुए नोट मुझे दे गया था, जिसे मैंने फणि के भाई के हाथ तेरे पास भिजवा दिया था। अच्छा, वह कपड़े की पोटली ले आ। उसमें से एक नोट बलराम को दे दे।' ललितादासी ने शीघ्र कपड़े की पोटली निकाली और उसमें से बटुआ निकाला। बाबाजी महाशय, बोले, 'क्यों अब तो विश्वास हुआ?' ललितादासी बोली, 'बटुए को खोला जाय तब न।'

बाबाजी—हाँ, खोल न। उसने कहा था कि उसमें दो नोट हैं। एक बलराम को दे दे।

ललितादासी ने बाबाजी महाशय के आदेश से बटुए की गाँठ खोली तो देखा कि दोनों ओर खूब अच्छी तरह सिलाई हो रही है। बाबाजी महाशय ने दाढ़ी बनवाते-बनवाते पूछा, 'खोला?' ललितादासी बोलीं, 'इसमें तो मजबूत सिलाई हो रही है।'

बाबाजी—होने दो, उसे खोल डालो।

तब ललितादासी ने चाकू से सिलाई काट डाली और देखा कि उसमें दो फुलस्केप कागज रखे हैं। एक में आह्निक पूजा की पद्धति लिखी है, दूसरे में गुरु-वन्दना। बलरामबाबू निकट ही बैठे थे। वे देखकर स्तम्भित! ललितादासी विस्मय-विगलित कण्ठ से बाबाजी महाशय से बोलीं, 'नोटों के नम्बर सुनिये। एक का नम्बर है 'अज्ञान-तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया। चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।' 'अखण्ड मण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्। तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।' इत्यादि। दूसरे में वैष्णवोचित आह्निक पद्धति है।' यह सुनते ही बाबाजी महाशय निकट आये और स्वयं सब कुछ देख पन्द्रह मिनट तक स्तम्भित रह कर बोले, 'अच्छा, जो कुछ होना था, हो गया, अब ठीक पहले की तरह सिलाई करके रख दो।' फिर राधाकृष्ण नामक एक लड़के से कहा, 'तुम तुरन्त गुणसिन्धु के पास जाओ और वह जिस अवस्था में भी हो, उसे ले आओ। उससे कहो तुम्हारे बाबा ने तुम्हें इसी क्षण बुलाया है।' इधर ललितादासी ने पहले की भाँति बटुआ सीकर कपड़े की पोटली में रख दिया। गुणसिन्धु के आने में विलम्ब देख एक और आदमी को उसे बुलाने भेजा। वह उस समय आह्निक के लिए तैयारी कर रहा था। बार-बार बुलावा आते देख पूछने लगा, 'क्या कारण है, इतनी जल्दी बाबाजी महाशय क्यों बुला रहे हैं?' उसकी भाषा से लगता था कि वह बरिशाल जिले का व्यक्ति था। अपने परिचय में भी उसने बरिशाल के निकट ही किसी गाँव की बात कही थी। बाबाजी महाशय उसके आने में विलम्ब देख दूसरे किसी व्यक्ति को बुलाने के लिए भेजने जा ही रहे थे कि वह वहाँ पहुँच गया। देखते ही बाबाजी महाशय ने उसे बड़े यत्न से बिठाया। पर वह बोला, 'ता नय बोझ्लाम आमारे डाक्छेन केन कन्चेन्।'

बाबाजी—'देखो बाबा, बलराम कह रहा है नोट मिल जाय तो मैं तुरन्त ही भुना के ला दूँ। इसलिए उसे एक नोट भुनाने को दे दो। बाजार का बहुत देना हो गया है।' इतना कह वे ललितादासी से बोले, 'उस दिन जो फणि के भाई के हाथ कपड़े की पोटली मुझे भेजी थी, उसे ले तो आ।' वह जल्दी-जल्दी काँपती हुई गईं और पोटली लाकर गुणसिन्धु से बोले, 'एक नोट इसमें से निकाल लो।' वह पोटली खोल बटुआ हाथ में लेते ही बोला, 'एडा जेन केडा खोलल्छे बल्या मोने लागछे। (इसे जैसे किसी ने खोला है, ऐसा लग रहा है)।' इतना कह उसे बटुए को कपड़े में रखकर फिर पोटली बाँध ली और अपनी भाषा में पहले की तरह कहने लगा, 'मुझे क्यों बुलाया गया है?' बाबाजी महाशय बोले, 'इस नोट को भुनाने के लिए ही तुम्हें बुलाया है।' पर उसने जैसे इसको सुना ही नहीं। कुछ देर अपनी भाषा में उसी प्रकार प्रलाप करते हुए बोला, 'अच्छा, कल पंडे ने नोट का पैसा देने को कहा था। मैं शीघ्र ही उससे नोट भुना कर लाता हूँ।' बलरामबाबू बोले, 'क्यों दादा, मुझे दीजिए न, मैं भुना लाऊँ।' तब बाबाजी महाशय बलराम के ऊपर झूठा क्रोध करते हुए बोले, 'तुम क्यों बाधा देते हो? हो सकता है इसने पंडे को वचन दे रखा है तो तुम्हें कैसे देगा?' गुणसिन्धु से बोले, 'अच्छा, तुम जाकर आह्निक करो। संध्या समय या कल जैसा ठीक समझो कर लेना।' वह भी बाबाजी महाशय का आदेश पाते ही उन्हें साष्टांग दण्डवत् प्रणाम कर पोटली हाथ में ले कौशलपूर्वक घर चला गया।

इधर बाबाजी महाशय बलराम से बोले, 'बलराम मन में कुछ क्षोभ न करना। जहाँ इतना रुपया गया है, पाँच सात रुपये और उसे दे आओ, नहीं तो उसे घर जाने में कष्ट होगा।' बलरामबाबू बाबाजी महाशय की अदोषदर्शिता और अलौकिक उदारता देख विमुग्ध हो गये और अश्रुगद्गद कंठ से बोले, 'आप यदि कुछ न कहें तो मैं उसे कुछ चैतन्य कर दूँ।' बाबाजी महाशय बलराम के सिर पर हाथ रखकर बोले, 'छि: छि: ऐसी बात तुम्हारे जैसे व्यक्ति के मुख पर आनी भी नहीं चाहिए। जिन-जिन लोगों का पैसा देना है उसकी व्यवस्था पीछे की जायगी। पहले उसे पाँच रुपये दे आओ और उससे कह दो, 'आपने चालीस रुपये माँगे थे, मेरे पास इस समय इतने रुपये नहीं हैं, इसलिए पाँच रुपये दिये जा रहा हूँ, और पीछे देखा जायगा। उसके साथ व्यवहार इस प्रकार से करना कि वह न जान सके कि तुम्हें सब कुछ पता लग गया है। सोचो कि वह तुम लोगों से पैसा लेकर कोई असत् कार्य तो करता नहीं, फिर तुम्हें उस पर क्रोध क्यों आता है? क्रोध करना है तो मेरे ऊपर करो, क्योंकि मैं तुम लोगों के अविश्वास का पात्र हो गया हूँ।' इस प्रकार के वाक्यों से सबके मनोविकार को शान्त कर बाबाजी महाशय स्नानादि करने चले गये। बलरामबाबू ने बाबाजी महाशय के आदेशानुसार गुणसिन्धु के निकट जाकर उसे पाँच रुपये दिये और उसके साथ वैसा ही व्यवहार किया जैसा बाबाजी महाशय ने कहा था। यथासमय गुणसिन्धु प्रसाद पा और कुछ विश्राम कर माला की झोली हाथ में ले जगन्नाथ दर्शन के लिए गये। मकान वाले ने समझा कि बाबू दर्शन करने गये हैं। पर जब वे लौटकर न आये तो उसने उनके बर्तन भाँड़े जुटा कर पाँच सात दिन के लिए अपने पास रख लिये। जब वे बिलकुल ही लौटकर न आये तो मकान के किराये के एवज में उन्हें जब्त कर लिया। दुकानदार का उधार और अन्यान्य लोगों का उधार बाबाजी महाशय ने बलराम के सहयोग से अदा किया और सबको आदेश किया कि वे इस प्रकार का व्यवहार करें, जिससे इस घटना की विशेष समालोचना न हो। बलराम से बोले, 'देखो बेटा, यदि इस बात का प्रचार हो जायगा तो यात्रियों का कोई विश्वास न करेगा। इसलिए इसको गुप्त रखना ही ठीक होगा। समझ लो कि यह सब वैष्णव-सेवा तुम्हीं ने की।'

फणि को नवजीवन लाभ

एक बार श्रीधामपुरी में भयंकर हैजा फैला। चारों ओर हाहाकार मच गया। जिस मुहल्ले में हैजा फैला था उसके निवासी भय के मारे चार बजे के बाद घर से बाहर निकलते थे। उड़ीसा देश में स्वाभाविक नियम है कि किसी प्रकार की संक्रामक बीमारी फैलने पर श्रीमद्भागवत-सप्ताह, नगर-कीर्तन, जगन्नाथ के

महाप्रसाद द्वारा ग्राम-देवता की पूजा, मुख्य रूप से शिवलिंगों का महास्नान और षोडशोपचारों से अर्चना द्वारा रोग की शान्ति की जाती है। बीमारी का अधिक जोर होने पर सब सेवक पंडा और अन्यान्य क्रियानिष्ठ ब्राह्मणों द्वारा जगन्नाथ के सिंहद्वार पर कुंड बनवा कर उसमें एक बड़े यज्ञ का अनुष्ठान किया जाता है। पर इस बार जगन्नाथदेव की न जाने क्या इच्छा थी, किसी भी उपाय से रोग की शान्ति नहीं हो रही थी, उल्टे दिनोंदिन वृद्धि होती जा रही थी।

बाबाजी महाशय इस समय दो एक साथियों को ले कटक गये हुए थे। इस विपत्ति के समय बाबाजी महाशय का पुरी में न होना सबको बड़ा खल रहा था। कई दिन पश्चात् पुरी का समाचार प्राप्त कर वे लौट आये। प्रायः तड़के ही वे मन्दिर में संकीर्तन करने जाते थे। इस समय लोग आपस में कहते कि बाबाजी महाशय प्रायः नगर कीर्तन किया करते, परन्तु इस महामारी के समय वे एक दिन भी कीर्तन लेकर बाहर नहीं निकले; न जाने क्या कारण है। किसी ने बाबाजी महाशय से पूछ लिया, 'बाबा, आजकल नगरकीर्तन के लिए क्यों नहीं चल रहे हैं?' इन्होंने विनीत भाव से उत्तर दिया 'जिनका कीर्तन है वे ही न ले चलें तो क्या करें। उनसे कहो, यदि उनकी इच्छा हुई तो अवश्य चलूँगा।'

इस प्रकार कई दिन बीते। एक दिन उन्होंने जगमोहन में बड़े जोर का कीर्तन किया। सब आनन्द में विभोर थे। इधर माधव पशुपालक जगन्नाथजी का अवकाश और प्रथम पूजा शेष कर उन्हें प्रणाम कर रहे थे। उसी समय न जाने उनके मन में क्या भाव आया, अकस्मात् जगन्नाथजी की कंठमाला खिसक पड़ी। पशुपालक प्रेम में गद्गद हो माला लेकर संकीर्तन के निकट आये। भगवदिच्छा से बाबाजी महाशय भी कीर्तन से अलग हो एक ओर खड़े थे। पशुपालक ने माला उनके गले में पहनाते हुए अश्रुगद्-गद कंठ से कहा, 'जगन्नाथजी ने आपको नगर-कीर्तन करने की आज्ञा दी है। उनके सेवक-गण बहुत हताश हैं। इसलिए प्रभु को बड़ा कष्ट हो रहा है।' बाबाजी महाशय हाथ जोड़कर बोले, 'किस प्रकार आदेश किया है?'

माधव—मैंने पूजा समाप्त कर दण्डवत् करते समय मन ही मन कहा, 'हा प्रभु, पुरीवासी सभी एकमात्र तुम्हारा सहारा लेकर जीते हैं, फिर भी उन्हें इतना कष्ट हो रहा है। क्या उन्हें देख तुम्हारे प्राण नहीं रोते? होम, यज्ञ आदि सभी प्रकार के प्रयत्न कर चुके, परन्तु महामारी किसी प्रकार कम न हुई। नामसंकीर्तन भी मोहल्ले-मोहल्ले हो रहा है। केवल बड़े बाबाजी महाशय का कीर्तन बाकी है। वह तभी हो सकता है, जब तुम्हारा आदेश हो।' उसी समय उन्होंने अपनी कण्ठीमाला गिरा दी। अब आपके मन में जैसा विचार आये कीजिए।

यह सुन बाबाजी महाशय अश्रु, कम्प, पुलकादि से विभूषित हो कीर्तन मण्डली के बीच जाकर नृत्य करने लगे। कीर्तन का आनन्द धीरे-धीरे बढ़ने लगा। बहुत देर तक जगमोहन में संकीर्तन कर मन्दिर के पश्चिम दरवाजे से निकले और मार्कण्डेश्वर साही होते हुए नरेन्द्र सरोवर पहुँच गये। नरेन्द्र सरोवर की परिक्रमा कर हेरागौरीसाही होते हुए झाँझपीटा मठ आये। दूसरे दिन प्रातः कृत्यादि समापनपूर्वक सबसे बोले, 'देखो, आज संकीर्तन महासमर है। सावधान, कोई भी इस समर में मंडली के बीच से अलग न हो। जो अलग होगा, उसका निताइचाँद पर दायित्व न होगा।' इतना कह उन्होंने कीर्तन उठाया-

"शमन तुइ पाला पाला रे चाँद निताइ एल।
निताइ एल गौर एल संगे श्रीअद्वैत एल॥
(जे देशे) निताइगौर नाइ रे।
शेइ देशे तोर जाबा भाल॥
आमरा गौर खाताय नाम लिखेछि।
तोर अधिकार उठे गेल॥

-यम, तू भाग यहाँ से। यहाँ निताइ आ गये हैं, उनके साथ गौर और अद्वैत आ गये हैं। जिस देश में निताइ-गौर नहीं, वहीं तेरा जाना उचित है। हमने तो गौर के खाते में नाम लिखा लिया है। हमारे ऊपर से तेरा अधिकार उठ गया है।

आज के संकीर्तन स्वर और भावभंगी दोनों कुछ और ही हैं। आज बाबाजी महाशय को देखा ऐसा नहीं

लगता कि वे प्रेममूर्ति हैं। बीच-बीच में मदमस्त सिंह के समान 'जय निताइ' कहकर हुंकार भरते हैं, तो पृथ्वी काँप जाती है। वे सिंहद्वार के निकट पहुँच ऐसी व्याकुलता से नाम-कीर्तन करने लगे कि दुकानदार अपना-अपना काम छोड़ संकीर्तन में सम्मिलित हो रुदन करने लगे। बालक, वृद्ध, युवा, स्त्री, पुरुष सब आवेगपूर्ण हृदय से कीर्तन कर रहे थे। सेवक, पंडा, पुजारी आदि जो जहाँ और जिस अवस्था में थे आकर नाम में योग दे रहे थे। सबके मन में यह दृढ़ धारणा थी कि आज के संकीर्तन समर में पराभूत होकर दुर्जय संक्रामक व्याधिरूप शत्रु निश्चय ही भाग खड़ा होगा। गीता में भगवान् ने कहा है-

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

आज जनसमूह की व्याकुलता देख ऐसा प्रतीत होता है कि ये लोग सब आर्त श्रेणी के भक्त हैं, आर्त श्रेणी के भक्तों का चित्त जैसा सहज में एकाग्र हो जाता है वैसा अन्य श्रेणी के भक्तों का होना कठिन है।

मदमस्त और प्रबल पराक्रमी सिंह के समान बढ़ते हुए संकीर्तन दल ने हरचण्डीसाही में प्रवेश किया है। रास्ते के दोनों ओर से संकीर्तन की ध्वनि सुनकर लोग अपना-अपना काम छोड़ छूटे चले आ रहे हैं। बालक, वृद्ध, पुरुष, नारी सबके हृदय में आज नयी आशा का संचार हो रहा है। बहुत दिनों से उनके मुखारविन्द पर ऐसे आनन्द की झलक कभी नहीं दीखी थी, जैसी आज दीख रही है। सब संक्रामक बीमारी के अत्याचार से भयभीत हो समय काट रहे थे। नाम-संकीर्तन नित्य हो रहा था, फिर भी उनका भय नहीं जाता था। पर आज संकीर्तन मानो अलक्षित रूप से साहस प्रदान कर रहा है। सब एक स्वर से कह रहे हैं, 'अब किसी प्रकार का भय नहीं। आज से हम निर्भय हो गये। जगन्नाथदेव की इच्छा से रोगियों का रोग दूर होगा और स्वस्थ लोगों का भय दूर होगा।' बाबाजी महाशय आगे-आगे पैर पर पैर रख नृत्य करते चले जा रहे हैं। क्रमशः संकीर्तन का वेग इतना प्रबल हो उठा कि कौन कहाँ गिर रहा है और किसे पकड़ रहा है, इसका किसी को होश न रहा।

इधर या तो संकीर्तन के परिश्रम से या समय के फेर से फणि धीरे-धीरे संकीर्तन-मण्डल से पृथक् हो गया। वह बाबाजी महाशय की आज्ञा का कभी तिलभर भी उल्लंघन नहीं करता था, पर आज उनके आदेश का उल्लंघन कर संकीर्तन मण्डल को छोड़ अकेला ही धीरे-धीरे चलने लगा। प्रभु की क्या इच्छा थी, वे ही जानें। कुछ दूर पहुँचते ही उसके पेट में दर्द आरम्भ हुआ। वह तेजी से भागता हुआ शौच के लिए आउलिया मठ में घुस गया। एक ही दस्त के बाद उसका मुख काला पड़ गया। शीघ्र आश्रम को लौट उसने ललितादासी से सारा वृत्तान्त कहा। उसका चेहरा देखते ही सबको भय होने लगा। दो-एक दस्त और उल्टी, और वह चारपाई से लग गया और कमरे के भीतर ही शौच को जाने लगा। संकीर्तन सातसाही का चक्कर लगाते हुए आश्रम में लौट आया। राधाकान्तदेव के सम्मुख बहुत देर तक उन्मुक्त भाव से नृत्य और कीर्तन होता रहा। कीर्तन समाप्त होने पर ललितादासी धीरे-धीरे बाबाजी महाशय के पास गईं और बोलीं, 'फणि बहुत बीमार है, उसे कई दस्त और उल्टी हो चुके हैं, उसकी अवस्था बहुत ही शोचनीय है।'

बाबाजी—ठीक ही तो है। मैंने तो पहले ही कहा था, जो संकीर्तन मण्डल से पृथक् होगा वह अवश्य ही विपत्ति में पड़ेगा। ललिता-वह बालक है न, उसका शरीर अस्वस्थ था, इसलिए पीछे रह गया होगा।

बाबाजी—यह असंभव बात है। निताइचाँद के घेरे के भीतर रहते उस पर विपत्ति नहीं आ सकती। उसने आउलिया मठ में जाकर खिचड़ी भी तो खाई थी। जैसा वह लोभी है, वैसा ही भोग भी भोगेगा, मैं क्या करूँ?

ललिता—वह बालक है और ऊपर से रोगी। ऐसी अवस्था में उससे कुछ भी कहना काठ की पुतली से कहने के समान है। आप उसके पास चलिए।

इतना कह वे उन्हें जिस कमरे में फणि था उसमें ले गईं। बाबाजी महाशय फणि को देख बहुत चिन्तित हो गये और बाहर आकर बोले, 'इसकी अवस्था बहुत शोचनीय है, ऐसा लगता है कि बचेगा नहीं। फिर भी कर्तव्यानुसार यत्न करते रहो।'

तब ललितादासी अश्रुगद्गद कण्ठ से बोलीं 'आश्चर्य! यह अबोध बालक मर जायगा और आप इसके लिए कुछ न करेंगे, तो आप जो नाम की महिमा का बखान करते हैं उस पर कौन विश्वास करेगा?'

बाबाजी—जीव अपने कर्मदोष से नानाप्रकार के कष्ट भोगता है, पर दोष भगवान् और उनके नाम पर लगाता है।

ललिता—नहीं, मैं भगवान् को दोष नहीं दे रही, दोष आप लोगों का है। आप लोग इच्छा करते ही जीवों का समस्त दुःख दूर कर उनके अशेष कल्याण का विधान कर सकते हैं। आप लोगों की अवहेलना के कारण ही जीव विपत्तिसागर में गोते खाता रहता है।

बाबाजी—तो क्या तुम्हारा मत है कि इस प्रकार के सामान्य रोग को ठीक करने के लिए, किसी का मुकदमा जिताने के लिए या लोगों में महात्मा बनने के लिए नाम से प्रार्थना करना उचित है? यदि काम न हुआ तो नाम के वांछाकल्पतरु रूप की हानि होगी या नहीं? लोगों के हृदय में इस प्रकार का भाव पैदा करना ही नामशक्ति का अपलाप करना है और एक हीन प्रवृत्ति का परिचय देना है।

ललिता—मैं नाम के लिए तो नहीं कह रही हूँ, मैं तो आप लोगों की इच्छा की बात कह रही हूँ। आपकी इच्छा पूर्ण करने के लिए क्या भगवान् बाध्य नहीं हैं?

इस प्रकार के नानारूप कथोपकथन के पश्चात् बाबाजी महाशय स्नानादि समाप्त कर महाप्रसाद पाने के लिए बैठे ही थे कि ललितादासी अत्यन्त व्याकुल भाव से रोते-रोते आकर बोलीं, 'चलिए, लगता है कि फणि बचेगा नहीं। उसके हाथ पाँव अकड़ रहे हैं, शरीर बर्फ के समान ठंडा हो रहा है, बराबर पसीना छूट रहा है, कंठस्वर विकृत हो गया है, यहाँ तक कि वह किसी को पहचान नहीं पा रहा है, उसे असह्य वेदना हो रही है, दस्त और उल्टी बराबर जारी हैं, फिर भी पेट अफरता आ रहा है, शरीर का रंग बिलकुल काला पड़ गया है। उसके बचने का कोई लक्षण नहीं दीख रहा है।'

यह सुन बाबाजी महाशय उदास होकर बोले, 'मैं क्या करूँ? एक बार बाबा से कहो।' इतना कह वह उसके पास चल दिये। कुछ दिनों से उनके शिक्षागुरु श्रीधाम नवद्वीप के श्रीयुत गौरहरिदास महन्त महाराज पुरी आये हुए थे और जिस कमरे में बाबाजी महाशय रहा करते थे उसी में ठहरे थे। बाबाजी महाशय दूसरे कमरे में रहने लगे थे।

बाबाजी महाशय के आदेश से ललितादासी ने जाकर अति कातर भाव से फणि का हाल बाबा से कहा। वे बोले, 'मैं क्या करूँ, जा जादव से कह।' इतना कहते-कहते वे फणि के कमरे में जा पहुँचे। ललितादासी रोती-रोती बोलीं, 'देखिए, आप बाप बेटा दोनों उपस्थित हैं। यदि यह बालक मर गया तो मैं प्रतिज्ञा करती हूँ कि इन सबकी माला कण्ठी तोड़ संसार में वापस भेज दूँगी और घूम-घूमकर इस बात का प्रचार करूँगी कि नाम और महात्माओं में कोई शक्ति नहीं। आप लोग जगत् का उपकार करने बैठे हैं, जीवों के लिए आपके प्राण रोते हैं, क्या यह जीव नहीं है? सामान्य अपराध के कारण प्राणदण्ड! मैं और कुछ नहीं कहती। अब देखूँगी।' इतना कह वे तेजी से चली गईं। बाबाजी महाशय भी वृद्ध बाबाजी महाशय को दण्डवत् कर फणि के निकट गये। फणि की साँस खिचती देख उसके सिरहाने बैठ गये। नामकीर्तन पहले से ही चल रहा था। बाबाजी महाशय के आदेश से सब खूब जोर-जोर से नाम करने लगे। क्रमशः उसकी अवस्था और शोचनीय हो गई। ललितादासी उसके पैरों के पास बैठी अश्रुगद्गद कण्ठ से नाम कर रही थीं। अकस्मात् एक दीर्घ निःश्वास के साथ उसकी साँस बन्द हो गई, आँखें पलट गईं, सर्वांग निश्चल और निस्पन्द हो गया, हाथ पैर ठण्डे हो गये। सभी लोग रोने लगे। ललितादासी भी 'हा निताइ गौर राधेश्याम' कह जोर-जोर से रोने लगीं। बाबाजी महाशय पद्मासन से बैठे थे। उन्होंने एकाएक 'हा निताइ!' कह कर हुंकार भरा। उनका शरीर कम्पायमान हो गया और उन्होंने अपने दाहिने पैर के अँगूठे से फणि का मस्तक स्पर्श किया। देखते-देखते उनके नेत्र लाल और सजल हो गये। भावभंगी एकदम बदल गई।

उपस्थित लोगों में से किसी से कुछ कहना-सुनना नहीं, जैसे किसी और के साथ अर्धस्फुट स्वर और स्खलित भाषा में किन्तु तेजपूर्ण स्वर में कुछ कह रहे हों। थोड़ी ही देर में फणिकी मृत देह में स्पन्दन हुआ, साँस चलने लगी, मुख की कालिमा दूर हो गई, शिथिल अंश स्पन्दित और उत्तेजित हो गये। ललितादासी ने फणि की स्थिति में इस प्रकार का परिवर्तन देख जैसे ही कुछ प्रफुल्ल हो उसके मस्तक की ओर दृष्टि डाली तो देखा कि जहाँ बाबाजी महाशय बैठे थे वहाँ उज्ज्वल श्वेत वर्ण, अति तेजस्वी, रक्तिम नेत्रों वाले, हल-मूषलधारी अति दीर्घाकार एक पुरुष विराजमान हैं। उन्हें देखते ही ललितादासी विस्मित भाव से न जाने क्या कहने जा रही थीं, पर उनका कण्ठ अवरुद्ध हो गया। अश्रुगद्गद कण्ठ से उन्होंने पास वाले व्यक्ति से जैसे ही कहा, 'देखो, कैसी अपूर्व मूर्ति है!' तो देखा कि बाबाजी महाशय बैठे हैं। ललितादासी उनसे उस समय बहुत कुछ कहना चाहती थीं, पर इसका अवकाश न मिला, क्योंकि बाबाजी महाशय फणि के निकट सतर्कभाव से नाम करने की व्यवस्था कर नित्यकृत्य के लिए चले गये थे। क्रमश: संध्या हो गई। घोर अन्धकार छा गया। आश्रम के चारों ओर जहाँ भी दृष्टि पड़ती थी, बड़ा भयावना-सा प्रतीत होता था। आश्रमवासी, जो अकेले नाना देश-देशान्तर, पहाड़, वन और उपवन में भ्रमण करते थे, उनका भी अकेले कमरे में जाने का साहस नहीं हो रहा था। चारों ओर नानारूप भयंकर चित्र दिखाई दे रहे थे। रात जैसे-जैसे बीतने लगी, भय का अधिक संचार होने लगा।

बाबाजी महाशय के सीने में भयानक कफ का प्रकोप हो गया। कफ बराबर निकल रहा था, फिर भी छाती की वेदना कम नहीं हो रही थी। आश्रम के ऊपर नानारूप अत्याचार होते देख वे ठाकुर मन्दिर के आँगन में जा लेटे और सो गये। पर और किसी को नींद नहीं आई। बीच-बीच में भयानक शब्द सुनाई पड़ता था, पर अनुसंधान करने पर कुछ नहीं मिलता था। किसी प्रकार रात कट गई।

बहुत दिनों से आश्रम में दो ब्राह्मण रह रहे थे। एक का नाम था गदाधर, दूसरे का गणेश महापात्र। ये दोनों दिन में जगन्नाथ के मुक्ति-मंडप और अन्यान्य स्थानों में जप-होमादि किया करते थे और रात में जगन्नाथ के महाप्रसाद का सेवन करते थे। कई महीने पूर्व गणेश महापात्र ने आश्रम में कोई दस इंच की एक मणिनिर्मित देवी-मूर्ति लाकर उसकी स्थापना की थी। मूर्ति चतुर्भुज, गदा-खड्ग-शंख-युक्त और अभय-हस्त थी। सिंह पर वीरासन मुद्रा में बैठी थी। देखने में बहुत उग्र थी। जिस दिन महापात्र देवी को मठ में लाये थे, उसी दिन बाबाजी महाशय ने उनसे कहा था, 'देखिये, यह मूर्ति आपकी सेवा में हैं, इनकी आप स्वयं ही सेवा करें। सेवा के लिए जिस द्रव्य की आवश्यकता होगी, उसकी व्यवस्था आश्रम से होगी। पर सेवा का दायित्व आप ही पर होगा।' महापात्र तदनुसार पूजा किया करते थे। इधर आश्रम में एक सुन्दर काष्ठखण्ड में योगमाया पौर्णमासी देवी की मूर्ति का आरोप कर उनकी सेवा की जाती थी। उनकी सेवा के लिए कोई निर्दिष्ट सेवक नहीं था। जब जिसकी इच्छा होती थी, सेवा कर लेता था। माँ योगमाया इतनी शान्त मूर्ति थीं कि किसी से सेवा में त्रुटि होने पर उसे स्वयं आदेश कर परिशुद्ध कर लेती थीं। इसलिए सभी की उनके प्रति बड़ी श्रद्धा थी।

सात बजे के लगभग जब गणेश महापात्र देवी की सेवा करने गये, उन्होंने एकदम से चीख मारी। आश्रमवासी भाग कर उस कमरे में गये तो देखा कि मूर्ति टूटी हुई भूमि पर पड़ी है। ललितादासी तुरन्त बाबाजी महाशय के पास गईं और जैसे ही उन्होंने उनसे इस घटना के बारे में कहा, वे बोले, 'वह हमसे और छेड़छाड़ न करेगी। कल रात योगमाया पौर्णमासी देवी से उसका खूब युद्ध हुआ है। वह आश्रम का कुछ अनिष्ट करना चाहती थी, पर अन्त में स्वयं परास्त हो गई। पहले उसके गदा के दो टुकड़े हुए फिर चक्र के आघात से उसकी कमर टूट गई। शान्तिमयी योगमाया ने आश्रम की शान्ति का विधान किया। अब कुछ भय नहीं।' इतना कह वे गणेशदास नामक एक व्यक्ति से बोले, 'देख गणेश, इस मूर्ति को मार्कण्डेय सरोवर में छोड़ आ।' गणेश ने पूजा के पश्चात् उसकी व्यवस्था कर दी। इधर फणि भी धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगा।

बाबाजी महाशय बोले, 'फणि का संकट अब भी पूर्णरूप से नहीं टला है। संध्या बीत जाने तक उसका संकट बना रहेगा।' इतना कह वे नित्य कृत्य के लिए चले गये।

अपराह्न चार बजे उन्होंने रामदादा को बुलाया और कहा, 'राम, एक बार सब मिल कर नगर-कीर्तन कर आओ।' रामदादा आदेश पाते ही परमानन्दपूर्वक नगर-कीर्तन के लिए निकले। संध्या होते-होते बाबाजी महाशय जैसे बहुत व्यस्त हो गये। मठ के मुख्यद्वार के निकट खड़े होकर नगर-कीर्तन के लौटने की बाट देखने लगे। ललितादासी और कुसुमदासी को आदेश दिया कि वे एक-एक कलसी जल लेकर द्वार के दोनों ओर खड़ी हो जायें। देखते-देखते नगर-संकीर्तन दसों दिशाओं को कम्पायमान करता हुआ मठ के द्वार पर आ पहुँचा। नगर-कीर्तन के आते ही ललितादासी और कुसुमदासी ने दोनों कलसी जल ढुलका दिया। सब लोग उस जल के ऊपर से संकीर्तन करते-करते आश्रम में प्रवेश करने लगे, पर बाबाजी महाशय एक ओर खड़े रहे और ललितादासी से एक कलसी जल और लाने को कहा। वे जैसे ही जल लेकर आईं, उन्होंने देखा कि संकीर्तन दल के कोई दस हाथ पीछे एक विकट मूर्ति झूमती-झूमती आ रही है। उसके कंधों तक लटके पीले रंग के बाल सिर काँपने के साथ-साथ ऊपर को खड़े हो रहे हैं। उसके नेत्र कुछ अन्दर को धँसे हुए और ताम्र वर्ण के हैं। उस अमानुषी भयंकर मूर्ति को देख सब काँपने लगे। बाबाजी महाशय ने जल्दी से ललितादासी के हाथ से जल की कलसी ले उसके सिर पर डालते हुए जोर से कहा 'भाग-भाग' और उसे भगाने लगे। वह डरके मारे चीखने-पुकारने लगी। बाबाजी महाशय एक लाठी हाथ में ले जैसे ही उसकी ओर दौड़े वह एकदम भाग निकली। जिस स्थान पर वह खड़ी हुई थी, उसे गोबर से लिपवा कर बाबाजी महाशय बोले, 'अब कोई भय नहीं। सब निश्चिन्त हो जाओ।'

ललिता—उसे देख कर हमें इतना भय क्यों लगा?

बाबाजी—वह भय की ही मूर्ति थी।

ललिता—वह क्या मनुष्य नहीं था? मनुष्यों में ऐसी मूर्ति कभी देखने में नहीं आई।

बाबाजी—वे लोग कामाचारी हैं। जब और जहाँ जिस जाति के बीच प्रवेश करना चाहते हैं उसकी मूर्ति धारण कर सकते हैं। यह जो विसूचिका व्याधि है, जिसे तुम 'कालरा' कहते हो, यह मूर्ति उसी का स्वरूप थी।

ललिता—ये लोग तो राक्षस जाति के हैं। उनके हाथ से मृत्यु तो अपघात मृत्यु होती है।

बाबाजी—सहजात व्याधियों को छोड़ संक्रामक व्याधियों से जो मृत्यु होती हैं वह सब अपघात ही हैं।

ललिता—अच्छा, संक्रामक व्याधि और आकस्मिक मृत्यु क्या नियति के अनुसार नहीं होती? कभी-कभी रेल या स्टीमर दुर्घटना से हजार-हजार लोग एक साथ मारे जाते हैं, उन सब लोगों की एक साथ एक समय एक ही प्रकार से मृत्यु होती है। क्या उनकी समान नियति होती है? युद्ध में भी एक साथ लाखों सैनिक मारे जाते हैं, यह भी क्या नियति का परिणाम होता है?

बाबाजी—एक साथ लाखों व्यक्तियों की नियति न हो सकने का कोई अर्थ नहीं, क्योंकि संसार-नाट्यशाला का भार एकमात्र भगवदिच्छा पर है। भगवदिच्छा हो तो कुछ भी असम्भव नहीं।

इस प्रकार नानारूप कथोपकथन में रात बीत गई। दूसरे दिन प्रात: बाबाजी महाशय बोले, 'आज फणि को १०८ कलसी जल से स्नान करना होगा।' यह सुन ललितादासी बोलीं, 'उसका शरीर बड़ा ही दुर्बल है, उठने तक की सामर्थ्य नहीं है, ऐसी अवस्था में कहीं ठण्ड लग गई तो कैसा होगा?' बाबाजी महाशय कुछ क्रुद्ध होकर बोले, 'अच्छा, उसका भार तेरे ऊपर तो नहीं है। जो मरे को बचा सकते हैं, वे क्या ठण्डे को गरम नहीं कर सकते? हाय रे मायामुग्ध जीव, प्रत्यक्ष देखकर भी विश्वास नहीं करना चाहता। सामान्य अन्ध व्यक्ति को अर्थात् प्राकृत चक्षुहीन व्यक्ति को यदि कोई कुछ समझा-बुझा दे तो वह समझ जाता है, परन्तु मोहान्ध व्यक्ति को बार-बार दिखा-बुझा दो तब भी वह विश्वास नहीं करना चाहता।' यह सुन ललितादासी अपने अविश्वासी मन को धिक्कारते हुए बाबाजी महाशय के आदेशानुसार कार्य करने लगीं।

आठ बजे के लगभग सब फणि को पकड़ कर बाहर स्नान के लिए ले आये और कुएँ का पानी लाकर उसकी देह पर डालने लगे। बाबाजी महाशय ने सामने बैठकर अपनी इच्छानुसार फणि को स्नान करवाया और एक रेशमी वस्त्र और एक सोने की अँगूठी हाथ में देकर बोले, 'जा रे, ठाकुरजी को प्रणाम कर।' फणि धीरे-धीरे ठाकुर मन्दिर की ओर जाने लगा। तब वे बोले, 'बेटा राजकुमार की तरह चला जा रहा है। जा, तेरी विपत्ति दूर हुई।'

गणेश को हैजा

कई दिन पीछे बाबाजी महाशय एक दिन प्रात: काल नाम करते-करते श्रीजगन्नाथ दर्शन को गये। आज उनका एक दूसरा ही भाव था। साथी लोग आपस में कह रहे थे 'आज बाबाजी महाशय का कीर्तन और उनकी भाव-भंगी एक दूसरे ही प्रकार की लग रही है। साधारणत: वे माधुर्य की मूर्ति रहते हैं पर आज जैसे ऐश्वर्य की मूर्ति हो रहे हैं। जिस दिन हैजा दूर करने के उद्देश्य से नगर-कीर्तन किया था, उस दिन भी उनका ठीक ऐसा ही भाव था। आज भी अवश्य कुछ वैसा ही उद्देश्य होगा।' क्रमश: संकीर्तन ने जैसे ही राजमहल की सीमा पार की वैसे ही गोपी साहू और नरसिंह साहू रोते-रोते आये और बाबाजी महाशय के सामने पृथ्वी पर लोट गये। बाबाजी महाशय ने दोनों को उठाकर उनके दु:ख का कारण पूछा। गोपी साहू बोले, 'प्रभु एकबार नाम कीर्तन लेकर हमारे यहाँ चलना होगा। नरसिंह का छोटा भाई गणेश नहीं बचेगा, उसे हैजा हो गया है। इस समय भी वह जीवित होगा या नहीं, कुछ नहीं कहा जा सकता।

बाबाजी—कैसी अवस्था थी अभी ?

गोपी—अवस्था क्या बाबा, डाक्टर जवाब दे गये हैं। बचने का कोई चिह्न नहीं है।

बाबाजी—तो मैं वहाँ जाकर क्या करूँगा ?

गोपी—एक बार शेष समय आपके श्रीचरण दर्शन करने और नाम श्रवण करने से उसका परलोक बन जायगा।

इतना कह दोनों पूर्ववत् रोने-कलपने लगे। बाबाजी महाशय उनका अनुरोध न टाल सके और बोले, 'अच्छा तो चलो। हम मन्दिर से लौटते समय तुम्हारे घर होकर आयँगे। कोई भय की बात नहीं है। सब लोग एक साथ उसके पास बैठ कर नाम करना। मंगलमय नाम मंगल करेगा।' इतना कह बाबाजी महाशय मन्दिर की ओर चल दिये। ये लोग भी बाबाजी महाशय के आदेशानुसार घर जाकर नाम-कीर्तन करने लगे। यथासमय बाबाजी महाशय मन्दिर में कीर्तन समाप्त कर गोपी साहू के घर पहुँचे। गणेश किसी को पहचान नहीं पा रहा था। उसका शरीर बिलकुल काला पड़ गया था, कण्ठ-स्वर रुद्ध हो गया था, सर्वाङ्ग बर्फ के समान ठंडा था, अनवरत पसीना छूट रहा था। वह निद्रित व्यक्ति के समान बीच-बीच में चौंक उठता था, आँखें पलटी हुई थीं, नाक का अगला भाग वक्र हो रहा था। विकृत कंठ से वह बीच-बीच में असम्बद्ध प्रलाप कर कहा था, साँस ऊपर को खिंच रही थी। थोड़ी-थोड़ी देर बाद संशय होने लगता था कि उसमें प्राण शेष भी हैं या नहीं। बाबाजी महाशय को देख उसके आत्मीय स्वजन सब आकर रोने लगे। उनकी सबकी इच्छा थी कि बाबाजी महाशय गणेश के वक्षस्थल पर या उसके मस्तक पर श्रीचरण अर्पण करें। नरसिंह के रोते-रोते बाबाजी महाशय का चरण पकड़ गणेश की छाती पर रख दिया और कहने लगा, 'बाबा, हम लोग बाल्यकाल से ही बिना माँ-बाप के हैं। केवल दो भाई हैं, किसी प्रकार संसार यात्रा का निर्वाह कर रहे हैं। आज यदि मेरा भाई जाता रहा तो मेरी क्या दशा होगी, मैं किसी प्रकार भी इस दु:ख को सहन न कर सकूँगा। मैं और क्या कहूँ ? हम दोनों ही भाई सदा के लिए आपके श्रीचरणों में आत्मसमर्पण कर रहे हैं। आज से हम आपके हैं। आपकी वस्तु अकाल नष्ट हो, यह बड़े दु:ख की बात है, इसलिए आपको भाई की रक्षा करनी ही होगी।' बाबाजी महाशय अर्धमुद्रित नेत्रों से चित्रलिखित से खड़े थे-जैसे इस राज्य में न हों। थोड़ी देर बाद कम्पित कलेवर और गद्गद कंठ से 'जय निताइ, जय निताइ!' बोल उठे। साथी लोग हरिध्वनि करने लगे। गणेश चिल्लाने लगा

'मैं चला, मुझे क्षमा करो। श्रीजगन्नाथदेव की थोड़ी सी प्रसादी मुझे दो।' और यह कहते-कहते वह अचैतन्य हो गया। सब लोग गणेश को मरा जान उच्च स्वर से रुदन करने लगे। बाबाजी महाशय बोले, 'निताइ की इच्छा से इसे कोई भय नहीं है। जगन्नाथजी का प्रसाद ले आओ।' सब लोग जगन्नाथजी का प्रसाद मँगवाने में व्यस्त हो गये। इधर गणेश ने बड़े स्वस्थ भाव से बाबाजी महाशय से कहा, 'बाबा, मुझ जैसे पाषंडी और अविश्वासी पर आपकी इतनी कृपा! मैं और क्या कहूँ? इस देह पर आपका पूरा अधिकर है, आपकी जो इच्छा हो करें। आप यदि आदेश करें तो मेरी बड़ी अभिलाषा है कि एक बार सिंहद्वार पर जा लोट-पोट हो आऊँ।' बाबाजी महाशय बोले, 'थोड़ा ठहरो। श्रीजगन्नाथजी का भोग आ जाय।' इतने में भोग आ गया। बाबाजी महाशय ने कहा, 'देखो, थोड़ा प्रसाद सिंहद्वार पर अरुणस्तम्भ के निकट जो व्यक्ति अति व्याकुल भाव से माँगे उसे पहले देकर फिर गणेश को देना।' ऐसा ही किया गया। गणेश प्रसाद पाते ही अपने आप बिछौने से उठ खड़ा हुआ और उपस्थित लोगों को दण्डवत् प्रणाम कर बाबाजी महाशय के आदेश से सिंहद्वार पर जाने को तैयार हुआ। बाबाजी महाशय ने नरसिंह से कहा, 'तुम उसके साथ-साथ रहो, पर उसे कोई भी स्पर्श न करना। कुछ अधिक मात्रा में 'पाना' लेकर जगन्नाथ को भोग लगाना और सबको बाँटना।' नरसिंह बोला, 'आधा मन कंद का भोग लगाकर पतितपावन प्रभु के सामने बाँटा जा चुका है।' यह सुन बाबाजी महाशय प्रसन्न हो गणेश से बोले, 'जाओ जितना चाहो प्रसादी 'पाना' वितरण करना।' इतना कह नाम करते-करते वे आश्रम लौट आये। नरसिंह इत्यादि 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' नाम करते करते गणेश को ले सिंहद्वार पर गये। गणेश की अवस्था में परिवर्तन देख पुरीवासी सब उन लोगों के भाग्य और बाबाजी महाशय की कृपा की जय बोलने लगे। एक ही साथ गणेश को जीवनदान और पुरी की हैजे से निवृत्ति देख सब लोग बाबाजी महाशय के सम्बन्ध में नाना प्रकार की समालोचना करने लगे। परन्तु बाबाजी महाशय नाम के प्रभाव को छोड़ और किसी प्रकार की चर्चा नहीं कर रहे थे और नाम की ही जय घोषणा कर रहे थे।

विश्वनाथ का उद्धार

इस प्रकार आनन्द में दिन बीत रहे थे। एक दिन चार बजे के लगभग बाबाजी महाशय झाँझपीटा मठ में बैठे थे। तरह-तरह के भक्त तरह-तरह के प्रश्न कर रहे थे। ये भी प्रसन्न भाव से उत्तर दे रहे थे। इसी समय कुलीन परिवार का बाईस-तेईस वर्ष का एक युवक आया। उसके हाथ में ईसा मसीह से सम्बन्धित कई पुस्तकें थीं। इन लोगों की भगवच्चर्चा उसे अच्छी नहीं लग रही थी। बाबाजी महाशय के अतिरिक्त और कोई उसके मनोभाव को न समझ सका। उन्होंने भगवच्चर्चा बन्द कर उससे पूछा, 'बाबा, तुम्हारा क्या नाम है?

युवक—मेरा नाम विश्वनाथ है।

बाबाजी—बाबा, विश्वनाथ के बजाय विश्वनाथ दास कहें तो कैसा?

विश्वनाथ—देखिये, वह सब हमारे यहाँ नहीं चलता, क्योंकि हमें प्राय: साहब लोगों के साथ व्यवहार करना होता है। इसलिए बाबू छोड़कर दास-वास कहने का हमारा अभ्यास नहीं। विशेष रूप से हमारे धर्म में वह सब कोई पसंद नहीं करता।

बाबाजी—बाबा, तुम्हारा धर्म क्या है?

विश्वनाथ—हम प्रभु यीशु के मतावलम्बी हैं। ईसाई धर्म ही आदि और नित्य धर्म है।

बाबाजी—बाबा, धर्म कभी अनित्य नहीं हो सकता। धर्म अव्यय, शाश्वत, नित्य, निष्कलंक और अखण्ड है। जो कुछ भी गोलमाल है वह केवल विशेषण को लेकर है। विशेषण के दोष से अल्पज्ञ लोग विशेष्य को दोषी ठहराते हैं। धर्म में कभी दोष का संस्पर्श नहीं हो सकता।

विश्वनाथ—आप जो कुछ भी कहें, हिन्दू धर्म में जैसे कुसंस्कार हैं जैसे कुत्सित आचार हैं और जैसी अश्लीलता है, वैसा और किसी धर्म में नहीं।

बाबाजी—(मृदुभाव से हँसते-हँसते) क्यों भाई, हिन्दू धर्म में कौन-कौन से कुत्सित भाव हैं, बोलो तो?

विश्वनाथ—हिन्दु धर्म के बारे में मैं क्या-क्या कहूँ? साधुओं की बात तो जाने दीजिए, जिनकी हिन्दू लोग देवता रूप में उपासना करते हैं, उनका व्यवहार कितना वीभत्स है। हिन्दुओं की एक देवी हैं काली। वह नग्नावस्था में स्वामी के ऊपर खड़ी होकर युद्ध करती हैं। कैसी अशिष्टता है? और इनकी लोग भैंसे, बकरे की बलि चढ़ाकर आदर-पूर्वक पूजा करते हैं। एक प्रेम के ठाकुर हैं श्रीकृष्ण। उन्होंने शुद्ध और सरल रमणियों का सतीत्व नष्ट किया और उनके साथ चीरहरण, रास, जलकेलि और जाने क्या-क्या किया? वह हैं एक प्रधान देवता। श्रीरामचन्द्र ने युद्ध में वीरता दिखाना तो दूर छल चतुराई और कपट से कितने जीवों का वध किया। इस प्रकार की कितनी बातें देखने में आती हैं। और भक्तों के कुसंस्कार देखिए, मिट्टी से मूर्ति का निर्माण कर उसकी पूजा करते हैं और उसके भोगराग में अन्धाधुन्ध खर्च। परोपकार और देश-सेवा के हित में एक पैसा भी नहीं देते। मरे हुए मनुष्य का श्राद्ध करते हैं। इस प्रकार के अनेक कुसंस्कार और अश्लीलता को छोड़ हिन्दू धर्म में और है क्या?

बाबाजी—अच्छा, तो सुनो। आद्या शक्ति काली का इस प्रकार का विपरीत भाव और वेश क्यों है? लज्जा, घृणा प्रभृति आठ पाश हैं-

'पाशबद्धो भवेत् जीवः पाशमुक्तः सदाशिवः।'

बाह्य आवरण से आवृत हैं या अनावृत इस ओर रणोन्मत्ता महाशक्ति का ध्यान हो ही नहीं सकता। काम नाम की जिस कुत्सित वस्तु को हम लोग बड़े आदर से हृदय में धारण करते हैं, वह कदापि महापुरुष या महाशक्ति के हृदय को स्पर्श नहीं कर सकती। इसलिए हमारी परिछिन्न दृष्टि से उनकी समालोचना नहीं की जा सकती। महामाया ने प्राकृत जीवों को दिखाया 'देखो जीवो, लोभी कामी व्यक्ति महाबली और महाधनी होते हुए भी क्षण-भंगुर हैं। मैं उनका इस प्रकार संहार कर सत्य की जय-घोषणा किया करती हूँ।' अब लो कृष्णलीला की बात। वे हैं काम-गन्धहीन। जहाँ काम है, वहाँ अन्धकार, विक्षेप, अवसाद आदि हैं। श्रीकृष्ण हैं इच्छामय पूर्ण-पूर्णतम ईश्वर। उनकी सारी लीलाएँ जीव की धारणा से परे हैं। शास्त्र कहते हैं, 'अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्।' अच्छा, मैं तुमसे पूछता हूँ कि क्या कोई कामुक पुरुष सहस्र स्त्रियों के साथ एक साथ नानारूप लीलाकौतुकादि कर सकता है? दूसरी बात यह है कि समस्त श्रीकृष्णलीला के वक्ता हैं शुकदेव और श्रोता परीक्षित महाराज। इन दोनों की अवस्था क्या है? शुकदेव आजन्म संन्यासी हैं। सांसारिक व्यवहार आदि किसे कहते हैं, इसकी उन्हें कोई धारणा ही नहीं। इतना ही नहीं, स्त्री और पुरुष का भेद भी उनके लिए कुछ अर्थ नहीं रखता। वे जिस रस के वक्ता हैं और ब्रह्मशाप से सात दिन में अवश्य मृत्यु को प्राप्त करने वाले गंगातट पर भूखे प्यासे बैठे परीक्षित जिस रस के श्रोता हैं, वह क्या काम-रस हो सकता है? इसीलिए शुकदेव ने प्रतिज्ञापूर्वक कहा है, 'ब्रज गोपियों के साथ ब्रजेन्द्रनन्दन की इस वस्त्रहरण रासादिलीला का जो लोग श्रद्धापूर्वक श्रवणकीर्तन करेंगे, उनकी अति दुर्निग्रह काम से अनायास निवृत्ति होगी, उन्हें परम शान्ति और सुख-लाभ होगा और इन लीलाओं की बार-बार आलोचना करने से वे जितेन्द्रिय होकर विशुद्ध गोपी-प्रेम के अधिकारी होंगे।' तुम कहते हो कि मूर्तिपूजा हिन्दुओं का कुसंस्कार है। बाबा, तुमसे इस सम्बन्ध में मैं क्या कहूँ? तुम बालक हो शायद समझ न सकोगे।

विश्वनाथ—आप कहिए, मैं अवश्य समझ सकूँगा।

बाबाजी—आलम्बन और उद्दीपन के बिना उपासना सम्भव नहीं। तुमने जिस धर्म का अवलम्बन किया है, वह क्या मूर्ति नहीं मानता? तुम्हें क्या यीशु का चित्र देख उनके स्वरूप का ध्यान नहीं हो आता? क्या तुम उनके अनुरूप मूर्ति देख प्रणाम वन्दना नहीं करते, या तुम्हें करना उचित नहीं? एक बात कहता हूँ, बुरा न मानना। मेरा विश्वास है कि जब तक हृदय में हिंसा, निन्दा, परचर्चा, द्वेष आदि का संस्पर्श रहता है तब तक धर्म या उपासना क्या वस्तु है, इसका बोध भी नहीं हो सकता। जिस प्रकार सूर्य का उदय होता है अन्धकार अपने आप चला जाता है, उसी प्रकार धर्म या उपासना की हृदय में उपलब्धि होते ही निन्दा आदि

की आप ही निवृत्ति हो जाती है। बालक हो, याजन करना सीखो। लोक-दिखावे के लिए धर्मप्रचारक न बनो। धर्म के सार तत्त्व का हृदय में अवधारण करो। कुतर्क द्वारा किसी भी धर्म का खण्डन या निन्दा करना न सीखो। बताओ तो, बाइबिल में परनिन्दा, किसी धर्म के प्रति कटाक्ष या किसी का उत्पीड़न करने की बात कही गई है क्या? विशेष रूप से अनुसन्धान करने पर तुम्हें स्पष्ट हो जायगा कि यीशु द्वारा उपदिष्ट प्रार्थना प्रणाली और श्रीमन्महाप्रभु द्वारा उपदिष्ट प्रार्थना प्रणाली में कुछ भी भेद नहीं है।

इस प्रकार के और बहुत से उपदेश सुनते-सुनते विश्वनाथ अधीर होकर बाबाजी महाशय के चरण पकड़ रोने लगा और आर्य धर्म का प्रकृत मर्म न समझने के कारण जो उसने उसकी निन्दा की थी, उसके लिए बार-बार क्षमा-प्रार्थना करने लगा। उसके कातर क्रन्दन से उपस्थित भक्तों के नेत्रों में आँसू आ गये। सब उसके लिए प्रभु से क्षमा प्रार्थना करने लगे। वह दिन इस प्रकार बीत गया। दूसरे दिन प्रातः उठते ही विश्वनाथ बाबाजी महाशय के चरण पकड़ कातर भाव से कहने लगा 'बाबा मैंने बहुत पाप किये हैं। मैं बड़ा दुराचारी, धर्मध्वजी और अनाचारी हूँ। क्या मेरा उद्धार न हो सकेगा? यदि कोई बिना जाने-बूझे अखाद्य भक्षण करे और अकार्य कर्म करे तो क्या उसका इस पथ पर आना नहीं हो सकता?'

बाबाजी—बाबा, धर्मपथ कोई भी क्यों न हो वह दूषित नहीं है। भ्रमांध जीव किसी प्रवृत्ति के वश हो पद और प्रतिष्ठा की आशा से इधर-उधर भटकता रहता है। परम दयालु अवतार निताइ गौर ने कलियुग में अनुताप को ही जीवों के बड़े से बड़े पापों का प्रायश्चित्त बतलाया है। भय की क्या बात है? अपने प्रभु के प्रति शरणापन्न हो कातर भाव से अपने पाप-कर्मों के लिए क्षमा-प्रार्थना करो। दयामय प्रभु तुम्हें अवश्य अपना लेंगे।

तब विश्वनाथ ने आश्वस्त हो बाबाजी महाशय से मन्त्र देने की प्रार्थना की। वे इसे निताइचाँद की इच्छा पर छोड़ नित्य-कृत्य करने चले गये। चार-पाँच दिन बाद उन्होंने यथासमय एक शुभ क्षण में विश्वनाथ को मन्त्र दिया। विश्वनाथ कुछ दिन साथ रह अपने देश चला गया। दुर्भाग्य से कुछ दिन बाद दुःसंग के प्रभाव से फिर उसकी मति बदली और वह विपरीत पथ पर चला गया।

दुर्दैव सेवक यदि जाय अन्य स्थाने।
बलवान प्रभु तार केशे धरे आने॥

काल-क्रम से बाबाजी महाशय एक बार कटक गये हुए थे। रास्ते में अकस्मात् विश्वनाथ से भेंट हुई। साथियों में से कोई भी उसे पहचान न सका। परन्तु प्रभु ने अपने सेवक को पहचान लिया। बाबाजी महाशय ने एक कटकवासी बालक से पूछा, 'देख, यह जो युवक आ रहा है, विश्वनाथ है न?' वह बोला, 'बाबा, उसका तो नाम भी नहीं लेना चाहिए। वह हमारा गुरुभाई होकर भी विधर्मी हो गया है। उसने माला-तिलक का परित्याग कर दिया है। वह साधु-वैष्णव, श्रीमूर्ति को देख दण्डवत् प्रणाम तक नहीं करता। दूसरे धर्म का प्रचार करता फिरता है और बड़ा भ्रष्टाचारी है।' बाबाजी महाशय कुछ मृदु मुस्कान के साथ बोले, 'जगत् परिवर्तनशील है। दुर्बल कलिहत जीव दुःसंग के प्रभाव से कुपथगामी हो जाता है, पर निताइचाँद का कृपा-कटाक्ष होते ही उसके परिवर्तन में देर नहीं लगती। साथियों ने कहा-'एक बार अन्य पथ से इस पथ पर आ जाने के बाद भी जब वह इससे विचलित हो गया है, तो उसका दुबारा सुमति प्राप्त करना असम्भव जान पड़ता है।'

बाबाजी—अच्छा, असम्भव सम्भवकारी स्वेच्छामय निताइचाँद की इच्छा हुई तो बहुत थोड़े समय में तुम देखोगे कि वह भक्ति की मूर्ति हो गया है।

इस बीच विश्वनाथ बाबाजी महाशय के सम्मुख आ एकटक उनकी ओर ताकता रहा। कोई दस मिनट तक उसके मुख से शब्द न निकला। सब निश्चल और निस्तब्ध भाव से खड़े रहे। फिर एकाएक विश्वनाथ काँपता हुआ हवा के झटके से टूटे हुए केले के वृक्ष के समान बाबाजी महाशय के चरणों पर गिर पड़ा और बालक के समान उच्च स्वर से रोते-रोते बोला, बाबा, मैं घोर अपराधी और नारकी हूँ। मेरा क्या होगा? आपने कृपा कर मेरा नरक से उद्धार किया

था, परन्तु अपने दुर्दैव के दोष से मैं पहले जिस नरक का कीड़ा था उससे चौगुने भीषण नरक में गिर गया हूँ। 'दयामय दया कीजिए', यह कहने का मेरा साहस नहीं है, पर आप अदोषदर्शी और पतितपावन हैं, यही एक मेरा भरोसा है। मैं आपकी ही कुसन्तान और घोर नरक का कीड़ा हूँ। क्या मेरी गति का उपाय नहीं है? यदि नहीं, तो कृपाकर मुझे उपाय बतला दें, जिससे अब किसी को भी मुख न दिखाना पड़े।' इस प्रकार जब वह आर्तभाव से रोने लगा, बाबाजी महाशय ने कृपार्द्र हृदय से उसे उठाकर सीने से लगाया और गद्‌गद कंठ से कहने लगे, 'भाई, भय की क्या बात है? पतितपावन निताइ गौरांग की कृपा से किसी की भी अगति न होगी। फिर भी सावधान रहने की आवश्यकता है। उद्धार तो ऐसे व्यक्ति का होना कठिन होता है जो इस विश्वास के सहारे कि प्रभु पतितपावन हैं और नाम सर्वशक्तिमान एवं पापविनाशकारी है, बार-बार पापाचरण करता है।'

विश्वनाथ—बाबा, मैं यदि नाम के भरोसे या पतितपावन प्रभु के भरोसे पापाचरण करता, तब भी पथ पर रहता। मैं तो प्रभुत्व को मिटा कर स्वयं ही प्रभु बन बैठा था। नाम धाम की बात सुनते ही लोगों का अपमान किया करता था। साधु सज्जन और वैष्णव की निन्दा ही मेरा नित्य कर्म था। प्रभु, मैं कहाँ जाऊँगा? मुझे तो नरक में भी स्थान न मिलेगा। मैंने तो अब समझ लिया कि जीने की अपेक्षा मर जाना ही मेरे लिए हितकर है।

इतना कह रोते-रोते वह फिर बाबाजी महाशय के चरणों में गिर पड़ा और इतनी जोर-जोर से चीख मारने लगा कि उसका आर्तनाद सुन रास्ते के दोनों ओर से जाने वाले लोग उसके लिए भगवान् से प्रार्थना करने लगे। आश्चर्य की बात है कि महत्संग के प्रभाव से विश्वनाथ के पाप अनुताप की अग्नि में इस प्रकार भस्म हो गये और उसका हृदय क्षेत्र अश्रु जल से धुल कर इतना निर्मल हो गया कि जो लोग कुछ ही क्षण पहले उसे देख उत्तेजित होते थे और उससे बात करने में दोष मानते थे, वे उसके लिए भगवान् से प्रार्थना करने लगे। सत्संग की कैसी अनिर्वचनीय शक्ति है। उसके निष्कपट कातर भाव से बाबाजी महाशय का करुण हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने उसके मस्तक और पीठ पर अपना दाहिना चरण रखते हुए कहा, 'जाओ, अब कोई भय नहीं। तुम्हारे जन्म जन्मार्जित जितने भी पाप-ताप और अपराध थे मैंने दूर किये। अब तुम निर्मल भाव से परम दयालु निताइ गौरांग की शरण लो। हृदय से उनका नाम जपो और आपामर सर्वसाधारण से अपने कर्मों के लिए क्षमा याचना करो।' इतना कह उन्होंने कृपार्द्र हो उसका आलिंगन किया। तब विश्वनाथ नाचते-नाचते उच्च स्वर में कहने लगा, 'हाय रे, ऐसे दयालु प्रभु को छोड़ और किसका भजन करूँगा। ऐसे पतितपावन प्रभु न होते तो मेरे जैसे पतित जीवों की क्या गति होती? देखो भाइयों, तुम्हीं विचार कर देखो, जगाइ मधाइ का उद्धार कर पतितपावन निताइ गौर ने भी उनसे प्रतिज्ञा कराई थी कि वह फिर पाप न करेंगे। परन्तु मेरे महा पतितपावन प्रभु ने मेरे जैसे महापतित का बिना विचार किये और बिना किसी प्रकार की प्रतिज्ञा कराये उद्धार किया। शास्त्र में सुना था, 'सबारे करिबेन उद्धार गौरांगसुन्दर। व्यतिरिक्त वैष्णव निंदुक दुराचार-गौरांगसुन्दर सभी का उद्धार करेंगे, केवल उन व्यक्तियों को छोड़ जो वैष्णवों की निन्दा करने वाले और दुराचारी हैं।' महाप्रभु ने कहा है-

"पाषंडेर उद्धार हइबे अवहेले,
भंडेर निस्तार नाहिक कोन काले।"

-दुराचारी व्यक्ति का उद्धार अनायास हो सकता है, पर ढोंगी का निस्तार कभी नहीं हो सकता। इस प्रकार के शास्त्र-वाक्य आज व्यर्थ हो गये।

हायरे मानव जन्म वृथा गोआइनूं,
हेन प्रभु ना भजिया अकारणे मैनू।

इस प्रकार के पद गा-गाकर विश्वनाथ अश्रु, कम्प, पुलक से परिव्याप्त हो कभी नृत्य करता, कभी रज में लोट-पोट होता। उपस्थित लोग विश्वनाथ का अपूर्व परिवर्तन देख आश्चर्यान्वित हुए और बार-बार बाबाजी महाशय की जय घोषणा करने लगे।

बाबाजी महाशय नाम करते-करते विश्वनाथ को साथ ले श्रीरासबिहारी मठ को गये। वहाँ बहुत देर तक संकीर्तन कर और महाप्रसादादि ग्रहण कर विश्राम

किया। बाबाजी महाशय के कटक में शुभागमन की सूचना फैलते ही रासबिहारी मठ में नाना प्रकार के भक्तों का समागम होने लगा। वे भक्तों के साथ चार-पाँच दिन भगवत्तत्त्व आलोचना और संकीर्तनानन्द में व्यतीत कर पुरी लौट आये।

ललितादासी का पुनर्जन्म

बाबाजी महाशय के पुरी अवस्थान काल में झाँझपीटा मठ में तीस-पैंतीस व्यक्ति उनके साथ सदा रहते। एक बार सभी आश्रमवासियों को ज्वर हो गया। दयालदास बाबाजी, कुञ्जदास बाबाजी आदि तीन-चार व्यक्ति अपेक्षाकृत कुछ स्वस्थ थे। वे ही किसी प्रकार भगवत्सेवा और रोगियों की सेवा कर रहे थे। बाबाजी महाशय का शरीर भी अस्वस्थ था, पर ललिता दासी की अवस्था बहुत शोचनीय थी। धीरे-धीरे आठ-दस दिनों में बहुत से लोग स्वस्थ हो गये। पर ललितादासी की अवस्था दिन पर दिन खराब होती गई। उनमें बिस्तर से उठने की शक्ति भी न रही। जब कोई उठाकर बिठाता तो उनके दाँत तुरन्त भिंच जाते और फिट आ जाता। उन्हें झाँझपीटा मठ के पीछेवाले दुमंजले मकान के निचले हिस्से में रखा गया। वे रोग से उत्पीड़ित तो थीं ही, इसलिए और भी दु:खी थीं कि बाबाजी महाशय का शरीर भी कुछ अस्वस्थ था और उनके संकटगत प्राण उस समय सेवा से वंचित थे। वे इस दु:ख के कारण रोने लगीं। मधुदादा उनके पास रह कर उन्हें नाम सुनाते और नानारूप आश्वास वाक्यों द्वारा उनका चित्त स्थिर करने की चेष्टा करते। क्रमश: उनकी अवस्था और अधिक शोचनीय होती गई। एक दिन कई व्यक्ति मिल कर बाबाजी महाशय के पास गये और बोले 'देखिए, ललितादासी की जैसी अवस्था है, उसे देख ऐसा लगता है कि वे बचेंगी नहीं। आप कुछ उपाय कीजिए।' बाबाजी महाशय थोड़ा मुस्कराते हुए बोले, 'जिसके सेवागत प्राण हैं उसे सेवा से वंचित होने पर बड़ा आघात पहुँचता है। उसके लिए ऐसी अवस्था में जीवित रहने के बजाय मर जाना ही अच्छा। तुम लोग सब उसे आशीर्वाद दो जिससे उसका यह कष्टमय जीवन छूट जाय।' किसी ने यह सुन कर कहा, "यह ठीक है, जैसा कष्ट वे भोग रही हैं उससे प्राण छूट जाना ही अच्छा, क्योंकि उनके प्राण व्यथित रहते हैं और नेत्रों में जल सदा भरा रहता है। जिसे भी देखती हैं उससे अनुरोध के साथ कहती हैं, 'तुम लोग सब बाबाजी महाशय की यत्न से सेवा करो, जिससे उनका शरीर स्वस्थ हो जाये। ऐसा उपाय करो जिससे जल्दी ही उन्हें पथ्य मिल जाय। मैं अभागिन सेवा से वंचित रह कर और कितने दिन तक इस शरीर का भार ढोती रहूँगी, मैं नहीं जानती। कैसे कठिन प्राण हैं मेरे, सेवा से वंचित रह कर भी अब तक नहीं छूट रहे हैं।' इतना कह वे रोने लगतीं हैं। इसलिए इतना कष्ट पाने की अपेक्षा मृत्यु ही सुखकर जान पड़ती है।" किसी और ने अश्रुगद्गद कण्ठ से कहा, "आप थोड़ी कृपा कीजिए तो अवश्य ठीक हो जायेंगी। हृदय की आशा अधूरी रह जाने से तो उनकी आत्मा सदा कष्ट ही पाती रहेगी।" इस प्रकार जैसी जिनकी धारणा थी वह बाबाजी महाशय से वैसी ही प्रार्थना करने लगा।

क्रमश: बाबाजी महाशय और अन्य सभी लोग स्वस्थ हो गये, पर ललितादासी की अवस्था गिरती ही गई। जब-जब उन्हें फिट पड़ता, ऐसा लगता कि अब उन्हें चैतन्य लाभ न होगा। बाबाजी महाशय उन्हें बीच-बीच में दर्शन दे जाते। एक दिन प्रात:काल ललिता लगातार रो रही थीं। मधुदादा ने पूछा 'दीदी, आज इतना क्यों रो रही हो? क्या स्वास्थ्य बहुत खराब हो रहा है?' ललितादासी गद्गद कण्ठ से बोलीं, 'भाई, क्या कहूँ, पर सभी लोग मेरी इच्छा के प्रतिकूल दीख पड़ रहे हैं। सोचा था कि नवद्वीपदादा कृपा कर मुझे अपने पास ले जाएँगे, वह भी न हुआ। अब क्या उपाय करूँ और तुम लोग भी इस काठ की पुतली के लिए कब तक कष्ट भोगोगे?

मधु—क्यों दीदी, हमें तो कोई भी कष्ट नहीं होता? तुम उठ खड़ी हो तभी हमें शान्ति मिलेगी। तो क्या हुआ दीदी, नवद्वीप दादा ने क्या कहा?

ललिता—कल रात मुझे बड़ा दु:ख हो रहा था कि दादा मेरी ओर नहीं देख रहे हैं। मैं सोच रही थी कि मैं ऐसी अपराधिन हूँ कि स्वप्न में एकबार उनके दर्शन नहीं होते। सोचते-सोचते मुझे कुछ तंद्रा हो आई। मैंने देखा कि नवद्वीप दादा मेरे सीने पर हाथ रखे बैठे

हैं और मधुर मुस्कान के साथ कह रहे हैं, 'क्यों री, तुझे क्या हुआ?' तब मैं आर्त होकर बोली, 'दादा, तुम तो चले गये, अब मुझे भी ले चलो। मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है।' दादा हँसते हुए बोले, 'और कुछ दिन जीवित रह कर दादा की सेवा करो। फिर देखा जायेगा। तुझे ले जाने से दादा को कष्ट न होगा?' तब मैं बोली, 'हाँ, मैं तुम्हारे दादा की बहुत सेवा कर रही हूँ न! अब तो मैं स्वयं ही सेवा ले रही हूँ। मेरे कारण उन्हें सुख मिलना तो दूर, दु:ख ही हो रहा है। तुम मेरे ऊपर कृपा करो। मैं इस प्रकार सबका बोझ बनकर नहीं रहना चाहती। मुझे अपने पास ले चलो।' इस प्रकार की बहुत बात उनसे हुईं, पर वे किसी प्रकार राजी न हुए। अन्त में वे केवल इतना बोले 'तेरी जो इच्छा है कर, पीछे देखा जायेगा।' इसीलिए मैं तुम सब लोगों से प्रार्थना करती हूँ कि जन्म-जन्मान्तर में योग्य शरीर द्वारा तुम्हारे प्रभु की सेवा प्राप्त करूँ। आज मेरा अन्तिम दिन है। भाई, तुम लोग अन्तिम समय एक बार नाम सुनाना। और कोई प्रार्थना नहीं है। यदि कृपामय प्रभु अन्तिम समय मुझ अस्पृश्य चाँडालिनी को एक बार दर्शन दे देते तो मेरी वासना पूर्ण हो जाती।

इतना कह वे व्याकुल हो रोने लगीं। मधुदादा भी साश्रुगद्गद कण्ठ से उनके सिरहाने बैठकर नाम करने लगे। उनका शरीर धीरे-धीरे अवश होने लगा। इधर बाबाजी महाशय ने जगन्नाथ दर्शन कर, गली के रास्ते से एकदम उस घर में प्रवेश किया जिसमें ललितादासी रहती थीं। उन्हें देखते ही मधुदादा जोर-जोर से रोने लगे। ललितादासी में उठकर बैठने की या स्पष्ट रूप से कुछ कहने की सामर्थ्य न थी। मन ही मन क्या बोलीं, वे ही जानें। उनके दोनों नेत्रों से अविरत अश्रुधार बहने लगी। बाबाजी महाशय कुछ देर तक खड़े रहे फिर 'अच्छा, निताइचाँद की जैसी इच्छा' कहकर अपने बायें पैर का अँगूठा उनके दाहिने हाथ से इस प्रकार स्पर्श कराते हुए कि दूसरे लोग न देख सकें ठाकुर मन्दिर में चले गये। ललितादासी ने समझा कि वे मन ही मन जिस भाव से उनसे विदा की प्रार्थना कर रही थीं उसी भाव से विदा प्रदान कर वे चले गये। अतिशय आनन्द के साथ मधुदादा से अति मृदु स्वर में कहने लगीं, 'भाई, मैंने मन ही मन प्रार्थना की थी कि अन्तिम समय प्रभु एक बार मुझे दर्शन दे जायँ, जिससे मेरी साध पूरी हो। दयामय ने मुझे दर्शन ही नहीं, स्पर्श द्वारा भी कृतार्थ किया। इस आशातीत धनदान के अतिरिक्त उनकी दया का और क्या परिचय हो सकता है?' वे यह कह रहीं थीं और उनका मुख और वक्षस्थल नेत्रों के जल से भीगता जा रहा था।

बाबाजी महाशय ने बलरामबाबू, नगेनबाबू और कुंजदास बाबाजी प्रभृति चार-पाँच व्यक्तियों से कहा, 'देखो, ललिता का अन्तिम समय है, तुम लोग उसे ठाकुर मन्दिर में ले आओ।' यह सुनते ही सब लोग ललितादासी के पास भाग कर गये तो देखा कि वे आखिरी श्वासें ले रही थीं। वे लोग बहुत सावधानी से उन्हें उठाकर ठाकुर मन्दिर में ले जाने लगे। दस-पन्द्रह ही कदम चल पाये कि उनके चक्षु निस्पन्द और स्थिर हो गये। श्वासहीन देह शिथिल हो गयी। तब विकल हो वे जल्दी-जल्दी उन्हें लेकर ठाकुर मन्दिर में पहुँचे। बाबाजी महाशय ने उनकी अवस्था देख क्या समझा, वे ही जानें। वे गद्गद कण्ठ से बोले, 'ठाकुर के सामने लिटा दो।' सबने वही किया और सोचा ललितादासी के प्राण निकल रहे हैं। अड़ोस-पड़ोस के बहुत से लोग भी आ गये थे। वे सब ललितादासी की अवस्था देख बहुत दु:खी हुए। कोई रोने लगे और कोई आक्षेप वाक्यों द्वारा रोष प्रकट करने लगे। आश्रमवासियों की सेवापूजा बन्द हो गई। उनके शोक की सीमा न रही।

कई दिन हुए बाबाजी महाशय के बड़े गुरुभाई श्रीयुत् माधवदास बाबाजी महाशय पुरी आ गये थे। बाबाजी महाशय ने उनसे और अन्यान्य वैष्णवगण से अनुरोधपूर्वक कहा, 'आप लोग सब उसके ज्ञाताज्ञात अपराध क्षमा कर उसे आशीर्वाद करें, जिससे वह योग्य देह लाभ कर अभीष्ट सेवा प्राप्त कर सके। सब लोग उसके माथे पर चरण अर्पण करें।' इसी समय अकस्मात् तीन गौर वर्ण वैष्णव आकर उपस्थित हुए। उन्हें देखते ही बाबाजी महाशय ने झट उठकर दण्डवत् प्रणाम किया और ललितादासी पर चरण अर्पण करने का अनुरोध किया। उन्होंने पहले कुछ आपत्ति की, पर बाबाजी महाशय ने जब ललितादासी के कुछ गुणों का

वर्णन कर उनका परलोक बनाने के लिए वैष्णव चरणधूलि और चरणामृत देने की बात कही तो वे प्रसन्न भाव से ललिता के मस्तक पर चरणार्पण कर खड़े हो गये। माधवदास बाबाजी महाशय ने बाबाजी महाशय से कहा, 'सबने तो चरणधूलि दी, पर तुमने क्यों नहीं दी? मेरा विश्वास है कि तुम्हारा चरण स्पर्श प्राप्त करते ही वह निश्चय ही आरोग्य लाभ करेगी।' इतना कह उन्हें हाथ से पकड़कर उठाया। उन्होंने कुछ मृदु भाव से मुस्कराते हुए कहा, 'उसका विश्वास हो या न हो, तुम लोगों का विश्वास तो है ही।' माधवदास बाबाजी बोले, 'वह तो मरी पड़ी है। इस समय हमारे ही विश्वास से कार्य होगा।' इतना कह दोनों ललितादासी के निकट गये। बाबाजी महाशय ललितादासी के मुख की ओर देखते हुए गद्गद कण्ठ से बोले, 'इस शुष्क काष्ठ–पुतली को बचाकर निताइ की क्या कार्य सिद्धि होगी, वे ही जानें।' इतना कह 'जय निताइ, जय निताइ' पुकारते हुए अपना दाहिना चरण उनके मस्तक पर रख दिया। आश्चर्य! मृत-संजीवनी औषधि के समान चरणस्पर्श पाते ही ललितादासी के मृत देह में प्राणों का संचार हो आया। नेत्र खोल जैसे ही बाबाजी महाशय को सामने देखा, वे कपड़े सम्हाल और घूँघट मारकर बैठ गईं। तब बाबाजी महाशय बोले, 'तेरे भाग्य की सीमा नहीं। तुझे वृन्दावनवासी महात्माओं के चरण–दर्शन हुए। भक्तिपूर्वक उन्हें दण्डवत् प्रणाम कर, उनकी कृपा से तेरा पुनर्जन्म हुआ है। आजीवन स्मरण रखना कि यह जीवन वैष्णवों की कृपा से ही प्राप्त हुआ है। जब तक तेरी वैष्णवों में प्रीति रहेगी, तुम्हें कोई भय न रहेगा। घोर से घोर विपत्ति पड़ने पर भी वैष्णव गोसाँई तेरा उद्धार करेंगे।' यह सुन ललितादासी ने रोते–रोते तीनों वैष्णवों और अन्यान्य सभी को दण्डवत् प्रणाम किया। आगन्तुक तीनों वैष्णव विस्मित होकर कभी बाबाजी महाशय की ओर देखने और कभी ललितादासी के भाग्य की सराहना करने लगे। कुछ ही देर बाद उन्होंने प्रस्थान किया। बाबाजी महाशय ललितादासी से बोले, 'देख, ठाकुर के प्रति तेरा अपराध हो गया है, पर कृपामय ने जब कृपा कर तेरी रक्षा की है तो उनके चरणों में क्षमा प्रार्थना कर और फिर ऐसा अपराध न हो इसके लिए उनसे शक्ति माँग।'

ललिता—मैंने कौनसा अपराध किया है मुझे स्मरण नहीं हो रहा है। आप कृपा कर बतलायें।

बाबाजी—क्या कहूँ! तुम्हारा मुख्य अपराध है कि तुम ठाकुर के नियमित भोग को छोड़ और जो कुछ सामग्री आश्रम में हमारे निमित्त आती है, उसे ठाकुर को न देकर अप्रसादी रूप में हमें देती हो।

ललिता—वह अपराध ठाकुर के प्रति नहीं, आपके प्रति हुआ।

बाबाजी—नहीं ठाकुर के प्रति ही हुआ। यह संसार ठाकुर का है। ठाकुर को उपलक्ष कर जो वस्तु आती है, उसे ठाकुर को न देना चोरी है। चोरीजनित अपराध का खण्डन कौन करेगा।?

ललिता—अच्छा, जिसे उपलक्ष कर जो द्रव्य आता है उसे यदि वह द्रव्य दे दिया तब तो चोरी न होगी।

बाबाजी—होगी क्यों नहीं? भगवत्संसारवासी किसी भी व्यक्ति को लक्ष्य कर जो वस्तु आती है, उसे भगवान् की वस्तु समझना चाहिए।

ललिता—मेरे मन में कई प्रकार का सन्देह हो रहा है। गीता और अन्यान्य शास्त्रों में गुरुतत्त्व के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है, उससे पता चलता है कि गुरु और कृष्ण एक ही वस्तु हैं। गुरु–गीता में लिखा है–

न गुरोरधिकं तत्वं न गुरोरधिकं तपः।

जब गुरु–सेवा ही सर्वोपरि है तो गुरु को अप्रसादी देने में क्या दोष है? जब गुरु की पूजा, प्रणाम, वन्दना आदि की व्यवस्था सबसे पहले की गई है तो मेरे विचार से उन्हें अप्रसादी द्रव्य देना ही उचित है और प्रसादी देना अपराध है।

बाबाजी—यह बहुत बड़ी बात है। उपासना के सम्बन्ध में जितना भी गोलमाल है और जितने भी भिन्न–भिन्न प्रकार के मत, पथ और सम्प्रदाय हैं और होंगे उन सबका मूल है गुरुतत्त्व। यदि ठीक प्रकार से गुरुतत्त्व हृदयंगम किया जाय तो किसी प्रकार के सन्देह की गुंजाइश नहीं रहती। तत्त्व और लीला ये दो वस्तु

हैं। तत्त्वतः तो गुरुकृष्ण एक हैं हीं, पर उनमें लीला-गत पार्थक्य है। जैसे-'आत्मा वै जायते पुत्रः।' स्वयं स्त्री के गर्भ से जन्म ग्रहण करने के कारण स्त्री का एक नाम है जाया। पिता और पुत्र के तत्त्वतः एक होते हुए भी यदि उसमें लीलागत पार्थक्य न रखा जाय तो बड़ा अपराध होता है। यशोदानन्दन जेई, शचीसुत हइल सेई, बलराम हइल निताइ' इत्यादि सहस्रों प्रमाणों से जाना जाता है कि कृष्ण और गौर एक ही वस्तु हैं, पर यदि उनमें लीलागत या स्वरूपगत पार्थक्य न हो, तो उनके पृथक् पूजा और ध्यान का अपलाप हो जाय। इस तत्त्व और लीला को एक करने के कारण एक श्रेणी के लोग महाप्रभु के पृथक् मंत्रादि को स्वीकार नहीं करते। इस प्रकार द्वारकानाथ, मथुरानाथ और ब्रजेन्द्रनन्दन तत्त्वतः एक हैं, परन्तु उनमें लीलागत पार्थक्य बहुत है। 'अहं ब्रह्मास्मि' 'तत्वमसि' आदि वाक्यों में भी जीवन और ब्रह्म के तत्त्वतः एक होने की बात कही गई है, क्योंकि जीव अणु है ब्रह्म पूर्ण, जीव अंश है ब्रह्म अंशी। यदि तुम लीलागत पार्थक्य न मानो तो कृष्ण-सेवा करने से ही गुरुसेवा हो जाती है, कृष्ण को भोग देने से ही गुरु को भोग हो जाता है और पृथक् रूप से गुरु सेवा करने की आवश्यकता नहीं रहती। शास्त्रों ने तत्वगत जितने वाक्यों का प्रयोग किया है उन्हें लीलागत मानने से ही सब प्रकार का मत विभ्राट् होता है। यह तो हुई शास्त्र की बात। विचार की दृष्टि से सेवा का कर्तव्य करना उनकी सेवा है। 'आज्ञा गुरुणां ह्यविचारणीया।' गुरुदेव की जो आज्ञा हो, शिष्य के लिए वही पालनीय है। गुरु आज्ञा में सदसत् का विचार नहीं चलता। तुम अपनी जिद्द से या शास्त्र वाक्यों का एकांगी अर्थ लेने के कारण या अपने सुख के कारण गुरुदेव को अप्रसादी वस्तु खाने को दो और वे भी शास्त्रयुक्ति में तुमसे परास्त हो जाने के कारण उसे ग्रहण करने के लिए बाध्य हों, पर उन्हें सुख न हो तो ऐसी सेवा से क्या लाभ?

ललिता—तब तो गुरु-सेवा हो ही नहीं सकती, क्योंकि गुरुदेव तो कभी अपनी सेवा की आज्ञा देंगे नहीं।

बाबाजी—आचार्यों ने इसीलिए शिक्षा-गुरु करने का विधान किया है। दीक्षा गुरु शिष्य को जो मन्त्रादि प्रदान करते हैं, शिक्षा-गुरु उन्हें विस्तार से समझा देते हैं और गुरुतत्व और गुरु-सेवा का विधिवत् उपदेश करते हैं। जो प्रकृत अनुभवी साधक हैं, उनके हृदय में स्वतः ही गुरु तत्त्व और गुरु-सेवा-सम्बन्धी सिद्धान्तों की स्फूर्ति होती है। इसलिए तुम्हारा अपराध हुआ है; तुम्हें क्षमा-प्रार्थना करनी चाहिए।

ललिता—एक प्रचलित कहावत है-'गुरु छेड़े गोविन्द भजे। शे पापी नरके मझे।' इसका क्या अर्थ है?

बाबाजी—गुरु का उल्लंघन कर जो लोग स्वतंत्र भाव से कृष्ण का भजन करते हैं, उन्हें कृष्ण-प्राप्ति नहीं होती, बल्कि उनकी अधोगति होती है। गुरु का आनुगत्य किये बिना कोई भी कार्य सफल नहीं हो सकता।

तब ललितादासी कृतज्ञतापूर्ण भाव और गद्गद कंठ से कहने लगीं, 'प्रभु, मैं नहीं जानती, किसके प्रति किस भाव से क्या अपराध हुए हैं। मेरी सभी से प्रार्थना है कि मेरे द्वारा किसी के प्रति कोई अप्रीतिकर कार्य न हो, सब मुझे यही भिक्षा दीजिए। यदि अनजाने कभी किसी के प्रति मुझसे अपराध बन जाय तो मुझे क्षमा कर दिया कीजिए।' इतना कह उन्होंने श्रीराधाकान्त देव को साष्टांग दण्डवत् किया। बाबाजी महाशय ने किसी से कहा, 'ठाकुरजी का चरणामृत और वैष्णव चरणामृत इसे दे दो।' उसने ऐसा ही किया। नगेन बाबू ने पूछा, 'दीदी कौनसा पथ्य करें?'

बाबाजी महाशय ने कहा 'प्रसाद और चरणामृत छोड़ और कौन-सा पथ्य होगा?' ललितादासी के अस्वस्थ रहने के समय नगेन बाबू अपने घर से उनके खान-पान की व्यवस्था करते थे। इसलिए आज भी उन्होंने बाबाजी महाशय से कहा-'भोग में विलम्ब होगा, मैं जैसे पहले घर से प्रसाद ले आया करता था वैसे ही आज भी ले आऊँ तो कोई हर्ज तो नहीं है?'

बाबाजी—ऐसा करने से ही तो स्वतन्त्रता बन जाती है। इष्टदेव खायँ देर से और अपने आप पहले ही खा बैठो, यह कौन सा धर्म है? इसलिए अब तुम कोई चिन्ता न करो। यदि प्रभु की इच्छा होगी तो वह ऐसे ही स्वस्थ कर देंगे।

नगेन—स्वाभाविक अवस्था में तो कहता नहीं, अत्यन्त दुर्बल होने के कारण ही मैंने ऐसा कहा था।

बाबाजी—ऐसी कोई बात नहीं, प्रभु का अधरामृत और चरणामृत पाते-पाते ही शक्ति आ जायगी।

नगेन—तब तो मुझे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। पर कल सबेरे जलपान की व्यवस्था करने में तो कोई रोक नहीं ?

बाबाजी—अच्छा, तुम्हारी बहुत इच्छा है तो दो एक दिन कर सकते हो, पर ठाकुर का भोग होना चाहिए।

नगेनबाबू दूसरे दिन नानाप्रकार के फल संग्रह कर मंगल आरति के समय ठाकुर का भोग लगा बाबाजी महाशय के पास ले गये। बाबाजी महाशय ने उसमें से थोड़ा ग्रहण कर ललितादासी को देने को कहा। दूसरे दिन भी जब बाबाजी महाशय के सामने फलादि प्रस्तुत किये गये तो उन्होंने थाल में जिह्वा स्पर्श मात्र किया। तीसरे दिन बिलकुल ही अस्वीकार कर दिया। इसलिए ललितादासी ने भी ग्रहण नहीं किया। ललितादासी ने कातर भाव से नगेनबाबू से कहा, देखो भाई, इस प्रकार का खान-पान बाबाजी महाशय को पसन्द नहीं; इसलिए अब तुम इसकी वृथा चेष्टा न करना। यदि उनकी इच्छा है मुझे रखने की तो ऐसे ही स्वस्थ कर देंगे। मैं प्रसाद और चरणामृत छोड़ और कुछ नहीं लूँगी।' उसी समय बाबाजी महाशय ने ललितादासी को बुलवा भेजा। उन्होंने बहुत धीरे-धीरे जाकर प्रणाम किया। बाबाजी महाशय बोले, 'जल्दी से स्नान करके आओ और ठाकुर की तरकारी अमनिया करो।' ललितादासी आदेश के अनुरूप कार्य करने लगीं। इच्छामय की कुछ ऐसी इच्छा रही होगी। कुंजदादा ठाकुरजी के लिए रसोई बनाया करते थे, पर उनका शरीर कुछ अस्वस्थ हो गया था। इसलिए बाबाजी महाशय ने ललितादासी से बनाने के लिए कहा। सब लोग यह सुनकर अवाक्! जो व्यक्ति आसानी से हिल डुल भी नहीं सकता, उसे पचास-साठ व्यक्तियों के लिए रसोई बनाने की आज्ञा! सबने बाबाजी महाशय से जाकर कहा, 'वह बिलकुल मुर्दा हो रही है, रसोई कैसे बनायेगी ?'

बाबाजी—शक्ति न पेड़ में लगती और न आकाश से उसकी वृष्टि होती है जो कोई लाकर दे देगा। सेवा न करने से शक्ति कहाँ से आयेगी ? सेवा कार्य में प्रवृत्त होने से जिनकी सेवा है वे आप ही शक्ति संचार करेंगे।

वास्तव में ऐसा ही हुआ। ललितादासी ने अक्लांत भाव से रसोई बनाई।

बाबाजी महाशय के मन में न जाने क्या विचार आया, दूसरे दिन रात में जगन्नाथ देव का भोग लगा कर वैष्णव-सेवा का प्रबन्ध किया। एक मन दूध की सूजी की खीर और अन्यान्य अनेक प्रकार के व्यंजन बनाने का भार एकमात्र ललितादासी पर छोड़ा। उनकी इच्छा से इसका पूरी तरह निर्वाह हो गया। जब वैष्णव लोग आये तो बाबाजी महाशय ने परोसने का कार्य भी ललितादासी को ही सौंपा। ललितादासी भी बाबाजी महाशय की आज्ञा शिरोधार्य कर और उनके चरणों में प्रणाम कर परिवेशन में प्रवृत्त हो गईं। सब देखकर अवाक्, जैसे काठ की पुतली को धागे से कोई नचा रहा हो। कोई ढाई-सौ वैष्णव और दुःखी, कंगाल आदि ने महाप्रसाद पाया। ललितादासी ने बिना किसी प्रकार का परिश्रम बोध करते हुए सबको परिवेशन किया। सब इस अलौकिक व्यापार को देख बाबाजी महाशय की कृपा शक्ति की जय बोलने लगे।

श्रीश्रीनित्यानन्द जन्मोत्सव

देखते-देखते माघमास आ पहुँचा। माघी शुक्ला त्रयोदशी को नित्यानन्द प्रभु का आविर्भाव उत्सव था। इस बार बाबाजी महाशय का भाव भिन्न प्रकार का था। वे सदा अनमने और उदासीन रहते। एक दिन एक अल्पवयस्क प्रदेशी ग्वाला एक मटकी घी लेकर बेचने के लिए झाँझपीटा मठ आया। जैसे ही बाबाजी महाशय ने उसे देखा, बड़े आग्रह के साथ उसका घी तुलवाया। इक्कीस सेर निकला, दाम हुए साढ़े इकत्तीस रुपये। ललिता दासी ने बत्तीस रुपये उसे दिये और आठ आने वापस माँगे। बाबाजी महाशय उन्हें आठ आने वापस माँगते देख क्रोध से बोले 'तुम्हें पैसे देने को कहा गया था, तुमने दे दिये। उससे कुछ वापस लेने को तो तुमसे किसी ने कुछ कहा नहीं।

ललिता—हिसाब से तो केवल साढ़े इकत्तीस रुपये ही होते हैं।

बाबाजी—उसने नित्यानन्द उत्सव के उद्देश्य से घी दिया है, इसलिए उसका हिसाब निताइ करेंगे। तुम्हारे पास उनका रुपया था, तुमने दे दिया। जमा-खर्च करने की तुम्हें क्या जरूरत है? इससे वापस लेने की जरूरत नहीं।

घी वाला जल्दी से आठ आने पैसे निकाल लेने के लिए आग्रह करने लगा, परन्तु बाबाजी महाशय ने न लिये। अन्त में उसकी मटकी ले लेने की इच्छा से बोले, 'भाई, तेरी मटकी का क्या दाम होगा?' उसने उत्तर दिया, 'हम लोग मटकी कभी नहीं बेचते, क्योंकि बहुत दिनों तक व्यवहार की हुई मटकी पक्की हो जाती है।'

बाबाजी—पक्की है, इसीलिए तो मैं कह रहा हूँ। जो भी मुनासिब पैसे हों लेकर तुम्हें ठाकुर जी के लिए उसे देना होगा।

ग्वाल बालक मटकी न देने के विचार से बोला, 'तीन-चार रुपये खर्च करके मटकी लेने की क्या जरूरत है? इससे तो आठ-दस पैसे में एक कनस्तर ले लेना ही ज्यादा अच्छा होगा।'

बाबाजी महाशय ने तुरन्त चार रुपये देकर घी की मटकी रख लेने के लिए ललितादासी से कहा। ललितादासी पहले तो विस्मित हो बाबाजी महाशय की ओर ताकने लगीं, पर जब उन्होंने क्रूद्ध भाव से कहा तो चार रुपये लाकर उसे दे दिये। घी वाला इस व्यवहार से स्तम्भित हो गया। थोड़ी देर बाद बोला, 'यदि आपकी इतनी इच्छा है तो आप मटकी रख लीजिये, मुझे इसके लिए कुछ नहीं चाहिए।' बाबाजी महाशय ने नानारूप प्रबोध वाक्यों द्वारा समझाते हुए उससे कहा, 'बाबा, तुम्हारे निताइचाँद ने बहुत पहले ही तुम्हारे लिए मेरे पास रुपये रख दिये थे। यदि मैं तुम्हें न दूँ तो मैं दोषी बनूँगा। इसलिए तुम्हारे लिए कोई भय की बात नहीं, तुम रुपये ले जाओ।' इस प्रकार के वाक्य सुन घी वाला और कुछ न कह सका। उन्हें दण्डवत् प्रणाम कर और उनका आदेश प्राप्त कर वहाँ से चला गया।

इधर बाबाजी महाशय ने एक सवा सेर का लोटा घी से भर समुद्र में डाल आने के लिए एक व्यक्ति को भेजा और स्वयं घी की मटकी लेकर कोई आधा सेर घी कुएँ में डाल आये और एक-एक पाव घी हर कमरे के दरवाजे पर और आधा सेर सदर दरवाजे पर डाल कर अवशेष भण्डार में रख देने के लिए कहा। उत्सव के पहले दिन अधिवास हुआ। दूसरे दिन नाना प्रकार के द्रव्यों का आयोजन होने लगा। यथासमय अभिषेक के पश्चात् कीर्तन प्रारम्भ हुआ। बाबाजी महाशय आवेश में भर दही, हल्दी और संकीर्तन का घृत मिश्रित जल लेकर सबके शरीर में मलने लगे। अवशिष्ट संकीर्तन मण्डली के बीच उड़ेल दिया। उड़ेलते ही सब लोग उस पर लोटने लगे। पड़ोसी लोग कुएँ से जल निकाल कर उस स्थान पर डालने लगे। धीरे-धीरे आँगन में कीचड़ हो गयी। किसी को बाह्य स्मृति न रही। कोई उन्मत्त हो कीचड़ में लोट रहा था, कोई किसी को पकड़ कर उसमें लिटा रहा था। आनन्द की सीमा न थी। चार बज गये, तब भी संकीर्तन और नृत्य नहीं थमा। ललितादासी के कई बार संकेत करने पर बाबाजी महाशय सबको थका हुआ जान और दिन समाप्त होता देख अनिच्छापूर्वक संकीर्तन समाप्त कर प्रसाद पाने बैठे।

लीलामय की लीला कुछ कही नहीं जा सकती। जिस समय जो भी लीला करते हैं, उसी में आनन्द का समुद्र उमड़ पड़ता है; फिर आज तो श्रीनित्यानन्द का आविर्भाव दिवस है। इसलिए निताइगत-प्राणवाले भक्तों के लिए पूर्णानन्द का दिन है। महाप्रसाद के लिए बैठते ही सब नानाप्रकार से आनन्द मनाने लगे। कोई किसी के मुख से निकाल कर प्रसाद अपने मुख में डाल रहा था, कोई परिवेशन करते-करते किसी के सिर पर खीर डाले दे रहा था और कोई जल्दी से उसके सिर पर से सपाटामार उसे चाट रहा था। सभी लोग जैसे उन्मत्त थे। छोटे-बड़े का कोई भेद न था। संकोच और मर्यादा मानो आनन्द के स्रोत में कहीं दूर बह गये थे। आनन्दमय की कृपा से जो प्रसाद पा रहे थे, वे भी आनन्दमय थे और जो देख रहे थे या परिवेशन कर रहे थे वे भी आनन्दमय थे। सन्ध्या के लगभग

पहली पंगत समाप्त हुई। आगन्तुक दु:खी, कङ्गाल और पास-पड़ोसी सब मिलाकर तीन सौ लोग उपस्थित थे। बाबाजी महाशय के आदेश से सबको एक साथ बिठा दिया गया। सबने परितुष्ट भाव से महाप्रसाद ग्रहण किया और निताइचाँद की जय बोलते-बोलते अपने-अपने स्थान को प्रस्थान किया।

महाभावावेश या दिव्योन्माद

इस प्रकार परमानन्दपूर्वक कई दिन बीते। एक दिन अपराह्न चार बजे बाबाजी महाशय बैठे हुए थे। उनके चार-पाँच साथी और पाँच-सात बाहर के भक्त निकट बैठे थे। नानारूप कृष्ण-कथा चल रही थी। अकस्मात् बाबाजी महाशय चौंक उठे और व्याकुल होकर कहने लगे 'ओह! कैसा भीषण समय आ गया है, कैसा भयानक ग्रहों का उत्पीड़न, कैसा अत्याचार! हा निताइ! कब यह दुर्दशा दूर होगी! कैसे इन कठिन ग्रहों की शान्ति होगी?' ऐसा कहते-कहते वे बालक के समान उच्च स्वर से रुदन करने लगे। उपस्थित भक्तगण अवाक् रह गये। उनकी व्याकुलता को देख किसी को कुछ पूछने का साहस न हुआ। कुछ देर बाद एक व्यक्ति धीरे-धीरे बोला, 'आपके अकस्मात् इस प्रकार व्याकुल हो उठने का कारण हमारी कुछ समझ में नहीं आ रहा है। यदि हमें आप अनधिकारी न समझें तो कृपा कर कुछ बतला कर हमारे कौतुहल की निवृत्ति करें।'

बाबाजी—बाबा, क्या कहूँ? पुरी धाम की अवस्था बड़ी शोचनीय होने वाली है। नवग्रह एक साथ कुपित हैं। अब अत्याचार की सीमा न रहेगी। जगन्नाथदेव की सेवा में बड़ी विशृंखलता हो जायगी। धाम में घर-घर में विवाद, आत्म-विच्छेद और अशान्ति होगी, और क्या कहूँ? अनहोनी जितनी बातें है, सब होंगी।

वे इस प्रकार बहुत सी बातें कहने लगे। भक्तगण जगन्नाथ जी की सेवा और धाम की दुरवस्था की बात सुन दु:खित हो बोले, 'कितने दिन बाद दुरवस्था होने को है? सेवा में भयानक विशृंखलता के साथ-साथ यदि इस प्रकार का सांघातिक व्यापार उपस्थित हुआ तब तो प्राण रखना भी कठिन होगा।' बाबाजी महाशय साश्रुगद्‌गद कण्ठ से बोले, 'कुछ बाकी नहीं है बाबा, आरम्भ हो गया है। दो चार दिनों में ही सब कुछ जान पड़ जायगा।'

भक्त—कब तक ग्रह कुपित रहेंगे?

बाबाजी—समय कुछ निर्दिष्ट नहीं है। यदि कोई एकाग्र मन से नवग्रहों का अर्चन आदि नियमपूर्वक कर सके तो थोड़े दिनों में ही निवृत्ति हो सकती है। नहीं तो कब तक भोगना पड़ेगा, इसका कोई ठीक नहीं।

इस प्रकार के कथोपकथन के पश्चात् आगंतुक भक्तों ने विमन भाव से अपने-अपने घर प्रस्थान किया। संगीगण भी अपने-अपने कार्य में लग गये। बाबाजी महाशय दर्शन करने के लिए जगन्नाथ मन्दिर चले गये।

तीन-चार दिन बाद एक दिन बाबाजी महाशय प्रात:काल संकीर्तन लेकर जगन्नाथजी के मन्दिर गये। देखा कि जगन्नाथ जी के सेवकवृन्द एकत्रित हो किसी सम्बन्ध में नानारूप दु:ख प्रकाश कर रहे हैं और क्या उपाय किया जाय इस पर विचार कर रहे हैं। जगन्नाथजी की सेवा बन्द है। बाबाजी महाशय की कुछ समझ में न आया। उन्होंने श्रीयुत माधव पशुपालक से पूछा तो वे बोले, 'क्या कहूँ? मंगल आरति के समय भीतर का मन्दिर खोलते ही देखा गया कि रत्नवेदी के सामने पोटली पड़ी है। मशाल लेकर विशेष अनुसंधान करने पर भी जब पता न चल सका कि कैसी पोटली है, तो उसे खोला गया। देखा कि उसमें मछलियाँ हैं। कैसी असम्भव बात है! रात में ताले-ताले पर मोहर पड़ जाती है। कैसे इस बीच यह वीभत्स कांड हुआ कुछ समझ में न आया। तब हमने महाराज से जाकर कहा। पर उन्होंने सुनी-अनसुनी कर दी। ऐसी घटना होने पर महामहास्नान होने का विधान है। परन्तु कौन जानें।' यह सुन बाबाजी महाशय साश्रुगद्‌गद कंठ और कातर भाव से जगन्नाथदेव के निकट नानारूप प्रार्थना करने लगे। यथासमय संकीर्तन समाप्त कर सब आश्रम लौटे।

बाबाजी महाशय गम्भीर चिन्ता में निमग्न हो गये। उनके मुख पर हँसी न रही। हर समय हताश और उदास दीखने लगे। कई दिन बाद बलरामबाबू आये

और व्याकुल होकर बाबाजी महाशय से बोले, 'सर्वनाश हो गया। आपने जो कहा था, सत्य हुआ। जगन्नाथ के मन्दिर में जिस कुएँ के जल से पूर्णिमा के दिन जगन्नाथदेव स्नान करते हैं, उसमें कल दो बरस का एक बछड़ा गिर कर मर गया। बड़े कष्ट से उसे निकाला गया। मन्दिर के बीच गोवध!' यह सुनते ही बाबाजी महाशय मूर्च्छित हो गये। बहुत देर में चैतन्य लाभ कर बालक के समान उच्च स्वर से रुदन करते-करते बोले, 'हा प्रभो! कब इस दु:ख की शान्ति होगी? कब तुम्हारी सेवा की सुव्यवस्था देख हृदय शीतल होगा? दयामय! एक बार जीवों की दशा पर दृष्टि डालें। आप तो पूर्ण ब्रह्म और सनातन हैं। आप यदि दुष्ट ग्रहों को इतना प्रश्रय देंगे तो हमारे प्राण कैसे बचेंगे?' इस प्रकार बहुत देर तक व्याकुल रहकर जब कुछ स्थिर हुए, तब बलराम से पूछा, 'बलराम, उसके बाद क्या हुआ? जगन्नाथ जी का भोगराग कब हुआ?'

बलराम—यह दु:ख की बात क्यों पूछ रहे हैं? कोई बारह बजे प्रथम अवकाश (स्नान) हुआ और मध्याह्न धूप (भोग) होते-होते रात बीत गई। संध्या धूप और मुख्य शृङ्गार हुआ ही नहीं। जगन्नाथ जी का शयन तो बहुत दिनों से बन्द है ही।

बाबाजी—इतना बड़ा विभ्राट् हो गया। राजा ने इसकी क्या व्यवस्था की?

बलराम—राजा ही यदि सेवा की ओर ध्यान देते तो इस प्रकार की दुरवस्था क्यों होती? उनकी इधर जरा भी दृष्टि नहीं।

यह सब सुनकर बाबाजी महाशय और भी अधीर हो गये। बातचीत करना प्राय: बन्द कर दिया। सदा चिन्ता में रहने लगे। दो-तीन दिनों में मुख श्री इतनी मलिन हो गई कि उनकी ओर देखते ही लोगों की आँखों में आँसू आ जाते।

विपद् विपदमनुवध्नाति संपद: संपदिति।

यह महाजनोक्ति क्रमश: सत्य होती दीखने लगी। प्राय: रोज ही मन्दिर में एक न एक झंझट रहता। मन्दिर के अतिरिक्त धाम में घर-घर नानारूप वाद-विसम्वाद और अशान्ति दीख रही थी। धाम और धामेश्वर की सेवा की नानारूप विशृंखलता के बारे में सोचते-सोचते बाबाजी महाशय की मानिसक और शारीरिक अवस्था धीरे-धीरे खराब होने लगी। ज्वर हो आया और सीने में कफ का प्रकोप बहुत बढ़ गया।

उनका स्वभाव था कि अस्वस्थ अवस्था में जो डाक्टर, वैद्य या साधारण व्यक्ति जिस किसी औषधि का सेवन या नियम का पालन करने को कह देता उसे सहज में स्वीकार कर लेते। कभी-कभी चार-पाँच व्यक्ति चार-पाँच तरह ही औषधि दे जाते। उनके चले जाने पर वे सेवकों से कहते, 'सब औषधियों को और उनके अनुपात को मिला दो।' सेवक यदि ऐसा न करते तो दु:खित हो अपने हाथ से ही औषधियों को मिलाने लगते। इसलिए सेवक उनकी आज्ञानुसार तुरन्त ही औषधियाँ मिला देते। इस बार भी ऐसा ही होने लगा। रोज चार-पाँच वैद्यों की औषधि एक साथ मिलाकर ले रहे थे। एक दिन वे संध्या बीत जाने पर बलरामबाबू, नगेनबाबू और अपने साथियों में से दो एक व्यक्तियों को अकेले में बुलाकर कहने लगे, 'देखो, धाम की वर्तमान अवस्था को देख निश्चिन्त रहना कठिन हो गया। यदि कुछ प्रतिकार न किया गया तो अवस्था और भी खराब होगी, इसमें सन्देह नहीं। इसलिए तुरन्त प्रतिकार करना चाहिए।'

बलराम—इसका क्या प्रतिकार होगा? आपने कहा था कि नवग्रह एक साथ कुपित हो गये हैं। इसका क्या प्रतिकार हो सकता है, आप ही जानते हैं।

बाबाजी—क्या करना होगा वह तो मैं जानता हूँ। पर सहायता के बिना कार्य सम्पन्न होना कठिन है।

बलराम—हम लोगों से जो भी हो सकता है, करेंगे। प्राणपण से आपकी आज्ञा पालन की चेष्टा करेंगे।

बाबाजी—नवग्रहों की पूजा, होम और मन्त्रजप कराना होगा। उसकी व्यवस्था पीछे होगी। अभी नौ दिन का नाम संकीर्तन यज्ञ करना होगा। इन नौ दिनों में तीन-तीन दिन के लिए एक-एक नियम का पालन करना होगा। पहले तीन दिन ग्रहों का अत्याचार पूर्ण मात्रा में होगा। ग्रहगण नाना छल-कपट कर और नाना वेश रख तुम्हें लुभाने की चेष्टा करेंगे। इतना ही नहीं, नाना रूप से तुम्हारी बुद्धि में भ्रम उत्पन्न करने की चेष्टा करेंगे। प्रयोजनीय द्रव्य का अपहरण करेंगे।

किसी व्यक्ति की आवश्यकता पड़ने पर समय पर उससे भेंट होने में बाधा डालेंगे। जो लोग नाम-यज्ञ में दीक्षित होंगे वे बाहर न जा सकेंगे। निष्किञ्चन भाव से एकमात्र नाम का अवलम्बन कर दिन व्यतीत करने होंगे। बाहर का जो कुछ काम होगा वह तुम लोग बाहर रह कर ही करोगे। बाहर का कोई व्यक्ति भीतर नहीं आयगा और भीतर का बाहर नहीं जायगा। निताइ की इच्छा से मैं जिस समय जैसा कहूँगा, बिना सोचे विचारे वैसा ही करना होगा। साधारणत: किसी काम के समय उसका उद्देश्य जानने के लिए जो तुम तरह-तरह के प्रश्न मुझसे किया करते हो वह सब नहीं करना होगा। उद्देश्य कार्य के अन्त में जान सकोगे। और अधिक क्या कहूँ? कार्य करने वाले लोगों को किसी प्रकार का मतिभ्रम न हो तभी उस कार्य को निर्विघ्न सम्पन्न करने की आशा की जा सकती है।

इस प्रकार के वाक्यों से बाबाजी महाशय सबको सावधान करने लगे। वे भी तन मन से इस अनुष्ठान के लिए उद्योग करने लगे। अनुष्ठान कब आरम्भ होगा, कोई नहीं जानता था। एक दिन बाबाजी महाशय ने एक कागज पर कुछ जड़बूटियों की एक तालिका बनाई। पुरीवासी दो व्यक्तियों द्वारा वन से कई वृक्षों की छाल, कई प्रकार की पत्तियाँ और जड़ें मँगाकर उन्हें एक साथ जल में उबालने का आदेश किया। आश्रमवासियों ने ऐसा ही किया। बाबा उन काष्ठादिकों का जल मिलाकर कई व्यक्तियों से पंचतीर्थ, पुरी गोस्वामी का कुआ, जगन्नाथजी का मन्दिर आदि कई स्थानों की परिशुद्धि करने के लिए कहा। स्वयं उस जल से आश्रम के शालग्राम और अन्यान्य विग्रह मूर्तियों का मार्जन करने लगे। एक कलसी जल आश्रम के कुए में डाल दिया। फिर साथियों को एक-एक छोटे गिलास में वही जल भरकर पिलाने लगे। स्वयं एक गिलास पीकर सारे शरीर में मलने लगे और अपने आप से कहने लगे, 'ठाकुरजी के संसार में नाना प्रकार के द्रव्यों का संचय हो गया है और व्यावहारिक भोगविलास की मात्रा बढ़ गई है। विशेष कठोर भाव धारण किये बिना किसी प्रकार निष्किंचन अवस्था न हो सकेगी। उसे यदि किसी को दे दिया जाय तो जिसे भी दिया जायगा, उसकी आसक्ति बढ़ेगी। शास्त्र कहते हैं, 'अत: सर्वभुजं वह्निमाश्रयेत् सर्वथा नर:।' जब निजी व्यावहारिक द्रव्यादि द्वारा किसी महत्कार्य में बाधा पड़ने की संभावना हो और वह पदार्थ और किसी के ग्रहण करने योग्य न हो तो एक मात्र सब कुछ भक्षण करने वाली अग्नि का ही सहारा लेना चाहिए। जो हो, निताइचाँद की जैसी इच्छा।' इतना कह वे श्रीजगन्नाथ दर्शन के लिए बाहर निकले।

इसके पूर्व बाबाजी महाशय के व्यवहार के लिए पैंतालीस रुपये की एक रेशमी चादर मँगाई गई थी। चादर देखने में बिलकुल सूती जैसी लगती थी। इसलिए साथियों की धारणा थी कि वे सूती चादर समझ कर ही उसे व्यवहार में ला रहे हैं। सचमुच यह नहीं कहा जा सकता कि वे उसे सूती समझते थे या रेशमी। जगन्नाथ-दर्शन कर आश्रम लौटने पर अपने दो साथियों से बोले, 'इस चादर को खूब खींच कर पकड़ो तो।' जब उन्होंने ऐसा किया तो इन्होंने एक दियासलाई जला कर उसके नीचे लगा दी। कुछ लोगों ने जब झपट कर इस कार्य में बाधा देनी चाही तो इतनी तीव्र दृष्टि से उन पर कटाक्ष किया कि वे डर के मारे पीछे हट गये। जब देख लिया कि सिल्क की चादर भली प्रकार जल रही है तो अपने कमरे में से सूती चादर, मसहरी आदि एक-एक कर ला अग्नि में डालने लगे। अग्नि क्रमश: प्रबल होने लगी। बाबाजी महाशय परमानन्दपूर्वक नृत्य करते-करते कमरे में से तकिया, लिहाफ, तोषक आदि ला-ला इस अग्नि-कुण्ड में डाल रहे थे। इनके सहास प्रफुल्ल मुख कमल के दर्शन मात्र से परितृप्ति होती थी। परन्तु किसी के इनके आचरण में बाधा डालते ही ये भयानक कठोरता प्रकाशित करने लगते थे। इस प्रकार इनके अपने व्यवहार के सारे द्रव्य धीरे-धीरे समाप्त हो गये।

अकस्मात् जैसे ही एक इत्रवाले ने रास्ते में से आवाज लगाई 'इत्र चाहिए इत्र', इन्होंने सदर दरवाजे में जाकर उसे बुलाया। उसने कंधे से इत्र का बक्सा उतार उन्हें प्रणाम किया। इन्होंने पूछा, 'कौन-कौन सा इत्र है?' वह एक-एक कर सब दिखाने लगा। जब वह सब इत्र दिखा चुका तो ये उससे बोले, 'देख, इन

तमाम शीशियों को रास्ते में उँड़ेल दे।' इत्रवाला समझा कि शायद इन इत्रों को अच्छा न समझ ये इस प्रकार परिहास कर रहे हैं। तब इन्होंने क्रुद्ध होकर कहा, 'बाबा, तुझे तो पैसे मिलेंगे न। तुझे यह सब विचार करने की क्या जरूरत है? मैं जो कह रहा हूँ, वही करना होगा।' इतना कह इन्होंने स्वयं एक शीशी धरती पर उँड़ेल दी। यह देख इत्रवाला जल्दी-जल्दी इनकी आज्ञानुसार इत्र की शीशियाँ रास्ते में उँड़ेलने लगा। रास्ते में बहुत से लोग इकट्ठा हो गये। जिस स्थान पर इत्र उँड़ेला जा रहा था, वहाँ गौरदास नामक एक बड़ा बलवान व्यक्ति आया और अपना मस्तक दिखाते हुए उस पर इत्र उँड़ेलने का इशारा करने लगा। बाबाजी महाशय ने इत्रवाले को उसके मस्तक पर इत्र उँड़ेलने का आदेश किया। इत्रवाला ऐसा ही करने लगा। इत्र से गौरदास के कपड़े भीग गये। जब इत्र उँड़ेलने की लीला समाप्त हो गई, तब बाबाजी महाशय ने इत्रवाले से दाम पूछे। उसने विस्मित भाव से उनकी ओर ताकते हुए हाथ जोड़ कर कहा, 'प्रभु, मैं कुछ नहीं जानता। आपकी जो इच्छा हो दे दें।' इन्होंने ललितादासी को आदेश किया, 'इसे पचास रुपये दे दो।' ललितादासी ने जब इत्रवाले को रुपये दिये तो वह बोला, 'मेरी इच्छा है कि इसमें से पाँच रुपये ठाकुरजी की प्रणामी के लिए रख लें।' इत्रवाला मुसलमान था। फिर भी ठाकुर के प्रति उसका भक्ति-भाव देख सब लोग बहुत प्रसन्न हुए। बाबाजी महाशय ने उसे कहा, 'तुम्हारे इत्र के दाम तो और भी अधिक होते हैं, इस लिए पाँच रुपये प्रणामी के जो तुमने निकाले हैं वह भी तुम रख लो।' वह इनके व्यवहार से अवाक् रह गया और रुपये लेकर चला गया।

इस प्रकार वह दिन बीता। दूसरे दिन प्रात: इन्हें न जाने क्या सूझी, इन्होंने आश्रमवासियों को सब वस्त्रादिक बाहर निकाल लाने का आदेश किया। कोई-कोई तो सरल भाव से अपनी सारी सामग्री निकालने लगे, कोई-कोई एकाध वस्तु छिपा कर बाकी लाने लगे। आश्चर्य की बात कि जिस जिसने कुछ छिपाया था, उसके सामने आते ही बाबाजी महाशय क्रुद्ध भाव से बोले, 'अरे माया के कीड़े, तूने अमुक वस्तु क्यों छिपाई? शीघ्र ले आ।' वह स्तम्भित हो छिपाई हुई वस्तु बाहर निकालने लगा। इस प्रकार केवल ललितादासी आदि सखियों के घाघरा कंचुकी, ओढ़नी, साड़ी आदि छोड़ और जितनी भी वस्तुएँ थीं सबको एकत्र कर उनमें आग लगवा दी और क्रमश: खाट, चौकी, कुर्सी मेज इत्यादि सारा सामान अग्नि में झोंकने लगे। अग्नि ने प्रचंड रूप धारण किया। किसी को कुछ कहने का अवसर न मिले इस विचार से खोल करताल के साथ अग्नि की परिक्रमा करते हुए नाम कीर्तन करने का सबको आदेश किया। सब आदेशानुसार कार्य करने लगे। इस कौतुक को देखने के लिए बहुत से लोग एकत्र हो गये। पर उनका किसी ओर ध्यान न था। वे केवल एक-एक कमरे में घुसकर उसमें से नाना प्रकार की वस्तुएँ लाकर अग्निकुण्ड में उनकी आहुति दे रहे थे। कुछ देर बाद वे बलराम बाबू को जलद गम्भीर स्वर से आदेश करते हुए बोले, 'देख बलराम, कल से नाम यज्ञ आरम्भ होगा। सब सावधान हो जाओ। आश्रम के बाहर जाने के सारे दरवाजे बन्द कर दो। निताइचाँद की इच्छा से मुझे जब जिस वस्तु की आवश्यकता होगी, बिना विचारे प्रस्तुत करना। एक सौ रुपये मुझे अभी ला दो। मुख्य बात यह है कि बाहर का कोई व्यक्ति भीतर नहीं आएगा। और भीतर का बाहर नहीं जाएगा। इस सम्बन्ध में विशेष रूप से सतर्क रहना।'

बलराम रुपया लाने के लिए चले गये। इसी बीच केन्द्रापाड़ा के जमींदार बाबू बलराम भ्रमरवर आकर उपस्थित हुए। उनके हाथ में एक नवरत्नों की अँगूठी थी। संकीर्तन यज्ञ में नवरत्नों की आवश्यकता होने के कारण उनकी अँगूठी रख ली गई। यथासमय बलराम रुपये लेकर आ गये। नौ नयी मटकियों में रुपये रख कर उन्हें जल से भर कर यथासमय स्थापित कर दिया गया। रात में जगन्नाथ जी का महाप्रसाद मँगा कर सब लोग उसे पाकर सो गये। पर बाबाजी महाशय नहीं सोये। वे आश्रम परिष्कार करते रहे। पहले ही उन्होंने साथियों को सावधान कर दिया था कि मेरे किसी कार्य का न तो कोई प्रतिवाद करेगा और न उसमें किसी प्रकार की बाधा देगा और न ही

मेरे आचरित कार्य का उद्देश्य पूछेगा। इसलिए इनके किसी कार्य से साथियों के हृदय पर आघात पहुँचने पर भी इनसे कुछ कहने का किसी को साहस न हुआ। वे कृपा कर जिसको जो आदेश करते वह केवल उसका पालन करता।

प्रभात होने के पूर्व ही नाम आरम्भ हो गया। नवरत्नों की अँगूठी, शालग्राम शिला और अन्यान्य कई वस्तुएँ एक पात्र में रखकर उसे तुलसी मंच पर तुलसी के नीचे रख दिया गया और मञ्च की परिक्रमा कर कीर्तन किया जाने लगा। इधर बाबाजी महाशय कुए से जल निकलवाकर एक लोटे से सबके सिर पर उड़ेलने लगे। क्रमशः एक-एक कर सबको स्नान करा चुकने पर अपने-अपने डोर, कौपीन और बहिर्वास को दीवार के ऊपर से बाहर फेंक देने का आदेश किया। पहले लोगों ने परिधेय वस्त्र का परित्याग करने में कुछ आपत्ति की, पर जब इन्होंने उन पर लोटे से आघात कर उनमें शक्ति का संचार किया, तब सब लोग बिना विचारे डोर, कौपीन दीवार के ऊपर से बाहर फेंक निर्विकार अवस्था में कीर्तन करने लगे। केवल सखीभावापन्न कुछ लोगों को छोड़ बाकी सब नग्न हो नृत्य कीर्तन करने लगे।

दस बजे के लगभग बाबाजी महाशय ने गनेश नामक एक नापित के द्वारा मस्तक मुण्डन कराया। उससे कहा, 'देख, शिखासमेत मुण्डन कर दे। इस शिखा और कण्ठी से माया का स्पर्श हुआ है, इसलिए इस सबका परित्याग कर यथासमय विशुद्ध भाव से शोधन कर तुलसी-कण्ठी और शिखा धारण करनी होगी।' इतना कह उन्होंने स्वयं शिखा कंठी का परित्याग किया और दूसरे सब लोगों से भी उनका परित्याग कराया। संकीर्तनध्वनि क्रमशः ऊँची होने लगी। ये कुए से जल निकलवा कर अविश्रान्त भाव से सबके सिर पर डाल रहे थे और सबको पिला रहे थे। एक-एक व्यक्ति को पेट भर जल पिला रहे थे, फिर भी किसी को लघुशंका का वेग नहीं हो रहा था। सब निर्विकार, निर्मम और निर्द्वन्द्व हो नाम-कीर्तन कर रहे थे।

कुछ दिन पहले से आश्रम में तोता और मैना दो पक्षी पाले गये थे। मैना केवल कहा करती। 'शुक पड़, बाबा पड़, दिन त जाय।' शुक अविश्रान्त भाव से 'भज निताइ गौर राधेश्याम। जप हरे कृष्ण हरे राम' 'राधे गोविन्द', 'हरिनाम रट रे रसना, वृथा दिन जाय', 'कह सखि ललिता कृष्ण तत्व-कथा' इत्यादि नाना रूप मनोमुग्धकर वाक्यों द्वारा सर्वसाधारण को परितृप्त किया करता। तोते का कंठ इतना ऊँचा था कि दूर से सुनने से लगता जैसे सात वर्ष की बालिका बोल रही है। बाबाजी महाशय ने तोता और मैना को पहले पूर्वोक्त काष्ठादिक के जल से और फिर शोधित कुए के जल द्वारा स्नान करा पिंजड़े के बाहर छोड़ दिया और स्वयं गान आरम्भ किया-**बल् देखिरे शुकसारी कोथाय आमार राइ किशोरी। राइ बिने आर प्रान बाँचे ना विच्छेद ज्वालाय ज्वले मरी॥**

दोनों पक्षी मौन भाव से बराबर इनके मुख की ओर देखते रहे। पहले लोगों ने सोचा था कि पिंजड़े से निकलते ही दोनों उड़ जायेंगे, परन्तु ऐसा न हुआ। वह अपना स्वभाव भूलकर संकीर्तन में परिक्रमा करने लगे। थोड़ी देर बाद दोनों ने ठाकुर मन्दिर में प्रवेश किया और एकदम उड़कर राधाकान्त विग्रह के सम्मुख बैठ गये। बाबाजी महाशय ने उन दोनों को लक्ष्य कर ठाकुर सेवा करने का आदेश किया। ललिता दासी ने यथा-सम्भव तुलसी-फूलों से ठाकुर-सेवा की और कुछ बाल्यभोग लगाया।

ठीक मध्याह्न के समय तोता उड़कर पूर्वोक्त तुलसी मंच पर रखे हुए उस पात्र के ऊपर जाकर बैठ गया, जिसमें नवरत्नों की अंगूठी, शालग्राम आदि थे। इधर बड़े ऊँचे स्वर से गान करते-करते सब लोग वेगपूर्वक नृत्य करने लगे। बाबाजी महाशय बड़े प्रेम से तोते की पीठ पर अपना बायाँ हाथ फेर रहे थे। सब प्रेमानन्द सागर में निमग्न थे। तभी उस तोते ने संकीर्तन महायज्ञ के बीच अपना स्थूल शरीर छोड़ नित्यलीला में प्रवेश किया। बाबाजी महाशय उस तोते के स्थूल शरीर को अपनी छाती से लगा नृत्य करने लगे। पक्षी-रूप-धारी महात्मा की विरह-वेदना से सब लोग कातर हो उठे। सबके नेत्रों से आँसू बह रहे थे, सबके कण्ठ गद्‌गद थे और अङ्ग पुलकित हो रहे थे। परन्तु बाबाजी महाशय तोते के भाग्य की प्रशंसा कर रहे थे। परन्तु बाबाजी

महाशय तोते की मृत देह को अपने वक्षस्थल से अलग नहीं कर रहे थे। थोड़ी देर पश्चात् वे अपने शयनगृह में जा तोते को अपने सीने से लगाकर शयन करने लगे।

बाहर नाम-कीर्तन हो रहा था। संध्या हो गई, फिर भी बाबाजी महाशय उसी तरह लेटे थे और साथियों को आदेश कर रहे थे सावधान नाम किसी प्रकार बन्द न हो।' नाम चल रहा था पर बाबाजी महाशय कमरे से बाहर नहीं हो रहे थे। ठाकुर जी को भोग न लगा देख बहुत से लोग आपस में कहा-सुनी कर रहे थे, पर बाबाजी महाशय से कहने का किसी को साहस न हो रहा था। आखिर प्रेमदादा किसी कौशल से कमरे का दरवाजा खोल अन्दर गये। उस समय भी बाबाजी महाशय तोते को सीने पर रखे शयन कर रहे थे। प्रेमदादा धीरे-धीरे जा उनके श्रीचरण की सेवा करते-करते बोले, 'ठाकुर को कुछ भी भोग नहीं लगा है, किस प्रकार क्या करना है?' बाबाजी महाशय बोले 'इस सबकी तुम्हें चिन्ता करने की कोई जरूरत नहीं। जब जैसी आवश्यकता होगी, मैं कह दूँगा।' प्रेमदादा और कुछ न कह सके। बाबाजी महाशय के आदेश से बाहर आकर पूर्ववत् नाम करने लगे। बलराम आश्रम के बाहर रह बाबाजी महाशय के आदेश की प्रतीक्षा करने लगे।

अकस्मात् बाबाजी महाशय जलद गम्भीर स्वर से बोले, 'बलराम, ठाकुर के भोग के लिए कुछ चाहिए।' आज्ञा होते ही बलराम ने सारी सामग्री जुटा दी। फलफूल और मिठाई का भोग लगने के उपरान्त सब साथ महाप्रसाद पाने बैठे। ललितादासी सबको परिवेशन करने लगीं। सब नग्नावस्था में पाँच वर्ष के बालक के समान निर्विकार भाव से महाप्रसाद सेवन करने लगे। शेष रात्रि में हल्की सी वृष्टि होने लगी। बाबाजी महाशय बोले 'प्रेम समुद्र उमड़ पड़े। जगत् के ताप और तृष्णा का नाश हो। अरे, अमृत वृष्टि हो रही है! सब प्राण खोल कर नाम करो और दोनों भुजाएँ उठा कर नृत्य करो।' सब ऐसा करने लगे। कुछ देर नृत्य करने के पश्चात् बाबाजी महाशय तोते का मृत देह पूर्ववत् सीने से लगाये कमरे के भीतर जा शयन करने लगे। धीरे-धीरे सबेरा हो गया। बाबाजी महाशय उस समय भी पूर्ववत् शयन कर रहे थे परन्तु तोते का मृत देह अब नहीं था। सबने विस्मित भाव से जब इनसे पूछा, तो बोले, 'वह नित्य लीला में प्रवेश कर गया।' ललितादासी ने पूछा, 'उसकी स्थूल देह का क्या हुआ?' बाबाजी बोले, 'जब सशरीर स्वर्गारोहण हो सकता है, तब क्या सशरीर व्रजलीला में प्रवेश नहीं हो सकता?'

ललिता—कल ही मध्याह्न में तोता स्थूल शरीर परित्याग कर गम्य स्थान को चला गया था। केवल उसका पांच भौतिक देह अचैतन्य अवस्था में यहाँ पड़ा रह गया था। फिर उस अचल देह ने कैसे नित्य लीला में प्रवेश किया?

बाबाजी—उसका सूक्ष्म देह इसी स्थान पर रह कर शून्य मार्ग से इस विमल आनन्द का उपभोग कर रहा था। जैसे ही अमृत वृष्टि आरम्भ हुई वह फिर से स्थूल देह में प्रवेश कर गया और सशरीर नित्यलीला में प्रवेश कर निकुञ्ज में जुगल-नाम कीर्तन करने लगा।

सब लोग बाबाजी महाशय की बात सुन अवाक् रह गये और तोते पर इनकी अपूर्व कृपा की बात सोच-सोच कर विस्मय-सागर में खो गये। प्रभात होने पर नाम पूर्ववत् चलने लगा और आश्रमवासियों पर जल उड़ेलना भी उसी प्रकार होने लगा। पहले दिन की अपेक्षा आज की व्यवस्था अधिक कड़ी थी। बाबाजी महाशय एक-एक व्यक्ति को लिटा कर उसे सिर से पैर तक पैरों से दबा रहे थे और उस पर लगातार जल डाल रहे थे। अपूर्व शक्ति! देखने से लगता था कि इसी मुहूर्त उस व्यक्ति के प्राण निकल जायेंगे, पर जैसे ही उस व्यक्ति को पद-दलित कर छोड़ देते थे, वह दूना शक्ति-सम्पन्न हो नृत्य करने लगता था। साथियों में से सबको यह सौभाग्य नहीं मिला। केवल कुछ बालकों में उन्होंने इस प्रकार विशेष शक्ति-संचार किया।

उद्धवदास नामक बारह-तेरह वर्ष का स्थूलकाय गौरवर्ण और छोटे कद का एक बालक कुछ दिनों से आश्रम में वास कर रहा था। बालक भगवत्संसार में नाना प्रकार के सेवा कार्य बड़े उत्साह और कुशलता के साथ करता था, परन्तु उसे कुत्सित व्याधि थी। व्याधि दूर करने के लिए बहुत तरह के उपाय किये जा

चुके थे, परन्तु उसका कोई फल नहीं हुआ था। इसलिए आश्रम वासी बड़े दु:खी थे। इच्छामय प्रभु की न जाने क्या इच्छा थी, अकस्मात् बाबाजी महाशय उसे लिटा कर चरण से दबाने लगे और उस पर जल डालने लगे। बालक यद्यपि सबल और मोटा ताजा था, उनके विशाल शरीर के भार से कातर हो जोर-जोर से काँप रहा था। सबको भय लग रहा था कि कुछ देर और यही अवस्था रही तो उसके प्राण अवश्य निकल जायेंगे। पर बाबाजी महाशय का इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं। लगातार उस पर जल डाल रहे थे और सिर से पैर तक पाँव से कुचल रहे थे। कुछ देर बाद उसकी नाक से कुछ कफ बाहर निकला, जिससे सब लोगों का लक्ष्य उस ओर हो गया। उसी समय उसके नासिका रंध्र से एक बालिश्तभर का केंचुआ निकला। वह कुछ देर स्तम्भित भाव से वहाँ रहकर द्रुत गति से चला गया। सब यह देखकर आश्चर्यान्वित हुए। बाबाजी महाशय ने उद्धव को दो बार अपने पैरों से उल्टा-पुल्टा कर खड़ा कर दिया। वह परमानन्दपूर्वक नृत्य करने लगा। उसी दिन से उसकी कुत्सित व्याधि दूर हो गई। इसके अतिरिक्त बालक मानो भक्ति की मूर्ति हो गया।

समय ज्यों-ज्यों बीतता जा रहा है, संकीर्तन का वेग बढ़ता जा रहा है। आज केवल साथियों के ऊपर ही जल नहीं डाला जा रहा, बाबाजी महाशय बार-बार ठाकुर मन्दिर में जा ठाकुर जी के ऊपर भी जल डाल रहे हैं। ठाकुरजी पर इतना जल डाला जा रहा है कि नाली से होकर रास्ते में उसका स्रोत बराबर चल रहा है। बाबाजी महाशय इतने उन्मत्त हैं कि उनका लक्ष्य और किसी ओर नहीं है। उनके दोनों नेत्र रक्त वर्ण और डबडबाये हुए हैं। वे इतने निरपेक्ष भाव से व्यवहार कर रहे हैं कि उनके सम्मुख जाकर किसी को कुछ कहने का साहस नहीं हो रहा है। समय बहुत हो गया है। आश्रमवासियों की कौन कहे, ठाकुरजी तक को कुछ खाने को नहीं मिला है। किसी कार्यवश बाबाजी महाशय थोड़ी देर के लिए अन्दर गये तो साथी लोग आपस में कहने लगे, 'आज क्या होगा कुछ समझ में नहीं आता। इतना समय हो गया, न ठाकुर जी ने ही कुछ खाया और न बाबाजी महाशय ने। कुछ फल मूल भी होता तो ठाकुर जी को भोग लगा कर उन्हें खिला दिया जाता।' वे इतनी होशियारी से बात कर रहे थे कि साथियों में भी सब लोग न सुन पायें। खूब जोर-जोर से कीर्तन चल रहा था। खोल-करताल की ध्वनि से चारों दिशायें गूँज रही थीं। बाबाजी महाशय कमरे के भीतर नाना प्रकार से व्यस्त थे। वे अकस्मात् बाहर आकर बोले, 'ठाकुर-भोग और मेरे खाने-पीने के लिए नाम छोड़कर तुम्हें समालोचना करने की क्या आवश्यकता है?' इतना कह उन्होंने एक-एक व्यक्ति के सिर पर एक-एक घंटी जल उँड़ेलते हुए और घंटी की डंडी से उन पर प्रहार करते हुए उनमें फिर से शक्ति संचार किया और फिर अपने कार्य में लग गये। इस प्रकार चाहे किसी ने मुख से कुछ कहा या नहीं, उसके मन में जो कुछ भी भाव उत्पन्न हुआ, बाबाजी महाशय साफ-साफ कहने लगे। क्रमश: उनके इस जन्म और पूर्व जन्म की घटनाओं तक का वर्णन करते हुए उनके पापमोचन करने लगे। सब लोग यह देख कर स्तम्भित और विस्मित थे।

तीन बजे के लगभग उन्होंने बलराम को कुछ फल-मूल और मिष्ठान ले आने का आदेश किया। बलराम द्रुत गति से जाकर ले आये। ललिता दासी से ठाकुर जी को भोग लगाने के लिए कहा गया। वे भी बहुत शीघ्रता से ठाकुर को भोग लगा ठाकुरजी से प्रार्थना करने लगीं, "हे प्रभु, यह अधरामृत यदि बाबाजी महाशय ग्रहण करेंगे तो समझूँगी कि तुमने भी ग्रहण किया, नहीं तो तुम्हारी सेवा न करूँगी।" कैसा आश्चर्य! ठाकुर को भोग लगते ही बाबाजी महाशय ने स्वयं आकर अधरामृत ग्रहण किया और सबको बाँटने लगे। अन्न महाप्रसाद उस दिन किसी को न मिला। संध्या बीतने पर आश्रमवासियों को मतिभ्रम होने लगा। यद्यपि उन्हें पहले ही सावधान कर दिया गया था, वह ग्रहों के छल के प्रभाव से सारी स्मृति खो बैठे। उनके मन में धारणा हुई कि बाबाजी महाशय को मति-भ्रम हो गया है। जब तक आश्रमवासियों को वहाँ से हटा न दिया जायगा, वे स्थिर न हो सकेंगे। इस विचार से वह उन्हें बाबाजी महाशय से छिपकर एक-एक कर बाहर जाने का संकेत करने लगे। एक-एक दो-दो व्यक्ति बाहर

जाने लगे। बाबाजी महाशय उन्हें न देखकर 'मार-मार, भगा-भगा' कहते हुए एक बाँस हाथ में ले तेजी से चारों ओर अन्वेषण करने लगे। परन्तु अन्वेषण का कुछ फल न हुआ, क्योंकि ग्रहों ने उनकी मति ऐसी पलट दी थी कि वे आश्रम ही नहीं, उस मुहल्ले को छोड़ दूसरे मुहल्ले में चले गये। गली में पाँच-छह घर छोड़ दक्षिण की ओर पुलिस इन्सपेक्टर श्रीयुत बाबूनारायणचन्द्र मुखोपाध्याय का मकान था। उनके मकान के निकट गली में एक सरकारी लालटेन बड़े भीषण तेज से जल रही थी। बाबाजी महाशय ने मठ के सदर दरवाजे से जैसे ही उनकी ओर देखा वे बोले, 'कैसी भीषण माया है, दूर, दूर!' और इतना कह उन्होंने जोर से चीखते हुए एक चुल्लू जल उसकी ओर फेंका। निशाना खाली गया देख उन्होंने दूसरी बार फिर गली में आकर पहले की तरह चीखते हुए चुल्लू जल उस ओर फेंका। इस बार लालटेन का तेज कम हो गया। रात्रि में दो बजे लगभग फिर गली में जाकर एक चुल्लू जल लालटेन की ओर फेंका और लालटेन बुझ गई। तब नृत्य करते-करते गाने लगे।

योगमाया चिच्छक्ति, विशुद्ध सत्ताय परिणति,
ताँर शक्ति जीवे देखाईते।
शेइ रूपरतन भक्तगनेर गूढ़ धन,
प्रकट कैल नित्यलीला हैते।

गाते-गाते ललितादासी और कुसुमदासी को सदर दरवाजे के दोनों ओर खड़ा कर दिया। गली के एक सिरे से दूसरे सिरे तक एक के बाद एक सब आश्रमवासियों को लिटा दिया। लोगों को निकलने के लिए रास्ता न रहा। अकस्मात् एक लालटेन हाथ में लिये दो पुलिस चौकीदार और एक पुलिस दीवान आकर उपस्थित हुए। दीवान ने दोनों सिपाहियों से पूछा, 'यह क्या है?' सिपाहियों ने उत्तर दिया, 'बड़े बाबाजी महाशय कई दिन से दरवाजा बन्द कर कीर्तन कर रहे हैं। कपड़ा-अपड़ा सब जला दिया है। आज न जाने ये क्या कर रहे हैं?' पुलिसवाले एक बरामदे के ऊपर से होकर निकल गये। ललितादासी रोते-रोते कुसुमदासी से बोलीं, 'पुलिसवाले देख गये हैं, न जाने क्या करें?'

कुसुम—तो सबको भीतर न ले आया जाय।

ललिता—ना भाई, वह ठीक नहीं। इससे महत्कार्य में व्याघात होगा। देखो, कुंजदादा आदि दो-एक व्यक्तियों के चले जाने से बाबाजी महाशय जैसे पागल हो गये हैं। ये लोग भी चले जायेंगे तो बड़ा अनर्थ होगा।

कुसुम—तो हम लोग क्या करें?

ललिता—हमें केवल कातरभाव से निताइचाँद से प्रार्थना करनी चाहिए, वे मंगलमय हैं, अमंगल दूर करेंगे।

इतने में बाबाजी महाशय आ गये। कुसुमदासी बोलीं 'पुलिस देख गई है। उन्हें उठा कर भीतर क्यों न ले आयें?' जैसे ही उन्होंने यह कहा, बाबाजी महाशय बायें हाथ से उन्हें एक थप्पड़ मार 'माया! माया!' कहते हुए गली में उतरे। रात के चार बजे थे। ललितादासी, राधाविनोद, फणि आदि छह-सात व्यक्तियों को छोड़ और सब वहाँ से भाग गये थे। बाबाजी महाशय ने जब देखा कि सब चले गये हैं तो एक पाँच-छह हाथ का बाँस हाथ में ले पागल की तरह एक मोड़ से दूसरे मोड़ पर जा उन्हें ढूंढ़ने लगे और बाँस से गली के घरों के दरवाजे पीटने लगे। पड़ोसी लोग भाग-दौड़ करने लगे। इधर दीवान ने थाने जाकर खबर की। वहाँ से पुलिस के कई लोग भेज दिये गये। इच्छामय की क्या इच्छा थी, वे ही जानें। बाबाजी महाशय बाँस हाथ में लिए घूम रहे थे। अकस्मात् पुलिस के लोगों ने आकर पीछे से आवाज दी, 'यह क्या हो रहा है?' इन्होंने मुख फेर कर जैसे ही पुलिसवालों को देखा, 'माया-माया' चिल्लाते हुए उन्हें भगाने लगे। पुलिस के लोग इनका वेग देख प्राणों के भय से भागने लगे। उनमें से एक सिपाही बड़ा पहलवान था। वे उसे वहाँ रुका हुआ देख उस पर बाँस से प्रहार करने लगे। उसके हाथ की उँगली फट गई। इसलिए सब सिपाही द्रुत गति से भाग निकले। ये भी पागल की तरह इधर-उधर भागने लगे।

प्रभात हुआ। पुलिस के कर्मचारी यह समझ कर कि बाबाजी महाशय पागल हो गये हैं, उन्हें पकड़ कर

किसी प्रकार स्थिर करने की युक्ति करने लगे। सब-इन्सपेक्टर पूर्णबाबू ने कुछ सिपाहियों को ले रास्ते के दोनों ओर घेरा डाल दिया और उनके निकट जाने का प्रयत्न करने लगे। परन्तु वे किसी प्रकार सफल न हो रहे थे। बाबाजी महाशय सिपाहियों के एक-एक दल को प्रायः सौ-सौ हाथ दूर ठेल दे रहे थे। आठ बज गये, पर कुछ भी न हो सका। तब कौशली पूर्णबाबू पुलिस की पोशाक उतार कर उनके निकट गये। उन्हें देखते ही बाबाजी महाशय मृदु मुस्कान के साथ बोले, 'क्यों पूर्ण, किस लिए आये हो ?' पूर्णबाबू हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए साश्रुगद्‌गद कण्ठ से बोले, 'बाबा, आप अनुग्रह न करेंगे तो मेरी नौकरी चली जायेगी।'

बाबाजी—क्यों बाबा, क्या हुआ ?

पूर्ण—आपको एक बार थाने चलना होगा।

बाबाजी—अच्छी बात है। इसके लिए कातर क्यों हो ? मुझे पहले ही बता देते। यह लो, मुझे अपने हाथों से बाँधो।

इतना कह बाँस हाथ से छोड़कर दोनों हाथ बाँधे जाने के लिए जोड़ दिये। पुलिस कर्मचारियों ने इनका उस समय का भाव देख डरते-डरते और बड़े दुःख के साथ इनके हाथ बाँध दिये। पूर्णबाबू को बाबाजी महाशय ने आदेश किया, 'देख पूर्ण, मैं पैदल नहीं जाऊँगा। मुझे कन्धे पर ले चलना होगा, पर हर किसी के कन्धे पर भी नहीं जाऊँगा।' पूर्णबाबू हाथ जोड़ कर बोले, 'आप आज्ञा कीजिए, किसके कंधे पर जायेंगे।' तब ये 'गरुड़-गरुड़' कह पुकारने लगे। इनके इस प्रकार पुकारते ही गौर नाम का व्यक्ति, जिसके सिर पर इत्र उँड़ेला गया था, वहाँ आया और इन्हें प्रणाम किया। ये उसके कन्धे पर बैठ गये। वह प्रफुल्ल चित्त नाचते-नाचते इन्हें कंधे पर ले जाने लगा। जैसे ही झाँझपीटा गली पार कर कुंडाईबैंटसाही पहुँचा, वह मन में विचार करने लगा, 'कैसे आश्चर्य की बात है। इतना विशाल शरीर और पाँच वर्ष के शिशु से भी अधिक हल्का ! ऐसा कदापि नहीं हो सकता।' उसके मन में यह विचार आते ही इन्होंने विश्वम्भर मूर्ति धारण की। वह भार न सह सकने के कारण चिल्ला पड़ा 'मरा, मरा। रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए।' पीछे जो कई एक सिपाही थे, वे जब इन्हें पकड़ने लगे तो वे मृदु मुस्कान के साथ उनके कंधों पर लेट गये। गौर के कंधे पर केवल दोनों पैर रहे। बाकी देह का भार तीन सिपाहियों पर डाल दिया। चारों व्यक्ति बड़े कष्ट से इन्हें थाने ले गये। गौर के मुख से यह विस्मयजनक घटना सुन सब अवाक् रह गये।

बाबाजी महाशय को एक कमरे में रख उसका दरवाजा बन्द कर दिया गया। कमरा काफी बड़ा था और उसमें बड़े-बड़े जंगले थे। ये स्वेच्छापूर्वक उसमें घूम फिर रहे थे। इधर आश्रमवासी सब व्याकुल हो पड़े। तीन पुलिसवाले आकर कईयों को अपने साथ थाने ले गये। उनसे आमूल वृत्तान्त सुना तो कुछ पुलिस कर्मचारियों ने समझा कि बाबाजी महाशय पागल हो गये हैं। कुछ ने समझा कि ग्रहों के उत्पीड़न के कारण इन्हें बुद्धिभ्रम हो गया है और कुछ ने समझा ये महाभावावेश में हैं। जिसकी जैसी धारणा थी वह उसके अनुरूप प्रमाण संग्रह कर अपने मत का समर्थन करने लगा। इधर बाबाजी महाशय सबइन्सपेक्टर को सम्बोधन कर बोले, 'मैं लघुशंका करूँगा।' सबइन्सपेक्टर ने इस भय से उनके बाहर निकलने पर नानारूप असुविधा होगी, कहा, 'आप कमरे के भीतर ही कर लें।' वे कुछ मुस्कराते हुए बोले, 'जल चाहिए।' इन्सपेक्टर ने कहा 'मँगाये देता हूँ।'

बाबाजी—तुम्हें स्वयं लाना होगा। किसी और के लाने से न चलेगा।

इन्सपेक्टर—अच्छा, मैं आप ही लाये देता हूँ।

इतना कह इन्सपेक्टर साहब जल लेने चले गये। इधर बाबाजी महाशय कमरे के जिस ओर नाला था उसके दूसरी ओर लघुशंका करने बैठ गये। इन्सपेक्टर साहब जल हाथमें लिये खड़े थे और विस्मित भाव से देख रहे थे कि कमरे का इतना बड़ा फर्श भर गया है और पेशाब नाली में से हो बाहर जा रहा है। प्रायः आधा घंटा हो गया पेशाब करते-करते, फिर भी निवृत्ति नहीं हुई। बीच-बीच में वे हँसते हुए इन्सपेक्टर साहब की ओर देख लेते। इस अपूर्व कौतुक को देखने के लिए जंगले के निकट बहुत से लोग इकट्ठा हो गये, परन्तु उनका ध्यान किसी ओर नहीं जा रहा था। थोड़ी

देर बाद इन्सपेक्टर के मन में जाने क्या विचार आया, वे हाथ जोड़ कर बोले, 'प्रभु, क्षमा कीजिए, थाना डूब जायगा। यह लीजिए मैं जल ले आया हूँ।' बाबाजी महाशय उच्च हास्य करते हुए बोले, 'बाबा, डर गये? अच्छा अब जल दो।' इतना कह जंगले में से जल ले लिया।

बाबाजी महाशय थाने में हैं, यह सुन कर पुरीवासी सब व्यतिव्यस्त हो गये और सोचने लगे कि किस प्रकार उन्हें थाने से निकाला जाय। थाने में पूछा तो उन्होंने उपयुक्त जमानत चाही। केन्द्रापाड़ा के जमींदार बलराम भ्रमरवर बाबू ने जमानत लेकर उन्हें छुड़वा दिया।

इधर इनके कई साथी भक्तों ने परामर्श कर निश्चय किया कि व्रजलीला उद्दीपक किसी प्रकार की बातचीत या व्यवहार न हो, इस सम्बन्ध में सावधान रहा जाय। ललिता दासी और कुसुम मंजरी दासी को दूसरे स्थान पर भेज दिया जाय, जिससे उन्हें देख इन्हें व्रजलीला का उद्दीपन न हो। ललितादासी से जब यह बात कही गई है, तो उन्होंने बहुत दु:खी होकर कहा, 'अच्छा भाई, हमारे दूर रहने से ही यदि वे स्वस्थ हों और तुम्हें आनन्द हो तो ठीक है। हम चले।' इतना कह वे दोनों मठ से बाहर हो गईं। प्यारी बाबू और जगदीश बाबू उन्हें अपने घर ले गये। बाबाजी महाशय आश्रम में आ गये।

सर्वत्र प्रचार हो गया कि बाबाजी महाशय का दिमाग खराब हो गया है। वृन्दावन और कलकत्ते तार भेज दिये गये। श्रीधाम वृन्दावन से गोविन्द बाबा, नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी और किशोरी दासी सखी और कलकत्ते से रामदादा, जोगेनबाबू, जतीनबाबू, पुलिनबाबू आदि कई एक व्यक्ति आ पहुँचे। एक-एक व्यक्ति जब आकर बाबाजी महाशय को दण्डवत् प्रणाम कर रहे थे, वे उन्हें उठाकर आलिंगन द्वारा कृतार्थ करते हुए साश्रुगद्गद कंठ से कह रहे थे, 'तुम लोग इतने दिनों में आये हो। पहले से ही होते तो इतनी दुर्दशा क्यों होती?' इस प्रकार के नाना रूप मृदु वाक्यों से उनकी मनस्तुष्टि करने लगे। अपूर्व कौतुक होने लगा। जो लोग इन्हें पागल समझ इनके पास आ रहे थे उनके साथ इस प्रकार का व्यवहार कर रहे थे कि वे चकित रह जाते थे। उन्हें पागलपन का एक भी लक्षण नहीं दीख रहा था। नानारूप ऐश्वर्य माधुर्यमयी लीला का प्रकाश कर उनके मन में संशय उत्पन्न करते थे, और जो महापुरुष समझ कर उनके पास आ रहे थे उनके सामने पागल जैसा व्यवहार कर रहे थे। इसप्रकार लोग एक भीषण परीक्षा की तरङ्ग में झोके खा रहे थे। जब कोई बहुत जिद कर कुछ पूछता था तो उसे हँसी में उड़ा देते थे। एक दिन नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी कई भक्तों से परामर्श कर और शास्त्र प्रमाणों के अनुसार यह स्थिर कर कि बाबाजी महाशय पागल नहीं हैं अपितु दिव्योन्माद और महाभाव की अवस्था में हैं, इनके पास आये। उनके आते ही ये मृदु मुस्कान के साथ हाथ में ताली बजा-बजाकर कहने लगे:-

"योगमाया चिच्छक्ति, विशुद्ध सत्ताय परिणति
तार शक्ति जीवे देखाईते।
शेइ रूपरतन भक्तगनेर गूढ़ धन,
प्रकट कैल नित्यलीला हैते॥

नित्यस्वरूप! मैं पागल हो गया हूँ।" इतना कह नृत्य करने लगे। सब देख सुन कर अवाक् रह गये।

एक दिन कई व्यक्ति इनके पास आये और इन्हें पागल समझ एक पतली चादर से इनके दोनों हाथ उल्टे कर पीछे बाँध दिये। हाथ इस प्रकार बाँधे कि बाबाजी महाशय किसी भी कौशल से उन्हें स्वयं न खोल सकें। कमरे का दरवाजा बन्द था। डेढ़ दो घण्टे बाद दरवाजा खोल कर देखा कि बाबाजी महाशय उसमें नहीं हैं। सब लोग दौड़-भाग कर उन्हें ढूंढ़ने लगे। पन्द्रह मिनट बाद देखा कि वे डेढ़ फुट लम्बे और एक फुट चौड़े एक आले में बैठे हँस रहे हैं। सब देख कर अवाक्! उसमें बाबाजी महाशय का बैठना तो दूर, एक पाँच वर्ष का बालक भी नहीं बैठ सकता था। पर ये सहज भाव से उसमें बैठे थे। सबको देख कूद कर नीचे आ गये। हाथ का बन्धन खुला हुआ था। चादर, जिसमें पूर्ववत् गाँठ बँधी थीं, एक ओर पड़ी थी। दोनों विस्मय जनक घटनाओं को देख लोग सोचने लगे-'हाय, हमने बिना जाने समझे इनके हाथ बाँध दिये। क्या कोई पागल ऐसा कर सकता है? निश्चय ही ये महापुरुष हमारी परीक्षा ले रहे हैं।' यह जान कर ही मानो अन्तर्यामी

बाबाजी महाशय शौच के बहाने पाखाने में घुस गये और मल-मूत्र शरीर में मलने लगे। तब तुरन्त ही सब लोग उन्हें पागल समझ पकड़ कर बाहर ले आये और स्नान कराकर शुद्ध किया। इस प्रकार प्रतिमुहूर्त ऐसी लीला करने लगे कि साथी लोग सब बड़े असमञ्जस में पड़ गये। एक दिन कमरे में शौचकर मैला सारे शरीर में मल लिया। अकस्मात् दरवाजा गोविन्ददादा ने खोला और देखते ही बोले, 'यह क्या! विष्ठा शरीर में क्यों लपेटी है? आपको कैसे स्पर्श करूँ?' यह सुन वे जैसे चकित हो कर बोले, 'अरे गोविन्द, विष्ठा कहाँ, यह चन्दन है। देख।' इतना कह जैसे ही गोविन्ददादा के सामने खड़े हुए अपूर्व कपूर-मिश्रित चन्दन-गन्ध चारों ओर फैल गई।

एक दिन गोविन्ददादा के साथ बालक के समान नानारूप बाल-हठ कर रहे थे। स्नान के पूर्व सिर में ठण्डे तेल की मालिश हो रही थी। वे जिद कर कहने लगे, 'मैं स्नान करूँगा।' गोविन्ददादा ने बड़े कौशल से स्नान का जल भोजन के कमरे में जहाँ ये बैठे थे, मँगा लिया। स्नान करते-करते ये उठ कर जाने लगे। गोविन्ददादा ने इनका एक चरण पकड़ लिया और ये सहसा पक्के फर्श पर गिर पड़े। सिर में चोट आ गई और कुछ रक्त भी निकला। अपनी असावधानी के कारण सिर में आघात होने से गोविन्ददादा को बहुत दु:ख हुआ देख ये बोले, 'हाँ भाई गोविन्द, मुझे खूब अच्छी तरह स्नान करा दे।' स्नान के पश्चात् बोले, 'मैं तेरे हाथ से खाऊँगा, आज मेरी दूसरे के हाथ से खाने की इच्छा नहीं है।' गोविन्ददादा उनके व्यवहार से विस्मित हो प्रसन्न मन से सेवा करने लगे।

एक दिन कुछ सुष्ठु भाव से इन्होंने ललितादासी आदि को देखने की इच्छा प्रकट की। एक व्यक्ति जाकर उन्हें ले आया। उनके आते ही उनसे बोले, 'देखो, मैं ठीक हो गया हूँ। तुम लोग ठाकुर के आगे सुन्दर नृत्य के साथ नाम करो।' वे ऐसा ही करने लगीं। क्रमशः कीर्तन खूब जम गया। तब बाबाजी महाशय भी आकर योग देने लगे। वे जिस भाव से नृत्य-कीर्तन कर रहे थे उसे देख साथियों के मन में आशंका हुई। उन्होंने कौशल पूर्वक ललितादासी आदि को स्थानान्तरित कर किसीप्रकार कीर्तन बन्द किया। बाबाजी महाशय पहले कुछ व्यतिव्यस्त हो उन्हें ढूँढ़ने लगे। विजय दादा आकर बोले, 'वे लोग भाग गई हैं। उनकी याद करने से कोई लाभ नहीं।' बाबाजी महाशय मृदुभाव से हँसकर चुप रह गये। इस प्रकार की घटनाएँ प्राय: होतीं। इनके जिस व्यवहार से किसी को दु:ख होता, उसे कभी न करते।

इस प्रकार कई दिन बीत गये। राम दादा, पुलिन दादा इत्यादि सबने निश्चय किया कि बाबाजी महाशय को एक बार कलकत्ते ले जाया जाय, क्योंकि पुरी की जैसी अवस्था है, उसमें इनका मन स्थिर होने के बजाय और खराब ही हो सकता है। इन्होंने मिलकर बाबाजी महाशय से पूछा तो वे बोले, 'मुझे कोई आपत्ति नहीं।' सुनते ही सब लोग प्रसन्न होकर कलकत्ते जाने की तैयारी करने लगे। पहले तो सब लोगों को शंका हुई कि न जाने गाड़ी में बैठकर फिर इन्हें क्या विचार आये और ये किस प्रकार का पागलपन करने लगें, परन्तु ऐसी कोई असुविधा न हुई। गाड़ी में चढ़ते ही 'योगमाया चिच्छक्ति, विशुद्ध सत्ताय परिणति, तार शक्ति जीवे देखाइते। शेइ रूपरतन भक्तगणेर गूढ़धन, प्रकट कैले नित्यलीला हैत॥' इस पद को गा-गाकर नृत्य करने लगे। पुरी के स्टेशन मास्टर से कह कर गाड़ी के दरवाजे का ताला बन्द कर दिया गया। पुरीवासी अनेक भक्त बाबाजी महाशय को देखने गये थे। यथासमय गाड़ी ने सीटी दी। ये लोग भी सब 'गौरहरि बोल' की ध्वनि करने लगे। गाड़ी चलते-चलते ये बलराम बाबू से बोले 'देख बलराम, एक सप्ताह के भीतर यहाँ से नानारूप पदार्थ तैयार करा कर ले जाना और कोणार्क तीर्थ में नव-ग्रहों की पूजा कराना। पदार्थ सौ रुपये से कम के न हों।' बलरामबाबू ने 'जो आज्ञा' कह कर प्रणाम किया। गाड़ी द्रुत गति से चलने लगी। पुरीवासी भक्त दु:खित हो अपने-अपने घर लौट आये।

कलकत्ते : केदारबाबू के बगीचे में

यथानिर्दिष्ट समय गाड़ी हावड़ा पहुँची। साथी लोग गाड़ी का दरवाजा खुलवाने का प्रयत्न कर रहे थे। इतने में बाबाजी महाशय खिड़की में से बाहर

निकल आये। साथियों की असावधानी के कारण उनके सिर में थोड़ी चोट आ गई और रक्त बहने लगा। सब बड़े मर्माहत हुए। बड़ी सावधानी से उन्हें हावड़ा पुल के पार ले आये। गंगा के घाट पर एक नाई को देखकर उन्हें धुन सवार हुई और बोले, 'मैं क्षौर कराऊँगा।' नाई को उन्हें देख न जाने क्या हो गया। वह प्रेम-गद्गद कंठ से बोला, 'बाबा, मैं जिस उस्तरे से सब लोगों का सिर मूंड़ता हूँ, उसे आपके सिर में कैसे लगाऊँ? आप कृपा करें, आपके आशीर्वाद से यदि फिर कभी आपके दर्शन हुए और मेरे भाग्य में यह सेवा हुई तो आपका क्षौर करूँगा।' नाई की बात सुन साथियों को बहुत आनन्द हुआ, क्योंकि उन्हें भय था कि ऐसी अवस्था में क्षौर कराने से यदि इन्होंने कहीं सिर हिला दिया तो बड़ी मुश्किल होगी। पर वे नाई की बात टालते हुए बोले, 'मैं जगत् में सबकी अपेक्षा हीन हूँ, मेरा क्षौर करना ही होगा।' वह उनके साथियों से परामर्श कर एक ताड़ के पत्ते से क्षौरकर्म की नकल करने लगा। थोड़ी देर बाद उन्होंने पूछा, 'क्यों रे, मेरे बाल कहाँ हैं?' नाई बोला, 'आपके अप्राकृत बाल अप्राकृत राज्य में चले गये।' वे उन लोगों का भाव समझ कुछ मुस्करा दिये और पुल के घाट पर स्नान करने लगे। उन्हें गंगा में यमुना का भ्रम हो आया। बार-बार गोता लगाते और अश्रुगद्गद कंठ से यमुना का स्तवन करते। थोड़ी देर बाद अकस्मात् एक व्यक्ति 'माँ गंगे! गतिदायिनी, भागीरथी, पतित पावनी, दया कर माँ! सद्यः पातकसंहंत्री, सद्यो दुःख विनाशिनी। सुखदा, मोक्षदा, गंगा गंगैव परमागतिः' कहते हुए स्तव करने लगा। सुनते ही वे चौंक कर चारों ओर देखने लगे। उनकी अवस्था देख लगता था जैसे वे एकदम किसी एक देश से दूसरे देश में आ गये हों। तब वे गंगा स्तव के साथ बार-बार गोते लगाने लगे।

इस प्रकार बहुत देर तक गंगा में स्नान कर सबके अनुरोध से जल से बाहर निकले। घोड़ागाड़ी ठीक कर ली गई थी। उसमें बैठ वराह-नगर में श्रीयुक्त कामाख्यादास बाबाजी महाशय के स्थान पर पहुँचे। साथ में रामदादा, गोविन्ददादा, नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी और पुलिनबाबू आदि बहुत से लोग थे। कामाख्यादास बाबाजी महाशय बड़े उत्साह के साथ सबकी देखभाल करने लगे। पर आत्मानन्द बाबाजी महाशय का ध्यान अपने में ही केन्द्रित था। कभी तो बड़ी अच्छी तरह लोगों की मान मर्यादा के अनुसार उनसे बात करते और उनके प्रति व्यवहार करते और कभी बिलकुल निरपेक्ष हो उदास भाव अवलम्बन कर निष्किञ्चन हो जाते। कोई कपड़ा लाकर पहना देता तो आपत्ति न करते, पर थोड़ी देर बाद ही उसे किसी को देकर स्वयं नग्न हो जाते। सदा उदासीन भाव से रहते। कोई कुछ पूछता तो चार-पाँच मिनट बाद कुछ उत्तर दे देते। महाप्रसाद सेवन के समय भी बालक के समान व्यवहार करते। कुछ थोड़ा-सा खाकर ही अनिच्छा प्रगट करने लगते। संगीगण कई प्रकार से बहलाफुसलाकर महाप्रसाद खिलाते।

इस प्रकार कुछ दिन कामाख्यादास बाबाजी के यहाँ रह कर उस स्थान के निकट ही केदारनाथ महाशय की 'बागान बाड़ी' में गये। बगीचे में प्रवेश करते ही उसमें जितने भी पौधे बँधे हुए थे उन्हें खोलकर आनन्द से नृत्य करने लगे। बाग की शोभा देख सब लोग बहुत आनन्दित हुए। बाग में दो कोठियाँ थीं, जिनमें-से एक बड़ी थी, एक कुछ छोटी। एक तालाब भी था। तालाब में एक घाट था। बाबाजी महाशय ने दो और घाट बनवाये। जिस ओर बगीचा था उस ओर के घाट में राधाकुण्ड और उसके अगल-बगल ललिताकुण्ड और श्यामकुण्ड की कल्पनाकर तदनुरूप व्यवहार करने लगे। सिंथि के नीलरतनदादा को भार सौंपा और आदेश किया कि मिट्टी की हँडिया में रसोई पकानी होगी। उसे रात्रि में राधाकुण्ड के जल में डुबोकर रखना होगा और दूसरे दिन उसे माँजकर फिर से रसोई करनी होगी। मिट्टी के बर्तन में ही भोग लगेगा और मिट्टी के बर्तन में ही सब लोग खायेंगे-पियेंगे। किसी प्रकार की धातु का पात्र व्यवहार में न लाया जायेगा। ऐसा ही किया जाने लगा। एक दिन कामाख्यादास बाबाजी महाशय बोले, 'जिस मिट्टी के बर्तन में एक बार भोग लग गया है क्या उसमें दूसरी बार भी भोग लग सकता है?'

बाबाजी—क्यों नहीं? यदि रज में ही विश्वास न हुआ तो उपासना कैसे होगी?

कामाख्या—रज तो जहाँ-तहाँ नहीं होती। व्रजधाम में रज की महिमा और रजपात्र का गौरव अवश्य है, पर सर्वत्र तो ऐसा नहीं है।

बाबाजी—क्यों? तुम्हीं लोग तो सदा पाठ करते हो 'गौर-मंडल भूमि जेबा जाने चिंतामणि तार हय व्रजभूमे वास।' गौर-मंडल, व्रज-मंडल अभिन्न हैं-ये सब बातें क्या केवल कंठस्थ कर रखने के लिए हैं, या व्यवहार करने के लिए? निरपेक्ष भाव से इनका अवलम्बन किये बिना प्रकृत धर्मपथ पर अग्रसर नहीं हुआ जा सकता। लोकापेक्षा के कारण हम प्रकृत धर्मपथ भूल बैठे हैं। कृष्ण और जगत् दोनों को एक साथ रखने से काम नहीं चल सकता।

कामाख्यादास बाबाजी का और कुछ कहने का साहस न हुआ। बाबाजी महाशय सदा ही निष्कपट व्यवहार करने का उपदेश देते और स्वयं भी इसी प्रकार का व्यवहार करते। गोविंददादा और रामदादा यथासमय उन्हें स्नान-आहार आदि कराने के प्रयत्न में लगे रहते। गोविंददादा और नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी को दिन-रात बाबाजी महाशय को स्वस्थ करने की चिन्ता लगी रहती। जब कभी वे कोई मनमाना ऐसा व्यवहार करते जो उनके शरीर के लिए अहितकर होता तो ये प्राणपण से बाधा देते। इसलिए बाबाजी महाशय ने बगीचे में उनका प्रवेश निषेध कर दिया और सबको सावधान कर दिया कि जो भी उन्हें बगीचे में ले आयेगा उससे मेरा कोई सम्बन्ध न रहेगा और मैं उसका मुख न देखूँगा। इसलिए सब लोग उन्हें बगीचे के भीतर लाने से डरते थे।

जो लोग बगीचे में बाबाजी महाशय के दर्शन करने आते उनके लिए आज्ञा थी कि ऐश्वर्य की कोई वस्तु साथ न लायें। यदि भूल से कोई घड़ी चेन या हाथ और गले के कीमती बटन लगाकर आता जबतक उसे राधाकुण्ड के जल में फेंक न देते तब तक चैन न पाते। बहुत से लोग कठिन व्याधियों के कारण गले या हाथ में ताबीज पहने हुए आते। बाबाजी महाशय उन्हें देखते ही उनके ताबीज जल में फेंक देने का आदेश करते। एक दिन एक दमे के रोगी का ताबीज फेंका जाने लगा तब वह बोला, 'ताबीज उतारते ही मेरा दमा बढ़ जाता है। क्या करूँ।' इन्होंने कहा, 'कोई चिन्ता की बात नहीं। राधाकुण्ड और श्यामकुण्ड के जल में अच्छी तरह गोते लगा लेना। तुम्हारी सारी व्याधि दूर हो जायेगी।' उस वृद्ध पुरुष के जल में गोते लगाते ही उसका सारा रोग दूर हो गया। इस प्रकार जिसने भी विश्वास किया उसने फल पाया; जिसने नहीं किया वह वंचित रहा।

एक दिन एक व्यक्ति कई मोटे कागज लेकर आया, जिन पर लिखा था-'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।' 'श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द। हरे कृष्ण हरे राम श्रीराधे गोविन्द॥' 'प्राणगौर नित्यानन्द' 'भज निताइ गौर राधेश्याम। जप हरे कृष्ण हरे राम॥' जैसे ही उसने इन्हें बाबाजी महाशय के सामने रखा, उन्होंने इन्हें तुरन्त राधाकुण्ड में फेंक देने का आदेश किया। भक्त ने कुछ अनमने भाव से कागजों को जल में फेंक दिया। इच्छामय प्रभु की क्या इच्छा थी वही जानें, कागज जल में डूब गये। महात्मा अवधूत ज्ञानानन्द स्वामी के शिष्य श्रीयुक्त गोविन्दानन्द परिव्राजक महाशय वहाँ उपस्थित थे। वे बोले, 'बाबा, आप सदा नाम के माहात्म्य का कीर्तन किया करते हैं। आज यह कैसा नाम का अपमान किया? सब नाम डूब गये।' 'बाबाजी महाशय मृदु मुस्कान के साथ बोले, 'गोविन्द, नाम यदि नित्य चिन्मय है, तो उसका कभी विनाश नहीं हो सकता। वह क्या कभी डूब सकता है?'

गोविन्द—हमने अपनी आँखों से देखा डूबते हुए।

बाबाजी—वह सिर्फ तुम्हारी परीक्षा है। नाम की शक्ति कहाँ जा सकती है, किसी को विश्वास हो या न हो।

यह सुनकर सब चकित रह गये। दूसरे दिन आठ बजे के लगभग नाम के कागज घाट पर आकर लग गये। बाबाजी महाशय जहाँ बैठे थे वहाँ से कागज दीख जाने की कोई सम्भावना न थी, पर वे मुस्कराते हुए बोले, 'गोविन्द, जरा राधाकुण्ड जाकर देखो कि नाम नित्य, सत्य, अखण्ड और अव्यय हैं या नहीं, और नाम के सब कागजों को यहाँ ले आओ।' सुनते ही गोविन्दानन्द और बाकी सब लोग भागकर राधाकुण्ड के किनारे गये और नाम के कागजों को ऊपर तैरते

देख अवाक् रह गये। जो भक्त इन्हें लाया था उसने परमानन्दपूर्वक इन्हें उठा लिया और कहने लगा 'आश्चर्य! दिनभर जल में डूबे रहकर इन्हें नष्ट हो जाना चाहिए था। ये तो और भी अधिक उज्ज्वल हो गये हैं। हाय, हम कैसे अविश्वासी हैं। हमने बाबाजी महाशय की बात का किंचिन्मात्र विश्वास नहीं किया, तब तो यह परिणाम हुआ। यदि विश्वास करते तो न जाने क्या फल पाते।' इतना कह वह रोते-रोते बाबाजी महाशय के निकट आया और नाम के कागज उनके हाथ पर रख दिये। सब लोग अपने अविश्वास के कारण अनुताप करने लगे।

बाबाजी महाशय नाम के कागज लेकर घर के बाहर और भीतर दीवार पर लगाने लगे। किसी ने आकर पूछा कि गोविन्ददादा और नित्यस्वरूप क्या करें, तो इन्होंने उत्तर दिया कि वे श्रीधाम वृन्दावन चले जायें। वे इन्हें प्रणामकर श्रीधाम वृन्दावन चले गये।

एक दिन सातगाछिया के श्रीकुञ्जलाल गोस्वामी बाबाजी महाशय के दर्शन करने आये। उन्होंने जैसे ही प्रणाम किया, वे बोले, 'कुञ्ज, कुछ गाय के शुद्ध घी की बड़ी जरूरत है। क्या करोगे बताओ?'

कुञ्ज—यशोहर में मक्खन मिलता है। उसे लेकर घी निकाला जाय तो?

बाबाजी—वही ठीक होगा। तुम शीघ्र जाओ, जहाँ शुद्ध मक्खन मिलता हो वहाँ से दस-बारह सेर मक्खन ले आओ। कल अष्टप्रहर कीर्तन आरम्भ होगा।

कुञ्ज गोस्वामी हाथ जोड़कर बोले, 'जो आज्ञा!' और दण्डवत् प्रणामकर हुगली निवासी श्रीनवगोपालदे के खर्चे से पन्द्रह सेर मक्खन ले आये। बाबाजी महाशय ने बहुत सन्तुष्ट हो घी निकालने का आदेश किया। इधर वे अपनी मनोवृत्ति के अनुसार अष्ट प्रहर कीर्तन की व्यवस्था करने लगे। दूसरे दिन सबेरा होते-होते बड़े कमरे में नाम होने लगा। अपूर्व नाम की ध्वनि से लोग मुग्ध होने लगे। क्रमश: लोगों की संख्या बढ़ती गई। कमरे के फर्श पर घी उड़ेला जा रहा था। एक ओर घी का दीपक जल रहा था। बीच में तुलसी-वृक्ष और कई चित्रपट रखे थे। तुलसी-परिक्रमा के साथ नाम हो रहा था। फर्श पर इतनी फिसलन हो गई थी कि थोड़ा सा भी तेज चलने से अपने को साधना कठिन था। बाबाजी महाशय किसी-किसी भाग्यवान भक्त को फर्श पर लिटाकर चरण से दबाने लगे। कमरे का दरवाजा और खिड़कियाँ बन्द थीं। चारों ओर दीवार पर बड़े-बड़े अक्षरों में नानारूप नाम लिखे थे। दीपक की कालिमा और घी के छीटों से नाम इतने ढक गये थे कि उन्हें पढ़ना कठिन था। गोविन्ददादा बोले, 'अब देखेंगे कि नाम किस प्रकार सर्वशक्तिमान और नित्य है'। उन्होंने मन में सोचा-यह कोई जल से नाम के कागज निकाल लेने की बात थोड़े ही है। यहाँ तो हाथ से लिखे हुए नाम के ऊपर घी से सनी कालिमा लगी है। गोविन्ददादा जब मन ही मन यह विचार कर रहे थे, बाबाजी महाशय मुस्कराते हुए बोले, 'क्यों रे गोविन्द! क्या सोच रहा है? नाम के ऊपर कालौंस लगी और वह नहीं मिट सकती। इसलिए नाम सर्वशक्तिमान नहीं है। यही न? यह तेरी भूल है। जो नित्य है, वह चिरकाल नित्य है। जो सर्वशक्तिमान है, उसकी शक्ति में क्या किसी प्रकार का अभाव हो सकता है? नाम की सर्व-शक्तिमत्ता और त्रिकालसत्यता दिखाने के लिए ही निताइचाँद यह सब कुछ कर रहे हैं।' इतना कह आरोपित राधाकुण्ड का जल लेकर एक-एक नाम पर छींटा मारने लगे। एक दो बार छींटा देने से नाम पूर्वापेक्षा उज्ज्वल दीखने लगा। यह देख सब लोग अवाक् रह गये। तब गोविन्दानन्द को लक्ष्यकर कहने लगे, 'क्यों भाई, नाम सर्वशक्तिमान है, यह बात समझ में आई? हाय रे कलिहत अविश्वासी जीव! साक्षात् वस्तु को भी अविश्वास के अन्धकार में फेंककर मोहमय संसार में वृथा भ्रमण करते हुए तनिक भी कुण्ठित नहीं होता। नित्य वस्तु कभी ढकी या छिपाई नहीं जा सकती, यह धारणा स्थाई क्यों नहीं हो पाती, निताइ जानें।' यह सुन एक सज्जन बोले, 'हमने तो प्रत्यक्ष ही नाम को घृतमिश्रित कालिमा से ढका हुआ देखा। कैसे मानें कि ये भ्रम था।'

बाबाजी—अच्छा यदि घृत-मिश्रित कालिमा ने उसे ढक रखा था तो वह एकदम छूट कैसे गई?

सज्जन—हमने देखा कि वह आपकी शक्ति के प्रभाव से छूट गई।

बाबाजी—यह तुम्हारा भ्रम है। स्वयं प्रकाश वस्तु को कोई और प्रकाशित कर सकता है?

सज्जन—इससे तो और भी उलझाव पैदा होता दीखता है। इसका यथार्थ सिद्धान्त क्या है, कृपा कर समझा दीजिए।

बाबाजी—चैत्रमास में एक दिन बारह बजे आकाश में बादल आये। अकस्मात् चारों ओर अन्धकार छाया देख कोई सोचने लगा सन्ध्या हो गई, कोई कहने लगा सूर्य को बादलों ने ढक लिया, और कोई कहने लगा आज सूर्य के तेज को बादलों ने नष्ट कर दिया। जिसकी जैसी धारणा थी वह वैसा ही अनुभव करता था और कहता था। एक विचारवान् व्यक्ति विचार करने लगा, प्रखर-किरण सूर्य पृथ्वी से बड़ा है, एक क्षुद्र मेघ उसे कैसे आच्छादित कर सकता है? इसलिए अवश्य इस मेघ ने हमारे दृष्टि पथ को अवरोध कर रखा है। सूर्य जैसा है वैसा ही है। नाम को ऐसा ही समझना चाहिए। कालिमा ने हमारे दृष्टि-पथ को ऐसा अवरोध कर रखा था कि हम किसी प्रकार नाम के वर्ण या रूप का प्रत्यक्ष नहीं कर पाते थे। स्वप्रकाश नित्य वस्तु का यदि कोई आच्छादन कर दे या उसका नाश कर दे तो उसका नित्यत्व कहाँ रहा? भगवान् जिस प्रकार निरुपाधि, निर्विकार, नित्य सत्य वस्तु हैं, उनके नाम और धाम भी वैसे ही हैं। विकार नाम, धाम और स्वरूप को स्पर्श नहीं कर सकता, यह सदा याद रखना चाहिए। इस प्रकार नानारूप तत्वोपदेश द्वारा सबका सन्देह-भंजन कर फिर नाम-कीर्तन में योग देने लगे।

थोड़ी देर बाद कामाख्यादास बाबाजी महाशय आकर कहने लगे-'इस महायज्ञ में सब लोग उपस्थित हैं, केवल रामदादा बाहर हैं, आप अनुमति दें तो उन्हें बुला लाऊँ।'

बाबाजी—वह कहाँ है?

कामाख्या-इस बगीचे के दरवाजे पर बैठे नाम कर रहे हैं। आपका आदेश नहीं है, इसलिए यहाँ नहीं आ रहे हैं।

बाबाजी—वह बड़ा स्वतन्त्र हैं। मुझे पागल समझ मेरे कार्य में बाधा डालता है। उसे लाने की जरूरत नहीं।

कामाख्या—प्रेम के पात्र को ऐश्वर्य के नेत्रों से देखने से प्रेम नहीं रहता। उन लोगों का प्रेम शुद्ध है। वे आपके शरीर पर कोई कष्ट देख सहन नहीं कर सकते। इसलिए स्नेह के वश ही आपके कार्य में बाधा देने की इच्छा करते हैं। जो आपके लिए प्राण भी दे सकते हैं, उनमें स्वतन्त्रता कैसे हो सकती है?

बाबाजी महाशय और कोई उत्तर न दे सके और उन्होंने रामदादा को भीतर ले आने के लिए कहा। कामाख्यादास प्रसन्न हो रामदादा को जाकर ले आये। रामदादा ने जैसे ही दण्डवत् की बाबाजी महाशय उन्हें उठाकर प्रेमालिंगनपूर्वक अपने अश्रुजल से सिक्त करने लगे।

बाबाजी महाशय कभी बिलकुल नग्न, कभी धोती-कुर्ता पहने और कभी डोर-कौपीन और बहिर्वास पहने बैठे रहते। अकस्मात् न जाने क्या मन में आया, प्रसादी डोर-कौपीन और बहिर्वास मँगाकर रामदादा से बोले, 'राम, यह लो, आज तुम्हारा भेख हो गया (आज से तुम वैष्णव संन्यासी हो गये)।' इतना कह उन्हें डोर-कौपीन पहना दिया और कान में वैष्णव-संन्यास का मंत्र दे दिया। साथ ही तुलसी का गमला और पीच की लाठी हाथ में देकर बोले, 'जाओ जितने परिचित लोग हैं सबसे साक्षात् कर आओ।' रामदादा ने गुरुआज्ञा का पालन किया और यथासमय आदेशानुसार नामकीर्तन में योग देने लगे। परमानन्द-पूर्वक नाम चलने लगा। बीच में जो नये भक्त आते उन्हें बाबाजी महाशय राधाकुण्ड में स्नान करा या राधाकुण्ड का जल स्पर्श करा, जिस कमरे में नाम हो रहा था, उसमें लिटाकर और चरणों से दलित कर नाम-कीर्तन में प्रवेश कराने लगे।

इस प्रकार आनन्द में रात कब बीत गई, किसी को पता न चला। प्रभात में नाम समाप्त कर एक साथी को प्रसन्न कुमार रायबहादुर के यहाँ से पंचतत्व, निताइगौर, राधागोविन्द, हरपार्वती, गौरगोविन्द इत्यादि के चित्रपट ले आने को कहा और स्वयं मालसा भोग की तैयारी करने लगे। चित्रपट आ जाने पर भोग लगाकर और महाप्रसाद ग्रहण कर विश्राम करने लगे।

केदारबाबू के बगीचे में निवास करते समय कोई भी उनसे बिना पूछे कुछ न कर सकता, यहाँ तक कि क्या रसोई बनेगी और कितने परिमाण में बनेगी यह भी उनसे पूछा जाता तो सात-आठ व्यक्तियों की रसोई बनाने को कहते, पर भोग के पश्चात् प्रायः पच्चीस-तीस व्यक्तियों का एकसाथ बैठकर प्रसाद पाना भी जरूरी था। यदि किसी दिन कोई वहाँ न रहता तो नीलरतन आदि को भेज किसी प्रकार लोगों को बुलवा लेते। किसी-किसी दिन यदि कोई कहता, 'लोग अधिक होंगे, इसलिए कुछ अधिक दाल-भात करवा लिया जाय' तो क्रुद्ध होकर कहते, 'बाबा, जिसका जो काम है, करे। तुम्हें रसोई बना कर भोग देना है। भोग दे दो। परोसने का दायित्व तुम्हारे ऊपर नहीं है। निताइचाँद के प्रसाद से क्या कोई वंचित रह सकता है? तुम जब अन्त में महाप्रसाद पाते हो तो तुम्हें कुछ कम पड़ता है क्या?' साथी लोग निरुत्तर। वास्तव में सात-आठ लोगों की रसोई बनती और पच्चीस-तीस व्यक्ति पेट भर खाते। किसी दिन भी किसी को एक मुट्ठी कम नहीं पड़ा। इस प्रकार नानाविध ऐश्वर्य मिश्रित लीला में दिन बीतने लगे।

एक दिन श्रीयुत दीनबन्धु काव्यतीर्थ महाशय बाबाजी महाशय से मिलने आये। उनके हाथ में सोने की अँगूठी, घड़ी, चेन थी और वे सोने के तार में पूरे तरह-तरह के ताबीज पहने थे। वे जैसे ही बाबाजी महाशय के सम्मुख उपस्थित हुए, आदेश हुआ, 'सिर्फ पहनने के कपड़े छोड़ बाकी जो कुछ तुम्हारे शरीर पर है, राधाकुण्ड में फेंक दो।' काव्यतीर्थ महाशय पहले किंकर्तव्य विमूढ़ हो खड़े रहे, फिर 'आज्ञा गुरुणां ह्यविचारणीया' कहते-कहते सब चीज़ें राधाकुण्ड के बीच में फेंक आये और बाबाजी महाशय को प्रणामकर उनके पास बैठ गये। नानारूप तत्त्व-कथा चल रही थी। दो घण्टे बीत गये। इस बीच न जाने कितने लोगों के घड़ी, चेन, अँगूठी, हार, ताबीज आदि राधाकुण्ड में फेंके गये। यह देख काव्यतीर्थ महाशय मन ही मन सोच रहे थे, 'बाबाजी महाशय यह क्या कर रहे हैं, कुछ समझ में नहीं आ रहा। मन जब तक बन्धनमुक्त न हो, बाहर की वस्तुओं के परित्याग से क्या लाभ? इतने मूल्य की वस्तुएँ जल में फेंकने के बजाय किसी सत्कार्य में लगाई जा सकती थीं। कहीं बाबाजी महाशय का दिमाग तो खराब नहीं हो गया है? कुछ समझ में नहीं आ रहा।' इत्यादि। बाबाजी महाशय मृदुमुस्कान के साथ बोले, 'क्यों रे काव्यतीर्थ, इतनी कीमती कीमती चीजें जल में फेंककर तुझे बड़ा कष्ट हो रहा है न? अच्छा!' इतना कह एकदम राधाकुण्ड में कूद पड़े और घाट के निकट एक डुबकी लगाकर काव्यतीर्थ महाशय और उपस्थित अन्य लोगों के घड़ी, चेन, अँगूठी इत्यादि निकाल लाये और काव्यतीर्थ महाशय की सब चीजें हाथ में ले उनसे बोले, 'क्यों, यह तो सब तुम्हारी हैं न!' सब लोग देखकर अवाक्! काव्यतीर्थ महाशय चुप। सब एक दूसरे से कहने लगे, 'कैसे आश्चर्य की बात है। भिन्न-भिन्न समय पर भिन्न-भिन्न स्थानों में चीजें फेंकी गईं। ये एक ही डुबकी में एक ही जगह से न जाने कैसे निकाल लाये।' थोड़ी देर बाद काव्यतीर्थ महाशय साश्रुगद्‌गद कंठ से बोले, 'अपनी चीजों के लोभ के कारण मेरे मन में यह विचार नहीं आया था। मैं तो आपकी महिमा न समझ सकने के कारण मन में तरह-तरह की कल्पना कर रहा था। मुझे क्षमा करें। इन सब चीजों का आप जो चाहें करें, मुझे कोई आपत्ति नहीं।' बाबाजी महाशय ने उनकी बात पर ध्यान न दे और उन सब चीजों को उन्हें देते हुए कहा, 'अच्छा, अभी इन्हें अपने पास ही रहने दो। मुझे जब जरूरत होगी, माँग लूँगा।' काव्यतीर्थ महाशय और कुछ न कह सके और सब चीजें ले लीं।

एक दिन बाबाजी महाशय बैठे थे। बाहर से आये कई भक्त उनके पास बैठे नानारूप प्रश्न कर रहे थे और वे प्रसन्न हो उत्तर दे रहे थे। उसी समय अकस्मात् एक व्याकुल स्त्री रोते-रोते उनके पास आयी। उसे देख लोगों में हलचल मच गयी। बाबाजी महाशय ने पूछा, 'क्यों माँ, तुम्हें क्या हो रहा है?'

स्त्री—बाबा, मेरा एक ही पुत्र है, और इस जगत् में मेरा कोई नहीं है। मेरी इस अन्धी की लकड़ी को प्लेग हो गया है, उसके बचने की कोई आशा नहीं है। इसलिए आपके पास आई हूँ। मेरे बालक को बचा

दीजिए, नहीं तो मेरे मरने का कोई उपाय कर दीजिए। मैं आपसे यही भिक्षा चाहती हूँ।

बाबाजी—ऐसी क्या बात है माँ, जाकर नाम करो, रज और चरणामृत दो, मंगलमय सब प्रकार मंगल करेंगे।

स्त्री—बाबा, मैं यह कुछ नहीं सुनना चाहती। मैं कुछ नहीं कर सकती। आपकी जो इच्छा हो कीजिए। यदि आप उसकी रक्षा नहीं करेंगे तो आपके चरणों में आत्म-हत्या कर शोक सागर से पार हो जाऊँगी।

इतना कह वह व्याकुल भाव से रुदन करने लगी। उसके कातर क्रन्दन ने सबको विकल कर दिया। बाबाजी महाशय भी उसको तरह-तरह से बहला-फुसलाकर हार गये तो बोले 'लड़के को यहाँ ला सकती हो क्या?'

स्त्री—यदि आप कहें तो ले आऊँ।

बाबाजी—अच्छा ले आओ।

स्त्री भागी हुई गई और लड़के को ले आई। लड़के की उम्र कोई दस बरस की होगी। आते ही बाबाजी महाशय ने कहा 'जा, इसे राधाकुण्ड में छोड़ दे।' दृढ़भक्तिमती स्त्री ने उनके आदेशानुसार घाट पर जा लड़के को जल में छोड़ दिया। करुणामय की कृपा से तीन-चार मिनट में ही लड़का अपनी शक्ति से उठकर किनारे पर आ गया। स्त्री ने मानो अपना खोया हुआ धन पा लिया। बालक का हाथ पकड़ उसने उसे बाबाजी महाशय के चरणों में समर्पण किया। बाबाजी महाशय ने भी बालक को आलिंगन दान करते हुए उसकी माँ से कहा, 'जा माँ, तू भी राधाकुण्ड में डुबकी लगाकर कृपामय निताइचाँद के दिये बालक को घर ले जा। अब कोई भय नहीं।' स्त्री ने भक्तिविगलित हृदय से बाबाजी महाशय को दण्डवत् प्रणाम किया और बालक को घर ले गई। उपस्थित भक्तवृन्द इस अलौकिक घटना को देख विमुग्ध हो गये और बाबाजी महाशय के चरण पकड़ साश्रुगद्गद कंठ से बोले, 'बाबा, कृपा कर हमारा माया मोह दूर कर जीवन भर के लिए चरणों का दास बना लीजिए। अब हमें वंचित न कीजिए। जिस प्रकार हमारी भक्ति दृढ़ हो वैसा उपदेश कीजिए। हमने देखा, केवल अपनी दृढ़ता के बल से किस प्रकार एक अनपढ़ स्त्री ने अपने बालक को बचा लिया। धिक्कार हमारे अविश्वासी हृदय को।' इतना कह वे सब बालक के समान रोदन करने लगे। बाबाजी महाशय मृदु वाक्यों से उन्हें आश्वासन देते हुए बोले-'बाबा, धन्य कलियुग! दूसरे युगों के समान इस युग में कठोर साधन करने की आवश्यकता नहीं। महाप्रभु ने श्रीमुख से कहा है-

खाइते शुइते जथातथा नाम लय।
काल देश नियम नाहिं सर्व सिद्धि हय॥

भक्त—नाम में दृढ़ विश्वास कैसे हो?

बाबाजी—नाम सर्वशक्तिमान है। एकमात्र नाम से सर्वाभीष्ट की पूर्ति होती है। कलियुग में और कोई साधन नहीं है।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलं।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥
हर्षे प्रभु कहे शुनो स्वरूप रामराय।
नाम संकीर्तन कलौ परम उपाय॥
संकीर्तन हइते पापसंसार नाशन।
चित्तशुद्धि सर्व भक्तिसाधन उद्गम॥
कृष्णप्रेमोद्गम प्रेमामृत आस्वादन।
कृष्णप्राप्ति सेवामृत-समुद्रे मज्जन॥ इत्यादि।

सारांश यह कि नाम कल्पतरु हैं। जिसकी जो अभिलाषा होती है, नाम उसकी पूर्ति करता है।

भक्त—अच्छा, नाम तो त्रिकालसत्य है न। सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि चारों युगों में वर्तमान और सर्वशक्तिसम्पन्न है। तब उसके फल का युगानुसार तारतम्य क्यों?

बाबाजी—नाम के फल में विशेष तारतम्य न होते हुए भी प्रक्रिया का भेद है, क्योंकि सतयुग के लोग जिस प्रकार दीर्घायु, ध्याननिष्ठ, सत्वगुणसम्पन्न और दृढ़ श्रद्धावान होते हैं, त्रेतायुग के लोग उतने नहीं होते। इसी प्रकार त्रेता की अपेक्षा द्वापर और द्वापर की अपेक्षा कलियुग के लोगों में कमी होती है। कलियुग के जीव अल्पायु, अन्नगतप्राण और कोमल श्रद्धासम्पन्न हैं। इसलिए अन्य युगों की भाँति इस युग में कठोर साधन

असम्भव हैं और इसीलिए प्रभु ने इस प्रकार की व्यवस्था की है। अन्यान्य युगों में बड़े-बड़े साधनों से भी जो वस्तु प्राप्त नहीं होती, कलियुग के अविश्वासी, कोमल श्रद्धावान, अल्पायु और आचारहीन लोगों को बिना किसी साधन के अनायास प्राप्त हो जाती है। यह कलि के जीवों के प्रति प्रभु की कृपा छोड़ और कुछ नहीं है। जिस प्रकार असमर्थ और अज्ञान सन्तान के प्रति माता-पिता की कृपा अधिक होती है, उसी प्रकार हमारे प्रति भगवान् की कृपा है। इसको यदि लोग साधन-गत कहें तो उनकी भूल होगी, यह कृपा-गत है। इसीलिए रूपगोस्वामी ने कहा है-

अनर्पितचरीं चिरात् करुणयावतीर्णः कलौ।
समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वलरसां स्वभक्तिश्रियं॥
हरिः पुरटसुन्दरः द्युतिकदम्बसन्दीपितः
सदा हृदयकन्दरे स्फुरतु वः शचीनन्दनः॥

नानारूप तत्वकथा आलोचना के पश्चात् भक्तों ने अपने-अपने घर को प्रस्थान किया। बाबाजी महाशय भी अपना नित्य कृत्य करने लगे।

बाबाजी महाशय के पास सदा लोगों की भीड़ लगी रहती। तरह-तरह की व्याधियाँ ले लोग उनके पास आते। किसी को नेत्ररोग होता, किसी को दमा, अम्ल-शूल इत्यादि। लेकिन इनके पास सब प्रकार की व्याधियों की एक ही औषधि थी। कोई रोगी कातर भाव से कहता 'मुझे दमा है। देखिए, न जाने कितने गण्डे ताबीज पहन रखे हैं।' बाबाजी महाशय कहते, "अच्छा, इन्हें सबको राधाकुण्ड में फेंक दो और तुम राधाकुण्ड में गोता लगाकर चले आओ। सब ठीक हो जायेगा।" जो इतनी बात में विश्वास कर गोता लगा लेता, उसका रोग दूर हो जाता, जो विश्वास न कर सकता, वह वंचित रहता।

एक दिन नौ बजे के लगभग दो स्त्रियाँ बारह वर्ष के एक बालक को पकड़कर राधाकुण्ड के किनारे तक लाईं। पर बालक और न चल सका और अवसन्न होकर गिर पड़ा। उसे पानी-सा पतला दस्त हुआ। मुँह से बोल निकलना बन्द हो गया। शरीर बरफ के समान ठण्डा हो गया। हाथ-पैर इंठने लगे और पसीना छूटने लगा। यह देख उनमें से कुछ अधेड़ उम्र की स्त्री ने व्याकुल हो उच्च स्वर से रोते हुए बाबाजी महाशय के चरण पकड़ लिये और कहने लगी, 'बाबा, यह मेरा एक ही पुत्र है। अपनी बहन को साथ ले इसे किसी प्रकार पकड़ कर आपके पास ला रही थी। पर यह कुण्ड के किनारे तक आकर एकदम बेहोश हो गया। अब पता नहीं मुझ दु:खिनी के अंचल का धन जीवित है या नहीं। अब कृपाकर एकबार इसके मस्तक पर अपनी चरण-धूलि दें, जिससे यह जी उठे।' इतना कह, वह चीख मारकर रोने लगी। बाबाजी महाशय का करुण हृदय द्रवित हो गया। वे धीरे-धीरे बोले, 'माँ, मैं क्या करूँ। डाक्टर वैद्य को दिखाओ, नहीं विश्वासपूर्वक रज और चरणामृत दो। परमायु होगी तो बच जायेगा।' स्त्री इनके चरण पकड़ कर बोली, 'बाबा, मैं रज जानती हूँ न चरणामृत। जो कुछ करना है, आप कीजिए। मैं अनाथ हूँ, अपने एकमात्र सम्बल इस बेटे को आपके चरणों में समर्पित करती हूँ। आप मुझे रखें चाहे मारें।' तब बाबाजी महाशय से न रहा गया। बोले, 'चल, देखूँ।' स्त्री की मृत देह में जैसे प्राणों का संचार हो गया। वह झट उठकर आगे-आगे चलने लगी। बाबाजी महाशय और अन्यान्य भक्तवृन्द उसके पीछे-पीछे जाने लगे। बालक के पास जाकर देखा कि उसकी अवस्था बहुत खराब है। उसका रंग फीका पड़ गया है। बहुत देर तक ध्यान से देखे बिना पता नहीं चलता कि उसमें साँस है। बाबाजी महाशय बोले, 'माँ, तेरे बालक की अवस्था तो बहुत खराब है। क्या करूँ?'

स्त्री—बाबा वह मेरा नहीं है, मैं उसे आपके चरणों में समर्पण कर चुकी हूँ। आप जो चाहें करें।

बाबाजी—अच्छा, तो तुम दोनों उसे पकड़ कर राधाकुण्ड में उतारो।

उसे राधाकुण्ड में उतार देने पर बाबाजी महाशय बोले, 'तुम दोनों जल में डुबकी लगाओ और उससे भी लगवाओ।' उन्होंने ऐसा ही किया। पहली डुबकी में तो कुछ नहीं हुआ, पर दूसरी डुबकी में बालक को चैतन्य हो आया। वह आँखें खोल चारों ओर देखने लगा। तब बाबाजी महाशय बोले, 'और एक डुबकी लगाओ और घर चली जाओ।' वे जब तीसरी बार उसे

डुबकी दिलाने लगीं, वह बोला, 'मुझे छोड़ दो, मैं आप ही डुबकी लगा लूँगा।' वह डुबकी लगाकर किनारे पर आ गया। फिर दोनों स्त्रियाँ और वह बालक, बाबाजी महाशय के चरणों में गिर गये। बाबाजी महाशय गद्गद कण्ठ से 'जय निताइ, जय निताइ' कहने लगे। फिर उन्हें घर जाने का आदेश कर अपने स्थान पर आकर बैठ गये।

उसी समय एक अन्धे ने आकर कहा, 'बाबा, मेरी दोनों आँखें ठीक कर दीजिए। मैं बड़ा कष्ट पा रहा हूँ।' बाबाजी महाशय अर्धस्फुट स्वर से बोले, 'जा, राधाकुण्ड में गोता लगा आ।' वह व्यक्ति गोता लगाकर आ गया। इनके सामने एक हुक्के की सलाख थी। इन्होंने उस लौहशलाका द्वारा अन्धे के दोनों नेत्र आँज दिये। ऐसा करते ही उसे दृष्टि-शक्ति फिर से प्राप्त हो गई। वह कातर हृदय से इनके चरण पकड़ रोने लगा। इन्होंने आदेश किया-'जाओ हृदय से निताइचाँद को पुकारो। कोई विपत्ति न आयेगी।'

इस समय ये प्राय: नग्नावस्था में रहते। एक दिन कालूटोला निवासी श्रीकुञ्जविहारी मल्लिक की माँ एक जोड़ा रेशमी वस्त्र और नाना प्रकार के व्यञ्जन लेकर आईं। बाबाजी महाशय उन्हें देखते ही 'माँ-माँ' कहते हुए जैसे ही बालक के समान उनके निकट गये उन्होंने वह रेशमी वस्त्र पहनाकर अपनी गोद में बिठा लिया। उधर उनकी लाई हुई सामग्री का भोग लगाया गया। भोग लग जाने पर माँ अपने हाथ से इन्हें खिलाने लगीं। ये भी बालक के समान प्रेम से खाने लगे। एक ब्राह्मण यह वात्सल्य रस की लीला देख रहा था। उसका लक्ष्य बराबर रेशमी वस्त्रों पर था। थोड़ी देर बाद जैसे ही कुञ्जबाबू और उनकी माता चले गये, इन्होंने रेशमी वस्त्र उतारकर उसे दे दिये। ब्राह्मण अभिलषित वस्तु पाते ही परमानन्दपूर्वक उन वस्त्रों को पहन इनके अन्तर्यामित्व और मातृत्व शक्ति की जय-घोषणा करने लगा।

एक दिन सुप्रसिद्ध डब्ल्यू० सी० बनर्जी के भतीजे श्रीयुक्त ब्रजलाल बन्द्योपाध्याय और श्रीयुक्त अमर कृष्ण दत्त बाबाजी महाशय के दर्शन करने आये। दोनों के गले में दमे के ताबीज थे। ब्रजबाबू का ताबीज ऐसा था कि उसे गले से निकालते ही दमा होने लगता। दैववश बाबाजी महाशय की दृष्टि उस ताबीज पर पड़ी। वे बोले-'तुम लोग अपने ताबीज राधाकुण्ड में फेंक आओ, तब तुमसे कोई बात होगी, ब्रजबाबू बोले, 'ताबीज खोलते ही मुझे भयानक दमा होने लगता है।' बाबाजी महाशय बोले, 'रोग रहते ही तो औषधि की जरूरत होती है, रोग न रहे तब?' अमरकृष्णबाबू बोले, 'रोग न रहे तो फिर क्या जरूरत है।' बाबाजी महाशय बोले, 'रोग होगा तो निताइचाँद देखेंगे।' दोनों ने अपने-अपने ताबीज खोलकर राधाकुण्ड में फेंक दिये। पहले ब्रजबाबू डरे कि जाने क्या होगा। पर दो-तीन घण्टे तक बाबाजी महाशय के साथ नानारूप तत्वकथा होती रही और कुछ भी न हुआ, तब ब्रजबाबू को बाबाजी महाशय की बात पर दृढ़ विश्वास हो गया। उस दिन से इन दोनों को कभी दमा नहीं हुआ।

इस दिन हावड़ा का सुन्दे ग्राम निवासी श्रीयुक्त अनुकूल चन्द्रहास नामक एक भक्त बाबाजी महाशय के दर्शन के लिए आये। उनके पास कपड़ा लत्ता जो कुछ भी था सब कामाख्यादास बाबाजी महाशय के घर रख आये। वे खूब अफीम खाया करते थे। अफीम की डिब्बी भी बड़े यत्न से कुर्ते की जेब में रख आये थे। वे एक दिन अन्न न खाकर रह सकते थे पर अफीम के बिना उनका काम एक दिन भी न चलता। वे जैसे ही नंगे बदन बाबाजी महाशय के निकट पहुँचे और उन्हें दण्डवत् प्रणाम कर बैठे, बाबाजी महाशय ने पूछा, 'अनुकूल, तुम्हारे पास अफीम थी, क्या किया?' अनुकूल का चेहरा फक पड़ गया। वे बोले, 'कामाख्यादादा के घर रख आया हूँ।' उसी समय बाबाजी महाशय ने एक व्यक्ति को आदेश किया, 'देखो, कामाख्यादास के घर अनुकूल के कुर्ते की जेब में अफीम की डिब्बी है, उसे झट ले तो आओ।'

अनुकूल—मैं जा रहा हूँ।

बाबाजी—न बाबा, तुम ठहरो।

आदिष्ट व्यक्ति जल्दी से अफीम की डिब्बी ले आया। बाबाजी महाशय ने डिब्बी खोली और अनुकूल से पूछा, 'इसमें कितनी अफीम है?'

अनुकूल—कल एक रुपया भर खरीदी थी। उसमें से चार आना खर्च हुई है, बारह आना बाकी है। मेरा ऐसा कुअभ्यास हो गया है कि इसे खाये बिना उठ-बैठ नहीं सकता। मैं भात और जल बिना रह सकता हूँ, पर अफीम बिना नहीं रह सकता।

बाबाजी महाशय उनकी बात सुन रहे थे और अफीम के डेले को गोल करते जा रहे थे। उनकी बात समाप्त होते न होते 'जय नित्यानन्द राम' कहते हुए उन्होंने बारह आना भर अफीम की गोली मुँह में डाल ली और अनुकूलबाबू से बोले, 'जाओ, अब तुम्हें अफीम नहीं खानी पड़ेगी।' उसी मुहूर्त से अनुकूलबाबू का अफीम का नशा छूट गया। वे कहते, 'गुरुदेव की कृपा से उस दिन से भूल से भी मैं अफीम खाया करता था, यह भी धारणा नहीं आती। मेरे शरीर को भी इससे किसी प्रकार की हानि नहीं हुई।'

एक दिन प्रात:काल इन्हें न जाने क्या उचंग उठी, कुछ गाय का घी मँगा उसे एक सौ आठ बार धोकर रख लिया। किसी ने पूछा, 'इसका क्या होगा?' बाबाजी महाशय मुस्कराते हुए बोले 'कुछ विशेष प्रयोजन है। पीछे जान लोगे।' चार-पाँच दिन बाद कलूटोला के कुञ्जबाबू आये। उन्हें मुँह पर और सिर में बड़े घाव हो रहे थे जो विषाक्त थे। डाक्टरी और वैद्यक इलाज और तरह-तरह की जड़ी-बूटियों का प्रयोग करने पर भी कुछ लाभ नहीं हुआ था। यंत्रणा बहुत होती थी। न जाने क्या सोचकर आज बाबाजी महाशय के पास आये। आते ही बाबाजी महाशय बोले, 'कई दिनों से निताइचाँद ने घाव की औषधि तैयार करा रखी है। आप आये नहीं, इसलिए आपको नहीं दी जा सकी।' कुंजबाबू बोले, 'मैंने बहुत इलाज किया है, पर कुछ फल नहीं हुआ। अब आपकी कृपा का ही भरोसा है।' बाबाजी महाशय ने वह एक सौ आठ बार धोया हुआ घी मँगाकर फणि द्वारा क्षत स्थानों पर अच्छी तरह लगवा दिया और साथ ही साधारण लोगों के विश्वास के लिए या प्रतिष्ठा से अपनी रक्षा करने के लिए बगीचे में से ऐसे ही किसी पेड़ का पत्ता लेकर मसल कर उसका रस क्षत स्थानों पर लगा दिया। लगाते ही यंत्रणा से निवृत्ति हो गई और कुछ दिनों में घाव सूख गये। इस प्रकार केदारबाबू के बगीचे में रहते समय न जाने कितनी असाध्य व्याधियाँ इनके कृपा कटाक्ष से अच्छी होने लगीं।

एक दिन ग्यारह बजे फरीदपुर से वृन्दावनदादा बाबाजी महाशय के दर्शन के लिए आये। बाबाजी महाशय उन्हें देखते ही गद्गद कंठ से बोले, 'तू आ गया! आ, मैंने बहुत दिनों से तृप्ति के साथ भोजन नहीं किया, आज तेरे हाथ से खाकर तृप्त होऊँगा।' वृन्दावनदादा भी आनन्दोत्फुल्ल हो पास जा बैठे। बाबाजी महाशय की तात्कालिक अवस्था ठीक बालक की तरह थी। कोई कपड़ा पहना जाता तो दूसरे क्षण उसे खोल किसी को दे देते। कभी कहते 'मैं आज स्नान नहीं करूँगा'। खानपान में सदा अनिच्छा रखते। प्रसाद पाने बैठते तो नानारूप मनमठ करते। आज वृन्दावन से बोले, 'मुझे तो बड़ी जोर की भूख लगी है, शीघ्र महाप्रसाद ले आओ।' आदेश पाते ही सेवकगण महाप्रसाद ले आये। वृन्दावनदादा अपने हाथ से खिलाने लगे। पर थोड़ा ही लेकर बालक के समान अनिच्छा प्रकट करने लगे। वृन्दावनदादा नानारूप प्रबोध वाक्यों से प्रसाद सेवन कराने लगे; कभी प्यार से और कभी डाँट-डपट कर। जब वृन्दावनदादा कपट शासन करते तो ये कहते 'मैं क्या तेरा शिष्य हूँ जो तेरी आज्ञा मानूँगा?' वृन्दावन कहते-'शिष्य नहीं तो क्या? गुरु आज्ञा पालन न करने से अपराध होगा। इसलिए मैं जो भी कहूँ, उसे मानो।' बाबाजी महाशय और कुछ न कहकर चुपचाप खाने लगते। इस प्रकार वृन्दावनदादा जब कोई भी बात कहते तो 'गुरुदेव की आज्ञा' कहकर शीघ्र उसे करने लगते। इससे सेवकगण बहुत प्रसन्न थे। क्योंकि जब किसी का कोई काम अटकता तो वृन्दावनदादा के द्वारा उसे करा लेते। वृन्दावनदादा भी बड़े प्रेम के साथ फरीदपुर से नानाप्रकार के पदार्थ मँगा बाबाजी महाशय की सेवा करने लगे। बाबाजी महाशय के प्रति वृन्दावनदादा की प्रीति-भक्ति और वृन्दावनदादा के प्रति बाबाजी महाशय का स्नेह देखकर एक भक्त रामदास से बोले, 'दादा, इन महात्माजी को तो मैंने कभी पहले बाबाजी महाशय के साथ नहीं देखा था। वह कौन हैं और कब से बाबाजी महाशय

इन्हें जानते हैं? इनके बारे में कुछ जानने के लिए हम लोग बहुत उत्सुक हैं।'

रामदादा—इनका जन्मस्थान फरीदपुर जिले में है। इनका पूर्वाश्रम का नाम श्रीयुक्त सुधन्यकुमार मित्र था। ये बड़े सदाशय व्यक्ति हैं। एक प्रकार से मेरे प्रारम्भिक गुरु हैं। बहुत दिन पहले हमलोग दोनों श्रीजगद्‌बन्धु प्रभु के साथ रहते थे। किसी कारणवश हम दोनों को उनका संग छोड़ना पड़ा। ये श्रीधाम वृन्दावन जा और सिद्ध महात्मा श्रीयुक्त प्रेमदास बाबाजी महाशय से भेख ले कठोर भजन करने लगे। अकस्मात् किसी कारण ये बिलकुल पागल जैसे हो गये, यहाँ तक कि वृन्दावन का परित्याग कर नाना देश देशान्तर भ्रमण करने लगे। सन् १३०३ बंगाब्द में जब बाबाजी महाशय पुरी जाने के विचार से अपने साथियों के साथ कलकत्ते आये थे, उस समय एक दिन हम कई लोग बाबाजी महाशय के साथ गंगा-स्नान के लिए निमतला घाट जा रहे थे। अकस्मात् देखा कि ये रास्ते में लेटे हुए हैं। इनकी शारीरिक अवस्था बहुत खराब है और ये पहचानने में भी नहीं आ रहे हैं। मुझे देखते ही बोले, 'क्यों रे रामदास, कुछ खाने को देगा?' कण्ठस्वर से मैंने इन्हें पहचान लिया और बाबाजी महाशय से इनका सारा वृत्तान्त कह सुनाया। बाबाजी महाशय ने बड़े आग्रह के साथ इन्हें साथ ले चलने के लिए कहा। हम लोग नानारूप कौशल से इन्हें श्रीयुक्त मुकुन्दघोष महाशय के घर ले गये और हर प्रकार से इनकी सेवा शुश्रूषा करने लगे। बाबाजी महाशय बोले, 'उसे पुरी ले जाकर उड़िया मठ की तोड़ानी, जगन्नाथ का चरणामृत और कुण्ड का चरणामृत पिलाने और नरेन्द्र सरोवर की कीचड़ उसके सिर में लगाने से वह ठीक हो जायगा।' थोड़े ही दिन कलकत्ते रहकर हम लोग लौट आये। इनका चांचल्य दूर हो गया और ये जड़ के समान हो गये। किसी से बातचीत न करते, बैठ जाते तो बैठे ही रहते। कोई जबरदस्ती उठा देता तो उठते, कोई खिलाता तो खाते। इसी अवस्था में इन्हें पुरी ले जाया गया। बाबाजी महाशय के आदेशानुसार पूर्वोक्त प्रकार से इनकी शुश्रूषा होने लगी। एक दिन बाबाजी महाशय संकीर्तन करते-करते इन्हें आलिंगन कर बोले, 'अब कोई भय नहीं। तुम्हारे जितने भी पाप-ताप और अपराध हैं, मैंने ले लिए। तुम निर्मल भाव से निताइचाँद का गुण गान करते हुए मनुष्य जन्म सफल करो। मन ही मन गुरुदेव से क्षमा-प्रार्थना करो। दाता-शिरोमणि गुरुदेव अभयदान करेंगे।' वृन्दावनदादा भी व्याकुल हो रोते-रोते बाबाजी महाशय के चरणों में गिर गये। उन्होंने फिर से इन्हें आलिंगन कर कहा, 'कोई भय नहीं, जाओ कीर्तन करो।' वृन्दावनदादा यथावत् प्रकृतिस्थ हो गये। कुछ दिन तक बाबाजी महाशय के साथ रहे फिर उनके आदेश से फरीदपुर जाकर और एक औषधालय खोलकर उसकी आमदनी से परोपकार और साधु-वैष्णव सेवा करने लगे। तबसे ये बड़े प्रेम से वैष्णव-सेवा करते हैं। वैष्णवों के भजन में हर प्रकार से आनुकूल्य करने का प्रयत्न करते हैं। रोगियों की सेवा तन-मन से करते हैं। इसलिए बाबाजी महाशय की इनके प्रति बड़ी श्रद्धा है और इन्हें भी बाबाजी महाशय के चरणों में विशेष भक्ति और विश्वास है।

भक्त यह सुन विस्मित भाव से बाबाजी महाशय की कृपा की जय बोलने लगा।

एक दिन कुञ्जबाबू की माँ नाना प्रकार के व्यञ्जन लेकर आईं। वात्सल्यमयी माँ के मन का भाव क्या था, अन्तर्यामी प्रभु ही जानें। उनके आते ही बाबाजी महाशय पाँच वर्ष के बालक के समान कूदकर उनकी गोद में बैठ गये। माँ भी पुत्र को गोद में ले कुछ देर स्वच्छन्द घूम-फिर कर बैठ गईं। यह परमानन्द पूर्वक माँ का स्तन-पान करने लगे। सब देख कर अवाक् रह गये, क्योंकि कुञ्जबाबू की माँ बहुत बूढ़ी थीं। उनके लिए इन्हें गोद में लेकर घूमना तो दूर, एक स्थान पर गोद में लेकर बैठना भी असंभव था। परन्तु भावराज्य में श्रीयोगमाया की कृपा से असम्भव भी अलक्षित रूप से सम्भव हो गया। माँ प्रेमाविष्ट हो नाना प्रकार के व्यंजन बाबाजी महाशय के मुख में देने लगीं। श्रीमन्महाप्रभु ने कहा है कि भाव, स्वभाव और स्वरूप, शरीर के ये तीन प्रकार हैं। इनमें से यदि भाव और स्वभाव स्थाई हों तो स्वरूप के भिन्न होते हुए भी किसी प्रकार की बाधा नहीं होती। जैसे, मान लो कोई व्यक्ति बैठा है। अकस्मात् तीन स्त्रियाँ उसके पास

आती हैं। वयस, वेशभूषा और रूप-गुण में तीनों एक सी हैं। पहली द्रुतगति से जा पुरुष की गोद में बैठ जाती है और वात्सल्य रस में डूब नाना रूप कुशलप्रश्न करने लगती है। वह इतनी विह्वल हो जाती है कि उनके वस्त्रादि स्थान-च्युत होने पर भी वह निर्विकार भाव से गोद में बैठी रहती है। यह युवती उस व्यक्ति की कन्या है। वह जैसे ही उसकी गोद से उतरती है दूसरी युवती गोद में बैठ जाती है और सख्य रस में निमग्न हो नानारूप कुशल प्रश्न पूछने लगती है। वह भी निर्विकार भाव से निःसंकोच उत्तर देता है। यह उस व्यक्ति की छोटी बहन है। इन दोनों युवतियों के स्पर्श से पुरुष के मन में विकार की गंध भी नहीं होती। पर उसी समय तीसरी युवती पर दृष्टि पड़ते ही उसमें विकार उत्पन्न हो जाता है और वह कामातुर हो उठता है। इससे यह समझ में आता है कि विकार या निर्विकार से स्वरूप का सम्बन्ध बहुत कम है। केवल भाव लेकर ही सारा व्यवहार होता है।

एक दिन बाबाजी महाशय क्षौर करवाने बैठे और नाई के हाथ से उस्तरा ले अपने बायें पैर के तलवे में जहाँ एक चिन्ह था वहाँ से कोई आध पाव मांस काटकर फेंक दिया। मांस काटते समय दर्शकवृन्द व्याकुल थे, पर ये निर्विकार थे। ऐसे मांस काट रहे थे कि लगता था जैसे किसी काठ या मिट्टी की बनी मूर्ति से कुछ अंश काटकर निकाल रहे हों। बहुत रक्त बहने लगा तो कुछ रज क्षत स्थान पर लगा ली। लगाते ही रक्त बहना बन्द हो गया। जब तक घाव सूख नहीं गया रोज रज हाथ में लेकर उस पर घिसते रहे। जब घाव सूख गया तो क्षौर के समय बार-बार उस्तरे से उसे खुरचने लगे। इस प्रकार घाव ठीक होना तो दूर रहा, वह रोज हरा होने लगा। साथी लोग एक दिन अपराह्न में बैठे परस्पर कहने लगे-कल सबेरे देखा कि घाव एक ओर से भरता आ रहा है, पर आज फिर कच्चा मांस उस्तरे से खुरच कर फेंक दिया। घाव कैसे भर पायेगा, कौनसा उपाय किया जाय, कुछ समझ में नहीं आता।' इस प्रकार की चिंता करते-करते संध्या हो गई और सब उदास भाव से कीर्तन करने लगे। दूसरे दिन प्रातः उठते ही देखा कि घाव सूखकर फिर पहले जैसा हो गया है और ऐसा लग रहा है जैसे कभी कोई घाव था ही नहीं।

इस प्रकार नानारूप ऐश्वर्य और माधुर्यमयी लीला में कुछ दिन बीत गये। देखते-देखते महाप्रभु की जन्मतिथि फाल्गुनी पूर्णिमा आ पहुँची। चतुर्दशी के दिन संध्या समय बाबाजी महाशय ने नीलरतन को आदेश किया, 'कल प्रातः अष्टप्रहर नाम आरम्भ होगा, उसकी तैयारी करो।' आदेशानुसार तैयारी कर ली गई। दोल पूर्णिमा के दिन प्रातःकाल से नाम आरम्भ हुआ। खूब जोरशोर से कीर्तन होने लगा। सब लोग इतने विभोर हो गये कि किसी को बाह्य स्मृति न रही। दिन और रात किधर बीत गये किसी को पता न चला। दूसरे दिन प्रातःकाल उठते ही बाबाजी महाशय नीलरतन से बोले, 'क्यों रे नीलू, यहाँ कामिनी धान का चिउड़ा मिलेगा क्या ?'

नील०—प्रयत्न करने पर मिल सकता है।

बाबाजी—तो उसका भार तुम्हारे ऊपर रहा।

नील०—कितने मालसा भोग बनेंगे ?

बाबाजी—छह से कम नहीं।

नीलरतन उसी प्रकार व्यवस्था करने लगे। एक बहुत बड़ा आयल पेण्ट का महाप्रभु की संन्यासमूर्ति का चित्रपट था। वह चित्रपट और एक पीच की लकड़ी ले वे साथियों के साथ राधाकुण्ड और श्यामकुण्ड की परिक्रमा कर कीर्तन करते-करते गंगा स्नान को गये। गंगातट पर पहुँच साष्टांग दण्डवत् प्रणामकर चित्रपट और पीच की लकड़ी को हाथ से पकड़ गंगा में उतारा। पहले स्वयं डुबकी लगाई फिर चित्रपट और लकड़ी को आकंठ जल में खड़ाकर अँगोछे से रगड़ने लगे। साथियों में कोई-कोई सोचने लगे कि चित्रपट बिगड़ जायेगा। पर जो लोग बाबाजी महाशय के प्रभाव से अवगत थे, वे बोले, 'देखना थोड़ी ही देर में कितना उज्ज्वल हो जायेगा।' वास्तव में ऐसा ही हुआ। अँगोछे से जितना मार्जन करते थे उतना ही चित्र उज्ज्वल होता जाता था। कुछ देर इस प्रकार चित्रपट को स्नान करा स्वयं स्नान करने लगे। बार-बार डुबकी लगा बहुत देर तक जल में रहते और

निकल कर कहते, 'आज मेरा आरोग्य स्नान है: इस देह में जितने रोग आ गये थे, आज सब चले गये।' इस प्रकार बहुत देर तक गंगा में जल-केलि कर पूर्ववत् नाम करते-करते बगीचे को लौटे। इधर नीलरतन ने मालसा भोग तैयार कर रखा था। वे स्वयं ही मालसा भोग देने लगे। उस दिन के मालसा भोग की सुगन्ध बाहर तक फैलने लगी। जो भी मालसा भोग का प्रसाद पाता वह अनुभव करता और कहता कि आज महाप्रभु ने प्रत्यक्ष भाव से भोग ग्रहण किया है, क्योंकि मालसा भोग की ऐसी सुगन्ध का हमने पहले कभी अनुभव नहीं किया।

एक दिन चार बजे के लगभग पुलिनदादा और उनके मामा श्रीयुत कान्हाईलाल मल्लिक बाबाजी महाशय के दर्शन करने आये। कान्हाईबाबू का शरीर बहुत अस्वस्थ था। दमे का इतना प्रकोप था कि एक जगह बैठना भी सम्भव नहीं था। उनका कष्ट देख अयाचित कृपाहारी प्रभु का हृदय भर आया, आँखों में आँसू आ गये और वे गद्‌गद कंठ से बोले, 'बाबा, तुम्हें कब से यह रोग है?'

कान्हाई—बहुत दिनों से।

बाबाजी—गले में यह ताबीज कैसे हैं?

कान्हाई—दमे के हैं।

बाबाजी—इनसे कुछ लाभ हुआ?

कान्हाई—लाभ नहीं हुआ तो कुछ हानि भी नहीं हुई। मेरा विश्वास है कि इन्हें न पहनता तो कष्ट और बढ़ जाता।

बाबाजी—तुम रोग अच्छा करना चाहते हो न? यदि तुम सरल हृदय से ताबीज और यह नीलम की अँगूठी राधाकुण्ड में फेंक दो तो मेरा विश्वास है कि निताइचाँद तुम्हारा सारा रोग दूर कर देंगे।

बाबाजी महाशय की बात सुन कान्हाईबाबू को कुछ इधर-उधर करते देख पुलिनबाबू बार-बार अनुरोध कर कहने लगे, 'मामा, दुविधा छोड़ बाबाजी महाशय की आज्ञा का पालन कीजिए। अवश्य फल पायेंगे। महन्तों की कृपा से असम्भव भी सम्भव हो जाता है। यह तो सामान्य रोग ही है।' और जितने लोग वहाँ उपस्थित थे वे भी उसी प्रकार तरह-तरह से अनुरोध करने लगे। लज्जा के कारण हो चाहे अनुरोध के कारण, कान्हाई बाबू ने हाथ की अँगूठी और गले के ताबीज खोलकर आरोपित राधाकुण्ड के जल में फेंक दिये। पर उनका मन प्रसन्न न था। जब तक वे बाबाजी महाशय के निकट थे, स्वस्थ थे। घर पहुँचते ही अविश्वास के कारण दमे ने फिर जोर किया। उन्हें अनुताप होने लगा। पुलिनदादा को बुलाकर बोले, 'मेरे रोग का तो कुछ नहीं हुआ। तुम्हारी बात में आकर अपना माल और गँवा दिया। अब मेरी अँगूठी और ताबीज ला दो।' पुलिनदादा कुछ मुस्कराते हुए बोले, 'विश्वास बिना फल कैसे हो सकता है? 'विश्वासे मिलये वस्तु तर्के बहुदूर।' साधु महात्माओं पर भक्ति और विश्वास न रहने से कोई फल प्राप्त नहीं होता। अँगूठी और ताबीज तो आपने अपने हाथ से जल में फेंक दिये थे, अब वह कहाँ मिलेंगे?" पुलिन दादा की बात सुन कान्हाई बाबू चुप रहे, पर साधु महात्माओं के प्रति उनमें जैसे श्रद्धा न रही।

बाबाजी महाशय पुलिन दादा के मुख से यह सब सुन मुस्कराते हुए बोले, 'तो कान्हाई मामा को बड़ा मानसिक कष्ट है। अच्छा निताइचाँद की जैसी इच्छा।' इतना कह और बातें करने लगे। कई दिन बाद वे काशीपुर में रसिक बाबू के बगीचे, और वहाँ से दरजीपाड़ा में रायबहादुर के बगीचे, कुठीघाट, कुलीनगाँ, शिउड़ी, कालना, शान्तिपुर और श्रीधाम नवद्वीप आदि स्थानों में भ्रमण करते हुए कोई डेढ़ महीने बाद पुरी के लिए रवाना हुए। हावड़ा स्टेशन पर गाड़ी पर चढ़ते समय कई ताबीज और एक नीलम की अँगूठी हाथ में ले मुस्कराते हुए पुलिन दादा से बोले, 'पुलिन देख, यह अँगूठी और ताबीज कान्हाई मामा के हैं न? उनके मन में बड़ा दुःख है, उन्हें दे देना।' पुलिन दादा अँगूठी और ताबीज देख विस्मित हो बाबाजी महाशय के चरण पकड़ नानारूप कातरोक्ति-प्रकाश करने लगे।

उन्होंने कान्हाईबाबू को जब उनकी अँगूठी और ताबीज वापस दिये तो वे चकित होकर बोले, 'सचमुच मैं बाबाजी महाशय को न पहचान सका। मैंने अपने ही हाथ से पुष्करिणी के बीचों-बीच अगाध जल में

अँगूठी और ताबीज फेंक दिये थे। डेढ़ महीने बाद न जाने कैसे वही अँगूठी और वही ताबीज मुझे वापस कर दिये। निश्चय ही वे महापुरुष हैं। अपने बुद्धि-भ्रम अविश्वास के कारण पाये हुए रत्न को खो दिया। मेरे जीवन को धिक्कार है। मैंने बाबाजी महाशय के निर्मल भजन-पथ पर इतनी बार कलंक लगाकर निताइचाँद के प्रति कितना अपराध किया है, इसकी सीमा नहीं।' इत्यादि नानारूप आत्मग्लानिसूचक वाक्यों द्वारा कान्हाई बाबू बाबाजी महाशय से मन ही मन क्षमाप्रार्थना करने लगे।

एक दिन चार बजे के लगभग चंदननगर निवासी श्रीयुत बसन्तकुमार नियोगी ने आकर जैसे ही बाबाजी महाशय को दण्डवत् प्रणाम किया वे मुस्कराते हुए बोले, 'क्यों रे बसंत, आ गया? आ,' और इतना कह अपने बायें पैर का अँगूठा उनके मुँह में दे दिया। वे भी आनन्द में विभोर हो अँगूठा चूसने लगे। कोई बीस मिनट तक चूसते रहे। फिर अकस्मात् पागल के समान झूमते-झूमते उठकर नृत्य करने लगे। उनके शरीर में अश्रु, कम्प, पुलक आदि सात्विक विकार प्रकाशित होने लगे। उपस्थित भक्तगण देखकर अवाक् रह गये। बसंत दादा को देह-स्मृति न रही। वे पागल के समान स्खलित भाषा में दो एक शब्द कहते जो असम्बद्ध प्रलाप के समान दुर्बोध होते। उनके दोनों नेत्र लाल और डबडबाये हुए थे। बाबाजी महाशय ने साथियों से नाम करने को कहा और बसन्त दादा को आलिंगन द्वारा कुछ प्रकृतिस्थ कर बोले, 'निताइचाँद की कृपादत्त वस्तु का स्थिर भाव से भोग कर।' इतना कह उन्होंने उनकी पीठ पर बायें हाथ से चाँटा मारकर उन्हें विदा किया। बसन्त दादा बाबाजी महाशय के आदेशानुसार प्रेमाविष्ट भाव से नगर की ओर चल दिये। आश्चर्य यह कि उस समय उन्हें जो भी स्पर्श करता, वह प्रेम में विभोर हो जाता।

बाबाजी महाशय इस प्रकार एक मास से कुछ अधिक दिनों तक केदारबाबू के बगीचे में रहकर नानाविध ऐश्वर्य और माधुर्य मिश्रित लीलाओं के द्वारा लोगों का संशोधन और उनका आनन्दवर्धन करते रहे।

रसिकबाबू का परिवर्तन

एक दिन श्रीयुत रसिकलाल पाल बाबाजी महाशय के दर्शन करने आये। बाबा उस समय उलंग अपने ध्यान में बैठे थे। रसिकबाबू के प्रणाम करते ही चौंककर प्रतिप्रणाम कर बोले-"बाबा, क्या नाम है?"

रसिक—जी, मेरा नाम रसिकलाल पाल है। हम लोग स्वर्णवणिक हैं।

'स्वर्णवणिक' सुनते ही बाबाजी महाशय भाव में डूब गये। नेत्र लाल और सजल हो गये।

बाबाजी—तुम 'स्वर्ण वणिक' हो? ना बाबा, मुझे विश्वास नहीं हो रहा। स्वर्णवणिकों पर नित्यानन्द प्रभु की जितनी कृपा हुई उतनी और किसी पर नहीं हुई। फिर भी तुम्हारे मुख पर इतनी बड़ी मूँछ और गला बिना कण्ठी के!

रसिकबाबू लज्जित हुए। फिर भी विनम्र भाव से बोले-"बाबा, भजन-साधन तो अन्तर की वस्तु है। इसका वेश-भूषा से कुछ सम्बन्ध है क्या?"

बाबाजी—बाबा, परमार्थ जगत् की बात तो पीछे कहूँगा। पहले साधारण लोक-व्यवहार की ही बात लो। कोई व्यक्ति भद्र है या अभद्र, धनी है या निर्धन, यह अन्तर की बात है। फिर भी लोग मारकीन न लपेट कर बढ़िया मरसराइज्ड धोती क्यों पहनते हैं? वकील बैरिस्टर कोर्ट जाते समय कोर्ट की पोशाक क्यों पहनते हैं? इसलिए न कि जैसी सभा-सोसाइटी में लोग जाना चाहते हैं, उसके अनुकूल वेश हो तभी उसमें प्रवेश मिलता है। वेश मनुष्य की श्रेणी का परिचय देता है। यह तो हुई बाहर की बात। आभ्यन्तरिक बात अन्य प्रकार की है। वेश-भूषा का मनोवृत्ति से घनिष्ठ सम्बन्ध है। देखो, मनुष्य गंगा-स्नान कर, पवित्र वस्त्र धारण कर जब किसी देवालय में जाता है, उस समय उसकी जैसी मनोवृत्ति होती है, वैसी मनोवृत्ति क्या उस समय होती है जब कोट-पैंट, टाई-हैट धारण कर, एसेन्स लगाकर और मुख में सिगार दबाकर थियेटर देखने जाता है?

रसिक—नहीं, यह तो सम्भव ही नहीं।

बाबाजी—वेश-भूषा ही नहीं, आहार-विहार आदि का भी मनोवृत्ति से गहरा सम्बन्ध है।

रसिकबाबू चले गये। दो दिन बाद फिर आये तो उनमें परिवर्तन देख लोग चकित रह गये। उस समय उनके मूछें नहीं थीं। कपड़े भी इतने साधारण थे कि वे पहचानने में भी मुश्किल से आ रहे थे। उन्होंने बाबाजी महाशय से कहा-"मेरी बड़ी इच्छा है कि सम्भव हो तो आज अधम के घर पदार्पण कर मेरा पशु जीवन धन्य करें।"

बाबाजी महाशय ने दूसरे दिन चलने को कहा। वे दूसरे दिन प्रात: आकर सबको ले गये। इन लोगों ने यथासमय स्नानाह्निक समापन कर कीर्तन आरम्भ किया। कीर्तन के पश्चात् रसिकबाबू के विशेष आग्रह पर उन्हें मंत्र प्रदान किया।

रसिकबाबू को पेशाब में रक्त जाने की बीमारी थी। बहुत इलाज कर चुके थे, कुछ लाभ नहीं हो रहा था। बाबाजी महाशय ने मंत्र देने के पश्चात् उन्हें आलिंगन कर कहा-"जाओ बाबा, आज से तुम निरोग और निश्चिन्त होओ। तुम्हारे जितने भी रोग-धोग और पाप-ताप थे सब मैंने ले लिये। अब निर्मल भाव से निताइचाँद को पुकारो और मनुष्य-जीवन धन्य करो।" रसिकबाबू ने बाबाजी महाशय के सुशीतल वक्ष का स्पर्श पाते ही एक अप्राकृत आनन्द राज्य में प्रवेश कर परम शांति लाभ की। उनका कठिन रोग भी उस दिन से जाता रहा।

रसिकबाबू ने बाबाजी महाशय से कुछ दिन अपने काशीपुर के बगीचे में रहने का आग्रह किया। वे केदारबाबू के बगीचे से वहाँ जाकर रहने लगे।

अयाचित कृपा

इस घटना के सम्बन्ध में बिहारीदास बाबाजी ने जो लिखा, वही यहाँ उद्धृत किया जा रहा है-"मेरी आयु १७/१८ वर्ष की थी, तभी से मैं श्रीमद् भोलानाथ ज्ञानानन्द महाशय का संग करता। वे प्रचार के लिए जहाँ भी जाते उनके साथ जाता, एकतारे पर गान-कीर्तन करता। बहुत बार उनके साथ काशी जाया करता। काशी में उस समय भास्करानन्द स्वामी और विशुद्धानन्द सरस्वती इत्यादि बहुत-से महात्मा थे। उनका भी संग करता। दैवात् भोलानाथ ज्ञानानन्द महाशय का देहावसान हो गया। मेरे लिए त्रिजगत जैसे शून्य हो गया। मेरे दु:ख का अन्त न रहा।

उस समय मैं कलकत्ते के बहूबाजार सांकारिटोला में एक मकान में अपने बड़े भाई और माँ के साथ रहा करता। उसी में गोवर्द्धन नामक एक भक्तिमान बालक भी रहता। उसके संग से मुझे भक्तिपथ के बारे में जानने का लोभ हो आया। उसने मुझे भक्ति-ग्रन्थों का अध्ययन और श्रीश्रीबड़े बाबाजी महाशय के दर्शन करने का परामर्श दिया। मैं बड़े बाबाजी महाशय के दर्शन के लिए विशेष रूप से उत्कण्ठित हो गया।

उस समय बड़े बाबाजी महाशय काशीपुर में श्रीयुत रसिकलाल पाल के बगीचे में ठहरे हुए थे। मैं गोवर्द्धन के साथ उनके दर्शन करने गया। हम दोनों के दण्डवत् प्रणाम करते ही उन्होंने पूछा-"तुम दोनों घर से प्रसाद पाकर आये हो क्या?"

गोवर्द्धन—जी हाँ।

बाबाजी—तो भी जाओ, थोड़ा प्रसाद पा लो।

प्रसाद पाकर हम लोग पुष्करिणी में हाथ-मुँह धोने गये। उस समय रात्रि हो गयी थी। अन्धकार में मेरा पैर फिसल गया मैं पुष्करिणी के अगाध जल में जा गिरा। पर आश्चर्य! न जाने किसने अलक्षित भाव से मुझे उठाकर ऊपर तैरा दिया, यद्यपि मैं तैरना बिलकुल नहीं जानता था। मुझे बड़े बाबाजी महाशय की महती कृपा के सिवा इसका और कोई कारण समझ में न आया। जल में से निकल कर मैंने उत्तरीय सुखाया। उसे लपेटकर बाकी कपड़े एक जगह सूखने को डाल दिये। उसी अवस्था में जाकर जहाँ बड़े बाबाजी महाशय शयन कर रहे थे उनके चरण तले सो गया। गोवर्द्धन भी मेरे पास ही सो गया।

दूसरे दिन प्रात:क्रिया समापन कर हम लोग बाबाजी महाशय को दण्डवत् कर उनके पास बैठ गये। बाबा ने मुझसे पूछा-"तुम्हारा क्या नाम है?"

मैं—जी, मेरा नाम बिहारीलाल दास।

बाबाजी—तुम्हारे संसार में कौन है?

मैं—माँ और पत्नी।

बाबाजी—तुम्हारी दीक्षा हो गयी?

मैं—जी हाँ।

बाबाजी—तुम्हारे हाथ में इतने ताबीज क्यों?

मैं—अक्सर रोगी रहता हूँ, इसलिए।

बाबाजी—मैं यदि तुम्हारे पाप-ताप, रोग-धोग सब ले लूँ तो इन्हें फेंक दोगे?

सुनते ही मेरे मन-प्राण न जाने कैसे हो गये। नेत्रों में जल भर आया। अर्धस्फुट स्वर में मैंने कहा-"मैं तो आज से आपका हो गया। आपकी जो इच्छा हो करें।"

उस समय बाबाजी महाशय ने अपने हाथ से मेरे सब ताबीज खोलकर पुष्करिणी में फिकवा दिये। एक रुद्राक्ष भी था, उसे रख लिया। पहले से ही एक रुद्राक्ष की माला रखी थी उसी में उस रुद्राक्ष को भी डलवाकर उसे अपने हाथ में पहन लिया। लीलामय की क्या लीला थी, वे ही जानें।

उनके तकिये के नीचे कई तुलसी की मालाएँ थीं। उनमें से दो प्रसादी कर अपने हाथ से मेरे गले में बाँध कर मुझे आलिंगन किया और कहा-"आज से तेरे सब पाप-ताप और रोग-धोग मैंने लिए। तू निश्चिन्त होकर निताइ-गौर भज।" उस समय श्रीयुत रामदादा निकट ही बैठे तिलक कर रहे थे। उनसे कहा-"राम, इसे एक बार आलिंगन कर। रामदादा ने आलिंगन कर चिरकाल के लिए मुझे कनिष्ठ भ्राता के रूप में अंगीकार किया। पर उस समय श्रीगुरुदेव ने मुझे मंत्र नहीं दिया। क्यों नहीं दिया, वे ही जानें। मुझे भी उनसे कुछ कहने का साहस न हुआ। देखते-देखते जगन्नाथदेव का नवयौवनकाल आ उपस्थित हुआ। उस दिन इच्छामय बाबाजी महाशय ने सबेरे सबसे कीर्तन करने को कहा। कीर्तन खूब जोर से हो रहा था, उसी समय घनघोर वृष्टि होने लगी। ऐसा लगा कि कीर्तन बन्द हो जायेगा। पर बन्द होना तो दूर पहले से और भी अधिक आनन्दोन्मत्तता के साथ होने लगा। उसी समय बाबाजी महाशय ने कई लोगों को मंत्र दिया। मैं मन ही मन सोचने लगा कि क्या मैं ही वंचित रहूँगा? अन्तर्यामी बाबाजी महाशय मेरे मन की बात जान गये। मुझे भी अपने निकट बुलाकर आलिंगन प्रदान कर कान में मंत्र सुना दिया। मैं अप्राकृत शांति-सागर में डूब गया। मन ही मन गुरुदेव के चरणों में आत्म-समर्पण कर घर लौट आया।

रात्रि में गुरुदेव के चरण दर्शन करने फिर गया। मेरे मन में कई दिन से कुछ सन्देहमूलक प्रश्न उठ रहे थे। सोचकर गया था कि आज गुरुदेव से सब शंकाओं का समाधान कर लूँगा। पर उस समय वे विश्राम कर रहे थे, इसलिए कुछ नहीं कहा। तो भी अन्तर्यामी गुरुदेव ने सब कुछ जान लिया। उन्होंने अर्धस्फुट स्वर में एक-एक कर मेरे सारे संदेह दूर कर दिये। फिर कहा-"देख यह सब तेरे लिए है। इसे सर्व-साधारण के सामने प्रकट करने से भजन में विघ्न होगा। इसलिए प्रकाशित किसी के सामने न करना।" मैं केवल गुरुदेव के दोनों चरण वक्ष से लगाकर सुनता रहा। मुख से कुछ न कह सका। कुछ ही देर बाद देखा कि गुरुदेव निद्रित हैं। मैंने उनके दोनों चरण धीरे-धीरे तकिये पर रखे और दूसरे स्थान पर जाकर सो गया।

अयाचित कृपाकारी परमदयाल श्रीगुरुदेव की अद्‌भुत कृपा का मैं कहाँ तक वर्णन करूँ। आज भी उनकी कृपा का प्रति क्षण अनुभव कर रहा हूँ। पर उसे व्यक्त करने के लिए मेरे पास उपयुक्त शब्द नहीं हैं।

जोगेनबाबू के घर

एक दिन जोगेनबाबू बाबाजी महाशय को रसिकबाबू के बगीचे से अपने घर ले गये। उनके बड़े लड़के यतीन ने देश-देशान्तर से बहुत-से बहुमूल्य कबूतर मँगाकर पाल रखे थे। बाबाजी महाशय ने पूछा-"यतीन, इन्हें क्यों पाल रखा है?"

यतीन—ये नाना प्रकार से नृत्य करते हैं; देखकर अच्छा लगता है।

बाबाजी—तुम्हें देखने में अच्छा लगता है, इसलिए इन्हें बाँधकर रखना ठीक नहीं। इन्हें छोड़ दो।

यतीन सिर नीचा किये खड़े रह गये। बोले कुछ नहीं। बाबाजी महाशय ने भी फिर कुछ नहीं कहा। थोड़ी देर में न जाने क्या सोचकर जोगेनबाबू के घर की नाली साफ करने लगे। साथियों के बहुत मना करने पर भी न माने। यह लीलामय की क्या लीला थी कौन जाने? नाली साफकर गंगा-स्नान को गये।

गंगा-स्नानकर प्रभुपाद श्रीयुत उपेन्द्रमोहन गोस्वामी के घर चले गये। इन्हें देखते ही प्रभुपाद ने आदरपूर्वक नाट्यमन्दिर में बैठाया। नाट्यमन्दिर में एक ओर कई जोड़े जूते रखे देख बाबाजी महाशय ने कहा-"प्रभु! आप लोग आचार्यसन्तान हैं; आपके घर चमड़े के जूते क्यों?" प्रभुपाद ने थोड़े लज्जित भाव से कहा-"क्या किया जाय बाबा। 'यस्मिन देशे यदाचार।' शहर में रहने से जूते बिना नहीं चलता।" 'यस्मिन देशे यदाचार' की बात बाबाजी महाशय को लग गयी। उन्होंने अपने विशेष कृपापात्र जवाहरलाल बसु से कहा-"देख जवाहर! यस्मिन देशे यदाचार। मुझे जूता-मोजा, धोती-कुरता, दुपट्टा चाहिए।" जवाहरबाबू प्रसन्न हो सब ले आये। उस दिन प्रभुपाद के आग्रह से प्रसाद उनके घर लेने को सहमत हुए। प्रभुपाद से नानारूप कथा-वार्ता चल रही थी, उसी समय जोगेनबाबू और यतीनबाबू ने आकर उनके चरण पकड़े और साश्रु गद्गद् कण्ठ से कहने लगे-"बाबा! हमारा अपराध क्षमा करें। आप जैसे ही घर छोड़कर आये हरेकृष्ण (यतीन के पुत्र) को भयानक ज्वर हो आया। वह आँख भी नहीं खोल पा रहा है। आपके चले बिना ठीक नहीं होगा।"

बाबा ने कहा—"क्या करूँ? प्रभुपाद ने प्रसाद को कहा है। उसे छोड़कर कैसे जाऊँ? तुम चिन्ता न करो। निताइचाँद की कृपा से सब ठीक होगा। मैं जाकर क्या करूँगा?" यतीनबाबू किसी प्रकार न माने। उनकी व्याकुलता देख बाबा ने संध्या समय जाने को कहा।

संध्या समय जोगेनबाबू गाड़ी से इन्हें ले गये। जाते ही देखा कि हरेकृष्ण आँखें बन्द किये निस्तब्ध लेटा है। इन्होंने जैसे ही बायाँ हाथ वक्ष पर रख कर 'जय निताइ!' कह हुँकारा, उसने आँखें खोल दी। इन्होंने कहा-"क्यों रे! क्या बात है? उठ।" इतना कह उसे उठाया और आलिंगन कर जैसे ही छोड़ा, वह स्वस्थ की तरह चलने-फिरने लगा। यतीन बाबू के विस्मय और आनन्द की सीमा न रही। कुछ देर बाद उन्होंने बाबाजी महाशय से कहा-"उस समय अपनी बुद्धि के दोष से आपकी आज्ञा का पालन न कर सका। अब आज्ञा दें तो कबूतरों को छोड़ दूँ।" बाबा महाशय ने मृदु हास्य के साथ कहा-"निताइचाँद की इच्छा से अभी रहने दो। पीछे उनकी जैसी इच्छा होगी, वैसा होगा।" इतना कह जोगेन बाबू से बोले-"जोगेन, यस्मिन देशे यदाचार, आज थियेटर देखना है।" सुनते ही जोगेन बाबू गाड़ी की व्यवस्था करने लगे।

श्रीचैतन्य-लीला दर्शन

इसके पूर्व एक दिन प्रसिद्ध लेखक और नाट्य कला-विशेषज्ञ गिरीशचन्द्र घोष बाबाजी महाशय के दर्शन करने आये थे। उन्हें खाँसी, दमे की इतनी शिकायत थी कि ठीक से बोल भी नहीं पा रहे थे। गले में तरह-तरह के गंडे-ताबीज पहने थे। बाबाजी महाशय ने कहा-"आपने खाँसी-दमा के लिए जो इतने गंडे-ताबीज पहन रखे हैं, इन सबको फेंक दें, निताइचाँद मंगल करेंगे।"

गिरीशबाबू बाबाजी महाशय के प्रति विशेष श्रद्धा रखते थे, तो भी इस बात पर पूरा विश्वास न कर सके। उन्होंने सब गंडे-ताबीज उतार कर जेब में रख लिए। बाबाजी महाशय उनका आन्तरिक भाव जान गये। फिर भी अयाचित भाव से कृपाकर उन्हें आलिंगन किया। इनके सुशीतल वक्ष का स्पर्श पाते ही उन्होंने परम शांति का लाभ किया। उनका रोग सदा के लिए न जाने कहाँ चला गया। उसी दिन से गिरीश बाबू की अभिलाषा थी कि एक दिन बाबाजी महाशय को अपने थियेटर-हाल में ले जाकर थियेटर दिखाएँ। आज यह शुभ दिन आ गया। क्षण भर पहले ही बाबाजी महाशय ने जोगेनबाबू से थियेटर देखने की इच्छा प्रकट की थी।

पता नहीं किसकी प्रेरणा से लगभग पाँच बजे बाबू गिरीशचन्द्र घोष दर्जीपाड़ा आये और बाबाजी महाशय को देखते ही कहने लगे-'बाबा आज श्रीचैतन्य लीला दिखाई जायगी, कृपाकर चलें तो अच्छा हो।' बाबाजी महाशय मृदु-भाव से हँसकर बोले 'अच्छा, निताइचाँद की इच्छा है तो चेष्टा की जायगी।' गिरीशबाबू प्रसन्न हो दण्डवत् प्रणाम कर चले गये।

यथासमय जोगेनबाबू ने गाड़ी की व्यवस्था कर दी। बाबाजी महाशय दीनबन्धु काव्यतीर्थ आदि कुछ

अन्तरङ्ग भक्तों के साथ गाड़ी में बैठ गये। दूसरे और साथियों के लिए दीनबन्धुबाबू ने पृथक् गाड़ी की व्यवस्था कर दी। थियेटर शुरू होने का समय हो आया, गिरीशबाबू बाबाजी महाशय का इन्तजार कर रहे थे। वे जैसे ही बाबू लोगों के वेश में आकर पहुँचे, गिरीशबाबू ने प्रथम श्रेणी में सबके बैठने की व्यवस्था कर दी।

अभिनय आरम्भ हुआ। आनन्द की अवधि न रही। आज का आनन्द अन्य दिनों की अपेक्षा दूना है। भक्त समागम से ही भगवान् अथवा भगवान् के गुण-गान का अधिक विकास होता है। बाबाजी महाशय आनन्द विभोर हो बीच-बीच में हुंकार कर उठते हैं और उनकी हुंकार के साथ ही मानो आनन्द का फव्वारा फूट निकलता है। जो पात्र जिस साज में सजकर स्टेज पर आता है, वह उसी ढंग से भाव-विभोर हो अभिनय करता है। ऐसा लगता है जैसे अभिनेता और अभिनेत्रियाँ अपने व्यवसाय की बात भूलकर प्रेम-विभोर हो अपना-अपना काम कर रहे हैं। माँ योगमाया की कृपा से सब ठीक चल रहा है, पर जैसे ही माधाइ कलसी का टुकड़ा हाथ में लेकर निताइ को मारने को हुआ, बाबाजी महाशय आवेश में गों-गों शब्द करते हुए बेहोश होकर गिर पड़े। चेन, घड़ी, कोट, जूते आदि वस्तुएँ चारों ओर बिखर गईं। दीनबन्धु काव्यतीर्थ महाशय ने हड़बड़ाकर जैसे ही उन्हें पकड़ना चाहा वे भी उनके स्पर्श से प्रेमाविष्ट हो नाचने लगे। जिसने-जिसने भी उन्हें स्पर्श किया, चाहे वह कितना बड़ा पाखण्डी क्यों न था, स्पर्श करते ही प्रेमविभोर हो नाचने लगा। अभिनय करने वाले भी न जाने कैसे हो गये। उस दिन अभिनय और आगे न हो सका। दूसरे दर्शक लोग चले गये, गिरीशबाबू आदि बाबाजी महाशय के शरीर में एक साथ नाना प्रकार के सात्विक विकारों को देख विस्मित हो गये। साथी लोग उनकी सेवा शुश्रुषा में लग गये। सभी कातर स्वर से नाम करने लगे। बहुत देर पीछे उन्हें कुछ होश आया। सामने गिरीशबाबू को देखते ही उन्हें आलिंगन कर कहा-"धन्य है निताइचाँद की कृपा! प्रभु की लीला जितनी मनोहर है, उसका प्रदर्शन भी उसी भाव से हुआ। प्रभु की नित्यलीला अब भी प्रत्यक्ष है। निताइ करें, महाप्रभु की यह सुमधुर लीला-क्रीड़ा जनसाधारण के हृदय में घर कर जाय।" गिरीशबाबू ने हाथ जोड़कर कहा-"देखिये, पहले मेरे मन में यह अभिमान था कि यह सारी लीला मैंने ही श्रेणीबद्ध कर लिखी है, पर आपकी कृपा से और आपके संग के प्रभाव से अब मैं देख रहा हूँ कि इस लीला को लिखना और प्रदर्शित करना तो दूर की बात है, मैंने इसको जरा भी समझा तक नहीं और न मैं इसे हृदयंगम ही कर सका। यह लीला तो स्वतः ही प्रकट है। मैंने अपने जीवन का बहुत समय यों ही खो दिया। मैं अपने कर्मों के बारे में सोचने लगता हूँ तो सारा संसार सूना-सूना लगता है। अब मुझ जैसे महापापी के उद्धार की आशा नहीं। पर उस दिन आपके मुख से कीर्तन सुना था, 'जा गेछे जा गेछे जा, जा आछे सामालो ता, एखनओ समय आछे भाई!!" उसी दिन से मेरे हृदय में थोड़ी आशा का संचार हुआ है। आप कृपा कीजिये। जो बीत गया वह तो बीत ही गया, अब थोड़ा-बहुत जो भी समय बचा है, उसे इधर-उधर के बेकार के कामों में और झूँठे अभिमान में नष्ट न करूँ। उम्र अधिक हो चुकी है, शरीर शिथिल हो गया है, पर वासना दिनों-दिन बलवती होती जा रही है। जिन्दगी भर इस वासना की गुलामी की, पर यह कभी प्रौढ़ा या बूढ़ी न हुई। दिन पर दिन तरुण ही होती गई।" बाबाजी महाशय गिरीशबाबू की ऐसी अनुतापभरी बातें सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्हें आलिङ्गन कर और उपस्थित सभी लोगों से विदा ले वे जोगेनबाबू के घर लौट आये।

शव को प्राणदान

दूसरे दिन बड़ी जल्दी उठकर बाबाजी महाशय ने फणी और राधाविनोद से कहा, 'देखो! तुम दोनों अलग-अलग रास्तों से समानभाव से दौड़ते हुए नीमतला घाट चले जाओ। हम लोग आ रहे हैं।' आज्ञा पाते ही दोनों चले गये। लगभग साढ़े छह बजे जोगेनबाबू आदि बहुत से लोगों के साथ बाबाजी महाशय गङ्गा-स्नान को गये। बड़े आनन्द के साथ गङ्गा में तैर रहे थे, फणी और राधाविनोद की ओर आँख भी नहीं उठा रहे थे। दोनों उनकी आज्ञा का इन्तजार किये घाट पर ही बैठे थे और आपस में कह रहे थे, 'बाबाजी

महाशय ने क्यों तो हमें इतनी जल्दी दौड़कर यहाँ आने के लिए कहा और क्यों अब बात भी नहीं कर रहे!' ऐसा कहकर जैसे ही वे उनके सामने आये, वे पूछने लगे, 'क्यों, रास्ते में क्या देखा?' फणी बोला, 'देखा क्या? दो-एक बैलगाड़ियाँ और मारवाड़ी लोगों के साथ एक मुर्दा।' सुनकर बाबाजी महाशय जैसे अपने में खो गये और स्नान करने लगे। आधे घण्टे बाद फिर वही बात पूछी। उन्होंने भी वही उत्तर दिया। इस पर उन्होंने थोड़ा हँसकर कहा, 'देख तो आओ वे लोग मुर्दे का क्या कर रहे हैं? उनसे मुर्दा जलाने को मना करो।' फणी आदि ने जाकर मारवाड़ियों से मुर्दा जलाने को मना किया, पर उन लोगों ने इनकी बात पर कुछ ध्यान न दिया। दूसरी बार जोगेनबाबू को भेजा। जोगेनबाबू के कहने पर वे बाबाजी महाशय की प्रतीक्षा करने लगे। उसी समय वे तैरते-तैरते वहाँ जा पहुँचे। लगभग बीस साल की एक सधवा स्त्री का शव चिता पर रखा था। अभी आग नहीं लगाई गई थी। जोगेनबाबू की बातों से वे लोग फिर भी थोड़ा हिचकिचा रहे थे, पर बाबाजी महाशय को देखते ही न जाने कैसे हो गये। उन्होंने जैसे ही कहा, 'भाई, इसको नीचे उतारो', उन्होंने उस शव को नीचे उतार लिया। बाबाजी महाशय ने रामदादा को उस शव के सिरहाने और फणी तथा राधाविनोद को उसके दोनों ओर बैठाकर नाम करने का आदेश दिया और स्वयं उसके दोनों पैरों के अँगूठे पकड़कर नाम करने लगे। चारों ओर दर्शकों की भीड़ लग गई। सभी जोर-जोर से 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' नाम कर रहे हैं, और विस्मित होकर बीच-बीच में कभी बाबाजी महाशय के मुख की ओर देख लेते हैं और कभी उस शव की ओर। निताइचाँद क्या खेल खेलेंगे, किसी को पता नहीं। इतना सभी को निश्चय है कि कोई अलौकिक घटना घटेगी। आधे घण्टे बाद जैसे ही बाबाजी महाशय ने स्त्री के अँगूठे को उच्चस्वर से 'जय नित्यानन्द' कहकर झटका दिया, उसने आँखें खोल दीं। चारों दिशाएँ हरिध्वनि और जयध्वनि से गूँज उठीं।

मारवाड़ी लोगों के आनन्द की सीमा न रही। वह स्त्री चारों ओर विस्मित भाव से देखने लगी। बाबाजी महाशय बोले, "इन सबको पहचानती हो?" स्त्री ने आँखों से सम्मतिसूचक संकेत किया। तब उन्होंने एक मारवाड़ी से दूध लाने के लिए कहा। वह जल्दी जाकर एक पाव दूध ले आया। बाबाजी महाशय के आदेश से थोड़ा-थोड़ा दूध स्त्री को पिलाया गया; वह धीरे-धीरे पीने लगी। इस अभूतपूर्व घटना को देख सभी आश्चर्यसागर में डूब गये। सभी चित्र-पुत्तलिकावत् खड़े रह गये। सभी बीच-बीच में हरिध्वनि कर उठते। बिजली की तरह खबर फैल गई कि कहीं से एक साधु आया है, जिसने चिता पर से मुर्दे को उतार कर जिला दिया। चारों दिशाओं से लोग दौड़-दौड़ कर आने लगे। प्राय: डेढ़ घण्टे तक यह खेल होता रहा। फिर पता नहीं बाबाजी महाशय ने क्या सोचा, उन्होंने चारों-ओर देखकर स्त्री के अँगूठे छोड़ दिये। स्त्री ने भी धीरे-धीरे आँखें बन्द कर लीं। मारवाड़ी लोग उनके चरण पकड़ कर उसे बचाने के लिए कातर भाव से प्रार्थना करने लगे। वे बोले, 'भाई, जिस काम को गौराङ्ग महाप्रभु ने नहीं किया, उसे करना हम लोगों के लिए ठीक नहीं। वे चाहते तो क्या श्रीवास पण्डित के लड़के को बचा नहीं सकते थे? पर उन्होंने ऐसा नहीं किया। विधाता की लिखी बात को रद्द करने से मर्यादा नष्ट होती है, और यह निताइचाँद को पसन्द नहीं। पर नाम की शक्ति से मृत शरीर में प्राणों का संचार हो सकता है, यह निताइचाँद ने दिखा दिया।' रामदादा से बोले, 'राम! इस घटना को देखकर तुम्हारे मन में क्या आता है?' रामदादा ने कहा, "मैं क्या समझूँ? आपका खेल आप ही जानें।" इस पर वे थोड़ा हँसकर बोले, 'यह केवल नाम की शक्ति है। नाम के लिए तो ये बहुत ही सामान्य बात है। जिस काम को नामी भी नहीं कर सकते, उसे नाम अनायास कर सकता है। हम जिस बात की कल्पना भी नहीं कर सकते, नाम के आभास मात्र से वह सहज में हो जाती है। नाम सर्वशक्तिमान है; नाम के साथ नामी रहता है; एकमात्र नाम में विश्वास हो जाय तो फिर कुछ बाकी नहीं रहता। नाम की कृपा के बिना प्रेम नहीं मिलता और न भाव-राज्य में प्रवेश ही मिलता है। प्रत्यक्ष देखे बिना जीव को दृढ़ विश्वास नहीं होता, तभी प्रभु ने यह खेल

किया है।' इस प्रकार के उपदेश-वाक्यों से सभी को सन्तुष्ट कर और पुनः गङ्गास्नान कर वे जोगेनबाबू के निवास-स्थान को लौट आये।

सातकड़ि को जीवन-दान

एक दिन पुलिनदादा बाबाजी महाशय से अनुमति प्राप्त कर अपने घर अष्टप्रहर कीर्तन की व्यवस्था करने में लगे थे। हठात् उनके बड़े भाई कुञ्जबाबू के लड़के सातकड़ि को प्लेग हो गया। वे भागे गये बाबाजी महाशय के पास। जाकर बोले-"मैं अधिवास की तैयारी में लगा था, उसी समय घर के भीतर से संवाद आया कि सातू को प्लेग हो गया है। जाकर देखा तो उसकी अवस्था बहुत ही चिंताजनक थी। अब क्या करूँ?"

बाबाजी—तो नाम कीर्तन अभी रहने दो। फिर कभी देखा जायगा।

पुलिन—मुझे लगता है कि नाम बन्द करना उचित नहीं। आपकी जैसी इच्छा।

बाबाजी—तो जा व्यवस्था कर। मंगलमय नाम मंगल करेंगे।

पुलिनदादा प्रसन्न हो घर जाकर सब व्यवस्था करने लगे। यथासमय बाबाजी महाशय सदल वहाँ पहुँच गये। सातकड़ि को जाकर देखा तो कुञ्जबाबू व्याकुल हो कहने लगे-"बड़ी विपद है बाबा, क्या करें! न जाने शुभ कार्य में इतना विघ्न क्यों!"

बाबाजी—मंगलमय प्रभु कभी मंगल छोड़ अमंगल नहीं करते। हम नासमझी के कारण उनके ऊपर मिथ्या दोषारोपण करते हैं। व्यवहार में हो या परमार्थ में, आगे बढ़ाने के लिए परीक्षा तो देनी ही पड़ती है। परीक्षा के बिना प्रभु कैसे अंगीकार कर सकते हैं?

कुञ्ज—इस प्रकार की परीक्षा में उत्तीर्ण होना हमारे लिए संभव है क्या?

बाबाजी—यदि हम याद रखें कि प्रभु मंगलमय हैं तो कोई चिंता नहीं। विपद तो आयेगी ही। विपद के बिना परीक्षा कैसे होगी?

कुञ्ज—तो अब करना क्या चाहिए? अधिवास-कीर्तन की सब व्यवस्था हो गयी है। बहुत से लोग भी आ गये हैं। सातू की अवस्था तेजी से खराब होती जा रही है।

बाबाजी—भय की कोई बात नहीं। मेरा विश्वास है कि हमारी मानसिक दृढ़ता की परीक्षा के लिए ही निताइचाँद की यह लीला है। तुम लोग उनके सातू को उन्हें समर्पण कर अधिवास आरम्भ करो। सातू के लिए चिंता करने की आवश्यकता नहीं।

यह सुन सब आश्वस्त हुए। उन्होंने जान लिया कि सातू का भार बाबाजी महाशय ने स्वयं ले लिया है। बाबा के हाथ में पीच की एक लाठी थी। उसे सातू के निकट उसके बिछौने पर रख उन्होंने नीचे जाकर अधिवास-कीर्तन आरम्भ किया। अधिवास कीर्तन में उस दिन जैसे आनन्द की वृष्टि हुई, वैसी शायद पहले कभी नहीं हुई थी। किसी को बाह्य-स्मृति नहीं रही थी। रात्रि साढ़े ग्यारह बजे के लगभग कीर्तन समाप्त हुआ।

दूसरे दिन बहुत सबेरे प्रातःकृत्य समापन कर बाबाजी महाशय ने अष्टप्रहर-कीर्तन आरम्भ किया। नामानन्द जैसे-जैसे बढ़ता गया, सातू की अवस्था भी खराब होती गयी। बाबाजी महाशय कीर्तन में उद्दण्ड नृत्य करते-करते हठात् सातकड़ि के निकट जा उसके वक्ष पर बायाँ हाथ रख वहीं बैठ गये। घर के सब लोग कहने लगे-'अब सातू के लिए कोई चिंता नहीं।' पर कुछ लोग कुञ्जबाबू के अंधविश्वास की परस्पर आलोचना किये बिना न रह सके। संकीर्तन वेग बढ़ता गया। आनन्द की अवधि न रही। बाबाजी महाशय बीच-बीच में संकीर्तन में जाकर नृत्य करते, फिर सातू के पास आ बैठते।

धीरे-धीरे सातू की अवस्था सुधरने लगी। चार बजे के लगभग वह उठ बैठा और हँस-हँसकर सबके साथ बातें करने लगा। दूसरे दिन कीर्तन समाप्त हुआ। सातकड़ि कीर्तन-स्थल पर जाकर लोटपोट होने लगा। बाबाजी महाशय उसे अपने साथ गंगा-स्नान करने ले गये। यह देख अविश्वासी लोगों के हृदय में परिवर्तन हुआ। उनमें श्रद्धाभक्ति का अंकुर फूटा। वे नाम के असाधारण प्रभाव, बाबाजी महाशय की अपूर्व शक्ति और कुञ्जबाबू तथा पुलिनदादा के अकपट विश्वास की प्रशंसा करने लगे।

अतीनदादा का पुनर्जीवन

रसिकबाबू के बगीचे में रहते समय एक दिन अतीनदादा, कुञ्जबाबू आदि कई लोग बाबाजी महाशय के दर्शन करने गये। उस दिन न जाने किस कारण वे अभी तक लेटे हुए थे। कुछ स्त्रियाँ उन्हें पंखा कर रही थीं। पास बैठे कुछ लोगों से वे नानारूप तत्व-कथा कह रहे थे। अतीनदादा प्रभृति के आते ही स्त्रियाँ चली गयीं।

स्त्रियों को देख अतीनदादा के मन में शंका जागी। उन्होंने मन ही मन शंका समाधान करने की बहुत चेष्टा की। पर शंका बनी रही। कुछ देर बाद बाबाजी महाशय के आदेशानुसार ये लोग कलकत्ते लौट आये। पर मार्ग में ही अतीनदादा को इतना तेज ज्वर हो आया कि साथियों को उन्हें गाड़ी करके घर भेजना पड़ा।

कई दिन हो गये डाक्टरों का इलाज करते-करते, पर ज्वर निरन्तर बढ़ता गया। अतीन समझ गये कि गुरुदेव के ऊपर व्यर्थ संदेह करने के कारण ही उनकी यह अवस्था हुई है। इसलिए अनुताप की अग्नि उनके हृदय में धू-धूकर जलने लगी। इधर बाबाजी महाशय उत्कंठित हो साथियों से पूछने लगे-"कई दिन से अतीन क्यों नहीं आ रहा है? उस पर कोई विपत्ति तो नहीं आ गयी है!" साथी समझ गये कि निश्चय ही अतीनदादा विपदग्रस्त हैं, तभी उनके लिए बाबाजी महाशय इतने उत्कंठित हैं।

चार-पाँच दिन बाद बाबाजी महाशय दर्जीपाड़ा में जोगेनबाबू के घर गये हुए थे। वहीं संवाद मिला कि अतीन की तबियत बहुत खराब है, डाक्टरों ने जवाब दे दिया है। उसी समय वे रामदादा, गिरीनदादा और फणी आदि को साथ ले अतीनदादा के घर गये। उनके पिता ने देखते ही दण्डवत् प्रणामकर कहा-"बाबा! अतीन की दशा बड़ी शोचनीय है, डाक्टर कुछ नहीं कर पा रहे हैं।"

बाबाजी—इसमें डाक्टर या तुम्हारे किये कुछ नहीं होने का। अच्छा बताओ, आज से अतीन मेरा है न।

पिता—अतीन आज से आपका है।

बाबाजी—मैं अतीन का जो चाहूँ करूँ, तुम कुछ कहोगे नहीं न?

पिता—जी आपकी जो इच्छा हो करें।

बाबाजी महाशय ने भीतर प्रवेश किया। देखा कि अतीन भूमि पर गद्दे पर लेटे रोग की यन्त्रणा से छटपट कर रहे हैं। वे उन्हें उल्टा लिटाकर पीठ पर चढ़ गये और सिर से पैर तक उन पर पेशाब कर फणी से शतधौत घृत की मालिश करने को कहा। मालिश के पश्चात् अतीन के पिता से कहा-"तुम्हारे घर में ऊँ पूजा के समय का जो गंगाजल भरा रखा है, उसमें से आठ-दस कलसी जल लाओ तो। इसे स्नान कराना है।" यह सुन कुछ लोग आतंकित हुए। वात-श्लेष्मा का रोगी, इतने ठंडे जल से स्नान करेगा, तो मरेगा कि रहेगा? पर अतीन के पिता मन्त्र-मुग्ध की तरह उनकी आज्ञा का पालन करते रहे। स्नान कराने के पश्चात् कपड़े पहनाकर बाबा ने अतीन को आलिंगन किया और पूछा-"क्यों, अब स्वस्थ है न?" उन्होंने उत्तर दिया-"आप की कृपा से पूर्ण स्वस्थ हूँ।"

बाबाजी—अब सावधान रहना। मन में दृढ़ विश्वास रखना। विश्वास ही है जीवन की मूल भित्ति।

अतीन—एकमात्र आपकी कृपा ही मेरा सम्बल है। इस अपराधी अविश्वासी जीव को जब जीवनदान किया है, तो और जो कुछ इसे करना है आप ही को केश पकड़कर करवा लेना होगा।

बाबाजी—कर्ता निताइचाँद हैं। उन्हीं का स्मरण करना। अच्छा, मैं चला।

अतीन—मैं भी आपके साथ चलूँगा।

बाबाजी—आज विश्राम कर। कल विराट नगर-कीर्तन निकलेगा। उसमें योग देना।

इतना कह बाबा महाशय जाने लगे। अतीन के पिता उनसे नानारूप कातरतापूर्ण प्रार्थना करने लगे। उनके जाने के पश्चात् लोग बाबाजी महाशय के सम्बन्ध में परस्पर कहने लगे-"कैसा आश्चर्य! ऐसा महापुरुष देखना तो दूर, कभी सुना भी नहीं। उनके दर्शनकर हम धन्य हुए।"

कलकत्ते में विराट संकीर्तन

इस घटना के सम्बन्ध में श्रीयुत बिहारीदास बाबाजी ने जो लिखा है, वह इस प्रकार है:-

एक दिन गोवर्द्धनदास मुझसे बोले, 'बिहारीदादा, कल दर्जीपाड़ा से बाबाजी महाशय एक विराट नगर-संकीर्तन निकालेंगे। तुम जाओगे?' मैं बोला, 'भाई, कल तो जाऊँगा ही, मेरी बड़ी इच्छा है कि आज ही बाबाजी महाशय के दर्शन करूँ।' मेरी बात सुनकर गोवर्द्धन बड़े उत्साह से बोले, 'अच्छा, मैं भी चलूँगा।' दोनों लगभग चार बजे जोगेनबाबू के घर पहुँचे। बाबाजी महाशय लेटे हुए थे। जोगेनबाबू से पूछा तो वे बोले, 'सुबह अतीनबाबू को वातश्लेष्मा ज्वर विकार से मुक्त कर जैसे ही यहाँ आये, तभी से भयानक ज्वर हो रहा है।' मैं बोला, 'सुना है कल एक विराट नगर-कीर्तन के लिए आदेश दिया है?'

'आदेश तो दिया है, पर मैं यही सोच रहा हूँ कि ऐसे भयानक ज्वर को लेकर कीर्तन करेंगे कैसे!'

इस तरह बातें हो रही थीं कि बाबाजी महाशय ने पुलिनबाबू आदि कुछ लोगों को आदेश किया, 'देखो, कल विराट नगर-कीर्तन निकलेगा, तुम लोग जाकर सब व्यवस्था करो। पहले पुलिस से रास्ते का पास बनवा लेना; देखना ऐन मौके पर कोई गोलमाल न हो।'

पुलिन—किस-किस रास्ते का पास?

बाबाजी—बीडन स्ट्रीट, कार्नवालिस स्ट्रीट, हैरिसन रोड, गङ्गा का पुल, नीमतला स्ट्रीट इत्यादि।

पुलिन—हैरिसन रोड पर एक मस्जिद है, रास्ते का पास होते हुए भी मस्जिद के पास से बाजा कीर्तनादि लेकर जाने नहीं देते। वहाँ क्या होगा?

बाबाजी—इसके बारे में सोचने का भार तो तुम्हें दिया नहीं। जिनका काम है वे करेंगे। श्यामलाल गोस्वामी, बलाइचाँद गोस्वामी आदि छह प्रभुसन्तानों को निमंत्रण देना। उनसे कहना कि कल चार बजे के लगभग कृपा कर जोगेनबाबू के घर पधारें। अन्यान्य भक्त लोगों से बीडन गार्डन पर उपस्थित होने के लिए कहना।

लेटे-लेटे इतना कह पुलिनदादा को विदा किया। भयानक ज्वर था और इतनी श्लेष्मा कि घण्टे भर में पीकदान भर जाता था। इतने पर भी वे कोई क्लान्ति अनुभव नहीं कर रहे थे। सभी के साथ हँसते-हँसते भगवत्कथा कह-सुन रहे थे। यदि कोई शरीर की अस्वस्थता के बारे में पूछता तो हँसकर उसकी उपेक्षा कर देते। रात लगभग आठ बजे पुलिनदादा लौटे। पुलिनदादा को देखते ही बोले, 'मैंने जिस-जिस काम के लिए कहा था हो गया?'

पुलिन—जी हाँ, सब ठीक है, पर आपके शरीर की अवस्था देख हम लोगों का मन बड़ा खराब हो रहा है। कीर्तन यदि दो दिन बाद रखें तो कैसा?

बाबाजी—चिन्ता का कोई कारण नहीं। किसी विशेष कारण से मुझे ज्वर हुआ है; कल सब ठीक हो जायगा। तुम अपने भाईसाहब से कहकर प्रभुसन्तानों के लिए छह जोड़ा वृन्दावनी कपड़ा लेकर कल सुबह जल्दी आ जाना।

दूसरे दिन सुबह पुलिनदादा आदेशानुसार छह जोड़े वृन्दावनी वस्त्र और अन्यान्य आवश्यक वस्तुएँ लेकर उपस्थित हुए। बाबाजी महाशय पुलिनदादा के कार्यकौशल से प्रसन्न होकर बोले, 'फूलमाला आदि सबका प्रबन्ध हो गया?'

पुलिन—जी हाँ, सामान की कोई चिन्ता नहीं; चिन्ता है सिर्फ आपके शरीर की।

बाबाजी—देखो, निताइचाँद का काम है संकीर्तन निकालना, सो वह निश्चय ही करेंगे; वे इस पुतली को नचाना न चाहें वह अलग बात है। इसके लिए हम लोगों को सोचने की कोई आवश्यकता नहीं। भगवान् ने अर्जुन को लक्ष्यकर हम लोगों को शिक्षा दी है-'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।' निताइ ने कर्म करने की आज्ञा और शक्ति दी है, कर्म करे जाओ, फलाफल वे जानें।

पुलिनदादा चले गये। लगभग चार बजे बहुत-से लोग बाबाजी महाशय के पास आये तो देखा कि वे अब भी लेटे हुए हैं। जैसे ही मैं, अतीनदादा और अन्य

कुछ लोग पहुँचे वे उठकर बैठ गये। उस समय भी उन्हें काफी ज्वर था। उन्होंने अतीनदादा से पूछा, 'अतीन कैसे हो ?'

अतीन—कल आपके श्रीचरण-दर्शन करने के बाद से मुझे कोई रोग नहीं है। आज अच्छी तरह आहारादि कर पैदल चलकर आया हूँ।

बाबाजी—निताइचाँद की कृपा की जय बोलो।

चार बजे उन्होंने रामदादा से नाम आरम्भ करने को कहा। आज्ञा पाकर रामदादा नाम आरम्भ कर जोगेनबाबू के घर के बाहर रास्ते पर आ खड़े हुए। बाबाजी महाशय अभी तक बैठक में ही थे। भक्त लोग सोच रहे थे कि शायद बाबाजी महाशय कीर्तन में नहीं निकलेंगे। क्षण भर बाद ही, पता नहीं क्या सोचकर, वे 'जय निताइ' कह कर हुंकारते हुए खड़े हो गये। उपस्थित भक्तजनों के प्राणों में विद्युत-प्रवाह की भाँति आनन्द का संचार हो गया। सभी एक स्वर से हरिबोल कर उठे। बाबाजी महाशय ने फणी से कहा, 'श्रीधाम नवद्वीप से श्रीगुरुदेव के प्रसादी डोर-कौपीन-बहिर्वास आये हैं, उन्हें और पीच की लाठी ले आ।' फणी के आदेशानुसार डोर-कौपीन आदि लाकर दिये। बाबाजी महाशय ने उन्हें धारण किया। तत्पश्चात् सिरसे एक बहुत ही गन्दा चिथड़ा बाँधा और बायें पैर के निचले हिस्से में भी जहाँ से माँस निकाल कर फेंका था, एक चिथड़ा बाँधा और हाथ में एक लाठी ली। फिर कीर्तन में आते ही 'प्रकट अप्रकट लीलार दुइ तो विधान। प्रकट लीलाय करेन प्रभु निजे नृत्य-गान। अप्रकटे नाम रूपे साक्षात् भगवान, कीर्तन-विहारीरूपे सदा वर्तमान' आदि वन्दना कर 'आबार बोलो हरिनाम, आबार बोलो' नाम आरम्भ किया। छहों प्रभुसन्तान नये वृन्दावनी वस्त्र पहने एक-एक खुन्ती हाथ में लिये कीर्तन के आगे-आगे चल रहे थे। उनके पीछे-पीछे बहुत से लोग झंडियाँ लिये चल रहे थे। अपूर्व दृश्य था। रास्ते के दोनों ओर कहीं बिन्दुमात्र जगह नहीं बची थी, चारों ओर आदमी ही आदमी दीख रहे थे। बाबाजी महाशय साथियों सहित नृत्य-कीर्तन करते हुए बीडन गार्डन पहुँचे। वहाँ पहले से ही बहुत से भक्त कीर्तन की प्रतीक्षा कर रहे थे। बाबाजी महाशय को देखते ही सब हरिध्वनि करते हुए कीर्तन में आकर योगदान करने लगे। देखते-देखते चारों ओर से बहुत से कीर्तन के दल खोल-करताल के साथ कीर्तन करते हुए संकीर्तन में आ मिले।

प्रभुपाद श्रीयुत अतुलकृष्ण गोस्वामी महाशय बगीचे में घूम रहे थे। संकीर्तन-ध्वनि सुनकर जैसे ही वे पास आये, बाबाजी महाशय ने उन्हें दृढ़ आलिंगन किया। प्रभुपाद अस्वस्थ होने के कारण संकीर्तन के साथ न जा सके। बाबाजी महाशय ने आविष्ट होकर पद आरम्भ किया:-

बाँध रे बाँध कोमर साज रे जुद्धेते।
शासिब हरिनामे, नाशिब राधाप्रेमे[1]
आछे जत असुर जगते॥
एबे अस्त्र ना धरिबो, प्राणे कारेओ ना मारिबो।
(आमार प्रभु नित्यानन्द बोले)
हृदय शोधिबो सबार प्रेमेते।
कलिराज जदि आसे[2], माताबो[3] निताइ रसे।
घूराबो[4] देश-विदेशे ताहारे।
विवेक वैराग्य दिबो, कलिर दोष ना राखिबो,
नाम प्रेम बिलाइब[5] जगते।।
(निताइ दासेर अनुदास हये)
काल कलि दमन हलो, नवग्रहेर दोष गेलो,
राहु केतु स्थिर हलो, नाम शुने सबार मुखेते।
शनैश्चर हरि बोले, सूर्य नाचे बाहु तूले[6],
धन्य रे एइ कलिकाले गौरशशि जगते।।
चित्त सन्द तम गेलो, माया पराजय हलो,
बाहु तूले भाई हरि बोलो, माया गेलो मायापुरेते।
सृष्टि स्थिति प्रलय, गुणत्रय करि लय,
प्रेमेर उदये हृदय, माते राधा भावेते।।
देव देवी देवत्व छाड़ि, हलो सब नर नारी,
(अभिमाने प्रेम मिले ना बोले[7])
भजिये गौरहरि, सबाइ चले व्रजेते।
भूक्ति मुक्ति तुच्छ करि, सबे बोले गौरहरि,

1. हरिनाम से शासन और राधा प्रेम से नाश करूँगा। 2. आये। 3. मतवाला करूँगा। 4. घुमाऊँगा। 5. लुटाऊँगा। 6. उठाकर। 7. इस कारण से।

चाँद निताइयेर पर स्मरि, मग्न सबाइ प्रेमेते।
आश्रम सह वर्ण चारि, बालक वृद्ध पुरुष नारी,
सबाइ प्रेमेर अधिकारी, गौरहरि बोलो भाइ मुखेते।
म्लेच्छ जवन पशु-पाक्षी, स्थावर जंगम नामे सुखी,
जगते आर नाइक बाकी, निताइ चाँदेर कृपाते।
की पाषण्ड किवा भण्ड, की सुधीर की दुर्दण्ड,
एड़ाइते जम-दण्ड, गौरहरि बोले मुखेते।
हेलाय श्रद्धाय निले नाम[1], पूरे भाई मनस्काम,
शुनेछो कि एमन[2] नाम, आर कोनो जुगे जगते?
स्वभावेर शोभा बलि, दम्भे दुइ बाहु तूलि,
आर कतोकाल हरि भूलि, रबिरे[3] भाई भ्रमेते।
सृष्टि कर्ता भगवान, शक्ति दिये जीव चालान,
शक्ति हले[4] अन्तर्धान, चैतन्य नाहि देहेते।
हेनो[5] प्रभु पासरिये[6], मायार दासत्व लये,
दिवानिशि विभोर हये, मत्त सदा कामेते।
कर्म ज्ञान योग भक्ति, करिते नाहिक शक्ति,
करिलेओ भुक्ति मुक्ति, स्पर्श ना पाय प्रेमेते।
कर्मफले गतागति, स्वर्ग अपवर्ग प्राप्ति,
ज्ञाने अङ्गकान्ति-प्राप्ति, निर्वाण हय ज्योतिते।
जोगे षड़ चक्र भेदे, कुण्डलिनी शक्ति जोगे,
जीव-आत्मा सहस्त्रारे, मिलाय परमात्माते।
वेद विधि अनुसारे, भक्ति जाजन करले पर,
शुद्ध भक्ति लाभ करे, (पाय) ईश्वर निष्ठा मनेते।
चौषट्टि अंगेते, नवधा भक्तिर पथे,
भजिले से नन्दसुते, स्वरूप जागे मनेते।
सत्-चित्-आनन्दमय कृष्णेर स्वरूप हय,
स्वरूप शक्ति प्रकाश पाय, मधुर वृन्दावनेते।
अन्य पथे पावा भार, साध्यसाधनेर पार,
स्वरूप शक्ति बिने आर, केहो ना पाय जगते।
ताई हरि व्रज छाड़ि, नवद्वीपे अवतरि,
नाम धरि गौरहरि निताइचाँदेर संगेते।
अजाचके जेचे देय, (बोले) के निबे के निबे आय,
मार खेये प्रेम विलाय, एमन के आछे आर जगते।
युगोचित नामधर्म, नाम लइते प्रेम मर्म,
प्रभुर सहित की सम्बन्ध जानाये देय नामेते।
सम्बन्ध हइले परे, मन चले व्रजपुरे,
भावावेशे रस भरे, सेवा पाबे व्रजेते।
पर रसे हले गति, जुगले हइबे मति,
गोपी भावे देहस्मृति, जुगल सेवाय कुंजेते।
साधने भाविबे जाहा, सिद्ध देहे पाबे ताहा,
आर केनो आहा आहा, करो रुचि नामेते।
निताइ गौर राधेश्याम, हरे कृष्णं हरे राम,
उच्चैःस्वरे करे गान, डूबे जाओ भाइ भावेते।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे,
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे मुखेते।
श्रीराधा गोविन्द, भजिले आनन्द,
पूर्ण पूर्ण पूर्णानन्द, नाहि इहार परेते।
अद्वय-ब्रह्म-तत्वसार, परमात्मार सुविचार,
भगवानेर सारात्सार, पाबि रे भाइ व्रजेते।
राधा-राधारमण-चरण, सउँरिये[7] बोले चरण,
निताइ गौर करि स्मरण, चरण देओ मोर शिरेते।
जदि आमाय चरण दिबे, दास नाम सार्थक हबे,
भक्ति शक्तिर उदय हबे, सेवा पाबो कुंजेते

(गोपीभावे)

अपूर्व कीर्तन! लगता है किसी को बाह्यज्ञान नहीं है। बड़े-बड़े पाषण्डी भी कीर्तन की लपेट में आकर उद्दण्ड नृत्य कर रहे हैं; प्रेमाश्रुओं से उनके वक्ष भीग रहे हैं। भीड़ का कुछ ठिकाना नहीं। गाड़ी, घोड़ा, ट्राम आदि का आना-जाना बन्द है। मन-प्राण को झकझोर देने वाली, अपूर्व गगन-भेदी नामध्वनि में दुकानदार भी अपना-अपना काम छोड़ योग दे रहे हैं। कुली मजदूर जो सिर पर बोझ लादे जा रहे हैं; वे भी लादे-लादे कीर्तन में नाच रहे हैं। जो जिस अवस्था में है, उसी अवस्था में संकीर्तन की ताल के साथ हाथ-पैर हिलाता हुआ प्रेमानन्द उपभोग कर रहा है।

संकीर्तन क्रमशः बीडन स्ट्रीट, कार्नवालिस स्ट्रीट आदि पार कर माँ सिद्धेश्वरी के आगे जा पहुँचा। माँ सिद्धेश्वरी को देखते ही बाबाजी महाशय न जाने कैसे हो गये। प्रेमावेश में भूमि पर गिरकर लोट-पोट होने लगे; आँसुओं से वक्षस्थल भीग गया। चारों ओर सैकड़ों आदमी थे, पर कोई न उन्हें पकड़ सका न स्थिर ही कर सका। चतुर भक्तगण भीतर के घेरे को संकीर्ण कर नाना प्रकार से शुश्रूषा करने लगे। बहुत देर बाद

1. श्रद्धा या अश्रद्धा से नाम लेने से। 2. ऐसा। 3, रहेगा। 4. होने से। 5, ऐसे। 6. भूलकर। 7. स्मरण कर।

बाह्यज्ञान होने पर वे पूर्ववत् नाम करते-करते हैरिसन रोड होकर गङ्गाजी की ओर चल पड़े।

एक व्यक्ति तेजी से बाबाजी महाशय के पास आकर बोला, "सामने एक मस्जिद है; उधर से गाते-बजाते हुए नहीं निकलने देते। हर समय वहाँ बहुत से मुसलमान रहते हैं। यदि कोई गाता-बजाता निकलता है तो वे लड़ने को तैयार हो जाते हैं।" बाबाजी महाशय बोले-"निताइ की इच्छा समझ कर तुम लोग नाम करते चलो; वे अपना काम आप करेंगे।" इतना कह वे स्वयं संकीर्तन-दल को पीछे छोड़ दौड़कर मस्जिद के सामने जा पहुँचे। मस्जिद के आगे साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम कर वहाँ के प्रधान मुल्ला के साथ कुरान शरीफ और हजरत मोहम्मद के दूसरे धर्मों के प्रति उदार भाव की बातें करने लगे। मुसलमान ये बातें सुनकर विस्मित भाव से बाबाजी महाशय की ओर देखने लगे। थोड़ी देर में वह विराट संकीर्तन दल दसों दिशाओं को कम्पित करता हुआ मस्जिद के सामने से निकल गया। किसी ने कोई बाधा न दी। यह देखकर सब आश्चर्यचकित हो गये। संकीर्तन दल के कुछ दूर निकल जाने पर बाबाजी महाशय ने पूर्ववत् मस्जिद को प्रणाम कर मुसलमानों से विदा माँगी, मुसलमानों ने बड़े प्रेम से उन्हें सलाम किया। वे भी उन सबको सलाम कर नाचते-नाचते वहाँ से चल दिये।

संकीर्तन सीधा गङ्गा-किनारे पुल के पास जगन्नाथ घाट पर जा पहुँचा। रास्ते में घाट पर और पुल पर तिल रखने को भी जगह न थी। सभी उन्मत्त थे। बाबाजी महाशय विभोर होकर नृत्य कर रहे थे; एकाएक न जाने क्या मन में आया वे उछाल मारकर गङ्गाजी में कूद पड़े। उस समय गङ्गा में पूरा ज्वार आया हुआ था, घाट का कोना-कोना जलमग्न था। बाबाजी महाशय आविष्ट भाव से आकण्ठ जल में उतर कर घाट के इस छोर से उस छोर तक जा रहे थे और 'श्रीचैतन्यचरितामृत' का एक-एक छंद पढ़कर उसकी व्याख्या कर रहे थे। अपूर्व व्याख्या! हम लोगों ने बहुत बार बहुत लोगों से श्रीचैतन्यचरितामृत की व्याख्या सुनी थी, पर आज की वह व्याख्या एकदम नई और सर्वचित्ताकर्षक थी। जिसे एक अक्षर भी सुनाई पड़ जाता था वह समझे चाहे न समझे, चित्रपुतली की तरह खड़ा होकर सुनने लगता था। आबाल-वृद्ध, युवा, स्त्री-पुरुष सभी विस्मित भाव से नीरव हो बाबाजी महाशय की ओर देख रहे थे। बहुत समय बाद वे किनारे पर आये और सूखे कपड़े पहन फिर से नाम-कीर्तन करने लगे।

इसी समय एक भद्रपुरुष एक थैले में बताशे लेकर आया और हाथ जोड़कर कहने लगा-"मैं यह कुछ बताशे लाया हूँ। मेरी इच्छा है कि आप अपने हाथों से इन्हें लुटायें। वे आनन्द से लुटाने लगे। संकीर्तन घाट को छोड़कर गङ्गा के किनारे-किनारे उत्तर की ओर जाने लगा। उसी समय एक व्यक्ति आकर बोला-"एक वकील आविष्टभाव से रास्ते के पास वाली पोर्ट कमिश्नर की रेललाइन के बीच नाच रहे हैं। उन्हें जरा भी होश नहीं है।" सुनकर बाबाजी महाशय ने आदेश दिया-"उन्हें संकीर्तन में ले आओ।" आदेशानुसार हममें से कुछ लोग जाकर उन्हें पकड़ लाये। वे हावड़ा कोर्ट के वकील श्रीयुत परेशचन्द्र दत्त थे। संकीर्तन में आकर भी वे पूर्ववत् नाचते रहे। संकीर्तन नीमतला स्ट्रीट पर माँ आनन्दमयी के आगे कुछ देर रुकता हुआ पुनः बीडन स्ट्रीट पर आया। रात्रि के लगभग नौ बजे थे; रास्ते के दोनों ओर थियेटर हाउस में खूब रोशनी हो रही थी। वाराङ्गनायें लम्पट जनों के साथ रास्ते में खड़ी नाना प्रकार से हास-परिहास कर रही थीं। उन पर दृष्टि पड़ते ही बाबाजी महाशय ने साश्रुनयन और गद्‌गद कण्ठ से 'गौरहरि बोल' कहकर उनकी ओर बताशे उछाल दिये। पता नहीं नाम की शक्ति से अथवा बाबाजी महाशय की इच्छाशक्ति के प्रभाव से वे मोद-प्रमोद छोड़कर 'गौरहरि बोल' कहकर उन बताशों को उठाने लगीं। उनमें से किसी-किसी की आँखों से आँसुओं की झड़ी भी बह निकली। वे साश्रुनयन और गद्‌गद कण्ठ से कहने लगीं-"धन्य महापुरुष! इन्हें देखकर हम जैसे महापापियों के हृदय में भी भक्ति भाव जाग उठा है। आहा! ऐसा प्राणों को मस्त कर देने वाला गगनभेदी मधुर कण्ठस्वर हमने कभी नहीं सुना।" इस प्रकार उन पाषण्डी, और विषयी लोगों के हृदय में भी प्रेम-भक्ति का बीज आरोपण कर लगभग दस बजे वे दर्जीपाड़ा में नयनचाँद स्ट्रीट पर योगेन मित्र के घर पहुँचे और कीर्तन समाप्त किया।

अपूर्व उद्धार

योगेनबाबू की बैठक में बहुत से चित्रपट थे। उनमें से एक चित्र नरक का भी था। पता नहीं इससे पहले इस चित्र पर बाबाजी महाशय की दृष्टि पड़ी थी या नहीं। आज जैसे ही उसे देखा, योगेनबाबू से बोले-"योगेन! इस चित्रपट को खोलकर लाओ तो।" योगेनबाबू ने जैसे ही चित्र लाकर दिया, वे ठीक बालक की तरह जोरसे रो-रो कर कहने लगे-"पापी और दुर्बल कलिहत जीवों के उद्धार के लिए परम दयाल, पतित-पावन, निताइ-गौराङ्ग का अवतार हुआ, फिर भी इतने जीव नरक में जायँ! श्रीहरिदास ठाकुर ने कहा है, कि स्थावर देहतक नाम की ध्वनि से मुक्त हो जाते हैं।" बस इतना कह उस चित्र को बीच में रख करताल के साथ 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' नाम कीर्तन करते-करते उसके चारों ओर परिक्रमा करने लगे। साथ ही ऐसे कातर भाव से निताइचाँद से प्रार्थना करने लगे कि सुनकर पत्थर का हृदय भी पिघल जाय। उपस्थित भक्तजनों के प्राण रोने लगे। थोड़ी देर में एकाएक सब एक स्वर से बोल उठे "आहा! कैसी करुणा! देखो तो चित्रपट की कैसी अवस्था हो गई!" वास्तव में चित्रपट की तत्कालीन अवस्था देख सब चकित हो गये। अंकित मूर्तियों की ओर देखकर लगता था जैसे वे अपने-अपने कर्मों के लिए कातर भाव से प्रभु से क्षमा-प्रार्थना कर रहे हैं और प्रभु मुक्त कण्ठ से उन्हें अभय-दान देकर गन्तव्य स्थान को भेज रहे हैं।

बहुत देर तक कीर्तनकर बाबाजी महाशय ने 'जय नित्यानन्द राम' कहकर चित्रपट को वक्ष से लगाया और योगेनबाबू से बोले 'देखो, निताइचाँद की कृपा से इन सबका उद्धार हो गया। सब लोग इन्हें प्रणाम करो।' सुनते ही सबने बाबाजी महाशय और उस चित्रपट को दण्डवत् प्रणाम किया। तब योगेनबाबू साश्रुनयन गद्‌गद कण्ठ से बोले, 'बाबा, मेरी क्या गति होगी? मेरे घर से चित्रपट के नरक के जीवों तक का उद्धार हो गया। आपके श्रीमुख से पत्थर को पिघला देने वाला, मनप्राण नचा देने वाला भुवनमङ्गल नाम सुनकर घोर पाखण्डियों तक के हृदय पिघल गये, पर मैं तो वही नरक का कीड़ा बना रहा। मेरा पाषाण-हृदय नहीं पिघला; मन-प्राण नहीं नाचे; यह सब देखकर भी प्राणों में भय का संचार नहीं हुआ। अपने पापों के लिए मैंने एक दिन भी व्याकुल हो आपके श्रीचरणों में क्षमा-प्रार्थना नहीं की। परकाल में अपनी गति की चिन्ता से एक दिन भी दो आँसू नहीं बहाये। प्रभु! मेरी क्या गति होगी?' इतना कह वे रोने लगे। बाबाजी महाशय ने उन्हें आलिङ्गन-दान से कृतार्थ कर कहा, 'डर की क्या बात है? नाम करो, परमदयाल निताइ-गौराङ्ग अवतार में कोई बाकी नहीं रहेगा। वे किसी की भी वासना अपूर्ण नहीं रखेंगे। जिस जीव को वे अङ्गीकार कर लेते हैं, उसकी क्या कभी दुर्गति हो सकती है?'

योगेन—नाम करूँ तभी तो वे दया करेंगे! मैं हूँ घोर अविश्वासी, नाम में मेरी किंचित् मात्र भी रुचि नहीं, नाम करने की सोचता हूँ, तभी आलस्य और नानाप्रकार की फालतू चिन्ताएँ आकर मन में घर कर लेती हैं। ऐसी हालत में नाम करना, न करना बराबर ही है।

बाबाजी—देखो, नाम के विषय में कोई विचार करने की आवश्यकता नहीं। एकाग्रता आये या न आये; श्रीगुरुदेव ने नाम करने का आदेश दिया है, नाम करते चलो; भले-बुरे का विचार गुरुदेव पर छोड़ो। रुचि के विषय में निताइचाँद ने इस नराधम को उपलक्ष्य कर तुम लोगों से अनेक बार कहा है कि जिस तरह पित्त-दूषित जीभ पर मिश्री का शर्बत कड़वा लगता है, पर उसी शर्बत को पीते-पीते पित्तदोष दूर हो जाता है और शर्बत मीठा लगने लगता है, उसी तरह नाम करते-करते सभी अनर्थ नष्ट हो जाते हैं और नाम में रुचि हो जाती है।

योगेन—अच्छा, नाम के निकट अपराध हो जाय, तो कैसे दूर हो?

बाबाजी—शास्त्र कहते हैं, 'भूमौ स्खलितपादानां भूमिरेवावलम्बनम्। त्वयि जातापराधानां त्वमेव शरणं प्रभो॥' जिनके प्रति अपराध हो, उसके अतिरिक्त और कोई उस अपराध का खण्डन नहीं कर सकता। नामापराध का खण्डन करने के लिए लगातार नाम करना चाहिए।

इस प्रकार भक्तजनों की शंकाओं का समाधान और तरह-तरह की लीलाएँ करते हुए बाबाजी महाशय और कुछ दिन कलकत्ते में रहे।

एक दिन तड़के इनटाली कटहल-बगीचे वाले श्रीयुत हरिदास बाबाजी महाशय आकर बाबाजी महाशय को अपने घर चलने के लिए अत्यधिक अनुरोध करने लगे। उनका आग्रह देख बाबाजी महाशय ने उनसे अगले दिन सुबह व्यवस्था करने के लिए कह दिया। हरिदास बाबाजी भी दूसरे दिन तड़के ही गाड़ी की व्यवस्था कर सभी को अपने घर लिवा ले गये। पता नहीं इससे पहले और कभी बाबाजी महाशय से हरिदादा की जान पहचान थी कि नहीं। आज साक्षात्कार होते ही उन्होंने सपरिवार उनके श्रीचरणों में आत्म-समर्पण किया।

बाबाजी महाशय ने स्नानादि कर संकीर्तन आरम्भ कर दिया। एक अपूर्व आनन्द था! बहुत से शिक्षित भद्रपुरुष उपस्थित थे, पर ऐसा कोई नहीं था जो रोते-रोते अधीर न हो गया हो। बहुत देर तक कीर्तन होता रहा, समय अधिक हो जाने पर भक्तजनों की इच्छा जानकर उन्होंने कीर्तन बन्द किया।

दूसरे दिन सुबह उठते ही हरिदादा बाबाजी महाशय के पैर पकड़कर रोते-रोते कहने लगे 'देखिये, मैं दीक्षा-मंत्र तो ले चुका हूँ, पर मेरी यह अभिलाषा है कि आपसे शिक्षा ग्रहण करूँ। निताइ-गौराङ्ग मंत्र दें। आज से मैं सपरिवार आपका हो गया। आप दयाकर बतायँ कि हमें क्या करना चाहिए, और ऐसी शक्ति दें कि हम लोग आपके आदेशानुसार चल सकें।'

बाबाजी महाशय ने जलद गम्भीर स्वर से 'निताइचाँद की इच्छा' कहकर स्नान-आह्निकादि कर कीर्तन आरम्भ किया। घनघोर कीर्तन-प्रभाव से मानो गौराङ्ग-लीला प्रत्यक्ष अनुभव करने लगे। बाबाजी महाशय ने इस शुभ मुहूर्त में हरिदादा की मनोकामना पूरी की।

प्रसन्नबाबू के बगीचे में

बहुत दिन हो गये थे बाबाजी महाशय को रसिक बाबू के बगीचे में रहते। स्थान परिवर्तन करने की उनकी इच्छा हुई। उसी समय पाइकपाड़ा-निवासी श्रीयुत हीरालालबाबू उनसे अपने घर कीर्तन करने के लिए बहुत आग्रह करने लगे। रायबहादुर श्रीयुत प्रसन्नकुमार बंद्योपाध्याय भी बहुत दिनों से उनसे कुछ दिन अपने बगीचे में रहने के लिए आग्रह करते आ रहे थे। बाबाजी महाशय एक दिन हीरालालबाबू के घर कीर्तन कर दूसरे दिन अपराह्न तीन बजे रायबहादुर के बगीचे में जा उपस्थित हुए। हठात् बाबाजी महाशय को प्राप्त कर प्रसन्नबाबू के आनन्द की सीमा नहीं।

दूसरे दिन प्रात: होते ही प्रसन्नबाबू का कनिष्ठ पौत्र कुछ धीमरों को लेकर आया बगीचे के निकट एक तालाब से मछली पकड़ने। किसी ने बाबाजी महाशय से जा कहा और पूछा-"उन्हें मछली पकड़ने को मना कर दें क्या?" बाबा ने कहा-"भाई, वे तो धीमर हैं, किसी का सदुपदेश सुनेंगे क्या? देखो, यदि तुम लोगों के हृदय हिंसा-वृत्ति शून्य हैं तो निताइचाँद की इच्छा से तुम्हारे यहाँ रहते किसी जीव की हिंसा न होगी।"

"बाबा, उन लोगों ने तालाब के इस पार से उस पार तक एक बड़ा-सा जाल डाल दिया है। ऐसे में एक भी प्राणी की रक्षा हो सकेगी, इसमें संदेह है।"

"अच्छा; निताइचाँद क्या खेल खेलते हैं, देखें।" इतना कह बाबाजी महाशय तालाब के पास जा बैठे।

धीमरों ने जाल निकाला तो देखा जाल में मछली एक भी नहीं। एक धीमर ने कहा-"वृथा परिश्रम हुआ। इस तालाब में मछली एक भी नहीं हैं।" दूसरे ने कहा-"यह हो ही नहीं सकता" और दूसरी बार जाल डाला। जाल डालते समय मछलियाँ प्राण के भय से इधर-उधर उछल-कूद करती दीखीं। यह देख धीमरों के मन में आशा का संचार हुआ। पर दूसरी बार जाल निकाला तो भी मछली न निकली। इसी प्रकार दो-तीन बार और किया। अन्त में देखा कि मछली तो जाल में नहीं, जगह-जगह से जाल में छिद्र और हो गये। धीमर अपने भाग्य को कोसते हुए चले गये। बाबाजी महाशय भी नाम-कीर्तन करते-करते वहाँ से दक्षिणेश्वर काली मन्दिर चले गये। कालीमन्दिर में संध्या-आरति के समय माँ को कीर्तन सुनाया। दूसरे दिन कुठीघाट पहुँचे।

कुठीघाट में

कुठीघाट में सबकी इच्छा हुई कि कुछ दिन वहाँ वास किया जाय। इसलिए बाबाजी महाशय से स्वीकृति लेकर एक मकान किराये पर ले लिया गया। मकान में ठाकुर के भोग की व्यवस्था की जाने लगी। बाबाजी महाशय बाहर बैठे थे। किसी ने आकर कहा-"यहाँ पास की एक दुकान में सब सामान मिल जायगा, पर लकड़ी यहाँ नहीं मिलती।" उसी समय रास्ता चलते एक आदमी को बुलाकर बाबाजी महाशय ने पूछा-"बाबा, यहाँ लकड़ी कहाँ मिलेगी बता सकते हो?" आदमी ने इन्हें प्रणामकर कहा-"यहाँ से कुछ दूर जाकर मिल सकती है।" बाबा ने उसे एक रुपया देते हुए कहा-"यदि तुम्हें कष्ट न हो तो यह रुपया लो और लकड़ी ला दो।" आदमी रुपया लेकर चला गया। देर तक लौटकर नहीं आया। तब संगीगण कहने लगे-"आपने न जाने कहाँ के एक अपरिचित व्यक्ति को रुपया दे दिया। वह क्या लौट कर आयेगा?" बाबा ने व्यंग्य में कहा-"आप लोग अन्तर्यामी हैं, सबके अन्तर की खबर रखते हैं। मेरी तो ऐसी क्षमता नहीं, जो मैं किसी को पहचान सकूँ। जो हो, आपका उपार्जित अर्थ नष्ट हुआ, इसका मुझे दुःख है।"

उसी समय वह आदमी एक और आदमी को साथ लेकर आ गया। दोनों के सिर पर लकड़ी का एक-एक गट्ठर था। लकड़ियाँ नीचे रख कर आदमी बोला-"आने में कुछ विलम्ब हुआ, इसलिए क्षमा करें।" बाबा ने कहा, "कोई बात नहीं, जैसी निताइ चाँद की इच्छा" और उसे कुछ अर्थ देना चाहा। पर उसने कहा "मेरा सौभाग्य जो आपकी कुछ सेवा कर सका। पैसा देकर दास को लज्जित न करें।" इतना कह वह दण्डवत् प्रणाम कर चला गया। तब बाबाजी महाशय ने साथियों से कहा-"क्यों भविष्यवेत्ता अंतर्यामी प्रभुपाद गण! लकड़ियाँ आ गयीं? भगवत् राज्य में इतनी संकीर्ण बुद्धि लेकर रहने से काम चला है? अच्छा बताओ, तुम लोगों के प्रथम साक्षात् के समय अपरिचित और अविश्वसनीय जानकर तुम्हें परित्याग कर दिया गया होता, तब क्या तुम ऐसे अद्वितीय विश्वास के पात्र बन सकते थे? और विचार कर देखो, जो रुपया उसे दिया गया, वह क्या मेरी या तुम्हारी उपार्जित सम्पत्ति थी? तुम इतने लोग एक साथ रह रहे हो। तुम्हारे निर्वाह के लिए जब जिस वस्तु की आवश्यकता होती है परमदयाल निताइचाँद जुटा देते हैं। उनकी दी हुई वस्तु के मालिक वे हैं, तुम नहीं। अपनी वस्तु से यदि वे किसी और का अभाव मोचन करना चाहें, तो उसमें बाधा देने का तुम्हें या मुझे अधिकार है? इस प्रकार की कुत्सित बुद्धि का परित्याग करो, यदि प्रेममय के प्रेम राज्य में अग्रसर होना चाहते हो।"

इस प्रकार नानारूप उपदेशपूर्ण भर्त्सना-वाक्यों द्वारा संगीगण को शिक्षा प्रदान कर बाबाजी महाशय स्नान करने चले गये। स्नान के पश्चात् हठात् अकेले ही नृत्य-कीर्तन करने लगे। शीघ्र साथी भी कीर्तन में योग देने लगे। अपूर्व आनन्द का पवन बहने लगा। कीर्तन की ध्वनि सुन और बहुत से लोग भी आकर कीर्तन में योग देने लगे। दो घण्टे कीर्तन करने के पश्चात् सब प्रसाद पाने बैठे।

कीर्तनानन्द में दो दिन बीते। एक दिन साथियों से बाबाजी महाशय ने कहा-"तुम लोग यहीं ठहरो। मैं दो-चार दिन अन्यत्र घूम-फिर आऊँ।" वे कैलाशचन्द्र सेन, सुरेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय और फणी केवल इन तीनों व्यक्तियों को साथ ले बाहर निकले। गुरप, कुलीनग्राम और सातगाछिया में भक्तों को कीर्तनानन्द में डुबोते हुए कालना पहुँचे। कालना में नामब्रह्म के मन्दिर में एक रात रुककर विष्णुदास बाबाजी से नानारूप इष्टगोष्ठी करने के पश्चात् फिर सातगाछिया लौटे। सातगाछिया से नौका से नवद्वीप की यात्रा की।

श्रीधाम नवद्वीप में

बाबाजी महाशय श्रीधाम नवद्वीप पधारे हैं। यह सुनकर बहुत से लोग आनन्द विभोर हो उनके पास आने लगे। वे भी नाना प्रकार के भगवत् प्रसङ्गों द्वारा उन्हें परमानन्दित करने लगे। एक दिन श्रीयुत मोतीलालराय महाशय के बड़े लड़के श्रीयुत धर्मदासराय महाशय बोले 'दादा! श्रीगौरांग देव की बहुत तरह की लीलाएँ हैं। जो लोग व्रज के विशुद्ध माधुर्य भाव के उपासक हैं, उनके लिए कौन सी लीला विशेष रूप से हितकर और आस्वाद्य है?'

बाबाजी—भाई, निताइ-गौराङ्ग सर्वतत्वमय हैं। ऐसा कोई भाव नहीं जो श्रीगौराङ्ग में न हो; फिर भी भावों में अन्तर और तारतम्य तो है ही। 'भावनिधि श्रीगौराङ्गे भावेर शाबल्य, सब भाव हइते राधा भावेर प्राबल्य।' जो लोग अपनी सिद्धदेह में गोपीभाव का आरोप कर राधागोविन्द-लीला में प्रवेश करना चाहते हैं, वे यदि श्रीगौराङ्गदेव को राधारानी न मानें, तो उनका लीला में प्रवेश करना कष्टकर होगा। वे स्वयं भक्तभाव अंगीकार कर जगत् के आदर्श बने थे। पूर्वलीला की अपेक्षा उत्तर लीला में माधुर्य की अधिकता है, यह मानना पड़ेगा।

धर्म—अच्छी तरह नहीं समझा।

बाबाजी—नवद्वीप के बहुत से भक्त श्रीगौराङ्गदेव को जिस दृष्टि से देखते थे अथवा जिस भाव से आस्वादन करते थे, वह भाव उन्हें अपने आपको अच्छा नहीं लगता था। इसी कारण वे संन्यास लेकर नीलाचल गये और वहाँ गम्भीरा में रहकर स्वरूप दामोदर और रामानन्द राय को साथ ले अपने भाव का आस्वादन करते थे। संन्यास के बाद वाली जो सब लीलाएँ हैं, वे ही भक्तजनों को विशेष प्रिय और आस्वाद्य हैं। परन्तु ऐसा मालूम होता है गुरुदेव और कर्ता बाबाजी महाशय को अच्छी नहीं लगी।

कर्ता बाबाजी—देखो भाई! रसराज श्रीगौरांग के संन्यास की बात सोचते या कहते हुए तुम लोगों को कष्ट नहीं होता? हम संन्यास-फन्यास नहीं मानते। हमारे नागरेन्द्र चूणामणि रसमय गौरकिशोर तो—

घवल पाटेर जोड़ परेछे, राङ्गा-राङ्गा पाड़ दियेछे,
चरण उपर दुले जेछे कोंचा।
बाँक-मल सोनार नूपुर, बेजे जेछे मधुर-मधुर,
रूप देखिते भुवन मुरछा।।
दीघल दीघल चाँचर चूल, ताय गूँजेछे चाँपार फूल,
कुँद मालतीर माला बेड़ा झोंटा।
चन्दन माखा गोरा गाय, बाहु दोलाये चले जाय,
कपाल माझे भुवनमोहन फोंटा॥
बाहुर हेलन-दोलन देखि, हातिर शुण्ड किसे लिखि,
नयान बयान जेनो कुँदे कोंदा
मधुर-मधुर कय गो कथा, श्रवण मनेर घुचाय व्यथा,
चाँदे जेनो उगारये सुधा॥

गौरकिशोर के इस रूप को छोड़कर हम अन्य किसी रूप को न तो मानते हैं और न स्वीकार करते हैं।

बाबाजी—यदि मेरा अपराध ग्रहण न करें तो मैं दो-एक बातें कहूँ।

कर्ता—इसमें क्या बात है! भगवत् लीलाप्रसंग तो वादानुवाद द्वारा गुरु-शिष्य को समझने ही चाहिएँ।

बाबाजी—श्रीगौराङ्ग अवतार का मुख्य उद्देश्य है स्वयं को आस्वादन करना, यथा- "श्रीराधायाः प्रणयमहिमा कीदृशो वानयैवास्वाद्यो येनाद्भुतमधुरिमा कीदृशो वा मदीयः। सौख्यं चास्या मदनुभवतः कीदृशं वेत्ति लोभात्तद्भावाढ्यः समजनि शचीगर्भसिन्धौ हरीन्दुः।" अर्थात् श्रीराधा की प्रणय-महिमा कैसी है; वे मेरे जिस अतिशय माधुर्य का आस्वादन करती हैं, वह सुख कैसा है; यह तीन वासनाएँ श्रीकृष्ण के मन में उठीं। उन्होंने देखा कि राधिका का भाव अंगीकार किये बिना मेरी इन वासनाओं की पूर्ति नहीं हो सकती, क्योंकि मैं विषय होने के कारण विषयजातीय सुख का ही उपभोग करता हूँ, आश्रयजातीय सुख उससे करोड़ गुना अधिक है, उसका उपभोग मैं तभी कर सकता हूँ जब मैं स्वयं आश्रय बनूँ।

'विषय जातीय सुख आमार आस्वाद।
आमा हइते कोटिगुण आश्रयेर आह्लाद।
कभू जदि एइ प्रेमार हइये आश्रय।
तबे एइ प्रेमानन्देर अनुभव हय।।'

तभी तो श्रीराधिका के भाव और उनकी कान्ति से मंडित होकर श्रीकृष्ण शची-गर्भ से अवतीर्ण हुए। स्वयं नागर भाव का अवलम्बन कर नागरीगण के साथ सब रसों का आस्वादन करना तो श्रीकृष्ण का स्वाभाविक भाव है। इसके लिए अन्य अवतार की क्या आवश्यकता थी? श्रीराधाभाव अंगीकार कर श्रीकृष्ण को आस्वादन करना ही जब श्रीगौराङ्ग अवतार का प्रधान उद्देश्य है, तब यदि हम उन्हें उसी भाव से न भजें तो क्या हमारे भजन से उन्हें सुख होगा? आपने कहा कि हम 'श्रीगौराङ्ग का संन्यास नहीं मानते।' हम किसी के प्रति पूर्ण रूप से भक्ति करें और उसके कुछ व्यवहारों को मानें, कुछ को छोड़ दें, तो उसे पूर्ण रूप से मानना हुआ क्या? यदि गौरांग को मानना है, तो उनकी

बाल्य चपलता, पौगण्डावस्था की उद्धतता, किशोरावस्था का विद्या-मद, यौवन का निष्ठुर व्यवहार और संन्यास ये सब मानना होगा। श्रीगौरांग देव के इतने परिकर थे, पर स्वरूप दामोदर और राय रामानन्द इन दो को ही वे इतना क्यों चाहते हो? गदाधर पण्डित गोस्वामी को ही गोपीनाथ सेवा और टोटा में वास स्थान क्यों दिया? कोई यह न समझे कि मैं श्रीगौराङ्गदेव के परिकरों के अन्तरंग और बहिरङ्ग कोटियों में विभक्त कर रहा हूँ। हमारे लिए तो सभी पूज्य हैं। यह श्रीमन्महाप्रभु की दृष्टि से पता चलता है कि वे जिस भाव को स्वयं पसन्द करते थे, उसमें जिस किसी से सहायता मिलती थी, उसे वे अन्तरङ्ग मानते थे। स्वरूप दामोदर और राय रामानन्द, ये दोनों महाप्रभु को श्रीराधारानी के अतिरिक्त कभी भी और किसी भाव से नहीं देखते थे। यही कारण था कि महाप्रभु अपना मनोभाव व्यक्त करें या न करें, ये उनका मनोभाव जान लेते थे और उसी भाव के अनुकूल पद गाकर और श्लोक उच्चारण कर या बातचीत कर उन्हें सन्तुष्ट करते थे।

कर्ता०—तुम कुछ भी कहो भाई, संन्यास की बात मन में आते ही हमारे प्राणों में जाने क्या होने लगता है। उन्हें घुँघराले केशों से हीन मुंडित मस्तकवाला, गेरुआ वस्त्रधारी, भिखारी के वेश में हम नहीं देख सकते।

बाबाजी—यह अलग बात है। लीला तो सारी ही नित्य हैं। भावुक साधक के लिए नवद्वीप लीला भी नित्य है, और नीलाचल लीला भी। जिसे जो प्रिय लगे, वह उसी को लेकर उपासना करे। किसी को कोई आपत्ति नहीं होगी। पर यह कहने से कि हम अमुक लीला नहीं मानते वैषम्य दोष लगता है। भगवान् के अनेक रूप, अनेक नाम, अनेक धाम, अनेक वेश हैं। जिन्हें जो नाम, जो वेश, जो धाम, जो रूप अच्छा लगे, वह उसी को लेकर उपासना करे, इसमें किसी को क्या आपत्ति हो सकती है? हमें अद्वेष्टा होना चाहिए। मैं जिसका भजन करता हूँ, मेरे लिए वही सर्वश्रेष्ठ है, यह तो ठीक है, पर दूसरा व्यक्ति जिसका भजन करता है, वह सर्वापेक्षा निकृष्ट है अथवा उसे मैं नहीं मानता, यह कहाँ तक उचित है?

धर्मदास—दोनों ही लीलाएँ नित्य हैं, यह बात मैं अच्छी तरह नहीं समझ पाया। एक व्यक्ति दो अवस्थाएँ क्या सदा मौजूद रह सकती हैं?

बाबाजी—यही तो भगवान् की भगवत्ता है। वे जब भी जहाँ भी जो लीला करें, वही नित्य है, इसमें कोई सन्देह नहीं। जो लोग संन्यास को मानना नहीं चाहते, मैं उनसे पूछता हूँ कि यदि कोई उनके रसमय नागरेन्द्र चूड़ामणि गौर को 'कृष्णचैतन्य' नाम से सम्बोधित करे, तो क्या वे नहीं सुनेंगे?

कर्ता०—सो क्यों नहीं? 'श्रीकृष्णचैतन्य' नाम तो हम भी अस्वीकार नहीं करते; हमारा तो यही नाम इष्टमंत्र है।

बाबाजी—फिर तो आप संन्यासी की ही उपासना करते हैं। रसमय गौराङ्गसुन्दर का नाम तो श्रीकृष्णचैतन्य नहीं। श्रीकृष्णचैतन्य नाम का उच्चारण करते ही श्रीगौराङ्ग का संन्यास वेश सामने आता है। जिस प्रकार केशीमथन, कंसनिसूदन, मथुरानाथ कहने से भिन्न-भिन्न रूपवाले कृष्ण का बोध होता है, उसी तरह नदीया-विहारी, गौरकिशोर कहने से नटवर गौरसुन्दर और श्रीकृष्णचैतन्य कहने से मुंडित-मस्तक गेरुआ वस्त्रधारी नीलाचल-विहारी गौराङ्ग का बोध नहीं होगा?

इस प्रकार नाना प्रकार के भगवात् कथा प्रसङ्गों में बहुत समय बीत गया। यथासमय सबने स्नान-नित्यकर्मादि पूरा कर महाप्रसाद पाकर विश्राम किया।

दूसरे दिन बाबाजी महाशय आठ बजे के लगभग गंगा-स्नान की इच्छा से साथियों सहित बड़ालघाट पर गये। वहाँ जलक्रीड़ा करते-करते डुबकी लगाई और लापता हो गये। दस मिनट तक जब उस स्थान पर किसी प्रकार की हलचल न दीखी तो साथी लोग व्याकुल होकर चारों ओर ढूँढ़ने लगे। कोई डुबकी लगाकर, कोई तैरकर, कोई किनारे पर आकर खोजने लगा। जब कहीं पता न लगा तो द्रुतगति से आश्रम जाकर परमगुरुदेव वृद्ध बाबाजी महाशय को सूचित किया। वे मृदुभाव से हँसकर बोले, 'कोई चिंता नहीं; वह जादूगर का बेटा तुम लोगों की परीक्षा लेने की दृष्टि से डुबकी लगाकर स्टीमर घाट की ओर जा रहा

है; वहाँ चले जाओ, मिल जायेगा।' सुनकर वे लोग तीव्रवेग से स्टीमर घाट की ओर दौड़ गये। वहाँ प्राय: दस मिनट तक चारों ओर खोजते रहे। उसी समय बाबाजी महाशय एकाएक जल के भीतर से निकल आये। साथियों के मृत शरीरों में मानों प्राण आ गये; वे व्याकुल होकर रोते-रोते जल में कूद पड़े और उन्हें पकड़ लिया। उन्होंने भी स्नेहपूर्वक एक-एक कर सबको आलिङ्गन किया। फिर हँसते-हँसते पूछा, 'मैं यहाँ आ गया हूँ, यह तुम्हें किसने बताया?' साथी बोले, 'और कौन बतायेगा? बहुत देर तक खोजने पर भी जब आपका पता न चला, तो हम लोगों ने जाकर दादा महाशय को बताया। वे हँसकर बोले, 'कोई चिंता नहीं; वह जादूगर का बेटा तुम्हारी परीक्षा लेने के विचार से डुबकी लगाकर स्टीमर घाट की ओर जा रहा है; वहाँ मिल जायेगा।'

बाबाजी—अरे पगलो! ऐसी पागलपने की बातें क्या उनसे कहने की हैं?

साथी—उनसे न कहें तो क्या करें? हम लोग तो हताश हो गये। आप ऐसी निष्ठुरता करेंगे, हमने स्वप्न में भी नहीं सोचा।

बाबाजी—निष्ठुरता नहीं। डुबकी मारते ही सोचा कि देखूँ डुबकी लगाये कितनी दूर जा सकता हूँ। सो यहाँ तक आ गया। तुम लोग इतने परेशान क्यों हो गये? मैं यथासमय आश्रम पहुँच जाता।

साथी—आदमी क्या इतनी देर तक शान्त बैठा रह सकता है?

बाबाजी 'तो खैर, अच्छा किया' कहते हुए किनारे पर आये और आश्रम की ओर प्रस्थान किया।

नवद्वीप में पाँच-छह दिन रहकर श्रीगुरुदेव से विदा ली और कुठीघाट चले गये।

पुनः कुठीघाट में

बहुत दिन बाद बाबा महाशय को प्राप्तकर कुठीघाट में रह रहे साथियों के आनन्द की सीमा नहीं। सबने अपने सुख-दु:ख की बात उनसे कही। उन्होंने सबको सस्नेह मृदु वाक्यों से सान्त्वना दी।

कुठीघाट में एक दिन एक सज्जन बाबाजी महाशय के पास आकर बोले, 'हमारे यहाँ पंचायती कालीपूजा होती है। क्या दर्शन करने चलेंगे?'

बाबाजी—अच्छी बात है, चलो।

यह कहकर वे साथियों से बोले, 'खोल-करताल ले चलो, माँ को थोड़ा नाम सुना आयँ।'

यह सुनकर सभी लोग बड़े उत्साह से नाम करते हुए काली-पूजा के उस पंचायती स्थान पर जा पहुँचे। बहुत लोग इकट्ठा हो गये; नाम भी खूब जोरों से होने लगा। सब आत्मविभोर हो नृत्य कर रहे थे और हाथ से ताली बजा-बजा कर 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' नाम कर रहे थे। बाबाजी महाशय ने नृत्य करते हुए और माँ के मुख की ओर देखते हुए पद गाया-

केउ कि देखेछो भाइ प्रेम मूर्तिमन्त,
प्रेमेर स्वरूप आमार प्रभु नित्यानन्द।
केउ कि देखेछो भाइ भाव मूर्तिमन्त,
भावेर स्वरूप आमार प्रभु गौरचन्द्र।
केउ कि देखेछो भाइ ज्ञान मूर्तिमन्त,
ज्ञानेर स्वरूप आमार श्रीअद्वैतचन्द्र।
केउ कि देखेछो भाइ रस मूर्तिमन्त,
रसेर स्वरूप आमार गदाधरचन्द्र।
केउ कि देखेछो भाइ भक्ति मूर्तिमन्त,
भक्तिर स्वरूप आमार श्रीश्रीवासचन्द्र।

साथ ही साथ रचना करते हुए इसी प्रकार के और न जाने कितने पद गाये। आनन्द का स्रोत बह निकला। बारोयारी काली माँ के आगे कविता, नाटक, नाच आदि को छोड़कर कभी नामकीर्तन हुआ हो, किसी ने कभी नहीं सुना। आज रणरङ्गिनी माँ आनन्दमय निताइ-गौर का गुणगान सुनकर आनन्दोन्मत्त हो मानो प्रेमतरङ्गिणी हो रही हैं। जिन लोगों के मुख से कभी हरेकृष्ण, गोविन्द, निताइ-गौर नाम सुना तक नहीं, वे भी आज 'निताइ गौर राधेश्याम' कहकर नाच रहे हैं। बाबाजी महाशय संकीर्तन में काम और प्रेम की विशद व्याख्या कर रहे हैं, जिसे सुनकर सभी लोग बड़े प्रसन्न होकर एक दूसरे से कहने लगे 'हम लोगों ने बहुत-सी जगहों पर, बहुत बार नामकीर्तन, भागवत-पाठ आदि

सुना है, पर काम और प्रेम का अन्तर इतने स्पष्ट रूप से कोई न समझा सका। आज इन महापुरुष की कृपा से काम और प्रेम का अन्तर जानकर हमारा हृदय तृप्त हो गया; पर कैसे दुर्भाग्य की बात है, इतने दिन से यह महापुरुष यहाँ आते रहे हैं, और हम इन्हें न समझ सके।' किसी ने कहा 'भाई, महापुरुष की कृपा बिना क्या महापुरुष को पहचाना जा सकता है?'

बाबाजी महाशय ने काली के आगे बहुत देर तक कीर्तन-नर्तन कर अन्त में संकीर्तन समाप्त किया और माँ को दण्डवत् प्रणाम कर निवास स्थान को लौट आये।

एक दिन न जाने मन में क्या आया, सुबह नौ बजे साथियों को नाम करने का आदेश किया और फणी और राधाविनोद को भेक देकर उन्हें संकीर्तन के साथ भिक्षा करने भेज दिया। स्वयं गम्भीर होकर बैठे रहे। साढ़े दस बजे संकीर्तन वापस आया। उस समय एक अपूर्व दृश्य था। सभी की आँखों से अश्रु-प्रवाह हो रहा था, सभी का शरीर पुलक से परिपूर्ण था और सभी नृत्यपरायण थे। बाबाजी महाशय ने संकीर्तन को साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया और भिक्षा की झोली लेकर स्वयं नृत्य करने लगे। नाचते-नाचते भावावेश में अचैतन्य हो पृथ्वी पर गिर पड़े। साथी उन्हें घेरकर जोर-जोर से नाम करने लगे। उनके शरीर में अश्रु, कम्प, पुलक आदि सात्विक विकार एकसाथ प्रकट होने लगे। विस्फारित नेत्रों से अविरल अश्रुधार बहने लगी। उस अवस्था में जो भी उन्हें स्पर्श कर लेता था, वह प्रेमावेश में विभोर हो नाचते-नाचते पृथ्वी पर गिर पड़ता था। बहुत देर बाद वे कुछ स्थिर हुए और साथियों को सान्त्वना-वाक्यों से सन्तुष्ट कर नाम बन्द किया।

पुरी-प्रत्यावर्तन

कुछ दिन पूर्व बाबाजी महाशय ने श्रीधामपुरी स्थित झाँजपीटा मठ में श्रीमती ललितादासी को एक पत्र में ठाकुरसेवा और वैष्णव-सेवा के नियमादि इस प्रकार लिखकर भेजे थे। 'ठाकुर-मन्दिर में रात-दिन घी का दीपक जलेगा। ठाकुरजी के भोग में देशी गुड़ के अतिरिक्त और कोई मिठाई न रखी जायगी। मठ के भीतर किसी प्रकार का तेल न आयगा। दियासलाई से कोई काम न होगा। सन्ध्या के बाद कोई मठ से बाहर न जायगा। तम्बाकू-गाँजा आदि कोई भी मादक पदार्थ न तो मठ में आयेगा और न कोई उसका व्यवहार करेगा। एक समय ठाकुरजी के लिए रसोई होगी तीसरे पहर श्रीश्रीजगन्नाथदेव का जो महाप्रसाद आयगा, उसमें से श्रीगणेश महापात्र और गदाधर रथ को भरपेट देकर जो बच रहेगा, उसी को बाकी लोग पा लेंगे। त्रिसंध्या नामकीर्तन होगा। तुम्हारे अलावा दो व्यक्तियों द्वारा, श्रीजगन्नाथ-मन्दिर के कीर्तन की नियम-रक्षा होगी' इत्यादि। आज एक पत्र और लिखा जिसमें पूछा कि आश्रम का सेवाकार्य यथाविध चल रहा है या नहीं। पुरी से संवाद आया 'आपकी कृपा से सेवा-कार्य आपके आदेशानुसार चल रहा है। पुरीवासी आपामर जनसाधारण आपके श्रीचरण-दर्शन करने के लिए बड़े ही उत्सुक हो रहे हैं, अतः एक बार श्रीधाम पधारकर सभी का आनन्द वर्धन करें।' संवाद पाते ही बाबाजी महाशय पुरी जाने की तैयारी करने लगे। कलकत्ते के भक्त और कुछ दिन वहाँ ठहरने के लिए अनुरोध करने लगे, पर आप उसी दिन शाम को श्रीधामपुरी के लिए रवाना हो लिए। साथ में महाप्रभु का एक आयल पेण्ट का चित्रपट था। सुबह साढ़े आठ बजे श्रीधामपुरी में झाँजपीटा मठ जा पहुँचे।

तीन दिन पहले श्रीजगन्नाथदेव की सेवा-व्यवस्था के लिए एक अँगरेज मैनेजर नियुक्त हुए थे। उनके प्रयत्न से आज सुबह दस बजे के लगभग श्रीजगन्नाथदेव को प्रथम भोग लगा था। पुरीवासियों के मन में आनन्द नहीं समा रहा था। इधर बाबाजी महाशय के आने की बात सुन बलरामबाबू, नगेनबाबू, भुवनसाउ आदि भक्त आ-आकर उनके चरणों में दण्डवत् प्रणाम कर उनके स्वास्थ्य के बारे में पूछने लगे। वे भी प्रेमालिंगन द्वारा उन सबकी विरहयंत्रणा दूर कर श्रीधाम और धामेश्वर श्रीजगन्नाथदेव के बारे में कुशल-प्रश्न करने लगे। बलरामबाबू ने प्रसन्नचित्त होकर कहा, 'बड़ा ही शुभ संवाद है; तीन दिन हुए, श्रीजगन्नाथदेव की सेवा व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए एक अँगरेज

मैनेजर की नियुक्ति हुई है। उनकी चेष्टा से और श्रीजगन्नाथदेव की इच्छा से आज दस बजे ठाकुर को प्रथम भोग दिया गया। यदि आज्ञा हो तो थोड़ा सा महाप्रसाद मँगाऊँ।' बाबाजी महाशय अति प्रसन्न हो गद्‌गद कण्ठ से बोले, 'बलराम! बड़ा ही शुभ संवाद दिया। इतने दिन बाद श्रीजगन्नाथदेव ने कृपा कर ग्रहों को दूर हटाया।'

बलराम—आपने पहले जो कुछ कहा था, वह सब हमने प्रत्यक्ष देख लिया। आपके आदेशानुसार कोणार्क तीर्थ में नव-ग्रह पूजादि पूरी कर पुरी लौटा ही था कि सुनने में आया, गवर्नमेण्ट ने जगन्नाथ-सेवा के लिए एक मैनेजर की नियुक्ति का प्रस्ताव रखा है; राजा की स्वीकृति का इंतजार है। दस-पन्द्रह दिन बाद सुना कि सब कुछ ठीक हो गया है, शीघ्र ही मैनेजर आ जायँगे। मन ही मन आपकी बात सोचने लगा। देखा कि ठीक उसी प्रकार हो रहा है जैसे आपने कहा था। अँगरेज मैनेजर नियुक्त होगा, सुन कर पहले तो सभी डरे, पर अब उसका व्यवहार और धर्मभाव देखकर सब बड़े प्रसन्न हैं।

बलरामबाबू की बातों से परम सन्तुष्ट हो बाबाजी महाशय बोले, 'निताइ की इच्छा से बड़ी सुन्दर बात हुई। जाओ, महाप्रसाद ले आओ। श्रीमन्महाप्रभु पधारे हैं, उन्हें समर्पण करना होगा।' आज्ञा पाते ही बलरामदास द्रुतगति से जगन्नाथ-मन्दिर पहुँच कर महाप्रसाद ले आये; बाबाजी महाशय ने महाप्रसाद को साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम कर एक भक्त से कहा, 'देखो, इस पंगत घर में श्रीमन्महाप्रभु को आसन देकर भलीभाँति महाप्रसाद सेवन कराओ।' भक्त ने आज्ञानुसार काम किया। उधर भोग दिया गया, इधर प्रेमदादा ने थोड़े विस्मय के साथ बाबाजी महाशय से पूछा, 'जो स्वयं पूर्ण पूर्णतम साक्षात् भगवान् हैं; नारायणादि जिनकी अंशकलाएँ हैं, उन्हें दूसरे को समर्पित की गई वस्तु कैसे अर्पित की जा सकती है?'

बाबाजी—बड़ा सुन्दर प्रश्न है। सुनो, पहले बहुत बार तुम लोगों से कहा है कि 'लीला' और 'तत्व' दो अलग-अलग वस्तुएँ हैं। दोनों को मिलाने से ही मुश्किल होती है और उपासना में बाधा पड़ती है। गोस्वामीपादों ने श्रीमन्महाप्रभु के तत्व के सम्बन्ध में कहा है कि उनके रूप में साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन ही श्रीराधिका की भाव-कान्ति धारणकर श्रीधाम नवद्वीप में अवतीर्ण हुए हैं। अब यदि व्रजेन्द्रनन्दन के तत्व को जानना चाहो तो शास्त्र कहते हैं, 'एते चांशकला: पुंस: कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।' तो देखो, श्रीकृष्ण पूर्ण पूर्णतम साक्षात् भगवान् हैं, तदभिन्नत्व हेतु श्रीगौराङ्ग भी पूर्ण पूर्णतम साक्षात् भगवान् हैं। भगवान् के जन्म, कर्म, उपनयन, विवाह, संन्यास आदि असम्भव हैं, क्योंकि वे षडैश्वर्य परिपूर्ण, निष्क्रिय, निर्लिप्त, गुणातीत, निर्विकार पुरुष हैं। माया शक्ति उनसे दूर रहती है और लीलाशक्ति लज्जित भाव से ओट में छिपी रहती है। इस रूप में वे मन-वाणी के अगोचर हैं। उन्होंने स्वयं कहा है-'न मे विदु: सुरगणा: प्रभवं न महर्षय:।' अर्जुन ने कहा है-'न हि ते भगवन् व्यक्ति विदुर्देवा न दानवा:', अन्यत्र-'अनेक बाहूदररक्तनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम्। नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप।।' अनन्तदेव अपने सहस्र मुखों से जिनके ऐश्वर्य या तत्व का एक कण भी प्रकट न कर सके, उन्हें साधारण जीव कैसे समझ सकता है? इसलिए उन्हें दूसरे का नैवेद्य देना तो दूर उनकी ध्यान-पूजा करना ही सम्भव नहीं। इसी कारण भगवान् जीव के प्रति दयार्द्र हो इच्छाशक्ति को अंगीकार कर अपनी विभुत्व शक्ति को अपने भीतर छिपा लेते हैं और लीलाशक्ति की अधीनता स्वीकार करते हैं। लीलाशक्ति उन्हें जैसे-जैसे नचाती है, वह मन्त्रमुग्ध की तरह उसी तरह नाचते हैं। जब हम लीलाशक्ति के साथ विभुत्व शक्ति को मिलाते हैं तो लीलामय प्रभु के अन्तर को आघात पहुँचता है। व्रजलीला में, गोष्ठ से लौटने के समय ब्रह्माजी ने जो स्तुति की थी, वह इस बात का प्रमाण है। लीलाशक्ति के वशीभूत होकर लीलामय ने स्वयं कहा है-'विहरे प्राकृतो यथा।' अन्यत्र कहा है-'माता मोरे पुत्रभावे करये बन्धन, सखा शुद्ध सख्ये करे स्कन्धे आरोहण। प्रिया जदि मान करि करये भर्त्सन, वेदस्तुति हइते शेइ हरे मोर मन।।' हम लोगों की जो भी क्रीड़ाएँ हैं, वे इस लीलामय विग्रह को लेकर हैं। श्रीमन्महाप्रभु ने

स्वयं श्रीजगन्नाथदेव के दर्शन किये हैं और उनका महाप्रसाद सेवन किया है। नवद्वीप में रहते समय उन्होंने अपने हाथों शालग्राम की सेवा कर उनका अधरामृत ग्रहण किया है। मर्यादा पुरुषोत्तम ने सभी देव-देवियों की मर्यादा की रक्षा की है। 'धर्मसंस्थापक प्रभु स्थाने सर्व धर्म, लोक-शिक्षा हेतु कभू ना लंघेन कर्म।' लीलामय पुरुष को ऐश्वर्य के नेत्रों से देखने से सम्बन्ध राज्य में भाव की उपासना करने वालों के हृदय में आतंक और उनकी उपासना में विघ्न पैदा नहीं होता? यदि शचीमाता को यह बात समझाई जाती कि 'यदद्वैतं ब्रह्मोपनिषदि तदप्यस्य तनुभाः। य आत्मान्तर्यामी पुरुष इति सोऽस्यांशविभवः।।' तो क्या वे श्रीगौराङ्ग के शरीर को धूलधूसरित देख या उनका चन्द्रवदन मुरझाया देख उन्हें गोद में लेकर आँसुओं से भिगो सकतीं? क्या उनके भाव-प्रेम का विकास हो सकता और ताड़ना, भर्त्सना आदि सम्भव होती?

प्रेम—पर जब वृन्दावन में गोवर्द्धन धारण किया, पूतना, अघासुर, बकासुर आदि का वध किया, या जब नवद्वीप में सात प्रहरिया भाव और महाभावावेश हुआ, तब क्या यशोदा मैया या शची माँ ने इन सब लीलाओं का दर्शन नहीं किया?

बाबाजी—यही तो पूर्ण माधुर्य का विकास है। 'देखिलेओ नाहि माने केवलार रीत, ऐश्वर्य शिथिल प्रेमे नहे मोर प्रीत।' गोस्वामीजनों ने तो इस विषय में स्पष्ट रूप से लिखा है-'विष्णु द्वारे करेन कृष्ण असुर संहार।' अर्थात् असुर संहार आदि कार्य कृष्ण स्वयं न कर विष्णु द्वारा कराते हैं। योगमाया ने व्रजगोपियों की प्रेम-परीक्षा के लिए बहुत ऐश्वर्य दिखाया, पर वे किसी प्रकार भी विचलित न हुईं। कृष्ण के मुँह में चौदह ब्रह्माण्ड देखकर यशोदा जी ने उसे किसी ग्रह अथवा अपदेवता का कार्य समझा और उन्हें शान्त करने के उपाय करने लगीं। गोपियों ने श्रीकृष्ण पर स्त्री-हत्या (पूतना-वध) और गो-हत्या (वृषासुर-वध) का दोष लगाया और इससे मुक्ति पाने के लिए तीर्थ-पर्यटन और तीर्थस्नान का प्रायश्चित्त बताया। श्रीकृष्ण ने योगमाया का आश्रय लेकर जैसे ही तीर्थों का आह्वान किया, वैसे ही सब तीर्थ आकर उपस्थित हो गये। यह सब गोपियों ने अपनी आँखों से देखा, पर इसे योगमाया की कृपा समझ कृष्ण में किसी प्रकार का ऐश्वर्य भाव आरोपित नहीं किया। यही तो द्वारका और मथुरा-लीला के मुकाबले वृन्दावन-लीला की विशेषता है। जो लोग कृष्ण की सख्य, वात्सल्य और मधुर भाव से उपासना करते हैं, वे बिना किसी संकोच के नारायण, गोपेश्वर अथवा कात्यायिनी का प्रसाद कृष्ण को अर्पित करते हैं। ऐसा करते हुए उन्हें किंचित् मात्र भी संकोच नहीं होता।

प्रेम—अच्छा, तो क्या जो महाप्रभु को अमनिया (अनिवेदित वस्तु) भोग लगाते हैं, वे अपराध करते हैं?

बाबाजी—सो क्यों? महाप्रभु भावनिधि हैं। जो जिस भाव से उनका भजन करता है, वे उसी भाव से उसका भजन स्वीकार करते हैं। श्री अद्वैतप्रभु ने अपने घर तीन पत्तलें एक साथ बिछाईं और तीनों पर तुलसी-मंजरी, पीत घृत आदि रखा, पर कृष्ण को उनमें से एक ही पत्तल का भोग लगाया। दूसरे दोनों परोसे अमनिया रहे। श्रीमन्महाप्रभु और श्रीनित्यानन्द प्रभु आये, तो उन्हें उन पत्तलों पर बिठा दिया। लीलामय महाप्रभु उन पत्तलों को कृष्ण-नैवेद्य समझकर अद्वैत आचार्य की प्रशंसा करने लगे। तुम चाहे जिस भाव से उन्हें भोग लगाओ, वे अपने स्वयं के भावानुसार ही उसे ग्रहण करेंगे। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि इन दो भावों में से कोई भी त्याज्य है।

इस प्रकार नाना प्रकार के प्रसङ्गों में बहुत समय बीत गया। महाप्रभु के भोग के बाद ललितादासी ने इन्हें महाप्रसाद पाने के लिए कहा। सबने महाप्रसाद सेवन कर विश्राम किया।

संदेह-भंजन

अपराह्न में बाबाजी महाशय साथियों सहित कीर्तन करते हुए श्रीजगन्नाथदेव के मन्दिर गये। आबाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी पुरीवासी उन्हें देखते ही आश्चर्यचकित हो गये। सभी की यह धारणा हो गयी थी कि वे पागल हो गये हैं और सभी यह जानकर बहुत दुःखी थे। आज बड़े रास्ते पर ठीक पहले जैसी प्राणों को झकझोर

देने वाली संकीर्तनध्वनि सुनकर मानो सभी के मृत शरीर में फिर से प्राण आ गये। सभी दौड़-दौड़कर उनके पास जाकर दण्डवत् प्रणाम कर गद्‌गद कण्ठ से कुशलक्षेम पूछते हुए अपूर्व उल्लास व्यक्त करने लगे। बाबाजी महाशय भी मृदु हास्य के साथ उनके प्रश्नों का उत्तर देकर उनकी मनोव्यथा दूर करने लगे। मन्दिर पहुँचकर ज्यों ही उन्होंने जगन्नाथदेव के दर्शन किये, आँसुओं से मुख और वक्षस्थल भीग गया। वे गद्‌गद कण्ठ से नाना प्रकार की पद-पदावली द्वारा स्तवस्तुति करने लगे। थोड़ी देर बाद उन्होंने माधव पशुपालक से पूछा, 'जगन्नाथजी की सेवा-व्यवस्था कैसी चल रही है?'

माधव—श्रीजगन्नाथदेव की इच्छा से आजकल बड़े सुन्दर ढंग से चल रही है; फिर भी, यह मैनेजर हिन्दू होता तो और भी सुविधा होती, क्योंकि वह मन्दिर के भीतर तो जा नहीं पाता।

बाबाजी—आप लोगों के साथ कैसा व्यवहार है?

माधव—व्यवहार बड़ा मधुर है। पहले दिन ही सेवक-पण्डों आदि को बुलाया और पूछा, 'आपके श्रीजगन्नाथदेव की सेवा के क्या नियम हैं, एकबार सुनना चाहता हूँ। मैं हिन्दू नहीं हूँ, इस कारण मुझे सेवा-पूजा की बातें बताने में कोई आपत्ति तो नहीं?' यह सुनते ही हम सब एक स्वर से बोले, 'जी नहीं हुजूर? जब श्रीजगन्नाथदेव ने अपनी सेवा की सुव्यवस्था के लिए आपको अङ्गीकार किया है, तो इस बात में सन्देह नहीं कि आप हमारी अपेक्षा उनके विशेष अन्तरङ्ग हैं। आपको बताने में आपत्ति कैसी?' उन्हें नित्य सेवा के बारे में सभी बातें बताई गईं।

मैनेजर—अच्छा, आजकल क्या इन नियमों के अनुसार सेवा चल रही है?

हम—हुजूर, इन नियमों का एक आना भर भी पालन हो रहा हो, इसमें सन्देह है। चौबीस घण्टों में जिस दिन दोपहर को भी भोग लग जाता है, हम समझते हैं कि आज सेवा अच्छी हुई।

मैनेजर—सेवा न होने का कारण अर्थाभाव है या कुछ और?

हम—जगन्नाथ तो ईश्वर हैं, उनके पास पैसे का अभाव नहीं। अभाव तो सिर्फ बन्दोबस्त का है। यदि राजा साहब थोड़ी बहुत भी नजर रखते, तो सब काम सुचारु रूप से चलता।

मैनेजर—राजा साहब स्वयं कोई सेवा करते थे क्या?

हम—सेवा भले ही न करें, पर उनका थोड़ा शासन रहने से ही सब ठीक होता।

मैनेजर—जगन्नाथ सिर्फ राजा के उपास्यदेव हैं, या आप लोगों के भी?

हम—राजा के हैं और हमारे भी।

मैनेजर—अच्छा, सेवा ही तो उपासना है?

हम—जी हाँ, सेवा ही प्रधान उपासना है। बिना सेवा के साध्य वस्तु नहीं मिलती।

मैनेजर—तो जिनमें कर्तव्य ज्ञान रहता है, उन्हें उपासना के लिए दूसरे के शासन की क्या आवश्यकता? बड़े दुःख की बात है! आप लोग हिन्दू हैं, आपके अपने उपास्य देवता की उपासना या सेवा की व्यवस्था के लिए मैं एक ईसाई आया हूँ, इसमें आप अपना अपमान नहीं मानते? आप लोग अपने-अपने कर्तव्य से भ्रष्ट हो गये हैं, इसीलिए मैं समझता हूँ, सेवा में ऐसी विशृङ्खलता आ गई है। लोग अपने-अपने इष्ट देवता की सेवा के लिए कितने कायिक क्लेश सहन करते हैं, यहाँ तक कि भिक्षा करके सेवा चलाते हैं। यहाँ तो किसी प्रकार का अभाव ही नहीं। पर सेवकों के अपने कर्तव्य से भ्रष्ट हो जाने के कारण सेवा बन्द है! इस विषय में क्या करना चाहिए, इसका भार मैं आप लोगों पर ही छोड़ता हूँ।

साहब की बात सुनकर हमारी आँखों में आँसू आ गये। हम सब एक स्वर से कहने लगे, 'वास्तव में इसके लिए हमलोग ही पूर्णतः दोषी हैं। यदि हम अपने इष्टदेव की सेवा में इतनी अवहेलना न करते तो बात इतनी दूर तक न पहुँचती। जो भी हो, कल से हम अपने-अपने कर्तव्य के प्रति विशेष रूप से जागरूक रहेंगे।'

मैनेजर प्रसन्न होकर बोले, 'बड़े सुख की बात है, अपना काम आप स्वयं ही कर लें तो दूसरे को कहने का मौका ही न रहे। अब यदि आपको चैतन्य न हुआ, तो समझ लें कि बड़े अनिष्ट की आशंका हो सकती है।' उसी दिन से तीनों धूप, पाँचों अवकाश और बड़े शृङ्गार आदि का काम बड़े सुन्दर ढंग से चल रहा है। सुबह दस बजते ही प्रथम भोग लग जाता है।

माधव पशुपालक की बातें सुनकर बाबाजी महाशय ने प्रेम-पुलकित हो उन्हें आलिंगन किया और कहा, 'बड़े सुख की बात है कि श्रीजगन्नाथदेव के लिए आप लोगों के प्राण रोये, उनकी ओर आप लोगों की दृष्टि गई। सब इच्छामय की इच्छा है। मैं नहीं समझता कि यदि यह अँगरेज मैनेजर न आते, तो इतनी जल्दी सेवा इतने सुचारु रूप से चल पाती। मंगलमय जब जो कुछ करते हैं, सब मंगल के लिए ही करते हैं।' इतना कह बाबाजी महाशय आनन्द से नाचने लगे। बहुत देर तक बड़े आनन्द से नृत्य-कीर्तन और श्रीमन्दिर की परिक्रमा कर वे नाम करते-करते समुद्र-स्नान के लिए चल पड़े। समुद्र-स्नान के पश्चात् हरिदास ठाकुर की समाधि, टोटा गोपीनाथ, गंगामाता मठ, गम्भीरा आदि के दर्शन करते हुए झाँझपीटा मठ वापस आ गये।

राइ राजा

पुरीवासी बाबाजी महाशय को पाकर पूर्ववत् आनन्द करने लगे। आश्रम की ठाकुर-सेवा का भार श्रीकिशोरीदासी सखी को दिया गया। वे बड़े प्रेम से ठाकुरजी की अष्टकालीन सेवा करने लगीं। समय-समय पर किसी विशेष लीला के उद्दीपक नृत्य-गीतों द्वारा रस-पुष्टि की जाती। एकदिन बाबाजी महाशय ने किशोरीदासी को बुलाकर कहा, 'राइ-राजा सजा सकती हो?' किशोरीदासी ने बड़े आनन्द और उत्साह से कहा, 'यह कौन-सी बड़ी बात है?' ललितादासी बोलीं, 'केवल राधारानी को राजा सजा देने से काम न चलेगा, राजराजेश्वरी के उपयुक्त भोग आदि की व्यवस्था और तदनुरूप कीर्तन आदि भी करना होगा।'

बाबाजी महाशय मृदुभाव से हँसते हुए बोले, 'राइ के राजा होने पर तो भोग-राग का भार सखियों पर ही रहेगा; इसकी व्यवस्था क्या कोई और करेगा? तुम्हारा काम तुम करना, हम तो केवल महाप्रसाद के अधिकारी हैं।' सखियाँ एकस्वर से बोलीं, 'अच्छा ऐसा ही होगा। महाप्रसाद के समय तो आप लोगों के दर्शन होंगे?'

बाबाजी महाशय 'हाँ, इसके लिए मैं सदैव तैयार हूँ' कहकर श्रीजगन्नाथ-दर्शन करने चले गये। इधर राइ-राजा की उपयुक्त वेशभूषा तैयार की जाने लगी। उत्सव के लिए आगामी पूर्णिमा का दिन निश्चित किया गया।

आज पूर्णिमा है, सुबह से ही नाना प्रकार की तैयारियाँ हो रही हैं। आश्रम-वासियों के मन में आनन्द नहीं समा रहा है। सभी लोग अपने-अपने भाव के अनुसार उपयुक्त कार्य में लगे हैं। कोई कीर्तन के लिए नानाप्रकार की पद-पदावली याद करने में व्यस्त है। कोई यह सोचकर आनन्द से अधीर है कि उसे खोल बजाना है। जिन्हें नृत्य करना है, वे नानाप्रकार की वेशभूषा की तैयारी कर रहे हैं। इधर ललितादासी आधा मन आटे की पूड़ी-कचौड़ी, एकमन दूध का सूजी का हलुआ, पाँच-सेर सूजी का मोहन भोग और उसी हिसाब से शाक-तरकारी आदि तैयार करने में लगी हैं। बाबाजी महाशय ने विशिष्ट-विशिष्ट लोगों को आमंत्रित किया है। ठाकुरजी की सेविका किशोरीदासी और उनकी सखियाँ नानाप्रकार की साजसज्जा बनाने में लगी हैं।

देखते-देखते शाम हो गई। सन्ध्या आरति कर किशोरीदासी बाबाजी महाशय से बोलीं, 'रात दस बजे से पहले तो दर्शन खुलेंगे नहीं, क्योंकि यथासमय अभिसार कर निकुंज में मिलन होगा, तभी तो श्रीमती राजा बनेंगी।' बाबाजी महाशय प्रसन्न हो बोले, 'ठीक भावानुयायी सेवा कर तुम लोग धन्य हो, और मुझे भी धन्य करो। निताइचाँद के चरणों में मेरी सदा यही प्रार्थना है कि लोकापेक्षा के कारण तुम्हारे भाव में कमी या शिथिलता न आय।' इतना कहकर वे कीर्तन

में चले गये। इधर ठाकुरजी को सजाया जाने लगा। त्रिभंगदादा ने अभिसार-कीर्तन आरम्भ किया। बाबाजी महाशय बैठकर कीर्तन सुन रहे हैं, जो भक्त आते जा रहे हैं, उन्हें यथायोग्य आदर सत्कार के साथ बिठाते जा रहे हैं। रात नौ बजे के लगभग कुछ लोगों को अपने-अपने घर लौट जाने के लिए व्यस्त देखकर बाबाजी महाशय ने उनसे कहा, 'और थोड़ी देर प्रतीक्षा करें और ठाकुर-दर्शन करके जायँ।' कुछ लोग बाबाजी महाशय से कहने लगे, 'हमें घर पर विशेष काम है; कुछ भक्त लोग आयँगे, हमारे न मिलने पर वे दुःखी होकर लौट जायँगे। बिना जाये काम नहीं चलता; और ठाकुर-दर्शन के लिए भी मन बड़ा व्याकुल है। आप ऐसी व्यवस्था कीजिए जिससे दोनों ही बातें सध जाएँ।' बाबाजी महाशय किंकर्तव्यविमूढ़ भाव से सोचने लगे, इधर भक्तजनों की उत्कण्ठा है, उधर निज जनों की भावनाओं के प्रति आघात होता है। निज जनों की मनोव्यथा को दूर करने के बहुत से उपाय हैं, पर भक्तों के दुःख को दूर करने का कोई उपाय नहीं। यह सब सोचकर और भक्त-वांछा पूर्ण करने का दृढ़ संकल्प कर वे मन्दिर के द्वार पर जाकर कहने लगे, 'एकबार दरवाजा खोल दो, फिर बन्द कर लेना।' सेवक लोग बड़ी निष्ठा के साथ ठाकुरजी को सजाने में लगे थे। वे ऐसी अवस्था में दरवाजा कैसे खोल सकते थे? इसलिए किसी ने उत्तर न दिया। आपने बार-बार दरवाजे पर धक्का दे-देकर खोलने के लिए कहा, पर भावनिष्ठ सेवकों ने दरवाजा न खोला। यह देखकर कि भक्तलोग दुःखी हो रहे हैं, बाबाजी महाशय ने दरवाजे पर जोर से लात मारी। इतने पर भी जब दरवाजा न खुला, तो वे द्रुतगति से दूसरे दरवाजे में होकर मन्दिर में जाने को हुए। उसी समय पीछे से ललितादासी बोली, 'बाबू भक्तजनों की वांछा पूर्ण करने के लिए राइ-राजा करने से तो न करना अच्छा था।' बाबाजी महाशय ने पीछे की ओर मुड़कर उन्हें देखते ही बायें हाथ से उनके गाल पर एक थप्पड़ मारा और मन्दिर में घुसकर दरवाजा खोल दिया। दर्शन कर भक्तों को बड़ा आनन्द हुआ। पर साथी और अन्यान्य लोग बहुत दुःखी हुए। कोई-कोई उच्च स्वर से रोने लगे। कीर्तन कुछ समय के लिए बन्द हो गया। बाद में बाबाजी महाशय की विशेष चेष्टा से त्रिभंगदादा ने राइ-राजा लीला के पदों से कीर्तन आरम्भ किया। पर विशेष आनन्द न आया। जो लोग नृत्य करने के लिए सुसज्जित बैठे थे, उनसे नृत्य करने के लिए विशेष अनुरोध किया गया, पर उन्होंने नृत्य नहीं किया। थोड़ी ही देर में आश्रम जनशून्य-सा नीरव हो गया। ठाकुर का भोग-राग भी हो गया, पर सेवकों में से बहुतों ने प्रसाद न पाया। बाकी लोग महाप्रसाद पाकर अपने-अपने स्थानों को चले गये। बाबाजी महाशय ने किंचित् महाप्रसाद पाकर विश्राम किया। दूसरे दिन सुबह बाबाजी महाशय ने ललितादासी, किशोरीदासी, कुसुममंजरीदासी आदि को बुलाकर कहा, 'देखो, कल मैंने तुम्हें बहुत आघात पहुँचाया, वह भी अज्ञात भाव से नहीं, जान-बूझकर। तुम लोग सरल भाव से बताओ, इसके लिए मुझे क्या दण्ड मिलना चाहिए? तुम लोगों को ही नहीं, मैंने श्रीराधारानी और राधाकान्त को भी दुःख पहुँचाया है। मैंने क्रोध के वशीभूत हो निकुञ्ज-द्वार पर पदाघात किया, इसलिए यह उचित नहीं कि मैं अब तुम सब लोगों के साथ रहूँ। मैं आज से नृसिंहदेव का उपासक कहकर अपना परिचय दूँगा। अपने को राधागोविन्द या निताइ-गौराङ्ग का दास कहना मेरे लिए अब उचित नहीं। श्रीराधाकान्तदेव जिस स्थिति में नीचे विराजमान थे, उस स्थिति में यदि मेरी लात से दरवाजा खुल जाता, तो सर्वनाश ही होता। यह सब देखते हुए मैं समझता हूँ कि मैं अब इस आश्रम में रहने योग्य नहीं।' यह कहकर जैसे ही वे जाने को हुए, सखियाँ उनके पैर पकड़कर साश्रुनयन गद्गद कण्ठ से कहने लगीं, 'हमारा अपराध क्षमा कीजिए; हम समझ न सकीं और इसलिए आपके आदेश का उल्लंघन किया। हम जब आपकी अनुगता दासी हैं और आपकी आज्ञानुसार आपकी कृपादत्त सेवा कर रही हैं, तो हमें यह अधिकार कहाँ कि हम आपकी बात में अच्छाई-बुराई सोचें? हमारा कर्तव्य तो यही है कि बिना सोचे विचारे आपके आदेश का पालन करें। कृपा कर हमारा अपराध क्षमा कीजिए।' बाबाजी महाशय बोले, 'नहीं, तुम लोगों ने कोई गलत काम नहीं किया। तुमने ठीक ही किया। तुमने तो मेरी आज्ञा का पालन करने के सिवा और कुछ नहीं किया। मैंने

ही भ्रमवश अपनी पहली बात भूलकर तुम्हें महान दुःख दिया। तुम लोग और बाधा न दो; जब तक मेरे अन्तःकरण की वृत्ति परिवर्तित नहीं हो जाती, मैं दूसरी जगह रहूँगा। तुम्हें डरने की कोई आवश्यकता नहीं, तुम लोगों के व्यवहार से मैं विशेष सुखी हूँ। तुम सब मिलकर भगवत्सेवा करो। भाग्य में होगा तो आकर तुम्हारे साथ मैं सेवा में योगदान करूँगा।' यह कहकर वे बाहर चले गये। 'तथापि गुरुर धर्म गौरव वर्जित' इस सिद्धान्त के एकमात्र उदाहरण स्वेच्छामय स्वतंत्र प्रभु के इस व्यवहार से साथी लोग किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये और मृतप्राय रहने लगे। बाबाजी महाशय श्रीजगन्नाथदेव के दर्शन कर प्राणवल्लभ मठ में चले गये। साथियों में से बहुत से उनकी खोज-खबर पाकर वहाँ जा पहुँचे, पर उन्होंने प्रेमदादा को अपने पास रखकर और सबको विदा कर दिया। उन्होंने प्रेमदादा को आदेश किया, 'एक पाव दाल, एक पाव चावल, आधा पाव लाल मिर्च, आधा पाव काली मिर्च, आधा पाव हल्दी आदि की खिचड़ी बनाकर श्रीनृसिंहदेव को गरम-गरम भोग लगाया करो। वर्तमान अवस्था में मैं राधागोविन्द या निताइगौराङ्ग के प्रसाद का अधिकारी नहीं।' प्रेमदादा आदेशानुसार कार्य करने लगे। पन्द्रह दिन इसी प्रकार चला। इधर आश्रमवासियों ने बाबाजी महाशय के लौटकर आ जाने की कामना से इन पन्द्रह दिनों में तीन अष्टप्रहर कीर्तन और दो चौबीस प्रहर कीर्तन किये। करुणामय ने करुणा की। अन्तिम चौबीस प्रहरी कीर्तन के दूसरे दिन आप आश्रम लौट आये। साथी लोग फूले न समाये। पूर्ववत् आनन्द-उत्सव होने लगे। आपने सेवकों को उपदेश दिया कि सेवा और कीर्तन दोनों में विशेष भाव से समन्वय रखें और किसी प्रकार से रसाभाव दोष न आने दें। आप भी विशेष रूप से ऐसा करने की चेष्टा करने लगे।

श्रीश्रीराधाविनोद का शुभागमन

एक दिन सुबह लगभग ग्यारह बजे बाबाजी महाशय झाँझपीटा मठ में बैठे थे। उसी समय कलकत्ते से पुलिनदादा का एक पत्र आया। उन्होंने लिखा था, 'कलकत्ते में हम लोगों का कोई निरपेक्ष स्थान नहीं है। रामदादा आदि जो विरक्त गुरुभाई हैं, वे अधिकतर कलकत्ते में ही रहते हैं। इसलिए हममें से कुछ गृहस्थ गुरुभाइयों ने परामर्श कर मिर्जापुर स्ट्रीट पर एक दुमंजिला मकान चालीस रुपये मासिक किराये पर तय कर लिया है; स्थान मठ के योग्य है। सब कुछ ठीक है, केवल आपके आदेश की देर है। सब वहाँ जाकर रहेंगे और हम लोग भी अवकाश मिलने पर वहाँ जाकर कीर्तनादि में योग देते रहेंगे।' पत्र पढ़कर आप मृदु भाव से हँसते हुए बोले, 'किराये पर मठ लेकर रहेंगे; वह मठ चलेगा कितने दिन? अन्त में अशान्ति ही पैदा करेगा। अच्छा, नया-नया उत्साह है, जितने दिन चले ठीक है।' यह कहकर आपने पत्र का उत्तर दे दिया। 66, मिर्जापुर स्ट्रीट पर स्थित उस मकान में यथानियम मठ की स्थापना हो गई। बड़े आनन्द से छह महीने निकल गये। कलकत्तावासी और बाहर से आने वाले अन्य सभी भक्तजनों को पता चल गया कि मिर्जापुर मठ में जाने से मालूम हो जायगा कि बाबाजी महाशय पुरी में हैं या नहीं। जिसे जो जानना होता, वह वहाँ जाकर पता कर लेता। एक दिन शाम को चार बजे के करीब एक बंगाली ब्रह्मचारी ने आकर एक व्यक्ति से पूछा, 'मिर्जापुर मठ यही है? रामदास बाबाजी आदि इसी जगह रहते हैं?' पुलिनदादा मठ में ही थे; वे बोले, 'जी हाँ। आप कहाँ से पधारे हैं? रामदास बाबाजी आदि को किसलिये पूछ रहे हैं?'

ब्रह्मचारी—आपका क्या नाम है?'

पुलिन—मेरा नाम श्रीपुलिनबिहारी मल्लिक है।

ब्रह्मचारी—मैं आपको ही खोज रहा था। मैं बहुत दिनों से अकेला ही नाना देश-देशान्तरों में घूम रहा हूँ। अधिकांश समय हरिद्वार से इधर ही रहता हूँ। एक दिन हरिद्वार पहाड़ की एक घाटी में लेटा हुआ था; अर्द्ध निद्रित अवस्था में था; न जाने किसने उस समय मेरे सिरहाने बैठकर जलद गम्भीर स्वर में कहा, 'मैं इस पहाड़ी में पत्थरों से दबा पड़ा हूँ; तू मुझे निकाल कर मेरी सेवा कर। मेरे बारे में और बातें पीछे जान जायगा।' मैंने उसी अवस्था में पूछा, 'आप कौन हैं? आपका नाम क्या है?' उत्तर में शब्द हुआ, 'मेरा नाम है विनोदबिहारी। तू मुझे निकाल कर मेरी सेवा कर, मैं तुझे सब बता दूँगा।' मैंने हठात् आँखें खोलकर

देखा तो कहीं कुछ नहीं। उठकर चारों ओर विशेष अनुसन्धान करने पर भी कुछ पता न चला। मैं सोचने लगा कि मैंने ऐसा स्वप्न तो कभी नहीं देखा। यदि यह यथार्थ ही ठाकुरजी का आदेश है, तो इस पहाड़ के भीतर उनका कैसे पता पाऊँ और उनके आदेश का उल्लंघन भी कैसे करूँ? इस प्रकार सोच-विचार करते-करते रात बीत गई, सूर्य के प्रकाश में मैं निकटवर्ती सभी स्थानों में घूम आया, पर कुछ पता न चला। एक पहाड़ को पेड़-पौधों से घिरा देखकर मेरे मन में सन्देह हुआ। मैंने सोचा कि यहाँ आदमियों का आवागमन नहीं है, अतः यहाँ खोज करने से कुछ न कुछ पता चल सकता है। फिर सोचा कि इतना सारा जंगल साफ करने के बाद भी यदि निराशा ही हाथ आई तो बड़ा दुःख होगा; इसलिए जबतक कोई और आदेश प्राप्त न हो, तब तक कुछ भी न किया जाय। ऐसा संकल्प कर यथासमय महाप्रसाद पाकर मैं इसी आशा से कुछ विश्राम करने लगा कि गतरात्रि की तरह कोई फिर आकर कुछ कहे, पर किसी ने कुछ नहीं कहा। रात में नाना प्रकार की चिन्ताओं के कारण नींद अच्छी तरह नहीं आई। शेष रात्रि में अर्द्धनिद्रित अवस्था में मैंने देखा कि लगभग दस-ग्यारह वर्ष का एक अत्यन्त सुन्दर कृष्णवर्ण बालक मेरे सिरहाने बैठकर मुसकराते हुए मृदु मधुर स्वर से कह रहा है, 'देखो भाई, तुमने जिस स्थान के बारे में सोचा है मैं वहीं हूँ। मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है। जितनी जल्दी हो सके, मुझे बाहर निकाल कर मेरी सेवा करो। भूख-प्यास के कारण मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है।' यह सुनकर मैं आँसुओं को रोक न सका और कातर स्वर में बोला, मैं भिखारी ब्रह्मचारी हूँ, इस जंगल को कैसे साफ कराऊँगा? इस काम के लिए तो बहुत पैसा चाहिए।' यह सुनते ही वह बालक बोला, 'कोई चिन्ता नहीं, तुम चेष्टा करो, सब काम अपने आप हो जायगा।' सुधा-मिश्रित उस आश्वास-वाणी को सुन मेरे मन-प्राण शीतल हो गये। आँखें खोलीं, तो वहाँ कुछ नहीं। प्राणों को बड़ा कष्ट हुआ। सोचने लगा कि 'हाय! मैंने आँखें खोली ही क्यों? यदि आँखें न खोलता, तो कुछ देर और अमृत के समान वचनों को सुनकर कानों को शीतल कर लेता। बलिहारी! वैसे वचन क्या फिर कभी सुन पाऊँगा?' ऐसा सोचते-सोचते दिन निकल आया। उस स्थान पर जाकर सोचने लगा कि इस जंगल को काटने की क्या और कैसे व्यवस्था करूँ? मैं तो यहाँ बिलकुल अपरिचित हूँ। पास में सिर्फ साढ़े चार रुपये हैं, इससे क्या होगा? पर उन्होंने कहा है, 'तुम उद्योग करो। फिर सब काम अपने आप हो जायगा।' इसलिए मैं जितना कर सकता हूँ, करूँ। यह सोचकर मैं बस्ती की ओर उतर कर जाने को हुआ। उसी समय दो पुरुष और तीन महिलाएँ दो कुल्हाड़ियाँ लेकर आये। विस्मय के साथ उन लोगों की ओर देखते हुए मैंने कहा, 'इधर कहाँ जा रहे हो?' उनमें से एक व्यक्ति ने कहा, 'बाबा! हम लकड़हारे हैं; लकड़ी काटने जा रहे हैं।'

मैं—लकड़ी काटकर क्या करोगे?

लकड़०—हमारा यही पेशा है; लकड़ी ले जाकर बेचते हैं, और जो पैसा मिलता है उसी से गुजर-बसर करते हैं।

मैं—अच्छा, मैं एक जगह दिखाऊँ, वहाँ की लकड़ी काटकर ले जाओगे?

लकड़०—क्यों नहीं? हमें तो लकड़ी चाहिए।

यह सुनकर मैं बड़ा खुश हुआ और उन लोगों को जंगल के पास ले जाकर बोला, 'पहले जंगल के भीतर जाने के लिए एक चौड़ा रास्ता निकालना पड़ेगा; पीछे क्या करना होगा, देखकर बताऊँगा।' इस पर वे स्त्रियाँ बोली, 'बाबा! आज इस कच्ची लकड़ी को तो बाजार में कोई खरीदेगा नहीं, हम लोग खायेंगे क्या?' मैंने उस दिन के लिए उन्हें कुछ पैसे दे-देने को कहा तो वे तैयार हो गईं। उन्होंने लकड़ी काटना शुरू कर दिया। शाम को चार बजे मैंने उन्हें सवा रुपया दिया। वे बड़े खुश हुए और कहने लगे कि दूसरे दिन आकर सारी जगह साफ कर देंगे। दूसरे दिन वे आठ-दस आदमी मिलकर आये और ठीक तरह से रास्ता साफ कर दिया। उन्हें साथ लेकर जंगल के भीतर गया तो देखता हूँ कि लगभग आठ हाथ जमीन साफ-सुथरी पड़ी है और दूसरी जमीन की अपेक्षा यह जमीन करीब डेढ़ हाथ ऊँची है। मेरे मन में दृढ़ धारणा बन गई कि ठाकुर जी इस जगह होंगे। लकड़हारों से उस जगह को

खोदने के लिए कहा, तो वे बोले, 'हम लोग कुल्हाड़ी के अलावा और कोई औजार नहीं लाये हैं, कल ले आयेंगे।' मैं भी उनकी बात से सहमत हो गया। उन सबको चार-चार आने के हिसाब से मजदूरी दे दी। वे चले गये, पर मैं उत्कण्ठावश और कहीं न जाकर इस उठी हुई भूमि के एक ओर लेट गया। रात को चार बजे के लगभग पूर्वपरिचित उसी सुमधुर कण्ठ से आदेश मिला, 'तुम जहाँ सोच रहे हो मैं उसी स्थान पर हूँ। ठीक बीच में थोड़ा खोदने पर ही मुझे देख लोगे।' यह आश्वासन पाकर बड़ी तृप्ति हुई। दूसरे दिन लकड़हारों के आने पर मैंने उन्हें निर्दिष्ट जगह दिखाई और धीरे-धीरे खोदने को कहा। प्राय: एक हाथ गड्ढ़ा करने के बाद श्रीमूर्ति के दर्शन हो गये। सभी लोग श्रीमूर्ति-दर्शन कर विस्मित हो गये। काफी जगह खोदने के बाद दो अपूर्व दारु विग्रह निकले। मूर्तियों को देखकर कौन कह सकता था कि वे मिट्टी में दबी पड़ी थीं। ऐसी उज्ज्वल ज्योतिपूर्ण मूर्तियाँ मैंने कभी नहीं देखी थीं। प्रभु की इच्छा से एक-एक दो-दो कर दर्शक आने लगे। सभी उन श्रीमूर्तियों के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए उत्सुक थे। प्रभु का आदेश न होने के कारण मैंने किसी से कुछ नहीं कहा, पर लकड़हारों से उन्हें सारी बात का पता चल गया। श्रीमूर्ति के साथ एक जोड़ा कोशा-कुशी[1], एक कमण्डलु, एक ताम्रकुण्ड, एक छोटा थाल और दो छोटी कटोरियाँ भी निकलीं। एक कमण्डलु मेरे पास था; इनकी सहायता से सेवा-कार्य चलने लगा। कुछ वर्ष तक बड़े आनन्द से सेवा की। इच्छामय की इच्छा से या मेरे किसी अपराध के कारण, एक दिन रात को आदेश प्राप्त हुआ, 'मुझे पुरी धाम पहुँचा आ।' नींद टूटने पर मैं बड़ा दु:खी होकर कहने लगा, 'हे प्रभु! मुझसे ऐसा क्या अपराध हुआ, जिसके कारण मुझे अपनी सेवा से वंचित कर दिया? यहाँ से पुरीधाम बहुत दूर है, फिर तुम्हारी यह नवकैशोर मूर्ति; मैं भला तुम्हें कैसे ले जाऊँगा? ले भी जाऊँ तो मैं किसी को पहचानता नहीं, मेरी बात का विश्वास कर कोई तुम्हें ग्रहण करे, न करे।' ऐसे विचार बराबर मन में आते रहे। एक दिन रात को फिर आदेश मिला, 'भाई, तुम्हारे किसी भी दोष के कारण मैं तुम्हें छोड़कर नहीं जा रहा। मेरी बड़ी इच्छा है कि मैं पुरीधाम जाऊँ। तुम और देर न कर मुझे वहाँ झाँझपीटा मठ में चरणदास बाबाजी के पास छोड़ आओ।' ठाकुर की एकान्त इच्छा से मैं बड़े कष्ट से कलकत्ते आया हूँ। यहाँ दो-एक लोगों से चरणदास बाबा के बारे में पूछा तो उन्होंने कहा, 'हम उन्हें जानते तो हैं, पर वे बहुत दिन तक एक स्थान पर नहीं रहते। उनके शिष्य पुलिनबिहारी मल्लिक, रामदास बाबाजी आदि मिर्जापुर स्ट्रीट पर एक मठ में रहते हैं। आप वहाँ जायँ तो पता चल जायगा कि वे इस समय पुरी में हैं या नहीं। इतना ही नहीं, वे लोग चाहेंगे तो आपको कोई कष्ट भी न होगा।' यह सब जानकर ही मैं आपके पास आया हूँ। अब इस विषय में आप जैसा चाहें कीजिए।

ब्रह्मचारीजी की बात सुनकर सभी बड़े प्रसन्न हुए। पुलिनदादा ब्रह्मचारीजी से बोले, 'आप ठाकुर जी को लेकर यहाँ रहिये। मैं बाबाजी महाशय को पत्र लिखकर तीन-चार दिन में आपके पुरी जाने की व्यवस्था किये देता हूँ; कोई चिन्ता न करें।

इधर कई मास पहले बाबाजी महाशय झाँझपीटा मठ के पुराने पक्के कमरे में ठाकुर-सेवा की असुविधा देख, एक फूस की कुटिया तैयार कर उसमें ठाकुरजी को ले आये थे। इस घटना के प्राय: पन्द्रह दिन पूर्व एक दिन उन्होंने लक्ष्मण महाराणा नामक एक बढ़ई को बुलाकर कहा था, 'भाई, चार-पाँच दिन के भीतर एक बड़ा खुला सिंहासन तैयार कर देना है।' लक्ष्मण ने कहा, 'इन ठाकुरजी के आकार के अनुसार ही बना दूँ, और बड़ा क्या करना है?' इस पर बाबाजी महाशय बोले, 'नहीं भाई मेरे यहाँ और चार मूर्तियाँ आने वाली हैं। दो बड़ी हैं, और दो उनसे कुछ छोटी। वे चारों मूर्तियाँ और यह ठाकुर एक साथ रह सकें, ऐसा सिंहासन होना चाहिए।' इतना कह उसे आकार बताया। उसने चार-पाँच दिन में सिंहासन तैयार कर दिया। सिंहासन पर ठाकुरजी को बिठाते समय किशोरीदासी ने पूछा, 'वे ठाकुर कब तक शुभागमन करेंगे?'

1. नाव की शकल के छोटे-बड़े दो जल-पात्र।

बाबाजी—दस-बारह दिन में ही आ पहुँचेंगे।

किशोरी—कहाँ से आयेंगे?

बाबाजी—दो मूर्ति हरिद्वार से, और दो कलकत्ते से।

किशोरी—मणिमय विग्रह हैं?

बाबाजी—चारों दारु विग्रह हैं।

किशोरी—राधागोविन्द मूर्तियाँ हैं या और कोई?

बाबाजी—दो बड़ी मूर्तियाँ राधागोविन्द हैं; वे हरिद्वार से आ रही हैं; और दो मूर्तियाँ निताइ-गौर हैं।

किशोरी—उनके स्थान बता देते तो ठीक रहता; उसके अनुसार आसनादि ठीक करने होंगे न?

बाबाजी महाशय ने श्रीमन्दिर में जाकर स्थान निश्चित किये। सभी आश्रमवासी उत्सुकता के साथ नये ठाकुरों की प्रतीक्षा करने लगे। वे प्राय: बाबाजी महाशय से कहते, 'आज भी ठाकुर नहीं आये?' बाबाजी महाशय मृदुहास्य के साथ उत्तर देते, 'आयेंगे, समय होते ही आयेंगे।'

एक दिन चार बजे के करीब आपने कलकत्ता दर्जीपाड़ा के योगेनबाबू को पत्र लिखा कि वे पत्र पढ़ते ही खूब लम्बी नलकीवाला एक फरसी (हुक्का) और साथ में कलकत्ते में उपलब्ध अच्छे से अच्छा तम्बाकू भेज दें। पत्र लिखते समय ललितादासी पास ही खड़ी थीं; तम्बाकू की बात लिखते देखकर वे बोलीं, 'तम्बाकू का क्या होगा?' बाबाजी महाशय ने कहा, 'जो ठाकुर हरिद्वार से आ रहे हैं, वे तम्बाकू सेवन करते हैं।' उसी वक्त पुलिनदादा का पत्र आया जिसमें ठाकुरजी का विवरण था। पत्र पढ़ते ही उन्होंने प्रसन्न हो उत्तर दिया, 'ब्रह्मचारी जी से मेरा दण्डवत् प्रणाम कहना और ऐसी व्यवस्था करना जिससे अविलम्ब ब्रह्मचारी जी सहित ठाकुरजी यहाँ आ सकें।' पुलिनदादा ने बाबाजी महाशय का पत्र पाते ही भलीभाँति ब्रह्मचारी जी के साथ ठाकुर जी को भेज दिया। दूसरे दिन नौ बजे के करीब ठाकुरजी ने झाँझपीटा मठ में शुभविजय की। अति मनोमुग्धकर ठाकुर को देख सभी तृप्त हो गये। यथानियम ठाकुरजी का अभिषेकादि कर उन्हें मन्दिर में स्थापित किया गया। ठाकुरजी का नाम हुआ श्रीराधाविनोद। ब्रह्मचारीजी ने ठाकुर का सारा वृत्तान्त भली प्रकार बाबाजी महाशय को सुनाकर अन्त में कहा, 'विनोदबिहारी तम्बाकू सेवन करते आये हैं।' यह कहकर उन्होंने ठाकुरजी का हुक्का, कली और तम्बाकू निकाल कर बाहर रख दिये। इधर योगेनबाबू का भेजा तम्बाकू आदि भी आ पहुँचा। तब बाबाजी महाशय और बाकी सभी लोगों ने निश्चय किया कि नये हुक्के में विनोदजी को तम्बाकू दिया जाय। बहुत कौतुहल के साथ सेवकों ने तम्बाकू सजाकर नली विनोदजी के हाथ में दी और मन्दिर का द्वार बन्द कर सब बाहर आ गये। कुछ देर बाद जब द्वार खोला, तो देखा कि तम्बाकू के धुएँ और सुन्दर खुशबू से मन्दिर परिपूर्ण है। रोज इसी तरह होने लगा। ब्रह्मचारी जी कुछ दिन वहाँ रहकर श्रीविनोदविहारी जी और बाबाजी महाशय से विदा ले कलकत्ते चले गये।

श्रीश्रीनिताइ-गौर का आगमन

एक दिन प्रात:काल बाबाजी महाशय ने ललिता दासी को बुलाकर कहा 'देखो, आज श्रीश्रीराधाकान्तदेव के घर दो अतिथि आयेंगे, सो अच्छी तरह भोगराग की व्यवस्था करना। पायस, पूड़ी, दही, संदेश आदि का प्रबन्ध करना। सबसे पहले कुछ नाश्ते की व्यवस्था रखना। देखना उन्हें कोई कष्ट न हो। दो फूल मालाएँ चाहिए।' इतना कहकर स्वयं मानो उनकी प्रतीक्षा में ठाकुरजी के आँगन में घूमने लगे और बीच-बीच में चौंक कर सदर दरवाजे की ओर जाकर बड़ी उत्कण्ठा से देखने लगे। ललितादासी आदि आश्रमवासी बाबाजी महाशय की ऐसी अवस्था देख विस्मित हो परस्पर कहने लगे, 'कैसा आश्चर्य! कितने भद्रपुरुष आते रहते हैं, महात्मा लोग भी पधारते रहते हैं, पर इनकी ऐसी व्यग्रता हमने पहले तो कभी नहीं देखी। और फिर, 'उन्हें कष्ट न हो, नाश्ते की व्यवस्था हो, फूलमालाएँ हों।' ऐसा भी कभी नहीं सुना। निश्चय ही इसमें कुछ रहस्य है। यह कहकर सब अपने-अपने काम में लग गये।

करीब साढ़े नौ बजे कलकत्ते से बाबाजी महाशय के प्रिय शिष्य हरिदासदादा दो दारु विग्रह निताइ-गौर के साथ सपरिवार आ पहुँचे। श्रीमूर्तियाँ आकार में

बहुत बड़ी नहीं थीं, तथापि वे बड़ी मनोमुग्धकर और माधुर्यपूर्ण थीं। उनके हास्य-भरे चमकते मुखचन्द्र देखते ही मन-प्राण द्रवित हो जाते थे। बाबाजी महाशय ने दूर से देखते ही द्रुतगति से जाकर दोनों मूर्तियों को वक्षस्थल से लगाया और नाचते-नाचते श्रीमन्दिर में प्रवेश कर सिंहासन के दोनों ओर दोनों को विराजमान कर दिया और किशोरीदासी को भली प्रकार सेवा करने के लिए आदेश देते हुए सबसे पहले मिश्री का शर्बत और बालभोग देने को कहा। फिर जैसे ही आप बाहर निकले हरिदादा ने उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया और उनके चरण पकड़ कर रोने लगे। इन्होंने सान्त्वना देकर पूछा, 'इस वक्त सपरिवार श्रीविग्रहों को लेकर कैसे आना हुआ?'

हरि०—जी, आपके चले आने के बाद कलकत्ते में एक मुहूर्त भी रहने को मन नहीं किया। मैं अब वहाँ नहीं जाऊँगा; मुझे अङ्गीकार कीजिये। स्त्री, पुत्र, परिवार और यह ठाकुर सभी कुछ मैंने आपको अर्पित किये। अब आपकी इच्छा हो सो करें।

बाबाजी—तुमने अपनी स्त्री और माँ की अनुमति से ऐसा किया है?

हरि०—मैंने अकेले ही आने का निश्चय किया था, पर वे लोग जब मेरे साथ आने को प्रस्तुत हुए, तो मैंने उन्हें अच्छी तरह समझा दिया कि मैं वापस नहीं आऊँगा, निष्किञ्चन भाव से बाबाजी महाशय के साथ रहूँगा; यदि तुम लोग उसी भाव से रह सको तो चलो, नहीं तो अपना घरबार लेकर रहो। फिर भी उन लोगों ने मेरे साथ चलने का आग्रह किया।

बाबाजी महाशय ने कुछ नहीं कहा; थोड़ा मृदुभाव से हँसकर मठ के पासवाले एक मकान में हरिदादा की माँ और स्त्री के रहने की व्यवस्था कर दी। हरिदादा उन लोगों का संसर्ग छोड़कर मठ में रहने लगे। अब श्रीश्रीराधाकान्तदेव आश्रम के अधीश्वर थे; श्रीश्री राधाविनोदजी और श्रीश्रीनिताइ-गौर अभ्यागत रूप में रहने लगे। परमानन्दपूर्वक सेवा चलने लगी। सेवक लोग नित्य नूतन वेशभूषा की व्यवस्था कर नानाप्रकार के कौशल से लीला-रस आस्वादन करने और कराने लगे। मठ में निरन्तर आनन्द का स्रोत बहने लगा।

कुछ प्रसङ्ग

एक दिन सुबह बाबाजी महाशय स्नान आदि कर सदल नाम करते-करते श्रीश्रीजगन्नाथदेव के मन्दिर गये। कुछ देर मन्दिर में कीर्तन कर सबको आश्रम भेज दिया और स्वयं समुद्र तीर पर श्रीश्रीहरिदास ठाकुर के समाधि-मन्दिर चले गये। जब वे बहुत देर तक आश्रम न लौटे तो फणी, राधाविनोद और उद्धारण उनके पास जाकर आश्रम चलने के लिए कहने लगे। वे बोले, 'मैं कुछ दिन यहीं एकान्तवास करूँगा।' फणी आदि के बहुत अनुरोध करने पर भी जब वे न लौटे, तो वे लोग भी उनके साथ रह गये। उन लोगों ने जब झाँझपीटा मठ से महाप्रसाद भेजने का प्रस्ताव रखा, तो उन्होंने अस्वीकार कर दिया और हरिदास ठाकुर की सेवा भिक्षा द्वारा चलाई।

इस प्रकार सात-आठ दिन बीत गये। एक दिन कौशलपूर्वक ललितादासी ने मठ से श्रीगोविन्दानन्द परिव्राजक को मठ में खर्चे के अभाव की बात बताने के लिए बाबाजी महाशय के पास भेजा। उन्होंने सोचा था कि यह बात सुनते ही बाबाजी महाशय आश्रम चले आयँगे, पर ऐसा न हुआ। गोविन्दानन्द ने जाकर कहा, 'मठ में कुछ भी नहीं है; श्रीश्रीराधाकान्त की सेवा बन्द है, तेल तक नहीं है, जिससे ठाकुरमन्दिर में दीपक जल सके। आप कृपा कर चलिये।' बाबाजी महाशय मृदुभाव से हँसते हुए बोले, 'क्यों, मैं श्रीश्रीराधाकान्त देव से ज्यादा शक्तिमान तो हूँ नहीं। उनकी इच्छा तेल की रोशनी में रहने की होगी, तो योगमाया की इच्छा से उसकी व्यवस्था हो जायगी, नहीं तो वे चन्द्रमा की रोशनी में रहेंगे। श्रीकृष्ण-सेवा की सामग्री की व्यवस्था करना श्रीयोगमायादेवी के हाथ में है। वे व्यवस्था न करें, तो किसी सेवक की क्या सामर्थ्य जो कर करे? चेष्टा भी करेगा तो वह स्वतन्त्रता समझी जायगी। सेव्य-सेवक और पति-पतिव्रता का व्यवहार एक जैसा है। पतिव्रता स्त्री पति की मुखापेक्षी है; पति द्वारा दिये द्रव्य से सन्तुष्ट रहती है; पति के सुख में सुखी रहती है, पति द्वारा उपार्जित धन से अपनी चतुराई और बुद्धि-कौशल के साथ वह पतिसेवा के लिए आवश्यक वस्तुएँ संग्रह कर पति

की आज्ञानुवर्तिनी होकर रहती है; स्वतन्त्र होकर कोई काम नहीं करती। इसी तरह सेवक प्रभु की दी हुई वस्तुओं से अपने अनुराग और बुद्धि-कौशल के साथ नाना प्रकार से सेवा कर प्रभु को सन्तुष्ट करने की चेष्टा करता है। वह यदि स्वतन्त्रता बरते, तो क्या प्रभु उसे सहन करेंगे? राधाकान्त ही मुझे यहाँ लाये हैं, मैं तो उन्हें यहाँ लाया नहीं?'

गोविन्द०—आपकी इस बात से उपासना का विरोध नहीं होता क्या? यदि राधाकान्त ही लाने वाले और सेवा-वस्तु संग्रह करने वाले हुए, तो विशुद्ध माधुर्य कहाँ रहा? व्रजेन्द्रनन्दन कृष्ण में ऐश्वर्य की गन्ध भी आ जाय, तो व्रज-उपासना कहाँ रही? माँ यशोदा यदि सोचने लगें कि कृष्ण जो कुछ ला देंगे, उसी से उनकी सेवा होगी, तो उनकी शुद्धवात्सल्य जनित सेवा की उत्कण्ठा, व्यग्रता या चेष्टा कहाँ रही? वह दे रहे हैं या देंगे ऐसी धारणा रखते ही तो ईश्वरत्व आ गया; मेरा पुत्र, मेरा सखा, मेरे प्राणवल्लभ..., यह बुद्धि कहाँ रही?

बाबाजी—बड़ी गूढ़ बात है। बड़े मनोयोग के साथ सुनो। दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिक सभी तरह से समान नहीं रहते। प्रायः कोई दो-एक बातें ही लेकर उपमा दी जाती है। कुछ अंशों में पतिव्रता स्त्री के साथ व्रज उपासकों की समानता दिखाई गई है। जिस तरह पतिव्रता पति-मुखापेक्षी, पति-सुख में सुखी, पतिपरायणा और पति-आज्ञानुवर्तिनी होकर सेवा करती है, उसी तरह व्रज-उपासक भी सर्वदा कृष्ण-मुखापेक्षी, कृष्ण-सुख में सुखी, कृष्णनिष्ठ और कृष्ण-आज्ञानुवर्ती होकर कृष्ण-सेवा करते हैं। इसी अंश में समानता है। कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं समर्थः प्रभुः। व्रजलीला में प्रभु श्रीयोगमाया हैं, उन्हीं की इच्छा से वृन्दावन लीला होती है। योगमाया की इच्छा से कृष्ण-सुख के लिए षड्ऋतु वर्तमान रहती है; इच्छामात्र से आवश्यक फल-फूलों से वृक्ष-लताएँ भर उठती हैं। उन्हीं की इच्छा से गायें दुग्धवती हो जाती हैं, अतएव जो कृष्ण-सेवा करते हैं, उनकी प्रभु एकमात्र योगमाया हैं। प्रभुदत्त अर्थात् योगमाया-प्रदत्त वस्तु द्वारा कृष्ण-सेवा कर वे लोग प्रभु अर्थात् योगमाया की सन्तुष्टि की चेष्टा करते हैं।

गोविन्द०—व्रजगोपियों के कृष्ण-आज्ञानुवर्तिनी होने से मान आदि के लिए स्थान कहाँ रहता है?

बाबाजी—यह बहुत ही मधुर बात है। कृष्णाज्ञा से कृष्ण आज्ञा का उल्लंघन! 'प्रिया जदि मान करि करये भर्त्सन; वेदस्तुति हइते सेइ हरे मोर मन' आदि कृष्ण-मुख वाक्यों से स्पष्ट है कि कृष्ण को सुख होगा यह जानकर ही गोपियाँ मान करती हैं।

गोविन्द०—आपने कहा, राधाकान्त मुझे लाये हैं; सो कैसे?

बाबाजी—यथार्थ बात तो यही है। यदि कृष्ण मन-प्राण हरण कर आकर्षित न करें, तो क्या कोई संसार-शृङ्खला तोड़ सकता है, या अविद्या-बन्धन से मुक्त हो सकता है? वे केश पकड़कर ठीक दास की तरह आकर्षित कर ले आये हैं, तभी मैं आया हूँ। आज यहाँ मैं अपनी इच्छा से आया हूँ, वे जब आकर्षित करेंगे तो जाऊँगा। तुम मठ जाकर कह दो।

इस तरह उन्होंने गोविन्दानन्द को विदा किया। दूसरे दिन एकादशी थी; निर्जल उपवास करेंगे। उन्होंने फणी, राधाविनोद और उद्धारण को अपने तीन ओर खड़ा कर 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे, हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे' नाम करने के लिए कहा और स्वयं संख्या रखने लगे। दस बजे के करीब एक व्यक्ति श्रीजगन्नाथदेव का कुछ महाप्रसाद लेकर आया; बाबाजी महाशय ने साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम कर महाप्रसाद सिर से लगाया। उसी अवस्था में सारा दिन और सारी रात कट गई, पर उन्हें कुछ ध्यान नहीं। दूसरे दिन सुबह सात बजे महाप्रसाद का एक कण ग्रहण कर आप समुद्र-स्नान करने चले गये। इस प्रकार हरिदास ठाकुर के समाधि-मन्दिर में पन्द्रह दिन रहने के बाद आप सोलहवें दिन आश्रम लौट आये।

एक दिन बाबाजी महाशय झाँझपीटा मठ के पंगत घर में बैठे हुए थे; हरिदादा जाकर बोले, 'मुझे दया कर भेक दे दीजिये। मेरी अब इस प्रकार धोती-चादर पहनने की इच्छा नहीं होती।'

बाबाजी—क्यों, तुम्हारा भेक तो हो गया। सुना है कि तुम लोगों में विवाह से पहले भेक न हो तो विवाह ही शुद्ध नहीं होता।

हरि०—वह भेक कोई भेक नहीं। इस भेक का अर्थ है-वैराग्य धर्माश्रय; और उस भेक का अर्थ है-संसार में प्रवेश। मुझे और भुलावा देने से काम नहीं चलेगा। भेक देना ही होगा।

बाबाजी—क्या वास्तव में अब और संसारधर्म पालन करने की तुम्हारी इच्छा नहीं हैं।

हरि०—मैं संसार में प्रवेश न करूँगा। आप कृपा कर मेरा माया-बन्धन काट दीजिये।

इतना कहकर वे उनके चरण पकड़ कर रोने लगे। उन्होंने उन्हें आलिंगन-दान कर कहा, 'देखो, यदि यथार्थ ही वेश-परिवर्तन करने की इच्छा हो तो उधर का जो कुछ भी खिंचाव है उससे पहले मुक्ति पा लो, क्योंकि वैराग्य लेकर फिर राज-दरबार में जाना बड़ा गलत है।'

हरि०—उधर का खिंचाव अब कुछ भी नहीं है, कलकत्ता में सिर्फ एक घर है। उसे बेचने से सब काम पूरा हो जायगा।

बाबाजी—तो इस काम को करके ही भेक लेना।

हरिदादा ने और कुछ न कहा। वे कलकत्ते जाकर सात दिन के भीतर घर बेचकर श्रीधामपुरी आ गये। घर बेचकर जो रुपये प्राप्त हुए, उन्हें बाबाजी महाशय के आगे रखा तो वे विस्मित होकर बोले, 'इतने में ही घर बेच आये?'

हरि०—जी, आपकी बड़ी कृपा है। जाते ही एक ग्राहक मिल गया; उसने जितना कहा उतने में ही रजिस्ट्री कर दी।

बाबाजी महाशय साश्रुगद्गद कण्ठ से कहने लगे, 'बलिहारी, नवानुराग का कैसा प्रबल प्रताप है। निताइचाँद यदि जीव की यह अवस्था सदा रखते, तो न जाने कितने-कितने बड़े कार्य होते। अच्छा ये रुपये अपनी माँ को न देकर यहाँ क्यों लाये?'

हरि०—मैं आपके अतिरिक्त और किसी को नहीं जानता। 'मेरी' नाम की जो कुछ वस्तु मेरे पास है, वह सब आपके श्रीचरणों में समर्पित है। मैं जीवन भर के लिए आपका आश्रित दास हूँ। मुझे और माया के प्रलोभन में फेंककर प्रताड़ित न करें।

बाबाजी महाशय और कुछ न कह सके।

ललितादासी को आदेश किया, 'लो यह रुपये लेकर कमरे में रखो, पर सावधान! जब तक मैं न कहूँ, एक पैसा भी इसमें से खर्च न हो।'

पाँच—छह दिन बीत गये। एक दिन सुबह हरिदादा भेक लेने के लिए बड़ी जिद करने लगे। उन्होंने किसी तरह बाबाजी महाशय के पैर ही न छोड़े। आँसुओं से उनका मुँह और वक्ष भीग गया। बाबाजी महाशय ने यह देखकर कि वे किसी प्रकार भी नहीं मानते उन्हें डोर-कौपीन पहनाकर नाम करते-करते कुछ घरों से भिक्षा कर लाने का आदेश किया। हरिदादा प्रेमानन्द में गद्गद कण्ठ से मनप्राण मत्त कर देनेवाला 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' नाम करते हुए भिक्षा के लिए निकले। आहा, कैसी अपूर्व शोभा! पर भिक्षा की झोली, हाथों में करताल, और आँखों में निरन्तर अश्रुधार! आँसुओं से वक्षस्थल भीगा जा रहा है। जो कोई भी उनकी इस अवस्था को देखता है, वही प्रेमावेश में 'निताइचाँद की कृपा की जय हो' कहकर रो उठता है। यथासमय वे भिक्षा लेकर आश्रम लौट आये। भिक्षा में प्राप्त सामग्री के साथ सभी वासना-कामनाएँ श्रीगुरुदेव के श्रीचरणों में समर्पित कर वे गुरुदेव की आज्ञा की प्रतीक्षा में वहाँ खड़े रहे। बाबाजी महाशय बोले, 'देखो सावधान, भेक की मर्यादा रखनी होगी। बाहरी सजावट ही भेक नहीं है। गोस्वामीजनों ने आचरण कर दिखाया है कि पहले वैराग्य फिर वेश। पहले वस्तु भीतर प्रकट होती है, पीछे बाहर दिखाई देती है।'

हरि०—भेक के लिए क्या-क्या विधि निषेध है बता दीजिये।

बाबाजी—आश्रय की बात है। आश्रय कई प्रकार के होते हैं, उनमें से कई अवान्तर हैं, और कई प्रधान या अवश्य पालनीय हैं। प्रधान आश्रय पाँच प्रकार के हैं- नामाश्रय, गुरुपदाश्रय, मंत्राश्रय, भावाश्रय एवं वेशाश्रय- ये पाँच अवश्य पालनीय हैं। इनमें वेशाश्रय सबसे बाद है, अर्थात् जबतक पहले चार आश्रय ग्रहण नहीं किये जाते, तबतक वेशाश्रय मंगलप्रद नहीं हो सकता। वेश-आश्रय के बाद जहाँ-जहाँ वैपरीत्य देखा जाय, वहीं समझना चाहिए कि बाकी चार आश्रयों में कहीं कोई

गोलमाल है। जो लोग सच्चे हृदय से इन पाँच आश्रयों को ग्रहण करते हैं, उनका कभी पतन नहीं होता।

हरि०—अवान्तर आश्रय क्या है?

बाबाजी—वे कई प्रकार के हैं। कुछ के बारे में बताता हूँ। इन पाँच आश्रयों के ग्रहण करने पर रूपाश्रय, गुणाश्रय, धामाश्रय, लीलाश्रय आदि अवान्तर भाव स्वयं ही आ जाते हैं। जेसे 'कृष्ण' नाम का आश्रय ग्रहण करने से कालारूप, भक्तानुग्रह, असुरनिग्रह आदि गुण और द्वारका, मथुरा, वृन्दावन आदि धामों का आश्रय अपने आप हो जाता है। इसके बाद गुरुपदाश्रय और मंत्राश्रय विशेष भाव से हो जाता है। फिर, भावाश्रय होने पर बाल्य, पौगण्ड, कैशोर आदि वयसों का आश्रय और उनसे सम्बन्धित अवस्थाओं वाले विषयों के आश्रय स्वत: हो जाते हैं; उसके लिए अलग से कुछ नहीं करना पड़ता। वेश-आश्रय के अन्तर्गत ये बातें आती हैं: ग्राम्य-कथा न कहना, न सुनना; काम-क्रोध का दास होकर इन्द्रियों की सन्तुष्टि करने की इच्छा से महिलाओं की ओर न देखना और न उनसे वार्तालाप करना। अपने अभीष्ट रस को छोड़कर अन्य रसों के प्रति न तो द्वेष बुद्धि रखना और न उनकी समालोचना करना। 'तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना। अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥' सदा इस श्लोक का मर्मार्थ हृदयंगम कर उसके अनुसार आचरण करने की चेष्टा करना। स्त्री-संग अथवा स्त्री के संगियों का संग, बाहरी आडम्बर, अनावश्यक बातचीत, मिथ्या व्यवहार, परचर्चा, परनिन्दा, द्वेषभाव, हिंसा, द्रोह, परछिद्रान्वेषण, अतिरिक्त भोजन, आसक्ति विलासिता, अनिवेदित भोजन आदि बातों का विशेष यत्न के साथ परित्याग करना। श्रवण, कीर्तनादि नवधा भक्ति का पालन करना। और क्या बताऊँ? आचरण करते रहो; जब जो आवश्यकता होगी, मंगलमय निताइचाँद हृदय में स्फूर्ति करा देंगे।

हरिदादा हाथ जोड़कर बाबाजी महाशय की बातें सुन रहे थे; आँसुओं से वक्षस्थल भीग रहा था। गद्गद कण्ठ से बोले, 'गुरुदेव! मेरी कोई सामर्थ्य नहीं कि इन सब बातों का आचरण कर सकूँ, एकमात्र आपकी कृपा ही मेरा सम्बल है।' यह कहते हुए उन्होंने बाबाजी महाशय को साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम कर उनके श्रीचरण पकड़ लिये। उन्होंने उन्हें उठा कर आलिङ्गन किया, साथ ही मुट्ठी भर भिक्षा करने का आदेश दिया।

एक दिन चार बजे के करीब श्रीयुत जगदीशबाबू के घर से उनका नौकर दीनबन्धुदास आकर बाबाजी महाशय से बोला, 'बाबूजी के यहाँ एक लोहे का सन्दूक है, यदि आश्रम में आवश्यकता हो तो उसे मँगा लीजिए, नहीं तो उसे बेच दें।' आपने कहा, 'देखो भाई! जगदीशबाबू और प्यारीबाबू से कहना कि यहाँ भिक्षा से सारा काम चलता है; सन्दूक में रखने लायक कोई चीज नहीं दीखती। फिर, उनके इतने पैसे बेकार क्यों जायँ, उनसे कहो कि वे उसे बेच दें।' दीनबन्धु ने यह बात जगदीश बाबू और उनके भाई प्यारीबाबू से कही। दोनों ने जाने क्या सोचकर दीनबन्धु से कहा, 'देख दीना, चार आदमी बुला ला और सन्दूक झाँझपीटा मठ में पहुँचा आ।' दीनबन्धु ने कहा, 'बाबाजी महाशय ने तो निषेध किया है।' प्यारीबाबू बोले, 'तुम कहना कि सन्दूक आपको नहीं, राधाकान्तदेव को दिया है।' उसने सन्दूक मठ में पहुँचा दिया और बाबाजी महाशय से सारी बात कह दी। बाबाजी महाशय मृदुभाव से हँसते हुए बोले, 'ठीक है। राधाकान्तदेव बड़े आदमी बनना चाहते हैं तो बनें, मुझे क्या आपत्ति?' और झाँझपीटा मठ से लगे दोमंजिले मकान के नीचे वाले कमरे में सन्दूक रखवा दिया।

कई दिन बाद ललितादासी ने पूछा, लोहे के सन्दूक में क्या रखा जायगा? आप बोले, 'जिन्होंने मँगाया है वे ही जानें।' इतना कहकर आप श्रीजगन्नाथ-दर्शन करने चले गये। दर्शन करते समय एकाएक जगन्नाथदेव जी की कण्ठमाला फिसलकर रत्नवेदी पर आ गिरी। सेवक ने उसी समय वह माला उनके गले में पहना दी। आप साश्रुनयन गद्गद कण्ठ से बोले, 'अच्छा प्रभु! तुम्हारी जो इच्छा।' और साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम कर लक्ष्मीदेवी के दर्शनार्थ चले गये। लक्ष्मीदेवी के जगमोहन में और मन्दिर में बहुत-सी-कौड़ियों की पिटारियाँ झूलती रहती हैं। पता नहीं क्यों, इनमें से एक पिटारी पर बाबाजी महाशय का मन चला गया। एक सेवक से बोले, 'भाई, ये पिटारी मुझे दे दोगे?'

सेवक—बाबा, आज मेरी सेवा नहीं है? जिसकी बारी है, वही बता सकता है। ये पिटारियाँ, लक्ष्मीपूर्णिमा को छोड़ और किसी दिन नहीं खोली जातीं। यह जो धान का गुच्छा है, यह ठाकुरजी के नवान्नवाले दिन रखा जाता है। दूसरे वर्ष नवान्न के समय पुराने गुच्छों को उतारकर राजा की नहर में डाल दिया जाता है और सेवकों के घरों में बाँट दिया जाता है। हम लोगों में पहले से ऐसी प्रथा चली आ रही है। मैं कैसे एक नया नियम चला दूँ?

यह सुनकर बाबाजी महाशय और कुछ कहे बिना लक्ष्मीदेवी को दण्डवत् प्रणामकर श्रीमन्महाप्रभु के पाद-पद्म दर्शन करने चले गये। पाँच मिनट के भीतर ही उपर्युक्त सेवक विशेष व्यग्रता के साथ बाबाजी महाशय के पास आकर प्रेमगद्‌गद कण्ठ से बोला, 'बाबा, आप भाग्यवान महापुरुष हैं, आप जो चाह रहे थे, वह लक्ष्मीदेवी ने कृपाकर दिया है, चलिये ले आइये।' यह सुनते ही वे जाने कैसे एक विचित्र भाव से कुछ देर नीरव खड़े रहे। फिर साश्रुनयन गद्‌गद कण्ठ से बोले, 'चलो भाई, लक्ष्मीदेवी का कृपाचिह्न देखकर कृतार्थ होऊँ।' द्रुतगति से लक्ष्मीदेवी के जगमोहन में पहुँचकर देखते हैं कि जिस धान के गुच्छे और पिटारी को लेने का आपका मन हुआ था, वे दोनों ही अविकृत भाव से लक्ष्मीदेवी के आगे पड़े हैं। यह देखकर उन्होंने विस्मित भाव से सारा वृतान्त पूछा, तो वह बोला, 'जैसे ही आप बातचीत कर आंगन से बाहर निकले, यह गुच्छा और पिटारी हिलने लगे। मैंने पहले तो सोचा कि हवा से ऐसा हो रहा होगा, पर उसी समय यह बात ध्यान में आई कि यदि हवा से ऐसा होता, तो यही दो क्यों हिलते? ऐसा सोच ही रहा था कि दोनों टूटकर नीचे गिर पड़े। आश्चर्य यह कि इतने ऊँचे से गिरने पर भी न तो ये चीजें टूटीं, न बिखरीं; ऐसा लगा कि जैसे किसी ने हाथ से उतार कर रख दिये हों। इसी से मेरे और दूसरे लोगों के मन में दृढ़ निश्चय हो गया कि बाबाजी महाशय ने ये चीजें माँगी थीं; हमने मना कर दिया, पर लक्ष्मीदेवी ने स्वयं उन्हें दे दीं। इसीलिए आपको बुलाने गया था। लक्ष्मीदेवी की कृपादत्त वस्तु ग्रहण कीजिए।' इतना कह उसने दोनों चीजें बाबाजी महाशय की चादर में बाँध दीं। वे ठीक बच्चे की तरह जोर-जोर से रोते हुए बोले, 'हा निताइचाँद! तुम्हारा खेल तुम्हीं जानते हो। कितनी तरह से कितनी लीलाएँ खेलते हो, मैं क्षुद्र जीव क्या समझूँ? जो हो, तुम्हारी कृपा की जय हो।' यह कहकर वे द्रुतगति से आश्रम लौट आये। श्रीजगन्नाथदेव की कृपादत्त माला और लक्ष्मीदेवी की कृपादत्त वस्तुएँ ललितादासी को देकर उन्हें पूर्वोक्त सन्दूक में रखने के लिए कहा और आदेश दिया कि उस जगह रोज सन्ध्या के समय एक घी का दीपक जलाया करें।

एक दिन सन्ध्यासमय आपने किशोरीदासी को बुलाकर पूछा, 'आप रात को बासर शैय्या और कल सुबह मान-कीर्तन के अनुरूप ठाकुर का वेश कर सकोगी?'

किशोरी—आपकी कृपा हो तो यह कौन-सी बड़ी बात है? आदेश दीजिये कि किस वक्त क्या करना होगा।

बाबाजी—मैं क्या बताऊँ? कीर्तन के भावों के अनुरूप काम करो; दूसरे शब्दों में, राधारानी की एक प्रतिनिधि के रूप में काम करना है।

किशोरी—मेरे मन में एक वासना जागी है। आदेश दें तो उसके अनुसार कार्य करूँ।

बाबाजी—बताओ, क्या मनोवासना है?

किशोरी—वासना है कि आप राधारानी के प्रतिनिधि रहें; हम आपके आनुगत्य में काम करें।

सभी ने आनन्द से इसका समर्थन किया। बाबाजी महाशय कोई आपत्ति न कर सके।

कुसुमदासी ने गोपीचन्दन द्वारा उनका नाना प्रकार से शृङ्गार किया; नीली साड़ी पहनाई, तुलसी-काष्ठ की माला और फूलमाला से नाना प्रकार के अलंकार बनाकर अच्छी तरह सजा दिया। अति अपूर्व शोभा! बाहर के लोगों की बात तो दूर, उनके साथी भी उन्हें मुश्किल से पहचान पाते थे। हाव-भाव कटाक्ष सभी बदल गये। सब कुछ नवीन, सभी मनोमुग्धकर! जो भी लोग वहाँ थे, सबने स्त्रीवेश धारण किया। हरिदादा को कीर्तन करने का आदेश हुआ। वे प्रथम संकेत से वासन शैय्या तक का कीर्तन करने लगे। इधर

पद-पदावलियों के भावों के अनुरूप अभिनय होने लगा। संकीर्तन बाबाजी महाशय के शयनकक्ष में हो रहा था। उन्होंने किशोरीदासी को आदेश दिया, 'तुम कीर्तन के भावों के अनुरूप राधारानी के आचरणीय कार्यों का श्रीमन्दिर में आचरण करो। यहाँ कीर्तनिया साधकजनों के उद्दीपन के लिए एक शय्या की रचना करो।' यह कहकर अपने बिस्तर की चादर आदि बदलकर उसी प्रकार स्वयं भी आचरण करने लगे।

आनन्द की अवधि नहीं। बाबाजी महाशय एक-एक पद में आखर देते हैं, और रस का स्रोत फूट पड़ता है। उपस्थित लोग भाव-निमग्न हैं। कौन कह सकता है कि लीला अप्रकट है? सभी तो वर्तमान है। श्रीमती उत्कण्ठित भाव से बिछे हुए बिस्तर को फिर से बिछाती हैं; सुवासित ताम्बूल को फिर से कर्पूर-वासित करती हैं-इन विषयों के पद-कीर्तन के शुरू होते ही, सब लोग उच्चस्वर से रो-रोकर कीर्तन करने लगे। इस प्रकार महानन्द में सारी रात कीर्तन हुआ। किसी को बाह्यस्मृति नहीं। श्रीमती के कहने पर 'त्यज सखी कानु आगमन आश। जामिनी शेष भेल सबहुँ नैराश' सबको ज्ञान हुआ कि रात्रि शेष हो गई। सभी भाव-विभोर थे; निद्रा किसी के पास फटकी तक नहीं। सुबह होते ही श्रीश्रीराधाकान्तदेव के आगे खण्डिता गान शुरू हुआ। पदानुसार ठाकुर की वेश-भूषा की गई। ठाकुर-मन्दिर का द्वार खोला गया। वह एक अपूर्व दृश्य था! नागर खण्डित वेश में दूर खड़े हैं, पास में कोई नहीं। श्रीमती मानिनी हैं। नागर को पीछे कर कम्पित कलेवर सखी-मंजरियाँ नीरव खड़ी हैं। हरिदादा ने वृन्दादेवी के भावावेश में पहले खण्डिता, फिर दुर्जय मान, और फिर कलहान्तरिता गान किया। उनके आखरों की छटा और भाव-भङ्गी से ठीक वृन्दादेवी जैसा भाव प्रकट होने लगा। सुबह से ही गान आरम्भ हुआ है, अतः बाहर के श्रोता बड़ी संख्या में इकट्ठा हो गये हैं। हरिदादा का गान सुनकर सभी मुग्ध हैं। सभी नीरव हैं और भाव-विभोर हो गान सुन रहे हैं। श्रीमती दुर्जय मान में डूबी हैं, श्रीकृष्ण मानभंजन करने की चेष्टा में लगे हैं, और सखी-मंजरियाँ उन्हीं भावों को लेकर आविष्ट हैं; सेवा-कार्य कौन करे; इसलिए ठाकुरजी की रसोई आदि के काम बन्द हैं, किसी का इधर ध्यान ही नहीं।

नौ बजे के लगभग श्रीकृष्ण श्रीमती की प्रतारणा के फलस्वरूप श्रीकुण्ड के जल में प्राण-त्यागने का निश्चय कर कुण्ड के किनारे जा पहुँचे। इधर श्रीमती के हृदय में कलहान्तरिता भाव जाग्रत हुआ। वे श्रीकृष्ण के लिए उत्कण्ठिता और अपने व्यवहार के लिए बड़ी अनुतप्त हो उठीं। कोई-कोई सखियाँ उन्हें उलाहना देने लगीं, कोई तरह-तरह से सान्त्वना देने लगीं। अन्त में उन्होंने श्रीकृष्णविरह में प्राण त्यागने का संकल्प कर लिया। उसी समय दूतियाँ श्रीकृष्ण के पास गईं और उनसे विदेशिनी रूप से मिलीं। इस विषय को लेकर गान चल रहा था। किसी को बाह्यज्ञान नहीं था। ग्यारह बज चुके थे, इसलिए इच्छा न होते हुए भी समाप्त किया गया। तब सबको होश आया। कुछ लोगों को साथ लेकर ललितादासी ने बड़ी कुशलता से रसोई तैयार कर थोड़े ही समय में ठाकुरजी के भोग की व्यवस्था कर दी। सखी वेशधारी कुछ लोगों को छोड़कर बाकी सभी ने वेश परिवर्तन कर लिये, पर हरिदादा ने नहीं किया। वेश-परिवर्तन की बात कोई कहता तो सुनते ही रो पड़ते।

बाबाजी महाशय ने यथासमय प्रसादादि ग्रहणकर श्रीजगन्नाथ-दर्शन किये और श्रीराधारमणकुञ्ज में जाकर थोड़ा विश्राम किया। हरिदादा बाबाजी महाशय के दर्शनों के लिए इधर-उधर दौड़भाग करते श्री राधारमणकुञ्ज जा पहुँचे। वहाँ उन्हें देखते ही दौड़कर उनके श्रीचरण पकड़ लिए और व्याकुल भाव से रोने लगे। कोई नहीं जानता कि वो क्यों रो रहे हैं। बाबाजी महाशय ने पूछा, 'हरिदास क्यों रोते हो, क्या बात है?' हरिदादा और भी व्याकुल हो उठे। उनके हृदय में नवीन अनुराग था, नवीन भावों का संचार था, इसलिए चित्तवृत्तियाँ एकदम उद्वेलित हो उठी थीं। किसी की ताकत न थी जो उन्हें स्थिर कर सकता। कुछ देर बाद अन्तर्यामी बाबाजी महाशय ने न जाने क्या सोचा। वे मृदुभाव से मुस्कराते हुए बोले, 'प्राणों में प्रकृत भाव का संचार हो तो ठीक है, पर बड़ा गुरुतर काम है। देखना, कहीं कपटता स्पर्श न करे। किसी की देखादेखी

कोई कार्य न कर बैठना। मन-प्राण को सदैव अवरोध में न रखने से भाव का अभाव हो जाता है। श्रीनिताइचाँद की कृपा से जिसके हृदय में जिस भाव का विकास हो, उसे सदा उसी भाव को स्थायी करने की चेष्टा करनी चाहिए। नाना प्रकार के संचारी भावों के वशीभूत होने से भावनिष्ठा या रसनिष्ठा जाती रहती है। अतः इस विषय में विशेष सतर्कता की आवश्यकता है।' हरिदादा गद्‌गद कण्ठ से बोले, 'प्रभु, आप अन्तर्यामी हैं। सभी कुछ जानते हैं। मैं और क्या कहूँ? मेरा कर्तव्याकर्तव्य सब आप पर निर्भर है। मैं किसी प्रकार भी यह वेश नहीं बदल पा रहा। जब भी परिवर्तन की बात सोचता हूँ मुझे हृत्कम्प होने लगता है। मैं क्या करूँ, आदेश कीजिये।'

बाबाजी—मैं पहले ही कह चुका हूँ कि भाव या वेश किसी के आदेश-उपदेश से नहीं चलता; प्रभु कृपा कर जैसी हृदय में स्फूर्ति करें, उसी के अनुसार आचरण करो।

हरि०—आपने कृपाकर जो कुछ दिया है, वह मेरे लिए बिलकुल अभावनीय है। उस कृपादत्त वस्तु की अनुकूलता के लिए मुझे क्या-क्या करना चाहिए, आदेश कर इस अङ्गीकार किये जीव की मनोवासना पूरी कीजिये।

बाबाजी—जो लोग तुम्हारे आदर्श हैं, उनके आनुगत्य में अस्वतन्त्र भाव से उनके मार्ग का अनुसरण करो। आनुगत्य ही भक्तिपथ का जीवन है। बिना आनुगत्य के चाहे कितना भजन किया जाय, व्रज में कृष्ण-प्राप्ति दुर्लभ है। इस भक्ति का नाम है रागानुगा या भावानुगा भक्ति। किसी प्रकार की स्वतंत्रता आते ही भक्तिदेवी प्रस्थान कर जाती हैं।

हरि०—सखियों के अतिरिक्त अन्यान्य गुरु भाइयों के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए?

बाबाजी—स्वयं में गृहस्थ गोपजाति बुद्धि रखकर प्राणिमात्र को अपने से श्रेष्ठ मानो। पुरुष अभिमानी जीव के साथ बैठकर भोजन, शयन और निर्जन में रहन-सहन आदि बहुत अनिष्टकारी हैं। अपने रस और भाव के विपरीत आश्रय लेने वाले लोगों का सङ्ग अनिष्टकारी है। स्वरूप प्रकृति के साथ निर्जन वास करना सर्वथा त्याज्य है। ग्राम्य सम्बन्ध, अर्थात् पहले सम्बन्धी जनों के साथ कोई सम्पर्क रखना अनिष्टकारी है।

इस प्रकार नाना प्रकार के उपदेश देकर आपने उन्हें झाँझपीटा मठ भेज दिया। कोई घण्टाभर बाद वे स्वयं वहाँ आ गये। ललितादासी आदि ने पूछा, 'इस नई सखी का क्या नाम हुआ?'

बाबाजी महाशय बोले, 'तुम सब उसके भाव और स्वभाव के अनुरूप कोई नाम निश्चित कर दो।'

ललिता—हम क्या समझें? आपको जो नाम अच्छा लगे, सो रखिये।

बाबाजी—कल इसका जो सुन्दर कीर्तन सुना उससे पता चला कि यह दौत्य कार्य में विशेष निपुण है, अतः इसका नाम वृन्दादासी रखना ठीक है।

ललिता—यह तो देवी का नाम है! ऐसा नाम रखिये जिससे यह हमारे वर्ग में ही रहे।

बाबाजी—किसी का स्वभाव चाहे जैसा हो, तुम उसे अपने वर्ग में ही रखना चाहती हो! वहाँ भी बिना वकालत किये तुम्हारा काम नहीं चलता!

ललितादासी लज्जित हो गईं; वे और कुछ न बोलीं। बाबाजी महाशय बोले, 'यह निश्चय समझो; चाहे जिस भाव से भजन करो, वहाँ जाकर रस-तारतम्य होते ही दूसरे रस या स्थान में जाना पड़ेगा। ललितादेवी घूसखोर नहीं हैं। वे जिसकी जैसी भाव-योग्यता देखती हैं, उसे उसी भाव, उसी यूथ और उसी सेवा में नियुक्त करती हैं। वहाँ अनुरोध के लिए जगह नहीं, सब योग्यता का खेल है।' इस प्रकार उपदेश देकर उन्होंने सभी सखियों को बुलाकर कहा, 'आज से तुम सब रोज रूप, अभिसार और मिलन के पद गाओगी, यही तुम्हारी आस्वादनीय वस्तु है। देखना, व्यवसाय बदलने की चेष्टा न करना, नहीं तो वंचित रहोगी।' तभी से आपके आदेशानुसार रूप, अभिसार और मिलन के पद गाये जाने लगे।

सदल श्रीधाम वृन्दावन-यात्रा

देखते-देखते श्रीजगन्नाथदेव की स्नान-यात्रा आ पहुँची। बाबाजी महाशय ने पूर्ववत् बड़े आनन्द के साथ स्नान-यात्रा आदि उत्सव किये।

एक दिन संकीर्तन में बहुत से लोग इकट्ठा हो गये; संकीर्तन के बीच में ही वे श्रीधाम वृन्दावन जाने के लिए सबसे विदा माँगने लग गये। विदाई की भङ्गी कुछ और ही तरह की थी, अतः भक्तजनों के प्राणों को बड़ा आघात पहुँचा। सब बच्चों की तरह जोर-जोर से रोने लगे। संकीर्तन पूरा होने पर सब बाबाजी महाशय के चरण पकड़कर वृन्दावन-यात्रा स्थगित करने के लिए उनसे व्याकुल भाव से अनुरोध करने लगे। इसलिए उस बार श्रीधाम वृन्दावन जाना न हो सका। कुछ दिन बाद उन्होंने पुरीवासी भक्तजनों को समझा बुझाकर, और शीघ्र लौटाने का आश्वासन देकर तथा ललितादासी आदि सखियों को एवं उनकी सहायता के लिए चार-पाँच अन्य लोगों को आश्रम के सेवा-कार्य के लिए नियुक्त कर, सदल वृन्दावनयात्रा के उद्देश्य से कलकत्ते के लिए प्रस्थान किया। गाड़ी यथासमय हावड़ा पहुँची। साथियों ने पूछा कि किसके घर ठहरना होगा, तो बोले 'निताइ की इच्छा से कलकत्ता में सिर्फ दो दिन रहेंगे। शहर के भीतर जाकर फिर निकलना मुश्किल होगा, अतः वराहनगर कामाख्यादास के घर चलेंगे।' गाड़ी कर सभी लोग वराहनगर पहुँचे। कामाख्यादास बाबाजी साथियों सहित इन्हें पाकर बड़े आनन्द से सेवा करने लगे।

सिउड़ी में एक मास

दो दिन बीते। तीसरे दिन सुबह मृदुमधुर वचनों से कामाख्यादास बाबाजी से तथा अन्यान्य भक्तजनों से विदा लेकर बाबाजी महाशय सिउड़ी के लिए रवाना हुए। यथासमय सिउड़ी पहुँचकर वहाँ के जमींदार श्रीयुत राखालदास चौधुरी के घर ठहरे। जमींदार साहब की बहन श्रीमती कुसुमकुमारीदासी के विशेष आग्रह पर नवद्वीप-निवासी पण्डित प्रवर श्रीयुत रामदास बाबाजी महाशय को एक मास श्रीचैतन्यचरितामृत की सनातन-शिक्षा का पाठ करने के लिए नियुक्त किया गया।

एक दिन पण्डित महाशय नाम-माहात्म्य की व्याख्या कर रहे थे। उन्होंने कुछ बातें ऐसी कहीं जिनमें नाम की अपेक्षा कर्म की प्रधानता सिद्ध करने का प्रयास दीख पड़ता था। उन्हें सुनकर बाबाजी महाशय चुपके से उठकर चले गये और एक बगीचे में जाकर बैठ गये। उस दिन से वे पाठ सुनने नहीं गये। जैसे ही पाठ पूरा होता वे कीर्तन करने पहुँच जाते। तीन चार दिन तक पण्डित जी कर्म की प्रधानता की बातें करते रहे। इससे श्रोताओं में से बहुतों को आघात पहुँचा। एक दिन कुछ भक्त इकट्ठा होकर बाबाजी महाशय के पास गये व्यथित हृदय से पण्डित जी की व्याख्या की समालोचना करने लगे। वे बोले, 'भाई, शान्त रहो, यहाँ नाना प्रकार के लोग इकट्ठा हैं। लगता है कि निताइचाँद ने भिन्न-भिन्न प्रकार के लोगों की मनस्तुष्टि के लिए यह लीला खेली है।'

एक दिन बाबाजी महाशय एक कमरे में बैठे थे; एकाएक रामदादा, राधाविनोद, फणी आदि कुछ लोगों को आपने आदेश किया, 'उच्चस्वर से एक लाख महामंत्र कीर्तन करो।' सबने कीर्तन आरम्भ कर दिया। आप बीच में बैठकर संख्या रखने लगे। थोड़ी देर में वह कमरा पसीजने लगा और उसमें से जल चूने लगा। नाम की ध्वनि भी जोर पकड़ती गयी। चारों ओर से बहुत से लोग आकर इकट्ठा हो गये। सभी उस व्यापार को देखकर विस्मित हो गये और आपस में कहने लगे-'कैसा आश्चर्य! नाम तो बहुत सुना है, पर इस प्रकार नाम की शक्ति प्रत्यक्ष कभी नहीं देखी। यह नाम की शक्ति है या महापुरुष की, कुछ समझ में नहीं आता।' सभी लोग एक स्वर से महापुरुष की शक्ति की जय देने लगे। यथासमय एक लाख नाम पूरा हुआ। इस विषय में राखालबाबू ने बाबाजी महाशय से पूछा, तो वे बोले 'देखो नाम की शक्ति असीम है। ऐसा कोई काम नहीं, जिसे नाम न कर सके। यहाँ तक कि नामी जिस काम को करने में असमर्थ है, नाम उसे बड़ी आसानी से कर देता है।' 'सर्वशक्ति नामे दिल करिया विभाग, आमार दुर्दैव नामे नाहि अनुराग।' प्रत्यक्ष प्रमाण देखो, भक्तप्रवर हनुमान राम नाम लेकर नाम की शक्ति से अनायास एक उछाल में समुद्र पार कर गये, किन्तु रामचन्द्र स्वयं कितने कष्ट से समुद्र बाँधकर पार हुए।'

राखाल०—और समय भी तो नाम होता है, पर ऐसा तो हमने कभी नहीं देखा।

बाबाजी—नाम स्वतन्त्र है; वह जब कोई ऐश्वर्य-प्रकाश कर भ्रमान्ध अविश्वासी जीवों में विश्वास जाग्रत करने की इच्छा करेंगे, तभी तो ऐसा होगा।

राखाल०—मेरा विश्वास है कि उज्ज्वल वस्तु भी पात्र विशेष के सम्पर्क में आकर विशेष उज्ज्वल हो जाती है।

बाबाजी महाशय विशेष कुछ न कहकर बोले, 'इन सब बातों की समालोचना करने की आवश्यकता नहीं। नाम सर्वशक्तिमान है, यह विश्वास मन में दृढ़ रखना ही आवश्यक है।'

दूसरे दिन चार बजे के करीब वे साथियों सहित खुले मैदानमें घूम रहे थे। उसी समय वहाँ के मजिस्ट्रेट साहब घोड़े पर चढ़े हुए उनके आगे से निकल गये। यह देखकर फणी ने धीरे से साथियों से कहा, 'साहब की स्पर्धा देखी। बाबाजी महाशय के सामने से घोड़े पर चढ़कर निकल गये।' उनका यह कहना था कि बाबाजी महाशय रुष्ट होकर फणी की भर्त्सना करते हुए बोले, 'ये लोग राजपुरुष हैं, श्रीमती महारानी के गण हैं। जब जिन्हें पृथ्वी अंगीकार करती है, तब उन्हीं की देह में अष्टवसु अधिष्ठान करते हैं। भगवान् ने स्वयं कहा है-'नराणाञ्च नराधिपः' अतः राजपुरुष अर्थात् राजप्रतिनिधि का अपमान करना भगवान् का अपमान करना है। तुमने अपराध किया है, जाओ, उनके आगे जाकर साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम कर उनसे क्षमा प्रार्थना करो।' बालक फणी बड़ा लज्जित हुआ और उसने आदेशानुसार द्रुतगति से जाकर साहब के आगे दण्डवत् प्रणाम किया। साहब ने विस्मित हो घोड़े की लगाम खींच ली और पास खड़े एक व्यक्ति से फणी के आचरण का अर्थ पूछा। उस व्यक्ति ने बाबाजी महाशय के आदेश की बात साहब को बता दी। साहब घोड़े को मोड़कर बाबाजी महाशय के पास आये और अपना टोप उतार कर उन्हें प्रणाम किया। बाबाजी महाशय ने भी प्रतिप्रणाम किया।

इस प्रकार कई दिन बीते। एक दिन सुबह आपने शीतलदास, उद्धारण, नीलमणि, नन्दकिशोर आदि सात साथियों को आदेश दिया, 'यह राढ़देश मेरे निताइचाँद की विहार-भूमि है, अतः तुम लोग पैदल अयाचक वृत्ति से पहले हेतमपुर श्रीश्रीराधाबल्लभजी, फिर मयनाडाल श्रीमन्महाप्रभु, एकचाका वीरचन्द्रपुर आदि स्थानों के दर्शन कर एक सप्ताह के भीतर वापस आ जाओ। अगले शनिवार को शुभ अधिवास होगा और रविवार को अष्टप्रहर नाम कीर्तन। नाम-कीर्तन में तुम्हें योग देना होगा।' इतना कहकर आप नित्य कर्म करने चले गये। वे लोग भी आदेशानुसार वहाँ से चल दिये।

शनिवार को अधिवास और रविवार को नाम शुरू हुआ। सुबह से ही बाबाजी महाशय एकदम बाह्यज्ञानशून्य हो गये। उनके नेत्र बराबर रक्तवर्ण और डबडबाये से थे। बातें करते, तो असंलग्न, मानो किसी और राज्य की। रात बीत गयी, पर उन्हें कुछ होश नहीं। एक व्यक्ति आकर बोला, 'नगरकीर्तन में नहीं चलेंगे? सात बज गये!' वे चौंक कर बोले, 'ऐं! अच्छा चलो।' इतना कहकर वे नगर-कीर्तन के लिए निकले। अपूर्व आनन्द! जिस रास्त से कीर्तन जा रहा था, उस पर और किसी का आवागमन सम्भव न था। चारों ओर आदमी ही आदमी थे। लड़के-लड़कियाँ आगे-पीछे नाचते-नाचते जा रहे थे। दुकानदार अपने-अपने काम में व्यस्त थे, पर गगनभेदी सुमधुर नाम की आवाज कान में पड़ते ही कीर्तन की ओर भाग पड़े। स्त्रियों में कुछ जल की कलसियाँ लिये थीं, कुछ स्नान करने जा रही थीं, कुछ स्नान कर लौट रही थीं; संकीर्तन की ध्वनि सुनकर वे रास्ते के एक ओर खड़ी होकर भावविभोर हो नाम सुनने लगीं। आनन्द में आँसुओं की झड़ी लग गई। विशेष सम्भ्रान्त घरों की महिलाएँ छतों पर चढ़कर या दरवाजे खोलकर उनकी आड़ में ध्यान से नाम सुनने लगीं। बहुत देर तक नगरभ्रमण कर सब राखालबाबू के घर लौटे और दही हल्दी से नाम पूरा किया। पर आवेश में आकर बाबाजी महाशय उस हल्दी लगी जगह पर लोटते हुए सब लोगों के सिर से अपना पैर छुआने लगे। जो कोई उनके पैरों में झुककर प्रणाम करता, उसी के मस्तक से पैर लगाकर अस्पष्ट शब्दों में उससे जानें क्या कहते। आँखें बन्द थीं। एकाएक पण्डित रामदास के मन में न जाने क्या आया, उन्होंने बाबाजी महाशय को दण्डवत् प्रणाम कर पैर पकड़

लिये और कहा, 'बाबा, मैंने आपके चरणों में अपराध किया है; कई दिन से मेरे मन में बड़ा सन्ताप है, मुझे क्षमा कीजिये।' वे गद्‌गद कण्ठ से बोले, 'तुम्हारा और कोई अपराध नहीं। तुमने सनातन-शिक्षा की व्याख्या करते समय बहुत लोगों के हृदय में निराशा का संचार किया है। महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी को जो उपदेश दिया था उसके केवल वे ही पात्र थे। ऐसे कठोर आदेश का पालन करना दूसरों के लिए सम्भव नहीं। कलिहत दुर्बल जीव अल्पायु और अन्नगत प्राण हैं; वे केवल कृपा के भिखारी हैं। कृपा ही उनका सम्बल है। तभी तो महाप्रभु ने कृपाकर उनके लिए एकमात्र हरिनाम की व्यवस्था की है, और वह भी कैसी सरल! खाइते शुइते यथा-तथा नाम लय, काल देश नियम नाइ सवसिद्धि हय।' 'शुद्धं यद्यप्यशुद्धं व्यवहितरहितं तारयत्येव सत्यम्' इत्यादि कलिके जीवों को उन्होंने कोई कठोर आदेश नहीं दिया। जैसे ही त्रिताप-दग्ध निराश-प्राण कलि के जीवों के मन में प्रभु-कृपा से थोड़ी आशा का संचार होता है, तुम्हारे जैसे पण्डित अभिमानी बहुत से लोग प्रचारक का पद ग्रहण कर उस कृपालब्ध सुकोमल नाम को विधि के कितने ही कठोर आवरणों से ढककर फिर से उनके मन में निराशा जाग्रत कर देते हैं। तुम लोगों को शान्ति मिलना बहुत ही कठिन है। तुम पाण्डित्य प्राप्त कर सकते हो और भजनसाधन की बातों से भी अवगत हो सकते हो, पर कृपा की बात से अनभिज्ञ ही रहोगे। कृपा को जानने के लिए कृपा को छोड़ और कोई साधन नहीं है। कृपा के विषय में कोई सिद्धान्त निश्चित करना एकदम भूल है। अपनी मनोवृत्ति के अनुसार सर्वसाधारण के लिए एक सिद्धान्त बताने से अपराध होता है। विशेष कर भगवद्वाक्य का आशय समझे बिना अपनी बुद्धिवृत्ति के बल पर अपने बनाये सिद्धान्त को चरम सिद्धान्त के रूप में प्रचार करना बड़ा भारी भ्रम है।'

राम०—तो व्यास आसन से शास्त्र-व्याख्या कैसे हो?

बाबाजी—वहाँ मैं जो कहता हूँ वही चरम सिद्धान्त है, ऐसा दंभ न दिखाकर इस प्रकार की भाषा का प्रयोग करना चाहिए कि 'मैंने अपनी बुद्धिवृत्ति के अनुसार ऐसा समझा है या श्रीगुरुदेव ने कृपा कर अन्तर्यामी रूप से ऐसा समझाया है। दूसरे लोग अपने भजनबल से या गुरुकृपा से अन्य प्रकार की व्याख्या भी कर सकते हैं।' पण्डितजी साश्रुनयन और गद्‌गद कण्ठ से बोले, 'मैं धन्य हुआ। आज मुझे बहुत शिक्षा मिली।'

बाबाजी महाशय ने पण्डितजी को आलिंगन कर कहा, 'भाई, पाठ से पहले और उसके बाद श्रोताओं से क्षमा-याचना करना ठीक होता है।' इतना कहकर वे एकदम मूर्छित होकर गिर पड़े। बहुत सेवा शुश्रूषा के बाद जब चैतन्य प्राप्त हुआ, तो वे सभी को दण्डवत् प्रणाम कर सभी से क्षमा-प्रार्थना करने लगे। फिर समय अधिक हुआ जान उन्होंने अपने हृदय के भाव संवरण कर स्नान आह्निक किये और महाप्रसाद ग्रहण कर विश्राम किया।

दुमका-यात्रा

कई दिन से बाबाजी महाशय के शिष्य श्रीभागवत मिश्र उन्हें दुमका ले जाने के लिए विशेष आग्रह कर रहे थे। सिउड़ी से दुमका बीस कोस है। भागवत मिश्र महाशय की इच्छा थी कि बाबाजी महाशय को तो एक घोड़ागाड़ी द्वारा लिवा जायँ और अन्य सबके लिए बैलगाड़ी की व्यवस्था कर दी जाय। उन्होंने अपने मन की बात बाबाजी महाशय के आगे रखी, तो आप बोले 'देखो भागवत, हमारे निताइचाँद जिस रास्ते से आये-गये हैं उस पर किसी सवारी में बैठकर जाना उचित नहीं। अतएव हम लोग पैदल ही जायँगे।' इतना कह वे तीसरे प्रहर कोई चार बजे साथियों सहित नाम करते हुए प्रस्थान कर रात को आठ बजे मौड़ेश्वर ग्राम में मौड़ेश्वर शिव-मन्दिर में जा पहुँचे। शिवजी के दर्शन कर 'हमारे निताइचाँद का पूजा हुआ शिवलिङ्ग!' कहते ही अचैतन्य हो गये। साथी सब घबड़ाकर उन्हें घेरकर नाम करने लगे। कोई आधा घंटे बाद जब उन्हें कुछ-कुछ बाह्यज्ञान हुआ, तो वे हाथ जोड़कर बड़ी देर तक शिवजी की स्तुति करते रहे।

उस रात वहीं ठहर कर उन्होंने दूसरे दिन सुबह प्रातःकृत्य समाप्त कर साथियों सहित नाम करते-करते

जंगल के रास्ते से प्रस्थान किया। ग्यारह बजे के करीब एक गाँव में पहुँचकर उन्होंने एक व्यक्ति से पूछा, 'भाई, इस गाँव का नाम क्या है?' उसने बताया 'रानीश्वर'। यह सुनते ही आप मृदु भाव से हँसे और बोले, 'रानी .... राधारानी, ईश्वर .... श्रीकृष्ण; अर्थात् राधाकृष्ण रहते हैं इस गाँव में, तभी नाम है रानीश्वर। तो आज इसी गाँव में रहा जाय।' इतना कह गाँव के बीच नदी किनारे एक गायवाले के घर में बैठ गये। घर बहुत साफ सुथरा नहीं था। साथियों ने उसे झाड़ पोंछकर रहने योग्य बना लिया। उन्हें भिक्षा करने का आदेश हुआ, तो वे नाम करते हुए भिक्षा के लिए निकल पड़े।

गाँव में बहुत से शैव ब्राह्मण रहते थे। वे 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम।' नाम सुन क्रोध में आ उनकी नाना प्रकार से भर्त्सना करने लगे। एक ने कहा 'तुम लोगों को नौकरी नहीं मिलती, जो इस तरह घर-घर जाकर भीख माँगते हो?' दूसरा बोला, 'बेटों को और कोई काम न मिले, तो कुलीगीरी करके तो पेट भर ही सकते हैं।' इस प्रकार वे अपनी-अपनी मनोवृत्ति के अनुसार कहते रहे, पर ये लोग बाबाजी महाशय के आदेशानुसार नाम करते-करते नगर-भ्रमण करने के बाद लौट आये। केवल आधा सेर चावल भिक्षा में प्राप्त हुए थे। लौटकर वे बाबाजी महाशय से बोले, 'यह कैसे गाँव में आ पहुँचे? भिक्षा तो मिलती ही नहीं; गालियाँ और मिलती हैं।'

बाबाजी—क्यों भाई, भिखारी वैरागी हो, गालियों से दु:ख पाने की क्या बात है?

साथी—केवल हमें गाली देते तो भी कोई बात नहीं थी। ये तो निताइगौर के पीछे पड़ गये हैं। जो भी दोष है निताइ गौर का!

बाबाजी—कोई चिन्ता नहीं। निताइचाँद यहाँ कोई खेल खेलेंगे, तभी लगता है यह सब हो रहा है। जाओ, तुम लोग स्नान-आह्निक कर आओ; पीछे जो होगा सो होगा।

आपके आदेशानुसार सभी स्नान करने चले गये। अकेले बाबाजी महाशय स्थिर भाव से बैठे रहे। आधा घण्टे बाद एक भद्रपुरुष कोई दस सेर चावल और उसी हिसाब से दाल, तरकारी, तेल, नमक आदि लेकर आये और हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे कि इस सब सामग्री का महाप्रभु को भोग लगाया जाय और उससे वैष्णव-सेवा हो।

बाबाजी महाशय साश्रु नयन और गद्‌गद कण्ठ से बोले, 'आहा! लीलामय निताइचाँद की कैसी विचित्र लीला है।' उन्होंने उस भद्रपुरुष से पूछा, 'भाई, तुम्हें किसने बताया कि यहाँ महाप्रभु हैं?'

भद्र०—जी, यह एक अद्‌भुत कहानी है। जिस समय कुछ बाबा लोग भिक्षा करने के लिए नाम करते-करते गाँव के भीतर आये, मेरे मन में यह बात आई कि यदि यह पता चल जाय कि ये लोग कहाँ से आये हैं और यहाँ कहाँ ठहरे हैं, तो वहाँ एक बार जाकर इनके चरण-दर्शन करूँ। यह सोच ही रहा था कि एक दीर्घकाय विदेशी ब्राह्मण आकर मुझसे बोला, 'भाई, इन लोगों ने नदी किनारे एक गायों के घर में आश्रय लिया है। कोई पचीस-छब्बीस मूर्त्ति हैं; इनके भोजनादि की भी कोई व्यवस्था नहीं है।' इतना कह वे चले गये। मैं उन्हें पहचान न सका। उनका परिचय पूछने का भी मौका न मिला। जल्दी ही यह सब सामग्री लेकर घर से चल पड़ा।

ये बातें हो ही रही थीं कि एक और भद्रपुरुष दो नौकरों के साथ आधा मन चावल और दाल, तरकारी, घी, मसाले, मिट्टी की हँड़िया और लकड़ी लेकर बाबाजी महाशय के पास आया। बाबाजी महाशय ने विस्मित भाव, साश्रुनयन और गद्‌गद कण्ठ से पूछा, 'भाई तुम ये सब क्यों ले आये?'

नवागन्तुक—बाबा, क्यों ले आया, नहीं बात सकता। एक घण्टे पहले कुछ वैष्णव 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम।' नाम करते हुए गाँव में आये थे। पहले तो मैंने सोचा कि वे नगर-कीर्तन के लिए निकले हैं। क्षणभर पीछे ही एक बुढ़िया एक मुट्ठी चावल हाथ में लेकर आई, तो उनमें से एक ने अपने कन्धे पर लटकी हुई भिक्षा की झोली दिखाई। बुढ़िया ने उस झोली में चावल डाल कर उन्हें प्रणाम किया; वे लोग भी प्रतिप्रणाम कर धीरे-धीरे चले गये; तब मेरी समझ में आया कि वे भिक्षार्थ आये थे। मेरे पास गाँव

के छह-सात ब्राह्मण बैठे थे; वे उनकी नाना प्रकार से कटु आलोचना भत्सर्ना करने लगे। फिर भी वे बड़े आनन्द से उन्हें प्रणाम कर दूसरी जगह चले गये। ब्राह्मण भी अपने-अपने घर चले गये। तभी मेरे मन में इच्छा हुई कि यदि उन वैष्णवों के रहने की जगह पता चल जाय, तो भोग के लिए कुछ दाल-चावल भेज दूँ। बहुत तलाश करने पर इस स्थान का पता चला, तो यह थोड़े से दाल-चावल ले आया। ग्रहण कर कृतार्थ करें।

बाबाजी—भाई; मेरे ग्रहण करने न करने की कोई बात नहीं; मैं तो खेल देख रहा हूँ निताइचाँद का।

इसी समय साथी लोग स्नान कर लौट आये। आपने आदेश दिया कि खूब उत्साह के साथ निताइचाँद की कृपादत्त वस्तु महाप्रभु को भोग लगाओ। यह पूछे जाने पर कि रसोई कहाँ की जाय, आप बोले, 'यह जो कालीबाड़ी दिखाई दे रही है, वहाँ महाप्रभु को ले जाकर उचित स्थान पर विराजमान कर भोग की व्यवस्था करो।' साथियों ने आदेशानुसार काम किया। यथासमय भोग दिया गया; आपके आदेश से रामदादा ने भाव गद्गद कण्ठ से मन-प्राण झकझोर देने वाला भोग-आरति-कीर्तन आरम्भ किया। बहुत लोग इकट्ठा हो गये। वे कालीबाड़ी में समा भी नहीं रहे थे। कोई तीन बजे कीर्तन समाप्त हुआ। जिन ब्राह्मणों ने गाली-गलौज की थी, वे दु:खी हृदय से बाबाजी महाशय के पास आकर अपने-अपने किये के लिए क्षमा-याचना करने लगे। बाबाजी महाशय हाथ जोड़कर बोले, 'यह क्या? आप लोग ब्राह्मण हैं हमारे गुरु हैं, आप जो चाहें कह सकते हैं, जो चाहें कर सकते हैं। आपका अपराध कैसा? ऐसी बात तो सोचकर भी हमें अपराध होगा। आइये, सब लोग प्रसाद ग्रहण करें।' सुनते ही सब विशेष उत्साह के साथ बाबाजी महाशय के साथ चल पड़े। आपने भी बिना किसी भेदभाव के उन्हें पत्तल देने के लिए आदेश दिया। महापुरुष की शक्ति का प्रभाव हो या निताइचाँद की कृपा का, प्राय: बीस निष्ठवान ब्राह्मण बाबाजी महाशय को घेरकर महाप्रसाद-सेवन करने बैठे। क्षणभर पहले जो वैष्णवों को घृणा की दृष्टि से देख रहे थे, वे ही अब परोसने का कार्य करने लगे। नाम की कृपा से और सत्संग के बल से अब किसी के मन में दुविधा न रही। सभी बड़े आनन्द से महाप्रसाद ग्रहण कर अपने को धन्य समझने लगे और आपस में कहने लगे, 'आज हम लोग पवित्र हो गये। हमें अपने जीवन में ऐसे अदोषदर्शी महापुरुष का संग प्राप्त करने की आशा न थी। आज हमारा गाँव धन्य हुआ; हम भी धन्य हुए।' इस तरह अपनी-अपनी मनोभावना के अनुसार सब बातें करते रहे। कोई सौ व्यक्तियों ने महाप्रसाद सेवन किया; सभी बड़े प्रसन्न थे। बहुत से लोग बाबाजी महाशय से दो-एक दिन वहीं रुकने के लिए विशेष अनुरोध करने लगे; आपने कहा, 'भाई यहाँ मैं अपनी इच्छा से नहीं आया। निताइचाँद लाये हैं; वे चाहें तो दो दिन क्या, दस दिन भी रख सकते हैं। वे न चाहें तो मेरी सामर्थ्य एक मुहूर्त भी यहाँ रहने की नहीं। आप निताइचाँद से कहिये; इस बार नहीं तो अगली बार ले आयँगे।'

भद्र०—हम तो आपमें ही निताइचाँद देख रहे हैं। आपके चाहने से ही सब हो सकता है।

बाबाजी—निताइ-निताइ! आशीर्वाद कीजिए कि मैं निताइ-दास बन सकूँ।

इस प्रकार उन्हें समझाकर बाबाजी महाशय ने साथियों को दुमका के लिए तैयार होने का आदेश किया और थोड़ी देर में सबको दण्डवत् प्रणामकर कीर्तन करते हुए वहाँ से चल पड़े।

दुमका-प्रसङ्ग

निम्नलिखित घटना श्रीयुत किशोरीमोहनसिंह, दुमका डिस्टलरी सुपरिण्टेण्डेण्ट ने लिखी है, और उन्हीं के शब्दों में उद्धृत है-

कोई अठारह वर्ष पहले आश्विन मास के अन्त में अथवा कार्तिक के आरम्भ में श्रीदुर्गापूजा के पहले दिन कोई नौ बजे महात्मा श्रीयुत राधारमणचरणदास बाबाजी महाशय साथियों सहित सिउड़ी से दुमका पधारे। सिउड़ी से दुमका बीस कोस के लगभग है। बाबाजी नाम करते हुए पैदल ही आये थे। मैं उस समय दुमका डिस्टिलरी का सुपरिण्टेण्डेण्ट था और बोमपाश साहब मजिस्ट्रेट थे। वे बड़े सज्जन थे। डिप्टी कलेक्टर थे यतीनबाबू। उनका घर मेरी डिस्टिलरी के

पास था। तीन-चार वर्ष पहले यतीनबाबू, जोगेनबाबू आदि ने यतीनबाबू के घर के पास एक 'हरिसभा' स्थापित की थी। हम रोज सन्ध्या समय वहाँ इकट्ठा होकर नाम करते थे। उस दिन जब बाबाजी महाशय पधारे तो हरिसभा में बड़ी धूम थी। सन्ध्या पाँच बजे वे साथियों सहित 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम।' नाम करते-करते वैद्यनाथबाबू के घर से निकले और सामान्य भाव से शहर के एक ओर भ्रमण कर मजिस्ट्रेट साहब के घर के आगे होते हुए सीधे हरिसभा पहुँचे। साहब के घर के आगे कीर्तन आया, तो वे अपलक नेत्र बहुत समय तक बाबाजी महाशय की ओर देखते रहे। कुछ दूर संकीर्तन के साथ ही गये। उनकी दृष्टि बाबाजी महाशय पर ही टिकी थी। बाबाजी महाशय ने हरिसभा पहुँचकर रामदास बाबाजी महाशय को कीर्तन करने का आदेश दिया। उन्होंने कीर्तन आरम्भ किया-

जदि गौराङ्ग ना ह' त, कि मेने हइत,
केमने धरिताम दे।
राधार महिमा प्रेमरस सीमा,
जगते जाना 'त के।।
वृन्दाविपिन, माधुर माधुरी,
प्रवेश चातुरी सार।
बरज जुवती भावेर भकति,
शकति हइत कार।।
गाओ गाओ पुनः गौराङ्गेर गुण,
सरल करिया मन।
ए भव संसारे, दयाल ठाकुर,
ना देखिये अन्यजन।।
(एमन) गौराङ्ग बलिये, ना गेलाम गलिये,
केमने धरिलाम दे।
बासु घोषेर हिया, पाषाणेते दिया,
केमने गड़िल से।।

अपूर्व आनन्द! ऐसा कोई नहीं, जिसकी आँखों में जल न हो। सभी बच्चों की तरह जोर-जोर से रो रहे थे। बाबाजी महाशय आविष्ट भाव से नृत्य करते-करते रामदास बाबाजी महाशय की गोद में जा बैठे और उनकी चिबुक पकड़कर साश्रुनयन गद्गद कण्ठ से न जाने क्या कहते-कहते एकदम अचैतन्य हो भूमि पर गिर पड़े। उनके विस्फारित-निष्पंद नेत्रों से अविरत अश्रुधार बहने लगी और उनका विशाल शरीर काष्ठवत् स्तब्ध हो गया। तीन-चार साथियों को भी आवेश हो गया, पर बाबाजी महाशय के विषय में सब विशेष चिन्तित थे। कोई उनके साथियों से व्याकुल भाव से पूछने लगे, 'इस अवस्था का क्या कारण है, वे किस प्रकार स्थिर हो सकेंगे?' प्रेमदास बाबाजी महाशय ने कहा, 'आप चिन्ता न करें और नाम में योग दें। वे अभी स्थिर हो जायँगे।'

यह सुन हम सब नाम में योग देने लगे। रामदास बाबाजी महाशय कीर्तन में बीच-बीच में आखर देते-'हाय रे तखन केन जनम हइल, ना, प्रकट लीला देखते पेलाम ना, साङ्गोपाङ्ग संगे निये गौर तूमि कोथाय बिहरिछ, किछुइ देखते पेलाम ना' इत्यादि एक-एक आखर के साथ उपस्थित लोग रो-रोकर अधीर हो जाते। एकाएक बाबाजी महाशय के शरीर में ऐसा कम्प होने लगा कि लगता जैसे सारा कमरा काँप रहा है। उनके दाँत भी इस तरह काँपने लगे कि देखकर भय होता और लगता कि सब दाँत अभी गिर पड़ेंगे। एक साथ सर्वाङ्ग पुलकावलि से विभूषित हो गया। फिर देखते-देखते ऐसा लगा कि आधे शरीर में कम्प है, और आधा स्थिर है; एक आँख खुली है, दूसरी बन्द है; एक हाथ में पुलक है, दूसरे में कुछ नहीं; मुँह में एक ओर हँसी है, दूसरी ओर क्रन्दन! सब आश्चर्यचकित! श्रीचैतन्यचरितामृत में बहुत प्रकार के भावों का वर्णन है पर आज उन सबको प्रत्यक्ष देखकर हम अपने को धन्य मानने लगे। आगन्तुक भद्रपुरुष आपस में कहने लगे, 'मानव शरीर में इस प्रकार के भाव प्रकट हो सकते हैं, इसकी हमने कभी कल्पना भी नहीं की थी। आज इन महापुरुष को देखकर हम आश्चर्यचकित हैं। बहुत से भक्तों का कहना है कि श्रीगौराङ्ग महाप्रभु के शरीर में बहुत प्रकार के भाव प्रकट होते थे। हमें इस पर विश्वास नहीं होता था। सोचते थे, भक्त लोग अपने इष्टदेव के शरीर में सामान्य कुछ देख लेते हैं, तो अतिशयोक्ति के साथ उसका वर्णन करते हैं। आज हमारा वह भ्रम दूर हुआ।'

मैं कीर्तनमण्डली से उठकर बाबाजी महाशय को स्पर्श करने के विचार से उनके पास गया, तो देखा कि उनका सुकोमल विशाल शरीर लौहवत् हो गया है। आँसू और पसीने की बूँदें मिलकर जमीन पर पानी की तरह बह रही हैं। रात के ग्यारह बजे तक उन्हें घेरकर सब उच्च स्वर से नाम करते रहे, तब कहीं उन्हें चैतन्य हुआ। तब उन्हें पूर्ववत् स्वस्थ और स्थिर देखकर हमारे मृत शरीरों में जैसे प्राण लौट आये।

दुमकावासी भद्र-अभद्र, बालक-बच्चे, बूढ़े, स्त्री-पुरुष सभी को बाबाजी महाशय के दुमका आगमन की बात पता चल गई। दूसरे दिन सुबह से साँताल लोग इकट्ठे होकर अपनी भाषा में कीर्तन करते हुए बाबाजी महाशय के पास आ पहुँचे। कीर्तन के आते ही बाबाजी महाशय ने साष्टाङ्ग दण्डवत् की। साँताल लोगों ने भी साष्टाङ्ग दण्डवत् कर प्रेमानन्द में नृत्य-कीर्तन किया। बहुत देर तक कीर्तन हुआ, तत्पश्चात् समय बहुत हुआ जान बाबाजी महाशय ने उन लोगों को विदा किया और आप स्वयं भी स्नानादि नित्यकृत्य पूरे कर महाप्रसाद ग्रहणकर विश्राम करने लगे।

शाम चार बजे बहुत से भद्रपुरुषों के अनुरोध पर नगर-कीर्तन निकाला गया। दुमका से दो मील दूर रसिकपुर तक कीर्तन गया। बहुत से साँतालों ने आकर उसमें योग दिया। उनकी नृत्य-भङ्गी और उन्मत्तता देख सब अवाक् रह गये। रात कोई ग्यारह बजे कीर्तन लौटकर आया। संकीर्तन के बाहर निकलने के समय बोमपाश साहब कुछ दूर तक कीर्तन के साथ-साथ गये। संकीर्तन लौटा, तो उसकी ध्वनि सुनकर और साँताल लोगों की अवस्था देख साहब को थोड़ा भय हुआ। जबतक कीर्तन बन्द न हुआ, वे घोड़े पर उसके साथ रहे। दूसरे दिन उन्होंने यतीनबाबू से कहा, 'बाबू, तुम्हारे घर एक साधु आये हैं, वे कौन हैं और किसलिए आये हैं?'

यतीन—वे हमारे पादरी हैं और एक महापुरुष हैं; सदा नाम-कीर्तन लेकर जगह-जगह भ्रमण करते रहते हैं। सिउड़ी आये थे, वहाँ से हम लोग यहाँ लिवा लाये हैं।

साहब—उनके साथ कितने लोग रहते हैं?

यतीन—कोई ठीक नहीं। वे किसी को साथ रहने के लिए मना नहीं करते। इस समय कोई पच्चीस-छब्बीस लोग साथ हैं।

साहब—मुझे बड़ी आशंका है। कहीं ये साँताल लोग पागल न हो जायँ।

यतीन—वे भगवत् नाम और भगवत् चर्चा को छोड़ और किसी बात से सम्बन्ध नहीं रखते।

साहब—मैं उनसे मिलना चाहता हूँ।

यतीनबाबू साहब को ले गये। उनसे बाहर प्रतीक्षा करने के लिए कह भीतर जाकर बाबाजी महाशय से सारी बातें कही। सुनते ही बाबाजी महाशय ने घर के बाहर आकर साहब से भेंट की। दोनों ने एक दूसरे को सलाम किया। साहब बाबाजी महाशय को ऊपर से नीचे तक देखते रह गये। बहुत देर बाद उन्होंने पूछा, 'आप यहाँ कितने दिन रहेंगे?'

बाबाजी—भाई, मैं अपनी इच्छा से तो आया नहीं; जो मुझे लाये हैं, वे जानें कितने दिन रखेंगे।

साहब ने सोचा कि वे किसी व्यक्ति के बारे में कह रहे हैं। इसलिए पूछा, 'क्यों, उन्होंने दिनों के बारे में कुछ नहीं कहा?'

बाबाजी—भाई, वे इच्छामय स्वतन्त्र ईश्वर हैं; उनके मन की बात न कोई जान सकता है और न वे किसी को बताते हैं। उनकी जब जैसी इच्छा होती है करते हैं।

साहब—वे कहाँ रहते हैं?

बाबाजी—सर्वत्र

साहब—तो हम उन्हें देख क्यों नहीं पाते?

बाबाजी—वे स्वेच्छामय भगवान् हैं; जिसे दिखाई देना चाहते हैं, वही उन्हें देख सकता है। बिना उनकी इच्छा के किसी की ताकत नहीं जो उन्हें देख सके।

साहब—अच्छा, हिन्दू शास्त्रों में उन्हें साकार कहा गया है या निराकार?

बाबाजी—साकार भी और निराकार भी।

साहब—एक ही वस्तु दो प्रकार की कैसे हो सकती है?

बाबाजी—तभी तो हिन्दू लोग उन्हें सर्वशक्तिमान और स्वेच्छामय कहते हैं। 'ईश्वर ठीक ऐसा है और वैसा नहीं है' कहने से उसमें ईश्वरत्व नहीं रहता। वह पूर्ण पूर्णतम है, सभी कुछ उसकी अंश-कला विभूति है। व्यष्टि एवं समष्टि भाव से वही सब है, यह बात स्वीकार न करने से उनके पूर्णतमत्व की हानि होती है।

साहब—आप लोग हमारे यीशु को क्या कहते हैं?

बाबाजी—यीशु, भगवान् के अवतार हैं।

साहब—अवतारवाली बात मैं अच्छी तरह नहीं समझा।

बाबाजी—भगवान् ने कहा है, 'जब धरापर धर्म की हानि होती है और पाखण्डी लोग अत्याचार करने लगते हैं, तब मैं अंशरूप से प्रकट होकर धर्म की स्थापना, सत्य की रक्षा, अधर्म का विनाश, और पाखण्डियों का संहार करता हूँ।' यही कारण है कि भगवान् के अवतार लेने का कोई निश्चित रूप, या देश, काल, जाति आदि स्थिर नहीं किये जा सकते। वे जब जिस देश में जिस प्रकार अवतार लेने की इच्छा करते हैं, तब वैसा ही करते हैं। हम एक अवतार को मानें, दूसरे को न मानें, तो हम अपराधी होंगे।

साहब बाबाजी महाशय के मुख से सर्वसमन्वय भाव की बात सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। दोनों ने एक दूसरे को सलाम किया। साहब प्रसन्नचित्त अपने निवास-स्थान को चले गये और तभी से बाबाजी महाशय के प्रति बड़ा प्रेमभाव रखने लगे। चतुर्थी के दिन शाम को बाबाजी महाशय ने अष्ट-प्रहर कीर्तन करने के उद्देश्य से अधिवास किया। दूसरे दिन सुबह नाम आरम्भ हुआ। बहुत से साँताल आकर नाम में योगदान करने लगे। सुबह डिस्टलरी के काम की वजह से मैं नाम में योग न दे सका। दस बजे पहुँचा, तो देखा कि बाबा का शरीर धूलिधूसरित है; वे उन्मत्त की तरह नृत्य करते हुए एक-एक को जोर से पकड़ते हैं और उसके कान में पता नहीं क्या कहकर ऐसा शक्ति संचार कर देते हैं कि उसके शरीर में अश्रु, कम्प, पुलक आदि सात्विक विकार उत्पन्न हो जाते हैं। आश्चर्यचकित होकर मैं भी नाम में योग देने लगा। क्षणभर पीछे ही बाबा ने मुझे वक्ष से लगाकर कुछ देर नृत्य किया और उसी बीच मेरे कान में मेरा गुरु-दत्त मन्त्र उच्चारण कर दिया। मन्त्र सुनते ही मेरे हृदय में विद्युत-प्रवाह की तरह जाने कैसी एक अनिर्वचनीय शक्ति संचारित होने लगी। मैं आनन्द विभोर होकर नृत्य करने लगा। कुछ देर बाद पाँचथूपी मुर्शिदाबाद निवासी अपने क्लर्क श्रीरमणीमोहनघोष से सुना कि बाबा ने उन्हें आलिंगन कर उनके काम में उनका इष्ट-मंत्र प्रदान किया था। इस तरह बहुत से लोगों से बातें करने पर पता चला कि कीर्तन में जो-जो दीक्षित शाक्त, शैव, वैष्णव आदि थे, उन सबको आलिङ्गन कर उन्होंने उनके कान में अपने-अपने गुरुदत्त मंत्र सुना दिये थे। इस बात को जानकर सभी बड़े विस्मित हुए।

एक दिन बोमपाश साहब ने यतीनबाबू से पूछा, 'बाबू, तुम्हारे यहाँ जो साधु लोग आये हैं, उनका खाना-पीना कैसा चलता है?'

यतीनबाबू ने कहा, 'हम कुछ लोग मिलकर उस खर्चे का भार वहन कर रहे हैं।'

साहब बोले, 'अब जब तक वे लोग यहाँ रहें, तब तक साग-सब्जी-तेल आदि चीजें जेल से ले जाया करना।' यह देखकर कि साहब बाबाजी महाशय के प्रति इतने आकृष्ट हैं हमें बड़ा आनन्द हुआ।

अष्टप्रहर के दूसरे दिन बाबा ने यतीनबाबू, योगीनबाबू आदि को बुलाकर कहा, 'देखो, आज सन्ध्या के बाद नगर-कीर्तन निकालेंगे।' यह सुनकर हम कुछ चिन्तित हुए, क्योंकि साहब ने कड़ा नियम बना दिया था कि रात नौ बजे के बाद शहर में किसी प्रकार का शोरगुल न हो। हमें चिन्तित देखकर बाबा बोले, 'मैं रात नौ से पहले कीर्तन वापस ले आऊँगा। तुम लोग चेष्टा करो कि शाम को चार बजे कीर्तन निकल सके।'

चार बजे नगर-कीर्तन 'आबार बोलो हरिनाम आबार बोलो' से प्रारम्भ हुआ। लोगों की भीड़ को देख साहब घोड़े पर चढ़कर कीर्तन के आगे-आगे चलने लगे। सभी लोग बाबा को देखने के लिए अथवा उनके मुख से दो-एक पद सुनने के लिए व्याकुल थे, यह जानकर बाबा चौराहों पर खड़े हो-होकर निताइ

गौराङ्ग-लीला गुण विषयक दो-एक पद गाने लगे। उस गगनभेदी कीर्तन-ध्वनि से दसों दिशाएँ गूँज गईं। आनन्द का स्रोत बहने लगा। आबाल, वृद्ध, वनिता, स्त्री, पुरुष सभी आनन्द-विभोर हो अपने-अपने काम छोड़कर कीर्तन के आगे-पीछे भागने लगे। बोमपाश साहब बंगला भाषा जानते थे। इसलिए वे भी कीर्तन का आनन्द उपभोग करते रहे।

रात आठ बजे बाबा भावावेश में अचैतन्य हो गये। उनकी अवस्था देख हम लोग चिन्तित हो गये। दूसरा कोई उपाय न देख पाँच-छह साथी उन्हें कंधों पर रखकर ले जाने लगे। आगे-आगे रामदास बाबाजी कीर्तन गा रहे थे, पीछे-पीछे हम सब नाम करते जा रहे थे। बोमपाश साहब ने दूर से ही बाबा की ऐसी अवस्था देखी, तो वे घोड़े से उतरकर कीर्तन के बीच आ गये और विस्मित हो बाबा को देखने लगे। अनुराग के स्रोत में विधि का बाँध टूट गया। समय की ओर किसी का ध्यान न रहा। सभी आनन्द में उन्मत्त थे। संकीर्तन नगर-भ्रमण कर रात बारह बजे स्थान को लौटा।

बाबा के इस अलौकिक प्रभाव को देखकर दुमकानिवासी विस्मित हो गये। रास्ते में, बजार-हाट में, सर्वत्र आपको लेकर समालोचना होने लगी। बड़े-बड़े पाखण्डी भी मुक्तकण्ठ से कहने लगे, 'ऐसी अलौकिक शक्ति हमने आजतक न देखी, न सुनी।' इस तरह दुमका में रात-दिन बीत गये। अगले दिन रात को बाबा ने वैद्यनाथ जाने का प्रस्ताव रखा। वहाँ के लोग और दो-दिन दुमका रहने का अनुरोध करने लगे। पर बाबा राजी न हुए। यतीनबाबू आदि सोचने लगे कि ये लोग वैद्यनाथ किस तरह जायँगे। दूसरे दिन सुबह साहब को पता चला, तो उन्होंने यतीनबाबू से परामर्श कर एक टमटम और तीन बैलगाड़ियों की व्यवस्था कर दी। दुमका से वैद्यनाथ कोई तेईस कोस का रास्ता है। रास्ते में तीन डाक बँगले पड़ते हैं; उनमें ठहरने का साहब ने बन्दोबस्त कर दिया। सात बजे गाड़ी आई, तो बाबाजी महाशय सबसे मन-प्राण-स्निग्धकारी सुमधुर वचनों से विदा लेकर उसमें बैठ गये। यतीनबाबू, योगेनबाबू आदि बहुत से लोग मयूराक्षी नदी तक उनके साथ-साथ गये। नदी में बाढ़ आ गई थी इस कारण टमटम और गाड़ी को नाव पर चढ़ाना पड़ा। फिर बाबाजी महाशय मधुर वाक्यों से सबको विदा कर नाव पर बैठ गये।

श्रीधाम काशी-गमन

वैद्यनाथधाम होते हुए बाबाजी महाशय साथियों सहित विजयादशमी के दिन कोई सात बजे श्रीधाम काशी पहुँचे। घाट के पास ठहरने की व्यवस्था हुई। माँ अन्नपूर्णा की इच्छा से ठाकुरजी के भोग के लिए चावल-दाल आदि की भी व्यवस्था हो गई। दो-तीन लोग रसोई के काम में लग गये, बाकी नाम करते हुए श्रीविश्वनाथ दर्शन के लिए गये। मन्दिर के बीच संगमरमर के ऊपर रुपये जड़े हुए देखकर बाबाजी महाशय बोले, 'तुम लोगों में जिस जिसकी इच्छा हो, वह विश्वनाथ-दर्शन करने जाय; लगता है मुझे वे दर्शन नहीं देंगे।' एक साथी ने पूछा, 'आप भीतर क्यों नही जा रहे?'

बाबाजी—'देखो, ये जो रुपये लगे हैं, इन पर एक तो भारतेश्वरी महारानी की मूर्ति है, दूसरे उन पर पैर लगने से लक्ष्मीदेवी की अमर्यादा होती है।'

साथी—तो आइये, मैं आपको गोद में ले चलूँ। ऐसा कह साथी बाबाजी महाशय की गोद में ले विश्वनाथ के आगे पहुँचा। कीर्तन आरम्भ हुआ। तीन घण्टे घमासान उद्दण्ड नृत्य-कीर्तन हुआ। मन्दिर भीड़ से ठसाठस भर गया। किसी को बाह्यज्ञान नहीं। विश्वनाथ के पण्डे भी कीर्तन में योग देने लगे। काफी समय बाद उन्होंने किसी की इच्छा न होते हुए भी बाहर आने का निश्चय किया। उक्त साथी फिर आपको गोद में लेकर बाहर आ गया। नाम करते हुए सब लोग स्थान पर लौट आये। यथासमय स्नान, आह्निकादि कर और महाप्रसाद पा सबने थोड़ा विश्राम किया। बाबाजी महाशय चार बजे शाम को साथियों से बोले, 'देखो, आज विजयादशमी के दिन काशीधाम की परिक्रमा करनी चाहिए। कीर्तन की तैयारी करो।' साथी प्रसन्नचित्त खोल-करताल लेकर तैयार हो गये और बाबाजी महाशय ने नगरकीर्तन-वन्दना कर पद आरम्भ किया-

देखो देखो आसि जतो काशी वासी
आमार गौराङ्ग चाँदे।
हरि हरि बलि दूटि बाहु तूलि,
फुकारि फुकारि काँदे।।
हेरि विश्वेश्वर प्रभु विश्वम्भर,
भावे गर गर मन।
(बोले) प्रभु गोपेश्वर एइ कृपा कर,
देहो व्रजेन्द्र नन्दन।।
(गोरार) संगे अगणन संन्यासीर गण,
सबाइ प्रेमेते भोरा।
(सबाइ) हरि हरि बलि नाचे कूतूहलि,
नयने बहये धारा।।
मिश्र तपन आदि भक्तगण,
आनन्दे विभोर हइया।
(बोले) देखो आँखि भरि प्राण गौरहरि,
नाचये संन्यासी लइया।।
(जतो) मायावादीगण लइया शिष्यगण,
अज्ञाने मोहित छिलो।
(तारा) हेरिया चैतन्य पाइलो चैतन्य,
सबइ भकत भेलो।।
(एबे) भजये चैतन्य जपये चैतन्य,
कहये चैतन्य नाम।
बिना श्रीचैतन्य नाहि जाने अन्य,
श्रीचैतन्य धन प्राण।।
कि मधुर लीला प्रभु प्रकाशिला,
धन्य धन्य काशीधाम।
ओगो नर-नारी गाओ प्राण भरि,
निताइ चैतन्य नाम।।

इस प्रकार अपने हृदय की स्फूर्ति के अनुसार स्वरचित पदावली द्वारा काशीवासी बालक, वृद्ध, युवक, स्त्री, पुरुष सभी का आनन्द-वर्द्धन करते वे रात आठ बजे दशाश्वमेध घाट पर पहुँचे। आदमियों की भीड़ के मारे घाट पर तिल रखने को जगह न रही। 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम, गौरीशङ्कर सीताराम' इस नाम के साथ प्राय: दो घण्टे तक उद्दण्ड नृत्य चलता रहा। सभी बेखबर थे; कौन कहाँ गिर रहा है, कौन किसे पकड़ रहा है, किसी को पता नहीं। बाबाजी महाशय बीच-बीच में जैसे ही 'जय नित्यानन्द राम' कहकर हुंकार करते, वैसे ही हरिध्वनि-उलुध्वनि से दसों दिशायें गूँज जातीं। रात अधिक हुई देखकर लोगों की इच्छा न होते हुए भी बाबाजी महाशय ने कीर्तन समाप्त किया। सब निवास-स्थान को लौट आये। परमानन्द में वह रात कट गई। दूसरे दिन सुबह बड़ी जल्दी उठकर नित्यक्रिया कर सभी को प्रात: स्नान करने का आदेश दे आप स्वयं स्नान करने मणिकर्णिका चले गये। घाट पर बहुत से भद्रपुरुषों के साथ नाना प्रकार की कथावार्ता होने लगी। सभी एक साथ बोल पड़े, 'बाबा, आप कहाँ ठहरे हैं? हम लोगों ने बहुत खोज की; चलिये, आपके स्थान पर चलें।' बाबाजी महाशय बड़ी खुशी से सबको साथ ले स्थान पर लौट आये। नाना प्रकार की तत्वकथाओं को लेकर समीक्षा होने लगी। एक सज्जन ने पूछा, 'बाबा, श्रीधामकाशी में कितने दिन रहना होगा?'

बाबाजी—भाई, निताइचाँद लाये हैं; कितने दिन रखेंगे, वे ही जानें।

भद्र०—यहाँ से कहाँ जाने की इच्छा है?

बाबाजी—भाई, मैं तो काठ की पुतली की तरह पराधीन हूँ। मेरी कोई स्वतन्त्र इच्छा न तो है, न हो सकती है। निताइचाँद कहाँ ले जायँगे; किस काम से लाये हैं, वही जानें।

भद्र०—यातायात का खर्चा कौन उठाता है?

बाबाजी—निताइचाँद।

भद्र०—फिर भी कोई निमित्त तो चाहिए ही।

बाबाजी—भाई, मैं जीव हूँ; मेरा संकीर्ण हृदय और परिच्छिन्न बुद्धि है। प्रभु किसको निमित्त बनाकर कौन-सा काम करेंगे, मैं कैसे जान सकता हूँ? एक को निमित्त बनाकर काशीधाम तक लाये हैं, साथ में उनके जो अन्तरङ्ग परिकर हैं, उन्हें निमित्त बनाकर भिक्षालब्ध वस्तु द्वारा अपने भोगादि की व्यवस्था कर रहे हैं। अब किसे निमित्त बनाकर कहाँ ले जायँगे, यह सब सोचने की हमें आवश्यकता नहीं।

यह सब सुनकर उक्त सज्जन विस्मित हो चुप हो गये। इसी समय श्रीयुत कामाख्यादास बाबाजी ने कलकत्ता से आकर आपको साष्टाङ्ग प्रणाम किया। उन्हें देखते ही बाबाजी महाशय बोले, 'क्यों, तुम यहाँ कैसे?'

कामाख्या०—आपकी कृपा का आकर्षण। कल दर्जीपाड़ा निवासी योगेनबाबू मेरे पास आकर बोले कि बाबाजी महाशय साथियों सहित काशीधाम में हैं, आप जाकर उन्हें वृन्दावन जाने के लिए यह दो सौ रुपये दे दें और इस दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम कहें।

बाबाजी—मैं यहाँ हूँ, योगेन को कैसे पता?

कामाख्या०—यह तो आप ही जानें।

बाबाजी महाशय के नेत्र रक्तवर्ण हो गये; साश्रु-नयन गद्गद कण्ठ से बोले, 'बलिहारी, निताइचाँद की कैसी करुणा! मुझ जैसे क्षुद्र जीव के आनन्द के लिए वे छिपे-छिपे न जाने क्या-क्या करते हैं। हाय रे, उन्हें भजता नहीं, तब तो उनकी इतनी दया; यदि उन्हें भजता, तो पता नहीं कितनी दया करते! मुझ जैसा अविश्वासी जीव पीछे कहीं भ्रम में न पड़ जाय, इसलिए दयामय ने पहले ही बन्दोबस्त कर दिया।' इस प्रकार कहते-कहते वे बच्चे की तरह रो उठे। आगन्तुक लोग यह सब देखकर विस्मित हो आपस में कहने लगे, 'दृढ़ विश्वस्त भाव से यदि सामान्य जीव भी कोई इच्छा करता है, तो ईश्वर उसे पूरा करते हैं, फिर ये तो सिद्ध महात्मा हैं, इनकी तो बात ही क्या है?' कोई कहने लगे, 'इनका जैसा अलौकिक भाव हमने और कहीं नहीं देखा।' इस तरह अपने-अपने जगह चले गये। इधर बाबाजी महाशय ने साथियों को आदेश दिया कि आज ही अपराह्ण में श्रीधाम वृन्दावन-यात्रा करनी है, अतः सब यथाशीघ्र आह्निकादि कर और महाप्रसाद पा स्टेशन पहुँच गये।

श्रीधाम वृन्दावन में

काशी के बहुत से भद्रपुरुष बाबाजी महाशय के साथ काशी स्टेशन आये। गाड़ी का समय होने पर उन्होंने अपने मधुर वाक्यों से सबको विदा किया। यथासमय ट्रेन हाथरस स्टेशन पहुँची। वे साथियों सहित एक धर्मशाला में ठहर गये और ठाकुरजी के भोगादि की व्यवस्था होने लगी। इसी समय श्रीधाम वृन्दावन से सिद्ध जगदीशदास बाबाजी महाशय के शिष्य श्रीयुत शचीनन्दनदास बाबाजी महाशय आ पहुँचे। देखते ही दोनों ने एक दूसरे को प्रणाम आलिङ्गन किया।

बाबाजी महाशय ने पूछा, 'आप क्या सोचकर यहाँ पधारे?'

शची०—मैं श्रीधाम वृन्दावन से गौड़मण्डल जा रहा था; पता नहीं क्यों इधर बहुत आकर्षण हो आया। आकर देखा कि आप यहाँ विराजमान हैं; आज मेरा परम सौभाग्य है। आपके दर्शन करने की वासना बहुत दिनों से थी; इस बार तो दृढ़ संकल्प ही कर लिया था कि पुरुषोत्तम क्षेत्र जाकर आपके श्रीचरणों के दर्शन करूँगा। प्रभु ने यहीं मिला दिया।

बाबाजी—भाई, मेरा विश्वास है कि तुम लोग वृन्दावनवासी हो, अतः राधारानी के विशेष कृपापात्र हो। इस अधम को वृन्दावन ले जाने के लिए राधारानी ने तुम्हें भेजा है।

शची०—अपनी वृन्दावन-यात्रा के विषय में किसी को कोई संवाद दिया है?

बाबाजी—निताइचाँद जानें; मुझे तो इसकी कोई आवश्यकता प्रतीत हुई नहीं।

शची०—तो नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी को तार भेज दिया जाय।

बाबाजी—भाई, मैं कुछ नहीं जानता; तुम लोगों की इच्छा हो सो करो।

शचीनन्दनदास बाबाजी महाशय ने प्रसन्न हो नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी को तार कर दिया। उनके साथ कोई पाँच-छह सेर पेड़े थे। वह उन्होंनें बाबाजी महाशय के आगे रख दिये।

बाबाजी महाशय—इसका क्या होगा?

शची०—महाप्रभु को भोग देकर सभी ग्रहण करेंगे।

बाबाजी—ठीक है। महाप्रभु सेवकों के साथ बहुत दूर से आ रहे हैं, भूख लग आई है। यह कह कर उन्होंने प्रेमदादा को भोग लगाने का आदेश दिया।

भोग लगकर आया, तो बाबाजी महाशय ने शचीनन्दनदास बाबाजी से कहा, 'आओ भाई, एक-साथ महाप्रसाद पायें।' उन्होंने कुछ आपत्ति की; पर जब बाबाजी महाशय किसी प्रकार न माने तो प्रसाद पाने बैठ गये। बाबाजी महाशय ने आरम्भ से ही एक पेड़ा उनके मुँह में दे दिया; उन्होंने भी एक पेड़ा लेकर उनके मुँह में दिया। फिर साथियों को बुलाकर दोनों अपने हाथ से उन्हें पेड़े देने लगे। कुछ देर बाद महाप्रभु को अन्न भोग दिया गया। शचीनन्दन बाबाजी महाशय की महाप्रसाद पाने की इच्छा न थी, पर वे बाबाजी महाशय के अनुरोध को टाल न सके। इतने थोड़े समय में दोनों प्रेम-बन्धन में इस तरह बँध गये कि शचीनन्दन बाबाजी महाशय का गौड़मण्डल जाना न हो सका और बाबाजी महाशय के साथ वृन्दावन लौट आये।

इधर तार पाते ही नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी गणेशबाबू और गोविन्ददादा को लेकर बाबाजी महाशय के ठहरने और भोगादिकी व्यवस्था करने लगे। थोड़ी ही देर में बाबाजी महाशय की वृन्दावन-यात्रा की बात चारों ओर फैल गई। सब उत्कंठित हो उनके आने की बाट देखने लगे। श्रीयुत रामहरिदास बाबाजी महाशय, श्रीमाधवदास बाबाजी महाशय, नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी, गणेश भट्टाचार्य, अटलदादा, गोविन्ददादा आदि बहुत से लोग उनके स्वागत के लिए वृन्दावन स्टेशन पर पहुँच गये। वृन्दावन की गाड़ी में चढ़ते ही बाबाजी महाशय की न जाने कैसी अवस्था हो गई। किसी से बातचीत नहीं, रक्तवर्ण दोनों नेत्रों से अविरत अश्रु-विसर्जन; क्षण-क्षण पर सर्वाङ्ग पुलकावलि से विभूषित; क्षण-क्षण पर कम्प! जैसे वे इस राज्य में ही नहीं। साथी लोग आनन्दोन्मत्त हो कीर्तन करने लगे। जैसे ही गाड़ी मथुरा स्टेशन से इधर पुल के ऊपर पहुँची, शचीनन्दनदास बाबाजी महाशय से बोले, 'दादा, मथुरा आ गया।' सुनते ही बाबाजी महाशय उनके गले में हाथ डालकर बच्चे की तरह रोने लगे। गाड़ी में जितने भी लोग थे, सब उनकी यह अवस्था देखकर अवाक् रह गये। इसी अवस्था में बहुत समय बीत गया। यथासमय गाड़ी वृन्दावन स्टेशन पर पहुँची। वृन्दावनवासी कीर्तनध्वनि सुनकर बाबाजी महाशय के डिब्बे के पास आ गये। साथी एक-एक कर उतरने लगे। पर बाबाजी महाशय एकदम बाह्यज्ञान-रहित निश्चल-निःशब्द बैठे रहे। शचीनन्दन बाबाजी महाशय उन्हें पकड़े थे। अटलदादा ने कहा, 'यह वृन्दावन स्टेशन है।' 'वृन्दावन' शब्द कान में पहुँचते ही बाबाजी महाशय ने सिंह की तरह हुंकार भरी और एक उछाल में प्लेटफार्म पर कूद कर व्याकुल भाव से रज में लोटने लगे। किस की ताकत थी जो उन्हें स्थिर करता? सर्वाङ्ग धूल-धूसरित हो गया। अश्रुजल से वक्षस्थल भीग गया। नामकीर्तन पूर्ववत् चलता रहा। बहुत देर बाद जब वे कुछ स्थिर हुए तो चारों ओर लोगों की भीड़ को देख उन्होंने सबको दण्डवत् प्रणाम किया और सभी ने उन्हें प्रतिप्रणाम किया। नित्यस्वरूप सबका परिचय देने लगे, 'यह हमारे माधव दादा हैं; हमसे बहुत स्नेह रखते हैं। नवद्वीपदादा से इनका विशेष प्रेम था। गोविन्ददादा इनके साथ ही राधाकुण्ड में रहते हैं। और ये हमारे काकागुरु हैं, इनका नाम है श्रीयुत रामहरिदास बाबाजी महाशय, ये सिद्ध जगन्नाथदास बाबाजी महाशय के शिष्य हैं।' यह सुनते ही बाबाजी महाशय ने उनके चरणों में साष्टाङ्ग प्रणाम किया। उन्होंने भी झट उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया, और बोले, 'आओ, मेरे सोने के चाँद! आज मैंने एक रत्न पाया। चलो रात हो गई है, स्थान पर चलो।' इतना कह वे उनके कन्धे पर हाथ रखकर चलने लगे। बाबाजी महाशय श्रीयुत रामहरिदास बाबाजी महाशय को आगे कर और माधवदादा का हाथ पकड़ कीर्तन करते-करते गोविन्दजी के मन्दिर की परिक्रमा करते हुए गङ्गाजी के मन्दिर जा पहुँचे। वहीं उनके ठहरने की व्यवस्था की थी। पता नहीं क्यों गोविन्ददादा बाबाजी महाशय से दूर ही दूर रहकर सेवा की व्यवस्था कर रहे थे। प्रेम की गति वक्र है। जहाँ जितना प्रेम होता है, वहाँ उतना ही अभिमान भी होता है। नित्यस्वरूप दादा गोविन्ददादा को बाबाजी महाशय के पास ले गये, तो उन्होंने आग्रह के साथ उन्हें आलिंगन करते हुए प्रेमगद्गद कण्ठ से कहा, 'क्यों रे गोविद! तू इतने दिन मुझे छोड़कर कैसे रहा यहाँ? कैसा कठोर हृदय है तेरा! ला, क्या-क्या

बाल्यभोग है, ले आ, बड़ी प्यास लग रही है।' गोविन्ददादा रहस्य भरे स्वर में बोले, 'हाँ जानता हूँ, बड़े प्रेमी पुरुष हैं न आप' और द्रुतगति से जाकर शर्बत और बाल्यभोग ले आये। बाबाजी महाशय श्रीराम-हरिदास बाबाजी महाशय, माधवदास बाबाजी मँहाशय आदि महात्माओं को साथ लेकर बाल्यभोग प्रसाद पाने बैठे। थोड़ी देर बाद महाप्रसाद पाकर सब अपने-अपने स्थान को चले गये।

श्रीयुत रामहरिदास बाबाजी, श्रीमाधवदास बाबा जी महाशय आदि नाम मात्र को अपनी-अपनी भजनकुटी में जाते; वे सदा बाबाजी महाशय के साथ ही रहते। गङ्गाजी का मन्दिर यमुनाजी के पास है। बाबाजी महाशय अवसर पाते ही भ्रमर-घाट पर जा बैठते। उधर से व्रजनारियों की टोलियों को जाते देख उन्हें सखी-मंजरियों से घिरी राधारानी के रूप का उद्दीपन हो जाता। मोर की आवाज सुन, भौंरों का गुञ्जन सुन, और तरुलताओं की शोभा देख वे भावाविष्ट हो जाते।

गङ्गा-मन्दिर में चार-पाँच दिन रहने के बाद वे नित्यस्वरूप दादा, अटलदादा आदि के विशेष आग्रह पर श्रीमदनमोहन पाड़ा में कड़ली-कुञ्ज चले गये। उनका अपूर्व कीर्तन सुन और अकल्पनीय भावावेश तथा अदृष्टपूर्व सुमधुर सरल व्यवहार देख धीरे-धीरे वृन्दावनवासी आबाल, वृद्ध, युवक उनके प्रति आकृष्ट होने लगे। एक दिन एक वृद्ध ने आकर पूछा, 'बाबा, श्रीराधागोविन्द-प्राप्ति का सहज उपाय क्या है?'

बाबाजी—कलिके जीवों के लिए कृपा के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं।

वृद्ध—कृपा को पाने का उपाय?

बाबाजी—कृपा पाने का उपाय है कृपा। भगवान् कृपा-परवश हैं। कृपा उनसे जो कराती है, वही करते हैं। आहार-विहार, शयन-स्वप्न, जागरण किसी भी बात में वे बिन्दुमात्र भी स्वतन्त्र नहीं, पूरी तरह कृपा के अधीन हैं। कृपा उन्हें जिस व्यक्ति के पास भेजती है उसका कुल, शील, रूप, गुण, जाति, विद्या, भजन-साधन कुछ भी वे नहीं देखते; बिना कुछ सोचे-विचारे यंत्रारूढ़ पुतली की तरह उसके पास पहुँच जाते हैं, इच्छा न होते हुए भी उस पर दया करते हैं। श्रीमद्‌भागवत में कहा है-'अहो बकीयं स्तनकालकूटं जिघांसया पाययदप्यसाध्वी। लेभे गतिं धात्र्युचितां तदन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम:।' सोचिये, पूतना ने कृपा किस कारण से पाई? कंस के आदेश से क्रूर राक्षसी ने कृष्ण को मारने की नीयत से स्तन में कालकूट विष लगाकर उनके मुँह में दिया। कृपामय कृष्ण ने उसे धात्रीजनोचित गति प्रदान की। तभी तो कहता हूँ, कृपा के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं, जिससे कृष्ण-प्राप्ति हो सके।

वृद्ध—ठीक है। यदि वे बिना सोचे विचारे ही कृपा करते हैं, तो सभी पर समान भाव से कृपा क्यों नहीं होती? कोई तो सदा आनन्द-सागर में डूबा रहकर भगवद्धाम में भक्तों के साथ उनका सान्निध्य-सुख भोगता है, और कोई सदा असत्संग और असत् कार्यों में रत रहकर अशेष यंत्रणादायक नरक भोगता है। ऐसा क्यों? यदि यह कहें कि सब अपनी-अपनी सुकृति-दुष्कृति का फल भोगते हैं, तो कृपा कहाँ रही? जिसके पास सुकृति है, वह तो अपनी शक्ति के प्रभाव से ही भगवद्‌भक्ति या भगवान् का सान्निध्य प्राप्त कर लेगा। उसमें फिर कृपा की क्या बात? यदि वे पूतना की तरह सभी असुर प्रकृतिवाली स्त्रियों को मातृस्थानीय गति प्रदान करें तभी तो उनकी अहैतुकी कृपा मानी जा सकती है, नहीं तो कहना न पड़ेगा कि उनमें पक्षपात का दोष है?

बाबाजी—भाई, किसी भी भाव से सही, जिस तरह पूतना कृष्ण को पाने के लिए उन्हें गोद में ले उनके मुख में अपना स्तन देने के लिए तन्मनस्का थी, उसी तरह लोभ-परवश हुए बिना कृपा कैसे ग्रहण की जा सकती है? विकारग्रस्त रोगियों को अच्छा वैद्य कृपा-परवश हो औषधि देता है, फिर भी वे उसे नहीं लेते अथवा दूर फेंक देते हैं। इसी तरह जब तक भगवत्प्राप्ति की कामना नहीं होती, तब तक कृपा ग्रहण नहीं की जा सकती। तभी तो शास्त्र कहते हैं-'कृष्णभक्तिरसभाविता मतिः क्रीयतां यदि कुतोऽपि लभ्यते। तत्र मूल्यमेव लौल्यमेकलं जन्मकोटिसुकृतैर्न

लभ्यते॥' उन्हें अथवा उनकी कृपा को पाने के लिए लोभ अथवा प्रबल इच्छा ही एकमात्र सोपान है।

वृद्ध—समझा। पर लोभ कैसे हो?

बाबाजी—भाई, लोभ नित्यसिद्ध है। जीव कर्म के अनुसार चाहे जो शरीर क्यों न धारण करे, लोभ साथ में रहता है। 'सुखं मे भूयात् दु:खं माभूत्' यह भावना जीवमात्र में रहती है। जीव सुख के लोभ से दौड़-दौड़कर नाना प्रकार के कार्य करता है, यहाँ तक कि वह लोभ के कारण हिताहित का ज्ञान भी खो देता है। रूप लोभी पतंगे अग्नि को सुन्दर सुखप्रद जान अग्निकुण्ड में कूदकर कष्ट से छटपटाते हुए जीवन त्याग देते हैं, उन्हें देखकर भी दूसरे पतंगों को होश नहीं आता और वे भी अग्निकुण्ड में गिर पड़ते हैं। उसी तरह लोग सुख के लोभ में अंधे हो प्रकृत सुखमय पदार्थ को त्यागकर काम क्रोधाग्नि रूप इस संसार कूप में पड़ते हैं और परिणाम में दु:ख ही भोगते हैं। इसमें भगवान् का क्या दोष? उन्होंने संसार को विषमय तो बनाया नहीं। जीव शिक्षाभूमि को विलासभूमि मानकर, अभक्ष्य भक्षण कर, जहाँ न जाना चाहिए वहाँ जाकर, जो न कहना चाहिए उसे कहकर, जिसे न छूना चाहिए उसे छूकर, जिसे न देखना चाहिए उसे देखकर, अनादिकाल से यंत्रणा भोगता आ रहा है। भगवान् उसे प्रकृत आनन्दमय पदार्थ देते भी हैं, तो वह उसे दु:खमय समझकर छोड़ देता है। यदि दैवात् महत् कृपा से उसे होश आ जाय, तो काम प्रेम में बदलकर कृष्ण-कर्म में, क्रोध भक्ति के प्रतिकूल में, मोह-मद इष्ट के गुणगान में और मात्सर्य प्रभु के काम में नियुक्त होकर लोभ को प्रकृत लोभनीय परम सुखमय पदार्थ में नियुक्त कर दें। तब यह संसार ही भगवत्कृपा प्राप्ति में सहायक और स्त्री-पुत्रादि शिक्षागुरु के रूप में बदल जायँ।

वृद्ध—तो महत्कृपा ही भगवत्प्राप्ति या भगवत्कृपा-प्राप्ति का मूल साधन है।

बाबाजी—हाँ! 'महत्कृपा बिना कोनो कार्य सिद्ध नय। कृष्ण कृपा दूरे रहु संसार ना जाय क्षय।'

इतनी देर वृद्ध भक्त उनकी बातें सुनते रहे और अपनी बात कहते रहे। जैसे ही उन्होंने कहा, 'महत्कृपा ही एकमात्र अवलम्बन है' वे उनके पैर पकड़ कर साश्रुनयन और गद्गद कण्ठ से कहने लगे, 'बाबा, इस गँवार विकलेन्द्रिय वृद्ध पर कृपा करनी पड़ेगी। इतने दिन व्यर्थ अभिमान में खो दिये। समझता रहा कि भजन करने से ही भगवत्प्राप्ति हो जाती है। आज आपके संग-प्रभाव से पता चला कि कृपा के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है; आगे-पीछे कृपा ही एकमात्र सहारा है।' वृद्ध की अवस्था देखकर बाबाजी महाशय ने झट उन्हें उठा आलिंगन कर कृतार्थ किया और नाना प्रकार से सान्त्वना दी।

बाबाजी महाशय श्रीधाम वृन्दावन पधारे हैं, यह बात भक्त-वैष्णवों के बीच फैल गई। सिद्ध भगवानदास बाबाजी महाशय के प्रिय शिष्य सिद्ध महात्मा श्रीयुत जगदीशदास बाबाजी महाशय कुड़ली कुञ्ज से कुछ ही दूर कालीदह पर रह कर भजन करते थे। एक दिन वे कुछ भक्तों के साथ कुड़ली कुञ्ज पधारे। बाबाजी महाशय ऊपर की मंजिल में बैठे थे; खबर पाते ही वे द्रुतगति से जाकर, उन्हें दण्डवत् प्रणाम कर बड़े सम्मान के साथ ऊपर लिवा लाये। बैठने के लिए आसन दिया, और इष्टालाप आरम्भ किया। परमार्थ सम्बन्ध से श्रीयुत जगदीशदास बाबाजी महाशय उनके काका थे, अत: वे वात्सल्य से बोले, 'भाई, तुम वृन्दावन आये हो यह सुनकर भी मैं तुमसे मिल न सका। मैं वृद्ध हूँ शहर में जाकर मिलना मेरे लिए असम्भव है। अब तुम्हें पास में आया जानकर मिलने की बड़ी इच्छा हुई। अच्छे तो हो?' बाबाजी महाशय ने हाथ जोड़कर कहा, 'आपकी कृपा से खूब आनन्द से हूँ। आप इतना कष्ट उठाकर क्यों आये? मैं तो स्वयं ही आता, पर ठीक है सन्तान के प्रति इतना वात्सल्य न होने से भी तो काम नहीं चलता।' इस पर जगदीशदास बाबाजी महाशय ने कहा, 'भाई, तुम हमारे लिए आदर की वस्तु हो। निताइ-गौराङ्ग की कृपा से तुम्हें परमधन प्राप्त है, तुम्हारे गौरव में हम गौरवान्वित हैं। प्रार्थना करता हूँ कि तुम दिनोंदिन उन्नति करो। भक्तिपथ पर बहुत-सी शाखा-उपशाखाएँ फैल जाने से नाना प्रकार के विस्फोट हो रहे हैं। विशुद्ध पथ पर चलने वाले लोग विरले ही हैं। निरपराध होकर दीर्घ जीवन-लाभ

करो और आपामर जनसाधारण को विशुद्ध प्रेमभक्ति पर आधारित महाप्रभु द्वारा प्रवर्तित और गोस्वामीपादों द्वारा आचरित पथ का प्रदर्शन करो, जिससे जगत के जीव धन्य हों।' इस प्रकार दो घण्टे तक इष्टगोष्ठी होती रही। माधुकरी का समय जानकर जगदीश बाबा ने अपनी भजनकुटी को लौटने की इच्छा व्यक्त की, तो बाबाजी महाशय हाथ जोड़कर बोले, 'बाबा, मेरी वासना है कि मैं जितने दिन यहाँ रहूँ, आप यहीं माधुकरी करें। यदि अनुमति दें, तो महाप्रसाद आपकी भजनकुटी पर भिजवाने की व्यवस्था कर दूँ।' वे बोले, 'भाई, मैं किसी का निमन्त्रण न लेता हूँ, न किसी का परोसा लेता हूँ। अच्छा, एक दिन तुम्हारे साथ बैठकर महाप्रसाद पाऊँगा; आज मत रोको। मैं चलता हूँ।' इतना कह वे कालीदह चले गये। बाबाजी महाशय कुछ दूर तक उनके साथ गये और उनके आदेश करने पर लौट आये। इस प्रकार कभी जगदीश बाबा इनके पास आते और कभी ये उनकी कुटी पर जाते। प्रायः नित्य ही दोनों मिलकर इष्ट-गोष्ठी करते।

इस तरह परमानन्द में दिन बीतने लगे। एक दिन अपराह्न में श्रीयुत केशवानन्द स्वामी पधारे। बहुत दिनों से इन लोगों का परस्पर भ्रातृभाव था। बाबाजी महाशय इन्हें दादा कहते। स्वामीजी बोले, 'भाई, तुम्हारे यहाँ आने की बात सुनी थी, पर नाना कामों में व्यस्त रहने के कारण न आ सका। मेरा अपराध न लेना।'

बाबाजी—मुझे तो पता नहीं था कि आप यहाँ हैं, नहीं तो मैं स्वयं आकर आपके दर्शन करता।

स्वामी०—भाई, मैंने राधाबाग में एक आश्रम बना लिया है, उसी के काम में व्यस्त रहा। इसलिए न आ सका।

बाबाजी—काम पूरा हो गया?

स्वामी०—हाँ कल उसकी प्रतिष्ठा के उपलक्ष में कुछ होम, जप, पूजादि हैं। तुम्हें अपने दल के साथ वहाँ जाना होगा। निमंत्रण के लिए ही मैं आया हूँ। अवश्य आना।

बाबाजी—दादा, वह तो अपना ही आश्रम है; उसके लिए निमन्त्रण की क्या आवश्यकता?

स्वामी०—नहीं, नहीं, कल वहाँ कीर्तन करना होगा और आश्रम की प्रतिष्ठा होगी, यही बताने आया हूँ। निमंत्रण क्या करूँगा? तुम्हारा आश्रम है, तुम जाओगे ही। मैं तो भाई, निमित्तमात्र हूँ।

इस प्रकार नाना प्रकार से इष्टालाप कर स्वामी जी चले गये। अटलदादा बाबाजी महाशय से बोले, 'आपने स्वामीजी का निमन्त्रण ग्रहण कर लिया। वे लोग तो ज्ञानमार्गावलम्बी हैं; वे ठाकुर-देवता नहीं मानते; किसी को भोग नहीं लगाते। हम लोग वहाँ प्रसाद कैसे पायँगे?'

बाबाजी—अच्छा, ये सब तुम्हें सोचने की आवश्यकता नहीं। तुम लोग केशवानन्द दादा को पहचानते नहीं, वे परमभक्त हैं; गौराङ्गदेव में उनका सुदृढ़ भक्ति-विश्वास है। केवल वेश मत देखा करो। महापुरुष किस वेश में, किस भाव से रहते हैं, कौन जान सकता है? बहुत-से महात्मा अपने को प्रतिष्ठा के हाथों से बचाने के लिए घोर पाखण्डी वेश में रहते हैं। कल देखना, मेरे साथ जो महाप्रभु हैं, वे वहाँ जाकर उनके यज्ञेश्वर के रूप में अधिष्ठित हो सब भोग स्वीकार करेंगे।

नाना प्रकार की कथावार्ता में रात हो गई; यथासमय सबने महाप्रसाद पाकर विश्राम किया। दूसरे दिन कोई दस बजे बाबाजी महाशय साथियों सहित नाम करते-करते महाप्रभु का चित्रपट साथ ले राधाबाग में स्वामीजी के आश्रम जा पहुँचे। अपूर्व कौतूहल! कीर्तन जैसे ही आश्रम के पास पहुँचा, स्वामीजी शिष्यों सहित आकर उसे भीतर लिवा ले गये। बाबाजी महाशय के आदेशानुसार उनके साथियों ने महाप्रभु के चित्रपट को उस वेदी पर बिठा दिया, जो हवन के लिए तैयार की गई थी। इन लोगों ने और स्वामी के शिष्यों ने मिलकर दो घण्टे तक घमासान कीर्तन किया। स्वामीजी प्रसन्न हो बोले, 'जब सर्व यज्ञेश्वर श्रीमन्महाप्रभु ने आकर यज्ञवेदी को स्वीकार कर लिया, तब समझो कि सारा यज्ञ सफल हो गया। अब पृथक् ये यज्ञ की क्या आवश्यकता है?' यह सुनकर सभी हरिबोल ध्वनि कर उठे। बाबाजी महाशय ने आनन्द में नृत्य करते-करते स्वामीजी को आलिङ्गन कर लिया। दोनों एक दूसरे

को वक्ष से लगाये प्रेमविभोर हो हँसने, रोने और नृत्य करने लगे। एक साथ दोनों के शरीर में अश्रु-कम्प-पुलकादि सात्विक विकार प्रकट हो गये। दोनों महापुरुषों के शिष्य यह सब देखकर अवाक्! दोनों के शिष्य समझते थे कि उपासना और आन्तरिक भाव को लेकर दोनों एक दूसरे से पृथक् हैं, पर अब कौन कहे कि दोनों में किसी प्रकार का पार्थक्य है? कुछ समय बाद दोनों स्थिर हुए और बैठ गये। सभी शिष्य चारों ओर बैठकर महापुरुषद्वय के मुखारविन्द से निकला भगवल्लीला-कथामृत पान कर अपने कर्ण-चकोरों को तृप्त करने लगे। नाना प्रकार के भगवत्प्रसङ्ग चल रहे थे। उसी समय स्वामी जी के एक शिष्य ने आकर कहा, 'रसोई हो चुकी है, अब क्या करना है?' स्वामीजी ने बाबाजी महाशय से पूछा तो आप बोले, 'यज्ञ-वेदी पर जो यज्ञेश्वर श्रीगौरांगदेव विराजमान हैं, उन्हें सब चीजों का भोग लगेगा।' यथासमय भोग-आरति कीर्तन के बाद दोनों महापुरुषों ने उपस्थित भक्तजनों के साथ महाप्रसाद-सेवन कर किञ्चित् विश्राम किया। स्वामीजी चाहते थे कि उस दिन बाबाजी महाशय साथियों सहित श्रीमन्महाप्रभु को लेकर आश्रम में ही रहें। यह प्रस्ताव बाबाजी महाशय के आगे रखा, तो वे बोले, 'दादा! यह तो मेरा अपना आश्रम है। फिर जब इच्छा होगी आ जाऊँगा। पर आज यहाँ रहने से काम नहीं चलेगा, क्षमा कीजिए।' इतना कह वे दण्डवत् प्रणाम कर नाम करते-करते कोई साढ़े चार बजे कुडली कुञ्ज चले गये।

राजर्षि वनमालीबाबू के साथ तत्वालोचना

एक दिन राजर्षि वनमालीराय बहादुर के आदेश से उनके मैनेजर श्रीयुत कामिनीबाबू बाबाजी महाशय से आकर बोले, 'मुझे राजर्षि वनमाली बाबू ने भेजा है। नाना प्रकार के कामों में व्यस्त रहने के कारण वे स्वयं नहीं आ सके। उनकी त्रुटि क्षमा कीजिये। उन्होंने दण्डवत् प्रणाम कर विनीत प्रार्थना की है कि परसों उनके ठाकुर श्रीश्रीराधा-विनोद-विनोदिनी गोष्ठाष्टमी के उपलक्ष्य में वनभ्रमण करने निकलेंगे, अतः आप साथियों सहित उनके श्रीश्रीराधाकुण्डवाले मकान पर पहुँचने की कृपा करें।'

बाबाजी—एक साथ श्रीराधाकुण्ड, श्यामकुण्ड, कुण्डेश्वर-कुण्डेश्वरी और उनके प्रिय भक्त राजर्षि बहादुर के दर्शन होंगे, यह मेरा परम सौभाग्य है। कब चलना होगा?

कामिनी—आज्ञा दें तो कल ही सारा प्रबन्ध किया जाय।

बाबाजी—भाई, निताइचाँद की जो इच्छा होगी सो करेंगे। बलिहारी, निताइ कैसे दयालु हैं। श्रीराधाकुण्ड-श्यामकुण्ड के दर्शन करने में मुझे कष्ट न हो, इस उद्देश्य से वे नाना प्रकार का प्रबन्ध कर रहे हैं; कैसी अद्भुत कृपा है। प्रभु! धन्य है आपकी करुणा! आप इच्छामात्र से सब कर सकते हैं; हम तो विशेष निपुणता से सोचकर भी उसे धारण नहीं कर सकते। कृपामय! इस प्रकार की अहैतुकी कृपा की बात और किसी युग में नहीं सुनी। यह कहते-कहते उनके नेत्र अश्रुपूर्ण और रक्तवर्ण हो गये। गद्गद कण्ठ से वे निताइचाँद का न जाने कितना गुणगान करने लगे।

दूसरे दिन यथासमय अटलदादा ने कुछ गाड़ी-इक्कों का प्रबन्ध किया। बाबाजी महाशय की आज्ञानुसार तीन व्यक्ति महाप्रभु का चित्रपट साथ ले एक गाड़ी में बैठकर पहले ही राजर्षि के पास पहुँच गये। थोड़ी देर में अटलदादा इक्के में बैठकर आये और बताया कि बाबाजी महाशय साथियों सहित मानसी गङ्गा तक आ पहुँचे हैं। राजर्षि बहादुर श्रीहरिचरणदास बाबाजी, श्रीरसिकदास बाबाजी, श्रीविष्णुदास बाबाजी, छोटे नित्यानन्ददास बाबाजी आदि वैष्णवों को साथ ले श्रीकुण्ड और कुसुम सरोवर के बीच एक बगीचे में जा पहुँचे।

इधर बाबाजी महाशय मानसीगङ्गा का जल स्पर्श कर गिरिराज को दण्डवत् प्रणाम कर कुसुम सरोवर तक गाड़ी ले आये। गिरिराज-दर्शन करते ही उनकी चित्त-गति बदल गई; वे एकदम बाह्य-ज्ञान शून्य हो गये। कुसुम सरोवर पर आते ही पैदल चलने का निश्चय कर गाड़ी से उतरकर उन्होंने प्रेम-गद्गद भाव से प्रिय रामदास को नाम आरम्भ करने का आदेश

दिया। रामदादा ने प्रसन्न हो मन-प्राण झकझोर देने वाले स्वर में नाम शुरू किया। सभी पैदल नाम करते हुए चलने लगे। सिद्ध महात्मा श्रीयुत प्रेमदास बाबाजी महाशय के शिष्य (कुसुम सरोवरवासी) श्रीयुत श्यामदास बाबाजी महाशय न जाने किस उद्देश्य से सभी की आँखों से ओझल रहकर कुसुम सरोवर के निकट एक स्थान पर प्रच्छन्न भाव से वास कर रहे थे। बाबाजी महाशय कीर्तन को छोड़ उस गुप्त स्थान पर जा पहुँचे और श्यामदास बाबाजी का हाथ पकड़कर चिर परिचित की तरह बोले, 'क्यों रे श्यामदास! यहाँ कैसे? तू तो मेरा छोटा भाई है, मैं तुझे ढूँढ रहा था।' ऐसा कह वे उन्हें अपने साथ लेकर कीर्तन में वापस आ गये। वे विस्मित भाव से आपकी बाईं ओर कीर्तन के साथ नाम करते हुए चलने लगे। कीर्तनध्वनि सुनकर राजर्षि आदि ने आगे आकर दण्डवत् प्रणाम किया। बाबाजी महाशय ने प्रतिदण्डवत् कर सभी को आलिङ्गन करते हुए प्रेम-विभोर होकर कहा, 'आज मैं धन्य हुआ। तुम सब राधाकुण्डवासी हो, ऐसी कृपा करो कि कृपामयी राधारानी अपनी दासी के रूप में मुझे अङ्गीकार करें। कुण्ड और कुण्डेश्वरी में भेद नहीं, 'यथा राधा प्रिया विष्णोस्तस्याः कुण्डं प्रियं तथा।' तुमलोग कुण्डवासी हो, श्रीमती के निकट अन्तरङ्ग हो; मुझ पर कृपा करो।' इस प्रकार कहते-कहते वे विभोर हो गये। यह देखकर श्रीहरिचरणदास बाबाजी बोले, 'अच्छा, पता चलेगा कौन अन्तरङ्ग है, पहले श्रीकुण्ड-परिक्रमा कर विनोदिनी के पास चला जाय।' इतना कह उन्होंने आपको सबसे आगे कर दिया। श्रीराधाकुण्ड एवं श्यामकुण्ड को दण्डवत् प्रणाम कर और दोनों कुण्डों की परिक्रमा कर सबने विनोद-बाड़ी में प्रवेश किया। उनके बाड़ी में प्रवेश करते ही राजर्षि बहादुर बाबाजी महाशय से बोले, 'दादा आइये, विनोद-विनोदिनी के दर्शन कीजिये।' वे प्रसन्न हो उनके साथ विनोद-मन्दिर में गये। विनोद-विनोदिनी का अपूर्व रूप-लावण्य, शृङ्गार, कटाक्ष-भंगिमा आदि देखकर वे एकदम मुग्ध हो गये और छोटे-छोटे पद-स्तवादि गाने लगे? आँसुओं से वक्षस्थल भीगने लगा। अवसर पाते ही सारे सात्विक विकारों ने उन्हें आ घेरा। कुछ देर बाद भाव-संवरण कर उन्होंने राजर्षि के अनुरोध पर सभी के साथ शीतलभोग सेवन किया। अपूर्व आनन्द! सबसे पहले उन्होंने थोड़ा प्रसाद हाथ में ले हरिचरणदास के मुँह में दिया; हरिचरणदास बाबाजी ने भी अपनी पत्तल से थोड़ा प्रसाद ले उनके मुँह में दिया। इस प्रकार वे सबके मुँह में और सब उनके मुँह में प्रसाद देने लगे। सब आनन्द-सागर में निमग्न हो गये। इससे पूर्व वृन्दावन में इन लोगों ने इस जाति के आनन्द का कभी उपभोग नहीं किया था; अतः आज सभी को एक अभिनव आनन्द की प्राप्ति हुई। परमानन्दपूर्वक शीतलभोग पाकर सब एक स्थान पर बैठ इष्टगोष्ठी करने लगे।

कोई कैसा भी प्रश्न करता, बाबाजी महाशय समस्त सिद्धान्तों का चूड़ान्त एकमात्र 'कृपा' ही बताते। कृपा बिना कुछ नहीं हो सकता, यह बात बड़ी सरस भाषा में सभी को समझाते। महापुरुषों के हृदय में जब जिस विषय का आवेश होता है, वे तब उसी विषय को परकाष्ठा तक पहुँचा देते हैं। जब से बाबाजी महाशय श्रीधाम वृन्दावन पधारे हैं, तभी से उनके हृदय में निरन्तर श्रीमन्महाप्रभु की अशेष कृपा की स्फूर्ति हो रही है। उसके आवेश में प्रायः हर समय वे श्रीरूप गोस्वामीपाद कृत 'अनर्पितचरीं चिरात् करुणयावतीर्णः कलौ, समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वलरसां स्वभक्तिश्रियम्॥ हरिः पुरट-सुन्दर-द्युति-कदम्ब-सन्दीपितः। सदा हृदयकन्दरे स्फुरतु वः शचीनन्दनः'॥ श्लोक की समालोचना करते हैं और कहते हैं कि श्रीमन्महाप्रभु करुणापरवश हो चिर-अनर्पित निज-संचित गुप्त सम्पत्ति को जन-साधारण में बाँटने के लिए ही श्रीधाम नवद्वीप में अवतीर्ण हुए हैं। आप साथ ही यह भी कहते हैं कि श्रीरूप गोस्वामीपाद ने 'युष्माकं हृदये शचीनन्दनः स्फुरतु' आशीर्वाद सूचक जिस वाक्य का प्रयोग किया है, उसका तात्पर्य है 'चिराददत्त-संचितनिजगुप्त वित्तसमर्पणरूपकरुणामयत्वेन स्फुरतु इति यावत्।' हम कलिहत मायामुग्ध जीव हैं, कोई साधन आदि करें ऐसी शक्ति हममें कहाँ? यदि हम जैसे जीवों का कोई कर्तव्य है, तो वह है केवल निताइ-गौराङ्ग की असीम कृपा की जय बोलना। हम कैसे अकृतज्ञ हैं? यदि

कोई धनी व्यक्ति हमें सामान्य सहायता भी दे देता है, तो हम जीवनभर उसे नहीं भूलते; सदा के लिए उसके कृतज्ञ होकर उसकी दया की बात का ढिंढोरा पीटते रहते हैं; पर दाता-शिरोमणि ने अपनी अमूल्य सम्पत्ति जनसाधारण को उनके घर जा-जाकर आग्रह कर दी, फिर भी हमें दिनान्त-निशान्त में एकबार भी उनकी कृपा की बात कहने में अथवा उनके प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करने में संकोच होता है। बाबाजी महाशय की बातें सुनकर हरिचरणदास बाबाजी ने प्रश्न किया, 'अच्छा, हमें सदैव इसकी स्मृति क्यों नही रहती?'

बाबाजी—कृपालब्ध वस्तु की मर्यादा रखना बड़ा कठिन है। एक गल्प याद आती है। एक दिन श्रीधामपुरी के बड़े रास्ते से एक भद्रपुरुष समुद्र की ओर जा रहा था। उसके कंधे पर एक बहुमूल्य शाल था और पैरों में जूते। रास्ते में बड़ी धूल थी; दो-चार कदम चलने के बाद हर बार वह शाल से जूतों की धूल झाड़ लेता था। कुछ लोग दूसरी ओर से आ रहे थे; उनमें से एक वृद्ध पुरुष ने दूसरों से कहा, 'बता सकते हो यह भद्रपुरुष कीमती शाल से जूते क्यों पोंछ लेता है?' जब किसी की कुछ समझ में न आया तो वह बोला, 'मुझे निश्चय है कि शाल इसके बाप के जमाने का है और जूते इसके अपने खरीदे हुए हैं।' दूसरों को इस पर विश्वास न हुआ। उसी समय जब वह भद्रपुरुष उनके निकट पहुँचा, तो वृद्ध ने उससे पूछा, 'भाई, ये शाल कितने में खरीदा?' वह बोला 'बाबा, यह मेरे पिताजी पहनते थे; बड़ा भारी है और इसे पहनकर उतना सुख भी नहीं होता; पुरानी चीजें बहुत पसन्द नहीं आतीं।' तब वृद्ध ने जैसे ही कहा 'जूते?' वह बड़े उत्साह से बोला, 'देखिये महाशय, ये जूते तीन दिन हुए मैंने पाँच रुपये में खरीदे हैं; बहुत अच्छे हैं न?' ऐसा कहकर वह फिर शाल से उन्हें पोंछकर दिखाने लगा। सब लोग जूतों की प्रशंसा करने लगे और वह पुरुष सन्तुष्ट होकर चला गया। दूसरे लोग वृद्ध से बोले 'आपने यह बात कैसे जान ली?' वृद्ध ने कहा 'भाई, पैतृक सम्पत्ति की मर्यादा-रक्षा या उसका मूल्यांकन कौन करे? कृपालब्ध वस्तु जो ठहरी! अपनी कमाई के पाँच रुपये कृपालब्ध दो सौ रुपयों से भी बढ़कर हैं।' वास्तव में यही बात है। परमदयाल निताइ-गौराङ्ग ने कृपा कर जो अमूल्य सम्पत्ति हम लोगों को दी है, हम उसका कोई मूल्य नहीं समझते। हम यदि साधन कर इसका सौवाँ हिस्सा भी प्राप्त करते, तो हमें इसके महत्व का पता चलता।

इस प्रकार बातें हो रही थीं, उसी समय एक व्यक्ति ने आकर महाप्रसाद पाने के लिए कहा। राजर्षि बहादुर के आग्रह पर सब महाप्रसाद पाने बैठ गये। मानो आनन्द का फुहारा फूट पड़ा। बाबाजी महाशय जब जो काम करते, उसी में आनन्द का अनुभव होता। यथासमय महाप्रसाद पाने का काम पूरा हुआ। पहले से ही राजर्षि बहादुर ने साथियों सहित बाबाजी महाशय के ठहरने के लिए श्रीकुण्ड-स्थित श्रीमदनमोहन-मन्दिर निश्चित कर रखा था। उन्होंने वहीं जाकर विश्राम किया।

दूसरे दिन सुबह उठते ही बाबाजी महाशय ने साथियों को आदेश दिया, 'रोज तीन बार श्रीकुण्ड में स्नान करना, नाम करते हुए दोनों कुण्डों की परिक्रमा करना, और कुण्ड पर रहने वाले वैष्णवों की भजनकुटियों के आगे साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करना।' कोई साढ़े सात बजे राजर्षि बहादुर कुछ वैष्णवों के साथ उनके पास आये। देखते ही दोनों ने एक दूसरे को दण्डवत् प्रणाम किया। तत्पश्चात् बैठते हुए राजर्षि ने हाथ जोड़कर कहा 'मेरी एक विनीत प्रार्थना है, जितने दिन राधारानी आपको कुण्ड पर रखें, आप श्रीविनोदबिहारीजी का महाप्रसाद स्वीकार करें।' बाबाजी महाशय ने कहा, 'भाई, निताइचाँद जो करायेंगे सो होगा; इसके लिए चिन्ता क्या करनी? तुम्हारी विनोदिनी मुझे प्रसाद देंगी क्या?'

राजर्षि—विनोद-विनोदिनी तो आपके ही हैं। एक निवेदन और है। आज गोपाष्टमी है; विनोद-विनोदिनी गोष्ठ-विहार के लिए बाहर निकलेंगे; उनकी इच्छा है कि आप भी उनके साथ चलें।

बाबाजी—विनोद-विनोदिनी मुझे साथ ले चलेंगे।

राजर्षि—नहीं ले चलेंगे, तो आपको यहाँ लाये ही क्यों?

बाबाजी महाशय मृदुभाव से हँसकर बोले, 'पता नहीं तुम्हारे विनोद-विनोदिनी की क्या इच्छा है। कब बाहर निकलेंगे?'

राजर्षि—निकलते-निकलते दस बज जायेंगे।

बाबाजी—दस बजे किस भाव से?

राजर्षि—गोष्ठविहार के अनुसार ही बाहर निकलते हैं। पर क्या करें भोगादि में कुछ देर हो जाती है।

यह सुनकर बाबाजी महाशय बड़े आनन्दित हुए। राजर्षि कुछ देर बाद आपके आदेशानुसार चले गये। आप स्नान-आह्निकादि करके ही चुके थे कि विनोद बाड़ी से बुलावा आ गया। आप साथियों को लेकर चल दिये। श्रीयुत रामहरिदास बाबाजी, श्रीमाधवदास बाबाजी, श्रीहरिचरणदास बाबाजी, श्रीरसिकदास बाबाजी और भुजा महाशय (एक विशेष विज्ञ, स्मरण-मननशील, सुरसिक भक्त जो प्रायः निरन्तर राजर्षि के पास रहकर इष्ट-गोष्ठी करते) आदि महात्माओं के साथ राजर्षि महाशय बाबाजी महाशय की प्रतीक्षा कर रहे थे। जैसे ही ये पहुँचे, सबने खड़े होकर बड़े आदर-सत्कार के साथ इन्हें विनोदमन्दिर के बगल में एक कमरे में लिवा ले गये। सभी तो लीलास्मरण-परायण थे। बैठते ही इष्टगोष्ठी शुरू हो गई। सभी बाबाजी महाशय से गोष्ठी आरम्भ करने के लिए आग्रह करने लगे। आपने कहा 'लीला-कथा के विषय में मैं क्या जानूँ? देखो, यदि तुम्हारे आशीर्वाद से योगमाया पौर्णमासी देवी कृपा कर कुछ कहलवायें तो......' कहते-कहते वे आविष्ट भाव से विनोद-विनोदिनी के मध्याह्न-लीला-विलास की बात कहने लगे। सभी विभोर होकर सुनने लगे। किसी को बाह्यज्ञान नहीं। सभी एक अभिनव आनन्दसागर में डूब गये। इस प्रकार की गोष्ठियाँ तो प्रायः ही होती रहती थीं, पर सभी ने आज एक अभिनव आनन्द का अनुभव किया। सभी नीरव थे; केवल बाबाजी महाशय धीरे-धीरे एक-एक बात कहते थे और आनन्द का स्रोत उमड़ पड़ता था। थोड़ी देर में एक व्यक्ति आकर बोला, 'विनोद का भोग हो गया, महाप्रसाद तैयार है।' इससे सबका ध्यान टूट गया। राजर्षि बोले, 'दादा, विनोदजी का भोग हो चुका है, महाप्रसाद दर्शन के लिए जाना होगा।' बाबाजी महाशय आनन्द में ताली बजाकर बोले, 'भाई, मैं तो यही चाहता हूँ; मैं तैयार हूँ। महाप्रसाद के लोभ से ही तो मैं पुरी धाम में पड़ा हूँ और श्रीजगन्नाथ के साथ 'बाबा' का सम्बन्ध बनाये हुए हूँ; और अच्छे-अच्छे महाप्रसाद के लोभ से ही यहाँ आया हूँ। चलो, सबसे आगे मैं चलता हूँ।' श्रीरामहरिदास बाबाजी महाशय हँसते-हँसते बोले, 'बाबा! तुम्हारा ही काका मैं हूँ; इस विषय में तुम्हारी अपेक्षा मेरा पद और भी ऊँचा है।' इस प्रकार नाना प्रकार से रस-कल्लोल करते हुए सब महाप्रसाद-सेवा करने बैठ गये। पर हरिचरणदास बाबाजी महाशय सबसे बचकर चले गये। पंगत में उन्हें न देखकर बाबाजी महाशय राजर्षि से बोले, 'वनमाली! हरिचरणदासजी दिखाई नहीं दे रहे हैं?' इस पर राजर्षि बोले, 'उनकी माधुकरी का समय हो गया है, तभी वे चले गये हैं।' इस पर बाबाजी महाशय बोले, 'तो ठीक हैं; अपना याजन छोड़ना किसी प्रकार उचित नहीं।'

यह कहकर वे नानाप्रकार की सुललित रसपूर्ण कथावार्ता के साथ आनन्द से महाप्रसाद पाने लगे। सभी आनन्द-विभोर हैं और सभी का ध्यान बाबाजी महाशय की ओर है। बाबाजी महाशय की एक-एक बात सभी के मन-प्राण मत्त कर देती है। इसी समय, जब सब परमानन्दपूर्वक महाप्रसाद-सेवन में जुटे थे, एक मधुकरी-पात्र हाथ में लिये हरिचरणदास बाबाजी महाशय 'जय राधे' कहकर विनोदजी के आगे आकर खड़े हुए। 'जय राधे' सुनते ही पुजारी ने एक दोना दाल और एक दोना तरकारी एवं कुछ रोटियाँ उनके पात्र में डाल दीं और वे चले गये। ये लोग जिस जगह बैठकर महाप्रसाद-सेवन कर रहे थे, वहाँ से सब दिखाई देता था। यह देखकर बाबाजी महाशय कुछ मन्द-मन्द मुस्कराये और महाप्रसाद पाते रहे। महाप्रसाद सेवन हो चुकने पर सब आचमन कर पूर्ववत् विनोद मन्दिर के पास वाले कमरे में जाकर इष्टगोष्ठी करने लगे। कुछ देर बाद एक व्यक्ति ने आकर राजर्षि से कहा, 'विनोदजी के बाहर पधारने का समय हो गया।' यथासमय विनोद-विनोदिनी एक सुसज्जित पालकी में चढ़े। बाबाजी महाशय ने भाव-गद्गद कण्ठ से पद गाया-

राधाश्याम एकासने सेजेछे भालो।
राइ आमादेर हेमवरणी, श्याम चिकणकालो।।
गले वनफूलेर माला, वामे चूड़ाटि हेला।
जुगलरूपे निकुंजवन करेछे आलो।।
(दोहाँर) बाहुते बाहु, जेन चाँदेते राहु।
चूड़ा वेणी घेराघेरि करि दाँड़ालो।।
करे मोहन मुरली, राइ अंगे पड़िछे ढलि।
भानु दुलाली मोदेर नन्द दुलाल।।
(जत) सखी मंजरी, तारा जाय सारि सारि।
माझे किशोर-किशोरी, कि शोभा ह'लो।।
(जत) बरज बाला, रूपे दशदिक हइल आलो।
जुगल चाँदे घेरि चाँदेर माला चलिलो।।
(नाचे) मयूर-मयूरी, गाय शुक आर सारी।
जुगलरूप हेरि सबार नयन जुड़ालो।।
(तोरा) आय सहचरि, हेरबि जदि जुगल माधुरी।
मेघ बिजुरी जड़ाजड़ि कि शोभा ह'लो।।

सभी लोग आनन्द में मग्न हैं। विनोद-विनोदिनी चतुर्दोले में बैठे हिलते डुलते जा रहे हैं। चारों ओर इतनी भीड़ है कि कौन किसे देखे? एक तो विनोद-विनोदिनी का भुवन-मोहन रूप; दूसरे बाबाजी महाशय का मन-प्राण मत्त कर देने वाला सुमधुर कीर्तन! यही कारण है कि सब लोग आकृष्ट होकर संकीर्तन के साथ-साथ ही चल रहे हैं। बड़े आनन्द के साथ सब लोग विनोद-विनोदिनी को लेकर कुसुम सरोवर और श्रीराधाकुण्ड के बीच स्थित बगीचे में जा पहुँचे। विनोद-विनोदिनी का सिंहासन एक वेदी पर रख दिया गया। बलिहारी उस माधुरी की! सबको पहले से पता था कि गोपाष्टमी के उपलक्ष्य में विनोद-विनोदिनी इस बगीचे में शुभागमन करेंगे; अतएव व्रजवासी दूर-दूर से आ रहे थे। इधर ग्वाले गाय-बछड़ों को सामने के खुले मैदान में लाकर चराने लगे। श्रीमूर्ति के रूप में नित्य लीला प्रकट है, ऐसा सभी को भासने लगा। बाबाजी महाशय एक-एक वस्तु देख नित्य प्रकटलीला का अनुभव कर भाव-विभोर होने लगे। इधर व्रजवासी रासधारी लोग नाना प्रकार की लीलाओं का अनुकरण करते हुए सारङ्गी बजाकर नाचने-गाने लगे। आनन्द का सागर उमड़ पड़ा, जिसमें सभी लोग डूबने लगे। पर आनन्द का समय जल्दी ही बीत जाता है। यथासमय विनोदजी का भोगराग हो गया, फिर गो-सेवा की गई। तत्पश्चात् सभी ने थोड़ा-थोड़ा महाप्रसाद लिया। क्रमशः सन्ध्यादेवी विनोदविहारी के दर्शन करने आने लगीं। यह देख राजर्षि बहादुर ने बाबाजी महाशय से कहा, 'दादा, अब विनोद-विनोदिनी को लेकर मन्दिर में चला जाय?' वे कुछ अन्यमनस्क थे; राजर्षि की बात सुन चौंककर बोले, 'अच्छा चलो।' और नृत्य करते- करते विनोद-विनोदिनी के साथ चल पड़े। लौटते समय कीर्तन में पहले से दुगना आनन्द था। श्रीरामहरिदास बाबाजी महाशय आदि सभी भाव-विभोर हो नाचते-नाचते कीर्तन के साथ चल रहे थे। सभी आत्मज्ञानशून्य थे और उन्मत्तवत् नृत्य-कीर्तन कर रहे थे; कुछ ही दूर पहुँचे थे कि राजर्षि के साले गोपालबाबू नाचते-नाचते भाव में विभोर हो गये और बेहोश हो गिर पड़े। बहुत चेष्टा करने पर भी जब उन्हें होश में न लाया जा सका, तो एक व्यक्ति ने जाकर बाबाजी महाशय से कहा। वे नाचते-नाचते उनके पास पहुँचे और उनके सिर पर हाथ रख कान में मंत्र दिया। मंत्र प्राप्त करते ही गोपालबाबू एक हुंकार कर पूर्ववत् झूमते-झूमते कीर्तन में जाकर नाचने लगे। निताइचाँद कृपा करते हैं, कौन बता सकता है? गोपालबाबू बाबाजी महाशय के प्रति विशेष आकर्षित अथवा श्रद्धावान् हों, ऐसा नहीं लगता था। इससे पहले उन्हें कीर्तनादि में इस प्रकार भाव-विभोर होकर नाचते भी किसी ने नहीं देखा; पर आज तो भावावेश में उनकी आकृति ही बदल गई। चेहरे से ज्योति निकलती जान पड़ने लगी। धन्य महत्कृपा का प्रभाव!

यथासमय विनोद-विनोदिनी ने मन्दिर में शुभ-विजय की। इस प्रकार विनोद-विनोदिनी के श्रीराधाकुण्ड वाले मकान में बाबाजी महाशय के साथ नित्य पूजन आनन्द उपभोग होता रहा।

* एक दिन रात को सब एक साथ बैठकर महाप्रसाद पा रहे थे। नाना प्रकार की तत्वकथाएँ चल रही थीं। बाबाजी महाशय ने कहा, 'प्रेमदाता परम

* यह और आगे कुछ घटनाएँ भक्तप्रवर कामिनीकुमार घोष के लिखित विवरण के अनुसार हैं।

दयाल श्रीमन्महाप्रभु ने आपामर सर्वसाधारण कलि-जीवों को बिना विचारे प्रेम-दान किया। कोई भी कलि-जीव वंचित नहीं रहा। बस इतना ही है कि किसी ने उस प्रेम-वितरण की बात अथवा उसके आनन्द को अनुभव कर लिया है, और किसी ने नहीं किया। वह समय आने पर कर लेगा। पर प्रेम पाने से बचा कोई नहीं, कारण-जिस वस्तु के वितरण के लिए श्रीगौरसुन्दर इस घोर कलियुग में अवतीर्ण हुए, तो उनका काम अधूरा रह जाता। यह क्या सम्भव था? यह सिर्फ मेरे कहने की बात नहीं है; श्रीरूप गोस्वामीपाद ने 'अनर्पित' श्लोक में इस बात की गवाही दी है।' कामिनीबाबू बोले, 'बाबाजी महाशय! मुझ जैसे अभागे व्यक्ति में तो प्रेम-प्राप्ति का कोई चिह्न दीखता नहीं; यदि प्रेम प्राप्त हो जाता, तो विषय-वासना ही न रहती। तब क्या स्त्री-पुत्रादि को लेकर सांसारिक कामधंधों में फँसे रहना सम्भव होता?'

बाबाजी—कामिनीबाबू, तुमने निश्चय ही प्रेम प्राप्त किया है, और तुम्हारे स्त्री-पुत्रादि ने भी। अपनी हालत थोड़ा ध्यान से देखो; तुम राजा की नौकरी कर रहे हो और स्त्री-पुत्रादि लेकर गृहस्थी चला रहे हो; इतने पर भी तुम्हारे मन में आशा है कि तुम श्रीराधारानी की दासी होकर उनकी प्रेम-सेवा करोगे। यह किसकी कृपा है? किसकी कृपा से तुम्हारे हृदय में वासना पैदा हुई? तुम्हें धन, स्त्री, पुत्रादि की आवश्यकता थी, सो करुणामय प्रभु ने यह सब देकर तुम्हें श्रीधाम वृन्दावन भेज दिया; ऊपर से सत्य का आश्रय दे दिया; अन्यथा तुम्हारी क्या सामर्थ्य जो तुम वृन्दावन-वास करते? जो दाता हैं, वे दान करके ही खुश रहते हैं। दानवीर यदि विचार कर दान करें, तो क्या वे सन्तुष्ट हो सकते हैं? श्रीमन्महाप्रभु दाता-शिरोमणि हैं; तुम्हारे अयोग्य होने से क्या होगा? वे तो बिना सोचे-विचारे अपने भण्डार की सर्वोत्कृष्ट वस्तु (प्रेमधन) सभी को बाँट रहे हैं; योग्य-अयोग्य का विचार कर यदि वे बाँटें, तो क्या उन्हें सुख होगा? मान लो किसी रईस के घर कोई बड़ा उत्सव हो रहा है, अनेक गरीबों को भोजन दिया जा रहा है; बेशुमार रसगुल्ले बाँटे जा रहे हैं। एक कङ्गाल की पत्तल पर बहुत से रसगुल्ले देखकर एक व्यक्ति कहता है 'क्यों बेटा, दिनभर मेहनत करने के बाद भी दो पैसे के मुरमुरे नहीं जुटते थे, आज बड़े रसगुल्ले खा रहे हो।' वह कङ्गाल उत्तर देता है, 'भाई, मैं तो कुछ मुरमुरों की ही आशा से आया था, पर यहाँ आकर देखा कि रसगुल्ले ही रसगुल्ले हैं, और वह भी जो जितने खा सके; सो आज रसगुल्ले खा रहा हूँ।' दाता जब दान करता है, तो अधम को भी प्राप्ति होती है। तभी कहता हूँ भाई, उन्होंने सभी को प्रेम-दान किया है।

इस बार श्रीकुण्डवासी श्रीरसिकदास बाबाजी महाशय बोले, 'आप जो चाहें कहें, इस परमदयाल अवतार में मुझे एक बूँद भी प्रेम नहीं मिला।' यह सुनकर बाबाजी महाशय न जाने कैसे हो गये; बच्चे की तरह व्याकुल हो गद्गद कण्ठ से बोले, 'भाई, कलियुग में घोर पाखण्डियों तक ने प्रेम पाया, आपको क्यों नहीं मिला? इससे तो महाप्रभु के विश्वम्भर नाम में कलङ्क लगता है। मैं यह महाप्रसाद हाथ में लेकर कहता हूँ कि आपने निश्चय ही प्रेम पाया है।' बाबाजी महाशय का इतना कहना था कि रसिकदास बाबाजी महाशय की आँखों से अविरत अश्रु, कम्प, पुलक आदि सात्विक विकार उनके शरीर में प्रकट हो गये। बाबाजी महाशय ने पूछा, 'बोलिये, प्रेमदाता की कृपा से प्रेम पाया कि नहीं?' रसिकदास बाबाजी महाशय ने न जाने कैसे होकर कहा, 'जी हाँ, पाया।' यह सुनकर बाबाजी महाशय कुछ स्वस्थ हुए। बलिहारी उस अपूर्व भाव की। जगत् का कोई भी प्राणी महाप्रभु के प्रेम-दान से वंचित रहा है, यह बात बाबाजी महाशय को सह्य नहीं। एक व्यक्ति ने कहा, 'देखिये, गोस्वामीपाद ने कितना कठोर वैराग्य किया। हरिदास ठाकुर तीन लाख नाम करते थे। हम लोग तो कुछ भी नहीं कर पाते, हमारी क्या गति होगी?'

बाबाजी—भाई, हम लोगों की सामर्थ्य कहाँ जो भजन-साधन कर सकें? हम लोग तो अन्नगत प्राण हैं। कठोर वैराग्य तो दूर, किसी दिन किसी कारण खाने में कोई कमी या भूल-चूक हो जाती है, तो भजन-साधन की बात ही मन से अलग हो जाती है। शरीर इतने सुकोमल हैं कि सर्दी-गर्मी और वर्षा सहन

करना तो दूर, किसी दिन जमीन पर सोना पड़ जाय तो सहन नहीं होता। ये तो है हमारी मानसिक और शारीरिक अवस्था! हम क्या कर सकते हैं? हम लोगों को सभी बातों में असमर्थ जानकर ही वे लोग हमारे लिए इतना कठोर वैराग्य और भजन-साधन कर गये हैं। उनके वैराग्य और भजन-साधन की बात जिन ग्रन्थों में वर्णित है, उनका पाठ करना और उन विषयों पर वार्तालाप, चिन्तन-मनन करना तथा उनके रूप, गुण, लीला आदि का स्मरण करना ही हमारा नित्य का साधन और कर्तव्य है। असल में श्रीमन्महाप्रभु के परिकरों ने जिसे साधन मानकर आचरण किया, हमारे लिए वही साध्य है। अतएव साध्य और साधन एक वस्तु हैं। नित्यसिद्ध परिकरजन प्रेमपूर्वक जिस रूप, गुण, लीला आदि का दर्शन, श्रवण, कीर्तन करते हैं और प्रेम-विभोर हो जिस प्रकार का आचरण करते हैं, साधक लोग उसी का श्रवण-कीर्तन और परस्पर वार्तालाप द्वारा आस्वादन करते हैं। साधकों के लिए वही सब साध्य अर्थात् प्राप्ति की वस्तु है। यह बात जिसके हृदय में अच्छी तरह बैठ गई है, वह इसके अतिरिक्त और किसी प्रकार के आचरण में समय नष्ट नहीं करता; वह सर्वोपाधि-विनिर्मुक्त हो जाता है। 'अन्यत्र ना चले मन, जेनो दरिद्रेर धन।' इस प्रकार अनन्यचेष्ट हो जाता है। जिन निताइ-गौराङ्ग का नाम लेने से प्रेम उमड़ता है, अश्रुधार बहती है; जो अपराध की बात तक नहीं सोचते; जो अपराधी का अपराध दिखाकर और अपराध-मोचन का उपाय बताकर अथवा स्वयं उपाय कर प्रेम-दान करते हैं, ऐसे परमदयाल प्रेमदाता-शिरोमणि श्रीनिताइ-गौराङ्ग की यह अपार करुणाराशि जिसके हृदय में संचारित होती है, उसके लिए क्या और कोई साधन-भजन करना बाकी रह जाता है? या किसी और प्रकार के भजन-साधन के लिए क्या उनके मन में उत्कण्ठा पैदा हो सकती है?

एक व्यक्ति ने पूछा, 'जब श्रीनिताइ-गौराङ्ग ने प्रेम-दान कर दिया तो श्रीगुरु-पदाश्रय की क्या आवश्यकता है?'

बाबाजी—श्रीश्रीनिताइ-गौर ने प्रेम-दान किया है, कर रहे हैं, या करेंगे, यह बात बिना गुरुदेव के तुम्हें कौन बतायेगा? अमूल्य प्रेमधन तुम्हें दिया है, पर तुम्हें पता नहीं। अतः तुम दुःख पा रहे हो। श्रीगुरुदेव ने कृपाकर महाप्रभु की उस अपार करुणा की बात याद दिलाकर तुम्हें उस अमूल्य सम्पत्ति का अधिकारी बना दिया। तो बताओ, उन जैसा परम मित्र कोई और हो सकता है? पर यह मत सोचना कि यह काम हर कोई कर सकता है। शास्त्रों में कहा है, 'श्रीगुरुरूपे कृष्ण कृपा करेन भक्तगणे।' श्रीगुरु-कृपा के बिना किसी में भी भक्ति-साधन की सामर्थ्य नहीं आ सकती। साक्षात् भगवत्कृपा हो अथवा उनके भक्तों की कृपा हो, इसके बिना नामाभास तक की स्फूर्ति नहीं हो सकती। तभी तो कहा है 'गुरुरूपे कृष्णकृपा तत्वेर अवधि।' कोई कितनी ही कृपा क्यों न करे, जब तक श्रीगुरुदेव करुणा कर हृदय को उसे ग्रहण करने योग्य नहीं बना देते, तब तक बिन्दु मात्र भी कृपा की स्फूर्ति नहीं होती। यहाँ तक कि 'कृष्णे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन।' इस प्रकार नाना प्रकार के भगवत्प्रसङ्गों के साथ परमानन्द में धीरे-धीरे महाप्रसाद-सेवन हुआ।

यदि कभी महापुरुषों का कोई व्यवहार गलत प्रतीत हो, तो वह अन्य किसी महात्मा के उत्कर्ष अथवा अन्वय व्यतिरेक से जगत् के कल्याण के लिए ही होता है। ऐसी स्थिति में जो लोग एक महात्मा का पक्ष लेकर दूसरे के प्रति दोष-दृष्टि रखते हैं, वे भक्ति-पथ से बहुत दूर रहते हैं। महापुरुषों का वह वाक्य 'एके वन्दे आरे निन्दे सेइ जाय नाश' ऐसे ही लोगों पर लागू होता है। एक दिन राजर्षि बहादुर बाबाजी महाशय को किसी महानुभाव से भेंट कराने ले गये। उक्त महानुभाव का बाबाजी महाशय को दर्शन देना तो दूर रहा, वे उनके प्रति बड़ी विरक्ति दिखाने लगे और उन्हें उनका वहाँ रुकना भी असह्य प्रतीत होने लगा। राजर्षि ने अपने जीवन में स्वप्न में भी कभी ऐसा व्यवहार किसी से प्राप्त नहीं किया था। वे तो विशेष आनन्द प्राप्त करने की आशा से ही वहाँ गये वे, पर हुआ उसके बिलकुल विपरीत। राजर्षि बहादुर बाहर से भले ही कुछ न कह सके हों, पर उक्त महानुभाव की एक-एक बात को लेकर वे मन ही मन इतने व्यथित हो रहे थे कि उनकी तत्कालीन अवस्था देखकर लगता था मानो

वे पृथ्वी से प्रार्थना कर रहे हों 'माँ वसुन्धरे! तुम फट जाओ जिससे मैं तुम्हारी गोद में समाकर इस असह्य वेदना से मुक्ति पा सकूँ।'

बाबाजी महाशय ने उक्त महानुभाव के उस व्यवहार का परोक्षभाव से अनुभव कर, उन्हीं की शान्ति के लिए, वहीं से उन्हें प्रणाम कर अन्यत्र प्रस्थान किया। क्षण भर पीछे राजर्षि बहादुर भी उन महानुभाव को प्रणाम कर व्यथित हृदय से बाबाजी महाशय के पास लौट आये। बाबाजी महाशय उक्त घटना के विषय में कुछ न कह कर अपनी स्वाभाविक प्रीति और सरल व्यवहार के साथ लीला-कथा कहते-कहते अपने स्थान पर लौट आये। स्वयं राजर्षि बहादुर के साथ कोई ऐसा व्यवहार करता, तो उन्हें जरा भी दुख न होता; वह तो वरन् यह देखकर कि दूसरे को दुःख हुआ उसे सन्तुष्ट करने की चेष्टा करते। पर वे एक ऐसे महापुरुष को साथ ले गये थे, जो जगत् के आदर्श हैं; जिन्हें आबाल, वृद्ध, युवा, स्त्री, पुरुष परम सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। ऐसे महापुरुष का इतना अपमान! राजर्षि की यह मनोव्यथा किसी तरह दूर नहीं हो रही थी। वे बाबाजी महाशय के मुख की ओर देखते थे तो उनकी व्यथा और दुगनी हो जाती थी। राजर्षि को जीवन में इतना दुःखी शायद हमने कभी नहीं देखा। बाबाजी महाशय ने नाना प्रकार के रस-कौतुक द्वारा उनके मनस्ताप को शान्त करने की विशेष चेष्टा की, पर उन्हें सफलता न मिली। अन्त में एक दिन कुसुम सरोवर पर उन्होंने राजर्षि का हाथ पकड़ कर गद्गद कण्ठ से कहा, 'भाई वनमाली, यदि तुमने एक दिन के लिए भी कभी मुझे चाहा है, तो आज एक भीख दो। उस दिन उन महानुभाव के व्यवहार से तुम्हें जो दुःख हुआ, वही मुझे भिक्षा में देकर वचन दो कि इस विषय को लेकर फिर कभी तुम उन पर रोष न करोगे। दूसरा अनुरोध यह है कि यह बात और किसी से न कहना। यदि बात फैली भी हो, तो उसे दबाने की चेष्टा करना।' बाबाजी महाशय की उस समय की प्रेम-मूर्ति को देख राजर्षि बहादुर विस्मित हो गये और साश्रुनयन गद्गद कण्ठ से बोले, 'दादा, आप जो आदेश देंगे उसका पालन अवश्य होगा। आप कृपा-शक्ति का संचार कीजिये, जिससे मेरी मानिसक मलिनता दूर हो और स्वच्छ भाव पैदा हो।' उस दिन से राजर्षि ने इस घटना के बारे में किसी से कुछ भी नहीं कहा; यहाँ तक कि इसके बाद उक्त महानुभाव के प्रति उनके व्यवहार से ऐसा भी कभी प्रतीत नहीं हुआ कि उक्त घटना कभी घटी थी और वह उन्हें याद है। अपूर्व दृष्टान्त! जिसने इतना अनादर किया, उसे लेकर अपने भीतर किसी प्रकार की दोष-दृष्टि आना तो दूर, किसी दूसरे के भीतर भी दोष-दृष्टि न आय, इस बात को लेकर बाबा महाशय इतना व्याकुल हुए। 'तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना। अमानिना मानदेन कार्तनीयः सदा हरिः।' इस श्लोक का प्रत्यक्ष उदाहरण राजर्षि को देखने को मिला। भगवान् अपना अपकर्ष करके भी भक्त की महिमा बढ़ाते हैं। उन्होंने कुरुक्षेत्र की लड़ाई में अपनी प्रतिज्ञा का उल्लंघन कर भीष्म की प्रतिज्ञा की रक्षा की थी। रास में अन्तर्धान हो और अपने सिर पर कलंक का टीका लगा गोपीसमाज और जगत् में उन्होंने श्रीवृषभानुकुल चन्द्रमा की प्रेम-महिमा का प्रकाश किया था। भगवान् के गुण भक्त में विद्यमान रहते हैं। मङ्गलमय प्रभु यदि उक्त महानुभाव द्वारा यह घटना घटित न कराते, तो हम लोग ऐसी उदारता, अदोषदर्शिता और 'तृणादपि सुनीचेन' श्लोक का प्रत्यक्ष उदाहरण कैसे देखते?

महात्मा राजर्षि बहादुर के मन में यह कालिमा धुल गई, पर कामिनीबाबू के हृदय में रह रह कर इस घटना के कारण बेचैनी होती रही। यह बात अन्तर्यामी बाबाजी महाशय ने जान ली। एक दिन किसी कार्य से उन्हें दो-एक दिन को कहीं जाना था, पर बाबाजी महाशय का मधुर संग छोड़कर जाना मुश्किल लग रहा था। जब वे उनसे विदा लेने गये, तो वे बड़े प्यार से बोले, 'भाई कामिनी! हम लोग एकदम पराधीन हैं; किसी के प्रति दोष-दृष्टि रखने के लिए हमारे पास अवकाश कहाँ है? जीव नित्य कृष्णदास है। नाना प्रकार के झंझटों में पड़कर वह इस बात को भूल जाता है और माया की शृङ्खला में बँधकर अभिमान करने लगता है कि मैं धनी हूँ, मानी हूँ, कुलीन, विद्वान् अथवा भक्त हूँ। इस उपाधि से बचने की ताकत हममें

नहीं है। यदि कोई रागानुग साधक हमारा आदर न करें अथवा हमारे साथ तीखा व्यवहार करें, तब भी हमें यह मानना चाहिए कि वे सदा हमारे हितकारी हैं। और कर भी क्या सकते हैं? बीच में कुछ उपाधियाँ आ जाने से ही वे हमारे साथ ऐसा व्यवहार करते हैं। परस्पर उपाधि-रहित होने से क्या फिर प्रेम से मिलन में कोई बाधा हो सकती है? 'मैं राधारानी की दासी हूँ' यदि यह विश्वास मन में दृढ़ न हो, तो कातर भाव से निताइ-गौराङ्ग के निकट प्रार्थना करो 'प्रभु, मैं कलिहत जीव हूँ; मायामुग्ध हो संसार-सागर में आ गिरा हूँ। आप करुणामय हैं, करुणाकर इस बन्धन से मुक्त कीजिये। हे प्रभु, आपकी कृपा के अतिरिक्त मुझ जैसे पाखण्डी के उद्धार का और कोई साधन नहीं।' इस प्रकार का भाव रखो और 'हा निताइ गौराङ्ग!' कहकर रोओ; हृदय निर्मल हो जायगा।'

बाबाजी महाशय की बातें सुन कामिनीबाबू के प्राण रो उठे। हृदय में उक्त महानुभाव के व्यवहार को लेकर जो सूक्ष्मभाव से छिपी हुई कालिमा थी, वह दूर हो गई; हृदय स्वच्छ और आनन्दमय हो गया। वे सोचने लगे, महापुरुषों की शक्ति का कैसा अपूर्व प्रभाव है। बाबाजी महाशय का हृदय किस प्रकार सदा ही तत्व में प्रतिष्ठित रहता है। छोटी-छोटी घटनाओं अथवा हास-परिहास में भी उनका व्यवहार उसके अनुकूल ही होता है।

एक दिन कामिनीबाबू बाबाजी महाशय के साथ महाप्रसाद पाने बैठे थे। उस दिन ठाकुरजी को मूँग की दाल का भोग लगा था। कामिनीबाबू ने गोविन्ददास से कहा, 'इस वक्त खटाई डालकर मटर की दाल बनाई जाती तो अच्छा था।' यह सुन बाबाजी महाशय अपने स्वाभाविक रसपरिपूर्ण सख्य भाव से मृदुहास्य सहित बोले, 'भाई कामिनी! आज तुमने महान् अपराध किया?' कामिनीबाबू ने चौंककर पूछा, 'जी! क्या अपराध हुआ?' बाबाजी महाशय बोले, 'देखो, कृपा कर जो भी आयँ, उनका स्वागत-सत्कार करना ही हमारा कर्तव्य है। ऐसा न कर उनके आगे दूसरों की प्रशंसा करने का मतलब क्या उनका अनादर करना नहीं है? इसलिए आज तुमने मूँग की दाल के प्रति अपराध किया।' बात सामान्य थी और परिहास के साथ कही कई थी, पर थी बड़ी शिक्षापूर्ण। वास्तव में जब तक जो मिल जाय उससे सन्तोष नहीं होता, तब तक शान्ति पाना कठिन है।

एक दिन अपराह्न में श्रीकुण्ड के किनारे बैठे बाबाजी महाशय, श्रीरामहरिदास बाबाजी, श्रीमाधवदास बाबाजी आदि बहुत-से महात्मा इष्ट-गोष्ठी कर रहे थे। श्रीरसिकदास बाबाजी ने बाबाजी महाशय से कहा, 'बहुत दिनों से मेरे मन में एक सन्देह है; यदि समय हो तो कहूँ।'

बाबाजी—बहुत समय है, कहो।

रसिक०—कृष्ण-विरह में श्रीमती की दस दशायें हुई थीं : चिन्तात्र जागरोद्वेगस्तानवं मलिनाङ्गता। प्रलापो व्याधिरुन्मादोमोहोमृत्योर्दशा दशा।।' *अन्यान्य गोपियों* की भी बहुत-सी अवस्थाओं के विषय में महापुरुषों के मुख से भी सुना है। पर ऐसा कभी सुनने में नहीं आया कि इन अवस्थाओं में श्रीमती अथवा अन्याय गोपियों की अस्थि-संधियाँ श्लथ होकर उनके शरीर दीर्घाकार हुए हों, अथवा उनके हाथ-पैर संकुचित होकर कछुए जैसे जो गये हों। अब प्रश्न है कि श्रीकृष्ण राधिका की भाव-कान्ति धारण कर श्रीगौराङ्ग रूप में अवतीर्ण हुए; राधा-भावाविष्ट श्रीगौराङ्ग के शरीर में वे भाव कैसे प्रकाशित हुए जो राधारानी में कभी नहीं हुए?

बाबाजी—श्रीमन्महाप्रभु की लीला में जो भावान्तर या अवस्थान्तर देखने में आते हैं, उनके कारणों के विषय में सभी एकमत हों, ऐसा नहीं है। सीधी बात यह है कि जैसे रस के पात्र के अनुसार रस के आस्वादन में अन्तर आ जाता है, उसी प्रकार आस्वादक में भेद होने से भावों में अन्तर आ जाता है। श्रीवृन्दावनलीला-रस के विषय या आस्वाद्य हैं नागरेन्द्र-चूड़ामणि व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण; रस की आश्रय या आस्वादिका हैं समर्था-शिरोमणि महाभाव-स्वरूपिणी श्रीमती राधिका। श्रीनवद्वीप लीला-रस के विषय या आस्वाद्य और आश्रय या आस्वादक दोनों ही हैं श्रीकृष्ण। अब विचार कीजिये कि समर्था-शिरोमणि श्रीमती जिस भाव को हृदय में धारण करने में, अथवा सङ्गोपन

रखने में समर्थ होंगी, क्या श्रीकृष्ण उसे उसी प्रकार धारण कर सकेंगे? भाव-प्रेम हृदय की वस्तु है, वह कभी बाहर प्रकट नहीं होती। बाहर प्रकट होने वाली वस्तुओं (अश्रु-कम्प आदि) को शास्त्रों में भाव-विकार बताया गया है। भाव या प्रेम के वेग को जितना हृदय में धारण किया जायगा, उतना ही उसका माधुर्य होगा। यद्यपि श्रीकृष्ण अपने माधुर्य का आस्वादन करने के लोभ से मादनाख्यमहाभाव-स्वरूपिणी श्रीमती राधिका की भावकान्ति धारण कर अवतीर्ण हुए, तथापि श्रीमती की समर्था-शक्ति अथवा उनका-सा हृदय तो वे धारण नहीं कर सके। तभी तो बीच-बीच में उन्होंने दु:ख प्रकट करते हुए कहा है, 'बहु चेष्टा करि मुंइ नारि आस्वादिते।' जिस वस्तु का श्रीकृष्ण बहुत चेष्टा करने पर भी आस्वादन नहीं कर सकते, उसे श्रीमती अनायास ही उपभोग कर स्वेच्छानुसार दूसरों को बाँट देती हैं। एक दिन कौतूहलवश श्रीकृष्ण गोपिका-मण्डली में से गायब हो गये। गोपियाँ उन्हें खोजने लगीं। जब वे किसी प्रकार भी और छिपे न रह सके, तो उन्होंने योगमाया देवी का स्मरण किया। उनकी विभुत्व-शक्ति के प्रभाव से उनका चतुर्भुज रूप हो गया। खोजते-खोजते थोड़ी देर में गोपियों को उस चतुर्भुज मूर्ति के दर्शन हुए। गोपियाँ उन्हें दण्डवत् प्रणाम कर और उनसे प्रार्थना कर कि द्विभुज, मुरलीधारी, नव-कैशोर, नटवरवपु श्रीव्रजेन्द्रनन्दन में उनकी अहैतुकी प्रीति बनी रहे, वहाँ से चली गईं।

इधर कृष्ण-विरह-विधुरा प्रेममयी श्रीमती राधिका दु:खी हृदय से श्रीकृष्ण को खोज रही थीं। श्रीकृष्ण ने दूर से उन्हें देखा ही था कि उन्हें अपनी चतुर्भुज मूर्ति की रक्षा करना असम्भव हो गया। श्रीमती की शक्ति के प्रभाव से इच्छा न होते हुए भी उन्हें विशुद्ध माधुर्यमयी द्विभुज मुरलीधर मूर्ति धारण करनी पड़ी।

रसिक०—आपने कहा कि 'श्रीगौराङ्ग लीला में कृष्ण ही आस्वाद्य हैं और कृष्ण ही आस्वादक हैं।' यह मेरी समझ में नहीं आया, क्योंकि श्रीराधिका की भाव-कान्ति धारण कर जब श्रीगौराङ्ग अवतीर्ण हुए, तब कृष्ण कहाँ रहे?

बाबाजी—श्रीकृष्ण ने राधिका की भाव-कान्ति धारण की, अर्थात् उन्होंने राधा की अङ्ग-कान्ति से अपनी कान्ति को ढक लिया; जैसे किसी पीतल या काठ की मूर्ति को सोने के जल में डुबाने से उसका ऊपरी वर्ण स्वर्ण-वर्ण हो जाता है; भीतर उसका अपना स्वरूप (पीतल या काठ) ही रहता है। उसी तरह राधिका की अङ्ग-कान्ति के जल में जैसे कृष्ण डूब गये। भीतर कृष्ण ही रहे।

रसिक०—तो जो लोग कृष्ण-मन्त्र से गौराङ्ग पूजा करते हैं और कृष्ण-ध्यान को ही गौराङ्ग-ध्यान मानते हैं, वे ठीक ही करते हैं।

बाबाजी—नहीं! लीला और तत्व में बहुत अन्तर है। ध्यान कभी भी तत्वगत नहीं होता। ध्यान लीलागत है, प्रत्यक्ष दृश्यमान रूप का ही ध्यान, नाम या मंत्र होता है। तत्व अप्रत्यक्ष वस्तु है। अदृश्य वस्तु का ध्यान, नाम, या मन्त्र लेकर दृश्य वस्तु की प्राप्ति नहीं होती। जैसे श्यामसुन्दर पुकारने पर गौरसुन्दर उत्तर नहीं दे सकते, उसी तरह 'फुल्लेन्दीवरकान्ति' कहने से 'तप्तकाञ्चन-कान्ति' का बोध नहीं कराया जा सकता। और फिर तत्वगत अभेद होते हुए भी लीलागत भेद स्वीकार न करने से लीला-माधुर्य लुप्त हो जाता है। भक्त-चूड़ामणि हनुमान ने कहा था, 'श्रीनाथे जानकीनाथे अभेद: परमात्मनि। तथापि मम सर्वस्वो राम: कमललोचन:।' लीलागत भेद के न रहने से भक्त की रूपगुण-निष्ठा ही नहीं रहती।

रसिक०—उपास्यनिष्ठा किसे कहते हैं?

बाबाजी—भगवत्स्वरूपों में से जिस रूप के प्रति जिसका चित्त आकृष्ट हुआ है, उसी रूप विशेषवाले स्वरूप के प्रति अनन्य भाव से चित्त की एकाग्रता रखना ही इष्टनिष्ठा या उपास्यनिष्ठा है।

रसिक०—कृष्ण के प्रति आकर्षित होना अच्छा है या उन्हें आकर्षित करना?

बाबाजी—सिद्ध देह में या साधक देह में?

रसिक०—सिद्ध देह में मधुर भाव से।

बाबाजी—भाव और रस के अन्तर से साधक की अवस्था में भी अन्तर हो जाता है। यदि स्त्रीदेह में धैर्य

न हो, तो स्त्री-देह की मर्यादा कहाँ? गर्विनी राधारानी की दासियों का गर्व ही उनकी प्रमुख सम्पत्ति है। ललितादेवी श्रीमती से कहती हैं, 'धैर्य कुरु राधे! सो काहा जायब, आपहि आयब, पुनहि लोटायब चरणे।' जिनकी ऐसी धारणा हो, उनकी दासियों का कृष्ण के प्रति आकृष्ट होकर उनकी खोज में भटकना क्या अच्छा होगा? लम्पट पुरुष स्त्री-लोलुप होता है, उसे आकर्षित करना स्त्रियों के लिए बहुत आसान होता है। एक सांसारिक दृष्टान्त लो। वेश्या नाना प्रकार के शृङ्गार कर दोमंजिले के बरामदे में मुख के सामने रोशनी कर इस प्रकार बैठ जाती है कि लम्पट व्यक्ति दूर से ही उसे देखकर आकृष्ट हो जाता है और हिताहित-ज्ञानशून्य हो उसके पास जाकर अपना सब कुछ उसे अर्पित कर देता है। यदि एक सामान्य कामुक व्यक्ति इस प्रकार आकृष्ट हो सकता है, तो महाकामुक लम्पट चूड़ामणि कितना आकृष्ट होंगे, विचार कर देखो। होना चाहिए हाव-भाव-कटाक्ष आदि का प्राचुर्य और रूप की उज्ज्वलता। मुख पर नव-अनुराग का उज्ज्वल प्रकाश। भक्ति-चन्दन का लेप, प्रेम-पुष्प की माला, और सर्वाङ्ग में सात्विक भावों के भूषण, जिनकी ध्वनि से गृह मुखरित हो। फिर लम्पट चूड़ामणि कृष्ण को वशीभूत होते कितनी देर लगती है।

एक दिन श्रीहरिचरणदास बाबाजी ने पूछा, 'नित्यानन्द प्रभु का तत्व क्या है?'

बाबाजी—नित्यानन्द तत्व को समझना एकमात्र श्रीगौराङ्ग-कृपा से ही सम्भव है-

'नित्यानन्द प्रभुर गुण महिमा अपार।
सहस्त्र वदने वर्णि नाहि पाय पार।।
अति गूढ़ नित्यानन्द एइ अवतारे।
श्रीचैतन्य जानाय जारे, से जानिते पारे।।'

कविराज गोस्वामी ने श्रीचैतन्यचरितामृत के श्लोक पंचक में बहुत प्रकार से ऐश्वर्य तत्व का वर्णन किया है। उसके विषय में विशेष रूप से और क्या कहूँ? मोटी बात यह है, जिस तरह राधागोविन्द मिलकर गौराङ्ग हुए, उसी तरह अनङ्गमञ्जरी और बलराम मिलकर नित्यानन्द हुए। दोनों के मिलन से एक अपूर्व रस की उत्पत्ति हुई, अर्थात् श्रीबलदेव और श्रीअनङ्ग-मञ्जरी में जो-जो भाव एवं रस थे, वे सब नित्यानन्द में हैं, इनके अतिरिक्त कुछ अपूर्व रसों की माधुरी और है, जो सब वर्णन के परे है। फिर भी हृदय का आवेग रोक न सकने के कारण श्रीवृन्दावनदास ठाकुर ने उसका थोड़ा-सा आभासमात्र दिया है-

'निताइ नागर, रसेर सागर,
सकल रसेर गुरु।
जे जाहा चाय, तारे ताहा देय,
वांछाकल्पतरु।।
(निताइ) राधार समान कृष्णे करे मान,
सतत थाकये संगे।
बसि थाकि थाकि, उठये चमकि,
कृष्णकथा रसरंगे।।
बसि वाम पाशे, मृदु मृदु हासे,
प्राणनाथ बलि डाके।
राधार जेमन, मनेर वासना,
तेमति करिया थाके।।
सोनार केतकी, देखिते मूरति,
साधिते मनेर साधा।
दास वृन्दावन, करे निवेदन,
देखिते निताइ राधा।।

श्रीनिताइचाँद श्रीगौराङ्ग के मन की बात जानने वाले, उनके दर्द को समझने वाले, उनके सुख में सुखी, दु:ख में दु:खी, उनके भावों के भावुक, उनके रस के रसिक और वांछापूर्तिकारी हैं, अर्थात् श्रीगौराङ्ग का जब जैसा प्रयोजन होता है, निताइ उसकी पूर्ति करते हैं।

एक दिन बाबाजी महाशय प्रात:कृत्य पूरा कर किसी से बिना कुछ कहे अकेले बाहर चले जा रहे थे। यह देखकर गोविन्ददादा, अटलदादा, उद्धारण, फणी आदि कुछ लोग उनके साथ हो लिये। किस उद्देश्य से कहाँ जा रहे हैं, किसी से कुछ कहना-सुनना नहीं, बस चले जा रहे थे मस्ती में। चलते-चलते श्रीमाधवदास बाबाजी महाशय की भजनकुटी के आगे पहुँच कर उन्होंने अटलदादा से पूछा, 'अटल! माधवदासजी की कुटी यही है न?'

अटल०—जी हाँ।

सुनते ही आप सुपरिचित की भाँति कुटी में घुस गये। उस समय माधवदास जी 'अनङ्ग सम्पुट' पाठ कर रहे थे। इन्हें देखते ही वे इनके स्वागत में व्यस्त होने लगे, तो आपने मृदुभाव से हँसते हुए कहा, 'भाई, तुम पाठ करो। मैं तुम्हारा पाठ सुनने के लिए ही जल्दी-जल्दी आया हूँ।' आदेश पाकर माधवदासजी फिर से 'अनंग सम्पुट' पाठ करने लगे। बाबाजी महाशय कुटी के आगे बैठकर पाठ सुन रहे थे और अश्रुजल से सारा वक्षस्थल भीग रहा था। इधर राजर्षि बहादुर, श्रीरामहरिदास बाबाजी, श्रीहरिचरणदास बाबाजी, श्रीरसिकदास बाबाजी आदि महात्मा उन्हें खोजते-खोजते एक-एक कर श्रीमाधवदास बाबाजी की कुटी पर आ पहुँचे। श्रीमाधवदास बाबाजी थोड़ा-थोड़ा पाठ कर रहे थे और बाबाजी महाशय अति सरल भाषा में उसकी व्याख्या कर सबको सुना रहे थे। उस कुटीर पर मानो आनन्द का स्रोत फूट पड़ा। सभी विभोर हो कर कह रहे थे, 'अनंग सम्पुट तो हम प्राय: ही पाठ करते और सुनते रहते हैं, पर ऐसा आनन्द कभी नहीं आया, और न ऐसी मधुर व्याख्या ही कभी सुनी।' श्रीमाधवदास बाबाजी के हृदय में आनन्द समा नहीं रहा था। अपूर्व सम्मिलन! लगता था मानो चन्द्रमा का हाट लगा है। श्रीयुत रामहरिदास बाबाजी महाशय भावावेश में नृत्य करने लगते और बीच-बीच में बाबाजी महाशय का चिबुक पकड़कर भाव-गद्गद कण्ठ से 'आरे आमार सोनार चाँद रे!' कहकर आँसू बरसाने लगते। इस प्रकार बड़े आनन्द में बहुत समय बीत गया। श्रीमाधवदास बाबाजी महाशय ने पाठ बन्द किया। पर बाबाजी महाशय का आवेश भंग न हुआ; सिद्धान्त-व्याख्या चलती ही रही। इसी समय श्रीमाधवदास बाबाजी ने अटलदादा को एक रुपया देकर शीघ्र जलेबी लाने के लिए कहा। जलेबी आते ही श्रीमाधवदास बाबाजी ने गिरिधारी को भोग लगाकर सबके बीच में लाकर रख दी। पता नहीं उस समय सबके मन में क्या भाव उदय हुआ, महाप्रसाद को देखते ही सब बच्चों की तरह छीना-झपटी कर खाने लगे। केवल हरिचरणदास बाबाजी थोड़ा गम्भीर थे और हिचकिचा रहे थे। यह देखकर उदार स्वभाव बाबाजी महाशय ने खाते-खाते जलेबी का एक टुकड़ा उनके मुख में दे दिया। उन्होंने भी एक टुकड़ा लेकर बाबाजी महाशय के मुख में दे दिया। इस प्रकार आनन्द-सागर की उत्ताल तरङ्गों में जो भी आया, वह आनन्दमय हो गया। गुरु-गौरव और मर्यादा मानो प्राणों के भय से जाने किस पर्वत-गह्वर में जा छिपे। उपस्थित दर्शकजन सुमधुर आनन्दमय लीला-क्रीड़ा देख मुग्ध हो गये। बहुत समय इसी प्रकार परमानन्द में बीत गया। फिर समय अधिक हुआ जान सब विनोद-मन्दिर लौट गये।

एक दिन शाम को कोई चार बजे बाबाजी महाशय किसी से कुछ कहे-सुने बिना अकेले श्याम-कुण्ड की ओर जाने लगे। भाव एकदम गम्भीर; किसी से कुछ कहना सुनना नहीं। उन्हें अकेला जाते देख गोविन्ददादा और फणी उनके पीछे हो लिये। वे श्यामकुण्ड के आगे धर्मशाला के पास रास्ते में श्रीराधाकुण्ड के पूर्व की ओर स्थित कदम्ब के वन में जाने लगे। जाते-जाते अर्द्ध-स्फुट स्वर में न जाने क्या कह उठते। क्रमश: उस कदम्ब के वन के बीच एक निर्जन स्थान में काँटों के जंगल में जा बैठे। थोड़ी देर में श्रीरामहरिदास बाबाजी, श्रीहरिचरणदास बाबाजी, श्रीमाधवदास बाबाजी आदि उन्हें खोजते-खोजते वहाँ आ गये। देखा कि वे गम्भीर मुद्रा में भयानक कंटकाकीर्ण जंगल में जहाँ किसी का जाना संभव नहीं बैठे हैं। विस्मित होकर श्रीहरिचरणदास बाबाजी महाशय ने गोविन्ददादा से कहा, 'तुम लोग कैसे हो? ऐसे भयानक काँटों के जंगल में इन्हें क्यों बैठने दिया? और जगह नहीं मिली?'

गोविन्द—हमने नहीं, ये स्वयं आकर बैठ गये।

हरि—तुम लोग अच्छे स्थान की व्यवस्था करते, तो ये ऐसी जगह बैठते?

गोविन्द—हम लोगों में ऐसी सामर्थ्य कहाँ जो इनकी इच्छा के विरुद्ध कार्य कर सकें?

इस पर श्रीहरिचरणदासजी बाबाजी महाशय की ओर लक्ष्य कर बोले, 'पशु-पक्षी तक इस घोर जंगल में प्रवेश नहीं कर पाते, आप यहाँ कैसे आ गये?'

बाबाजी महाशय मृदुभाव से हँसते हुए बोले, 'मेरे पैर सख्त हैं, और मैं दिन में बड़ी सावधानी से देखभाल कर यहाँ आया हूँ। तिस पर भी तुम्हारे प्राणों को व्यथा पहुँची है। पर सोचो कि दिन-रात, समय-असमय, अँधेरे और उजियारे में कुसुम-सुकोमलाङ्गी प्राणेश्वरी राधा यहाँ कैसे आती-जाती हैं? आह! उस बात को सोचते ही हृदय फटने लगता है।' यह कहते-कहते उनका कण्ठ गद्गद हो गया, आँखें डबडबा आईं। फिर गद्गद कण्ठ से बोले, 'भाई, कातर भाव से योगमायादेवी से प्रार्थना करो कि वे वृन्दादेवी से इसकी कुछ व्यवस्था करने के लिए कहें, नहीं तो काम कैसे चलेगा?' अन्त में सभी के अनुरोध पर वे पास के एक कदम्ब के पेड़ के नीचे आकर बैठ गये। इसी समय कामिनीबाबू को साथ ले राजर्षि वहाँ आ पहुँचे और सभी को नियमानुसार दण्डवत् प्रणाम कर बोले, 'दादा! आप हम लोगों से कहे बिना इस जंगल में आकर छिप गये।'

बाबाजी—भाई, मेरी कुछ ऐसी ही आदत है।

हरि०—हम लोगों के साथ आँखमिचौनी नहीं चलेगी?

बाबाजी—नहीं भाई! आँखमिचौनी नहीं; चिर दिन के अभ्यास के कारण ही आ गया। तुम लोगों के साथ लुकाछिपी करूँगा, तो लीला में प्रवेश किन्हें लेकर करूँगा? तुम परम पण्डित हो, एक श्लोक तो सुनाओ।'

हरिचरणदास ने दीनता के साथ श्रीपाद रघुनाथदास गोस्वामी का 'तवैवास्मि तवैवास्मि न जीवामि त्वया बिना। इति विज्ञाय देवि त्वं नय मां चरणान्तिकम्।' श्लोक सुनाया। श्लोक सुन बाबाजी महाशय भाव-विभोर हो गये। अश्रुजल से वक्षस्थल भीग गया। सात्विक विकारों ने आकर एकसाथ उनके शरीर पर अधिकार कर लिया। वे कातर प्राण और गद्गद कण्ठ से प्राणेश्वरी से जाने क्या-क्या कहने लगे। उपस्थित लोग उनकी ऐसी अवस्था देख जाने कैसे हो गये। वे आविष्ट हो श्रीदास गोस्वामी के वैराग्य, उनकी बाहरी कठोरता, अन्तःकरण की सरलता और श्रीराधारानी के निकट विशुद्ध माधुर्यमयी सेवा-प्रार्थना की बात कह रहे थे और रक्तवर्ण अधखुले नेत्रों से अविरल अश्रु बहा रहे थे। इस प्रकार कुछ समय बीतने पर राजर्षि गद्गद कण्ठ से बोले, 'दादा, काफी समय हो रहा है, अब विनोद-मन्दिर नहीं चलेंगे?' उन्होंने भाव-विभोर हो कहा, 'चलो भाई, मेरा तो कुछ भी भजन-साधन नहीं हुआ; तुम्हारे संग-प्रभाव से यदि कुछ हो जाय तो ठीक'। ऐसा कह वे धीरे-धीरे चलने लगे। सब लोग साफ रास्ते से जा रहे थे, पर वे पूर्ववत् काँटों वाले रास्ते से ही जा रहे थे। साथियों को यह देख विशेष कष्ट हो रहा था। राजर्षि बोले- 'दादा! काँटों पर क्यों चल रहे हैं? इस ओर आइये न।'

बाबाजी—भाई, मुझे दिन में भी इतनी सावधानी से साधारण काँटे वाले रास्ते पर जाते देख तुम लोगों के प्राण रो उठे। एक बार प्राणेश्वरी की बात भी तो सोचो। वे आँधी, तूफान, सर्दी, गर्मी और अँधियारी रात में बराबर ही इस जंगल में गमनागमन करती हैं। तुम लोग उनके लिए रोकर अधीर क्यों नहीं होते?

रसिक०—हम लोग स्मरण में प्यारीजी को अच्छे रास्ते से न ले जाकर काँटेदार रास्ते से क्यों ले जायँ?

बाबाजी—ठीक है। तो हम लोग अपनी-अपनी बुद्धि-वृत्ति द्वारा जिस प्रकार लीला का गठन करेंगे, श्रीराधागोविन्द ठीक उसी प्रकार लीलादि करने को बाध्य होंगे, उसके अतिरिक्त वे कुछ और न कर पायँगे। करेंगे भी तो हमें वह ग्राह्य न होगा। है न यही बात?

रसिक०—पूरी तरह से न भी सही, पर बहुत कुछ बात यही है।

बाबाजी—तो उसे 'लीला-स्मरण' न कहकर 'लीला-गठन' कहना ठीक न होगा? क्योंकि स्मरण का अर्थ है पूर्व-आचरित विषय का अनुशीलन करना अथवा ज्यों का त्यों हृदय में अनुभव करना। नहीं तो लीला का नित्यत्व ही क्या रहा? मेरे अनुभव में श्रीकुण्ड-मिलन होता है मध्याह्न के समय; किसी दूसरे के अनुभव में होता है सन्ध्या-समय; किसी तीसरे के अनुभव में होता है रात को। तो बताओ, श्रीराधागोविन्द किसके अनुसार कार्य करेंगे?

रसिक०—नहीं, मेरा मतलब यह नहीं। वास्तव में नित्यलीला जिस तरह अनुष्ठित हुई है या हो रही है,

उसका उसी भाव से अनुशीलन करना ही स्मरण है। फिर भी किसी-किसी बात को लेकर हम लोगों के प्राणों को बड़ा आघात पहुँचता है, इसलिए उस विषय को हम लोग अन्य रूप में ग्रहण कर लेते हैं।

बाबाजी—पदकर्ता महाजन कहते हैं-, 'तपनक तापे, तपत भेल महीतल, बालुका दहन समाने। बड़इ मनोरथे, भाविनी चलु पथे, ताप तपन नहिं माने।' हम यदि आग जैसी उत्तप्त बालू पर नवनीत-कोमलाङ्गी श्रीमती को अभिसार के लिये नहीं ले जाते, तो ग्रीष्मकाल में श्रीकुण्ड-मिलन कैसे करायँगे? इसी तरह वर्षाऋतु की अँधेरी रात में, घनघोर वृष्टि के समय वज्र के समान मेघ-गर्जन के बीच, सर्पों से आच्छादित मार्ग पर, अभिसार के लिए कैसे ले जायँगे?

रसिक०—अच्छा, श्रीराधागोविन्द लीला जैसी शास्त्रादि में वर्णित है, उसके अतिरिक्त उसका और कोई रूप नहीं हो सकता?

बाबाजी—क्यों नहीं हो सकता? स्वाधीन लीलादि का सम्पूर्ण रूप से वर्णन करना किसी के लिए सम्भव नहीं। शास्त्रों ने दिग्दर्शन मात्र किया है। फिर भी प्रत्यक्ष अनुभव करने वाले पूर्व महाजनों के वचनों की अवहेलना करना ठीक नहीं लगता।

रसिक०—तब तो रागमार्ग का भजन भी विधि में आ गया।

बाबाजी—इसे विधि मार्ग नहीं कहते। अनुराग-विहीन प्राणों से नरकादि के दु:ख के भय से और स्वार्गादि के सुख की प्राप्ति की आशा से, शास्त्र-शासनानुयायी जो भगवद् भजन होता है, उसी को विधि कहते हैं। वैध भक्त शास्त्रयुक्ति के बाहर कोई कार्य नहीं कर सकता। रागमार्गावलम्बी साधक इसके बिलकुल विपरीत करता है, 'शास्त्र-युक्ति नाहि माने दृढ़ श्रद्धावान।' उसके लिए शास्त्रशासन अवश्य पालनीय नहीं। मोटी बात यह कि अनुरागयुक्त हृदय से लोभपरवश होकर जिस रास्ते पर चलना अपने भजन के अनुकूल होता है, निर्भीक साधक उसी रास्ते से चलना है। रागमार्ग-प्रकाशक शास्त्रकार लोग तो अपने हृदय के भावमात्र प्रकाशित करते हैं।

इस प्रकार इष्टगोष्ठी करते-करते सब लोग विनोद-मन्दिर जा पहुँचे। हरिचरणदास बाबाजी आदि आपके मुख से युक्तिपूर्ण सिद्धान्त सुनकर परमान्दित हुए।

इस प्रकार दिन बीतने लगे। एक दिन सबेरे करीब दस बजे वृन्दावन से प्रभुपाद रघुनन्दन गोस्वामी पधारे। उस समय बाबाजी महाशय श्रीरामहरिदास बाबाजी, श्रीमाधवदास बाबाजी आदि महात्माओं के साथ विनोद-मन्दिर के बगलवाले कमरे में बैठकर नाना प्रकार की भगवत् चर्चा कर रहे थे। प्रभुपाद वहाँ जाकर उग्रभाव से बाबाजी महाशय से बोले-, 'क्यों' तुम समस्त भजन-साधन को उड़ाकर एकमात्र कृपा को ही बलवान मानते और उसी तरह सबको उपदेश देते हो?'

बाबाजी—आपसे किसने कहा?

प्रभु०—वृन्दावन में इस बात को लेकर खूब समालोचना चल रही है, तभी सुनकर तुम्हारे साथ झगड़ा करने आया हूँ।

बाबाजी—अच्छा, आप थोड़ा स्थिर हों, धीरे-धीरे सब सुनियेगा।

प्रभुपाद थोड़ी देर दम लेकर बोले-, 'बोलो भाई, कृपा पहले या साधन?'

बाबाजी—आप लोग आचार्य हैं, सिद्धान्त तो आप ही निश्चित करेंगे; हम केवल अपने हृदय के सन्देह आपके चरणों में निवेदन करेंगे। आप बतायें, पहले कृपा या साधन?

प्रभु०—पहले साधन चाहिये। कृपा कोई पेड़ का फल या आकाश का जल तो नहीं; जिसे सर्वसाधारण इच्छानुसार प्राप्त कर ले।

बाबाजी—मेरे मन में एक सन्देह है। यदि साधन करने से ही कृपा प्राप्त हो, तो उनका मुँह जोहने की क्या आवश्यकता? मैं जैसा साधन करूँगा, वैसी वस्तु तो उन्हें देनी ही होगी; उसके लिये उनकी खुशामद क्यों करूँ? और ऐसी कृपा के लिये उन्हें कृपामय ही क्यों कहा जाय? इसी प्रकार की बात बाल्मीकि मुनि ने गंगा को लक्ष्यकर कही है, 'सुरधुनि मुनिकन्ये तारयेः पुन्यवन्तं, स तरति निजपुण्यैस्तत्र किन्ते महत्वम्। यदि

च गतिविहीनं तारयेः पापिनं मां, तदपि तव महत्वं तन्महत्वं, महत्वम्।' सच है, जिसका कोई नहीं है, या जिसका भजन-साधन कोई सम्बल नहीं, उस पर कृपा करें तभी तो कहा जा सकता है कि वे कृपामय हैं। आप लोग कहते हैं- पहले साधन, पीछे कृपा। मैं कहता हूँ- पहले कृपा, पीछे साधन। मैं साधन को उड़ाता नहीं। हम लोग कलिहत दुर्बल जीव हैं, अन्तःकरण की वृत्ति सर्वदा नाना प्रकार की आत्मसुख-कामना से परिपूर्ण रहती है, मन पद्म-पत्र पर स्थित जल-बिन्दु की तरह चंचल रहता है। अतः साधन द्वारा उन्हें प्राप्त करने की आशा ही निराधार है। हम लोग सदा ही सुख-लिप्सु हैं, अतः क्षणिक सुख की लालसा का परित्याग कर 'यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्' ऐसे सात्विक नित्य सुख की आशा करना हमारे लिए सम्भव नहीं; साधन-भजन की इच्छा, अथवा कठोर व्रतादि द्वारा भगवत्-साक्षात्कार लाभ की अभिलाषा भी मेरे विचार से कृपा के बिना नहीं हो सकती। अन्यान्य पंथों के उपासक भी साधन-भजन की बात करते हैं, वह थोड़ा-बहुत सम्भव हो सकता है; पर व्रजभाव उपासना तो कृपा के बिना किसी प्रकार सम्भव ही नहीं। मेरा तो यहाँ तक विश्वास है कि बिना कृपा के व्रज-भाव की उपासना जनसाधारण हृदय में धारण ही नहीं कर सकता।

प्रभु०—अच्छा, छह गोस्वामी और अन्यान्य गौरपरिकरगण स्वयं जिस कठोर साधन-भजन का आचरण कर जगत को शिक्षा दे गये हैं, वह सब क्या हमारे लिये आचरणीय नहीं है?

बाबाजी—जो नित्य परिकर हैं, उनका आचरण हमारे स्मरण का विषय है। नित्यसिद्ध परिकरगण कृपापरवश हो हम लोगों की शिक्षा के लिए जो आचरण कर गये हैं, उनकी उस अहैतुकी कृपा को आगे रख, उनके आचरित मार्ग का अनुसरण करना हमारा कर्तव्य है। मैं और ज्यादा क्या कहूँ? यदि कोई अन्तर्निविष्ट भाव से थोड़ा विचार करे, तो वह निश्चय ही समझ जायेगा कि कृपा के बिना हम कुछ नहीं कर सकते।

अब प्रभुपाद का हृदय द्रवित हुआ; आँखें डबडबा आईं। गद्गद कण्ठ से वे बोले; अब मैं समझ गया कि एकमात्र कृपा ही सर्वोपरि है। यदि निताई-गौराङ्ग कृपा कर हम लोगों को ब्रह्मादि के अगोचर निगूढ़ व्रजरस न समझाते, तो हम यह धन कहाँ पाते? यह साधन-सुलभ तो है नहीं। मैं जान गया कि बिना कृपा के युग-युगान्तर तक भजन-साधन करने पर भी व्रजप्राप्ति सम्भव नहीं है।

एक अन्य सज्जन बोले-'श्रीमन्महाप्रभु ने रामानन्द राय से कहा है' 'साध्य वस्तु साधन बिना केह नाहि पाय। कृपा करि कहो राय पाबार उपाय।' 'इसका क्या मतलब है?'

बाबाजी—साधन बिलकुल नहीं करना है, ऐसा तो मैं नहीं कहता। कृपा होने से ही साधन की बात हृदय में धारण की जा सकेगी। तभी महाप्रभु ने कहा है, 'कृपा करि कहो राय पाबार उपाय' अर्थात् पहले कृपा करो, तभी साधन वस्तु हृदय में जाग्रत होगी। फिर राय रामानन्द ने साधन के विषय में क्या कहा है, वह भी देखिये-

राधाकृष्ण लीला हय अति गूढ़तर।
दास्य वात्सल्यादि भावेर ना हय गोचर॥
तबे एक सखीगणेर इहा अधिकार।
सखी हइते हय एइ लीलार विस्तार॥
सखी बिना एइ लीला पुष्ट नाहि हय।
सखी लीला विस्तारिया सखी आस्वादय॥
सखी बिना एइ लीलाय अन्येर नाहिं गति।
सखी भावे जेइ ताँरे करे अनुगति॥
राधाकृष्णेर कुंजसेवा साध्य सेइ पाय।
सेइ साध्य पाइते आर नाहिक उपाय॥

साधक हो या सिद्ध सभी अवस्थाओं में साधन-भजन आवश्यक है; पर प्रत्येक अवस्था में चाहिये आनुगत्य। आनुगत्य चाहने का अर्थ जो अपने से आगे हैं, उनकी कृपा की अभिलाषा।

इस प्रकार प्रेमावेश में बाबाजी महाशय ने नाना प्रकार के तत्व-सिद्धान्तों की बात कही, जिसे सुन सभी ने परमानन्द प्राप्त किया।

एक दिन प्रातःकाल श्रीराधाकुण्ड के अद्वितीय पण्डित श्रीयुत नित्यानन्ददास बाबाजी महाशय के पास आये। उन्हें अटलदास के अलावा और कोई नहीं

पहचानता था। दूर से ही पण्डितजी को देख अटलदादा बोले, 'ये जो आ रहे हैं, एक अद्वितीय पण्डित हैं; श्रीजीवगोस्वामी के परिवार के, नाम है श्रीनित्यानन्ददास पण्डित।' यह सुनते ही बाबाजी महाशय ने उन्हें साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम कर विशेष आग्रह सम्मान के साथ आसन पर बिठाया। बैठते-बैठते वे बोले। 'क्यों रे चरणदास! सुना है तेरे शिष्य किसी को दण्डवत् प्रणाम नहीं करते, किसी के प्रति श्रद्धा-भक्ति नहीं रखते?'

बाबाजी-मैं तो इन लोगों का गुरु हूँ नहीं। ये सभी जगद्गुरु नित्यानन्द के कृपापात्र हैं। उन्हीं की प्रेरणा से ये नाम सुनाने के लिये मेरे पास रहते हैं। मैं भी इन लोगों का संग पाकर अपने को कृतार्थ समझता हूँ। अच्छा, इन सब ने तो अभी आपको दण्डवत् प्रणाम किया है?

पण्डितजी—हाँ, सो तो किया है।

बाबाजी—तो फिर सुनी हुई बात पर ध्यान देना आप जैसे महापुरुषों के लिये कहाँ तक ठीक है?

पण्डितजी बाबाजी महाशय की बात का कोई उत्तर न देकर बड़े उत्तेजित होकर बोले-'इस बेटा विश्वनाथ चक्रवर्ती की स्पर्धा देखो। वह त्रिभुवन-विजयी श्रीजीव गोस्वामी पाद के ऊपर कलम चलाता है। पूर्व महाजनों के पद-चिह्नों का अनुसरण करना ही परवर्ती लोगों का कर्तव्य है। पर वह तो जगद्गुरु की बात के ऊपर भी कलम चलाता है। मुझे उस पर क्रोध आता है। मेरा क्रोध कभी नहीं जा सकता।'

ऐसा कहते-कहते उनकी आँखें बड़ी और लाल हो गईं। मानो क्रोधावेश में वे डूब गये हों। उनकी अवस्था देखकर बाबाजी महाशय ने कुछ कहने का साहस न किया। कुछ देर बाद वे चले गये।

दूसरे दिन अपराह्न के समय बाबाजी महाशय श्रीयुत रामहरिदास बाबाजी, माधवदास बाबाजी, हरिचरणदास बाबाजी, वनमालीबाबू आदि कुछ व्यक्तियों के साथ श्रीराधाकुण्ड और श्यामकुण्ड के संगम-स्थल पर बैठे नाना प्रकार की लीला-कथाओं का आनन्द ले रहे थे। उसी समय पण्डित श्रीनित्यानन्द दास जी पहुँचे। सभी ने बड़े आदर के साथ उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया।

बाबाजी महाशय ने विशेष आग्रह के साथ उन्हें अपने पास बिठाया। वे पहले दिन की तरह फिर विश्वनाथ चक्रवर्ती महाशय पर नाना प्रकार के वाक्-वज्र चलाने लगे। सभी भयभीत बैठे रहे। बहुत देर बाद बाबाजी महाशय धीरे-धीरे बोले-'आप यदि अपराध ग्रहण न करें, तो मैं इस सम्बन्ध में कुछ निवेदन करूँ।'

पण्डितजी—हाँ, हाँ, स्वच्छन्द होकर कहो।

बाबाजी—देखिये, यदि श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती महाशय न आते, तो श्रीपाद जीवगोस्वामी को कोई पहचान भी न सकता। मैं कहता हूँ, श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती महाशय श्रीपाद जीवगोस्वामी के अवतार हैं, अथवा श्रीपाद जीवगोस्वामी ने श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती के शरीर में आविर्भूत होकर अपने मनोभाव सरल भाषा में सर्वसाधारण के आगे रखे हैं। श्रीजीव गोस्वामीपाद अपने मन की बात अपनी कलम से स्वयं निःसंकोच हो प्रकट न कर सके। तभी उन्होंने उसे विश्वनाथ चक्रवर्ती महाशय द्वारा उसे प्रकट किया। मेरा विश्वास है, यदि विशुद्ध भाव से श्रीजीव गोस्वामीपाद को कोई प्रेम करता है, तो एकमात्र चक्रवर्ती महाशय। आप यदि श्रीजीव गोस्वामी से प्रेम करते हैं, तो पहले विश्वनाथ चक्रवर्ती से प्रेम करना या उनके प्रति भक्ति-भाव रखना उचित होगा। जो विश्वनाथ चक्रवर्ती के प्रति द्वेष रखता है, वह श्रीजीव गोस्वामी पाद का कृपा-पात्र कभी हो सकता है, यह बात मेरी समझ में नहीं आती; मैं और क्या कहूँ? आप सुपण्डित हैं, थोड़ी गहराई से विचार कर देखिए। श्रीमद्भागवतादि ग्रन्थों की टीकाओं में गोस्वामीपाद और चक्रवर्ती महाशय के सिद्धान्तों में कोई अन्तर नहीं। पर हृदय का द्वेषभाव त्याग किये बिना उनका मर्मार्थ समझ में नहीं आ सकता। हिंसा, द्वेष, ईर्ष्या, असूया, लब्धपद-प्रतिष्ठा आदि असत्ग्रहगण जब तक मानव के हृदय में रहते हैं, तब तक उसमें प्रकृत तत्व अथवा लीला की स्फूर्ति नहीं हो सकती।

बाबाजी महाशय आविष्ट भाव से बहुत देर तक नाना प्रकार की बातें कहते रहे। पण्डितजी भी एकाग्र चित्त से उनके अमृत-मधुर, दैन्यपरिपूर्ण वचनामृत का

पान करते रहे। जैसे ही उनकी बात समाप्त हुई पण्डितजी बोले, 'भाई, बहुत हो गया। आज तक मेरी इस गलत धारणा को कोई दूर न कर सका। राधारानी की कृपा से आज तुम्हारे साथ वार्तालाप कर मुझे पता चला कि मैंने चक्रवर्ती महाशय के निकट अपराध किया है। वास्तव में मैंने ईर्ष्यावश महत् पुरुष की मर्यादा का लंघन किया। जो भी हो, तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि तुम दीर्घ जीवन प्राप्त कर प्रकृत सुसिद्धान्त द्वारा जगत का अभाव दूर करो। तुमसे एक और भीख माँगनी है।'

बाबाजी महाशय हाथ जोड़कर बोले, 'बाबा, मैं तो आपका दास हूँ। कृपा कर आदेश दीजिए, मैं उसी से अपने को कृतार्थ समझूँगा।'

पण्डितजी—कल तुम सबको मेरी कुटी पर श्रीगिरधारी का प्रसाद सेवन करना होगा।

बाबाजी—यह तो मेरे लिए बड़े सौभाग्य की बात है। जब तब जाकर अधरामृत पा लेने में ही तो हमारा कल्याण है।

पण्डितजी के चले जाने के बाद श्रीमाधवदास ने बाबाजी महाशय से कहा, 'भाई'! तुम बड़े चतुर हो! जिसके आगे चौरासी कोस के वैष्णव बात कहने का साहस नहीं करते और जिसके डर से सब अस्थिर रहते हैं, उसी इतने बड़े पण्डित को तुमने एकदम चुप कर दिया। पानी की तरह ठण्डा कर दिया। वृन्दावन में आकर खूब चमत्कार दिखा रहे हो, यह चमत्कार दिखाने की जगह नहीं है भाई।' बाबाजी महाशय हँसते-हँसते बोले, 'किसने कहा वृन्दावन चमत्कार की जगह नहीं? यदि कोई चमत्कार की जगह है, तो वह पूरी तरह से वृन्दावन ही है। अच्छा बताओ, राधाकृष्ण की कौन सी लीला में चमत्कार नहीं है? चोरी, डकैती, मिथ्या प्रवञ्चना, लम्पटता, शठता, चमत्कारिता आदि का आकर स्थान है वृन्दावन। चमत्कारिता दिखानी है तो यहीं दिखानी चाहिए।'

माधवदास बाबाजी ने परिहास करते हुए बाबाजी महाशय की पीठ पर हाथ रखते हुए कहा, 'भाई' सुना है तुमने बङ्गदेश में बहुत से पतितों का उद्धार कर उन्हें प्रेमदान किया है। इस बार हमने तुम्हें पकड़ लिया है, आसानी से नहीं छोड़ेंगे। हमारा भी उद्धार करना पड़ेगा।' बाबाजी महाशय ने हँसते-हँसते कहा, 'भाई' पतित मिलते तो पतित-पावन हो जाता, पर मिलें कहाँ। पतितों का पाना तो दूर, वृन्दावन में कोई प्राकृत जीव ही नहीं देख पा रहा हूँ।'

माधव०—क्यों, हम लोग ही तो कलिहत पतित जीव हैं।

बाबाजी—नहीं, नहीं। अप्राकृत नित्य चिन्मय वृन्दावन में क्या प्राकृत जीवों का वास हो सकता है? तुम लोग तो प्रेममयी की नित्य दासियाँ हो, उनके प्रेम में मुग्ध होकर तुमने व्रजवास प्राप्त किया है। तुम लोग ही कृपा कर राधारानी की दासियों में मेरी गणना कर मुझे वृन्दावनवासी बनाकर धन्य करो।

बाबाजी महाशय की बात सुनकर रसिकदास बाबाजी बोले, 'आपकी बात से एक शंका होती है। शास्त्र कहते हैं। कि वृन्दावन-लीला प्राकृत दृष्टि के अगोचर है अथवा प्राकृत जीव का वास यहाँ नहीं होता। आजकल हमलोग इस बात का कैसे विश्वास करें? देखते हैं कि एकदम असच्चरित्र, नास्तिक, पाखण्डी, अविश्वासी व्यक्ति आठ-दस रुपये खर्च कर रेल में बैठकर यहाँ आ जाता है; वृन्दावन वास करने लगता है। उसका वृन्दावन-लीला कथा की ओर कान लगना तो दूर वह जन्म से उसमें अविश्वास करता आया है। ऐसे लोगों को आप जीव कहेंगे, या राधारानी की दासियाँ?'

बाबाजी—देखो, ईश्वरतत्व और माधुर्य लीला-तत्व में बहुत भेद है। ईश्वरतत्व सार्वजनीन है; उसमें उपासक-अनुपासक का कोई भेद नहीं; पर लीलातत्व में उपासक-भेद के कारण लीला का संक्षेप, विस्तार या विकास होता है। शास्त्र कहते हैं। 'वृन्दावन के तरुलता, पशु-पक्षी सभी अप्राकृत हैं। सर्वदा षड्ऋतुएँ यहाँ वर्तमान हैं, चिन्तामणिमय भूमि है, कल्पतरुमय वन हैं, पर 'चर्मचक्षे देखे तारे प्रपञ्चेर सम।' चर्म चक्षुओं का अर्थ है अनुपासक के चक्षु। इसी प्रकार शास्त्रों में लीलातत्व के सम्बन्ध में जिन सिद्धान्तों का वर्णन है, वह उपासक के लिए हैं। जो लोग गोपी-भाव के उपासक हैं, वे वृन्दावन में एकमात्र परम-पुरुष

नन्दनन्दन गोविन्द को पुरुष मानकर बाकी सबको राधारानी की दासियाँ समझते हैं। पाखण्डी, ढोंगी, आस्तिक, नास्तिक-जो भी कोई वृन्दावन में आता है, वह उपासक के लिए राधारानी का परिकर होता है, क्योंकि कृष्ण-आकर्षण के बिना कोई वृन्दावन नहीं आ सकता और कृष्ण राधारानी के परिकर को छोड़ और किसी को आकर्षित नहीं करते। अत: कोई भी वृन्दावन में क्यों न आए, वह राधारानी का परिकर है। और कोई इस बात को मन में धारण करे या न करे, पर उपासकों के मन में यदि यह दृढ़ विश्वास नहीं रहता, तो यह उनकी उपासना के विरुद्ध पड़ता है।

इसी प्रकार कथा-वार्ता करते हुए सभी लोग विनोदजी के मन्दिर जा पहुँचे।

एक दिन बाबाजी महाशय अपराह्न के समय श्रीयुत रामहरिदास बाबाजी आदि कुछ महात्माओं को साथ लेकर कुसुम सरोवर गए। कुसुम सरोवर पर दाऊजी के मन्दिर के आगे जिस छतरी में श्यामदादा रहते थे, उसके पास पहुँचकर वे श्यामदादा से बोले, 'श्यामदास! बड़ी भूख लगी है, कुछ दे तो भाई!' यह सुनकर श्यामदादा बड़े परेशान; कैसे क्या करें? बाबाजी महाशय ने कहा, 'श्यामदास! इतना परेशान होने की क्या आवश्यकता है, तुम्हारे यहाँ जो सूखी रोटी का टुकड़ा है उसीसे काम चल जायेगा।'

श्याम०—मैं वनवासी हूँ, मेरे पास सूखी रोटी का टुकड़ा छोड़ और क्या हो सकता है?

यह कहकर वे सूखी रोटियों के सब टुकड़े और दाऊजी का एक प्रसादी लड्डू ले आये। देखते ही सब बच्चों की तरह छीना-झपटी कर खाने लगे। आनन्द का स्रोत बह चला। सभी विभोर हो गए। किसी को बाह्यज्ञान न रहा। मौका पाते ही श्यामदादा ने बाबाजी महाशय से पूछा 'मेरे साथ तो आपका कभी कोई परिचय नहीं हुआ, उस दिन मुझे देखते ही आपने मेरा नाम लेकर कैसे पुकारा?'

बाबाजी—भाई, तुम्हारे साथ क्या अबका परिचय है? हम लोग तो इस प्रकार बहुत समय से भ्रातृ-सम्बन्ध में आबद्ध हैं। स्नेह ही तो है आकर्षण की वस्तु। जगत् के प्रत्येक जीव अथवा वस्तु के साथ हम लोग इस स्नेह-पाश में बँधे रहते हैं, तभी तो इसे छोड़कर दूसरी ओर अर्थात् मुक्ति पथ पर जाने की हम लोगों की इच्छा नहीं होती। परमार्थ जगत् तक में हम लोग परस्पर ममता-पाश में बँधे रहकर यौथिक रूप से सेवादि करने की प्रार्थना करते रहते हैं।

श्याम०—पर हम लोग तो वह सब कुछ अनुभव नहीं कर पाते।

बाबाजी—प्राकृत राज्य की नाना प्रकार की गन्दगी से मन को थोड़ा ऊपर उठाने से ही वह स्थिरता प्राप्त हो जाती है, जिससे सभी इस बात का अनुभव करने लगते हैं। विचार कर देखो न! कभी-कभी किसी व्यक्ति को देखते ही यह लगता है कि इसे कहीं देखा है और यह न जाने कितना अपना है। जब कभी ऐसा हो, तभी समझना चाहिए कि पहले जन्म में निश्चय ही उसके साथ कोई न कोई सम्बन्ध था।

इस प्रकार रसालाप चलता रहा। सबने कुसुम सरोवर पर सभी स्थानों के दर्शन किए और फिर बड़े आनन्द के साथ सब विनोद-मन्दिर लौट आए।

एक दिन प्रात:काल बाबाजी महाशय ने प्रात:कृत्य और श्रीराधाकुण्ड-श्यामकुण्ड की परिक्रमा कर सीधे हरिचरणदास बाबाजी महाशय की भजन-कुटी के आगे पहुँचकर आवाज दी 'महात्मा'। उनकी आवाज पहचान कर फौरन ही हरिचरणदास बाबाजी कुटी के द्वार पर आए और उनका हाथ पकड़कर भीतर लिवा ले गए। बहुत देर तक नाना प्रकार की लीला-कथा, महाप्रभु की कृपा, दास गोस्वामी के वैराग्य आदि विषयों पर वार्तालाप कर उन्होंने कहा, 'भाई! तुम्हारा श्रीकुण्ड-वास, माधुकरी वृत्ति, तथा निष्किञ्चन भाव देखकर मैं बड़ा प्रसन्न हूँ, पर जैसे एक कलसी दूध को एक बूँद गोमूत्र बेकार कर देता है, वैसे ही तुम्हारा एक व्यवहार देखकर मेरा मन न जाने कैसा हो गया।' हरिचरणदास बाबाजी अत्यन्त व्याकुल होकर बोले-'दादा! मुझे तो पता नहीं क्या हुआ। कृपाकर बताइये और मेरी चित्त-शुद्धि कीजिए।'

बाबाजी—भाई, तुम पण्डित हो, तुमसे और ज्यादा क्या कहूँ? उस दिन तुम विनोदबाड़ी माधुकरी के लिए गये थे; वहाँ तुमने एक दोना दाल और एक दोना

तरकारी ली, यह देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। क्योंकि मधुकरी वृत्ति का नियम ऐसा नहीं है। मधुकर नित्य नूतन फूल से अत्यन्त सामान्य मात्रा में मधु लेकर अपनी उदर-पूर्ति करता है। उसी तरह हमें भी अपनी झोली और कर-पात्र में जितना प्रयोजन हो, अर्थात् जितने से जीवन-रक्षा हो, उतना ही लेना चाहिए। पर चौदह स्थान ऐसे हैं, जहाँ भिक्षा करने से भक्तिदेवी अन्तर्हित हो जाती हैं और भिक्षा करने वाले का पतन हो जाता है। वह स्थान है; जहाँ हम सुपरिचित हैं; जहाँ हमारा खूब सम्मान होता है; राजगृह; वेश्यागृह; हाट; बाजार; पटवारी का घर; याजक ब्राह्मण का घर, श्मशान पालक का घर; सूदखोर का घर; विश्वासघातक का घर; व्याध का घर; दत्तापहारी (भेंट को वापस लेने वाला) का घर तथा गुरुद्रोही का घर। कह सकते हो कि इन जगहों पर विनोदजी का महाप्रसाद मिलता है। ठीक है, पर विरक्ताश्रमी के प्रति महाप्रभु ने जो कहा है उसे याद रखना चाहिए-

प्रभु कहे आमि मनुष्य आश्रमे संन्यासी।
काय मनोवाक्ये व्यवहारे भय बासि॥
संन्यासीर अल्प छिद्र सर्व लोक गाय।
शुक्लवस्त्रे मसीबिन्दु जैछे ना लुकाय॥
राय कहे कत पापीर करियाछो अव्याहति।
ईश्वर सेवक तोमार भक्त गजपति॥
प्रभु कहे पूर्ण जैछे दुग्धेर कलस।
सुराबिन्दुपाते केह ना करे परश॥
जद्यपि प्रतापरुद्र सर्वगुणवान्।
ताहारे मलिन करे एक राज नाम॥'

(चै० च० मध्यखण्ड १२वाँ परिच्छेद)

और देखो भाई! तुम्हें तो देखते ही सेवक ने व्यस्ततापूर्वक दो दोनों में दाल-तरकारी तथा अन्यान्य वस्तुएँ लाकर दे दीं, पर क्या सभी मधुकरी करने वाले वैष्णवों के साथ ऐसा किया जाता है? शायद नहीं। तो देखो, वहाँ तुम विशेष परिचित हो, वहाँ तुम्हारा मान-सम्मान है, और फिर वह है राजगृह। यह विरक्त वैष्णव के लिए कितना गर्हित काम है।

इतना कह वे श्रीहरिचरणदास बाबाजी के हाथ पकड़ कर स्नेह पूर्ण कण्ठ से बोले, 'भाई' दुःख मत करना। तुम्हारे जैसे सुविज्ञ व्यक्ति की सामान्य-सी त्रुटि को भी लोग विशेष रूप से ग्रहण करते हैं। तुम्हें चिन्ता किस बात की? इस आसन पर बैठकर भजन करो; तुम्हें जिस किसी वस्तु की आवश्यकता होगी, प्रभु यहीं भेज देंगे। उनकी स्वयं प्रतिज्ञा है, 'जेइ जन भजे मोरे अनन्य हइया, तारे भिक्षा देइ मुँइ माथाय बहिया।'

इस तरह की बहुत सी कथावार्ता के बाद श्रीहरिचरणदास बाबाजी गद्गद कण्ठ से बोले, 'दादा! आप कृपा कीजिए, जिससे लाभ-पूजा-प्रतिष्ठा के चंगुल से बचकर निष्किंचन भाव से मैं व्रज में समय बिता सकूँ।'

बाबाजी—राधारानी से कहो, वे कृपामयी हैं। अपनी दासी समझकर जो ठीक समझेंगी करेंगी। चिन्ता किस बात की? तत्पश्चात् दोनों ही विनोद-मन्दिर चले गये।

श्यामदादा के सारे शरीर में खुजली हो गई थी, अतः वे सभी के साथ उठने-बैठने, खाने-पीने में संकोच करते थे और अलग ही अलग रहते थे। एक दिन मध्याह्न में सब लोग विनोद मन्दिर में प्रसाद पाने बैठे। श्यामदासजी कुछ दूर खड़े हुए थे। बाबाजी महाशय उन्हें देखते ही बोले, 'श्यामदास! वहाँ क्यों खड़े हो? पंगत में नहीं बैठे?' श्यामदास हाथ जोड़कर बोले, 'मेरे सारे शरीर में खुजली हो गई है, मैं सबके बीच बैठने लायक नहीं हूँ।' बाबाजी महाशय बोले, 'अरे, वह सब कुछ नहीं, मन का विकार मात्र है, आओ।' इतना कहकर उन्होंने उन्हें खींचकर अपनी बाईं ओर बिठा लिया। राजर्षि बोले-'क्यों! रोज हम लोगों को बहका देते हो, आज ताकतवर के हाथ पड़े हो। (बाबाजी महाशय से) देखिये दादा! श्यामदासजी हम लोगों से नहीं मिलते।' बाबाजी महाशय मृदु-भाव से हँसते हुए बोले-'भाई' तुम लोग हुए मधुर भाव के भावुक, तुम सबके भीतर यह अभिमान है कि हम राधारानी की दासियाँ हैं, और श्यामदास है सख्य भाव का भावुक, यह है पुरुषाभिमानी। यह तुम लोगों में कैसे मिल सकता है? यह मेरे साथ मिल-जुल सकता है।' इस पर माधवदासजी बोले, 'तो क्या तुम्हारा भी सख्यभाव है? तो हम लोगों का तुम्हारे साथ मिलना-जुलना नहीं होगा।'

बाबाजी—मेरी बात छोड़ दो; मैं तो तुम लोगों के सभी तत्वों में हूँ।

यह सुनकर सभी हँसने लगे। रसिकदास बाबाजी बोले, 'एक आदमी सभी तत्वों में रहेगा, तो क्या उसकी रस-निष्ठा रह सकेगी?'

बाबाजी—भाई, निष्ठा-विष्ठा मैं नहीं समझता। मैं श्रीनित्यानन्द का दास हूँ। मेरे निताइ जब जैसे होंगे, उनके दास को भी वैसा ही होना पड़ेगा। वृन्दावनदास ने कहा है-

नागर निताइ, नागरी निताइ,
निताइ कथा शे कय॥
राधार माधुरी, अनंगमञ्जरी,
निताइ नितू शे सेबे।
कोटि शशधर, वदन सुन्दर,
सखा सखी बलदेवे॥
निताइ सुन्दरे, जोगपीठे धरे,
रत्नसिंहासन सेजे।
बसन निताइ, भूषण निताइ,
बिलसे सखीर माझे॥

इस प्रकार वे नाना प्रकार की रस की बातें कहते रहे, महाप्रसाद-सेवा करते रहे और आनन्द बरसाते रहे।

एक दिन विनोद-मन्दिर में बैठकर सब लोग इष्टगोष्ठी कर रहे थे। उसी समय काञ्चन नामक एक व्रजवासी एक कापी लेकर बाबाजी महाशय के पास आया। उन्होंने पूछा, 'आप कौन हैं, भाई?'

काञ्चन—बाबा, मैं राधाकुण्ड कौ ब्रजबासी हूँ।

बाबाजी महाशय ने 'कृपा कीजिये' कहकर उसे प्रणाम किया और कहा, 'मुझसे कुछ कहना चाहते हैं?'

काञ्चन—बोलबे कूँ और कहा है? मैं राधाकुण्ड कौ ब्रजबासी हूँ, जे ही मेरी बात है।

इस पर हरिचरणदास बाबाजी बोले, 'इसकी इच्छा है कि आप इस कापी में कोई एक नाम लिख दें।'

बाबाजी—उससे क्या होगा?

हरि०—होगा क्या? यह आपके राधाकुण्ड के व्रजवासी हुए, अतः आपके जो भी अनुगत भक्त लोग यहाँ आयँगे, यह उन सभी के तीर्थ गुरु होंगे। यही उद्देश्य है।

बाबाजी महाशय प्रसन्न हो बोले, 'आज से ये मेरे तीर्थ-गुरु हुए।'

हरि०—तो फिर इनकी कापी में अपना नाम लिख दीजिये।

बाबाजी—भाई, जो लिखना हो तुम लिख दो, मैं अपने हस्ताक्षर कर दूँगा।

हरिचरणदास बाबाजी ने जब सब लिख दिया, तो आपने हस्ताक्षर कर दिए और फणी को उन्हें दक्षिणा के तौर पर तीस रुपये देने का आदेश किया। फणी ने उन्हें तीस रुपये भेंट कर दिये।

एक दिन बाबाजी महाशय सुबह जल्दी उठकर प्रातःकृत्यादि से निवृत्त हो फिर बड़े गम्भीर भाव से जाकर लेट गये। साथियों में से किसी की हिम्मत नहीं जो उन्हें उठा सकें। इसी समय श्रीमाधवदास बाबाजी आकर बोले, 'दादा, अभी तक कैसे लेटे हैं। क्या शरीर अस्वस्थ है?' कोई उत्तर न पाकर वे चुपचाप पास जाकर बैठ गए। कुछ देर बाद वे बच्चे की तरह रोते-रोते माधवदास बाबाजी का गला पकड़ कर कहने लगे, 'भाई, मैं श्रीराधागोविन्द के दर्शन करने की इच्छा से श्रीवृन्दावन नहीं आया। मैं तो तुम जैसे कुछ अपने लोगों को देखने आया हूँ। मुझे तुम लोगों को देखकर कितना आनन्द होता है, मैं भाषा द्वारा व्यक्त नहीं कर सकता।' यह सच है कि श्रीराधाकुण्ड वास के समय महीने भर तक बाबाजी महाशय ने जिस आनन्द का उपभोग किया और कराया, उसके शतांश के शतांश को भी यहाँ व्यक्त नहीं किया जा सका है। यह वे सुकृतिवान लोग ही जानते हैं, जिन्होंने उस लीला का किंचित् मात्र भी अनुभव किया है।

श्रीधामपुरी प्रत्यावर्तन

श्रीराधाकुण्ड पर श्रीविनोदविहारीजी के मन्दिर में इसी प्रकार परमानन्द में कुछ दिन बीत गए। एक दिन मध्याह्न में बाबाजी महाशय विनोद-मन्दिर में

महाप्रसाद पाते-पाते साश्रुनयन गद्‌गद कंठ से सभी से श्रीधामपुरी जाने के लिये विदा लेने लगे। एकाएक ऐसी मर्मभेदी बात सुन सब बड़े दु:खी होकर कहने लगे, 'दादा! इतनी जल्दी हम लोगों को इतना दु:ख देना क्या ठीक है? हम तो आशा करते थे कि अधिक नहीं तो कम से कम एक महीने और हम आपके मधुर संग से वंचित न होंगे, पर आज एकाएक आपने विदाई की बात कहकर हमारे प्राणों पर जैसे वज्राघात कर दिया।' वनमाली बाबू बोले 'दादा! आप और जो कुछ भी कहेंगे, मैं उसका पालन करने के लिए बाध्य होऊँगा; पर आपका यह आदेश मैं नहीं सुनूँगा। इस समय जाना किसी तरह नहीं हो सकेगा। मेरी यह विनीत प्रार्थना है कि और कुछ दिन यहाँ रहकर विनोद-विनोदिनी को सुखी रखें और हम लोगों को भी आनन्द प्रदान करें।'

बाबाजी—भाई! पता नहीं मेरी यह कैसी बान है, मैं बहुत दिन एक स्थान पर नहीं रह सकता। लगता है कि इस बार निताइचाँद और अधिक नहीं रखेंगे। पर चिन्ता क्या है भाई? यह दो दिन का माया-सम्बन्ध तो है नहीं। यह है परमार्थ-सम्बन्ध; यह जीवन-मरण में समान भाव से बना रहेगा। कितनी ही बार आऊँगा, पर आज वृन्दावन जाने दो।

राजर्षि और बाधा न दे सके। इच्छा न होते हुए भी कामिनीबाबू से बोले, 'कल साथियों सहित दादा के वृन्दावन जाने की व्यवस्था कर दो।' कामिनीबाबू राजर्षि की आज्ञानुसार कार्य करने लगे। सभी का अनुरोध था; अत: उस दिन वृन्दावन जाना नहीं हो सका।

दूसरे दिन सुबह जैसे ही जाने की तैयारी हुई, राजर्षि बोले 'कम से कम इस समय तो विनोदजी का महाप्रसाद पाकर जाइये।' विशेष कातर भाव से की गई प्रार्थना वे टाल न सके। उन्होंने स्नान-आह्निक आदि के पश्चात् यथासमय विनोदजी का महाप्रसाद ग्रहण कर दो बजे अति मधुर वचनों से सबसे विदा लेकर वृन्दावन के लिए प्रस्थान किया। आपका मधुमय संग न छोड़ सकने के कारण श्रीयुत रामहरिदास बाबाजी, हरिचरणदास बाबाजी, माधवदास बाबाजी, रसिकदास बाबाजी, वनमालीराय, कामिनीबाबू आदि महात्मा लोग नाना प्रकार का आलाप करते हुए मंत्रमुग्ध की तरह गोवर्द्धन तक आपके साथ चलते रहे। गिरिराज का दर्शन करते ही सबने साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया। बाबाजी महाशय ने वनमाली बाबू को आलिंगन कर साश्रु नयन गद्‌गद कण्ठ से कहा 'भाई वनमाली! इतने कातर क्यों होते हो? निताइचाँद ने चाहा तो यथाशीघ्र आऊँगा, चिन्ता न करो। तुमने इतने महात्माओं का संग पाया है, ऐसा अनेक लोगों के भाग्य में नहीं होता; अतएव योगमाया की कृपा से प्राप्त महात्माओं के साथ नित्यलीला का प्रकट रूप में अनुभव करते हुए विनोदजी की सेवा करो। बाह्य और आन्तरिक आचार-व्यवहार को एक करने की चेष्टा करो। संचारी भाव को स्थायी कर ऐसी चेष्टा करो जिससे वह स्थायी भाव स्वभाव में आ सके। उपासना-राज्य में साधक के भाव, स्वभाव और स्वरूप यही तीन प्रकार के शरीर हैं। इनमें यदि भाव और स्वभाव गठित हो जाते हैं, तो स्वरूप के लिए कोई बाधा नहीं रह जाती। शास्त्र कहते हैं 'स्वरूप-तोऽन्याकारेऽपि भावस्वभावयो: स्थायित्वे आशु कार्य-सिद्धि: स्यात्।' इस प्रकार नाना प्रकार के मृदुमधुर वचनों द्वारा सबको शान्त कर, सबसे विदा लेकर साथियों सहित वृन्दावन के लिए प्रस्थान किया। वे लोग बड़े दु:खी मन से श्रीराधाकुण्ड लौट आये। पर श्रीयुत-रामहरिदास बाबाजी और माधवदास बाबाजी वृन्दावन तक साथ गये।

दूसरे दिन पुरी जाने की तैयारी हो रही थी। उसी समय गणेशबाबू आदि कुछ लोग आकर कहने लगे, 'आज आपका जाना न होगा, क्योंकि प्रभुपाद मदनगोपाल गोस्वामी महाशय धामलाभ कर गये हैं। इसी के उपलक्ष्य में कल नये सीतानाथ से सात मंडलियों का कीर्तन निकलेगा; उसमें योगदान के बिना काम न चलेगा।' श्रीपाद मदनगोपाल प्रभु के अप्रकट होने की बात सुनकर आप बड़े मर्माहत हुए और बोले-'यह तो मेरा बड़ा सौभाग्य होगा। कल किस समय कीर्तन निकलेगा?'

गणेश—शायद साढ़े चार बजे, पर यहाँ से चार बजे चले बिना वहाँ ठीक समय पर नहीं पहुँच सकेंगे।

दूसरे दिन अपराह्न में प्रायः चार बजे श्रीयुत रामहरिदास बाबाजी, माधवदास बाबाजी, गणेश बाबू आदि बहुत लोगों के साथ बाबाजी महाशय नये सीतानाथ जा पहुँचे। उनके पहुँचते ही कीर्तन निकला। एक-एक कर छह कीर्तन मण्डलियाँ बाहर निकलीं, तब ये निशान और खुन्ती के साथ निकले।

दूसरी मंडलियाँ नाना प्रकार के सुर-ताल और लयों के साथ कीर्तन कर रही थीं, अतः चाहते हुए भी जनसाधारण उस कीर्तन में योगदान नहीं कर सकते थे। पर इनके कीर्तन में वह सब झंझट नहीं था। अतः इनके साथ बहुत लोग थे। आबाल-वृद्ध, युवक सभी प्राण खोलकर नाम कर रहे थे। लगता था मानो आनन्द का समुद्र उमड़ा पड़ रहा है। जैसे ही कीर्तन वनखण्डी के पास पहुँचा, श्रीगोपेश्वर प्रभुपाद आकर कीर्तन में योग देने लगे। बाबाजी महाशय ने अवधूत को देखते ही प्रेम गद्‌गद भाव से उन्हें आलिङ्गन किया। एक-दूसरे के स्पर्श से दोनों विभोर हो गये। दोनों के शरीर में एक साथ सात्विक विकार इस प्रकार प्रकट हुए कि देखकर सभी विस्मित हो गये। उनकी एक-एक हुँकार से मानो वृन्दावन की भूमि कम्पित होने लगी। नामकी ध्वनि तेज हो गई और उसकी गति क्रमशः बढ़ती गई। कीर्तन धीरे-धीरे अग्रसर होते-होते जैसे ही श्रीनिवास आचार्य प्रभु के कुञ्ज के पास पहुँचा, भावोच्छ्वास और भी बढ़ गया। किसी को भी बाह्य स्मृति न रही। सभी उन्मत्त की तरह उद्दण्ड नृत्य करने लगे। दूसरी कीर्तन मंडलियाँ भी आकर मिल गईं। एक अपूर्व आनन्द था। नृत्यकारी भक्तों के पैरों के भार से वृन्दावन- भूमि कम्पायमान हो गई; खोल-करताल, झाँझ और गगनभेदी नामध्वनि से दसों दिशाएँ गूँज उठीं। वृन्दावन के पशु-पक्षी और तरुलताएँ भी जैसे किसी नये भाव से विभावित हो गये। चारों ओर भीड़ ही भीड़ दीखने लगी। लोग आपस में कहने लगे, 'नगर कीर्तन तो हम लोग बारहों महीने देखते हैं, पर ऐसा आनन्द कभी अनुभव नहीं किया। हमारी तो धारणा ही नहीं थी कि नगर-कीर्तन में ऐसा आनन्द भी हो सकता है।' बहुत देर तक उद्दण्ड नृत्य-कीर्तन चलता रहा। वृन्दावन-परिक्रमा कर सबने नये सीतानाथ लौटकर कीर्तन समाप्त किया।

दूसरे दिन बाबाजी महाशय वृन्दावनवासी आबाल, वृद्ध, युवक, स्त्री, पुरुष यहाँ तक कि पशु-पक्षी, तरुलता तक से हाथ जोड़कर विनयभरे वाक्यों से अपने व्यवहार जनित दोष के लिए क्षमा-प्रार्थना करते हुए उन्हें दण्डवत् प्रणाम कर उनसे विदा लेकर सन्ध्या समय श्रीधाम पुरी के लिए रवाना हुए। यथासमय गाड़ी हावड़ा स्टेशन पहुँची। साथियों ने उतर कर पूछा कि कहाँ जाना है तो बाबाजी महाशय बोले, 'जब कल ही पुरी जाना है, तो शहर के भीतर जाने की आवश्यकता नहीं। आज इस पासवाली धर्मशाला में ही ठहरा जाय।' यह कहकर वे मारवाड़ियों की धर्मशाला में चले गये। साथी लोग ठाकुरजी के भोगराग की व्यवस्था करने लगे। आपने स्नान-आह्निक के बाद नामकीर्तन शुरू किया। प्रायः दो घण्टे तक 'जय-जय नित्यानन्द' कीर्तन हुआ। तत्पश्चात् महाप्रसाद पाकर सबने विश्राम किया। इधर एक व्यक्ति ने कलूटोला में कुञ्जबाबू के घर जाकर पुलिनदादा से कहा, 'आज सुबह बहुत लोगों के साथ बाबाजी महाशय को हावड़ा स्टेशन पर उतरते हुए देखा है।'

पुलिन—किधर गये, बता सकते हो?

भद्र—मारवाड़ी धर्मशाला की ओर जाते देखा था।

पुलिनदादा और कुछ कहे बिना हावड़ा स्टेशन चल पड़े। वे सबसे पहले मारवाड़ी धर्मशाला गये। देखा कि बाबाजी महाशय एक कमरे में सिर से पैर तक चादर ढके लेटे हैं। पुलिनदादा चुपचाप खड़े रहे। उसी समय बाबाजी महाशय मुँह पर से चादर हटाकर बोले, 'क्यों रे पुलिन! तू कब आया?'

पुलिन—कोई आधा घण्टा हुआ।

बाबाजी-तुझे किसने बताया कि मैं यहाँ आया हूँ?

पुलिन—जी, एक भद्र पुरुष ने आपको स्टेशन पर उतरते देखा था। यह तो उसे ठीक पता नहीं था कि आप कहाँ ठहरे हैं। आपने किसी को कोई सूचना नहीं दी; सीधे धर्मशाला आ गये। हम लोग क्या आपके कोई नहीं होते?

बाबाजी—नहीं रे पागल! मुझे कल सुबह की गाड़ी से पुरी जाना है, इसीलिये तुम लोगों को खबर नहीं दी और न शहर के भीतर ही गया।

पुलिन—यह सब नहीं होगा। माँ ने अनुरोध किया है कि एकबार घर आना पड़ेगा।

बाबाजी—कल मुझे पुरी जाना पड़ेगा। अच्छा, गाड़ी ले आ, एकबार माँ से मिल आऊँ। (प्रेमदादा से) तुम लोग तैयार रहना, मैं जल्दी ही आऊँगा। देखना, कल पुरी जाने में कोई बाधा न आय।

प्रेम—आप हो आइये, सब ठीक हो जायेगा।

इसी बीच पुलिनदादा दो गाड़ियाँ ले आये, तो बाबाजी महाशय रामदादा, फणी, राधाविनोद आदि कुछ लोगों को साथ लेकर कलूटोला चले गये। वहाँ पहुँचने पर सभी के साथ भगवत्प्रसंग चलने लगा। एक शिक्षित बाबू ने प्रश्न किया, 'आजकल वृन्दावन का स्वास्थ्य कैसा है?'

बाबाजी—भाई, वृन्दावन अप्राकृत चिन्मय भूमि है; वहाँ सदा ही षड़ऋतु वर्तमान है; अतएव वह जगह कभी भी अस्वास्थ्यकर नहीं हो सकती; प्राकृत चक्षुओं से जो कुछ देखने में आता है वह है अधिकारी भेद के कारण।

बाबू—स्थान तो सभी एकसे हैं, उनमें प्राकृत-अप्राकृत का क्या भेद? यह बात मेरी समझ में नहीं आई। जिसे आप अप्राकृत कहते हैं, उसमें और अन्य स्थानों में क्या कोई वस्तुगत भेद है? अर्थात् अन्य स्थानों के और वृन्दावन के पेड़-पौधों, लतापताओं आदि के आकार-प्रकार रूप-गुण आदि में कोई भेद है क्या?

बाबाजी—है क्यों नहीं। देखने वालों की आँखों में भिन्नता होनी चाहिये और चित्त-वृत्तियों में भेद होना चाहिए। उदाहरण के लिये मान लो कि किसी दूकान से चावल-दाल खरीद कर रसोई बनाई। उसके आधे हिस्से में तुलसीदल डालकर उसे भगवान् को निवेदन कर दिया; वह हिस्सा चिन्मय हो गया। जो बचा वह रूप की दृष्टि से भिन्न नहीं, पर गुण की दृष्टि से भिन्न है। अनिवेदित अंश में स्पर्शदोष द्रव्यगुण वर्तमान रहा; और निवेदित अंश में अप्राकृत-चिन्मय भगवदधरामृत का संचार हो जाने से उसका हेय अंश दूर हो गया और रह गया केवल उपादेय अंश। इसी तरह दृष्टिगत भाव से चिन्मय धाम के वृक्षादि और प्राकृत वृक्षादि में आकारगत किसी प्रकार की भिन्नता नहीं, पर गुणगत पृथक्ता बहुत है।

बाबू—यह सार्वजनिक है या व्यक्तिगत?

बाबाजी—सार्वजनिक कैसे कह सकते हैं? क्योंकि शास्त्रकारों ने कहा है 'चिन्तामणिमय भूमि, कल्पवृक्ष वन। चर्मचक्षे देखे तारे प्रपञ्चेर सम।' अन्यत्र कहा गया है 'देखिया ना देखे जत अभक्तेर गण। उलूके ना देखे जैछे सूर्येर किरण।' अतएव धाम, महाप्रसाद, नाम, श्रीमूर्ति, वैष्णव, ब्राह्मण आदि में नित्य अप्राकृत चिन्मय बुद्धि स्थाई रखना ही साधकों का साधन है। यद्यपि आपने स्वाभाविक रूप से वृन्दावन के स्वास्थ्य की बात पूछी है, तथापि ऐसा स्वाभाविक भाव हृदय में लाने से मेरी उपासना में व्याघात आता है, इसीसे मैं आपकी बात का सन्तोषजनक उत्तर न दे सका, इसके लिये मन में दुःख न कीजियेगा।

इस प्रकार बातचीत में बहुत समय निकल गया। पुलिनदादा के घरवालों के अनुरोध पर उस दिन वहीं रहना पड़ा। दूसरे दिन वे यथासमय स्टेशन पर जाकर साथियों सहित श्रीधामपुरी की गाड़ी में बैठ गये। अगले दिन यथासमय गाड़ी पुरी स्टेशन पहुँची और सब लोग उतर कर नाम करते हुए झाँझपीटा मठ पहुँच गये।

विविध लीलाएँ

कितने ही दिन बाद फिर पुरी में आनन्दोत्सव होने लगा। बाबाजी महाशय सदा की भाँति तड़के ही स्नान आदि कर कीर्तन लेकर श्रीजगन्नाथ मन्दिर जाने लगे।

कुछ दिन बाद संकीर्तन का भार साथियों पर डाल वे बहुत सबेरे ही फणी को लेकर समुद्र तट पर जाने लगे। उनका भाव अत्यन्त गम्भीर होता। किसी से बातचीत न करते। चक्रतीर्थ के पास जाकर दक्षिण की ओर मुड़कर ऊपर देखते हुए प्रायः आध घण्टे तक अर्द्धस्फुट भाव से हाथ जोड़कर नाना प्रकार से स्तव-स्तुति करते। बालक फणी पीछे खड़ा सब देखता,

पर उसे कुछ कहने का साहस न होता। इस तरह कुछ दिन बीत गये। एक दिन शेष रात्रि में उठकर जब वे जाने को तैयार हुए, तो फणी भी पूर्ववत् साथ चलने लगा, पर वे उसे मना कर अकेले ही द्रुतगति से बाहर निकल गये। कोई दस बजे एक काले रंग की टेढ़ी लकुटी कन्धे पर रखे मठ में वापस आये और बड़े गम्भीर होकर ठाकुर-मन्दिर के बरामदे में बैठ गये। आँखें लाल और सजल थीं; चुपचाप बैठे थे। सभी साथी उपस्थित थे, पर किसी को कुछ पूछने का साहस नहीं हो रहा था। प्रायः आधा घण्टा बाद गद्‌गद कण्ठ से ललिता दासी को बुलाकर कहा 'देखो, इन अनन्तदेव को बड़ी सावधानी से रख दो; इनका वृत्तान्त बाद में कहूँगा। देखना, किसी प्रकार की असावधानी न हो।' ललितादासी ने आदेशानुसार लकुटी को लेकर ठाकुर-मन्दिर में रख दिया।

दूसरे दिन ठाकुरजी की मंगल-आरति के बाद वे लाठी लेकर समुद्र की ओर चल दिये। फणी साथ में। चक्रतीर्थ के पास पहुँचकर उन्होंने लकुटी को दायें कंधे पर रखा, फिर हाथ जोड़कर दक्षिण की ओर मुड़ ऊपर देखते हुए प्रायः पन्द्रह मिनट तक अस्फुट भाषा में न जाने क्या स्तव पढ़ा और उसे जोर से समुद्र में फेंक दिया। आश्चर्य! थोड़ी ही देर में लकुटी समुद्र तट पर जहाँ बाबाजी महाशय खड़े थे वहीं आ गई। वे उसे उठाकर बार-बार सिर से और हृदय से लगाने लगे। मौका देख फणी ने कहा, 'बाबा! ऐसे रंग की और ऐसे आकार की लकुटी मैंने कभी नहीं देखी, और आपने तो इसे सौ हाथ दूर फेंक दिया था, पर यह तुरन्त ही चेतन पदार्थ की भाँति आप के पास लौट आई। इसका भेद मेरी समझ में नहीं आया।' बाबाजी महाशय बोले, 'बेटा! यह क्या लकड़ी है? ये तो साक्षात् अनन्तदेव हैं। इन्हें कल निताइचाँद ने स्वयं ही एक वृद्ध ब्राह्मण के वेश में चक्रतीर्थ पर मुझे दिया था। ये सचेतन हैं। श्रद्धा-भक्ति के साथ इनकी सेवा करने से महाशक्ति प्राप्त होगी और अनायास लीला की स्फूर्ति होगी।' इस प्रकार बहुत सी बातें करते हुए वे मठ लौट आये।

इसी तरह कुछ दिन बीते। पौष संक्रान्ति के पहले दिन रात को उन्होंने ललितादासी को आदेश दिया कि दूसरे दिन सुबह अनन्तदेव का महाभिषेक होगा, सभी वस्तुएँ तैयार रहें। आदेशानुसार वे पंचगव्य, पंचामृत, तेल, हल्दी, कपूर, सुगन्धित जल, पंचतीर्थों का जल, गङ्गोदक आदि की व्यवस्था करने लगीं। सुबह होते ही बाबाजी महाशय नित्य नियम कर अनन्तदेव को लेकर स्नानवेदी पर बैठ गये। ललितादासी ने अभिषेक की सारी वस्तुएँ वेदी के पास लाकर रख दीं। उसी समय उन्होंने अपने हाथ से लकुटी रूपी अनन्तदेव की तेल-हल्दी से मालिश की, फिर पंचगव्य-पंचामृत आदि से स्नान कराया। ललितादासी अपनी सहचरियों को लेकर प्रसादी तेल-हल्दी बाबाजी महाशय के शरीर में मलने लगीं। मठ में कोई साधारण-सी घटना भी घटती तो वह बहुत जल्दी ही चारों ओर फैल जाती। आज भी वही हुआ। पड़ोसी स्त्री-पुरुष अभिषेक की बात सुनकर झटपट दौड़े चले आये। प्रसादी पंचामृत आदि द्वारा स्नान कराने के बाद बाबाजी महाशय के शरीर पर पानी डाला जाने लगा। कैसा अनोखा दृश्य! आपने लकुटी रूपी अनन्तदेव को सिर पर रख लिया है। उधर अविराम गति से पानी डाला जा रहा है। पहले तो साथी लोग ही पानी ला रहे थे, पर बाद में साहस पाकर पड़ोसिनें भी कूँए से पानी खींच-खींच कर लाने लगीं। एक सौ आठ कलसी की जगह न जाने कितनी कलसी पानी डाला गया।

यथासमय स्नान पूरा हुआ। बाबाजी महाशय ने आप ही अनन्तदेव का अंग-मार्जनादि कर दिया। ललितादासी ने उनका अंग-मार्जनादि कर दिया। तब सूखे डोर-कौपीन पहनकर उन्होंने अनन्तदेव को एक अलग कमरे में पधराया और साथियों को आदेश देकर उनकी पृथक् पूजादि की व्यवस्था कर दी।

एक दिन कोई साढ़े सात बजे श्रीयुत केदारनाथ दत्त भक्तिविनोद महाशय के पुत्र श्रीयुत विमला प्रसाद दत्त भक्तिसिद्धान्त सरस्वती महाशय मठ में पधारे। पता नहीं, इससे पहले उनका बाबाजी महाशय के साथ परिचय था या नहीं। उन्हें देखते ही बड़े आदर के

साथ उन्हें अपने सामने एक आसन पर बिठाकर उनसे नाना प्रकार की बातें करने लगे।

कुछ देर बाद विमला बाबू ने पूछा 'आपके इन शिष्यों में तरह-तरह के भाव, और वेश क्यों हैं?

बाबाजी—भाई; इनमें से मेरा शिष्य कोई नहीं। मैं स्वयं ही किसी का शिष्य नहीं हो पाया। सदा अभिमान अहंकार में मत्त हो लाभ-पूजा-प्रतिष्ठा की आशा से देश-विदेश घूमता रहा; मैं किसे शिष्य बनाऊँगा?

विमला०—क्यों? ये सभी तो अपना परिचय आपके शिष्यों के रूप में देते हैं।

बाबाजी—यह उनका बड़प्पन है। ये लोग हैं निताइदास; उन्हीं के आदेश से ये मुझे सेवा आदि की शिक्षा देने के लिए यहाँ रहते हैं। ये सब मेरे शिक्षा गुरु हैं।

विमला०—इनमें से कुछ सखीवेश में हैं; इन्होंने क्या आपके आदेश से यह वेश धारण किया है?

बाबाजी—नहीं भाई, मैं किसी को आदेश नहीं देता। उन्होंने स्वेच्छा से ही यह वेश धारण किया है।

विमला०—आप उन्हें मना क्यों नहीं करते?

बाबाजी—ये मेरी बात नहीं सुनते।

विमला०—आपकी बात ही नहीं सुनते, तो आप उन्हें भगा क्यों नहीं देते?

बाबाजी—देखिये, यह निताइ का संसार है। वे अपने दास-दासियों को रखेंगे; मैं भगाने वाला कौन? मैं उनके आचार-व्यवहार और भजन-साधन में ऐसा कोई दोष भी नहीं देखता, जिससे मैं उनकी अवज्ञा करूँ। वरन् मुझे तो ये लोग आदर्श ही लगते हैं। किसी समय इनके वेश को लेकर नाना प्रकार की समालोचना शुरू हुई थी। उस विषय में जब मैंने अपने गुरुदेव से पूछा तो उन्होंने कहा, 'निताइचाँद के संसार में किसी की अवज्ञा मत करना। सभी का आदर-सत्कार कर सकते हो, पर किसी को विदा करने का अधिकार तुम्हें नहीं। गोस्वामीपादों के शास्त्रों का गूढ़मर्म समझो, तो वह यह है कि भाव को स्थायी करने के लिए उसे स्वभाव में परिणत करना पड़ता है। स्वभाव में लाने के लिए शरीर पर तद्जातीय वेश-भूषादि धारण करना, वचनों में तद्जातीय वार्ता-व्यवहार और लीला-गुण-कीर्तनादि करना, मन में तद्भावानुयायी नित्य परिकरगणों के आनुगत्य में लीलादि का स्मरण, मनन, निदिध्यासन आदि करना आवश्यक है। यदि साधु-गुरु-वैष्णव की कृपा से किसी को वह सौभाग्य प्राप्त हुआ हो, तो उसे अपना आदर्श मानना।' गुरुदेव का ऐसा उपदेश पाकर मैं इन लोगों से किसी से कुछ कहने का साहस नहीं कर पाता।

विमला०—अच्छा, शास्त्रानुसार इस प्रकार के वेश की आवश्यकता सिद्ध कर सकते हैं? अथवा ये बता सकते हैं कि पूर्व महाजनों में से किसी ने इस प्रकार का वेश धारण किया था?

बाबाजी—भाई, मैं शास्त्र-सिद्धान्त आदि कुछ नहीं जानता; पर साधारण युक्ति के अनुसार देखता हूँ कि सभी शास्त्रों ने एक स्वर से वेश की आवश्यकता का वर्णन किया। दो-चार बातें आपको बताता हूँ। यज्ञोपवीत ब्राह्मणत्व का परिचायक या साधन में सहायक है। इसी तरह संन्यासी का त्रिपुण्ड, गेरुआ वस्त्र, दण्डी का त्रिदण्ड, शैव के रुद्राक्ष, विभूति और व्याघ्रचर्म, वैष्णवों के तिलक, तुलसी माला आदि क्या शास्त्र सम्मत नहीं हैं? क्या सधवा रमणी का शंख सिन्दूर स्वामी का स्मारक या उद्दीपक नहीं है अथवा स्वामी के अस्तित्व का द्योतक नहीं है? आप जो सखीभाव की बात कहते हैं, उसके विषय में मैं और क्या कहूँ? श्रीचैतन्यचरितामृत (मध्यम खण्ड, अष्टम परिच्छेद) में वर्णित श्रीराय-रामानन्द का संवाद पढ़ने से इसकी आवश्यकता अच्छी तरह समझ में आ जायेगी। उन्होंने स्पष्ट कहा है-

राधाकृष्ण-लीला एक अति गूढ़तर।
दास्य वात्सल्यादि भावेर ना हय गोचर॥
तबे एक सखीगणेर इहा अधिकार।
सखी हइते हय एइ लीलार विस्तार॥
सखी बिना एइ लीला पुष्ट नाहिं हय।
सखी लीला विस्तारिया सखी आस्वादय॥
सखी बिना एइ लीलाय अन्येर नाहि गति।
सखीभावे जेइ ताँरे करे अनुगति॥
राधाकृष्णेर कुञ्जसेवा साध्य सेइ पाय।
सेइ साध्य पाइते आर नाहिक उपाय॥

अन्यत्र-

सेइ गोपीभावामृते जार लोभ हय।
वेदधर्म त्यजि सेइ कृष्णके भजय॥
रागानुगा मार्गे ताँरे भजे जेइ जन।
सेइ जन पाय व्रजे व्रजेन्द्र-नन्दन॥

और दूसरे स्थान पर-

अतएव गोपीभाव करि अङ्गीकार।
रात्रि दिन चिन्ते राधाकृष्णेर विहार॥
सिद्धदेह चिन्ति करे ताँहाइ सेवन।
सखीभावे पाय राधाकृष्णेर चरण॥ आदि

श्रीनरोत्तम ठाकुर महाशय कहते हैं-

'सखीनां सङ्गिनीरूपामात्मानं वासनामयीम्।
आज्ञासेवापरां तत्तत् रूपालंकारभूषिताम्॥

सनत्कुमार तन्त्र में आता है-

आत्मानं चिन्तयेत्तत्र तासां मध्ये मनोरमाम्।
रूपयौवनसम्पन्नां किशोरीं प्रमदाकृतिम्॥'

इस प्रकार बहुत-से स्थानों पर सखीभाव को स्थायी कर राधा-कृष्ण लीला के ध्यान करने की बात कही है। फिर 'सेवा साधकरूपेण सिद्धरूपेण चात्र हि। तद्भावलिप्सुना कार्या व्रज-लोकानुसारतः॥' इत्यादि वाक्यों पर श्रीजीव गोस्वामीपाद की टीका है- साधकरूपेण यथावस्थित देहेन सिद्धरूपेण अन्तश्चिन्तिताभीष्टतत्सेवोपयोगिदेहेन।' विश्वनाथ चक्रवर्ती-'साधकरूपेणयथावस्थित देहेन। सिद्धरूपेण अन्तश्चिन्तिताभीष्टतत्साक्षात्सेवोपयोगिदेहेन। तद्भावः स्वप्रेष्ठकृष्णविषयकः स्वसमीहितकृष्णभजनाश्रयकश्च यो भाव उज्ज्वलाख्यस्तं लब्धुमिच्छता सेवा मनसैवोपस्थापितैः साक्षादप्युपस्थापितैश्च समुचितद्रव्यादिभिः परिचर्या कार्यां। अत्र प्रकारमाह- व्रज-लोकानुसारतः साधक-रूपेणानुगम्यमाना ये व्रजलोकाः श्रीरूप-गोस्वाम्यादयः ये च सिद्धरूपेणानुगम्यमाना व्रजलोकाः श्रीरूप-मञ्जर्यादयस्तदनुसारतः।' पूर्व महाजनों के इन वाक्यों के विपरीत कोई आचरण इन लोगों में देखने में आता है क्या?

विमला०—पूर्व-पूर्व महाजनों द्वारा अननुष्ठित, अन्तश्चिन्तित भाव योग्य देह को बाहर प्रकाश करना, यही विपरीत है।

बाबाजी—क्यों? इस प्रकार योग्य देहधारण कर तो बहुतों ने जगत् को शिक्षा दी है। नित्यानन्द प्रभु ने बलराम के आवेश में तद्योग्य वेषभूषा धारण कर जगत् को शिक्षा प्रदान की थी। उनके परिकर तो प्राय सभी सख्यभावाविष्ट हो गोपवेश धारण करते थे। दास गदाधर ने राधिका के भावावेश में गोपी वेश धारण कर नित्यानन्द प्रभु के साथ नाना प्रकार की लीलाएँ की थीं। अभिराम ठाकुर सख्यभावावेश में वंशी आदि धारण करते थे। लोचनानन्ददास ठाकुर, खण्डवासी नरहरि सरकार ठाकुर आदि कभी नदीया-नागरीवेश में गौर से मिलते और कभी व्रजगोपियों के वेश में बगल में गागरी लिए दूध-दही बेचने वालियों के भाव में गली-गली घूमते रहते। अच्छा मैं पूछता हूँ क्या ऐसा भी कहीं शास्त्रों में देखने में आया है कि भावयोग्य वेशभूषा बाहर धारण करने के लिए निषेध किया गया हो? क्या किसी ने कभी भाव को स्वभाव में परिणत करने की चेष्टा को असङ्गत समझा है?

इस प्रकार नाना प्रकार की तत्व-आलोचना के बाद विमलाबाबू चले गए।

एक दिन प्रातःकाल उठते ही पता नहीं बाबाजी महाशय के मन में क्या आई, वे अपने हाथ से केले के पेड़ के छिलके काटने लगे। एक व्यक्ति को श्रीजगन्नाथ का थोड़ा महाप्रसाद लाने के लिए भेज कर ललितादासी से बोले, 'देखो' मैं श्राद्ध करूँगा। तिल, तुलसी, फल, कुश आदि जिन-जिन वस्तुओं की आवश्यकता हो, उनकी व्यवस्था करो।' ललितादासी श्राद्ध की बात सुनकर विस्मित भाव से बोलीं-'श्राद्ध कैसा? मेरी समझ में नहीं आया। वर्णाश्रम छोड़ने के साथ-साथ क्या तदुचित क्रिया-कर्मादि का त्याग नहीं हो जाता?'

बाबाजी—त्याग बहुत तरह के होते हैं। गीता में कहा है 'न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः। यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते।'

ललिता—यह नित्यकर्मपरक वाक्य नहीं है क्या?

बाबाजी—जिन कर्मों में फल की बात आती है, उनकी गणना नित्यकर्मों में नहीं होती। जिस कर्म के आचरण में फल नहीं होता, जिसके न करने से पाप होता है, उसी कर्म को महापुरुष नित्यकर्म कहते हैं।

ललिता—अच्छा, भेक ग्रहण करने के बाद जब पूर्वाश्रम के माता-पिता अथवा आत्मीय स्वजनों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहता, यहाँ तक कि पूर्व गोत्र तक छूट जाता है और अच्युत गोत्र में गोत्री होकर भगवत्-पथ के पथिक रूप में पुनर्जन्म होता है, तो पूर्व गोत्र वाले माता-पिता आदि को पिण्ड-दान कैसे सम्भव है?

बाबाजी—सम्बन्ध दो प्रकार का है, मायिक और पारमार्थिक। पहला आश्रम वर्ण और देहगत होता है। इन तीनों में से एक के बदलने पर वह सम्बन्ध टूट जाता है। पर पारमार्थिक सम्बन्ध नित्य है, उसका कभी विनाश नहीं होता। माता-पिता के साथ जाति, कुल या आश्रमगत जो सम्बन्ध रहता है, वह संन्यास-ग्रहण करने के बाद खत्म हो जाता है, पर परमार्थ-सम्बन्ध नहीं टूटता। विशेषत: जितने दिन यह देह रहता है उतने दिन जीव पितृऋण, ऋषिऋण, देवऋण इन तीन प्रकार के ऋणों से घिरा रहता है। इस ऋण को चुकाने के लिए आदमी संसार (गृहस्थाश्रम) त्यागकर परमार्थ-धन का उपार्जन करने को आतुर हो उठता है। साधु, गुरु, वैष्णव की कृपा से और भगवान् के अनुग्रह से इस स्थूल शरीर द्वारा जो परमार्थ धन उपार्जित होता है, उसका एक अंश माता-पिता के लिए, एक ऋषियों के लिए, एक देवताओं के लिए, और बचा हुआ एक अंश अपना होता है। एक बात और सोचो, यदि किसी को कोई अच्छी वस्तु प्राप्त हो और वह उसे अपने प्रिय जनों को दिए बिना अपने उपयोग के लिए ही रख ले, तो क्या ठीक होगा?

ललिता—नहीं, उन्हें दिए बिना क्या सुख?

बाबाजी—तभी आज यह श्राद्ध या समर्पण कार्य करने की इच्छा हुई है।

ललितादासी ने और कुछ न कहकर खुशी-खुशी उनके आदेशानुसार सभी वस्तुएँ जुटा दीं और वे श्राद्ध करने बैठे। इधर श्रीजगन्नाथ का अन्न महाप्रसाद, दाल, तरकारी, आदि आ गए। उन्होंने ललितादासी को आदेश दिया, 'महाप्रसाद, दाल, तरकारी आदि सब मिला पिण्डों के रूप में तैयार कर एक बड़े थाल में रखो। मेरे प्रयोजन के अनुसार एक-एक कर देती रहना।' ललितादासी आदेशानुसार कार्य करने लगीं।

बाबाजी महाशय चुपचाप कितने ही पिण्ड देते रहे। फिर साथियों को एक-एक कर बुलाया और उनसे पूछा कि उनके वंश में जो लोग मर चुके हैं, उनके नाम और गोत्र क्या हैं। वे उन मृतकों के नाम-गोत्र उच्चारण कर महाप्रसाद के पिण्डों के साथ-साथ तरह-तरह के मीठे महाप्रसाद उन्हें समर्पित करते हुए हाथ जोड़कर साश्रुनयन और गद्गद कण्ठ से नाना प्रकार से प्रार्थना करने लगे। एक अपूर्व दृश्य! सभी साथी हाथ जोड़े खड़े हैं। सभी की आँखों से पानी बह रहा है। सभी मानो यह प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं कि बहुत-से बच्चे, बूढ़े, युवक, स्त्री, पुरुष महाप्रसाद ग्रहण कर, दिव्य तेज; पुञ्ज शरीर धारण कर, खुशी-खुशी सभी को आशीर्वाद दे अपनी-अपनी जगह चले जा रहे हैं। एकाएक बाबाजी महाशय ने उठकर जब उन्हें साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया, तो साथियों ने भी व्याकुल भाव से दण्डवत् प्रणाम किया। सारे महाप्रसाद को इकट्ठा कर सबसे पहले कुछ अभ्यागत वैष्णवों को परितृप्त भाव से खिलाया गया, जो बचा रहा उसका बाबाजी महाशय ने अपने सभी साथियों के साथ सेवन किया।

महापुरुषों की जितनी भी लीला-क्रीड़ाएँ हैं, सब अन्तरङ्ग भक्तों के साथ होती है। यह जगत् है शिक्षाभूमि; शिक्षाभूमि में प्रवेश पर परीक्षा अवश्यम्भावी है। बाबाजी महाशय ने श्राद्ध किया है, चारों ओर यही आन्दोलन चल पड़ा। एक दिन रामदादा, गोविन्ददादा, नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी, नगेनदादा आदि श्रीराधारमण कुञ्ज मठ में बैठे नाना प्रकार की बातचीत कर रहे थे। उनमें से एक ने कहा 'बाबाजी महाशय का कर्मकाण्ड की ओर इतना झुकाव क्यों है? कुछ समझ में नहीं आता।' दूसरे ने कहा 'पता नहीं, बीच-बीच में उन्हें क्या उचंग आ जाती है।' किसी और ने कहा 'कल जो श्राद्ध हुआ, उसका कुछ भी अर्थ समझ में नहीं आया। एक ओर तो वे कहते हैं कि व्रजधामगत पिता, माता, भाई, बहनों को श्राद्ध आदि सामान्य कार्यों के लिए स्थानच्युत कराना किसी प्रकार ठीक नहीं। दूसरी ओर आप स्वयं ही ऐसा आचरण करते हैं। इससे कितने लोगों को भ्रम हो जायेगा, उस भ्रम का निवारण कैसे होगा? भेक-

ग्रहण करने के बाद जब पूर्वाश्रम के साथ कोई सम्बन्ध ही नहीं रह जाता और सम्बन्ध रखना निषेध माना जाता है, तब ऐसा काम कैसे किया जा सकता है?' इस प्रकार बहुत कुछ समालोचना होने लगी। फिर बाहर की समालोचनाओं को लेकर उनके मन में न जाने कैसी एक अशान्ति सी पैदा हो गई। कोई वृन्दावन जाने की सोचने लगा, कोई नवद्वीप जाने की और कोई अन्यत्र चले जाने की।

इधर बाबाजी महाशय अत्यन्त गम्भीर हो झाँझपीटा मठ के आँगन में बैठे थे। एकाएक रामदादा और गोविन्द दादा वहाँ पहुँचे। उन्होंने गम्भीर स्वर से पुकारा 'राम'। उनके गम्भीर भाव को देख दोनों के मन में आतंक छा गया। किसी में साहस न हुआ कि आगे बढ़े। बाबाजी महाशय ने फिर कहा 'क्यों, तुम सब क्या समालोचना कर रहे थे? मैं नाना प्रकार की स्वतंत्रता बरतता हूँ; कर्मकाण्ड की ओर मेरा विशेष झुकाव है; मैंने श्राद्ध किया है, इसलिए मेरा पतन हो गया है; क्यों, यही बात है न? मेरा जब पतन हो गया, तब पतित जीव के साथ रहना तुम जैसे महात्माओं के लिए किसी तरह उचित नहीं; अतएव इसी मुहूर्त तुम लोग यहाँ से चले जाओ।' इतना कह थोड़ा क्रोधावेश दिखाते हुए साथियों से बोले 'देखो, इन लोगों के चले जाने के बाद यह जगह गोबर से अच्छी तरह लीप देना।' सभी नीरव–निस्तब्ध! रामदादा भयभीत हो काँपते हुए खड़े रहे। गोविन्ददादा ने साहस कर कुछ कहना चाहा, पर आपने बीच में ही रोककर कहा 'पाषंडियो! तुम लोगों का मुँह देखना ठीक नहीं। मैं चाहे जैसा सही, तुम लोगों ने तो एक दिन गुरु बुद्धि की थी। यदि मेरे किसी व्यवहार से तुम्हारे मन में कोई सन्देह पैदा हुआ था, तो अन्यत्र समालोचना न कर मुझसे क्यों नहीं कहा? तुम लोगों की तरह चंचल चित्तवाले व्यक्तिओं को साथ रखना ठीक नहीं। अभी तक खड़े हो? तुम्हें देखकर मुझे क्रोध आता है।' यह कहते हुए क्रोधावेश में पास रखा पीकदान उनकी ओर फेंका। दोनों डरके मारे भाग गये।

इनके कठोर शासन के कारण साथियों ने उस जगह को गोबर से लीप दिया, पर उनके दु:ख का छोर न रहा। उसी दिन रात को ट्रेन से रामदादा कलकत्ता चले गये। गोविन्ददादा रहे तो श्रीधाम में ही, पर बहुत डरे–डरे। बाबाजी महाशय के पास जाने का साहस न हुआ बलरामबाबू के घर जाकर रहने लगे। बलरामदादा और अन्यान्य गुरुभाइयों के नाना प्रकार के अनुरोध करने पर भी गोविन्ददादा ने अभिमान के कारण प्रसाद–सेवन नहीं किया। वे एक निर्जन कमरे में लेटे रहे। सन्ध्या होने को आई तो उनके सिर में भीषण यन्त्रणा शुरू हो गई। जब वेदना असह्य हो गई तो बलरामदादा ने जाकर बाबाजी महाशय से कहा। वे कातर भाव से बोले 'नासमझ बच्चे की तरह व्यवहार! हिताहित का कोई ज्ञान नहीं। मैंने तो उसके हित के लिए चेष्टा की और वह उल्टा समझा। जाओ, यहाँ लिवा लाओ।'

बलराम—उनकी उठने की भी सामर्थ्य नहीं। असह्य सिर–दर्द के मारे छटपटा रहे हैं और इधर से उधर करवटें बदल रहे हैं। आप एकबार कृपा कर चलिये; नहीं तो उनका कष्ट किसी तरह भी दूर नहीं होगा।

यह सुनकर आप और कुछ न बोले। बलराम दादा के साथ उनके घर पहुँचे। कमरे में पहुँचकर गोविन्ददादा की हालत देखकर साश्रुनयन और गद्गद कण्ठ से बोले 'क्यों गोविन्द! क्या हो गया?'

गोविन्ददादा निरुत्तर। बाबाजी महाशय ने उनके सिर पर बायाँ हाथ फेरते हुए कहा 'जा जाकर खा–पीले, बिना समझे अभिमान! मैंने तुम लोगों के भले के लिए ही कहा है।' गोविन्ददादा की आँखों में आँसू भर आये। वे ठीक बच्चे की तरह रोते–रोते उनके पैरों में गिर पड़े। उन्होंने उन्हें उठाकर आलिङ्गन किया और उनके मन में जो कुछ दु:ख–दर्द था उसे स्वयं ग्रहण कर उनका हृदय स्वच्छ और निर्मल कर दिया।

अनुभवी रामदादा को कलकत्ते पहुँचकर भी शान्ति नहीं। वे हर समय अपने को अपराधी अनुभव करते। किसी के साथ उठना–बैठना नहीं करते; मन ही मन हरिनाम जपते रहते और तरह–तरह के संकल्प–विकल्प करते रहते। इस तरह दो दिन बीत गये। तीसरे दिन पत्र लिखा, 'जय निताइ! अग्नि जैछे निज धाम, देखाइया अविराम, पतङ्गीरे आकर्षिया मारे। कृष्ण ऐछे निजगुण

देखाइया हरे मन, पाछे दुख-समुद्रेते डारे ॥ अपने बुद्धि-भ्रम के कारण हो या संग के प्रभाव से, मेरे हृदय में जो बातें उठी थीं, उनसे आप अपनी कृपाशक्ति के कारण पूरी तरह अवगत हैं; उनके बारे में लिखना बेकार है। हृदय में अनुचित अनधिकार चर्चा के रूप में जो पाप घुसा, उसके लिये आपके कृपा-दण्ड को स्वीकार करने में मैं असमर्थ रहा और इसीलिए डर कर आपसे बिना कहे कलकत्ते चला आया। पर यहाँ किसी तरह भी शान्ति नहीं पा रहा हूँ। अपराध करना हम लोगों का चिरस्वभाव है, पर यदि आप क्षमा न करेंगे, तो हमारी क्या गति होगी ? अपने कर्मों के फल से हम तरह-तरह की यंत्रणा भोगते हैं, उनके लिये मेरे मन में बिन्दुमात्र क्षोभ नहीं; पर मैंने आपके प्राणों को व्यथा पहुँचाई है, यह अनुताप किसी तरह दूर नहीं हो रहा है। इस बात को सोचकर हृदय हर समय धू-धू कर जलता रहता है। तीन दिनों में एक मुहूर्त के लिए भी शान्ति नहीं मिली। अब विचार कर देख लिया कि आपके सुशीतल चरणों के आश्रय को छोड़कर इस ज्वाला को शान्त करने का और कोई उपाय नहीं। आप प्रसन्न चित्त से कृपा कर आकर्षित नहीं करेंगे, तो मुझे स्वयं आपके पास आने का साहस न होगा। आपकी अभय-वाणी हृदय में अनुभव करके ही पुरी के लिये रवाना होऊँगा।'

पत्र को पाकर बाबाजी महाशय न जाने कैसे हो गये। आँसुओं से मुख और वक्षस्थल भीग गया। इतने अस्थिर हो गये कि बहुत चेष्टा करने पर भी जब पत्र न पढ़ सके, तो हार कर एक साथी से पत्र पढ़ने को कहा। साथी साश्रुनयन और गद्गद कण्ठ से पत्र पढ़ने लगे। पत्र सुनकर बाकी लोग भी रोते-रोते अधीर हो गए। सभी के मन में यह उत्कण्ठा जाग्रत हो गई कि यदि सम्भव हो तो इसी मुहूर्त रामदादा को बाबाजी महाशय से लाकर मिला दें। सभी की उत्कण्ठा के कारण हो अथवा गुरुदेव के आकर्षण के कारण, सातवें दिन रामदादा पुरी आकर बलरामबाबू के घर पहुँचे। बलरामबाबू ने उसी समय जाकर बाबाजी महाशय को खबर की। उन्होंने उन्हें अविलम्ब मठ में लाने की आज्ञा दी। आज्ञा पाकर बलरामबाबू और कुछ और लोग जाकर रामदादा को मठ में ले आए। रामदादा ने मठ में प्रवेश कर बाबाजी महाशय को देखते ही साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। उन्होंने भी बछड़े से बिछुड़ी गाय की तरह दौड़कर उन्हें आलिङ्गन प्रदान किया और उनके हृदय का अभिमान, अनुताप, विरह-ज्वाला आदि सब कुछ दूर कर शान्ति-सुधा का संचार किया। अन्धकार के बाद प्रकाश, दुःख के बाद सुख, विरह के बाद मिलन बड़ा ही मधुर, बड़ा ही चित्ताकर्षक और आनन्दप्रद बन जाता है। आज यही हुआ। दोनों का अश्रु-जल दोनों को सींचने लगा। एक-दूसरे के स्पर्श से दोनों ही विभोर हो गये। कुछ देर बाद रामदादा थोड़ा धैर्य धारण कर साश्रुनयन और गद्गद कण्ठ से धीरे-धीरे कहने लगे 'यदि सामान्य अपराध या दोष ग्रहण कर भगा देने की ही इच्छा थी, तो प्रारम्भ में इतने सरल सीधे व्यक्ति की भाँति व्यवहार कर आकर्षित करने की क्या आवश्यकता थी ?'

बाबाजी—नहीं भाई! अपराध के लिये नहीं। मैंने अपने मन में कोई दुःख मानकर तुम लोगों पर शासन किया, ऐसी बात मन में लाना तुम्हारी गलती है। मेरे कहने का उद्देश्य तो यही था कि यदि किसी के किसी व्यवहार से किसी के मन में कोई सन्देह पैदा हो या दोष बुद्धि जाग्रत हो, तो उस व्यक्ति के आगे ही हृदय खोलकर बात करने से दोनों का मंगल होता है। तुम लोगों के मन में जो-जो सन्देह पैदा हुए थे, उन्हें लेकर आपस में चर्चा समीक्षा न कर यदि सीधे मेरे पास आते, तो मेरे मन की बात अच्छी तरह जान सकते थे। तुम लोगों के आगे प्रधान समस्या यही तो थी कि मैंने श्राद्ध किया और क्यों किया ?

राम—हाँ, यही थी।

बाबाजी—मुझसे पूछ लेते तो समझ जाते। अब समझ लो कि कर्मकाण्ड वाले श्राद्ध और इस श्राद्ध में कितना अन्तर है। कर्मकाण्डी श्राद्ध मन्त्र-आचारगत होता है; और यह श्राद्ध है भक्ति-विश्वासगत। केले के पेड़ के छिलके, और तिल-तुलसी देखकर ही तुम लोगों ने समझ लिया कि श्राद्ध है। असल में यह तो माता, पिता, भाई, बहन आदि धामान्तरगत अथवा देहान्तरगत व्यक्तियों को श्रीश्रीजगन्नाथदेव का महाप्रसाद समर्पण मात्र था। जितने दिन हम स्थूल शरीर में रहते

हैं, उतने दिनों तक हम देवताओं, पिता एवं ऋषियों के ऋणी बनकर रहते हैं। वे प्रार्थना करते हैं कि उनके वंश में एक व्यक्ति वैष्णव हो जाय, जिससे उनकी इच्छा पूरी हो जाय। वैष्णव लोग जो भी परमार्थ सम्पत्ति उपार्जित करते हैं, उसमें एक-एक अंश उन लोगों का भी होता है। इसीलिये महाप्रसाद, नाम आदि जो भी उपादेय अप्राकृत वस्तुएँ हमें प्राप्त हों, उनका कुछ भाग उनके निमित्त स्वेच्छा से सप्रेम समर्पित करना चाहिये। परमार्थ राज्य की बात तो दूर रही, प्राकृत संसार में भी यदि किसी को कोई अच्छी वस्तु प्राप्त होती है, तो क्या वह अपने आत्मीय-स्वजनों को दिये बिना अकेले ही उसका उपभोग कर लेता है? यदि वह भूल से भी उस वस्तु का अकेले उपभोग कर लेता है, तो क्या लोग अकृतज्ञ समझकर उससे घृणा नहीं करने लगते? तभी तो कहता हूँ कि अवश्य कर्तव्य कर्मों की अवहेलना करने से भक्ति की हानि होती है। इस तरह नाना प्रकार के उपदेश-वाक्यों द्वारा आपने सबका सन्देह दूर किया।

दूसरी बार श्रीधाम वृन्दावन-यात्रा

एक दिन श्रीधाम वृन्दावन से वनमाली राय बहादुर ने पत्र लिखा, 'दादा! श्रीधाम से आपके चले जाने के बाद हम लोगों के मन बड़े दु:खी हो गए हैं। श्रीहरिचरणदास बाबाजी, श्रीमाधवदास बाबाजी आदि आपके विरह में बड़े ही कातर हो गए हैं। हमारा मन हर समय आपके लिये उत्कंठित रहता है। हम किसी लीला अथवा सेवा-कार्य में मन नहीं लगा पा रहे हैं। आप कृपाकर यथाशीघ्र श्रीधाम चले आइये। मैं दो-तीन दिन के अन्दर खर्चे आदि के साथ आदमी भेज रहा हूँ। बीस-पच्चीस साथियों को लेकर जैसे भी हो, अवश्य आ जाइए।' आपने हँसते हुए वह पत्र सबको सुनाया।

ललितादासी बोलीं—क्या सचमुच ही अभी फिर वृन्दावन जाना होगा।

बाबाजी—वृन्दावनेश्वरी राधारानी जानें। मेरे चाहने से कुछ नहीं होता, किसी के रुपये भेजने से भी कुछ नहीं होता।

ललिता—फिर भी अपनी थोड़ी-बहुत स्वाधीन इच्छा तो है ही?

बाबाजी—वह स्वाधीन इच्छा भी भगवान् की इच्छा के अधीन है, यह हमेशा याद रखना चाहिए। मेरी स्वाधीन इच्छा से सब काम हो रहा है, पर जैसे ही मैं सोचता हूँ कि मैंने अपनी बुद्धि या विद्या-कौशल के कार्य पूरा किया या कर रहा हूँ, वैसे ही मानो भगवान् अपनी स्वयं की इच्छा को थोड़ा दूर सरका देते हैं, परिणाम यह होता है कि मेरी स्वाधीन इच्छा अकर्मण्य हो जाती है। तो बोलो- ऐसी मारफतदारी स्वाधीनता के बल पर मैं श्रीधाम जाने का संकल्प कर सकता हूँ? निताइचाँद चाहें ले जायँ, न चाहें न ले जायँ, मेरा क्या?

तीन-चार दिन बाद कोई नौ बजे नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी आ पहुँचे। उन्हें देखते ही बाबाजी महाशय बोले-'क्यों रे ब्रह्मचारी! इस समय कहाँ से?'

ब्रह्मचारी—श्रीधाम वृन्दावन से।

बाबाजी—क्यों, वृन्दावन छोड़कर यहाँ कैसे?

ब्रह्मचारी—मुझे खर्चा देकर वनमालीराय ने भेजा है। आपको साथियों सहित लिवा जाने के लिए आया हूँ।

बाबाजी—ठीक है। नवग्रह-पूजा करने की इच्छा थी, सो निताईचाँद ने पूरी कर दी।

ब्रह्मचारी—पर ये रुपये ग्रह-पूजा में खर्च कर देंगे, तो वृन्दावन जाने की व्यवस्था कैसे होगी?

बाबाजी—उसकी चिन्ता करने की तुम्हें आवश्यकता नहीं। कोई धनी भक्त वृन्दावन जाने को खर्च दे देगा, तभी वृन्दावन जाना होगा, नहीं और कोई उपाय नहीं, यही बात है तो राधारानी की कृपा की अपेक्षा क्यों की जाय? उस धनी भक्त की कृपा ही पर्याप्त है।

ब्रह्मचारीदादा और कुछ न कह सके। बाबाजी महाशय ने एक अच्छा ब्राह्मण बुलवा कर षोड़शोपचार से नवग्रह पूजा की समाग्री की तालिका तैयार करवाई और फिर सभी वस्तुओं की व्यवस्था की। पीठापाना

आदि जितनी तरह की मीठी चीजों का जगन्नाथजी को भोग लगाया जाता है, वह सब महाप्रसाद नवग्रह को समर्पित करने की दृष्टि से उन्होंने बलरामबाबू से कहकर उन सभी वस्तुओं के भोग की व्यवस्था करवाई। आश्रम में भी तरह-तरह के भोग-द्रव्यों को तैयार करवाया। प्रत्येक ग्रह की षोडशोपचार के अनुसार पूजा के लिए नाना वर्णों के वस्त्र, अलंकार, पुष्प आदि संग्रह किये जाने लगे। यथासमय ब्राह्मणों ने यथाविधि पूजा आरम्भ की। पूजा-स्थल को घेर कर खोल-करताल के साथ नाम करने का आदेश हुआ। सभी नाम करने लगे। आप बीच-बीच में ब्राह्मणों के पास जाकर उन्हें पूजा-क्रम आदि की बातें बता देते। ब्राह्मण लोग उनके मुख से पूजाक्रम और व्यवस्था आदि की बातें सुन विस्मय के साथ आपस में कहने लगे 'कैसा आश्चर्य है। हम लोग हमेशा यही काम करते हैं, फिर भी जब तक पूजा-पद्धति देख नहीं लेते, तब तक सभी बातें याद नहीं आतीं, पर ये सारी बातें अनायास ही बताये दे रहे हैं। ऐसे सभी प्रकार से शक्तिसम्पन्न महापुरुष हमने और नहीं देखे।' कोई कहता 'लगता है गृहस्थाश्रम में ये बड़े कर्मनिष्ठ थे।' कोई कहता 'अरे, ये लोग क्या पोथी पढ़कर यह सब कर्मकाण्ड मुखस्थ करते हैं। दुनियाँ की सभी चीजें ऐसे भजन-प्रभाव सिद्ध महापुरुषों के लिए हस्तामलकवत् होती हैं।' इस प्रकार अपनी-अपनी धारणा के अनुसार सब अनुमान लगाने लगे और अपना-अपना कार्य करने लगे। यथासमय पूजा शेष हुई। आरति आदि के बाद पण्डित-ब्राह्मणों को दक्षिणा दी गई। नाम शेषकर ब्राह्मणों की महाप्रसाद-सेवा की व्यवस्था की गई। ब्राह्मण-भोजन के बाद बाकी सबने महाप्रसाद पाकर विश्राम किया।

दिन पर दिन बीतने लगे। ब्रह्मचारीदादा रोज ही कहते 'वृन्दावन जाने का क्या हुआ, कौन सा दिन निश्चित किया?' आप उत्तर देते 'अरे पागल! राधारानी की इच्छा न होगी, तो मैं क्या करूँगा? अपनी इच्छा से कहीं वृन्दावन जाना होता है?' इसी तरह दस-बारह दिन बीत गये। ब्रह्मचारीदादा बड़े चिन्तित हुए। ये जायँगे कि नहीं, यह न समझ पाने के कारण वृन्दावन पत्र भी न लिख पाते; बीच-बीच में सोचते कि पैसा भी खर्च हो गया, जाना भी नहीं हुआ, पता नहीं वनमालीराय क्या सोचेंगे। इस प्रकार की बातें उनके मन में उठती रहतीं, पर खोलकर बाबाजी महाशय से कुछ पूछने का साहस न होता। आत्मानन्दी बाबाजी महाशय सदा आनन्द में मग्न रहते। उनका इस ओर ध्यान ही न जाता।

एक दिन सुबह उठकर ललितादासी से बोले- 'देखो, आज कुछ जल्दी ठाकुरजी के भोग की व्यवस्था कर दो।' उनकी इच्छानुसार दस बजे ठाकुरजी को भोग लगा दिया गया। वे महाप्रसाद पाकर जगन्नाथ-मन्दिर चले गये। साथ में फणी थे। मन्दिर में घुसते ही देखा कि प्रातः धूप के बाद दर्शन खुले हुए हैं। दर्शनोत्कण्ठा में व्यग्र हो जैसे ही वे जगन्नाथजी के पास पहुँचे, माधव पशुपालक ने श्रीजगन्नाथजी की प्रसादी माला लाकर उनके गले में डाल दी। उन्होंने हाथ जोड़कर साश्रुनयन और गद्गद कण्ठ से पता नहीं जगन्नाथजी से क्या कहा। थोड़ी देर बाद रत्नवेदी की परिक्रमा कर बाहर आ गये। मन्दिर के अन्दर स्थित सभी देव-देवियों की प्रणाम-वन्दना की। तत्पश्चात् लक्ष्मीदेवी के मन्दिर में गये। वहाँ के सेवक पुजारी ने लक्ष्मीदेवी के गले की माला लाकर उनके गले में पहना दी। उन्होंने प्रणाम किया। तत्पश्चात् श्रीमन्महाप्रभु के पादपद्म दर्शन किये और उनकी वन्दना की। अन्त में सिंहद्वार पर आकर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। अब फणी से बोले 'देख फणी! तू मठ जाकर ललितादासी से कह कि मैं आज ही वृन्दावन जाने के लिये स्टेशन पहुँच रहा हूँ। वे लोग यत्न पूर्वक ठाकुर-सेवा करें। मैं थोड़े ही दिनों में वापस आ जाऊँगा।'

फणी ने कहा—'आज ही इस तरह एकाएक श्रीधाम कैसे छोड़ेंगे? यदि जाना ही है, तो पहले मठ में चलिये। सबसे कह-सुनकर चले जाइये।'

'अरे, मैं क्या करूँ? मुझे यहीं से चले जाने के लिए जगन्नाथदेव का आदेश हुआ है। मैं चलता हूँ तू मठ जाकर यह संवाद दे दे।' इतना कह वे स्टेशन की ओर चल दिये। फणी ने मठ पहुँचकर उक्त सम्वाद दिया। सुनकर ललितादासी पहले तो मर्माहत हो थोड़ी

देर दु:खी मन से बैठी रहीं, फिर बाबाजी महाशय के व्यवहार की आवश्यक वस्तुएँ फणी के हाथों में देकर उन्होंने फणी को स्टेशन भेज दिया और उससे कहा कि बाबाजी महाशय की सेवा विशेष यत्न से करे।

बाबाजी महाशय स्टेशन गए हैं यह सुनकर ब्रह्मचारीदादा, गोविन्ददादा आदि सभी लोग स्टेशन चल पड़े। फणी और राधाविनोद बाबाजी महाशय के व्यवहार की सभी चीजें ले गए। पहले से ही बाबाजी महाशय ने ललितादासी आदि सखियों को आदेश दे रखा था कि वे शेष रात्रि में समुद्र-स्नान को जाने के अलावा मठ से बाहर और न जायँ। अत: उन्हें छोड़कर बाकी सब स्टेशन पहुँच गये। सभी कातर हो कहने लगे 'आपका विरह हमसे सहन नहीं हो सकेगा।' उन्होंने कहा 'जो लोग मेरे साथ वृन्दावन जाना चाहें, वे दोनों हाथ ऊपर कर एक ओर खड़े हो जायँ।' यह सुनते ही सब हाथ उठा-उठाकर एक ओर खड़े हो गये। एक व्यक्ति ने गिनकर कहा 'पचास लोग हैं।' तब बाबाजी महाशय ने ब्रह्मचारीदादा से आठ टिकट कटक के और बाकी कलकत्ते के लाने को कहा। वे बोले-मेरे पास करीब पचास रुपये ही हैं, बाकी नवग्रह-पूजा में खर्च हो गये। तब आप बोले-'अच्छा, जो हैं उनसे आठ कटक के और शेष कलकत्ते के ले आओ, जो कमी पड़ेगी वह बलराम देंगे।' ऐसा ही हुआ। टिकट खरीदने के बाद सब गाड़ी में बैठ गये। यथासमय कटक-स्टेशन आया। बाबाजी महाशय रामदादा से बोले, 'राम, तुम इन लोगों को लेकर कलकत्ता जाओ, मैं पाँच-छह दिन में आ रहा हूँ। योगेन मित्र आदि को मेरे वृन्दावन जाने की बात बताना।' यह कहकर वे ब्रह्मचारीदादा, गोविन्ददादा, सीताराम, राधा-विनोद, फणी, प्रेमदादा और उद्धारण को लेकर श्रीरासविहारी-मठ चले गये। कटकवासी लोग आज इस अप्रत्याशित रूप से बाबाजी महाशय को आया देख परमानन्द-सागर में डूब गये। उनके साथ छह-सात दिन परमानन्द में बिताकर वे कलकत्ते में मिर्जापुर-मठ पहुँच गये और एक साथी को श्रीधाम नवद्वीप भेजकर अपने शिक्षागुरु श्रीयुत गौरहरिदास महन्त महाराज को कलकत्ता बुला लिया।

छह-सात दिन बाद पुलिनदादा को बुलाकर उन्होंने कहा 'देखो पुलिन, साठ आदमियों के लिए गाड़ी हाथरस तक के लिए रिजर्व करा आओ। तीन जगह गाड़ी कटेगी-वैद्यनाथ, मुगलसराय और विन्ध्याचल।'

पुलिन—कब जायेंगे?

बाबाजी—कल ही जायँ तो अच्छा, नहीं तो परसों।

पुलिनदादा हावड़ा स्टेशन जाकर रिजर्वेशन के लिए दरखास्त दे आए। दूसरे दिन रुपया जमा करना था। उन्होंने आकर बताया, तो बाबाजी महाशय बोले 'अच्छा, कल रुपये ले जाना।' नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी आदि आपस में कहने लगे "आश्चर्य! एक पैसा भी हम लोगों के पास नहीं है, और स्वयं पैसा-कौड़ी स्पर्श तक नहीं करते, फिर भी कैसे प्रसन्नचित्त से पुलिनदादा से कह दिया 'कल रुपये ले जाना।' देखते हैं, निताइचाँद क्या लीला करते हैं।" किसी ने कहा 'हमने बहुत बार देखा है, जब आपको इच्छा होती है तब रुपया कहीं न कहीं से आ जाता है।" इस प्रकार अपने-अपने विश्वास के अनुसार सब बात करने लगे। वह दिन बीत गया। वृन्दावन जाने की बात सुनकर बहुत लोग आपके दर्शन को आने लगे। रात को कोई आठ बजे योगेन्द्र मित्र आये और रेल के किराये के लिए पाँच सौ रुपये दे गए।

दूसरे दिन पुलिनदादा वह रुपये स्टेशन पर जमा कर आए। बाबाजी महाशय की इच्छा होते ही रुपयों को आते देख सभी आश्चर्यचकित रह गए। अगले दिन वे साथियों के साथ हावड़ा स्टेशन जा पहुँचे। बहुत से लोग उनसे मिलने पहुँच गए। मधुर वाक्यों से सभी से विदा ले जैसे ही गाड़ी में बैठे, गाड़ी चल दी।

एक-एक दिन वैद्यनाथ मुगलसराय और विन्ध्याचल में रुकते हुए ये लोग यथासमय हाथरस पहुँचे। वहाँ ठाकुरजी के सामान्य-से भोग की व्यवस्था कर सब वृन्दावन वाली गाड़ी में बैठ गए। वृन्दावन वाली गाड़ी में चढ़ते ही बाबाजी महाशय की अवस्था अन्य प्रकार की हो गई। पता नहीं कैसे अन्यमनस्क-से बैठे रहे। सन्ध्या समय गाड़ी वृन्दावन पहुँची। श्रीयुत रामहरिदास बाबाजी, श्रीयुत माधवदास बाबाजी आदि

बहुत से वृन्दावनवासी महात्मा वैष्णव स्टेशन पर आपके पहुँचने की प्रतीक्षा कर रहे थे। जैसे ही गाड़ी रुकी दोनों ओर से 'राधे-राधे' की ध्वनि गूंज उठी। आपने गाड़ी से उतर कर सभी को साष्टाङ्ग दण्डवत् की। उसी समय श्रीयुत रामहरिदास बाबाजी ने उन्हें उठाकर आलिङ्गन किया। इसी प्रकार सभी के साथ प्रेमालिङ्गन, प्रीतिसम्भाषण, दण्डवत् प्रणाम आदि यथायोग्य व्यवहार कर वे गंगाजी के मन्दिर चले गए।

गंगाजी के मन्दिर में हरिकथा, कीर्तन और तत्वालोचना में आनन्द से दिन बीतने लगे। एक दिन श्रीयुत कामिनीकुमार घोष महाशय श्रीराधाकुण्ड से आए और बोले 'राजर्षि बहादुर ने आपको साथियों के साथ श्रीराधाकुण्ड लिवा ले जाने के लिए मुझे भेजा है।'

बाबाजी—अच्छा, कल चलेंगे।

दूसरे दिन यथासमय श्रीयुत रामहरिदास बाबाजी, श्रीधामपुरी के रामकृष्णदास बाबाजी, अपने गुरुदेव और कुछ वृद्ध वैष्णवों को गाड़ी से भेजकर बाबाजी महाशय बाकी लोगों के साथ नाम करते हुए पैदल रवाना हुए।

इधर आपके आने की बात सुनकर राजर्षि, हरिचरणदास बाबाजी, रसिकदास बाबाजी आदि कुछ लोग आपकी अगवानी के लिए चल पड़े। सबने एक दूसरे को देखते ही परस्पर नमस्कार प्रतिनमस्कार, दण्डवत् प्रणाम आदि किया। फिर नाम करते हुए सभी ने विनोद मन्दिर में प्रवेश किया और थोड़े विश्राम के बाद सब महाप्रसाद पाने बैठे। नाना प्रकार से इष्ट-गोष्ठी चल रही थी। उसी समय राजर्षि बोले 'दादा! मैंने आशा की थी कि आप ट्रेन से उतर कर सीधे विनोद-मन्दिर पधारेंगे, पर पता नहीं मेरे किस भाग्यदोष के कारण ऐसा नहीं हुआ। अब आज से कहीं और नहीं जायँगे।'

बाबाजी—नहीं भाई! इस बार मैंने कुसुम सरोवर पर थोड़ा एकान्त में रहने का निश्चय किया है।

वनमाली०—इससे हम लोगों के मन में बड़ा कष्ट होगा। यदि ऐसी ही इच्छा है तो एक दिन वहाँ जाकर इष्टगोष्ठी कर ली जायगी।

बाबाजी—नहीं भाई! इस बार कुसुम सरोवर छोड़कर और कहीं रहने की मेरी इच्छा ही नहीं हो रही है, क्या करूँ?

वनमाली०—ऐसा ही है, तो सभी को विनोदजी का प्रसाद पाना होगा।

बाबाजी—नहीं भाई, यह भी नहीं होगा। सिर्फ सात-आठ लोगों के लायक महाप्रसाद कुसुम सरोवर भेज दिया करना।

वनमाली०—और बाकी लोग क्या करेंगे?

बाबाजी—क्यों, श्रीवृन्दावन आए हैं; माधुकरी करेंगे। हम लोग आज ही वहाँ जायँगे।

वनमाली०—तो मुझे लगता है कि मैंने कोई अपराध किया है, अन्यथा ऐसी क्या बात कि एक दिन भी विनोद-मन्दिर में न रहें?

बाबाजी महाशय और कुछ न कह सके। वह रात विनोदबाड़ी में ही बिताई। दूसरे दिन सुबह नाम करते हुए कुसुम सरोवर को चल दिए। कुसुम सरोवर पहुँच कर आपने राधाविनोद, फणी, उद्धारण आदि कुछ लोगों को रोज गिरिराज-परिक्रमा करने का आदेश दिया। बाकी साथियों को आदेश दिया कि वे कुसुम सरोवर के चारों ओर झाड़ू लगायें और माधुकरी करें। यथासमय विनोद-मन्दिर से महाप्रसाद आ गया। श्रीयुत रामहरिदास बाबाजी, माधवदास बाबाजी, हरिचरणदास बाबाजी आदि कुछ महात्मा आप के साथ ही थे। विनोदजी का जो पुजारी महाप्रसाद लेकर आया था, उससे बाबाजी महाशय ने कहा 'देखो भाई, वनमाली से कहना कि अब और महाप्रसाद भेजने की आवश्यकता नहीं; यहाँ दाऊजी हैं, यदि कुछ भेजने की इच्छा हो, तो वह अमनिया (अनिवेदित) सामग्री भेजें। दाऊजी को भोग लगाकर हम सब प्रसाद पायँगे।'

इस प्रकार बड़े आनन्द से दिन बीतने लगे। एक दिन बाबाजी महाशय बहुत-से लोगों के साथ गोवर्धन के नीचे भ्रमण कर रहे थे। नाना प्रकार के भगवत्प्रसङ्ग चल रहे थे। इसी समय हरिचरणदास बाबाजी बोले 'दादा! महाप्रभु द्वारा प्रचारित इतने नामों के रहते हुए आप एक और नये नाम 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' का प्रचार क्यों कर रहे हैं?'

बाबाजी—भाई, नाम तो स्वप्रकाशित हैं; मेरे प्रचार करने का क्या प्रश्न? तुम पण्डित हो, तुमसे पूछता हूँ निताइ, गौर, राधेश्याम, हरे कृष्ण, हरे राम-इनमें कौन सा नाम नया है?

हरि०—नहीं दादा! मैं इस तरह नये नाम की बात नहीं कर रहा। मेरे कहने का उद्देश्य है कि 'श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द, हरे कृष्ण हरे राम श्रीराधे गोविन्द' और 'निताइ गौर राधे श्याम, हरे कृष्ण हरे राम' ये दोनों नाम एक ही हैं, पर पहले वाला नाम ही किया जा सकता है, फिर नये ढंग का एक और नाम तैयार करने की क्या जरूरत?

बाबाजी—इसे सामान्य भाव से तुम्हें समझाये देता हूँ। यह जो ग्वाल-बाल गोचारण कर रहे हैं, इन्हें बुलाओ तो।

हरिचरणदास बाबाजी महाशय के बुलाने पर ग्वाल-बाल आ गए। बाबाजी महाशय हरिचरणदास बाबाजी महाशय से बोले 'इन लोगों से श्रीकृष्णचैतन्य नाम बुलवाओ तो।' हरिचरणदास बाबाजी महाशय बच्चों से बोले 'अरे छोराओ! तुम लोग 'श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द' कहो तो। अच्छी तरह से लड्डू खिलायेंगे।' उन्होंने इस प्रकार जब तीन-चार बार कहा तो बच्चों में से किसी-किसी ने असम्बद्ध भाव से नामोच्चारण किया। तब बाबाजी महाशय मृदुभाव से हँसते हुए बोले 'अरे बालको, 'निताइ गौर राधे श्याम, हरे कृष्ण हरे राम।' बोलो तो।' दो बार कहलवाने के बाद ही बच्चे एक स्वर से गाने लग गए। दो-चार बार उच्चारण करने के बाद ही उनके मन में न जाने क्या भाव आया, वे यह नाम करते-करते नाना प्रकार की भाव-भङ्गियों के साथ नाचने लगे। देखकर सभी अवाक् रह गए। तब बाबाजी महाशय ने हरिचरणदास जी से कहा 'देखा, यह नाम स्वप्रकाशित है या नहीं? कलिराज के प्रभाव से जीवों की जिह्वा में जड़ता आ गई है। अतः पहले नित्यानन्द पदाश्रय लेकर नित्यानन्द-शक्ति प्राप्त करनी होती है। तभी किसी नाम के उच्चारण की शक्ति मिलती है। देश-काल-पात्र के अनुसार व्यवस्था न होने से लोग किसी वस्तु को ग्रहण कर सकते हैं?' हरिचरणदासजी विस्मित होकर बोले 'सचमुच आपकी कृपा से मेरा बहुत दिनों का भ्रम दूर हुआ।' इस प्रकार कथा-वार्ता के बाद सब लोग कुसुम सरोवर लौटे और महाप्रसाद पाकर विश्राम करने लगे।

एक दिन श्यामदादा बाबाजी महाशय से बोले 'देखिये, कुसुम सरोवर पर चोरों का बड़ा उत्पात है। आपके पास बहुत-सी चीजें हैं। व्रजवासी कभी-कभी दल बनाकर डकैती करते हैं। अतः वनमालीबाबू से कहकर दो बन्दूकधारी सिपाही बुला लें तो कैसा रहे? आज्ञा हो तो मैं व्यवस्था करूँ।'

बाबाजी—श्यामदास! कोई डर नहीं। जिस जगह साक्षात् दाऊजी विराजमान हैं, वहाँ भय कैसा? जितने दिन यहाँ रहो, निश्चिन्त रहो। समझ लो कि मैं पहरा दे रहा हूँ।

श्यामदादा ने और कुछ न कहा। उस दिन से रात को बाबाजी महाशय मन्दिर के बाहर एक खटोले पर सोने लगे।

एक दिन रात को प्रसादादि पाकर वे बाहर लेटे हुए थे। श्यामदादा उनकी चरण-सेवा कर रहे थे। रात को कोई बारह बजे श्यामदादा ने देखा कि बड़ी-बड़ी लाठियाँ लिए बहुत-से लोग बार-बार आ-जा रहे हैं। बाबाजी महाशय को थोड़ी नींद-सी आ गई थी। अतः श्यामदादा को उन्हें आवाज देने का साहस न हुआ। पर अन्दर वे भयभीत भी खूब होते रहे। एकाएक बाबाजी महाशय उठकर बैठे और बोले 'श्यामदास! इतना भयभीत क्यों होते हो?'

श्याम०—बहुत से लोग लाठियाँ हाथों में लिए आ-जा रहे थे; उन्हें देखकर मुझे बड़ा भय लगा।

बाबाजी—भय कैसा भाई! वह सब कुछ नहीं, तुम मेरी बगल में लेट जाओ।

कहकर वे श्यामदादा को पास लेकर लेट गए। कुछ देर बाद श्यामदादा ने देखा कि तरह-तरह के अस्त्र-शस्त्रों से युक्त कई दिव्य तेजःपुञ्जशाली व्यक्ति छतरी के आगे और बाबाजी महाशय को घेर कर पहरा दे रहे हैं। उस दिन से श्यामदादा निश्चिन्त हो गए।

वृन्दावन-आगमन के दो ही दिन बाद बाबाजी महाशय के गुरुदेव कालीबाबू के कुञ्ज चले गये थे।

एक दिन बाबाजी महाशय श्रीगुरुदेव के दर्शन करने कालीबाबू के कुञ्ज गए। उन्हें देखते ही श्रीयुत रामहरिदास बाबाजी महाशय आदि कुछ वैष्णव वहाँ आ पहुँचे। उन्हें यथायोग्य भाव से दण्डवत् प्रणाम कर और सबको अपने साथ ले श्रीगुरुदेव के दर्शन करने गए। देखा कि श्रीगुरुदेव अब भी भजन में बैठे हैं। इन्होंने सीधे जाकर उनके चरणों में साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया। गुरुदेव ने बिना कुछ कहे पास में रखी अपनी लाठी से इनकी पीठ पर जोर से तीन बार प्रहार किया। ये पूर्ववत् प्रफुल्लचित हाथ जोड़कर उनके सामने खड़े हो गए। साथी यह देखकर अवाक्! श्रीरामहरिदास बाबाजी महाशय इनके काकागुरु थे और इनके प्रति विशेष रूप से आकृष्ट थे; उन्होंने मन में कष्ट पाकर कहा 'दादा! यह क्या किया? जिसके आपने लाठी मारी, उसकी तो आज दुनियाँ पूजा करती है।'

गुरु०—यह कलका यादवा;* दुनियाँ इसकी पूजा करती है? आज तक बालक स्वभाव तो दूर हुआ नहीं, आदमी कब बनेगा? तुम लोग भले ही उसे महापुरुष सजाओ; पर मेरा लड़का है, मैंने हमेशा उस पर शासन किया है और करूँगा।

बलिहारी! कैसा विशुद्ध वात्सल्य भाव! वात्सल्य भाव स्नेह के पात्र को कभी महत्, वयस्क, गुणवान या बलवान देखना नहीं जानता। स्नेह-पात्र चिर दिन ही शिशु है; चिर दिन शासन का पात्र है। शास्त्रों में नन्द-यशोदा या शची-जगन्नाथ के जिस वात्सल्य की बात पढ़ने को मिलती है, आज उसका प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। मन में किसी भी प्रकार की ऐश्वर्य-गन्ध हो, तो विशुद्ध वात्सल्य भाव नहीं जागता। ताड़ना, भर्त्स्ना, ही वात्सल्य-रस का जीवन है। इसके बिना रस की परीक्षा कहाँ? बाबाजी महाशय ने फिर साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया, तो गुरुदेव ने उठाकर वक्ष से लगा लिया और मस्तक चूमकर कहा 'आज कई दिन हो गये। कोई खबर तक नहीं भेजी। जा, कोई चिन्ता नहीं, मैं अच्छी तरह हूँ।' आज्ञा पाकर वे श्रीरामहरिदास बाबाजी महाशय और अन्य वैष्णवों के साथ लौटने लगे। चलते-चलते बोले 'काका! देखा, मुझ अधम के प्रति गुरुदेव का कैसा विशुद्ध वात्सल्य है। कैसा अकृत्रिम स्नेह है। यह अहैतुकी कृपा ही मेरी एकमात्र सम्बल है। मेरा जो भी कुछ है, इस कृपा के ही प्रभाव से है।'

कुसुम सरोवर पर नित्य नयी भाव तरंगें उठने लगीं, नित्य नयी प्रेम-क्रीड़ाएँ होने लगीं। देखते-देखते नृसिंह चतुर्दशी आ पहुँची। सुबह उठते ही बाबाजी महाशय ने सभी को आदेश दिया 'आज नृसिंह चतुर्दशी व्रत है, बिना किसी बाधा के भक्ति-पथ पर अग्रसर होने के लिए सबको निर्जल उपवास कर अष्टप्रहर नामकीर्तन करना होगा। कल नाम करते-करते गिरिराज परिक्रमा दी जायगी।'

इतना कहकर उन्होंने स्वयं 'भज निताइ गौर राधे-श्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम।' नाम शुरू कर दिया। बड़े आनन्द से नाम चलने लगा। गगनभेदी नाम की ध्वनि से दसों दिशायें गूँजने लगीं। सभी लोग मानो बाह्य-स्मृतिहीन हो गये। सभी विभोर होकर नाम करने लगे; आँसुओं से उनके मुख और वक्ष भीगने लगे। परमानन्द में पूरा दिन और पूरी रात बीत गई, किसी को पता भी न चला। दूसरे दिन सुबह सब गिरिराज-परिक्रमा के लिए बाहर निकले। पहले से बहुत से लोगों ने सुन लिया था कि बाबाजी महाशय दलसहित नामकीर्तन करते हुए गिरिराज-परिक्रमा को निकलेंगे, अतः बहुत लोग आकर इकट्ठा हो गये। स्त्री-पुरुष सब मिलाकर कोई तीन सौ लोगों को लेकर बाबाजी महाशय परिक्रमा के लिये निकले। गिरिराज के पास पहुँचते ही उनकी अवस्था न जाने कैसी हो गई। वे आविष्ट भाव से गाने लगे-

एइ सेइ गिरिराज भकत प्रधान।
गोधन चरान जाँहा कृष्ण बलराम॥
झड़ वृष्टि वज्राघात बहि निज शिरे।
राखिलेन जिनि अकुण्ठित व्रजपुरे॥
जाँर गुप्त कुञ्ज माझे जुगल विलास।
सहचरीगण सङ्गे हास-परिहास॥

* गुरुदेव आपको इसी नाम से पुकारते थे।

इँहार तटेते कृष्णेर जत लीला खेला।
अन्य कुत्रापिओ तत नाहि प्रकाशिला॥
अद्यापिह गोचारण करे राम कानु।
आपन दुर्दैव दोषे देखा ना पाइनु॥
गिरिराज कृपा करो मो अधम जने।
नित्यलीला स्फूर्ति होउक तोमा दरशने॥
केनो बा आछये प्राण कि सुख लागिया।
गोविन्द विरहे केनो ना गेलो मरिया॥
ना शुनि मुरली, लीला ना करि दर्शने।
कि सुख आछये छार श्रवण नयने॥
पाषाणे कूटिबो माथा अनले पशिबो।
जमुनाय झाँप दिया पराण त्यजिबो॥

कहते-कहते व्याकुल भाव से जमीन पर लोट-पोट कर सिर धुनने लगे। किसकी शक्ति जो उन्हें पकड़े? वे रह-रहकर राधे-राधे कह बच्चे की तरह जोर-जोर से रो रहे थे। साथी बहुत प्रयत्न करने पर भी उन्हें स्थिर न कर सकने पर बड़े चिन्तित थे। बहुत कौशल और शुश्रूषा के फल-स्वरूप कोई डेढ़ घण्टा बाद अर्द्ध बाह्यदशा प्राप्त हुई। तब सबने उन्हें पकड़ कर उठाया। वे आविष्टावस्था में भाव गद्गद कण्ठ से नाम करते-करते उस स्थान से रवाना हुए और जैसे ही दान-घाटी पर पहुँचे, भावान्तर हो गया। इस बार विरह नहीं, दानलीला की स्फूर्ति हो आई। साथ ही साथ उन्होंने पद-पदावलि गाना शुरू कर दिया-

कोथा जाओ गोयालिनी कोथा तोमार घर।
किसेर पसरा दासी, माथार उपर॥
ओलाओ पसरा धनि देखि भालो मते।
आगे साधि निबो दान तबे दिबो जेते॥
दधि दुग्ध घृत घोले पसरा आमार।
के तूमि तोमार बोले ओलाबो पसार॥
घाटेर घाटियाल आमि महादानी।
आजि दान दिते होबे शुनो विनोदिनी॥
भरम लइया थाक ना कहिओ कथा।
उचित कहिले पाछे मने पाबे व्यथा॥
दानी कहे फिरि फिरि ना शुनये राइ।
बाहु पसारिया दानी राखिलो ताइ॥

जत आभरण गाय वेशभूषा आछे।
सब लेखा करि दान देहो मोर काछे॥
निति निति गतायात करो एइ ठाँइ।
ए पथे मदन राज कभू शुनो नाइ॥
कत भङ्गि कथा कहो भय नाहि बासो।
राज अनुगत जने हेरि पुन हासो॥
काहार गरबे जाओ दिया बाहु नाड़ा।
भूषण यौवन धन सब हबे हारा॥
वंशी कहये बूझि अराजक हइल।
पथे बाटयारी करो नहिबेक भालो॥

★ ★ ★ ★ ★

पथ छाड़ो ओहे कानाइ किबा रङ्ग कोरो।
जार बातास निते ना पाओ तारे करे धरो॥
एखनइ मरण हउक एइ छिलो कपाले।
वृषभानुसुता तनु छुँइबे राखाले॥
एके से तोमारे भालोबासे कंसासुर।
ए बोल शुनिले हइबे देश हइते दूर॥
के तोमाय करिलो दानी फेलो देखि पाटा।
तूमि से नूतन दानी आमरा नहि टूटा॥
थाकिवा खाइया जदि जमुनार पानि।
ना छुँइओ गोपिकार अङ्ग ना हइओ दानि॥

★ ★ ★ ★ ★

कल लहु लहु, जटिलार बहु, तोमारे सबाइ जाने।
कहिते कहिते, अनेक कहिछो, एतो ना गरब केने॥
पसरा लइया, जाइछो चलिया, दानीरे ना कर भय।
राज काज करि, दान साधि फिरि, हेथा किबा परिचय॥
ए रूप जौबने, नाना आभरणे, जाइछो मथुरार दिके।
बूझि दान निबो, तबे जेते दिबो, आमि डराइबो काके॥
अमूल्य रतन, करिया गोपन, रेखेछो हियार माझे।
निज भालो चाहो, खसाइया देहो, इथे कि आमार लाजे॥
एतो कहि हरि, दुबाहु पसारि, रहे पथ आगुलिया।
ज्ञानदास कय, ना करिहो भय, जाहो हाथ ठेला दिया॥

★ ★ ★ ★ ★

छि छि छुँइओ ना निलाज कानइ आमरा परेर नारी।
पर पुरुषेर पवन परशे सचले सिनान करि॥
गिरि गिया जदि गौरी आराधहो पान करो कनक धूमे।
काम सागरे कामना करह वेणी बदरिकाश्रमे॥

सूर्य उपरागे, सहस्र सुन्दरी द्विज करे करो साथ।
तबू हय नय, तोमार शकति, राइ अङ्गे दिते हाथ॥
गोविन्द दासेर, वचन मानह, ना करो एमन ढंग।
जोइ नागरी, ओ रसे आगरि, करह ताकर संग॥

★ ★ ★ ★ ★ ★

तोंहारि हृदय, वेणी बदरिकाश्रम, उन्नत कुचगिरि जोर।
सुन्दर वदन छबि, कनकधूम पिबि, ततइ तो पतजीऊ मोर॥
सुन्दरी तुँहुक नियड़ अब छोड़ि।
गौरी आराधने, काँहा चलि जायब, तुँहु तिरिथमयी गोरी॥
मृगमद बिन्दु सिन्दुर परशल, एहि सूरज ग्रह जान।
तूया पद नख, द्विज राजहिं सोंपलु, सुन्दरी सहस्र पराण॥
काम सागरे हाम, सहजेइ निमगन, कामपूरबी तँहु राइ।
श्यामेर बोलि, चरणे नाहि ठेलिब, गोविन्ददास मुख चाइ॥

★ ★ ★ ★ ★

तोरा केउ किछू बलिस् ना गो, घामियाछे,
चाँद मुखखानि।
दे दे पसरा आनि, जार लागि बिकिकिनी,
सेइ खाउक एइ क्षीर नवनी॥
एतो बलि महासुखे, तूले दिलो कृष्णमुखे,
सखि दिलो राधार वदने।
भोजन हइलो साय, आचमन कैलो ताय,
प्रसाद पाइलो जने जने।।
आर आमि फिरिया घरे, जाबोनारे एकेबारे,
अङ्गेर आभरण ने गो खूले।
साजाये दे श्याम दासी, जा आमि अभिलाषी,
रहि गेलाम एइ तरुतले॥
(तोमरा) घरे गिया एइ बोलो,
दानघाटे राइ विकालो,
जार राधा हइलो ताहार।
राधा नाम धरि जेनो, तिलाञ्जलि देय जेनो,
सुशीतल जले जमुनार॥
एत बलि महासुखे, दुहुँ हेरे दुहुँ मुखे,
रसेर सायरे दुहुँ भासे।
दुहुँ मुख सुमाधुरी, हेरिये नयन भरि,
गुण गाय वृन्दावन दासे॥

★ ★ ★ ★ ★

(अमनि) श्यामेर वामे दाँड़ाइलो नवीना किशोरी।
नव जलधरे जनु थिर बिजुरी॥
ललिता विशाखा आदि जत सखीगण।
आनन्दे दोंहार मुख करे निरीक्षण॥
श्रीरूप अनंग रति मञ्जरीर गण।
(तारा) समय उचित दोंहार करये सेवन॥
श्यामेर वामे किबा शोभा (राइ) रसेर मञ्जरी।
सखीगणे जय देय दूँहु रूप हेरि॥

इस प्रकार बहुत से पदों द्वारा दान लीला आस्वादन कर सीधे गोविन्दकुण्ड श्रीमाधवेन्द्रपुरी गोस्वामी के आसन के पास एक वट वृक्ष के नीचे पहुँचे। वहाँ बैठकर पुरी गोस्वामी का भजन, गोपालदेव का आगमन, सेवानिष्ठा आदि विषयों पर कीर्तन करने लगे। कोई एक घण्टा बीत गया, महात्मा पण्डित श्रीयुत मनोहरदास बाबाजी महाशय उनके दर्शन करने आये। उन्हें देखते ही वे झटपट उठकर दण्डवत् प्रणाम कर बोले 'बाबा! मैं तो आपके दर्शन करने की आकांक्षा ही लिये बैठा था। आपने स्वयं कृपा कर दर्शन दे दिए। मैं धन्य हो गया।' पण्डित बाबाजी महाशय प्रतिनमस्कार कर बोले 'बाबा! मैं बहुत दिन से आपके दर्शन करने की चेष्टा कर रहा हूँ, पर नाना कारणों से सफल न हो सका। आज राधारानी कृपा कर ले आई; अनायास ही दर्शन हो गए। सचमुच मैं आज धन्य हो गया।' इस प्रकार वैष्णवोचित दैन्य द्वारा दोनों ने एक दूसरे का सम्मान किया। तत्पश्चात् बाबाजी महाशय पण्डित बाबाजी महाशय से विदा लेकर नाम करते हुए श्रीराघव पंडित की गुफा देखने गए। गुफा के पास पहुँचते ही उन्होंने साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया। फिर जतीपुरा पार कर सीधे परिक्रमा वाले प्रशस्त मार्ग पर जा एक पेड़ के नीचे बैठ गये। वहाँ की रज बड़ी सुन्दर, बड़ी निर्मल और स्वच्छ थी। बाबाजी महाशय ने उसमें लोट-पोट शुरू कर दी। बाकी सब लोग भी लोटने लगे। कुछ देर यह आनन्द उपभोग करने के बाद वे श्रीरामहरिदास बाबाजी, हरिचरणदास बाबाजी, माधवदास बाबाजी, श्यामदास बाबाजी आदि महात्माओं से हाथ जोड़कर वाष्प गद्गद कण्ठ से बोले 'देखिये, आप सभी से मेरी प्रार्थना है कि आप लोग मुझे थोड़ी-थोड़ी रज भिक्षा में दें, जिससे मेरी मनोवासना पूरी हो; और मैं रज-समाधि प्राप्त कर सकूँ।' यह सुनकर रामहरिदास बाबाजी महाशय ने हँसते-हँसते एक

अञ्जलि रज भर उनके शरीर पर बिखेर दी। उन्हें देखकर सभी लोग एक-एक अञ्जलि रज उन पर डालने लगे। वे गले तक रज में दब गये। हरिचरणदास बाबाजी महाशय ने और रज डालने को मना कर दिया। तब वे प्रसन्न मुद्रा में आँख मूँदे हुए अपूर्व भाव से धाम और रज का माहात्म्य वर्णन करने लगे। सब विस्मित हो एक दूसरे से कहने लगे, 'हमने बहुतों के मुँह से रज और धाम का माहात्म्य सुना है, पर इस भाव का वर्णन आज तक नहीं सुना। आज हम धन्य हुए।' सब लोग उस रज से एक-एक कण लेकर मुँह में रखने लगे। इस प्रकार आनन्द में कुछ समय बीता। वहाँ से सब लोग श्रीराधाकुण्ड पहुँचे। इन्हें देख वनमाली राय ने झट साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया। वे विनोदजी का प्रसाद पाने के लिये सबसे विशेष आग्रह करने लगे। बाबाजी महाशय ने कहा 'नहीं भाई! हम लोग परिक्रमा को निकले हैं। परिक्रमा पूरी किये बिना जल भी नहीं पियेंगे। तुम्हारी इच्छा हो, तो कुसुम सरोवर पर महाप्रसाद भेज सकते हो।'

इतना कह वे वहाँ से कुसुम सरोवर के लिए रवाना हुए। वहाँ पहुँच थोड़ा विश्राम कर सब सरोवर में जलकेलि करने लगे। बलिहारी उस आनन्द की। सभी बालकवत् हो गये और नाना प्रकार के क्रीड़ा-कौतुक करने लगे। किसी को बाह्य-स्मृति न रही। बाबाजी महाशय दोनों हाथ ऊपर कर 'राइ जय जय राधे-राधे' कहते हुए सिर्फ पैरों की सहायता से थोड़ी ही देर में सरोवर के उस पार पहुँच गये। साथियों में जो तैरने में विशेष निपुण और बलिष्ठ थे, वे भी बड़े कष्ट से बहुत देर बाद उस पार पहुँचे। किनारे पर खड़े और पानी में खड़े सभी लोग यह देखकर बहुत ही आश्चर्यचकित हुए। बहुत देर तक इस प्रकार क्रीड़ा-कौतुक करने के बाद वे किनारे पर आकर तिलक-आह्निक आदि कर रहे थे, उसी समय श्रीकुण्ड से विनोद जी का तरह-तरह का महाप्रसाद आ पहुँचा। प्रसाद सेवन कर सब विश्राम करने लगे।

एक दिन बाबाजी महाशय सुबह जल्दी उठकर स्नान-आह्निक कर कुसुम सरोवर के चारों ओर घूम-घूमकर तरह-तरह के फूल चुनने लगे। कोई कुछ पूछता तो कहते, 'तुम लोग भी फूल चुनो, देखो कितना आनन्द पाते हो।' बहुत-से फूल इकट्ठा कर तरह-तरह की मालाएँ और गुलदस्ते आदि बनाने लगे। साथियों ने भी वही किया। कोई ग्यारह बजे वे फणी, अटल, उद्धारण आदि कुछ लोगों के साथ राधाकुण्ड गये और राधाकुण्ड, श्यामकुण्ड की परिक्रमा कर विनोदबाड़ी जा पहुँचे। वनमालीबाबू आपको देखते ही बोले, 'दादा! इतनी धूप में कैसे? बड़ा कष्ट हुआ। आइए, विश्राम कीजिए।'

बाबाजी—नहीं भाई! मुझे कोई कष्ट नहीं होता। आज मेरे लिए बड़े आनन्द का दिन है। श्रीमती को कुछ मालाओं और गुलदस्तों की आवश्यकता थी; इस दासी को संग्रह करने का आदेश मिला था, सो मैं ले आया हूँ। तुम विनोदिनी को बताकर उनके आदेशानुसार विनोद को सजाओ। हम लोग तो दासियाँ हैं, हमें क्या कष्ट होता? प्राणेश्वरी के थोड़े से भी आदेश से हम कृतकृत्य हो जाते हैं। विचार कर देखो कि सूर्य की इन प्रखर किरणों में, तपती हुई बालू पर हमारी शिरीष-कुसुम-कोमालाङ्गी प्राणेश्वरी मन्थर गति से रोज आवागमन करती हैं और कितनी-कितनी लीला-क्रीड़ाएँ करती हैं।

ऐसा कहते-कहते उनकी आँखों से आँसू बह निकले; मुख और वक्षस्थल भीग गए। गद्गद कण्ठ से श्रीमती के दिवा-अभिसार के दो-एक पद गाये और पदों में ही श्रीकुण्ड तट पर मिलन कराया। इधर उन सब फूलों से विनोद-विनोदिनी को सजाकर वनमाली राय ने बाबाजी महाशय को पुकारा। वे द्रुतगति से जाकर विनोद-विनोदिनी का अपूर्व रूप-लावण्य दर्शन कर मोहित हो गये। विनोद के दर्शन कर सभी एक स्वर से कहने लगे 'हमलोग प्राय: रोज ही ठाकुरजी का फूल-शृङ्गार देखते हैं, पर आज का वेश अपूर्व है। ऐसा भुवन-मोहन भाव और कभी नहीं देखा।' विनोदविहारी की शोभा देखकर सभी तरह-तरह की बातें करने लगे। वनमालीबाबू बोले 'श्रीविनोदिनी ने प्रिय नर्ममञ्जरी को आदेश देकर अपने मनोभाव के अनुरूप माला आदि तैयार कराई हैं, तभी आज इतनी मधुर साज-सज्जा हुई है।' इस प्रकार नाना प्रकार के

रस-कौतुक में कुछ समय बड़े आनन्द से बीता। यथासमय विनोद का महाप्रसाद पाकर सबने थोड़ा विश्राम किया। तत्पश्चात् वनमालीबाबू को साथ ले सब कुसुम सरोवर चले आये।

एक दिन बाबाजी महाशय दाऊजी के सामने बैठे श्रीरामहरिदास बाबाजी, हरिचरणदास बाबाजी, माधव दास बाबाजी, वनमालीराय आदि कुछ महात्माओं के साथ नाना प्रकार के लीला प्रसङ्गों में मत्त थे। आज का लीला-प्रसङ्ग बलराम-तत्व को लेकर था। चित्शक्ति बलराम से शैया, आसन, छत्र, पादुका आदि लीला सम्बन्धी वस्तुओं का प्रकाश हुआ है; कृष्ण-सुख के लिये दाऊजी अपने तक को भूल जाते हैं और वे सर्वदा कृष्ण-सेवा में डूबे रहते हैं-इन्हीं सब विषयों की चर्चा समीक्षा करते-करते वे एकाएक अचेत हो गये। उनकी सुविशाल देह पर अष्ट-सात्विक विकार आभूषणों की तरह प्रकट होकर उपस्थित लोगों का आनन्द-वर्द्धन करने लगे। रक्तवर्ण, टलमलायमान नेत्रों से अविरत अश्रुधार निकल कर दर्शकों के हृदय द्रवित करने लगी। नाना प्रकार की सेवा-शुश्रूषा के बाद उन्हें कुछ बाह्यज्ञान हुआ। तब वे झूमते-झूमते दाऊजी के मन्दिर के पूर्व में एक नीम के पेड़ के नीचे जाकर खड़े हो गये। वृक्षराज के अपूर्व दर्शन थे। वह जड़ से दो भागों में विभक्त था और दो हाथ ऊपर उठकर दोनों भाग आपस में मिल गये थे। बीच के रिक्त स्थान को देख वे प्रसन्न होकर बोले 'देखो, यह ब्रह्मयोनि है। जो इसके भीतर होकर निकल आयेगा उसे कभी गर्भयंत्रणा न भोगनी पड़ेगी।' यह कहकर वे स्वयं उसके भीतर होकर निकल गये। उनकी देखा-देखी माधवदास, हरिचरणदास बाबाजी, वनमालीबाबू आदि सभी लोग उसमें होकर निकले। श्रीरामहरिदास बाबाजी निकलने को हुए तो अटक गये। पेट किसी तरह भी उसमें से न निकलता देखकर वे उच्चस्वर से बोले 'बाबा चरण! मैं तो तुम्हारी ब्रह्मयोनि पार न कर सका, मेरा पेट अटक गया।' वे बोले 'बाबा! आप निडर होकर निकल आइये, मैं हूँ, डर किस बात का?' उनका इतना कहना ही था कि वे अनायास पार हो गये। सभी लोग वृक्षराज के नीचे बैठकर कुछ देर इष्टगोष्ठी करने के बाद अपने-अपने स्थान पर चले गये।

एक दिन जाह्नवादेवी के उत्सव के उपलक्ष्य में वनमालीबाबू ने साथियों सहित बाबाजी महाशय को आमंत्रित किया। वे माधवदास बाबाजी, हरिचरणदास बाबाजी आदि महात्माओं को साथ ले गमनोद्यत हो नाम करने लगे 'हरि बोलो रे भाई! गदाधर गौराङ्ग बसु जाह्नवा निताइ। बसु जाह्नवा निताइ। सीता अद्वैत गोसाई।' अपूर्व आनन्द! सभी नृत्य करते हुए श्रीराधाकुण्ड और श्यामकुण्ड की परिक्रमा कर और माँ जाह्नवा के घाट पर कुछ देर उद्दण्ड नृत्य-कीर्तन कर विनोद-मन्दिर जा पहुँचे। कीर्तनध्वनि सुनकर पहले से ही वनमालीबाबू इन लोगों के स्वागतार्थ आगे आ रहे थे। विनोदबाड़ी के सदर द्वार पर दोनों का मिलन हो गया। वनमालीबाबू के दण्डवत् प्रणाम करते ही इन्होंने उन्हें उठाकर आलिङ्गन किया और भीतर जाकर कुछ देर विश्राम करने के बाद महाप्रसाद ग्रहण कर फिर नाम करते हुए कुसुम सरोवर की ओर चल पड़े।

रात के दस बजे थे। सभी सोये हुए थे। बाबाजी महाशय दाऊजी के आगे एक पेड़ के नीचे लेटे थे। श्यामदादा उनकी चरण-सेवा कर रहे थे। चारों ओर निस्तब्ध वातावरण था। एकाएक उनके शरीर से प्रज्वलित अग्नि की तरह एक भयानक तेज निकलने लगा। श्यामदादा उसे सहन न कर सके। वे आँखें बन्द किये मन ही मन सोचने लगे 'कैसा आश्चर्य! ऐसा उज्ज्वल रूप मैंने और कभी नहीं देखा। आँखें झुलसी जाती हैं।' यह सोचते-सोचते जब आँखें खोलीं तो उन्होंने देखा कि उस तेज के भीतर से उनके शरीर में तरह-तरह के ऐश्वर्य प्रकाशित हो रहे हैं। देखकर वे एकदम स्तम्भित हो गये और मन ही मन तरह-तरह के संकल्प-विकल्प करने लगे। उसी समय बाबाजी महाशय ने अपने पैर श्यामदादा की गोद से खींच लिये और 'कृष्ण-कृष्ण' कहते हुए आवाज दी 'श्याम!'

श्याम०—जी!

बाबाजी—तू क्या चाहता है?

श्यामदादा चौंककर उनके मुँह की ओर देखने लगे, और कुछ कह न सके। पर वे स्वयं ही बोले-'देख, निताइ-गौर, राधा-कृष्ण पाना बड़ा सहज है। वे सब तो तुम लोगों के आगे पीछे फिरते रहते हैं, पर उपयुक्त

हृदय के बिना उन्हें पहचाने कौन? योग्य देह के बिना उनका आस्वादन कौन करे? आचार्यजनों ने साधन-भजन का जितना भी कुछ उल्लेख किया है, वह सब एकमात्र उस देह को प्रस्तुत करने के लिये। योग्य देह प्रस्तुत होते ही तत्क्षणात् कृष्ण-प्राप्ति हो जाती है।' साधन की बात सुन श्यामदादा का चेहरा न जाने कैसा हो गया। उसे देखकर वे बोले-'जा, कोई चिन्ता नहीं, निताइ की कृपा से सब हो जायगा।'

एक दिन अपराह्न के समय बाबाजी महाशय श्रीरामहरिदास बाबाजी, हरिचरणदास बाबाजी, माधवदास बाबाजी, श्यामदादा आदि कुछ वृन्दावनवासी वैष्णवों के साथ बैठे हुए थे। उसी समय वनमालीबाबू वहाँ आ गये। बाबाजी महाशय बोले 'देखो भाई, मेरी इच्छा हो रही है कि एक बार तुम सबको लेकर श्रीधाम पुरी जाऊँ।' यह सुनकर सब थोड़ा विस्मित हुए। हरिचरणदास बाबाजी बोले 'दादा! ऐसी आज्ञा न कीजिए। आशीर्वाद दीजिए कि परम माधुर्यमयी वृन्दावन-भूमि छोड़कर ऐश्वर्य-धाम श्रीजगन्नाथ न जाना पड़े। पुरीधाम महान् ऐश्वर्य का धाम है। हम लोगों को वह जगह क्या अच्छी लगेगी?'

बाबाजी—भाई! पुरीधाम ऐश्वर्य का धाम है, यह बात तो मैं स्वीकार करता हूँ, पर श्रीमन्महाप्रभु तो ऐश्वर्य-धाम में वास करते नहीं। उन्होंने तो जगन्नाथ को व्रजेन्द्रनन्दन और पुरीधाम को वृन्दावन के रूप में देखा है; अतः महाप्रभु के अनुगत जन निश्चय ही पुरीधाम को मधुर से भी सुमधुर मानेंगे। ऐश्वर्य और माधुर्य साधक के मानसिक भाव के अनुसार होते हैं। पूर्ण पूर्णतम व्रजेन्द्रनन्दन में माधुर्य की पूर्णतमता है और ऐश्वर्य की भी। इसी प्रकार उनके नित्य वासस्थान श्रीवृन्दावन में दोनों वस्तुओं की पूर्णतमता विद्यमान है। साधकों ने अपने भावानुसार किसी ने गो-गोप बालक सहित कृष्ण का वन-भोजन ग्रहण किया है और किसी ने ब्रह्मा का मोहन भाव ग्रहण किया है। यह बात सभी जगह लागू होती है। भाव बाहर की या शास्त्रों की वस्तु तो है नहीं, भाव तो उपासक के अन्तर की वस्तु है।

हरि०—भाव अन्तरगत है, यह बात सच है; पर बाहर की वस्तुओं के सम्पर्क में इसका उत्कर्ष-अपकर्ष होता रहता है। 'न हि वस्तुशक्तिर्बुद्धिमपेक्षते।' ऐश्वर्य-प्रधान स्थान में रहकर विशेष चिन्ता-चेष्टा कर माधुर्य भाव ले भी आओ, पर धामगत स्वभावसिद्ध ऐश्वर्य भाव तो रहेगा ही।

बाबाजी—अच्छा, तुम पण्डित हो; बताओ, नवद्वीप, नीलाचल और वृन्दावन-इन तीनों धामों में से तुम ऐश्वर्य का धाम किसे कहते हो?

हरि०—क्यों? यह तो जनसाधारण सभी जानते हैं कि नीलाचल धाम ऐश्वर्य-प्रधान है।

बाबाजी—थोड़ा और सोचकर बताओ।

हरि०—मैं सोच-विचार कर भी इसके अतिरिक्त और कोई बात धारणा में ला ही नहीं सकता। अच्छा, आप क्या कहते हैं?

बाबाजी—मैं कहता हूँ कि वृन्दावनधाम पूर्ण पूर्णतम ऐश्वर्य और माधुर्य का स्थान है।

हरि०—कैसे? मुझे समझा दीजिये।

बाबाजी—वृन्दावन के ऐश्वर्य की कितनी बातें बताऊँ? पहले से लो-पूतना, अघासुर, बकासुर, यमलार्जुन, शकटासुर, तृणावर्त, वत्सासुर, प्रलम्बासुर, व्योमासुर आदि का विनाश। फिर कालीयदमन, दावानलभक्षण, गोवर्द्धनधारण, ब्रह्म-मोहन, नन्दमोहन, मृत्तिकाभक्षण-इनमें कौन सी लीला माधुर्यमय है, मुझे समझाओ तो।

हरि०—असुरवध आदि कार्य तो कृष्ण के हैं नहीं; 'विष्णुद्वारे करेन कृष्ण असुर संहार।' पूर्णतम व्रजेन्द्रनन्दन में ऐश्वर्य का स्पर्श भी नहीं हो सकता। 'निरन्तर कुञ्जक्रीड़ा जाँहार चरित।'

बाबाजी—भाई, तुम तो पण्डित हो, आगे-पीछे की बातों में समन्वय रखना चाहिए। तुमने ही कहा है-'न हि वस्तुशक्तिर्बुद्धिमपेक्षते।' प्रकाशमान ऐश्वर्य में माधुर्य भाव आरोपित भी किया जाय, तो ऐश्वर्य रहेगा ही रहेगा। पूतना के वक्ष पर कृष्ण को देखकर भी यह कहना कि यह उनका काम नहीं है एकमात्र

उपासक-भेद से धारणा का विषय हो सकती है, पर सार्वजनिक नहीं हो सकती। यदि इसी को स्वीकार करें, तो धामान्तर से भी तो सामान्य ऐश्वर्य के विषय को माधुर्य में परिणत किया जा सकता है। यह तो हुई विचार-निर्णय की बात। यदि निरपेक्ष भाव से देखें, तो कहना होगा कि जो लोग श्रीगौराङ्गदेव के मतावलम्बी साधक हैं, उनके लिए नीलाचल धाम सर्वोपरि है। जिस तरह श्रीगौराङ्गदेव ने धाम तथा धामेश्वर के दर्श-स्पर्श किये हैं और उन्हें अनुभव किया है, उसी प्रकार उसी भाव से उन्हें भी दर्श-स्पर्श और अनुभव करना चाहिए। श्रीमन्महाप्रभु के अवतार का जो उद्देश्य है, उसका और कहीं सम्पन्न होना असम्भव था। इसीलिये महाप्रभु ने श्रीनीलाचल धाम में अठारह वर्ष एकादिक्रम से वास किया था, और श्रीराधाभाव-विभावित होकर अपने अन्तरङ्ग जन श्रीस्वरूप दामोदर एवं राय रामानन्द के साथ निगूढ़ व्रज-रस का आस्वादन किया था। वही वस्तु तो हमारे आस्वादन का विषय है। उसी धाम और उन्हीं महाप्रभु के आनुगत्य को स्वीकार किये बिना आस्वादन होगा कैसे? अन्यान्य पथों या मतोंवाले साधक नीलांचल धाम को चाहे कुछ भी क्यों न कहें, पर हम लोगों के लिए तो वही परम धाम है।

श्रीरामहरिदास बाबाजी महाशय बोले 'बाबा, मुझे कोई आपत्ति नहीं, जहाँ मेरे महाप्रभु हैं, वहीं वृन्दावन है; वहीं नवद्वीप है।'

बाबाजी महाशय ने मृदुभाव से हँसते हुए हरिचरणदास बाबाजी से कहा 'क्यों पण्डितजी! क्या सोच रहे हो?'

हरि०—सोच क्या रहा हूँ। आपकी बातों से मेरा भ्रम दूर हो गया। सचमुच प्राकृत इन्द्रियों द्वारा चिन्मय अप्राकृत वस्तु की उपलब्धि चाहना गलत है। भाव द्वारा ही वस्तु की उपलब्धि होती है; भाव द्वारा ही उसका आस्वादन होता है। भावभेद से एक ही वस्तु के पृथक्-पृथक् आस्वादन होते हैं। भाव ही एकमात्र मूल वस्तु है। यह सब समझ गया। पर ऐसी कृपा कीजिए कि इस व्रजरज को छोड़कर अन्यत्र न जाना पड़े; भले ही प्राप्ति का विषय अधिक हो।

बाबाजी—ऐसी निष्ठा का होना बड़ा सुन्दर है। फिर भी देखो भाई! मैं और कुछ कहना नहीं चाहता। इस वृन्दावन में एक ऐसा समय आयगा कि तुम सबको यहाँ तक कि इन वनमाली के प्राण-धन विनोद-विनोदिनी तक को दूसरी जगह जाना पड़ेगा।

इस प्रकार बड़े आनन्द में कुछ दिन कुसुम सरोवर पर बीत गए। एक दिन पुरी जाने की इच्छा से बाबाजी महाशय ने फणी, राधाविनोद, कालाकृष्ण, मधुदादा, दयालदास, शीतलदास आदि साथियों को बुलाकर कहा 'देखो, तुम लोग देर न कर आज ही श्रीधामपुरी की पैदल यात्रा आरम्भ कर दो। वहाँ यथासमय मुझसे भेंट होगी।' उन लोगों को इनका साथ छोड़कर जाने में कुछ आपत्ति थी। यह देखकर माधवदास बाबाजी उनसे बोले 'दादा! इन सुकुमार बालकों पर ऐसा कठोर आदेश क्यों? ये लोग क्या इतना कष्ट सहन कर सकेंगे?'

बाबाजी—भाई, इन लोगों पर महाप्रभु की विशेष कृपा है। यह मेरी नहीं, महाप्रभु की आज्ञा है। ये लोग बिना सोचे-विचारे इसका पालन कर सकें, तो इन्हीं का मंगल होगा।

साथी लोग कुछ कहे बिना दण्डवत् प्रणाम कर चल दिये। सिर्फ राधाविनोद और कालाकृष्ण काँटों के एक जंगल में जा छिपे! बाकी लोगों के चले जाने के बाद दूसरे दिन जब ये बाबाजी महाशय से भेंट करने आये, तो वे क्रोधान्वित होकर बोले 'तुम लोग क्यों नहीं गये?' ये बोले 'आपका साथ छोड़कर नहीं जा सके।'

बाबाजी—तुम लोगों ने महाप्रभु की आज्ञा का उल्लंघन किया है, अतः मेरा साथ तो छोड़ना ही पड़ेगा। तुम्हारा और भी अनिष्ट होगा। इतना कह वे चुप हो गए। वे दस-बारह दिन और कुसुम सरोवर पर रहे। फिर मधुर वाक्यों से सबसे विदा लेकर यथासमय बाकी साथियों के साथ श्रीधामपुरी के लिए प्रस्थान किया।

धाम माहात्म्य

पुरी में एक नवीन आनन्द छाया है। झाँझपीटा मठ में नित्य भक्त-समागम होता है। बाबाजी महाशय

सबके साथ वृन्दावन की लीला-कथा, भक्त-समागम, वनमालीबाबू की सेवा-परिपाटी, श्रीरामहरिदास बाबाजी महाशय का 'चैतन्य मङ्गल', माधवदास बाबाजी महाशय की प्रीति, हरिचरनदास बाबाजी महाशय की शास्त्र-चर्चा, श्यामदास बाबाजी महाशय की उदारता इत्यादि प्रसङ्ग ले सदा आनन्द-मग्न रहते हैं। कभी भक्तों के साथ श्रीजगन्नाथदेव के दर्शन को जाते हैं और जगमोहन में खूब नृत्य-कीर्तन करते हैं; कभी गम्भीरा, सिद्ध वकुल, गंगामाता मठ होते हुए समुद्र-स्नान और टोटा गोपीनाथ तथा हरिदास ठाकुर की समाधि का दर्शन करने जाते हैं। एक दिन भक्तों के साथ नाना रूप भगवच्चर्चा कर रहे थे। उसी समय एक भक्त ने पूछा, 'सुनते हैं कि श्रीजगन्नाथ धाम में कोई उपवासी नहीं रहता, यह क्या सच है?

बाबाजी—क्यों भाई, जब यह शास्त्र-वाक्य है तो सत्य न होने की क्या बात है?

भक्त—मैं उस भाव से नहीं कह रहा हूँ, मैं जानना चाहता हूँ कि हम लोग शास्त्र-वाक्यों का जिस प्रकार विश्वास करते हैं, यह भी क्या उसी प्रकार विश्वास करने योग्य बात है या किसी ने इसका प्रत्यक्ष किया है।

बाबाजी—बात तो प्रत्यक्ष ही है पर हमारे लिए अनुमान-सिद्ध जैसी है क्योंकि हम लोगों ने लोक-परम्परा से उसे सुन रखा है, स्वयं प्रत्यक्ष अनुभव नहीं किया है।

इस प्रकार की कथा-वार्ता में बहुत समय बीत गया। भक्त अपने-अपने स्थान को चले गये। न जाने बाबाजी महाशय के मन में कौन से भाव का उदय हुआ, वे झटपट उठकर स्नानाह्निकादि कर श्रीजगन्नाथ-दर्शन के लिए जाने को प्रस्तुत हुए। साथी लोग थोड़ा मिश्री का शर्बत लेकर जाने का अनुरोध करने लगे, परन्तु इन्होंने एक न सुनी और अकेले ही मन्दिर चले गये। श्रीजगन्नाथ-दर्शन कर वहाँ से अकेले श्रीयोगनाथ महादेव के मन्दिर की ओर चल दिये। चलते-चलते एक घोर निर्जन वन में जा पहुँचे और वहाँ एक पुन्नाग वृक्ष के नीचे लेट गये। मन ही मन संकल्प किया 'आज इस जनश्रुति की परीक्षा करूँगा कि श्रीजगन्नाथधाम में कोई उपवासी नहीं रहता। देखूँ, मुझे इस वन में खोज कर कोई महाप्रसाद देता है या नहीं।'

इधर आश्रमवासी श्रीजगन्नाथ के मन्दिर और अन्य सम्भावित स्थानों में इन्हें खोज कर विमनभाव से आश्रम लौट गये। दो बजे तक इनकी बाट देखकर बहुतों ने महाप्रसाद पा लिया। अपराह्न पाँच बजे के लगभग एक जगन्नाथजी का पण्डा रज का थाल हाथ में लिये उस वन में जा पहुँचा जहाँ बाबाजी महाशय शयन कर रहे थे। उसके पैरों की आहट सुन बाबाजी महाशय उठ बैठे। तब पण्डा बोला, 'बाबा मैं बहुत देर से आपको खोज रहा था। आप ऐसे घोर वन में क्यों चले आये और अब अनाहार क्यों हैं?'

बाबाजी—मैं अनाहार हूँ, आपसे किसने कहा?

पण्डा—मैं जगन्नाथदेव को मध्याह्न धूप देकर घर जा रहा था। उसी समय एक सधवा स्त्री यह थाल मेरे हाथ में देती हुई बोली, 'देखो बाबा! लोकनाथजी के मन्दिर से कुछ दूर वन में एक पुन्नाग वृक्ष के नीचे बड़े बाबाजी शयन कर रहे हैं। यह महाप्रसाद का थाल उन्हें दे आना और कहना 'इस जगन्नाथ धाम में कोई कभी उपवासी नहीं रहता। इसमें सन्देह करना या हठ करना उचित नहीं।' इतना कह जाते समय मेरे हाथ में एक चवन्नी देते हुए बोली, 'चार आने तुम्हारी मेहनत के दे रही हूँ। जितनी जल्दी हो सके यह काम कर देना।' मैं तभी से आपको खोज रहा हूँ। आप जब तक यह महाप्रसाद ग्रहण नहीं करेंगे, मैं नहीं जाऊँगा।

बाबाजी महाशय प्रेम-पुलकित देह से पण्डे को प्रणाम कर और महाप्रसाद का थाल सादर ले अश्रुगद्गद कण्ठ से बोले, 'बाबा, ऐसी कृपादत्त वस्तु का क्या कोई परित्याग कर सकता है? असमय हो गया, आपको रुकने की आवश्यकता नहीं। आप घर जायें, मैं महाप्रसाद ले रहा हूँ।' इस प्रकार पण्डे को विदा कर बालक की भाँति उच्च-स्वर से रोते-रोते बोले-'हा हा! इतने दयालु न होते तो कलिकाल के जीव उन्हें क्यों भजते? भजे बिना ही मुझ पर इतनी कृपा। भजता तो न जाने कितनी कृपा होती।' इन दैन्योक्तियों के साथ महाप्रसाद का थाल हाथ में ले वे सीधे झाँजपीटा

मठ आ गये। आश्रम वासियों के मृत देह में जैसे प्राणों का संचार हुआ। ललितादासी इनके हाथ से महाप्रसाद का थाल ले विस्मितभाव से पूछताछ करने लगीं। इन्होंने आमूल वृत्तांत कह सुनाया और अन्त में बोले, 'श्रीराधाकान्तदेव के महाप्रसाद के प्रति मेरा अपराध हुआ है। पहले उस महाप्रसाद में से मुझे कुछ दो। पीछे यह महाप्रसाद लूँगा।' तब ललिता दासी ने तुरन्त महाप्रसाद लाकर इनके सामने उपस्थित किया।' ये भक्तवृन्द के बीच महाप्रसाद और धाम-महात्म्य का वर्णन करते-करते महाप्रसाद-सेवन करने लगे।

अपरादादा का वर्णन

इस घटना के सम्बन्ध में अपरादादा ने अपने हाथ से जो लिखा है उसी को हम यहाँ उद्‌धृत कर रहे हैं-

मेरा नाम अपरा प्रसाद पाल है। सन् १८८१ में हुगली कालेज से बी. ए. की परीक्षा पास की। मेरे पिता हुगली कचहरी में मुख्तारी करते थे। बहुत दिन पहले ही वे नित्यधाम को जा चुके थे। मेरे आत्मीय स्वजनों की बड़ी इच्छा थी कि मैं बी. एल. पास कर हुगली में वकालत करूँ। मैंने भी यही निश्चय किया। इसलिये हुगली कालेज में कानून पढ़ने लगा। परन्तु मेरा मन सद्‌गुरु की प्राप्ति के लिए बेचैन था। मुझे अपने कुलगुरु के प्रति अधिक श्रद्धा न थी। मेरे पिताजी सदा कहा करते 'शिव ही जगद्‌गुरु हैं। जब किसी को मन्त्रादि प्राप्त करने की विशेष उत्कण्ठा होती है तो वे स्वप्न में मन्त्र प्रदान कर शिक्षा के लिए उपयुक्त व्यक्ति को प्रेरित करते हैं।'

बहुत दिनों बाद पिताजी की बात का स्मरण हो आया। गुरु रूप में महादेवजी की कृपा प्राप्त करने की कामना से मैं शिवरात्रि का उपवास रखने लगा और चलते-फिरते हर समय श्रीदुर्गा-नाम जप करने लगा। श्रीयुक्त जदुलाल काँजीलाल बी. एल. भी, जो इस समय हाईकोर्ट के वकील हैं, उस समय हुगली में कानून पढ़ते थे। हम दोनों में बहुत प्रेम था। एक दिन मैंने व्याकुल हो उनसे सद्‌गुरु लाभ के सम्बन्ध में जिज्ञासा की। वे बोले, 'व्याकुलता ही वस्तु प्राप्ति का एकमात्र उपाय है।' जदुबाबू की बात मुझे लग गई। मैं सब काम-काज करता था पर मन्त्र-प्राप्ति के लिये मेरी व्याकुलता नित्य बढ़ती जाती थी।

इस प्रकार तीन वर्ष बीते। शिवरात्रि के बाद बाबा आशुतोष की कृपा हुई। उन्होंने स्वप्न में मन्त्र प्रदान कर शिक्षक का कार्य करने का आदेश किया और इंगित किया, 'जो अयाचित भाव से तुम्हें यह मन्त्र प्रदान करें उन्हीं को अपना गुरु मानना और उनके आदेश से ही सब कुछ करना।' फिर मैंने बी. एल. परीक्षा नहीं दी। हुगली जिले के अन्तर्गत खानाकुल, कृष्णनगर ऐन्ट्रेंस स्कूल में प्रधान शिक्षक के पद पर कार्य करने लगा। वहाँ बड़ी लगन के साथ पाँच वर्ष तक शिक्षक का कार्य किया और प्रसिद्धि प्राप्त की। पर साक्षात् गुरुदेव को पाने के लिए मेरी उत्कण्ठा बहुत बढ़ गई। गाँव से तबीयत उखड़ गई। कलकत्ते के हेलात् चन्द्र इन्स्टीट्यूशन के हैडमास्टर श्रीयुक्त सुरेशचन्द्र दत्त महाशय से मिलकर मैंने अपने मन की बात कही। उन्होंने उसी समय अपने सहकारी शिक्षक के रूप में मुझे नियुक्त कर दिया। मैं स्कूल का काम करने लगा, परन्तु अब तक सद्‌गुरु न प्राप्त कर सकने के कारण मेरा मन बहुत उद्विग्न था। अवकाश मिलने पर श्रीधाम काशी गया और अपनी मनोकामना की पूर्ति के उद्देश्य से साधु महापुरुषों का संग करने लगा, परन्तु किसी ने मेरे मन-प्राण को आकर्षित नहीं किया। महात्मा भास्करानन्द स्वामीजी मुझे आश्वासन देकर बोले-'तुम देश लौट जाओ, वहीं सद्‌गुरु मिलेंगे।' महात्मा की बात का विश्वास कर मैं कलकत्ते आ गया।

मुझे जब कभी अवकाश मिलता मैं अँगरेजी की पुस्तक 'इमीटेशन आफ क्राइस्ट' पढ़ा करता। उसके पढ़ने से मेरी धारणा बन गई थी कि प्रेम ही भगवान् का स्वरूप और एकमात्र प्रयोजनीय पदार्थ है। एक दिन पुस्तक पढ़ते-पढ़ते सोचने लगा-क्या हिन्दुओं के शास्त्रों में ऐसा कोई ग्रन्थ नहीं है जिसका पाठ कर प्रेम की प्राप्ति हो और सब देवी-देवताओं में भक्ति विश्वास स्थाई रूप से बना रहे?

उसी दिन से अनुसन्धान करने लगा। एक दिन हमारे स्कूल के सेक्रेटरी श्रीयुक्तबाबू मोहिनी मोहन मित्र महाशय मुझे साथ ले अपने एक मित्र के घर

श्रीचैतन्यचरितामृत का पाठ सुनने गये। श्रीचैतन्य-चरितामृत के मध्य खण्ड के आठवें परिच्छेद का पाठ हो रहा था। पाठक थे, श्रीधाम नवद्वीपवासी पण्डित रामदास। पाठ सुनकर बड़ा सुख मिला। बहुत दिनों के बाद आकांक्षित वस्तु को प्राप्त कर मेरा हृदय आनन्द से परिपूर्ण हो गया। उस दिन से रोज शाम को नियम से पाठ करने लगा।

एक दिन पाठ के बाद एक युवक वैष्णव रामदास का कीर्तन सुनकर मैं एकदम सुध-बुध खो बैठा। मैंने बहुत से कीर्तन सुने थे पर मन और प्राण को मत्त कर देनेवाला ऐसा कीर्तन कभी नहीं सुना था। कीर्तन सुनते-सुनते मन में आया कि जब इनमें ही ऐसी मनोमुग्धकारिणी शक्ति है तो इनके गुरुदेव कैसे होंगे? एक बार किसी प्रकार उनका दर्शन करने की उत्कण्ठा में दिन व्यतीत करने लगा।

इस घटना के दस-पन्द्रह दिन बाद सुना कि उक्त युवक रामदास बाबाजी के गुरुदेव (पुरीधाम के बड़े बाबाजी महाशय) दर्जीपाड़े के श्रीयुक्त जोगेन्द्रनाथ मित्र महाशय के घर आये हैं। मैं और किशोरीलाल हाल्दार, बी. ए. जो मेरे भाई के समान थे, उन महात्मा के दर्शन करने गये। हमने जो देखा वह अनिर्वचनीय था। महात्मा चारों ओर तारों से घिरे हुए चन्द्रमा के समान भक्तमंडली-सहित विराजमान थे। वे सुमधुर वाक्यामृत की वर्षा से सबका हृदय परिपूर्ण कर रहे थे। उनके सहास मुख से अमृतमधुर दो शब्द सुन मेरे तृषित मन और प्राण शीतल हो गये। उनके दर्शन करते ही मैंने उनके चरणों में सदा के लिए आत्म-समर्पण कर दिया। उनका जितना भी व्यवहार था मुझे बड़ा चित्ताकर्षक लगा। उनके अपूर्व माधुर्य के दर्शन से मेरे नेत्र मुग्ध हो गये। धीरे-धीरे उनके निकट जाकर प्रणाम किया। उन्होंने अपने मृदु मधुर सहास मुख और सुधाविनिन्दित कंठ से कहा, 'आप लोग क्या बहू बाजार में मास्टरी करते हैं? आपको क्या रामदास पंडित का श्रीचैतन्य चरितामृत का पाठ अच्छा लगा?' मैंने कहा-'जी हाँ। उनका पाठ बड़ा मधुर है और आपके रामदास का कीर्तन मधुर से भी मधुर है।' उन्होंने कहा, 'आप लोग बड़े भाग्यवान् हैं।' और पूर्ववत् भक्तों के साथ भगवद्-प्रसंग करने लगे। हम लोग रात दस बजे तक वहाँ रहकर घर लौटने के लिए बाध्य हुए, परन्तु मन और प्राण मानो वहीं रह गये।

दूसरे दिन स्कूल की छुट्टी हो गई। दर्जीपाड़े गया। अपूर्व कृपा! आज 'आप', 'महाशय' कुछ नहीं। मुझे देखते ही आग्रह पूर्वक बोले, 'आओ, भाई आओ! मैं तुम्हारे बारे में सोच ही रहा था। अच्छा मास्टर! तुम कल पाँच छह घंटे तक बैठे रहे, आज फिर छुट्टी होते ही आ गये। क्यों? साधु-दर्शन करने?

मैं—जी, मैं साधु समझ कर आपके पास नहीं आया।

बाबाजी—फिर किस भाव से आये हो?

मैं—मैंने अपनी माँ से सुना था कि मेरे जन्म के पूर्व मेरे दो भाई शैशव अवस्था में ही चल बसे थे। मेरी धारणा है कि आप उनमें से ही कोई हैं।

यह सुनते ही उनका कंठ अश्रु-कम्प-पुलकादि सात्विक भावों से पूरित हो गया। प्रेम से मुझे आलिंगन कर उन्होंने मेरे कान में वही मंत्र प्रदान किया जो मुझे स्वप्न में मिल चुका था। इस प्रकार सदा के लिए मुझे अंगीकार कर लिया। फिर गद्गद कंठ से बोले, 'देखो, तुम्हें प्रभु का अंतरंग बनायेंगे, इसलिए योगिवर ने मंत्र के बीच 'भगवते' शब्द नहीं रखा। कोई चिन्ता नहीं, मैं उनकी प्राप्ति का उपाय विशेष रूप से बता दूंगा। तुम मेरे छोटे भाई हो यह सत्य है। यही धारणा सदा बनाये रखना।'

महापुरुष के शीतल वक्षस्थल का स्पर्श पा मेरी न जाने कैसी अवस्था हो गई। सर्वाङ्ग में पुलक होने लगा, मन और प्राण अननुभूत अप्राकृत आनन्द रस में निमग्न हो गये। जीवन भर के लिए मैं उनके श्रीचरणों का क्रीतदास हो गया। मुझमें और कोई काम करने की क्षमता न रही। सदा बाबाजी महाशय के मधुमय संग में रहने लगा।

एक दिन बाबाजी महाशय कांटाल बाग के हरिदासदादा के पास सदल गये हुए थे। नाना प्रकार का कीर्तनानन्द हो रहा था। मैं भी साथ था। अकस्मात् मुझसे बोले-'मास्टर, माला पहनने की इच्छा है?'

मैं—माला पहनने से क्या होता है?

बाबाजी—माला पहनने से क्या होता है, मैं क्या बताऊँ। माला पहनने से त्रिताप-ज्वाला दूर हो जाती है।

मैं—त्रिताप ज्वाला से छुटकारा पाना बड़ा कठिन है। यदि वह माला पहनने से ही दूर हो सके तो मालाओं की एक मोटी रस्सी मुझे पहना दीजिये।

तब इन्होंने बालक की भाँति मुस्कराते हुए अपने गले की कण्ठी, हरिदादा के गले की एक कण्ठी और उपस्थित वैष्णव-मण्डली में से तीन के गले की कंठियाँ ले मुझे पहना दीं। पहनाते हुए उन्होंने जिस भाव से कहा कि 'माला पहनाते ही त्रिताप ज्वाला दूर हो जायेगी' उससे मुझे दृढ़ विश्वास हो गया कि माला पहनते ही त्रिताप ज्वाला दूर हो जायेगी। किसी साधन-भजन की आवश्यकता न रहेगी। माला पहना कर एक व्यक्ति से बोले, 'मास्टर के तिलक कर दो।' सुनते ही एक बालक वैष्णव ने गोपीचन्दन द्वारा मेरे तिलक कर दिया। फिर करुणामय प्रभु ने हरिदादा के साथ मुझे 'निताइ गौरांग' मंत्र से दीक्षित किया। मैं जैसे आनन्द सागर में निमग्न हो गया।

मेरा भावान्तर देख मेरे कई ग्रैजुएट साथियों ने मुझसे इसका कारण पूछा। मैंने कहा, 'भाई, मैं कुछ नहीं जानता, एकमात्र गुरुदेव जानें।' तब वे लोग उनके दर्शन करने गये। उन्होंने धर्म-सम्बन्धी अनेक प्रश्न किये और सरल भाषा में उनके सदुत्तर प्राप्त किये। मुझसे आकर बोले-'अपर बाबू, आपके बाबाजी ऐसे-वैसे वैष्णव नहीं है। सांख्यवेदांतादिकी गोलियाँ खाकर बाबाजी हुए हैं।' एक दिन मेरे एक बन्धु ने उनसे पूछा, 'आपने इतना परमानन्द कैसे प्राप्त किया है।'

बाबाजी—भाई, यह आनन्द चार पैसे में आता है।

यह सुन सब लोग जोर से हँस पड़े। वे फिर बोले, 'देखो, मैं हँसी नहीं कर रहा हूँ, सचमुच परमानन्द चार पैसे में मिलता है। तुम बाजार जाकर चार पैसे में प्रेमानन्ददास की 'मन: शिक्षा' और नरोत्तमदास ठाकुर की 'प्रेमभक्ति चंद्रिका' खरीद लाओ और उनका पाठ करो। यदि तुम्हारा विश्वास है तो इतने से ही परमानन्द-प्राप्ति हो सकती है।'

बन्धु—विश्वास होना ही तो कठिन है। अच्छा, विश्वास कैसे हो?

बाबाजी—कुछ कठिन नहीं, किसी एक विश्वासी व्यक्ति की कृपा प्राप्त करने से ही हो जाता है। विश्वासी लोग विश्वास का संचार कर सकते हैं।

न जाने किस शुभ मुहूर्त में बाबाजी महाशय के श्रीमुख से यह बात निकली। मेरे वे बंधु और कई साथी उनकी कृपा से परमभक्त और विश्वासी हो गये और उन्होंने धर्म जगत में आदर्श की स्थापना की।

एक बार मुझे भयानक कालरा हुआ। गुरुदेव उस समय वृन्दावन थे। मेरी नब्ज छूट चुकी थी। सब जानते थे कि मेरे प्राण न रहेंगे। मैंने अचैतन्य अवस्था में देखा कि परम दयालु गुरुदेव मेरे सिरहाने बैठे कह रहे हैं 'मरोगे नहीं। अभी बहुत से काम बाकी हैं।'

इस अभय दान को सुनते ही मेरी अवस्था में परिवर्तन होने लगा। मैं धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगा। इस बीच श्रीगुरुदेव श्रीधाम वृन्दावन से कलकत्ते लौट आये। पुलिनबाबू उन्हें मेरे घर ले आये। मैं उस समय भी चारपाई से लगा हुआ था। गुरुदेव के दर्शन पाते ही मैंने उसी अवस्था में उन्हें खड़े होकर प्रणाम किया और कहा, 'इस बार तो मैं मर ही जाता।' वे पहले की तरह मृदु-मुस्कान के साथ बोले, 'मरोगे नहीं, अभी बहुत काम बाकी है।' ये शब्द सुनते ही मुझे स्वप्न की बात याद आ गई और मैं मन ही मन परम दयालु गुरुदेव की जय बोलने लगा।

इस घटना के एक वर्ष बाद मेरे बड़े दामाद को कालरा हुआ। समाचार पाते ही मैं अनन्यशरण हो श्रीगुरुदेव के चित्रपट के आगे जा अपना दु:ख निवेदन करने लगा। अकस्मात् चित्र जैसे हँसते हुए बोला, 'सब शिव शिव।' मैंने समझ लिया कि दामाद बचेगा नहीं। ऐसा ही हुआ। दूसरे दिन ही उसने नित्यधाम गमन किया। मेरी स्त्री शोकाकुल हो गई। मेरी बड़ी लड़की ने उनसे कहा, 'माँ, शोक करने का क्या कारण है? जिसका कर्म समाप्त हो गया, वह चला गया, इसमें दु:ख करने की क्या बात है? समझ लो कि श्रीगौरांग के समान तुम्हारे दामाद ने भी संन्यास ग्रहण कर लिया।' हरिमति की बात सुन मैं समझ गया कि

यह सब श्रीगुरुदेव की कृपा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

इसी समय कृपामय गुरुदेव ने अपने हाथ से एक पत्र लिखकर भेजा, 'शिव शिव। तुम तो सदा मुख से 'शिव शिव' उच्चारण करते रहते हो, इस घटना को भी समझना, 'शिव शिव'। दु:ख और चिन्ता करने का कोई कारण नहीं। पत्र पाकर एकबार श्रीधामपुरी चले आना।' गुरुदेव की आज्ञा पाकर ग्रीष्मावकाश में श्रीधाम चला गया। मंगल-स्वरूप श्रीगुरुदेव के दर्शन करते ही सारा दु:ख दूर हो गया। मधुमय संग के प्रभाव से संसार की सारी बातें भूल गया। पन्द्रह दिन के लिए कह कर गया था, पर आठ महीने बीत गये और मुझे पता भी न चला। सदा ही ऐसा लगता जैसे अभी कुछ ही दिन पहले आया हूँ।

पुरी पहुँच कर कोई चार-पाँच दिन तक जगन्नाथजी के दर्शन नहीं किये, क्योंकि इससे पहले मेरे गाँव का रामचन्द्र सूत्रधर नामक एक व्यक्ति कुछ लोगों के संग में पड़ कर जगन्नाथ दर्शन करने गया था। वह हतभाग घर लौटते ही कहने लगा, 'हाय रे! कुसंग में पड़कर मैंने इतने रुपये भूत को खिला दिये। यह मेरा नरक-भोग ही समझो। इतने रुपये खर्च करके देखा क्या? तीन काठ के कुन्दे!' पाँच सात दिन बाद ही उसके भयानक पीड़ा हुई और उसी में मृत्यु हो गई। मैं इसीलिये अकेला-दर्शन करने नहीं गया। मन ही मन संकल्प कर लिया था कि गुरुदेव अपने साथ ले जाकर दर्शन करायेंगे तभी करूँगा। ऐसा ही हुआ। अन्तर्यामी गुरुदेव एक दिन प्रात: काल बोले-'मास्टर, चलो मेरे साथ, जगन्नाथ दर्शन कर आयें।' मेरी मनोकामना पूर्ण हुई। मैं प्रसन्न हो उनके साथ चल दिया। मन्दिर में प्रवेश कर उँगली से संकेत करते हुए बोले- 'मास्टर, यह जो दाहिनी ओर हैं, श्रीबलदेवजी हैं, मध्य में सुभद्रादेवी और बाईं ओर श्रीजगन्नाथदेव। गुरुदेव की कृपा से मुझे मानो साक्षात् ही दर्शन होने लगे। वे सचल-विग्रह जैसे जान पड़ने लगे। उनकी मधुर मूर्ति के दर्शन कर मेरे नेत्र और मन दोनों तृप्त हो गये। उनकी ओर से नेत्र हटाने में कष्ट होने लगा। कैसा सुन्दर अपूर्व दृश्य था, मैं भाषा में व्यक्त नहीं कर सकता।

एक दिन मैंने उनसे पूछा, 'भेख लिये बिना क्या प्रेमभक्ति प्राप्त नहीं हो सकती?'

बाबाजी-क्यों नहीं हो सकती? तुम अपने पुत्र कन्यादि से जैसा प्रेम करते हो वैसा ही दूसरों के पुत्र कन्यादि से प्रेम करना सीखो। क्रमश: प्रेम-भक्ति की अवस्था का अनुभव करने लगोगे।

मैं-अच्छा, तो बी. एल. पास कर वकील क्यों न बन जाऊँ। अभी तो समय है।

बाबाजी-अपनी विषय चिन्ता लेकर ही अस्थिर हो, फिर दूसरों की विषय-चिन्ता लेकर अपनी दुर्दशा करने की क्या जरूरत है। तुम शिक्षक का ही कार्य करो। बालक भी प्रकृत साधु हैं, उन्हीं का संग करो। प्रेम-भक्ति लाभ करोगे।

झाँजपीटा मठ में एक हस्तलिखित 'भक्ति-रत्नाकर' ग्रन्थ था। एक दिन बाबाजी महाशय ग्रन्थ मेरे हाथ में देकर बोले, 'मास्टर मनोयोगपूर्वक भक्ति रत्नाकर का पाठ करो, बड़ा ही सुन्दर ग्रन्थ है। परन्तु याद रखना कि मैं परीक्षा लूँगा।' मैंने दस-बारह दिनों में ग्रन्थ समाप्त कर लिया और कहा, 'मैं पढ़ चुका, अब आप परीक्षा ले लें।'

बाबाजी-अच्छा, भक्ति रत्नाकर से क्या सार संग्रह किया, संक्षेप में बतलाओ तो?

मैं-श्रीमन्महाप्रभु ने यौथिक भजन प्रणाली का प्रकाश किया अर्थात् दलबद्ध हो भक्तों के साथ स्वयं नाम प्रेम का प्रचार किया और अभिन्न कलेवर नित्यानन्द प्रभु, अद्वैत प्रभु आदि द्वारा उसी प्रकार प्रचार कराकर स्वेच्छामय प्रभु ने सांगोपांग पार्षदगण सहित अप्रकट लीला का अभिनय किया। उसके पश्चात् श्रीनिवास आचार्य प्रभु, नरोत्तम ठाकुर, श्यामानन्द प्रभु ने ठीक उसी प्रकार नाम-प्रेम प्रचार किया। उसके पश्चात् कुछ दिनों तक यौथिक भजन की प्रथा शिथिल हो गई और महात्मागण अपने-अपने भाव के अनुसार भजन करने लगे। अब आपकी कृपा से हमें फिर उसी भजन प्रणाली का आभास मिल रहा है। अन्यान्य अवतारों की अपेक्षा महाप्रभु की लीला में माधुर्य का प्राचुर्य है। नाम-प्रेम वितरण महाप्रभु का अपना कार्य है। मेरा

विश्वास है कि श्रीमन्महाप्रभु बीच-बीच में स्वयं सपरिकर प्रकट हो इस कार्य का समाधान करते रहते हैं।

श्रीगुरुदेव मेरी बात सुन रहे थे और उनके सर्वांग में पुलकादि सात्विक विकार हो रहे थे। मेरी बात समाप्त नहीं हो पाई थी कि वे प्रेम गद्गद कण्ठ से गाने लगे-

जय रे जय रे जय, ठाकुर श्रीनरोत्तम,
प्रेम-भकति महाराज।
जा कर मन्त्री, अभिन्न कलेवर,
रामचन्द्र कविराज॥

इत्यादि।

पद गाते-गाते मेरी पीठ पर थप्पड़ मारते हुए बोले, 'मास्टर, खोल बजा!' मैंने इससे पहले कभी खोल नहीं बजाया था। पर उनके आदेश से बजाने लगा। अपना वादन सुनकर मैं स्वयं अवाक् रह गया। इसके बाद से जब भी कीर्तन करते मुझसे खोल बजाने को कहते। मैं बड़े बाबाजी महाशय का एक बड़ा वादक हो गया।

एक दिन बोले, 'मास्टर, मेरे प्रभु बड़े दयालु हैं। उन्होंने कलिहत माया-मुग्ध जीवों के प्रति करुणा कर जो यौथिक भजन का प्रकाश किया है, उससे जीवों की चिन्ता बिलकुल जाती रही।'

मैं—मुझसे तो साधन-भजन कुछ भी नहीं हुआ, मेरी क्या गति होगी?

बाबाजी—देख मास्टर, अपनी चिन्ता स्वयं न कर किसी के ऊपर निर्भर कर, सब अभाव मिट जायेगा।

मैं—अच्छा, कृष्ण-प्रेम कैसे समझा जाय?

बाबाजी—कृष्ण-प्रेम का दृष्टान्त त्रिजगत में पाना कठिन है। पर यदि तुम निःस्वार्थ भाव से किसी से प्रेम करने लगो तो प्रेम का किंचित् आभास मिल जायेगा। मेरा भजन क्या है, जानते हो। ये जो बालकगण मेरे साथ रह भजन साधान करते हैं, मैं उनका स्मरण करता हूँ।

श्रीगुरुदेव के इस उपदेश का मर्म मैं यह समझा कि यौथिक भजन का यही एक अपूर्व रहस्य है। मैं यदि भजन-साधन न भी कर सकूँ तो मेरे गुरुभाई बहन जो भजन-साधन करते हैं, उनका स्मरण करना भी मेरा प्रधान भजन होगा।

परम करुणामय श्रीगुरुदेव की करुणा की कथा एक मुख से कहकर समाप्त नहीं की जा सकती। इस अधम के प्रति उनकी इतनी कृपा है कि मेरे पुत्र, कन्या, स्त्री और आत्मीय जनों को यहाँ तक कि मेरे छह महीने की शिशु संतान हरिचरण को भी दीक्षित कर मुझे सगोष्ठी चिर जीवन के लिये अङ्गीकार किया है। मेरे बहनोई श्रीमान अनुकूलचन्द्र हाजरा पर उन्होंने इतनी कृपा की है कि उसकी कोई सीमा नहीं। यौवनकाल में ही उन्हें स्त्री-वियोग हुआ पर दूसरा विवाह न कर उन्होंने बीस वर्ष तक विशुद्ध चरित्र से हुगली जिले के अन्तर्गत खाना कुल कृष्णनगर के निकट गणेश बाजार गाँव में डाक्टरी कर विशेष ख्याति प्राप्त की है और श्रीगुरुदेव के कृपा-प्रभाव से नाम-प्रेम-प्रचार में सहायता की है। इस प्रकार के सच्चरित्र युवक प्रायः देखने में नहीं आते। मैंने श्रीगुरुदेव के निकट रहकर अयाचित भाव से उनके जिस उपदेशामृत और उनकी जिस कृपा-सुधा का पान किया है, उसका एक कण भी भाषा द्वारा व्यक्त करने में असमर्थ हूँ। इस लेख में उनकी कृपा का आभास मात्र भी प्रकाश नहीं कर सका हूँ। इस लिए सब लोग मुझे क्षमा करें।

श्रीगुरुदेव के दर्शनार्थ उत्तराखण्ड गमन

देखते-देखते श्रीजगन्नाथदेव की स्नान-यात्रा आ गई। बाबाजी महाशय ने परमानन्द पूर्वक संगीगण और आगन्तुक वैष्णवों को साथ ले कीर्तनानन्द में स्नान-यात्रा, गुंडीचा मार्जन और रथ-यात्रा सम्पन्न की। एक दिन वे गम्भीर भाव में बैठे थे और मौन थे। कोई डेढ़ घण्टे के बाद जलदगम्भीर स्वर में राधाविनोद को आवाज दी। राधाविनोद के आते ही बोले, **'यदि तुम अपना मंगल चाहते हो तो निताइचाँद के आदेश से अविलम्ब पैदल ही चारों धाम के लिए रवाना हो जाओ। जितना विलम्ब करोगे उतना ही तुम्हारा अनिष्ट होगा।' यह आदेश सुनकर सब मर्माहत हो गये।**

ललितादासी कातरभाव से अनुरोध करते हुए बोलीं, 'इस बालक ने कभी भी कठोर जीवन व्यतीत नहीं किया। इतना कष्ट कैसे सह सकेगा। यदि किसी कुसङ्ग में पड़ गया तो इसका सारा जीवन ही नष्ट हो जायेगा। इसलिए आप इसे ऐसी कठोर आज्ञा न दें।' दूसरे साथी भी इसी प्रकार अनुरोध करने लगे। तब वे उदास होकर बोले, 'अच्छा, तुम्हारी क्षमता हो तो रखो, मुझे क्या आपत्ति है?'

एक दिन अपराह्न में ललितादासी को बुलाकर बोले, 'देखो, किसी विशेष प्रयोजन से मुझे कहीं जाना है। तुम लोग सब यत्न पूर्वक सेवा-कार्य करना।'

ललिता—वापस कब तक आयेंगे?

बाबाजी—बहुत दिन तो नहीं लगने चाहिये, फिर भी निताइचाँद जानें।

ललिता—साथ में और कौन-कौन होगा?

बाबाजी—कोई नहीं।

ललिता—अकेले कैसे जायेंगे? दो एक व्यक्ति तो अवश्य ही साथ होने चाहिएँ।

बाबाजी—किसी एक व्यक्ति को साथ लेने से दूसरे दु:ख मानेंगे। इसलिए किसी को भी नहीं ले जाऊँगा।

ललिता—तो बालक हरिदास को ही ले लीजिए। इसके जाने से किसी को दु:ख न होगा।

ललितादासी की बात पर उन्होंने कोई आपत्ति न की। 'मौनं सम्मति लक्षणम्' जानकर ललितादासी हरिदास को यत्नपूर्वक इनकी सेवा-शुश्रूषा करने के लिए उपदेश करने लगीं और प्रयोजनीय द्रव्यादि की व्यवस्था करने लगीं। बाबाजी महाशय दूसरे दिन जगन्नाथ दर्शन कर और सबसे कुछ दिनों के लिए विदा माँगकर आश्रम लौटे और ललितादासी से सब व्यवस्था करने को कहा। फिर स्नानाह्निक कर तथा महाप्रसाद ग्रहण कर हरिदास को साथ ले स्टेशन की ओर चल दिये। आश्रमवासी और दूसरे भक्त-वृन्द दु:खी हो उनके पास जाने लगे। ट्रेन छूटने के समय वे सबको मधुर वाक्यों से प्रबोध दे मेदिनीपुर को रवाना हुए। मेदिनीपुर में मुख्तार बंकिमबाबू के घर दो दिन रहे। वहाँ से यह कहकर कि मैं आठ दिन में लौट आऊँगा और हरिदास को उसी स्थान पर छोड़ अकेले कहीं चले गये।

इधर राधाविनोद इस आशा से कि बाबाजी महाशय उसे साथ लेकर बंगाल जायेंगे, कई दिन पुरी में रहा। पर जब वे हरिदास को साथ लेकर चले गये तो उसे बड़ा कष्ट हुआ और वह चारों-धाम जाने का उद्योग करने लगा। फणि बोला, 'बाबाजी महाशय मुझे साथ नहीं ले गये। इसलिए मैं भी तुम्हारे साथ चारोंधाम चलूँगा।' इस प्रकार बाबाजी महाशय के जाने के तीन चार दिन बाद राधाविनोद, फणि, गोविन्दानन्द परिव्राजक, ईश्वरदास, रूपदास, सनातनदास और नीलमाधवदास, ये सात व्यक्ति चारोंधाम के लिए रवाना हुए।

आठ दिन के बजाय पन्द्रह दिन हो गये पर बाबाजी महाशय का कोई सम्वाद न मिला। तब बंकिमबाबू ने पुरी कलकत्ते और नवद्वीप खबर भेजी। खबर पाते ही बहुत से लोग उनकी खोज में निकल पड़े। रामदादा मेदिनीपुर गये। जब वहाँ बाबाजी महाशय का कुछ पता न लगा तो हरिदास को साथ ले वे कलकत्ते चले गये। बाबाजी महाशय लापता हैं, यह खबर अखबारों में छप गई। उपर्युक्त सात व्यक्ति चारोंधाम जा रहे थे। वाल्टेयर पहुँच कर उन्हें अखबारों से बाबाजी महाशय के लापता होने की खबर मिली। यह खबर पाते ही फणि और आगे न जाकर कलकत्ते चला गया। रूपदास, सनातनदास और नीलमाधवदास भी बाबाजी महाशय की खोज में अन्य-अन्य दिशाओं को चल दिये। केवल राधाविनोद, गोविन्दानन्द परिव्राजक और ईश्वरदास चारों-धाम को गये।

डेढ़ महीने बाद श्रीधाम नवद्वीप से श्रीयुक्त गोपालचन्द्र घटक महाशय ने कलकत्ते के मिर्जापुर मठ में इस प्रकार का पत्र भेजा-'तुम लोग दादा के लिए कोई चिन्ता न करना। वे तीन दिन हुए श्रीधाम आ गये हैं और दस दिन बाद कलकत्ता जायेंगे।' सम्वाद पाते ही रामदादा हरिदास आदि कई व्यक्तियों को साथ ले श्रीधाम नवद्वीप गये। फणि को पुलिनदादा से बाबाजी महाशय का सम्वाद मिला। वह नवद्वीप

जाने के लिए व्याकुल हो उठा। पुलिनदादा प्रियनाथ मल्लिक महाशय के आगरपाड़ा के बगीचे में बाबाजी महाशय के रहने की व्यवस्था कर फणि को साथ ले श्रीधाम नवद्वीप चले गये। रात में दस बजे घटक महाशय के घर पहुँचे। वहाँ उन्हें पता चला कि बाबाजी महाशय सबेरे ही किसी भक्त के घर चले गये हैं। रात्रि में वहाँ जाने की सुविधा न होने के कारण दूसरे दिन प्रात: पुलिनदादा, फणि और घटक महाशय एक नाव में बैठकर उस भक्त के यहाँ गये। गंगा चढ़ी हुई थी। इसलिए नौका उसके घर तक पहुँच गई। बाबाजी महाशय पुलिनदादा और फणि को देखते ही उछलकर नाव में आ गये और पुलिनदादा की गोदी में बैठ बालक के समान अश्रुगद्‌गद कण्ठ से बोले, 'तुम्हें बड़ा कष्ट हुआ है।'

पुलिन—कष्ट की बात मैं क्या कहूँ। प्राणहीन देह को लेकर चारों ओर खोज कर रहा था। अच्छा बताइए, किसी से बिना कुछ कहे आपके इस प्रकार चले जाने से हमारे प्राण किस प्रकार रह सकते थे?

बाबाजी—मैं तो पागल हूँ। मुझे निताइचाँद कब कहाँ ले जाते हैं, मैं नहीं जानता। पर तुम्हारे इस प्रकार चिन्ता करने से कैसे चलेगा?

पुलिन—कहाँ गये थे आप?

बाबाजी—निताइचाँद उत्तराखण्ड में श्रीगुरुदेव के दर्शन के लिए ले गये थे।

पुलिन—आप प्राय: ही अपने गुरुदेव की बात किया करते हैं, पर हमें तो आपने एकबार भी दर्शन नहीं कराये।

बाबाजी—वे तो इधर कभी आते नहीं, मैं कैसे दर्शन करा सकता हूँ?

पुलिन—यदि हमें मालूम होता कि आप गुरुदेव के दर्शन के लिए जा रहे हैं तो आपके साथ जाकर हम भी दर्शन कर लेते।

बाबाजी—तेरी अभी वह अवस्था नहीं हुई जिससे तू उनके दर्शन पा सके। वे साक्षात् नित्यानन्द हैं, जिसे कृपाकर आकर्षित करते हैं वही उनके दर्शन कर सकता है।

पुलिन—वहाँ से और कहाँ गये थे?

बाबाजी—उनके ही आदेश से एकबार पूर्वाश्रम दर्शन करने गया था, वहाँ होकर श्रीधाम आया हूँ। इस प्रकार परमानन्दपूर्वक पाँच-सात दिन श्रीधाम रहकर बाबाजी महाशय कलकत्ता आ गये और आगरपाड़ा के बगीचे में रहने लगे।

आगरपाड़ा के बगीचे में

बाबाजी महाशय के कलकत्ते आने की खबर पाकर बहुत से भक्त उनके दर्शन करने आने लगे। एक दिन श्रीधामपुरी से श्रीयुत जगदीशबाबू आये। उन्हें कुछ उन्माद सा हो गया था। वे एक दिन आह्निक करते समय श्रीराधागोविन्द का चरणछापा लेकर गोपीचन्दन से अपने पैर के ऊपर नूपुर के आकार की छाप देने लगे। बाबाजी महाशय बोले, 'देखो, जगदीशबाबू, तुम्हारा यह काम ठीक नहीं, इससे अपराध होता है।' जगदीशबाबू जोर से बोले, 'मैं तो कुछ भी नहीं कर रहा हूँ। यह सब तुम्हीं तो करा रहे हो। अपराध होगा तो तुम्हें होगा, मेरा क्या।' यह सुनकर बाबाजी महाशय चुप रहे।

तीन-चार दिन बाद एक दिन जगदीशबाबू पूर्ववत् आह्निक के उद्देश्य से छापा-तिलक इत्यादि निकाल कर हाथ पर रज घिस रहे थे। उसी समय एक कौवा आया और उनका चरण-छापा ले गया। सब लोग यह देखकर अवाक् रह गये। एक बूढ़े व्यक्ति ने बाबाजी महाशय को जब यह सम्वाद दिया तो वे जगदीशबाबू के पास गये और बोले, 'अब भी तुम्हारी समझ में नहीं आ रहा है। जिसका छापा था, उसीका काम है, नहीं तो क्या इतना बड़ा छापा कौवा ले जा सकता था? एक तो चरण-छापा और उसमें भी उनका नाम। नाम और नामी अभिन्न हैं। नामी से भी नाम का माहात्म्य बड़ा है। तुम उसकी अवमानना करो तो क्या वह उन्हें सह्य होगा? बहुत ठीक हुआ है।'

जगदीश—कौवा-औवा कुछ नहीं, यह सब तुम्हारी चतुराई है, खूब समझता हूँ। मैं नास्तिक था, आस्तिक बनाया; घोर अविश्वासी था, विश्वासी बनाया; विधि-बद्ध होकर निष्ठा से भक्ति का याजन करता था, रागानुगा

भक्ति समझा कर स्वेच्छाचारी बनाया; गृहस्थ था, उदासीन कर पागल बनाया। अब और तुम्हारे मन में क्या है, तुम जानो।

बाबाजी—अच्छा, एक जीव के प्रति यदि तुम्हारा इतना विश्वास है तो परोक्षानुभूति द्वारा उसके प्रत्यक्ष आदेश का उल्लंघन क्यों करते हो? प्रत्यक्ष के रहते अनुमान करना उचित नहीं।

तब जगदीशबाबू बहुत व्याकुल भाव से उनके चरण पकड़ कर रोते-रोते बोले, 'तुम्हारी जो इच्छा हो करो, मैं और क्या कर सकता हूँ?'

सखी किशोरीदासी का विवरण

एक दिन बाबाजी महाशय प्रात: मुँह धो रहे थे। अकस्मात् मुख से कुछ रक्त बह निकला। उपस्थित सङ्गीगण यह देखकर चितिन्त हुए। उन्होंने पूछा, हम लोगों ने तो और कभी आपकी ऐसी अवस्था देखी नहीं थी। अकस्मात् रक्त आने का क्या कारण है? क्या कुछ शारीरिक व्याधि है?

बाबाजी—श्रीधामपुरी में अचानक कोई विपत्ति आ गई है। इसी लिये मेरी यह अवस्था हुई है।

इतना कह अपनी कोठरी में जा सिर से पैर तक चादर ओढ़कर लेट गये। कोई आध घण्टे बाद अकस्मात् अर्धस्फुट स्वर में 'किशोरी' शब्द उच्चारण किया और फिर चुप हो गये। साढ़े दस बजे उठकर बोले, 'मैं आज ही पुरी जाऊँगा। पुलिन से कह दो।' इतना कह नहीं पाये थे कि पुलिन दादा एक टेलिग्राम हाथ में लिये भागते हुए आये। इन्होंने पूछा, 'क्यों पुलिन, कैसा कागज है हाथ में?' पुलिनदादा को कुछ इधर-उधर करते देख बोले, 'कहो, कहो, क्या बात है? मैं पहले ही जानता हूँ। राधा-अष्टमी के दूसरे दिन राधारानी ने किशोरीदासी को अंगीकार कर लिया है। अच्छा ही हुआ। उसने निरपराध जीवन यापन कर राधारानी की कृपा प्राप्त की। मेरे भाग्य में तो होगा नहीं। जो भी हो मैं आज ही पुरी जाऊँगा। व्यवस्था कर दो।' स्नानादि नित्य-कृत्य समापन-पूर्वक महाप्रसाद ग्रहण कर और कुछ विश्रामकर दो बजे के लगभग वे सब को साथ ले आगरपाड़ा जा उपस्थित हुए।

अकस्मात् उनके पुरी जाने की बात सुन आगरपाड़ा निवासी बहुत से लोग आकर उनके पुरी जाने का कारण पूछने लगे। वे बोले, "अद्वैतदास नामक बीस वर्ष की अवस्था का एक बालक कई साल पहले कलकत्ते से मेरा साथ छोड़ वृन्दावन चला गया था। तीव्र वैराग्य धारण कर वृन्दावन में रहता था। वृन्दावन के सब स्थानों का दर्शनकर वह बरसाने जाकर रहने लगा। वहाँ श्रीजी के मन्दिर में झाड़ू लगाया करता था। किसी से कुछ बातचीत नहीं करता था। अपने मन से झाड़ू लगाता था और संध्या समय बड़े अनुराग से अपने शरीर की चादर सिर पर डालकर श्रीजी के सम्मुख नृत्य करता था। बालक से सब लोग बड़ी प्रीति करते थे। एक दिन प्यारीजी ने स्वप्न में उससे सखीवेश धारणकर नृत्य करने को कहा। इस प्रकार आदिष्ट होने पर भी तदनुरूप प्रत्यक्ष आदेश या प्रमाण न होने के कारण पूर्ववत् ही नृत्य करता रहा। तीन दिन बाद रात में फिर प्यारीजी बोलीं, 'क्यों मैंने जैसा कहा था, तूने किया नहीं। कल अपराह्न सात बजे मैं एक वस्त्र भिजवा दूँगी। उसे पहनकर मेरे सामने नृत्य करना। वही तेरा सिद्ध वेश है।' इतना कह वे अन्तर्धान हो गईं।

"दूसरे दिन यथासमय प्रियाजी के सेवकों में से एक वृद्धा स्त्री एक साड़ी और एक चोली लेकर आई और अद्वैत को देते हुए बोली-'बाबा, तुम प्यारीजी के सम्मुख रोज नृत्य करते हो, मुझे देखकर बड़ा सुख होता है। यह साड़ी और चोली पहन कर नाचा करना।' इतना कह वह द्रुतगति से चली गई। क्रमश: उसकी इस वेश में इतनी आसक्ति हो गई कि वह प्रयत्न करने पर भी उसे छोड़ न सका। संगी साथी उसे किशोरीदासी कहकर पुकारने लगे। एक वर्ष तक परमानन्द पूर्वक व्रज में रहकर वह पुरी चला गया और झाँजपीटा मठ में राधाकान्तदेव की सेवा करने लगा। उसका अपूर्व भाव-विकास, उसकी आश्चर्यजनक लीला-स्फूर्ति और अभावनीय सेवा-परिपाटी देख सब विमुग्ध हो जाते। उसके सेवा-काल में श्रीविग्रह का ऐसा अपूर्व माधुर्य और ऐसा सौन्दर्य विकास हो गया था कि लोग सोचने लगे कि यह वही सेवा-विग्रह है या दूसरा। कभी-कभी तो मुझे भी भ्रम हो जाता। उस बालक की

साधना पूर्ण हो चुकी थी, इसलिए राधारानी ने कल (राधाष्टमी के दूसरे दिन) उसे सदा के लिए अंगीकार कर नित्यलीला में नित्यसेवा में नियुक्त किया। उसकी अवस्था देख मुझे अवश्य परमानन्द प्राप्त हुआ। निताइचाँद ने कृपाकर उसका संग दिया था। उसको देखते ही मुझे लीला-स्फूर्ति होती थी। अस्फुट स्वर में उसकी लीला कथा सुन मेरा हृदय जुड़ जाता था और उसकी सेवा का विकास देख प्राण शीतल हो जाते थे। उसका अब अभाव हो गया। 'कृपाकरि कृष्ण मोरे दिया छिल संग। स्वतन्त्र कृष्णेर इच्छा हइल संग-भंग।'

बाबाजी महाशय आरक्तिम-नयन, अश्रुगद्गद-कण्ठ, और विभोर भाव में इस प्रकार और न जाने क्या-क्या कहने लगे। उनके मुख से किशोरीदासी का गुणानुवाद सुन सब लोग विस्मित भाव से उसके लिए दु:ख प्रकाश करने लगे। तब उन्होंने सबसे विदा ली और नौका पर बैठे। तेलकल-घाट पहुँच कर वहाँ से घोड़ा-गाड़ीकर चार बजे के लगभग हावड़ा कोंड़ार के बगीचे में श्रीयुक्त दीनबन्धु काव्यतीर्थ महाशय के घर पहुँचे। काव्यतीर्थ महाशय अकस्मात् गुरुदेव को पाकर आनन्द से अधीर हो गये और सोचने लगे कि क्या करें, कहाँ बिठायें। इधर राधागोविन्द के भोगराग की व्यवस्था होने लगी। बहुत थोड़े समय में बाबाजी महाशय के आगमन की खबर सब जगह फैल गई। वहाँ के जमींदार श्रीयुक्त कालीदास बंद्योपाध्याय, प्रियनाथबाबू आदि कई संभ्रान्त भक्त आकर उनसे नाना रूप तत्वकथा कहने-सुनने लगे। संध्या निकट देख काव्यतीर्थ महाशय ने कीर्तन आरम्भ किया। पंडित काव्यतीर्थ आज अभीष्टदेव को अपने घर में पाकर आनन्द में सुधबुध खो बैठे। यथासमय कीर्तन समाप्त कर और श्रीराधागोविन्द का प्रसाद ग्रहण कर वे हावड़ा स्टेशन गये। श्रीधामपुरी जाने वाली गाड़ी तैयार खड़ी थी। मधुर वाक्यों से भक्तों को प्रबोध देते हुए उनसे विदा ली और श्रीधामपुरी के लिए रवाना हुए।

दूसरे दिन आठ बजे के लगभग गाड़ी पुरी स्टेशन पहुँची। ये लोग ताली बजा-बजाकर कीर्तन करते हुए झाँजपीटा मठ पहुँचे।

ललितादासी आदि आश्रमवासीगण बाबाजी महाशय को पाकर समकालीन सुख-दु:ख में निमग्न हो गये। सब किशोरीदासी को यादकर कातर भाव से रुदन करने लगे। बाबाजी महाशय ने सबको सान्त्वनापूर्ण वाक्यों से आश्वस्त किया और किशोरी दासी के बारे में पूछा। तब ललितादासी बोलीं, 'आप जब यहाँ से चले गये तो एक दिन कलकत्ते से खबर आई कि आप किसी से कुछ कहे सुने बिना कहीं चले गये हैं। खबर पाते ही सब लोग बहुत चिन्तित हो गये। मैं रसोई बना रही थी। अकस्मात् किशोरीदासी मेरे पास आई और बहुत कुछ वार्तालाप करने के बाद व्याकुल होकर बोली, 'माँ तुम्हारा शरीर तो प्राय: अस्वस्थ रहता है। तुम यदि हमसे पहले ही मर गईं तो कौन हमारे खाने-पीने के लिए इतना यत्न करेगा। बाबाजी महाशय तो हमें छोड़कर आजकल प्राय: ही जगह-जगह भ्रमण कर जीवों का उद्धार कर रहे हैं। श्रीयुत नवद्वीपदादा, गोकुलदादा, चैतन्यदादा आदि भी हमारी ममता त्यागकर और प्राकृत चक्षुओं के अन्तराल में रहकर अपनी-अपनी अभीष्ट वस्तु का भोग कर रहे हैं। तुम भी चली गईं तो हम किसके पास रहेंगे? कौन हमारी ओर दृष्टिपात करेगा?'

मैं—भय की क्या बात है माँ, तुमने जिनके चरणों का आश्रय लिया है उनके चरणों में मेरे समान शत-शत दासियाँ लोटतीं हैं। तुम लोग उन्हें प्राण से भी अधिक प्रिय हो। तुम्हें किस प्रकार का अभाव है? प्रभु ने कृपाकर जो सेवा तुम्हें दे रखी है उसी में हृदय से लगी रहो। तुम्हारी अभीष्ट-पूर्ति होगी।

किशोरी—नहीं माँ, तुम्हारी बातों से मेरी व्याकुलता नहीं मिटती। मेरा चित्त बहुत व्याकुल हो रहा है। क्या करूँ?

मैं—पगली, इतनी अस्थिर क्यों हो रही है? हमारे प्रभु वांछा-कल्पतरु हैं। उनसे कह, वे वांछा पूर्ण करेंगे।

वांछा-कल्पतरु नाम सुनते ही वह प्रसन्न होकर बोली, 'वांछा-कल्पतरु हैं तो कोई चिन्ता नहीं। मैं तुम्हारे सामने प्रतिज्ञा करती हूँ कि मैं सच्चे हृदय से उनसे प्रार्थना कर तुमसे पहले ही शरीर छोड़ने का प्रयत्न करूँगी।'

मैं उसकी बात को हँसी में टालते हुए बोली, 'अच्छा, हो गया। इस तरह फालतू बातों में समय नष्ट करने की जरूरत नहीं। जाओ सेवा-कार्य करो।' वह तुरन्त ठाकुर-मन्दिर में चली गई और मैं अपना काम करने लगी।

कई दिन बीत गये। नन्दोत्सव के दूसरे दिन संध्या समय कीर्तन के पश्चात् उसकी ओर देखते हुए मैंने कहा-'किशोरी, आजकल तुम्हारा मुख बहुत मलिन देखा करती हूँ। कुछ चिन्तित जान पड़ती हो, क्या बात है?'

किशोरी-नहीं माँ, कोई खास बात नहीं। केवल यही सोचा करती हूँ कि मेरी वांछा कब पूर्ण करेंगे।

(उस दिन की बात भूल जाने के कारण) मैंने उपासना के सम्बन्ध में कहा-'परम करुणामयी प्यारीजी से कहो। उन्होंने जब सेवा में लिया है तो चिन्ता की क्या बात है?'

किशोरी—मुझे कोई चिन्ता नहीं है, फिर भी तुमसे दो बातों की प्रार्थना करती हूँ, तुम पूर्ण करने की प्रतिज्ञा करो तो कहूँ।

मैं—अरे पगली, ऐसी कौन सी बात है कि मुझे प्रतिज्ञा करनी होगी। अच्छा, मैंने प्रतिज्ञा की, तू जो कहेगी, उसे यथाशक्ति पूरा करने की चेष्टा करूँगी।

किशोरी—मेरी पहली प्रार्थना है कि मेरे अन्तिम समय तुम मेरे सिद्ध नाम का मुझे स्मरण करा देना। दूसरी प्रार्थना है कि उस समय मेरी असावधानी के कारण वस्त्रों के अस्त-व्यस्त हो जाने से मेरी लाज न जाने पाये। मुख्य बात यह है कि अन्तिम समय मेरे भावोचित वेश के विपरीत कोई बात न हो, इसका तुम्हें विशेष रूप से ध्यान रखना होगा।

किशोरी दासी की उस समय की भाव-भंगी और उसकी बातें मेरे हृदय में चुभकर रह गईं। उस दिन मैं उन्हें उपहास में न टाल सकी। कुछ कातर भाव से बोली, 'किशोरी, तुम सदा ही इस प्रकार की हृदयविदारक बात कहकर मुझे क्यों आघात पहुँचाया करती हो? ऐसी सुमधुर सेवा पाई है, सेवा करो।'

किशोरी—माँ मैं क्या करूँ? मेरा मन कहता है कि मैं राधाष्टमी तक भी सेवा कर पाऊँगी या नहीं, इसमें सन्देह है।

मैं किसी और काम के लिए चली गई। सचमुच राधाष्टमी के पूर्व दिन मुझे बुलाकर बोली, 'माँ, मैं आज सेवा न कर सकूँगी। गोवर्धन को सेवा में नियुक्त कर दो।' मैंने ऐसा ही किया। परन्तु मेरा मन बहुत उदास हो गया। कविराज धूलिरथ को बुलाकर दिखाया तो वे बोले, 'इसकी अवस्था तो कुछ भी खराब नहीं जान पड़ती। आप लोग इतना चिन्तित क्यों हैं? कोई भय की बात नहीं।' मैं उनकी बात का पूरा भरोसा न कर सकी। एक डाक्टर को बुलाया। वे पहले तो हँसते-हँसते अस्थिर हो गये, फिर बोले-'आप लोग इसके मरने के कोई लक्षण देख रहे हैं?' मैंने कहा, 'हम लोग तो नहीं देख रहे हैं, यह आप ही कह रही हैं।' डाक्टर ने कहा, 'कोई भय नहीं। साधारण सा ज्वर है, मैं औषधि दे रहा हूँ, आज ही ठीक हो जायेंगी।' किशोरी ने औषधि खाने में अनिच्छा प्रकट की। जब मैंने बहुत अनुरोध किया तो मधुर मुस्कान के साथ बोली, 'अच्छा, तुम्हारी जो इच्छा हो, करो।' मैंने औषधि दी।

दूसरे दिन राधाष्टमी थी। उत्सवादि में व्यस्त रहने के कारण मैं सबेरे के समय उसकी देख-रेख न कर सकी। अपराह्न में उसने मुझे बुलाया और बोली, 'मेरे मन में केवल यह दुःख है कि अन्तिम समय बाबाजी महाशय के दर्शन न कर सकी।' मैंने कहा-'किशोरी, बहुत ही साधारण ज्वर है, इतनी क्यों भयभीत हो रही हो?'

किशोरी—माँ मैं सच कहती हूँ कि राधारानी की कृपा और तुम्हारे आशीर्वाद से ऐसा लगता है कि कल साढ़े आठ और नौ के बीच मुझे अवश्य जाना होगा। तुम मेरी बात का विश्वासकर तदनुरूप कार्य करो, नहीं तो अनुताप होगा और मेरा यह अनुरोध है कि जैसे नित्य प्रातःकाल ही ठाकुरजी की रसोई की तैयारी होने लगती है, कल ऐसा न किया जाय।

मैं स्थिर न रह सकी और रोते-रोते बोली-'ऐं, किशोरी! तूने जो कहा था, वही करेगी? क्या सचमुच हमें छोड़कर व्रज चली जायेगी?'

किशोरी—माँ, तुम्हारे आशीर्वाद से लगता है, ऐसा ही होगा। तुम्हारे दु:ख करने का कोई कारण नहीं, तुम खुशी-खुशी मुझे सजाकर व्रज भेज दो। माँ मैं जितने दिन जीवित रहूँगी, विपत्ति की आशंका रहेगी। 'मरबे मेय उड़वे छाई, तबे मेयेर कलंक नाईं।' मैं तुम्हारे सामने निष्कलंक होकर जा रही हूँ, यह तुम्हारे लिए बड़े आनन्द की बात है। फिर भी बाबाजी महाशय के दर्शन न कर सकी और तुम्हारा मधुमय संग छोड़ कर जा रही हूँ, इसका मुझे दु:ख है।

इतना कह बालिका के समान मेरा गला पकड़ कर रोने लगी। थोड़ी देर बाद कुछ स्थिर हुई और महाप्रसाद माँगा। कुसुम एक थाल में राधाकान्तदेव और जगन्नाथदेव का महाप्रसाद ले आई। महाप्रसाद के आते ही वह अपने हाथ से थोड़ा-थोड़ा हमारे सबके मुँह में देकर स्वयं अधरामृत लेने लगी। इस प्रकार वह रात बीत गई। दूसरे दिन प्रात:काल ही ये सब लोग उसके पास आकर नाम करने लगे। साढ़े आठ बजे उसकी अवस्था कुछ बिगड़ती देख मैंने उसके आदेशानुसार जैसे ही उसके सिद्ध नाम का उसके कान के पास उच्चारण किया, उसका मुख-मण्डल प्रसन्न और उज्ज्वल-ज्योति-सम्पन्न हो गया। तब मैंने मुकन्दविलास की दो मालाऐं उसके गले में पहना दीं। किसी ने उसके पैरों में आलता, किसी ने सिन्दूर आदि लगा कर नानारूप शृङ्गार कर दिया। हम लोग 'भज निताइ गौर राधेश्याम। जप हरे कृष्ण हरे राम।' नाम-कीर्तन कर रहे थे। वह भी हमारे साथ स्वर में स्वर मिलाकर नाम कर रही थी। अकस्मात् जोर से हँसते-हँसते 'राधे प्राणेश्वरी!' कहकर नीरव हो गईं। मुख पर हँसी, चक्षु एकटक, जैसे किसी बहुत ही आश्चर्यमय वस्तु को देखते-देखते प्राण वायु निकल गई हो।'

इतना कह ललितादासी रोने लगीं। बाबाजी महाशय अश्रुगद्‌गद कण्ठ से मानो पंच-मुख से किशोरीदासी के गुणों की प्रशंसा करने लगे- 'किशोरीदासी का आदर्श जीवन था। यदि किसी की व्रज में मधुर भावोचित सिद्ध देह लाभ कर राधागोविन्द की सेवा प्राप्ति की कामना हो तो सब प्रकार से किशोरी दासी को आदर्श मानकर साधक देह से श्रीमूर्ति में नित्यलीला स्थापन कर भावसेवा करो। सदा मन की एकाग्रता सम्पादन करने की चेष्टा करो, अनन्य प्राण और नि:स्वार्थ भाव से अभीष्ट वस्तु से प्रेम करो। श्रीगुरुवाक्यों में दृढ़ विश्वास रखो। पापों से निवृत्ति होगी, हृदय सरल और निर्मल हो जायेगा। आदर्श जीवन लाभ होगा। किशोरीदासी की प्राप्ति की बात सुन हरिदास ठाकुर के निर्याण की कथा का स्मरण हो आता है। तुम लोग सब राधारानी के निकट प्रार्थना करो कि यदि ज्ञात या अज्ञात रूप से तुम्हारे किसी के प्रति भी उसका कोई अपराध हो तो क्षमा करें।'

इस प्रकार सबको नानाविध उपदेश प्रदान कर स्नान करने चले गये।

आत्म-समर्पण

एक दिन बाबाजी महाशय ने फणी को आवाज दी और बहुत गम्भीर हो कहने लगे, 'देख फणी, तू शीघ्र निताइचाँद की आज्ञा शिरोधार्य कर चारों धाम की पैदल यात्रा को चल दे, नहीं तो बड़ा अनिष्ट होगा।' बालक फणी को ऐसी कठोर आज्ञा क्यों दी गई, बाबाजी महाशय स्वयं ही जानें। ललितादासी दु:खित हो कहने लगीं। 'किस गुरुतर अपराध के कारण बालक को इतना कठोर आदेश दिया है? आपने और जिन-जिन बालकों को इसी प्रकार चारों धाम की परिक्रमा का आदेश देकर भेजा है, उनमें से कोई भी तो लौटकर नहीं आया, फिर इसे क्यों भेज रहे हैं?'

बाबाजी—कारण सुनने की तुम्हें आवश्यकता नहीं। बस यह जान लो कि ऐसा न करने से विपत्ति में पड़ जाना होगा।

ललितादासी और कुछ न कह सकीं। चार-पाँच दिन बाद बाबाजी महाशय ने फिर कहा, 'क्यों, फणी अभी तक गया नहीं?' इससे पूर्व सब यह मानकर निश्चिन्त हो गये थे कि शायद उन्होंने फणी से यों ही चारोंधाम की यात्रा की बात कह दी थी। शायद उससे कुछ भूल हो गई होगी। आज की बात से सबको यह निश्चय हो गया कि उन्होंने फणी को विदा कर दिया। फणी भी जाने की तैयारी करने लगा और मन ही मन सोचने लगा कि बाबाजी महाशय बार-बार आदेश

कर रहे हैं तो जाना तो होगा ही, एक बार उनसे पूछ क्यों न लूँ कि किस अपराध के कारण मुझसे संगत्याग करा रहे हैं। दूसरे दिन जब ललितादासी आदि कई सखियाँ रात्रि में तीन बजे समुद्र स्नान को चली गईं तब फणी धीरे-धीरे बाबाजी महाशय के कमरे में गया। देखा कि वे सो रहे हैं। किंकर्तव्यविमूढ़ हो वह वहीं खड़ा-खड़ा सोचने लगा। उसी समय बाबाजी महाशय बोले, 'कौन?'

फणी—मैं, फणी।

बाबाजी—तू अभी भी नहीं गया?

फणी—आज जा रहा हूँ। पर एक बात पूछनी है।

बाबाजी—पूछने की क्या आवश्यकता है, अच्छा, कहो-

फणी—कहना तो कुछ भी नहीं है। कृपा कर यह बता दीजिए कि किस अपराध के कारण मुझे चारोंधाम भेज रहे हैं तो मैं निश्चिन्त होकर चला जाऊँ।

बाबाजी—अपराध करे तू और बताऊँ मैं। तुझे पता नहीं?

तब फणी एक-एक कर उन सब पाप कार्यों को बताने लगा जो उसने बाल्यावस्था से अब तक किये थे। बाबाजी महाशय बोले, 'वह सब नहीं, कुछ और है। विचार कर देख।'

फणी—और तो कुछ भी याद नहीं आ रहा है।

बाबाजी—अच्छा, पुरी में तू किसके पास आया था?

फणी—आपके पास?

बाबाजी—मेरे पास क्यों आया था?

फणी—क्यों आया था नहीं जानता। केवल इतना कह सकता हूँ कि आपका नाम सुनते ही धारणा हुई थी कि आपके चरणों का आश्रय लेकर आजीवन शान्ति लाभ करूँगा।

बाबाजी—शान्ति नहीं मिल रही है, क्यों?

फणी—आप जब संग ही छुड़वा रहे हैं तो मैं क्या करूँ।

बाबाजी—मैं नहीं छुड़वा रहा हूँ, तू स्वयं छोड़ रहा है, विचार कर देख।

इसी समय ललितादासी आदि लौट कर आ गईं। फणी के प्रति बाबाजी महाशय की डाँट-डपट सुन ललितादासी बोलीं, 'वह बालक है, भूल कर सकता है। आप ही बता दीजिए उससे क्या अपराध हुआ है।'

बाबाजी—मेरे साथ रहकर जब इसे कुछ नहीं हो रहा तो मेरे साथ रहने की क्या आवश्यकता है?

यह सुनते ही फणी को वह बात स्मरण हो आई और वह गद्‌गद कण्ठ से कहने लगा, 'हाँ आगरपाड़े के बगीचे में रहते समय मैंने एक दिन छोटे हरिदास से यह बात कही थी। सचमुच मुझसे बड़ा अपराध हुआ। कृपा कर क्षमा कीजिए।' इतना कह उनके चरण पकड़ कर रोने लगा। वे बोले, 'जो हुआ सो हुआ। ज़ा, राधाकान्त और निताइ गौराङ्ग के सामने लोटपोट कर क्षमा-प्रार्थना कर और जीवन भर के लिए उनके हाथों बिक जा।'

फणी—मैं बालक हूँ। राधाकान्त और निताइ-गौराङ्ग को क्या जानूँ। आपने दयाकर अपने चरणों में आश्रय दिया है, आप ही जीवन भर के लिए अंगीकार करें, यही मेरी प्रार्थना है।

ललितादासी आदि सभी अनुरोध करने लगीं। ये जाकर राधाकान्त के बरामदे में बैठ गये। इधर फणी रज में लोटता हुआ कातर स्वर, अश्रुगद्‌गद कण्ठ से कहने लगा, 'मैंने अपने बुद्धि-भ्रम के कारण जो भी अपराध किये हों उन्हें क्षमा करें। मैं सारे जीवन के लिए आपके चरणों में आत्म-समर्पण करता हूँ।'

बालक की आर्ति सुन सबका हृदय द्रवित हो गया। बाबाजी महाशय ने आविष्ट हो उसके मस्तक पर चरणार्पण किया और बोले, 'जा, आज से निताइचाँद ने तुझे अङ्गीकार किया।' इतना कहते ही उनके दोनों नेत्र लाल हो गये। अश्रु, पुलक, कंपादि सात्विक भावों के कारण शरीर पूरित हो गया। विकम्पित गद्‌गद स्वर से स्खलित भाषा में कहने लगे, 'आज निताइचाँद खरीददार होकर बैठे हैं। जिसका जी चाहे, उनके हाथ बिक सकता है।' यह सुनते ही मठ के सब लोग

अपना-अपना मनोभाव व्यक्त करते हुए कातर हो राधाकान्त, निताइ-गौर और बाबाजी महाशय के निकट जीवन भर के लिए बिकने लगे, कैसा अपूर्व दृश्य था। करुणामय प्रभु की कृपा से आज करुणा का सागर उमड़ पड़ा। मठ के आबाल-वृद्ध-युवक सब कारुण्यरस में डूब गये। सबके नेत्रों से अश्रुधार बहने लगी। सबके अंग धूलि-धूसरित हो गये और सबकी गति स्खलित हो गई। बाबाजी महाशय ने आविष्ट हो, गद्‌गद कंठ से गाना प्रारम्भ किया-

अदोषदरशी ओहे प्रभु नित्यानन्द।
कायमने भजि मोरा तुया पदद्वन्द्व॥
मायामोहे मुग्ध हइया आछिनु भुलिया।
कृपाकरि केशे धरि आनिले टानिया॥
करम विपाके मोरा सदा अपराधी।
एइसे भरसा तुमि करुणार निधि॥
आत्मसुख स्वतन्त्रता छाड़ि एकमने।
शरण लइनु तुया अभय चरणे॥
तुया पादपद्म बिनु आर नाहि गति।
अङ्गीकार कर प्रभु एइ से मिनति॥

सब लोग कातरकण्ठ से बाबाजी महाशय के साथ यह प्रार्थना-गीत गा रहे थे। नेत्रों के जल से उनका वक्षस्थल भीग रहा था। कोई-कोई बाबाजी महाशय के चरण वक्षस्थल पर रख बालक के समान उच्च स्वर से रुदन कर रहे थे। इस प्रकार बहुत देर हो गई। बाबाजी महाशय ने आश्वास वाक्यों से सबको सान्त्वना दी और अपने-अपने सेवा कार्यों में नियुक्त हो जाने का आदेशकर स्वयं नित्यकृत को चले गये।

शारदीय दुर्गा-पूजा

एक दिन बाबाजी महाशय झाँजपीटा मठ के पंगत घर में बैठे बहुत से भक्तों के साथ भगवत्प्रसंग कर रहे थे। अकस्मात् भक्तों से बोले, 'अच्छा बताओ, आज प्रकृति की शोभा इतनी मधुर क्यों लग रही है? तरु-लता क्यों प्रफुल्लित हैं? आबाल-वृद्ध-युवक, हिन्दू, मुसलमान सब मनप्राणमत्तकारी आनन्द सागर में क्यों निमग्न हैं?'

भक्तगण—आप ही बताइये न!

बाबाजी—आज शारदीय दुर्गापूजा का अधिवास दिवस है। जगन्माता महामाया पृथ्वी पर शुभागमन करेंगी, इसलिए जगद्वासी जीवमात्र के हृदय में आनन्द का उत्स छूट रहा है। एक तो वैसे ही शरद्‌काल में प्रकृति की शोभा विशेष होती है, फिर आज माँ के आगमन के कारण आनन्द की सीमा नहीं है।

भक्तगण—माँ का आगमन और भी तो कितने ही रूपों में होता है, जैसे रटन्ती, वासन्ती, जगद्धात्री, श्यामा, लक्ष्मी, सरस्वती, मनसा, शीतला इत्यादि परन्तु और सब दिनों की अपेक्षा आज के दिन हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सब क्यों आनन्दित होते हैं?

बाबाजी—रामचन्द्र ने असमय देवी को जगाकर रावण के साथ युद्ध में सहायता करने के लिये यह पूजा की थी। माँ जगदम्बा की कृपा से विजयादशमी के दिन रावण-वध हुआ था। इसीलिए विजयादशमी के दिन शत्रुओं तक को प्रेमालिंगन, दण्डवत्, प्रणति आदि करने की प्रथा है और दूसरे-दूसरे रूपों में जो देवी-पूजा की जाती है, वह किसी न किसी कामना को लेकर होती है, जैसे सुरथ राजा और समाधि नामक वैश्य आदि की पूजा और यह है शक्तिमान की शक्तिपूजा। इसलिए यह प्रेम की लीला है। सकाम-पूजा में रजोगुण और तमोगुण की लीला, जैसे पशुहिंसा आदि होती है, पर यह है एकमात्र सात्विक भाव की पूजा। पूजा का मूलसूत्र है-

रावणस्य वधार्थाय रामस्यानुग्रहाय च।

भक्तगण—यदि यह शक्तिमान् की शक्ति पूजा है तो इतना आडम्बर क्यों होता है? पूर्णपरब्रह्म रामचन्द्र के एकबार आदेश करने से ही माँ आकर रावण वध आदि कार्य कर सकती हैं।

बाबाजी—भगवान् रामचन्द्र मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। वे किसी की मर्यादा का उल्लंघन नहीं कर सकते। रावण ने एक बार किसी कारण कठोर तपस्या की थी। उस तपस्या से प्रसन्न होकर जगदम्बा ने कहा था, 'वत्स रावण, मैं तुझे यह वर देती हूँ, जब तक तेरे घर मेरी विधिपूर्वक पूजा होगी और विशुद्ध-भाव से मेरा महात्म्य सूचक चण्डी-पाठ होगा, तब तक मैं तुझे अपनी गोद में रखूँगी। तेरे जीवन विनाश की तो कुछ

बात ही नहीं, तेरी एक उंगली को भी कोई स्पर्श न कर सकेगा।' तब रावण ने वृहस्पति को पूजा और चण्डीपाठ में नियुक्त किया। इधर जैसे ही रामचन्द्र रावणवध के लिए उद्यत हुए, उन्होंने देखा कि रावण जगदम्बा की गोद में बैठा है। तब हताश होकर उन्होंने निश्चय किया कि रावण का वध असम्भव है और यह सोचकर कि सीता का उद्धार न हो सकेगा, रुदन करने लगे। देवगण ने उन्हें आदेश दिया कि एक सौ आठ नील-कमल द्वारा माँ की आराधना करें। हनुमान ने नीलकमल ला दिये। पूर्ण सनातन ब्रह्म महामाया की पूजा करने लगे। वे एक-एक नीलकमल लेकर माँ को अर्पण कर रहे थे। उसी समय किसी कुशल छद्मवेशी राक्षस ने अदृश्य रूप से एक नीलकमल अपहरण कर लिया। एक सौ सात नीलकमल अर्पण कर चुकने के बाद रामचन्द्र ने देखा कि एक कमल गायब है। थोड़ी देर विचार करने के बाद उन्होंने सोचा कि मुझे सब पद्मपलाशलोचन कहते हैं, अपना दाहिना नेत्र माँ के चरणों में अर्पण कर इस अभाव की पूर्ति कर लूँ। यह सोचकर वे अपना नेत्र निकालने के लिये उद्यत हुए। इधर हनुमान ने मक्षिका रूप धारण कर वृहस्पति की चण्डी अशुद्ध कर दी। जगदम्बा रावण का परित्याग कर द्रुतगति से रामचन्द्र के पास आईं और उनका हाथ पकड़ कर कहने लगीं, 'प्रभु! दासी के वाक्य की रक्षा करने के लिए व्यस्त होने की क्या आवश्यकता थी? आपको तो केवल आदेश करना था। मैं आप ही के सम्बन्ध से तो रावण से वात्सल्य भाव रखती हूँ। रावण-वध-लीला सम्पन्न होने पर जब रावण और उसका भाई आपके वैकुण्ठ द्वार पर जय-विजय रूप से अवस्थान करेंगे, तब मैं उन्हें गोद में लेकर अपनी साध मिटा लूँगी। इस समय आप अपने रावण का वध करें। पर मेरी यह प्रार्थना है कि दासी के वाक्य की रक्षा के लिए आपने जो यह प्रेम की लीला की इसका मर्त्यलोक में विशेष रूप से प्रचार हो और मैं आपके निकट प्रतिज्ञा करती हूँ कि आपके अनुग्रह के रूप में इस पूजा का जहाँ भी अनुष्ठान होगा, उसके आठ कोस के भीतर स्थावर-जंगम, पशु-पक्षी, कीट-पतंगादि को भी मैं आनन्द रस में निमग्न करूँगी।

इसीलिए सब पूजाओं की अपेक्षा इस शरत्कालीन महापूजा का माहात्म्य विशेष है।

इस प्रकार के नानारूप प्रसङ्ग-कथा के पश्चात् बाबाजी महाशय ने ललितादासी से कहा, 'देख, कल से जगदम्बा की पूजा करनी होगी। उसकी व्यवस्था कर।'

ललिता—पूजा का अवलम्ब क्या होगा।

बाबाजी—चित्रपट और घड़े।

ललिता—कौन पूजा करेगा?

बाबाजी—सभी माँ की सन्तान हैं। जिसे वे अङ्गीकार करेंगी, वही करेगा।

ललिता—क्या-क्या आयोजन करना होगा और कौन-कौन सी सामग्री चाहिए?

बाबाजी—माँ की पूजा में क्या-क्या चाहिए, मैं क्या बताऊँ। फिर भी अनुराग भरे मन और प्राण, आत्मत्याग, अभीष्ट वस्तु प्राप्ति का लोभ, आत्मसुख-विवर्जित काम अर्थात् प्रेम, कृष्ण-प्राप्ति की उत्कंठा, निष्ठा, भक्ति, विश्वास आदि प्रयोजनीय सामग्री तो चाहिए ही। फिर तुलसी, बेलपत्र, आम्र-शाखा, फूल, चन्दन, दूर्वा, अक्षत, कदली और अन्यान्य फल-मूल और मिठाई चाहिए। सीधी बात यह है कि श्रीकृष्ण के चरणों में सेवा-भक्ति, रति-मति की कामना से माँ को जितने प्रकार के उपहार देना चाहती हो दे सकती हो। विधिविधान जानने की कोई आवश्यकता नहीं।

एक भक्त ने पूछा 'कृष्ण-प्राप्ति के लिए दूसरे देव देवियों की पूजा अर्चना करने की क्या जरूरत है, जब केवल कृष्णोपासना करने से सिद्धि हो सकती है?

बाबाजी—भाई! अन्यान्य देवताओं के सम्बन्ध में तुम्हारी यह बात उचित हो सकती है, पर व्रजेन्द्र-नन्दन कृष्ण के सम्बन्ध में नहीं। जो ऐश्वर्यगन्धहीन रसमय व्रजेन्द्रनन्दन को प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें सभी देवी-देवताओं की पूजा करनी होगी, फिर जो मधुर भाव के उपासक हैं, उनके लिए तो कुछ कहना ही नहीं। प्राकृत राज्य में कन्या पिता-माता के अतिरिक्त और कुछ नहीं

जानती। उपयुक्त समय पर वही माता-पिता योग्य पात्र को उसे सौंप देते हैं और उपदेश करते हैं कि आजीवन उसके चरणों में आत्म-समर्पण कर और उसी के प्रेम में मुग्ध रहकर काल व्यतीत करे। इस नियम का उल्लंघन कर जो युवतियाँ स्वतन्त्र भाव से पति की खोज करती हैं उन्हें योग्य पात्र मिलना कठिन हो जाता है और समाज में निन्दा होती है। प्राकृत राज्य में फिर भी यह बात किसी हद तक सम्भव हो सकती है, पर अप्राकृत चिन्मय राज्य में योगमाया की कृपा के बिना किसी प्रकार से अभीष्ट प्राप्ति नहीं हो सकती। इसीलिए कुमारी गोपियों ने कात्यायनी-व्रत और गोपश्वर की आराधना कर कृष्ण को पतिभाव से प्राप्त किया था।

इस प्रकार की और बहुत कुछ कथा-वार्ता के पश्चात् भक्तगण ने अपने-अपने घरों के लिए प्रस्थान किया और ये भी नित्य-कृत्य में लग गये।

दूसरे दिन प्रातःकाल उठते ही माँ की पूजा का आयोजन होने लगा। अन्तर्यामी बाबाजी महाशय ने स्वयं मानो आश्रमवासियों के मानसिक अभिप्राय को समझकर आराधना कार्य का व्रत लिया। आनन्द की सीमा न रही। पहले वे कमरे का दरवाजा बन्द कर पूजा करने लगे। पीछे दरवाजा खोल दिया। माँ के सम्मुख खोल करताल के साथ गगनभेदी स्वर में 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम।' कीर्तन होने लगा। माँ के स्नान, पूजा, ध्यान इत्यादि के जितने मन्त्र हैं, सबका उद्देश्य कृष्ण-भक्ति या कृष्ण सेवा प्राप्ति है। सर्व प्रथम शालग्राम की पूजाकर उन्हें केवल अक्षत को छोड़कर बाकी सब उपहार निवेदन किये गये। तत्पश्चात् वही महाप्रसाद देवी को अर्पण किया गया। इसी प्रकार सप्तमी, अष्टमी, नवमी पूजा समाप्त कर दशमी के दिन सामान्य रूप से माँ की पूजा कर कातरभाव से अनेक प्रकार की प्रार्थना करने लगे। कोई चार बजे के लगभग वे देवी को लेकर आश्रम से निकले। वे आगे-आगे शंख बजा रहे थे और उनके पीछे एक व्यक्ति देवी का चित्रपट, एक घट और एक पूजा के निर्माल्य आदि लिये था। खोल करताल के साथ नाम करते-करते ये लोग समुद्र तट पर पहुँचे। माँ को तीर्थराज का जल स्पर्श कराया और अन्यान्य सब द्रव्यों को जल में फेंक दिया। फिर नाम करते-करते आश्रम लौट आये।

वृन्दावन में प्लेग

नाना प्रकार के लीला प्रसंग में परमानन्द पूर्वक दिन और मास बीतते गये। फाल्गुन मास में एक दिन अपराह्न में बाबाजी महाशय बाहर एक चौकी पर बैठे थे। चारों ओर बहुत से भक्त बैठे थे। भगवल्लीला सम्बन्धी तरह-तरह के प्रश्न कर रहे थे और ये प्रसन्न मुद्रा में उत्तर दे रहे थे। अकस्मात् वे बालक के समान रोने लगे और कहने लगे, 'हाय-हाय, उदारप्राण आनन्दमय मूर्ति व्रजवासियों को इतना कष्ट! इतना भीषण उत्पीड़न! कैसा वीभत्स है यह सब कुछ! आहा! वे बेचारे व्रजभूमि की ममता छोड़ कर न और कहीं जा सक रहे है और न संक्रामक रोग के अत्याचार के कारण वहाँ रह सक रहे हैं। हा कृष्ण! व्रजवासी वल्लभ! तुम्हारे व्रज में ऐसा अत्याचार और तुम निश्चिन्त! व्रजवासिनी ललनाएँ दारुण रोग की यन्त्रणा से छटपटा कर देह त्याग कर रही हैं। क्या तुम नहीं देख रहे हो? उनके प्राण भले ही चले जायें, वे किसी प्रकार तुम्हारी नित्य लीलाविलास भूमि को छोड़कर जाने को तैयार नहीं। यह सब देख सुनकर भी क्या तुम्हारा हृदय विदीर्ण नहीं होता?' उपस्थित भक्तगण इनकी इस प्रकार की व्याकुलता देख विस्मित भाव से पूछने लगे, 'वृन्दावन में क्या हो रहा है?'

बाबाजी—एक महीने से अधिक हुआ वृन्दावन में प्लेग फैला है। प्लेग के अत्याचार से अनेक लोग मर रहे हैं। बहुत से निष्ठावान भक्त व्रजधाम परित्याग कर अन्यत्र चले जा रहे हैं।

इस प्रकार की कथावार्ता में दिन बीत गया। दूसरे दिन कुसुम-सरोवर वृन्दावन से श्यामदादा का पत्र आया जिसका सारांश यह था, 'वृन्दावन में भयानक प्लेग का प्रादुर्भाव हुआ है। व्रजवासियों की अपेक्षा व्रजमाताएँ अधिक कालग्रस्त हो रही हैं। आबाल वृद्ध वनिता सब नितान्त भयभीत हैं। आपके प्रिय बहुत से व्रजवासी प्लेग के भय से कातर हो गोवर्धन से कुसुम सरोवर मेरे पास आ रहे हैं। वनमालीबाबू सपरिवार

विनोद-विनोदिनी को लेकर कलकत्ते चले गये हैं। प्रभुपाद राधिकानाथ गोस्वामी हरिचरणदास बाबाजी, छोटे नित्यानन्ददास बाबाजी, रसिकदास बाबाजी आदि भी उनके साथ चले गये हैं। कुसुम सरोवर में अभी तक किसी प्रकार का उद्वेलन नहीं है। ऐसी स्थिति में मेरा क्या कर्तव्य है, लिखने की कृपा करें।'

पत्र में व्रजवासियों के दुःख की कथा पढ़कर बाबाजी महाशय कातर स्वर से रुदन करने लगे। थोड़ी देर बाद स्थिर हो उन्होंने अपने हाथ से ही श्यामदादा को पत्र लिखा, जिसका सारांश इस प्रकार था-

'जय निताइ गौर। भाई श्यामदादा, तुम्हारा पत्र मिला। इसे प्लेग न जानकर राधारानी की परीक्षा समझना। परीक्षा इस बात की है कि व्रजवासनिष्ठ भक्तों में व्रजधाम के प्रति ममता अधिक है या अपनी देह के प्रति। जो भी हो, तुम कुसुम सरोवर छोड़कर कहीं न जाना। व्रजवासियों के साथ त्रिसंध्या नाम-कीर्तन करना, भय न करना। प्लेग तुम्हारे पास कभी न फटकेगा। सुविधा हो तो रथ-यात्रा के पूर्व एकबार श्रीधामपुरी आने की चेष्टा करना।' इत्यादि।

पत्र पाते ही श्यामदादा के मन में अपूर्व साहस का संचार हुआ और वे आदेशानुरूप कार्य करने लगे।

शुभ जन्मोत्सव

आज आश्रमवासी भक्तों के आनन्द की सीमा नहीं है। सब अपने-अपने सेवा कार्य में लगे हैं। परन्तु उनके मन और प्राण जैसे कहीं और निमग्न हैं। कई मास से प्रभुपाद श्रीयुत् अतुलकृष्ण गोस्वामी महाशय पत्नी सहित पुरीवास कर रहे हैं। वैसे उनके रहने का स्थान प्राणवल्लभ मठ में ठीक किया गया है, पर वे नाम मात्र को ही वहाँ रहते हैं। सदा बाबाजी महाशय के साथ झाँजपीटा मठ में रहकर नानारूप लीला प्रसंग द्वारा सबको आनन्द से परिप्लुत कर रहे हैं। २७ चैत्र मास (बंगाब्द १३११) आठ बजे के लगभग प्रभुपाद ने झाँजपीटा मठ में प्रवेश किया। देखा कि बाबाजी महाशय श्रीजगन्नाथ-दर्शन को गये हैं, आश्रमवासी भक्त मिलकर कुछ परामर्श कर रहे हैं और आनन्द में विभोर हो रहे हैं। प्रभुपाद के दर्शन करते ही सब चुप हो गये। जल्दी से उठ उन्हें आसन प्रदान कर दण्डवत् प्रणाम किया। प्रभुपाद ने कहा, 'लगता है कि तुम लोग किसी आनन्दपूर्ण व्यापार में निमग्न थे और मेरे आने से विघ्न पड़ गया।'

ललिता—विघ्न कुछ भी नहीं।

प्रभु—तो आनन्द का क्या कारण है? क्या मैं भी आनन्द में हिस्सा बटा सकता हूँ?

ललिता—आपसे कहने में हमें कोई आपत्ति नहीं। भय इस बात का है कि शायद बात बाबाजी महाशय के कान में पड़े और बाधा उपस्थित हो।

प्रभु—मैं बाबाजी महाशय से न कहूँगा। यदि कोई कार्य ऐसा है जिससे सबको आनन्द हो तो मैं इस बात का भार अपने ऊपर लूँगा कि उसमें किसी प्रकार की बाधा न पड़े।

प्रभुपाद की अभयवाणी सुन सब आनन्दोत्फुल्ल हो 'जय निताई' की उच्च ध्वनि करने लगे।

ललिता—हम बहुत चेष्टा करने पर भी इतने दिनों से नहीं कर पा रहे थे, आज आपकी कृपा से उसे करने में सफल होंगे। आपकी अयाचित कृपा से हमारी आशा लता में आज फल लग आये हैं। हमने निश्चय किया है कि इस बार बाबाजी महाशय का जन्मोत्सव मनायेंगे।

प्रभु—यह तो बड़ी सुन्दर बात है, इसमें किसे आपत्ति हो सकती है। अभी तक क्यों नहीं मनाया जन्मोत्सव?

ललिता—अभी तक हम तिथि नक्षत्र का पता नहीं कर पाये थे।

प्रभु—अब कैसे पता किया?

ललिता—यह एक आश्चर्य की घटना है। परसों काशीधाम के प्रसिद्ध ज्योतिषी महात्मा कड़ार स्वामी आये थे। बाबाजी महाशय से नानारूप आलाप कर रहे थे। मैं ठाकुरजी की रसोई बना रही थी और छिपकर बीच-बीच में उनकी बात सुन रही थी। अकस्मात् इन्होंने स्वामीजी से कहा, 'आप क्या खोई हुई जन्मकुण्डली फिर से बना सकते हैं?'

स्वामीजी—'अवश्य! यह तो बड़ी साधारण बात है' कहकर इनके दाहिने हाथ की रेखाएँ देखने लगे। मैं कार्य में व्यस्त होने के कारण वहाँ न जा सकी। स्वामीजी जो कुछ कहें उसे सुनने के लिए गोवर्धनदास को वहाँ भेज दिया। स्वामीजी एक घण्टे तक इनके हाथ की रेखाओं की गणना कर इनके जन्म का महीना, तिथि, नक्षत्र, वार, लग्नादि बताते रहे। अतीत की कई घटनाओं का भी उल्लेख किया।

बाबाजी महाशय ने उनका समर्थन किया और स्वामीजी में अपना विश्वास प्रकट किया। बालक गोवर्धन वहाँ खड़ा हुआ सारा वृत्तान्त सुन रहा था। यह देखकर मैं निश्चिन्त हो रसोई के काम में लगी थी। कुछ देर बाद स्वामीजी और बाबाजी महाशय दोनों श्रीजगन्नाथदेव के दर्शन करने निकले। मैंने प्रसन्न हो गोवर्धन को बुलाया और उससे जन्म विवरण पूछा। वह बोला, 'दीदी, मैंने स्पष्ट सुना, पर मुझे याद कुछ भी नहीं।' मैं दु:खी होकर सोचने लगी, 'हाय! मैंने हाथ आई अभीष्ट वस्तु को अपने बुद्धिदोष के कारण गँवा दिया। किसी बड़े आदमी को न भेजकर उस बालक को वहाँ भेजा। उसका क्या दोष है? एक तो बालक, फिर उड़ीसा वासी, जिसे बँगला का ठीक ज्ञान नहीं।' मैं इस प्रकार सोच रही थी कि बाबाजी महाशय आ गये। मैंने उत्कण्ठित हो उनसे पूछा, 'स्वामीजी कहाँ गये?' उद्देश्य था कि किसी व्यक्ति को उनके पास भेजकर सब कुछ जान लूँगी। बाबाजी महाशय ने उत्तर दिया-'वे बारह बजे की गाड़ी से कलकत्ते चले गये।' मैंने मनका दु:ख मन में ही रखा और सोचा कि शायद हम लोग अभी इस आनन्द के अधिकारी नहीं हैं।

सुख-दु:ख में वह दिन बीत गया। दूसरे दिन, यानी कल बहुत तड़के बाबाजी महाशय मुख धो रहे थे। मैं जल लिये पास में खड़ी थी और भी बहुत से लोग थे। अकस्मात् मुझे एक तरकीब सूझी। मैंने अवज्ञा भरे भाव से कहा, 'ज्योतिष शास्त्र कुछ भी नहीं। मैं उसमें तनिक भी विश्वास नहीं करती। ज्योतिषी लोग कुछ बातें कंठस्थ कर रखते हैं, जिससे लोगों में अपना विश्वास जमा सकें। दस बातें कहते हैं, कोई न कोई ठीक उतर जाती है।' बाबाजी महाशय स्वभाव से ही किसी की निन्दा नहीं सुन सकते थे। आज अपने ही लोगों के बीच एक प्रसिद्ध शास्त्र की निन्दा सुन क्रुद्ध होकर बोले, 'तूने कैसे जाना कि ज्योतिष शास्त्र मिथ्या है?'

मैं—किसी की कोई बात सच होते देखी ही नहीं।

बाबाजी—जो शास्त्र नहीं जानते उनके ऊपर निर्भर कर शास्त्र की अवज्ञा करना मूर्खता है। तूने कभी किसी अच्छे ज्योतिषी से भी बात की है? कल जो स्वामीजी आये थे उनकी किसी भी बात में त्रुटि निकाल सकती है?

मैं—भविष्य की बात सच होगी या झूठ कौन जाने? उन्होंने कहा होगा आपको इतनी उमर में शनि का कोप होगा, इतने दिन शरीर अस्वस्थ रहेगा, इतनी उमर में धन की प्राप्ति होगी और यह कहकर प्रस्थान किया होगा। अब उतने दिन प्रतीक्षा करने के बाद ही तो कहा जा सकेगा कि उन्होंने सत्य कहा या नहीं। अतीत के बारे में यदि कुछ कहते तो जानती।

बाबाजी—तुम लोगों की कुछ धारणाएँ भ्रम-मूलक हैं, जिनके कारण बिना अनुसन्धान किये ही कुछ का कुछ सिद्धान्त बना लेते हो। स्वामीजी ने मेरे अतीत के सम्बन्ध में कल जितनी बातें कहीं, उनमें से एक भी मिथ्या नहीं।

मैं—अच्छा, आपके जन्म के सम्बन्ध में जो-जो कहा उसे क्या आप सत्य मानते हैं?

बाबाजी—हाँ क्यों नहीं। एक-एक वार, तिथि, नक्षत्र तक तो बता गये-चैत्र संक्रान्ति, त्रयोदशी वृहस्पतिवार, पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र, सिंह लग्न इत्यादि।

मैं—आपको यह सब ज्ञात था जो आपने सच मान लिया।

बाबाजी—मुझे अपनी कुण्डली की और कोई बात उतनी स्मरण नहीं। पर जन्मतिथि, नक्षत्रादि सब याद हैं। उषाकाल में जन्म, यहाँ तक तो स्वामीजी ने बता दिया।

छल कौशल से अभीष्ट वस्तु प्राप्त कर मैं हृदय का भाव गोपन न कर सकी और जोर से हँस पड़ी। बाबाजी महाशय मेरी चतुराई समझ गये और प्रताड़ना

वाक्यों द्वारा यथार्थ बात को छिपाने की चेष्टा करने लगे। मैंने कहा, देखिए, उदित सूर्य को हाथ से ढकने की चेष्टा क्यों कर रहे हैं। जब तिथि प्रकट हो ही गई है, तो कोई न कोई उसकी आराधना करेगा ही, हम चाहें करें या न करें। इसमें बाधा देने से क्या होगा? बाबाजी महाशय और कुछ उत्तर न देकर नित्यकृत्य को चले गये।

ऊपर का वृत्तांत सुनाने के पश्चात् ललितादासी प्रभुपाद श्रीअतुलकृष्ण गोस्वामी से बोलीं, 'इसबार संक्रान्ति २९ तारीख की है, इसलिए केवल दो दिन बाकी हैं, कैसे क्या होगा, आप जानें।'

प्रभु—यह तो बड़े आनन्द की बात है। मुझे यह सब सुनकर कितना आनन्द हुआ है, मैं व्यक्त नहीं कर पा रहा हूँ। मैं घर जाकर अभी अपनी स्त्री से कहता हूँ। वह भी इस शुभ कार्य में योग-दान करेगी।

घर जाकर उन्होंने सारा वृत्तांत अपनी स्त्री से कहा। वात्सल्य की मूर्ति माँ गोस्वामिनी मानो आनन्द में सुध-बुध खो बैठीं। बाकी दो दिन उन्हें युग के समान व्यतीत होने लगे। तीसरे पहर मठ को गई। ललितादासी से तेल, घी, नया घड़ा इत्यादि जिन-जिन चीजों को आवश्यकता थी संग्रह करने को कह इस शुभ कार्य में विशेष रुचि दिखाने लगीं और बोलीं, 'तुम सब निश्चिन्त होकर आनन्द मनाओ। जिस-जिस सामग्री को तुम्हारा जी चाहे उसका संग्रह करो। बाबाजी महाशय की ओर से किसी प्रकार की आशंका न करो। उनका भार मेरे ऊपर छोड़ो।' माँ गोस्वामिनी की अभय वाणी सुन सब लोग बहुत आनन्दित हुए। यथासमय माँ गोस्वामिनी घर को चली गईं, पर प्रभुपाद बाबाजी महाशय के दर्शन हेतु वहीं रह गये। कुछ देर बाद बाबाजी महाशय आ गये। दोनों परस्पर के मिलन-सुख का अनुभव करने लगे। २८ चैत्र बंगाब्द बुधवार प्रातःकाल से ही आश्रमवासी विशेष रूप से व्यस्त थे। प्रभुपाद भी वहीं उपस्थित थे। बाजार से नाना प्रकार की सामग्री आ रही थी। बलरामबाबू को बुला जगन्नाथ देव के भोग के लिए सौ रुपये की व्यवस्था की गई। ललितादासी की आज्ञा से द्रव्यादि संग्रह करने के लिए श्रीमान नन्दकिशोरदास और कृष्णदास दोनों बाजार किया करते थे। इसलिए उस दिन वे लोग बाबाजी महाशय के सामने न पड़ सके। अकस्मात् नन्द को देख बाबाजी महाशय बोले, 'क्यों रे नन्द, तू आज दीखा ही नहीं। आज मठ के सभी लोग जैसे किसी बड़े आयोजन में लगे हों। क्या कारण है, बता तो?' नन्द के कुछ कहने से पहले ही प्रभुपाद बोल उठे-'आप ठीक कह रहे हैं। आज आश्रम की शोभा देख मुझे भी ऐसा लगता है कि मानो आश्रम के स्थावर-जगंम-पशु-पक्षी पर्यन्त किसी अप्राकृत चिन्मय आनन्द में डूबे हैं। आश्रम में प्रवेश करते ही मानो हृदय आनन्द से उच्छलित होने लगता है। जिसके भी मुख की ओर देखते हैं वही विकसित कुसुम के समान एक विमल आनन्द की छवि धारण किये सा प्रतीत होता है। आश्रम के कण-कण से जैसे आनन्द का उत्स फूटता जान पड़ता है। इस आकस्मिक आनन्दमय व्यापार का कारण क्या है आप जानें?'

बाबाजी—मेरी समझ में तो कुछ नहीं आ रहा है, सिवा इसके कि आज महाविषुव संक्रान्ति है और महावीर का जन्म दिवस है। हो सकता है उसी उपलक्ष में किसी उत्सव की तैयारी कर रहे हों।

प्रभुपाद श्लेषभाव से दूसरा अर्थ करते हुए बोले, 'अप्राकृत बलशाली वैष्णवचूड़ामणि महावीर का ही जन्मोत्सव तो है। इस महोत्सव में योग देने में किसे आपत्ति हो सकती है?'

बाबाजी—आप ठीक कह रहे हैं। (नन्द को लक्ष्य करते हुए) शायद नये कपड़े-लत्तों की भी व्यवस्था की जा रही है।

ललिता—आपने कैसे जाना?

बाबाजी—इन्हें देखा जो लाते हुए। जो भी हो, मेरा मतलब है कि यदि हनुमानजी को नये कपड़े पहना रहे हो तो आश्रम में जितने विग्रह हैं उन्हें भी नये कपड़े पहनाने चाहिए और उनके भोग-राग की विशेष व्यवस्था करनी चाहिए। दूसरी बात यह कि प्रभुपाद रघुनाथदेव गोस्वामी के यहाँ से जो जगन्नाथ, बलराम और सुभद्रादेवी की मूर्तियाँ आई हैं, उनका कल महाभिषेक करना होगा। उस सम्बन्ध में जिस सामग्री की आवश्यकता है उसका संग्रह करना होगा।

ललिता—किस-किस द्रव्य की आवश्यकता होगी?

बाबाजी—विशेष कुछ नहीं। नया कपड़ा, पञ्चामृत, पञ्चगव्य, पञ्चशस्य, पञ्चरत्न, पञ्चतीर्थोदक आदि जुटा लेना और भोग के लिए कुछ विशेष व्यवस्था कर लेना।

ललिता—अभिषेक कौन करेगा?

बाबाजी—मैं आप ही करूँगा।

बाबाजी महाशय की बात सुन ललितादासी आतंकित हो गईं। उन्होंने सोचा यदि ये सबेरे ही विधि-विधान में पड़ गये तो हमारी आशा अपूर्ण ही रह जायेगी। वे किसी दूसरे के द्वारा यह कार्य सम्पन्न कराने का प्रयत्न करने की बात सोचने लगीं। डरते-डरते बाबाजी महाशय से बोलीं, 'देखिए, मैं समझाती हूँ नित्यानन्द दास से अभिषेक कराना ठीक होगा।'

बाबाजी—वह क्या यह सब कर सकेगा?

ललिता—वह नैष्ठिक ब्राह्मण है, क्यों नहीं कर सकेगा? इस सबमें वह बड़ा निपुण है।

बाबाजी—कर सके तो ठीक ही है, मुझे कोई आपत्ति नहीं। तुम लोग सब ठीक-ठाक करो।

ललिता—(कुछ हँसते हुए) आपकी कृपा होगी तो सब ठीक हो जायेगा।

इतना कह ललितादासी ने नन्द को इंगित किया और वह उसी प्रकार व्यवस्था करने लगा। इधर आश्चर्यजनक रूप से अन्यान्य अन्तरंग भक्त अपने आप आकर्षित होने लगे। अकस्मात् कटक से राधाकृष्णदादा आ पहुँचे। बाबाजी महाशय ने पूछा—'कौन? राधाकृष्ण! तुम इस समय कैसे?'

राधाकृष्ण—कैसे आया मैं नहीं जानता। मैंने कभी सोचा ही नहीं था कि इस समय आपके दर्शन करूँगा। पर अकस्मात् मुझे जैसे ग्रहों से विवश होकर आना पड़ा।

बाबाजी महाशय मुस्कराकर बोले, 'बहुत अच्छा, जाओ कुछ विश्राम करो।' इसी प्रकार केन्द्रापाड़ा से शरच्चन्द्र घोष और चारों ओर से अन्यान्य भक्त आने लगे। सब यही कहते सुनाई पड़े, 'जैसे किसी महान् आकर्षण से आकृष्ट हो मंत्रमुग्ध-जैसा चला आया' इत्यादि। ठाकुरों के नये कपड़ों की व्यवस्था की जाने लगी। अवसर पाकर ललितादासी ने राधाकृष्णदादा से सब वृत्तान्त कह सुनाया। वे परमानन्दित हो कैसे क्या करना होगा, इस सम्बन्ध में उनसे परामर्श करने लगे। ललितादासी अनेक प्रकार की भोग की सामग्री तैयार करने में व्यस्त रहीं। उन्हें बाबाजी महाशय के पास जाने का बिलकुल अवकाश न मिला। तीसरे पहर उन्होंने देखा कि वे शौच जा रहे हैं। उन्होंने उनकी सेवा के लिए राधाकृष्ण दादा को भेज दिया। बाबाजी महाशय ने राधाकृष्ण से पूछा, 'वे लोग क्या कर रहे हैं?'

राधाकृष्ण—वे लोग नानारूप भोग की तैयारी कर रहे हैं।

बाबाजी—अच्छा! ठीक है, उनसे कहना मैं चला।

राधाकृष्ण—(व्यग्र हो) तो कब लौटेंगे?

बाबाजी—कब और किस समय लौटूँगा, कुछ ठीक नहीं। ललितादासी से कहना कि जिस विधि से सब काम करने को कहा है, वैसे ही करे।

राधाकृष्णदादा चिन्ता में डूब गये। उन्होंने चट ललितादासी को सूचना दी। वे नन्द आदि से बोलीं, 'तुम लोग सब जाकर बाबाजी महाशय को रोको, मैं कढ़ाह उतार कर आती हूँ।' नन्द इत्यादि ने ऐसा ही किया। ललितादासी शीघ्र कढ़ाह उतार कर पसीने से लथपथ बाबाजी महाशय के निकट पहुँचीं और बाल-हठ करते हुए बोलीं, 'देखिए अभी तक हम लोग आपकी सारी आज्ञाओं का यथा-साध्य पालन करते आ रहे हैं, किसी दिन भी हमने किसी बात के लिए जिद नहीं की। आज हमारी एक बात माननी होगी। आज रात से कल तक आपको आश्रम में रहकर हमारी मनोकामना पूरी करनी होगी। हम जो भी कहेंगे, करना होगा। ऐसा न किया तो आपकी ठाकुर-सेवा-एवा सब रह जायेगी। हम लोग स्वतंत्र नरक के कीट हैं तो रहें, कोई चिन्ता नहीं।' अश्रु-गद्गद कण्ठ से ललिता दासी की यह बात सुनते ही सब लोग बाबाजी महाशय के चरण पकड़ कर रोने लगे। बाबाजी महाशय

मृदु मुस्कान के साथ बोले, 'अच्छा, देखा जायेगा।' और जगन्नाथ देव के मन्दिर की ओर चल दिये।

इधर शाम से ही आश्रमवासी अपनी-अपनी इच्छानुसार नाना प्रकार के मिष्टान्न भोग के लिए तैयार करने लगे। रात दस बजे के लगभग बाबाजी महाशय आश्रम लौट आये। सबके मन में आनन्द का स्रोत उमड़ पड़ा। सबकी नींद न जाने कहाँ उड़ गई। राधाकृष्णदादा के ऊपर कीर्तन-रूप में जन्मोत्सव वर्णन करने का भार सौंपा गया। कब रात्रि शेष होगी और उस समय अनिर्वचनीय सुखमयी उषादेवी का आविर्भाव होगा, इस उत्कंठा में सब उद्व्यस्त थे। एक-एक पल प्रहर के समान बीत रहा था। एक-एक दण्ड में दस बार बाहर जा-जाकर आकाश की ओर देख रात्रि का अनुमान लगा रहे थे। कोई-कोई खुले मैदान में जाकर देख रहे थे कि अरुणोदय हुआ या नहीं, पक्षियों का रव प्रारम्भ हुआ या नहीं, प्रभात के कुसुम खिले या नहीं, प्रातः स्नान के लिए जानेवाली रमणियाँ सड़क पर जुटीं या नहीं, शिशुओं ने स्तनपान करने के लिये 'माँ-माँ' पुकार कर रोना प्रारम्भ किया या नहीं। पर वे विफल मनोरथ हो आश्रम में लौट आते थे। मानो सबको उत्कंठित देख रजनीदेवी कुछ देर में अंतर्हित हुईं। धीरे-धीरे आनन्दमयी उषादेवी ने पदार्पण किया। माँ गोस्वामिनी को संवाद भेजा गया।

इधर अभिषेक के लिए सामग्री स्नानमण्डप में एकत्र की गई। वात्सल्यमयी माँ गोस्वामिनी आ गईं। स्नान की सब तैयारी देख उन्होंने आनन्दमग्न हो बाबाजी महाशय को पुकारा। वे बालक की भाँति 'माँ' कहते हुए निद्रा से उठे। बाबाजी महाशय आज जैसे वह बाबाजी नहीं रहे। एक बालक के समान जो जैसे कह रहा था, कर रहे थे। शौच क्रिया समाप्त कर स्नान-वेदी पर बैठे और मंजन आदि किया। इतने में माँ गोस्वामिनी सुगन्धित तेल और हल्दी लेकर आईं। वे उनकी चरणधूलि लेते हुए बोले, 'माँ, बहुत हो गया, इतना कष्ट क्यों करती हो?' माँ प्रफुल्ल हो बोलीं, 'बाबा, संतान के मंगलार्थ माँ को यह सब करना होता है और उसे इसमें आनन्द होता है, इसमें कष्ट की क्या बात है? आप जैसी योग्य सन्तान की माँ बनकर उसके मंगलार्थ जन्मतिथि की आराधना करने का सुअवसर पा मैं अपने को बड़ी सौभाग्यशालिनी मानती हूँ। यह सब हमारे कुलदेवता निताइचाँद की कृपा है।' इतना कह उन्होंने उनके माथे पर कुछ तेल और हल्दी लगा दी। लगाते ही ललितादासी और बाकी सब लोग माँ गोस्वामिनी के हाथ से प्रसादी-तेल-हल्दी-लेकर सारे अंगों में मलने लगे। अपूर्व आकर्षण! अड़ोसी-पड़ोसी और बहुत से दूर-दूर के लोग, स्त्री, पुरुष, बालक और वृद्ध चुम्बकाकृष्ट लोहे के समान अज्ञात रूप से मठ में उपस्थित हो उलुध्वनि, हरिध्वनि, शंखध्वनि, जयध्वनि आदि करने लगे। दसों दिशाएँ ध्वनित हो उठीं। पड़ोसी रमणियाँ जल से भरी कलसियाँ लिये प्रतीक्षा कर रही थीं। तेल और हल्दी के मले जाने के पश्चात् पंचामृत, चंदन से सुगन्धित जल, पंचतीर्थोदक, गंगाजल और अन्यान्य तीर्थों के जल से स्नान कराया ही जा रहा था कि सब निःसंकोच भाव से परमानन्द पूर्वक उनके मस्तक पर जल उँड़ेलने लगे। सेवकों ने सोच रखा था कि १०८ कलसी से स्नान करायेंगे। इसलिए वे कलसों की गणना करने लगे। पर चारों ओर से इतने जल के कलसे पड़ने लगे कि उनकी गणना करना असम्भव हो गया। ललितादासी नये अंगोछे से देह रगड़ने लगीं। बहुत देर इस प्रकार स्नान करने के पश्चात् बाबाजी महाशय ने नये अंगोछे से देह पोंछी और नये कपड़े पहन श्रीमन्दिर में ठाकुरों को और गोस्वामिनी माँ को दण्डवत् किया। फिर सेवकों की प्रार्थनानुसार ठीक बालक के समान कमरे के भीतर एक सुसज्जित आसन पर जा बैठे। अपूर्व दृश्य! लोग केसर-चन्दन-कुंकुमादि ले नानारूप शृंगार करने लगे। वह कमरा केले के वृक्षों, जल से भरे घड़ों और आम की पत्तियों आदि से सुसज्जित था। ठाकुर मन्दिर और अन्यान्य कमरों के दरवाजों पर केले के पेड़ और पानी के घड़े स्थापित कर दिये थे, आम की टहनियाँ और पत्ते आदि चारों ओर लगा दिये गये थे।

महापुरुष बालक आवेश में बैठे थे। जो जैसे चाहता था, उनका शृंगार कर रहा था। अकस्मात् विश्वम्भरदास नामक एक बाबाजी चाँदी के थाल में एक जोड़ा रेशमी वस्त्र और एक जोड़ी सोने की अँगूठी

ले आये और इन्हें प्रणाम कर अँगूठियाँ बायें हाथ की अनामिका और मध्यमा अँगुलियों में पहना दीं। उसी समय भुवन साऊ और गोपी साऊ ने भी दो अँगूठियाँ कनिष्ठिका और तर्जनी अँगुलियों में पहना दीं। उपस्थित भक्तगण जयजयकार करने लगे। गले में नयी तुलसी की कंठी और आजानुलम्बित फूलों की माला सुशोभित थी। मस्तक को भी सेवकों ने फूलों से सजा रखा था।

पहले से ही नाना प्रकार के फल-फूल, मिठाई, पूड़ी, कचौड़ी आदि ठाकुर को भोग लगाकर इस कमरे में सजाकर रखे थे। अवसर देख ललितादासी ने सबसे शृंगार समाप्त करने को कहा और इनसे भोजन के लिए बैठ जाने का अनुरोध किया। ये ठीक बालक के समान तुरन्त भोजन के लिए उठ बैठे। भक्तों के आनन्द की सीमा न रही। लीलामय की विचित्र लीला थी। यह जिस समय जैसा भी आचरण करते थे उससे ऐसा प्रतीत होता था मानो आनन्द का पवन बह निकला हो। भोजन करते-करते एक-एक द्रव्य एक-एक सेवक के हाथ से लेने लगे। कुछ लोग दूर बैठे थे। उनमें से एक-एक को लक्ष्य कर भोजन की सामग्री ऊपर को उछालने लगे। उस समय इनके भीतर एक ऐसा ऐश्वर्य का प्रकाश हुआ कि यह जिसे लक्ष्य करके कोई चीज फेंकते उसे छोड़ और कोई भी उसे न लपक पाता। इस प्रकार परमानन्द-पूर्वक कुछ देर भोजन-विलास-रंग का आचमन किया। बाहर चौकी के ऊपर एक कुर्सी सजाकर रखी हुई थी। भक्तगणों की प्रार्थना पर वे उसके ऊपर जा बैठे। एक व्यक्ति पञ्चप्रदीप ले आरति करने लगा। भक्तगण मर्मस्पर्शी स्वर से 'निताई गौर राधेश्याम' कीर्तन करते हुए नृत्य करने लगे। उलुध्वनि, हरिध्वनि, शंख-घण्टा-भेरी-तुही-झाँझ-खोल-करताल आदि ध्वनि से दसों दिशाएँ मुखरित हो गईं। दोनों ओर से दो व्यक्ति चँवर डुलाने लगे। आरति के बाद सब लोग मिलकर जन्मोत्सव कीर्तन करने लगे। प्रभु ने राधाकृष्णदादा के हृदय में जिस पद की स्फूर्ति कराई थी, उसी का गायन होने लगा-

आजु किबा अपरूप मनेर उल्लास।
पुलके पूरित अङ्ग भावेर विकास॥
देखो उषा रसावेशे करिते प्रचार।
निद्रिता धराय तुलि दिछे समाचार॥
जीवेर विषाद-निशि चिरकाल तरे।
दूरे गेल शुभदिन उदिल अम्बरे॥
निताइ गौरांग प्रेमे गठित शरीर।
जीवेर दुःखेते जार चोखे बहे नीर॥
प्रेमावेश मातोयारा गरगर भाव।
नहे संवरण प्रेमे उद्दण्ड स्वभाव॥
नवनीत-सुकुमार कोमल हृदय।
पलके पलके भाव तरंग उदय॥
नामेर अशेष शक्ति कीर्तन-प्रभाव।
आचरि शिखान जीवे जेइ महाभाव॥
चण्डाल यवन म्लेच्छ पामर अशेष।
(जाँर) सबारे समान दया नाहिं घृणा लेश॥
कलिहत पतित पाषंडी आमा सबे।
उद्धारिला जेइ निज करुणा प्रभावे॥
चरण परसे जाँर सुपवित्र धरा।
कि कबो दयार सीमा जार साक्षी मोरा॥
अदोषदरशी जेन दयाल निताइ।
जनम लभिला जय जय दाओ भाइ॥
चैत्र मासे वृहस्पति वारे उषा काले।
पवित्रिते धरा जन्म संक्रान्ति वासरे॥
आनन्दे मातिया बलो अन्तर विश्वास।
(मोदेर) श्रीगुरु गौरांग-नित्यानन्द परकाश॥
हेन दयामय प्रभुर चरण-कमले।
ना लय आश्रय जीव निज कर्मफले॥

इस प्रकार बहुत देर नृत्य-कीर्तन होता रहा। सब प्रेमानन्द में मतवाले हो निःसंकोच भाव से बाबाजी महाशय के सम्मुख उनका गुणगान कर रहे थे। उन्होंने केवल एक बार ललितादासी से कहा, 'भगवन्नाम-लीला-गुण परित्याग कर यह क्या गा रहे हो? लोग पागल कहेंगे।' ललितादासी मृदु-मुस्कान के साथ बोलीं, 'पागल कहें या जो भी कहें, आज कोई किसी की न सुनेगा। आप सम्मुख हैं, इसका ही किसी को ध्यान नहीं, दूसरे किसी की क्या?' वे और कुछ न कहकर कमरे के भीतर जा पलंग पर लेट गये। भक्तगण

चारों ओर से घेर उनकी देह दबाने लगे। कोई आनन्द में सुध-बुध खो पंखा करने लगा, कोई नयन जल से आप भीगने लगा।

इधर रसोई तैयार हो गई। यथासमय ठाकुर को भोग लगा। बाबाजी महाशय कई अभ्यागत वैष्णवों के साथ महाप्रसाद-सेवन के पश्चात् आचमन आदि कर बाहर चौकी पर बैठ गये। आमन्त्रित और अनामन्त्रित बहुत से लोग महाप्रसाद पाने लगे। आनन्द की सीमा न रही। चारों ओर कोलाहल मचा था। सेवकगण आनन्द में उन्मत्त हो अथक परिश्रम कर रहे थे। आज किसी की उपेक्षा न कर दु:खी-कंगाल सबको बड़े आदर से महाप्रसाद-सेवन कराया जा रहा था। बाबाजी महाशय आज प्रारम्भ से ही बालकरूप हो रहे थे। लगभग चार बजे कुछ भक्तों ने पट्टवस्त्र लाकर उन्हें पहनाने का आग्रह किया। वांछाकल्पतरु कुछ मुस्काते हुए उनकी वांछा पूर्ण कर पहले की भाँति बैठ गये। एकाएक गदाधरदास बाबाजी ने पाँच रुपये उनके सामने रखते हुए दण्डवत् प्रणाम कर क्षुब्ध मन से कहा, 'इस परमानन्द के बीच पूर्णचन्द्र में कलंक के समान एक बड़े दु:ख की बात हो गई है।' बाबाजी महाशय ने व्यग्रभाव से पूछा, 'क्यों ? क्या दु:ख की बात हो गई ?'

गदाधर—अब कहने से क्या होगा, जो होना था सो हो गया।

बाबाजी—कहो न।

गदाधर—गदाधर रथे, गणेश महापात्र, झूलि रथे प्रभृति मुक्तिमण्डप में बैठे टीका-टिप्पणी करते हुए कह रहे थे-'बड़े बाबाजी ने सब तो किया है, पर एक काम ठीक नहीं हुआ। रघुनाथ गोस्वामी के जगन्नाथ, बलराम और सुभद्रा विग्रहों को मँगवाकर एक वैष्णव द्वारा यों ही पधरा दिया। न ब्राह्मणों को बुलाया, न होम किया, न गायत्री-जप आदि। यह बड़ा अवैध हुआ।'

बाबाजी—अच्छा, वैष्णवों के ऊपर कटाक्ष! मैं जोर देकर कहता हूँ कि जो कोई भी वैष्णव जिस किसी भाव से एक पत्थर भी पधरा देगा वह बात करेगा और मैं देखूँगा कि मुक्तिमण्डप के जितने भी ब्राह्मण हैं, वे जप-गायत्री-होम आदि के द्वारा क्या कुछ कर सकते हैं। हूँ, वैष्णव के ऊपर कटाक्ष! वे सब आकर शास्त्रीय दृष्टि से ही अपने मत का समर्थन करें तो मैं समझूँ कि वे सचमुच पण्डित हैं। आश्चर्य! निताइचाँद ने कैसे-कैसे महापापी पतित, पाखण्डी, मद्य-मांसाहारी व्यक्तियों का उद्धार किया और उनका मति परिवर्तन किया और ये ब्राह्मण इस आश्रम में रहते हुए भी कुछ ग्रहण न कर सके। जाओ, उन्हें अभी यहाँ ले आओ।

गदाधरदास जाकर उन्हें ले आये। बाबाजी महाशय उनसे एक-एक कर प्रश्न करने लगे। वे भयभीत हो बोले-'देखिए, हम प्राकृत बात तो जानते नहीं, हमने जो कुछ कहा था, अपनी कल्पना से कहा था। सच्ची बात यह है कि हमारे मन में लोभ था। अपने स्वार्थ की हानि देखकर हमने ऐसा कहा था।

बाबाजी—यदि ऐसी बात थी तो मुझसे कहा क्यों नहीं ?

इतना कहते ही उन्होंने तीनों ब्राह्मणों को एक-एक जोड़ा वस्त्र देकर विदा किया। ब्राह्मण प्रसन्न होकर वैष्णव और वैष्णवधर्म की प्रशंसा में 'चण्डालोऽपि द्विजश्रेष्ठो हरिभक्तिपरायण:। हरि-भक्तिविहीनस्तु द्विजोऽपिश्वपचाधम:। विप्राद्द्विषडगुणयुतादर-विंदनाभपादारविंद विमुखात् श्वपचोवरिष्ठ:' इत्यादि श्लोक पढ़ते हुए चले गये। बाबाजी महाशय उपस्थित भक्तों के सामने इस सिद्धान्त की व्याख्या करने लगे कि काम, क्रोध, लोभ आदि के वशीभूत मनुष्य अपना मनुष्यत्व खो बैठते हैं और ऐसा कोई भी दुष्कर्म नहीं जो वे नहीं कर सकते।

इस ओर आश्रमवासी अपराह्न साढ़े पाँच बजे तक दिन का कार्यक्रम समाप्त कर रात्रि में वैष्णव-सेवा का आयोजन करने लगे। समस्त मठवासी वैष्णवों और महन्तों को निमन्त्रण दिया गया था। श्रीजगन्नाथदेव का महाप्रसाद आते ही वैष्णवों की पंगत बैठा दी गई। वैष्णव महाप्रसाद की सुगन्ध पाते ही कहने लगे, 'जन्म से ही हम जगन्नाथदेव का महाप्रसाद पाते रहे हैं पर ऐसी सुगन्ध का अनुभव नहीं किया।' तब राधाकान्त मठ के अधिकारी श्रीहरिभजनदास बाबाजी महाशय और गंगामाता मठ के श्रीबिहारीदास पुजारीजी एक स्वर से बोल उठे, 'हम भी मन ही मन यही सोच रहे

थे। हमारा विश्वास है कि आज के भोग में कुछ विशेषता है।' एक प्राचीन वैष्णव बोले-'भोग में वस्तुगत तो कोई विशेषता दीखी नहीं।' यह सुन पुजारीजी बोले-'वस्तुगत विशेषता न होते हुए भी भोग में कालगत या भगवद्-अधर-गत कोई न कोई विशेषता अवश्य है। भगवदधरामृत का लवलेश संचार हुए बिना ऐसी सुगन्ध नहीं हो सकती। इस सम्बन्ध में एक दृष्टान्त है-श्रीमन्महाप्रभु नित्य श्रीजगन्नाथदेव के उपल भोग अर्थात् वल्लभ भोग के दर्शनकर और कुछ महाप्रसाद लेकर मन्दिर से जाते थे। एक दिन उन्होंने बड़े भावावेश में सेवक-पण्डा के निकट कृष्ण-दर्शन की प्रार्थना की। पण्डा उन्हें जगमोहन में श्रीजगन्नाथदेव के सामने ले गया। महाप्रभु ने जगन्नाथदेव में साक्षात् मुरली-मनोहर व्रजेन्द्रनन्दन कृष्ण के दर्शन किये। उनके आनन्द की सीमा न रही। अश्रु, कम्प, पुलकादि सात्विक भावों ने उनकी देह को आच्छादित कर लिया। वे सुध-बुध खो बैठे। थोड़ी देर बाद जब वे अर्धबाह्य दशा को प्राप्त हुए तो पण्डा उपल भोग का महाप्रसाद ग्रहण करने का अनुरोध करने लगा। महाप्रभु ने जैसे ही उसका एक कण जिह्वा पर रखा वे भाव विह्वल हो गये। अवशिष्ट प्रसाद उनके सेवक गोविन्द ने आँचल में बाँध लिया। सन्ध्या समय महाप्रभु अपने परिकर के साथ इष्टगोष्ठी कर रहे थे। उस समय उनका इंगित पाकर गोविन्द ने वही महाप्रसाद लाकर उसका एक-एक कण सबको दिया।

प्रसादेर सौरभ्य माधुर्य करि आस्वादन।
अलौकिक आस्वाद सबार बिस्मय हइल मन॥
प्रभु कहे एइ सब हय प्राकृत द्रव्य।
ऐक्षब कर्पूर मरिच एलाचि लवंगव॥
रसवास गुड़त्वक् आदि जत सब।
प्राकृत वस्तुर स्वाद सभार अनुभव॥
से से द्रव्ये एत स्वाद गन्ध लोकातीत।
आस्वाद करिया देख सबार प्रतीत॥
आस्वाद दूरे रहु गन्धे माते मन।
आपना बिना अन्य माधुर्य कराय विस्मरन॥
ताते एइ द्रव्ये कृष्णाधर स्पर्श हइल।
अधरेर गुण सब इहा संचारिल॥
अलौकिक गन्ध स्वादु अन्य विस्मरन।
महामादक हय एइ कृष्णाधरेर गुन॥

तो विचार कर देखो। महाप्रभु भोग का प्रसाद नित्य ही लेते थे, पर उस दिन के समान और किसी दिन न उन्होंने उसका आस्वादन किया न वर्णन किया।'

वृद्ध—तो क्या यह समझा जाय कि और किसी दिन जगन्नाथजी ने भोग ग्रहण नहीं किया?

पुजारीजी—नहीं, ऐसी बात नहीं। पर उस दिन भोग में वस्तुगत या समयगत कुछ विशेषता थी, जिसके कारण जगन्नाथदेव ने प्रसन्न हो बड़ी रुचि के साथ उसे ग्रहण कर, उसमें अपने अधरामृत का संचार किया था। यह बात सब समय नहीं होती। आज भी भोग में कोई न कोई विशेषता थी, जिसके कारण जगन्नाथदेव ने बड़े प्रेम से उसे ग्रहण किया।

हरिभजनदास—आज एक महापुरुष के आविर्भाव का दिन जो है। जगन्नाथ देव तो आनन्दित होंगे ही। जीवोद्धार का कार्य भगवान् का अपना कार्य है। जिन महापुरुषों द्वारा यह कार्य सम्पन्न होता है, वे उनके नित्य परिकर और विशेष अन्तरंग होते हैं।

इस प्रकार कथा-वार्ता के पश्चात् परमानन्द-पूर्वक महाप्रसाद सेवन कर सब अपने-अपने स्थान को चले गये। आश्रमवासियों ने भी अपना-अपना सेवा-कार्य समाप्तकर विश्राम किया। दूसरे दिन प्रातःकाल उठते ही सब लोग अपने-अपने काम में लग गये। बाबाजी महाशय स्नान-वेदी पर बैठे हुए थे। भक्तगण सुगन्धित तेल लगा रहे थे। साथ ही नानारूप भगवद्-प्रसंग चल रहा था। बाबाजी प्रसन्न मुद्रा में सुन्दर वचनों द्वारा सबकी मनस्तुष्टि कर रहे थे। इसी समय नगेनदादा (नगेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय) ने आकर प्रणाम किया। ये थोड़ा मुस्करा कर विनोद करते हुए बोले, 'क्यों नगेन, कल के कांड में तुम कहाँ थे?'

नगेन—मैं सरकारी कार्य में बहुत व्यस्त था। एक और बात है। कल का आयोजन हिन्दू शास्त्रों की विधि से हुआ या ईसाइयों की विधि से, मैं कुछ समझ नहीं पाया।

बाबाजी—जिन्होंने आयोजन किया था, उनसे पूछो।

नगेन—मैं उन्हीं लोगों से पूछ रहा हूँ। हमारे हिन्दू शास्त्रों के अनुसार जन्मतिथि और नक्षत्र का अवलम्बन कर उत्सव होता है और तिथि नक्षत्र की पूजा होती है। ईसाइयों में तारीख के अनुसार जन्मोत्सव मनाया जाता है। यह उत्सव तारीख के अनुसार मनाया गया, इसलिए मेरे मन में कुछ सन्देह हो गया।

ललिता—अच्छा, यह आलोचना फिर करेंगे।

बाबाजी—(कुछ मुस्कराते हुए विद्रूप भाव से) शायद वह आलोचना और शास्त्र-सिद्धान्त सुनने के हम लोग अधिकारी नहीं हैं। अच्छा, तो मैं आँख, कान बन्द किये लेता हूँ, तुम लोगों को जो कहना हो कहो।

इतना कह बाबाजी महाशय ने जैसे ही आँखें और दोनों कान हाथ से ढके, सब लोग बड़े जोर से हँसने लगे।

ललिता—मैं कोई शास्त्र-सिद्धान्त नहीं जानती, पर जिस धारणा से हमने कल उत्सव मनाया है उसे बता दूंगी।

नगेन—मैं भी वही जानना चाहता हूँ।

ललिता—हमारे प्राचीन आचार्यों में से किसी ने जन्म नक्षत्र की प्रधानता मानी है और किसी ने तिथि की, परन्तु जन्मकाल की सबने समान रूप से श्रेष्ठता मानी है। नवस्मृतिकार श्रीरघुनन्दन ने जन्मोत्सव की जो विवेचना की है उसके अनुसार जन्मोत्सव उस दिन मनाना चाहिए, जिस दिन जन्म-काल-व्यापी नक्षत्रयुक्त तिथि हो। वैष्णव स्मृतिकारों के अनुसार जिस दिन जन्मतिथि का उदय हो उसी दिन जन्मोत्सव मनाना चाहिए। यदि इसमें नक्षत्र संयुक्त हो तो अच्छा, न हो तो तिथि को ही पकड़ना चाहिए। परन्तु इसमें यदि कोई नैमित्तिक योग या विशेषत्व हो तो उसे पकड़ना चाहिए। राधाकृष्ण, निताइ, गौरांग, शिव, दुर्गा, नृसिंह, वामनादि के आविर्भाव के दिन कोई विशेषत्व नहीं है। इसलिए नक्षत्र-युक्त तिथि को ही पकड़ा गया है, किन्तु इस जन्मदिवस का विशेषत्व है महाविषुव् संक्रान्ति। इसलिए तिथि-नक्षत्रवारादि की अपेक्षा महाविषुव् संक्रमण का विशेषत्व रखना होगा। इसके प्रमाण स्वरूप हम देखते हैं कि संक्रान्ति के दिन भक्त चूड़ामणि महावीर का जन्म है। अवश्य किसी न किसी तिथि और नक्षत्र में उनका जन्म हुआ होगा। परन्तु आचार्यों ने तिथि-नक्षत्र का विचार न कर संक्रान्ति को ही पकड़ा है। शास्त्रों ने कहा भी है- 'नित्यनैमित्तिकयोर्नैमित्तिकस्यैव श्रेष्ठत्वम्।' तिथि नक्षत्र आदि का योग सदा सम्भव नहीं है। इसलिए हमने इस संक्रान्ति को प्रधान मानकर यह उत्सव मनाया है और भविष्य में भी हमारा ऐसा ही करने का विचार है। तुम्हारा जो विचार है कहो।

नगेन—मैं कोई नया विचार लेकर नहीं आया। मैं शास्त्र प्रमाणादि तो जानता नहीं, पर मेरे मन में कुछ सन्देह हुआ था, इसलिए मैंने कहा। अब जो कुछ सुना उससे इस समय तो मेरा सन्देह दूर हो गया है, आगे भगवान् जाने। (बाबाजी महाशय को लक्ष्य कर) अच्छा, इस सम्बन्ध में आपका क्या मत है?

बाबाजी—कोई भगवत्सम्बन्ध लेकर तो उत्सव था नहीं, इसलिए व्यर्थ की बात में वाद-विवाद करने से क्या लाभ? न इसकी उत्सवों में गणना है और न इसे मनाने की कोई आवश्यकता है।

ललिता—आप अपना निज सम्बन्ध लेकर यह कह सकते हैं, पर निरपेक्ष भाव से मैं पूछती हूँ कि यदि किसी के गुरु या माता-पिता का उत्सव इस दिन पड़े तो उसे क्या करना चाहिये? तिथि-नक्षत्र मानना चाहिए या महाविषुव संक्रान्ति?

बाबाजी—उस सम्बन्ध में मेरे विचार से संक्रान्ति मानना ही ज्यादा ठीक है।

इस प्रकार का कथा-प्रसंग चलता रहा। तैल-मर्दन के बाद बाबाजी महाशय केसर, चन्दन, कस्तूरी द्वारा सुवासित जल से स्नान कर चुके थे। भक्तगण सफेद तौलिया से उनकी देह पोंछ रहे थे। उस समय रसमय बाबाजी कौतुकाविष्ट हो पास खड़े हुए भक्तों के बीच एक भक्त के ऊपर जल के छींटे देने लगे। कुछ देर तक इस प्रकार जल क्रीड़ा होती रही। स्नान के पश्चात् इनके डोर कौपीन बहिर्वास आदि माँगने पर नन्द ने एक नया धोती-जोड़ा लाकर सामने रख दिया। ये बोले, 'आज फिर?'

नन्द—यह ठाकुर का प्रसादी जोड़ा भीतर रखा था। अब दूकान को तो वापस जायगा नहीं। इसलिए आप ही क्यों न पहन लें।

बाबाजी—(कुछ मुस्कराते हुए) आज वैशाख की प्रतिपदा है, सालका पहला दिन है। आज नया कपड़ा पहनने से एक मास तक नित्य नया पहनना चाहिए। एक दिन पहनने से क्या होगा?

नन्द—(ललितादासी का इंगित पाकर) अच्छा, आपकी कृपा हो तो यह कोई बड़ी बात थोड़े ही है। इतना कह कपड़ा उनके हाथ में दे दिया। वे भी भक्त के अनुरोध की अवहेलना न कर सके। एक मास तक नित्य नया कपड़ा पहनना चाहिए, यह बात उन्होंने परिहास में कही थी। फिर भी इसका पालन किया जाने लगा। भक्तों के उत्साह से नित्य एक जोड़ा नया धोती चादर आने लगा। नया कपड़ा सामने आते ही वे पहना हुआ कपड़ा उतार कर जिस किसी पर भी कृपा-दृष्टि पड़ती उसे दे देते। इस प्रकार एक मास तक मानो नित्य नूतन लीला-रसास्वादन में भक्त निमग्न रहे।

राजर्षि वनमालीबाबू का पुरी-आगमन

जेठ का महीना था। बाबाजी महाशय स्नानाह्निक आदि कर बैठे थे। कोई साढ़े सात बजे वृन्दावन से श्यामदादा आये। जैसे ही उन्होंने दण्डवत् की बाबाजी महाशय ने उन्हें उठाकर आलिंगन किया और अपने पास बिठाते हुए व्रज के कुशल-क्षेम के बारे में पूछने लगे। श्यामदादा ने अश्रु-गद्गद कण्ठ से व्रजवासियों के सुख-दुःख का वर्णन किया। अन्त में राजर्षि वनमाली बाबू की बात कहने लगे।

बाबाजी—वनमाली इस समय कहाँ हैं?

श्याम—इस समय कलकत्ते में हैं।

बाबाजी—कौन-कौन से बाबा लोगों के साथ?

श्याम-हरिचरण पण्डितजी, रसिकदास, मधुसूदन दास और छोटे नित्यानन्द दास, ये लोग स्थायी भाव से हैं और दूसरे बाबाजी आते-जाते रहते हैं। ऐसा लगता है कि हरिचरण पण्डितजी और पिसिमा (बुआ) गोस्वामिनी बहुत शीघ्र पुरी आयेंगे।

बाबाजी—पुरी ऐश्वर्य का धाम है, यहाँ उनका आना क्या सम्भव है? अच्छा, तुम स्नानादि करो।

इतना कह वे स्वयं जगन्नाथ-दर्शन को चले गये। तीन-चार दिन बाद एक दिन हरिचरण पण्डितजी छोटे नित्यानन्ददास जी और पिसिमा गोस्वामिनी आकर उपस्थित हुए। पिसिमा गोस्वामिनी के रहने की पृथक् व्यवस्था की गई। पंडितजी, नित्यानन्ददास, श्यामदादा इत्यादि सब झाँजपीटा मठ में ठहरे। कई दिन बाद कलकत्ते से वनमालीबाबू का पत्र आया। उसका सारांश यह था-'दादा, शत-शत दण्डवत् प्रणाम। निवेदन यह है कि भयानक प्लेग के अत्याचार के कारण श्रीराधाविनोदजी को लेकर कलकत्ते आना पड़ा है। मेरी इच्छा है कि इस अवसर पर आपके श्रीचरण दर्शन करूँ। न जाने विनोद की क्या इच्छा है। श्रीजगन्नाथदेव की रथ-यात्रा भी निकट है, जा सकूँ तो अच्छा है। आप जब तक कृपा-रज्जु द्वारा आकर्षण न करेंगे जाना किसी प्रकार न होगा। राधाविनोदजी के परिवार में प्रायः सब साथ हैं। जैसी इच्छा हो, कीजिएगा।'

पत्र पढ़कर बाबाजी महाशय प्रसन्न हुए और सबको दिखाने लगे। पण्डितजी राजर्षि के आने का प्रस्ताव सुनकर कुछ व्यस्त हो पड़े। बाबाजी महाशय से बार-बार पूछने लगे-उनके ठहरने का क्या होगा?

बाबाजी—भाई! तुम लोग उनके व्यवहार से अवगत हो, उन्हें किस प्रकार सुविधा होगी, तुम जानते हो। वैसी ही व्यवस्था करो।

पण्डितजी—मैं तो इस जगह के बारे में कुछ भी नहीं जानता। कैसे क्या करूँ?

बाबाजी—अच्छा तो एक व्यक्ति तुम्हारे साथ कर देंगे जो इस स्थान से परिचित है।

इस प्रकार वह दिन बीता। दूसरे दिन कामिनीबाबू ने पण्डितजी को पत्र लिखा-'जितना शीघ्र हो सके हम लोग पुरीधाम पहुँचने का प्रयत्न करेंगे। समुद्र के निकट एक दुमंजिला मकान किराये पर ले लेना ठीक होगा' इत्यादि। पत्र पाकर पण्डितजी और भी व्यस्त हो गये। क्या करना चाहिए, इस सम्बन्ध में श्यामदादा और नित्यानन्ददास से परामर्श करने लगे। उसी दिन तीनों मकान देखने के लिए निकल पड़े। समुद्र के किनारे केवल चार मकान थे जिनमें से दो किराये पर

पहले से ही उठे हुए थे। बाकी दोनों का किराया बहुत अधिक था, इसलिए उन्हें नहीं लिया। दूसरे स्थानों के मकान भी देखे पर वह कुछ जँचे नहीं। किंकर्तव्यविमूढ़ हो तीनों लौट आये।

तीन-चार दिन और प्रयत्न करने पर भी कोई फल न निकला। एक दिन पण्डितजी प्रणय-रोष में भर बाबाजी महाशय से बोले, 'किसी समय भी राजर्षि के पहुँचने का तार आयेगा। घर अभी तक ठीक हुआ नहीं और आप बिलकुल उदासीन हैं। वे आजायेंगे, तब क्या होगा?' बाबाजी महाशय मृदु-मुस्कान के साथ बोले, 'भाई, तुमने तो प्रयत्न किया, नहीं मिला तो मैं क्या करूँ?'

पण्डितजी—नहीं, नहीं, आप चाहें तो अभी मिल जाय।

बाबाजी—देखो, अयाचित भाव से न जाने कितने राजा-महाराजा, रोगी-भोगी-जोगी बिना किसी आश्रय के जगन्नाथजी के यहाँ आते हैं। वे किसी को लौटा तो नहीं देते। देखा जायेगा जैसा कुछ होगा। ऐसा भी हो सकता है कि वे लोग यह आश्रम छोड़ और कहीं जाना पसंद ही न करें। इसमें चिन्ता की क्या बात है?

पण्डितजी चुप रहे, पर बाबाजी महाशय की बात से उन्हें कुछ सन्तोष न हुआ। बहुत घूमे फिरे और चेष्टा की पर कुछ भी न हुआ। एक दिन तीसरे पहर चार बजे पण्डितजी, श्यामदादा, नित्यानन्ददास और अन्यान्य भक्त बाबाजी महाशय के पास बैठे थे। नानारूप भगवत्प्रसंग चल रहा था। उसी समय पण्डितजी के नाम एक तार आया। पण्डितजी झट खोलकर पढ़ने लगे। कामिनीबाबू ने लिखा था, 'हरे कृष्ण* के साथ हम लोग सब हावड़ा पहुँच गये हैं। टिकट ले लिया है। रात की गाड़ी से चल सबेरे श्रीधामपुरी पहुँचेंगे।'

तार पढ़ते ही पण्डितजी बाबाजी महाशय से बोले 'यह देखिए, ये लोग आ पहुँचे। पर आपने कोई व्यवस्था नहीं की, अब क्या होगा?'

बाबाजी—भाई, इतने परेशान क्यों होते हो? बड़े लोगों का आना कोई सहज थोड़े ही है। दूसरा टेलीग्राम भी आ सकता है कि अकस्मात् हरे कृष्ण के पेट में दर्द हो गया, इसलिए हम लोग आज पुरी न आकर घर लौट रहे हैं।

पण्डितजी—टिकट तक खरीद लिया है, ऐसा कैसे हो सकता है?

बाबाजी—हो सभी कुछ सकता है।

इतना कह और बातें करने लगे। पण्डितजी उठकर ठाकुरजी के सामने गये ही थे कि पाँच बजे दूसरा टेलीग्राम आया। पण्डितजी चट खोलकर पढ़ने लगे। उसे पढ़ चित्रलिखित के समान स्तम्भित भाव से पाँच मिनट तक खड़े रहे। फिर जल्दी से बाबाजी महाशय के पास गये और उनके चरण पकड़ अश्रुगद्‌गद कण्ठ से कहने लगे-'बाबा! मैंने बिना समझे ही आपकी अवज्ञा की, बड़ा अपराध हुआ, क्षमा करें।'

बाबाजी—क्या हुआ? यह किसका तार है?

पण्डितजी—कामिनीबाबू का।

बाबाजी—क्या लिखा है, पढ़ो।

पण्डितजी—पढ़ने के पहले ही सुना जा चुका है और क्या पढ़ूँ?

बाबाजी—श्यामदास, तुम पढ़ो तो।

श्यामदादा पढ़ने लगे, 'अकस्मात् हरेकृष्ण के पेट में भयानक पीड़ा हो गई। इसलिए आज पुरी न जाकर हम लोग घर वापस जा रहे हैं।'

उपस्थित भक्तवृन्द सुनकर अवाक्! उस दिन से पण्डितजी ने स्वतन्त्र बुद्धि से चेष्टा करना छोड़ दिया। दो दिन बाद फिर एक तार आया-'हम लोग चल दिये।' पण्डितजी तार लेकर बाबाजी महाशय के पास गये। वे बोले, 'कल प्रातः ये लोग आयेंगे।' ऐसा ही हुआ। दूसरे दिन सबेरे आठ बजे सब आ पहुँचे। सबको यथायोग्य दण्डवत् प्रणाम कर बाबाजी महाशय के कमरे में पहुँचते ही वनमालीबाबू, उनकी स्त्री और माता ठाकुरानी बोल उठे, 'हम लोग यह कमरा छोड़कर कहीं न जायेंगे।' तब ललितादासी बोलीं, 'यह कमरा तो बहुत छोटा है और हवादार भी नहीं है। इसमें आप कैसे रहेंगे?'

* बनमाली बाबू को सब हरेकृष्ण नाम से पुकारते हैं।

वनमाली—दीदी, मैं जगन्नाथ-दर्शन करने या अन्य किसी उद्देश्य से नहीं आया हूँ। मेरा उद्देश्य है कि आप लोगों के साथ रहकर कुछ दिन जी भर कर बाबाजी महाशय का मधुमय संग करूँ। अच्छे दुमंजिले मकान की मुझे कोई आवश्यकता नहीं। तुम मुझे निज संगिनी मानकर अपने साथ रखो-यही मेरी प्रार्थना है।

उनकी मृदु-मधुर वाणी से सब विमुग्ध हो गये। किसी को अवकाश न रहा कि और कुछ पूछे। बाबाजी महाशय ने आकर पूछा-'कहीं रहने की व्यवस्था कर लेना ठीक होगा न?'

वनमाली—दादा, हमारे रहने की व्यवस्था हो गई है। अब आप अपने रहने की व्यवस्था कर लें। हम इस स्थान को छोड़ और कहीं नहीं जायेंगे।

बाबाजी—भाई! हमारे लिए तो बड़े आनन्द की बात है, पर माँ और दूसरे लोगों को कष्ट तो नहीं होगा?

वनमाली—ना दादा! कोई कष्ट नहीं। मुझसे अधिक इन लोगों की यहाँ रहने की इच्छा है।

बाबाजी—बड़ी अच्छी बात है। (ललिता दासी को लक्ष्यकर) देखो, अपना सामान वहाँ से हटा कर कमरा खाली कर दो।

बाबाजी महाशय वनमालीबाबू को लेकर ठाकुरजी के कमरे में गये। इधर ललितादासी ने यथा-सम्भव कमरा साफ कर दिया। वनमालीबाबू का शरीर अस्वस्थ था। उनके आहारादि की व्यवस्था के सम्बन्ध में जब किसी आश्रमवासी ने इनसे पूछा तो ये बोले-'जब ये आश्रमवासी हैं तो इनके लिए किसी स्वतन्त्र व्यवस्था की आवश्यकता नहीं। ठाकुर को जो भी भोग लगेगा वही वैष्णव सेवा के पश्चात् इनका आहार होगा। (वनमालीबाबू को लक्ष्य कर) देखो भाई! आज से जितने भी दिन निताइचाँद तुम्हें आश्रम में रखेंगे, तुम उनके संसार में अभ्यागत रूप से रहोगे। तुम्हें जिस चीज की भी आवश्यकता होगी उसके लिए वही दायी होंगे। एक पैसे के लाई-चने की भी जरूरत हो तो स्वतन्त्र रूप से चेष्टा न कर सरल भाव से निताइ के संसार में कहना। वे व्यवस्था कर देंगे। उनके आश्रम में रह कर यदि तुम किसी प्रकार का स्वतन्त्र आचरण करोगे तो तुम्हारे कारण आश्रमस्थ दास-दासियों को अपराध लगेगा।'

वनमाली-दादा! मैं तो आपके निकट आया हूँ, आप जो ठीक समझें करें, मैं आप ही का हूँ। मैं राधाविनोदजी के पास जैसे रहता हूँ, आश्रम में प्रवेश कर भी वैसा ही लग रहा है। हृदय में किसी प्रकार का संकोच नहीं है।

थोड़ी देर में बाबाजी महाशय और वनमालीबाबू दोनों नित्य-कृत्य को चले गये। इस वर्ष रथ-यात्रा के उपलक्ष्य में जगह-जगह से बहुत से अभ्यागत वैष्णव आकर आश्रम में ठहरे थे। रथ में अभी चार दिन बाकी थे। आश्रम में नित्य ढाई सौ लोगों की रसोई होती थी। इसलिए रसोई में विलम्ब होना स्वाभाविक था। ललितादासी ने वनमालीबाबू से कहा, 'दादा, रसोई में विलम्ब होगा, आपके लिए कुछ और व्यवस्था कर दूँ, नहीं तो आपको बड़ा कष्ट होगा।' वनमालीबाबू झट बोले, 'ना ना दीदी, मैं सच कहता हूँ, मुझे किसी प्रकार की असुविधा नहीं हो रही है। और दिनों की अपेक्षा आज बहुत स्वस्थ हूँ। आप लोग कुछ और न सोचियेगा। मैं वैष्णव-सेवा के बाद दादा के साथ प्रसाद लूँगा।'

ऐसा ही हुआ। ठाकुरजी को भोग लग जाने के बाद वैष्णव-सेवा हुई। तब बाबाजी महाशय, वनमाली बाबू, पण्डितजी, रसिकदास बाबाजी, श्याम दादा आदि कई लोग एक साथ बैठकर महाप्रसाद सेवन करने लगे। अपूर्व आनन्द! कभी कोई, कभी कोई, ऐसी रसपूर्ण बात कह देता कि हास्य का झरना फूट पड़ता। ग्रास-ग्रास में मानो आनन्द का उत्स फूट रहा था। तीन बजे के लगभग इनका महाप्रसाद सेवन समाप्त हुआ। अन्तराल में कोई-कोई आपस में कहने लगे, 'जो व्यक्ति आध सेर जल में कपड़े में बाँधा हुआ बहुत पुराना चावल उबाल कर भी उसे भली प्रकार नहीं पचा सकता, उसने आज तीन बजे साधारण महाप्रसाद लिया है, अब देखें क्या होता है।'

दूसरे दिन वनमालीबाबू प्रातःकृत्य समापन के बाद बाहर आकर बोले- आज मुझे शौच साफ हुआ

है। शरीर भी और दिनों की अपेक्षा खूब सबल और स्वस्थ लग रहा है। कैसा आश्चर्यजनक प्रभाव है महापुरुष की शक्ति का। सचमुच इतने दिन वनमालीबाबू श्रीधामपुरी में झाँजपीटा मठ में अनेक प्रकार के आहारादि ग्रहण करते हुए भी स्वस्थ थे।

देखते-देखते रथ-यात्रा आ पहुँची। आज नव-यौवन-दर्शन का दिन है। श्रीजगन्नाथदेव के मन्दिर में लोगों की भीड़ लगी। पन्द्रह दिन बाद आज श्रीजगन्नाथ देव के मुखचन्द्र का दर्शन होगा। आबाल- वृद्ध-युवा, स्त्री-पुरुष, सबके मन में आनन्द नहीं समा रहा है। सब खड़े-खड़े घर की सुध-बुध खो विभोर होकर उत्कण्ठित भाव से एकटक श्रीमन्दिर की ओर देख रहे हैं। इसी समय गगनभेदी मन-प्राण-मत्तकारी कण्ठ से 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' कीर्तन करते-करते दल-बल सहित बाबाजी महाशय आ पहुँचे। पंडा-पुजारीगण दर्शकों की भीड़ हटाकर उनके आने का रास्ता करने लगे। ये लोग सीधे जगमोहन में जा उद्दण्ड नृत्य करने लगे। भक्त-वत्सल वांछा-कल्पतरु श्रीजगन्नाथदेव अभी तक मानो उन्हीं की प्रतीक्षा कर रहे थे। एकाएक कपाट खुल गये। हरिध्वनि, उलुध्वनि, जयध्वनि, शंख, घण्टा, मृदंग, झाँझ, भेरी, सिंगा, शहनाई आदि की ध्वनियों से दसों दिशाएँ गूँज उठीं। असंख्य लोगों की दृष्टि जगन्नाथ देव के श्रीमुख की ओर गई। सबके सब आत्म-विस्मृत भाव से उनकी ओर छूटे चले जा रहे थे। पर कैसे और किस ओर होकर जा रहे थे, इसकी किसी को सुध-बुध न थी। किसी को अवकाश भी न था इसके बारे में सोचने का। उस भीड़ में दुर्बल, वृद्ध, बालक और स्त्रियों के लिए एक विषम परिस्थिति थी, परन्तु मैनेजर के सुप्रबन्ध के कारण किसी को किसी प्रकार की कठिनाई नहीं थी। दर्शनार्थी एक दरवाजे से निकल जाते थे। बहुत देर कीर्तन करने के बाद बाबाजी महाशय और उनके साथी मन्दिर से बाहर आये और गंभीरा, गंगामाता, सिद्धवकुल, हरिदास ठाकुर की समाधि आदि के दर्शन और समुद्र स्नानकर झाँजपीठा मठ लौट गये। यथासमय ठाकुर के भोग के पश्चात् महाप्रसाद ग्रहण कर सब विश्राम करने लगे।

अपराह्न पाँच बजे बाबाजी महाशय, वनमाली बाबू, हरिचरण बाबाजी, रसिकदास बाबाजी आदि कई लोग बैठे इष्ट-गोष्ठी कर रहे थे। नाना रूप लीला प्रसंग चल रहा था। रसिकदास बाबाजी महाशय ने पूछा, 'इस आश्रम में श्रीविग्रह की जो अष्टकालानुयायी लीलासेवा की प्रत्यक्ष प्रणाली है वह और कहीं तो देखने में नहीं आती। तो क्या यह गोस्वामीगण की अभिप्रेत प्रणाली नहीं है?' हरिचरणदास बाबाजी महाशय बोले-'सर्व-साधारण इसका आचरण नहीं करते। इससे यह कैसे कहा जा सकता है कि यह गोस्वामीगण की अभिप्रेत नहीं है। यदि ऐसा नहीं होता तो गोविन्द-लीलामृत आदि ग्रन्थों के वाक्य निरर्थक नहीं हो जाते?'

रसिक—नहीं बाबा, यह नहीं कह रहा। मेरा मतलब है कि श्रीराधागोविन्द की अष्टकालीन लीला केवल स्मरण का विषय है या बाह्य आचरण का भी?

हरिचरण—दादा आप बताइये।

बाबाजी—विग्रहसेवा का मुख्य उद्देश्य क्या मूर्तिरूप में नित्यलीला को प्रकट कर सेवा करना नहीं है? निर्जन में बैठकर स्मरण करने की अपेक्षा क्या यह प्रणाली अधिक सुगम नहीं है?

रसिक—यह तो बिलकुल सत्य है। तरह-तरह के विक्षेपों के बीच मन को स्थिरकर लीलास्मरण करना सबके लिए सब समय सुगम नहीं होता। परन्तु प्रत्यक्ष रूप से जब हम तदनुयायी आचरण देखते हैं तो हमारी तो बात ही नहीं अन्य जो भी लोग उसका दर्शन करते हैं, उनकी भी अनायास लीलागत चित्तवृत्ति हो जाती है। इस मनोमुग्धकारी अति सुन्दर भाव को देख मेरे मन में यह बात आती है कि विग्रहसेवा के साथ-साथ इस प्रकार का स्मरण करने से भाव का विकास होता है और धीरे-धीरे सुमधुर व्रजलीला साधारण लोगों को भी हृदयंगम होती है।

तब कुसुममंजरीदासी सखी वनमाली बाबू को लक्ष्यकर बोलीं, 'अच्छा, वनमालीदादा, आप तो सर्वदा स्मरणनिष्ठ रहते हैं पर आपके राधाविनोदजी की सेवा इस प्रकार क्यों नहीं होती?'

वनमाली—इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रकार की सेवा बड़ी आनन्द दायक और स्मरण के अनुकूल है, पर मैं अपने स्वभाव से लाचार हूँ, क्योंकि मैं विनोद को कभी अकेला नहीं देख सकता। एकाकी अवस्था में उनका दर्शन करते ही मेरा हृदय विदीर्ण हो जाता है और रोना आता है इसलिए मैं उन्हें कभी विनोदिनी से अलग नहीं कर सका।

कुसुम—नित्य जुगलसेवा और लीला में समन्वय किस तरह करते हैं?

वनमाली—स्मरण के साथ श्रीविग्रह-सेवा का योग रखने में असुविधा होती है। यदि ऐसा न हो तो कोई असामंजस्य नहीं है।

कुसुम—निरन्तर युगल रखने से गोलोकलीला कैसे संभव हो सकती है? परकीया रस में सदा दोनों का साथ रहना कहाँ संभव है? परकीया रस का मूल मंत्र ही है संयोग-वियोग दैवाधीन। परकीया रस में संकोच तथा गुरुजनों का भय बना रहता है। इसलिए उसमें निरन्तर मिलन की बात नहीं बन सकती।

हरिचरण—व्रजलीला का मूल आधार जैसा तुमने कहा वह ठीक है, परन्तु कविराज गोस्वामीपाद ने व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण के गुणों का वर्णन करते हुए कहा है-

राय कहे कृष्ण हय धीर ललित।
निरन्तर काम क्रीड़ा जाहार चरित॥
रात्रिदिन कुञ्जक्रीड़ा करे राधा संगे।
कैशोर वयस सफल कैल क्रीड़ा रंगे॥

इन वाक्यों की सार्थकता फिर क्या रहती है?

कुसुम—इन वाक्यों का अर्थ यदि जुगल का निरन्तर कुञ्ज में अवस्थान है तो गोष्ठगमन, गोचारण, प्रत्यागमन, अभिसार आदि दास्य, सख्य और वात्सल्य लीलाओं का स्थान कहाँ रहता है?

हरिचरण—अष्टकालीन लीलाओं की रक्षा करना आवश्यक है, पर कविराज गोस्वामी के वाक्यों का भी तो निरादर नहीं किया जा सकता। जो भी हो दादा इस विषय की भली प्रकार मीमांसा करने की आवश्यकता है।

बाबाजी—भाई, तुम लोग पण्डित हो, शास्त्रादि जानते हो। मैं शास्त्र की बात नहीं जानता। मुझे जो युक्तिसंगत लगता है, वही कह सकता हूँ।

हरिचरण—हम लोग वही सुनना चाहते हैं।

बाबाजी—व्रज की कृष्ण-लीला में दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर चारों रस सदा वर्तमान हैं, किन्तु ये चारों भाव परकीय हैं। इसलिए प्रत्यय-विहीन, निश्चिंतता-रहित, सदा संदिग्ध भाव रहा है-

कबु मिले कबु ना मिले दैवेर घटन॥
परकीय भावे अति रसेर उल्लास।
व्रज बिना इहार अन्यत्र नाहिं वास॥

इस प्रकार गोप-गोपियों में सदा कृष्णप्राप्ति के सम्बन्ध में निश्चयता नहीं रहती। दास्य रस के गोप-गोपीगण सोचते हैं, 'कृष्ण हमारे ही प्रभु हैं, हमारे ही राज-पुत्र हैं, पर जाने हमारी सेवा ग्रहण करेंगे या नहीं, क्योंकि उन्हें सुखी करने की योग्यता हममें कहाँ है।' इत्यादि। सखा सोचते हैं, 'कन्हैया को पाकर गोचारणादि लीला में हमें जो सुख होता है, कन्हैया को भी वैसा ही सुख होता है, इसमें संदेह नहीं। पर आज हमारे साथ गोचारण को जायेगा या नहीं, कौन जाने। माँ यशोदा और नन्द महाराज परस्पर विचार करते हुए कहते हैं, 'लगता है, गोपाल को हमारे घर खाने में सुख नहीं मिलता। घर में दूध-दही और मक्खन का अभाव न होने पर भी दूसरों के घर चोरी कर खाता है।' व्रज-गोपियों से वे कहते हैं, 'हमारा गोपाल तुम्हारे स्नेह के इतने अधीन है कि हमारे हजार बार निषेध करने पर भी तुम्हारे घर खाये बिना उसे तुष्टि नहीं होती। इसीलिए हम कहते हैं कि तुम गोपाल से जितना प्रेम करती हो, हम उसका शतांश भी नहीं कर पाते। गोपाल हमारा नहीं, तुम्हारा सबका है।' किसी-किसी दिन वे विशेष खाद्य पदार्थ मँगाते हैं और सोचते हैं, 'क्या गोपाल इसे खायेगा?' क्या उसे इससे सुख होगा? यह सब भाव संदेह-युक्त और निश्चयतारहित हैं। मधुर भाव में गोपियाँ वंशी-ध्वनि सुन उन्मत्त भाव से अभिसार करती हैं, पर मन ही मन सोचती हैं, 'जाने वह मिलेगा या नहीं। हो सकता है, और कोई गुणवती रमणी उस रमणीमोहन को मोहित कर किसी दूसरे कुञ्ज में ले

गई हो या किसी गुरुजन के भय से वह कुञ्ज छोड़ घर चला गया हो।' इस प्रकार सन्देह-युक्त होने के कारण व्रज का भाव परकीय है। आलंबन और उद्दीपन अनुराग-वर्धक रसोत्कर्ष-सम्पादक, उत्कंठा-कारक और वस्तु-प्रापक हैं। श्रीमूर्तिसेवा यदि इस प्रकार के भाव से न की जाय तो सेवा की कोई सार्थकता ही नहीं। श्रीराधागोविन्द जुगल रूप में सामयिक भाव से साधक के अनुकूल हो सकते हैं पर सदा किस प्रकार व्रजरस के साधक के अनुकूल हो सकते हैं, यह मेरी समझ में नहीं आता। श्रीचैतन्यचरितामृत में धीरललित नायक के प्रसंग में-

निरन्तर कुञ्ज क्रीड़ा जाहार चरित॥
रात्रि-दिन कुञ्जक्रीड़ा करे राधासंगे।
कैशोर वयस सफल कैल क्रीड़ारंगे॥

इत्यादि जो कुछ कहा है, वह सब शारीरिक दृष्टि से कहा हो ऐसा नहीं लगता। श्रीराधागोविन्द दास्य, सख्य, वात्सल्यादि लीला प्रसंग में चाहे किसी भी अवस्था में क्यों न हों, वे परस्पर विलासादि के अतिरिक्त अन्य किसी भाव का आस्वादन न कर सकते हैं और न करते हैं। फिर भी यदि कोई रसिक महात्मा किसी एक रसाविष्ट भाव में काल-भेद की उपलब्धि न कर निरन्तर किसी निर्दिष्ट अवस्था में अवस्थित श्रीराधागोविन्द का स्मरण द्वारा आस्वादन कर सकते हैं तो उनके लिए सदा जुगलरूप में राधागोविन्द को रखने से व्रज भाव में किसी प्रकार का व्याघात नहीं होता। परन्तु ग्रीष्म-काल के मध्याह्न में, सूर्य की प्रचण्ड किरणों से प्रतप्त व्यक्ति के लिए यह अनुभव करना क्या सुगम है कि वह पूर्णिमा की अर्ध-रात्रि में स्निग्ध शीतल चन्द्र किरणों का आनन्द ले रहा है और क्या उस व्यक्ति के लिये जो ऐसा अनुभव करने की चेष्टा करता है, सर्वकालोचित व्यवहार संभव है? गोस्वामी-गण का कहना है, 'सेवा साधकरूपेण सिद्ध-रूपेण चात्र हि। तद्भावलिप्सुना कार्या व्रजलोकानुसारतः।।' नित्य लीला में सर्व-साधारण की दृष्टि में श्रीराधागोविन्द के आचरण में जिस प्रकार के भाव, प्रभाव, इच्छा, अहंकार आदि गोचर होते हैं ठीक उसी प्रकार का आचरण श्रीविग्रह-सेवा में न किया जाय तो मेरे विचार से नित्य-प्रकट श्रीविग्रह की सेवा नहीं बनती और इस प्रकार के आचरण बिना साधक की उपासना में अनुकूलता नहीं होती, क्योंकि साधक साधनावस्था में जिस प्रकार का आचरण करता है और जैसी भावना करता है सिद्ध देह में उसे वैसी ही प्राप्ति होती है। यह सम्भव नहीं है कि साधनावस्था में वह द्वारकानाथ, मथुरानाथ या गोलोकनाथ की सेवा-पूजा की भावना करे और सिद्धावस्था में उसे व्रजेन्द्रनन्दन की प्राप्ति हो। भविष्य में इस प्रकार के गोलमाल की आशंका से ही पूर्व महापुरुषगण स्पष्ट रूप से लिख गये हैं-

'जुगल चरण सेबि, निरन्तर एइ भावि,
अनुरागे थाकिब सदाय।
साधने भाविव जाहा, सिद्ध देहे पाब ताहा,
राग पथेर एइ से उपाय॥
साधने जे धन चाइ, सिद्ध देहे ताहा पाइ,
पक्वापक्व मात्र से विचार।
पाकिले से प्रेम-भक्ति, अपक्वे साधन रीति,
भकति-लक्षण तत्व सार॥

श्रीनरोत्तम ठाकुर महाशय के इन शब्दों का अर्थ है, श्रीमूर्ति-सेवा के नित्यत्व की स्थापना। 'आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।' इस वाक्य को भी साधक देह में श्रीविग्रह-सेवा-परक ही जानना चाहिए। स्मरण के साथ श्रीविग्रह सेवा का योग होने से अनायास व्रज-रस की स्फूर्ति होती है, जिसे सभी लोग एक स्वर से स्वीकार करेंगे। एक व्यक्ति प्रातःकाल निर्जन स्थान में बैठकर माला-जप करता है और नानारूप चेष्टा कर श्रीमती की रंधनलीला का स्मरण करता है, उसे कितने विघ्नों का सामना करना पड़ता है। कभी उसका अपना मन चंचल हो जाने के कारण, कभी किसी शब्द के कान में पड़ जाने के कारण और कभी अन्य किसी प्रकार के विक्षेप के कारण उसे लीला-स्फूर्ति नहीं होती। इसके अतिरिक्त स्मरण-निष्ठ व्यक्ति यदि विशेष रूप से पारदर्शी नहीं है तो इस बात का भय है कि वह खीर के बजाय सुक्ता (कड़वा साग) का रंधन कर डाले। दूसरा व्यक्ति बहुत साधारण है, भजन-प्रणाली में पारदर्शी नहीं है, शास्त्रादि भी नहीं जानता, यहाँ तक कि आँख बन्दकर किसी विषय की भावना भी नहीं

कर सकता, परन्तु उसने साधु-मुख से सुन रखा है कि प्रात:काल श्रीमती कृष्णसेवा के उद्देश्य से नन्द के घर रन्धन करने जाती हैं। इसलिए जब अपने सेवित राधागोविन्द विग्रह की रसोई के लिए रसोई घर में जाता है, तो इस भाव से रसोई करता है कि राधारानी रसोई-घर में बैठी आदेश करती हैं और वह उनके आदेशानुसार नाना प्रकार के व्यंजन तैयार करता है। वह परमानन्द पूर्वक भाग-दौड़ कर कार्य करता है, नाना प्रकार के लोगों से बातचीत भी करता है, वस्तु-संग्रह करने के लिए कभी इधर जाता है कभी उधर, परन्तु उसके आरोपण और प्रफुल्लता में वृद्धि होती रहती है। वह खीर की जगह सुक्ता या दाल नहीं बना बैठता। हम इस प्रकार की सर्वेन्द्रिय द्वारा की जानेवाली कृष्ण-सेवा को बड़ा कहें, या केवल मानसिक विग्रह-लीला को ?

हरिचरण—इससे लीला विषयक स्फूर्ति होती है सही, परन्तु बड़े आडम्बर की आवश्यकता होती है। गोस्वामीगण ने आडम्बर का परित्याग करने की आज्ञा की है। इस प्रकार की सेवा में क्या विशेष रूप से आडम्बर नहीं करना पड़ता ?

बाबाजी—भाई ! आडम्बर तो सेवा के साथ-साथ लगा है, पर इसका यह अर्थ नहीं कि कोई आश्रम और अवस्था के अनुसार अपने कर्तव्य का त्याग कर नाना रूप से भगवत्सेवा की चेष्टा करे। गोस्वामियों ने शायद इसी को आडम्बर कहकर परित्याग करने को कहा है। सती स्त्री जिस प्रकार पति के लाये हुए द्रव्य द्वारा ही सुख पूर्वक बुद्धि और कौशल की सहायता से नाना प्रकार से पति का सुख विधान करती है, भगवत्-सेवापरायण व्यक्ति भी उसी प्रकार योगमाया-प्रदत्त द्रव्य द्वारा अपने चातुर्य की सहायता से नानारूप सेवा करते हुए सेव्य-विग्रह का सुख-विधान और साधकों का आनन्द-वर्धन करते हैं। आसक्त, विरक्त और अनासक्त तीनों प्रकार के व्यक्तियों के लिए सेवा आवश्यक है, परन्तु आश्रमोचित भाव से की गई सेवा ही भक्ति का अंग या साधक होती है। इसलिए आडम्बर सेवा का अंग या साधक न होकर बाधक होता है। यदि सेवा में आडम्बर की आवश्यकता होती तो श्रीसनातन गोस्वामी, श्रीरघुनाथदास गोस्वामी आदि महाप्रभु के परम विरक्त नित्य परिकर स्वयं आचरण कर हमें सेवा-शिक्षा न देते। आचार्यों ने अपने-अपने भजनोपयोगी द्रव्य द्वारा भगवत्सेवा का आश्रम और सेवा दोनों की मर्यादा की रक्षा की है। हमें भी सदा उनके आदर्श को सामने रख सेवा-कार्य करना चाहिये। जो आडम्बर हमें अपने आश्रम और अवस्था के अनुकूल मार्ग से अलग ले जाता है, वही भजन में बाधक होता है।

इस प्रकार बाबाजी महाशय समझाने का प्रयत्न कर रहे थे कि भगवत्सेवा और भगवद् भजन एक ही वस्तु हैं। हरिदास बाबाजी, रसिक दास बाबाजी, वनमाली बाबू आदि सब उनके सुसिद्धान्त को सुनकर परमानन्दित हुए।

इस तरह नाना प्रकार की भगवत्-कथा-वार्ता में आनन्द पूर्वक दिन बीतने लगे। रथ-यात्रा का समय आ गया। वनमाली राय रथयात्रा दर्शन कर और उसके पश्चात् कई दिन पुरी में रहकर कलकत्ते लौट आये।

बहुरूपिये का उद्धार

इस घटना के सम्बन्ध में छोटे बिहारीदास बाबाजी महाशय ने जो कुछ लिखा है उसी को हम यहाँ उद्धृत कर रहे हैं-

बंगाब्द १३१२ में रथ-यात्रा के उपलक्ष में हम लोग श्रीधामपुरी गये थे। उस समय राजर्षि वनमाली सपरिवार वहाँ उपस्थित थे। यात्राकालीन जगन्नाथदेव जहाँ जिस रूप में अवस्थान करते थे, बाबाजी महाशय भी वहीं उसी रूप में दिन व्यतीत करते थे। जगन्नाथदेव का रथ जब राजमार्ग पर रहता, वे भी उस रथ की रस्सी पर सिर रखकर रास्ते में सो रहते। दो दिन तक उनके दर्शन न पाने के कारण मैं बड़ा उत्कंठित था। बाजार की ओर चला जा रहा था, उसी समय अकस्मात् देखा कि करुणामय गुरुदेव दास की उत्कण्ठा दूर करने के लिए सामने उपस्थित हैं। सर्वांग चन्दन-चर्चित और एक नयी चादर से ढका है। आजानुलम्बित मालती-वकुल आदि पुष्प-मालाओं से वक्ष-स्थल सुशोभित है। सुवासित ताम्बूल से अधर सुरन्जित हैं।

हँसते हुए अमृत से भी मधुर स्वर में बोले, 'क्यों रे बिहारी, कैसा है?'

मैं—प्राणहीन देह जैसी हो सकती है वैसा ही।

इतना कह मैंने श्रीचरणों में दण्डवत् प्रणाम किया। कृपामय प्रभु ने तुरन्त उठाकर मुझे आलिंगन किया। सुशीतल वक्ष के स्पर्श से मेरी सारी ज्वाला मिट गई। जन्मजन्मान्तर के पाप-ताप दूर हुए और मैं एक अनिर्वचनीय शान्तिसागर में डूब गया। मन्त्र-मुग्ध के समान श्रीगुरुदेव के पीछे-पीछे जाने लगा। प्राणवल्लभ मठ में उस समय परम पूजनीय प्रभुपाद श्रीयुक्त अतुल कृष्ण गोस्वामी महाशय ठहरे हुए थे। इन्होंने जैसे ही मठ के दरवाजे पर पहुँच 'प्रभुजी' कहकर आवाज दी, वे झट बाहर आ गये। दोनों बाहर बैठे नानारूप हास्य कौतुक पूर्ण वार्ता में संलग्न थे, उसी समय अकस्मात् एक बहुरूपिया आया। उसके गले में खून में सनी हुई एक छुरी इस प्रकार लग रही थी कि देखते ही हृदय काँप जाता था। रक्त के समान लाल रंग गले से निकल कर वक्षस्थल पर बह रहा था। कपट-रुदन के कारण नेत्रों से अश्रु प्रवाहित हो रहे थे। उसे देखते ही सब लोग विस्मय सागर में डूब गये। थोड़ी देर बाद उसे बहुरूपिया समझकर बाबाजी महाशय ने पूछा, 'बाबा, तुम्हारा घर कहाँ है?'

बहुरूपिया—यशोहर जिले में।

बाबाजी—तुम्हारी जाति क्या है?

बहुरूपिया—मैं राढ़ीश्रेणी कुलीन ब्राह्मण हूँ।

बाबाजी—पुरीधाम में कब आये?

बहुरूपिया—तीन चार दिन हुए।

बाबाजी—कहाँ रहते हो?

बहुरूपिया—जहाँ कहीं पड़ जाता हूँ।

बाबाजी—खाने-पीने की क्या व्यवस्था है?

बहुरूपिया—समुद्र के किनारे रसोई बनाकर खा लेता हूँ।

बाबाजी—जगन्नाथजी का प्रसाद क्यों नहीं लेते?

बहुरूपिया—वह बाजार में बिकता है। न जाने कितने लोगों का जूठा रहता है। इसलिए उसे लेने का जी नहीं चाहता।

बाबाजी—जाति-अभिमान के कारण महाप्रसाद भी नहीं लेते। अच्छा, तुम्हारा जो व्यवसाय है वह किस जाति का है?

बहुरूपिया—बाबा, यह आसुरी व्यापार है, मैं जानता हूँ। पर क्या करूँ, लिखा-पढ़ा हूँ नहीं, किसी तरह निर्वाह तो करना ही है। सांसारिक अभाव की चिन्ता करूँ या भगवच्चिन्तन?

बाबाजी—अच्छा मातृ-गर्भ में कौन से बुद्धि-कौशल से आहार संग्रह करते थे और जन्म लेते ही कौन से बुद्धि कौशल से मातृस्तन के रक्त को दूध में परिणत कर जीवन-रक्षा करते थे? विश्वम्भर यदि भरण-पोषण न करें तो जीव की क्या क्षमता है कि वह एक तिनके का भी संग्रह कर सके? बड़े साधन के फल से जीव को मनुष्य-देह प्राप्त होती है। तुमने मनुष्य-देह भी पायी है, धर्म-क्षेत्र भारतवर्ष में और सर्ववर्ण श्रेष्ठ ब्राह्मण कुल में। ऐसे बहुमूल्य जन्म को वीभत्स कार्य में गँवा रहे हो, यह कैसी दु:ख की बात है। यह भ्रमजाल छोड़ो और भगवदुपासना करो। जो अनाथ, अन्ध, आतुर, पशु, पक्षी-कीट पतंगादि का पालन करते हैं, वे सर्वशक्तिमान, सर्वान्तर्यामी, सर्वनियन्ता तुम्हारे स्त्री, पुत्रादि का पालन न करेंगे? 'योऽसौ विश्वम्भरो देवः सः किं भक्तानुपेक्षते।' हा निताइचाँद! जीव की दुर्दशा पर दृष्टिपात करो प्रभो।

इतना कह बालक के समान रुदन करने लगे। बहुरूपिया अभी तक काठ की पुतली के समान उनकी ओर एकटक देख रहा था। एकाएक उसके हृदय का बाँध टूट गया। वह पोशाक फेंक कर रोते-रोते उनके चरणों पर गिर पड़ा और कहने लगा, 'दयामय! मैं बड़ा पाखण्डी और पतित हूँ, मेरा उद्धार कीजिए। मेरा और कोई उपाय नहीं है प्रभु! अनुतापानल से मेरा हृदय दग्ध हो रहा है। यह यातना असह्य हो रही है करुणामय! आप ही इस मोह-मदिरापानासक्त नारकी का उद्धार न करेंगे तो इसकी किसी प्रकार गति न होगी।' इतना कह वह और ऊँचे स्वर से रोने लगा। उसकी कातरोक्ति सुन पाषाण का भी हृदय पिघल जाता। उसका करुण-क्रन्दन सुन और उसके दु:ख को देख गुरुदेव का कृपार्द्र हृदय द्रवीभूत हो गया।

उन्होंने उसे उठाकर आलिंगन किया और उसके अशेष जन्मार्जित पाप तापों को दूरकर उसे चैतन्य किया। वह साश्रुगद्गद कण्ठ से कहने लगा, 'यदि अयाचित कृपाकारी वांछाकल्पतरु प्रभु की यही इच्छा है कि इसकी ग्रह-ग्रस्त व्याधि दूर करें तो बाकी रोग भी क्यों रह जायें। ऐसी कृपा क्यों न करें कि मैं मिथ्या जाति-कुलाभिमान त्यागकर भगवत्-पथ का पथिक हो जाऊँ! मैं आपके श्रीचरणों की शरण में आया हूँ। मेरा उद्धार कीजिए।'

तब बाबाजी महाशय प्रभुपाद की ओर इशारा कर कहने लगे, 'देखो, तुम्हारे उद्धार-कर्ता साक्षात् नित्यानन्द स्वरूप विराजमान हैं। इनके चरणों की शरण लो अभीष्ट सिद्धि होगी।' ब्राह्मण ठीक काठ की पुतली के समान जैसे-जैसे ये नचा रहे थे, नाच रहा था। इनकी आज्ञा पाते ही प्रभुपाद के चरण पकड़ कर रोने लगा। दयार्द्र हृदय प्रभुपाद ने भी शीघ्र ब्राह्मण को उठाकर आलिंगन किया। इधर श्रीगुरुदेव ने गणेश भण्डारी को बुलाकर उसका सिर मुँड़ा देने के लिए मुझे आदेश किया। मैंने शीघ्र गणेश को बुला आदेश का पालन किया। क्षौर के पश्चात् गणेश से जल मँगवाकर ब्राह्मण को स्नान कराया। तब बाबाजी महाशय ने प्रभुपाद से उसे मन्त्र देने को कहा। पहले आपत्ति कर वे बोले, 'बाबाजी महाशय के साथ रहकर उनके आदेशानुसार चलना, तुम्हें किसी प्रकार का अभाव न होगा। एकान्तभाव से इन्हीं की शरण में रहना।' ब्राह्मण हाथ जोड़कर बोला, 'बाबा, मैंने केवल इस जन्म के लिए ही नहीं जन्म-जन्मान्तर के लिए इनके चरणों में आत्मसमर्पण कर दिया है। यही मेरे उद्धार-कर्ता हैं। ये जो भी आदेश करेंगे, तन-मन से उसका पालन करूँगा।' इतना कह वह फिर बाबाजी महाशय के चरणों में साष्टांग लेट गया। इन्होंने रामदादा आदि को कीर्तन करने के लिए बुलाने को मुझे भेज दिया। अपना परिधेय बहिर्वास उतारकर उसे पहनने को दिया। उसके पास एक छाता, एक घंटी और दस पैसे थे। वह सब दक्षिणा स्वरूप प्रभुपाद को देने का उसे आदेश किया। ब्राह्मण प्रफुल्ल हो वह सब द्रव्य प्रभुपाद को देने लगा। उनके मना करने पर बाबाजी महाशय ने कहा, 'मेरा आग्रह है कि आप इसे अभी स्वीकार कर लें, पीछे देखा जायेगा।' इधर रामदादा सदल-बल कीर्तन लेकर आ गये। बाबाजी महाशय उन्हें ब्राह्मण को साथ ले श्रीजगन्नाथ देव के मन्दिर की परिक्रमा को जाने का आदेशकर स्वयं मठ को लौट गये। श्रीगुरुदेव की कृपा से उस दिन से ब्राह्मण विशेष अनुराग के साथ विशुद्ध भक्ति का याजन करने लगा। ब्राह्मण की अवस्था देख सब लोग आश्चर्य में पड़ गये और महत् कृपा का जय-घोष करने लगे।

श्रीश्रीगुरु-पूर्णिमा

रथयात्रा के उपलक्ष में आये हुए प्राय: सभी भक्त चले गये हैं। केवल बाबाजी महाशय के शिक्षा-गुरु अभी हैं। आज श्रीगुरु-पूर्णिमा है। मठ में बड़ी धूम-धाम है। गुरु पूजा के उत्साह से सबके प्राण परिपूर्ण हैं। कोई नाना प्रकार के फूल संग्रह कर रहा है, कोई माला गूँथ रहा है, कोई चंदन घिस रहा है और कोई नाना प्रकार भोग की सामग्री प्रस्तुत कर रहा है। बाबाजी महाशय के मन में न जाने क्या विचार आया, दूकान से एक जोड़ा रेशमी वस्त्र, एक गलीचा और एक खूब बड़ी दरी खरीद कर मँगवाई। कुसुम दीदी के दीक्षागुरु श्रीबिहारी पुजारी महाशय को निमंत्रित किया। इधर कुसुमदीदी और नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी में गुरुतत्व और गुरुपूजा प्रणाली के सम्बन्ध में वाद-विवाद होने लगा। एक कहता था-'गुरु और कृष्ण अभिन्न हैं। जिस प्रकार कृष्ण-पूजा की जाती है, गुरुपूजा भी उसी प्रकार होनी चाहिए। शास्त्रों के अनुसार गुरुपूजा पहले किये बिना और किसी पूजा का अधिकार ही नहीं होता। गुरु के सम्मुख अन्य देवों की वंदना करना भी निषिद्ध है। इसलिए प्रसादी द्रव्य से गुरु की पूजा नहीं हो सकती।' दूसरा कहता था-'गुरु कृष्ण-भक्त हैं, इसलिए अमनिया (अप्रसादी) द्रव्य द्वारा गुरु की पूजा नहीं हो सकती।' दोनों अपने मत के समर्थन में शास्त्र-प्रमाण दे रहे थे। कोई हार नहीं मान रहा था। आश्रमवासी अपने-अपने भाव के अनुसार दोनों का पक्ष ले रहे थे। अनेक वाद-विवाद के बाद स्थिर हुआ कि बाबाजी महाशय और दादा बाबाजी महाशय से पूछा जाय।

दोनों दल बाबाजी महाशय के पास जाकर अपना-अपना मत कहने लगे। वे बोले-'मैं इस प्रकार सुनने को तैयार नहीं। तुम लोग अलग-अलग एक-एक कर अपना मत कहो। उसके बाद यदि गुरुदेव कुछ कहलायेंगे तो कहूँगा। पहले नित्यस्वरूप को कहने दो। बताओ नित्यस्वरूप, गुरु कौन है?

नित्य—श्रीचैतन्यचरितामृत में कहा है-

यद्यपि आमार गुरु चैतन्येर दास।
तथापि जानिये आमि ताँहार प्रकाश॥
गुरु कृष्ण रूप हन शास्त्रेर प्रमाणे।
गुरुरूपे कृष्ण कृपा करेन भक्तगणे॥

इसी प्रकार श्रीमद्भागवत का वाक्य है-

आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत् कर्हिचित्।
न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत सर्व देवमयो गुरुः॥

★ ★ ★ ★ ★

शिक्षा गुरु के त जानि कृष्णेर स्वरूप।
अन्तर्यामी भक्तश्रेष्ठ एइ हुइ रूप॥

कृष्णकर्णामृत में-

चिंतामणिर्जयति सोमगिरिर्गुरुर्मे,
शिक्षागुरुश्च भगवान् शिखिपिच्छमौलिः।
यत्पाद-कल्पतरु-पल्लवशेखरेषु,
लीलास्वयम्वररसं लभते जयश्रीः॥

अन्यत्र 'गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।' ऐसे शत-शत प्रमाण गुरु-कृष्ण के अभिन्नत्व की पुष्टि करते हैं। गुरु-पूजा किये बिना और किसी की पूजा करने के अधिकार की बात भी नहीं होती। इसलिए सबसे पहले गुरु-पूजा करनी चाहिए। प्रसादी वस्तु द्वारा गुरु-पूजा करने का प्रमाण कहाँ है? पतिव्रता स्त्री का जिस प्रकार पति ही एकमात्र उपास्य और सेव्य है और जिस प्रकार पति के स्थान पर श्रीकृष्ण को बिठाने पर भी उसके पतिव्रत धर्म की हानि होती है, उसी प्रकार नैष्ठिक भक्त के गुरु को परित्याग कर और किसी को भी ग्रहण करने से धर्म की हानि होती है। गुरु को भगवत्प्राप्ति में सहायक मानकर भजन करना ठीक वैसा ही है जैसा मुकदमा जीतने के लिए वकील करना। ऐसी स्थिति में गुरु की सेवा-शुश्रूषा तभी तक होती है जब तक कार्य सिद्धि नहीं हो जाती। इसलिए मेरे विचार से गुरु की पूजा भगवद्-बुद्धि से ही करनी चाहिए।

बाबाजी—अच्छा, अब तुम्हें क्या कहना है?

कुसुम—मेरा कोई अलग मत नहीं है। मैं सिर्फ इतना कहना चाहती हूँ कि यदि गुरु और कृष्ण एक ही वस्तु हैं तो कृष्ण की पृथक् रूप से उपासना कैसे बन सकती है? गुरु भी तो हमारे समान मनुष्य ही हैं, उनमें विशेषता यही है कि उन्होंने भजन-बल से भगवत्साक्षात्कार कर लिया है। हम उनकी भक्ति इसीलिए करते हैं कि वे अपने उपदेश द्वारा भगवत्प्राप्ति का मार्ग हृदयंगम करा सकते हैं। यदि पृथक् रूप से भगवदुपासना की सार्थकता न हो तो न उनके दिये हुए मंत्र का कोई मतलब होता है और न उनके चरणों में हमारे आत्मसमर्पण करने का। शास्त्र कहते हैं-

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदंदर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः॥
अज्ञानतिमिरांधस्य ज्ञानांजनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः॥

यहाँ गुरुदेव को भगवत्प्राप्ति के पथ का प्रदर्शक बताया गया है। तब उनमें स्वयं-बुद्धि कैसे की जा सकती है और स्वतन्त्र रूप से उनकी पूजा कैसे की जा सकती है? नरोत्तम ठाकुर महाशय ने लिखा है-

गुरुरूपा सखीर वामे त्रिभंग भंगिम ठामे।
चामरेर वातास करिब।

गोस्वामीपादगणों का विधान है-

'मुकुन्दप्रेष्ठत्वे गुरुवरं' इत्यादि।

बाबाजी—बहुत ठीक। तुम दोनों का मत सुन लिया। अब मुझे जो कहना है, ध्यान देकर सुनो-इस जगत् में उपासना मार्ग में जितना विभ्राट् और मत-मतान्तर है, सब गुरु-तत्व को लेकर है। कोई कहता है, गुरु ही भगवान् हैं, कोई कहता है भगवान् ही गुरु हैं। कोई गुरु को भक्त मानते हैं, कोई मनुष्य, कोई बोधस्वरूप, कोई माता-पिता स्वरूप। कोई कहते हैं स्वामी ही गुरु हैं, और कोई कहते हैं गुरु ही स्वामी है। जिसके हृदय में जैसे भाव का उदय होता है, वह उसी

प्रकार के उपासना-पथपर अग्रसर होने की चेष्टा करता है। पर अपनी-अपनी मनोवृत्ति के अनुसार कोई आगे बढ़ जाता है, कोई पीछे रह जाता है। जगत् में ऐसा कोई भी भाव नहीं जो गुरु-तत्व में असंभव हो। पर भाव निष्कपट होना चाहिए। ऊँचे से ऊँचा भाव भी यदि दंभ-युक्त है तो उसका फल विपरीत होगा। यदि किसी की गुरु में किसी एक प्रकार से निष्ठा है तो उसे दूसरों के भाव की आलोचना या विवाद करने का अधिकार नहीं है। विवाद तब तक सम्भव नहीं होता जब तक लब्धपद-प्रतिष्ठा, ईर्ष्या, द्वेष, असूया आदि में से किसी न किसी का आश्रय न लिया जाय। जब तक अन्य किसी वस्तु का आश्रय है तब तक गुरुदेव में अनन्य-भाव नहीं हो सकता। इसलिए दूसरों का खण्डन-मंडनकर अपनी प्रधानता स्थापित करने के बजाय हृदय को निर्मल और स्वच्छ कर मेरी बात सुनो, वास्तविक तथ्य की उपलब्धि होगी। भगवत्प्राप्ति में जितनी भी वस्तुएँ हैं, दो भागों में विभक्त हैं-लीलांश और तत्वांश। लीलांश प्रत्यक्ष है, तत्वांश अनुमेय है। अत: दोनों में भेदाभेद का सम्बन्ध है। इसलिए एक का दूसरे में समावेश होते हुए भी उन्हें एक मानने से गड़बड़ होती है। नित्यस्वरूप ने शास्त्र प्रमाण सहित जो कुछ कहा है, वह तत्वांश में शाक्त, शैव, गाणपत्य, वैष्णव आदि सबको स्वीकृत है। पर लीलांश में यह कदापि स्वीकृत नहीं हो सकता। श्रीगौरांग महाप्रभु की उपासना प्रणाली का नाम है रागानुगा पंथ, जिसकी मूल भित्ति है आनुगत्य। यह आनुगत्य वकील के आनुगत्य की तरह कार्यसिद्धि के पश्चात् छूट जाने वाली चीज नहीं है। रागानुगा मार्ग में व्रजभाव के उपासकों के सम्बन्ध में 'मुकुन्दप्रेष्ठत्वे गुरुवरं' के सिद्धान्त को न मानने से उपासना में विशृंखलता हो जाती है।

चक्रवर्ती महाशय ने कहा है-

साक्षाद्धरित्वेन समस्तशास्त्रै-
रुक्तथा भाव्यत एव सद्भिः।
किन्तु प्रभोर्यः प्रिय एव तस्य
वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥

निकुञ्ज-यूनो रतिकेलिसिद्ध्यै
या यालिभिर्युक्तिरपेक्षणीया।
तत्रातिदाक्ष्यादतिवल्लभस्य
वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥ इत्यादि

ठाकुर महाशय ने कहा है-

गुरुरूपा सखीर बामे, त्रिभंग भंगिम ठामे,
चामरेर बातास करिब॥
श्रीगुरु चरण-पद्म, केवल भकति-सद्म,
बन्दौ मुञि सावधान मते।
जाहार प्रसादे भाई, ए भव तरिया जाइ,
कृष्णप्राप्ति हय जांहा हइते॥
श्रीगुरु प्रसादे भाइ, ए सब भजन पाइ,
प्रेम-भक्ति सखी अनुचरी।' इत्यादि॥

यह व्रजभाव की उपासना की सुन्दर प्रणाली है। कोई सखी अपनी गुरु-रूपा सखी के आनुगत्य में उसकी आज्ञा से श्रीराधागोविन्द के युगल-लीला-विलासादि का दर्शन कर परमानन्द का अनुभव कर रही है। उसी समय गुरु-रूपा सखी उसे युगल की सेवा के लिए किसी दूसरे वन से किसी वस्तु को लाने का आदेश करती है। तब वह द्विगुणित आनन्द से वनान्तर को प्रस्थान करती है। पर किसी समय निर्जन में कृष्ण के कामना करने पर भी गुरु-रूपा-सखी की आज्ञा के बिना वह उनसे नहीं मिलती। इसी को आनुगत्य कहते हैं। मेरा विश्वास है कि गुरु को साक्षात् भगवत्-मूर्ति मानकर उनकी आराधना करने की अपेक्षा इस प्रकार अनुगत भाव से उनकी आराधना की जाय तो गुरु-शिष्य दोनों को अधिक सुख होता है। सबसे बड़ी बात है, 'सकल छाड़िया आज्ञा बलवान्।' अर्थात् सब कुछ छोड़कर केवल गुरु-आज्ञा शिरोधार्य करना। सेवा का अर्थ है, सुख देना। हम यदि गुरुदेव की साक्षात् दृष्टि से सेवा करें और गुरुदेव उससे सुखी न हों तो क्या हमें उसका फल मिलेगा? शास्त्र-प्रमाण और युक्ति के होते हुए भी गुरुदेव की आज्ञा ही सदा पालनीय है।

नित्य—अच्छा, गुरुदेव यदि स्वयं किसी शिष्य को इस प्रकार की सेवा करने का आदेश करें तब?

बाबाजी—यह बड़ी कठिन बात है। 'तथापि गुरुर धर्म गौरव वर्जित।' 'मैं साक्षात् भगवान् हूँ। मेरी इसी प्रकार पूजा करो' गुरुदेव अपने मुख से ऐसा कह सकते हैं, यह बात मेरी समझ में नहीं आती। फिर भी यदि कोई गुरुदेव ऐसा आज्ञा करें, शिष्य को उनके वचन में दृढ़ विश्वास हो और गुरु-मूर्ति के अतिरिक्त और किसी विग्रह या नाम से उसका मन आकृष्ट न होता हो, तो वह जैसे भी चाहे गुरुदेव की पूजा कर सकता है। इससे शिष्य के कार्य में किसी प्रकार का व्याघात न होगा। पर गुरुदेव के सम्बन्ध में विचार प्रभु अपने आप करेंगे।

इस प्रकार का सिद्धान्त और मीमांसा सुन इनके गुरुदेव और बिहारी पुजारी महाशय एक स्वर से बोल उठे-'यह अपूर्व मीमांसा है। इसी प्रकार की साधना सर्व-सम्मत है। इस मत का अवलम्बन न करने से गुरु और शिष्य दोनों का अनिष्ट होता है।'

इधर बाबाजी महाशय के आदेश से ठाकुरजी के सामने नयी दरी बिछाई गई और उस पर नया गलीचा। इनके विशेष आग्रह और प्रार्थना से इनके गुरुदेव रेशमी वस्त्र धारण कर उसके ऊपर बैठे। उन्होंने अपने हाथ से फूल, तुलसी, चन्दन द्वारा भक्ति-पूर्वक उनकी पूजा की और उनके गले में फूलों की माला पहनाकर अपने हाथ से आरति करने लगे।

द्वितीय बार दुर्गा-पूजा

काल की गति अबाध है। देखते-देखते शरत्काल आ पहुँचा। बड़ी धूम-धाम के साथ शारदीय दुर्गा पूजा का आयोजन होने लगा। बड़े बाबाजी महाशय के मन में न जाने किस भाव का उदय हुआ, अधिवास के दिन आश्रम के गणेश महापात्र नामक ब्राह्मण को बुलाकर बोले, 'कल से तीन दिन तक माँ योगमाया की आराधना का भार आपके ऊपर रहा। विशेष भक्ति-भाव से माँ की आराधना कीजिएगा।'

महापात्र—यह तो मेरे लिए परम सौभाग्य की बात है। किस पुराण की विधि के अनुसार आराधना करनी होगी?

बाबाजी—पूजा वृहन्नन्दकेश्वर पुराण के अनुसार होगी। पर पूजा के क्रम और मन्त्रादि में कुछ पार्थक्य होगा।

महापात्र—किस प्रकार का क्रम और पार्थक्य होगा बता दीजिएगा।

बाबाजी—हाँ, मैं बता दूँगा, उसी प्रकार आप कीजिएगा।

महापात्र—आज ही एक बार बता देते तो अच्छा था।

बाबाजी—व्रजगोपियों ने जिस प्रकार कात्यायनीदेवी की अर्चना की थी, उन सब मन्त्रों का गोस्वामीगण ने उद्धार किया है, उन सब मन्त्रों द्वारा और कुछ-कुछ पौराणिक मन्त्रों द्वारा पूजा करनी होगी। सबसे पहले शालग्राम शिला की अर्चना कर उनको निवेदित वस्तु और अक्षत नैवेद्य द्वारा सपरिकर योगमायारूपिणी देवी की आराधना होगी। मेरा उद्देश्य है कि एकमात्र गोपीभाव से व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण की प्राप्ति की कामना से यथोपस्थित द्रव्य द्वारा भक्ति पूर्वक माँ की आराधना की जाय।

यह सुन महापात्र बहुत आनन्दित हुए। दूसरे दिन यथासमय पूजा आरम्भ हुई। बाबाजी महाशय के मुख से गोपियों के प्रार्थना-मन्त्र सुनकर महापात्र का हृदय भाव परिपूर्ण हो गया। पूजा के पश्चात् कातर भाव से कहने लगे-'बाबाजी महाशय! मैं बहुत दिन से तरह-तरह के काम्य और निष्काम कर्म करता आ रहा हूँ। परन्तु इस प्रकार का सारगर्भित भगवत् कामनापूर्ण निष्काम कर्म करने का मुझे कभी सौभाग्य नहीं मिला। आज आपकी कृपा से मैंने जिस आनन्द का अनुभव किया, उसे भाषा में व्यक्त करने की शक्ति मुझमें नहीं है। आज मेरा जीवन सार्थक हुआ।'

बाबाजी—बाबा, आप लोग तो हमारे गोस्वामीपादों के ग्रन्थों का अनुशीलन करते नहीं। यदि करें तो देखेंगे कि उपासना पद्धति कितनी आनन्दप्रद है।

महापात्र-बाबा, आपकी कृपा होगी तो अवश्य देखूँगा, नहीं तो मेरा ऐसा भाग्य कहाँ।

इस प्रकार के कथोपकथन में कुछ समय बीत गया। अन्नभोग के समय माँ को अन्नभोग देकर मानस-शयन अर्थात् मंत्र-शयन करा दिया गया। इस प्रकार तीन दिन माँ की आराधना कर पूर्ववत् विजया-कृत्य समापन पूर्वक माँ को समुद्र-दर्शन स्पर्शन करा आश्रम को लौट आये।

दूसरे लोग खोल करताल के साथ 'भज निताइ गौर राधेश्याम। जप हरे कृष्ण हरे राम।' नाम-कीर्तन करने लगे। आनन्द की सीमा न रही। चारों ओर से बहुत लोग आकर एकत्र हो गये। सब अनिमेष नेत्रों से बाबाजी महाशय का कार्य-कलाप देख रहे थे और तत्कालीन हर्ष-विस्मय एवं व्याकुलता के भाव में डूबकर अपने को धन्य मान रहे थे। आरति के बाद बाबाजी महाशय ने गुरु वन्दना प्रारम्भ की। एक अपूर्व कौतूहल से वातावरण व्याप्त हो गया। बाबाजी महाशय अपने भावानुसार हृदय के आवेग से गुरुदेव के निकट प्रार्थना और आत्मनिवेदन कर रहे थे। अन्य लोग भी मन ही मन उन्हीं के वाक्यों को दोहराते हुए अपने-अपने गुरुदेव के निकट प्रार्थना और आत्मनिवेदन कर रहे थे। बाह्य रूप से सबकी दशा समान थी। सबके नेत्रों से अश्रुधार प्रवाहित हो रही थी, सबके प्राण आवेग से परिपूर्ण थे। सबके मुख पर व्याकुलता थी, सबके कण्ठ गद्गद और सर्वांग सात्विक विकारों से परिपूर्ण थे।

बहुत देर बाद कीर्तन पूरा हुआ। ये नानारूप फलमूल और मिष्ठान्न अपने हाथ से गुरुदेव के मुख में देने लगे। वे भी प्रसन्नता पूर्वक थोड़ा-थोड़ा ग्रहण कर सबको आनन्दित करने लगे। पर साथियों की मनोकामना अपूर्ण ही रही। अवकाश पाकर नित्य स्वरूप बाबाजी महाशय को उनके कमरे में ले गये। साथीगण अपने-अपने मनोभाव के अनुसार अर्चना कर अपनी मनोकामना पूर्ण करने लगे। परन्तु ये नेत्र मूँदकर निश्चल निस्पन्द भाव से बैठे रहे। लगता था कि जैसे वे इस राज्य में हैं ही नहीं। अपूर्व दृश्य था। सबने प्रेमाप्लुत हृदय, मन-प्राणहारी कातर स्वर और साश्रुगद्गद-कण्ठ से 'मदेक प्राणनाथाय मदेक त्राणकारिणे। मत्सर्वस्व पदाब्जाय श्रीगुरवे नमोनमः।' कहते हुए पुष्पांजलि सहित देह मन प्राणादि श्रीगुरुदेव के चरणों में अर्पित कर साष्टांग प्रणिपात किया। कृपामय प्रभु ने भी कृपार्द्र हो नयनोन्मीलन कर प्रसन्न चित्त से सबकी प्रार्थना अंगीकार की। अवसर पा ललितादासी ने नानारूप प्रसादी फल-फूलों से परिपूर्ण थाल लाकर बाबाजी महाशय के सम्मुख रख दिया। नित्य स्वरूप ने शीघ्र एक मिठाई उठाकर जैसे ही बाबाजी महाशय के मुख में दी, सभी लोग एक-एक कर थोड़ा-थोड़ा उनके मुँह में देने लगे। इन्होंने भी अम्लान वदन सबकी अभिलाषा पूर्ण की और यथासमय बिहारी पुजारी आदि सबके साथ महाप्रसाद ग्रहण कर विश्राम किया।

प्रभुपाद रघुनाथदेव गोस्वामी का व्याधि-मोचन

एक दिन बाबाजी महाशय झाँजपीटा मठ में बैठे थे। कोई चार बजे होंगे। बहुत से भक्तों के साथ नानारूप भगवत्प्रसंग चल रहा था। उसी समय किसी ने आकर कहा-'देखिए! राजगुरु रघुनाथदेव गोस्वामी का शरीर बहुत अस्वस्थ है। बहुमूत्र के कारण वे बड़ा कष्ट भोग रहे हैं। डाक्टर और वैद्य जैसे निराश हो बैठे हैं। इस बार उनका बचना कठिन है। खाना-पीना बिलकुल बन्द है। घण्टे में पाँच छह बार पेशाब होता है। डाक्टरी, वैद्यक, हकीमी किसी भी प्रकार की चिकित्सा से कोई लाभ न देख सब लोग हताश हो गये हैं।' सुनते ही बाबाजी महाशय व्याकुल भाव से बोले, 'ऐसी हालत है, मुझे पता नहीं था। निताइ की इच्छा से चलो एकबार देख आयें।' इतना कह प्रभुपाद के घर चल दिये। उन्हें देखते ही प्रभुपाद बहुत क्षीण स्वर में बोले, 'बाबा, न बैठ सकता हूँ न बोल सकता हूँ। जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा हूँ। आपके दर्शन कर बड़ा सुख हुआ। अब चिर-विदा की प्रार्थना है।'

बाबाजी महाशय निमीलित नेत्रों से प्रभुपाद के सीने पर दाहिना हाथ रख स्थिर होकर उनकी बात सुन रहे थे। उनकी बात समाप्त होते-होते कम्पित कलेवर से 'जय निताइ' कहकर हुंकार भरी और गद्गद कण्ठ से बोले-'भय की क्या बात है? तुम साक्षात् नित्यानन्द हो। तुम्हारी देह में रोगादि आते हैं केवल कृपालाभ के लिए। अच्छे हो जाओगे निताइ की इच्छा से। चिन्ता

का कोई कारण नहीं।' उनके मुख से आश्वास वाणी सुन प्रभुपाद के आत्मीयजनों के निराश प्राणों में कुछ आशा का संचार हुआ। उन्होंने साश्रुगद्‌गद कण्ठ से 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम।' नाम कीर्तन प्रारम्भ किया। उपस्थित भक्तगण कातर स्वर से उनके साथ कीर्तन करने लगे। कुछ देर नाम होता रहा। अकस्मात् बाबाजी महाशय प्रभुपाद का दाहिना हाथ अपने वक्षस्थल पर और अपना दाहिना हाथ उनके वक्षस्थल पर रख मुदित नेत्रों से न जाने क्या प्रार्थना करने लगे। उनके नेत्रों के जल से मुख और वक्षस्थल भीग गये। पन्द्रह मिनट बाद स्वेद, कम्प, पुलकादि से व्याप्त हो प्रभुपाद को आलिंगन कर बोले, 'अरे, पागल निताइ के शरीर में रोग? नहीं कुछ नहीं! उठो, अपना प्रिय नाम-संकीर्तन-नृत्य करो।' इतना कह उनका हाथ पकड़ कर उठे और दोनों नृत्य करने लगे। अपूर्व दृश्य! एक क्षण पहले जिनमें बैठने और बोलने की भी शक्ति न थी, वे दोनों हाथ उठा विभोर हो संकीर्तन-नृत्य कर रहे हैं। प्रभुपाद के घर से संकीर्तन ध्वनि सुन बहुत से लोग उनके अनिष्ट की आशंका से वहाँ एकत्र हो गये। सब प्रभुपाद की अवस्था देख विस्मय-सागर में डूब कर एक-दूसरे से कहने लगे-'धन्य बाबाजी महाशय की शक्ति, धन्य नाम का प्रभाव, धन्य-धन्य निताइचाँद की करुणा! यदि और दो दिन पहले बाबाजी महाशय को खबर दे दी होती तो प्रभुपाद को इतना कष्ट न होता। जो भी हो, हमारे निराश प्राणों में आशा का संचार हुआ।' इतना कह सब अपने-अपने घर चले गये।

इधर कुछ देर नृत्य-कीर्तन के पश्चात् बाबाजी महाशय ने कीर्तन पूरा कर प्रभु को आलिंगन किया और शय्या पर बिठाया। प्रभुपाद के आनन्द की सीमा न रही। स्वेद, कम्प, पुलकादि सात्विक विकारों से उनकी देह विभूषित हो रही थी। साश्रुगद्‌गद कण्ठ से वे बोले, 'दादा, आज आपके स्पर्श से मैं धन्य हुआ। मेरी सारी ज्वाला, यन्त्रणा दूर हुई, परम शान्ति मिली। अब मैं इतना स्वस्थ और सबल हूँ कि लगता है जैसे कभी अस्वस्थ था ही नहीं।

बाबाजी—भाई! तुम साक्षात् नित्यानन्द हो। तुम्हारे श्रीअंग के स्पर्श से मैं कृतार्थ हुआ। रोग, शोक, ज्वाला, यन्त्रणा आदि में सामर्थ्य नहीं कि तुम्हारे शरीर को स्पर्श कर सके। फिर भी प्राकृत दृष्टि से तुम्हारे शरीर में ये दीखते हैं केवल तुम्हारी कृपाशक्ति से कृतार्थ होने के लिए। जाओ कुछ महाप्रसाद लो न।

प्रभु—मेरे मन में भी यही बात आ रही थी। बड़ी भूख लगी है।

बाबाजी—क्या खाने की इच्छा है?

प्रभु—जगन्नाथ देव का कुछ महाप्रसाद हो तो अच्छा है।

उसी समय घर में से श्रीजगन्नाथदेव का महाप्रसाद आया। प्रभुपाद के विशेष अनुरोध से बाबाजी महाशय और प्रभु दोनों महाप्रसाद पाने लगे। बहुत दिनों से प्रभु ने कभी इतना महाप्रसाद नहीं लिया था और न इसकी इच्छा ही की थी। आज पेटभर महाप्रसाद पाकर परम शान्ति लाभ की। यथासमय बाबाजी महाशय श्रीजगन्नाथ दर्शन को गये। उसी दिन से प्रभुपाद धीरे-धीरे स्वस्थ और सबल होने लगे। उनका मूल रोग पूर्ण रूप से तो नहीं गया, पर चलने फिरने में उन्हें किसी प्रकार की असुविधा न रही।

महारास प्रसंग

बहुत दिनों से ललितादासी, वृन्दादासी, कुसुम दासी आदि सखियों के ऊपर रात्रि में रूप, अभिसार और मिलन-कीर्तन का भार है। किसी-किसी दिन बाबाजी महाशय स्वयं उपस्थित रहकर कीर्तन करते हैं और जिस दिन वे उपस्थित नहीं होते ये लोग अभिसार में मिलन करा ठाकुर को भोग लगा देते हैं। यह नित्यलीला मूर्ति में प्रकट रूप से आचरित होती है। किसी नैमित्तिक लीला के उपस्थित होने पर उसी प्रकार ठाकुर की वेश-भूषा कर उसके अनुरूप लीलाविलास-संवलित महाजनों के पदों का कीर्तन होता है।

शरद पूर्णिमा निकट है। एक दिन ये ठाकुर मन्दिर के बरामदे में बैठ न जाने क्या सोच रहे थे, अकस्मात् मधुदादा और उद्धवदादा को बुलाकर पूछने लगे,'क्यों, तुम लोग बंगाली ढंग से घर की छत बना सकते हो?'

दोनों—हाँ, हम बनाना जानते हैं।

बाबाजी—मेरी इच्छा है कि इस मन्दिर के सामने एक बड़ी कुटी हो। कुटी इतनी बड़ी हो कि उसमें मण्डलाकार रूप से महारास लीला की व्यवस्था की जा सके। ठीक आदमी के परिमाण की सोलह सखियाँ और उनके अनुरूप श्रीकृष्ण और श्रीमती की मूर्ति हो। सोलह खूटियाँ हों। भीतर खुला हो। तुम लोग कर सकोगे?

दोनों—हाँ, सब सामान मिल जाय तो हम बहुत सुन्दर कुटी बना लेंगे, ऐसी कि दो चार साल तक उसमें किसी मरम्मत की भी जरूरत न हो।

यह सुन बाबाजी महाशय बहुत प्रसन्न हुए और ललितादासी को गणेश को बाँस आदि के लिए कुछ रुपये देने का आदेश किया। सोलह मूर्तियाँ बनाने की व्यवस्था होने लगी। कुटी भी बनने लगी। विधु बाबू, सुरेन बाबू आदि कई एक वकील भक्तों के घर से अखबार मँगवाकर सुन्दर फाटक बनाने और कुटी के भीतर भी चारों ओर कागज लगाने का नन्द आदि को आदेश किया। सब अपने-अपने काम में लग गये। चारों ओर चहल-पहल दीखने लगी। ललितादासी, वृन्दादासी, कुसुमदासी आदि सखियों को लीला-गान, नृत्य और नानारूप वाद्य-यन्त्र सीखने का आदेश हुआ। इसके पूर्व श्रीपाद रघुनाथदेव गोस्वामी सितार, एसराज, बेहला, तानपूरा और एक जोड़ा तबला ले आये थे और बाबाजी महाशय से अनुरोध किया था कि सखियों को गाना-बजाना सिखायें। मानो उन्हीं के अभिप्राय से आज सखियों को ऐसा आदेश हुआ। एक दिन प्रेमदादा ने यह सब देखकर बाबाजी महाशय से कहा, 'अब तो पूरी जात्रा-मंडली* तैयार हो गई।'

बाबाजी—देखो, लीला का अनुकरण कर अनधिकारी और अश्रद्धालु लोग राजस और तामस भाव से व्यवसाय करते हैं, तभी उसे 'जात्रा' कहते हैं। वह रजो-तमोगुणवर्धक होती है। इसीलिए अनिष्टकारी ओर त्याज्य है और उपासकगण लीला-रसास्वादन हेतु मन-वचन और कर्म द्वारा जो नित्य नैमित्तिक लीला का अनुकरण करते हैं, उससे लीलारस वैचित्र्य की स्फूर्ति होती है और अपने-अपने भाव का विकास होता है। इसलिए उससे साधना में उन्नति होती है। एक ही वस्तु के आस्वादन और अस्वादक के तारतम्य के कारण फल में व्यतिक्रम होता है। उपस्थित वाद्य-यंत्रों में केवल तबला लीला-गत नहीं है, इसलिए इसकी जगह महाप्रभु-प्रदत्त खोल-करताल रखने होंगे। प्रत्येक व्यक्ति को सब प्रकार के यंत्र बजाना सीखना होगा।

ललिता—एक व्यक्ति कितने यंत्र बजायेगा?

बाबाजी—यह बात नहीं। सबका सब प्रकार के यंत्र सीखने का उद्देश्य यह है कि किसी एक व्यक्ति के अभाव के कारण लीला के किसी अंग की हानि न हो।

ललिता—एक व्यक्ति के लिए इतने प्रकार के यंत्र सीखना मुझे असम्भव प्रतीत होता है। पर आपकी कृपा हो तो सम्भव भी हो सकता है।

बाबाजी—एक-एक विषय में अभिनिवेश पूर्वक लीलागत होकर अर्थात् अपने आप में अपने सिद्ध देह का आरोप कर अपनी यूथेश्वरी के निकट प्रार्थना करने से उनकी कृपा से असंभव कार्य भी अनायास सम्पन्न हो जाता है। कृपा का सहारा न लेकर स्वाधीन भाव से चेष्टा करने से कार्य-सिद्धि तो होती ही नहीं, स्वतंत्रता-दोष से भी दूषित होना पड़ता है। व्रज-उपासना की मूल भित्ति ही आनुगत्य है। आनुगत्य बिना प्राप्ति तो दूर, लीला स्फूर्ति ही नहीं हो सकती। लक्ष्मीदेवी में किसी प्रकार की क्षमता या ऐश्वर्य-शक्ति की कमी न थी, फिर भी उन्हें तपस्या करने पर भी आनुगत्य के अभाव में व्रजेन्द्रनन्दन के साथ रासलीला-विलासादि की प्राप्ति न हो सकी, तब औरों की तो बात ही क्या?

ललिता—शास्त्र एक जगह कहते हैं कि श्रीगुरु में आत्म-समर्पण कर उनके आनुगत्य में उपासना किये बिना कोटि-कोटि जन्म साधन-भजन करने से भी भगवत्प्राप्ति नहीं हो सकती। दूसरी जगह कहते हैं कि 'मुखेओ जे जन बले मुञि नित्यानन्ददास। से निश्चय

* बंगाल में लीला अभिनय करने वाले व्यावसायिक दलों, को 'जात्रा' मंडली कहते हैं।

देखबे गोरार स्वरूप प्रकाश॥ गोपीजनेर जेइ प्रेम कहे भागवते। एकला नित्यानन्द हइते पाइबे जगते।।' अर्थात् नित्यानन्द का आनुगत्य होना चाहिए। अन्यत्र कहते हैं कि श्रीगौरांगदेव ही जीवों को बिना विचारे अनर्पित गोपी-भाव-प्रेम वितरण करते हैं। इसलिए उनका आनुगत्य स्वीकार किये बिना व्रजरस में अधिकार नहीं होता। कहीं यह भी कहा है कि 'गोपी-अनुगत बिना ऐश्वर्य ज्ञाने। भजिलेओ नाहि पाय व्रजेन्द्रनन्दने।' तात्पर्य यह कि गुरुपाद-पदाश्रय बिना निताइ की प्राप्ति नहीं होती, निताइ का आश्रय लिये बिना गौरांग की प्राप्ति नहीं होती। गौरांग-पद आश्रय बिना व्रज-प्राप्ति नहीं होती और गोपी-आनुगत्य बिना व्रजेन्द्रनन्दन की प्राप्ति नहीं होती। तो एक जीव किस-किस का आनुगत्य स्वीकार करे?

बाबाजी—ठीक है। तुम्हारा मतलब है कि जब तक निताइ की प्राप्ति नहीं होती तब तक गुरु की आवश्यकता है और जब तक गौरांग की प्राप्ति नहीं होती तब तक निताइ की आवश्यकता है। इसी प्रकार गोपीपदाश्रय पाते ही गौरांग से कोई सम्बन्ध नहीं रहता और कृष्ण-प्राप्ति के बाद गोपियों की आवश्यकता नहीं रहती। यही न?

ललिता—हाँ! कुछ ऐसा ही है।

बाबाजी—इसे आश्रय नहीं कहते। अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए आश्रय का भान-मात्र कह सकते हैं। इस प्रकार का आश्रय मुकदमा जीतने के लिए वकील आश्रय के समान है। परमार्थ-पथ में इस प्रकार का आश्रय ग्रहण करने से अवनति छोड़ उन्नति नहीं हो सकती। आश्रय का अर्थ है, उनका हो जाना। माता-पिता अपनी कन्या को शालग्राम, गुरु-पुरोहित, ब्राह्मण आदि को साक्षी कर किसी योग्य वर को सौंप देते हैं। कन्या भी पिता की आज्ञा स्वीकार कर सबके आगे उसे आत्म-समर्पण कर देती है। उस दिन से उस समर्पिता कन्या पर माता-पिता का कोई अधिकार नहीं रह जाता। उसका गोत्र भी स्वामी का गोत्र हो जाता है। पिता के परिवार में किसी की मृत्यु होने से कन्या को अशौच नहीं लगता, परन्तु स्वामी के परिवार में मृत्यु हो जाने से अशौच लगता है। पतिव्रता स्त्री का पति ही एकमात्र आश्रय, पति ही आराध्य, पति ही सेव्य, पति ही परमगुरु और पति ही परम पिता है। पति के अतिरिक्त और किसी पुरुष का मुख देखने से या उसे स्पर्श करने से वह नरक-गामिनी होती है, ऐसा शास्त्रों में लिखा है, यह ठीक है। पर क्या इसका यह अर्थ है कि कन्यादान के समय से ही कन्या के लिए गुरु-पुरोहित-ब्राह्मण-वैष्णव, पिता, भ्राता, श्वशुर, जेठ, देवर आदि की सेवा-परिचर्या दर्शन स्पर्शन से पातिव्रत्य की हानि होती है और उनकी सेवा नरक द्वार-स्वरूप हो जाती है?

प्रेम—मेरी तो समझ में यह सब कुछ नहीं आ रहा है। कृपाकर सिद्धान्त की व्याख्या कर अच्छी तरह समझाइये।

बाबाजी—पति-पत्नी या गुरु-शिष्य सम्बन्ध में से किसी एक को भी अच्छी तरह समझ लेने से दूसरा अपने आप समझ में आ जायेगा, क्योंकि दोनों ही एक धर्मावलम्बी हैं। पतिव्रता स्त्री का पति सेवा ही एकमात्र कर्तव्य है, परन्तु सास-ससुर, जेठ-देवर आदि की सेवा करना भी पति-सेवा के ही अंग के रूप में परम आवश्यक है। सेव्य वस्तु को सुखी करने का नाम ही है सेवा। पति-सेवा-परायण अर्थात् पतिसुख-विलासिनी पत्नी समय-समय पर पति की सेवा छोड़ पति के माता-पिता, भाई-बहन आदि की सेवा शुश्रूषा कर पति के और अधिक स्नेह की पात्र बन जाती है। सीधी बात यह है कि जैसे पति से सम्बन्ध रखने वाली सब प्रकार की सेवा आत्म-सुख की भावना छोड़कर जब तक नहीं की जाती तब तक पातिव्रत धर्म का पालन नहीं होता, उसी प्रकार गुरु-सेवा-परायण व्यक्ति जब तक एकमात्र गुरुदेव के सुख की अभिलाषा से उनके चरणों में समर्पित प्राण-मन वचन-कर्म द्वारा स्थावर-जंगम, चेतन-अचेतन सभी वस्तुओं की सेवा नहीं करता, यहाँ तक कि जब तक उसकी निताइ-गौरांग और राधा-कृष्ण की सेवा अथवा उनका आनुगत्य आदि गुरु द्वारा अनुमोदित नहीं होते तब तक उसकी गुरु सेवा यथार्थ रूप से नहीं होती। जिस प्रकार के

आचरण से श्रीगुरुदेव को सुख हो उसी प्रकार का आचरण करना यथार्थ और पूर्ण गुरु-सेवा है। गुरुदेव की अनुमति के बिना वैकुण्ठ, द्वारका, मथुरा, नवद्वीप, वृन्दावन आदि धामों या धामेश्वरों का आश्रय लेकर यथावत् रूप से उपासनादि करना भी साधन पथ के अनुकूल न होकर प्रतिकूल होता है। शास्त्र भी यही कहते हैं-'कृष्णे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौरुष्टे न कश्चन।' इत्यादि।

प्रेम—पतिव्रता स्त्री के परपुरुष के दर्शन और स्पर्श से उसका पातिव्रत्य कैसे रहेगा?

बाबाजी—जिस प्रकार कृष्ण के साथ किसी अन्य देवता के समत्व, आधिक्य या ईश्वरत्व की कल्पना करना अपराध है, उसी प्रकार किसी दूसरे पुरुष को उसी भाव से पति या गुरुदेव के समान या अधिक मानकर उसका दर्शन-स्पर्शन करना या आश्रय लेना महा अपराध है। दुःशीलता, दुर्भाग्य, वृद्धता, जड़ता, रोग, निर्धनता आदि दोषों से युक्त पति भी जैसे स्त्री के लिए परित्याज्य न होकर सेव्य है और पति में दोष-दृष्टि रखने का जैसे स्त्री को अधिकार नहीं है और रखने से अपराध होता है, वैसे ही गुरुदेव में योग्यायोग्यत्व दृष्टि रखना भी शिष्य के लिए अपराध है।

इस प्रकार गुरु में श्रद्धा रखकर चाहे किसी भी पथ का अवलम्बन किया जाय फल की प्राप्ति होती है।

प्रेम—अच्छा, श्रद्धा का अर्थ क्या है?

बाबाजी—शास्त्र और गुरु में विश्वास रखना ही श्रद्धा है। जब तक विश्वास नहीं होता तब तक दृश्य वस्तु तक का अदर्शन और प्रत्यक्ष वस्तु का अपलाप होता है। इसीलिए कहता हूँ कि विश्वास-पूर्वक साधन-पथ पर अग्रसर होने की चेष्टा करो।

इसी प्रकार के वार्तालाप में बहुत समय बीत गया। उन्होंने दयालदास से कहा कि कारीगर से पुतलियाँ बनाने को कह दें। दयालदास ने उत्तर दिया, 'मैंने पहले ही पूछा था, वह बोला, कि कम से कम दो महीने लगेंगे। रास-पूर्णिमा के केवल सात दिन बाकी हैं। इतने थोड़े समय में यह काम न हो सकेगा।'

बाबाजी—अच्छा, एकबार उसे बुलाओ तो।

सुनते ही दयालदास कारीगर को बुला लाये। इन्होंने जब उससे पूछा तो वह बोला, 'मैं पहले ही कह चुका हूँ, दो महीने से कम में यह काम कदापि नहीं हो सकता। आप इस बार तो इसी प्रकार काम चला लें, मैं अगले वर्ष बड़े यत्न के साथ सब कुछ ठीक कर दूँगा।'

बाबा—अच्छा! निताइचाँद की जैसी इच्छा।

बाबाजी महाशय अन्य प्रकार की व्यवस्था करने लगे। देखते-देखते छह दिन बीत गये। पूर्णिमा के दिन सबेरे से ही वे न जाने किस भाव में विभोर होकर कथा-वार्ता और व्यवहार करने लगे। रात्रि में पूड़ी-खीर-मोहन भोग की व्यवस्था करने के लिए ललितादासी को आदेशकर कीर्तन की क्या व्यवस्था होगी, इस सम्बन्ध में वृन्दावनदासी के साथ परामर्श करने लगे। इधर सेवकगण संध्या-आरति के बाद ठाकुरजी को नाना-रूप से सजाने लगे। नृत्य और कीर्तन करने वाले भी इनके अभिप्रायानुरूप सज-धज कर तैयार हो गये। तब इन्होंने आनन्दमग्न हो गुरु-वन्दना की और उसके बाद अभिसार कीर्तन प्रारम्भ किया-

शारद चंद, पवन मंद,
विपिने भरल कुसुम-गन्ध,
फुल्ल मल्लिका, मालति जूथि,
मत्त मधुकर भोरनी।
हेरत राति, ऐछन भाति,
श्याम मोहन मदने माति,
मुरली गान, पंचम तान,
कुलवती चित चोरनी।
सुनत गोपी, प्रेम रोपी,
मनहिं मनहिं आपना सोंपि,
ताहि चलत, जाहि बोलत,
मुरली कल लोलनी।
बिछुरि गेह, निजहि देह,
एक नयने काजर रेह,
बाहे रंजित, कंकन एक,
एक कुण्डल दोलनी।

शिथिल छन्द[1], नीविक[2] बंध,
बेगे धाओत जुवती वृन्द,
खसन बसन, रसन[3] चोलि,
दोलित वेणी लोलनी।
एतहुँ बेलि, सखिनी मेलि,
केहु काहुको पथ ना हेरि,
कैछे मिलब, गोकुल चंद,
गोविंददास गायनी॥

★ ★ ★ ★ ★

जय जय जय बिजइ कुञ्जे कुञ्जर[4] वरगामिनी।
प्रेम तरंगे भरल अंग, संगे बरज रमणी॥
गगन मंडल, अति निरमल, शारद सुखद जामिनी।
श्वेत बसन, हाटक बरण[5] झटकत चाँद जामिनी॥
ताना नाना नाना, सुललित वीणा, गान करत सजनी।
रुनुझुनु झूनु नूपुरे बोलत नूपुर किंकिनी॥
बाजे रबाब, वीणा पाखोयाज, ठमकि ठमकि चलनी।
यंत्र-तंत्र, तान-मान धनि धनि नव यौवनी॥
मिलल श्याम कुञ्जधाम, निरुपम रस सायनि।
गोविन्द दासेर सुखेर नाहिं ओर हेरि श्याम मनोमोहिनी॥

★ ★ ★ ★ ★

विपिने मिलल गोप-नारी, हेरि हँसत मुरलीधारी,
निरखि बयान[6] पुछत बात, प्रेमसिंधु गाहिनी[7]।
पुछत सबक गमनछेम कहत किये करब प्रेम,
ब्रजक सबहु कुशल बात, काहे कुटिल चाहनी॥
हेरि ऐछन रजनी घोर तेजि तरुणी पतिक कोर,
कैछे आओलि कानन पर, थोर नहत काहिनी।
गलित ललित कबरी[8] बंध, काहे धाओत जुबती वृन्द,
मन्दिरे किये पड़ल द्वन्द्व, बेढ़ल बिपथ वाहिनी॥
किये शारद चाँदनि-राति, निकुंजे भरल कुसुम पांति,
हेरत श्याम भ्रमर भाति, बुझि आओलि साहिनी।
एतहुँ कहत ना कह कोइ, राखत काहे मनहिं गोइ,
इहइ आन ना होइ कोइ, गोविन्द दास गायनी॥

★ ★ ★ ★ ★

ओइछन वचन कहल जब कान्ह।
ब्रज-रमनी-गन सजल नयान॥
टुटल सबहुँ मनोरथ करनी।
अवनत आनने नखे लिखु धरनी॥
आकुल अन्तर गद्गद कहइ।
अकरुन वचन विशिख[9] नाहिं सहइ॥
शुन शुन सुकपट श्यामर चन्द।
कोइछे कहसि तुहु इह अनुबन्ध॥
भांगिल कुल शील मुरलीक साने[10]।
किंकरीगन जनु केशे धरि आने॥
अब कह कपटे धरम जुत बोल।
धार्मिक हरये कि कुमारी निचोल[11]॥
तोहे सोंपित जीव तुया रस पाव।
तुया पद छोड़ि अब को काहाँ जाब॥
एतहूँ कहल ब्रज जौवत[12] मेल[13]।
शुनि नन्दनन्दन हरषित भेल॥
चौदिके बेड़ल जुबतीर वृन्द।
रास रभस[14] रस करलि आरम्भ॥

★ ★ ★ ★ ★

कांचन मणिगण, जनु निरमाओल,
रमणी-मंडल साज।
माझहि माझ, महा मरकत सम,
श्यामर नटवर राज॥
धनि-धनि अपरूप रासविहार।
थिर बिजुरि संञे[15] चंचल जलधर,
रस बरिखये अनिबार॥
कत-कत चान्द, तिमिर पर बिलसइ,
तिमिरहि कत कत चान्दे।
कनक लता संञे, तमालहुँ कत कत,
दुहुँ दुहुँ तनु तनु बान्धे॥
कत कत पदुमिनी[16], पंचम गाओत,
मधुकर[17] धरु श्रुति भाष।
मधुकर मेलि कत, पदुमिनी गाओत,
मुगधल गोविंददास॥

★ ★ ★ ★ ★

1. गति। 2. नाड़ा। 3. भीगी हुई (स्वेद से)। 4. हाथी। 5. सोने का रंग। 6. मुख। 7. स्नान करने वाली। 8. जूड़ा। 9. वाण। 10. धार। 11. शरीर के निचले भाग में पहना जाने वाला वस्त्र। 12. युवतियां। 13. मिलकर। 14. तीव्र। 15. साथ। 16. कमलिनी रूपी गोपियां। 17. मधुकर रूपी कृष्ण।

नव नायरी नव-नायर नौतुन नव-लेहा[1]।
आँखे आँखे निमिखे निमिखे बिछुरल निज देहा॥
नौतुनगन नौतुन बन नौतुन सखी गाने।
ता दिग् दिग् था दिग् दिग् ताल फुकरइ बामे॥
नौतुन रस केलि रभस नौतुन गति भाले।
द्रिमि धो द्रिमि धो द्रिमि द्रिमि बाओल सखी भाले॥
चंचल मणि कुण्डल चल चंचल पट-बास।
दूँहे-दूँहे कर धरिया नाचये सखीगण चौपाश॥

★ ★ ★ ★ ★

बाजे बलया नूपुर मणि किंकिणी।
रासे-रसे रति-रणे कि मधुर शुनि।।
करये नर्तक रास हरिखे मुरारी।
गोविन्द सहित नाचे गोपेर सुन्दरी॥
कोन गोपी कृष्ण संगे गाय उच्चैः स्वरे।
साधुवाद देन तारे श्याम नटवरे॥
कोन गोपी रास रसे श्रमयुत हैया।
आबेशे कृष्णेर अंगे पड़े मुरछिया॥
ताहारे धरिया कृष्ण देन आलिंगन।
बदने बदन शशि करेन चुम्बन॥
रास हाटे गोपीगनेर पशरा यौवन।
ताहाते गाहक भेल मदन मोहन॥
रास हाट उपरे पताका शशधरे।
कोकिला कोटाल हइया जागाय कामेरे॥
बलया नूपुर मणि किंकिणी रोल।
ताहे अति सुमधुर मुरलीक बोल॥
जूथे जूथे पाटोयारा नटिनी गोपिनी।
नटवर ताहाते आपने गुणमणि॥
कोन गोपिकारे लइया नन्देर कुमार।
अधरे अधर दिया चुम्बन बिथार॥
रति-रणे-पण्डिता जतेक गोप-नारी।
बंक बिलोकने सबे तुषिला श्रीहरि॥
भ्रमरा कोकिलागन आनन्देते भासे।
गोविन्द सहित गोपी मत्त रास रसे॥

★ ★ ★ ★ ★

जलद हि जलद, बिजुरी दिठि तापक,
मरकत कनय कठोर।
ए दुहुँ तनु मन, नयन रसायन,
निरुपम नओल किशोर॥
राधा माधव भाँति।
को बिहि निरमिल, कोन घटाओल,
श्यामर गोरी सांगाति॥
जब हि दुहुं दुहुं, नयन अंजलि भरि,
दुहुँ दुहुँ पिबइते चाह।
तनु तनु पैठत, सघने आलिंगत,
कोइछे होयब निरबाह॥
आरति अधर, सुधारस पिबि पिबि,
दुहुंक पिरीति उनमाद।
सहचरीगन कह, अधिक रसावेशे,
किये ना करु परमाद॥

★ ★ ★ ★ ★

रास अवसाने उलसित मने, रसवती रसराज।
रतन आसने बसिला जतने, रतन-मन्दिर माँझ॥
सुचामर लेइ बीजन बीजइ, सेवापरायणा सखी।
सुबासित जले बदन पाखाले, बसने मुछाइआ देखि॥
थारि भरि कोइ बिबिध मिठाइ, धरि दुहुँ सम्मुखे।
सखिगन सञे कतइ कौतुके, भोजन करये सुखे॥
चिनि फेणी कला, मथनि रसाला,
बेउड़ी कदम्बातिला।
पुरी पुया गजा, पेड़ा सरभाजा,
जतेक आनियाछिला॥
अमृतकेलिका, आदि से लड्डूका
ए सूप मुगद झुरी॥
जिलिपी कचुरी, अमृत महुरि,
साकरा मिठिरि खिरी॥
नानाविध फल, मिष्ठान्न सकल,
तुलि तुलि देय मुखे।
किशोरा किशोरी, आपना पाशरि,
भोजन करये सुखे॥
लवंग मंजरी, सुबासित बारि,
दोहाँर बदने देल।
किशोरा किशोरी, सुखे पान करि,
अति तिरपित भेल॥

1. नवीन रस का आस्वादन।

लेइ स्वर्ण झारि, श्रीगुण मंजरी,
पाखाले बदन चाँदे।
मुछिया बसने, निरखि सघने,
पड़ल पीरिति फाँदे॥
ताम्बूल साजाइआ, कोन सखि लइआ,
दोहाँर बदने दिल।
ए केश कुसुमे, आपाद बदने,
निछिया निछिया निल।।

रात्रि दो बजे तक परमानन्द पूर्वक कीर्तन होता रहा। किसी को देह स्मृति न रही। सब भाव में विभोर हो नृत्य-कीर्तन कर रहे थे। कौन कह सकता था कि नित्यलीला प्रकट रूप से वर्तमान नहीं हैं। न जाने क्यों सबकी अनिच्छा होते हुए भी बाबाजी महाशय ने कीर्तन पूरा किया। यथासमय ठाकुरजी के भोग के पश्चात् भक्तगण थोड़ा-थोड़ा प्रसाद ग्रहणकर अपने-अपने स्थान को चले गये, तब आश्रमवासियों ने कुछ विशेष अन्तरंग भक्तों के साथ महाप्रसाद ग्रहण कर विश्राम किया।

श्रीधाम नवद्वीप-गमन

श्रीपाद रघुनाथदेव गोस्वामी नित्य बाबाजी महाशय के पास आते और दोनों भाई जी खोलकर आलाप करते। अगहन का महीना आया, रातें ठण्डी होने लगीं। एक दिन प्रभुपाद बाबाजी महाशय से बोले, 'देखिए दादा, मेरा शरीर दिन पर दिन कमजोर होता जा रहा है। रात्रि में कई बार लघुशंका को जाना पड़ता है और ठण्ड लगती है। शरीर में पहले जैसी ताकत नहीं जान पड़ती।'

बाबाजी—तो चिन्ता की क्या बात है? चलो एक बार गंगातट पर चलें। तुम्हारा जो भजन का धन है उसका जी भरकर भजन करो, व्याधि की चिन्ता करने से क्या होगा? चलो गंगा तट पर जल में जल मिल जायेगा।

बाबाजी महाशय की गंगातीर पर जाने की बात सुन प्रभुपाद बहुत आनंदित हुए और पूछने लगे 'कब चलेंगे?' ये बोले-'अगले सोमवार को पाँच बजे शाम को चलना ठीक होगा।'

सोमवार में पाँच दिन बाकी थे। प्रभुपाद जाने की तैयारी कर रहे थे। बाबाजी महाशय के मुख से जल में जल मिल जाने की बात सुन ललितादासी बहुत आतंकित हुईं। उन्होंने अवसर देख उनसे पूछा-'आपने जो प्रभुपाद से जल में जल मिलाने की बात कही थी, उसका क्या अर्थ है?'

बाबाजी—तुम्हें वह सब जानने की कोई आवश्यकता नहीं। तुम लोग तन-मन से सेवा करते रहो। सेवा ही साधन है और सेवा ही साध्य है।

ललिता—आपकी यह बात सुन मुझे बड़ी आशंका हो गई। मैं किसी प्रकार अपने आपको समझा नहीं पा रही हूँ।

बाबाजी—क्यों, तुमने क्या समझा है?

ललिता—मुझे ऐसा लगता है कि आप गंगातट पर प्रभुपाद का रोग स्वयं ग्रहण करेंगे।

बाबाजी—मानो कि ऐसा ही होगा तो इसमें क्या दोष है? यदि इस जीर्ण-शीर्ण नगण्य देह से किसी अच्छी वस्तु की रक्षा हो सके तो कितने भाग्य की बात है।

यह सुन ललितादासी और अन्य सभी लोग जो वहाँ उपस्थित थे रोने लगे। तब वे मृदु मुस्कान के साथ बोले, 'तू ऐसी झूठी आशंका कर दु:खी क्यों होती है? निताइचाँद ने जितने दिन इस पुतली को नचाने की इच्छा की थी, नचाया। अब यदि और नचाने की इच्छा नहीं है तो कोई क्या करेगा और यदि है तो नचायेंगे ही। तू यह सब सोचकर अपना अमूल्य समय क्यों नष्ट करती है? नाम कर और जी भर सेवा कर। मंगलमय जब जो करते हैं वह मंगल के लिए ही होता है। इन बोध वाक्यों से सबको प्रबोध देकर वे श्रीजगन्नाथ दर्शन को चले गये।

उस दिन से प्राय: सर्वदा ही बाबाजी महाशय हँसते-हँसते कुछ ऐसी बात कह दिया करते जिसके दो अर्थ होते और जो उदासभाव-व्यंजक होती। यदि कोई उनकी बात का एक अर्थ लेकर कातर भाव से उनसे कुछ पूछता, तो उसे हँसी में उड़ा देते। इसके पूर्व जब उन्होंने झाँजपीटा मठ में श्रीराधाकान्तदेव की सेवा का

भार ग्रहण किया था तब उनकी धारणा थी कि राधाकान्तदेव का स्थान निष्किञ्चन है, पर बाद में धीरे-धीरे जब वहाँ नाना प्रकार की सम्पत्ति के साथ-साथ देना भी निकलने लगा तब एक दिन श्रीराधाकान्त देव को सम्बोधन कर बोले, 'ओ ठाकुर, मैं समझा था कि तुम पूरे ग्वाले हो। अब देखता हूँ कि तुम जमींदार भी हो। तो ठीक है, तुम जमींदारी करो। मैं तो कंगाल ठहरा, मुझसे जमींदारी न होगी। जब तक आश्रम का देना चुकाकर तुम्हें निर्द्वन्द्व नहीं कर लेता, तब तक तुम्हारे निकट ऋणी हूँ। तुम्हें निश्चिन्त कर किसी महन्त के हाथों सौंपते ही मैं खलास हो जाऊँगा।' वे बीच-बीच में साथियों से कहा करते, 'देखो, यह मठ तुम्हारे भोग के लिए नहीं है। इसमें विषय हैं। तुम्हारे लिए वही स्थान निर्दिष्ट है, जहाँ खोल करताल बजाकर भिक्षा-लब्ध वस्तु द्वारा ही सेवा चल सकती है। श्रीराधाकान्त देव को किसी उपयुक्त व्यक्ति के हाथों सौंपकर मैं निश्चिन्त हो जाऊँगा।' क्रमशः वृन्दावन मिश्र महाशय का देना चुका दिया गया। केवल हरिश्चन्द्र घोष (छोटे हरीशबाबू) को जो देना था उसके लिए जजी से डिग्री हो चुकी थी। उन्होंने अपने विशेष अन्तरंग भक्त प्रिय बलरामबाबू और नगेनबाबू की परीक्षा करने के लिए कुछ हँसते हुए कहा, 'देखो बलराम, हरीशबाबू के विरुद्ध हाईकोर्ट में अपील की जाय तो कैसा? कलकत्ते में तो तुम्हारे बहुत लोग हैं, इसलिए खर्च भी कम लगेगा। यदि तुम कहो तो कलकत्ते जाकर व्यवस्था करूँ।' परम भक्त सुबुद्धि बलराम विस्मित हो बोले, 'एक साधारण से मुकदमे के लिए हम लोग आपको श्रीधाम का त्याग नहीं करने देंगे। आप तो श्रीमुख से सदा कहा करते हैं, 'निताइ नागर, रसेर सागर, सकल रसेर गुरु। जे जाहा चाय, तारे ताहा देय, वांछाकल्पतरु।।' तो यदि उनसे कोई ऐसी ही कामना करे तो क्या वे न देंगे। आप मामले मुकदमे की चिंता न करें। आपके आशीर्वाद और निताइचाँद की कृपा से इन सब कामों के लिए तो हम मौजूद हैं, जो भी खर्च लगेगा हम उसकी व्यवस्था कर देंगे।' यह सुन बाबाजी महाशय प्रफुल्लित हो बोले, 'बलराम, तुम लोगों के इस भार को ले लेने से अब मैं निश्चिन्त हो गया।'

बलराम—आप बिलकुल निश्चिन्त रहें, जो कुछ भी करना होगा, हम करेंगे।

बाबाजी—(श्रीराधाकान्त को लक्ष्य कर) ठाकुर, तो आज से मैं खलास। तुम्हारा सारा भार बलराम और नगेन के ऊपर रहा।

इतना कह वे बगल बजाने लगे। कुछ देर बाद वे ललितादासी से बोले, 'देख, ठाकुर का देना चुकता करने के लिए जो कुछ पैसा आश्रम में है, लाकर बलराम को दे दे।' ललितादासी ने सब बलराम को दे दिया।

पहले रघुनाथदेव गोस्वामी के साथ श्रीधाम नवद्वीप जाने की बात हुई थी, उसके लिए अब इच्छा प्रबल हो उठी। उन्होंने दूसरे दिन ही जाने का निश्चय कर लिया। यह सुन बलरामबाबू बोले, 'यह क्या, आप कल ही चले जायेंगे?

बाबाजी—एक बार बाबा के दर्शन और गंगास्नान के लिए जी बहुत व्याकुल हो रहा है। तुम लोग बाधा न देना। मैं अब निश्चिन्त हूँ। मुझे कौन रोक सकता है?

इतना कह वे जगन्नाथदेव के दर्शन को चल दिये। बलरामबाबू आदि आपस में कहने लगे, 'कैसी उलटी बात हुई! हमने सोचा था कि बाबाजी महाशय को निश्चिन्त करके रखेंगे तो वे कहीं न जायेंगे। पर अब यह दीखता है कि उनके ऊपर भार रहना ही ठीक है।' किसी ने कहा, 'भाई! तुम चाहे जैसे बुद्धिचातुर्य या कौशल का प्रयोग क्यों न करो, उनको जिस मुहूर्त में जिस व्यक्ति के द्वारा जो कार्य कराने की इच्छा होगी वह उसे करना ही होगा। इसलिए वे जैसे भी सुख और शान्ति लाभ करें वैसे ही तन-मन से आचरण करना हमारा कर्तव्य है, चाहे इसमें हमें दुःख ही हो।' इस प्रकार की बहुत कुछ समालोचना करने के पश्चात् सब लोग अपने-अपने घर चले गये।

बाबाजी महाशय जगन्नाथदेव के दर्शन कर यथा समय आश्रम लौट आये। कुछ दिन पूर्व हरिदादा काली सर्ज का कपड़ा उनके लिए ले आये थे। गुरुदास ब्रह्मचारी नामक एक शिक्षित सज्जन ने बड़े यत्न के साथ उसका चेस्टर बनवा दिया था। वे जैसे ही आश्रम में आये, उक्त महात्मा के आग्रह से उन्हें वह चेस्टर

पहना दिया गया। वे हँसते हुए बोले, 'वाह! कैसी शोभा बनी है। मुँडा हुआ सिर, परिधान में डोर कोपीन और उसके ऊपर यह चेस्टर! कैसी माधुरी है!' इतना कह वे नाना रूप भंगी करने लगे। उनके चेस्टर पहनते ही ललितादासी के मन में न जाने क्या भाव आया, उन्होंने कृष्णदास को भेजकर एक कपड़ा मँगाया और उसकी पगड़ी सिर पर बाँध दी। अपूर्व शोभा!

इस प्रकार वह दिन बीत गया। दूसरे दिन प्रात: नित्य-कृत्य पूरे कर श्रीधाम नवद्वीप जाने के लिए सब तैयारी करने का आदेश कर वे जगन्नाथ-दर्शन को चले गये। श्रीमन्दिर में और रास्ते में जो भी मिला उससे श्रीधाम जाने के लिए विदा माँगते हुए श्रीरघुनाथ देव गोस्वामी को साथ ले आश्रम लौट आये। आश्रम वासी सब उदास थे। सिर्फ अपने-अपने कर्तव्य के विचार से सेवा कार्य करते जा रहे थे। बाबाजी महाशय नानारूप कौशल से भी जब उन्हें प्रसन्न न कर सके, तो ललिता दासी से बोले, 'मेरे जाने की सब तैयारी हो गई। पर मैं महाप्रसाद लेकर जाऊँगा।' ललितादासी साश्रुगद्गद कण्ठ से बोलीं, 'आप स्वेच्छामय स्वतंत्र पुरुष हैं। किसकी सामर्थ्य है जो आपकी इच्छा में बाधा डाले। महाप्रसाद लेकर कुछ विश्राम कीजिए, पीछे जैसी इच्छा हो कीजिए।' इतना कह उनके और गोस्वामी प्रभु के चरण छूकर, उन्होंने महाप्रसाद की व्यवस्था कर दी। दोनों महाप्रसाद पा रहे थे, उसी समय ललितादासी ने पूछा, 'आपके साथ कौन-कौन जायेगा?'

बाबाजी—कोई नहीं।

ललिता—कैसे काम चलेगा?

बाबाजी—निताइचाँद जब जैसा उचित समझेंगे वैसी व्यवस्था कर देंगे। भिखारी वैरागी के साथ और किसी की क्या जरूरत?

ललिता—आपका काम चल भी गया, पर प्रभुपाद की सेवा के लिए तो कोई चाहिए।

बाबाजी—भुवन का लड़का निताइ जायेगा, वही प्रभु की सेवा करेगा।

बलराम—उसमें बड़ी असुविधा होगी। मैं समझाता हूँ, गोविन्ददादा को साथ लेना ठीक होगा।

ललिता—एक व्यक्ति से काम न चलेगा। प्रभु का स्वास्थ्य ठीक नहीं है। रसोई आदि की व्यवस्था करने में बड़ी कठिनाई होगी। इसलिए फणि और गोविन्ददादा को तो साथ लेना ही होगा।

बाबाजी महाशय सबका आग्रह देख और कुछ न बोले। सब महाप्रसाद पा चुके, तो प्रभुपाद का बिस्तर आदि मँगा लिया गया। तीसरे पहर श्रीराधाकान्त, राधाविनोद, निताइ-गौरांग आदि आश्रम के भगवद्-विग्रहों के निकट विदा माँगकर और नितान्त असहाय, अनाथ, अनन्यशरण ललितादासी आदि को विशेष रूप से सान्त्वना देकर स्टेशन के लिए रवाना हुए।

ललितादासी आदि कुछ लोगों को छोड़ बाकी सब आश्रमवासी साथ-साथ स्टेशन तक गये। कलकत्ते की गाड़ी सात बजे आती थी। इसलिए वे और गोस्वामी प्रभु कम्बल बिछाकर एक ओर बैठ गये। चारों ओर भक्तगण घेरकर बैठ गये। नाना-रूप भगवत्प्रसंग होने लगा। एक भक्त ने पूछा, 'कब लौटना होगा?'

बाबाजी—निताइचाँद की इच्छा से लगता है, जल्द ही लौटना होगा।

भक्त—इस समय कहाँ जायेंगे?

बाबाजी—पहले श्रीधाम नवद्वीप, उसके बाद कलकत्ते जाना हो सकता है।

भक्त—जब तक आप श्रीधामपुरी न लौटेंगे, हमारे दिन मुश्किल से कटेंगे।

बाबाजी—बाबा, जहाँ सच्चिदानन्द विग्रह श्रीजगन्नाथ नित्य विराजमान हैं और सपरिकर निताइ गौरांग हैं, वहाँ मेरे जैसे सामान्य जीव के कारण इतना अभाव अनुभव करने की क्या जरूरत है?

भक्त—वे नित्य विराजमान और लीला-विलास-परायण हैं, यही अनुभव तो आपकी अनुपस्थिति में नहीं होता। आपकी कृपा से हम अप्रकट लीला का भी साक्षात् अनुभव करते हैं। शोक-मोह-ज्वाला-यंत्रणाभरे संसार में रहते हुए भी हम आपके सत्संग में परमानन्द सागर में निमग्न रहते हैं। इसलिए श्रीचरणों में विनीत प्रार्थना है कि आप अपने मधुमय संगसुख से वंचित न करें। जितनी जल्दी हो सके लौटने की चेष्टा करें।

बाबाजी महाशय ने 'निताइचाँद की जैसी इच्छा' कहकर बलराम से पूछा, 'कितने बजे हैं?'

बलराम—पाँच बजे हैं। मैं एक बार मन्दिर हो आऊँ तो टिकट खरीदूँ।

बाबाजी—तुम्हारे आने में विलम्ब तो नहीं होगा?

'मैं अभी आता हूँ' कह बलराम तेजी से जा श्रीजगन्नाथ देव का महाप्रसाद ले आये।

महाप्रसाद दर्शन करते ही बाबाजी महाशय प्रेम से पुलकित हो गये। महाप्रसाद को प्रणामकर साश्रुगद्गद कण्ठ से कहने लगे, 'दयामय! मैं तुम्हें छोड़ना चाहता हूँ, तुम नहीं छोड़ते। यही है तुम्हारी अहैतुकी कृपा का चिह्न।'

गोविन्ददादा ने झट महाप्रसाद पाने की व्यवस्था कर दी। प्रभु और बाबाजी महाशय महाप्रसाद पाने लगे। बलरामबाबू ने पूछा, 'कितने टिकट लेने होंगे?'

बाबाजी महाशय बोले—'सीताराम, कालीदास, ब्रह्मचारी, निताइ, गोविन्द, प्रभु और मैं, छह व्यक्तियों के लिए टिकट ले आओ।' फणि के टिकट का रुपया ललितादासी पहले ही बलरामबाबू को दे चुकी थीं। इसलिए बलराम दादा सात टिकट ले आये। कृष्णदास उनके साथ जाने के उद्देश्य से पहले दिन कपड़े के दाम दूकानदार को न देकर, चुपचाप हावड़ा का टिकट खरीद लाया था। नन्द भी अपने काका से रुपया ले आया था। उसने भी उन्हें बिना बताये एक टिकट खरीद लिया था। बाबाजी महाशय और प्रभुपाद महाप्रसाद सेवन कर सबसे विदा माँग गाड़ी पर बैठे। नन्द और कृष्ण अलग से बैठ गये। अकस्मात् बाबाजी महाशय की दृष्टि उन पर पड़ गई। उन्होंने कहा, 'क्यों, तुम क्यों बैठे?'

नन्द—मेरा कटक तक जाने का विचार है।

बाबाजी—कृष्ण कहाँ जायेगा?

कृष्ण—मैं भी कटक ही जाऊँगा।

बात होते-होते गाड़ी छूट गई। थोड़ी देर में कटक आया। इन्होंने कृष्ण और नन्द से कहा, 'तुम लोग यहाँ उतरोगे न?'

कृष्ण—हमारी इच्छा है कि आपके साथ चलें।

बाबाजी—तो तुम धोखा दे रहे हो?

कृष्ण—नहीं हमने टिकट ले लिया है।

बाबाजी महाशय और कुछ न बोले। गाड़ी बहुत से स्टेशनों से होती चार बजे रात हावड़ा स्टेशन पहुँच गई। सब उतर लिये और माँ गंगा के दर्शन-स्पर्शन कर छह बजे मगरा की गाड़ी पर बैठ गये, क्योंकि इस बार बाबाजी महाशय की इच्छा कलकत्ते या और कहीं जाने की बिलकुल न थी। एक साथी ने कहा, 'एकबार कलकत्ते चला जाय।' बाबाजी महाशय उसे समझाते हुए कहने लगे, 'देखो, जिस समय जो कार्य करना हो उसके गौण और मुख्य उद्देश्य का विचार कर लेना चाहिए। हम लोग यह सोचकर आये हैं कि श्रीधाम नवद्वीप चलें। निताइचाँद ने उसी हिसाब ये सब कुछ अनुकूल कर दिया। अब हम यदि अपने मन-बुद्धि के कौशल से किसी अन्य उद्देश्य से अन्य स्थान पर जाने की इच्छा और चेष्टा करें तो वह स्वतन्त्र आचरण कहलायेगा। ऐसी स्वतन्त्रता के कारण मुख्य उद्देश्य की सिद्धि में व्याघात होता है। इसलिए जब तक मुख्य कार्य की सिद्धि न हो ले अन्य किसी प्रकार की वासना मन में न लानी चाहिए। जितनी जल्दी हो, श्रीधाम-दर्शन की चेष्टा करो। इसके बाद जिसकी जो वासना होगी वांछाकल्पतरु उसकी पूर्ति कर देंगे।'

साढ़े नौ बजे के करीब गाड़ी मगरा स्टेशन पहुँची। बाबाजी महाशय प्रभुपाद को साथ ले घोड़ा-गाड़ी से त्रिवेणी-घाट पहुँचे। वहाँ परमानन्द-पूर्वक गंगा-स्नान कर साथियों से जितनी जल्दी हो सके स्नान-आह्निक आदि कर लेने को कहा। सब लोग स्नान करने लगे। इधर गोविन्द दादा ने कुछ बालभोग की व्यवस्था कर ली। इन्होंने यथासमय प्रभुपाद के साथ महाप्रसाद ग्रहण किया। यहाँ से स्टीमर घाट एक मील था। ये कुछ ही दूर पहुँच सके थे कि स्टीमर छूट गया। तब गोस्वामी प्रभु बोले, 'दादा! अब उधर क्यों जा रहे हैं। आज स्टीमर तो मिलेगा नहीं।' ये मुस्कराते हुए बोले, 'देखो भाई, नाम के प्रभाव से जब असंभव भी संभव हो जाता है और अप्राप्य भी प्राप्य हो जाता है, तो क्या स्टीमर

जैसी सामान्य वस्तु की प्राप्ति न हो सकेगी? अच्छा, देखा जायेगा।' इतना कह उच्च स्वर से 'हरिबोल' की ध्वनि करते हुए अपनी चादर उड़ाने लगे। न जाने निताइचाँद का क्या खेल था। स्टीमर घाट से काफी दूर निकल गया था। वहाँ जाकर रुक गया। ये लोग उस पर बैठ गये, तब चलने लगा। सबका टिकट नवद्वीप का था। जिस-जिस घाट पर स्टीमर रुकता था ये उसका नाम पूछते थे। जब स्टीमर गुप्तीपाड़ा घाट पर पहुँचा ये झट उठ खड़े हुए और साथियों से बोले, 'देखो! आज नवद्वीप नहीं जायेंगे, आज यहीं उतर लो।' ऐसा ही हुआ। सब वहीं उतर गये। घोर अन्धकार छाया था और रास्ता नहीं दीख रहा था। गोविन्ददादा ने पूछा-'यहाँ से अब कहाँ जायेंगे?'

बाबाजी-यहाँ से सातगाछिया में कुञ्जलाल गोस्वामी के घर जाने की इच्छा है।

गोविन्द-वह तो बहुत दूर है।

बाबाजी-कितना रास्ता होगा?

गोविन्द-एक कोस से कम नहीं है। रास्ता भी जंगल में से है और इस समय घोर अन्धकार है।

बाबाजी-हो सकता है निताइचाँद की इच्छा से कुञ्ज और विपिन पास के घाट पर तुम्हारी प्रतीक्षा ही कर रहे हों।

गोविन्द-अच्छा, देखें निताइचाँद की क्या इच्छा है।

इस प्रकार वार्तालाप चल रहा था। सचमुच पास के एक घाट पर कुञ्जलाल गोस्वामी और विपिनविहारी गोस्वामी एक दूसरे से कह रहे थे, 'बहुत दिनों से बाबाजी महाशय के दर्शन नहीं हुए, यदि प्रभु की इच्छा से कहीं आज इस स्टीमर से ही आ जाते तो कितना आनन्द होता।' इधर बाबाजी महाशय ने उच्च स्वर से 'हरि बोल' की ध्वनि की। वे दोनों सुनते ही चौंक कर उठ पड़े और उस ओर भागे। वांछाकल्पतरु प्रभु किसी की वासना अपूर्ण नहीं रखते। वे कुछ ही दूर पहुँचे थे कि उन्हें अपनी प्राण-प्रिय और अभिलषित वस्तु के दर्शन हो गये। दोनों जैसे ही भूमि पर साष्टांग हुए, बाबाजी महाशय ने उन्हें उठाकर आलिंगन किया। सब 'गौर हरि बोल' ध्वनि करने लगे। आनन्द की सीमा न रही। थोड़ी देर बाद बाबाजी महाशय ठीक बालक के समान कहने लगे, 'देख कुञ्ज, मैंने तुम लोगों के घर जाने का विचार किया था। अच्छा हुआ निताइचाँद तुम्हें यहाँ ले आये। अब जाने की कोई जरूरत नहीं।' तब कुञ्ज गोस्वामी गद्गद कण्ठ से बोले, 'देखिए, आज कई दिनों से आपके श्रीचरणों के दर्शन के लिए मन जितना व्याकुल हो रहा था, उसे भाषा में व्यक्त करने की हमारी सामर्थ्य नहीं है। आप अन्तर्यामी हैं, सब कुछ जानते हैं। मेरा विश्वास है कि श्रीमदनगोपालजी ने आपको विशेष रूप से आकर्षित किया है। ऐसा न होता तो आप अकस्मात् कैसे आ जाते? जब दयाकर इतनी दूर आये हैं और नवद्वीप का टिकट रहते हुए गुप्तीपाड़ा उतरे हैं, तो चलिए, एकबार श्रीराधामदनगोपालजी के दर्शन कर कुछ विश्राम कर लीजिये।' गोस्वामीजी की बात पूरी न होते ही रघुनाथदेव गोस्वामी बोल उठे, 'दादा, कुञ्जदादा जो कह रहे हैं, वही ठीक जान पड़ता है। इसलिए चलिए आज मदनगोपालजी के दर्शन करें।' ऐसा ही हुआ। सब प्रसन्न-वदन नाम करते-करते चल दिये और रात साढ़े सात बजे सातगाछिया में मदनगोपालजी के मन्दिर पहुँचे। आनन्द की सीमा न रही। आबाल वृद्ध सब उनके पास आकर दण्डवत्-प्रणाम-पूर्वक सरल मन से नानारूप कुशल-प्रश्न पूछने और अपने-अपने सुख-दु:ख की बात उनके चरणों में निवेदन करने लगे।

परमानन्द पूर्वक तीन-चार दिन बीत गये। ये जब भी श्रीधाम नवद्वीप जाने की बात उठाते, कुञ्ज गोस्वामी के पुत्र, कन्यादि अपने बाल-हठ और स्नेह से उन्हें रुकने के लिए विवश कर देते। आज सबको अपने मृदु-वाक्यों से किसी प्रकार समझा-बुझाकर नवद्वीप जाने के लिए कालना की ओर रवाना हुआ। यथासमय कालना के श्रीमन्महाप्रभु और नाम-ब्रह्म आदि दर्शनीय स्थानों के दर्शन कर स्टीमर-घाट लौटने में कुछ विलम्ब हुआ। नवद्वीप का स्टीमर छूट गया। कुञ्ज गोस्वामी कुछ दिन के लिए फिर सातगाछिया लौट चलने का बहुत आग्रह करने लगे। पर ये किसी प्रकार सहमत न हुए और नाव से नवद्वीप के लिए चल दिये। नाव में

नानारूप कथा-प्रसंग होने लगा। कालीदास ब्रह्मचारी ने पूछा, 'अच्छा, भगवद्विमुख जीव उन्मुख कैसे हो?'

बाबाजी—एकमात्र साधु और गुरुकृपा से ही जीव उन्मुख हो सकता है।

ब्रह्म—साधु और गुरुकृपा पाने का क्या उपाय है?

बाबाजी—कृपा अहैतुकी है। कोई भी ऐसा साधन नहीं जो कृपा का कारण बन सके।

ब्रह्म—तब सर्वसाधारण पर साधु और गुरु की कृपा क्यों नहीं होती? इससे उन पर पक्षपात का दोष नहीं लगता?

बाबाजी—सूर्य और चन्द्रमा सर्वत्र समभाव से किरणों का विस्तार करते हैं, परन्तु वस्तुविशेष में उनकी शीतलता और उष्णता विशेष भाव से प्रतिफलित होती है। मेघ भी वर्षा सर्वत्र करते हैं, पर पर्वतीय भूमि में मेघ का जल नहीं ठहरता, जबकि बालुका-मय भूमि में वह इतना समा जाता है कि बाहर उसका कोई चिह्न भी नहीं दीखता। इसी प्रकार साधुओं की कृपा की वर्षा सर्वत्र समभाव से होती है, पर पात्र के अनुसार कम या अधिक प्रतिफलित होती है। भगवान् में जिस प्रकार वैषम्य दोष नहीं हो सकता, वैसे ही साधुओं में भी उसका होना सम्भव नहीं है।

ब्रह्म—तब तो कृपा-शक्ति की अपेक्षा वस्तुशक्ति की ही प्रधानता रही। चन्द्र, सूर्य आदि केवल अपनी किरणों का विस्तार ही कर सकते हैं। जिस वस्तु की जैसी शक्ति होती है वैसी ही उसमें क्रिया होती है। यदि कृपा-शक्ति में वस्तु-शक्ति को नष्ट करने की क्षमता नहीं है तो फिर उसका महत्व ही क्या है?

बाबाजी—तुम ठीक कहते हो। वास्तव में महत्कृपा के लिए असाध्य कुछ भी नहीं, पर महात्मागण कृपा परवश होते हैं। कृपा जिधर चाहती है, उन्हें बहा ले जाती है। कृपा का प्रवाह जिधर बह निकलता है उधर तृण-लतादि का तो कहना ही क्या, पर्वत भी गल जाते हैं।

ब्रह्म—कृपा का स्रोत किधर बहेगा इसका क्या कोई निर्दिष्ट मार्ग होता है?

बाबाजी—कोई नहीं, क्योंकि कृपा स्वतन्त्र है, कभी भी किसी के अधीन नहीं रहती। कृपा का कारण कृपा के अतिरिक्त और कुछ नहीं। फिर भी यह ध्यान रखना चाहिए कि इसका स्रोत निम्नगामी है। चाहे जिस कारण से भी हो, हृदय जब तक आर्द्र या अनुतप्त नहीं होता, जब तक वह व्याकुल हो अभिमान-मंच से कुछ नीचे नहीं उतरता, उसमें कृपा प्रतिफलित नहीं होती।

ब्रह्म—कलिहत, मायामुग्ध, अविद्याच्छन्न हृदय को चैतन्य करने का क्या उपाय है?

बाबाजी—कलिहत दुर्बल जीव के लिए ही श्रीमन्महाप्रभु ने संकीर्तन-यज्ञ का प्रवर्तन किया है।

ब्रह्म—नाम-संकीर्तन में भी तो श्रद्धा होनी चाहिये, नहीं तो फल कैसे होगा?

बाबाजी—श्रद्धा-भक्ति हो तो उत्तम, पर न हो तो उसका फल न होगा, ऐसी बात नहीं। शास्त्र कहते हैं-

सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः।।

गुरु और शास्त्र-वाक्य में विश्वास का नाम है श्रद्धा। कलिहत जीवों में यह विश्वास उत्पन्न करने का उपाय नाम-संकीर्तन के अतिरिक्त और कुछ कोई निर्दिष्ट नहीं कर सका है। इसलिए महाप्रभु के श्रीमुख का वाक्य ही सर्वोपरि है। इस प्रकार का वार्तालाप होते-होते नौका नवद्वीप के सन्निकट घोलापाड़ा जा पहुँची। बाबाजी महाशय के आदेश से गोविन्ददादा और कृष्णदास ने पैदल बड़ालघाट में परम गुरुदेव के आश्रम में जाकर वृद्ध बाबाजी महाशय को इनके आने की सूचना दी। वृद्ध बाबाजी महाशय के आनन्द की सीमा न रही। बड़े उत्साह के साथ इनके आहारादि की व्यवस्था करने लगे। रात सात बजे नौका बड़ालघाट पहुँची। सब लोग उतर कर नाम करते-करते आश्रम पहुँचे और वृद्ध बाबाजी महाशय को दण्डवत् प्रणाम किया। प्रभुपाद को निर्दिष्ट स्थान तक पहुँचाकर सब लोग वृद्ध बाबाजी महाशय के साथ नानारूप वार्तालाप करने लगे। रात दस बजे ठाकुर भोग के पश्चात् महाप्रसाद ग्रहणकर सबने विश्राम किया।

गोपाल घटक का व्याधि-मोचन

बाबाजी महाशय तड़के ही नित्य-कृत्य समापन कर और रघुनाथदेव गोस्वामी की सेवा में किसी प्रकार

की त्रुटि न हो, इस सम्बन्ध में गोविन्ददादा, फणि आदि को सतर्क कर बाहर निकले। सबसे पहले हरिसभा में जाकर श्रीमन्महाप्रभु के निकट नानारूप प्रार्थना, दैन्य और आत्मनिवेदन-पूर्वक उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। फिर नित्यानन्द प्रभु, अद्वैत प्रभु और श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन किये और उन्हें दण्डवत् प्रणामादि कर श्रीधामवासी गोस्वामी, वैष्णव और अन्यान्य लोगों के साथ यथायोग्य व्यवहार करने लगे। सब उन्हें पाकर एक अनिर्वचनीय आनन्द में डूब गये।

दस बजे जाने मन में क्या आया, एकाएक श्रीयुत गोपालचन्द्र घटक के घर जा पहुँचे। उन्हें देखते ही घटक महाशय की धर्म-माता (वैष्णव दासी) व्याकुल भाव से रोते-रोते वात्सल्यपूर्ण हृदय से उनका हाथ पकड़ घटक महाशय के पास ले गईं। घटक महाशय कई दिनों से ज्वर और उदर-रोग से पीड़ित थे। उनकी अवस्था बहुत शोचनीय थी। डाक्टर और वैद्य लगभग निराश हो चुके थे। बैठने और बोलने की भी शक्ति न थी। बहुत देर में और बड़ी मुश्किल से बाबाजी महाशय को पहचान पाये, पर कुछ कह न सके। नेत्रों के जल से गण्डस्थल प्लावित कर अपने प्राणप्रिय दादा के आगे हृदय का भाव व्यक्त किया। उन्होंने भी साश्रुगद्गद कण्ठ से 'जय नित्यानन्द राम' कहकर हुँकार किया और उनके वक्षस्थल पर बायाँ हाथ रखकर बोले, 'भय न करो। तुम्हारा हाल निताइचाँद ने मुझे पहले ही बता दिया था। इसीलिए मेरा झटपट आना हुआ। निताइ की इच्छा से कल ठीक हो जाओगे।' वैष्णवदासी से बोले, 'माँ, आज संध्या अधिवास करना और कल अष्टप्रहर नाम-कीर्तन।' वैष्णवदासी रोते-रोते बोलीं, 'बाबा, गोपाल की इस अवस्था के कारण मेरी बुद्धि लोप हो गई है, मैं कैसे क्या व्यवस्था करूँगी?'

बाबाजी—इसके लिए चिन्ता न करो। हम तुम्हारे बालक हैं। हमारे लिए व्यवस्था क्या करनी। हम आश्रम में महाप्रसाद पायेंगे और कीर्तन करेंगे।

वैष्णवदासी—बाबा, मैं क्या कहूँ? गोपाल तुम्हें छोड़ किसी को नहीं जानता। जैसे उसका मंगल हो, करो। मैंने उसे तुम्हें सौंप दिया, मारो या रखो।

बाबाजी—भय न करो। मंगलमय निताइचाँद की वस्तु है, वे अवश्य रक्षा करेंगे। हमारा कर्तव्य है उनका नाम करना। वही हम करेंगे।

इतना कह आश्रम लौट गये। स्नानादि कर और महाप्रसाद ग्रहण कर विश्राम किया। संध्या समय घटक महाशय के घर अधिवास कीर्तन प्रारम्भ हुआ। गौरदास, विहारीदास, उद्धवदास आदि चार-पाँच व्यक्ति आनन्दोत्फुल्ल हो मृदंग बजा रहे थे। 'एकला-निताइ' मन्दिर के महंत विश्वम्भर दास और कई एक महंत उनके साथ कीर्तन कर रहे थे। आनन्द का सागर उमड़ रहा था। रात साढ़े दस-बजे तक अधिवास कीर्तन हुआ। सबेरे की अपेक्षा इस समय घटक महाशय की अवस्था बहुत ठीक थी। बाबाजी महाशय ने उनके निकट जाकर पूछा, 'क्यों भाई, कैसे हो?' घटक महाशय धीरे-धीरे बोले, 'दादा, आपकी कृपा से बहुत कुछ स्वस्थ अनुभव कर रहा हूँ। जो भी हो अब मुझे चिंता नहीं। आपको पाकर मरने में भी आनन्द है और जीने में भी। आपके श्रीचरणों में यही प्रार्थना है कि शेष समय मुझे भूलें नहीं। मेरा अपना स्मरण हो या न हो, आपके श्रीमुख से निकला मधु-सिक्त नाम सुनते-सुनते शरीर छोड़ूँ।'

बाबाजी—भाई, यह बात तो सभी के लिए है। जिसका अन्तिम काल उपस्थित होगा, जिसे निताइचाँद आकर्षित करेंगे, उसे जाना ही होगा और उसके अन्त समय का भार भी वे ही उठायेंगे।

इतना कह वे आश्रम चले गये। दूसरे दिन बहुत तड़के नाम प्रारम्भ हुआ। नौ बजे उन्होंने घटक महाशय के पास जाकर देखा कि वे बैठे हैं। उन्हें देखते ही उन्होंने सम्मान पूर्वक प्रणाम किया। उन्होंने उन्हें उठाकर गाढ़ आलिंगन किया और उनका रोग-शोक-दुर्बलता सब कुछ ग्रहण कर उन्हें अप्राकृत बल से बलीयान किया। अब जैसे घटक महाशय वह घटक महाशय ही न रहे। उनका शरीर बहुत स्वस्थ और सबल हो गया। दोनों एक दूसरे का हाथ पकड़ वहाँ गये जहाँ नाम चल रहा था। बाबाजी महाशय ने कहा, 'कपड़े उतारकर रज में लोटो, निताइचाँद की कृपा से आधि-व्याधि

सब दूर हो जायेगी।' घटक महाशय ने ऐसा ही किया। यह देख सब बड़े विस्मित हुए। कल जिस व्यक्ति के जीवन की आशा भी न रही थी, आज वह स्वस्थ भाव से नामकीर्तन के बीच लोट-पोटकर सबके साथ नाम कर रहा है-यह देख कौन विस्मय में न पड़ जाता, कौन महाप्रभु की कृपा-शक्ति की जय न बोलने लगता, किसका हृदय द्रवीभूत न हो जाता, किसके नेत्रों से जल न प्रवाहित होने लगता? घटक महाशय हाथ से ताली बजा-बजाकर नाम कर रहे थे और उनके नेत्रों के जल से मुख और वक्षस्थल भीग रहा था। बाबाजी महाशय भावावेश में गद्गद कण्ठ से नाम कर रहे थे और उन्हें लेकर नृत्य कर रहे थे। अपूर्व आनन्द था। सभी लोग एक अभूतपूर्व भाव में निमग्न हो नृत्य-कीर्तन कर रहे थे और अश्रु बहा रहे थे। बाजार में ही घटक महाशय का घर था। इसलिए दूकानदार-पल्लेदार, हिन्दु-मुसलमान, स्त्री-पुरुष सभी नाम से आकर्षित हो घर में आने लगे। नाम के प्रभाव से सभी की ऐसी दशा हो गई कि सब अपने-अपने व्यापार को भूलकर नाम-सागर में गोते लगाने लगे। किसी को बाह्य-स्मृति न रही। सबकी एक विचित्र अवस्था हो गई। बहुत देर इस प्रकार नामानन्द उपभोग कर बाबाजी महाशय को कुछ बाह्य-ज्ञान हुआ। वे घटक महाशय को साथ ले एक कमरे में चले गये और विश्राम करने लगे।

इधर नाम वैसे ही चल रहा था। कुछ देर बाद घटक महाशय बोले, 'दादा, कल के महोत्सव का क्या होगा?'

बाबाजी—भाई! जैसी तुम्हारी इच्छा।

घटक—आपकी कृपा से जब बच ही गया तो उसे क्यों छोड़ा जाय।

बाबाजी—मंगलमय निताइचाँद की कृपा से छोड़ने की कोई आवश्यकता नहीं। जैसे चाहो करो, प्रभु सब पूरा करेंगे।

इतना कह वे स्नानादि करने चले गये। इधर घटक महाशय महोत्सव की तैयारी करने लगे। वे स्वयं बाजार जाने के योग्य न थे। फिर भी उनसे बाजार न जाने के लिए लोगों को बहुत अनुरोध करना पड़ा। दूसरे लोगों के द्वारा सब काम होने लगा। बाबाजी महाशय ने स्नानादि के पश्चात् महाप्रसाद लेकर कुछ विश्राम किया। दिन और रात किधर निकल गये किसी को पता न चला। दूसरे दिन आठ बजे नगर-कीर्तन प्रारम्भ हुआ। बहुत से स्थानों में से होते हुए साढ़े दस बजे घर आकर पूरा हुआ। घटक महाशय ने कीर्तन के पश्चात् रज में लोट-पोटकर स्नान करने के लिए बाबाजी महाशय से पूछा। उन्होंने उनसे गंगास्नान करने के लिए कहा और स्वयं उन्हें साथ लेकर गंगा-स्नान के लिए चल दिये। यथा समय ठाकुर भोग के पश्चात् वैष्णवों की पंगत आरम्भ हुई। महत्कृपा के प्रभाव से घटक महाशय स्वयं परोसने लगे। बाबाजी महाशय बोले, 'भाई, निताइचाँद ने खूब लीला दिखाई। अब आओ, एक साथ बैठकर महाप्रसाद पायें।' घटक महाशय ने वैष्णव सेवा होने के पूर्व प्रसाद पाने में कुछ आपत्ति की, पर उपस्थित वैष्णवों के आग्रह करने पर वे कुछ न कह सके। फिर दोनों भाइयों ने एक साथ महाप्रसाद सेवन कर विश्राम किया।

विविध-प्रस्ताव

एक दिन वृद्ध बाबाजी महाशय के साथ बैठे बाबाजी महाशय कथोपकथन कर रहे थे। उसी समय कलकत्ते के अखाड़े के महंत किशोरीदास बाबाजी आ पहुँचे और बोले, 'मेरी बड़ी इच्छा है कि एक दिन मेरे स्थान पर अष्टप्रहर कीर्तन हो।' बाबाजी महाशय बोले, 'भाई, मैं तो तुम्हारा ही हूँ इसमें मुझसे पूछने की क्या जरूरत है। चाहो तो आज ही अधिवास किया जाय।' महंत महाराज सहमत हो बड़े उत्साह के साथ तैयारी करने लगे। यथासमय अधिवास कीर्तन आरम्भ हुआ। अपूर्व आनन्द छा गया। विस्मय की बात यह थी कि एक ही पद एक ही स्वर में गाया जा रहा था, फिर भी हर बार नया-सा प्रतीत होता था। तीन दिन पहले घटक महाशय के घर अधिवास कीर्तन में जो पद गाया गया था, आज भी वही गाया जा रहा था, परन्तु जो भी सुनता था उसे नया प्रतीत होता था। बहुत देर बाद अधिवास-कीर्तन पूरा हुआ। दूसरे दिन बहुत सबेरे नाम आरम्भ हुआ। लोगों की भीड़ का ठिकाना न रहा। घटक महाशय के घर स्थान की संकीर्णता के कारण जो लोग नाम में सम्मिलित न हो सके थे वह भी

यहाँ आकर सहज भाव से नाम में योगदान कर परमानन्द का उपभोग कर रहे थे। समय जैसे-जैसे बीतता गया नाम-धुन प्रबल होती गई। सब लोग ऐसे मत्त थे कि चार-चार पाँच-पाँच घण्टे नाम करके भी क्लान्त नहीं हो रहे थे। इस प्रकार दिन-रात बीत गये और किसी को पता भी न चला। दूसरे दिन आठ बजे किसी की इच्छा न होते हुए भी कर्तव्यानुरोध के कारण नाम पूरा कर नगर-कीर्तन के लिए निकले। पिछले दिन की अपेक्षा आज के नगर-कीर्तन में और अधिक आनन्द हुआ। इसलिए परिभ्रमण भी अधिक हुआ। साढ़े ग्यारह बजे नगर-कीर्तन से लौटकर नाम-समाप्ति की। यथासमय स्नानाह्निक आदि कर महाप्रसाद सेवन किया और फिर आश्रम लौटकर विश्राम किया।

एक दिन एक माँ गोस्वामिनी आकर बाबाजी महाशय से बोली, 'बाबा, मेरा एक मकान है। मेरी इच्छा है उसे आपको दान कर दूँ और शेष जीवन आपके साथ रहकर बिताऊँ।'

बाबाजी—माँ! कहाँ है मकान?

माँ—बाबा! इस आश्रम के पश्चिम में।

बाबाजी—अच्छा, चलो उसे देख आयें।

माँ गोस्वामिनी ने ले जाकर दिखाया। ये बोले, 'माँ, जीवन अनित्य है। कौन पहले चला जायेगा, कुछ नहीं मालूम। इसलिए मैं दान न ले सकूँगा। फिर भी स्थानीय पाँच व्यक्तियों को दिखाकर आप जो भी दाम कहेंगी, मैं जैसे भी हो, दे दूँगा।' माँ गोस्वामिनी सहमत हुईं। पाँच व्यक्तियों को दिखाकर मकान का उचित मूल्य साढ़े-पाँच सौ निर्धारित किया गया। माँ गोस्वामिनी ने जब इनसे मूल्य की बात कही, ये बोले, 'आपका क्या विचार है?'

माँ—मेरा क्या विचार है बाबा, आप जैसा उचित समझें करें।

बाबाजी—माँ! मैं और क्या कहूँ, आप गोस्वामी कन्या हैं, आपको छह सौ रुपये देंगे।

माँ गोस्वामिनी ने सोचा था कि शायद ये साढ़े पाँच सौ रुपये से कुछ कम कहेंगे, पर उनके मुख से छह सौ सुनकर वे बहुत आनन्दित हुईं। उसी दिन रजिस्ट्री कर दी गई। श्रीराधारमणदेव के नाम से देवोत्तर भाव से मकान की खरीद की गई। इसी समय बड़ाल घाट के निकटवर्ती और आश्रम के चारों ओर के मकानों की विक्री या दान के लिए बहुत से वैष्णव आकर इनसे आग्रह करने लगे। इन्होंने किसी न किसी प्रकार सबको सन्तुष्ट किया। आश्रम के पूर्व की ओर रामानन्ददास बाबाजी महाशय रहते थे। वे बहुत आग्रह के साथ बोले, 'मेरे ऊपर बहुत कर्ज हो गया है, जिससे मैं बड़ा दुःखी हूँ, आप यदि मुझे कर्जे से मुक्त न करेंगे तो मेरे लिए और कोई उपाय नहीं है।'

यह सुनते ही कि वैष्णव को कष्ट है, उनके नेत्रों में जल आने लगा और वे गद्‌गद कण्ठ से बोले, 'भाई, कितना रुपया हो तो तुम्हारा कर्जा चुक जाय और तुम सुख से रह सको?' रामानन्ददास बाबाजी बोले, 'ग्यारह सौ रुपया हो तो ठीक हो, वैसे हजार रुपये से भी काम चल सकता है।' यद्यपि उनका मकान ग्यारह सौ रुपये का नहीं था, उन्होंने ग्यारह सौ में ही उसकी लिखा-पढ़ी करा दी।

एक दिन श्रीवास-अंगन के दर्शन के लिए जाते समय उन्होंने उसके सामने एक बगीचा देखकर श्रीयुत हरि मजूमदार महाशय से पूछा, 'यह किसका बगीचा है? बिक सकेगा या नहीं?' वे बोले, 'इस बगीचे में गुरुदासबाबू के बड़े लड़के नशीबाबू का बैठकखाना है। आजकल इन लोगों की अवस्था पहले जैसी नहीं है। नशीबाबू की मृत्यु के पश्चात् उनके भतीजे महितोषबाबू का इस पर दखल है और वे इसे बेचने के लिए तैयार हैं।'

बाबाजी—एक बार बगीचे के भीतर चलकर देखें न। मजूमदार 'हाँ चलिए, मैं ले चलता हूँ' कहकर उन्हें बगीचे में ले गये। यद्यपि बैठकखाना बहुत ही जीर्ण अवस्था में था और बगीचे की भी देख-भाल ठीक तरह से होती नहीं जान पड़ती थी, फिर भी स्थान बड़ा मनोरम था। उसमें कई कलमी आम, अमरूद, बेर, जामुन आदि के वृक्ष थे। विशेष देखभाल न होने पर भी अच्छे-अच्छे पुष्प मानो अपने सौरभ से इन्हें आमोदित कर अपनी दुर्दशा की बात कहते हुए और इनके अभीष्टदेव सहित इनका आह्वान करते हुए सदा

के लिए इनके चरणों में आत्मसमर्पण कर रहे थे। इस जीर्ण-शीर्ण बगीचे ने इनके चरणों का स्पर्श पाते ही अपने हृदय के अधिष्ठातृ देवता के रूप में इन्हें वरण कर लिया। इसके वृक्ष, लता, पत्र आदि इनके नयनपथ -गामी होते ही इनके मन-प्राण हर ले रहे थे। पूर्व की ओर एक सूखा कुँआ था, जिसमें बहुत से झाड़-झंखाड़ उग आये थे। फिर भी बगीचे की शोभा उससे किसी प्रकार घट नहीं रही थी। बगीचे में घूमने के लिए खुला स्थान बहुत कम था, फिर भी कष्ट उठाकर जितना हो सका बगीचे को देख-भाल कर ये बहुत प्रसन्न हुए और मजूमदार महाशय का हाथ पकड़ कर बड़े आग्रह के साथ कहने लगे, 'भाई, यह स्थान तो लेना ही होगा। अभी चलिए, मैं आपके घर चलकर बैठूँगा। आप महितोषबाबू को बुलाकर जैसे भी हो, सब तय कर दीजियेगा।'

मजूमदार—आप कोई चिन्ता न करें। मैं बगीचा आपको दिलाकर रहूँगा।

बाबाजी—देखिए, मेरे मन में बहुत दिनों से जैसे स्थान में बैठने का संकल्प था, निताइ की कृपा से वैसा ही मिल गया है। एक मुहूर्त के लिए भी अब इसे छोड़कर जाने की इच्छा नहीं होती। आप आज ही इसे ठीक करा दीजिये।

इस प्रकार बातचीत करते-करते बाबाजी महाशय चापाल-गोपाल-उद्धार-मन्दिर में जाकर बैठ गये। मजूमदार महाशय महितोषबाबू के घर जाने को थे, उसी समय महितोषबाबू आ गये। मजूमदार महाशय बोल उठे, 'आहा, महत् की इच्छा पूर्ण करने के लिए भगवान् स्वयं ही चिन्तित हैं। फिर हमें क्या करना है।' वे महितोषबाबू को घर के भीतर ले गये और बाबाजी महाशय से साक्षात् करा दिया। नानारूप कथा-वार्ता के पश्चात् बाबाजी महाशय ने पूछा, 'आप क्या बगीचा बेचना चाहते हैं?'

महि०—पहले तो इसे बेचने का कोई विचार नहीं था, पर मेरी माँ का स्वर्गवास हो गया है। उनकी अंत्येष्टि क्रियादि के लिए उसे बेचना पड़ेगा।

बाबाजी—बगीचा मुझे देना होगा।

महि०—यह तो मेरे लिए बड़े सौभाग्य की बात होगी। आपके समान महात्मा का यहाँ अधिष्ठान होगा तो आपके ठाकुर भी आयेंगे। नाम-कीर्तन होगा। कितने महात्मा आयेंगे और कितने-कितने अनुष्ठान होंगे। इससे अधिक और आनन्द का विषय क्या हो सकता है?

बाबाजी—इसकी क्या कीमत हो सकती है?

महि०—कीमत की कोई बात नहीं। मेरे प्रयोजनानुसार कुछ होने से ही हो जायेगा।

बाबाजी महाशय प्रसन्न हो बोले-तीन हजार में सौदा पक्का हुआ। बयाना देना होगा?

महि०—आपके वचन ही बयाना हैं। बगीचा आपका हो गया। दूसरा पाँच हजार भी देगा तो स्वीकार न करूँगा।

बाबाजी महाशय बड़े आनन्द से उनका गाढ़ालिंगन कर बोले, 'भाई, मैं जितना शीघ्र हो सका, एकबार कलकत्ते होकर आऊँगा और तुम्हारा रुपया दे दूँगा।'

महितोषबाबू राजी हो गये और बोले, 'देखिए, और मुझे आपत्ति नहीं। माँ का श्राद्ध निकट है। उससे पहले कभी भी दे दीजिएगा।'

बाबाजी—भाई, माँ तुम्हारी अकेले की तो नहीं हैं। उनके श्राद्ध के लिए चेष्टा करना केवल तुम्हारा ही नहीं, हमारा भी कर्तव्य है। हम भिक्षा कर श्राद्ध के लिए तीन सौ रुपये देंगे।

महितोषबाबू विनीत भाव से बोले, 'दादा, आप साधु हैं, आपसे रुपया लेना ठीक न होगा।'

बाबाजी—अच्छा, तो इस बगीचे का दाम तीन हजार तीन सौ रुपया होगा।

महि०—आपकी जैसी इच्छा हो करें, मैं और कुछ न कहूँगा।

बाबाजी महाशय आश्रम चले गये। मजूमदार महाशय के पास उस समय जो लोग बैठे थे, वे बाबाजी महाशय की बातें सुनकर आपस में कहने लगे, 'हमने बहुत से साधु, वैष्णव, संन्यासी, उदासी, महात्मा देखे हैं, परन्तु ऐसे उदार महापुरुष के दर्शन आज तक नहीं हुए। कैसे आश्चर्य की बात है, स्वयं ही तीन सौ रुपये

ज्यादा देने को तैयार हो गये।' एक सज्जन बोले, 'पैसे की बात तो जाने दो, ऐसा निरभिमानी, सरल स्वभाव और ऐसा सम्बन्ध-भाव किसी मनुष्य में हो सकता है, हमें इसका विश्वास अभी तक नहीं था।'

एक दिन सब लोग आश्रम में बैठे थे। श्रीपाद रघुनाथदेव गोस्वामी बाबाजी महाशय से बोले, 'बाबा, मेरा शरीर क्रमशः दुर्बल हो रहा है। दिन-रात में कोई पच्चीस बार लघुशंका को जाना पड़ता है। रात में अक्सर नींद नहीं आती, कैसे क्या करूँ? मेरे कारण आश्रमवासी वैष्णव कितने उद्विग्न रहते हैं।' यह सुनते ही बाबाजी महाशय चिंतित हो उनकी ओर देख कुछ सोचने लगे, पर कुछ बोले नहीं। कुछ देर बाद प्रभु को बुलाकर बोले, 'स्नान कर चुके?'

प्रभु—अभी नहीं।

बाबाजी—अच्छा, चलो चलें।

दोनों नानारूप इष्टालाप करते-करते गंगा किनारे पहुँचे और प्रणाम-वन्दना आदि कर जल में उतरे। नाभितक जल में खड़े होकर उन्होंने बड़े गम्भीरभाव से प्रभु से पूछा, 'गोसाईंजी इस समय कहाँ आये हुए हो?'

प्रभु—दादा! आपकी कृपा से श्रीधाम नवद्वीप में हूँ।

बाबाजी—यह धाम नित्य है न?

प्रभु—इसमें क्या संदेह है। श्रीगौरांग देव की लीला-भूमि त्रिकाल सत्य है।

बाबाजी—और यह पतितपावनी गंगा भी सत्य है न?

प्रभु—निश्चय ही सत्य है।

बाबाजी—तुम इस पतितपावनी गंगा में खड़े हो, इस लिए तुम निष्पाप और सच्चे हो, इस बात का तुम्हें विश्वास है?

प्रभु—पहले मेरी ऐसी धारणा न थी। अब इस समय आपकी बात सुनकर मुझे पूरा विश्वास हो रहा है।

बाबाजी—अच्छा! मैं जैसे कहूँ बिना विचार किये वैसे ही करना। हाथ में गंगाजल लेकर कहो, 'माँ, दुर्गतिनाशिनि गंगे, मेरे इस शरीर में जो भी आधि-व्याधि है उस सबको आज से इन्हें अर्पण किया, तुम साक्षी हो।'

यह सुनकर प्रभु काँप गये। उन्हें कुछ भी मुँह से न कहते देख ये आग्रह करने लगे। तब उन्होंने जो कुछ भी कहा, मंत्र-मुग्ध के समान उसे दुहराते हुए अपने हाथ का जल इनके हाथ में छोड़ दिया। इन्होंने अञ्जलि भर संकल्पित जल अपने मस्तक पर ले लिया और प्रभु को गाढ़ आलिंगन किया। ऐसा करते ही इनका मुख मलिन हो गया। प्रभु इनके आदेश से तीन बार डुबकी लगाकर जैसे ही किनारे पर गये, उनका शरीर स्वस्थ और सबल हो गया और रंग साफ हो गया। दोनों ने आश्रम लौटकर आह्निक आदि किया और यथा-समय महाप्रसाद ग्रहणकर विश्राम किया।

जिस मुहूर्त गोस्वामी प्रभु ने संकल्प द्वारा अपना रोग बाबाजी महाशय को अर्पण किया था, उसी मुहूर्त से वे स्वस्थ हो गये, पर बाबाजी महाशय को उसी मुहूर्त से दिन-रात में बीस बार पेशाब होने लगा और उनके शरीर का रंग अत्यन्त मलिन हो गया।

कलकत्ते में उल्टाडिंगि में गौरहरिदास ने एक मठ स्थापित किया था। मठ में इन्हें ले जाने के लिए वह कई दिन से आया हुआ था। रामदादा भी उसके साथ थे। एक दिन रामदादा बोले-'देखिए, गौरहरि कितने दिन से आपको अपने मठ ले जाने के लिए आया हुआ है, क्या वहाँ एकबार न जा सकेंगे?

बाबाजी—हाँ, एकबार जरूर जाना होगा। पगले ने क्या कर रखा है, चलकर देखना होगा।

राम—कब जा सकेंगे, बता दें तो वह पहले से ही जाकर सब व्यवस्था ठीक कर ले।

बाबाजी—हमारा जाना तो निश्चित ही है, वह चला जाय न।

गौरहरि यह सुन बहुत प्रसन्न हुआ और कलकत्ते चला गया। तीन-चार दिन बाद ये भी प्रभुपाद को साथ ले सदल-बल कलकत्ते के लिए रवाना हुए। उल्टाडिंगि जाना था, इसलिए डमडम स्टेशन पर उतर गये। गाड़ी चली गई। पूस का महीना और कृष्णपक्ष। संध्या से ही घोर अन्धकार छाया था। एक व्यक्ति से उल्टाडिंगि का

रास्ता पूछा, तो वह बोला-यहाँ से तो रास्ता ठीक नहीं है, आपको बहुत कष्ट होगा। पर अब करते भी क्या? बड़े कष्ट के साथ रात नौ बजे उल्टाडिंगि में गौरहरि के मठ पहुँचे। गौरहरि आनन्द से मतवाला हो रहा था। जल लाकर सबके चरण धुलाने लगा। सबने थोड़ी देर बाद महाप्रसाद ग्रहण कर विश्राम किया।

बाबाजी महाशय आ गये हैं, यह खबर रात में ही सब जगह फैल गई। सबेरा होते-होते चारों ओर से भक्तगण आकर दण्डवत्-प्रणाम पूर्वक नाना-रूप तत्व-कथा-प्रसंग करने लगे। इस प्रकार कुछ समय बीता। एकाएक बाबाजी महाशय ने रामदादा को बुलाकर कीर्तन करने का आदेश किया। वे कीर्तन करने लगे। बहुत से भक्त उपस्थित थे, पर आश्चर्य यह था कि कीर्तन में जरा भी आनन्द नहीं आ रहा था। इसके विपरीत गाने बजाने वालों में परस्पर खटपट हो रही थी। यह देख इन्होंने दु:खी हो स्वयं जाकर कीर्तन आरम्भ किया। 'जय जय श्रीगुरु! प्रेम कलपतरु, अद्‌भुत जहाँको प्रकाश' और 'जय रे जय रे जय, ठाकुर श्रीनरोत्तम, प्रेम-भक्ति महाराज।' इन पदों का गान कर प्रेम-विगलित हृदय और साश्रु-गद्‌गद कण्ठ से इस पद का कीर्तन करने लगे-

प्रभु कहे नित्यानन्द, जग-जीव हैल अन्ध,
केह त ना पाइल हरिनाम।
एक निवेदन तोरे, नयने देखिबे जारे,
कृपा करि लओयाइबे नाम॥
कृत पापी दुराचार, निन्दुक पाषंड आर,
केह जेन वंचित ना हय।
शमन बलिया भय, जीवे जेन नाहीं रय,
सुखे जेन हरिनाम लय॥
कुमति तार्किक जन, पडुआ अधमगन,
जन्मे जन्मे भकति विमुख।
कृष्ण-प्रेम दान करि, बालक वृद्ध पुरुष नारी,
खंडाइह सबाकार दुख॥
संकीर्तन प्रेम-रसे, भासाइया गौड़देशे,
पूर्ण कर सबाकार आश।
हेन कृपा अवतारे, उद्धार नहिल जारे,
की करिबे बलरामदास॥

कीर्तन में आनन्द आने लगा। बाबाजी महाशय एक-एक कड़ी पर आखर देकर प्रेमानन्द में विभोर हो रहे थे। अकस्मात् वे मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े। अष्ट-सात्विक भावों से देह परिपूर्ण हो गयी। अधीर-भाव से आँगन में लोटने लगे। रघुनाथदेव गोस्वामी, पुलिनदादा, गोविन्ददादा आदि ने बहुत यत्न के साथ कुछ स्थिर कर उन्हें कमरे के भीतर एक खाट पर लिटा दिया। यथासमय ठाकुर को भोग लग गया और सब पंगत पर बैठ गये। सबके महाप्रसाद सेवन करने के पश्चात् गौरहरि के विशेष आग्रह से उन्होंने उठकर थोड़ा महाप्रसाद ग्रहण किया।

इस प्रकार तीन दिन बीत गये। चौथे दिन एकादशी थी। बड़े सबेरे रामदादा को बुलाकर बोले-'देख राम, आज अपराध-भंजन-स्मृति-दिवस है, इसलिए सबको लेकर कुलिया की बैठक पर जाओ। मेरी प्रतीक्षा न करना। हो सका तो आऊँगा, नहीं तो तुम लोग द्वादशी का पारण कर सप्तग्राम चले जाना।' यह आदेश पाकर रामदादा बहुत से भक्तों को साथ ले कुलिया चले गये। इधर बाबाजी महाशय ने रघुनाथदेव गोस्वामी प्रभु को बहुत समझा-बुझाकर श्रीधाम पुरी के लिये विदा किया और स्वयं पुलिनदादा के साथ उनके घर (कलू टोला २६ नम्बर, शोभाराम बसाक लेन) चले गये।

सप्तग्राम में बाबाजी महाशय

इस घटना के सम्बन्ध में श्रीयुत रामचन्द्र सेन महाशय ने जो लिखा है, वह इस प्रकार है-

मेरा नाम है रामचन्द्र सेन। कलकत्ते में २८ नं० ताराचन्द्रदेव स्ट्रीट में मेरा निवास-स्थान है। जाति का स्वर्णवणिक हूँ। १३१२ (बंगाब्द) का पौष मास था। पौषी कृष्णा त्रयोदशी को स्वर्णवणिक-कुल-चूड़ामणि श्रीउद्धारणदत्त ठाकुर महाशय की तिरोभाव तिथि थी। इसके उपलक्ष में श्रीपाट सप्तग्राम में महोत्सव होने को था। सप्तग्राम कमिटि की ओर से कलूटोला के लोगों को निमन्त्रण का भार मेरे ऊपर था। इसलिए मैं निमन्त्रण-पत्र हाथ में ले बड़े उत्साह से घर-घर घूम रहा था। घूमते-घूमते २६ नं० शोभाराम बसाक लेन पर श्रीयुत कुञ्जबिहारी मल्लिक महाशय के घर जा

पहुँचा। सदर दरवाजा पार कर उनकी निचली मंजिल के बैठकखाने के दाहिनी ओर के जंगले से जो देखा उससे मेरे हृदय में एक अभूतपूर्व आनन्द रस का संचार हुआ, सारा शरीर रोमांचित हो उठा, प्राणों में आनन्द का स्रोत उमड़ पड़ा। प्रफुल्ल हो समुत्सुक भाव से जंगले के निकट जाकर देखा कि बैठकखाना विशेष-विशेष सम्भ्रान्त भक्तों से परिपूर्ण है। एक ओर अति-दीर्घाकार, उज्जवल श्यामवर्ण, स्निग्ध-नयन, भावगद्गद महापुरुष सहास्य-वदन नाना प्रकार भक्ति-तत्व की व्याख्या कर रहे हैं और भक्तगण मन्त्र-मुग्ध के समान श्रवण कर रहे हैं। सबके नयन-भृंग जैसे उनके मुखारविन्द में न्यस्त हो रहे हैं। उनकी उस समय की अवस्था देख मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानो भक्त-मण्डली के तृषित नयन-चकोर समुत्कंठित भाव से महापुरुष की मुखचन्द्रोद्गीर्ण सुधा अपने-अपने कर्ण-पुटों में ढालकर पान करते-करते सुध-बुध खोकर जड़-तुल्य हो गये हैं। सब निश्चल, निस्पन्द भाव से चित्रपुत्तलिका के समान बैठे हैं। उस अप्राकृत अननुभूतपूर्व शोभा का दर्शन कर मेरे नेत्र स्निग्ध और प्राण शीतल हो गये। इस प्रकार के आनन्द का मैंने अपने जीवन में पहले कभी अनुभव नहीं किया था। मैंने इन महापुरुष का भी पहले कभी दर्शन नहीं किया था, पर बहुत बार पुलिन बिहारी मल्लिक महाशय से सुन रखा था कि श्रीधामपुरी के बड़े बाबाजी महाशय बीच-बीच में उनके घर आते रहते हैं। मैं उनके घर प्राय: जाया करता था, परन्तु यह सौभाग्य आजतक मुझे प्राप्त नहीं हुआ था। उनसे बिलकुल अपरिचित होने पर भी मानो मेरे नयन, मन और प्राण ने एक साथ कह दिया यही वे बाबाजी महाशय हैं। इसलिए मैं अधिक समय तक दूर न खड़ा रह सका। एक प्रबल आकर्षण से आकृष्ट हो बैठकखाने के दूसरे दरवाजे के पास जहाँ बाबाजी महाशय बैठे थे जाकर खड़ा हो गया। इतना आत्म-विस्मृत था कि उन्हें प्रणाम भी न किया। किन्तु अन्तर्यामी बाबाजी महाशय मानो मेरी अवस्था को जानकर मधु से भी मधुर और उससे भी सुमधुर वचनों से मेरे हाथ के निमंत्रण -पत्रों की ओर लक्ष्यकर बोले-'बाबा, क्या लाये हो?'

पहले ही कह चुका हूँ कि उनके दर्शन के प्रभाव से मेरी जाने कैसी अवस्था हो गई थी। इस सुधा-विनिन्दित कण्ठध्वनि को सुनते ही जैसे चैतन्य हो आया। समुत्सुक चित्त और प्रेमविगलित कण्ठ से बोला-'श्रीपाट सप्तग्राम में स्वर्ण-वणिक-कुल-चूड़ामणि श्रीमद् उद्धारणदत्त ठाकुर महाशय के महोत्सव का निमंत्रण-पत्र।' 'उद्धारण दत्त' नाम सुनते ही उदारचेता महापुरुष उठ खड़े हुए और बड़े सम्मान के साथ दोनों हाथ बढ़ा दिये। मैंने भी यंत्रारूढ़ पुत्तलिका के समान काँपते हुए हाथ से एक निमंत्रण-पत्र उनके हस्त-कमल पर रख दिया। आहा! कैसा मधुर भाव! पत्र पाते ही उनका शरीर काँप गया। पत्र को वे कभी मस्तक पर रखने और कभी हृदय से लगाने लगे। प्राणों से भी अधिक प्रिय वस्तु को पाकर जैसे कोई किंकर्तव्य-विमूढ़ हो जाता है और कुछ समझ नहीं पाता कि उसे कहाँ और कैसे रखूँ, उसी प्रकार के अनिर्वचनीय भाव का उनमें उदय हो आया। अश्रु-कम्प-पुलकादि सात्विक विकारों से उनका विशाल शरीर परिव्याप्त हो गया। गद्गद कण्ठ से अति स्नेह-सिक्त स्वर में कहने लगे, 'बाबा, तुमने मुझ अधम के मन में कैसी अपूर्व स्मृति जगा दी। कैसी अमूल्य निधि प्रदान की।' और पुण्य-स्मृति-सूचक पत्र-वाहक को वक्ष से लगाकर गाढ़ालिंगन प्रदान किया। आहा! कैसा स्निग्ध सुकोमल वक्ष! कैसा सुशीतल संस्पर्श! कैसा अनिर्वचनीय भाव! कैसी अहैतुकी कृपा! कैसा अमूल्य प्रतिदान! कलकत्ते में कितने धनीमनी, कुलीन, पंडित, गृहस्थ, विरक्त, भक्ति-प्रचारक, आचार्य-संतान और नाम-कीर्तन-प्रेमी भक्तों को निमंत्रण-पत्र दे चुका था, पर किसी ने भी नित्यानन्द के प्रिय परिकर दत्त ठाकुर के महोत्सव का निमंत्रण-पत्र ग्रहण कर न तो ऐसी प्रीति दिखालाई थी और न ऐसा भावपूर्ण आग्रह। न किसी ने निमंत्रण-पत्र-वाहक को इस प्रकार अनुगृहीत ही किया था। उनके सम्बन्ध में भक्तों के मुख से जो कुछ सुन रखा था, या उनके प्रथम दर्शन से जैसा अनुमान किया था, व्यवहार में उससे भी अधिक अनुभव किया। महापुरुष का प्रेमालिंगन प्राप्त करते ही जैसे आनन्दसागर में डूब

गया। मेरा पत्थर-सा हृदय पिघल गया, नेत्रों से अविरत अश्रुधार बहने लगी। मैं अनुभव करने लगा, जैसे महात्मा के हृदय में लीन हो रहा हूँ। कैसा अप्राकृत स्पर्शसुख था, कैसे कहूँ! जिसने उनकी कृपा से अनुभव किया है, वही जान सकता है। थोड़ी देर में उनके वक्षस्थल से विलग हो श्रीचरणों पर गिर पड़ा और चरण-रज लेकर कृत-कृत्य हुआ। उन्होंने मृदु-मधुर-हास-सिक्त सुधा-विनिन्दित कण्ठ से कहा, 'बाबा, निताइ की इच्छा से आऊँगा।' और पूर्ववत् आसन ग्रहण किया। मैंने फिर से उन्हें प्रणाम किया और कुञ्जबाबू को निमंत्रण पत्र देकर उपस्थित भक्त-मण्डली के समुत्सुक नयन-पथ से ओझल हो गया। आज मेरा निमन्त्रण-पत्र बाँटना सफल हो गया। हृदय न जाने किस उत्साह और आनन्द से भर गया। उसकी गति ही न जाने कैसी हो गई। वह गर्व से फूल गया। उस समय यदि मेरी ओर कोई लक्ष्य करता तो अवश्य कहता कि गर्व के कारण मेरे पैर पृथ्वी पर नहीं पड़ रहे हैं। सचमुच ही अन्तस्तल में उन उज्ज्वल श्याम-वपु, पद्म-पलाश-लोचन, आजानुलम्बित भुज, अश्रु-कंप-पुलकादि सात्विक-विभूषण-भूषित सहास-वदन-महापुरुष की करुणासिक्त प्रेम-मय मूर्ति हृदय में रख मैं अपने आपको न जाने क्या समझ रहा था। पृथ्वी से ऊपर उठा-उठा-सा बोध कर रहा था। केवल कर्तव्य के अनुरोध से बचे हुए निमंत्रण-पत्र बाँट रहा था। मेरे मन और प्राण अब भी महापुरुष के समीप थे। नेत्रों के सामने अब भी उनकी मोहन-मूर्ति झूल रही थी और उनके अलौकिक प्रेमपूर्ण व्यवहार एवं अयाचित कृपा-प्रवाह की अप्राकृत लीला हो रही थी। सुधा-विनिन्दित कण्ठ से उनके दो शब्द-'मैं आऊँगा' रुक-रुक कर मेरे हृदय को उद्वेलित कर रहे थे। कब वह शुभ मुहूर्त होगा, कब फिर उस भावभरी अश्रु-कम्प-पुलकादि-परिव्याप्त मूर्ति के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त होगा, इस प्रकार के संकल्प-विकल्प से मन उद्व्यस्त हो रहा था। केवल यह भरोसा लेकर कि उनके दर्शन फिर अवश्य मिलेंगे मैं सप्तग्राम लौट गया।

पौष ८ को उत्सव आरम्भ हुआ। कलकत्ता, हुगली आदि अनेक स्थानों से वणिकभक्त और उनके साथ निताईगौरगत-प्राण अन्यान्य भक्त आने लगे। कथा-कीर्तन-व्याख्यानादि होने लगे। पर मेरा मन केवल उन्हीं बाबाजी महाशय के शुभागमन की बाट देख रहा था। पौष ९ रविवार के दिन अकस्मात् भक्त- मण्डली-सहित वे आ पहुँचे। उनके दर्शन मात्र से फिर न जाने मेरी क्या दशा हो गई। पास के लोगों से बोल पड़ा, 'वह देखिये बाबाजी महाशय आ गये।' उन्होंने दौड़कर मुझसे पहले ही उन्हें दण्डवत् किया। मैंने भी जाकर उनके श्रीचरणों में मस्तक अर्पण किया। वे अपने उसी असाधारण अप्राकृत प्रेममय व्यवहार से सबको क्षणभर में मोहित कर निर्दिष्ट स्थान पर बैठ गये। उनके एक साथी से पूछने पर मालूम हुआ कि श्रीयुत रामदास बाबाजी महाशय आदि कई लोगों के कुलिया होते हुए स्टेशन पर आकर इनसे मिलने की बात थी, परन्तु न जाने किस कारण वे आ न सके।

थोड़ी देर बाद उन्होंने कीर्तन प्रारम्भ किया। वह पद मुझे याद नहीं। पर उसका भाव अब भी हृदय में अंकित है, जो इस प्रकार है-'हमारे करुणा-वारिधि निताइ की न जाने कौन-से ब्रह्मा ने किस अमृत से रचना की थी। उनकी करुणा की कहानी एक मुख से नहीं कही जा सकती। लाख-लाख मुख हों तो शायद उनका यत्किञ्चित् गुणगान हो सके। यह सप्तग्राम उनकी करुणा का अविनाशी कीर्तिस्तम्भ है। यह माधवी-लता-मण्डप बिना किसी अवलम्ब के छत्राकार रूप से दण्डायमान रह कर उस अतीत की साक्षी भर रहा है।' इस भाव के बहुत से पदों का बहुत देर तक कीर्तन करते रहे। मानो निताइचाँद की करुणा की मूर्ति आज फिर सजीव हो उठी। कौन कह सकता था कि निताइचाँद की नित्यलीला अप्रकट है? वणिक-कुल-चूड़ामणि उद्धारण दत्त ठाकुर के प्रति करुणामय निताइचाँद की अहैतुकी करुणा का सागर मानो उमड़ पड़ा और निताइ-गुण-कीर्तन-रूपी पवन के झकोरों से उसकी उत्ताल तरेंगें दसों दिशाओं को आप्लावित करने लगीं। भक्तों की तो बात ही क्या घोर पाषण्डी भी उनके श्रीमुख से निताइ-गुण-कीर्तन सुन प्रेम की बाढ़ में गोते खाने लगे। बहुत देर बाद बड़ी आकर्षक भंगी से चरण पर चरण रख सुमधुर नृत्य करते-करते गाने लगे-'निताइ!

आमार वणिक कुलेर देवा, गुण गाइ आर करि सेवा।' बहुत प्रकार से आखर दे-देकर बहुत देर तक इसी पद का कीर्तन करते रहे। आनन्द की अवधि न रही। हमारे कर्ण-कुहरों में मानो सुधा की वर्षा हो रही थी। आबाल-वृद्ध-वनिता सब विभोर थे, किसी को बाह्य-स्मृति न थी। मैं अनिमेष-नयन उस अनिर्वचनीय नृत्य-भंगी का दर्शन कर आनन्द-सागर में डूबा जा रहा था। संकीर्तन-सुधा सागर की तरंगें मन-प्राण को प्लावित करती हुई न जाने किस अप्राकृत आनन्दमय राज्य में मुझे ले जा रही थीं। मैं बाह्यज्ञान-शून्य हो चित्र-पुत्तलिका के समान एक स्थान पर खड़ा रहा। अकस्मात् करुणामय बाबाजी महाशय नाचते-नाचते मेरे पास आये और गाढ़ालिंगन कर मुझे नाचने के लिये इंगित किया। मैं भी यन्त्रारूढ़ पुतली के समान आत्म-विस्मृत हो नृत्य करने लगा। निताइ-गुण-द्योतक पद के बाद दूसरे पद का अति मधुर स्वर से कीर्तन होने लगा। चारों ओर जैसे प्रेम का निर्झर फूट पड़ा। सभी लोग बाबाजी महाशय को देख प्रेमानन्द पूर्वक अपूर्व भंगी से नृत्य-कीर्तन करने लगे।

आहा! अपूर्व शोभा! सामने मन्दिर में निताइ, गौर, गदाधर की श्रीमूर्तियाँ विराजमान हैं। उनके चरणों के तले दत्त ठाकुर का चित्रपट मानो करुणा के महाप्रस्रवण के रूप में विराजमान है। दूसरी ओर निताइ-करुणा के प्रत्यक्ष चिह्न-स्वरूप माधवी लता-मण्डप है। मध्यस्थल में बाबाजी महाशय चरण पर चरण रख नृत्यावेश में कीर्तन करते-करते चारों ओर घूम-घूमकर जनसाधारण को विमुग्ध कर रहे हैं। एक अभूतपूर्व अनिर्वचनीय अप्राकृत दृश्य है। जो देख रहा है वही विमोहित हो अपने को कृत-कृत्य मान रहा है। मानो निताइचाँद बाबाजी महाशय के रूप में आविर्भूत हो जनसाधारण को प्रेमसागर में डुबा रहे हैं। धन्य सप्तग्राम! धन्य वणिककुल! धन्य निताइचाँद की कृपा! और धन्य वे लोग जो इस अपूर्व नृत्य-कीर्तन और प्रेममय-लीला का दर्शन कर रहे हैं।

ढाई घण्टे तक इसी प्रकार नृत्य-कीर्तन करने के पश्चात् सबकी अनिच्छा होते हुए भी अन्तर्यामी बड़े बाबाजी महाशय भक्तों का श्रम देख कीर्तन पूरा कर बैठ गये। उपस्थित भक्तगण सभी अपने-अपने मनोभाव के अनुसार उस दिन की उस महाप्रेममय लीला का अपनी-अपनी भाषा में वर्णन करने लगे। कुछ देर विश्राम करने के पश्चात् हमारे सबके अनुरोध से कुछ महाप्रसाद ग्रहण कर और मधुर वाक्यों से सबसे विदा लेकर संगी-साथियों को ले बाबाजी महाशय कलकत्ता जाने के लिये त्रिशबिघा स्टेशन गये। गाड़ी आने में कुछ देर थी। इसलिए एक ओर बैठकर प्रतीक्षा करने लगे। उसी समय कलकत्ते से एक गाड़ी आई, जिसमें श्रीरामदास बाबाजी आदि कई महात्मा थे। गाड़ी में से ही बाबाजी महाशय के दर्शन कर उन्होंने 'निताइ गौर हरि बोल' की ध्वनि कर दसों दिशाओं को मुखरित कर उनका अभिनन्दन किया। उन्होंने भी 'जय नित्यानन्द राम' कहकर अश्रु-कम्प-पुलकादि से परिव्याप्त हो हाथ से शीघ्र श्रीपाट जाने का संकेत किया और गाड़ी पर बैठ लिये।

सप्तग्राम-श्रीपाट-संस्करण-समिति के उस समय के व्यवस्थापक श्रीयुक्त बाबू कालीकुमार दत्त महाशय ने समिति की रिपोर्ट में निम्नलिखित रूप से अपना मनोभाव व्यक्त किया है-"पौष ९, रविवार के दिन वैष्णव चूड़ामणि नीलाचलवासी श्रीश्रीचरणदास बाबाजी महाशय ने सपार्षद आगमन कर अपने अलौकिक उच्च हरिनाम-संकीर्तन से जनसाधारण को मुग्ध और उद्वेलित किया। सबने मानो एक अपूर्व स्वर्गीय सुधा-पान से विभोर हो प्रेमानन्द पूर्वक दोनों भुजायें उठाकर नृत्य किया। बाबाजी महाशय की अपूर्व नृत्य-माधुरी दर्शनकर सब धन्य हुए। इति सन् १३१२ साल, सप्तग्राम -श्रीपाट-संस्करण समिति की कार्य विवरणी।"

भक्तों के घर बाबाजी महाशय

इस घटना के सम्बन्ध में कलकत्ता-निवासी बिहारीदास बाबाजी (बड़े बिहारी दादा) का लेख है-

१३१२ साल का पौष मास था। एक दिन मैं बहुत तड़के नित्यकृत्य समापन कर बाहर बैठा था कि एक व्यक्ति ने आकर कहा, 'बिहारीदादा, पुरी के बड़े बाबाजी महाशय कल उल्टाडिंगी मठ आये हैं।' सुनते ही परमानन्दित हो उनके दर्शन करने गया। वहाँ जाकर देखा कि कई भक्त उनके सामने बैठे नानारूप प्रश्न

कर रहे हैं और वे सहास-वदन उत्तर दे रहे हैं। कुछ देर बाद रामदादा को कीर्तन करने का आदेश दिया। प्रभाती कीर्तन होने लगा। पर कीर्तन कुछ फीका-फीका सा लग रहा था। इसलिए बाबाजी महाशय स्वयं कीर्तन करने लगे। अपूर्व आनन्द होने लगा। साढ़े चार घण्टे तक जोर-शोर से कीर्तन होता रहा। किसी को बाह्यस्मृति न रही। अकस्मात् बाबाजी महाशय मूर्छित हो गये। बहुत देर बाद, नाना प्रकार से यत्न करने पर कुछ चैतन्य हुआ। तब उन्होंने संकीर्तन समाप्त किया और महाप्रसाद ग्रहण कर विश्राम किया।

इस प्रकार तीन-चार दिन बीत गये। एक दिन मैं जैसे ही प्रणामकर उनके पास बैठा, उन्होंने पूछा, 'बिहारी, ठाकुर-सेवा ठीक चल रही है न?' मैं बोला-'मेरी जुगल सेवा तो है नहीं। गोपाल की मूर्ति है, उन्हीं की सेवा कर रहा हूँ।'

बाबाजी—जुगल-मूर्ति की सेवा करने की बहुत इच्छा है?

मैं—इच्छा तो बहुत है पर सुविधानुसार जुगल-मूर्ति न मिले तो क्या करूँ?

अन्तर्यामी गुरुदेव ने तब गौरहरि को बुलाकर पूछा, 'तुम्हारे पास एक जुगल-मूर्ति अधिक है न! वह किसकी है?'

गौर—एक बाबाजी ने दी थी। वे उसे वापस नहीं लेंगे। मैंने सोचा था कि आपसे पूछूँगा, उसका क्या करना चाहिये?

बाबाजी—वे मूर्तियाँ बिहारी को दे दो, वह सेवा करेगा।

गौरहरि ने मूर्तियाँ लाकर मुझे दे दीं। मैं प्रफुल्ल हो उन्हें बार-बार माथे पर रख और हृदय से लगा करुणामय श्रीगुरुदेव की कृपा की जय बोलने लगा। अन्तर्यामी दयामय श्रीगुरुदेव की दया से आज मेरी वासना पूर्ण हो गई और परम पदार्थ की प्राप्ति हुई। आहा! अयाचित कृपाकारी करुणामय की कैसी विचित्र करुणा है। कृपादत्त जुगल-मूर्ति को देख-देख मेरे मन-प्राण मुग्ध होने लगे कि गुरुदेव की कृपा से मुझे साक्षात् विग्रह की प्राप्ति हुई है।

उस स्थान पर मैं और अधिक न रह सका। गुरुदेव के आदेश से दोनों मूर्तियाँ हृदय से लगा अपने घर चाँपातला में आ गया। हृदय में आनन्द नहीं समा रहा था। इन्हें कहाँ रखूँ, कैसे इनकी सेवा करूँ, कुछ समझ नहीं पा रहा था। श्रीमूर्तियों के दर्शन कर घर के सभी लोग परमानन्दित हुए। यथासाध्य सेवा चलने लगी। ९ पौष रविवार त्रयोदशी के दिन बाबाजी महाशय सप्तग्राम में श्रीश्रीमद् उद्धारण दत्त ठाकुर की गद्दी पर गये। हम भी कई लोग उनके साथ थे। वहाँ खूब कीर्तन हुआ। उसी दिन रात को सबको साथ ले मैं कलूटोला में कुञ्जविहारी मल्लिक महाशय के घर गया। वहाँ से हम लोग अपने-अपने घर विश्राम करने चले गये।

दूसरे दिन बाबाजी महाशय बहू बाजार *श्रीनाथदास* लेन में श्रीयुक्त माणिकलाल मल्लिक महाशय के घर गये। माणिक दादा के अष्टप्रहर-नाम-संकीर्तन का प्रस्ताव करने पर उन्होंने प्रसन्न हो उसे स्वीकार किया और उसी दिन संध्या समय अधिवास कर दूसरे दिन अष्टप्रहर-नाम-कीर्तन आरम्भ किया। अमृतलाल बसु महाशय आकर बड़े बाबाजी महाशय को अपने घर ले जाने के लिये विशेष अनुरोध करने लगे। उनके अनुरोध के कारण उन्हें उनके घर जाना पड़ा। अमृतबाबू के आग्रह से हममें से भी कई लोग उनके घर गये। आनन्दमय बाबाजी महाशय जब जहाँ भी पदार्पण करते वहीं मानो आनन्दरूपी पवन बहने लगता। जाते समय ताली बजा-बजाकर नाम करते जा रहे थे। उसमें भी कितना आनन्द था। अमृतबाबू के घर जा शीतल भोग महाप्रसाद ग्रहण किया। फिर माणिक दादा के घर लौट आये।

माणिकबाबू के घर संध्या के बाद बाबाजी महाशय नाम के साथ आरति-कीर्तन और निताइगौर-गुण-संवलित नाना पद-कीर्तन करने लगे। आनन्द की सीमा न रही। रात दस बजे तक इसी प्रकार कीर्तन कर उन्होंने कुछ अवकाश ग्रहण किया। नाम चलता रहा। दूसरे दिन सात बजे नाम पूरा कर नगर-कीर्तन को निकले। बहुत से स्थानों का परिभ्रमण कर यथासमय घर लौटकर कीर्तन पूरा किया।

कीर्तन के बाद तिमंजिले पर बैठे थे। बहुत से भक्त चारों ओर बैठे भगवत्प्रसंग कर रहे थे। उसी समय अनाथ दादा श्रीयुक्त गिरीशचन्द्र बसु महाशय को हाथ से पकड़ कर वहाँ लाये। गिरीशबाबू का शरीर बहुत अस्वस्थ देख बाबाजी महाशय बोले-'इन्हें इतना कष्ट देकर यहाँ क्यों ले आये?'

अनाथ—आपके चरण-स्पर्श करने की इनकी बड़ी इच्छा थी, इसलिये ये आप ही आये हैं।

बाबाजी—इन्हें क्या हो गया है?

अनाथ—इन्हें अनेक प्रकार के रोग हैं। इनमें मुख्य बहुमूत्र है। बीच-बीच में रक्त भी जाता है।

बाबाजी—चिकित्सा हो रही है न?

अनाथ—कई प्रकार की चिकित्सा कराई जा चुकी है, पर कोई लाभ नहीं होता। इन्हें पूरा विश्वास है कि आप दया करें तो इन्हें इस विषम यन्त्रणा से छुटकारा मिल सकता है।

बाबाजी—मैं कोई डॉक्टर वैद्य हूँ, या ओझा? मेरे पास क्यों लाये?

सुनते ही गिरीशबाबू रोते-रोते इनके पैरों पर गिर पड़े और बोले-बाबा, मैंने बहुत दु:खी होकर आपके श्रीचरणों का आश्रय लिया है। आपकी जो इच्छा हो करें, मुझे आपत्ति नहीं। मुझे जीवन और मरण में आपके चरणों का सहारा है। मेरे ऊपर कृपा करनी ही होगी। अब यह यन्त्रणा मेरी सहनशक्ति के बाहर है। आपको पाकर मुझे देह रोग और भव-रोग दोनों से मुक्ति मिल गई।

बाबाजी—बाबा, भव-रोग विनाशकारी एकमात्र श्रीगुरुदेव हैं। उनसे प्रार्थना करो। उनके चरणों का आश्रय लो। अभीष्ट-पूर्ति होगी।

गिरीश—आप ही हैं मेरे गुरु, इष्ट, पिता, माता और आश्रयदादा। मैं आपको छोड़ और कुछ नहीं जानता।

गिरीशबाबू की उस समय की अवस्था देख और उनका कातरभाव-मय निवेदन-सुन सभी भक्तों का हृदय द्रवित हो गया। सभी के मन में एक-सा भाव उदित हुआ और सभी मानो गिरीशबाबू होकर मन-ही-मन या प्रकट रूप से बाबाजी महाशय के चरणों में उनके लिए प्रार्थना करने लगे। पर वे तटस्थ होकर चुप बैठे रहे, जैसे अनमने भाव से किसी और विषय की चिन्ता कर रहे हों। उसी समय अकस्मात् माणिकदादा के गुरुदेव श्रीपाद सौरेन्द्रमोहन गोस्वामी प्रभु आकर उपस्थित हुए। उन्हें देखते ही बाबाजी महाशय ने ससंभ्रम उठकर दण्डवत्-प्रणाम किया और बैठने को आसन दिया। प्रभुपाद ने बैठते ही पूछा-आप कब आये?

बाबाजी—परसों शाम को। उसी दिन संध्या के बाद अधिवास हुआ, कल अष्टप्रहर नाम-संकीर्तन और आज कीर्तन का समापन।

प्रभु—अच्छा, इतना आनन्द हो गया और माणिक ने हम लोगों को खबर भी नहीं दी। माणिक को बुलाओ तो।

बाबाजी—अकस्मात् ही सब कुछ हो गया। शायद इसलिए वह खबर नहीं कर सका। आप यदि रुष्ट होंगे तो बेचारा कहाँ जायेगा?

प्रभु—और कोई विषय होता और मुझे संवाद न भेजता तो कोई बात नहीं थी, पर आपके मधुर-कीर्तन से मुझे वंचित रहना पड़ा इस दु:ख का भागी कौन होगा? उसने कैसा अन्याय किया है।

बाबाजी—प्रभु, यह दास तो आपका ही चरणाश्रित है। आप हृदय में उदित होकर जिह्वा से जो भी उच्चारण करवाते हैं, वह करता है। स्वतंत्र भाव से तो एक अक्षर भी उच्चारण करने की शक्ति इस पुतले में नहीं है। आप यदि इस यन्त्र से कुछ सुनकर सुखी हों तो समय-असमय क्या देखना है, अभी लीजिये।

इससे पूर्व वे तेल मालिश करवा चुके थे और स्नान करने जा चुके थे। उसी अवस्था में कीर्तन करने लगे और लोग जो जहाँ थे, अपना-अपना कार्य छोड़कर खोल-करताल के साथ आकर कीर्तन में योग देने लगे। खूब जोर-शोर से कीर्तन होने लगा। सभी मानो बाह्यस्मृति खो बैठे और भाव में विभोर हो हृदय खोलकर उच्च स्वर से कीर्तन और नृत्य करने लगे। बाबाजी महाशय चरण पर चरण रख सुमधुर नृत्य कर रहे थे और अपने ही हृदय से स्फुरित पद-पदावलियों का

कीर्तन कर रहे थे। एक अनिर्वचनीय अननुभूत पूर्व आनन्द था। उनके बन्द नेत्रों को देख बोध होता था जैसे वे भावसागर के अतल-तल में डूब गये हों। क्षण-क्षण में अगणित भाव-तरंगें प्रेम के झकोरों से झूमती हुई नाना प्रकार की पदावली के रूप में निर्गत हो श्रोताओं के हृदय-क्षेत्र को प्लावित कर रही थीं। अश्रु-कम्प-पुलकादि सात्विक विकार मानो भूषणों के रूप में उनके श्रीअंग को सुशोभित कर रहे थे। कैसा मनोहर दृश्य था। कैसा मन-प्राण-मत्तकारी मधुर स्वर! कैसी अश्रुतपूर्व, अवर्णनीय, अतुलनीय पदावली! कैसा अपूर्व आनन्द!

कीर्तन के बीच न जाने क्या भाव आया, वे अकस्मात् गिरीशबाबू के निकट जा और उन्हें संकीर्तन के बीच में लिटा उनके ऊपर उद्दण्ड नृत्य करने लगे। कुछ देर बाद अपने चरणों से उन्हें फुटबाल के समान ठेलते हुए कमरे के एक ओर से दूसरी ओर लुढ़काने लगे।

अनाथ दादा आदि जो गिरीशबाबू की शारीरिक दुर्बलता से अवगत थे, इस व्यापार को देख अत्यन्त भीत और स्तम्भित हुए और सोचने लगे कि न जाने उनका क्या होगा! पर आश्चर्य! संकीर्तन पूरा कर जैसे ही बाबाजी महाशय ने कहा-'गिरीश, उठ! प्रभुपाद को प्रणाम कर। इनकी कृपा से तेरी असाध्य व्याधि दूर हुई। आज से तू निरोग है।' वैसे ही गिरीशबाबू स्वस्थ रूप में सबको दण्डवत्-प्रणाम करने लगे। सब देखकर अवाक् रह गये।

इधर बड़ी धूमधाम से ब्राह्मण-वैष्णव और दु:खी कंगालों की सेवा होने लगी। प्रभुपाद बाबाजी महाशय के श्रीमुख से अपूर्व कीर्तन सुन और माणिकदादा की भक्ति के प्रभाव से संतुष्ट हो यथोपयुक्त सेवा ग्रहण कर यथासमय अपने घर चले गये। बाबाजी महाशय उस दिन माणिकदादा के यहाँ रहकर दूसरे दिन शाम को नेड़ा गिर्जा निवासी श्रीयुत नवगोपालदे के विशेष आग्रह पर उनके घर चले गये। रात भर वहाँ रहे। दूसरे दिन पटलडाँगा निवासी बाबू मणिलालदास आदि भक्तों के अनुरोध से प्रात:कृत्य से निवृत्त हो दस बजे उनके घर चले गये।

मणिबाबू पाँच भाई थे। पर पाँचों जैसे एक-प्राण थे। बाबाजी महाशय उन्हें पंचपाण्डव कहकर पुकारते थे और उनसे बड़ा स्नेह करते थे। उस दिन वे उन्हीं के घर रहे। उनके साथ तो बहुत से लोग थे ही, उनके अतिरिक्त दर्शन करने के लिए जो अनेक व्यक्ति आते थे, वे भी उनका मधुमय संग छोड़कर नहीं जाना चाहते थे। इसलिए वे जिस दिन जिस स्थान पर जाते थे उस दिन वहाँ खूब धूम-धाम हो जाती थी। जिस भक्त के यहाँ यह आनन्दमय व्यापार अनुष्ठित होता था, वह अपने को कृत-कृत्य मान विशेष उत्सव का आयोजन करता था। मणिबाबू के यहाँ उस दिन रहकर दूसरे दिन प्रात: चाँपातला, रामकान्त मिस्त्री लेन में इस अधम की कुटी पर शुभागमन कर इसकी बहुत दिनों की आशा पूर्ण की। उस दिन बहुत से लोगों ने उनसे मन्त्र ग्रहण किया।

तीन बजे चूनापुकुर निवासी बाबू जवाहरलाल बसु आये और बहुत आग्रह कर उन्हें अपने साथ ले गये। भक्तों के अनुरोध से जवाहरबाबू के घर उनकी फोटो ली गई। उस रात वहाँ रहकर नाम-कीर्तन किया। दूसरे दिन (पञ्चमी को) प्रात: शाँखारीटोला निवासी बिहारीदास और गोवर्धनदास के घर गये। वहाँ अपने हाथ से ठाकुर को भोग लगा बाल-भोग महाप्रसाद पाकर मध्याह्न में तालतला निवासी नन्दकिशोर घोष के घर होते हुए धर्मदास दत्त महाशय के घर गये। दो दिन वहाँ रहकर सप्तमी के दिन संध्या समय किसी से बिना कुछ कहे केवल पुलिनदादा को साथ ले फिर चाँपातला इस अधम की कुटी पर शुभागमन किया। प्रभु-इच्छा से मेरी स्त्री और घर के अन्यान्य लोग श्यामपुकुर मेरे श्वशुरालय चले गये थे। घर पर किसी को न देख उन्होंने पूछा, 'बिहारी! तुम्हारे घर की स्त्रियाँ सब कहाँ हैं?'

मैं—वे सब श्वशुरालय गई हैं।

बाबाजी—अच्छा ही हुआ। तुम कल प्रात: अपने भांजे फकीरदास द्वारा उन्हें कहला भेजना कि मैं कई दिन तक यहाँ रहूँगा, तब तक वे लोग यहाँ न आवें। मेरी कुछ दिन निर्जन वास करने की इच्छा है।

मैं—यह तो मेरे बड़े सौभाग्य की बात है। मैं कल तड़के ही उनसे कहला भेजूँगा।

यह सुन उन्हें बड़ा आनन्द हुआ। रात में कुछ महाप्रसाद ग्रहण कर जब वे लेटे, मैं चरण-सेवा करने लगा। उसी समय बाहर कुछ हलचल सी सुनाई पड़ी। मैं धीरे-धीरे बाहर गया तो देखा कि रामदादा, गोविन्ददादा और फणि आदि चार-पाँच लोग आये हुए हैं और बहुत व्याकुल दीख रहे हैं। मुझे देखते ही गोविन्ददादा बोले, 'भाई, बाबाजी महाशय यहाँ आये हैं क्या?'

मैं—आप लोग इतने बेचैन क्यों हैं?

गोविन्द—क्या बताऊँ, कल शाम किसी-से कहे बिना न जाने कहाँ चले गये। उन्हें बहुत ढूंढ़ते-ढूंढ़ते आखीर में तुम्हारे घर आये हैं।

उनकी तत्कालीन अवस्था देख मैं एकदम मुग्ध हो गया। श्रीगुरुदेव में ऐसा प्रेम मैंने कभी नहीं देखा था। मैंने कहा-'बाबाजी, महाशय महाप्रसाद ग्रहणकर शयन कर रहे हैं।' सुनते ही सबके मुखकमल जैसे खिल गये, न जाने कब का खोया हुआ धन मिल गया। सारी उत्कण्ठा और आर्ति मिट गई। तब सब एक साथ ही बोले, 'भाई, बड़ी भूख लगी है, कुछ खाने को है?'

मैंने कहा—बाबाजी! महाशय का अधरामृत है।

यह सुन सबने प्रेमपूर्वक अधरामृत महाप्रसाद लिया और बैठक में सो गये।

दूसरे दिन (अष्टमी को) प्रातः उनके साथियों में से और भी बहुत से लोग आ गये। आनन्द की पैठ फिर से लग गई। बहुत से भक्त आकर नानारूप तत्त्वकथा-प्रसंग करने लगे। रात में नाम-कीर्तन होने लगा। नवमी के दिन चुनागली निवासी ननीलाल दे और शरत्चन्द्र दत्त के विशेष आग्रह से बाबाजी महाशय उनके घर गये। वहाँ मध्याह्न में नाम-कीर्तन आदि कर और बड़े समारोह के साथ महाप्रसाद ग्रहणकर कुछ विश्राम किया और संध्या समय मेरे घर लौट आये।

एक दिन वे अकस्मात् मुझसे बोले-'बिहारी, कागज कलम दे तो।' मैंने कागज-कलम और स्याही लाकर सामने रखी। उन्होंने एक लम्बी तालिका बनाकर मेरे और पुलिनदादा के हाथ में देते हुए कहा, 'देखो, यह सब सामग्री आज ही चाहिए। अभी बाजार चले जाओ।' तालिका में दालचीनी, लौंग, छोटी इलायची, बड़ी इलायची, कबाब चीनी आदि के अर्क, शोधित रेंडी का तेल आदि बहुत सी चीजें थीं। यथासमय सब चीजें आ गईं। उन्होंने अपने हाथ से सबमें से थोड़ा-थोड़ा लेकर एक तेल बनाया। तेल का नाम रखा-नित्यानन्द-निर्यास तेल। सब प्रकार की व्याधियों में मालिश और खाने के रूप में इसका उपयोग करने लगे। न जाने औषधियों के गुण या महापुरुष की शक्ति के प्रभाव से कठिन से कठिन रोग भी उससे ठीक होने लगे।

एक दिन रात वे बाहर के कमरे में बैठे हुए थे। पुलिनदादा से बोले, 'देख पुलिन, नित्यानन्द-निर्यास तेल निताइ की इच्छा से तैयार हुआ है। यह सर्व-व्याधि-नाशक है। बहुत से लोगों का इससे उपकार होगा। यह तुम्हें दे रहा हूँ और बनाने की विधि सिखाये दे रहा हूँ, तुम इसे बना-बनाकर सर्व-साधारण में बाँटना।

पुलिनदादा बोले, 'अच्छा, अभी बिहारीदादा के पास ही रहने दीजिए, मैं पीछे ले लूँगा।' बाबाजी महाशय ने मुझसे कहा, 'बिहारी, यह तेल और इसे बनाने की सामग्री अपने पास रखो। पुलिन जब माँगे दे देना।' मैंने सब चीजें यत्नपूर्वक रखवा दीं।

एक दिन पुलिनदादा ने किसी प्रसंग में माणिकदादा से कहा, 'नवद्वीप में नसिबाबू का बगीचा खरीदने की बाबाजी महाशय की बड़ी इच्छा है।' दशमी की रात माणिकदादा आये और बाबाजी महाशय से बोले-'नवद्वीप में बगीचा खरीदने के लिए कुछ रुपया लाया हूँ।'

बाबाजी—कितना रुपया?

माणिक—ये तीन हजार हैं, बाकी जो कुछ लगेगा कर दूँगा। आपकी कृपा से बगीचा खरीदने के लिए और किसी की सहायता की आवश्यकता न होगी।

बाबाजी—ठीक, निताइ की इच्छा। देख पुलिन, ये रुपये अपने पास रख, बगीचा माणिक के नाम खरीदा जायेगा। इसके पिता का नाम आदि सब लिख ले।

माणिक—बाबा, मेरा विनम्र निवेदन है कि बगीचा मेरे नाम न करें और चाहे किसी के नाम करें।

बाबाजी—क्यों, तुम्हें क्या आपत्ति? संसारी आदमी हो, इसलिए सांसारिक व्यापार तुम्हारे नाम से ही होना ठीक है। त्यागियों के लिए ठीक नहीं।

माणिक—तो किसी दूसरे गृहस्थ शिष्य के नाम कर दें, पर मुझे कृपा कर क्षमा करें। बगीचे में आपकी इष्टदेव को लेकर रहने की इच्छा-पूर्ति के लिए निताइचाँद ने मुझ विषयी नराधम को थोड़ा बहुत निमित्त बना लिया है, इसलिए मैं कोई दाता या स्वत्वाधिकारी नहीं हूँ। यह तो आप ही ने कृपा कर शिक्षा दी है, अब मेरी परीक्षा क्यों ले रहे हैं?

माणिकदादा के मुख से इस प्रकार की नि:स्वार्थपरता और तत्वानुभूति की बात सुन बाबाजी महाशय बहुत आनन्दित हुए। यथा समय माणिक दादा उन्हें दण्डवत्-प्रणाम कर घर चले गये। उन्होंने महाप्रसाद ग्रहण कर विश्राम किया।

दूसरे दिन (एकादशी को) प्रात: उठते ही बोले, 'मैं कल नवद्वीप जाऊँगा।' सुनते ही मेरा मन न जाने कैसा हो गया। आँखों में आँसू आ गये और गद्गद कण्ठ से बोला, 'और कुछ दिन रहना होगा। मैं आपकी सेवा ठीक से नहीं कर पा रहा हूँ। पर आपके कारण बहुत से महात्माओं का शुभागमन होता रहता है, यह आनन्द फिर कब मेरे भाग्य में होगा?'

बाबाजी महाशय हँसकर बोले-'मैं तुम्हारा ही तो हूँ, आनन्द क्यों नहीं होगा?'

मन्त्र-मुग्ध के समान मैं उनको देखता रहा और कुछ कह न सका। हरिवासर नाम-कीर्तन आरम्भ हुआ। बहुत से लोग आने लगे। उनके नवद्वीप जाने की बात जो भी सुनता वह दु:खी होकर उनसे कई दिन और रहने के लिए आग्रह करता।

रात में विशेष कीर्तनानन्द हुआ। रात किधर निकल गई किसी को पता न चला। दूसरे दिन प्रात: कीर्तन-समाप्ति के पश्चात् स्नानादिक नित्यकृत्य कर महाप्रसाद ग्रहण किया। फिर कुछ देर विश्राम कर सदलबल श्रीधाम नवद्वीप के लिए प्रस्थान किया। महापुरुषों का हृदय कुसुम से भी कोमल और वज्र से भी कठोर होता है। दण्डवत् करते समय मुझसे न रहा गया। मैं बालक के समान रो पड़ा। मेरी पीठ पर हाथ रखते हुए वे बोले-'इतने अधीर क्यों होते हो बिहारी? मैं जाकर तुम्हें लिखूँगा। तब तुम श्रीधाम चले आना।' उपस्थित सभी लोगों को नानारूप प्रबोध-वाक्यों से सान्त्वना देते हुए वे गाड़ी पर जा बैठे। यथासमय कृष्णनगर उतरकर घोड़ा-गाड़ी और नौका से नवद्वीप पहुँचे। उनके गुरुदेव (वृद्ध बाबाजी महाशय) उस समय भजन में थे। अवकाश पाते ही उन्होंने जब दण्डवत् प्रणाम किया, उन्होंने झट उठाकर गाढ़ालिंगन किया। कैसा अपूर्व दृश्य था। वात्सल्य-मूर्ति श्रीगुरुदेव उपयुक्त शिष्य को हृदय से लगाकर आनन्दाश्रु विसर्जन कर रहे थे। शिष्य भी सिद्ध गुरु के स्पर्श से आनन्दाप्लुत और अश्रु-कम्प-पुलकादि से परिव्याप्त हो अविरत अश्रु-धार बहा रहे थे। कुछ देर बाद दोनों एक-दूसरे का कुशलक्षेम पूछने लगे। यथासमय प्रसाद-सेवनादि समाप्त हुआ।

किसी ने उनसे कहा कि कलकत्ते के लिये रवाना होने के दूसरे दिन ही रानाघाट के किसी सज्जन ने महितोषबाबू के बगीचे के दाम पाँच हजार लगाये पर महितोषबाबू ने नहीं दिया और कह दिया-''मैं एक महापुरुष को बगीचा देने का वचन दे चुका हूँ, दूसरा कोई दस हजार लगायेगा तो भी नहीं दूँगा।'' यह सुन प्रसन्न होकर बोले-'महद्वंशोद्भव व्यक्ति का हृदय ऐसा ही होता है। वंश का गुण कहाँ जा सकता है? जा पुलिन, आज ही बगीचे की लिखी-पढ़ी का उपाय कर, कल रजिस्ट्री करनी है।' पुलिनदादा ने कहा, 'जो आज्ञा' और श्रीहरि मजूमदार महाशय को सम्वाद दिया। मजूमदार महाशय उनके साथ आकर मसविदा तैयार करने लगे। श्रीराधारमण के नाम से देवोत्तर भाव से खरीद का मसविदा बना। पुलिन विहारी मल्लिक को सेवायित या मारफतदार रखा गया। यथासमय रजिस्ट्री हो गई। इधर बगीचे को साफ करने के लिए और उसकी मरम्मत के लिए बहुत से मजदूर लगा दिए गये। तीन चार दिन में ही बैठकखाना रहने योग्य हो गया। बाहर के हिस्से की मरम्मत चलती रही। बगीचा पाकर बाबाजी महाशय को कितना आनन्द हुआ, कहना कठिन है। यद्यपि बगीचे में उठने-बैठने के लिए अभी ठीक तरह से सफाई नहीं हो पाई थी, फिर भी वे प्राय: उस बगीचे में ही रहने लगे।

श्रीश्रीराधाकान्तदेव का शुभागमन

एक दिन बाबाजी महाशय बहुत तड़के साथियों में से एक को बुलाकर बोले-'अभी-अभी सातगाछिया में कुंजगोस्वामी के घर चले जाओ। उनसे कहना कि आज ही मुझसे आकर मिलें; कोई खास काम है, अन्यथा न हो।' उनका आदेश पाकर साथी दण्डवत्-प्रणाम कर रवाना हो गये। इधर कुञ्ज गोस्वामी का मन श्रीधाम नवद्वीप जाने के लिए अत्यन्त व्याकुल हो रहा था। मदनगोपाल की सेवा और संसार के कार्यों में मन बिलकुल नहीं लग रहा था। उन्हें आहार-विहार में सब समय श्रीगुरुदेव की मूर्ति के दर्शन होने लगे। तब वे किंकर्तव्यविमूढ़ भाव से नाना प्रकार की बातें सोचने लगे। उसी समय नवद्वीप से उन्हें श्रीगुरुदेव का संवाद प्राप्त हुआ। संवाद पाते ही वे बोले-'मैं तो पहले ही समझ गया कि गुरुदेव ने इस अधम को दर्शन देकर कृतार्थ करने के लिए आकर्षित किया है।' सम्वाददाता और ये स्नानाह्निक कार्य के पश्चात् महाप्रसाद ग्रहण कर नवद्वीप के लिए रवाना हुए। संध्या समय श्रीधाम पहुँच गये। बाबाजी महाशय कुञ्जगोस्वामी को देखते ही ठीक बालक के समान रोने लगे। पन्द्रह मिनट बाद कुछ स्थिर हो साश्रु-गद्‌गद कण्ठ से कहने लगे-'कुञ्ज! तुम्हारे स्थान पर प्राणकृष्ण मल्लिक महाशय के पुराने ठाकुर मन्दिर के ईशान कोने में एक ऊँचा स्थान है। वहाँ मिट्टी के नीचे श्रीराधाकान्त नामक श्रीविग्रह हैं। बहुत सावधानी से पहले उन्हें निकालना। बाद में मन्दिर के नैर्ऋतकोण में देखना। वहाँ सिन्दूर लगी हुई दो पीतल की कलसियाँ रखी हैं। उनकी आड़ में श्रीराधारानी की एक मूर्ति और चतुर्भुज नारायण की एक छोटी मूर्ति है। उन दोनों कलसियों के साथ सभी मूर्तियों को कल शाम तक यहाँ ले आओ।'

कुंज—मल्लिक महाशय के वंश में तो अब उनकी कन्या को छोड़ और कोई है नहीं। उनके घर कई प्रकार की ठाकुर-सेवा थी, जो अब भी नाम-मात्र को चलती है। प्राणकृष्णबाबू ने हुगली जिले के श्रीपुर गाँव के श्रीरामदास मुस्तफी को कन्यादान कर उन्हीं के हाथ में सारा भार छोड़ दिया है। वे लोग यदि मूर्तियाँ लाने में या मन्दिर के भीतर जाने में कुछ आपत्ति करें तो?

बाबाजी—इस सम्बन्ध में चिंता न करो। ठाकुर जब स्वयं आना चाहते हैं तो कोई उनके प्रतिकूल न होगा। वे शीघ्र यहाँ आ सकें ऐसी चेष्टा करो।

कुञ्जगोस्वामी और कुछ न कहकर रात चार बजे रवाना हो गये। यथासमय सातगाछिया पहुँच श्रीयुक्त विपिनविहारी गोस्वामी को साथ ले बाबू लोगों के घर पहुँचे और प्राणकृष्णबाबू की कन्या से बोले-'माँ, आपके ठाकुर मन्दिर में राधा-कृष्ण की जुगल मूर्ति मिट्टी के ढेर के नीचे विराजमान हैं। उन्होंने मेरे गुरुदेव से स्वप्न में कहा है-'हम मिट्टी के नीचे हैं। तुम हमें ले जाकर सेवा-पूजा करो।' इसलिए गुरुदेव ने हमें आपके पास भेजा है। इस सम्बन्ध में आपका क्या विचार है?' वे व्याकुल होकर बोलीं-'बाबा, आप अभी मन्दिर जाकर उन्हें ले जायें। मुझे इस सम्बन्ध में कोई आपत्ति नहीं। मेरे लिए तो आनन्द की ही बात है, फिर भी एकबार मालिक से पूछ लेना उचित होगा।' उन्होंने रामबाबू से पूछा तो वे बोले-'बाबा, सेवा-पूजा करने की मुझमें सामर्थ्य नहीं। यदि ठाकुर इस प्रकार अपनी व्यवस्था अपने आप करलें तो मुझे क्या आपत्ति हो सकती है? ठाकुर ने स्वयं आदेश किया है, तो आप खुशी से ले जायें।' रामबाबू की बात सुन विपिन गोस्वामी विस्मित हो एक दूसरे से कहने लगे-'कैसी दुस्तर भगवन्माया है। इनके पास अपार संपत्ति है, कौन खायेगा कुछ ठीक नहीं। फिर भी इन्हें चैतन्य नहीं होता। धन्य मायामय और तुम्हारी मायाशक्ति। चलो, श्रीगुरुदेव की कृपा से हमारा काम तो पूरा हुआ।' इतना कह दोनों उस टूटे फूटे पुराने मन्दिर में गये। बाबाजी महाशय के बताये हुए स्थान से ईंट, पत्थर, मिट्टी हटाकर देखा कि उज्ज्वल श्याम-कान्ति मणिमय विग्रह श्रीकृष्णचन्द्र उल्टे होकर शयन कर रहे हैं। देखते ही विपिन गोस्वामी ने अश्रु-कम्प और पुलक सहित श्रीमूर्ति को उठा हृदय से लगा लिया और व्यग्र भाव से नैर्ऋतकोण में रखी हुई सिन्दूर से सनी पीतल की कलसियों और उनके पीछे विराजमान चतुर्भुज नारायण और श्रीमतीजी को लेकर, जैसे खोयी हुई निधि को पा लिया हो, इस भाव से झट मन्दिर के बाहर निकल आये और कुञ्जबाबू के घर चले गये।

उसी दिन नवद्वीप जाना है, श्रीगुरुदेव के इस आदेश का स्मरण कर थोड़ी ही देर में यथासम्भव तीनों मूर्तियों को साफ कर नवद्वीप रवाना हुए। इधर बाबाजी महाशय बड़े उत्कंठित भाव से बार-बार कमरे के बाहर जा व्याकुल भाव से सड़क के चारों ओर देखते और निराश हो वापस लौट आते। एकबार बाहर आकर देखा दूर से कुञ्ज गोस्वामी और विपिन गोस्वामी को आते, तो भाग कर गये और राधागोविन्द के विग्रहों को हृदय से लगा लिया। उनका शरीर पुलक-कम्पादि से व्याप्त हो गया। वे अश्रु-पूर्ण नेत्रों से बार-बार उनका मुख देखते और हर्ष-शोक, हास-रुदन-मिश्रित अनिर्वचनीय भावसागर में निमग्न हो जाते। प्रेमविह्वल हो नृत्य करते-करते वे आश्रम में गुरुदेव के पास गये। वे मूर्तियों के दर्शन कर परमान्दित हुए और पूछा-'ये अमूल्य रत्न कहाँ से पाये ?'

बाबाजी—एक अपूर्व कहानी है। परसों रात पिछले पहर मैंने सोते-सोते देखा कि यही दोनों विग्रह मेरे पास आकर कह रहे हैं-'देख! हम लोग बड़े कष्ट में हैं, तुझे हमारा उद्धार करना होगा।' उनके कातर कण्ठ से सुधा-विनिन्दित मधुर ध्वनि सुन मैं सुध-बुध खो बैठा, यहाँ तक कि उनमें भगवद्भाव लाये बिना ही विह्वल होकर बोला-'तुम कहाँ हो ?' ये बोले-'हम सातगाछिया के प्राणकृष्ण मल्लिक के मन्दिर के बीच मिट्टी के नीचे दबे हैं।' मैंने विस्मित भाव से पूछा-'मन्दिर में कौन से स्थान पर हैं, मुझे कैसे पता चलेगा? फिर वह है बड़े लोगों का मन्दिर, उसमें किसी ने न घुसने दिया या तुम्हें न लाने दिया तब?' दोनों में से कृष्ण-मूर्ति बोली-'मन्दिर के ईशान कोण में कुछ मलबा पड़ा है, मैं उसीके नीचे हूँ। श्रीमतीजी और एक चतुर्भुज नारायण मूर्ति मन्दिर के नैर्ऋत कोने में दो सिन्दूर-मण्डित पीतल की कलसियों के पीछे हैं। तुम चिन्ता न करो। हमें वहाँ से ले आने में वे लोग कोई आपत्ति न करेंगे। उनके वंश में प्राणकृष्ण की एक कन्या मात्र है, उसकी धर्म-कर्म और भगवत्सेवा में तनिक भी श्रद्धा नहीं है। इसे वह उपाधि ही समझती है। कोई भी वहाँ से हमें आसानी से ला सकेगा।' यह सब सुनकर मेरे हृदय में हर्ष और विषाद की लहर एक साथ दौड़ गई और मैं बहुत व्याकुल हो गया। आँखों में आँसू आ गये, निद्रा भंग हो गई। मैंने तुरन्त एक व्यक्ति को भेजकर कुञ्ज को बुलवाया। आपके आशीर्वाद और इन लोगों के यत्न से अनायास इन विग्रहों का शुभागमन हुआ। अब क्या करना चाहिए, आदेश कीजिए।

वृद्ध बाबाजी महाशय बोले—ठाकुर की ऐसी अवस्था है कि एकबार अंगराग कराकर अभिषेक कराना ही ठीक होगा।

ऐसा ही हुआ। जतीन भास्कर को बुलवाकर ठाकुर के अंगराग की व्यवस्था की गई। तीन दिन में अंगराग हो गया। तब वृद्ध बाबाजी महाशय के आदेश से महाभिषेक कराया गया और यथाविधि सेवा की व्यवस्था की गई। ठाकुर-सेवा के साथ-साथ वैष्णव-सेवा विधि पूर्वक होने लगी। वैष्णव सेवा का सम्पूर्ण भार गोविन्ददादा पर था। बाबाजी महाशय का आदेश था कि भूखा कोई भी आये उसे महाप्रसाद अवश्य देना होगा। इसलिए किसी भी दिन चार-पाँच मन से कम चावल की रसोई नहीं होती थी। बड़ी धूम-धाम रहती थी। निमंत्रित-अनिमंत्रित जो भी आते थे महाप्रसाद पाते थे। वैष्णव-सेवा के प्रति उनका सदा से ही उदार भाव रहता था। पर ठाकुरजी के आने के समय से उनका यह खुला आदेश हो गया। जो भी आता उसे प्रसाद न मिलने पर गोविन्ददादा को डाँटा-डपटा जाता। इस प्रकार परमानन्द-पूर्वक और बड़ी धूम-धाम के साथ दिन बीतने लगे।

बागान-बाड़ी-प्रतिष्ठा

बहुत से मजदूर लगाकर बागान-बाड़ी के बैठकखाने की मरम्मत हो रही थी। एक दिन पुलिनदादा को बुलाकर बोले-'माघ शुक्ला त्रयोदशी को श्रीनित्यानन्द प्रभु की आविर्भाव तिथि है। उस दिन बागान-बाड़ी की प्रतिष्ठा करनी है। सामान लाने के लिए तुम्हें कलकत्ते जाना है।' पुलिनदादा बोले-'दिन बहुत निकट है। जिस-जिस सामान की जरूरत हो उसकी लिस्ट बना लीजिए मैं आज ही कलकत्ते चला जाऊँगा।' उसी क्षण वे लिस्ट बनाने लगे-'चाँदी की

खड़ाऊँ-४, चाँदी के चँवर-४, झंडी-१६, बैठकखाने के नाप की दरी-१, दरी पर बिछाने की चाँदनी-२, दरी के नीचे बिछाने की मेटिंग-१, राम शृंगा-१, एक साइनबोर्ड जिसमें लिखा हो-

श्रीश्रीराधारमणो जयति
भज निताइ गौर राधेश्याम। जप हरे कृष्ण हरे राम।
श्रीश्रीवृन्दावन लीला
श्रीराधारमण बाग, अनंगानन्ददा सुखमयकुंज
श्रीश्रीमती ललिता सखी के जूथ की
अनंग मंजरीदेवी की सेवा

राधाकान्त देव के लिए रेशमी धोती-चादर, राधारानी के लिए बनारसी साड़ी, भोग के लिए फल आदि।' इस प्रकार की साठ वस्तुओं की तालिका बनाकर पुलिनदादा को दे दी। श्रीयुक्त भूषणचन्द्र बंद्योपाध्याय महाशय के घर से तख्त, कुर्सी, बेंच आदि फर्नीचर मँगवा लिया। नवद्वीपवासी पण्डित-मंडल को निमन्त्रित कर दिया। ठाकुर को ले आने के लिए चतुर्डोला मँगाया गया। उत्सव के दिन प्रातःकाल अपने हाथ से बैठकखाने में फर्श बिछाया। उसके ऊपर तख्त, कुर्सी, बेंच आदि रखवा दिये और उन्हें नाना प्रकार के रंग-बिरंगे वस्त्रों से ढक दिया। बैठकखाने के सदर दरवाजे से लेकर चारों तरफ आम के पत्ते, केले के वृक्ष, पानी भरे घड़े सजा दिये। प्रत्येक घड़े के ऊपर आम की टहनियाँ और उसके ऊपर लाई-च्योड़ा और सन्देश से परिपूर्ण सकोरा रखवा दिया। संकीर्तन की सात मंडलियों के साथ, जिनमें चौदह मृदंग थे, श्रीराधाकान्तजी नवद्वीप के नाना स्थानों में परिभ्रमण करते हुए बागान बाड़ी में पधारे। बगीचे में लोगों की भीड़ का कोई ठिकाना न था। यहाँ तक कि जिन लोगों को नीचे जगह न मिली, पेड़ की डालों पर बैठकर उत्सव का दर्शन कर रहे थे। यथासमय श्रीराधाकांतदेव ने कमरे में प्रवेश किया। इधर दर्शकवृन्द को बताशे और संदेश प्रसादरूप में देकर विदा किया गया। महोत्सव की रसोई गुरुदेव के आश्रम में हो रही थी। श्रीनित्यानन्द प्रभु का जन्मोत्सव कीर्तन आरम्भ हुआ। नाना प्रकार के फल, मिठाई, मालसा-भोग इत्यादि भोग की तैयारी होने लगी। श्रीयुक्त गोपालचन्द्र घटक, कुञ्जविहारी गोस्वामी, विपिनविहारी गोस्वामी और पंचानन मुखोपाध्याय आदि ठाकुर के भोग की व्यवस्था करने लगे। भोग देने के लिए सबने नवीन वस्त्र धारण किये। भक्तों के अनुरोध से इन्होंने भी रेशमी वस्त्र धारण किये। इनके आनन्द की आज सीमा न थी। इतने दिनों बाद आज अभीष्ट स्थान पर अभीष्टदेव को बिठाकर पूर्ण-काम हुए थे। बहुत दिनों की आशा आज फलवती हुई थी। आज मानो वे कल्पतरु हो गये थे। जो जिस वस्तु की प्रार्थना करता, प्रसन्न मन से उसकी पूर्ति करते थे। उन्होंने पण्डित-मंडली की यथायोग्य अर्थ और सन्देश द्वारा अभ्यर्थना की थी। आबाल-वृद्ध-वनिता सभी आनन्द से परिपूर्ण और इनके व्यवहार से सन्तुष्ट थे। ये अपने हाथ से उठाकर जिसको जो दे देते थे उससे ही वह अपने आपको कृत-कृत्य अनुभव करने लगता था। आनन्द की सीमा न थी। बागानबाड़ी के पशु-पक्षी, तरुलता सभी आनन्दसागर की उत्ताल तरंगों में डुबकी लगा रहे थे। यथासमय भोग-राग समाप्त होने पर इन्हें पंगत के लिए सूचित किया गया। इन्होंने स्वयं न जाकर गोविन्ददादा के ऊपर सारा भार छोड़ दिया और वैष्णव-सेवा के पश्चात् कुछ अधरामृत भिजवा देने का आदेश किया। ऐसा ही किया गया। वैष्णव-सेवा के पश्चात् कोई चार बजे के लगभग इनके लिए कुछ अधरामृत और एक कटोरी खीर महाप्रसाद आया। इन्होंने थोड़ा-सा लेकर शेष भक्तों में बाँट दिया। श्रीराधाकान्तजी उस दिन राधारमण बाग में ही रह गये। दूसरे दिन फिर उनके गुरुदेव के आश्रम में चले गये।

जुगलबाबू का सन्देह-भञ्जन

इस घटना के सम्बन्ध में जुगलबाबू ने स्वयं इस प्रकार लिखा है-

मेरा नाम जुगलकिशोर दत्त है। हुगली जिले के अन्तर्गत गुटी नामक गाँव मेरा जन्म-स्थान है। १३१२ के माघ मास में धूलट उत्सव के उपलक्ष में महाप्रभु के दर्शन और गान-कीर्तनादि सुनने के उद्देश्य से मैं अपने फुफेरे दादा श्रीयुत ननीलाल दे महाशय के साथ कलकत्ते से श्रीधाम नवद्वीप गया। उस समय कलकत्ते से श्रीधाम नवद्वीप, आहिरीटोलाघाट से स्टीमर द्वारा जाना होता था, या फिर स्यालदह स्टेशन से ई. वी.

रेलवे द्वारा कृष्णनगर जाना होता था और वहाँ से घोड़ा गाड़ी और नाव द्वारा नवद्वीप पहुँचना होता था। हम लोग रेल द्वारा कृष्णनगर गये और वहाँ से पहले घोड़ा-गाड़ी फिर नौका द्वारा जाकर नवद्वीप के बड़ाल घाट पर सबेरे छह बजे के लगभग पहुँचे। बहुत से बालक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष परमानन्द-पूर्वक पतित पावनी भागीरथी में गोते लगाकर मानो जन्म-जन्मान्तर के पाप धोकर शान्ति-सुधा-पान कर रहे थे। हरि-ध्वनि, उलुध्वनि शंख, घण्टा, खोल-करताल आदि की ध्वनि से चारों दिशाएँ मुखरित हो रही थीं।

मैंने एक भक्त से पूछा—'बड़े रसिकदास का कीर्तन इस समय कहाँ हो रहा है?' भक्त ने उत्तर दिया—'बड़े अखाड़े में।' हम लोग तुरन्त बड़े अखाड़े चले गये और कीर्तन सुनने लगे। दो घण्टे कीर्तन सुनने के बाद ननी दादा बोले—जुगल! चल, बाबाजी महाशय के दर्शन कर आयें। मैंने बड़े उत्साह से कहा-'हाँ दादा, चलिए।' हम लोग श्रीवास अंगन के ठीक सामने जा पहुँचे जहाँ 'राधारमण बाग' का साइनबोर्ड लगा था। बाग के भीतर देखा कि उसमें एक बैठक है, जिसके बाहर के हिस्से की मरम्मत हो रही है। ननी दादा आगे-आगे जा रहे थे, मैंने उनके पीछे-पीछे बैठक के पूर्वी बरामदे में जाकर जो कुछ देखा, उसे भाषा में व्यक्त करना सम्भव नहीं। देखा कि एक अति दीर्घाकार महापुरुष एक सुसज्जित कुर्सी पर बैठे हैं। उनका दाहिना पैर नीचे झूल रहा है और बायाँ उसके ऊपर रखा है। शरीर रक्ताभ उज्ज्वल श्यामवर्ण है, सर्वांग चन्दन-चर्चित है, गले में फूलों की माला, सिर पर फूलों की पगड़ी और मुख पर मृदु मुस्कान है। नेत्र आरक्त-वर्ण और डब-डबाये से हैं। न जाने किसके भाव में विभोर हैं। पीले रंग की बनारसी धोती और चादर पहने हैं। चरणों में मखमली स्लीपर, बाईं ओर चाँदी का फार्शी हुक्का, भीतर कमरे में मसहरीदार सुन्दर पलंग और कुर्सी, बेंच इत्यादि है। कुछ दूर से हमें देखते ही वे सहास सुधा-विनिन्दित कण्ठ से बोले- 'कौन ननी! कब आये?' ननीदादा हाथ जोड़कर बोले- 'अभी थोड़ी देर हुई।' और आगे बढ़ कर साष्टांग दण्डवत् की। मैंने भी एक अननुभूतपूर्व भाव में चुम्बकाकृष्ट लोहे के समान आगे बढ़कर श्रीचरणों में जैसे ही सिर नवाया, उन्होंने कृपा-पूर्वक मस्तक-स्पर्श करते हुए पीठ पर दो बार थपथपाते हुए कहा-'ननी, यह लड़का कौन है?' ननी दादा बोले-'ये मेरे ममेरे भाई हैं। महाप्रभु के दर्शन करने और कीर्तन सुनने के लिए मेरे साथ आये हैं।' बाबाजी महाशय बड़े उत्साह से बोले-'बहुत सुन्दर! तुम लोग अभी बड़ाल घाट के मठ चले जाओ। वहाँ राम कीर्तन कर रहा है, सुनना।' ननी दादा ने 'जो आज्ञा' कह पूर्ववत् प्रणाम किया। पर मैं मन्त्र-मुग्ध काठ की पुतली के समान अनिमेष-नयन उनकी अपूर्व रूपराशि का दर्शन कर रहा था। इसके पहले कलकत्ता निवासी पुलिनविहारी मल्लिक महाशय के साथ उनके शोभाराम बसाक लेन वाले मकान में उनके दर्शन कर चुका था, पर आज का रूप और भाव कुछ और ही था। उस अनिर्वचनीय अननुभूतपूर्व दर्शनानन्द को छोड़ मेरी कहीं जाने की इच्छा न थी। फिर भी उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर बगीचे के बाहर गया। ऐसा लगने लगा अब तक न जाने कहाँ और किस भाव में था। यद्यपि मैं बालक था और मेरी बुद्धि अपरिपक्व थी, फिर भी महापुरुष की शक्ति के प्रभाव से मेरा मन न जाने किस अप्राकृत आनन्दमय राज्य में विचरण करने लगा था। महापुरुष का स्थान छोड़ते ही मानो मेरा मन अपनी जगह वापस आ गया और अघटन-घटन-पटीयसी महाशक्ति-शालिनी महामायादेवी ने मुझ पर अपने प्रभाव का विस्तार किया। तरह-तरह के विचार आने लगे। श्रीवास अंगन घाट के नीचे गंगा के गर्भ में से होकर ननीदादा आगे-आगे चले जा रहे थे। मैं पीछे-पीछे यह सोचता हुआ जा रहा था-'ननीदादा से सुना था कि यह एक महात्यागी, परम वैष्णव सिद्ध महात्मा हैं। पर ऐसा तो कुछ देखा नहीं। ये तो महाविलासी हैं और भी तो वैष्णव महात्मा मेरे घर अक्सर आते रहते हैं, ऐसा विलासिता का भाव किसी में नहीं देखा। न जाने ये कैसे वैष्णव हैं और क्या इनका मत है।' मन ही मन इस प्रकार की समालोचना करते-करते बड़ाल-घाट आ गया। ननी दादा से सुना कि रामदास बाबाजी महाशय महाभावुक प्रेमी महात्मा हैं और बहुत सुन्दर कीर्तन करते हैं और वे इन महात्मा के शिष्य हैं। मैंने सोचा-देखा

जाय ये कैसे महात्मा हैं। मठ के भीतर जाकर देखा कि वहाँ बड़ी भीड़ लगी है। एक कमरे में प्रभाती स्वर में कीर्तन हो रहा है। अल्पवयस्क, कंगाल वेश एक बाबाजी प्रेम-पूर्ण स्वर से सुमधुर कीर्तन कर रहे हैं और नेत्रों से अविरत अश्रुप्रवाह के कारण वक्षस्थल भीग रहा है। बीच-बीच में ऐसा कम्प हो रहा है कि उनकी मूर्ति ही नहीं दीखती। संकीर्तन करने वाले सभी व्यक्ति प्रेमानन्द में मतवाले हो रहे हैं। सब भावावेश में रुदन कर रहे हैं किसी को भी देह-स्मृति नहीं है। अकस्मात् रामदास बाबाजी महाशय प्रेम-गद्गद कण्ठ से 'आरे आमार निताइ रे' कहकर रो उठे और सब लोग बहुत अस्थिर हो गये। गाने-बजाने वाले सब रोते-रोते 'आरे आमार निताइ रे' कहकर ताल के साथ गा और बजा रहे थे। मैं यह सब देखकर अवाक् रह गया। मैंने इससे पहले बड़े-बड़े नामी कीर्तनियाओं का कीर्तन सुना था। अनेक प्रकार के स्वर, ताल और राग-रागिनियों के आलाप सुने थे। खोल-करताल के साथ अनेक प्रकार की भाव-भंगी और कला-कौशल देखे थे, परन्तु सादे सुर और सरल शब्दों में ऐसा हृदय-द्रावक और मन-प्राण-मत्तकारी कीर्तन कभी नहीं सुना था। उन्हीं दो शब्दों का आध घण्टे से कीर्तन हो रहा था, पर प्रत्येक बार वह नूतनतर और उत्तरोत्तर प्रेमोत्कर्षक मालूम पड़ रहे थे। सुना कि कीर्तन प्रातःकाल से हो रहा है। हम जब कीर्तन सुनने बैठे उस समय दस बजे थे पर क्लान्ति का कहीं नाम न था और क्या कहूँ, मैं बालक होते हुए और कीर्तन के भाव-प्रेम-रस के विषय में अनभिज्ञ होते हुए भी, इन बाबाजी के मुख से एक ही बात सौ बार सुनते-सुनते न जाने कैसा हो गया। मेरा पाषाण-हृदय पिघल गया। नेत्रों से अविरत अश्रुधार बहने लगी और मैं फूट-फूटकर रोने लगा। रो रहा था, पर बिना जाने रोना आ रहा था और मन ही मन समालोचना चल रही थी। सोच रहा था कि ये बाबाजी उक्त महापुरुष के शिष्य होते हुए भी बड़े शक्तिशाली और सच्चे वैष्णव हैं। मैंने बहुत से वैष्णव देखे थे, पर ऐसा वैष्णव आज तक नहीं देखा था। मैं इनसे नाम-मन्त्र ग्रहण करूँगा, ऐसा मन ही मन संकल्प कर अनन्यभाव से नाम सुन रहा था।

देखते-देखते बारह बज गये। अकस्मात् एक व्यक्ति ने आकर कहा कि बड़े बाबाजी महाशय आये हैं। यह सुनकर या अपनी इच्छा से ही कीर्तन समाप्त कर रामदास बाबाजी ने बाहर आकर उन्हें प्रणाम किया। वे बोले-'राम, तुझे बिलकुल भी सेवा-ज्ञान नहीं? भजन में सिर्फ कीर्तन करके रोना ही सीखा है और कुछ नहीं! वैष्णवों को महाप्रसाद पाने के लिए निमंत्रित किया गया है, व्यंजन सब प्रस्तुत हैं, ठाकुर का भोग नहीं हुआ है, बारह बज गये हैं, तब भी तेरा कीर्तन समाप्त नहीं हुआ। देख न, वैष्णवों को कितना कष्ट होगा। प्रेमानन्द में मस्त होने से ही क्या होगा, सेवानन्द भी तो चाहिए।' सब अवाक् और स्तब्ध थे, पर मेरा लक्ष्य दूसरी ओर था। मैं इन महापुरुष के वेश को देख विस्मय-सागर में निमग्न हो गया था। सबेरे जिनके विलासिता-पूर्ण भाव को देख मन ही मन शंका कर रहा था, इस समय उनके दीन-हीन वेश को देख जैसे स्तम्भित हो गया। इस समय रेशमी वस्त्र की जगह फटा-पुराना बहिर्वास है, पैर नंगे हैं, सर्वांग में चन्दन की जगह रज लिपटी है। हाथ में एक टूटी चिलम वाला साधारण हुक्का है और अति दीन हीन कंगाल वेश! अपने सामने बालक-वृद्ध-युवा जिस किसी वैष्णव को देखते हैं उसे सादर दण्डवत् प्रणाम कर प्रेम गद्गद कण्ठ से कृपा-प्रार्थना करते हैं। उनकी ऐसी वेश-भूषा और भाव-भंगी देख मुझे रोना आ गया और अपने संकीर्ण मन बुद्धि को धिक्कारने लगा। मन में पश्चाताप की अग्नि जलने लगी। सोचने लगा-'हाय, मैंने महापुरुष के चरणों में कितना अपराध किया। गुरुजनों से सुना था कि 'वैष्णवेर क्रिया-मुद्रा विज्ञे ना बूझय।' मैं एक साधारण बालक होते हुए भी उनकी समालोचना करने लगा था। लगता है ये अन्तर्यामी महापुरुष मेरे मन की अवस्था देखकर ही इस वेश में यहाँ आये हैं। महापुरुषों की अवस्था और उनका भाव, वेशभूषा और क्रिया-मुद्रा का जानना मेरे समान अज्ञ व्यक्ति के लिए असम्भव है। यही रामदास बाबाजी जिन्हें कीर्तन के समय एक रूप में देखा था, अब एकदम दूसरे रूप में दीख रहे हैं। ये महापुरुष जब कीर्तन करेंगे, न जानें किस अपूर्व भाव का मन में विकास होगा। मेरे भाग्य में वह शुभ दिन

कभी होगा या नहीं प्रभु जानें या ये महापुरुष।' इस प्रकार के भाव मन में उठ रहे थे और अनुताप-पीड़ित हृदय से मन ही मन दूर से उन्हें बार-बार प्रणाम कर रहा था। मैंने, इस विचार से कि ननीदादा इनके शिष्य हैं और मेरे मन के संकल्प विकल्पों को जानकर उन्हें दुःख होगा, उनसे कुछ न कहने का निश्चय कर रखा था, पर मेरे मन में इतना अनुताप बढ़ गया कि मुझसे अब न रहा गया। व्याकुल हो ननीदादा से सारी बातें कह दीं। ननीदादा मेरी बात सुनकर बोले-'भाई, तुम बालक हो, बाबाजी महाशय की महिमा नहीं जानते। इसीलिए तुम्हारे मन में ऐसे विचार आते हैं। सामान्य जीवन मुक्त-अवस्था-सम्पन्न साधक को जब किसी भी बाह्य विषय का संस्पर्श सम्भव नहीं है और वह पद्मपत्र पर जल की बूँद के समान निर्लिप्त रहता है तो बाबाजी महाशय के सम्बन्ध में क्या कहूँ? घोर नास्तिक, दुराचारी और पाषण्डी भी इनके भक्ति-प्रभाव कीर्तन-भाव और प्रेम आदि को देख विमुग्ध हो जाते हैं। इनकी उदारता, दया, अदोषदर्शिता आदि को देख ऐसा लगता है कि साक्षात् नित्यानन्द हों। तुमने इनमें दोष-दृष्टि कर बड़ा अन्याय किया, पर यह निश्चय जानना कि ये किसी का अपराध ग्रहण नहीं करते। मेरा विश्वास है कि तुम्हें इस अपराध से मुक्त करने के लिए ही इस दीनवेश में यहाँ आये थे। चिन्ता न करो। कातर हृदय से भक्ति पूर्वक इनके श्रीचरणों में दण्डवत् प्रणामकर क्षमा माँगो। तुम्हारा सारा पाप मिट जायेगा। परम दयालु प्रभु की कृपा से परम शान्ति लाभ करोगे।' ननीदादा की अभयवाणी से आश्वासित हो मैंने बाबाजी महाशय के श्रीचरणों में दण्डवत् प्रणाम कर मन ही मन क्षमा-प्रार्थना की।

इधर ठाकुर का भोग हो गया। निमन्त्रित नवद्वीपवासी वैष्णव आ गये। पंगत आरम्भ हुई। मैंने एक व्यक्ति से पूछा 'आज मठ में वैष्णव-सेवा किस उपलक्ष में हो रही है?' उन्होंने कहा 'कई दिनों से नवद्वीप-वासी बहुत से वैष्णवों के साथ महाप्रसाद के सम्बन्ध में कुछ विचार चल रहा था। बाबाजी महाशय कहते 'कृष्ण को निवेदित अन्नादि जो कुछ भी हो उसे महाप्रसाद जानकर ग्रहण करना चाहिए। महाप्रसाद स्पर्श दोष से दूषित नहीं होता। उसे दूषित मानने से अपराध होता है। इस सम्बन्ध में अनेकों शास्त्र-प्रमाण हैं।' वैष्णवगण कहते 'वे सब प्रमाण केवल अन्नक्षेत्र श्रीजगन्नाथ धाम में श्रीजगन्नाथदेव के महाप्रसाद से सम्बन्ध रखते हैं। श्रीक्षेत्र में शुचि-अशुचि, गृही-उदासी, ब्राह्मण, आदि का कोई विचार नहीं। यह विधान दूसरी जगहों के लिए नहीं है।'

बाबाजी महाशय कहते, 'इसका मतलब यह है कि श्रीजगन्नाथ देव का भोग ही महाप्रसाद है, अन्यत्र लगाया हुआ भोग प्रसाद नहीं है।' वैष्णवगण इसका समर्थन करते, पर बाबाजी महाशय कहते, 'कोई साधारण लोग यदि ऐसा कहते तो मुझे आपत्ति नहीं थी, पर आप लोग कृष्णोपासक हैं, इसलिए मेरा आपसे कुछ निवेदन है। यह बताइए, महाप्रसाद का क्या अर्थ है?'

वैष्णवगण कहते—'भगवान् जिस वस्तु को ग्रहण करते हैं और जिसमें भगवदधरामृत का संचार होता है, उसे महाप्रसाद कहते हैं।'

बाबाजी महाशय कहते—'बड़ी सुन्दर बात है। पर यह बताओ कि श्रीधामपुरी और श्रीजगन्नाथदेव को छोड़ अन्य किसी स्थान में अन्य किसी विग्रह को जो भोग लगता है, उसे क्या वे ग्रहण नहीं करते और उसमें उनके अधरामृत का संचार नहीं होता? आप अपने ही इष्टदेव श्रीनारायण, राधा-गोविन्द और निताइ-गौरांग को भक्ति-श्रद्धा-पूर्वक जो भोग अर्पण करते हैं उसकी क्या सार्थकता है? उसे यदि वे ग्रहण ही नहीं करते तो भोग लगाने का क्या प्रयोजन? और यदि करते हैं तो उनके अधरामृत में स्पर्श-दोष कैसे लग सकता है? श्रीजगन्नाथ धाम सार्वजनीन है। जगन्नाथजी का महाप्रसाद वस्तु-शक्तिमत् है, अर्थात्-भक्त-अभक्त, उपासक-अनुपासक, छोटे-बड़े सभी जगन्नाथ के महाप्रसाद को महाप्रसाद के रूप में मानने के लिए बाध्य हैं। परन्तु आप लोग अपने इष्टदेव को जो भोग लगाते हैं, वह भक्ति-शक्तिमत् है। इसे सर्वसाधारण न भी माने, पर आप लोग जिनके ये इष्ट हैं या जो इनके उपासक हैं यदि इसे महाप्रसाद न मानें तो क्या अपराध न होगा? और ऐसी स्थिति में क्या यह

स्वीकार करना न होगा कि ठाकुर भोग ग्रहण नहीं करते और इसलिए हम लोग अमनिया अथवा अनिवेदित वस्तु ग्रहण करते हैं?' इस प्रकार का तर्क तीन-चार दिन से चल रहा था। अन्त में वैष्णवों ने इनका मत मान लिया। इसीलिए आज यह महोत्सव हो रहा है।'

पंगत के बाद बाबाजी महाशय ने यथायोग्य सादर संभाषण, दण्डवत्-प्रणाम आदि कर वैष्णवों को विदा किया। तत्पश्चात् स्वयं अपने लोगों को साथ लेकर प्रसाद पाने जा रहे थे, उस समय उन्होंने पूछा-'राम कहाँ है?' किसी ने कहा-'वे खिन्न होकर बड़ाल घाट पर बैठे हैं।'

बाबाजी—क्यों अभी तक बैठा है? उसे महाप्रसाद के लिए बुला लाओ।

वह द्रुतगति से रामदास बाबाजी महाशय के पास जाकर लौट आया और कहा-रामदादा न जाने बैठे-बैठे क्या सोच रहे हैं और आँखों से छल-छल आँसू बहा रहे हैं। मैंने कितनी बार पुकारा पर उन्होंने कोई उत्तर न दिया।

बाबाजी—हूँ, मुझसे रुष्ट हो गया है। अच्छा मैं जाता हूँ।

इतना कह उन्होंने सदर दरवाजे पर जा 'रामा' कहकर जैसे ही गगन-भेदी स्वर में आवाज दी, रामदादा सिर नीचा किये हुए आकर उपस्थित हुए। आते ही उन्हें प्रेमपूर्वक आलिंगन कर वे बोले-'क्या बात है? मैंने डाँटा है, इसलिए रुष्ट है। 'जेइ जन कृष्ण भजे से बड़ चतुर।' सब ओर लक्ष्य रखने और सबका समन्वय करने का नाम है चतुरता। भजन-साधन करने में भी मन-वचन-कर्म से इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि किसी को किसी प्रकार का उद्वेग न पहुँचे। जब एकमात्र कृपा ही हमारा संबल और साधन-भजन का मूल है तो जिस प्रकार से भी हो हमें चेष्टा करनी चाहिए कि किसी भी प्राणी को उद्वेग न हो। मुख्य बात यह है कि भगवत्पथ के पथिक को गीता के इस श्लोक का सदा ध्यान रखना चाहिए-यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः। हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः।' इस प्रकार का मधुर उपदेश करते हुए उनका हाथ पकड़कर ले गये और अपनी बाईं ओर बिठाकर महाप्रसाद सेवन करने लगे। आहा! गुरु-शिष्य का ऐसा मधुर भाव और ऐसी प्रीति! प्रसाद लेते-लेते जो वस्तु उन्हें अच्छी लग रही थी वे उसे रामदास बाबाजी महाशय की पत्तल पर रख रहे थे। कैसा अमृतमय वात्सल्य!

सब प्रसाद पाने बैठ गये। हम भी बाबाजी महाशय की आज्ञा से उनके साथ परमानन्द पूर्वक महाप्रसाद सेवन करने लगे। महाप्रसाद ग्रहणकर सब लोग विश्राम करने लगे। हम भी उन्हें दण्डवत् प्रणाम कर घर लौट आये।

श्रीश्रीहरि-सभा

श्रीधाम नवद्वीप की हरिभक्ति-प्रचारिणी सभा एक प्रसिद्ध स्थान है। पूज्यपाद पण्डित-प्रवर वैष्णव-चूड़ामणि श्रीगौरगतप्राण महात्मा व्रजनाथ विद्यारत्न इसके प्रतिष्ठाता थे। बाहर के लोग इसके पूरे नाम से अवगत नहीं हैं। केवल हरिसभा के नाम से इसे जानते हैं। सभा का प्रथम स्थापन और श्रीमन्महाप्रभु की श्रीमूर्ति का आविर्भाव एक अलौकिक कहानी है। जिस समय की यह घटना है उस समय शाक्त और शैवों के अत्याचार से श्रीधाम नवद्वीप में गौरांग-विग्रह और महाप्रभु के मत का प्रायः लोप हो चुका था। उस समय इन महात्मा के कातर क्रन्दन से प्रकट हो श्रीमन्महाप्रभु ने अपने धर्म की रक्षा की थी। बाबाजी महाशय सदा ही हरिसभा और उस मूर्ति की चर्चा करते-करते आत्म-विस्मृत हो जाते थे। वे कहा करते-'जब मैं श्रीमन्महाप्रभु का ध्यान करने बैठता हूँ तो उनकी वही हरिसभा वाली मूर्ति मेरे सामने आ जाती है। उस नव-नटवर-वपु ने मेरे नेत्र-मन-प्राण सब चुरा लिए हैं। और किसी भाव की मूर्ति मुझे इतना आकर्षित नहीं कर सकी है।' इस स्थान के स्वत्वाधिकारी और वर्तमान सेवाइत उक्त विद्यारत्न महाशय के पौत्र श्रीयुत शितिकण्ठ भट्टाचार्य गोस्वामी हैं। श्रीमन्महाप्रभु के साथ इनका व्यवहार देख ऐसा लगता है जैसे ये उनके नित्य-परिकर हों। ये श्रीमहाप्रभु को छोड़ और कुछ जानते ही नहीं। इन्हें जो कुछ कहना-सुनना होता है उन्हीं से कहते हैं। किसी-किसी

नैमित्तिक उत्सवादि के उपलक्ष में जब कोई विशेष असुविधा या अव्यवस्था का सामना करना पड़ता है तो महाप्रभु के सामने कुपित होकर कहते हैं-'देखो! यदि यह कार्य न हुआ या किसी प्रकार की असुविधा हुई तो मैं तुम्हारा यह उठा हुआ दाहिना हाथ खींच कर नीचे कर दूंगा। यदि भला चाहो तो ठीक से व्यवस्था करा दो।' भक्त के विशुद्ध भाव से बाध्य हो प्रभु जैसे डरते-डरते शीघ्र उस कार्य का समाधान कर देते हैं। एक दिन किसी उत्सव के उपलक्ष में बहुत से लोग महाप्रसाद पाने बैठे। तभी आकाश में घनघोर बादल छा गये। सब लोग हताश हो कहने लगे-'बाप रे! अब कैसे होगा? ऐसे बादल छाये हैं कि मालूम होता है एक मुहूर्त में प्रलय हो जायेगी।' उसी समय शितिकण्ठ दादा आरक्त नयन और कम्पान्वित कलेवर के साथ महाप्रभु की पूजा का पात्र हाथ में ले उनसे कहने लगे-'देखो, एक भी बूँद जल पड़ा तो इनसे तुम्हारा सिर फोड़ दूँगा।' आश्चर्य! देखते-देखते न जाने किधर से एक हवा का झोंका आया और बादलों को उड़ा ले गया। आकाश साफ हो गया, उत्सव निर्विघ्न हो गया। इस प्रकार की घटनाएँ उनके जीवन में बहुत बार हुईं।

बहुत दिनों से बाबाजी महाशय के साथ उनका भ्रातृभाव था। वे बाबाजी महाशय को दादा कहा करते और बाबाजी महाशय छोटे भाई के समान उनसे स्नेह करते। अर्थादि के अभाव या अन्य कारणों से श्रीमन्महाप्रभु की सेवा में कुछ असुविधा होने लगी तो एक दिन शितिकंठदादा बाबाजी महाशय के पास आकर बोले-'देखिए दादा, मुझसे अब महाप्रभु की सेवा नहीं चल पा रही है, आप लोग जैसी इच्छा हो करें।'

बाबाजी—चिन्ता की क्या बात है? जिनकी सेवा है वही चला रहे हैं और चलायेंगे। हम लोग तो निमित्त-मात्र हैं न।

शिति०—निमित्त-मात्र होने से भी सामयिक चिन्ता और चेष्टा ने मुझे बहुत विकल कर रखा है।

बाबाजी—अच्छा, क्या करने से तुम निश्चिन्त हो सकते हो?

शिति०—मेरा सम्पूर्ण भार अर्थात् महाप्रभु और उनके संसार का सारा भार आपको उठाना होगा। मैं आपका छोटा भाई हूँ, मुझसे जो कुछ भी करने को कहेंगे, करूँगा।

बाबाजी—तो ठीक है। निताइचाँद की इच्छा से आज ही से तुम्हारा सारा भार मैंने लिया। तुम निश्चिन्त हो महाप्रभु की सेवा का सुप्रबन्ध करो।

शिति०—केवल मुँह से कह देने से मुझे शान्ति न होगी। ऐसी लिखा-पढ़ी हो जानी चाहिए कि मैं, आप और सब लोग उससे बँध जायें।

बाबाजी महाशय ने कहा—'ऐसा करने से तुम्हें शान्ति मिले तो ऐसा ही करो' और श्रीहरि मजूमदार महाशय से उसी समय एक मसविदा तैयार करने को कहा।

एक रुपये का स्टाम्प-कागज मँगाया गया। सब लोग नानारूप मसविदा बनाने लगे। एकमत होकर कुछ स्थिर न कर सके। तब इन्होंने उपयुक्त मसविदा तैयार करा दिया। लिखा-पढ़ी होने लगी। माघी पूर्णिमा के दिन इन्होंने संकीर्तन लेकर हरिसभा जाने का निश्चय किया और शितिकंठ दादा से कहा-'भाई! तुम्हारी हरिसभा में नवद्वीप के जो बालक संकीर्तनादि करते हैं उन्हें बुला लो। आज सब संकीर्तन करते-करते हरिसभा जायेंगे।' सबको बुला लिया गया। तब इन्होंने किशनदास ब्रजवासी को बुलाकर कहा, 'देखो, ये जितने बालक हैं, इन्हें सबको वृन्दावनी धोती-चादर पहना दो। धोती-चादर सब गुलाबी रंग की हों। ब्रजवासी ने अपनी और दूसरी दूकानों से धोती-चादर खरीद कर सबको पहना दीं। बीस जोड़ा धोती-चादर खरीदे गये। महाप्रभु और अन्यान्य लोगों के लिए भी नये वस्त्र मँगाये गये। सेवा के लिए फल-मूल और अनेक प्रकार की व्यवस्था की गई। खूब धूमधाम से कीर्तन के साथ हरिसभा पहुँचे। पहले श्रीमन्महाप्रभु के निकट बहुत देर तक संकीर्तन और आत्म-निवेदन किया। फिर अपने साथियों को उपदेश करने के बहाने कहने लगे-'यदि कोई मुझसे प्रेम और भक्ति करना चाहे तो सब मन से इन महाप्रभु को भजे, इनकी सेवा करे। मैं इनके चरणों में सदा के लिए बँध चुका हूँ।' इस प्रकार के वाक्यों द्वारा हरिसभा में अपने सदा के लिए रहने का इंगित कर, इन्होंने जैसे ही कीर्तन समाप्त किया, माता ठकुरानी (शितिकंठ दादा

की माँ) आ गईं। इन्होंने झट उनके चरण पकड़ कर कहा, 'माँ, मैं आपकी सन्तान हूँ। आज से श्रीमन्महाप्रभु के संसार का जितना भार है, मैंने अपने ऊपर ले लिया है। जब तक मैं जीवित हूँ शिति को कोई चिन्ता न करनी होगी। आप अपनी सन्तान जानकर निःसंकोच भाव से मुझसे जो भी आवश्यकता हो, कहिएगा। महाप्रभु के संसार के सम्बन्ध में जिस समय जैसी आवश्यकता हो, मुझे बताइयेगा, मैं उसकी पूर्ति करूँगा।'

इनके ये शब्द सुन वात्सल्यमयी माँ डबडबाये नेत्र और गद्गद कण्ठ से इनके मस्तक पर बायाँ हाथ रख कर बोलीं-'बाबा, चिरंजीवी हो, मेरा शितु निराश्रय था। उसे तुम्हारा आश्रय मिल गया। दोनों भाई मिलकर परमानन्द पूर्वक गौरांग की सेवा करो। मैं अपनी वृद्धावस्था में यह देखकर सुखी होऊँ। बाबा, गौर मेरा प्राणधन है, मेरी अन्धे की लकड़ी है। शितु ने तुम्हारे हाथों सौंप दिया है। देखो, मन में कोई कष्ट न हो। इस अमूल्य रत्न की यत्न पूर्वक सेवा कर स्वयं सुखी हो और जगत् को सुखी करो। मैं देख-सुन कृतार्थ होऊँ।' वात्सल्य-मूर्ति, भक्तिमती माँ के प्रेमपूर्ण और सारगर्भित आशीर्वाद को सुन उपस्थित भक्त अधीर हो रोने लगे। ये साश्रुगद्गद कण्ठ से बोले-'माँ, आप आशीर्वाद दीजिए जिससे गौरांग में मेरी प्रीति हो, मैं और क्या कहूँ? जब तक जीवित रहूँगा शितु को किसी प्रकार की चिन्ता न करनी होगी। गौर ने जब अंगीकार किया है, जब तक वे स्वयं ही न भगा दें, मैं यहाँ से न जाऊँगा।'

बाबाजी महाशय ने श्रीमन्महाप्रभु की सेवा की परिपाटी जान ली। एक ब्राह्मण पुजारी रखा गया। नित्य कोई पन्द्रह रुपये का खर्च होने लगा। आनन्द की सीमा न रही। पहले ही कहा जा चुका है कि इस यात्रा में बाबाजी महाशय कल्पतरु के समान हो गये थे। लोग इनसे तरह-तरह की प्रार्थना करते थे- कोई माता-पिता के श्राद्ध के लिए और कोई अपना ऋण चुकाने के लिये जब इनसे आकर प्रार्थना करता, तो ये तुरन्त फणि या गोविन्ददा को बुलाकर उनके हाथ में जो कुछ भी रहता उसे देने का आदेश कर दिया करते। वे भी इनके आदेशानुरूप आचरण कर इन्हें सुख पहुँचाते।

हरि सभा की लिखा-पढ़ी हो गई। पर न जाने क्यों इन्होंने रजिस्ट्री करने में आपत्ति की और नानारूप वाक्यों से सबका मुँह बन्द कर दिया। हरि सभा में प्रवेश करते ही वहाँ से भेंट की प्रथा उठा दी। इसके अतिरिक्त भेंट के सम्बन्ध में लोगों से अपना मत प्रकट करते हुए कहने लगे-जिस-जिस मन्दिर में भेंट चढ़ानी पड़ती है, वहाँ की वार्षिक भेंट का खाता ले आओ। मैं झोला कन्धे पर रखकर स्वयं भिक्षा करूँगा और मन्दिरों का अभाव दूर करूँगा, जिससे साधारण लोग बिना भेंट-पूजा के अपने प्रिय ठाकुर का दर्शन कर मन-प्राण तृप्त कर सकें। इस प्रकार हरि सभा और अन्यान्य मन्दिरों की व्यवस्था को सब प्रकार से भक्त और भगवान् के अनुकूल बनाने का नाना प्रकार से प्रयत्न करने लगे।

एक दिन पोड़ामांतला होकर आ रहे थे। उसी समय अकस्मात् शितिकण्ठ दादा से भेंट हुई। उन्होंने पूछा-दादा, आप कहाँ गये थे?

बाबाजी—भाई, महाप्रभु की विलासभूमि श्रीधाम नवद्वीप में भ्रमण कर सकता तो बड़े भाग्य की बात थी, पर हम लोगों के भाग्य में वह भ्रमण कहाँ? हम तो-

अर्थ लाभ एइ आशे, कपट वैष्णव वेशे
भ्रमिया बेड़ाई स्थाने-स्थाने।
लब्धपद प्रतिष्ठार आशा करि अनिवार,
भजनेर करिमात्र भाने॥

सोचा था कि शायद महाप्रभु ने मुझे अपनी सेवा में स्वीकार कर लिया है। पर कहाँ, जब तक आत्म-सुख-लालसा है, तब तक सेवा कहाँ, और जब सेवा ही न बनी तो यह जीवन किस काम का? जीना न जीना समान है।

इस प्रकार की आत्म-दैन्य-सूचक उपदेशपूर्ण बातें कहते-कहते वे शितिकण्ठ गोस्वामी के साथ राधारमण बाग आ गये। कृष्णदास ने जल लाकर चरण धोये। दोनों आसन पर बैठ गये। गोविन्ददादा ने नाना प्रकार के फल-मिष्ठान्न आदि लाकर सामने रखे। इन्होंने उसमें से शितिकण्ठ दादा को देने को कहा।

शितिकण्ठदादा बोले-'दादा, मेरी महाप्रभु की सेवा अभी तक नहीं हुई है, इसलिए मैं कुछ न ले सकूँगा।'

बाबाजी—अरे, तेरे महाप्रभु सदा तेरे हैं। वे तेरे प्रेम में बँध चुके हैं। प्रसाद पाने के बाद सेवा करना।

इतना कह अच्छे-अच्छे पदार्थ उनकी पत्तल पर रखने लगे। शितिकण्ठ दादा ने थोड़ा ही देने का अनुरोध किया। ये बोले-'भाई, तुम्हारे खाने से मेरी जितनी तृप्ति होती है, उतनी अपने खाने से नहीं होती। तुम्हारे द्वारा बहुत से महत्कार्य होने को हैं। दीर्घ जीवन लाभ कर महाप्रभु की सेवा करो, महाप्रभु के चरणों में यही मेरी प्रार्थना है। जो कोई भी मेरा होगा, तुम्हारी सब प्रकार से सहायता करेगा। मेरे साथ इतने लोग हैं। ये तुम्हारी मर्यादा की रक्षा न कर सकेंगे। इसलिए तुम इनमें शामिल न होकर बाहर ही बाहर रहना। अभी-अभी श्रीधाम के सब पंडित, ब्राह्मण और गोस्वामी लोगों को बुलाना है। तुम अविलम्ब महाप्रसाद ग्रहण कर चले जाओ।'

शितिकण्ठ दादा ने कृष्णदास से कहा-कृष्ण, तुम सब पण्डित-मण्डली और गोस्वामी-गण को बुला लाओ तो।

बाबाजी महाशय ने कहा—'उसके द्वारा यह कार्य हो सकता तो मैं उसी से कहता। वह कुछ दूर जाकर लौट आयेगा और कहेगा-कोई नहीं मिला। इसलिये तुम्हें स्वयं ही जाना होगा।'

शितिकण्ठ दादा यथासमय सब पण्डित-मण्डली और गोस्वामीगण को निमन्त्रण देने चले गये। बहुत से पण्डित दूसरी जगह निमन्त्रित होने के कारण न मिल सके। दस-बारह व्यक्ति जो मिल सके, आ गये। बाबाजी महाशय ने सबको बड़े सम्मान के साथ बिठाया और कुछ देर भगवत्प्रसंग कर यथायोग्य प्रणामी दे सबको विदा किया।

इधर शितिकण्ठ दादा की माता ठाकुरानी हरिसभा से महाप्रभु का प्रसाद और चरणामृत लेकर आई। इन्होंने माँ को देखते ही बड़े आदर के साथ प्रणाम किया। जब प्रसाद चरणामृत ग्रहण कर चुके तो माँ ने पूछा-बाबा, महाप्रभु की सेवा का कैसे क्या होगा?

बाबाजी—माँ, शितु द्वारा ही सब कुछ होगा। न जाने कितने लखपती तुम्हारे शितु के चरणों में लोटेंगे। चिन्ता की क्या बात है? मैं सदा के लिए हरिसभा से बँध गया। जो भी मेरा है वह कभी हरिसभा को या शितु को मुझसे भिन्न न समझेगा।

इस प्रकार के वार्तालाप से माँ को सन्तुष्ट कर विदा किया। फिर शितिकण्ठ दादा के साथ एकान्त में जो-जो बातें की, उनका वर्णन कौन करे?

बाबाजी महाशय ने नीलांचल, नवद्वीप, वृन्दावन आदि स्थानों में परिभ्रमण कर जो-जो लीलाएँ की हैं और जो-जो भगवत्प्रसंग, तत्वालोचना आदि किये हैं, वे अपार, अनन्त और परम गम्भीर हैं। उनका प्रकृत मर्म जानना मेरे जैसे क्षुद्र जीव के लिए असम्भव है। उसकी आशा भी करना भक्त-समाज में उपहास का पात्र बनना है। फिर भी आत्म-शोधन के हेतु मैंने जो कुछ आलोचना की है उसमें क्रम-भंग, असंलग्नता, असामञ्जस्य अप्रासंगिकता आदि दोष मौजूद हैं। उस दोष-रूप मालिन्य का इस निर्मल 'चरित-सुधा' में संस्पर्श है। महानुभाव पाठक-पाठिकाओं से प्रार्थना है कि अपने गुणों से उनका परिवर्जन या संशोधन कर सुधा का आस्वादन करें, जिससे हम लोग अपने परिश्रम को सफल और जीवन को धन्य मान सकें।

नाना देशे भ्रमि प्रभु जे जे लीलाखेला।
आचरण करि सब जीवे शिक्षा दिला॥
सेइ सब लीला हय अपार अनन्त।
सहस्र बदने वर्णि नाहिं पाय अन्त॥
जीव क्षुद्रबुद्धि मुञि की पारि वर्णिते।
एक कणा स्पर्श करि आपना शोधिते॥
आकाश अनन्त ताते जइछे पक्षिगण।
जार जत शक्ति तत करे आरोहण॥
तइछे आत्म पवित्रिते जे किछु लिखिलूँ।
सागरेर माझे जेन एक कण छुइलूँ॥
आमि लिखियाछि एइ मिथ्या अभिमान।
कभु जेन हृदयेते नाहिं पाय स्थान॥
काष्ठ पुत्तलिका सम आमार शरीर।
मन बुद्धि चित्त सदा चंचल अस्थिर॥

एकमात्र महत्कृपाशक्तिर प्रभावे।
आपणि हइल जाहा किछु आविर्भावे॥
नवद्वीप दादार पद हृदयेते धरि।
समाप्ति करिलूँ लीलाय नमस्कार करि॥

★ ★ ★ ★ ★

सद्भक्तानां परमकरुणावारिधीनामियं हि,
आचार्याणां सतकृपया यत्नतः संग्रहाद्वा।
नानालीलाजलधिमथनादुत्थिता सारगर्भा,
सर्वेषां वै 'सुचरित-सुधा' चेतसां प्रीतयेऽस्तु॥१॥
स्वतोऽमृतकथेयं हि सुधानिष्यन्दिनी शुभा
लेखनीस्पर्शदोषात्तु नानादोषसमाश्रिताः॥२॥
दोषा ह्यपि गुणायन्ते सुजने पतिता यतः।
यथा मेघे स्थितं स्वादु वारिधेर्लवणं जलम्॥३॥
गुरुप्रसादात् सुजनप्रसादात्
महत्प्रसादात् भगवत्प्रसादात्।
गौरावधूतस्य कृपाप्रसादात्
समाप्तमाप्तं हि सुधा-चरित्रम्॥४॥

परिशिष्ट

कुछ लीला-कथाएँ जो यथासमय प्राप्त न हो सकने के कारण ग्रन्थ में सन्निवेशित न हो सकीं।

मंगलाचरण

सन् १३०५ या १३०६ में श्रीश्रीमद् बाबाजी महाशय नवद्वीपदादा, प्रेमदादा, कुंजदादा, ललितादासी, रसरंगिनी सखी इत्यादि पाँच-छह लोगों के साथ राधारमण कुंज मठ में रहते थे। झाँझपीटा मठ की सेवा का भार कुसुममंजरीदासी सखी के ऊपर था। राधारमण कुंज में एक सेर चावल की रसोई बनती थी, जिसका श्रीराधारमणदेव को भोग लगता था। बाबाजी महाशय की सेवा के पश्चात् बाहर के बहुत से भक्त आकर अधरामृत-पान करते थे। इसलिए और सब लोग झाँझपीठा मठ जाकर महाप्रसाद-सेवन करते थे। वहाँ की वैष्णव-सेवा समाप्त हो लेती थी तब कुसुममंजरी अधरामृत के साथ एक परोसा लेकर कुंजमठ आती थीं और तीनों सखियाँ मिलकर उसका सेवन करती थीं। राधारमण कुंज में एक कतार में तीन फूस की कुटियाँ थीं, जिनमें से एक में ठाकुर रहते थे, दूसरे में रसोई घर था और तीसरे में बाबाजी महाशय रहते थे। एक दिन बड़े तड़के ही स्नानादि समापन कर बाबाजी महाशय ललितादासी से बोले-'देख, मैं जगन्नाथ-दर्शन को जा रहा हूँ, जितनी जल्दी हो सका लौट आऊँगा। मेरी कुटिया में से जितनी सामग्री है बाहर निकाल देना। उसे धोकर खूब साफ कर देना। धूप आदि से धूपित कर देना। एक नया कुशासन, नये पात्र में घी का दीपक, एक नया कलम, कागज, एक पीतल या ताँबे के बर्तन में आलते की रोशनाई रखकर दरवाजा बन्द कर देना। मैं जब तक न आऊँ दरवाजा न खोलना। यह आदेश कर वे जगन्नाथ दर्शन को चले गये। ललितादासी ने आदेशानुरूप कार्य कर दरवाजा बन्द कर दिया। ये यथासमय लौट आये और कुटिया के भीतर जाकर दरवाजा बन्द कर लिया। नवद्वीपदादा आदि बहुत से लोग कोई एक अभिनव रत्न प्राप्त करने की आशा से बरामदे में प्रतीक्षा करते रहे। बारह बजे अकस्मात् दरवाजे पर कुछ शब्द हुआ। सब दरवाजे की ओर दौड़ पड़े। स्पर्श करते ही दरवाजा खुल गया। ये उदास भाव से आसन पर ही बैठे रहे। सब बड़े विस्मित हुए और इनके निकट जा पंखा आदि से सेवा-शुश्रूषा करने लगे। तब नवद्वीपदादा ने मुस्कराते हुए पूछा-'क्या प्राप्ति हुई?'

बाबाजी—मन में कई प्रकार के संकल्प उठे थे, पर प्रभु की इच्छा न हुई।

नवद्वीप—क्यों नही हुई?

बाबाजी—मंगलाचरण करते-करते ही श्रीगुरुदेव ने निषेध कर दिया।

नवद्वीप दादा—'क्या मंगलाचरण हुआ, देखूँ' कहकर कागज उठाकर पढ़ने लगे-

'जय जय नित्यानन्द वसु जाह्नवा जीवन।
जय जय श्रीगौरांग निताइरमण'। इत्यादि।

सब लोग निराश होकर बैठे रहे। आशा की थी कि इसके पश्चात् प्रेम-भक्ति-रस-सिद्धान्त-मूलक या लीला-विलास-संवलित किसी अमूल्य रत्न की प्राप्ति होगी। पर यह समझकर सब दुःखी होने लगे कि हमें अनधिकारी जानकर गुरुदेव ने निषेध कर दिया। नवद्वीपदादा आदि प्रमुख भक्तगण फिर से गुरुदेव का

आदेश प्राप्त करने के लिए बाबाजी महाशय से बार-बार अनुरोध करने लगे। बाबाजी महाशय बोले-'मैंने बहुत चेष्टा की, पर वे किसी प्रकार सहमत नहीं हैं। उन्होंने कहा-'प्रेम-भक्ति-रस-लीला-विलासादि सर्वसाधारण के लिए नहीं हैं। अधिकारी-अनधिकारी का भेद किये बिना उनका उपदेश करने से अनर्थ हो सकता है। ये सब चीजें गुरुदेव के मुख से ही सुनने की होती हैं, लिखकर पुस्तक रूप में प्रकाशित करने से नानारूप मत और नानारूप पन्थों की सृष्टि द्वारा उपधर्म की वृद्धि होने की बहुत आशंका है। जन-साधारण का वास्तविक उपकार होने की आशा बहुत कम है। इसीसे कहता हूँ कि किसी उपयुक्त पात्र में न्यस्त करो। तुम्हारी आशा फलवती होगी और जगत् का मंगल होगा।' इसलिए उनसे फिर अनुरोध करना ठीक न होगा।' यह सुन नवद्वीपदादा आदि सभी बहुत खिन्न हुए।

कंगाल सुरेन की कहानी

इस घटना के सम्बन्ध में सुरेनदादा ने इस प्रकार लिखा है-

मेरा नाम है सुरेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय। बाबाजी महाशय मुझे कभी 'कंगाली महाप्रभु' और कभी 'कलिर विप्र (कलयुगी ब्राह्मण)' कहकर पुकारते। मैं कुलीन ब्राह्मण वंश का हूँ। छोटी उमर में मेरी माँ का देहावसान हो गया। इसलिए मैं प्रारम्भ से ही एक प्रकार से निराश्रय सा रहा। चौदह वर्ष की उमर में कटक के प्रसिद्ध वकील श्रीयुक्त तिनकड़ी बंद्योपाध्याय महाशय की तीसरी कन्या से मेरा विवाह हुआ। ससुराल में रहकर अँगरेजी स्कूल में पढ़ने लगा। विवाह के दो वर्ष बाद बड़े बाबाजी महाशय का सदल-बल कटक शुभागमन हुआ। वे श्रीयुत कृष्णपालित के घर ठहरे थे। एक दिन दोपहर के समय मेरी परम पूज्या सास मुझसे बोलीं-'देखो बेटा, पुरी से एक महापुरुष आये हैं, तुम लोग दर्शन करने जाओगे क्या?' सुनते ही मैं और मेरे दादा (साढू) श्रीयुत नगेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय उनके दर्शन को गये। कृष्णबाबू का घर हमारी ससुराल के निकट ही था। वहाँ पहुँचकर देखा कि दुमञ्जिले पर एक बड़े हॉल में भक्त-मण्डली-परिवेष्टित एक महापुरुष बैठे हैं, जिनकी आजानुलम्बित भुजाएँ हैं, सुदीर्घ-स्थूलकाय-उज्ज्वल-श्याम कलेवर है और प्रेम-विगलित नेत्र। जो भी आता है उसे मधुर प्रेम-पूर्ण वाक्यों से सम्बोधन कर बिठा रहे हैं। उनकी सुधामय वाणी सुन ऐसा लगता है कि किसी ने ऐसी विनय की खान संसार में पहले कभी नहीं देखी होगी। उनकी भाषा जैसी सरल है वैसी ही मीठी भी। थोड़ी ही देर के उनके सत्संग से मेरे अत्यंत ताप-दग्ध प्राण भी शीतल हो गये। मैं दो घण्टे तक उनके पास बैठकर उस दिन उनसे विदा लेकर घर चला आया, पर मन न जाने कैसा हो गया। उस दिन और दिनों की भाँति पढ़ने में मन न लगा। कब फिर उनके दर्शन करूँगा, इसी चिन्ता से मन व्याकुल था। उनकी कृपा के प्रभाव से रात सपने में भी उस मधुर मूर्ति का दर्शन किया। बाद में पाँच-छह वर्ष उनके साथ रहकर मैंने नाना प्रकार के वेश और नाना प्रकार के रूप में उनके दर्शन किये, परन्तु उस शुभ दिन और शुभ क्षण उन्होंने जिस भाव से इस दीन पर कृपा कर मेरा जीवन सफल किया, वह आनन्दमूर्ति मेरे हृदय के पटल पर बराबर अंकित है। उस दिन से चौबीस-पच्चीस वर्ष तक न जाने कितने स्थानों में घूमा हूँ, क्या-क्या देखा है, और मेरे अपने जीवन में भी तब से न जाने कितने परिवर्तन हुए हैं, यहाँ तक कि एक पुत्र का पिता भी हो गया हूँ, पर बलिहारी उस कृपा की, एक मुहूर्त के लिए भी उस देव-मूर्ति को हृदय से हटाकर और किसी को स्थान न दे सका हूँ।

दूसरे दिन सबेरा होते-होते वहाँ जाकर देखा कि एक कमरे में नृत्य-कीर्तन हो रहा है। बाबाजी महाशय भाव में विभोर हो दरवाजे के निकट खड़े हैं। उनके दोनों नेत्रों से अविरल अश्रुधार बह रही है और बीच-बीच में शरीर पुलकित कम्पायमान हो रहा है। मेरे वहाँ पहुँचते ही मुझे उन्होंने बलपूर्वक आकर्षण कर और शक्ति-संचार कर भीतर जाने का संकेत किया। मैं यंत्रारूढ़ पुत्तलिका के समान निस्संकोच जाकर नृत्य करने लगा। इससे पहले मैं जानता भी न था कि संकीर्तन-सुख और नृत्य कैसा होता है। इस घटना के दो दिन बाद पतितपावन प्रभु ने अयाचित भाव से दीक्षा-मंत्र प्रदान कर इस दास को सदा के लिए खरीद

लिया। उस शुभ मुहूर्त में मानो मुझे नवजीवन प्राप्त हुआ। मुझे और कुछ कहना बाकी न रहा। मैं और नगेन दादा एक ही दिन दीक्षित हुए। उस दिन से ही श्रीगुरुदेव की कृपा से हम सत्संग में रहकर और सद्ग्रन्थों की आलोचना कर परमानन्द पूर्वक दिन व्यतीत करने लगे। बाबाजी महाशय यथासमय पुरी चले गये। फिर कब लौटकर आयेंगे और कब उनके दर्शन होंगे, इस उत्कंठा से मेरा मन अस्थिर रहने लगा।

आदरणीय बाबाजी महाशय और उनके साथियों का अप्राकृत, शुद्ध, सरल व्यवहार, उनका मन-प्राण-मत्तकारी 'निताइ गौर राधेश्याम। हरे कृष्ण हरे राम' नाम-गान, नवद्वीपदादा आदि वैष्णवों की सौम्यमूर्ति और उनका मधुर संभाषण, बार-बार याद आकर मेरे मन की दशा न जाने कैसी करने लगा। कभी-कभी ललितादीदी की अलौकिक गुरु-सेवा और अविचला भक्ति-निष्ठा की बात सोचने लगा, जिसकी तुलना किसी पतिव्रता साध्वी रमणी से भी नहीं की जा सकती।

कुछ दिन बाद एक बार फिर बाबाजी महाशय अपने साथियों के साथ कटक आये। इस बार वे श्मशान के निकट अकेले मकान में ठहरे। थोड़ी ही देर में यह संवाद कटक शहर में फैल गया। नित्य रात में आठ बजे के बाद मैं व नगेनदादा इनके सुधामय संग के लिए अपनी ससुराल से ढाई मील पैदल चलकर उस निर्जन स्थान में जाने लगे। सारी रात कीर्तनानन्द और सदालाप में कट जाती। कटक के स्कूल-कालेजों के दूसरे भी बहुत से छात्र इसी प्रकार शहर से आकर बाबाजी महाशय का संग-सुख उपभोग करते। आँधी-पानी में भी मैं और नगेनदादा बाबाजी महाशय के लिए नित्य दूध और लाई ले जाया करते। रात्रि के अन्तिम प्रहर में जब हम घर लौटते तो हृदय धक्-धक् करता रहता, क्योंकि हमें बड़ी सावधानी से घर की चहारदीवारी लाँघकर भीतर जाना होता। प्रायः भीतर से कमलादीदी (नगेनदादा की पत्नी) इस कार्य में हमारी सहायता कर दिया करतीं। जिस मकान में बड़े बाबाजी महाशय रहते, वह एक प्रकार से जंगल में ही था। उसके चारों ओर दूर तक कोई नहीं रहता था। एक दिन रात डेढ़ बजे बाबाजी महाशय प्रसाद पाने बैठे। उनके सामने एक बड़े पत्थर के थाल में भात और उनके चारों ओर दस-बारह कटोरियों और रकाबियों में नाना प्रकार के व्यंजन मिष्टान्न और फल थे। वे परिहास करते हुए मुझसे बोले-'तेरे ससुर तो बड़े अमीर हैं। उन्हें इतने बढ़िया-बढ़िया माल एक साथ खाते देखा है? हम हैं भिखारी, निताइचाँद के दास। देख, प्रभु की कृपा से कितने पदार्थ आये हैं।' मैंने मन ही मन कहा-'सचमुच इतने प्रकार के पदार्थ कहाँ से आये? किसी धनी व्यक्ति के लिए भी इतने प्रकार के पदार्थों का संग्रह करना कठिन है।' उस सुखमय रात्रि की बात और क्या कहूँ! उसकी तुलना में नव-दम्पत्ति के मिलन की शुभ-रात्रि का सुख भी नगण्य मालूम पड़ता है। रोज रात को घर लौटते समय हम लोग 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' गाते हुए जाया करते। तीन महीने तक बराबर हम रात में जागकर दिन में स्कूल कॉलेज करते रहे, पर उन्हीं शान्तिदाता प्रभु की कृपा से कभी भी हमें थकान या आलस्य नहीं आया। जिस दिन एकाएक बाबाजी महाशय वहाँ से चले गये, हम इतने दिनों के सुखभोग के पश्चात् उनके विच्छेद जनित दुःख से अधीर हो उठे।

हमारे दीक्षा-ग्रहण के थोड़े ही समय बाद हमारे श्वशुर के घर में एक छोटी बालिका ने रात में स्वप्न देखा कि एक ब्राह्मण आकर उससे कह रहा है-'देख, तेरे मकान में अमुक स्थान पर एक बाल-गोपाल मूर्ति हैं। उन्हें उठाकर उनकी पूजा करने को कहना।' उसी रात नगेनदादा को स्वप्न में पता चला कि घर में एक ठाकुर आनेवाले हैं। दूसरे दिन बालिका के बताये हुए स्थान पर थोड़ी सी ही मिट्टी हटाने से वह मूर्ति निकली। हमारे श्वशुर महाशय ने बड़ी धूमधाम से उसकी प्राण-प्रतिष्ठा कराई और दोमंजिले पर एक नये कमरे में उसकी स्थापना कराई। नगेनदादा विधि पूर्वक गोपाल की सेवा करने लगे। कुछ दिनों के बाद, जिस विधि और यत्न से पूजा चल रही थी, उसमें थोड़ी-थोड़ी कमी आने लगी। एक दिन नगेनदादा को विशेष कार्य से अपने घर जाना पड़ा। उस दिन से पूजा मुझे करनी पड़ी। दीक्षा लेने के बाद मेरा और नगेनदादा का मछली खाना आप ही छूट गया था। मैंने अपने बालक स्वभाव

से एक दिन बाबाजी महाशय से पूछा-'आप लोग मत्स्यादि का प्रयोग क्यों नहीं करते ?'

उन्होंने पहले परिहास करते हुए कहा-'हम चटोरपना करेंगे तो रोज-रोज कौन हमें वह सब लाकर देगा।' फिर कुछ गंभीर होकर बोले-'हम लोग कृष्ण-प्रसाद के सिवा और कुछ नहीं लेते। इस प्रकार की तमोगुण सम्पन्न चीजों का श्रीकृष्ण को भोग नहीं लगता। इसके अतिरिक्त विचार कर देखो कि संसार में इतने प्रकार के पदार्थ होते हुए केवल रसना की तृप्ति के लिए जीव-हिंसा करना उचित है क्या ? तामसी आहार करने से उत्तरोत्तर तमोगुण की वृद्धि होती है। इस प्रकार के आहार से देह की पुष्टि हो सकती है, पर उस देह से भगवद्भक्ति नहीं हो सकती। उससे इस पथ में बाधा ही हो सकती है।'

नगेनदादा की स्त्री कमलादीदी और मेरी पत्नी पहले से ही गोपाल की सेवा में सहायता करती थीं। यद्यपि इन्होंने अभी दीक्षा नहीं ली थी, इनकी इस मूर्ति की सेवा करने और नवद्वीपदादा के उपदेशानुसार सद्ग्रन्थादि पाठ करने से मांसादि से रुचि हटने लगी और अन्त में इन्होंने मांस खाना बिलकुल छोड़ दिया। यह देख-सुनकर घर में और आस-पड़ोस में एक बड़ा आन्दोलन चल पड़ा। हम लोग एक प्रकार से सब लोगों के संग और लौकिक आचार का परित्याग कर श्रीमूर्ति और सद्ग्रन्थों का संग करते हुए शान्त और दीन भाव से जीवन-यापन करने लगे। पर घर के बाकी लोग हमें अपराधी की दृष्टि से देखने लगे, यहाँ तक कि स्नेहमयी माँ भी अपनी लड़कियों में इस प्रकार का परिवर्तन देख बहुत असन्तुष्ट हुईं। श्वशुर महाशय ने जब सुना कि उनकी दोनों लड़कियों ने बिना उनकी आज्ञा के मांस खाना छोड़ दिया है तो सुविज्ञ होते हुए भी एकदम प्रचण्ड मूर्ति धारणकर उन्होंने कमलादेवी को बुलाकर कहा-'अब फिर से मांस खाना शुरू कर दो, नहीं तो इस घर से चली जाओ।' कमलादीदी पिता की प्रथम आज्ञा का पालन करने में असमर्थ होने के कारण उनकी दूसरी आज्ञा का अवलम्बन कर पित्रालय का परित्याग करने की तैयारी करने लगीं। उस समय उन्हें अकेले जाते देख हमें बड़ा कष्ट होने लगा। इसलिए मैंने और मेरी पत्नी ने भी उनके साथ जाने का संकल्प किया और पहली बार इस बात का अनुभव किया कि मायिक जगत् के सम्बन्ध से धर्म-जगत् का सम्बन्ध कितना घनिष्ट होता है। थोड़ा इस ओर अग्रसर होते ही मुझे ऐसा स्पष्ट लगने लगा कि यह सब परमदयालु निताइचाँद की कृपा-लीला के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, यह घटना हमारे हित के लिए ही हो रही है और यह हमारे साधु-गुरु-संग-लाभ का एक सोपान है। उस समय मेरी और कमलादीदी की उम्र कोई १७-१८ वर्ष की होगी। कमलादीदी की दो बालिकाएँ थीं। हमारे गन्तव्य स्थान का अभी कुछ ठीक नहीं था, पर श्रीगुरु की कृपा से मन में दृढ़ विश्वास था कि जगन्नियन्ता का आश्रय ग्रहण किया है तो किसी प्रकार की विपत्ति नहीं आ सकती। मन में आया कि किसी प्रकार श्रीवृन्दावन में राधारानी के राज्य में पहुँच सकें तो हमें कोई चिन्ता न रहेगी। हमारे पास सिर्फ साढ़े छह रुपये थे। उससे दोनों बच्चों के खाने का सामान ले लिया। बाजार से लौटते समय अकस्मात् श्रीयुत् कृष्णचन्द्र पालित महाशय से भेंट हुई। उनसे शहर छोड़कर जाने का कारण संक्षेप में कह दिया। घर लौटकर श्रीगुरुपादपद्म स्मरण कर 'हा निताइ, जय निताइ' कहते हुए हम लोग घर से निकल पड़े। कटक में रहने वाले हमारे गुरु-भाई कैलाश, उदय, साधु, मदन, हृषीकेशदादा आदि सब बालक के समान रोते-रोते हमारे साथ कुछ दूर तक आये। कुछ लोग स्टेशन पर भी आये। हमने जाना कि हम लोग सब श्रीराधारमणदेव के संसार के लोग हैं, हमारे मायिक सम्बन्ध टूट गये हैं और हमारे सम्बल एकमात्र निताइचाँद हैं।

स्टेशन पहुँचते ही श्रीयुत् कृष्णबाबू वहाँ आ गये। प्रतीत हुआ कि करुणामय निताइचाँद ने हमारी सहायता के लिए उन्हें भेज दिया है। गुरु-भाइयों में से भी किसी-किसी ने साध्यानुसार हमारी आर्थिक सहायता की। कृष्णबाबू ने वह सब रुपया लेकर और बाकी रुपया अपने पास से लगा कलकत्ते तक का टिकट खरीद दिया। कलकत्ते आकर हम एक भक्त के यहाँ ठहरे। वहाँ से मैंने नगेनदादा को एक चिट्ठी लिखी। दूसरी चिट्ठी पुरी में बाबाजी महाशय के पास लिख

कर पुछवाया कि हम लोग वृन्दावन चले जायें या नहीं। दयामय प्रभु ने केवल इतना ही लिखा-'आपन इच्छाय जीव कोटि वांछा करे, कृष्णेर जेइ इच्छा सेइ फल धरे।'

परिस्थितिवश हमारा वृन्दावन जाना नहीं हुआ। नगेनदादा आकर कमलादीदी को साथ ले खुलना अपने मामा के यहाँ चले गये। वहाँ विजातीय संग के कारण नाना प्रकार की असुविधा होने लगी। इसलिये वे तीन महीने वहाँ रहकर वहाँ से सारा रास्ता पैदल चलकर पुरी गये और बाबाजी महाशय से सब वृत्तान्त कह सुनाया। उन्होंने कहा-'मेरी राय है कि तुम लोग एकमात्र जगन्नाथजी का आश्रय लेकर पुरी चले आओ।' नगेन दादा गुरु-वाक्य में दृढ़ विश्वास कर खुलना लौट गये और वहाँ से अपनी स्त्री और बच्चों को साथ ले हमारे पास कलकत्ते आये। मैं उस समय एन्ट्रेंस पास कर कलकत्ते के मेट्रोपोलिटन कॉलेज में दाखिल हो गया था। नगेनदादा ने कहा कि गुरुदेव शीघ्र गोदावरी की ओर जाने वाले हैं। उनके दर्शन के लिए मेरे प्राण छटपटाने लगे। मैंने कातर-भाव से अपने अभिभावक से आज्ञा माँगी। उन्होंने पुरी जाने के लिए आज्ञा दे दी। मैं और मेरी स्त्री सिर्फ दो कपड़े अपने साथ ले नगेनदादा के साथ पुरी के लिए रवाना हुए। हम सब बिना किसी सम्बल के पुरी में झाँझपीटा मठ पहुँच गये। वह मठ नरोत्तम ठाकुर महाशय का विरक्ताश्रम है। वहाँ स्त्रियों के रहने की व्यवस्था नहीं है। इसलिए हम लोगों को कुंडाईबेंटसाहि में एक कुटिया में आश्रय लेना पड़ा। सात-आठ दिन बाद हमें कलकत्ते लौट जाना था। पर बाबाजी महाशय का सुखमय संग छोड़कर कलकत्ते जाने को बिलकुल मन नहीं कर रहा था। वे बोले-'देख सुरेन, संसार में लौट जा और बाप-भाई के अनुगत रहकर यथासाध्य नाम-मन्त्र स्मरण किया कर। नहीं सारा भार निताइचाँद के ऊपर छोड़। अकेले वृन्दावन या नीलाचल में रहकर भजन कर। दोनों नावों पर पाँव रखने से कष्ट उठाना होगा।' परन्तु हाय! मैं गुरुदेव के दोनों आदेशों में से एक का भी पालन न कर सका। उस समय एकमात्र उनके संग-सुख के सिवा मेरे जीवन का और कोई लक्ष्य न था। व्रज का भजन कैसा होता है, यह भी नहीं जानता था। उनका संग-मात्र अच्छा लगता था। इसलिए कलकत्ते वापस न जाकर वहीं रह गया। हम सबका खान-पान किस प्रकार चलता था, गुरुदेव ही जाने। इतना अवश्य है कि एक दिन भी किसी प्रकार का अभाव नहीं हुआ। एक दिन नगेनदादा को बाजार जाते देख मैंने कारण पूछा तो वे बोले-'कुछ फीका महाप्रसाद है, नमक और मिर्च लेने जा रहा हूँ।' मैंने कहा-'दादा, महाप्रसाद स्वादिष्ट करके खाना है तो हमारा घर वापस चले जाना ही अच्छा।' यह सुनकर वे बहुत लज्जित हुए और बाजार नहीं गये। परम दयालु प्रभु की कृपा से महाप्रसाद की कृपा यत्किञ्चित हृदयंगम होने के कारण वह रूखा ही अच्छा लगने लगा। इस प्रकार बाबाजी महाशय के सुखमय संग में तीन महीने बीत गये। इसके बाद उनके आदेश से अकेले ही कलकत्ते लौट आया। वहाँ से नाम कटा कर कटक कॉलेज में भर्ती हो गया। वहाँ हृषीकेशदादा के साथ एक घर में रहने लगा। विचार यह था कि कॉलेज में पढ़ूँगा और बीच-बीच में बाबाजी महाशय एवं उनके साथियों का संग भी करूँगा। हृषीकेशदादा के साथ चैतन्य-चरितामृत आदि भक्ति ग्रन्थों का पाठ करने से मेरी अँगरेजी में रुचि कम हो गई। थोड़े दिनों बाद हृषीकेश दादा को वैराग्य हुआ और वे नौकरी छोड़कर पुरी चले गये। इस समय मैं अकेला रहता था और प्रायः नित्य संध्या समय बिहारी मठ में भक्तों का सत्संग करता था। कॉलेज बन्द होते ही पुरी या जहाँ कहीं बाबाजी महाशय होते थे, चला जाता था। इस प्रकार एक वर्ष बीत गया।

एक दिन अकस्मात् पुरी से तार द्वारा सूचना मिली कि बाबाजी महाशय को उन्माद हो गया है। सूचना पाते ही मानो सिर पर आकाश टूट पड़ा और चित्त बहुत व्याकुल हो गया, क्योंकि चिन्तामणिस्वरूप उन शान्तिदादा प्रभु के अतिरिक्त इस निराश्रय, दीन व्यक्ति का और कोई न था, जिसे यह अपना कह सकता। उसी दिन रात की गाड़ी से कटकवासी उनके आश्रित हम सब बालक पुरी के लिए रवाना हो गये। रास्ते में 'हा निताइ!' छोड़ हमारे मुख से और कोई शब्द नहीं निकल रहा था। मन ही मन मंगलमय प्रभु के लिए

श्रीजगन्नाथदेव से प्रार्थना कर रहे थे। भोर होते-होते गाड़ी पुरी पहुँच गई। हम लोगों ने झाँझपीटा मठ जाकर देखा कि वहाँ हा-हाकार मचा हुआ है। ललितादीदी आदि को दूसरे स्थान पर भेज दिया गया है। बलाई दादा आदि बड़ी सतर्कता से आ-जा रहे हैं। मैं जैसे ही दण्डवत्-प्रणाम कर उनके सामने जाकर खड़ा हुआ वे अट्टहास करते हुए बोले-'क्यों रे कलजुगी ब्राह्मण! अब आया है। तेरी माया अब भी नहीं गई? मैं पागल हो गया हूँ?' उनको देखकर लगा जैसे उनके शरीर का आयतन बढ़ गया है, रंग पहले से साफ हो गया है और सर्वांग का सौष्ठव बढ़ गया है। ऐसी तेज-पुञ्ज-मय मूर्ति मैंने पहले कभी नहीं देखी थी। जो भी हो, उन्हें देख प्राण कुछ शीतल हुए। उनके उन्माद की चिन्ता मन से जाती रही। उस समय सदा ही वे भाव में निमग्न और एक विचित्र-सी अनमनी और आनन्दमय अवस्था में रहते थे। देखकर लगता था कि जैसे इस राज्य में नहीं हैं। अपने आपसे न जाने कितनी लीला-कथाएँ कहते थे। सहज में कोई कुछ खिला-पिला नहीं पाता था। महाप्रसाद तक के प्रति अनिच्छा रहती थी। एक दिन मैं एक रकाबी में कुछ अनार रखकर ले गया। उन्होंने देखते ही पूछा-'क्यों रे, कहाँ से लाया?' मैंने कहा-'वृषभानुराजनन्दिनी ने आपके लिए भेजा है।' वे कुछ हँसते हुए अनार के दाने चबाते-चबाते बोले-'श्रीराजनन्दिनी इस समय कहाँ हैं, क्या कर रही हैं?' मैंने भी प्रसन्न हो समयानुकूल उत्तर दिया, जिसे सुन वे बहुत सुखी हुए। इस समय उन्होंने बहुत-सी ऐश्वर्य-माधुर्यमयी लीलाएँ कीं। उनका तात्पर्य प्राय: हमारी समझ में न आता। बीच-बीच में हँसते-हँसते, नाचते-नाचते और हाथ से ताली बजा-बजाकर कहते-'योग-माया चिच्छक्ति, विशुद्ध सत्ताय परिणति, तार शक्ति जीवे देखाइते, सेइ रूप-रतन, भक्तगणेर गूढ़धन प्रकट कइल नित्य लीला हइते।' कभी-कभी आवेश में भर अपने हाथ से शरीर में विष्ठा-लेपन कर लेते। कोई कुछ कहता तो पाँच वर्ष के बालक के समान कहते-'नहीं, मैंने विष्ठा नहीं मला है, यह चन्दन है।' सचमुच उस समय उनके शरीर से चन्दन की सुगन्ध निकल कर दसों दिशाओं को आमोदित कर देती।

कुछ दिन बाद पुलिन दादा आदि ने कलकत्ता ले जाने का प्रस्ताव किया। उन्होंने भी जाने की सम्मति दे दी। एक दिन पहले हम लोगों को कटक जाने की आज्ञा दी। हम वापस कटक आ गये। किन्तु कटक आकर फिर मन अस्थिर हो उठा। पढ़ने-लिखने में मन न लगा। यहाँ तक कि घर में घुसने तक को जी नहीं किया। बाबाजी महाशय कलकत्ते में कैसे होंगे और क्या कर रहे होंगे, यह जानने के लिए मन उत्कण्ठित रहने लगा। कुछ दिनों बाद सुना कि बाबाजी महाशय ने कलकत्ते से पुरी को एक लम्बा पत्र भेजा है और उसमें इस अधम को उनके निकट भेजने का आदेश किया है। सम्वाद पाते ही किताब-कापी एक बक्स में बन्द कर, केवल कपड़ों की एक पोटली हाथ में ले, कलकत्ते के लिए रवाना हो गया। दूसरे दिन सबेरे गाड़ी हावड़ा पहुँची। मैं स्टेशन से चलकर वराहनगर केदारबाबू के बाग में पहुँचा और बाबाजी महाशय को दण्डवत्-प्रणाम कर बैठ गया। अकस्मात् उनकी दृष्टि मेरे कपड़ों पर पड़ी। मेरे कपड़े कई जगह से सिले हुए थे। उसी समय उन्होंने एक कैंची मँगवा कर उनकी सिलाई काट दी और कुछ रो दिये। मैं लीलामय की लीला को समझ न सका। पर जो भी हो, इतने दिनों बाद अपनी खोई निधि पाकर मन को बड़ी शान्ति मिली। एक क्षण को भी इस जगह को छोड़कर अन्यत्र जाने की इच्छा न हुई। वे जब जैसी लीला करते, मैं प्राणपण से उनके आदेशानुसार सामग्री लाकर उनकी सहायता करता।

बाग में एक पुष्करिणी थी, जिसके तीन घाटों के नाम उन्होंने श्रीराधाकुण्ड, श्रीश्यामकुण्ड और श्रीललिताकुण्ड रखे थे। वे बड़ी देर तक श्रीराधाकुण्ड के जल में पड़े रहते, किसकी शक्ति थी जो उन्हें निकाल सकता? एक बड़ा कमरा श्रीराधाकृष्ण, पञ्चतत्व आदि बड़े-बड़े एवं अत्यन्त मनोहर चित्रों से सुसज्जित किया गया था। उसमें रात-दिन गाय के घी का दिया जलता रहता। उसी कमरे में वे कीर्तन करते और उसके फर्श को प्रति दिन अपने हाथों से झाड़ते और धोते। मैं अपना कपड़ा फाड़ कर फर्श को सुखाने की चेष्टा करता। धीरे-धीरे मेरे कई कपड़े खर्च हो

गये, केवल एक चादर बच रही। मैं उसी को पहन कर रहने लगा। उस समय वे सदा नग्न अवस्था में रहते। यदि कोई मिन्नत-खुशामद कर धोती पहना भी देता तो दूसरे ही क्षण किसी को उतार कर दे देते। रात में नींद भी अधिक न आती। भोजन भी कम हो गया था। उस समय गो-घृत द्वारा ही रसोई बनती थी। अनेक असाध्य रोगी उनके पास आते और केवल उच्च स्वर से नाम-कीर्तन तथा राधा-कुण्ड में स्नान करके ही अच्छे हो जाते।

जिस समय उन्होंने रामदादा को भेख दिया उसके तुरन्त बाद मेरा मुण्डन कराने का भी आदेश किया। उपस्थित लोग समझे कि मुझे भी भेख देंगे। किन्तु कृपामय प्रभु की दूसरी ही इच्छा थी। पहले ही उन्होंने सातगाछिया निवासी कुंजलाल गोस्वामी से दो अच्छे यज्ञोपवीत बनवा कर रख लिये थे। ब्राह्मण के उपनयन संस्कार के समय जिस प्रकारके यज्ञादि होते हैं, कुंज गोस्वामी द्वारा उन सबका आयोजन करा लिया था। वे नूतन वस्त्र धारण कर, यज्ञोपवीत गले में पहन, आसन पर बैठे और अपनी दाहिनी ओर एक अलग आसन पर कुंज गोस्वामी को बिठा यथा-विधि पूजन आरम्भ किया। अपूर्व दृश्य! उपस्थित भक्तवृन्द एक नूतन व्यापार का दर्शन करते ही विस्मय सागर में निमग्न हो गये। उस समय उनके शरीर से एक ऐसी उज्ज्वल कांति प्रस्फुटित हो रही थी कि दर्शन-मात्र से घोर पाषंडी के भी मन-प्राण विमुग्ध हो जाते थे। मेरा मुण्डन हो जाने पर बोले-'ओ कलजुगी ब्राह्मण! जा शीघ्र ही राधाकुण्ड में स्नान कर जनेऊ कुण्ड में फेंक आ। आज नये सिरे से तेरा जनेऊ होगा।' सुनते ही मैं तुरन्त उनके आदेश का पालन कर उनके पास जैसे ही आया, उन्होंने मुझे अपनी बाईं ओर बिठा लिया और स्वयं विधि पूर्वक उपनयन-संस्कार के मन्त्रों का पाठ करने लगे। यज्ञादि क्रिया समाप्त हो जाने पर वही पवित्र यज्ञोपवीत मेरे गले में पहना दिया और मुझे सामवेदी संध्या सिखाने लगे। मैं संध्या के मन्त्र उनके साथ-साथ पढ़ता जाता और आनन्द-सागर में मग्न होता जाता। यथासमय कार्यादि समाप्त कर उन्होंने साथियों सहित महाप्रसाद ग्रहण कर विश्राम किया। बाबाजी महाशय का कार्यकलाप देख मेरे मन में नाना प्रकार के विचार उठने लगे। कभी-कभी मन में प्रश्न होता कि ये हैं कौन?

सदा इन्हीं कामों में लगे रहने वाले ब्राह्मण लोग भी जो कार्य बिना पुस्तक की सहायता के नहीं करा पाते, वह इन्होंने चिरभ्यासी की भाँति अनायास मौखिक रूप से ही करा दिया। सामवेदी संध्या तो उन्होंने जैसे कराई वैसे प्रतिदिन वैदिक संध्या करने वाले लोग भी नहीं करा सकते। मैं सोचने लगा कि वे निताइचाँद के कोई अन्तरंग परिकर हैं या उनकी कोई विशेष शक्ति, जो जीव हित के लिए अवतीर्ण हुए हैं या और कोई! मैं कुछ भी निश्चय न कर सका।

इस घटना के कई दिन बाद वे कुलीन ग्राम, गुरप, सातगाछिया होते हुए श्रीधाम नवद्वीप गये। साथ थे फणि, कैलाश और मैं! रेल से या पैदल जब कभी जहाँ जाना होता, हम लोग उनके आदेशानुसार 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' नाम का उच्च स्वर से कीर्तन करते हुए जाते। किसी-किसी स्थान पर पहुँचने के लिए हमें ८-१० मील पैदल चलना पड़ता। किन्तु शान्तिदाता प्रभु की कृपा से तनिक भी श्रान्ति-क्लान्ति का अनुभव न होता। वे अत्यन्त मन्थर गति से नृत्य करते चलते। आश्चर्य का विषय है कि इतना मार्ग नंगे पैर चलने पर भी उनके सुकोमल श्रीचरणों की कोमलता में या प्रखर रविताप से उनके श्रीअंगों की शीतलता में किंचित् भी कमी न होती। जिस किसी भी गाँव में पहुँचते, लोगों की भीड़ लग जाती। आबाल-वृद्ध ग्रामवासी उनसे इस प्रकार का व्यवहार करते जैसे वे उनके पुराने परिचित आत्मीय हों। बहुत थोड़े समय भी किसी गाँव में ठहरने के बाद जब वहाँ से चलते तो उस गाँव के बहुत से लोग उदास मुख और डबडबाये नेत्रों से बहुत दूर तक उनके पीछे-पीछे चले आते। जिस समय हम लोगों ने गुरप छोड़ा, एक व्यक्ति कह उठा-'ये बाबाजी कोई मेस्मेरिज्म या मन्त्र-तन्त्र जानते हैं। हमारे देश में जाने कितने साधु-महात्मा आते रहते हैं, किन्तु बालक, वृद्ध, युवा, स्त्री, पुरुष जैसे उनकी ओर आकृष्ट हुए' वैसे किसी की ओर नहीं होते।'

जब हम सातगाछिया से नौका द्वारा कालना की ओर जाने लगे, उन्होंने मुझसे कहा-'तुझे बच्चे-कच्चे घेरेंगे।' उनकी बात मैं बिल्कुल न समझ सका। क्योंकि बलवान प्रभु की कृपा से पुरी जाने के बाद से ही हमारा स्वामी-स्त्री का सम्बन्ध छूट गया था और हम दोनों भजन-साधन में लग गए थे। मुझमें फिर से पुरुष-वृत्ति आएगी, इसकी मैंने स्वप्न में भी कल्पना न की थी। बिना समझे मैं कुछ उपहास-भरे शब्दों में बोला 'तुम तो पागल हो, पागल की बात कभी ठीक नहीं होती।' यह सुन वे मृदु हास के साथ बोले-'अच्छा, पागल की बात याद रखना।'

थोड़े दिनों में हम लोग कालना से श्रीधाम नवद्वीप पहुँच कर परम गुरुदेव श्रीश्रीगौरहरिदास महन्त बाबाजी महाशय के आश्रम में गये। बहुत दिनों के बाद गुरु-शिष्य का यह शुभ-मिलन हुआ था। दोनों प्रेमाश्रुपूर्ण नेत्रों से परस्पर आलिंगनपाश में बँध गये। दादा महाशय ने मुझे बाजार ले जाकर अनेक प्रकार के फल और तरकारियाँ दीं। थोड़े ही समय में ठाकुर का भोग-राग हो गया। दादा महाशय की सेवा के बाद हम लोगों ने महाप्रसाद पाकर थोड़ा विश्राम किया। श्रीगुरुदेव के साथ जितने भी दिन हम श्रीधाम नवद्वीप में रहे, इसी प्रकार परमानन्द पूर्वक रहे। एक दिन तड़के ही देखा कि बाबाजी महाशय अपनी शय्या पर नहीं हैं। बाहर आकर बहुत खोजने पर पता चला कि वे अपने हाथ से गुरुदेव का पाखाना साफ कर रहे हैं। इससे मुझे बड़ी व्यथा हुई, क्योंकि यह कार्य तो हम लोगों का था। किन्तु वे हमारी शिक्षा के लिए गुरु-भक्ति की पराकाष्ठा दिखा रहे थे। उन्हीं दिनों वे कभी-कभी धोती पहन, ब्राह्मण वेश धारण कर नदीया की गली-गली में आनन्दाविष्ट भाव से घूमते। कभी-कभी उनके दोनों नेत्रों से अपने-आप ही अविरत अश्रुधार बह निकलती। कुछ दिन बाद श्रीधाम नवद्वीप से हम वराहनगर लौट आये।

श्रीश्रीगुरुदेव की कृपा से उपनयन के बाद मेरी मनःस्थिति में विशेष परिवर्तन आ गया। इस संसार में मेरे कोई भाई, बहन, स्त्री आदि हैं, इसका ख्याल ही न रहा। एक दिन रात प्रायः दो बजे के समय बाबाजी महाशय की नींद खुल गई। मैं पंखा झल रहा था। वे अकस्मात् आँखें बन्द किये मुझसे पूछने लगे-'क्यों रे, संसार की कुछ याद आती है?' मैंने कहा-'कुछ नहीं, बड़े आनन्द से दिन बीत रहे हैं।' उन्होंने और कुछ नहीं कहा। मैं मन ही मन सोचने लगा-ऐसा सुख क्या जीव के भाग्य में हो सकता है।

इस समय उनके साथ जिस अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव हो रहा था, जैसी अलौकिक शान्ति मिल रही थी, उसके बारे में मैं और अधिक क्या लिखूँ? वह अकथनीय है। उस समय जिसने एक दिन भी उनके संग-सुख का थोड़ा भी अनुभव किया है वही समझ सकता है कि वह कैसा अलौकिक था। दूसरे दिन एक शान्तिकुम्भ में श्रीराधाकुण्ड का जल लेकर मुझे शाम की गाड़ी से पुरी जाने का आदेश दिया और कहा, 'जो भी मिले उस पर शान्ति-जल के छींटे देकर फिर उससे बात करना।' जिस समय वहाँ से रवाना होने वाला था, थोड़ी-थोड़ी वर्षा हो रही थी। मैं सिर्फ एक चादर लपेटे था। वह भी भीग गई। उसी दिन दोपहर को बाबाजी महाशय को कोई एक वस्त्र दे गया था। परम दयालु प्रभु ने वह मुझे दे दिया और स्वयं निर्वस्त्र हो गये।

पुरी पहुँचकर सबसे पहले उनके आदेशानुसार झाँझपीटा मठ गया। वहाँ ललितादीदी और अन्य सभी बाबाजी महाशय का संवाद सुनने के लिए अत्यन्त उत्कण्ठित थे। मुझे देखते ही वे सब दौड़ पड़े। उनकी कुशलता के विषय में पूछने लगे। उनसे सारा हाल कह थोड़ी देर बाद आउलिया मठ तथा दूसरे स्थानों पर होता हुआ संध्या समय नगेन दादा के घर पहुँचा और रात वहीं बिताई। मैं जिस स्थान पर भी जाता, लोग आग्रह पूर्वक बाबाजी महाशय का हाल पूछते। इससे मेरे मन में यह धारणा दृढ़ हो गई कि निःसन्देह अपने पुरी-वासी अनुगत भक्तों के लिए वे प्राणों के प्राण और उनके एकमात्र चरम लक्ष्य हैं।

नगेनदादा के घर में दो कच्चे कमरे थे जिन पर फूस का छप्पर था। कई दिनों से वर्षा हो रही थी और बड़ा कमरा टपक रहा था। छोटे कमरे में नगेनदादा अकेले रहते थे। बड़े कमरे में पानी भर जाने पर बाध्य

होकर कमलादीदी को अपनी दोनों कन्याओं के साथ छोटे कमरे में आना पड़ा। मैं उस रात अपनी स्त्री के साथ बड़े कमरे के एक कोने में जाकर सो गया। बहुत देर तक बाबाजी महाशय का तत्कालीन लीला-प्रसंग चलता रहा। कथा-वार्ता समाप्त होने पर मैंने सुना कि मेरी पत्नी इस कमरे में कई दिनों से अकेली रह रही है। अकस्मात् कमरे के दरवाजे पर मेरी निगाह गई तो देखा कि उसमें कुण्डी भी नहीं है। उस समय मैं सोचने लगा कि श्रीगुरुदेव की कृपा से मैं तो बड़े सुख में हूँ, किन्तु यह बालिका जिसने धर्म के लिए अपने पिता की अट्टालिका का परित्याग कर दिया है, आज इस अवस्था को प्राप्त हो गई है। उस समय उसके उद्धार की चेष्टा न कर केवल मन ही मन प्रार्थना करने लगा-'हे जगन्नाथदेव! यह तुम्हारी ही आश्रिता है। हे प्रभो! तुम्हीं इसकी रक्षा करो' किन्तु जितनी प्रार्थना करता था, उतना ही मेरे वैराग्य का ह्रास होता जाता था और मन में इस प्रकार की भावना उठती थी-'मैं कोई सांसारिक सुख तो चाहता नहीं। पढ़-लिख कर कुछ धनोपार्जन करूँगा और इस बात की चेष्टा करूँगा कि तीनों (नगेन दादा, उनकी पत्नी और अपनी पत्नी) सुख से भजन कर सकें।' इसी प्रकार रात कट गई। दूसरे दिन बाबाजी महाशय के आदेशानुसार दो वृद्धा स्त्रियों को साथ ले कलकत्ते के लिए रवाना हो गया। उन्होंने पहले ही कह दिया था, 'वे स्त्रियाँ साक्षात् माया हैं। उनको मायापुर का टिकट दिलवा कर स्टीमर में बिठा देना और मेरे पास वापस चले आना।' आदेश का पालन करके मैं उनके निकट वापस आ गया। उन स्त्रियों ने भी कोई आपत्ति नहीं की।

वराहनगर आ बाबाजी महाशय को दण्डवत्-प्रणाम कर उनके सामने जैसे ही खड़ा हुआ, पुरी में पत्नी के साथ उस रात मेरी जो भी बातचीत हुई थी, सर्वज्ञ प्रभु ने ज्यों की त्यों दुहरा दी। उस समय उनके पास कुछ भद्र लोग बैठे थे। मैं लज्जावनत हो उनके मुख से उस बातचीत की आवृत्ति सुनते-सुनते वहाँ से धीरे से खिसक गया। बाद में एक दिन अकेले पाकर मैंने पूछा, 'पुरी में अपनी पत्नी के साथ हुए मेरे समस्त वार्तालाप को आपने यहाँ इतनी दूर रहते हुए भी कैसे जान लिया? क्या आप कोई जादू जानते हैं?' उन्होंने हँसकर उत्तर दिया-'सुरेन, मन साफ होता है तो हर चीज साफ दीख जाती है।'

कुछ समय बाद एक दिन रात के दूसरे पहर जब मैं उनके चरण दबा रहा था, उन्होंने मेरी मनोदशा के बारे में पूछा। मैंने कहा, 'फिर जाकर कॉलेज में पढ़ने की इच्छा हो रही है।' वे उस समय और कुछ नहीं बोले। दूसरे दिन प्रातः कुंजबाबू आए तो उनसे कहा-'सुरेन्द्र को कपड़े इत्यादि जो भी वह जरूरी समझे खरीदवा दो और कटक जाने का खर्चा भी दिला दो।' कुंजबाबू ने उनके आदेशानुसार व्यवस्था कर दी। मैं भी उनके श्रीचरणों की वन्दना कर कटक रवाना हो गया। इसके दो-तीन दिन बाद बाबाजी महाशय ने प्रेमदादा को पुरी का कुंजमठ छोड़ श्रीवृन्दावन जाने का आदेश किया। इस मठ में श्रीश्रीराधारमणदेव का श्रीविग्रह था। नगेन दादा तथा राधादासी माँ, उनकी माता और मंजरी माँ को उस मठ में जाकर श्रीश्रीराधा-रमणदेव की सेवा करने का आदेश दिया और लिख दिया-'नगेन दादा, इस मठ के प्रहरी स्वरूप रहेंगे।' उनके आदेश का पूर्ण रूप से पालन किया गया। एक दिन मैंने कातर भाव से अत्यन्त व्याकुल हो अपनी स्त्री की रक्षा के लिए जगन्नाथदेव से प्रार्थना की थी। आज वांछा-कल्पतरु श्रीगुरुदेव ने कृपा कर उपयुक्त रक्षक, ठाकुर-सेवा और सत्संग की एक साथ व्यवस्था कर दी। मैं अपने भाग्य को मन ही मन सराहने लगा।

यथा समय बाबाजी महाशय पुरी लौट गये। मैं जब-जब सुयोग पाता, उनके पास चला जाता। एकबार बाबाजी महाशय कलकत्ते से पुरी जा रहे थे। साथ में बहुत से लोग थे। हावड़ा स्टेशन का गेट खुलते ही लगभग सारे साथी प्लेटफार्म पर आ गए। मैं और पुलिनदादा बाबाजी महाशय के पीछे खड़े थे। भूल से श्रीश्रीराधाकान्तदेव की पूजा के बर्तनों सहित प्रायः दो मन वजन का एक बोरा पड़ा रह गया। गाड़ी छूटने में ज्यादा देर न देख वह भारी बोरा उन्होंने अनायास ही अपने हाथ से उठा मेरे सिर पर रख दिया। मैं भी 'जय निताइ' कह उसे प्लेटफार्म पर ले आया। मेरे कुछ गुरु-भाइयों ने उसे पकड़कर उतरवा लिया। मुझ जैसा

क्षीणकाय व्यक्ति, जो साधारणत: बीस सेर से अधिक बोझ नहीं उठा सकता, गुरुदेव की इच्छा से इतना भारी वजन अनायास उठा ले गया।

कुछ समय बाद पुलिनदादा ने मिर्जापुर स्ट्रीट पर मठ की स्थापना की। मैं वहीं रहकर रिपन कॉलेज में पढ़ने लगा। मेरे सहोदर भाई के श्वशुर महाशय परम भक्त थे। वे बीच-बीच में नाम सुनने इस मठ में आया करते। तभी अकस्मात् मैं बीमार हो गया। वे मुझे बैरकपुर मेरे भाई के घर ले आए। मैं ठीक होने के बाद वहाँ से फिर कलकत्ता आ गया। कई महीने बाद दादा ने मेरी अनिच्छा होते हुए भी पत्नी को ले आने के लिए मुझे पुरी भेजा। उस समय बाबाजी महाशय वहीं थे। उन्होंने मुझे और मेरी पत्नी को श्रीश्री राधाकान्त देव के सम्मुख खड़ा कर शक्ति संचार करते हुए फिर दाम्पत्य-शृंखला में आबद्ध किया। अब तक शक्तिमान प्रभु की कृपा से यह सम्बन्ध कुछ और ही प्रकार का था। हम दोनों एक ही व्यक्ति के प्रति स्वामी-भाव रखकर जीवन-यापन कर रहे थे, आज से फिर मैं स्त्री की देह का मालिक हो गया।

धन्य प्रभो! तुमने कैसे खेल-खेले और कैसी-कैसी लीलाएँ दिखाईं। कब किसे किस भाव से रखोगे, तुम्हीं जानते हो। जिन श्वशुर महाशय ने अपनी पुत्री को मछली छोड़ देने के कारण घर से निकाल दिया था, वह भी आज मांसादिक तामसी आहार छोड़ परम भक्त हो गये थे।

धन्य तुम्हारी करुणा! तुम्हारी स्वाधीन इच्छा की जय! पाँच वर्ष बाद मेरी वही पत्नी एक पुत्र प्रसव कर परलोक-गामिनी हुई। मैंने फिर विवाह किया और उस स्त्री से भी दो पुत्र हुए। इस प्रकार आज मैं तीन पुत्रों (निताइदास, गौरदास और राधेश्याम) का पिता हूँ। एक दिन उन्हीं त्रिकालज्ञ प्रभु का कथन (तुझे बच्चे-कच्चे घेरेंगे) मैंने हँसी में उड़ा दिया था, आज वही हुआ।

हे अदोषदर्शी, अगतिगति, पतितपावन प्रभु, आशीर्वाद कीजिए कि आपकी कृपा से जैसे भी रहूँ, जहाँ भी रहूँ, आपके श्रीचरणों में भक्ति बनी रहे। आपकी दया की स्मृति हृदय में बनी रहे। चित्त में किसी प्रकार का विक्षेप न हो और मैं अन्य पथगामी न हो जाऊँ। आपके सेवकों में हार्दिक प्रीति रहे और आपके प्राणाराम 'निताइ गौर राधेश्याम' नाम में रुचि बनी रहे।

दादा महाशय

इस घटना के सम्बन्ध में गोपाल दादा ने इस प्रकार लिखा है-

मेरा नाम नवगोपाल दे है। इन दिनों हमारा निवास हुगली बाबूगंज में है, कलकत्ते में हमारी कटपीस कपड़े की दूकान है। हम लोग सातगाछिया-निवासी श्रीपाद कुञ्जलाल गोस्वामी प्रभु के मन्त्र-शिष्य हैं। इसीलिए दादा महाशय श्रीराधारमण चरणदास बाबाजी महाशय हमारे ऊपर विशेष कृपा रखते हैं।

बंगाब्द १३१२ पौष मास था। एक दिन रात्रि में कार्य समाप्त कर जैसे ही दूकान बन्द की, सुना कि बाबाजी महाशय कलूटोला के बाबू कुञ्जलाल मल्लिक महाशय के घर पधारे हैं। रात हो जाने के कारण उस दिन मेरा जाना न हो सका। दूसरे दिन बड़े सबेरे उनके दर्शन करने की इच्छा से कुञ्जबाबू के घर गया। वे मुँह धो रहे थे। अकस्मात् मुझे देखते ही हँसकर पूछने लगे-'क्यों रे, तेरे गोसाई कहाँ हैं, कैसे हैं?'

'वे इस समय मेरे घर आये हुए हैं, और अच्छे हैं।' कहकर मैंने उनके श्रीचरणों में दण्डवत्-प्रणाम कर और उनका आशीर्वाद पा दूकान जाने के लिए आज्ञा माँगी। आज्ञा पाकर दूकान आ गया और काम-काज देखने लगा। आठ बजे के लगभग देखा कि दादा महाशय एक लाठी हाथ में लिये दूकान के सामने से गुजर रहे हैं। देखते ही मेरा हृदय आनन्द से भर गया। आश्चर्यचकित की भाँति दौड़ा गया और उनकी कमर में दोनों हाथ डाल कर बोला-'दादा महाशय, आप इधर कहाँ जा रहे हैं?' मेरी ओर देख मधुर-मधुर हँसते हुए बोले, 'क्यों रे, तू इधर कहाँ जा रहा है? मैंने कहा, 'यही तो मेरी दूकान है। चलिए न, अपनी चरण-धूलि से उसे पवित्र कर दीजिये।' सुनकर हँसते-हँसते बोले, 'अच्छा! यही तेरी दूकान है, तो चल।' कहकर उन्होंने इस अधम की दूकान को पवित्र किया। मैंने उन्हें आसन दिया। भीतर बैठकर पहले कुछ गुनगुनाते रहे, फिर जोर-जोर से गाने लगे-

माधव बहुत मिनति करूँ तोय।
देइ तुलसी तिल देह समर्पिनु
दया जानि छोड़बि मोय॥
गणइते दोष गुण लेश ना पाओबि
जब तुहु करबि विचार।
तुहु जगन्नाथ जगते कहायसि
जग बाहिर नह मुञि छार॥
किये मानुष पशु पाखी जे जनमिये
अथवा कीट पतंगे।
करम विपाके गतागति पुनः पुनः
मति रहु तुया परसंगे॥
भनये विद्यापति अतिशय कातर
तरइते इह भवसिंधु।
तुया पद पल्लव करि अवलम्बन
तिल एक देह दीनबन्धु॥

लगभग आधे घण्टे से ऊपर आँखें बन्द करके इसी पद को अलंकृत कर गाते रहे। दोनों नेत्रों से अविरल अश्रुधार झर रही थी। दुकान के सामने जनसमूह उमड़ रहा था। अकस्मात् उन्होंने आँखें खोलीं। बहुत से लोगों की भीड़ सामने देख भावोद्रेक रोकते हुए गान समाप्त किया। गान रुक गया, किन्तु फिर भी आगन्तुक जन समूह अनिमेषनयन उनके प्रफुल्ल मुखकमल की ओर निहारता रहा। एक अप्राकृत आकर्षण से आकृष्ट होने के कारण कोई भी उनके मधुमय संग को छोड़कर जा नहीं सक रहा था। ऐसा लगा कि शायद यही देख कर वे नाना रूप कौशल करने लगे। एकदम मुस्कराते हुए बोले–'क्यों रे, मेरा कुर्ते को बड़ा मन है। बनवा दे तो।' सुनते ही प्रसन्नता पूर्वक मैं उनका नाप लेते–लेते बोला, 'दादा, एकबार मेरे निवास–स्थान पर पधारें।'

उसी समय वे हँसते–हँसते मेरे घर जाने का निश्चय कर चल दिये। मैं भी पीछे–पीछे चल दिया। घर के सामने पहुँचते ही उच्च स्वर से बोल उठे–'घर में कोई है।' सुनते ही घर के सभी लोग आकर श्रीचरणों में दण्डवत्–प्रणाम कर उन्हें भीतर ले गये। मैंने कहा– 'दादा महाशय! ऊपर के कमरे में कृपा कीजिए न।' वे ऊपर के कमरे में जाकर बोले–'यहाँ बड़ी ठण्ड है, चलो छत पर धूप में चल कर बैठें।'

वहाँ पहुँच कर उन्होंने स्नान के लिए जल लाने को कहा। स्नानाह्निक समाप्त कर किंचित् मोहनभोग प्रसाद ग्रहण किया। उसी समय पुलिन दादा आकर बोले–'आप यहाँ प्रसाद पा रहे हैं और वहाँ सब आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।'

बाबाजी महाशय मृदुहास के साथ बोले—'चलो तुम्हारे यहाँ चलें।' मुझसे कहा—'तुम्हारे यहाँ आज रात को प्रसाद पाएँगे।' कहकर वे एक भाड़ा–गाड़ी से पुलिन दादा के यहाँ चले गये। शाम को मैं वहाँ जाकर उन्हें साथियों सहित ले आया। उनके आदेश से मेरे गुरुदेव कुञ्जलाल गोस्वामी एवं गोविन्ददास बाबाजी महाशय रसोई बनाने में लग गये। उसी समय दादा महाशय ने ऊपर के कमरे में नाम–कीर्तन आरम्भ कर दिया। बहुत भीड़ लग गई। 'गजेन्द्र गमने जाय, सकरुन दिठे चाय, पदभरे मही टलमल'–इस पद का कीर्तन हो रहा था। रात्रि प्राय: बारह बजे तक होता रहा। कीर्तन समाप्त होने पर भक्त लोग जब अपने घर जाने लगे तो उन्होंने इशारे से मुझे बुलाकर कहा–'देख, बिना प्रसाद पाये कोई न जाने पाये।' सुनकर मैं डरते–डरते बोला– 'कुल बीस–पच्चीस लोगों के लिए मैंने इन्तजाम किया था। लेकिन अब लगभग अस्सी लोग हो गये हैं। कैसे क्या होगा?' सुनते ही मुझे डाँटते हुए बोले–'इसकी तुझे क्या चिंता है रे? जिसका प्रसाद है, वह सब समझेगा। तू अपना काम कर ना।' आदेश के साथ ही मेरे हृदय में दुगना विश्वास और शक्ति आ गई। मैंने खुशी–खुशी सब लोगों को रोक लिया। महाप्रभु के भोग–राग के बाद उपस्थित भक्त एवं हम सब लोगों ने छक कर महाप्रसाद पाया। उनकी अद्भुत शक्ति देख सब लोग आश्चर्यचकित रह गये। उसकी समालोचना करते–करते सब अपने–अपने घर चले गये। बाबाजी महाशय ने और उनके साथियों ने इस अधम की पर्णकुटी पर ही विश्राम किया।

दूसरे दिन मुझे अनेक प्रकार से प्रबन्ध करते देख वे गुरुदेव से बोले, 'देख कुञ्ज, दस बजे तक ठाकुर का भोग हो जाना चाहिये।' उनके इस आदेश को सुन मेरे गुरुदेव ने केवल रसा, चावल और दाल से ठाकुर को भोग लगा दिया। सबने यथासमय प्रसाद पाकर किंचित् विश्राम किया।

इस दिन मणिलालदास के घर महोत्सव था। बाबाजी महाशय लगभग दो बजे मुझसे बोले–'तू मणिलाल के घर जाकर देख तो आ, भोग में कितनी देर है?' मैंने जाकर देखा कि भोग अभी तक नहीं लगा है और लौट कर बाबाजी महाशय को बताया तो वे मुझे साथ लेकर मणिलाल के घर गए। घर के दरवाजे पर पहुँच उन्होंने 'गौर हरि बोल' की ध्वनि की। सब लोग इन्हें दण्डवत्-प्रणाम कर भीतर ले गए।

इस घटना के कुछ दिन पहले एकबार मेरे काका गुरु श्रीपाद प्यारीलाल गोस्वामी और उनकी पत्नी बाबाजी महाशय से मन्त्र ग्रहण करने की इच्छा से मेरे यहाँ आये थे। मेरे गुरुदेव और माँ गोस्वामिनी उस समय वहीं उपस्थित थे। वराहनगर से दादा महाशय को ले आया गया। यथासमय उन लोगों को मन्त्र दे महाप्रसाद आदि ग्रहण कर उस दिन रात्रि में मेरे यहाँ ही रह गए। दूसरे दिन प्रातःकृत्य समाप्त कर बैठे थे। उसी समय एक सज्जन एक पन्द्रह-सोलह वर्ष की लड़की को साथ लेकर आए और मेरा नाम लेकर पुकारने लगे। मैंने जाकर देखा कि वे एक अपरिचित व्यक्ति हैं। मुझे देखकर पूछने लगे–'भाई! बाबाजी महाशय क्या यहाँ हैं?' मैंने कहा–'हाँ आइये।' तब वे उस लड़की का हाथ पकड़ मेरे साथ बाबाजी महाशय के पास आए। उन्होंने पूछा–'भाई, कैसे आए?'

वे अत्यन्त कातर-भाव से बोले—'बाबा, मेरी यह लड़की पागल हो गई है। बहुत से डाक्टर, वैद्यों को दिखा चुका पर कुछ भी लाभ नहीं हुआ। आखिर हार कर आपके पास लाया हूँ। कृपा कर मेरी यह विपत्ति दूर कीजिए।'

बाबाजी—भाई, मैं कोई डाक्टर वैद्य तो हूँ नहीं, ओझा भी नहीं। मेरे पास न दवा है न मन्त्र-तन्त्र। केवल नाम है, उसमें यदि आपका विश्वास हो तो नाम कर सकता हूँ।

सज्जन—बाबा, मेरी दृढ़ धारणा है कि आप जो भी करेंगे उसीसे यह अच्छी हो जायगी।

बाबाजी—यदि यही विश्वास है तो कोई चिन्ता नहीं। कहकर नाम आरम्भ किया। लड़की जब आई थी तो उसके हाथ, पैर, आँख आदि बड़े चंचल थे। सदा बाएँ हाथ से सिर के बाल पकड़-पकड़ कर खींचती रहती थी। किन्तु नाम आरम्भ होते ही अत्यन्त शान्त भाव से बैठकर नाम सुनने लगी। नाम दो घण्टे तक होता रहा। महापुरुष की शक्ति के प्रभाव से वह बराबर स्थिर भाव से बैठी रही। नाम समाप्त होने पर उसने सलज्ज भाव से बाबाजी महाशय को प्रणाम किया। कितने आश्चर्य की बात थी। इतने दिनों की रोगिणी, डाक्टर और वैद्य भी जिसकी चिकित्सा न कर सके थे, आज दो घण्टे में ही अपनी स्वाभाविक अवस्था को प्राप्त हो गई। उपस्थित भक्त-वृन्द अवाक् रह गये। वे आगन्तुक सज्जन हाथ जोड़कर बोले— 'बाबा, अब इस सम्बन्ध में हमें और क्या करना है?

बाबाजी—और कुछ नहीं करना है। केवल जगन्नाथ घाट ले जाकर एक सौ आठ डुबकियाँ दिला घर वापस ले जाना।

उन्होंने यही किया। उसी दिन से लड़की स्वस्थ होकर जीवन व्यतीत करने लगी। इस प्रकार तीन दिन तक अधम की कुटी पर रह हम लोगों को कृतार्थ और अनुगृहीत कर दूसरी जगह जाने की इच्छा से बाबाजी महाशय बाहर निकले। कैसा आश्चर्य! जिस समय घर में थे उनका शरीर स्वाभाविक था, किन्तु जैसे ही बाहर आये हम लोगों ने देखा कि घर के दरवाजे से लगभग दो हाथ ऊँचे एक महापुरुष खड़े हैं। विस्मित भाव से निकट जाकर मैंने पूछा, 'दादा महाशय, फिर कब आयेंगे? मुझे भय है कि आप हम अभागों को भूल जायेंगे। हमारे में भक्ति, विश्वास या प्रेम होता तो क्या आप हमें छोड़कर जा सकते?' वे मृदु हास के साथ बोले–'नहीं रे, मैं जब तेरे घर आ गया तो अब तुझे कोई भय नहीं। तुम लोग सब मेरे हो। तेरी तो कोई बात ही नहीं, जो एकबार मेरा हो गया, मैं उसे भूला हूँ न भूलूँगा, छोड़ा है न छोडूँगा। पागल! यह तो पारमार्थिक सम्बन्ध है। इसे छोड़ने की शक्ति किसमें है? यह तो नित्य सम्बन्ध है।' यह कहकर वे चले गये। उनके मधुमय संग में इतने दिन हम लोगों ने जिस आनन्द का उपभोग किया, उसे न लेखनी द्वारा व्यक्त किया जा सकता है और न व्यक्त करने के लिए

कोई भाषा ही है। जिन्होंने जीवन में क्षणमात्र भी इस आनन्द का किंचित् उपभोग किया है वे ही अपनी शक्ति के अनुसार इसका थोड़ा-बहुत अनुभव कर सके हैं। मैंने सोचा था कि बहुत कुछ लिखूँगा, पर लिखने के लिए शब्द नहीं हैं। केवल इतना कहूँगा कि दादा महाशय के प्रेम, उनकी सरलता, निरभिमानता, और मेरे जैसे जीवों के प्रति उनका अनुग्रह और उनकी अलौकिक शक्ति की जय हो।

शरणागत

इस घटना के सम्बन्ध में श्रीमान् पंचानन मुखोपाध्याय ने इस प्रकार लिखा है-

मेरा नाम है पंचानन मुखोपाध्याय। मेरी ननिहाल हुगली जिले के अम्बिका कालना और गुप्तिपाड़ा के बीच सातगाछिया ग्राम में है। मेरे नाना का नाम है श्रीप्रसन्नकुमार बन्द्योपाध्याय। मेरी माँ दामोदर गोस्वामी की कन्या थीं। मैं इनकी तीसरी लड़की से हुआ था। मेरे नाना पहले चंडीगाछा में रहते थे। वे जमालपुर में नौकरी करते थे। अपने दो सुयोग्य पुत्रों की मृत्यु हो जाने के कारण उनका मन नौकरी से उचट गया और वे तीर्थ-भ्रमण के लिए निकल पड़े। कुछ दिनों बाद देश को लौट आये। किन्तु उनका मन फिर सांसारिक विषयों में न लगा। इसके अतिरिक्त इस गाँव में ब्राह्मणों की बस्ती न थी। गंगा यहाँ से बहुत दूर थी। अतः उन्होंने ऐसे स्थान पर अपना शेष जीवन व्यतीत करने का निश्चय किया, जहाँ ब्राह्मणों की बस्ती हो और गंगा हो।

मेरे दो मामाओं की मृत्यु के बाद मेरा जन्म हुआ था। मुझे पाकर दादा महाशय का पुत्रशोक कुछ कम हो गया। इसलिए वे मुझे सदा अपने साथ रखते।

एक बार श्रीश्रीमदनगोपाल की दोल यात्रा के उपलक्ष में हम सब सातगाछिया गये। उन दिनों मेरी नानी के दो सहोदर भाई सातगाछिया में थे, मझले गौरमोहन गोस्वामी और छोटे विपिनविहारी गोस्वामी। उनके दो चचेरे भाई भी वहाँ थे। दादा महाशय के सातगाछिया आने पर नानी के भाइयों ने मिलकर उनसे सातगाछिया रहने का अनुरोध किया। विपिन दादा ने कहा-'आप अपना शेष जीवन यहाँ हमारे पास ही व्यतीत करें। यहाँ गंगा-स्नान कीजियेगा, हमारे ठाकुर मदनगोपालजी के दर्शन कीजियेगा और कीर्तन सुनियेगा। इस प्रकार आनन्द से शेष जीवन व्यतीत कीजियेगा। मरने पर हम लोग आप को गंगाजी को समर्पण कर देंगे।' दादा महाशय गंगा-स्नान और ठाकुर-दर्शन से अपने शोक-संतप्त जीवन में कुछ शान्ति का अनुभव करने लगे। उन्होंने दोनों सालों को बुलाकर कहा—मेरे लिए यहाँ कोई जगह ठीक कर दो, शेष जीवन तुम्हारे पास ही रहकर व्यतीत करूँगा। नानीजी के छोटे भाई विपिन गोस्वामी के बहुत से शिष्य थे और वे संकीर्तन में अधिकांश समय व्यतीत करते थे। कालना के श्रीश्रीमहाप्रभु के मन्दिर के गिरि गोस्वामी आदि से छोटे दादा का आन्तरिक प्रेम था। वे छोटे दादा का बड़ा सम्मान करते थे। वे प्रायः सदल-बल कीर्तन करते-करते महाप्रभु के आँगन में आ जाते और छोटे दादा भी श्रीभगवानदास बाबाजी महाशय के अखाड़े में आया-जाया करते। एक दिन श्रीधाम नवद्वीप से बाबाजी महाशय श्रीयुक्त देवेन्द्रनाथ चक्रवर्ती के साथ (जो 'जय निताइ' नाम से विख्यात थे) कालना में महाप्रभु के दर्शन करने आये। विपिन दादा भी उस दिन कालना गए हुए थे। भगवानदास बाबाजी महाशय के अखाड़े में उस दिन पहली बार उन्हें बाबाजी महाशय के दर्शन हुए। दूसरे दिन प्रातः विपिन दादा जय निताइ से बोले-चलिये, एकबार श्रीमदनगोपालजी के दर्शन कर आइये। छोटे दादा की मझली बहन का विवाह दिग्नगर में जयनिताइ के घर में हुआ था। इसलिए उन्होंने कोई आपत्ति न की। बाबाजी महाशय और जय निताइ विपिन दादा के साथ सातगाछिया आ गये। हम लोग भी आ गये। छोटे दादा ने बैठने के लिए आसन दिया पर बाबाजी महाशय न बैठे। वे जमीन पर ही बैठ गये। जय निताइ मेरे नाना और नानी से बातचीत करने लगे। उसी समय बाबाजी महाशय ने उन दोनों को प्रणाम किया। उन्होंने प्रसन्न होकर निताइ से पूछा-'ये बाबू कौन है?' जय निताइ बोले-'ये एक बड़े भक्त हैं। मेरे साथ कालना में श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन करने आये हैं।' नाना और नानी बोले-'इन्हें देख हमें ऐसा लगता है कि ये कोई

महापुरुष हैं।' तब नाना ने उनसे पूछा-'आपका क्या नाम है?' उन्होंने उत्तर दिया-'राजेन्द्रदास।' दो ही चार बातों में बाबाजी महाशय ने दोनों को जैसे अपने प्रेम-बन्धन में बाँध लिया। नानी को मौंसी, नाना को मौंसा, माँ को सुशीलादीदी और माँ के मामा विपिनदादा को मामा कह कर अपना लिया। इस प्रकार हम लोगों पर उनकी कृपा का सूत्रपात हुआ।

इस समय वे गृहस्थाश्रम छोड़कर आये ही थे। धोती, कुर्ता, चादर इत्यादि पहनते थे। वैराग्य का कोई चिह्न नहीं था। उसी दिन से सातगाछिया में जितने पुराने लोग हैं, उन्हें राजेन्द्रबाबू के नाम से ही जानते हैं, चरणदास बाबाजी के नाम से नहीं। उस दिन शाम को मदनगोपाल के मन्दिर में खूब कीर्तन हुआ। रात में गाँव के कुछ लोग बाबाजी महाशय के पास आये। विपिनदादा के मझले भाई गौर गोस्वामी और कुंजलाल बंद्योपाध्याय, मेरे नाना प्रसन्न कुमार बंद्योपाध्याय आदि बैठकर नानारूप कथा-वार्ता करने लगे। दो-चार दिन रहकर बाबाजी महाशय शान्तिपुर दर्शन करने चले गये। दूसरी बार फिर सदलबल सातगाछिया आकर हमें दर्शन दिये। इस बार उनके साथ महारथी श्रीयुत नवद्वीपदादा भी थे, जिनकी बात सुनकर पाषाण भी पिघल जाता है। उनके द्वारा ही हम लोग बाबाजी महाशय को पकड़ पाते थे। वे उनके अभिन्न कलेवर थे। उनका कीर्तन-माधुर्य और नृत्य देख पाषंडी लोग भी अपने को भूलकर मानो उनके हाथ बिक जाते थे। जिन्हें उनकी कृपा प्राप्त हुई है, वे सब एक-एक महारथी हो गये हैं। नवद्वीप दादा की कथा का वर्णन एक मुख से नहीं हो सकता। वे सदानन्दमय पुरुष थे। उनके मुख पर नाम छोड़ और कुछ नहीं रहता था। बालक के समान उनका जीवन था। सदा बालकों के साथ कीर्तन किया करते थे। स्वभाव भी ठीक बालक के समान था। जिसे एकबार माँ, मौंसी, दादा इत्यादि कहकर पुकार लेते थे, वह सदा के लिए उनके हाथ बिक जाता था। ऐसे चित्ताकर्षक महात्मा के दर्शन मैंने और कभी नहीं किए। उन्होंने जिसको एकबार भी स्पर्श कर लिया उसका मन उसी क्षण से परिवर्तित हो गया। ऐसे शक्तिमान् पुरुष न हुए न होंगे।

इस बार लगभग एक मास तक बाबाजी महाशय सातगाछिया रहे। जितने दिन रहे, सारा गाँव आनन्द में मग्न रहा। मदनगोपाल के मन्दिर में प्रतिदिन नाम संकीर्तन होता। गाँव के लोग जैसे मोह-निद्रा से जाग पड़े। सब लोग साधु-वैष्णव सेवा की इच्छा से बहुत-सी सामग्री ले-लेकर आने लगे। आबाल-वृद्ध-वनिता साधु-दर्शन के लिए दौड़ पड़े। एक मास तक सारा गाँव नूतन भाव में डूबा रहा। गाँव के अधिकांश लोग शाक्त थे। वैष्णव के प्रति श्रद्धा बहुत कम लोगों में थी। किन्तु आश्चर्य! बाबाजी महाशय का नृत्य देख और कीर्तन सुन सभी को एक अमानवीय शक्ति का अनुभव होने लगा। उन्होंने इससे पहले न कभी इस प्रकार का नृत्य देखा था और न संकीर्तन सुना था, इसलिए उनको बड़े आनन्द का अनुभव होने लगा। गाँव के मुखिया श्रीयुक्त भगवती चरण मुखोपाध्याय, श्रीयुक्त शारदाचरण मुखोपाध्याय इत्यादि रोज आने लगे। कोई-कोई बाबाजी महाशय के साथ नाना रूप तत्त्व-कथा करने लगे। गाँव के छोटे-छोटे बालक भी बाबाजी महाशय के साथ कीर्तन करते-करते इतने अभ्यस्त हो गये कि सदा गाते रहते-'एइ हरे कृष्ण नाम आबार बल, आबार बल हरिनाम, आबार बल। (ए नाम शिव जपेन पञ्चमुखे आबार बल) (ए नाम नारद जपेन वीणा यंत्रे (ए नाम जतइ बल सुनते भाल) (ए नाम जतइ बल सुनते भाल) (ए नाम तोमरा बल आमरा शुनि)!' बालकों के संग से कीर्तन ध्वनि अमृतधारा के समान गाँव के एक सिरे से दूसरे सिरे तक प्रवाहित होने लगी। ऐसा लगता जैसे सैकड़ों कोकिलाएँ एक साथ कूक रही हों। गाँव के लोगों का वैष्णवों के प्रति विद्वेष जाता रहा। सब एक नये भाव में डूबकर हरिनाम में मतवाले हो गये। इसी समय से बाबाजी महाशय कालना या नवद्वीप आने पर हमें दर्शन अवश्य देते और सातगाछिया पर बड़ी कृपादृष्टि रखते। मेरे नाना श्री प्रसन्न बंद्योपाध्याय बाबाजी महाशय के संग से नव-जीवन का अनुभव करने लगे। हम लोग उस समय सातगाछिया आकर श्रीयुक्त सुरेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय के घर रह रहे थे। नया मकान करीब-करीब बन चुका था। नानाजी ने बाबाजी महाशय से

पूछा-'बाबा, फिर कब आयेंगे। मेरी इच्छा है कि नये घर में एक दिन वैष्णव-सेवा हो।' बाबाजी महाशय बोले-'मौंसाजी, हम लोग शीघ्र ही आयेंगे।'

कुछ दिन बाद हम लोग नये घर में आ गये। नवद्वीपदादा प्राय: सातगाछिया आया करते। एक दिन अकस्मात् मेरी माँ बहुत बीमार हो गईं। वे आखिरी साँसें गिनने लगीं। उनकी जन्मपत्री में इस समय मृत्यु योग था। मेरे नाना और नानी यह जानते थे। वे बहुत व्याकुल हो गये। मदनगोपालजी का चरणामृत माँ को बार-बार दिया जाने लगा। गाँव की बहू बेटियाँ उन्हें देखने आने लगीं। गाँव के लोग आपस में कहने लगे-'प्रसन्नकुमार की बेटी अब न बचेगी।' देखते-देखते एक दिन माँ बेहोश हो गईं। डॉक्टर ने कहा-'जीवन की आशा बहुत कम है। इस अवस्था में यदि अधिक समय रही तो बच नहीं सकती।' घर के सब लोग अस्थिर हो गये। माँ को बिलकुल होश न था। उनकी साँस भर आ-जा रही थी। उसी समय नवद्वीपदादा कालना से नाम करते-करते सीधे हमारे दालान में आ पहुँचे। उस त्रस्त अवस्था में ही सब लोग उठ खड़े हुए। जोर-जोर से कीर्तन होने लगा। खोल-करताल का स्वर कान में पड़ते ही माँ ने आँख खोलकर देखा और हाथ बढ़ाकर नवद्वीपदादा की पद धूलि लेनी चाही। ऐसा न कर सकने पर लुढ़कते-लुढ़कते जाकर उनके चरणों में अपना सिर टेक दिया और दोनों हाथों से उन्हें जकड़ लिया।

कुछ देर बाद नवद्वीपदादा माँ को जीवन दान कर कीर्तन करते-करते विपिनदादा के घर चले गये। विपिनदादा से कहने लगे, 'सुशीला दीदी का आज मृत्यु योग था। इसलिये उन्हें देखने चला गया था।' हम लोगों के साथ नवद्वीपदादा का व्यवहार ऐसा ही था, जैसा अपने अन्तरंग लोगों के साथ। जब भी वे आते माँ और नानी से कहते, 'सुशीलादीदी, ठाकुर को मट्ठे-च्यौड़ा का भोग लगाओ।' हमारे यहाँ बहुत सी गायें थीं। इसलिए रोज मट्ठा मक्खन होता था। मट्ठा और च्यौड़ा नवद्वीप दादा का प्रिय भोजन था। पालक के साग का घंट (तरकारियों से बना एक बंगाली व्यंजन) और लौकी डाँटा का रसा उन्हें अच्छा लगता था अत: जब हम ये व्यंजन बनाते तो नवद्वीपदादा की याद आ जाती।

नवद्वीप दादा को विपिन दादा के घर गये थोड़ा ही समय बीता था कि माँ को पसीना आने लगा। वे कहने लगीं-'ऐसा लगता है कि मेरे शरीर से गर्मी निकल रही है।' दादी कहने लगीं, 'आज नवद्वीप दादा ने तुम्हें बचाया है। उनकी चरण धूलि में लोट लो।' माँ उठ बैठीं। धीरे-धीरे उनका शरीर काफी स्वस्थ होने लगा। जो लोग माँ की अवस्था देखकर पहले अत्यंत भयभीत हुए थे, इस समय उन्हें बैठे देख अत्यन्त आश्चर्य-चकित हो गये। सब यही कहने लगे, 'ये बाबाजी मनुष्य नहीं हैं। लोग क्या जानें, लड़की तो मर ही चुकी थी।' इस आश्चर्यजनक घटना को देख स्त्रियाँ अपने-अपने घर के बड़े-बूढ़ों से बोलीं, 'वे बाबाजी मनुष्य नहीं थे, उन्होंने तो प्रसन्नबाबू की मरी हुई लड़की को जिला दिया।' आबाल-वृद्ध-वनिता सबके मन में एक प्रकार परिवर्तन हो गया।

गाँव के लोगों में हरिनाम और वैष्णवों के प्रति विश्वास क्रमश: दृढ़ होने लगा। कुछ दिनों के बाद माँ बिलकुल स्वस्थ हो गयीं। दस मास दस दिन पूरे होने पर उन्होंने एक कन्या को जन्म दिया। लड़की देखने में बुरी नहीं थी। खूब हृष्ट पुष्ट थी। अंग भी सुन्दर थे। वह धीरे-धीरे बड़ी होने लगी। किन्तु न तो कुछ बोल पाती और न चल पाती, यहाँ तक कि सरक भी नहीं सकती थी। बिलकुल जड़ पदार्थ की तरह थी। लड़की के कारण माँ का मन सदा अशान्त रहता।

तीसरी बार जब बाबाजी महाशय जय निताइ, नवद्वीप दादा आदि के साथ सातगाछिया पधारे तो एक दिन नानाजी के घर आये। उन्हें देखते ही वे उठ बैठे और उनका हाथ पकड़ कर बोले, 'आओ बाबा आओ' और उन्हें बैठने को आसन दिया। बाबाजी महाशय बैठते ही बोले-'मौंसी कहाँ हैं?' उसी समय नानी आ गईं और बोलीं, 'बेटा आया है। बैठ। बाबाजी महाशय बोले, 'इतनी परेशान क्यों हो?'

नानी—नहीं बाबा, परेशान नहीं। बहुत दिनों बाद आये हो, चलूँ, तुम्हारे जलपान का कुछ प्रबन्ध करूँ।

बाबाजी—मौंसी, दूकान पर आदमी भेजकर क्या होगा? घर में जो कुछ हो वही ले आओ। मैं कोई नाते-रिश्तेदार तो हूँ नहीं जो सन्देश और रसगुल्ले बिना काम न चले।

नानी—यह क्या बात! नाते-रिश्तेदारों को ही खिलाया जाता है।

यह कहकर दूकान से सन्देश लाने के लिए आदमी भेज दिया। उन दिनों गुप्तिपाड़ा के सन्देश बहुत प्रसिद्ध थे। थोड़ी ही देर में नौकर खाली हाथ लौट आया और बोला, 'किसी दूकान पर सन्देश रसगुल्ले नहीं मिले।' नानी को विश्वास न हुआ। वे स्वयं फिर पड़ोस की दूकान पर गईं। किन्तु हताश होकर लौट आयीं। मन में बड़ा दु:ख हुआ और सोचने लगीं, 'आहा, बच्चे को एक मिठाई देकर जल भी नहीं पिला सकती।' बाबाजी महाशय बोले, 'मौंसी आप क्यों दु:खी होती हैं? घर में जो हो वही दे दीजिये।' नानी बोलीं, 'घर में तो कुछ नहीं है बाबा, क्या दूँ? बाबाजी महाशय बोले—'क्यों आज तो चावल भिगो कर उसकी पीठी बना रखी है और हरि सिलहट से संतरे का रस लाया है। उसे मिलाकर लड्डू बना दो न?' यह सुन नानी अवाक् रह गयीं। बोलीं, 'बाबा, तुम्हें ये घर की बातें कैसे मालूम? तुम कौन हो, बताओ?'

बाबाजी—माँ! मैं आपकी सन्तान हूँ।

नानी—विदुर के घर जैसे भगवान् ने रूखा-सूखा पाया था, वैसे ही तुम भी कह रहे हो। तुम्हारी जो इच्छा हो वही खाओ।

नाना और नानी इस घटना से भली प्रकार समझ गये कि बाबाजी महाशय साधारण मनुष्य नहीं हैं। हाथ जोड़कर बोले-'बाबा, हमारे ऊपर दया करो, हम महापापी हैं। पुत्र शोक से कातर हो इस ग्राम में गंगा वास कर रहे हैं।'

बाबाजी—मौंसाजी! मौंसीजी! मुझे आशीर्वाद दीजिए, आप लोगों पर मैं क्या कृपा करूँ? ऐसी बात मत कहिए। मैं तो आप लोगों की सन्तान हूँ। आप लोग तो साक्षात् देवता और देवी हैं।

शाक्त होते हुए भी नाना और नानीजी के पास हरिनाम की माला थी। बाबाजी महाशय ने उन्हें जप करने की प्रणाली सिखाई। बाबाजी महाशय से प्राप्त शिक्षा के अनुकूल आचरण करते-करते और एक वर्ष तक प्रतिदिन मदनगोपाल के दर्शन करते-करते दोनों ने प्राण त्याग किये। उस प्रकार की सज्ञान मृत्यु बहुत कम लोगों को मिलती है।

बाबाजी महाशय जिस दिन हमारे घर आये थे, उसी सायंकाल गाँव के मुरब्बी श्रीयुत भगवती चरण मुखोपाध्याय, श्रीयुत शारदा चरण मुखोपाध्याय, श्रीयुत गौरमोहन गोस्वामी और दूसरे लोग आकर कहने लगे-'राजेन्द्रबाबू, आपके मुख से रोज निताइगौर का गुण-गान सुनते हैं। आज हमें उनके दर्शन करा दीजिये।' बाबाजी महाशय बोले-'उनकी इच्छा होगी तो अवश्य दर्शन देंगे। मुझ नराधम में क्या क्षमता कि आपको दर्शन कराऊँ।' यथासमय कीर्तन आरम्भ हुआ। लोगों की भीड़ धीरे-धीरे बढ़ने लगी। गाँव के बालक, वृद्ध, स्त्री कोई भी बाकी न रहे। सब छूट कर मन्दिर में आ गये। कुलवधुएँ भी कीर्तन सुनकर दौड़ी चली आईं। उस दिन बाबाजी महाशय ने प्रेम की नदी में सबको बहा दिया। किसी को बाकी न छोड़ा। बाबाजी महाशय के नृत्य-रंग से पृथ्वी डगमगा उठी। सभी उन्मत्त हो गये। वे अचानक भगवती चरण मुखोपाध्याय और शारदाचरण मुखोपाध्याय का हाथ पकड़ नृत्य करने लगे। अपूर्व दृश्य! बाबाजी महाशय के हाथ पकड़ते ही वे दोनों यन्त्रपुत्तलिका की भाँति नृत्य करने लगे। भगवतीबाबू बड़े स्थूलकाय थे। उन्हें चलने में भी कष्ट होता था। उनका इस प्रकार नृत्य करना आश्चर्य की बात थी। सभी अवाक् रह गये। बाबाजी महाशय 'हरे कृष्ण' कहकर हुंकारने लगे। थोड़ी देर नृत्य करा उन्हें छोड़ दिया, पर जब तक कीर्तन होता रहा वे दोनों इसी प्रकार नृत्य करते रहे। धीरे-धीरे मानो महाशक्ति का आविर्भाव होने लगा। कोई रोने लगा, कोई चीखने और कोई भूमि पर लोटने लगा। जैसे साक्षात् महाप्रभु का आविर्भाव हो गया। जिन्होंने दर्शन करना चाहा था, उन्हें दर्शन भी हुए। वे चीख कर कहने लगे- आज हमारा जीवन सार्थक हुआ। ऐसे दर्शन हुए कि कुछ कहना ही नहीं! सब बाबाजी महाशय के श्रीचरणों में लोटने लगे। श्रीयुत कुंजलाल गोस्वामी के बहनोई चीत्कार कर कहने लगे-'आज मेरा सातगाछिया के

कुंज गोसाईं की बहन से विवाह करना सार्थक हुआ। मधुर वृन्दावन लीला के दर्शन हुए।' इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी प्रकार की लीला के दर्शन की बात कहने लगा। कोई-कोई आविष्ट अवस्था में पड़े थे और उनके दाँत जकड़ रहे थे। स्त्री, पुरुष सभी आविष्ट थे, यहाँ तक कि छोटे-छोटे बालक भी ज्ञान-शून्य होकर लोट रहे थे। मेरी माँ मन्दिर के खम्भे के पास मेरी बहन को गोदी में लेकर बैठी थीं। वे भी संज्ञाहीन थीं। बाबाजी महाशय चरण पर चरण रख हाथ फिरा-फिराकर नृत्य कर रहे थे। उन्होंने एकाएक 'हरेकृष्ण' कह मेरी बहन के दोनों हाथ पकड़ कर उसे झटक दिया, फिर उसका हाथ पकड़ कर नचाने लगे। कुछ देर तक वह खूब नाचती रही। सब लोग आश्चर्यान्वित हो गये। जिसे इतनी चेष्टा करने पर भी खड़ा नहीं किया जा सका था और जो हाथ पकड़ उठाते ही काँपने लगती थी और जमीन पर पैर भी नहीं रख सकती थी, आज बाबाजी महाशय की कृपा से नृत्य करने योग्य हो गई। आज भी उसे कोई देख सकता है। इस महा-संकीर्तन के पश्चात् बाबाजी महाशय के निकट बहुत-से लोग सदा के लिए बिक गये।

श्रीयुत कुंजलाल मुखोपाध्याय मेरे मामा थे। इनके पिता को अपने नाना की सम्पत्ति मिली थी। इसलिए मदनगोपालजी की सेवा की इनकी भी बारी रहती थी। कुंजमामा ठाकुरसेवा स्वयं किया करते थे। संध्या समय आरति कीर्तन भी करते थे। पर संकीर्तन में नृत्य नहीं करते थे। इसमें उन्हें लज्जा होती थी। पर आज बाबाजी महाशय ने उनकी लज्जा दूर कर दी। अब कीर्तन में किसी को भी नाचने के लिये अनुरोध न करना पड़ता। विपिनदादा के शिष्य मधुदादा, उद्धवदादा तो घर-बार छोड़कर बाबाजी महाशय के साथ हो लिये। हरि जेले, एक प्रेमी भक्त, जो बाबाजी महाशय को 'बाबा' कहकर पुकारा करते थे, इस महासंकीर्तन के पश्चात् उनके चरणाश्रित हो गये। इस प्रकार न जाने कितने लोग कृपामय की कृपा प्राप्त कर कृतार्थ हुए। मैं और कहाँ तक कहूँ।

संकीर्तन के दूसरे दिन बहुत से लोग बाबाजी महाशय के पास आये हुए थे। उनकी न जाने क्या इच्छा हुई, वे भिक्षा के लिए निकल पड़े। मैं भी उनके साथ हो लिया। बाबाजी महाशय और नवद्वीप दादा ने कीर्तन प्रारम्भ किया-'जदि चाओ गोकुल-वृन्दावन, भज निताइ गौरांग चरण।' इत्यादि नाम करते-करते बाबाजी महाशय ने चरण पर चरण रख हाथ घुमा-घुमाकर नृत्य आरम्भ किया। कैसा अपूर्व दृश्य था! जिसने देखा वही जानता है। उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। सातगाछिया निवासी लोगों के भाग्य की सीमा न रही। उन्होंने पहले कभी ऐसा नृत्य नहीं देखा था। बाबाजी महाशय कीर्तन करते-करते ऐसी तेजी से जा रहे थे कि हम लोग दौड़कर भी उन्हें नहीं पकड़ पा रहे थे। ग्रामवासियों ने उनके कन्धे पर झोली देखकर पूछा, 'आज कन्धे पर झोली कैसी है?' किसी ने कहा-'भिक्षा के लिए।' सुनते ही स्त्रियाँ आनन्द में खो गईं, समझ न सकीं कि क्या दें। घर में जो कुछ मिला लेकर आने लगीं। पर कोई एक मुट्ठी भिक्षा भी झोली में मुश्किल से डाल पाता कि बाबाजी महाशय नाचते हुए आगे बढ़ जाते। कन्धे पर भिक्षा की झोली रख उन्हें नृत्य करते हुए जिसने भी देखा वह सुध-बुध खोकर उनके साथ चल पड़ा। उन्होंने भिक्षा से लौटकर झोली मदनगोपाल जी के दरवाजे पर रख दी। इधर जिन लोगों ने भिक्षा के लिए सामग्री निकाली थी और उसमें से केवल एक मुट्ठी झोली में डाल पाये थे, वे बाकी सामग्री मदन-गोपालजी के नाट्य मन्दिर में आकर रखने लगे। उस समय मदन-गोपालजी की सेवा की बारी मेरे छोटे दादा विपिन गोस्वामी की थी। बाबाजी महाशय माँ से बोले-'सुशीलादीदी, आज भिक्षा की सामग्री से तुम्हें खिचड़ी बनानी होगी।' यह सुन माँ बहुत आनन्दित हुईं। पर उन्हें भय लगने लगा। इतने लोगों की रसोई कैसे बनायेंगीं। उस उमर में इतने आदमियों के लिए रसोई बनाना असम्भव था। बाबाजी महाशय समझ गये और बोले-'सुशीलादीदी, भय की क्या बात है। तुम ब्राह्मण की लड़की हो, यह सब तो तुम्हारा ही काम है। जाओ, रसोई बनाओ।' बाबाजी महाशय के मुख से यह सुनने के साथ ही माँ के मन में शक्ति का संचार हुआ। उन्होंने अनायास ही रसोई तैयार कर डाली। भोगराग के पश्चात् कोई दो-ढाई सौ लोगों ने प्रसाद पाया।

उस दिन सब लोग आनन्द में मस्त थे। विपिनदादा परोस रहे थे और सब लोग मानो अमृत-आस्वादन कर रहे थे। खिचड़ी माँग-माँग कर ले रहे थे। सचमुच ऐसी खिचड़ी पहले किसी ने नहीं खाई थी। भिक्षा में जो मिला था उसी से खिचड़ी बनाई गई थी। उसमें उचित परिमाण में मसाला था न घी, फिर भी कितनी स्वादिष्ट थी। सब लोग अवाक् रह गये। भोजन के पश्चात् बाबाजी महाशय माँ की प्रशंसा करने लगे और कहने लगे-'सुशीलादीदी के हाथ सोने से मढ़ देने चाहिएँ।'

बाबाजी महाशय ने इस प्रकार की जितनी लीलाएँ कीं, उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। एक मास बाद वे पुरी के लिए रवाना हो गये। बाबाजी के प्रस्थान करने के कुछ दिन बाद ही नानाजी का परलोकवास हुआ। दो मास बाद पिताजी परलोकवासी हुए। एक साल बाद नानीजी भी हम लोगों को शोक सागर में निमग्न कर चली गईं। माँ शोक से अधीर हो बीमार पड़ गईं। उनकी केवल यही चिन्ता थी कि दो नाबालिग बच्चों को पालकर किस तरह बड़ा करेंगी।

मेरे शैशव काल में ही पितृहीन हो जाने का सम्वाद पाते ही बाबाजी महाशय ने नवद्वीप दादा को हम लोगों की खबर लेने भेजा।

कुछ दिन बाद वे स्वयं हम लोगों को देखने सातगाछिया पधारे। बाबाजी महाशय को देखते ही माँ और मैं रो पड़े। उन्होंने मुझे गोदी में उठा लिया। उनकी छाती से लगकर मेरा रोना और भी बढ़ गया। मैं फूट-फूट कर रोने लगा। बाबाजी महाशय मुझे गोद में लिये-लिये मेरी पीठ सहलाते हुए बोले-'डर की क्या बात है, बेटे मैं तो तुम्हारा ही हूँ।' फिर माँ को सांत्वना देते हुए बोले-'भय क्या है? मैं हूँ तो! शोक से अधीर हो इतनी सुन्दर देह मिट्टी में क्यों मिला रही हो? इन नाबालिग बच्चों के बड़े होने की चिन्ता से इतना व्याकुल होने की क्या बात है? मनुष्य जीवन दुर्लभ है। भजन करो। मैं कंधे पर झोली डालकर तुम्हारे लिए भोजन जुटाऊँगा। कौन किसे देता है, भगवान् ही सबके जीवन हैं। वही पालनकर्ता हैं। संसार अनित्य है। कोई किसी के साथ नहीं जाता। फिर क्यों व्यर्थ शोक करके कृष्ण-भजन के साधन इस सुन्दर देह को मिट्टी किये दे रही हो? नाम करो, त्रिताप ज्वाला दूर होगी।' बाबाजी महाशय को पाकर हम लोगों में साहस का संचार हुआ। शोकताप सब दूर हो गया। जिसने भी उनकी ये मधुसिक्त बातें सुनीं उसी का हृदय विगलित हो गया। ऐसी हृत्कर्ण रसायन वाणी कभी किसी ने न सुनी होगी। मैं बचपन में ही पितृहीन हो गया था किन्तु बाबाजी महाशय ने मुझे पितृस्नेह से वंचित न होने दिया। मुझे इतना प्यार करते कि जो वस्तु स्वादिष्ट लगती खाते-खाते मेरे मुख में दे देते। उनके स्नेह के कारण मुझे अनुभव ही नहीं होता था कि मैं पितृहीन हूँ। मेरा बालहठ और अभियोग पिता के समान सहन करते थे। मैं मान करता तो उनसे करता और राग करता तो उनसे। वे ही मेरे एकमात्र उपास्य देव थे। आज मैं मुक्तकण्ठ से स्वीकार करता हूँ कि मैं उन्हें छोड़ और किसी देवता को नहीं जानता।

कुछ दिनों बाद मैं लगभग एक साल तक मलेरिया ज्वर से पीड़ित रहने के कारण अस्थिपंजर हो गया। कालना के मिशनरी अस्पताल के डॉक्टर ने कहा, 'अब जीवन मरण भगवान् के हाथ में है। हमारी चिकित्सा से अब कुछ नहीं होगा।' माँ डॉक्टर साहब की यह बात सुन बड़ी चिन्ता में पड़ गईं। ज्वर किसी प्रकार नहीं छोड़ रहा था। धीरे-धीरे उठने बैठने की क्षमता भी न रही। अन्तिम काल आ गया। एक दिन रात को ऐसा लगने लगा कि प्राण अब जा रहे हैं। उसी दिन बाबाजी महाशय ने कलकत्ते से स्टीमर द्वारा कालना होते हुए नवद्वीप आने का निश्चय किया था। उनके साथ रघुनन्दन गोस्वामी भी थे। संयोगवश गौरनगर के तटपर स्टीमर में कुछ गड़बड़ी पैदा हो गई, जिससे कालना पहुँचने का समय तीन चार घण्टे आगे खिंच गया। इससे बाबाजी महाशय ने सातगाछिया होकर जाने का निश्चय किया। स्टीमर के गुप्तीपाड़ा घाट पर पहुँचते ही बाबाजी महाशय रघुनन्दन गोस्वामी और दूसरे साथियों के साथ वहाँ उतर गये। संयोगवश स्टीमर घाट के निकट कुंजमामा और विपिन दादा उन्हें मिल गये। वे लोग बाबाजी महाशय को सातगाछिया ले आये। कुंज मामा के घर पर ही ठहरने की व्यवस्था हुई। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि मुझे पितृहीन समझकर

बाबाजी महाशय मेरा बहुत ध्यान रखते थे। सातगाछिया आते ही हमारी खबर लेने आदमी भेज देते थे। दया के सागर, पतितों के बन्धु, निराश्रय के आश्रय बाबाजी महाशय ने स्टीमर घाट पर ही हरिजेले से पूछा, 'बाबा, बता सकते हो पंचु कैसा है? सुना है वह बहुत बीमार है।' हरिजेले ने कहा, 'बाबा, वह बहुत दिनों से बीमार है। जाने बचेगा भी या नहीं।' तब वे हरिजेले की पत्नी से बोले, 'माँ, तुम जरा पंचु के घर खबर तो कर दो कि मैं आया हूँ।' हरिजेले की पत्नी मेरे घर आकर कहने लगी, 'माँ, बाबाजी महाशय आये हैं। मुझे उन्होंने तुम लोगों को बुलाने भेजा है।' माँ, मेरे पास ही बैठी थीं। मेरी तबीयत उस समय बहुत खराब थी और लगता था कि प्राण अब गये, अब गये। बाबाजी महाशय का आगमन सुनते ही हृदय में शान्ति का संचार हुआ। हमारे घर से कुंज मामा का घर ज्यादा दूर नहीं था। माँ मुझे गोदी में उठाकर ले गयीं। बाबाजी महाशय कुंज मामा और रघुनन्दन गोस्वामी के साथ बैठे बात-चीत कर रहे थे। उसी समय माँ ने गोद से उतार दिया। मैं धीरे-धीरे उठकर बाबाजी महाशय के समीप जाने के लिए खड़ा हुआ। सर्दी के दिन थे। दरवाजा बन्द था। मेरे दरवाजे पर हाथ रखते ही बाबाजी महाशय ने झट उठकर मुझे गोद में ले लिया। फिर धीरे-धीरे कहने लगे-'बेटे कैसे हो, भय किस बात का, मैं हूँ न।' मैंने कहा-'मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है। आज एक साल से मलेरिया में पड़ा हूँ। लगता है कि प्राण जाने को हो रहे हैं।' बाबाजी महाशय ने कहा, 'चिन्ता न करो, ठीक हो जाओगे। मैं तुम्हें पुरी ले जाऊँगा। आबहवा में परिवर्तन होते ही ठीक हो जाओगे।' मैंने पूछा, 'अकस्मात् रात्रि में कैसे आये?' बाबाजी महाशय ने कहा, 'तुम्हारा दु:ख सुना, इसलिये देखने चला आया। नहीं तो आज सुबह ही नवद्वीप चला जाता।' मैं मन ही मन सोचने लगा 'इसी को कहते हैं अयाचित कृपा। मुझ जैसे अधम के प्रति इतनी कृपा! यदि कोई पतितों के प्रति इतनी कृपा का प्रमाण चाहे तो मैं उसका एकमात्र दृष्टान्त हूँ। मेरे दृष्टान्त से स्पष्ट होगा कि मेरे जैसे सामान्य बालक के प्रति उनकी कृपादृष्टि कहाँ तक थी। मुझे बचाने की इच्छा से परम करुण बाबाजी महाशय आज नवद्वीप यात्रा स्थगित कर सातगाछिया उतर पड़े। उनकी दया की बात मुझ जैसा सामान्य जीव कैसे कहे? वह अकथनीय है। जिन्होंने एक मुहूर्त भर के लिए भी उनका प्रेम पाया है, उन्होंने अनुभव किया है कि वह कैसा है। मैं प्रेम करना नहीं जानता, किन्तु प्रेम किसे कहते हैं इसका अनुभव किया है। सभी जीवों पर समान रूप से इस प्रकार की दया न देखी, न देखूँगा।

मुझे जीवनदान देकर बाबाजी महाशय श्रीधाम नवद्वीप रवाना हो गये। सातगाछिया वासियों के लिए यह उनका अन्तिम दर्शन था। जाते समय मुझसे और माताजी से कहने लगे-'मैं इसे पुरी ले जाऊँगा।' आब हवा बदलने से ही बिल्कुल ठीक हो जायेगा। हमें सान्त्वना देने के लिए ही बाबाजी महाशय ने ऐसा कहा था। हम लोगों ने सोचा कि पुरी जाना होगा। पर उनके बिना समझाये उनकी बात कौन समझ सकता था। बाबाजी महाशय के जाने के बाद धीरे-धीरे मेरी तबीयत ठीक होने लगी। माँ सोचने लगीं-'बाबाजी महाशय कह गये हैं तो पुरी ले ही जाना चाहिए।' वे मुझे लेकर पुरी रवाना हो गईं। वहाँ हम लोग झाँझपीटा मठ में ठहरे। ललिता माँ मुझे प्रतिदिन काला कृष्णदास के साथ समुद्र स्नान के लिए भेज देतीं। उन्होंने मुझे प्रतिदिन एक अंजलि भर समुद्र जल पीने का आदेश किया। मैं उनके आदेशानुकूल करने लगा। थोड़े ही दिन बाद चेहरे का पीलापन दूर हो गया। लगभग दो मास बाद नवद्वीप जाने के लिए मन बड़ा व्याकुल हो उठा। मैं और माँ नवद्वीप के लिए चल दिये। वहाँ पहुँचते ही पहले बाबाजी महाशय के दर्शन किये। उस समय वे बड़ाल घाट पर अपने गुरुदेव के आश्रम में रहते थे। मुझे देखते ही बोले-'वन्दे मातरम्।' मैंने कहा-''जी''! वे उस समय लेटे हुए थे। उठकर बैठ गये और बोले-'गोविन्द! इनके प्रसाद की व्यवस्था कर दो।' फिर राम दादा से बोले-'इनका सामान लाने के लिए भी किसी को भेज दो।' हमारे लिए एक कमरा ठीक करा दिया और हम उसमें ठहर गये। कुछ दिन बाद बाबाजी महाशय ने नसी बाबू का बैठकखाना खरीद लिया। श्रीश्रीनित्यानन्दप्रभु के उत्सव के दिन उसी बैठकखाने में सातगाछिया से लाये हुए ठाकुर को पधराया। उस दिन महासंकीर्तन हुआ।

श्रीश्रीनित्यानन्द प्रभु के उत्सव के दूसरे दिन प्रातःकाल ही बाबाजी महाशय अपने गुरुदेव श्रीश्रीगौरहरिदास बाबाजी महाशय के पाद-पद्मों की वन्दना कर और उनकी चरण-धूलि मस्तक पर धारण कर बड़ाल घाट से बागानबाड़ी आकर रहने लगे। बागान बाड़ी में आकर बैठते ही लोगों की भीड़ लग गई। बाबाजी महाशय उस दिन कल्पतरु हो रहे थे। वांछा-कल्पतरु निताइ से जो-जो चाहता है प्राप्त करता है। बाबाजी महाशय भी ठीक वैसे ही हो गये। उनके पास आकर कोई कुछ मांगने लगा, कोई कुछ। बाबाजी महाशय से जिसने जो मांगा, उसे वही दिया। सीताराम से बोले-'सिंगा बजाओ।' मुझे बुलाकर कहने लगे- 'सीताराम को वृन्दावनी धोती चादर मंगा दो।' सीताराम धोती चादर पहन खूब जोर-जोर से सिंगा बजाने लगे। उस दिन लोग न जाने कहाँ से छूट कर आने लगे। जो जिस वस्तु की कामना से आया उसे वही मिली। कपड़ा बांटने का काम मुझे दिया गया। मुझे जो भी माँगता उसे देता। पर मैंने कमरे में जाकर देखा कि कपड़ों का ढेर जैसा का तैसा रखा है। मैं देखकर अवाक् रह गया। सोचने लगा किससे पूछूँ। सीधे दौड़ा-दौड़ा बाबाजी महाशय के पास जाकर उनसे पूछने लगा। वे बोले- 'निताइ के भण्डार में क्या कमी है? निताइ हमारे अखण्ड प्रेम की खान हैं, कलसा भर-भर कर बाँटने पर भी वह प्रेम समाप्त नहीं होता। दिये जाओ, दिये जाओ। निताइ के भण्डार में कुछ कमी नहीं है।'

इसी समय बाबाजी महाशय ने नवद्वीप से भेंट की प्रथा उठा दी और महाप्रभु की सेवा की व्यवस्था कर दी। शितिकण्ठ काका ने पूछा-'महाप्रभु की सेवा कौन करेगा?' बाबाजी महाशय ने उत्तर दिया-'पंचू बेटे, तुम आज से महाप्रभु को तुलसी चन्दन देना।'

मैं बाबाजी महाशय का आदेश पा प्रतिदिन तुलसी तोड़ लाता और चन्दन घिस लेता। शितिकण्ठ नाना मुझे पूजा सिखाने लगे। वे रोज गौर का प्रसाद बाबाजी को देने के लिए भेजते। मुझे सिर पर प्रसाद रखकर लाते देख वे अत्यन्त प्रसन्न होते।

एक दिन वे बागान बाड़ी के बैठकखाने में बैठे थे। मैं उनके पास गया हुआ था। तभी श्रीधर अंगन के शशि अधिकारी आकर उनसे बात करने लगे। वे मुझे देखते ही बोले-'जाओ बेटे, श्रीधर अंगन की माँ के पास से थोड़ा तेल ले आओ।' शशी अधिकारी से कहा-'जाओ दादा, पंचू को साथ ले जाओ।' मैं जाकर तेल ले आया। वे बोले-'बेटा सिर में अच्छी तरह तेल मल दे।' मैं तेल मलने लगा। उसी समय श्रीखण्ड के एक ठाकुर-संतान उनके दर्शन करने आये। मुझे उनके सिर में तेल मलते देख उनसे पूछने लगे-'इस लड़के को कहाँ से पाया?' बाबाजी महाशय बोले-'यह मेरा ही है। मेरी इच्छा है, इसका विवाह कर दूँ।' बाबाजी महाशय ने जैसे ही विवाह की बात कही मैं बोल उठा-'नहीं, मैं विवाह नहीं करूँगा।' वे बोले-'क्यों, विवाह क्यों नहीं करेगा? ब्याह करने से क्या धर्म नहीं होता? जिसका होता है उसका संसार में रहते भी होता है। फिर तुझे भजन-साधन की क्या जरूरत?' फिर गोसाईंजी से बोले-'यह बड़े ऊँचे कुलीन वंश का है। मेरी इच्छा है कि यहीं इसके लिए मकान बना दो और इसका विवाह कर दो।' गोसाईंजी ने कहा-'बड़ी अच्छी बात है।' बाबाजी महाशय बोले-'मैं इसे बहुत प्यार करता हूँ। इसलिए इसे अपने पास ही रखूँगा।'

उदयति यदि भानुः पश्चिमे दिग्विभागे
विकसति यदि पद्मं पर्वतानां शिखाग्रे।
प्रचलति यदि मेरुः शीततां याति वह्निर्न
चलति खलु वाक्यं सज्जनानां कदाचित्॥

किसकी सामर्थ्य थी जो उनकी वाणी को असत्य कर सकता। वह तो सत्य होकर ही रहती-आज या सौ वर्ष बाद। मैं अभिमानी और स्वतन्त्र था। इसलिए उनके वचनों का मूल्य नहीं समझ पाया। आत्माभिमान में चूर रहने के कारण उनकी कृपा का अनुभव नहीं कर पाया। मेरे अन्दर वह प्रेम नहीं था। यदि मैं शुद्ध और अविकारी होता तो उस प्रेम का समझता और उसका अनुभव करता। मेरा गार्हस्थ्य, मेरा नवद्वीप-निवास सब आश्चर्यजनक व्यापार है। उन्होंने मुझे बाल पकड़कर अपने चरणों में खींचा। नहीं तो मेरी क्या सामर्थ्य थी जो नवद्वीप वास करता। उनके सिवा और कौन मुझे पतित जानकर मेरे ऊपर कृपा करता? उन्हें छोड़ मैं और किसी को नहीं जानता। पतितों को

ढूँढ़-ढूँढ़ कर कृपा करना उनका स्वभाव है। इस अधम पर कृपा कर उन्होंने इसे नवद्वीप में रखा।

उस वर्ष धूलट उत्सव के अवसर पर बड़ी वर्षा होने लगी। कुछ दिन बाद जोर का हैजा फैला। हम बड़ाल बाड़ी में ठहरे हुए थे। वहाँ नीलमणिदास को अचानक हैजा हो गया। उन्हें गौरगंगा की प्राप्ति हुई। उसके बाद राधानाथ की माँ को हैजा हुआ। बड़ाल घाट के मकान में जितने लोग थे सब बहुत भयभीत हुए। बाबाजी महाशय ने सबको अपने-अपने देश लौट जाने का आदेश किया। मुझे बागानबाड़ी में ठहरने की आज्ञा दी। माँ को देश लौट जाने के लिए कहा। माँ बोली-'मैं लगभग तीन मास पूर्व रोगी बालक को साथ ले देश छोड़कर आई थी। अब अकेली जाऊँगी तो लोग क्या कहेंगे? इसलिए पंचू को मेरे साथ भेज दीजिये। वह मुझे पहुँचा कर लौट आयेगा।' बाबाजी महाशय मुझे बिल्कुल जाने देना नहीं चाहते थे, किन्तु अन्त में माँ पर क्रोध प्रकट करते हुए बोले-'तेरा बेटा है मेरा नहीं है। अच्छा जा, ले जा।' जाते समय जब मैं आज्ञा लेने गया तब मुझे छाती से लगाकर फूट-फूट कर रोने लगे और बोले-'मुझे छोड़ कर चला जा रहा है। जा अब मिलना नहीं होगा।' क्या मैं जानता था कि सचमुच बाबाजी महाशय को फिर नहीं देख पाऊँगा।? माँ को पहुँचा कर नवद्वीप के लिए रवाना हो गया। किन्तु मन जैसे आगे बढ़ना नहीं चाहता था। जिधर देखता था उधर अपशकुन दीख पड़ते थे। लगता था धरती बिल्कुल निर्जन और निर्जीव है। चारों दिशाएँ जैसे शून्य हो रहीं थीं। मन-प्राण कातर होकर रोने लगे। एक करुण क्रन्दन कानों से उतर कर प्राणों में उथल-पुथल कर रहा था। लक्ष्यहीन पागल के समान रास्ता तय कर रहा था। कालना आकर नवद्वीप के स्टीमर पर बैठ गया। हैजे से असंख्य लोग मरे थे। उनके मृत शरीर रास्ते में इस प्रकार बह रहे थे कि स्टीमर से टकरा-टकरा जाते थे। बड़े कष्ट से नाना प्रकार के अमंगलों में से होकर नवद्वीप पहुँचा। स्टीमर से उतर कर पैर आगे नहीं बढ़ रहे थे। अत्यंत कष्ट के साथ टूटे हुए मन से बागान बाड़ी पहुँचकर देखा कि ललिता माँ शोकमग्न बैठी हैं। देखते ही मैं मूर्छित होकर गिर पड़ा। मुझसे कहा था 'अब मिलना नहीं होगा।' वही हुआ। इस प्रकार का इंगित मुझे ही नहीं और लोगों को भी किया था। कीर्तन में कहा था-'एबारकार मत आमार भजन हलो सारा' (इस बार मेरा भजन साधन पूरा हुआ) फिर मास्टरदादा से कहा था-'नीलमणि का खोल कहाँ गया। बेटे की चीज बाप की होती है।' मास्टरदादा बोले-'खराब हो गया था। उसकी पुड़ी बदलवानी होगी।' आजकल जहाँ उनका समाधि मन्दिर है, वहाँ एक चारपाई डालकर बैठते और सोते। कहते-'यहाँ मुझे बड़ा अच्छा लगता है।' इस प्रकार की बातें उन्होंने बहुत से लोगों से कही थीं, किन्तु कोई कुछ नहीं समझ सका। अपने दुर्भाग्य की कथा और क्या कहूँ। पितृहीन अनाथ बालक समझ कर मुझ पर अयाचित कृपा की। किन्तु आज उस धन से भी वंचित होकर पशु-पक्षियों के समान जीवन धारण कर रहा हूँ। ऐसी माता के गर्भ से जन्म लिया था। इसलिए भक्तों का संग हुआ है। पतितपावन श्रीराधारमण के भक्तगण! आपके चरणों में मेरी हार्दिक प्रार्थना है कि आप मुझ पर ऐसी कृपा करें कि जिनके चरणों के स्पर्श से आप सब पारसमणि हुए हैं उन्हीं चरणों का स्मरण करते-करते मेरी संसार यात्रा समाप्त हो। आपके चरणों की छाया शीतल जानकर, आपके शरणागत हो मैं आपसे यह भिक्षा माँग रहा हूँ। मैं आशा करता हूँ कि मेरे राधारमण के जन मुझे वंचित न करेंगे।

॥ इति ॥

॥ समाप्तेयं श्रीचरितसुधा ॥ ★ ॥ श्रीश्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥



लेखक की अन्य पुस्तकें

ENGLISH EDITION

		No. of Pages
1.	Lord Chaitanya	726
2.	Companions of Shri Chaitanya	419
3.	The Philosophy and religion of Shri Chaitanya	448
4.	The Gosvamis of Vrindaban	309
5.	Experiences in Bhakti	185
6.	The Saints of Bengal	432
7.	The life of love	550
8.	Shri Chaitanya and Raganuga Bhakti	101
9.	The Saints of Vraja	

हिन्दी संस्करण

1. ब्रज के भक्त
2. चरित सुधा
3. विरहिणी विष्णु प्रिया (नाट्य-काव्य)
4. नवभक्तमाल (सम्पूर्ण)
5. विरहिणी राधा
6. श्री चैतन्य लीलामृत
7. श्री चैतन्य मत
8. ब्रज की रसोपासना
9. बाबा श्री गौरांगदास जी (जीवन परिचय)
10. श्री चैतन्य महाप्रभु का दार्शनिक सिद्धान्त : अचिन्त्य भेदाभेद
11. श्री नित्यानन्द चरित्र
12. श्री रामदास कथामृत
13. श्री चैतन्य सम्प्रदाय में रसोपासना
14. ब्रज के रसिकाचार्य

इस ग्रन्थ का विषय है श्रीश्रीनित्यानन्द प्रभु के विशेष कृपापात्र भक्तचूड़ामणि सिद्ध श्रीचरणदास बाबाजी महाशय का पुण्य चरित्र। उनका चरित्र अत्यन्त रहस्यमय और भावपूर्ण है। परम दयालु श्रीनिताईचाँद की कृपा से उन्होंने पात्र कुपात्र का विचार किये बिना जनसाधारण में नाम-प्रेम का प्रचार कर जीवों का महाउपकार किया है। उन्होंने स्वरचित नवभावपूर्ण पद-पदावलियों के द्वारा बंगदेश और उड़ीसा में जो संकीर्त्तन की नयी तरंग उठाई थी, उसके घात-प्रतिघात से आज भी वैष्णवों का हृदय स्पन्दित होता है। उनके अनुगत और कृपापात्र निजजन आज भी श्रीगुरुकृपा-बल से असाध्य साधन कर रहे हैं।

श्रीश्रीनित्यानन्द प्रभु ने बाबाजी महाशय को अपनी शक्ति प्रदान की थी। इस अलौकिक नित्यानन्द शक्ति के बल से ही वे पूर्ण रूप से युगधर्म नाम और प्रेम का प्रचार करने में समर्थ हुए थे।

(भज) निताइ गौर राधेश्याम।

(जप) हरे कृष्ण हरे राम।।

इस मधुर नाम-कीर्त्तन की रचना चरणदास बाबाजी महाशय ने की थी और उन्होंने ही इसका प्रचार किया था। उनके अनुगत शिष्यगण इसका उन्मत्त भाव से कीर्त्तन करते-करते कीर्त्तनानन्द में किस प्रकार डूब जाते हैं, इसे जिन्होंने एकबार देखा है, वे ही जान सकते हैं। इस कीर्त्तन गीत में नित्यानन्द शक्ति पूर्ण रूप से निहित है और यह नाम-मन्त्र भजन-शक्ति देने वाला है।

श्रीश्रीगौरांग महाप्रभु सर्वअवतार-सार और युगधर्म प्रचारक हैं। मृदङ्ग-करताल के साथ मधुर हरिनाम-कीर्त्तन के वे प्रवर्तक हैं। अन्नगत प्राण, अल्पायु, दुर्बल, कलिहत जीवों का एकमात्र अवलम्ब, मंगलमय श्रीमन्महाप्रभु-प्रचारित वह हरिनाम कीर्त्तन जीवों के दुर्भाग्य से लुप्तप्राय होता जा रहा था। उसी समय सिद्ध चरणदास बाबाजी महाशय निताइचाँद की कृपाशक्ति से उस युगोचित हरिनाम संकीर्त्तन का फिरसे प्रचार कर, स्वयं वैष्णव धर्म याजनकर और उसका प्रचार कर जगद्वासियों को शिक्षा प्रदान कर गये हैं।

श्री हरिदास गोस्वामी